विश्वज्योति

का

बुद्ध-अङ्क (मई १९५६)

नव वर्ष अङ्क (मार्च १९५७)

नव वर्ष अङ्क (,, १९५८)

नव वर्ष अङ्क (,, १९५९)

स्वास्थ्य अङ्क (,, १९६०)

महापुरुष अङ्क (,, १९६१)

रवीन्द्र-दर्शन अङ्क (जुलाई १९६१)

महामना मालवीय अङ्क (जनवरी १९६२)

सदाचार अङ्क (मार्च १९६२)

परिवार अङ्क (मार्च १९६३)

आप ने देखा और उन की प्रशंसा की

और अब

" विश्वज्योति " के तेरहवें वर्ष में पदार्पण के उपलक्ष्य में

मार्च १९६४ में

राष्ट्रीय भावनात्मक एकता अङ्क

इस में "राष्ट्रीय भावनात्मक एकता" से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर ज्ञानवर्धक लेख, मनोहर कहानियाँ, रोचक एकाङ्की और सरल भावपूर्ण कविताएँ पढ़ें

वार्षिक ग्राहकों को मुफ्त

विज्ञापन सम्बन्धी जानकारी के लिए लिखें :—

व्यवस्थापक 'विश्वज्योति'

साधु आश्रम, होशियारपुर (पं.)

कथा कहानियां क्यों पढ़ें ?

इनसे मनोरञ्जन होता है, मन की एकाग्रता बढ़ती है, बुद्धि पैनी होती है, शिक्षा मिलती है तथा पाठक चतुर बन जाता है। यदि आप ऐसा चाहते हैं तो निम्न पुस्तकें आज ही मंगवाएं :—

१. अच्छी-अच्छी कहानियां	...	०.८७
२. बच्चों की कहानियां	...	१.६६
३. नये युग की कहानियां	...	१.७५
४. बात की बात	...	१.००
५. चमत्कारों की दुनिया	...	०.७५
६. महाभारत की कहानियां	...	१.००
७. कबरों का विलाप	...	०.३७
८. वीर बौना	...	१.२५
९. मिट्टी का कलश	...	१.२५
१०. सिनेमा की कहानियां	...	०.४०
११. अमावस का चाँद	...	२.००
१२. समुद्र की कहानियां	...	२.००
१३. उपयोगी कहानियां	...	०.३१
१४. सात कहानियां	...	०.७०
१५. गुड़गुड़ी	...	०.५०
१६. बुलबुल	...	०.५०
१७. फूलों की डाली	...	०.८७
१८. जंगल की कहानियां	...	०.७५
१९. चुने हुए फूल	...	१.००
२०. सिंधी की श्रेष्ठ कहानियां	...	२.५०
२१. बिलाड़ और चूहा	...	०.२५
२२. वायुयान की कहानी	...	०.४०
२३. जलयान की कहानी	...	०.४०
२४. मोटरकार की कहानी	...	०.४०
२५. पाव भर आटा	...	०.३७
२६. गर्मी की कहानी	...	१.५०
२७. निराला जानवर	...	०.७५
२८. सूझबूझ की कहानियां	...	०.७५
२९. मोपासाँ की चुनी हुई कहानियां		१.००
३०. शिक्षाप्रद कथाएं	...	१.२५
३१. भारतीय कथाएँ	...	१.२५
३२. महापुरुषों की कथाएँ	...	१.२५
३३. अञ्जलिका	...	१.६२
३४. सदाचार की कथाए	...	१.२५
३५. एक स्वप्न एक सत्य	...	१.००
३६. ज्वार भाटा	...	१.००
३७. आभा	...	१.००
३८. आरती	...	१.००
३९. सागर और मनुष्य	...	१.००
४०. मुक्ता	...	१.००
४१. संस्कार संसद	...	१.००
४२. आदमी एक चेहरे अनेक	...	०.९०
४३. आपका शरीर	...	१.००
४४. प्यार की जिंदगी	..	१.००
४५. संघर्ष	...	१.००
४६. बर्फ का दर्द	...	१.००
४७. बीती बात	...	१.००
४८. पंकज और पानी	...	१.००
४९. एक गधे की आत्मकथा	...	१.००
५०. एक सवाल	...	१.००
५१. कलाकार का प्रेम	...	१.००
५२. भाग्य रेखा	...	१.००
५३. सभ्यता की ओर	...	१.००
५४. छोटी सी बात	...	१.००
५५. इन्सान या शैतान	...	१.००
५६. अधूरा सपना	..	१.००
५७. डूबा क्षितिज	...	०.९०
५८. अनन्त पथ पर	...	२.२५

मिलने का पता :— **विश्वेश्वरानन्द पुस्तक भण्डार,** साधुआश्रम, होशिआरपुर।

इस अङ्क में पढ़िए

चित्रों में

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

के

दो समारोह



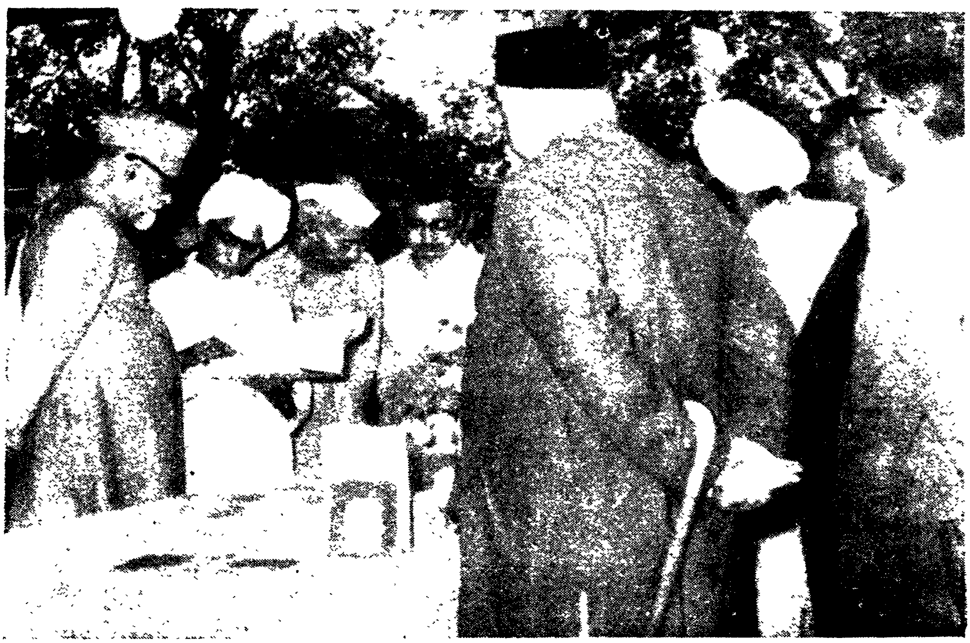
१. उपराष्ट्रपति, डा. जाकिर हुसेन की अध्यक्षता मे संस्थान का
६०वाँ वार्षिकोत्सव २ नवम्बर १९६३

२. राज्यपाल श्री पट्टम ताणु पिल्ले की संस्थान को भेट तथा
संस्कृत त्रैमासिक का उद्घाटन : १८ नवम्बर १९६३

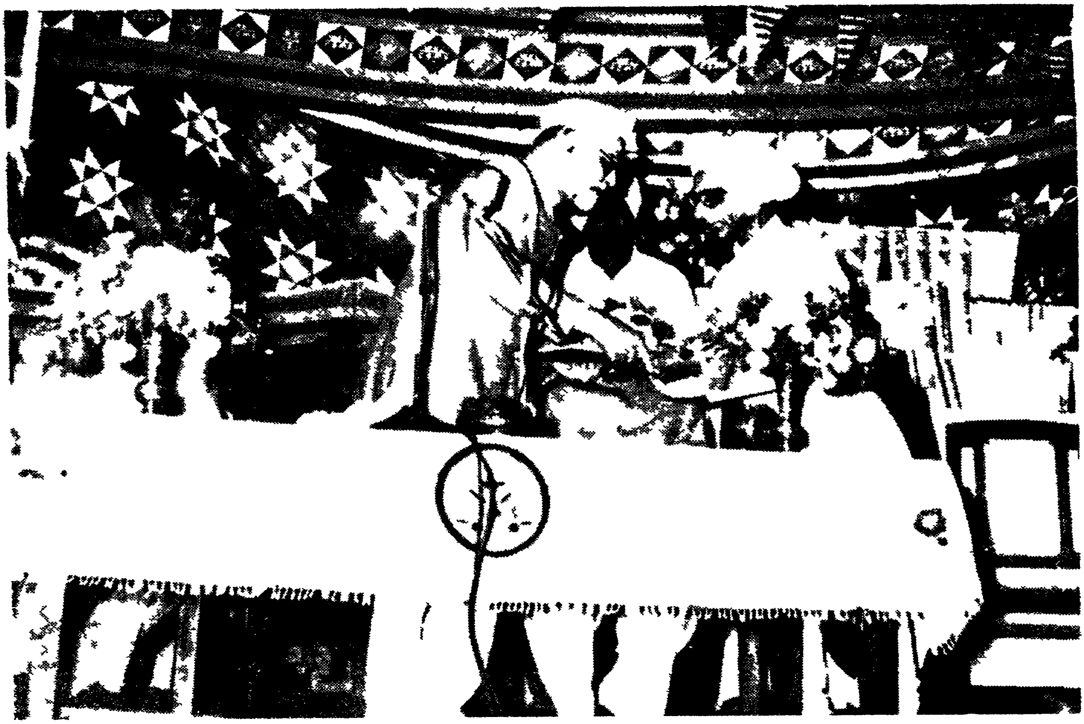
(१) वार्षिकोत्सव



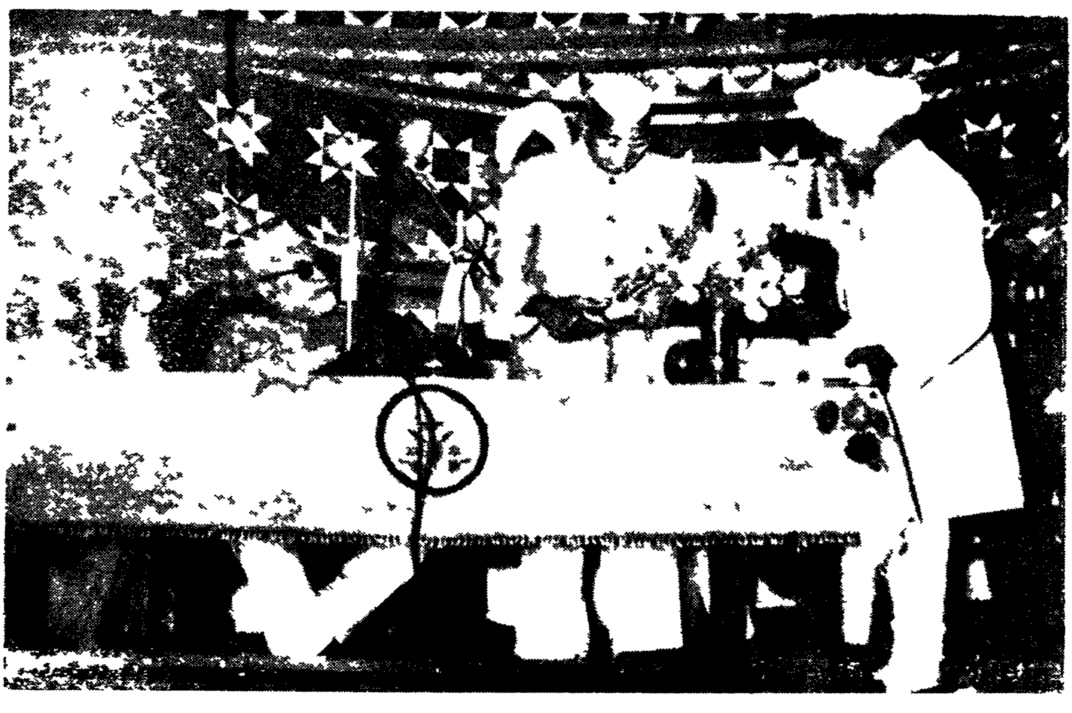
प्रवेश : बायीं ओर संस्थान के उपाध्यक्ष, दीवान आनन्दकुमार तथा
दायीं ओर संचालक, आचार्य विश्वबन्धु।



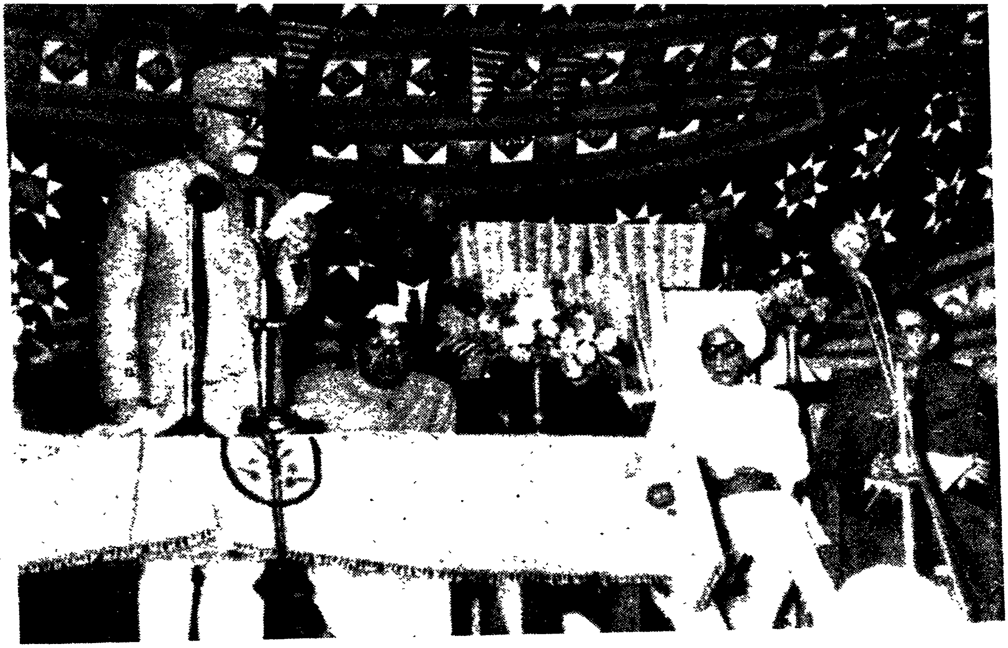
संस्थान के कार्य तथा योजना की प्रदर्शनी देखते हुए,
आचार्य विश्वबन्धु के पीछे पंजाब के वित्त मन्त्री डा. गोपीचन्द भार्गव खड़े हैं।



आचार्य विश्वबन्धु द्वारा अभिनन्दन-पत्र की भेंट



डा. गोपीचन्द भार्गव संस्थान के इस वर्ष प्रकाशित ग्रंथो का उद्घाटन करते हुए



डा. ज़ाकिर हुसेन अध्यक्षीय भाषण पढ़ते हुए।



सायंकालीन जलपान : उपराष्ट्रपति के दाईं ओर पंजाब के गृह-मंत्री, श्री मोहनलाल तथा बाईं ओर संस्थान के अध्यक्ष, पूर्व सर्वोच्च न्यायाधीश, डा. मेहरचन्द महाजन बैठे हैं।

नमस्कार !



(२)

पंजाब के राज्यपाल

श्री पट्टम ताणु पिल्ले

का शुभागमन



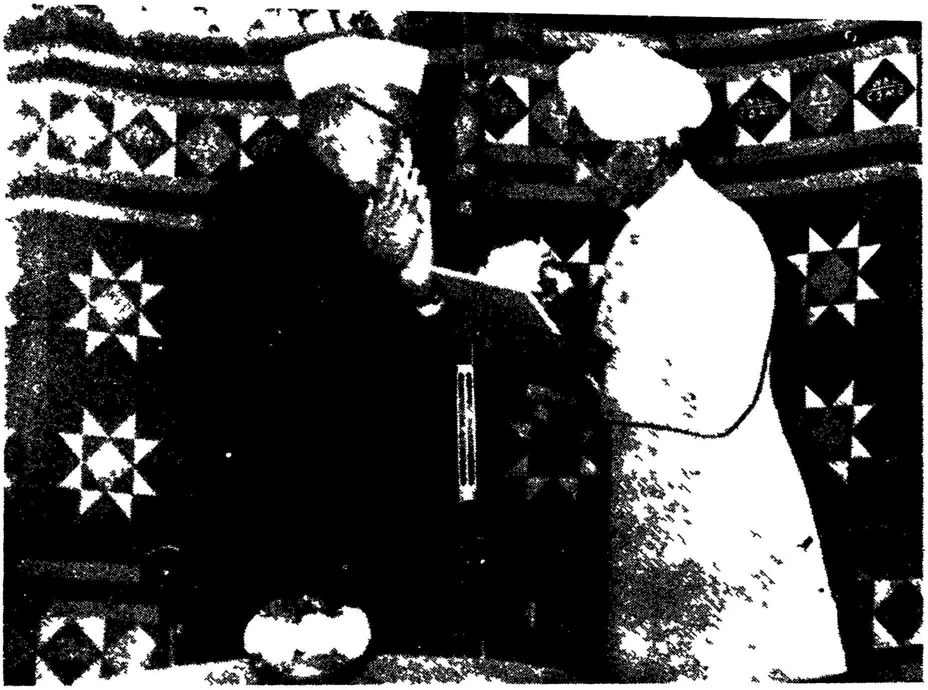
सचालक, आचार्य विश्वबन्धु के साथ प्रवेश



सत्सग-भवन में लगे चित्रों को देखते हुए



संस्थान के कार्य तथा योजनाओ की प्रदर्शनी में



सचालक महोदय द्वारा अभिनन्दन-पत्र की भेंट



संस्थान के नए संस्कृत त्रैमासिक, 'विश्व-संस्कृतम्', को ग्रंथि मुक्ति करते हुए

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

१२ वर्ष } होशियारपुर, पौष, २०२०; जनवरी १९६४ { संख्या ११

वेदामृत—

आराधना

परं ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान् वरुण तासु शिशाधि ॥

(ऋग् २, २८, ९)

महाराज, मुझे शक्ति दो कि मैं अपने ऊपर लिये हुए सब ऋणों को उतार दूं। प्रभो, और किसी के ऋण का मुझ पर प्रभाव न हो। भगवन्, हम तेरी कृपा से अभी बहुत दिनों तक जीते रहें और तेरी आज्ञाओं का पालन करते रहें।

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥

(ऋग् ७, ८६, १)

सब जीव-जन्तु तुम से ही प्रतिष्ठित है। भूमि और आकाश के विस्तार के आधार तुम ही हो। तुम ही ने विस्तृत द्यु-लोक को प्रचलित कर रखा है और साथ ही विशाल तारा-गण को फैला दिया है।

उत स्वया तन्वा सं वदे तत् कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभिख्यम् ॥

(ऋग् ७, ८६, २)

मैं अपने अन्दर सोचता हूं कि मैं तुम्हारे अन्दर कब लीन हो सकूंगा? तुम कब मेरी आराधना को स्वीकार करोगे? कब मेरा मन इतना अच्छा हो जायगा कि मैं तुम्हारी कृपा का पात्र हो जाऊंगा।

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥

(ऋग् ७, ८६, ३)

महाराज, मेरा क्या अपराध है? मैं विद्वानों से जा कर पूछता हूं तो सभी यही कहते हैं कि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न नहीं हो ।।

—वेदसार

विश्व-सत्संग*

भगवान् के प्रसाद से संतुष्ट रहो

ईशावास्य मंत्र के उत्तरार्ध की व्याख्या

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥"

यह सदा याद रखना चाहिए कि जो-कुछ मुझे प्राप्त हो रहा है, वह सारे का सारा नहीं। वह तो एक बड़ा भारी भाण्डार है उसमें से मुझे भी प्राप्त हो रहा है और दूसरों को भी! इस लिए 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' उस विश्व-व्यापिनी शक्ति से प्रसाद रूप से जो मिले उसी में शांति हो। प्रसाद नहीं देखा जाता कि थोड़ा है या बहुत है। जो-कुछ है, वह अमृत है और 'मा गृधः कस्य स्विद् धनम्' किसी दूसरे से मत छीनो। उन्हें भी प्रसाद लेने दो।

जैसे छोटे-छोटे बल्बों की माला हो और उसे मकान के आगे सजा दिया जाए, तो बटन दबाने पर वे सब-के-सब जल उठते हैं और सारा मकान जगमगा उठता है। इसी तरह हम सब का अपना-अपना जीवन, हम सब का मिल करके जीवन एक-दूसरे की सुन्दरता को, योग्यता को बढ़ाने वाला हो, घटाने वाला न हो। छोटे से छोटे बल्ब भी यदि ५०० इकट्ठे करके जला दिए जाएँ, तो कितना प्रकाश हो जाता है, कितनी सुन्दरता बढ़ जाती है, इसी तरह हम अकेले-अकेले कुछ नहीं। मिल करके हमारी विश्व-शक्ति होती है। इस लिए इस सारे फण्ड में से हमें जो प्राप्त हो रहा है उस पर हमें संतोष होना चाहिए। छोटे-छोटे बल्ब का अपने छोटे दायरे के अन्दर जो काम है वह नियमपूर्वक पूरा करो और उस कामन फण्ड से जो प्राप्त होता है, उसका भोग भी भोगो, चुप-चाप शांति से, संतोष से। न इधर देखो न उधर देखो। जैसा कि फरीद का वचन है—'रूखी सूखी खाय के ठण्डा पानी पी! न वेख पराइयां चोपड़ियाँ न तरसाईं जी।" तो इस तरह करने से न कम्यूनिज़्म (साम्यवाद) पैदा होता है और न कैपिटलिज़्म (पून्जीवाद)। एक ह्यूमिनिज़्म (मनुष्यत्व) पैदा होता है। किसी को दिखा-करके चुपड़ी हुई रोटी मत खाओ अगर हो सके, तो तुम्हारे पास जो थोड़ा-सा मक्खन है, अगर तुम्हारे पड़ोसी को सूखी रोटी मिली है, तो उस को भी थोड़ा-सा दे दो।

हमारी वृत्ति दो प्रकार से होनी चाहिए—एक 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्' हमें किसी के आगे हाथ नहीं फैलाना। कोई किसी से कहता है कि भाई, तुम भी इसमें से थोड़ा-सा मक्खन ले लो, तो उसे उत्तर देना चाहिए कि

---

* हमारे यहाँ 'सत्संग-मन्दिर' में प्रति रविवार सायं समय विश्व-सत्संग का विशेष कार्य-क्रम चलता है। इसमें सांप्रदायिक संकीर्णता से विमुक्त, सब धर्मों की समानलक्ष्यता की सार्वभौम और सार्वकालिक भित्ति पर प्रतिष्ठित मानवता के व्यापक दृष्टिकोण से शास्त्रीय प्रवचन और व्याख्यान आदि होते हैं। होशियारपुर नगर तथा आस-पास के नर-नारी तो प्रति सप्ताह अच्छी संख्या में उपस्थित होकर इस कार्य-क्रम से लाभ उठाते ही हैं, बाहर से समय-समय पर आने वाले सज्जनों ने भी इसे बहुत पसन्द किया है। उनकी मांग थी कि 'विश्व-सत्संग' में होने वाले प्रवचनों का सारांश लेख-रूप में प्रति मास 'विश्व-ज्योति' में छापने की व्यवस्था हो जानी चाहिए। ऐसा होने पर सम्पूर्ण 'विश्व-ज्योति परिवार' इससे लाभ उठा सकेगा। इसी निमित्त यह स्तम्भ चालू किया गया है। आशा है, प्रेमी पाठक इसे पसन्द करेंगे।

अगर मेरे पुरुषार्थं का इतना फल होता कि मक्खन आ जाता, तो मैं मक्खन खा लेता। मेरे लिए यही मक्खन है, यही अमृत है। मेरे शरीर के अन्दर वह शक्ति है कि मैं इस रूखी-सूखी में से अपने शरीर के यन्त्र द्वारा मक्खन तैयार कर लूंगा।

गरीब किसान, जिस को कोई मक्खन नहीं मिलता, जेठ मास में दोपहर के समय वृक्ष के नीचे बैठा है। उसकी पत्नी या लड़की या कोई और घर से लाकर चार सूखी रोटियाँ और लस्सी उसके सामने रखती है। वह शौक से खाता है, तो बाबुओं को जो छत्तीस पदार्थों के खाने से आनन्द नहीं आता, सच मानो, उसको आता है। उसमें से वह मक्खन निकाल लेता है। बाबुओं की खुराक में जो मक्खन होता है, यदि उसका मैडिकल अनैलिसिज़ करवाया जाए, तो वह सारे का सारा शौच के साथ गट्टर में चला जाता है, हजम नहीं होता। तो इसलिए एक वृत्ति तो यह है स्वतन्त्रता की वृत्ति कि मेरे पास जो-कुछ है मैं उसी के ऊपर रहूँगा, किसी दूसरे की तरफ नहीं देखूंगा।

परन्तु दूसरी ओर आत्म-शुद्धि के लिए ज़रूरी है कि मैं अपने अन्दर यह देखने का यत्न करूँ कि कौन-सी ऐसी चीज़ है, जिसके बिना मेरा निर्वाह हो सकता है। मेरे पास एक रुपया है। क्या यह हो सकता है कि मेरे लिए साढ़े पन्द्रह आने पर्याप्त रहें और बाकी जनता के काम आ सकें। यह एक दूसरा दृष्टिकोण है। लेने वाले की दृष्टि से यह मानवता का अवगुण है, पतन है। किसी के आगे हाथ पसारना पाप है, परन्तु मनुष्य दुःखी भी है, बीमार भी है, गरीब भी है, कमज़ोर भी है और दूसरा आदमी जो है, वह बलिष्ठ है, धनवान् है, खाता-पीता भी है। उस की दृष्टि से धर्म का उपदेश यह है कि वह देखे कि जो-कुछ मेरे पास है, उसमें से कितना दूसरों के लिए बचा सकता हूँ। यह मेरा कर्त्तव्य होना चाहिए। क्या मुझे दुनिया के अन्दर दिखलाई नहीं देता कि मेरे जड-देवता सूर्य भगवान् का कोई अपना स्वार्थ दिखलाई नहीं देता, तारागण का अपना कोई स्वार्थ प्रतीत नहीं देता। यह जड जगत् मुझे उपदेश दे रहा है कि अरे मनुष्य, तू भी कुछ सीख। तू कुछ तो बदल। असलीयत तो यह है कि तू भी उस दर्जे को पहुंच कि तू भी 'देवता' बन जाए। कब? जब तू 'लेवता' नहीं होगा। तब 'देवता' होगा। 'लेवता' का मतलब है कि तू लेता रहे और 'देवता' का मतलब है कि जब तू देने वाला हो। धीरे-धीरे दो, जितना अधिक दे सको, दो। किसी को दिखलाने के लिए, किसी पर उपकार करने के लिए नहीं, आत्म-शुद्धि के लिए। अगर तुम यह नहीं करते, तो पाप का फल मिलेगा। कितना सुन्दर और ज़ोरदार शब्दों में वेद भगवान् ने कहा है—'केवलाघो भवति केवलादी'। जो मनुष्य रोटी अपने अन्दर डालता है और पेट के ऊपर हाथ फेर कर सो जाता है। वेद कहता है, उसने अपने अन्दर जहर डाला है, अन्न नहीं डाला। पाप-भोजी है, अन्न भोजी नहीं। इसके अन्दर कोई संदेह की बात नहीं—'नार्यमणं पुष्यति नो सखायम्' जो अपने मित्रों, रिश्तेदारों, नगरवालों और विश्व-भर के काम नहीं आता, जो भगवान् की पूजा के लिए, भगवान् की प्रसन्नता के लिए कोई उपकार का काम नहीं करता वह 'अप्रचेतस्' है। उसको अभी अपने जीवन का रहस्य समझ में नहीं आया। यूँही उसके पास चार पैसे आ गए हैं। आने नहीं चाहिएँ थे। जो-कुछ उसको मिल गया है, वह उसको संभालने का अधिकारी नही। जो चीज उसे प्राप्त हुई है—'सत्यं ब्रवीमि' निश्चय जानो 'वध इत् स तस्य' उसी में उसकी मौत है, इससे बढ़ कर और कुछ नहीं।

अतः, यदि कोई कुछ देता है, तो यह न समझे कि किसी दूसरे के लिए देता है, न, कभी नहीं, अपनी शुद्धि के लिए, अपना बोझ हलका करने के लिए। इस वास्ते जो-कुछ भी मैं करता हूँ, वह मेरा कर्त्तव्य है, वह मेरा धर्म है। धर्म का पालन अगर मैं नहीं करता, तो मैं पापी हो

जाता हूँ। इस भावना से प्रभावित हो कर अपनी जो शुद्ध कमाई है, उसमें से कुछ-न-कुछ निकालते रहना चाहिए और तब तक जब तक मैं देवता बन नहीं जाता। भगवान् से बढ़कर तो कोई नहीं, वही सच्चा देवता है। उसी के कारण हमारे ऊपर भी वह अंश रहना चाहिए।

परन्तु मेरे लिए यह जरूरी है कि एक हाथ दे और दूसरे को पता भी न लगे। जिस तरह पानी ऊपर की सतह के निचली तरफ अपने-आप चला जाता है उसी तरह मेरा भी यह कर्त्तव्य हो कि मैं भी कुछ-न-कुछ देता रहूँ। किसी की प्रेरणा न हो। इस भावना को अपने समाज में परिवर्तित करने के लिए यह ज़रूरी है कि ये जो डेपूटेशन द्वारा चन्दे माँगने का सिस्टम है, इस को समाप्त कर देना चाहिए। यह मनुष्य को अहंकार सिखाना है। देने वाला समझता है कि मैं भी कोई चीज हूँ। मेरे पास इतने बड़े आदमी इकट्ठे होकर आते है। प्रेरणा कर देना और सिखा देना यह तो ठीक है। उसके बाद जब तक उसकी अन्तरात्मा जागती नहीं तब तक कोई कल्याण नहीं हो सकता।

यह जो विचार आपके आगे रखा गया—यह एक मार्ग है, आत्म-शुद्धि के लिए। इसके आगे दूसरे मन्त्र में कहा है—'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः' पुण्य के जो कर्म हैं, वे करते रहो। कर्म का यहां अर्थ साधारण कर्म नहीं। यजुर्वेद का यह अन्तिम अध्याय है। यजुर्वेद सारे का सारा यज्ञ का वेद है। यज्ञ का अर्थ दान, पुण्य, पूजा कर्म है। यहाँ पर जो कर्म शब्द है वह वस्तुतः फारसी का शब्द 'करम करना' है। पंजाबी लोग इससे परिचित हैं, उर्दू जानने वाले सभी जानते हैं, कि 'करम' का अर्थ मेहरबानी है, निवाजश है, दूसरों की सहायता है, सहानुभूति, प्रेम और सेवा का भाव है। ये सारे के सारे अर्थ इस 'करम' शब्द के हैं। यज्ञ का अर्थ भगवान् के निमित्त अपने जीवन की कमाई का संकल्प करना है। उसका यह अन्तिम उपदेश है। इसमें कह दिया है, भगवान् तुम को देने वाला है। जो-कुछ तुम्हें दिया है, उसे आगे बहाओ। तुम्हारे घर से दान और पुण्य की नदी बहती रहे। जैसे वेद ने दूसरी जगह कहा—'शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर' यदि भगवान् तुम्हें कमाने के लिए सौ हाथ दें, तो सहस्र हाथ तुम्हें बहाने के लिए दें। मनुष्य दान देता रहे। उसके अन्दर कृपणता और कंजूसी का भाव न आए। यह प्रार्थना करो भगवान् से कि तुम दान कर सको भक्ति के कार्यों में। उसे खर्च कर सको किसी दूसरे उपकार के काम में। कर्त्तव्यपरायण होकर, मानो अपने सिर पर बोझ को उतारते हुए, आगे बढ़ते चलो। यह है वेदान्त का प्रकरण जो यजुर्वेद के अन्त में उपनिषदों के नाम से चला हुआ है।

★ ★ ★

भक्ति

भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम-स्वरूप है, अमृत-स्वरूप है। उसकी प्राप्ति से मनुष्य सिद्ध बनता है, अमृतत्व लाभ करता है तथा परितृप्त हो जाता है। उसे पाकर मनुष्य अन्य किसी की भी आकांक्षा नहीं करता, किसी के लिए शोक नहीं करता, किसी प्रति द्वेष नहीं रखता, अन्य विषयों में आनन्द का अनुभव नहीं करता तथा किसी सांसारिक विषय से उत्साहित नहीं होता। उसे जान लेने पर मनुष्य मस्त तथा स्तब्ध हो जाता है, आत्माराम हो जाता है।

—स्वा. विवेकानन्द

अहं का नाश आवश्यक है

[स्वा. विवेकानन्द]

पहले साहसी और निष्कपट बनो, उसके पश्चात् जिस मार्ग पर चाहो, अपनी इच्छा के अनुसार भक्ति तथा विश्वास के साथ आगे बढ़ो, तुम अवश्य ही उस पूर्ण वस्तु को प्राप्त करोगे। यदि एक बार किसी तरह जंजीर की एक कड़ी को पकड़ सको तो पूरी जंजीर को क्रमशः अपने समीप खींच लाने में समर्थ हो सकोगे। वृक्ष की जड़ में यदि पानी डाला जाय तो सम्पूर्ण वृक्ष उस जल को प्राप्त कर लेता है। यदि हम भगवान् को पा सकें तो समझो हमने सब-कुछ पा लिया।

एकांगी भाव ही संसार के लिए अत्यन्त अनिष्टकर वस्तु है। तुम अपने भीतर जितने भिन्न भावों को विकसित कर सकोगे, उतने ही भिन्न-भिन्न भावों से—कभी ज्ञानी की दृष्टि से तथा कभी भक्त की दृष्टि से—संसार का उपभोग कर सकोगे। पहले अपने स्वभाव को ठीक-ठीक पहिचान लो, फिर उसी के अनुसार निष्ठापूर्वक मार्ग पर आगे बढ़ो। प्रवर्त्तक के लिए निष्ठा ही एकमात्र उपाय है। यदि यथार्थ भक्ति हो, विश्वास हो तथा भाव के घर में चोरी न हो जाय, तो यह निष्ठा ही तुम्हें मूक भाव से सभी भावों में ले जाएगी। गिरजा, मन्दिर, मत-मतान्तर, विविध अनुष्ठान आदि तो पौधे की रक्षा के लिए लगाए गए घेरे के समान हैं। यदि पौधे को बढ़ाना चाहते हो तो अन्त में इस घेरे को हटाना ही होगा। इसी तरह विभिन्न धर्म, वेद, बाइबिल, मत-मतान्तर ये सभी पौधों के गमलों के समान हैं, परन्तु इन गमलों में से उन्हें एक-न-एक दिन बाहर निकालना ही होगा। निष्ठा भी पौधे के गमले के समान ही साधक की रक्षा करती है।

एक-एक तरंग को नहीं, सम्पूर्ण समुद्र को देखो। चींटी और देवता में भेद-दृष्टि मत रक्खो। प्रत्येक कीट-पतंग तक प्रभु ईसा का भाई है, फिर एक को बड़ा और दूसरे को छोटा कैसे कहते हो? अपने-अपने स्थान पर सभी बड़े हैं। हम जिस तरह यहाँ रहते हैं, उसी तरह सूर्य, चन्द्र तथा तारों में भी रहते हैं। आत्मा देश-काल से अतीत तथा सर्वव्यापी है। जिस मुख से भी उस प्रभु का गुणगान हो रहा है, वह हमारा ही मुख है और जो भी आंख वस्तु को देख रही है वह हमारी ही आँख है। हम किसी निर्दिष्ट स्थान में सीमाबद्ध नहीं हैं, हम देह नहीं हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हमारी देह है। हम एक जादूगर की भान्ति मायारूपी छड़ी को घुमाते हैं। और अपने सामने इच्छानुसार अनेक प्रकार के दृश्यों की सृष्टि करते हैं। हम मकड़ी के समान स्वयं बनाए हुए एक बहुत बड़े जाल के बीच रहते हैं। मकड़ी अपनी इच्छा के अनुसार जाल के किसी भी तार पर जा सकती है। आज वह जिस स्थान में रहती है, उतने को ही जान सकती है, परन्तु बाद में वह सम्पूर्ण जाल को जान सकेगी। आज हमारा शरीर जिस स्थान में है, उसी स्थान में हम अपनी सत्ता का अनुभव करते हैं। इस समय हम केवल एक मस्तिष्क का व्यवहार कर पाते हैं, परन्तु जब हम पूर्ण ज्ञान अथवा ज्ञानातीत अवस्था में पहुंचेंगे, तब हम सब-कुछ जान लेंगे। हम सब मस्तिष्कों का व्यवहार कर सकेंगे। आज भी हम अपने वर्तमान ज्ञान को धक्का देकर इस प्रकार ठेल सकते हैं कि वह अपनी सीमा को छोड़कर आगे बढ़ जाय तथा ज्ञानातीत अथवा पूर्णज्ञान की भूमि में कार्य करने लगे।

हम प्रयत्न करते हैं, केवल 'अस्ति' स्वरूप। 'सत्' स्वरूप होने के लिए उसमें 'अहं' भी नहीं रहेगा। शुद्ध स्फटिक की भान्ति उसमें सम्पूर्ण जगत् का केवल प्रतिबिम्ब पड़ेगा; परन्तु वह जैसा है, वैसा ही रहेगा। यह अवस्था प्राप्त होने पर क्रिया नहीं रहती, शरीर केवल यंत्र की भान्ति हो जाता है। वह सदैव शुद्ध भावयुक्त ही रहता है, उसकी शुद्धि के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता, वह अपवित्र हो ही नहीं सकता।

स्वयं को वही अनन्तस्वरूप समझो, ऐसा करने से भय बिल्कुल चला जाएगा। सदैव कहो—'मैं और मेरे पिता अर्थात् ईश्वर एक हैं।'

★ ★ ★

मेरी हांगकांग-यात्रा

[श्रीमती रामेश्वरी नेहरू]

६ वर्ष हुए अगस्त, १६५७ में दो बार हांगकांग नाम के एक छोटे द्वीप में गई, जो चीन के क्वांगटूंग प्रान्त के दक्षिण में चीनी समुद्र में स्थित है। पर्यटक और व्यापारी तो इस द्वीप से अच्छी तरह परिचित हैं, परन्तु साधारण भारतीय नागरिक इस स्थान के बारे में बहुत कम जानते हैं। व्यापारियों के लिए इस छोटे-से द्वीप का बहुत महत्त्व है। क्योंकि हांगकांग के बन्दरगाह में आने-जाने वाले माल पर कोई कर नहीं लगता। इसलिए वहां बाहर से काफी थोक माल आता है और यहां से व्यापारी माल को दूसरे स्थानों पर ले जाकर सस्ता बेच पाते हैं। साधारण पर्यटक भी अपने उपयोग के लिए वस्त्रादि बहुत-कुछ खरीदते हैं जो उन्हें सस्ता पड़ता है।

हांगकांग चीनी प्रदेश है। चीनी भाषा का शब्द है 'हियांग कियाग', जिसका अर्थ है सुगन्धित नदी। हांगकांग उसी का अंग्रेजी अपभ्रंश है।

१८वीं और १९वीं शताब्दी में अंग्रेज और दूसरे यूरोप वालों ने चीन पर आकर यहां अपना अधिकार विशेषकर आर्थिक अधिकार जमाया। उन दिनों चीन की दशा बहुत बिगड़ रही थी। वहां एक प्रकार की अराजकता फैल रही थी। प्रान्तीयता और जातीयता के झगड़ों ने चीन को बहुत शक्तिहीन बना रखा था, अंग्रेज व्यापारी वहां अपना माल बेचने के लिए गए और धीरे-धीरे उन्होंने और दूसरे यूरोपियन देशों ने वहा अपना आधिपत्य जमा लिया। जिस प्रकार भारत में पूर्णरूप से उन्होंने अपना राज्य जमाया वैसा तो वे वहां नहीं कर सके, परन्तु उनका वहां पूरा दबदबा था और बिना अंग्रेजों की आज्ञा के चीनी लोग कुछ भी नहीं कर सकते थे। साधारण चीनी नागरिको को विदेशियों की यह हकूमत अच्छी नहीं लगती थी। इसलिए कभी-कभी किसे अंग्रेज जर्मन, फ्रेंच आदि का वध भी हो जाता था। उस पर उनका क्रोध इतना बढ़ जाता था कि एक के बदले में जब तक १०० चीनियों का वध न कर लें उन्हें चैन नहीं था। शंघाई और दूसरे स्थानों में उन्होंने अपने क्लब, अपने बाग, गौल्फ खेलने के मैदान आदि सब अलग बना लिए थे। और उनमें चीनियों को जाने का अधिकार नहीं था। किसी-किसी स्थान पर यह भी लिखा रहता था कि यहां कुत्तों और चीनियों का आना मना है। भारत में हम इन सब बातों का अनुभव कर चुके हैं। अतएव वहां की दशा समझने में भारतवासियों को कुछ कठिनाई नहीं होनी चाहिए। परन्तु यह भी याद रखना चाहिए कि इस दशा में चीन को धीरे-धीरे गिरते हुए २०० वर्ष लगे। चीनी सम्राट् स्वर्ग के निवासी माने जाते थे। उन्हें और उनके संभ्रांत परिवार को चीनी संसार के सब लोगों और जातियों से उच्चतम मानते थे। शेष सबके लिए विशेषकर विदेशियों के लिए उनके मन और व्यवहार में घृणा थी। व्यापारियों को तो वे बहुत ही नीच मानते थे। अंग्रेज वहां व्यापारी के रूप में ही गए थे। वे वहां केवल अपना माल बेचना चाहते थे। २००—२५० वर्षों से वह जैसे-तैसे दक्षिण चीन में व्यापार कर रहे थे। उन दिनों में व्यापार का केन्द्र क्वांगटूंग प्रान्त की राजधानी कैंटन नगर था, जो पर्ल नदी पर स्थित है। परन्तु जैसा मैं ऊपर कह आई हूँ, मंचू परिवार के शासक इन विदेशी व्यापारियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। उनका निरादर और तिरस्कार होता था। कैंटन में वे केवल जाड़े के दिनों में रह सकते थे। गर्मियों में शाही फरमान के अनुसार उनको कैंटन से चले जाने का आदेश था। इसलिए वे व्यापारी मकाओ नाम के द्वीप में जो हांगकांग से ४० मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है और जो १५५७ से पुर्तगाल के अधिकार में है—कुछ मास के लिए चले जाते थे। १८३६ में चीन और इंग्लैंड में युद्ध छिड़ गया। चीनी सरकार चीनियों से अफीम खाने का व्यसन छुड़ाना चाहती थी। विदेशों से अफीम का आना बन्द कर दिया गया था। परन्तु अंग्रेज व्यापारी गैर कानूनी ढंग से अफीम लाकर यहां बेचना

चाहते थे। चीनी सरकार उन्हें जहाजों पर का माल अर्थात् अफीम उतारने नहीं देते थे। इस पर अंग्रेज सरकार ने अपने व्यापारियों का पक्ष लिया और इसी प्रश्न पर १८३६ में परस्पर युद्ध छिड़ गया। युद्ध-काल में चीनी अधिकारियों ने इन व्यापारियों को चीन से निकालने का प्रयत्न किया। परन्तु अंग्रेजों ने कैंटन छोड़ने से इन्कार कर दिया। अंग्रेज सरकार ने अपने व्यापारियों की हिमायत में उनके बचाव के लिए एक जंगी बेड़ा १८४० में भेजा। पर्ल नदी के मुहाने पर युद्ध होता रहा जिसमें चीनियों की हार हुई और उन्हें सन्धि करनी पड़ी। इसी सन्धि के अनुसार हांगकांग द्वीप अंग्रेजों को सदा के लिए दे दिया गया। इस प्रकार १८४१ में यह द्वीप अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

हांगकांग द्वीप का क्षेत्रफल केवल ३२ वर्गमील है। क्वौलोन नाम की श्रृङ्खलाबद्ध बस्ती से समुद्र की केवल एक मील की चौड़ी धारा उसको अलग करती है। क्वौलोन और हांगकांग द्वीप को मिलाकर ही मोटे तौर से हांगकांग कहते हैं। क्वौलोन चीन का पुराना नगर है। चीन की मुख्य भूमि से वह एक पतले-से ज़मीन के टुकड़े से जुड़ा हुआ है। कांनटौन हांगकांग रेलवे पर चीन से हांगकांग आना-जाना होता है। क्वालोन से चलकर चीन की सरहद शुनचुन नाम के स्टेशन पर आती है, जहां सिपाहियों का पहरा रहता है। हांगकांग से शुनचुन केवल २६ मील है जिसका सफ़र दो-ढाई घण्टे में हो जाता है। १८४१ में जब हांगकांग अंग्रेजों के हाथ में आया तो यहां हजार से भी कम दरिद्र चीनी रहते थे जो मछली पकड़ने, पत्थर तोड़ने और थोड़ी-बहुत खेती का व्यापार करते थे। बहुत-से लुटेरे भी यहां आ बसे थे। पथरीली पहाड़ियों और घाटियों के सिवा यहां और कुछ भी नहीं था। वीरान जंगल पड़ा हुआ था। परन्तु इस जंगली इलाके को लेकर भी अंग्रेजों को संतोष था। क्योंकि वे अपने व्यापारी माल को लाने ले जाने के वास्ते केवल एक अड्डा ही चाहते थे जो उन्हें मिल गया। अपनी सेना के लिए भी निजी स्थान हो गया जहां वे बेरोक-टोक सेना व युद्ध की सामग्री रख सकते थे।

इन सवा सौ वर्षों में अंग्रेजों ने इस छोटे द्वीप का रंगरूप बिल्कुल बदल दिया। अंग्रेज लोग यहां केवल २०,००० हैं और चीनियों की संख्या लगभग २३ लाख की होगी। जिन्हें कुछ-न-कुछ रोज़गार, काम मिल जाता है। उनमें से कुछ तो अच्छे धनी हैं। शेष सब मजदूर-पेशा हैं जिन्हें खाने-पहिनने को मिल ही जाता है। इनके सिवा संसार के सभी भागों से लोग आकर बस गए हैं और हर देश, जाति और धर्म के लोग वहां देखने में आते हैं। आधुनिक हांगकांग व्यापार का बहुत बड़ा अड्डा है। वह सब व्यापारी जहाज़ जो पहले मकाओ द्वीप और कैन्टन में जाते थे अब यहां आने लगे। धीरे-धीरे हांगकांग का बन्दरगाह संसार के विशाल बन्दरगाहों में से एक बन गया जो सिडनी और रास्रो-डी-जेनीरो के बन्दरगाहों का मुकाबला करने लगा। जहां बड़े-से-बड़े जहाज़ भी आसानी से आने और ठहरने लगे। आज हांगकांग नगर जिसे अंग्रेजों ने विक्टोरिया नाम दिया था, परन्तु जिसे सब हांगकांग ही कहते हैं, ठीक ऐसा ही दिखता है जैसा कोई भी यूरोप का सम्पन्न बड़ा नगर। नए नमूने के बड़े-बड़े मकान हैं। विशाल दूकाने हैं जहां सारे संसार का बढ़िया-से-बढ़िया माल भरा पड़ा है। पर्यटक सस्ता माल खरीदने के लिए बड़े चाव से वहां जाते और सामान खरीदते हैं। कहीं-कहीं छोटे-छोटे बाग भी हैं। वृक्ष भी कुछ लगा दिए गए हैं। सारांश यह कि आज के हांगकांग की सुन्दरता अपार है जो देखने से ही बन पड़ती है।

पिछले महायुद्ध में जापान ने यहां अधिकार कर लिया था। उनका आधिपत्य साढ़े तीन वर्ष तक रहा। इस बीच में उन्होंने इस छोटे, परन्तु सम्पन्न द्वीप को और उसके बन्दरगाह को तहस-नहस कर डाला था। जो भी व्यापार और कल्याण का काम हो रहा था वह सब बन्द हो गया था और, जैसा कि हर युद्ध में होता है, लोग बहुत दुःखी हो गए थे। परन्तु १९४५ में जब युद्ध समाप्त हुआ और यह वापस अंग्रेजों के हाथ में आया तो पुनः थोड़े ही काल में सारी क्षति की पूर्ति करके फिर से द्वीप और बन्दरगाह को पहले की भांति ही सुन्दर और ठीक कर लिया। अब तो वहां बहुतेरे कल-कारखाने भी खोल दिए गए हैं। बैंकों की भी अच्छी व्यवस्था हो गई है। बहुतेरा माल इन

कल-कारखानों मे तैयार हो रहा है। जिसके लिए यहां कच्चा माल सुलभ न होने के कारण बाहर से ही लाना पड़ता है। आज वहां २,१०० रजिस्टर्ड कारखाने हैं जिन में सब से अधिक सूती, रेशमी वस्त्र बनाने के हैं। जहां सूत कताई से लेकर, बुनाई, छपाई, रंगाई सब होता है। पुरुषों के वस्त्र,शर्टें, सूट, कोट आदि की सिलाई भी की जाती है, दूकानों पर सिले-सिलाए कपड़े मिल जाते हैं। इनके सिवा बिजली की टार्च, बैटरी, बल्ब, रोगन करने का रंग, एल्यूमीनियम के बर्तन, थर्मस, लालटैनें, सिगरेट, दीयासलाई, मछली और उसका तेल टिकाऊ अदरक आदि बहुत सामान बनता है जिसकी खपत दक्षिण एशिया और अफ्रीका के बाज़ारो में होती है। इस सब व्यापार में लाखों चीनियों को रोज़ी मिलती है।

भारत के समान यहां भी गर्मियों में कड़ी धूप और गर्मी होती है। शीतकाल में ६ मास के लिए काफी ठण्ड हो जाती है। वर्षा भी बहुत होती है।

शिक्षा यहां स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा दी जाती है जिनमें सबसे अधिक मिशनरियों के हाथ में है। स कार धन की अच्छी सहायता देती है। शिक्षा केवल अंग्रेजी भाषा, कहीं केवल चीनी भाषा और कहीं-कहीं दोनों भाषाओं द्वारा होती है। सारे नगर में अच्छी पक्की सड़कें बन गई हैं। मोटरें और बिजली की ट्रामगाड़ियां चलती हैं। कहीं बैलगाड़ी अथवा घोड़ा-गाड़ी दिखाई नहीं देते।

कृषि उसी भाति होती है जैसे हमारे पर्वतों पर, अर्थात् पर्वतों को सीढ़ीनुमा बनाकर बीज बो देते हैं।

प्रशासन के लिए अंग्रेजी सरकार एक गवर्नर नियुक्त कर देती है जो सलाह-मशवरे के लिए एक कार्यकारिणी समिति बना लेता है। नाम को विधान-सभा भी है जिस में सब नियम बनाए जाते हैं। इसमें नियुक्त किए हुए १५ चीनी भी होते हैं। इन दोनों समितियों में कुछ चीनी भी नियुक्त कर दिए जाते हैं। परन्तु वास्तविक अधिकार सब गवर्नर के ही हाथ में होता है।

शरणार्थी अभी तक बराबर चीन से आते ही रहते हैं। आज वहां ५००,००० शरणार्थी मौजूद हैं। जिनमें बहुत-से ऐसे लोग भी हैं जो अपने देश में बहुत धनवान् बड़ी सम्पत्ति के स्वामी थे। परन्तु यहां बिल्कुल दरिद्रता की दशा में आए। उसके कारण जनसंख्या बहुत बढ़ रही है। परिणाम यह है कि २००,००० लोग ऐसे हैं जिनको रहने को या तो मकान है ही नहीं और जिनके पास है भी तो वह बहुत अपर्याप्त है। बहुतेरे लोग नावों में ही रहते हैं। उनका सारा जीवन ही समुद्र में बीतता है। मछली पकड़ना और बेचना यही उनका व्यवसाय है।

मैं लिख चुकी हूँ कि हांगकांग द्वीप अंग्रेजों को १८४१ में मिला था। कौलूम द्वीप और दूसरे कुछ छोटे-छोटे आस-पास के द्वीप १८६० में मिले। हांगकांग तो सदा के लिए परन्तु कौलूम और यह द्वीप ९९ वर्ष के उधार पट्टे पर मिले थे जो अब पूरा हो चुका है। अभी तक तो चीन ने उनको वापस लेने की नहीं की है।

कलकत्ता से चलकर ४ अगस्त को दिन के ११-३० बजे मैं हौंक के हवाई अड्डे पर पहुँची। उन दिनों वहां अदारकर नाम के एक सज्जन हाई कमिश्नर थे। उनकी स्त्री मि० अदारकर कुछ अफसरों के साथ मुझे लेने को अड्डे पर आई थीं। मैं थकी हुई थी, इसलिए पहले तो उन्होंने मुझे एक कमरे में बिठाकर चाय पिलायी। फिर हम लोग घर के लिए चले। हम नाव पर बैठकर समुद्र की पतली जल-धारा को पार कर हांगकाग पहुँचे। घर पहुँचने में एक घण्टा लगा। मकान अति रमणीक स्थान पर एक छोटी पहाड़ी की चोटी पर बना था। संगमरमर का फर्श, चारों ओर टीक लकड़ी के चौखटे। शीशे के बड़े-बड़े दरवाजे, सामने समुद्र जिसके चारों ओर छोटे-छोटे पहाड़। जिन पर धनी लोगों के अनेक भवन थे। समुद्र बिल्कुल एक झील के समान दिखाई देता था। समुद्र पर सुन्दर नावें और स्टीमर चल रहे थे। सारा दृश्य चित्र के समान सुन्दर था, ऐसा मन होता था कि इसे देखते ही रहें। मध्याह्नोत्तर मेरे आतिथेय मुझे नगर दिखाने को ले गए। जहां सड़कों पर भिन्न-भिन्न पोशाकों में स्त्री-पुरुष चलते-फिरते दिखाई दिए। धनी चीनी स्त्रिया रेशम के सुन्दर वस्त्र पहिने और निर्धन चीनी स्त्रियां काला कोट और पाजामा पहिने फिर रही थीं। कुछ स्त्रियों ने अपनी पीठों पर चीनी दस्तूर

के अनुसार अपने छोटे बालकों को बांध रखा था। बाजारों में सुखाने के लिए कटहरों पर वस्त्र टांग रखे थे। ठीक जैसे कलकत्ता में दिखाई देते हैं।

उस दिन वहां एक उत्सव मनाया जा रहा था। वहां के भारतीयों ने स्वर्गीय स्वामी शिवानन्द जी द्वारा प्रेरित आध्यात्मिकजीवन-समिति की शाखा बना रखी है। स्वामी जी के एक शिष्य स्वामी विश्वदेवानन्द वहां योग-आसन के वर्ग गत दो मास से चला रहे थे। जब मैं वहां गई तो बहुतेरी यूरोपियन और चीनी स्त्रियां आसन सीखने को आई हुई थीं। स्वामी विश्वदेवानन्द के बहुत स्त्री-पुरुष शिष्य जो हर जाति के थे, आसन करके दर्शकों (उपस्थित लोगों) को दिखा रहे थे। स्वामी जी ने स्वयं भी आसनों का प्रदर्शन किया। यह लोग भारत की संस्कृति का वहां अच्छा प्रचार कर रहे हैं। भारतीय व्यापारियों की अच्छी बड़ी संख्या जाकर वहां बस गई है और ये काफी धन कमा रहे हैं। इन व्यापारियों में अधिकतर सिंधी हैं। हरी लेले नाम के एक बहुत धनी के घर में मैं गई थी और दूसरी बार जब यहां आई तो उन्हीं के घर में ठहरी भी थी। यह ६ भाई हैं जिन सबकी स्त्रियां, बच्चे सब साथ ही मेल से रहते हैं और साथ ही व्यापार करते हैं। उनका भवन क्या महल था। तैरने के तालाब, बाग, हरी घास के बड़े-बड़े लॉन। मूल्यवान् चांदी और टीक के सामान से भवन भरा था। परन्तु उसमें कोई कलात्मक सुन्दरता नहीं थी। रंग ऐसे लगे थे जिनसे नेत्रों को आराम के बदले दुःख ही होता था। उनकी बात-चीत रख-रखाव सब भद्दे थे। कोई उच्च संस्कृति, उच्च भाव नहीं थे। बच्चों की शिक्षा अंग्रेजीभाषी स्कूलों में हो रही थी। इन सब को देखकर मुझे ऐसा लगा कि अपने देश से बाहर रहकर मानव अपनी सभ्यता भी भूल जाता है और दूसरों की पूरी तौर से सीख नहीं पाता। धन तो बहुत आ जाता है, परन्तु बहुत मूल्यवान् वस्तु अपनी संस्कृति को खो देता है।

हांगकांग में कोई पुरानी चीनी इमारतें कहीं दिखाई नहीं देतीं। इस नगर में कोई चीनी विशेषता है ही नहीं। किसी धनी चीनी का एक पहाड़ी पर बनवाया हुआ एक बाग मैंने अवश्य देखा था। जहां अद्भुत सुन्दर चीनी भवन निर्माण-कला की असफल नकल करने का प्रयत्न तो अवश्य किया गया था। परन्तु वहां भी कोई विशेष चीनीपन दिखाई न दिया। सारांश यह कि चिरकालीन सभ्यता वाले पुराने देशों और उनके वासियों में जो सभ्यता और संस्कृति होती है जिसे बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक है वह अपने देश से बाहर जाकर कायम नहीं रहती जो एक दुःखदायी बात है।

★ ★ ★

नया गीत

[प्रा. विद्यानन्दन राजीव]

तुम को विस्मय है
मेरे इन कामों पर तुमको विस्मय है।

मैंने तसवीरों में फूल जहाँ आँके हैं
उनकी शय्या से कुछ काँटे भी झाँके हैं,
जीवन दोना की स्थिति का परिचायक है
कहीं नयन सीधे हैं और कहीं बाँके हैं,

तुमको विस्मय है
बदले आयामों पर तुमको विस्मय है।

मैंने काली छाया इसलिये सराही है
हर कोई रात किसी दिन की परछाईं है,
सांसें जब थकती हैं संध्या कहलाती हैं
औ' भोर जीवन की उगती तरुणाई है,

तुमको विस्मय है
नयी सुबह-शामों पर तुमको विस्मय है।

फिर से जग जाने को हर कोई सोता है
निद्रा के आँचल में शक्ति को संजोता है,
संगर के हेतु नया कवच पहिन लेने को
साँस सधी माटी का जन्म-मरण होता है,

तुमको विस्मय है
उम्र के विरामों पर तुमको विस्मय है।

❀ ❀ ❀

बार्हस्पत्य राजत्व-सिद्धान्त और उसके नियामक तत्त्व

[प्रा. राघवेन्द्र वाजपेयी]

प्रौढ राज्य-चिन्तन-परम्परा में राजत्व-सिद्धान्त और उसके नियामक तत्त्वों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण होता है। राजनीति की मौलिक समस्या है कि, राजाज्ञा-पालन के समर्थन में न्यायिक अथवा कानून सम्बन्धी सिद्धान्त के अतिरिक्त भी कोई तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है अथवा नहीं, जिसके आधार पर राजा अथवा राज्य की आज्ञाओं का पालन करना प्रजा का कर्तव्य सिद्ध किया जा सके? सुकरात ने राज्य के इस अधिकार को स्वीकार करके नगर के अधिनियम पालन करने की इच्छा से कारा से भाग निकलने से स्पष्ट इन्कार कर दिया था। बाद के युग में इस समस्या के समाधान के लिये पश्चिमी विश्व ने दैवी राजत्व, अनुबन्ध, शक्ति, उपयोगितावाद और क्षेत्रीय राज्याधिकार-सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे। बार्हस्पत्य राजत्व सिद्धान्त के अध्ययन के पहले पाश्चात्त्य दृष्टिकोण[1] पर विहंगम दृष्टि डालना अनुचित न होगा।

पाश्चात्त्य राज्यदर्शन में वर्णित राज्य के विशेषाधिकार और आज्ञा-पालन करने के लिये बाध्य करने की क्षमता सम्बन्धी चिन्तन के तीन स्तर मानने होंगे। प्रथम स्तर, ग्रीक और रोमन राज्य-चिन्तन का होगा। द्वितीय स्तर, मध्ययुगीन राज्य-चिन्तन का होगा। तृतीय स्तर, आधुनिक राज्य-चिन्तन की पृष्ठभूमि और उसके विकास का होगा। इन्हीं तीनों स्तरों का अध्ययन हमारा अभिप्रेत है।

हमें प्रथम स्तर से प्रारम्भ करना चाहिये। ग्रीक लोग पाश्चात्त्य जगत् की प्राचीनतम संस्कृत जाति थे। सुकरात से प्रारम्भ होने वाले युग में ग्रीस में नगर राज्य की भावना के साथ-साथ दार्शनिक चिन्तन का भी विकास हुआ। सुकरात सत्य तथा ज्ञान के दार्शनिक चिन्तन तक ही सीमित रहा। उसका प्रसिद्ध शिष्य प्लेटो अद्वितीय विद्वान् था। उसने अपनी पुस्तकों "रिपब्लिक", "स्टेट्समैन" तथा "लॉज़" में ज्ञान के लिये ही नहीं, वरन् न्याय के लिये भी राज्य का महत्त्व स्वीकार किया था। वह दार्शनिक शासक के अन्तर्गत ही न्याय तथा शान्ति की कल्पना करता था। उसके शिष्य अरस्तू ने पहली बार राजनीति को शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया था। वह मानव को राजनीतिक अथवा सामाजिक जन्तु मानता था। उसका मत था कि, व्यक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान राज्य का है। नगर पूर्णता है और व्यक्ति उसका अंग है। व्यक्ति को राज्य में रहना है और राज्य ही तर्क-संगत एवं नीति-संगत माध्यम है, जिसके द्वारा जीवन के आदर्शों की उपलब्धि होती है तथा व्यक्ति कल्याणकारी एवं समुचित जीवन का निर्वाह करता है। ग्रीकों से अधिक रोमनों ने राज्य का अधिनियम सम्बन्धी और कानूनी स्वरूप स्वीकार किया था। रोमन साम्राज्यवाद ने समता के सिद्धान्त को जन्म दिया था। सिसरो ने नैतिक समता का सिद्धान्त स्वीकार किया था।

इस बात पर भी लोगों ने शंका प्रकट की है कि, मध्य युग में राज्य की स्थिति थी। फिजिस का विचार है कि यदि राज्य था तो वह चर्च के ही रूप में था।

आधुनिक युग में "नैतिकता की ग्रीक विचारधारा" के साथ-साथ "राष्ट्रवाद" का विकास हुआ। होब्स ने राजतन्त्र के कट्टर समर्थक के रूप में सानुबन्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए "महान् लेवायथन" के वंशज (राजा) का समर्थन किया था। लॉक ने "ग्लोरियस रेवोल्यूशन" के समर्थक के रूप में अपनी पुस्तक "टू ट्रीटाइज़ेज़ ऑफ सिविल गवर्नमैंट" की रचना की थी और प्रारम्भिक शान्ति की स्थापना के लिये अनुबन्ध की स्थिति स्वीकार करते थे। १७६२ ई० में रूसो ने "सोशल कांट्रैक्ट" की

---

१. इन पृष्ठों में लीकॉक की पुस्तक "दि एलिमैंट्स आफ मौडर्न पोलिटिकल साइंस" के आधार पर पाश्चात्त्य चिन्तन का लघु सर्वेक्षण किया गया है।

रचना की थी। राज्य के महत्त्व का वर्णन करते हुए सर्वसम्मति और सर्व-हित की भावना को राज्य के महत्त्व का कारण माना था। और आगे बढ़ कर कांट ने व्यक्ति और राज्य के कार्यों की एकात्मकता के आधार पर राज्य के प्रति व्यक्ति की कर्तव्यनिष्ठा को अनिवार्य घोषित किया था। हीगल ने राज्य को व्यक्ति की पूर्ण सतर्क ज्ञानावस्था (रेशनलिटी) माना था। बोसाके ने उसके मत का समर्थन किया था। होबहाउस के मतानुसार, "व्यक्ति की वास्तविक इच्छा उसकी मूल इच्छा से बहुधा विपरीत होती है। उसकी मूल इच्छा समाज की सामान्य इच्छा होती है, और समाज की सामान्य इच्छा राज्य की इच्छा होती है।" १८वीं शती के लेखकों में डेविड ह्यूम ने अनुबन्ध सिद्धान्त के विरुद्ध अपना मत प्रकट किया था। सामाजिक अनुबन्ध सिद्धान्त को "बुरा इतिहास, बुरा तर्क और बुरी नीति" बताया। ह्यूम ने राज्य को उपयोगितावाद प्रभावित माना था। बैंथम और जॉन स्टुअर्ट मिल "सहमति सिद्धान्त" (कन्सेन्ट) के समर्थक हैं। राज्य को "शक्ति" के रूप मे देखने का श्रेय वौन ट्रेट्स्की को है[२]।

भारत में राजत्व-सिद्धान्तों का विवेचन एवं विकास सर्वथा भिन्न परिस्थितियों में हुआ था। बार्हस्पत्य राजत्व-सिद्धान्त के विकास एवं नियामक तत्त्वों के वर्णन के पूर्व तद्विषयक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विस्तार अवांछनीय न होगा। एक महत्त्वपूर्ण संस्था के रूप में राज्य एवं राजत्व का विकास आर्यों के इतिहास के साथ सम्बद्ध रहा होगा। सिंहली राजत्व की भांति भारतवर्ष में भी राजत्व का विकास ग्रामीण समाज के दायित्व एवं ग्रामणी के महत्त्वपूर्ण नेतृत्व के इतिहास के साथ प्रारम्भ हुआ होगा। सिंहल के ऐतिहासिक युग में भी राजाओं के नाम से ग्रामणी शब्द सम्बद्ध रहा[३]।

ग्रामीण समाज में ग्रामणी का महत्त्वपूर्ण स्थान होता था। यद्यपि उसके कर्तव्यों के बारे में संकेत मात्र मिलते हैं फिर भी इतना निश्चित है कि ग्राम के सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक कार्यों में उसका महत्त्वपूर्ण योग होता था[४]। राजनीतिक विकासों के साथ-साथ ग्रामणी का राजनीतिक महत्त्व अक्षुण्ण बना रहा। उत्तर वैदिक काल में राजा निर्वाचन (अथवा अधिक संगत शब्दों में साकेतिक निर्वाचन) के अवसर पर राजत्व एवं सूत के साथ ग्रामणी भी उपस्थित होता था[५]। राजत्व का विकास इन्हीं ग्रामणी-परम्पराओं में हुआ होगा। ऋग्वेदिक परिवार में पिता अथवा कुलपा को अपने परिवार के सदस्यों को प्राणदण्ड तक दे देने का अधिकार था। परन्तु दण्ड देने के कारण वह अपराधी नहीं होता था[६]। इसी भावना ने अपराधी को दण्ड देने के बाद भी राजा के अदण्ड्य बन रहने की भावना को जन्म दिया होगा।

ऋग्वेदिक युग में ही राज्य एवं राजत्व प्राचीन

---

2. The Elements of Modern Political Science pp. 108-33.

३. डा० मेंडिस के वर्णनों से प्रतीत होता है कि, पितृसत्तात्मक आर्य परिवार में ऋग्वेद में वर्णित सर्वशक्तिमान् पिता, एवं परिवारों के ग्राम के रूप में संगठन ने सर्वशक्तिशाली, लोकप्रिय एवं परार्थ सेवा में रत त्यागी ग्रामणी के व्यक्तित्व का विकास किया होगा। विजय और पराक्रम के प्रयत्नों ने ग्रामणी के महत्त्व की वृद्धि के साथ राज्यवृद्धि में सहायक राजत्व को जन्म दिया होगा। इस ग्रामीण पृष्ठभूमि के ही कारण सिंहली शासक दिव्यता का दावा नहीं कर सके।

The Early History of Ceylon—Dr. G. C. Mendis, pp. 26-29.

When the early Aryans came to Ceylon, they settled in villages, and established as their form of Government gaon sabhas with *gamanis* or the elders of the villages as their chief. When the *gamanis* of Anuradhapura and Magama established themselves as kings over the northern and the south-eastern regions, form of Central Government was imposed over the village councils. It was probably too early at this time to attribute any divine powers or a high origin to kings.

4. Indo-Aryan Polity, pp. 38,39-40.

५. अथर्ववेद, ३-५-७

6. The Vedic Age, p. 384, R. V. I. 24. 12-15, V. 2. 7; X. 34. 4.

संस्था के रूप में माने जाने लगे थे। उत्तराधिकार के लिये पिता के पश्चात् पुत्र के सिंहासनारोहण का सिद्धान्त स्वीकृत हो चुका था।[७] वैदिक साहित्य में, ऐतरेय ब्राह्मण में, निर्वाचन-जनित राजत्व-सिद्धान्त के वर्णन उपलब्ध होते हैं। उसमें सामरिक नेतृत्व की आवश्यकता राजत्व के उद्भव का कारण मानी गई है।[८] इसके पहले भी अथर्ववेद में राजा के निर्वाचन के मन्त्रों का वर्णन मिलता है,[९] जिससे स्पष्ट होता है कि ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित निर्वाचन-जनित राजत्व-सिद्धान्त का वर्णन प्राचीन परम्पराओं की पुनरावृत्ति मात्र है।

ऋग्वेदिक युग में ही जन-स्तर के विशाल राज्यों का विकास हो चुका था।[१०] अथर्ववेद में उन प्रतिनिधियों द्वारा राजा के अप्रत्यक्ष निर्वाचन के उल्लेख मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि, प्रजा के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व अभिषेक कराने वाला पुरोहित, राजन्य, सूत, ग्रामणी, रथकार तथा कर्मकार करते थे। अभिषेक-कार्य ब्राह्मण पुरोहित ही सम्पादित कराता था तथा अन्य सभी वर्ग भावी राजा को शासनाधिकार सूचक पर्णमणि प्रदान करते थे।[११] समय की प्रगति के साथ राजत्व परिवार विशेष का गौरव बन गया। जनमत के महत्त्व का प्रतीक ऐतरेय ब्राह्मण का केन्द्र महाभिषेक प्रतीक-रूप में रह गया। ऐन्द्र महाभिषेक अवसर पर अभिषिक्त शासक भक्तिपूर्वक (अद्रोहपूर्ण) शासन करने की प्रतिज्ञा करता था।[१२]

बृहस्पति के समय तक राजत्व सम्बन्धी परम्पराओं से सम्बन्धित कर्मकाण्ड का विकास हो चुका था। उन्होंने राजनीतिक विचारधाराओं के विश्लेषण एवं सिद्धान्तीकरण का कार्य आवश्यक मान कर अपने अर्थशास्त्र की रचना की थी। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित तर्क-सम्मत मत का प्रतिपादन उनकी विशेषता था। पुन: राजत्व सम्बन्धी विचारधारा के सिद्धान्तीकरण का कार्य इस कारण भी विशेष महत्त्वपूर्ण हो गया ताकि राजत्व के समर्थन के लिये पृष्ठभूमि तैयार की जा सके। यद्यपि प्राचीन भारतीय राजतन्त्र के समर्थक थे, किन्तु हेतुवाद प्रस्तुत करने और राज्य-चिन्तन को बल प्रदान करने के लिये तर्क-सम्मत प्रौढ चिन्तन की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिसके आधार पर बहुसंख्यक प्रजा पर एक व्यक्ति (राजा) के शासनाधिकार को उचित अंगों और गुणों के होते हुए एक व्यक्ति (राजा) दूसरे व्यक्ति (-सामान्य प्रजा) अथवा व्यक्तियों (-सम्पूर्ण प्रजा) से आधार पर महान् ठहराया जा सकता है। आखिर क्यों, अकेला होता हुआ भी राजा बहुतों पर शासन करे?[१३] दूसरे शब्दों में प्रश्न का स्वरूप यह था कि, प्रजा राजा की आज्ञाओं का पालन क्यों करे? इसी प्रश्न का उत्तर राजशासन का समर्थन एवं राज्य के प्रति प्रजा की निष्ठा का जनक था।

ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना के समय भी इस प्रश्न पर विचार प्रारम्भ हो चुके थे। राजा की दिव्यता के मत का समर्थन करते हुए शतपथ ब्राह्मण का स्पष्ट कथन है कि दिव्यता के ही कारण राजा अकेला होते हुए भी अनेकों पर शासन करता है।[१४]

धर्मार्थशास्त्रियों में बृहस्पति सम्भवत: प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने राजा के व्यक्तित्व में दिव्यता के दर्शन करके उसे राजनीतिक सिद्धान्त का स्वरूप प्रदान किया था।

विकास-क्रम—प्राचीन समाज में राजत्व के जन्म का वर्णन करते हुए, बृहस्पति राजनीतिक समाज को एक ऐतिहासिक विकास मानते हैं। उनके अनुसार इस विकास-क्रम के भी तीन स्तर थे। प्रथम स्तर में राज्य और राजा दोनों के ही अभाव में व्यवस्था धर्मानुकूल चलती रही।[१५] लोग शान्त-प्रकृति एवं अहिंसक थे। आर्थिक क्षेत्र में भी भृत्य कार्य करते थे एवं स्वामी भृति देते थे। विशेष शक्तिधारी सत्ता के अभाव में भी समाज स्वचालित एवं स्वनियंत्रित था। कहीं भी

7. Ibid P. 354.
८. ऐतरेय ब्राह्मण, ३९-१-१४.
९. अथर्ववेद, ६-८७-८८.
10. The Vedic Age, P. 356.
११. अथर्ववेद, ३-५-६;७।
१२. ऐतरेय ब्राह्मण, ३९-१-१५,
१३. शान्ति, ५९,६-१२।
१४. शतपथ ब्राह्मण, ५-२-५-१४।
१५. बृ० स्मृ० व्य० का० १-१-१, वही० सं. का. ७

नियम भंग या अव्यवस्था न थी।[१६] यह अवस्था पूर्व[१७] अथवा कृत[१८] युग में थी।

द्वितीय स्तर युग-पतन का रहा। इसमें भी राज्य और राजा का अभाव था। धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि इसका कारण था। अधर्म का जन्म ही मत्सर एवं द्वेष के कारण हुआ था। त्रेता में तीन, द्वापर में दो और बाद में एक पद धर्म रह गया। धर्म के शेष पदों का स्थान अधर्म ने ले लिया।[१९] धर्म के अभाव से सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों की अव्यवस्था होने लगी। उसके पश्चात् जनता में अनृत-वादियों का प्राबल्य हो गया।[२०]

इस विकास-क्रम के अनुसार तृतीय स्तर पूर्ण अराजकता एवं अस्थिरता का था।[२१] इसे मात्स्य न्याय[२२] युग कहा गया है। नैतिकता, सामाजिकता के बन्धन, आर्थिक व्यवस्था सभी कुछ शक्तिशालियों के हाथ मे पड़ कर समाप्त हो गई।[२३]

इन वर्णनो से स्पष्ट हो जाता है कि, कृत युग से लेकर मात्स्य न्याय युग तक पर्याप्त समय बीत चुका था। समस्त युग राजा और राज्य के अभाव का युग था। पूर्ण अव्यवस्था इसकी अन्तिम अवस्था और राजत्व की उद्भाविका स्थिति थी।[२४] इस अव्यवस्था की स्थिति का वर्णन करते बृहस्पति का कथन है कि, शासक के अभाव में कृषि, वणिक्, कुसीद, पशुपालन कार्य बन्द हो गये थे। लोग अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते थे। इस कारण सोम, अग्नि, अर्क, अनिल, इन्द्र, वित्तपति एवं यम (के तेज) की शाश्वत मात्राओं को लेकर राजा का निर्माण किया गया था।[२५]

राजा के महत्त्व और उसके प्रति प्रजा की निष्ठा का कारण बृहस्पति नहीं ढूंढ़ते। वे अर्जुन की भांति नहीं कहते कि राजा के महत्त्व का क्या कारण है?[२६] उनके मौन से स्पष्ट है कि, इस कार्य में मनुष्यों का कोई हस्तक्षेप नहीं था। सम्भवतः महान् शक्ति देवताओं ने अपने उपासक मनुष्यों की दयनीय दशा देखकर, करुणा से द्रवित होकर अपनी शक्तियों के उदार त्याग द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक अव्यवस्था दूर करके, सामाजिक शान्ति और आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिये राजा का निर्माण किया था। व्यवस्था भंग करने वालों को दण्ड देने के लिये उसे विशेष शक्ति प्रदान की गई। उसे स्थावर एवं चर जगत् का स्वामित्व प्रदान किया। उसके भय (अर्थात् दण्ड भय) से लोग अपने कर्त्तव्यों का पालन करते और पथ-भ्रष्ट नहीं होते हैं।[२७] इस प्रकार राजत्व की प्राचीनता से लाभान्वित होकर बृहस्पति ने उसे दिव्यता प्रदान की थी। राजनीतिक समाज का महत्त्वपूर्ण (-प्रधान व्यक्ति)

---

१६. वही: व्य० का०, १-२, वही० सं० का० ७

१७. वही० व्य० का० १-१,

१८. वही० सं० का० ७।

१९. वही० सं० का० ७-८।

२०. वही. व्य० का० १-८, बृ० सू० ३,१४०-४७

२१. वही० व्य० का० १,१-४; ७-८, वही० सं० का० ८, शान्ति ६८,६-२९

२२. नीति पृ० १०५।

२३. शान्ति ६८।९-२९

२४. बृ० स्मृ० व्य० का० १-९ वर्णाश्रमाणां तु नेताऽसौ निर्मितः पुरा।

२५. वही० व्य० का० १-६-७

सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च।
तेजोमात्रं समुद्धृत्य राज्ञो मूर्तिर्हि निर्मिता।

मनु ७-४-- इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥

शुक्र १.७२ श्लोक के बचन को छोड़ शब्दशः मनु के शब्द प्रयुक्त हैं।

The Early History of Ceylon, p. 29.

The Sinhalese during this period, unlike most ancient peoples, attached no special sanctity to the kings. They did not believe that they were of divine origin or that they possessed divine powers, The kings themselves, unlike Indian rulers, did not trace their origin to the Sun or to the Moon and claim to belong to the Solar or Lunar dynasty.

२६. शान्ति ५९,६-१२।

२७. बृ० स्मृ० व्य० का० १-७; मनु ७,५

शासन-शक्ति का केन्द्र और दण्डधर होने के कारण ही नहीं, वरन् दैवी उत्पत्ति और शासनाधिकार के कारण भी राजा शेष प्रजा का नेता, शासक और उससे अधिक महत्त्वपूर्ण होता था। देवताओं द्वारा प्रदत्त शासन-शक्ति उसकी आज्ञाओं को अनुल्लंघनीय बना देती थी। राजा न केवल देव-प्रेषित एवं देव-प्रतिनिधि था, वरन् उसमें संकलित विभिन्न महत्त्वपूर्ण देवशक्तियां उसे सर्वाधिक प्रतिभाशाली बना देती थीं। उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन केवल मानवीय शासक की आज्ञाओं का उल्लंघन नहीं होता, वरन् देवताओं द्वारा प्रशस्त मार्ग पर न रहना और मार्गदर्शक देव-प्रतिनिधि का अपमान भी होता। फलतः माननीय शासक के रूप में उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन लौकिक दण्ड का भागी बनाता था और देव-प्रतिनिधि के रूप में उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन देवताओं का अपमान करने के कारण प्रजा को मृत्यु के अनंतर पाप तथा दैवी दण्ड का भागी बना देता। इस प्रकार बार्हस्पत्य चिन्तन प्रजा को राजा एवं राज्य के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ और आज्ञा-पालक ही नहीं बनाता था, वरन् वह स्पष्ट उद्घोषित कर देता था कि राज्य और राजा के प्रति निष्ठा, भक्ति एवं आज्ञापालन, इस लोक के लिये राजा एवं परलोक के लिये देवताओं की इच्छाओं का पालन है। पालन पुण्यप्रद एवं उल्लंघन दण्ड तथा पाप दोनों का स्रष्टा होगा।

मात्स्य न्याय के अधर्म कलह और अव्यवस्था से व्यथित होकर उपर्युक्त देवताओं ने अपने भक्तों के उद्धार के लिये अपने-अपने विशिष्ट गुणों के उत्सर्ग द्वारा राजा के व्यक्तित्व का निर्माण किया था। अतः अपने उद्देश्यों एवं आकांक्षाओं से उसे अवगत कराया। साथ-ही-साथ अपना प्रतिनिधि बना कर उसे प्रजा के कष्टों को समाप्त करने के लिये भेजा। दैवी होने के कारण राजा ने शेष प्रजा से श्रेष्ठ और उसके शासक के रूप में स्थान प्राप्त किया होगा। आशा के अनुरूप, धर्म की पुनःस्थापना और सामाजिक न्याय उसके कर्त्तव्य माने गये होंगे। समाज के नैतिक पतन के पश्चात् राज्य की उत्पत्ति होने के कारण सामाजिकता अथवा नैतिकता के आधार पर कार्य सम्भव नहीं था। फलतः राजा को अतिरिक्त अधिकार एवं शक्ति (-दण्ड शक्ति) की आवश्यकता पड़ी। इस विशिष्ट शक्ति अथवा राजसत्ता के प्रयोग द्वारा ही वह प्रजा को अपने कर्त्तव्य पालन के लिये बाध्य कर सकता था। इसी विशेषाधिकार दण्ड के प्रयोग के कारण वह राज्य में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करता था। (क्रमशः)

★ ★ ★

गीत

[श्री हरगोविन्द पाराशर]

दर्द ऐसा दे कि जिसको,मैं सहज ही सह सकूँ।
तन शिथिल है मन शिथिल है
आत्मा जगती नहीं,
पैर भी तो थक गये हैं
राह यह चुकती नहीं।
हाथ मेरे बँध गये हैं
जिन्दगी लम्बी अभी,
शक्ति ऐसी दे कि जिससे—
जिन्दगी यह जी सकूँ॥ दर्द ऐसा दे···
चोट से घायल हृदय यह
धड़कना भी छोड़ता है,
लक्ष्य मेरा दूर ही है
साँस भी अब तोड़ता है।
सब तरफ होता अँधेरा
दीप भी मुख मोड़ता है,
ज्योति ऐसी दे कि जिससे
जन्म को जगमग करूँ॥ दर्द ऐसा दे···
उमर बढ़ती जा रही, पर
चाह पीछे हट रही,
भार बढ़ता जा रहा, पर
मैं निबलतम हूँ वही।
राह टेढ़ी है मंजिल की
बुद्धि तो सीधी सही,
पथिक ऐसा दे कि जिसको
साथ में ले चल सकूँ।
दर्द ऐसा दे कि जिसको मैं सहज ही सह सकूँ॥

साकेत काव्य में भारतीय-संस्कृति

[डॉ. सुरेन्द्र माथुर]

'संस्कृति' शब्द संस्कार से बना है। संस्कृत भाषा भी ऐसी ही मानी जाती है जिसका संस्कार या परिष्कार हुआ है। 'संस्कार' शब्द किसी विकृत वस्तु को सुधारने, सँवारने, संशोधन करने के अर्थ में आता है। अंग्रेजी में इसका पर्याय 'कल्चर' शब्द है जो एग्रीकल्चर में प्रयुक्त होता है और जिसका अर्थ कृषि से लगाया जाता है जिसमें बीज का बोना, उगाना, संभालना आदि कार्य होते हैं। जिस प्रकार बीज एक दिन में उगकर बड़ा नहीं होता, उसी प्रकार समाज का परिष्कार भी एक दिन में नहीं होता, वरन् परम्परा में प्रचलित उदात्त विचारों की शृङ्खला ही समाज की 'संस्कृति' कहलाने लगती है।

संस्कृति का सम्बन्ध आंतरिक गुणों से होता है जिनसे कोई समाज सहानुभूति, सहृदयता, सज्जनता, सुशीलता, विनम्रता आदि का व्यवहार करता है। संस्कृति सभ्यता-पुष्प की सुगन्धि है। जैसे 'आत्मा' के बिना शरीर निर्जीव है वैसे ही संस्कृति के बिना समाज निर्जीव है। वास्तव में जिस संस्कृति में वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद् पुराण आदि के अतिरिक्त नीग्रो, औष्ट्रिक, द्राविड, शक, हूण, यूनानी, आभीर, मंगोल, मुस्लिम, अंग्रेज आदि सभी के विचारों का समावेश हो वही भारतीय संस्कृति है। दिनकर जी ने अपने 'संस्कृति के चार अध्याय' ग्रन्थ के पृ० ५ पर लिखा ही है कि 'भारतीय-संस्कृति अनेक संस्कृतियों के योग से बना हुआ मधु है और यद्यपि उसके ऊपर आर्यों का लेबुल बहुत स्पष्ट है, किन्तु आर्यों का महत्त्व उतना ही है जितना मधु-निर्माण में मधुमक्खियों का।" इनके इस विचार की अपेक्षा स्वर्गीय डा० गुलाबराय का विचार अवश्य स्तुत्य है, उन्होंने 'भारतीय-संस्कृति की रूपरेखा' नामक ग्रन्थ के पृ० १५ पर लिखा है कि 'भारतीय-संस्कृति में गंगा की भांति नदी-नालों का मिश्रण होता रहा है, परन्तु उसकी पावनी शक्ति इतनी प्रबल है कि सबको गांगेय रूप मिल गया है।' भारतीय संस्कृति सरलता से पहचान ली जाती है। यहां आगे अब हम डॉ० मैथिलीशरण गुप्त के प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'साकेत' में भारतीय-संस्कृति को देखने का प्रयत्न करेंगे।

मानव सबसे अधिक बुद्धि-सम्पन्न प्राणी है। परिवार के बिना इसका विकास संभव नहीं। परिवार में माता-पिता का सर्वाधिक महत्त्व होता है। 'साकेत' में सुसंस्कृत भारतीय परिवार की झांकी अंकित की गई है। दशरथ की तीनों रानियां किस प्रकार आनन्द एवं मोद से परिवार में त्रिवेणी के समान सुख का प्रवाह करती हैं, देखते ही बनता है—

धन्य हैं दशरथ मही-महेन्द्र।
त्रिवेणी तुल्य रानियां तीन, बहाती सुख-प्रवाह नवीन।

सभी आदर्श हैं भारतीय संस्कृति के। धन्य हैं दशरथ भी जो पुत्र-प्रेम के कारण अपने प्राणों को भी उत्सर्ग कर देते हैं—

त्याग दिया आप अज-नन्दन ने एक साथ,
पुत्र-हेतु प्राण, सत्य-कारण अपत्य है।

सारी प्रजा 'यथा राजा तथा प्रजा' के उदाहरण को प्रस्तुत करती हुई सुख, शांति और संतोष से जीवन बिताती है—

नहीं नहीं गृह-कलह प्रजा में,
हैं संतुष्ट तथा सब शान्त,
उनके आगे सदा उपस्थित,
'दिव्य' राजकुल का दृष्टान्त।

उर्मिला अपने समस्त आन्तरिक सुख-दुःखों को पति की आज्ञा के रूप में हलका करना चाहती है और इसीलिए भारत की आदर्श पत्नियों के जीवन की ओर संकेत कर कहती है—

खोजती हैं किन्तु आश्रय-मात्र हम,
चाहती हैं एक तुम-सा पात्र हम,
आन्तरिक सुख-दुःख हम जिसमें धरें,
और निज भव-भार यों हल्का करें॥

सभी पात्र सदैव त्याग एवं बलिदान के लिए तत्पर दिखाई देते हैं।

सामाजिक क्षेत्रों में 'सादा जीवन उच्च विचार' भारतीय संस्कृति का आदर्श है। शांतिमय जीवन व्यतीत करने वाला सदैव अभीष्ट आनन्द प्राप्त करता है और इसीलिए राम ने कहा ही है—

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख शांति-हेतु मैं क्रांति मचाने आया,
विश्वासी का विश्वास बचाने आया॥

भारतीय संस्कृति का यह उच्च आदर्श उस नगरी का है जहाँ सभी स्वस्थ, शिक्षित शिष्ट एवं उद्योगी थे। बाहर से सब भोगी थे, पर अन्दर से सब योगी। इन सिद्धान्तों पर चलने वाले समाज की झाँकी साकेत में बड़ी सुन्दरता एवं सजीवता के साथ अंकित हुई है—

एक तरु के विधि सुमनों से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी सभी,
बाह्य भोगी, आन्तरिक योगी सभी।
व्याधि की बाधा नहीं तन के लिए,
आधि की शंका नहीं मन के लिए।
चोर की चिन्ता नहीं धन के लिए,
सर्व सुख हैं प्राप्त जीवन के लिए॥

सांस्कृतिक मर्यादा का पालन करने के साथ-साथ त्याग, तपस्या की झांकियां भी दिखाई देती थीं। अयोध्या नगरी का समाज सुसमृद्ध एवं सुसम्पन्न था। लोगों में कलाप्रियता थी। नारी 'भार्या' थी जो सम्पूर्ण गृहस्थ के कार्यभार को लाद कर सबको सुखी बनाने का प्रयत्न करती थी। दाम्पत्य जीवन का आनन्द सुलभ था जिसकी सराहना देवता भी करते थे। जाने वाले प्रियजन को कभी शोक के साथ विदा नहीं दी जाती थी। मांगलिक अवसरों पर प्रायः मस्तक को रोली और अक्षत से सुशोभित किया जाता था। कौशल्या ने अक्षत की बात कही भी है—

'बहू, तनिक अक्षत रोली, तिलक लगा दूं' मां बोली।

गुरु के प्रति नतमस्तक होना शिष्य का धर्म था। जन्मभूमि को जननी के समान स्वर्ग से भी अधिक गौरवमयी कहा गया है—

जन्मभूमि ले प्रणति और प्रस्थान दे,
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे।

भारतीय संस्कृति में तीर्थों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है जो जन-जीवन में पवित्रता, सहिष्णुता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता के संचार के साथ-साथ मानसिक कष्टों का निवारण भी करते हैं। साकेत में गंगा को सर्वोपरि माना गया है। भारतीय-संस्कृति के १६ संस्कारों में से साकेत में केवल अन्त्येष्टि संस्कार का ही सजीव वर्णन गुप्त जी द्वारा हुआ है। दशरथ की मृत्यु पर दुन्दुभी बजती है, धूमधाम से अंतिम कार्य किया जाता है और वसिष्ठ मुनि कहते हैं—

आज नरपति का महा संस्कार,
उमड़ने दो लोक पारावार।
है महायात्रा यही, इस हेतु,
फहरने दो आज सौ-सौ केतु,

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत व्याप्त राजनीतिक भावधाराओं को भी साकेत में अंकित किया गया है। राज्य का शासक सदैव जनता का सेवक है—'राजा प्रजा का पात्र है, वह लोक-प्रतिनिधि मात्र है। अपनी इच्छा के अनुसार राजा कुछ नहीं कर सकता। इसीलिए बन जाते समय राम से समस्त अयोध्या-निवासी कह उठते हैं—

राजा हमने राम, तुम्हीं को है चुना,
करो न तुम यों हाय! लोकमत अनसुना।

साकेत काव्य में व्याप्त राजनीतिक दृष्टिकोण उदार और विशाल है। उसमें संकोच की मात्रा लेशमात्र भी नहीं है। भारतीय-संस्कृति की यही विशेषता है। दूसरे देश पर बरबस अधिकार करना, दूसरे के धन को हरण करना, दूसरे देश पर आक्रमण करना कभी भी श्रेयस्कर नहीं माना गया है। तभी विभीषण कहता है—

तात, देश की रक्षा का ही कहता हूँ मैं उचित उपाय,
पर वह रा देश नहीं जो करे दूसरों पर अन्याय।

उर्मिला इसीलिए अयोध्यावासियों को समझाती है—

पावें तुमसे आज शत्रु भी ऐसी शिक्षा,
जिसका अर्थ हो दण्ड और इति दया तितिक्षा।

साकेत में पूँजीपतियों का पर्दाफाश हुआ है। समष्टि के लिए व्यष्टि के बलिदान की प्रेरणा भी दी गई है—

'हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।'

भारतीय संस्कृति में पल्लवित तीर्थ-स्थानों से बँधी धार्मिक भावना अंकित की गई है। यह विचार बड़ी गहनता के साथ फैला हुआ है कि परिवार के बड़े-बूढ़ों द्वारा किए गए कृत्यों का फल संतान को भोगना पड़ता है। इसी कारण लक्ष्मण मेघनाद से कहते हैं—

किन्तु बिगाड़ा जन्म जनक तेरे ने जैसा,
तुमको पैतृक रोग भोगना होगा वैसा।
जन्मान्तर के लिए जान रख, जो पातक है,
वह अपना ही नहीं, वंश का भी घातक है।

गुप्त जी भारतीय-संस्कृति के अनन्य पुजारी हैं और इसी कारण उनके साकेत काव्य में इसका बाहुल्य है।

साकेत काव्य भारतीय-संस्कृति का एक प्रतीक है। जिसमें विश्वबन्धुत्व की भावना, समन्वय की भावना एवं अन्य समस्त सांस्कृतिक विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है। ●

हर मन की हर बात नहीं पूरी होती है

[डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन]

धरती वालों को चन्द्र और—
तारे लगते है पास-पास,
लगते सरिता के तट भी—
मिलने का करते-से प्रयास।
उठता ढलता सूरज भी
जतलाता पर्वत निज निवास,
मथुरा गोकुल इस जग को
लगते करते-से बात, हास,
पर, उस कान्हा से पूछो,
तुम उस राधा से पूछो,
पूछो उस सिसक-सुप्त वीणा से
उस प्रेयसि से, दीना, हीना, परिक्षीणा से
कितनी अलंघ्य इतनी दूरी होती है॥
हर मन की······

रे मन! तेरा रोना है व्यर्थ,
विश्व में ऐसा ही होता है;
श्रम तो करते हैं सभी लोग,
सुख का नाता कितनों से होता है?
जलने को जलते सभी दीप
पर, झंझा में कितने डट पाते?
चलने को चलते सभी पथिक
पर, मंजिल कितने पा जाते?
सुख के सावन के लाख मीत,
दुःख अंध-निशा में छट जाते।
बस एक अकेले ही हम,
संघर्षों में जीते औ' मर जाते।
पर,
हम पर आँख किसी की कभी नहीं रोती है।
हर मन की······

यों तो हर मन में इच्छाओं का—
सागर लहराता है;
हर उमड़ी बदली के लिए,
पपीहा कौन नहीं ललचाता है?
मद-मस्त चंदनियां चन्द्र देख,
मन किसका नहीं लुभाता है?
पुष्पित, बहुरंगी, बल खाती वल्लरियां—
कितने नूतन भाव जगाती हैं?
कुछ ही हो पाते तृप्त
शेष अलियों को तो तरसाती हैं
उन अतृप्त, अप्रसन्न, जड़ित—
अलियों का इतिहास किसी ने जाना?
जीते को जग ने पूजा
हारे को कब पहचाना?
जिन्दगी अनेकों की,
विफलता-भरी अधूरी होती है।
हर माँग नहीं सिंदूरी होती है,
हर प्रीत नहीं अंगूरी होती है॥
हर मन की······

संत-श्रेष्ठ पुरन्दरदास

बारहवीं सदी से १५वीं सदी तक का काल मानो कर्नाटक में संसार के अत्यन्त उच्च, अद्भुत दार्शनिकों के उच्च विचारों के संघर्ष का काल था। क्योंकि तब बसवेश्वर का शीलवान् धर्म, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत, मध्वाचार्य का द्वैत सिद्धान्त उदय हुए और उस समय अद्वैत तत्त्व स्थिर हो गया था। तब भी सामान्य जनता में आनन्द नहीं था। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक संघर्ष से जनता में एक प्रकार की उदासी छा गई थी। ऐसे समय में केवल कर्नाटक में ही नहीं, किन्तु समस्त भारत में ऐसे कवियों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने ऐसी तान छेड़ दी और साहित्य का सृजन किया कि उसके गले में अमरत्व की माला पड़ी। ये कवि खास तरह के आदमी थे। इन्हें हम मर्मी, साधक, संत, शरण, रहस्यवादी, अनुभावी, आत्म-साक्षात्कारवादी, साक्षात्कारवादी कवि आदि नाना नामों से पुकारते, पहचानते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर इनके बारे में कहते हैं—"इन लोगों की दृष्टि, इनका स्पर्श मर्मगत होता है। इन लोगों के पास सत्य की बाह्यमूर्ति नहीं होती, उसका मार्मिक स्वरूप होता है। जो लोग एक निर्दिष्ट बन्धे हुए मार्ग पर बन्धी हुई सावधानी से चलते हैं वे सहज ही संदेह कर सकते हैं कि इन लोगों की दृष्टि, उपलब्धि और इन लोगों का कहना सब पागलों की खामख्याली है। परन्तु सब देशों और सब कालों में इस दल के लोगों के बोध और वाणी में समानता देख पड़ती है। वृक्ष अपनी लकड़ी के भीतर एक तरह की अग्नि संचित कर सकते हैं। यह अग्नि वे किसी चूल्हे से मांग कर नहीं लाते, चारों ओर से स्वयं ही संग्रह करते हैं। वृक्ष के पत्तों को ज्यों ही सूर्य का प्रकाश छूता है त्यों ही एक जाग्रत शक्ति के जोर से हवा में से कार्बन वायु खींच लेते हैं, ठीक इसी तरह मानव-समाज में सभी जगह इन मर्मी लोगों की एक सहज शक्ति दीख पड़ती है। ऊपर से उनके मन पर प्रकाश पड़ता है और वे चारों ओर की वायु में से सत्य के तेजोरूप को अपने ही आप भीतर ग्रहण करने लगते हैं। उनका संग्रह शास्त्रभाण्डार के शास्त्र-वचनों के सनातन संचय में से चुनकर किया हुआ नहीं होता। इस लिए उनकी वाणी ऐसी नवीन होती है कि उसका रस कभी नहीं सूखता।" और "इन मर्मी कवियों ने शास्त्र-निर्मित पत्थर के बेड़े से मुक्त जनों के मन को मुक्ति दी थी। प्रेम के आंसुओं से देवमन्दिर के आंगन से रक्तपात की कलंक रेखा को पोंछ डालना उन्हीं का काम था। आनन्द के आलोक में जिनका आविर्भाव मनुष्य का सब भेदभाव भीतर से मिटा देता है उन्हीं राम के, कृष्ण के वे दूत थे। उनका राम या कृष्ण किसी पुराण-शास्त्र-वर्णित नहीं थे, वे थे मन में, प्राण में और हृदय में आविष्कृत अद्वैत परमानन्द रूप। इस लिए उन्होंने मन्त्र पढ़ कर उनकी पूजा नहीं की, गान के द्वारा, कीर्तन के द्वारा उनका आवाहन किया। जीवन में सत्य रूप में वे आविर्भूत हुए।

"इन मर्मी कवियों ने मनुष्य की आत्मा-आत्मा में सेतु निर्माण करना, नाना जातियों, धर्मों के भेद-भाव को दूर करना चाहा है, साधना द्वारा ऋषियों के इस वाक्य को उन्होंने प्रमाणित किया था "सत्य को वे ही जानते हैं जो अपने को सब के भीतर देखते हैं।" ऐसे मर्मी कवियों की माला में एक उज्ज्वल मणि थे पुरन्दरदास जी। इनकी वाणी ऐक्य की वाणी थी, इनके कीर्तन कर्नाटक की भावुक जनता की जीभ पर प्रातः काल के सुहावने समय में जब मुखरित होते तब एक समां बन्ध जाता। आज भी कोई पुरन्ददास का कीर्तन गाने लगता है तो एक समां बंध जाता है। पुरन्ददास का जितना लोकप्रिय सन्त, लोकनायक संत, भावनात्मक एकता स्थापित करने वाला संत आज तक कर्नाटक में कोई नहीं हुआ। उनके गुरु ने, उनके शिष्यों ने अपनी रचनाओं में यही कहा है कि संतों में—हरिदासों में यदि कोई सच्चे संत हैं तो वे पुरन्ददास जी ही हैं। ऐसे सन्तवर की जीवनी हम "विश्व ज्योति" के प्रेमी-पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हैं।

सुप्रसिद्ध क्षेत्र पंढरपुर के पास पूना जिले में

पुरंदरगढ नामक ग्राम है, जिसमें महाजन वरदप्प नायक और उनकी पत्नी लक्ष्मीबाई नामक दंपति थे। लक्ष्मी बाई की कोख से सन् १४८४ में एक दिन एक पुत्र का जन्म हुआ और उसका नामकरण हुआ श्रीनिवास। जब वह बड़ा हुआ तब उसका विवाह हुआ सरस्वती नामक कन्या से। श्रीनिवास नायक ने पिता के रत्नव्यापार को आगे बढ़ाया और महाजनी का उद्योग भी शुरु किया जिससे उनकी संपत्ति इतनी बढ़ी कि वह विजयनगर साम्राज्य के एक सम्मान्य व्यक्ति बन गए। ज्यों-ज्यों उनकी संपत्ति बढ़ी त्यों-त्यों उनकी कंजूसी भी बढ़ी। दान-धर्म कम हुआ।

श्रीनिवास नायक का जीवन इस प्रकार बीत रहा था। अचानक एक घटना हुई जिसके कारण उनके जीवन में पूर्ण परिवर्तन हुआ। वह घटना इस प्रकार है—

एक दिन एक बूढ़ा ब्राह्मण आया और उनसे अपने पुत्र के उपनयन के लिए सहायता मांगी। वे हाथ समेटे रहे। ब्राह्मण के गिड़गिड़ाने पर एक ऐसा पैसा दिया कि जो पूरा घिसा हुआ था। ब्राह्मण ने उसे लेने से इन्कार किया। फिर वह घर के पिछवाड़े में गया और उनकी स्त्री के सामने अपना दुखड़ा रोया। सरस्वतीबाई में करुणा उपजी और उन्होंने उस ब्राह्मण के हाथ में नथ रखकर कहा—"श्रीकृष्णार्पणमस्तु"

वह ब्राह्मण वह नथ बेचने के लिए श्रीनिवास नायक की दुकान पर पहुंचा और बोला—'यह नथ लीजिए और इसे तौल कर इसकी कीमत लगाइये और मुझे उतना ही धन दीजिए जितना मेरे पुत्र के उपनयन के लिए आवश्यक है।"

वह नथ देखकर श्रीनिवास नायक को संदेह हुआ कि यह तो मेरी स्त्री की नथ है। उन्होंने उस नथ को संदूक में रखकर ताला लगाया और कहा— "शाम को आकर रुपये ले जाओ।" तुरन्त वे घर गए और अपनी पत्नी को धमकाया। बेचारी भारी हृदय से अन्दर जाते हुए बोली—"अभी लाकर देती हूँ।"

सरस्वतीबाई प्रभु का नाम लेकर खूब रोई और विषप्राशन करके इस लोक से कूच करने का निर्णय किया। विष का प्याला अपने सामने रखकर पीने की तैयारी कर ही रही थी कि प्याले में नथ दिखाई पड़ी। आनन्द से उसे लेकर उठी और अपने पतिदेव के हाथ में रख दिया। नायक जी के अचरज का ठिकाना न रहा। वे दुकान गए और संदूक खोलकर देखा तो वहां नथ नहीं थी। वे पानी-पानी हो गये। साथ ही दंग भी रह गए। उल्टे पांव पत्नी के पास गए। उन्होंने सारी कहानी सुनाई। तब श्रीनिवास नायक में परिवर्तन शुरु हुआ। जान गये कि यह घटना परमात्मा की लीला के सिवा कुछ नहीं है। विरक्ति उनमें उपजी और अपना सब-कुछ दान करके हंपी की ओर निकल पड़े। तब उनके मुखसे निकल पड़ा यह गान—

आदद्देल्ला ओळिते आयितु।
श्रीधरन सेवेगे साधन संपत्तायितु॥

दंडिगे बेत्त हिडियुवदक्के।
मंदेमाचि नाचुतलिद्दे॥

हेंडति संतति साविर वागलु।
दंडिगे बेत्त हिडिसिदकळरया॥१॥

गोपाल बुट्टि हिडियुवदक्के।
भूपनियंते गर्विसुतिद्दे॥

आ पत्नी कुल साविरवागलु!
गोपालबुट्टी हिडिसिदळय्या॥२॥

तुलसीमालेय हाकुवदक्के।
अरसनागि नाचुतिद्दे॥

सरसिजाक्ष श्री पुरंदर विठलन।
दासगे माले हाकिस्दिळय्या॥३॥

[जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ। श्रीधर की सेवा के लिए साधन-संपत्ति हुई। हाथ में लकुटिया धरने के लिए खूब शरमाता था। पत्नी ने लकुटिया धराई।

गोपालबुट्टि (भिक्षापात्र) धरने में राजा की तरह गर्व करता था, लज्जा का अनुभव करता था। पत्नी ने गोपालबुट्टि धराई।

तुलसी माला धारण करने में राजा की भांति लजाता रहा। पत्नी ने सरसिजाक्ष श्रीपुरंदर विठल की माला धारण करवाई॥]

श्रीनिवास नायक हंपी (विजयनगर) पहुँचे और भक्तशिरोमणि श्रीव्यासराय से हरिदास (संत) दीक्षा लेकर, "पुरंदर विठल" का अंकित ग्रहण करके पुरंदर-दास बन गये।

उन दिनों में कर्नाटक के संतों के दो पंथ थे—व्यासकूट और दासकूट। यह आम तौर से समझा जाता है कि व्यासकूट के संत अध्यात्म, नीति एवं

भक्ति का उपदेश संस्कृत में देते रहे हैं, किंतु दासकूट के संत आम जनता की कन्नड़ भाषा में कीर्तनों द्वारा भक्ति का बोध कराते रहे हैं। वास्तव में ऐसा नहीं है। दोनों ने कर्नाटक में भक्ति-आंदोलन को बढ़ावा दिया है। हिन्दी में जैसे "अष्टछाप" है वैसे कन्नड़ में 'दासकूट' रहा है। 'अष्टछाप' के संतों में जो स्थान सूरदास जी को प्राप्त है वही स्थान दासकूट में पुरंदरदास जी को। सूरदास और पुरंदरदास दोनों कृष्ण के उपासक हैं। इस दासकूट के संस्थापक पुरंदरदास के गुरुवर व्यासराय जी ही थे। इस दासकूट के प्राणस्वरूप संतों में पुरंदरदास के साथ-साथ वादिराज, कनकदास और वैकुंठदास भी रहे। यह भी यहाँ ध्यान देने योग्य है कि बंगाल के श्रेष्ठ वैष्णव संत श्रीकृष्ण चैतन्य (गौरांग प्रभु) इन्हीं व्यासराय के शिष्य थे और आज भी चैतन्य के शिष्य अपने को व्यासराय मठ के अनुयायी मानते हैं।

कर्नाटक के आधुनिक संतवर दिवंगत डा० आर० डी० रानडेजी Pathway to God in Kannada Literature नामक पुस्तक में कहते हैं—"Between Karnatak and Hindi mystics also, I may point out to you some parallels. To my mind, Purandaradas occupies the same position in Kannada Literature which Tulasidas occupies in Hindi. They can hardly be surpassed so far as their literary ability and poetic genius are concerned. Tulasidas stands on a *saguna* level on the whole, but Purandaradasa has advanced further....He began with *saguna*, later equated the *saguna* with the *nirguna* and ultimately became a great yogi and a mystic. पुरन्दरदास तुलसीदास से भी एक कदम आगे बढ़े हुए थे; इसी एक कथन से समझा जा सकता है कि पुरन्दरदास कितने ऊंचे दर्जे के और पहुंचे हुए संत थे। जो हो, यही कर्नाटक में माना जाता है कि पुरन्दरदास नारद के अवतार थे।

पुरन्दरदास जी के ४७५००० कीर्तनों में भक्ति-वैराग्य की गंगा-जमना की पावनधारा उमड़ पड़ी है। उनके कीर्तन पंडित से लेकर पामर तक की जीभ पर नाचते हैं। उनके कीर्तन कन्नड़-साहित्य की अक्षय निधि हैं। उनके कीर्तनों में भाव और संगीत का सुमधुर मेल है। पुरन्दरदास जी का नाम संगीत की दुनियां में अमर है। कर्नाटक संगीत पद्धति के वे जनक और आचार्य-पुरुष थे। उन्होंने संगीत का जो मार्ग दिखाया उसी का अनुकरण त्यागराय, मुत्तुस्वामि दीक्षित, क्षेत्रज्ञ, तुकाजी महाराज आदि ने किया। संगीत शास्त्र में उनकी बराबरी करने वाले शायद ही कोई मिलें। मद्रास संगीत अकादमी की पत्रिका (1942) में लिखा गया है—"India, nay the world, has not produced a greater composer than Purandaradasa."

पुरन्दरदास की ज्ञानसंपत्ति प्रतिभाशक्ति अद्भुत थी। उनकी बुद्धि, उनकी दृष्टि तेज थी। उनका हृदय विशाल था। उनकी विरक्ति आदर्श थी। वे अपने हाथ में इकतारा, मंजीरा लेकर और पैरों में घुंघरु बाँध कर हरिनाम-संकीर्तन करते। नाचने के लिए शुरु कर देते थे तो भक्ति की रसधारा बहने लगती और श्रोताओं के नयनों में आँसू छलकते। श्री० एच्० जी० बेंगेरी ने अपने Haridas Kuta नामक पुस्तक में लिखा है—"He is the greatest of the lyric poets of Karnatak, the crest jewel of Dasakuta...His songs range from the most homely to the most philosophical. His songs are so emotional that anyone can be moved to tears."

भक्ति-मार्ग में पुरन्दरदास जी का स्थान अत्यंत ऊँचा है। वे केवल भक्तश्रेष्ठ ही नहीं थे परन्तु समाज-सुधारक भी थे। वे अपने समय के लोकशिक्षक ही नहीं थे, परन्तु लोकनायक भी थे। आजकल की दुनिया को भी उनके कीर्तन मार्ग-दर्शक हैं। ऐसे सर्वश्रेष्ठ कन्नड़ संत पुरन्दरदास जी सन् १५६४ में अपनी अमर कीर्ति छोड़कर अपने आराध्य देव पुरन्दर विठल के श्रीचरणों में चिरविश्राम पाने के लिए चले गये, चले गये और मुक्ति का आनन्द पाने लगे।

'मन्मनोऽभीष्टवरदं सर्वाभीष्टफलप्रदम्।
पुरंदरगुरुं वन्दे दासश्रेष्ठं दयानिधिम्॥"

—प्रा. गुरुनाथ जोशी

कृतित्व और व्यक्तित्व—

यह कहना अत्युक्ति न होगा कि कन्नड़ की अनुभावी, रहस्यवादी तथा साहित्यिक श्री को श्रीपुरंदरदास ने जितना समृद्ध तथा संपद्धरित किया उतना किसी दास ने नहीं किया। वह कर्नाटक के इतिहास के अत्यन्त समृद्ध दिनों में विद्यमान अत्यन्त धनी व्यक्तियों में से एक थे। विजयनगर साम्राज्य के श्रीकृष्णदेवराय का शासनकाल कन्नड़ की पूर्ण विकसित अवस्था का काल था। उस समय जो कई विदेशी प्रवासी आए थे उनमें मुनिज़, पेज, बारबोसा आदि प्रधान थे, इन सबने विजयनगर की संपत्ति तथा समृद्धि की खूब प्रशंसा की है।

श्री पुरन्दरदास ने एक साथ भौतिक संपत्ति की महिमा तथा आंतरिक आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव प्राप्त किया था।··· ···ऐसे अनेकों शिष्य हैं जिन्होंने अपने शिक्षकों की प्रशंसा की है; लेकिन ऐसे बहुत ही कम शिष्य हैं जो अपने गुरुओं से प्रशंसित हुए हों। श्री पुरन्दर ऐसे ही एक भाग्यवान् शिष्य थे जो श्री व्यासराय जैसे अपने गुरु से प्रशंसित थे।

श्री व्यासराय कहते हैं—'एक-ही-एक ऐसे दास हैं जो पूर्ण उमड़ते मन से स्वामी श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं और वह हैं अपने पुरन्दरदास।"

श्री व्यासराय अपने एक उज्ज्वल, सर्वोत्तम कीर्तन में घोषणा करते हैं कि श्री पुरन्दर सचमुच नारदमुनि के 'अवतार' थे जो इस भूमण्डल पर अपने भक्तिसूत्रों को अमल में लाने के लिए आए थे।

तो श्री पुरन्दरदास में इतना बड़ा आकर्षण क्या रहा है? क्या वे ४७५००० कीर्तन हैं जिनकी रचना वही कहते हैं कि मैंने स्वयं की थी? क्या उनके वैयक्तिक जीवन के साथ लगा हुआ भय है?— पुरन्दरगढ़ का एक धनी कंजूस रत्न-व्यापारी जो अपनी पत्नी के कृपालु प्रभाव से सब-कुछ त्याग कर विरक्त बन गया था?··· ···शायद यह सही हो सकता है। लेकिन इससे बढ़कर है उनके आंतरिक आध्यात्मिक जीवन की सुन्दरता, उसकी उत्कण्ठा, उसकी अनन्यता, उसकी व्यग्रता, उसके सब्र की नसीहत, उसकी कृष्ण परमात्मा के प्रति अनन्य भक्ति, उसकी उदारता, उसकी सार्वलौकिक दृष्टि और अन्त में परमात्मा का वैभवपूर्ण साक्षात्कार। जब हम उनके कीर्तनों को पढ़ते हैं तब ये सब भाव और अनुभव हमारे मन की आँखों के सामने से एक बड़े कारवाँ की तरह जन्म के मंद अस्पष्ट सराय से निर्वाण के साफ़ सपने तक गुज़र जाते हैं।

"प्रभो, मुझ पर अभी तक करुणा क्यों नहीं आई, मुझे अपना समझकर, घृणा किए बिना, अपना लो। देर हो जाने पर भी, मैंने जान लिया है कि तुम कौन हो, क्या हो।"

यह उनकी आत्मा की पुकार है। वह कभी-कभी व्यग्र भले ही हो जाएँ, पर अपने मन को धीरज धरने की चेतावनी देते हैं—"प्रभो, जब तक तुम्हारी करुणा का उदय मुझ पर नहीं होगा तब तक यही बेहतर है कि मैं धीरज धर कर रहूँ।"

वैयक्तिक जीवन में उनको सब अच्छे लोगों के प्रति सहानुभूति, सब्र, सहनशीलता है। अगर आपका हृदय निर्मल है, परिशुद्ध है तो पर्याप्त है, वे किसी प्रकार का कृत्रिम भेदभाव नहीं मानते।

कुल या जाति से क्या? सत्य सज्जनों के लिए कुल क्या जबकि वे एक बार आत्मज्ञान कर लेते हैं, आंतरिक अनुभूति प्राप्त कर लेते हैं। उनकी राय में कोई 'होलेय' यानी अछूत नहीं है बाहर, अपने अन्दर के सिवा।

अछूत गांव के बाहर अछूतबाड़े में नहीं है, पर हमारे बीच में—हमारे साथ—शायद हमारे भीतर है। क्योंकि श्रीपुरन्दर के अनुसार वही अछूत है जो अपना सदाचार त्यागता है, कृतघ्न अछूत है, जो आदमी अपने घर के छत पर खड़े होकर यह कहता है कि मैं ही अत्यन्त पूत हूँ, पवित्र हूँ वही बदतरीन अछूत है। इतना ही नहीं, श्री पुरन्दर के वात्सल्य ने समस्त मानवों को अपने गले से लगाया। क्योंकि उनके नीतिशास्त्र में धर्म की ही विजय होती है। "जो हमको विष देता है उसका लालन-पालन करना चाहिए; उसको आशीर्वाद करना चाहिए जो हमसे घृणा करता है; जो हमें धोखा देता है उसका नाम अपने पुत्र को रखना चाहिए।"

इसमें संदेह नहीं कि वह जानते थे कि भक्त के मार्ग आसान और सुगम नहीं हैं। समय वही है। कहा जाता है कि कलियुग में धर्म एक ही टाँग पर खड़ा है। पुरन्दर कहते हैं—

"काल बदल गया है।

आधुनिक काल में कोई भी अपनी छोटी उंगली धर्म के लिए नहीं उठाता। मन पाप से पूर्ण आकर्षणों की ओर झुक जाता है। धन है, पर वह दण्ड के लिए है, विलास के लिए है, इसमें कतई शक नहीं है; पर वह अपने अच्छे परिवार के लिए नहीं है। धन है बदमाशों और आवारों के लिए, पर पवित्र ध्यानियों के लिए नहीं। धन है लबाड़ों के लिए, असत्यवादियों के लिए, लुच्चों और नीचों के लिए, पर अच्छे लोगों के लिए नहीं; असत्य सत्य की तरह कवायद करता है। स्वर्गीय सुधा कूड़ा-करकट बन गई है; सचमुच, परमात्मा के लोगों के लिए यह काल नहीं है।"

श्री पुरन्दर को अपने परिव्राजक भक्त जीवन में अनेक निराशाओं के भँवर में जरूर चक्कर काटना पड़ा होगा; इसीलिए वे अपने एक कीर्तन में कहते हैं—

"हमारे शास्त्र यहाँ नहीं बिकते हैं (उनका प्रयोजन यहाँ नहीं है)। अगर मैं चुप रहूँ, कोई मेरी तरफ़ ध्यान नहीं देगा। सभी लोग असत्य को तजे बिना यह काम छोड़ देंगे।"

ये थे श्री पुरन्दर संतश्रेष्ठ जो परमात्मा के लिए कातर रहे और जिन्होंने समस्त मानवों को एक मान कर सदाचार का शास्त्र दिया तथा दैवी मोक्षानन्द में रहे।

—श्री आर. वाय्. धारवाड़कर

युगधर्म के व्याख्याता—

श्री पुरंदरदास जी 'दासकूट' के प्राण थे। इनके पद उपनिषदों के समान परात्पर तत्त्वज्ञान से युक्त होने के कारण इन समस्त पदों के संग्रह को श्री व्यासराय ने 'पुरंदरोपनिषद्' कहा था। 'दासकूट' संप्रदाय में ये पद उपनिषदों के समकक्ष माने जाते हैं।

पुरन्दरदास जी के पदों में वस्तु-व्याप्ति है। लोक-जीवन की नाना समस्याएँ और उन्हें सुलझाने का ढंग भी निरूपित हैं। इन पदों में सदाचार के लिए आवश्यक नीति-बोध है, जन-सामान्य के साधने योग्य उपयुक्त उपासना-क्रम हैं, विष्णु-भक्ति को उद्रेकित करने वाले तारतम्यात्मक पंचभेद ज्ञान है, श्रीहरि की करुणा है, जीव की पराधीनता का उल्लेख है, सच्चिदानन्दात्मक नारायण की अचिंत्याद्भुत शक्ति का प्रदर्शन करने वाली लीलाओं की महिमा है, और संसाररूपी सागर में अज्ञान के तूफान से मायारूपी बवंडर में तड़पने वाले जीव के लिए हरि-करुणा का सहारा है। इन सबका हृदयंगमरूप में निरूपण करने की उनकी शैली कन्नड़ की जन-बोली में अत्यन्त सरस बन गई है।

१५-१६वीं शताब्दी के समाज में और आज-कल के समाज में जीवन का कोई उल्लेखयोग्य अंतर दिखाई नहीं देता ये बातें उनके पदों से ज्ञात होती हैं। सामान्यतया दारिद्र्य में, दुराशा से पीडित लोगों में, धर्म-मार्ग त्याग करके पाखण्ड से अपने को धर्म-श्रेष्ठी कहलाने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार वृथा अपने जीवन से हाथ धो बैठने वालों की निंदा पुरन्दरदास जी ने की है—

'अट्टा दिट्टी मुद्रेगळु बडिदु कोंडिन्तु
दोड्ड दोड्ड मातुगळाडि, दोड्डवरेंदु हेळि कोब्ब
बट्टी धगडी मक्कळिगिन्तु वैष्णव सल्लुवदे।"

—तिलकधारी बातूनी ढोंगी विष्णु के कृपापात्र होंगे भी?

अनीतिमय जीवन-यापन से जो धन-संग्रह, सुख की आशा करते हैं उनसे वे कहते हैं कि यह देह माँस-हड्डियों से पूरित तथा चर्म से आच्छादित है। इस देह के अन्दर मलमूत्र, कृमि-राशि हैं। यह देह अनेक व्याधियों का घर है। इस पर मोहित होकर, इसके सुख के लिए अपना सत्यानाश मत करो। यह देह अनित्य है। इसे हरि-सेवा में लगाने से मुक्ति मिलती है।

पर स्त्री-सौंदर्य में पागल तथा विषय-लोलुप बन व्यर्थ आयु का नाश नहीं करना चाहिए। धन-कनक-कामिनी, राजवैभव सब अस्थिर तथा अनित्य हैं। ये सब क्षण के लिए सुख देकर, ज्ञान-मार्ग से अलग करके कष्ट देने वाले हैं। इनसे दूर रहना ही श्रेयस्कर

है, इन सबसे जितनी दूर रहोगे, उतना लक्ष्मीपति का सामीप्य पाओगे—

सतिसुतरू हितरेंदु मति मरेतु ममतेबडि
अतिकांक्षेयिंद दुर्विषय बळिदु
सतत लक्ष्मीपतिय शरणेन्नदिद्दपरव
गतिशून्यनागि नी केडबेडमनवे।

इस प्रकार आध्यात्मिक चिंतन द्वारा लोगों के मन को शांति देना ही उनके पदों का मूल ध्येय है।

पुरन्दरदासकालीन समाज में अन्ध-श्रद्धाएँ प्रचलित थीं। क्रूर देवताओं की आराधना करना, उनकी तृप्ति के लिए पशु-बलि करना आदि को रोकने के लिए उन्होंने कोशिश की है—

बेग्मडियनुट्टु बेन्नुसि डियनेरी
चिम्मुत ओलि बोब्बेगळिडुत
कर्मक्के गुरियागि प्राणिहिंसेय माळ्प
बृहत्यकारर एळेदु तन्निरो।

और इस आचरण को प्रश्रय देने वालों का खण्डन किया है।

तीर्थ-क्षेत्रों में धर्म के नाम पर लोगों से धन लूटने वालों का भंडा-फोड़ भी उन्होंने किया है।

समाज में और भी ढोंगी थे जो भोर में उठकर नदी में स्नान करके अति हर्षित होकर, बिना मद-मत्सर को त्यागे, 'हाथ में जपमाला, मुंह में मंत्र' का मुख पर परदा डाले, पर-स्त्री का ध्यान करते, 'सब-कुछ मेरा है' कहते हुए पूजा करते थे। उनके इस झूठे और नकली वैराग्य को पुरन्दरदास जी ने 'उदर वैराग्य' कहा है। उनके इस व्यवहार पर दास जी को हँसी आती है।

विषयवासनायुक्त वैरागी के कार्य निष्फल हैं। कुटिलता-भरा मन्त्र-पठन क्यों करना चाहिए? असत्य बोलने वाले को धर्मिष्ठ का अभिनय करने से क्या फल है? पुरन्दरदास जी के समय में भी वंचना से लोगों को हिंसा देने वाले थे। कोप को मन में भरे उपवास करने वालों की कमी नहीं थी। माता-पिता को पीडा देकर तीर्थयात्रा करने वाले बहुत थे। पर-हिंसा करने वाला गीता-पठन करता था। ऐसी स्त्रियाँ भी थीं जो अपने पति की सेवा से विमुख होकर गौरी-उपासना करती थीं। गंगा में मलिनता धोने वालों की कमी नहीं थी—भले ही उनके मन में नीच विचार रहे हों। पुरन्दरदास जी ने इन सबको समाज-घातक कहकर खूब फटकारा।

—श्री एस. के. कुलकर्णी

मेरी कविताएँ

[श्री 'समीर']

कविताएँ बहुत कम लिख पाता हूँ, बंधु!
—मुश्किल से पाँच-सात साल में।
देखिये न,
सन् तिरसठ का साल—
आया और चला गया
समय की रेत पर
छोड़ अपनी केंचुल,
किन्तु, मैंने कविताएँ
लिखी सिर्फ पाँच!

यह कविता—?
सन् तिरसठ की उनमें से एक है
निकलीं जो समय की सतह को फोड़
पावस के छत्रक-सी ठेक!

सही है कि पुरानी सतह को फोड़
निकलतीं जब छत्रक-सी कविताएँ मेरी,
कितनी ही दूबों के शीश झुक जाते;
शीश—जो अब तक अजेय रहे!

दूब?
अरे! वह दूब भी कहीं कोई चीज़ है?
भला, जिसे इतना भी पता नहीं
कि
कब बसन्त आया या ग्रीष्म गया,
कब पावस पधारा या शरत् सिधारा;
सिर्फ अपनी सतह पर चिपका रहना ही
जिसका है धर्म!

किन्तु, छत्रक?
छत्रक तो प्रगति का प्रतीक है!
ऐसा कि दूबों से ऊपर सिर उठा कर कह दे
कि आज का युग मेरा है, तुम्हारा नहीं।

'इन्टरव्यू' से पहले

[श्री रामेश्वरनाथ भार्गव]

(पात्र-परिचय)

[बाबू जी—अधेड़ आयु के व्यक्ति, हिटलर-कट मूछें, खोपड़ी के बाल बीच में से साफ़, रंग सामला, कद ५½ फुट के लगभग।

शंकर—बाबू जी का नौकर, आयु ५० के लगभग मूछें बड़ी-चढ़ी काली, जो नीचे के होठों को स्पर्श करती हैं। बनियान और ऊंची धोती पहने है। कन्धे पर अंगोछा, हाथ में झाड़न।

स्थान—दिल्ली के मध्यवर्ग के गृहस्थ का एक कमरा···कमरे में एक ओर बड़ी मेज, और ऊपर कुछ छोटी-छोटी किताबें अस्त-व्यस्त बिखरी पड़ी हैं। एक टेबुल पर क्लॉक रक्खा है, पास ही एक कुर्सी। कमरे के दूसरे कोने में एक चारपाई, उस पर बिस्तर बिछा हुआ है, पास ही टी टेबिल, उस पर एक किताब, टेबुल लैंप, फाऊन्टेनपैन आदि रखे हैं। टेबुल लैम्प का बल्ब प्रकाशित नहीं हो रहा है। पीछे की ओर एक अलमारी और उसके पास ही दो-तीन ट्रंक रखे हैं। बाबू जी खाट पर मुंह ढके सो रहे हैं। उनके खर्राटों की आवाज आ रही है। दिन का प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ रहा है।]

समय—प्रातः काल ६½ के लगभग।

(नेपथ्य—शंकर, ओ शंकर, अरे अपने बाबू जी को जगा दे, जरा। (शंकर का प्रवेश, बाबू जी के समीप जाकर, चारों तरफ देखता है फिर किताब उठाता है, उसके कन्धे पर झाड़न पड़ी है और हाथ में झाड़ू है। किताब उठाता है फिर रखता है, बाबू जी की ओर देखकर मुस्कराता है फिर बहुत शीघ्रता से बाबू जी को घुटनों के पास से हिलाकर।)

शंकर—बाबू जी बाबू··· ···जी।

(बाबू जी सोते रहते हैं)

शंकर—बाबू जी··उठियो न, दिन निकल आयो सूरज भगवान् (ऊपर की ओर हाथ जोड़कर, बाबू जी करवट बदलते हैं) आपको जाना है न ··· आपका आज अन्तर··· ···अन्दर अन्टरव्यू है।

बाबू जी—(हड़बड़ा कर उठते हैं। खाट पर बैठकर) इन्टर···इन्टरव्यू किसका···हां हां इन्टरव्यू (जोर से चिल्लाकर) अबे, तुझसे कहा था कि जल्दी जगाना, पर फिर भी नहीं उठाया। जानता है कि कितना पढ़ना है (मेज पर से किताब उठाकर) इन्टरव्यू है, कोई गुडियों का खेल नहीं (टहलते हुए) सब-कुछ तो देख लिया। (शंकर बाबू जी के पीछे-पीछे चलता है और सिर हिलाता है जैसे कुछ समझता ही नहीं है और फिर सिर के पास उंगली ले जाकर चक्र बनाता है जैसे बाबू जी का दिमाग खराब हो गया है)।

बाबू जी— Light travels faster than sound...light ... no sound travels ··· ··· किताब (उठाकर, देखकर) No Light Travels faster than sound. (निश्चयात्मक मुद्रा)

(शंकर उनके मुख की ओर देखता हुआ चला जाता है)

बाबू जी—ऐलिजाबेथ I······ Marriage robe ऐलिजाबेथ ··Marriage अरे, उसकी तो शादी ही नहीं हुई थी Oh, She was never married··· ···अभागी) परन्तु Philips··· Prince Philips Mountbaton यह तो वर्तमान ऐलिजाबेथ के···। Washington was the first Viceroy of oh··· ···No the first President of Free America.

(सीटी बजाता हुआ बड़ी मेज के समीप कुर्सी पर बैठ मोटी किताब उठाकर) उत्तर प्रदेश के गवर्नर माननीय डा० सम्पूर्णानन्द, नहीं,··· ···नहीं, वह तो राजस्थान के हैं। पंचशील ही विश्व में शान्ति-स्थापन का सरल मार्ग है।

नेपथ्य से—बाबू जी अखबार···(अखबार वाला अखबार फेंक कर चला जाता है। बाबू जी अखबार उठाकर पढ़ने लगते हैं)···लद्दाख में एक-एक इंच भूमि के लिए हमें लड़ना है। ···यह लड़ाई लम्बी

चलेगी···तन-मन-धन से देश की रक्षा करनी है। ···चाऊ···(घृणा से अखबार फेंक देते हैं) पंचशील··· ·· हूँ।

(शंकर का प्रवेश)

शंकर (शीघ्रता से) बाबू जी···बाबू जी···चाय तैयार है, आप दांत (मंजन करने का इशारा करते हुए) साफ या यहीं ले आऊं।

बाबू जी—शंकर, देखो मुझे आज बहुत पढ़ना है। यहां कोई न आने पाए। यहां तक कि तुम्हारी बहू जी भी···समझ···जाओ।

(शंकर का प्रस्थान)

नेपथ्य—ओ···जी, चाय ठण्डी हो रही है जल्दी पी लो आ कर।

बाबू जी—(एक ओर जाकर) आज मुझे इन्टरव्यू अटेन्ड करना है, उसी की तैयारी में उलझा हुआ हूँ। मैं आज चाय-वाय कुछ नहीं पीऊंगा। I am awfully busy, Please···मेरे कमरे में कोई न आने पाये···Darling माफ करना, Not even you.

[नेपथ्य—शंकर, जा अपने बाबू जी को चाय वहीं दे आ।]

बाबू जी—(अपने-आपसे) बड़ी मुश्किल से तो जुगत बिठाई है, तब तो इन्टरव्यू कार्ड आया है·· मिनिस्टर···लाओ जरा हिस्ट्री और देख लूँ। (हिस्ट्री की एक किताब उठाते हैं)।

शंकर (चाय का प्याला और प्लेट लिए हुए प्रवेश। मेज पर चाय का प्याला और प्लेट रखते हुए) बाबू जी जल्दी पी लो, ठण्डी हो जाएगी।

(बाबू जी चाय का प्याला उठाकर पीते हैं, दृष्टि इतिहास की पुस्तक पर जमी हुई है, चाय फैल जाती है। प्याला गिर जाता है उसे ठोकर लगा कर)

बाबू जी—(चिल्ला कर) मैंने कहा था ना···मैं नहीं पीऊँगा। फिर भी तुम्हें मेरा टाइम बर्बाद करने में न-मालूम क्या मज़ा आता है। मेरे कैरियर का सवाल है···अब नहीं तो फिर कभी नहीं···परन्तु तुम ·।

(फिर किताब लेकर घूमते हुए)

Clive, the founder of the British rule in India.

परन्तु···क्लाइव···तो गुण्डा···बदमाश था और वह Founder, संस्थापक मुझे क्या ? (मुंह बनाकर) Principal गोस्वामी जी पढ़ाया है (सोचता है)

Malthus theory of Population··· Economics में न पूछ लें।

(मोटी-सी किताब खोलकर, दो सैकिण्ड देखकर फिर बन्द कर देते हैं)

और···और···ये जनरल नॉलिज भी क्या बला है।

(घड़ी ने टन-टन करके सात बजा दिए)।

बाबू जी—(घबरा कर)···अरे अभी तो लेटरीन भी नहीं गया हूँ। (गाल पर हाथ फेरते हुए) शेव भी नहीं की (सोचने में मग्न हो जाते हैं) लेकिन मिसीसिपी नदी···।

"टण्ड्रा के लोग बर्फ के घर बनाते हैं···मगर कैसे" (सोचने की मुद्रा)

बाबू जी—(एकदम) शंकर—अबे ! ओ शंकर।

शंकर—(आते हुए) आया बाबू जी।

बाबू जी—शंकर मैं लेट्रीन जा रहा हूँ। ज़रा मेरी टेरीलीन की कमीज व ऊनी पेन्ट बक्स में से निकाल दे। और शेव के लिए गरम पानी भी (जल्दी से बाबू जी का प्रस्थान)।

शंकर—अच्छा, बाबू जी—(शंकर अल्मारी में से कपड़े निकालता है और पेन्ट-टाई आदि निकाल कर मेज और कुर्सी पर सजाता है। टाई लगाकर देखता, फिर मेज पर फेंकता है और कमरे में घूमता हुआ··· ···

शंकर—बाबू जी आज बहुत-सा पढ़ रहे हैं। कहते हैं पास होते ही अच्छी-सी नौकरी मिलेगी, पगार बढ़ेगा ··और···मेरा भी पगार पढ़ेगा···

(प्रसन्न मुद्रा में) मैं छुट्टी लेकर जाऊँगा। वहां (आकाश को देखता हुआ उंगली का एक ओर इशारा करके) वहां···वहां नन्हे की माँ मेरा इन्तज़ार कर रही होगी···मैं···मैं···(गोदी में किसी को लेने का प्रयास करते हुए) उसे···नन्हें को गोद में खिलाऊँगा। नन्हा अब बड़ा (हाथ से बड़ा बताते हुए) हो गया होगा। (भावावेश में आंखों से अश्रु प्रवाहित होते हैं। कपड़े से आंखें शीघ्रता से पोंछने लगता है)।

(बाबू जी का प्रवेश)

बाबू जी—अबे यहीं खड़ा है···पानी भी नहीं लाया गया, सूअर।

(शंकर आंसू पोंछता हुआ अन्दर की ओर भाग जाता है)।

(बाबू जी स्लीपिंग सूट उतार बनियान पर टेरीलीन की कमीज पहनते हैं और गुनगुनाते हैं)।

बाबू जी—झझ झ झझ झ (शीशे के सामने खड़े होकर टाई बांधते हैं।) कालिदास विश्व का सर्वश्रेष्ठ नाट्यकार है···और शेक्सपीयर वह उसका क्या मुकाबला···हूँ। नहीं ठहर सकता।

(शंकर गर्म पानी का बर्तन लाता है। मेज पर रख शेव का सामान आलमारी से निकालता है और शीघ्र ही बाहर चला जाता है। बाबू जी शीघ्रता से मेज के पास जाकर ब्रुश गर्म पानी में भिगोकर गाल पर रगड़ते हैं। गाल जल जाता है)।

बाबू जी—सी···सी·· सी···बहुत गर्म (ब्रुश को छोड़कर गाल को मसलते हैं फिर साबुन पर ब्रुश रगड़कर गालों पर लगाते हैं तो साबुन का धब्बा कमीज पर पड़ जाता है। शेव समाप्त करके कोट पहनते हैं पर छोटा है, बदन में नहीं आता, प्रयत्न कर रहे हैं, फिर क्रोधित होकर कोट फेंकते हुए) "अरी सुनती हो··· ···यह कोट कहां धुलवाया था स्नोव्हाइट या नोवेक्स के। ड्राईक्लीन वाले ने भी न-जाने कब का बदला चुकाया है। कोट की क्या हालत कर दी है। ऐसे कोट से इन्टरव्यू ··(कुछ सोचकर) शंकर—हां ठीक है।

शंकर—आया बाबू जी।

बाबू जी—हां··हां! रघुवंश जी का···नहीं सिन्हा साहब का ही ठीक रहेगा।

शंकर—सिन्हा साहब का कोट तो ले आ, कहना बाबू जी···।

शंकर—(बीच में) बाबू जी सिन्हा साहब का तो ढीला रहेगा आपको, कहिए तो प्रिंसिपल चम्पालाल जी का ले आऊँ।

बाबू जी—हां हां, किसी का भी, प्रिंसिपल साहब का मिल जाए तो अच्छा है।

(शंकर का प्रस्थान)

·· बाबू जी—आठ बज रहे··· ···Causes of French Revolution (सोचने की मुद्रा बना कर) अरे Or Psychology- Child Psychology. तो बिल्कुल नहीं देखी (मेज पर से एक किताब उठाकर टहलने लगते हैं) कुमारावस्था Adolesence. Age···(किताब रखकर) पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा···चन्द्रमा···अशोककुमार भी गजब का एक्टिंग करता है। नर्गिस को पद्मश्री··· ··· (हंसने की मुद्रा दोनों हाथ मिलाकर)। हा हा··· ··· कार्नवालिस ने Permanent Settlement··· किया था।

(शंकर का कोट लिए हुए प्रवेश)

शंकर—आचार्य जी का ही मिल गया। बड़े अच्छे आदमी हैं बाबू जी।

बाबू जी—(कोट झपट कर छीनते हैं) ला ला··· ये अच्छा रहा। संस्कृत के विद्वान् हैं न, और कोई होता तो न देता। (पहिन कर) हां हां, बिल्कुल ठीक ये भी अच्छा रहा···(कोट को देखकर) पर यह तो मुसा हुआ है। क्या घड़े में से निकाल कर दिया है, पर तो भी अब सही। शंकर फिट बिलकुल फिट। ज़रा शीशा तो दिखा (शंकर शीशा दिखाता है।) चुस्त बिलकुल··हां हां, जंचता हूँ न शंकर (चारों तरफ घूमता है)।

(शंकर बड़े गौर से बाबू जी को घूरता है कुछ मुंह बना कर हँसते हुए)।

शंकर—ही-ही-ही बाबू जी आपका पेन्ट।

बाबू जी—अरे, अपने पैरों को ओर देखकर, वह तो भूल ही गया। (कोट को उतारते हुए) शाबाश तूने बता दिया। (कोट शंकर को पकड़ाते हैं और पेन्ट पहिनते हुए)।

Lives of the greatmen all remind us, we can make our lives sublime. And departing leave behind us, Foot Prints, on the sands of time (कोट पहनते हुए)।

शंकर—बाबू जी ९ बज चुके हैं।

बाबू जी—(विचारों में मग्न) अकबर की दोहरी नीति···Duel Policy of Akbar और वह

फिर भी महान् (आश्चर्य की मुद्रा, फिर कुर्सी पर बैठकर मोजा पहिनते हुए) १८५७ का गदर''' (एकदम उठकर दो कदम आगे बढ़कर हाथ ऊपर उठाकर। मोजा एक पहन लिया दूसरा आधा ही चढ़ा) नहीं, नहीं स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम है। (मुख पर ओज, तेज और साहस झलकता है, फिर ज़रा स्वस्थ होकर मोजा ठीक करते हैं। टाई का नाट फिर सम्हालते हैं।

हे ईश्वर, तेरा लाख-लाख धन्यवाद। खुदा का शुक्र है।

दीनदयाल विरदु सम्भारी, हरहु नाथ मम संकट भारी।

(ऊपर की ओर हाथ जोड़ते हैं)।

(डाकिये का प्रवेश)

डाकिया—बाबू जी, चिट्ठी।

(प्रस्थान)

(बाबू जी शीघ्रता से चिट्ठी लेकर भीतर को फेंककर)।

बाबू जी—"मुझे फुरसत नहीं है। शंकर अपनी बहू जी को देना, वे ही देख लेंगी। उन्हें क्या काम है, कि आज डाक भी नहीं देख सकती। रख दो शाम को देख लेंगे। कभी तो टाइम लेना चाहिए। मैं तो इण्टरव्यू में उलझा हुआ हूँ, मुझे कुछ नहीं सूझता।"

(घड़ी ने दस बजाए) बाबू जी बाहर जाने लगते हैं।

शंकर—बाबू जी आपका मोजा (बाबू जी कुर्सी पर बैठकर मोजा ठीक करते हैं। शंकर बाबू जी के बाल देखता हुआ) बाबू जी कंघी।

बाबू जी—क्या? (शंकर शीशा दिखाता है) बाबू जी बाल बाहते हुए Govt. of the people, by the people, for the people.

Abraham Linclon''' अच्छा हुआ तूने बता दिया नहीं तो लोग हँसते कि इण्टरव्यू में''' (स्वयं भी हँस पड़ते हैं)।

(उठकर प्रस्थान)

(शंकर अस्त-व्यस्त वस्तुओं को ठीक करता है। बाबू जी हांफते हुए लौटकर आते हैं, बाहर से ही उनकी आवाज़ आती है।)

बाबू जी—शंकर, हो गया। डियर गजब हो गया। मैं प्रमाण-पत्रों का बंडल तो यहीं छोड़ गया। बस छोड़कर आया हूँ, सुनती हो जल्दी ढूँढ़ कर दो (तेज आवाज़) शंकर''' जल्दी'''(शंकर अलमारी, बक्से में ढूंढ़ कर एक चमड़े का बैग बाबू जी को देता है। बाबू जी शीघ्रता से बाहर भाग जाते हैं)।

नेपथ्य—शंकर ओ शंकर, अपने बाबू जी से दौड़कर कहना—आज इण्टरव्यू नहीं है, चिट्ठी में लिखा है। (शंकर का बाबू जी के पीछे-पीछे प्रस्थान) बाबू S S S जी।

जवनिका-पतन

●

कल्याण

[श्री चन्द्रपालसिंह 'मयंक]

जहाँ योग्यता की कद्र नहीं होती,
गुण जहाँ ठुकराया जाता है,
ईमानदारी की ओर से जहाँ आँखें बन्द कर ली जाती हैं,
सेवा और त्याग जहाँ पर लोगों को प्रभावित नहीं कर पाते।
जहाँ धनी - पर गुणहीन—व्यक्तियों को शीश झुकाए जाते हैं,
जहाँ कुटिल आलोचनाओं की तप्त हवाएँ चलती रह कर,
निर्दोष मन-मानसों को झुलसाती रहती हैं,
जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण लोगों की दृष्टियाँ मन्द पड़ गयी हैं,
जहाँ ईमानदारी बालाए-ताक रख दी जाती है,
जहाँ धन के जूते मार कर लोगों को अपनी ओर मिला लिया जाता है,
जहाँ अपना काम बनाने के लिए सत्य की हत्या कर देने में भी किसी को रंचक हिचक नहीं होती,
जहाँ अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए संस्था के हित की बलि दे दी जाती है—
ऐसे स्थान पर आने के लिए मेरे मन में प्रेरणा न उत्पन्न हो, तभी कल्याण है!

लोक-गीतों में पुत्रोत्सव

[श्री सोमदत्त बंसल]

कुछ सखियां जल-क्रीडा करती हुई आनन्दमग्न हो रही हैं। सहसा उन की दृष्टि एक सखी पर पड़ती है जिस की आंखों से आंसू की बून्दें टपक रही हैं। आनन्द के रंगीले वातावरण में उसे दुःखी देखकर वे चकित-सी हो जाती हैं और उसे दुःखी होने का कारण पूछती हैं :—

की तुहे सासु ससुर दुःख की नैहर दूरि बसै।
बहिनी, की तुमरा कन्त विदेस कवन दुःख रोवहु हो॥

उस ने उत्तर दिया :—

ना मोहे सासु ससुर दुःख ना नैहर दूरि बसै।
बहिनी, ना मोरा पिय परदेस कोखि दुःख रोवहु हो॥

उस सखी को न सास के कारण कोई दुःख है और न ससुर के कारण कोई दुःख है। उसका मायका भी दूर नहीं बसता। उसके पिय भी परदेस नहीं गए हुए हैं। उसके दुःख का एक मात्र कारण पुत्राभाव है। पुत्राभाव का दुःख स्त्री के लिए असह्य होता है। इसी दुःख के कारण आनन्द के रंगीले वातावरण में भी उस की आंखों से आंसू टपक पड़ते हैं।

जब पुत्राभाव का दुःख उस से सहन न किया जा सका तब उसे गंगा में डूब मरने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं सूझा। वह चली और गंगा मैया के पास पहुँच कर उससे प्रार्थना करने लगी—हे माता, मुझ अभागिन को अपनी लहरों के बीच स्थान दो। परन्तु गंगा मैया भी बांझ को अपने अन्दर स्थान देने से डरती है। जब उस स्त्री की करुणापूर्ण स्थिति गंगा मैया से नहीं देखी गई तब गंगा मैया ने करुणार्द्र हो कर उसे आशीर्वाद दिया :—

जाहु तेवइया घर अपने हम न लहर देवई हो।
तेवई, आज के नवमें महिनवां होरिल तोरे होइहैं हो॥

गंगा मैया द्वारा दिया गया यह आशीर्वाद सुन कर कि आज के नौवें महीने पुत्र पैदा होगा, स्त्री फूली न समाई। उसने पुत्र होने पर गंगा मैया को पीली चुनरी उढ़ाने का वायदा किया और भावी पुत्र के विषय में गंगा मैया से प्रार्थना की :—

गंगा, गहवरी पियरी चढ़उबै होरिल जब होइहैं हो।
गंगा, देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो॥

भारतीय नारी का कितना ऊंचा आदर्श है। वह पुत्रोत्पत्ति से पहले पुत्र के आदर्श का ध्यान रखती है। वह चाहती है कि उस का पुत्र भगीरथ के समान संसार का उपकार करे। संसार में यश पाए और उसकी कोख को सफल करे।

स्त्री गर्भवती हो जाती है। घर में उस की सास उस का पीला मुंह और भारी पांव देख कर बहू से इसका कारण पूछती है। बहू सोचने लगती है :—

लाज शरम के बतिया मैं सासु से कैसे कहउं रे।

केवल इतना ही कहती है :—

सासू तेरा पूत छैल छबीला अंचरवा पिच डारइं रे॥

बहू ने सास को केवल इतना ही कहा कि तुम्हारे छैल-छबीले पुत्र ने मेरा आंचल मसल डाला। परन्तु सास अनजान नहीं थी। बिना कहे ही वह सब-कुछ समझ गई। बहू से कहने लगी :—

ये अलबेली बहुरिया बचन न लगावहु रे।
दुलहिनी, आज के नवमें महिनवां होरिल तोरे होइहैं रे॥

सास ने कहा कि हे बहू बातें न बनाओ आज के नौवें महीने तेरे पुत्र उत्पन्न होगा।

एक रात जब गर्मी काफी थी और उसे नीन्द नहीं आई तब अपने पिय से कहने लगी :—

राजा न हो मोरे राजा तुम्हीं मोरे राजा।
राजा, रस देई के बेनिया डोलावा,
निदरिया मोरे आवई।

पति से प्रेम-सहित पंखा करने को कहा गया ताकि नीन्द आ जाए। परन्तु पति ने उत्तर दिया :—

रानी न हो मोरी रानी, तुम्ही मोरी रानी।
रानी एक तो बाबा के दुलरवा त मैया के पिआरवा रे।
रानी तीसरे कचेहरी की जोती, मैं कैसे बेनिया हांकउं।
चेरिअवा बेनिया हांकई हो॥

बाप का दुलारा, मां का प्यारा और कचहरी की ज्योति वह छैल-छबीला भला कैसे पंखा करता। वह

बोला कि पंखा तो दासी करेगी। स्त्री भी चूकने वाली न थी। पति से कहने लगी :—

राजा न हो मोरे राजा तुम्ही मोरे राजा।
राजा एकऊ होरिल जो जनमि है तो तुम्ही बेनिया हंकेबऊ
तुम्हीं सो हंकाउब हो॥

स्त्री जानती है कि एक भी पुत्र उसके जन्मा तो उसका राजा स्वयं ही पंखा करेगा। इसलिए वह कहती है कि तुम से ही पंखा करवाऊंगी।

स्त्री की बेचैनी बढ़ती जाती है। वह अपने पिता के घर से लाया हुआ कंगन पहन कर एक दिन लेटी हुई है। उस की छोटी ननद पंखा करके उसकी बेचैनी को कम करती हुई उससे प्रेमपूर्वक कहती है :—

कंगना पहिरि धन बैठि त अपने ओसरवां मां रे,
येहो लहुरी ननद हांके बेनिया कंगनवा भौजी लेबै हो।
जो तेरे भोजी होइहैं होरिलवा कंगनवा हम लेबै हो॥

भाभी ननद की यह बात सुनकर पुत्र की आशा से प्रसन्न होती हुई कहती है :—

चूमौ मैं ननदी के ओठवां चउर अस दन्तवा,
ननदी जो मेरे होइहैं होरिलवा कंगन हम देबै।
ननदी कंगना के जोई पछेलवा दुनौ हम देबै॥

भाभी ने ननद को कंगन ही नहीं कंगन के जोड़ का पछेला भी देने का वायदा किया। ननद ने ईश्वर से प्रार्थना की कि मेरी भाभी के पुत्र उत्पन्न हो ताकि मुझे कंगन मिल सके। उस की प्रार्थना सफल हुई। पुत्र पैदा हुआ चारों ओर खुशियां छा गई। मंगलगीत, गाए जाने लगे। गीत गाने के लिए आई एक महिला ने सुन्दर बच्चे को देखकर बहू से पूछा :—

बहुवा होरिल बड़ सुन्दर ना जानौ कौने गुन।
मेरी बहुवा की तूं खाइल नौरंगिया की पेट गुन॥

वह महिला सुन्दर बालक होने के दो कारणों की कल्पना करती है। या तो बहू नें नारंगी खाई होगी या उस की कोख ही ऐसी है कि उस से सुन्दर बच्चा पैदा हो। परन्तु बहू उत्तर देती है :—

नाहीं हम खा ली नौरंगिया नाहीं पेट गुन।
लगिलिउं ससुइया जी के गोड़ त उन के धर्म गुन॥

वह अपनी सास के पैरों में पड़ी थी। उस की धर्मात्मा सास के शुभ आशीर्वाद के कारण ही ऐसा बच्चा पैदा हुआ है। कितना ऊंचा आदर्श है। बहू आत्म-प्रशंसा न करके सास के आशीर्वाद के गुण गाती है। ऐसी देवियां ही घर को स्वर्ग बना सकती हैं।

परन्तु ऐसी सुलक्षणा भी ननद से किए अपने वायदे को भूल जाती है। ननद के कंगन मांगने पर कहती है :—

न तोरे भैया गढ़ावा न बाबा तोरे मोल लीन।
ननदी ई मोरे नैहर के कंगना कंगन हम न देबै रे॥

वह कंगन न ननद के भाई ने गढ़ाया है न उस के बाप ने मोल लिया है। वह कंगन तो बहू अपने मायके से लाई है। इसे भला वह अपनी ननद को कैसे दे दे। ननद भी चुप रहने वाली नहीं थी, बोली :—

मारब सात गढहरी गले दुई थप्पड़ रे।
भौजी कंगना के जोट पछेला दुनौ हम लेबै॥

सात लात और दो थप्पड़ लगा कर कंगन के साथ पछेला छीनने की धमकी ननद ने भौजी को दी। यहीं प्रेम का अथाह समुद्र उमड़ता दिखाई देता है। एड़ी से चोटी तक भाई भाभी के प्रेम में रंगी हुई ही अपनी भाभी से ऐसे शब्द कह सकती है। सास-ससुर के कहने से बहू अपनी ननद को कंगन दे देती है। कंगन पहन कर ननद सूर्य से प्रार्थना करती है :—

पहिरि ओढ़ि ननदी ठाढ़ी भई सुरजा मनावै लागी।
सुरजा बाढ़ै मोरे भैया क सेजरिया मैं नित ठि आवऊं॥

बहन सदा यही कामना करती है कि उस के भाई की वंश-लतिका सदा फलती-फूलती रहे और वह ऐसे शुभ अवसरों पर आती रहे।

उधर नवजात शिशु के मामा के पास उसके जन्म का शुभ सन्देश पहुंचाया जाता है। मामा अपने भांजे को देखने के लिए व्यग्र हो उठता है और अपने साथ ले जाने वाले सामान की तैयारी के लिए कहता है :—

हंकरो गाँव के बजजवा, वेगि चलि आव,
अरे जल्दी आव।
बजजा, पंचरंग चुनरी ले आव बहन पहिरावौं,
बहन सुख माने॥
हँकरो गांव के सुनरा, वेगि चलि आव,
अरे जल्दी आव!
सुनरा, सोने रूपे कड़आ लै आव भनिज पहिरावौं,
बहनोई सुख माने॥

भाई अपनी बहन के घर पहुँचने के लिए कितना उतावला है। जब भाई तैयार होकर बहन के घर पहुंचता है तब बहन अपने भाई से पूछती है :—

काउ लै आया भैया सासु क काउ गोतिन क।
काउ लै आया भैया भयन क काउ त हम क॥

बहन भाई से स्वाभाविक-सा प्रश्न करती है कि क्या सास के लिए,क्या गोतिनों के लिए, क्या अपने भांजे के लिए और क्या मेरे लिए लाए। बहन के लिए बहुत-कुछ लाने वाला भाई, जो समझता है कि अपनी बहन से पहले उसकी सास और गोतिनों का उपहार द्वारा आदर करना चाहिए, अपनी बहन से चुटकी लेता हुआ कहता है कि :—

पिअरी लै आये बहिनि. सासु क लुढ़िया गोतिन क।
गुंजा गोडहला तो भयन क तुंह का कछु नाहीं॥

पुत्र कुछ बड़ा होने लगता है। सूरदास की यशोदा के समान लोकगीतों की माता भी अपने पुत्र का चलना, बोलना इत्यादि देखने के लिए उत्कंठित हो उठती है। उस की अभिलाषाएं हैं :—

पांवों में पैंजनियां लाला ठुमुक ठुमुक खेलोगे।
अच्छी शुभ घड़ी वा दिन जानूंगी,
जा दिन दादा दादी बोलोगे॥
कै झूले मेरो पालनो, कै दादी की गोद॥
अंदन चन्दन को पालनो, कै रेशम की डोर।
कृष्ण को पालनो बनवाऊं,
दादी ने गाड़ो पालनो दादा ने बंटा दई डोर।
कै झूले मेरो पालनो, कै बाबा की गोद॥

बच्चा या तो चन्दन के पालने में या दादी की गोद में खेलेगा। दादी ने पालना गाड़ा और दादा ने पालने के लिए रेशम की डोर बंटवा दी। बच्चा अब पालने में या बाबा की गोद में खेलेगा। बच्चे का उचित शृंगार भी किया जाता है :—

कमर में सोहे करधनियां पांव पैंजनियां।

बच्चा कुछ और बड़ा होता है। अपने साथियों के साथ खेलने दूर जाता है। माता का आशंकाओं से भरा हृदय पुकार उठता है :—

ललन दूरि खेलन जनि जाओ ढूंढन हम न आउबै।

माता का बच्चे को यह कहना कि बाहर दूर गया तो मैं तुझे ढूँढ़ने नहीं आऊंगी भला बच्चे को अपने साथियों के साथ खेलने से कैसे रोक सकता था। बच्चा खेलने के लिए दूर चला गया।

भोर भये मिनसरवा कलेवा की जुनिया।
होइगै कलेवना की बेर ललन नहीं आए॥

कलेवे का समय हो गया ललन अभी तक नहीं आया। मां भला अपने पुत्र को कैसे रोक सकती थी। उसकी क्या दशा हुई उसी के शब्दों में :—

अंगिया तो फाटै बन्दै बन्द अँचरा करै वर।
छतियां उठी हहराय ढूंढन हम आइन॥
जैसे कुम्हार क औवाँ त भभकि भभकि रहे।
बेग, वैसई माई का करेजवा त धधकि धधकि रहै॥

पुत्र के दूर चले जाने के कारण माता की छाती दहल उठी। कुम्हार के आंवे के समान माता का हृदय पुत्र के दूर चले जाने पर धधकने लगा।

माताओं ने लोकगीतों के रूप में अपनी इस धधक का सफल चित्रण किया है। इस को अनुभव करने के लिए साहित्य-शास्त्र के ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं। केवल सहृदयता पर्याप्त है और सहृदयों के लिए ही ये लोक-गीत हैं।

★ ★ ★

हास्य वस्तुतः एक ऐसा चतुर किसान है, जो हमारे जीवन-पथ के समस्त झाड़-झंखाड़ों और काँटों को उखाड़ फेंकता है और कदम-कदम पर मैत्री, प्रेम और औदार्य के सुरभित पेड़ लगा देता है, जिनसे हमारी सारी जीवन-यात्रा एक पर्वोत्सव बन जाती है।

—इमर्सन

सम्मान प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण उपाय

[श्री अगरचन्द नाहटा]

प्रत्येक मानव चाहता है कि उसे यश और सम्मान मिले। पर जिन कार्यों से सम्मान मिलता है उन्हें करने के लिए वह तैयार नहीं होता। यह तो निश्चित ही है कि कोई भी बात केवल चाहने से नहीं मिल पाती, चाहने वालों को उसके लिए योग्यता भी प्राप्त करनी पड़ती है, अन्यथा इच्छित वस्तु प्राप्त भी हो गई तो भी वह अधिक समय टिक नहीं पाएगी। जिस प्रकार व्यक्ति चाहता है कि मैं राजा या मन्त्री बन जाऊं, पर यदि राज्य-संचालन की योग्यता उसने प्राप्त नहीं की है और संयोगवश यदि वह राजा या मन्त्री बन भी गया तो उसके लिए उल्टी आफत हो जाएगी। राज्य-संचालन ठीक से न कर पाने पर लोग तो उसकी निन्दा करेंगे ही, पर वह स्वयं भी तंग आ जाएगा। इसलिए हम जो भी चीज चाहें उसके योग्य अपने को बनाएं, यही इच्छित वस्तु प्राप्त करने का सुगम उपाय है।

जो व्यक्ति सम्मान प्राप्त करना चाहता है, उसे सबसे पहले यह देखना चाहिये कि जिन व्यक्तियों को सम्मान प्राप्त हुआ है उनमें कौन-सी ऐसी विशेषताएं हैं जिनसे उन्हें सम्मान मिला या मिल रहा है। उन विशेषताओं में से कोई भी विशेषता जहां तक अपने में नहीं आयेगी हमें सम्मान प्राप्त होगा कैसे? बाहरी टिप-टाप या दिखावा थोड़े समय के लिए लोगों को चाहे भ्रम में डाल दे, पर आखिर उसकी पोल खुल जाने वाली है।

हां, तो तत्त्व की बात यह है कि व्यक्ति को योग्यता या गुणों का विकास करने में ही प्रयत्नशील होना चाहिए, आप कोई अच्छा काम करेंगे तो जनता के प्रशंसा-भाजन बनेंगे ही। एक बात और सोच लेने की है कि वैसे तो सभी व्यक्तियों में कुछ-न-कुछ गुण और कुछ-न-कुछ अवगुण होते ही हैं इसलिए साधारण मात्रा में गुण होंगे तो उससे सम्मान प्राप्त होने योग्य विशेषता प्राप्त नहीं हो सकेगी। यश एवं सम्मान प्राप्ति के लिए किसी भी गुण का तो अच्छे रूप में विकास होना आवश्यक है ही। दूसरों की अपेक्षा जहां तक गुणों का स्तर ऊंचा नहीं होगा, वहां तक तो सर्व-साधारण के समान ही आपकी स्थिति रहेगी। उस स्थिति में आप सम्मान प्राप्त करना चाहें तो वह सम्भव नहीं होगा। इसलिए विशेषताएं चाहे थोड़ी भी हों, पर होनी ऐसी चाहिएं जो दूसरों की अपेक्षा काफी उच्च-स्तर की हों। जैसे लाखों विद्यार्थी विद्यालयों में पढ़ते हैं उनमें से जो सबसे अधिक नम्बर प्राप्त करते हैं उन्हीं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होता है। एक ही कक्षा के विद्यार्थियों में भी जो तीसरी और दूसरी श्रेणी के होते हैं उनको वह महत्त्व प्राप्त नहीं होता जो कि प्रथम श्रेणी वालों को प्राप्त होता है। साधारण नाचना, गाना तो बहुत से व्यक्ति जानते हैं पर उनमें से जिसने विशेष योग्यता प्राप्त की है, जिसका कंठ सुरीला है, ताल और लय के अनुसार जो गाता व नाचता है, उसी की सब लोग पूछ करेंगे। जब कभी गाने व नाचने की महफिल होगी तो उसी व्यक्ति को लोग प्रथम स्थान देंगे, उसे अधिक सम्मान मिलेगा और धन भी। उपरोक्त सारी बातें का निचोड़ यह है कि यदि कोई एक भी गुण विशेष मात्रा में विकसित किया जाएगा तभी उसके द्वारा सम्मान प्राप्त हो सकेगा। "गुणाः पूजास्थान गुणिषु, न लिंगं न च वयः॥ अर्थात् पूजा गुणों की होती है। एक ही व्यक्ति जहां तक किसी विशेषता से रहित होता है, उसे कोई नहीं पूछता, पर थोड़े अभ्यास और परिश्रम से यदि उसने कोई विशेषता प्राप्त कर ली तो अपने-आप वह लोगों की नजरों में चढ़ जाएगा और लोग उसका आदर करने लगेंगे।

जैसे गुणों की विशेषता से व्यक्ति आदर पाता है वैसे ही यदि उसमें कोई दोष अधिक मात्रा में घर कर गया तो उसके अच्छे गुण भी उस उत्कट दोष के नीचे दब जायेंगे। दूसरों की नजर में उसका वह एक भी दोष अखरने वाला हो जाएगा और लोग उसकी निन्दा करने लग जायेंगे। यद्यपि उसमें कई अच्छी बातें भी

हैं, पर दूसरों का ध्यान उनकी ओर नहीं जायगा। इसी तरह यदि कोई एक विशेष गुण किसी व्यक्ति में है और उसमें कुछ दोष भी हैं तो उन साधारण दोषों को लोग उतना महत्त्व नहीं देंगे और उस विशेष गुण के कारण उसकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी। इसलिए गुणों का अधिकाधिक विकास हो यह तो आवश्यक है ही, पर साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कोई ऐसा दोष विकसित न हो जाए जो गुणों को ढक डाले।

तीसरी बात सोचने की यह है कि जिन लोगों को सम्मान प्राप्त है, उन लोगों में कौन-कौन-सी विशेषताएं हैं। और फिर अपनी प्रकृति, स्थिति और शक्ति को ध्यान में रखते हुए अनेक विशेषताओं में कौन-सी विशेषता अपने में सहज या साधारण प्रयत्न से प्रकट की जा सकती है? जिस प्रकार एक व्यक्ति को उसके पास धन बहुत है इसलिए सम्मान प्राप्त होता है, दूसरे में विद्या, तीसरे में कला, चौथे में बुद्धि, पाँचवें में सेवा-भाव, भक्ति, चरित्र की निर्मलता इस तरह अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग विशेषताएं हैं और उन एक-एक विशेषताओं के कारण उन्हें सम्मान प्राप्त है। तो हमें सोचना यह होगा कि हमारी प्रकृति, योग्यता और परिस्थिति के अनुकूल कौन-सी विशेषता हमें जल्दी व अच्छे रूप में प्राप्त हो सकेगी। जिस व्यक्ति की कला की ओर रुचि अधिक है वह चित्र-कला, मूर्तिकला, संगीतकला आदि के क्षेत्र में समय एवं शक्ति लगायेगा तो उच्चकोटि का कलाकार बन सकेगा। और उसी कला के कारण उसे इच्छित सम्मान प्राप्त हो सकेगा। मैंने यहां तक देखा है कि किसी साधारण बात में भी यदि कोई व्यक्ति कमाल हासिल कर सका है तो उसे उस मामूली बात से भी बहुत बड़ा सम्मान और धन प्राप्त हो जाता है।

सम्मान प्राप्त करने का एक और भी सुगम उपाय है कि हम भी दूसरों का सम्मान करें। साधारणतया सभी लोग अपना सम्मान चाहते हैं, पर दूसरों का सम्मान स्वयं नहीं करते। बताइए आप अपनी ऐंठ में रहेंगे तो दूसरे भी ऐंठे रहेंगे और आपको घमंडी समझेंगे और उस दोष को महत्त्व देंगे फिर वे आपका सम्मान क्यों करेंगे। लोक-व्यवहार में तो यह बात प्रसिद्ध है कि "इस हाथ दे और इस हाथ ले।" हम किसी को देंगे नहीं तो दूसरे हमें क्यों देने लगेंगे। हांति-पाति का भी बराबर का नाता होता है। "राख पत रखाय पत", मैं आपके साथ अच्छा व्यवहार रखूँगा तो आप भी मेरे साथ अच्छा बर्ताव करेंगे। और बुरा बर्ताव करने पर दूसरे भी वैसा ही करेंगे। एक बच्चे और पशु को भी आप आदर से बुलाइये, उसके प्रति प्रेम प्रकट करिये तो वह आपका सारा मनचाहा काम कर देगा और उसे आप दुत्कारेंगे, फटकारेंगे तो वह आपके पास भी नहीं आयेगा। इसलिए यदि हम दूसरों से सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें भी दूसरों का सम्मान करने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। किसी भी गुणी व्यक्ति का सम्मान तो आवश्यक कर्त्तव्य है ही, पर जहां तक सम्भव हो अवगुणी का भी अपमान नहीं करना चाहिए। सम्भव है वह प्रतिहिंसा से आपका विरोधी बन कर आपके सम्मान में बाधक हो जाए, आपकी प्रतिष्ठा में ठेस पहुंचा दे।

आध्यात्मिक दृष्टि से तो यश या सम्मान पाने की इच्छा करनी ही नहीं चाहिए। "प्रतिष्ठा सूकरी विष्ठा।" पर सभी व्यक्ति ऐसा उच्च मनोभाव रख नहीं पाते उनके लिए अनुभवसिद्ध सम्मान-प्राप्ति का उपाय यहां बतलाया गया है। ●

(पृष्ठ ३२ का शेष)

उनका आदर्श, भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की प्रधान समस्याओं को अपनी विस्तृत दृष्टि में आलिंगन करते हुए ऐसी सभ्यता के आविर्भाव के लिए तीव्र उत्कंठा में पुकार उठा, जिसमें विविध प्रकार की संस्कृति समरस होगी और फिर भी पूरी तरह से विकास तथा उन्नति के लिए पर्याप्त सीमा रहेगी। वास्तव में वे चाहते थे कि पूर्व के वेदान्त और पश्चिम के विज्ञान का अभूतपूर्व संमिलन हो ताकि नव सभ्यता सदैव के लिए संघर्ष और युद्ध का अन्त करे और शान्ति, सहानुभूति, उदारता तथा सहृदय सहयोगिता के युग की घोषणा करे। ●

भगवान् सूर्य का आत्म-परिचय

★

रंग-भरा संसार (१०)

[श्री कुलदीप चड्ढा]

…तो बोलो, कुछ समझे इस विडम्बना को !

जब चन्द्रमा मेरे और धरती के बीच आ पहुँचता है, तो मेरा शरीर तुम्हारी आंखों से ओझल हो जाता है। लेकिन मेरा घनिष्ठ परिचय पाने के लिए, तुम्हारे वैज्ञानिक, मेरे लुप्त होने के इन्हीं क्षणों की, बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा करते रहते हैं ! लेकिन, जब मैं ही दिखाई नहीं देता, तो मेरा परिचय कैसा ?

पर वास्तविकता यह है, वत्स ! कि उस समय वे मेरे ऐसे भाग देख पाते हैं, जो आम तौर पर उन्हें दिखाई नहीं देते। इस प्रकार, ग्रहण के समय मिलने वाली मेरी जानकारी, मेरे मुख्य शरीर को देख कर मिलने वाली जानकारी की पूरक है। मेरा ग्रहण इसी उपयोगी जानकारी को हासिल करने का अनुपम सुयोग है।

मेरे ग्रहणों का यह महत्व तुम्हारे वैज्ञानिकों पर लगभग १८३६ ई० के बाद से प्रकट हुआ। इससे पहले भी उन्होंने सैकड़ों ग्रहण देखे होंगे और उनमें शायद कभी-कभी मेरी वह्नियां और मेरा किरीट भी देखा हो। लेकिन आम तौर पर वे उन्हें केवल प्रकृति के सुन्दर दृश्य मात्र समझते रहे। यही नहीं, प्रायः यही समझा जाता था कि वे मेरे नहीं, चन्द्रमा के शरीर के भाग हैं। कुछ दूसरे लोगों का अनुमान था कि वे तुम्हारी धरती के आकाश के ही कोई करिश्मे हैं, जो ग्रहण के समय साफ दिखाई देते हैं। लेकिन मेरे ग्रहण के फोटो लेने की परम्परा के बाद यह भ्रम दूर हो गया। ऐसा सर्वप्रथम प्रयास शायद १८५१ में किया गया। सन् १८६० के पूर्ण ग्रहण के समय तो बड़े साफ चित्र लिए जा सके, जिन में वह्नियां भी दिखाई देती थीं। इसी ग्रहण के चित्रों का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करके डी ला रुई तथा सेक्ची नामक वैज्ञानिकों ने निश्चित धारणा बनाई कि वह्नियां मेरा ही अंश है।

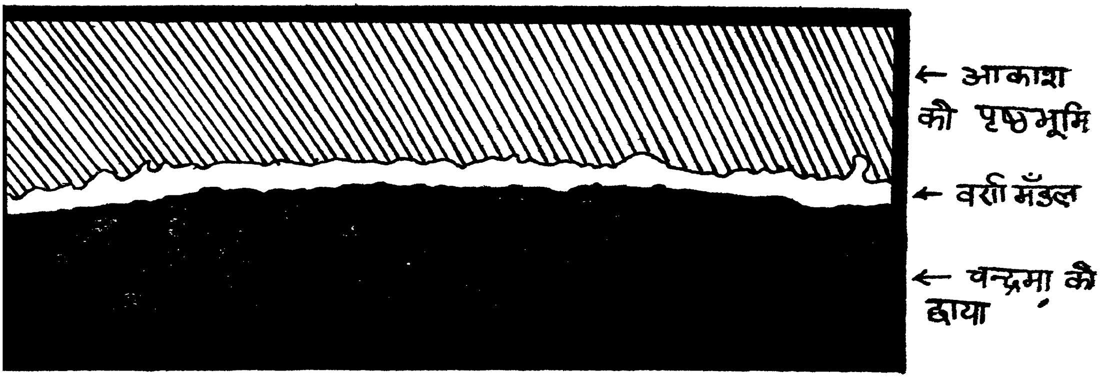
और ऐसी धारणा बनने के बाद ही मेरा अधूरा चित्र कुछ-कुछ पूरा होने लगा। इस चित्र का थोड़ा-थोड़ा आभास मैं तुम्हें पहले भी देता रहा हूँ। पर आओ, समूचे चित्र पर एक बार विहंगम-दृष्टि डालें।

मेरे पिंड के बीचों-बीच एक विशाल भट्टी है, जो मेरे भीतर के पदार्थ को गर्म करके, उस में विकट उथल-पुथल पैदा करती रहती है। यह हरकतें इतनी तेज और जोरदार हैं कि इनका प्रभाव मेरे धरातल तक पर पड़ता है। मेरे धरातल के दानेदार रूप का भी कारण यही उथल-पुथल है। धरातल की दानेदार कणिकाएं ही मेरा प्रत्यक्ष रूप हैं—वे ही मेरे तीव्र प्रकाश को, लट्टुओं के रूप में, चारों ओर बिखेरती रहती हैं। मेरे प्रकाश अथवा मेरी प्रभा को चारों ओर फैलाने के कारण ही तुम्हारे वैज्ञानिकों ने इस धरातल को प्रभामण्डल (फोटोस्फियर) का नाम दिया।

मेरे कलंक भी इसी प्रभा-मंडल में ही पैदा होते हैं।

इस प्रभा-मंडल के चारों ओर एक और गोलाकार क्षेत्र फैला हुआ है, जिसमें उज्ज्वालाएं और वह्नियां आदि उछलती-कूदती रहती हैं, मानो वे होली की रंगीन बौछारें हों, रंगीनी के इस संसार को वर्णमण्डल (क्रोमोस्फियर) कहते हैं और इसका स्पष्ट आभास, तुम्हारे वैज्ञानिकों को, पहले-पहल १८७१ में मिला।

पदार्थ की यह विरलता और तापमान, मेरे वर्ण-मंडल के बीचों-बीच और भी बढ़ते रहते हैं। मेरे वर्णमंडल की गहराई, तुम्हारे वैज्ञानिकों की पैमायश के अनुसार, कोई १०००० मील है। लेकिन इस फैलाव के आधे अन्तर पर ही पदार्थ की मात्रा १००० गुना और घट जाती है।



पूरे सूर्य-ग्रहण के अवसर पर, वर्णमंडल (क्रोमोस्फ़ियर), चन्द्रमा के काले बिम्ब और आकाश की पृष्ठभूमि के बीच पतले से कंगन के रूप में दिखाई देता है। सन् १९३० के पूर्ण सूर्य-ग्रहण के आभास पर आधारित यह रेखाचित्र, वर्णमंडल के इसी रूप के एक अंश को प्रकट करता है (चन्द्रमा के बिम्ब के सिरे पर के कटाव, चाँद के धरातल के पर्वतों गह्वरों आदि के सूचक हैं)।

मेरा किरीट भी वर्णमंडल में से ही उत्पन्न होता है। पर वह इसकी सीमाओं को फांद कर, लाखों मीलों तक फैल जाता है।

मेरे इस वर्णमंडल का महत्त्व कुछ-कुछ तुम्हारी धरती के वायुमंडल के तुल्य है। भेद केवल इतना है कि, मेरा शरीर, धरती की तरह ठोस न होकर, तरल और गैसीय तत्त्वों से मिल कर बना है। इस-लिए, मेरे धरातल अथवा प्रभामंडल और वातावरण अथवा वर्णमंडल को अलग करने वाली कोई इतनी निश्चित लक्ष्मण-रेखा नहीं। तो भी एक स्थूल सीमा पर, इन दो क्षेत्रों के स्वभाव में अन्तर साफ-साफ प्रकट हो जाता है। एक तो इस सीमा पर पदार्थ की घनता ५-६ हजार गुणा कम हो जाती है। इसके विपरीत तापमान (टैंप्रेचर) कोई ६००० अंश शतमान (सैंटीग्रेड) से बढ़ कर १५-२० हजार शतमान हो जाता है।

यह क्रम, किरीट में पहुंच कर भी दम नहीं लेता, बल्कि पूरे उत्साह से बढ़ता ही चला जाता है, यहां तक कि वहां के तापमान का एक अनुमान १० लाख अंश का है।

और तुम्हारे वैज्ञानिकों का मत है कि, किरीट का फैलाव, कभी-कभी इतना व्यापक होता है कि, ९ करोड़ मील की दूरी पर अवस्थित तुम्हारी धरती को भी अपनी लपेट में ले लेता है।

शायद तुम सोचने लगो कि उस समय तो धरती का कुछ भाग अवश्य झुलस जाता होगा। पर ऐसा कुछ होता नहीं, वत्स, किरीट का तापमान भले ही अधिक हो, पर उसमें पदार्थ की मात्रा इतनी कम है कि औसतन वह तुम्हारे वायुमंडल के पदार्थ का भी $\frac{१}{१,००,००,००,००,०००}$ वाँ भाग होगी। किसी चीज को गरम करने के लिए तापमान के साथ-साथ

पदार्थ की मात्रा भी जरूरी है। अतएव लाखों अंश तापमान के बावजूद किरीट का फैलाव, तुम्हारी धरती को कोई हानि नहीं पहुंचा सकता, क्योंकि इसमें की पदार्थ की मात्रा तो अरबों-खरबों गुणा कम है।

ऐसे विरल क्षेत्रों में तापमान का महत्त्व केवल इतना ही होता है कि उनमें घूम रहे अणु-परमाणुओं की गति बहुत अधिक होती है। गर्मी अथवा ताप, शक्ति का ही एक रूप है। शक्ति पाने पर पदार्थ के कणों की गति-शक्ति (काइनैटिक एनर्जी) बढ़ जाती है। मेरे वर्णमंडल के हजारों अंश के तापमान में, इन कणों की गति का अनुमान है, घण्टे-भर में १८-२० हजार मील और किरीट में तो यह बढ़ कर ४-५ लाख मील हो जाती है।※

जब मैंने पहले-पहल अपने अन्तर की भट्टी का जिक्र किया था तो वहां के विशाल तापमान का भी उल्लेख किया था। ज्यों-ज्यों मेरे शरीर के बाहरी भागों की इस भट्टी से दूरी बढ़ती जाती है, उनका तापमान भी कम होता जाता है, यहां तक कि धरातल पर पहुंच कर यह केवल ६०००° रह जाता है। यहां तक की तो बात तुम्हारे वैज्ञानिकों की समझ में भी आ गयी। पर वे यह न जान सके कि इसके बाद तापमान फिर क्यों बढ़ना शुरू हो जाता है, और वह भी इतना अधिक कि किरीट तक पहुंचते-पहुंचते यह लाखों अंश हो जाता है।

इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए तुम्हारे वैज्ञानिकों ने मेरे वर्णमंडल का और बारीकी से अध्ययन किया। परिणामस्वरूप उन्होंने जो अनुमान लगाया, वह कुछ इस प्रकार है। मेरे शरीर की कुछ चुम्बकीय क्रियाओं के कारण, कभी-कभी वर्णमंडल के निचले भाग का पदार्थ, फव्वारों—अथवा जैट—के रूप में, तेजी से बाहिर की ओर भागता है। यह दौड़ ठीक वर्णमंडल की सीमा पर समाप्त होती है। गति रुकने का कारण होता है, शक्ति का ऊपरी भाग के पदार्थ को सौंपा जाना—इसी शक्ति से ऊपरी भाग के कणों की गति और तापमान बढ़ जाते हैं।

तीव्र कणों के ये फूत्कार कभी किरीट तक भी जा पहुंचते हैं और उसमें भी तापमान को बढ़ाते हैं।

लगभग इसी प्रकार की क्रिया से, तीव्र कणों के फूत्कार, प्रभामंडल से वर्णमंडल की ओर दौड़ते रहते हैं और उसमें तापमान बढ़ाते हैं।

मेरे वर्णमंडल की खोज में लगे अपने वैज्ञानिकों से कभी तुम बात करके देखो तो अपनी खोज में उनका उत्साह देख कर तुम हैरान हो जाओगे। पर, यदि तुम उनकी जुबानी इस खोज की कहानी सुनो तो जटिल चर्चाओं से शायद तुम्हारा दिमाग भी चकराने लगे। क्योंकि वह बड़ा गूढ़ विषय है।

लेकिन विषय जितना गूढ हो, जिज्ञासुओं की उसमें उतनी ही रुचि बढ़ती है। मेरे वर्णमंडल और किरीट में लगे जिज्ञासुओं का भी यही हाल है। वे इनकी बावत अधिकाधिक जानने को इतने आतुर हैं कि सदा मेरे ग्रहण के सुयोग पर ही निर्भर करना नहीं चाहते। अतएव, कुछ वर्षों से वे ऐसे साधन की खोज में थे, जिसकी सहायता से वे सूर्य-ग्रहण के घटे बिना ही अपनी खोज कर सकते। अन्त में फ्रांस के एक ज्योतिर्विद् बर्नार्ड ल्याट ने एक सफल यन्त्र का आविष्कार किया और १९३० ई० में, पैरानीज पर्वत-शृंखला की एक वेधशाला में, उसके उपयोग द्वारा, ऐसे समय पर किरीट का अध्ययन किया जब कि ग्रहण नहीं था।

१९३० के बाद भी ल्याट अपने यन्त्र में अधिकाधिक सुधार करते रहे। परिणामवश, १९५२ में घटी उनकी मृत्यु के समय तक, किरीटदर्शी (कोरोनोग्राफ) नामक यह यन्त्र फ्रांस, स्विट्जलैंड, बवेरिया, आस्ट्रिया, कोलोरेडो, मैक्सिको और जापान आदि अनेक देशों में स्थापित हो चुका था। —क्रमशः

※अणु-परमाणुओं की इस तेज रफ्तार के कारण मेरे किरीट में एक विचित्र स्थिति पैदा हो जाती है। शायद तुम्हें ज्ञात हो-या याद हो—कि प्रत्येक परमाणु (एटम) के केन्द्र में नाभिक (न्यूक्लियस) नामक एक भारी कण होता है, जो प्रोटोन और न्यूट्रॉन नामक कणों की निश्चित संख्याओं के मेल से बनता है। इस नाभिक के गिर्द, निश्चित संख्या में, कुछ ऋणाणु (इलैक्ट्रॉन) नामक कण चक्कर लगाते रहते हैं। जब तापमान के बढ़ने पर इन सभी कणों की गति अति तीव्र हो जाती है, तो ऋणाणु नाभिक को छोड़ भागते हैं और नाभिक के प्रोटोनन्यूट्रॉन कण बिखर कर स्वतन्त्र रूप से विचरने लगते हैं।

❀ बाल-भारती ❀

विद्या

[श्री रमाकान्त दीक्षित]

मानव को जीवन में, विद्या मान दिलाती।

रहता है जो अनपढ़,
उसको पशु कहते हैं।
पढ़े-लिखे मानव तो,
सुख से ही रहते हैं।
ऊसर में भी विद्या, सुन्दर फूल खिलाती।
मानव को जीवन में, विद्या मान दिलाती॥

कभी न घटता है जो,
विद्या ऐसा धन है।
विद्वानों का होता,
आलोकित तन-मन है।
कदम-कदम पर विद्या, अमृत-घूंट पिलाती।
मानव को जीवन में, विद्या मान दिलाती॥

जग को सदा बचाया,
विद्या ने पापों से।
है हर बार निकाला,
फँसते सन्तापों से।
यह वरदानी विद्या, मरते प्राण जिलाती।
मानव को जीवन में, विद्या मान दिलाती॥

एक बात कहते सब,
पढ़ना ही जीवन है।
पढ़ने से ही कटता,
जीवन का बन्धन है।
विद्या भेद भगा कर, सब को गले मिलाती।
मानव को जीवन में, विद्या मान दिलाती॥

❀ ❀ ❀

गौरव-गाथा

[डॉ पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश']

गाते हैं हम गौरव-गाथा चूड़ावत सरदार की
याद रहेगी सबको हाड़ा रानी के उस प्यार की।

भारत में विख्यात युगों से वीर-भूमि मेवाड़ है
नद-निर्झर हैं गान-भरे तो जोशों-भरा पहाड़ है
स्वाभिमान की धूप सुनहली सूरज देता है वहां
त्याग-भरी चांदनी चांद दे, दुख हर लेता है वहां।
स्वावलम्ब, स्वातंत्र्य-भावना पर जीते सब लोग हैं
बहती रही वहां है गंगा वीर-रक्त की धार की
गाते हैं··· ··· ···

वीरों के ही साथ वहां पर हुई वीर सन्नारियां
जिनके सत से खिलीं मनोहर जौहर की फुलवारियां
उनका लोहा मान, शत्रुओं ने डाले हथियार हैं
उनके नाम मात्र से मुरझे मन होते गुलजार हैं।
पातिव्रत की रक्षा के हित कूद पड़ीं मैदान में
बिला गईं बिजली तक तेजी लख उनकी तलवार की
गाते हैं··· ··· ···

ऐसी एक वीर नारी थी हाड़ा रानी नाम की
बचपन से ही वह शोभा थी पूज्य पिता के धाम की
बड़ी हुई तो किया चमत्कृत सबको उसके काम ने
शक्ति और गुण उसे दिये थे जगन्नियन्ता राम ने।
बंधने चली प्रणय-बंधन में जब कर्त्तव्य-परायणा
दुल्हन बनकर तब आई वह चूड़ावत सरदार की
गाते हैं··· ··· ···

थी सुहाग की रात न छूटा था मेंहदी का रंग भी
हुई प्यार की बात न प्रकटा मनुहारों का ढंग भी
तभी बुला भेजा राणा ने लड़ने को सरदार को
बना सकें वे विजय कि जिससे अपनी होती हार को
चूड़ावत को लगा कि जैसे निकल गई हो जान-सी
शब्दों ने की चोट अचानक भारी वज्र-प्रहार की
गाते हैं··· ··· ···

रूपवती रानी ने देखा जब प्रियतम का हाल ये
समझ गईं कि संभाल न पायेंगे अब असि या ढाल ये
किन्तु न कुछ भी बोली, डोली नहीं तनिक सुविचार से
ग्लानि-भरा था हृदय दबी थी वह लज्जा के भार से
विदा हुए, सरदार किन्तु मन था रानी के पास ही
हाथ पैर थे शिथिल भला सुध रहती किसको वार की
गाते हैं··· ··· ···

अविश्वास के साथ संदेशा भेजा यों अनुराग का—
प्राणप्रिये हो अंतिम पल तक, रक्षण अचल सुहाग का
विजयी हुआ अगर तो दूंगा जयश्री तुमको भेंट मैं
मिली वीर-गति स्वर्ग सिधारूंगा तो प्राण समेट मैं'

कई बार जब यही संदेशा आया तो बन चंडिका
रानी बोली 'दूत पधारो ले थाती यह प्यार की'
गाते हैं··· ··· ···

और सुकोमल हाथों में लेकर तीखी तलवार को
काट शीश अपना रानी ने भेज दिया सरदार को
देख प्रिया का कटा शीश चूड़ावत समझे भेद को
माला बना शीश की मन से दूर किया सब खेद को
फिर प्रलयंकर बनकर मार भगाया शत्रु-समूह को
विजय मिली, विस्मय से सबने उनकी जय-जय-कार की
गाते हैं··· ··· ···

ऐसे वीरों का गुण गाकर धन्य हुई है भारती
जला काव्य का दीप उतारी कवि ने उनकी आरती
उनका यश है अमर न उसको खा सकता है काल भी
दीप्ति देखकर उनकी फीके पड़ते हीरे-लाल भी
वे सजीव आदर्श बने देते हैं हमको प्रेरणा
ले उनका आशीष प्रतिज्ञा करो देश-उद्धार की
गाते हैं··· ··· ···

❀ ❀ ❀

नानी ने कही बिटिया ने सुनी

[श्री कन्हैयालाल पराशर]

रेखा—नानी जी, तुम एक कहानी मुझ को आज सुनाओ।
नानी—बिटिया रानी, कौन कहानी चुन कर नाम बताओ।।
राणा की गुरु गोविन्द की या वीर शिवा जी महान् की।
इन सब ने आजादी के हित हँसते हँसते जान दी।।
रेखा—ये तो सभी पुरुष थे नानी,
नानी—अच्छा समझी तेरी वाणी।
तो ले सुन झांसी की रानी,
पक्की अपनी आन की।।
रेखा—हां बस यही कहानी नानी जी, अब कहती जाओ।
नानी—बिटिया रानी, तुम भी हामी संग में भरती जाओ।।
मात, पिता की इकलोती वह नाम था मन्नुबाई।
बचपन में ही अस्त्र-शस्त्र की विद्या उसने पाई।।
विवाह हुआ झांसी-नरेश की रानी बन कर आई।
बदला नाम और फिर मन्नु बन गई लक्ष्मीबाई।।
एक पुत्र को जन्म दिया खुशियां महलों में छाईं।
पर यह सुख की घड़ियां झांसी में न अधिक टिक पाईं।।

पुत्र मरा रानी की गोदी हो गई बिटिया सूनी।
राजा भी चल बसे विपत्ति बढ़ आई दिन दूनी ॥
रेखा—आंखों में पानी भर आया नानी अब न रुलाओ।
नानी—अभी कहानी रही अधूरी पूरी सुनती जाओ ॥

× × × × × ×

नानी—गोद लिया एक पुत्र और गद्दी पर उसे बिठाया।
रानी ने अपने रक्षण में शासन भार उठाया ॥
पर अंग्रेजों को न बात यह फूटी आंखों भायी।
निर्बल राज्य समझ झांसी पर कर दी तुरन्त चढ़ाई ॥
रानी कब झुकने वाली थी लड़ी युद्ध में शान से।
तोपों का भी किया सामना बरछी तीर कमान से ॥
गोरी पल्टन बहुत अधिक थी रानी की सेना थी कम।
फिर भी लड़ती रही शेरनी भरती राजपूतों में दम ॥
ले तलवार दुधारी कर में जिधर बढ़ाती वह घोड़ा।
उधर बहाती नदी रक्त की अंग्रेजों ने रण छोड़ा ॥
पर दिल्ली से फिर आ पहुंची अंग्रेजों की फौज अपार।
घोड़ा मरा मरे सब साथी घावों की भारी थी मार ॥
फिर भी लड़ती रही कई दिन बढ़ी कालपी में आई।
तोड़ दिया दम दुःख असह्य था अपनी हार किसे भायी ॥
मलते रहे हाथ सब गोरे हुई नहीं मन की चाही।
झांसी मिली, किन्तु जीवित वह लक्ष्मी हाथ नहीं आई ॥
नानी—कैसी लगी कहानी बिटिया, अब तुम हमें बताओ।
रेखा—मैं भी ऐसी वीर बनूं नानी, कुछ मुझे सिखाओ ॥

❋ ❋ ❋

हमारी उत्तरी सीमा

[श्री शम्मी शर्मा]

हमारे देश भारत के उत्तर की ओर संसार में सबसे ऊँचा पर्वत हिमालय खड़ा है। हिमालय पर्वत पन्द्रह सौ मील लम्बा है। इसकी कई-एक शाखाएं हैं। यह पर्वत कई श्रेणियों में है। इसकी प्रमुख शाखाओं को हम तीन भागों में बांटते हैं। बाहर का भाग जिसमें शिवालक पहाड़ियां जम्मू, कांगड़ा, शिमला, देहरादून, हरिद्वार, अलमोड़ा इत्यादि प्रदेशों के साथ फैली हैं। मध्य भाग में पर्वत ऊँचे हैं और उनके बीच घाटियां हैं। इनमें अधिकतर देवदार के वृक्ष मिलते हैं। तीसरा भाग हिमालय का अन्दर का है। इसे 'अन्तर्हिमालय' नाम से भी पुकारते हैं। हिमालय के इस भाग में अत्यधिक शीत होता है। अधिक शुष्क और ठण्डी हवा चलती है। सर्वदा हिम से पर्वत-शिखर ढके रहते हैं। वृक्ष बिल्कुल नहीं होते और वनस्पतियों का अभाव है। इस अन्तर्हिमालय भाग के आगे हिमालय पर्वत समाप्त हो जाता है और पिछली ओर उतराव प्रारम्भ हो जाते हैं। हिमालय के उच्च शिखरों की पिछली ओर जो जल तिब्बत की ओर बहता है वहां हिमालय की चोटियों तक हमारी सीमा है।

भारत और तिब्बत, जिस पर अब चीन ने अधिकार कर लिया है, भारत-चीन सीमा रेखा है। भारत की यही उत्तरी सीमा है। यह सीमा दो हज़ार चार सौ मील से भी अधिक लम्बी है। यह भारत के कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरप्रदेश और उत्तर-पूर्वी सीमान्त एजेंसी (नेफा) प्रदेशों को चीन के तिब्बत और सिक्यांग प्रदेशों को अलग करती है। इन दोनों देशों के ऊपर लिखे प्रदेशों के बीच में ही संसार-भर का ऊँचा पर्वत हमारा हिमालय खड़ा है। इस सीमा की रेखा वह शिखर हैं जहाँ से पानी का बहाव अपने-अपने देश की ओर जाता है। जिन शिखरों से पर्वत के उतराव जिस-जिस देश के मैदानों की ओर समाप्त होते हैं। पश्चिमी भाग में लद्दाख प्रदेश है जिसके बीच सिन्धु नदी भारत की ओर आती है। हमारी सीमा का अन्त वह है जहाँ से हमारी सिन्धु नदी की सहायक नदियाँ जल ला रही हैं और दूसरी ओर चीन की नदियाँ यारखण्ड और युरुंग को जल ले जा रही हैं। इस उत्तरी-सीमा के मध्य भाग में तिब्बत में प्रवाहित सतलुज और गंगा के बीच के शिखर हैं। पूर्वी भाग में हिमालय के वे शिखर हैं जो ब्रह्मपुत्र की उत्तरी सहायक नदियाँ और त्सांगपो की दक्षिणी सहायक नदियों के बीच खड़े है।

लद्दाख से ऊपर चीन का सिक्यांग प्रदेश लगता है। तिब्बत पर चीन के अधिकार करने से पहले हमारी सीमा चीन और तिब्बत दोनों प्रदेशों के साथ लगती रही है जो भारतीय सीमा बहुत पुरानी परम्परागत चली आ रही है। यह कम-से-कम एक हज़ार साल पुरानी है। लद्दाख ज़िला की तीन तहसीलें लेह, कारगिल और स्कार्दू हैं। स्कार्दू कश्मीर युद्ध में पाकिस्तान के अधीन हुआ है। लद्दाख में प्रायः दो सौ उनासठ ग्राम और लगभग अठासी हज़ार की जनसंख्या है। इस प्रदेश में दिन के समय भीषण गरमी और रात के समय कड़ाके की ठण्ड पड़ती है। सारे लद्दाख के लद्दाखी प्रायः बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। उनका पहिरावा पाँव तक लम्बा चोगा, ऊन का कमरबन्द, बूट और टोप हैं। उनके बूट चमड़े और कपड़े के घुटनों तक लम्बे होते हैं। कपड़ों के ऊपर भेड़ की खाल जिसकी ऊन अन्दर की ओर होती है, पहने रखते हैं।

मध्य भाग की हमारी सीमाओं का उल्लेख स्कन्दपुराण में भी मिलता है। कुमायूँ के कत्यूरी महाराजाओं के ताम्बे के शिलालेख से भी पता चलता है कि गढ़वाल का हिन्दू राज्य गंगा और सतलुज के शिखर स्रोतों तक था। पूर्वी भाग में नेफा की उत्तर-पूर्वी सीमा हिमालय पर्वत के साथ-साथ फैली है। यह सारा सीमान्त हमारा है। चीन ने लद्दाख के बहुत सारे प्रदेश पर ज़बरदस्ती अधिकार कर रखा है। चोरी-छिपे उसने बीच में से सड़क भी निकाल ली है। इसको छुड़ाने के लिए अब हम सबको तैयार होना है।

❀ ❀ ❀

तीन मोती

[श्री रामअवतार "अभिलाषी"]

मानवता की आभा लेकर,
अखिल सृष्टि पर छा जाऊँ।
जागृति का संदेश सुनाकर,
नवल विहान बना पाऊँ॥
ज्ञानमय ज्योति को ले कर मैं,
सकल विश्व में फिर जाऊँ।
तम अज्ञान का दूर भगा कर,
ज्ञान पुंज को फैलाऊँ॥
देशप्रेमी अरु साहसी बन,
वीरत्व मधुपान कराकर।
जन-जन के कोमल हृदय में,
वीर-भावना उपजाऊँ॥

भारत की कहानी (६)

[श्री चन्द्रपालसिंह 'मयंक']

भारत की नदियां—

जिस देश में 'गंगा' बहती है,
वह अपना 'भारत' प्यारा है।
कैसी उज्ज्वल ! कितनी पावन !
गंगा की निर्मल धारा है ।

यह पर्वतराज हिमालय से
जीवन पाकर नीचे आती;
उत्तर-प्रदेश से बह, बिहार—
बंगाल प्रान्त में है जाती ।

कलकत्ता में आ जाने पर
गगा 'हुगली' कहलाती है ।
फिर यह बंगाल प्रान्त में ही
सागर से जा मिल जाती है ।

❀ ❀ ❀

'यमुना' है गंगा की भगिनी,
उत्तर-प्रदेश में बहती है।
जो कृष्ण-कन्हैया की गाथा
कल-कल स्वर में नित कहती है।

इसमें ही था वह कालीदह
कालिय को जहाँ पछाड़ा था।
अन्यायी का मद-मर्दन कर
झण्डा कान्हा ने गाड़ा था ।

है तीरथराज 'प्रयाग'—जहाँ
यमुना गंगा से मिलती है ।
संगम में इनके मिलने से
क्या अद्भुत शोभा खिलती है।

❀ ❀ ❀

'घाघरा' नदी उत्तर-प्रदेश में,
'सोन' बिहार प्रदेश बीच—
गंगा में दोनों मिल जातीं
हैं थोड़ा-बहुत प्रदेश सींच।

❀ ❀ ❀

है 'ब्रह्मपुत्र' भी बड़ी नदी,
जो है काफी लम्बी-चौड़ी;
यह चली हिमालय से 'आसाम'
और 'बंगाल'—बीच दौड़ी ।

'नेफा-प्रदेश' में ब्रह्मपुत्र—
सरिता 'लोहित' कहलाती है।
बंगाल-प्रान्त में आकर यह
भी गंगा में मिल जाती है।

❀ ❀ ❀

भारत की कटि में किंकिणि-सी
हैं दो सरिताएँ शोभित;
पूरब से बहतीं पश्चिम को
सागर में मिलतीं प्रमुदित ।

'धुआँधार', 'नर्मदा' बनाती,
जो प्रसिद्ध भारत-भर में ।
जिसकी शोभा देख बुद्धि
मानव की आती चक्कर में ।

छोटी भगिनी के समान
'ताप्ती' निकट ही बहती है;
मानो साथ नर्मदा के सुख-
दुःख समान ही सहती है।

❀ ❀ ❀

'महानदी' पश्चिम से बह कर
पूर्व दिशा को आती है;
मध्य-भाग के जल को लाकर
सागर में मिल जाती है ।

दक्षिण के पठार की नदियाँ
तीन महत्त्वपूर्ण अतिशय;
'गोदावरी' और 'कृष्णा'
'कावेरी' नदियों का है त्रय—

जो दक्षिण भारत की धरती
का करता रहता सिंचन ।
उस प्रदेश के निवासियों को
नानाविधि देता जीवन ।

मुख्य-मुख्य नदियां भारत की
मैंने तुमको बतलायीं,
कौन कहाँ से निकलीं और
किधर को बह कर हैं आयीं ।

बच्चो ! तुम सब मानचित्र
अपनी भारत-माँ का लेकर
इन्हें देखना और याद कर
लेना झट, परिचित होकर ।

वन-उपवन

[श्री रवि]

एक विटपों का समूह
ऊबड़-खाबड़ धरती पर
गिरि पर गह्वर पर,
बिखरी हुई घटाओं-सा
बिखरी हुई लटाओं-सा
बिखरे हुए रूप, रंग औ—
उच्छृंखल यौवन-सा,
अपने अन्तर में
विविध भांति के जीव-जन्तुओं
भयानक हिंसकों
खग मृगों को छिपाये
मुँह फैलाये
लगातार, दूर
दूर कोसों तक
फैला हुआ—वन

और दूसरा
माली के संरक्षण में
प्रकृति नटी के
बिखरे हुए सौन्दर्य को
उन्माद को
उल्लास को
राग को
रंग को
नृत्य को
गीत औ' संगीत को
अपने-अपने स्थान पर सजा
मानव को
मन्त्र-मुग्ध करने के लिये—उपवन

कवि—
दोनों का समन्वय
वन की मौलिकता का प्रतीक
उपवन के कौशल
संयोजन
संविधान का
सत्य-स्वरूप,
जो जीवन को, गति-शील बना—
राष्ट्रों, जातियों को जगा—
सत्य, शिव, सुन्दर का—
साकार रूप बना रहा,
पर आज—
आज के कुछ कवि
एक ओर
अपनी वन-सी उच्छृङ्खल
मौलिकता पर गर्वित हैं—
तो
दूसरी ओर कुछ
शब्दाडम्बर की सजी हुई
कियारियों पर—

❀ ❀ ❀

मुझे हँसी आती है जब कोई....

[श्री विनोद बज़ाज़]

★कायर अपनी वीरता की कथा सुनाता है।

★स्वयं झूठ बोलकर दूसरों को उपदेश देता है।

★कवि दूसरों की चोरी की हुई रचना अपनी बतलाता है।

★स्वयं धूम्र-पान करके दूसरों को धूम्र-पान करने से रोकता है।

★छात्र परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर प्रश्न कठिन होने का बहाना करता है।

★स्वयं थैली भर कर दूसरों को साम्यवाद का पाठ सिखाता है।

★चोरी करते हुए पकड़े जाने पर बेकारी का बहाना लगाता है।

★कुछ स्वर-ज्ञान होने पर अपने को संगीतज्ञ कहता है।

पुष्प से

[श्री महावीरप्रसाद "सर्वज्ञ"]

"विकसित हो गई प्रभा भू पर"

तुम कुसुम, हुए पुलकित महान्,
जब हुआ उदित नभ में विहान।
निशि का हो गया तुरन्त अन्त,
अब लहराता उर में बसन्त।
अति हर्षपूर्ण यह है अवसर,
विकसित हो गई प्रभा भू पर॥

तुम सुमन, श्वेत-नीले-पीले,
हैं भ्रमर भ्रमित अति चटकीले।
तुम मोह रहे विकसित होकर,
कितना सुखदायक है अवसर।
रक्षक जन से तुम अभी निडर,
विकसित हो गई प्रभा भू पर॥

पर पुहुप, तुम्हारा रक्षक जो,
आता है सम्मुख भक्षक हो।
करता वियोग वह मित्रों से,
एवं जीवन के सूत्रों से।
तब शान्ति नहीं पाते तिलभर,
जब अर्ध दिवस होता भू पर॥

फिर पुष्प, देव के कंठों,
शोभित हो जाते तुम जाकर।
इतने पर भी तुम सुख पाते,
अब क्या होगा, न हृदय लाते।
है ज्ञान नहीं तुमको तृण-भर,
अब कोमल प्रभा नहीं भू पर॥

अय दलित, सुनो, अब भानु अस्त,
हो चला, मगर तुम अभी मस्त।
घंटों की ध्वनि होने वाली,
नव पुष्पों की आई पाली।
अब देव कंठ से पड़े उतर,
जब कोमल प्रभा नहीं भू पर॥

अय सहनशील, तुम उतर पड़े,
फिर भी साहस पर वीर अड़े।
पर दलित हो गए पग-पग से,
गिर चुके नेत्रों से जग के।
तुम चले बिदा क्या अब लेकर,
प्रतिभा जब रही न भूतल पर॥

प्रियवर, जब तुम जगमग होते,
रूब रुपवान् भी थे सोते।
पर हाथ, पड़े अब किस मग में,
कोई न तुम्हारा अब जग में।
रवि भी रह सका न भूतल पर,
कुछ नहीं अचल पृथ्वी तल पर॥

प्रिय कुसुम, तुम्हारा स्वागत हो,
प्रति जन्म तुम्हें सुख द्विगुणित हो।
दो दिन का जीवन कर समाप्त,
तुम नव जीवन अब करो प्राप्त।
हाँ, तुम भी रहे न भूतल पर,
अब कोमल प्रभा नहीं भू पर॥

❀ ❀ ❀

शिशु—चमत्कार

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि']

जब-जब मैं जीवन से भरता, जीवन भर देता जन-जन में।

तारे खिलते नयी चमक से,
चाँद चमकता नयी दमक से,
रात गमकती नयी गमक से,
नयापन झमकता कण-कण में।
जब-जब मैं जीवन से भरता,
जीवन भर देता जन-जन में।

तार दिलों के हिल-मिल जाते,
मुखड़े मुरझाये खिल जाते,
सीने से सीने मिल जाते,
एकत्व नाचता तन-मन में।
जब-जब मैं जीवन से भरता,
जीवन भर देता जन-जन में।

एकलिपि विस्तार

दीपनाळम् (मलयालम)

[प्रा. वेल्लायणि अर्जुनन]

आनोरु लघुदीप-
नाळमाणेन्नाकिलु
मानन्दं तुळुंपुमेन-
कोच्चुजीवितं धन्यं
लोकसेवनं मम-
लक्ष्य, मेन्नात्माविन्टे-
नाकसौंदर्यं सदा
विश्वत्तिन् रक्षा केन्द्रं
इरुळिल वकुडुङ्ङीडु-
मीविश्व जनतक्केन
चेरुनाळत्ताल नित्यं
वेळिच्चं नल्कुन्नु आन्
क्षणभंगुरमाणेन्नें
जन्मं; मेन्नालुं, सत्व-
गुणमेन्मयाल परि-
पूतमेन्मनं सदा
तन्कार्यं नेडान् मात्रं
यन्निक्कुं मन्यंन मम
संदेशं अविच्चेंकि,
लेनचित्तं कुळुरत्तेने !
मित्रन्डे महत्वङ्ङ-
ळेत्तिक्कुमेनिक्कात्म
मित्रङ्ङळल्लो चरा-
चरंगळ्समस्तवुं
स्नेहत्तिलप्पिरन्नु आन्
स्नेहत्तिल जीविक्कुन्नु,
स्नेहमेन्नात्माविन्डे
चैतन्यं, सर्वस्ववुं ।

दीपक (हिन्दी)

[श्री जी. गोपीनाथन्]

मैं मिट्टी का दीपक, मुझमें
पतली-सी लौ है जलती,
है उमड़ रहा आनन्द भार-सा,
धन्य-धन्य मेरा जीवन,
ले लेकर निज परम ध्येय में
जन की करता हूँ सेवा,
है बनी विश्व की रखवाली की
अचल धुरी मेरी सुषमा
जो टटोलते अन्धेरे में
अखिल विश्व के जन-जन हैं,
मैं देता उनको प्रकाश हूँ ·
अपनी लघुता की लौ से
क्षण-भंगुर बुलबुल-सा हूँ मैं
किन्तु बना शाश्वत हूँ
सत्‌गुण की सुरभि से नित ही
अमर बना जीवन है,
लक्ष्य स्वार्थ ही है जिनका
जो अपने में सीमित हैं,
काश उनको दे पाता अपना
सुखद सन्देशा जीवन का !
मैं जो पहुंचाता गुण गण हूँ
यथा मित्र की किरणों के,
बन जाती हूं आत्म-मित्र-सी
जग के सब जड चेतन से,
हुआ स्नेह में जनम यह मेरा
बिता रहा जीवन जिसमें
स्नेह बना मेरी आत्मा की
चेतनता सब-कुछ भी,

स्नेहमट्टीडुं नेरं–
ञान् वेरं जडं, दिव्य-
स्नेहमे जयिक्कुन्नी
विश्वत्तिन् प्रकाशमाय्
(स्नेहसूनमे, विश्व
वाटियिल वाटमेन्नुं–
नीहसिक्कुन्नु, नरुं
सौरभ्यं परत्तुन्नु !)
क्षितिजत्तोळं, सप्त
सागरत्तोळं, मम–
किरणं परिक्किल्ले–
न्नाकिलुं कृतार्थन ञान्
चिक्केन्नु वन्नेत्तुन्न
काट्टोन्नु कयर्त्तेट्टा–
लिक्कोच्चु विळक्किन्डे
दीप्ति हापोलिञ्जिडां…
एंकिलु मर्त्यत्तोळ
मेन्नात्म नाळत्तिन्टे–
पोनकतिर तूकिप्पारिन
कूरिरुळकट्टु ञान्।

मूर्खरादरु जनरु लोकदोळगेल्ल (कन्नड़)

[सन्त पुरन्दरदास]

मूर्खरादरु जनरु लोकदोळगेल्ल
एक देवन बिट्टु काकु दैवव भजिसि ॥पल्ल॥
ओंटियलि हेंड़तिय बिड़ुवातने मूर्ख
गंटनोब्बर कैयलोप्पि सुव मूर्ख
नेंटरिगे सालवनु कोडुवात मूर्ख जन—
कंटकनागि दूरुववने कड़ुमूर्ख ॥१॥
स्वामिनामव भजिसदिद्दव मूर्ख
स्वामिगुरुहिरियरिगे एरगदव मूर्ख
नेमदलि हरिकथेय केळदव ता मूर्ख
तामसव कूड़िकोंबवने कड़ुमूर्ख ॥२॥
उंडमनेगेरड़न्नु बगेयुवातने मूर्ख
कोंडे नुड़ि केळि कोलिसुव मनुज मूर्ख
पुंडरीकाक्ष श्री पुरंदर विठलन
कोंडाड़ि भजिसदव कड़ु मूर्खनय्य ॥३॥

जब टूटेगी स्नेह की कड़ी
रह जाऊँ मैं सूना-सूना,
है स्नेह तुम्हारी विजय-पर्व-सी
फैली जग में है अमर प्रभा,
(विश्व वाटिका के पौधों में
है स्नेह सुमन सर्वत्र खिला,
हँसी बिखेरता सुरभि बांटता
मंगलमय जीवन भरता)
क्षितिज पटल या सप्त-सिन्धु तक
फैली मेरी किरण नहीं
अपनी लघुता की सीमा में
बनी हुई चरितार्थ यहीं
जो मारुत मृदु पुलक स्पर्श से
टकराता सुमन से अब है,
यदि आंधी बन जाय क्षण में वह
बुझ न जाये मेरा जीवन
फिर भी मेरा एक लक्ष्य है
जीवन के आखिर तक,
सुखद सुनहली किरण बिछा कर
जग का अन्धेरा हरना ।

मूर्ख बन गए लोग (हिन्दी)

[प्रा. गुरुनाथ जोशी]

सारे संसार में लोग मूर्ख बन गए, एक देव को छोड़कर अन्य देव को भजकर ॥टेक॥

भार्या को एकाकी छोड़ने वाला मूर्ख है, अपनी गठरी दूसरे किसी के हाथ में सौंपने वाला मूर्ख है, नातेदारों को ऋण देने वाला महामूर्ख है। जनकंटक बनकर रहने वाला मूर्ख है ॥१॥

स्वामी का नाम लगातार न भजने वाला मूर्ख है। प्रभु, गुरु-जनों के चरण पर सिर न झुकाने वाला मूर्ख है। नियमित रूप से हरि-कथा को न सुनने वाला मूर्ख है। तामसी लोगों का संग करने वाला महामूर्ख है ॥२॥

जिसके घर में खाना है उसी के घर के पत्तल में छेद करने वाला, जिसका खाता है उसका न गाने वाला मूर्ख है, चुगली सुनकर हत्या कराने वाला, द्रोह करने वाला मनुष्य मूर्ख है। वह महामूर्ख है जो पुंडरीकाक्ष श्रीपुरंदर बिठल की स्तुति नहीं करता है और उसका भजन नहीं करता है ॥३॥

पुस्तक परिचय



गूँजे जयजयकार—सम्पादक, मन्मथनाथ गुप्त—प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली ६—रु. १.०० ।

भारत पर चीनी आक्रमण के पश्चात् हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में युद्ध की कविताएँ विपुल संख्या में लिखी जा रही हैं तथा इस प्रवृत्ति को सभी ओर से प्रोत्साहन भी बहुत दिया जा रहा है। प्रस्तुत संग्रह में इसी प्रकार की कविताएँ हैं जो मुख्यतः आकाशवाणी द्वारा आयोजित सर्वभाषा कवि-सम्मेलन में प्रस्तुत की गई थीं। कुछ कविताएँ अन्यत्र से भी संकलित हैं। कविताओं की कुल संख्या ५४ है जिसमें आधी के लगभग हिन्दी की हैं। विशेषता यह है कि इसमें गीतकार, छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी तथा नई कवितावादी, सभी को लिया गया है।

कविताएँ पढ़ने से प्रतीत यह होता है कि चुनाव का दायरा सीमित रखने से संकलन को हानि हुई है। बहुत थोड़ी कविताएँ ऐसी हैं जो पाठक या श्रोता में उत्साह, वीरत्व-भाव और लड़ने के लिए तैयार होने की प्रवृत्ति उत्पन्न करती हैं। नए ढंग की कविताओं में यह कार्य आंतरिक मनोवैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु एकाध को छोड़कर, इन्हें सफल नहीं कहा जा सकता। पर इस श्रेणी में अच्छी कविताएँ अन्यत्र प्रकाशित हुई हैं, जो मन को चुभती हैं।

जिन कवियों की रचनाएँ अच्छी हैं, वे हैं अमृता प्रीतम, अंचल, कैलाश वाजपेयी, दर्शनसिंह, नागार्जुन, प्रभजोत कौर, बालकृष्ण राव, शमशेर, श्यामल मजुमदार आदि। प्रायः वे ही कविताएँ ज्यादा अच्छी प्रतीत होती हैं जिनमें बात सीधे तौर पर कही गई है। इसमें सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त तथा सुमित्रानन्दन पन्त की भी दो सुन्दर रचनाएँ हैं। श्री सोहनलाल द्विवेदी का पुराना गीत, वन्दना के इन स्वरों में, भी जोड़ दिया गया है।

यहां सामान्य तौर पर एक बात यह कहूँ कि भारतीय साहित्यों में युद्ध और वीरता सम्बन्धी साहित्य बहुत कम तथा फीका इसलिए है कि यहां के लेखक और कवि इन विषयों में सीधी रुचि कभी नहीं लेते। इसके विपरीत पाश्चात्य साहित्यों में ऐसे विषयों की सफल विपुलता का कारण उन लेखकों का वीरतापूर्ण कार्यों में स्वयं भाग लेना तथा युद्धादि में जाते रहना है। अनेक लेखक बाकायदा युद्ध में लड़े हैं तथा स्पेनिश सिविल वार में तो उन्होंने अपना स्वतन्त्र मोर्चा बना कर ही संघर्ष किया। जब तक इस तरह की प्रवृत्ति तथा प्रयत्न भारतीय लेखक भी नहीं करते, तब तक वे प्रभावी युद्ध-साहित्य की रचना नहीं कर सकते। असली साहित्य अनुभव से ही रचा जाता है, कल्पना से रचा साहित्य सदा डालडा की तरह नकली होता है।

रणभेरी—संपादक, मदनमोहन गोस्वामी—प्रकाशक, लोकसंपर्क, पर्यटन एवं सांस्कृतिक विभाग, पंजाब, चण्डीगढ़—मूल्य, राष्ट्र-हित आत्मोत्सर्ग का संकल्प।

उपरोक्त विषय पर ही पंजाब सरकार द्वारा प्रकाशित यह दूसरी पुस्तक है। रायल आकार में आर्ट पेपर पर छपी अनेकों चित्रों तथा सुन्दर सज्जा से युक्त यह पुस्तक अपने रूप रंग में ही नहीं, सामग्री में भी अत्यन्त उत्तम प्रतीत होती है। ऐसे ग्रन्थों के निर्माण में भावना का सर्वोपरि महत्त्व है और इसमें उसका प्रचुर प्रयोग दिखाई देता है। पंजाब ने चीनी आक्रमण के विरुद्ध जन

तथा धन से तो आश्चर्यजनक रूप में विपुल सहयोग दिया ही है, अब यह उसके मन का सुरुचिपूर्ण यशस्व प्रकटीकरण निश्चय ही अत्यन्त स्वागतयोग्य है। शायद इसी कारण इसका मूल्य भी कुछ नहीं रखा गया है, जो सर्वथा उपयुक्त है। कविताओं का चुनाव भी बौद्धिकता को व्यक्त करने दृष्टि से नहीं किया गया, अपितु वीरभाव जगाने के उद्देश्य से ही किया गया है। मुख्यतः इसमें हिन्दी तथा उर्दू और पंजाबी की ही कविताएं हैं। सभी कविताएं उत्तम हैं। जरा इस कविता की सादगी देखिए—

कल ही की तो बात है
दुश्मन हमारे सीने तक
चढ़ आए थे
पर, मुझ पर आशाएं लगाए बैठी
ओ मेरी कुमारी बहिन !
मैंने उन्हें दूर तक
खदेड़ दिया था।
तुमने अपनी कोमल अंगुलियों से
राखी बांधते समय
यही तो सौगन्ध दी थी
कि मैं तुम्हारी रक्षा करूं।

इस प्रकाशन के निर्देशन के लिए हम विभाग के निदेशक, श्री हरिश्चन्द्र खन्ना तथा श्रीमती अंजना मर्ढेकर को तथा संयोजन और संपादन के लिए श्री मदनमोहन गोस्वामी को बधाई देते हैं।

दि ब्लैक सन (अंग्रेजी)—लेखक, ख्वाजा अहमद अब्बास—प्रकाशक, जैको पब्लिशिंग हाउस, १२५, महात्मा गान्धी रोड, बम्बई १—मूल्य १-५०

ख्वाजा अहमद अब्बास हमारे जाने-माने लेखक, पत्रकार तथा फिल्मकार हैं। कहानी-लेखन के क्षेत्र में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त है और उनकी अनेक कहानियां उर्दू, हिन्दी तथा अंग्रेजी में बड़ी लोकप्रिय हुई हैं। प्रस्तुत संग्रह में उनकी आठ सुन्दर कहानियां संकलित हैं। छपाई तथा गेट-अप अत्यन्त सुरुचिपूर्ण है। भारत की सभी भाषाओं के प्रतिनिधि कहानीकारों के संग्रह इसी प्रकार निकाले जाने चाहिए।

स्पीकर्स एनसाइक्लोपीडिया आव ह्यूमर (अंग्रेजी)—संपादक, जज जेकब एम. ब्रॉड—प्रकाशक, बसंतलाल—मूल्य रु. ४.५०।

विनोदी-चुटकुलों का यह कोष निस्संदेह अपने विषय की अनुपम वस्तु है। अच्छे और सफल नागरिकों के लिए विभिन्न अवसरों पर रोचक बातें करना आवश्यक होता है। पर व्यक्ति चाहे जितना धुरंधर क्यों न हो, इतना अधिक ज्ञान अपने-आप ही प्राप्त कर लेना किसी के बूते की बात नहीं है। इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ की उपयोगिता असंदिग्ध है। इसमें ४५० पृष्ठों में विभिन्न अवसरों के उपयुक्त विविध विषयों पर सोलह सौ के लगभग चुटकुले, सैकड़ो मनोरंजक परिभाषाएं तथा 'टोस्ट' दिए गए है। अन्त में सबकी विषय-सूची भी है। साढे चार रु. के अल्प मूल्य में इतना मनोरंजक ज्ञान प्राप्त करने के लिए सभी को तैयार होना चाहिए। भारतीय जीवन तथा सामाजिकता में विनोदप्रियता की कमी है, जो इस तथा इस तरह के अन्य ग्रन्थो से दूर हो सकती है।

दि कामसूत्र आफ़ वात्स्यायन (अंग्रेज़ी)—अनुवादक, सर रिचर्ड बर्टन तथा एफ. एफ. अर्बुथ्नाट—प्रकाशक, जैको पब्लिशिंग हाउस, ११५, महात्मा गांधी रोड, बम्बई १—रु. ३.००

प्रस्तुत पुस्तक सुप्रसिद्ध 'कामसूत्र' का, जेबी संस्करण में, सरल अंग्रेज़ी अनुवाद है। मूल इसमे नहीं है और लगभग पौने दो सौ पृष्ठो में उसका संपूर्ण गद्यानुवाद है। अनुवाद बहुत अच्छे ढंग से किया गया है और उसका संयोजन ऐसा है कि यह एक स्वतन्त्र कृति की तरह लगता है। इस कारण पाठक को उसे पढ़ने मे किसी प्रकार की रुकावट का सामना नही करना पड़ता। इसमें पंजाब उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश तथा सुप्रसिद्ध लेखक, श्री जी. डी. खोसला की लंबी भूमिका है, जिसमे विद्वतापूर्ण ढंग से भारत में कामशास्त्र की परंपरा तथा तत्संबंधी भारतीय मनोवृत्ति का विवेचन किया गया है।

आदर्श जीवन—सम्पादक, आचार्य विजयसमुद्रसूरि—लेखक, सर्वश्री कृष्णलाल वर्मा तथा फूलचन्द हरिचन्द—प्रकाशक, श्री आत्मानन्द जैन महासभा, अम्बाला शहर मूल्य—५.००

बड़े आकार के हजार से ऊपर पृष्ठों में छपा तथा बीसियों चित्रों से सुसज्जित यह ग्रन्थ सुप्रसिद्ध जैन आचार्य श्रीविजय वल्लभ सूरी का जीवन चरित्र और कार्य-विवरण है। भारत के जैन समाज में आचार्यश्री का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आप न केवल उच्चकोटि के विद्वान् ही थे, अपितु लाखों नर-नारियों के श्रद्धाकेन्द्र थे तथा उनके लाभ के लिए अनेकानेक उपयोगी योजनाएं बनाया करते थे। आपने अनेक स्कूल कालेज खुलवाए तथा अध्ययन, अनुसंधान और लेखन के कार्यों को बहुत प्रोत्साहन दिया। यह चरित्र बहुत रोचक भाषा में लिखा गया है और अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य प्रचारार्थ केवल ५ रु० रखा गया है, जिस से सभी को इसे खरीदने में सुविधा हो।

बलिदान-जयंती-स्मृतिग्रन्थ—आर्य प्रतिनिधि सभा, गुरुदत्त भवन, जालन्धर—मूल्य रु० ४.५०

प्रस्तुत ग्रन्थ आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब, द्वारा गत वर्ष मनाए गए बलिदान-जयन्ती महोत्सव पर प्रकाशित किया गया था। इसमें आर्य समाज के आन्दोलन में समय-समय पर बलिदान होने वाले शहीदों का वर्णन है। इनमें हैं स्वयं महर्षि दयानन्द, धर्मवीर पं० लेखराम, पं० तुलसीराम,महाशय रामचन्द्र, स्वामी श्रद्धानन्द, भक्त फूलसिंह, महाशय राजपाल तथा सुप्रसिद्ध हैदराबाद सत्याग्रह तथा अन्य आर्यसमाजी आन्दोलनों के शहीद। सभी के चित्र, जीवन-चरित्र तथा कार्य की विस्तृत रूप रेखा दी गई है। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तर भारत के सांस्कृतिक नवोदय में आर्य समाज का प्रमुख भाग रहा है। वह जीवन की बाजी लगाकर आगे बढ़ने वाले इन्हीं सब महानुभावों के कारण सम्भव हुआ है। इस प्रकाशन की ऐतिहासिक दृष्टि से उपादेयता असंदिग्ध है।

दो हजार का बेबी—(एकांकी संग्रह)—पीताम्बर नारायण,—नारायण प्रकाशन, डी-१४५५, कच्चा टोबा, होशियारपुर—रु. ६.५०।

श्री पीताम्बर नारायण हिन्दी के कुशल नाटककार हैं। उनके ५ एकांकियों का यह संग्रह निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण रचना है। सभी नाटक सामाजिक हैं और उनमें किसी न किसी समस्या को लेकर उसे सुलझाने की कोशिश की गई है। पहले नाटक 'चांदी की डिबिया और बटुआ' में भिखारियों की समस्या ली गई है और अंधे सूरदास की सहायता से, जिसने स्वाधीनता-आन्दोलन में भाग लिया है, अपने हाथों से काम करके कमाने और खाने का संदेश दिया गया है। इसके सभी पात्र अत्यन्त रोचक हैं और घटनाएं बड़े मनोरंजक ढंग से घटती हैं। दूसरे नाटक 'छोटे साहित्यकार' में लेखकों की गरीबी और फाकामस्ती पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि अब जमाना बदल गया है और लेखक के लिए भूखे मरना आवश्यक नहीं है। इसलिए लेखक के बच्चे इंजीनियर या डाक्टर बनने की अपेक्षा लेखक ही बन सकते हैं। तीसरे नाटक 'दो रोटी का सुख' में जनसंख्या-वृद्धि की ओर ध्यान दिलाया गया है, जो लोगों के सुखों में बाधक होती है। यदि आय के अनुरूप संतानोत्पत्ति की जाय तथा छोटे परिवारों से संतुष्ट रहा जाय, तो हमारे सुखों में बहुत वृद्धि हो सकती है तथा बच्चों के विकास पर उचित ध्यान दिया जा सकता है। चौथे नाटक 'नुमायशी हिन्दी' में हिन्दी को विकृत करने का विरोध किया गया है। लेखक का कहना है कि हम स्वतन्त्र हो जाने पर भी मन और मस्तिष्क से अभी परतन्त्र ही हैं, जिस कारण अंग्रेजी को त्यागना हमारे लिए कठिन हो रहा है। अंतिम नाटक 'दो हजार का बेबी' में अत्यन्त मनोरंजक ढंग से आधुनिक सभ्य संसार की धोखेबाजियों का पर्दाफ़ाश किया गया है।

नाटकों से प्रतीत होता है कि लेखक ने जीवन का गहरा अनुभव किया है तथा उसकी समस्याओं पर अच्छी तरह विचार किया है। अच्छी बात यह है—जो हिन्दी के नाटकों में सामान्यतया नहीं पाई जाती—कि ये सभी नाटक रंगमंच पर भी प्रस्तुत

किए जा सकते हैं। भाषा बड़ी सरल, प्रवाहपूर्ण तथा विषय के उपयुक्त है।

ईसप की गीत-कथाएँ-दो भाग-रु. ५.०० ।
जापान की लोक-कथाएँ—रु. १ २५ ।
रूस की लोक-कथाएँ—रु. १.०० ।
फ्रांस की लोक-कथाएँ—रु. १.५० ।
जर्मनी की लोक-कथाएँ—रु. १.०० ।

सभी के लेखक, श्री निरंकारदेव 'सेवक'—प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली—६।

हिन्दी बाल-साहित्य में प्रस्तुत रचनाएँ एक बहुमूल्य वृद्धि हैं। इनके लेखक हमारे जाने-माने श्री निरंकारदेव 'सेवक' हैं। पहली पुस्तक के दोनों खण्डों में सुप्रसिद्ध ईसप की नीति-कथाओं में से १०० को चुनकर बच्चों के लाभ के लिए रोचक गीतों में बाँधा गया है। सभी कथाओं के साथ चित्र हैं जिनसे उनका आकर्षण बढ़ जाता है। भाषा बड़ी सरल और सुन्दर है। कुछ नमूने देखिए—

पर मेला था दूर अभी
और बीच में एक नदी
पड़ती थी जिसके पुल पर
उनको जाना था चल कर

और— चील बेचारी आखिर कार
हो उसके हठ से लाचार
उड़ी उसे पंजों में दाब
नीचे छूट गया तालाब

इसी प्रकार अन्य चारों पुस्तकों में सम्बन्धित देशों की सुन्दर लोक-कथाएं गीतों में रचकर प्रस्तुत की गई हैं। ये सब भी सचित्र हैं। ये पुस्तकें पहली पुस्तकों से आकार में छोटी हैं और इसलिए मूल्य भी कम है।

सेवक जी को हम इन रचनाओं पर बधाई देते हैं। ऐसी कृतियों के द्वारा वे बालकों का अत्यन्त उपकार कर रहे हैं। सभी पुस्तकें बच्चों को उपहार में दी जाने के योग्य हैं। वे उन्हें बड़े चाव से पढ़ेंगे और उत्तम शिक्षाएं ग्रहण करेंगे।

बन लो हीरे—हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'—सुन्दर साहित्य सदन, ८८२, गली बेरीवाली, दिल्ली ६—रु. १.०० ।

इस अत्यन्त सुन्दरता से छपी छोटी सी पुस्तक में बच्चों के लिए उपयोगी तीन छोटी-छोटी कहानियां हैं। इनका उद्देश्य हैं बच्चों की आन्तरिक शक्तियों को जाग्रत कर उन्हें हीरे की तरह चमकाना। सभी कहानियां रोचक और सरल भाषा में लिखी गई हैं। हमें विश्वास है, इन्हें बालक बड़े चाव से पढ़ेंगे और प्रसन्न होंगे।

समाज-कल्याण (वार्षिक अंक)—सम्पादक राकेश जैन—प्रकाशक, केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड, जीवन दीप, पार्लियामेंट स्ट्रीट, नई दिल्ली।

'समाज-कल्याण' हिन्दी की सब से सुरुचिपूर्ण पत्रिकाओं में है। सरकारी होने के कारण इसकी ओर पाठकों का अधिक ध्यान नहीं जाता। उत्तम पाठ्य-सामग्री ही इसकी विशेषता नहीं है, इसकी सज्जा भी हिन्दी के स्तर को देखते हुए अनुपम है। प्रस्तुत विशेषाक में ४ कहानियां, ३ कविताएं तथा २० के लगभग लेख हैं। उनके विषय हैं नेफा में समाज-कल्याण, लद्दाख में प्रगति, बाल-कल्याण के नए प्रयोग, वेश्यावृत्ति और कानून, गोंडवाना केन्द्र, परिवार-नियोजन, बधिरों का प्रशिक्षण आदि। ये सभी विषय सामान्य रूप से भी अत्यन्त रोचक हैं और सभी के लिए उपयोगी हैं। इतनी अच्छी सामग्री जुटाने के लिए सम्पादक बधाई के पात्र हैं। इस पत्रिका का अधिकाधिक प्रचार होना चाहिए। इसका वार्षिक शुल्क भी कम है।

त्रिकोण (त्रैमासिक पत्रिका)—संपादक, प्रकाशशंकर—प्रकाशक, जुहीकुंज, ४२ गणेश-चन्द्र एवेन्यू, कलकत्ता १३—वार्षिक मूल्य २.०० ।

प्रस्तुत हिन्दी त्रैमासिक का यह पहला अंक है। इसमें आधुनिकता की दृष्टि से कविताओं, कहानियों तथा लेखों को स्थान दिया गया है। लेखक सब नए हैं, परन्तु कई से भविष्य में सफलता की आशा की जा सकती है। हम पत्रिका की सफलता की कामना करते हैं।

—महेन्द्र कुलश्रेष्ठ

सम्पादकीय



सीमावर्ती जिलों में मुसलमानों की वृद्धि—

'इन्फा' संवाद-समिति द्वारा वितरित एक विशेष समाचार से ज्ञात हुआ है कि चीन तथा पाकिस्तान से लगे भारत के सीमावर्ती जिलों में मुसलमानों की जन-संख्या आश्चर्यजनक वेग के साथ बढ़ रही है। राजस्थान के गंगानगर, बीकानेर, जैसलमेर और बारमेड़ जिलों में यह वृद्धि सामान्यतः ६५% हुई है। हिमाचल प्रदेश में यह अनुपात ६७ ६६% और नागा प्रदेश में ७१·३५% है। आसाम में यह ३८·५०% है। उत्तर प्रदेश के चार सीमावर्ती जिलों में ४० से ७०% तक वृद्धि हुई है। और, सिक्किम का तो क्या कहना जहाँ यह वृद्धि ८७३·३६% अर्थात् नौ गुनी के लगभग हुई है।

भारत के अन्य सब स्थानों में मुसलिम जनसंख्या का अनुपात लगभग पहले का सा ही रहा है, अथवा उतना ही बढ़ा है जितना १० वर्षों में हुए नए जातकों के कारण साधारणतया बढ़ना चाहिए। उदाहरणतः, बदायूँ और बुलंदशहर के मुसलिमबहुल जिलों में भी बढ़ती का अनुपात केवल ६% रहा है।

उक्त आंकड़ों की तुलना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सीमावर्ती जिलों में मुसलमानों की वृद्धि के पीछे कुछ योजना और षड्यंत्र है। ये जिले कुछ अधिक समृद्ध भी नहीं हैं जिसके कारण लोग वहां जाकर बसने को लालायित हों।

यह योजना क्या हो सकती है? पाकिस्तान से तो भारत का सदा ही मनमुटाव रहा है और अब चीन से भी संघर्ष हो रहा है। चीन और पाकिस्तान की मैत्री ने स्थिति की गम्भीरता को बढ़ा दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में स्वभावतः यह संदेह होता है कि इन दोनों देश की सम्मिलित योजना के अनुसार भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों में मुसलमानों को पहुँचाया जा रहा है। ये लोग अनेक प्रकार से भारत के विरुद्ध उन देशों की सहायता कर सकते हैं। भारत में जितने चीनी थे, वे या तो चीन भेज दिए गए हैं या दर्शनाधीन किए जा चुके हैं। अतः, उक्त प्रकार की गुप्तचर्या के लिए पाकिस्तानी मुसलमानों का ही आयोजित किया जाना संभावित है। संभव है, उन्हीं के भीतर भेस बदले हुए अनेक चीनी स्वयं भी घुसे हुए हों।

निश्चय ही यह बड़ी आशंकाजनक स्थिति है। भारत प्रशासन को चाहिए कि इस समस्या पर उचित ध्यान देकर तुरन्त इसका आवश्यक प्रतीकार करे।

विभाजन के पश्चात् करोड़ों मुसलमान भारत में रह गए हैं। वे सब हमारे भाई हैं। हम उनके और अपने मध्य में कोई भी अन्तर बनाए रखना अच्छा नहीं समझते परन्तु उन्हें भी यह समझना चाहिए कि इस देश में उनका रहना यहां की शेष जनता को तभी अभिमत बना रह सकता है, जब वे यहां के संविधान के धर्म-निरपेक्ष आधार को हृदय से स्वीकार करते हों। विद्वान् उपराष्ट्रपति, डा. जाकिर हुसेन ने भी पिछले दिनों आगरा में हुए भारतीय राजनीति-शास्त्र सम्मेलन में यही बात कही कि धर्म या जाति के आधार पर देशप्रेम का निर्माण नहीं किया जाना चाहिए। यह ठीक है। हम सबका एक-दूसरे के साथ सामाजिक तथा राजनीतिक सम-व्यवहार भारतीयता के व्यापक आधार पर ही टिका रह सकता है, हिन्दूपन या इस्लाम की भित्ति पर कदापि नहीं। हमें चाहिए कि अपने व्यक्तिगत अर्थात् अपने मात्र तक सीमित जीवन में अपनी-अपनी निष्ठा के अनुसार उत्तम हिन्दु और उत्तम मुस्लिम बनने का

प्रयत्न करते रहें, परन्तु शेष सब बातों में एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर सच्चे भारत-भक्त बन कर और पूरी तरह से कन्धे से कन्धा मिला कर भारतीय प्रगति और विकास की गाड़ी को आगे-आगे खींच ले जाने में लगे रहें। भारत की सभ्यता और संस्कृति के भीतर देशी, विदेशी सभी मत-मतान्तरों के लोगों का सर्वथा समान स्थान सदा से चला आया है। इसी सुनीति में हमारा बल और गौरव निहित है। इसके विपरीत, पाकिस्तान इस्लाम के एक विशेष प्रकार को ही अपने सामाजिक और राजनीतिक जीवन का एकमात्र आधार मानता है। हमारे भारतीय मुस्लिम भाइयों को इस बारे में भ्रम-रहित होकर अपनी इसी सांझी भारत-माता की सेवा में ही लगा रहना चाहिए।

काल को तृप्ति कहां?—

१. **सरदार पणिक्कर**—सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, लेखक तथा शिक्षा-शास्त्री, सरदार कवलम माधव पणिक्कर का आकस्मिक देहान्त अत्यन्त शोकजनक घटना है। आप बंगलौर की एक सभा में अध्यक्षता कर रहे थे कि आपकी छाती अचानक दुखने लगी। बीच से ही उठकर आप घर गए और वहां से हस्पताल, परन्तु वहां प्रवेश करने से पूर्व ही आपका प्राणान्त हो गया। इन दिनों आप मैसूर विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद पर प्रतिष्ठित थे। कुछ मास ही पूर्व आपने जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय का उपकुलपति पद रिक्त किया था।

सरदार पणिक्कर की देश-सेवाएँ बहुमुखी हैं। आक्सफोर्ड तथा लंदन में अपनी शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् आपने इतिहास के प्राध्यापक के रूप में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में कार्य आरम्भ किया। फिर आप देशी रियासतों की सेवा में आ गए। पहले आप पटियाला में मंत्री रहे और कुछ वर्ष पीछे बीकानेर के प्रधानमंत्री हो गए। इन्हीं दिनों आपने लाहौर में संस्थान के कार्य को देखा तथा उसके प्रति अपना संतोष व्यक्त किया। अनेक बार आपने आर्थिक सहायता भी दी एवं दिलाई। आपका यह कहना था कि हमारा **वैदिक-कोष** पूर्ण होने पर वैदिक विद्या के क्षेत्र में संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होगा।

देशी राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में आपने लंदन में सन् १९३०-३३ में हुए गोलमेज़ सम्मेलनों में भाग लिया। वर्षों आप देशी राज्यों की सभा के मंत्री रहे। स्वाधीनता-प्राप्ति के अनन्तर आपने अनेक राज्यों को भारत-संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। आप राष्ट्र-संघ की सामान्य सभा में भारत के प्रतिनिधि रहे। फिर आपने भारतीय राजदूत के रूप में चीन तथा फ्रांस में कार्य किया। राज्य पुनर्गठन आयोग के एक सदस्य के रूप में आपने देश की महती सेवा की और उसकी एकता को संबल दिया।

लेखन के क्षेत्र में भी आपका कार्य अद्वितीय है। अपनी मातृभाषा मलयालम में आपने काव्य, नाटक तथा उपन्यासों की रचना की तथा अंग्रेजी में इतिहास के कुछ ऐसे सुप्रसिद्ध ग्रंथ लिखे, जिन्होंने स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक चिंतन को एक नया मोड़ दिया है। आप **संस्थान** द्वारा अपने मलयालम नाटक 'भीष्म' का संस्कृत अनुवाद भी प्रकाशित कराना चाहते थे, किन्तु कारणवश वह कार्य बीच में ही रुका रह गया। कुल मिलाकर आपकी छपी कृतियों की संख्या ६० के लगभग है, जो अन्य कार्यों में व्यस्त व्यक्ति के लिए आश्चर्यमय गौरव का विषय है। साहित्य अकादमी के आप आरम्भ से ही सदस्य रहे और केरल साहित्य अकादमी के प्रधान रहे।

हमें खेद है कि आज जब हमारे **वैदिक-पदानुक्रम कोष** का १६वाँ और अन्तिम खण्ड पूर्ण होने को है, तब आप हमारे बीच से इस प्रकार आन-की-आन में उठ गए हैं। वेदों के '**भूयश्च शरदः शतात्**' के आदर्श के सामने ६८ वर्ष की अवस्था होती ही क्या है? परन्तु इन घटनाओं पर किसका वश हो सका है। शोक के इस अवसर पर हम आपकी स्मृति को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं। आपकी कृतियाँ अमर हों और उनके द्वारा आपका नाम अमर रहे।

२. **प्रोफेसर एड्गर्टन**—ऐसे ही शोक से हमें पीडित करने वाले दूसरे महानुभाव थे अमेरिका के सुप्रसिद्ध भारत-भारती विद्, प्रोफेसर फ्रेंकलिन एड्गर्टन, जो ७८ वर्ष की अवस्था में गत मास परलोकवासी हो गए हैं। अभी पीछे संस्थान के वार्षिकोत्सव पर आपकी

धर्मपत्नी ने लिखा था कि वे उत्सव की सफलता की कामना कर रहे हैं। आपने हमारी नई संस्कृत पत्रिका, **विश्व-संस्कृतम्**, के लिए भी एक सुन्दर सन्देश भिजवाया था।

प्रोफेसर एड्गर्टन इस शताब्दी के शिरोमणि भारतीविदों में थे। सन् १९४० में जब आपने **'बुद्धिस्ट-हाइब्रिड संस्कृत-ग्रामर'** प्रकाशित की, तब विद्वानों को अध्ययन की नई दिशा मिली। आप पूना के भंडारकर संस्थान द्वारा प्रकाशित **'महाभारत'** के आलोचनात्मक संस्करण के सहयोगियों में थे। भारती-विद्या के अतिरिक्त आप मिस्री-विद्या के भी माने हुए विद्वान् थे और शिकागो विश्वविद्यालय में कुछ वर्ष इस विषय के प्रोफेसर भी रहे। इसके अतिरिक्त आप येल विश्वविद्यालय में वर्षों संस्कृत के प्रोफेसर रहे।

आपने दो बार भारत की यात्रा की। पहली बार सन् १९५० में जब आपने बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय में फुलब्राइट प्रोफेसर के रूप में एक वर्ष कार्य किया तथा अन्य अनेक विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा और साहित्य पर भाषण दिए। तभी १९५१ में अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन, अहमदाबाद के अवसर पर हमें उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। फिर सन् १९६० में आप प्रधानमंत्री श्री नेहरू के विशेष अतिथि के रूप में भारत आए।

शोक के इस अवसर पर हम श्रीमती एड्गर्टन के साथ सह-दुखित हो रहे हैं और उनकी स्मृति में अपने अशेष प्रणाम अर्पित करते हैं।

३. श्री स्वामी सत्यप्रेमी जी—दीवाली के दूसरे दिन, १७ नवम्बर को देहली में श्री स्वामी सत्यप्रेमी जी का ८० वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। आप संन्यास से पूर्व पिशावर निवासी चौधरी राधाकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध थे।

आप ने सर्वप्रथम पुलीस विभाग के कर्मचारी के रूप में अपना आजीव प्रारम्भ किया था। उक्त विभाग में आप ने अपनी योग्यता, निर्भयता, निर्लोभता और सदाचारिता के द्वारा अच्छा नाम पैदा कर लिया था, परन्तु आप के मन की मोज एक और विशेष दिशा में अग्रसर हो निकली और आप ने वह नई लौ लग जाने के कारण सरकारी नौकरी छोड़ दी और स्वतन्त्र-रूप से जनता जनार्दन की सेवा में जुट गए।

आप का जन्म आग़ाख़ानी बिरादरी में हुआ था, परन्तु धीरे-धीरे आप आर्यसमाज की ओर आकर्षित होते-होते उसी के रंग में पूरी तरह से रंग गए थे। आप ने सब आग़ाख़ानिओं को अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्दर पूरी तरह से पुनः ले आने का व्रत धारण करके ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में जाकर इस बात का सफलतापूर्वक प्रचार किया।

इसी उपक्रम में हमें उनके प्रथम दर्शन आज से ५० वर्ष पूर्व अपनी **भेरा** नगरी में हुए थे। उनके उत्साह का कोई ठिकाना न था। हमारे पास के ही **पिण्डदादनखां** नामक नगर में एक पुराने विचार का व्यक्ति उन के प्रचार का घोर विरोधी था। उन्होंने उसे कई बार समझाया, परन्तु वह विरोध से हटता नहीं था। जब एक दिन उस व्यक्ति ने पार्श्ववाहिनी वितस्ता नदी में नहाते हुए डुबकी लगाई, तो श्री चौधरी जी उसकी पीठ पर बैठ गए और उससे तभी उठे जब उसने विरोध न करने का वचन दे दिया।

आज से लगभग १२ वर्ष पहले आप विरक्त होकर अपने बाल-बच्चों से अलग-थलग रहने लग गए थे। इसी अवस्था में कुछ समय के पश्चात् आप के नेत्र जाते रहे, जिस कारण आप की सेवार्थ आप की धर्मपत्नी जी भी घर से विरक्त होकर आप के साथ ही रहने लग गई। संस्थान के साथ प्रेम-सम्बन्ध से प्रेरित होकर वे दोनों इधर आ गए और लगभग दो वर्ष यहीं पहले बलभद्र वाटिका में और फिर बजवाड़ा के आर्य मन्दिर में रहते रहे। तत्पश्चात् जब उनकी माता जी का देहान्त हो गया, तो स्वामी जी कुछ समय देहरादून में टिके रहे और पीछे आर्य अनाथालय, फ़ीरोजपुर में आ गए जहाँ के आदर्श अधिष्ठाता, श्री जयकृष्ण जी नन्दा आप की विशेष रूप से सेवा करते रहे। आप के अन्त से कुछ ही दिन पहले आप का छोटा बेटा, श्री बलवीरसेन आप को देहली में अपने यहाँ ले गए थे और वहीं पर आप ने प्राण छोड़े।

—विश्वबन्धु

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन-समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१-४. श्री ओ. पी. पुरी, श्री जियालाल साहनी, श्री हरभजनसिंह, श्री सन्तराम, गंगुवाल, ५. श्री एम.के. कौरिया, नई दिल्ली, ६. श्री हरनामसिंह, लुधियाना, ७. श्री के. के. मेहता, जालन्धर, ८-१२. श्री रामगोपाल कोहली, श्री संसारचन्द सूद, श्री रत्नचन्द सूद, श्री प्यारेलाल शर्मा, श्री जगदीश मित्र, होशिआरपुर, १३. श्री पलदनराम मुसाफिर, कुल्लू , १४. लेफ्टीनेण्ट हिन्दपाल कौशिक, जालन्धर छावनी, १५. श्री शंकर गौड़, नई दिल्ली, १६. श्रीमती चांदरानी भल्ला, कानपुर, १७. डा. दीवानचन्द द्विवेदी, बुढीपिण्ड, १८. डा. गंगाराम द्विवेदी, होशिआरपुर, १९. श्री लीलाधर शर्मा, चण्डीगढ़, २०–२१. डा. अलेक्जैंडर वेमन तथा श्रीमती हिडेको वेमन (विस्कान्सिन, अमेरिका), २२–२४. श्री जी. एस. श्रीवास्तव, श्री आर. एस. रावल, श्री बी. डी. अबरोल, इंकम टैक्स विभाग।

नए सदस्यों का स्वागत—गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए—

१. श्री पन्नालाल जैन, लुधियाना १०), २. श्री विद्यासागर तक्क्यार, नई दिल्ली, १०)।

अन्य प्राप्ति—१. मल्लिक सोमनाथ चैरिटेबल ट्रस्ट, कलकत्ता, २५०), २. श्री ओम्प्रकाश मलहोत्रा, मद्रास, १५०), ३. डा. के. एल. मोदगिल, मसूरी, ५०), ४. श्री नकुलसेन सोंधी, जालन्धर, २५), ५. कर्नल बलदेवसिंह पठानिया, रे (कांगड़ा), २५), ६. श्री डी. वी. अग्रवाल, चण्डीगढ़, २५), ७. श्री जगन्नाथ चण्ढोक, नई दिल्ली, २०), ८. श्री ईश्वरदास, किसिम्मू (कीनिया-अफ्रीका), १९.८८), ९. श्री विशेशरदयाल, होशिआरपुर, १५), १०. श्री अमरनाथ कोहली, चण्डीगढ़, १५), ११. डा. विद्यासागर, अमृतसर, १४), १२. प्रो. बोधराज शर्मा, चण्डीगढ़, ११), १३. श्री श्रवणकुमार देसरी, मुजफ्फरपुर (बिहार), १०.५०), १४. प्रो. जयदेव बन्धु, खडगवासला (पूना), १०), १५-१७. सेन्ट्रल मोटर पार्ट्स कं, १०), श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया, १०), श्री रुलियाराम गुप्ता, १०), कलकत्ता, १८. श्री एस. बी. भाटिया, देहरादून, १०), १९. डा. रामचन्द खन्ना, श्रीनगर, १०), २०. श्री बिशेशरदास मलहोत्रा, अहराणाकलां, १०), २१. चौ० जगदीशचन्द्र, श्रीराम आश्रम (अमृतसर) १०), २२. श्री योगेन्द्रराज भण्डारी, अमृतसर, १०), २३-२४. सर्वश्री एम. सी. हांडा ब्रादर्स, १०), श्री ज्ञानचन्द शर्मा १०), जालन्धर, २५-२६. डा रामस्वरूप शास्त्री, १०), श्री जगतराम कपूर, १०), नई दिल्ली, २७. श्री भक्तराम वर्मा, देहली, १०), २८. श्री मन्त्री हिन्दी साहित्य समिति, पिलानी, १०), २९-३०. प्रो. गौरीशंकर, १०), डा. जी.एल. अरोड़ा, १०), चण्डीगढ़, ३१. सेठ गंगाप्रसाद मोटिका, सिंहभूम, १०), ३२. डा. बी. आर. शर्मा, तिरुपति (आन्ध्र), १०), ३३. श्री शान्तिसागर आनन्द, अहमदाबाद, १०), ३४. श्री एम. के. मदान, लखनऊ, १०), ३५. श्री हैडमास्टर, डी. ए. वी. हाई स्कूल, कमाहीदेवी (होशिआरपुर), १०), ३६-३८. पं. दुर्गादास, १०), श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, १०), ठा. दौलतराम, १०), होशिआरपुर।

चण्डीगढ़ उप-कार्यालय—विगत मास में चण्डीगढ़ उप-कार्यालय के तत्त्वावधान में अध्ययन, विमर्श एवं अनुसंधान का कार्य पूर्ववत् जारी रहा, जिसमें विभिन्न बोलियों पर हुआ भाषा-शास्त्रीय अध्ययन, ऋक् प्रातिशाख्य से ध्वनि-शास्त्रीय दृष्टिकोण से शब्दों का किया गया संकलन तथा सटिप्पण विवेचन, वैदिक, तमिल तथा अन्य पारिभाषिक शब्दों एवं ओषधि वर्ग पर पत्राचार द्वारा हुई चर्चाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

सरस्वती-समाज—आचार्य श्री विश्वबन्धु जी की अध्यक्षता में परिषद् के २७वें अधिवेशन (२६ नवम्बर) में श्री लक्ष्मण त्रिवेदी सत्ताचार्य ने 'अद्वैतदर्शन में ब्रह्ममीमांसा' विषय पर अपना निबन्ध प्रस्तुत किया। परिषद् की अगली बैठक में श्री के. वेङ्कटेश्वर शर्मा 'ग्रन्थ-संशोधन' विषय पर बोलेंगे।

नए प्रकाशन—(१) कल्हण कृत **राजतरङ्गिणी** का प्रथम भाग मूल्य ३०) रुपये, (२) **सांख्यकारिका**—लेखक स्व. डा. कुन्हन राजा, मूल्य १०) रुपये।

विश्व-सत्संग—(क) विश्व-सत्संग के २२ दिसम्बर और २६ दिसम्बर के साप्ताहिक अधिवेशन में श्री आचार्य विश्वबन्धु जी ने अपने प्रवचन में क्रमशः श्री गुरु गोविन्दसिंह जी और श्री ईसा मसीह के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

(ख) जनवरी मास में लोहड़ी, वसन्त और गणतन्त्र दिवस के पर्व विशेष समारोह के साथ मनाए जायेंगे।

बधाई—संस्थान-सदस्य व कर्मिष्ठ डा. रामप्रताप तथा संस्थान-सदस्या डा. वेदकुमारी घई (जम्मू) को उनके शुभ विवाह पर और प्रो. मंजुल मयंक पंतुल (शान्ति-निकेतन) को विश्वभारती विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की उपाधि मिलने पर संस्थान हार्दिक बधाई देता है।

जैन सभा की ओर से भेंट—आचार्य श्री विजयसमुद्र सूरीश्वरजी व गणी श्री जनक मुनि जी से सत्-प्रेरणा पाकर जैन सभा (श्री संघ), होशियारपुर ने संस्थान-पुस्तकालय को जैन साहित्य का 'अभिधान राजेन्द्र' नामक सात भागों में सम्पूर्ण प्रसिद्ध महाकोष बड़ी श्रद्धापूर्वक भेंट किया, जिसके लिए उक्त श्री जैन सभा के अधिकारी वर्ग का हार्दिक धन्यवाद किया जाता है।

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान के सदस्य श्री सरदार के. एम. पनिक्कर (मैसूर) का, श्री गोपालदास चड्ढा (दिल्ली) का, संस्थान के कोषाध्यक्ष श्री रघुनाथचन्द्र शास्त्री के भ्राता श्री रघुवीरशरण भटनागर (भोपाल) का तथा संस्थान-सदस्य व कर्मिष्ठ श्री देवदत्त पाठक (बजवाड़ा) की माता जी का देहान्त हो गया। दिवंगत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

विविध समाचार

दिल्ली में योग-प्रसार समिति का रजत-जयन्ती समारोह हुआ जिसमें एक योग विश्वविद्यालय की स्थापना का निश्चय किया गया। समारोह में लोक-सभा के अध्यक्ष, सरदार हुकुमसिंह, उप-स्वास्थ्य मन्त्री, डा. डी. एस. राजू, सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश, जस्टिस बी. पी. सिन्हा तथा महामण्डलेश्वर स्वामी प्रकाशानन्द ने भाषण दिए। एक आस्ट्रेलियन योगी, स्वामी करुणानन्द ने बताया कि उनके देश में योग का अच्छा प्रचार हो रहा है, जिसमें स्त्रियाँ बहुसंख्या में भाग ले रही हैं। आपको कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में आदरी योग परामर्शदाता नियुक्त किया गया है।

× × ×

पंजाबी लेखकों की संस्था, पंजाबी दरबार ने अमृता प्रीतम को वर्ष का सर्वोत्तम लेखक घोषित किया है। इस संस्था ने विभिन्न विषयों पर इस वर्ष प्रकाशित पुस्तकों में प्रथम और द्वितीय को पुरस्कार दिए हैं। विजेताओं में हैं सर्वश्री जसवंतसिंह कंवल, ज्ञानी भजनसिंह, सुखपलवीरसिंह 'हसरत', सूबासिंह, संत इंदरसिंह चक्रवर्ती आदि।

× × ×

आकाशवाणी के दैनिक कार्यक्रम शीघ्र ही वेदमन्त्रों के पाठ से आरम्भ हुआ करेंगे। इनके साथ हिन्दी में इनका अर्थ भी समझाया जाएगा।

× × ×

देवरिया के कुशीनगर ग्राम में स्थित भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण स्तूप ढह गया है। यह मिट्टी का बना था और चारों ओर ईंटों की दीवार से सुरक्षित था। इसका निर्माण मल्ल राजाओं ने किया था तथा पुनर्निर्माण सन् १९२७ में एशिया के बौद्धों द्वारा कराया गया था। बर्मा के श्री यू पो क्यू ने इस पर ३० हजार रुपया व्यय किया था। स्तूप ढहने का कारण जमीन के भीतर जल का धरातल ऊँचा हो जाना बताया जाता है जिससे स्तूप की मिट्टी में दरारें पड़ने लगी थीं। गत मास ६ दिन तक लगातार बारिश भी हुई जिसने इसे बिलकुल ही पोला कर दिया। ईंटों की दीवार टूट गई और स्तूप बैठ गया। अब भारत सरकार का पुरातत्त्व विभाग इसके पुनर्निर्माण की योजना बना रहा है।

× × ×

अ. भा. भारत साधु समाज ने निश्चय किया है कि आध्यात्मिक तथा योगिक विषयों की शोध के लिए दिल्ली में एक संस्था खोली जाय। इसमें एक विशाल पुस्तकालय भी बनाया जायगा। इस पर ५ लाख रु० व्यय होने का अनुमान है।

× × ×

पश्चिम बंगाल की सरकार ने १३ खण्डों में संपूर्ण रवीन्द्र साहित्य प्रकाशित करने का निश्चय किया है। दो और खण्डों में रवि बाबू का अप्रकाशित साहित्य तथा तालिका दी जायगी। यह संस्करण ५० हजार प्रतियों का होगा।

× × ×

Name of owner :—Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram. Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri**
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram. Hoshiarpur.

स्वामी विवेकानन्द

जिनकी जन्म-शताब्दी इस मास मनाई जा रही है



विश्व-ज्योति

सह-सम्पादक :

विश्वबन्धु : सन्तराम

फरवरी १९६४

वार्षिक मूल्य—

भारत में : ८ रु.   विदेश में : १६ शिलिंग

सामान्य अङ्क का : ७५ नये पैसे


है जीने के लिए जीवन-बीमा!

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) Shāntakuṭi Vedic Series :

Volumes I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa (*A Vedic Word-Concordance*), in Sections I-V, split up into 15 parts, treated as volumes in the series, [Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II (Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upaniṣads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in I pt.] covering 11,000 (10"×7") pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40 ; Q. II, Rs. 30 ; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional sets (but not individual parts) entertained. 14 parts on sale, remaining 1 part due '64.

Volume XVI. A Gr. W. Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Gr. W. Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volumes XVIII-XIX. A Gr. Word-Index to the Four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Gr. W. Index to Taittiriya Saṁhitā, Rs. 40.

Volume XXI. A Gr. W. Index to Upaniṣads, due '64, Rs. 30.

(B) Vishveshvarānand Indological Series :

Volumes I-II. Siddha Bhāratī (*A Rosary of Indology*), Pts. I-II, 108 clasified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā (*A Concordance of Purāṇa Contents*), by Prof. Y. P. Tandan. Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha (*Texts on Courtezans in Classical Sanskrit*), texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20.

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern philology by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī (*The Homage of Indology*), 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Agrawal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr. U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Culural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volumes X-XI. Catalogue of VVRI Colleation of Manuscripts, 2 Pts., Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L. Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-Pāṭha and Sāyanācārya's commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVI ready, Rs. 180.

Volume XVIII. Saṅkarṣa Kāṇḍa Sūtras of Gemini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Volumes XIX-XXVI. Ṛgveda, in 8 parts, first cri. edn. of the Bhāsyas of Skandasvāmin, Udgītha, Mudgala and Venkaṭa-Mādhav, Ed. Vishva Bandhu, Pts. 2 and 3 ready, Rs. 90.

Volumes XXVII-XXIX. Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, first cri. edn. by L. Sternbach, Vol. XXVII ready, Rs. 30.

Volume XXX. Dṛggaṇitam of Parameśvara, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Woolner Indological Series :

Volume I. The Foreign Policy of Warren Hastings, by Ram Prakash. Rs. 5.

Volume II. Tagore Centenary Volume, Ed. Shri Mahendra Kulasrestha, Foreword by Prof. Humayun Kabir. Rs. 16.

Volume III. Outline of Indian History, by Sri Ram Sharma, Rs. 8.

Volume IV. The Sāṅkhya Kārikā of Iśvarakṛṣṇa, by C. Kunhan Raja, Rs. 10.

Volumes V-VIII. Rājataranginī, cri. edn. of its texts by Kalhana, Jonarāja, Śrivara and Śuka, Vol. V ready, Ed. Vishva Bandhu, Rs. 30.

Sarvadānand Universal Series :

Volume XII. Mental Health in Theory & Practice, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 2·25.

Volume XVIII. A Story of Indian Culture, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 5.

Volume XXVI. Great Thoughts of Great Men, by Prin. Sain Das, Rs. 3.50.

Volume XXX. Popular Talks on Psychological Topics, by Dr. Prem Nath, Rs. 2·50.

Volume XXXI. An Introduction into Lamaism, The Mystical Buddhism of Tibet, by R. P. Anuruddha, Rs. 8.

Volume XXXIV. Shri Krishna, His Philosophy and His Spiritual Path, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Volume XL. Dayanand, A Study in Hinduism, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Can be had of :

VISHVESHVARANAND BOOK AGENCY,

P. O. Sadhu Ashram, HOSHIARPUR (Pb., India)

OUR LATEST PUBLICATIONS

● ● ●

Ṛgveda, Parts I-VIII. Containing (1) Mantra-pāṭha, (2) Pada-pāṭha and (3) First Cri. Edn. of the Bhāṣya-s of (a) Skandasvāmin, (b) Udgīthācārya and (c) Mudgalācārya (i.e. Sāyaṇācārya's Vṛtti) and (4) Revised Cri. Edn. of Veṅkaṭa-Mādhava. With exhaustive Introduction and Text.
Variants from 32 original Mss. Ed. Vishva Bandhu.
Parts II-III ... 90.00
(Other parts in press)

Atharvaveda, Parts I-V. Containing (1) Mantra-pāṭha (Śaunaka-Śākhā), (2) Padapāṭha and (3) Revised Cri. Edn. of Sāyaṇācārya's Bhāṣya. Annotations comprise complete text-comparative data drawn from all other basic texts, namely Saṁhitā-s, (including Paippalāda), Brāhmaṇa-s, Āraṇyaka-s, Upaniṣad-s and Sūtra-s as well as from all the Mss. used and the text-reconstructions made by Röth, Whitney, Pandit and Lanman. With elaborate Prefatory Section.
Ed. Vishva Bandhu. Pts. I-IV. ... 180.00
(Pt. V. in press)

Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, Parts I-III, critically edited, with elaborate Introduction and Pratīka-Indices, by Dr. L. Sternbach.
Pt. I. ... 30.00
(Other parts in press)

Rājataraṅgiṇī, Parts I-IV, Critical edition of Kalhaṇa's text, in 2 parts, by Vishva Bandhu. Editions of the texts by Jonarāja, Śrīvara and Śuka in the next 2 parts. Part I. ... 30.00
(Other parts in press)

Sāṅkhya Kārikā of Īśvarakṛṣṇa, by Dr. C. Kunhan Raja. A new interpretation of the well-known philosophical text. ... 10.00

Dṛggaṇitam of Parameśvara, edited by K. V. Sarma. Source-book of the Dṛggaṇita system of astronomy. ... 5.00

Saṅkarṣa Kāṇḍa Sūtras of Jaimini, edited by K. V. Sarma. A supplement of Jaimini's Dvādaśalakṣaṇī. ... 5.00

● ● ●

Can be had of:

Vishveshvaranand Book Agency,
Sadhu Ashram P.O., HOSHIARPUR (Pb., India)

इस अङ्क में पढ़िए

— — —

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

१२ वर्ष } होशियारपुर, माघ, २०२०; फरवरी १९६४ { संख्या १२

वेदामृत—

आराधना

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् ।
ईशानं राय ईमहे ॥ (ऋग्. ६,५४,८)

हे पोषक प्रभो, आप सब सम्पदा के मालिक हो। आप की निधियों का नाश असम्भव है। आप (अर्थी की टेर को) सुनने वाले हो। आप अन्न (आदि सब कुछ) देने वाले हो। हम आपकी शरण में आते हैं।

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ (ऋग्. ६,५४,९)

भगवान्, हम सदा आपकी आज्ञा में रहते हुए सुख से युक्त हों। हमारा यह जीवन भक्ति-रस से सना हो।

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ (ऋग्. ६,५४,१०)

महाराज, अपना दायां हाथ हमारे ऊपर अच्छी तरह से रखो। हम जो कुछ खो चुके हैं, वह हमें पुनः वापिस मिले।

विश्व-सत्संग*

अनासक्ति योग

[आचार्य विश्वबन्धु]

ईशावास्योपनिषद् के पहले मंत्र के उत्तरार्ध से लेकर दूसरे मंत्र के अन्त तक अनासक्ति-योग कर्म-योग का उपदेश है। यहां दान, पुण्य करने, दूसरों को सहयोग देने तथा उनका सहायक होने का भाव है। इन मन्त्रों का तात्पर्य यह है कि हमारे अन्दर असंग्रह भाव हो। मनुष्य सब-कुछ अपने पास रखने की इच्छा करने वाला न हो। प्रथम मन्त्र में 'मा गृध:' कहा है उसे यहां भूमिका के रूप में समझिए। जो-कुछ पुरुषार्थ से प्राप्त होता है, उसमें सन्तोष करते हुए उसे यह समझना चाहिए कि यह केवल मेरे लिए ही नहीं है।

सबसे पहले मनुष्य को संयम द्वारा तृष्णा को दबाने का यत्न करना चाहिए। तृष्णा का अर्थ क्या है? इसके दो अर्थ हैं। १. तृष्णा का एक अर्थ है, 'प्यास'। यह तृष् धातु का रूप है। जब कण्ठ वायु-ताप के संयोग में आता है तब वह सूख जाता है और पानी मांगता है, इस प्रकार तरल पदार्थ की इच्छा को तृष्णा कहते हैं। दूसरी तृष्णा का मतलब है लोभ, लालच, परिग्रहणशीलता, धृ धारणे का रूप धृष्णा और तदनन्तर तृष्णा है। 'मैं, यह भी ले लूं, वह भी ले लूं, किसी को उसमें से न दूं'—यह भी एक 'तृष्णा' होती है। तृष्णावान् में सर्वथा असन्तोष पाया जाता है। वह सदा अपने को अपूर्ण, रिक्त, जरूरतमन्द पाता है। आवश्यकता और अपेक्षा का बंडल बना रहता है। उसे तृप्ति नहीं होती। अतृप्ति ही तृष्णा है। अन्य शब्दों में 'तृष्णा' का अर्थ है, 'टु सीज', 'टु होल्ड', हर एक पदार्थ को पकड़ कर बैठना, काबू में रखना, छोड़ने को तैयार न होना। इसे दूसरे शब्दों में स्वामित्व (ऑनरशिप) भी कह सकते हैं, यह भाव कि ये चीजें मेरी हैं, मैं धारक हूँ। यह जो तृष्णा अपने भीतर है उसे हटाइए। तभी जीवन सभी अंशों में सफल होगा।

जब कर्मफल के रूप में प्राप्त होने वाले ग्राह्य अंश से मेरी तृप्ति नहीं होती, तब गृधा पैदा होती है। तब मैं इधर-उधर झाँकता हूँ, लूट-खसोट करना चाहता हूँ।

कुप्रवृत्तियाँ दो प्रकार की हैं—(१) यत्न से प्राप्त वस्तु से सन्तोष न होना और (२) इसके फलस्वरूप दूसरों के कमाए धन पर ललचाना, उसे छीनना। इन कुप्रवृत्तियों को न दबाने से मानवता नहीं चल सकती। परिवार और समाज नहीं बन सकता।

परिवार और समाज-व्यवस्था इन नीचे लिखी बातों पर आधारित है। (१) प्रत्येक व्यक्ति पुरुषार्थशील हो, अर्थात् प्रत्येक आदमी अपना कर्त्तव्य पूरा करे। (२) नियम व श्रद्धा-पूर्वक प्राप्त वस्तु का उपयोग करे और (३) इधर-उधर न झपटे। संक्षेप में प्रत्येक मनुष्य को पुरुषार्थ करके ही अपने शरीर व परिवार को धारण करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

पुरुषार्थ—

साँस लेना अर्थात् प्राण-धारण करना या

---

* संस्थान में प्रति रविवार सायम् समय "विश्व-सत्संग" लगा करता है। इस में विश्व-मानवता के व्यापक दृष्टिकोण से शास्त्रीय प्रवचन होते हैं। इस स्तम्भ में उन्हीं का सार दिया जाता है। पाठकों से हमारा सप्रेम अनुरोध है कि अपनी सुविधा के अनुसार संस्थान में भी दर्शन देते रहें। —विश्वबन्धु

जीना भी पुरुषार्थ है। दूसरा आदमी हमारी जगह सांस नहीं ले सकता। यदि हम साँस लेना बन्द कर दें, तो फिर यह जान लीजिए कि साँस का न आना ही मौत है। प्रकृति ने साँस लेने की क्रिया हमारे हाथ में नहीं रखी। यह तो स्वाभाविक है जो प्रत्येक प्राणी के भीतर अपने-आप होती रहती है। सभी क्रियाएँ करते समय, इसे करना ही पड़ता है। प्रकृति कहती है, मुझे तुम्हें जीवित रखना है तथा अन्य प्राणियों को भी जिन्दा रखना है।

प्रकृति ने घोड़ा, हाथी, मनुष्य, कुत्ता इनमें किसी की आयु दस-बीस, तीस-चालीस से एक सौ या इससे भी अधिक नियत की है। जैसा बना, उसने पुतलों में जान डाल दी, जिसके लिए साँस का आना-जाना आवश्यक है। यह सारे प्राणियों की आवश्यकता है। कार्य करते रहो प्राण अपने-आप आता-जाता रहेगा।

पुरुषार्थ करने में थकावट के फलस्वरूप मेरा पेट खाली रहने से क्षुधा लगती है। आप प्रकृति से कहते हैं, "हे माता, भोजन हमारे मुँह में डाला करो।" कुदरत कहती है, "मैंने भोजन दे दिया, बाकी तुम जानो।"

चिड़ियाँ रात के तीन पहर बीतने पर चीं-चीं करने लगती हैं। राम-राम भजने को नहीं जानतीं। असली प्रेरणा शरीर की भूख है। निद्रा क्यों आती है? क्योंकि शरीर घिसता है। इस घिसने की पूर्ति दो प्रकार से होती है। भोजन द्वारा और निद्रा द्वारा। इनके द्वारा हमारा पुनर्निर्माण होता है। जब शरीर थक जाता है तब निद्रा के द्वारा चेतनता आती है। अतः हर-एक प्राणी के लिए सोना जरूरी है।

पशु पेट भरने पर हट जाते हैं और जुगाली करने लगते हैं। जितनी जल्दी पशु-पक्षियों का पेट भर जाता है उतनी जल्दी वे विश्राम करने बैठ जाते हैं। वे कुछ खेल-कूद भी कर लेते हैं। परन्तु मनुष्य को अपने शरीर के लिए जो-कुछ चाहिए, वह उससे अधिक प्राप्त करने से बाज नहीं आता। वह लैम्प जलाकर रात में भी उसकी प्राप्ति के लिए काम करता है। टांगों से यदि काम पूरा नहीं होता, तो गाड़ियां बनाता है और समय बचा कर उसे कमाने में लगा देता है। यह है उसकी 'तृष्णा'। समय के बीतने से सभ्यता विकसित हुई है। सभ्यता के विकास के कारण साधन-सामग्री बढ़ गई है। उसके साथ तृष्णा भी बढ़ती जा रही है। कामनाओं से कामनाएँ बढ़ती हैं। आग में घी को डालते जाओ तो आग बढ़ती जाएगी। हमारा भौतिक जीवन बढ़ रहा है। माना कि इससे लाभ हैं। पर तृप्ति बिल्कुल नहीं होती।

पुराने समय के ग्राम-व्यवहार को देखिए। जब हम उस समय के जीवन पर विचार करते हैं तो क्या हम यह पाते हैं कि चालीस-पचास वर्ष पूर्व की शान्ति मूर्खता की शान्ति है? भाई गरीबी की भी शान्ति, शान्ति तो है ही। शान्ति शान्ति है। करोड़पति की क्या शान्ति? तब छोटे-मोटे गरीब आदमी शाम के समय चौपाल में आग जला कर नौ-दस बजे रात तक बातें भी कर सकते थे, भजन-पाठ भी कर लेते थे, रामलीला भी खेल सकते थे। श्रावणी दिवाली भी मना सकते थे। झूलों पर झूल सकते थे। ऐसी मूर्खता की शान्ति भी शान्ति है और आज क्या हो रहा है? आज क्या लक्ष्य है? क्यों यह भाग-दौड़ हो रही है?

भावनात्मक एकता—

इस पृष्ठ-भूमि में ईशावास्योपनिषद् के मंत्र रखे जा रहे हैं। हमारे वास्तविक जीवन के पुनर्निर्माण में कौन-सी प्रेरणा काम कर रही है? वस्तुतः यह प्रेरणा कि हमारा वैयक्तिक पारिवारिक और सामाजिक जीवन सुखी हो जाए। प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक के सुख-दुःख में हाथ बटाए, उसमें शामिल हो, सहायता करने को तैयार रहे। हम जिस ओर भी कदम बढ़ाएँ, दुनिया का हित करें। हमारे हृदयों का मेल हो जाए। अलग-अलग प्रान्तों का भाव हृदय में न आवे, हम यह चाहते हैं।

सब को एक समझना कोई खेल नहीं है। यह कठिन है। अनेकत्व में एकत्व कैसे आवे? हम चाहते हैं कि हम स्वार्थ-सिद्धि करते हुए भी एक रहें। यह नहीं हो सकता। आज की हमारी कार्यपद्धति, हमारी शिक्षा दिखाऊ है। हर मनुष्य अपने को अलग समझता है। लाखों के बीच स्वयं को अकेला पाता है। संसार में बहुत से देश हैं। कुछ परतन्त्र हैं। सौ, एक-सौ बारह के लगभग स्वतन्त्र हैं।

प्रत्येक राष्ट्र अपना हित अलग समझता है। प्रत्येक राष्ट्र को अपनी मण्डी चाहिए। यह भावना ही सब को बांटती है। प्रदेशों का यूनिट तो और भी छोटा होता है। हर एक कहता है, 'मेरा यह काम बन जाए, मेरा वह काम बन जाए।' मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की सीमाओं में बहने वाली नदी का सारा पानी दोनों प्रदेश अकेले हड़पना चाहते हैं। एकता का भाव कहां है? जब एकता प्रदेश, पार्टी या राष्ट्र में नहीं है, तब व्यक्तियों में कैसे हो? बस, प्रत्येक स्वयं को असमर्थ समझता है।

ईशोपनिषद् के दूसरे मंत्र का भाव हमें प्रकाश देता है कि इस सब अव्यवस्था का इलाज है, पुरुषार्थ। निकम्मे या खाली न रहो। कम्यूनिटी या समाज तभी ठीक रहेगा जैसा बताया है, मर्यादा के अन्दर कमाई करो। कमाई पर नियन्त्रण हो। इसका अर्थ यह है कि काम में टाइम तो अधिक दो, पर अधिक न कमाओ। ऐसा करना सुप्रवृत्ति है।

मशीनें कई घण्टों का काम आध घण्टे में कर देती हैं। आदमी यन्त्रों द्वारा जल्दी काम कर लेता है। उतने ही समय में अब, पहले की अपेक्षा, आठ गुना काम हो जाता है। पैसे भी आठ गुने मिलते हैं। पचास वर्ष पूर्व की अपेक्षा आज नकद पैसा अधिक है। आज एक रुपया की जगह पांच रुपये आते हैं। पर भावों का भी यही हाल है। तब मशीन से समय बचाने का नतीजा क्या? अमेरिका में एक प्याज बारह आने में बिकता है, अब इस देश में भी यही होगा। इंटरनैशनल मार्कीट में चीजें एक-सी हैं। धीरे-धीरे भाव बिल्कुल एक-से हो जायेंगे। आज-कल कीमतों में ज्यादा फर्क नहीं रहता। अब प्रान्तों में भावों का फर्क नहीं है। यह भेद देशों में भी न रहेगा।

पहले अवकाश खूब था। दरबार लगते थे। अब वैसा कहां होता है? जिससे पूछो, अवकाश नहीं। 'क्या करते हो?' 'बस भाई, वही दो मुट्ठी अन्न।' हाजमा भी वैसा नहीं रहा। हस्पताल बन गए, दवाएँ मिलती हैं। पर दवाएँ देकर भी बीमारियाँ होती हैं। अतः अब इस पृथिवी पर तो सुख नहीं, चलो, अब चन्द्रमा में चलें, वहाँ शायद........सुख हो! प्राचीन साहित्य से प्रकाश मिलता है। आज उसकी जरूरत है। क्योंकि औद्योगीकरण के नाम पर ऐसा गोरखधन्धा आ गया है कि कुछ करते नहीं बनता। सच्ची बातों को अनुभव करते तथा आचरण में लाते हुए उनके प्रभाव से मनुष्य धर्मात्मा, प्रेमी और परस्पर सहायक बनेंगे। तभी कुछ होगा। और कोई तरीका नहीं। श्मशान में बैठकर रोने से कुछ वापस न आएगा। जीतों के बीच रहकर जीवन बिताओ।

सहकारिता—

कर्मयोग के मार्ग पर चलो। निराशा से काम न होगा। हमें जीवन की तसवीर बनानी है। पुरुषार्थ का बीज मौजूद है। इन मन्त्रों को आधार बनाकर जीवन में परिवर्तन लाना चाहिए। घर का अच्छा सदस्य, अच्छा पड़ोसी बनना चाहिए। प्रत्येक सदस्य यह कहे, 'धन मेरा नहीं, सब का है।' राग-द्वेष या छोटी-छोटी कड़वी बातें हटाओ। एक दूसरे की सेवा करो। मृदु वचन बोलो।

सद्-व्यवहार का अभ्यास करो। बाहर के पथ, गली, नगर, संसार को अपने अन्दर समझो। यह भाव आए, फिर ठीक है। प्रस्तुत मंत्र का यही अर्थ है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति,
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।

जो प्राणिमात्र को अपने में अनुभव करता है या सब प्राणियों में अपने-आप को देखता है वह फिर 'जुगुप्सा' नहीं करता, किसी को तुच्छ नहीं समझता। 'विचिकित्सते' ऐसा शाखान्तर में पाठ है। अर्थात् उसे कोई संशय नहीं रहता।

एक घर में रहने वाला यह क्यों समझे कि 'यह सब-कुछ मेरा है।' मैं अकेला क्यों खाऊँ? पेट जो है वही सब-कुछ नहीं है। बच्चे भी पेट हैं। कुदरत ये वृत्तियाँ (क्रियाएँ) अपने-आप कराती है। वह कहती है, मनुष्य की नस्ल खत्म न हो। मैंने सब को पैदा किया है। सब मेरे ही फूल हैं।

प्राणी, जीव, यह क्या है? इसे चेतना कहते हैं। 'अन्तर्ज्योतिर्वा अयं पुरुषः।' यह ज्योति सब के अन्दर पाई पाती है। इससे हमारा कोई सम्बन्ध जरूर है। यह ज्ञान धीरे-धीरे ही होता है।

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।'

भगवान् चैतन्य है, सर्वव्यापी है। यह कैसे? भाई, वह "अन्तरस्य सर्वस्य" है। सब के अन्दर मौजूद है। मेरे भी अन्दर, आपके भी अन्दर। दाएँ-बाएँ, सब जगत् में वही है। मेरी ओर देखते हो तो मेरी आँख दिखाई देती है। पर वह भीतरी आवाज कहती है, "मैं यहां बैठा हूँ। मेरा ध्यान करो।" जितने प्राणी देखते हैं, उन सब की आँखें सन्देश देती हैं कि हम सब के अन्दर 'वह' मौजूद है। मेरे अन्दर 'वह' है। आपके अन्दर 'वह' है। यह सब जगत् मिलकर एक पदार्थ है। एक सिरे पर मैं हूँ, दूसरे सिरे पर आप। सब को जोड़ने वाला अन्दर है। अब हम सब एक हो गए। तब भेद कहाँ? यह सहयोग अर्थात् सहकारिता के वैदिक सन्देश हैं। पहला मंत्र कहता है, इस जगत् में ईश्वर का वास है—'ईशावास्यमिदं।' यह ईश्वर ऐसा बुजुर्ग है। 'न ममार न जीर्यति' वह हमेशा हमारे साथ है। आज से सौ वर्ष पूर्व एक घर में हमारे बुजुर्ग रहते होंगे, यह सोचने पर हमें एकता प्रतीत होने लगती है। पर ईश्वर तो हर घड़ी, हर क्षण में विराजमान है। जब साधारण व्यक्तियों से अपनेपन का भाव उत्पन्न होता है तब ईश्वर, जो कि सृष्टि में ओत-प्रोत है, से भेद कैसा?

'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।'

इस मंत्र में भूत का अर्थ प्राणी है। वैदिक 'आत्मन्' का अर्थ है 'अपने-आप', अपने अन्दर। इस उपनिषद् का चौथा मन्त्र विशेष है, जिसमें कहा गया है कि वह सब के अन्दर है। वह मेरे, आप के, सब के अन्दर है। इस छठे मन्त्र का अर्थ है कि जो व्यक्ति अपने अन्दर संतत भाव से सब का दर्शन करता है। सब प्राणियों के सुख-दुःख का उसे अनुभव हो जाता है। वह अपने अन्दर उसी तरह सब को देखता है जैसे हर माँ अपने बच्चे को अपने अन्दर देखती है। बच्चे की भूख माता की भूख है। माता एक वर्ष तक बच्चे को गर्भ में रखती है। उसकी भावना यही रहती है कि बच्चा अन्दर है। कोई भी माता कुमाता नहीं हो सकती।

परमात्मा साधारणतः, एक-दूसरे के भीतर दिखाई नहीं देता। पर कहाँ भागते हो? वह तुम्हारे रूप के अन्दर है। कहा गया है—

'कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्।'

यह 'प्रत्यगात्मा' कौन है? वह सभी प्राणियों के रूप में मेरे भीतर है और तुम्हारे भी। उसे सभी प्राणियों, अर्थात् भूतमात्र के रूप में देखने का यत्न करो।

इसलिए जब यह विचार करते हो कि 'मैं मकान बनाऊँगा, यह करूँगा, वह करूँगा', तो यह सब क्या होता है? वास्तव में बाहरी पदार्थ तो उसके अंग हैं। सब संसार का भोग भी आत्मा में सम्मिलित है।

इसीलिए, इस देश में पंच महायज्ञों की

कल्पना की गई है। सब पर दया करो। सब को खिलाओ तुम भी खाओ। दुनिया में ऐसे मनुष्य भी हैं, जो प्रातःकाल कीड़ों-मकोड़ों के बिलों पर आटा डालते हैं। यह हमारे बुजुर्गों की संस्कृति थी—'वसुधैव कुटुम्बकम्' यहां स्पर्धा (कम्पीटीशन) नहीं है, सहकारिता का सम्बन्ध है। सभी प्राणियों को अपने अन्दर देखो। यह समझो यदि वे खा रहे हैं तो मैं ही खा रहा हूँ। उन्हें दुःखी देखो दुःखी होओ। उन्हें अपना भागीदार बनाओ। उनके लिए ईर्ष्या न हो, उनका दुःख देख कर कठोरता न हो जिस समय 'सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति' यह दर्शन प्राप्त हो जाए तब ठीक रहेगा।

वह स्थिति जिसमें द्विविधा का भाव समाप्त हो गया हो। गीता में कहा गया है—'संशयात्मा विनश्यति।' संशयग्रस्त नष्ट हो जाता है। जिसका संशय दूर हो गया, उसे मोक्ष मिल गया। यहां 'न विजुगुप्सते' का अर्थ है वह दशा जब मनुष्य में—'यह पंगु है, यह नीच है'—यह भाव नहीं रहता।

'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।'

सभी अमृत के पुत्र हैं। अब ऊँच-नीच कहां? जब सब एकमय हो गए तो कौन दक्षिणी रहा और कौन उत्तरी? 'आत्मैव सर्वम्।' यही इस मन्त्र का भाव है।

त्याग

त्याग क्या है? अहंकारयुक्त जीवन को त्याग देना। निःसंशय और निःसन्देह अमर जीवन व्यक्तिगत और परिच्छिन्न जीवन को खो डालने से मिलता है।

त्याग का आरम्भ सब से निकट और सब से प्रिय वस्तुओं से करना चाहिए। जिस का त्याग करना आवश्यक है, वह है मिथ्या अहंकार अर्थात् 'मैं यह कर रहा हूँ', 'मैं कर्ता हूँ'. 'मैं भोक्ता हूँ' यही भाव हममें मिथ्या व्यक्तित्व को उत्पन्न करते हैं—इन को त्याग देना होगा।

त्याग आप को हिमालय के घने जंगल में जाने का आदेश नहीं देता, त्याग आप से कपड़े उतार डालने का आग्रह नहीं करता, त्याग आप को नंगे पाँव और नंगे सिर घूमने के लिए नहीं कहता।

त्याग न तो अकर्मण्य, लाचारी और नैराश्यपूर्ण निर्बलता है। और न दर्पपूर्ण तपश्चर्या ही। ईश्वर के पवित्र मन्दिर अर्थात् शरीर को बिना प्रतिरोध मांसाहारी निर्दय भेड़ियों को खाने देना कोई त्याग नहीं है।

ईश्वरत्व और त्याग पर्यायवाची शब्द हैं। संस्कृति और सदाचार उसकी बाह्य अभिव्यक्तियां हैं।

अहंकारपूर्ण जीवन का छोड़ देना ही त्याग है और वही सौन्दर्य है।

हृदय की शुद्धता है अपने-आपको सांसारिक पदार्थों की आसक्ति से अलग, पृथक् रखना। त्याग का अर्थ इससे रंचमात्र कम नहीं।

त्याग के भाव को ग्रहण करो और जो-कुछ प्राप्त हो उसे दूसरों पर प्रकाशित करो। स्वार्थपूर्ण शोषण मत करो। ऐसा करने से आप अवश्य ही उज्ज्वल हो जायेंगे।

कामना से रहित कर्म ही सर्वोत्तम त्याग अथवा पूजन है।

—स्वामी रामतीर्थ

बार्हस्पत्य राजत्व-सिद्धान्त और उसके नियामक तत्त्व (२)

[प्रा. राघवेन्द्र वाजपेयी]

प्राचीन मनीषी दण्ड को धर्मज मानते थे।[१] अतः दण्ड-शक्ति का भी उद्देश्य परोक्ष रूप में धर्म की ही स्थापना था। राजा स्वयं शक्ति का स्रोत नहीं माना जाता था। वह केवल दण्डधर (अर्थात् दण्ड का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करता) था।[२] दण्ड का उद्देश्य था—मात्स्य न्याय अथवा अन्याय का अन्त करना। अन्यायमार्गियों को दण्ड देना और शान्ति की स्थापना करना। इसके लिए 'यथार्ह दण्ड" आवश्यक था। बृहस्पति का कथन है कि, राजा वसन्त के सूर्य की भाँति हो। न अधिक शीत (अर्थात् दुर्बल) हो और न अधिक धर्मश (अर्थात् उग्र) ही हो।[३] कौटल्य भी इसी मत के समर्थक हैं। उनका कथन है कि, तीक्ष्ण दण्ड लोगों को उत्तेजित कर देता है एवं मृदुदण्ड की अवमानना होती है। यथार्ह दण्ड ही श्लाघ्य है।[४]

देव-प्रतिनिधि एवं देव-प्रेषित बार्हस्पत्य राजा देवताओं के अतिरिक्त किसी पार्थिव शक्ति अथवा व्यक्ति के प्रति उत्तरदायी नहीं था। पवित्र एवं कल्याणकारी उद्देश्यों के कारण उनका जन्म हुआ था, अतः कर्त्तव्यपरायणता उसे पुण्य एवं स्वर्ग की प्राप्ति कराती[५] और कर्त्तव्यविमुखता पाप-वृद्धि करके नरक के द्वार प्रशस्त कर देती थी।[६] देवताओं ने ही उसके कर्त्तव्य निश्चित किए थे। उसे अपने-अपने क्षेत्रों का शासनाधिकार (मानवीय शासक के रूप में) सौंपा था। उनमें देवताओं ने कर्त्तव्यपालन के बदले में उसे "षड् भाग" प्राप्त करने की मान्यता प्रदान की होगी। राजस्व देकर प्रजा अपने मानवीय शासक ही नहीं, देवताओं के प्रति भी कर्त्तव्यों का पालन करती थी।[७] प्रजा का अपने समाज, राज्य एवं देवताओं के प्रति कर्त्तव्य था कि राजा की आज्ञाओं का पालन करे।

बृहस्पति की ही भाँति कौटल्य भी राजत्व का जन्म मात्स्य न्याय की अव्यवस्था को दूर करने के लिए मानते हैं। उनके मतानुसार मात्स्य न्याय से अभिभूत प्रजा ने वैवस्वत मनु को राजा बनाया था।[८] विवस्वान् अर्थात् सूर्य का पुत्र होने के कारण राजा देवपुत्र था। अन्यत्र, कौटल्य जनता में प्रचलित राजा की दिव्यता की भावना से राजा की दिव्यता में आस्था न रहते हुए भी अपने शासक को लाभान्वित करने के अभिप्राय से चरों द्वारा जनता में प्रचार करवाते हैं कि, "ये राजा इन्द्र एवं यम के समान हैं। अनुग्रह करने और दण्ड देने में समर्थ हैं। इनकी अवमानना करने वालों को दैवी दण्ड मिलता है। इस कारण राजाओं की अवमानना नहीं करनी चाहिए। (यह कह कर) क्षुद्र जनों का प्रतिषेध करें।[९] वस्तुतः कौटल्य के युग तक राजा की दिव्यता की भावना महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन हो चुकी थी और लोकग्राह्य भी। कौटल्य ने स्वयं नन्द

१. मनु ७।१३-१४।

२. बृ० स्मृ० व्य० का० ।२२; शान्ति ५७।४०

३. शान्ति, ५७।४०

४. अर्थ, १।४, पृ० ६

५. बृ० स्मृ० व्य० का०, १।४२

६. वही. व्य० का० १।५०

देव-प्रतिनिधि होने के कारण राजा विपरीतमार्गगामी नहीं हो सकता था। धर्म एवं दण्ड की प्रतिष्ठा के अनुसार वह सदैव नियंत्रित रहता था। उसके महान् कर्त्तव्य ही उस पर अंकुश का कार्य करते थे। अन्य किसी पार्थिव शक्ति द्वारा वह कदापि नियन्त्रित नहीं था।

७. यही कारण है कि अध्ययनशील विद्यार्थियों, यज्ञ में व्यस्त एवं अन्य धार्मिक कृत्यों में लगे हुए लोगों के पुण्यों का षड्भाग उसे प्राप्त होता था। कालिदास ने भी इस मत का समर्थन किया है, किन्तु उनके युग में भौतिक लाभों के इच्छुक तपोवनवासियों से वन्य उपज नीवार का षड्भाग मांगना संगत समझते थे।

अभिज्ञान शाकुन्तल, अंक, २, पृ० ३३

८. अर्थ, १।१३, पृ० २२।

९. वही. १।१३, पृ २२।

राजा से पृथिवी को मुक्त किया था और हृदय से दिव्यता के सिद्धान्त का समर्थक न होने के कारण उन्होंने अनुबन्धजनित दैवी राजत्व का वर्णन इस प्रकार किया था—

"मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे। धान्यषड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः। तेन भृताः राजानः प्रजानां योगक्षेमवहाः तेषां किल्विषमदण्डकरा हरन्ति यो (रन्त्ययो?) ग-क्षेमवत्यश्च प्रजानाम् ॥"[१०]

इस प्रकार राजत्व का जन्म मात्स्य न्याय की स्थिति को दूर करने के लिए हुआ था। मनु यद्यपि सूर्यपुत्र थे, फिर भी प्रजा अथवा जनता द्वारा निर्वाचित थे और अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए उन्हें प्रजा द्वारा धन-धान्य पुरस्कार-स्वरूप देने का निश्चय उन्हें दैवी और अनुबन्धजनित राजत्व का सम्मिलन स्थल सिद्ध करता है। इस प्रकार कौटलीय अर्थशास्त्र में राजत्व-सम्बन्धी दो चिन्तन-परम्पराओं का सम्मिलन हुआ है।

दैवी और सानुबन्ध राजत्व सिद्धान्तों का विकास महाभारत में अधिक स्पष्ट और ग्राह्य प्रतीत होता है। शान्ति पर्व में राजत्व के जन्म के पहले की अव्यवस्था के वर्णन उपलब्ध होते हैं। अव्यवस्था को दूर करने के लिए देवताओं ने चिन्तित हो ब्रह्मा से उपाय विचारने की प्रार्थना की थी, जिन्होंने यह कार्य सहर्ष स्वीकार करके "वर्गचतुष्टय" के वर्णनों से पूर्ण शास्त्र की रचना की थी।[११] तत्पश्चात् योग्य शासक के बारे में पता लगाने के लिए देवता विष्णु के पास गए। विष्णु ने अपने तेज से मानस पुत्र "विरज" का सृजन किया।[१२] "विरज" मानवों का प्रथम राजा हुआ। इस प्रकार "महाभारत" के अनुसार राजत्व दैवी था। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि, "विरज" की वंशपरम्परा में राज्य चलने लगा। अन्यत्र विकास-क्रम का वर्णन मिलता है जिसे अनुबन्ध सिद्धान्त का जनक बताया जा सकता है। "विरज" के परिवार में अत्याचारी राजा "वेन" उत्पन्न हुआ जिससे क्रुद्ध होकर ब्रह्मवादी ऋषियों ने उसे मार डाला।[१३] "वेन" की हत्या के साथ ही राजा की दिव्यता और दैवी उत्तराधिकार का सिद्धान्त व्यर्थ हो गया। "वेन" के शरीर-मंथन से उत्पन्न "पृथु" "वैन्य" ने ब्रह्मवादी ऋषियों से अनुबन्ध किया कि आप जो आज्ञा देंगे उसी का पालन करूँगा।[१४] इस प्रकार "पृथु" का राजत्व दैवी न होकर लोक-सम्मत था। यह "वेन" के पश्चात् राज्य एवं राजत्व का पुनर्जन्म था। "पृथु" के राजा होने के पश्चात् अपने तपोबल से भगवान् विष्णु "पृथु" के शरीर में प्रवेश कर गए।[१५] इस प्रकार अनुबन्ध-जनित द्वितीय राजत्व पुनः दैवी हो गया। देवताओं की भांति नरदेवता राजा के सम्मुख जगत् नमन करने लगा।[१६] महाभारत ने अनुबन्धजनित राजत्व में भी दिव्यता की स्थापना करके उसे पूर्णरूपेण दैवी बना दिया।

मनु[१७] और शुक्र[१८] ने भी देवांशों के सम्मिलन द्वारा राजत्व की उत्पत्ति का समर्थन किया था।

यूरोपीय दैवी सिद्धान्त—

दैवी राजत्व सम्बन्धी बार्हस्पत्य सिद्धान्त की वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत व्याख्या करने के पहले यूरोपीय राज्य-दर्शन में दैवी राजत्व की स्थिति की विवेचना असंगत न होगी। डा. फिजिस के मतानुसार, दैवी राज्याधिकार के सिद्धान्त के चार आवश्यक तत्त्व हैं। वे हैं (१) राजत्व देवताओं द्वारा प्रचारित संस्था है, (२) उत्तराधिकार-नियम भंग नहीं किया जा सकता, (३) राजा केवल

---

१०. अर्थ १।१३, पृ० २२-२३।
११. शान्ति ५९।२६-३१।
१२ वही. ५९।२४
१३. वही. ५९।१००-
१४. वही. ५९।१०६-०९
१५. वही. ५९।१३०
१६. वही. ५९।१३०
१७. मनु ६।४-५
१८. शुक्र १।७२। किन्तु अन्यत्र शुक्र (१।३१-३३) राजगुणों का आधार लेकर सत्व, रज और तम गुणों में राजत्व का वर्गीकरण करते हैं। सत्वगुण देवत्व एवं तमोगुण राक्षस वर्ग में राजा का स्थान निर्धारित करते थे।

भगवान् के प्रति उत्तरदायी है, एवं (४) अविरोध एवं राजाज्ञा-पालन के कर्त्तव्य देवता द्वारा निर्धारित हैं।[१९] इन तर्कों के आधार पर बार्हस्पत्य राज्याधिकार सिद्धान्त की समालोचना आवश्यक है। किन्तु दैवी राज्याधिकार के प्रचारक एवं प्रबल समर्थक जेम्स प्रथम के विचारों के उल्लेख के पश्चात् ही दैवी राज्याधिकार के सिद्धान्त की वैज्ञानिक समालोचना सम्भव है। अपनी पुस्तक "दि ट्रयू लॉ ओफ फ्री मोनर्की" में जेम्स का कथन है "राजा को देवता कहना उचित ही है" क्योंकि वे दैवी शक्ति का पार्थिव प्रतिविम्ब प्रस्तुत करते हैं। देवता निर्माण एवं विनाश-कार्य करने में समर्थ हैं, अपनी इच्छा के अनुसार निर्माण और अनिर्माण, जीवन प्रदान करने या मृत्यु भेजने, सभी के लिये निर्णय करने एवं स्वयं किसी के प्रति उत्तरदायी न होने (की सामर्थ्य रखते हैं)। राजाओं की शक्तियां भी समान होती हैं। राजा की दुष्टता उन्हें (प्रजा को) कभी यह शक्ति प्रदान नहीं करती कि अपने निर्णायक की निर्णायक बन बैठे। सान्त्वना, सच्ची प्रार्थना एवं अपना उच्च (चारित्रिक) जीवन ही सही मार्ग है, जिनके द्वारा वे उस दुःखद अभिशाप से मुक्ति दिलाने के लिए देवताओं को बाध्य कर सकते हैं।[२०] यदि राजकुमार ऐसी आज्ञाएं देते हैं जिनका पालन दैवी सिद्धान्त के प्रतिकूल है या प्रकृति के प्रतिकूल है अथवा असम्भव है तो प्रजा उसके लिए विना किसी प्रकार के विरोध अथवा अवरोध के दण्ड की भागिनी है। इस प्रकार जहां प्रत्यक्ष आज्ञापालन सम्भव नहीं, वहां परोक्ष ढंग से आज्ञा-पालन कर सकते हैं।[२१]

इस प्रकार पाश्चात्य दैवी राज्याधिकार का सिद्धान्त राजा की दिव्यता, उसके वंशपरम्परागत अधिकार, देवताओं के सदृश उसके कार्यों एवं उसकी आज्ञाओं के पालन को अनिवार्य घोषित करता है। राजाज्ञा के पालन की अक्षमता पर दण्ड सहर्ष स्वीकार कर लेने और उसके विरुद्ध किसी प्रकार के विरोध प्रस्तुत न करने की भावना राजा को सर्वश्रेष्ठ मनुष्य घोषित कर देती थी। यह जानते हुए कि, उसकी (राजा की) आज्ञा देवता एवं प्रकृति-विरुद्ध तथा असम्भव है, आज्ञा-पालन करने के प्रयत्न करना और असमर्थ होने पर दण्ड स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत राज्य राजा का दैवीकरण पूर्ण कर देता है। अत्याचारी राजा से मुक्ति के लिए विरोध न करके देवता के प्रति प्रार्थना, अपने कार्यों को उन्नत करने को अन्तिम मार्ग बता कर जेम्स ने राजा के दैवीकरण को पूर्ण कर दिया था। जेम्स के लिए निकटभूत का इतिहास उदाहरण था, जब चार्ल्स प्रथम में निष्ठा त्याग कर कुपित हो प्राणदण्ड

---

19. The Nature and Grounds of Political Obligations in Hindu State, p. 40.

The theory of divine right involves, according to Dr. Figgis, four component elements. They are : firstly, that "monarchy is divinely ordained institution"; secondly, that "hereditary right is indefeasible", thirdly, that "kings are accountable to God alone", and fourthly, that "non-resistance and passive obedience are enjoined by God."

20. Political Thought in England—From Bacon to Halifax, Chapt. I, p. 7. Extracts of James' work "True Law of Free Monarchy." "Kings are justly called gods; for they exercise a manner of resemblance of divine power on earth. Godhath power to create or destroy, make or unmake at His pleasure, to give life or to send death, to judge all and to be accountable to none. And the like power have kings. The wickedness of the king can never make them that are ordained to be judged by him to become his judges. Patience, earnest prayer and amendment of their lives (are) the only lawful means to move God to relieve them of that heavy curse.

21. ibid, p. 9.

"If princes command anything which the subjects may not perform because it is contrary to the laws of God or nature or impossible subjects are bound to undergo punishments without either resistance or reviling and so yield a passive obedience where they cannot exhibit an active one."

दे दिया गया था।[२२] प्रजा में शासक के प्रति निष्ठा परमावश्यक हो गई थी। इसके विपरीत प्राचीन भारत में राजत्व का जन्म, विकास एवं महत्त्व सभी दैवी कृपा, प्रेरणा एवं प्रजा में सुख-समृद्धि की भावना के लिए माना गया था। अतः राजा के अत्याचारी होने पर दैवी निष्ठा का विरोध होता था। अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान् होने तक ही प्रजा भक्त होती थी। तभी तक वह चराचर का स्वामी, वर्णाश्रमों का नेता एवं देवनिर्मित माना जाता था।[२३] विचलित होने पर उसकी दिव्यता समाप्त हो जाती थी। वह "वेन" की भांति जीवनमुक्त किया जा सकता था।[२४]

दैवी राजत्व-सिद्धान्त का व्यवहारपक्ष—

बार्हस्पत्य चिन्तन का सिद्धान्त ही नहीं वरन् प्रबल व्यवहार पक्ष भी था। बृहस्पति मानते हैं कि राजा की दिव्यता उसके व्यक्तित्व में नहीं, वरन् उसके कर्त्तव्य में निहित रहती है। दैवी राज्याधिकार के सिद्धान्त को अधिक व्यापक बनाते हुए उनका कथन है कि, आवश्यकतानुसार (राजा) अग्नि, आदित्य, अन्तक वैश्रवण और यम आदि की भान्ति कार्य करता है। अनुचित मार्ग पर चलने वालों को जब यह अपने तेज से ग्रस्त करता है, तब वह "पावक" होता है। अपने चरों द्वारा लोगों के कार्यों का निरीक्षण तथा उनके लिए कल्याणकारी कार्य करते समय (वह) "भास्कर" होता है। जब अशुचि लोगों पर क्षुब्ध होकर पुत्र, पौत्रों और अमात्यों सहित (उन्हें) नष्ट करता है, अधार्मिकों को तीक्ष्ण दण्ड द्वारा नियन्त्रित करता है, और धार्मिकों पर (जब) अनुग्रह करता है तब "यम" सदृश होता है। जब उपकारियों को धन देता है और अपकारियों का उन्मूलन करता है, किसी को श्री (धन) देता है और किसी का उच्छेदन करता है, तब वह इस लोक में "वैश्रवण कुबेर" होता है।[२५] बृहस्पति की ही भान्ति शुक्र भी उसके विभिन्न कार्यों के अनुरूप राजा की दिव्यता स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि, "इन्द्र" की भाँति राजा धन एवं सम्पत्ति की रक्षा करता है। जिस प्रकार "वायु" सुगन्धि का प्रसार करता है, उसी भांति राजा अच्छे एवं बुरे कार्यों का कारण होता है। जिस प्रकार "सूर्य" अन्धकार को समाप्त करता है उसी भांति राजा धर्म की स्थापना तथा अधर्म का नाश करता है। "यम" जिस भांति दण्ड देता है उसी प्रकार राजा दण्ड्यों को दण्ड देता है। "अग्नि" की भांति उत्तमों का शोधक राजा है। जिस प्रकार देवता "वरुण" प्रत्येक वस्तु में आर्द्रता का सृजन करता है उसी भांति धन प्रदान करके राजा सब का पालन करता है। जिस प्रकार "चन्द्रमा" अपनी किरण द्वारा लोगों को आनन्दित करता है उसीभांति राजा अपने गुणों तथा कार्यों द्वारा लोगों को प्रसन्न करता है। जिस प्रकार

---

22. History of Europe, p. 277.

High Court of Justice......found the king guilty of treason as defined for this particular occasion. On January 30, 1649 Charles was executed on a scaffold created in front of his palace of Whitehall.

२३. बृ० स्मृ० व्य० का०, १।७-६

२४. शान्ति ५६।१००

२५. ६८।४१-४७

"नहि जात्ववमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥
कुरुते पच रूपाणि कालयुक्तानि यः सदा।
भवत्यग्निस्तथादित्यो मृत्युर्वैश्रवणो यमः॥
यदा ह्यासीदतः पापान् दहत्युग्रेण तेजसा।
मिथ्योपचरितो राजा तदा भवति पावकः॥
यदा पश्यति चारेण सर्वभूतानि भूमिपः।
क्षेमं च कृत्वा व्रजति तदा भवति भास्करः॥
अशुचींश्च यदा क्रुद्धः क्षिणोति शतशो नरान्।
सपुत्रपौत्रान् सामात्यांस्तदा भवति सोऽन्तकः॥
यदा त्वधार्मिकान् सर्वांस्तीक्ष्णदण्डैर्नियच्छति।
धार्मिकान् चानुगृह्णाति भवत्यथ यमस्तदा॥
यदा तु धनधाराभिस्तर्पयत्युपकारिणः।
आच्छिनत्ति च रत्नानि विविधान्यपकारिणाम्॥
श्रियं ददाति कस्मैचित् कस्माच्चिदपकर्षति,
तदा वैश्रवणो राजान् लोके भवति भूमिपः॥"

होमरयुगीन ग्रीस में भी इसी प्रकार देवताओं से राजा को संबद्ध माना जाता था।

"कुबेर" विश्व के रत्नों का रक्षण करता है उसी भांति राजा राज्य के कोष तथा सम्पत्ति की रक्षा करता है। जिस प्रकार समस्त अंशों में किसी की न्यूनता के कारण चन्द्रमा का सौंदर्य कम हो जाता है। उसी भांति उपर्युक्त आवश्यक अंशों के अभाव में राजा समृद्ध नहीं होता।[२६] बृहस्पति राजा के विभिन्न प्रकार या श्रेणियां नहीं मानते, किन्तु शुक्र ने गुणों के अनुसार राजा का सत्त्व, रज तथा तम आदि तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया है।[२७] बृहस्पति तथा शुक्र दोनों से ही अधिक राजा में व्यावहारिक दिव्यता के दर्शन सोमदेव सूरि ने किए हैं। उनका स्पष्ट कथन है कि, राजा के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रत्यक्ष देवता नहीं क्योंकि वह त्रिमूर्ति (—ब्रह्मा, विष्णु, शिव) धारण करता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में क्षत्रिय "ब्रह्मा" होता है, जब, वह शाश्वत ब्रह्म में अपने चित्र को स्थिर करता है तथा विद्या की समस्त शाखाओं का पूर्ण अध्ययन करता है। जब राज्यश्री एवं अभिषेक के पश्चात् राजा प्रेमपूर्वक प्रजा पालन करता है, तब वह "विष्णु" माना जाता है। जब अपने प्रताप द्वारा कण्टक-शोधन करता है और राक्षसों की भांति के शत्रुओं का संहार करता है, तब सम्राट् "पिनाकपाणि" (शिव) होता है।[२८]

राज्याधिकार का बार्हस्पत्य सिद्धान्त राजा के दिन-प्रतिदिन के प्रजापालन के प्रयत्नों का दैवीकरण मात्र है। नीरक्षीरविवेकी व्यक्ति को यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि, वह सिद्धान्त राजा के व्यक्तित्व की नहीं वरन् राजत्व अथवा राजपद की दिव्यता स्वीकार करता है। यह सिद्धान्त राजा के पद की दिव्यता स्वीकार करता है, उसके व्यक्तित्व अथवा शरीर की नहीं। राजगुण ही उसके पद एवं उसके राजत्व के अन्तर्गत उसके व्यक्तित्व को दिव्यता प्रदान करते हैं। राज-परिवार में जन्ममात्र नहीं। इस सिद्धान्त द्वारा अनुशासित राजा कभी भी स्वच्छन्द अथवा अत्याचारी नहीं हो सकता। यदि राजा अन्तिम मौर्य सम्राट् बृहद्रथ की भांति प्रतिज्ञादुर्बल होता है तो उसे अपदस्थ करने में दिव्यता कोई बाधा उपस्थित नहीं करती।[२९] वह ब्रिटेन के शासकों की भांति दिव्यता का दावा नहीं कर सकता।[३०]

राजा के प्रति प्रजा में आदरभाव की स्थापना के लिए बृहस्पति कहते हैं कि, मनुष्य समझ कर सद्यः-जात राजा की अवमानना न की जाए (क्योंकि), इसके व्यक्तित्व में मनुष्य के रूप में महान् देवता का वास होता है।[३१] सम्भवतः इस कथन से उनका उद्देश्य सुप्रतिष्ठित राजवंश की मर्यादा-स्थापना एवं राजा को महत्त्व प्रदान करने से अधिक कुछ नहीं था। इन सब वर्णनों के विपरीत महाभारतकार राजा के व्यक्तित्व को दैवी घोषित करता है। उसका मत है कि राजा की उत्पत्ति देवताओं द्वारा हुई। देवों ने राजा की स्थापना की है। इसी कारण कोई उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। इसी कारण राजा के वश में समस्त जगत् है। तप द्वारा भगवान् विष्णु राजा के शरीर में प्रवेश कर गए थे, तभी से

---

२६. शुक्र, १।७२-७७।

२७. वही, १।२६

२८. नीति, अ० २९।१६-१९

त्रिपुरुषमूर्तित्वाद्ध भूभुजः प्रत्यक्षं दैवमस्ति। प्रतिपन्नप्रथमाश्रमः परे ब्रह्मणि निष्णातमतिरुपासितगुरुकुलः सम्यग्विद्यायामधीती कौमारवयोऽलंकुर्वन् क्षत्रपुत्रो भवति ब्रह्मा।

संजातराज्यलक्ष्मीदीक्षाभिषेकं स्वगुणैः प्रजास्वनुरागं जनयन्तं राजानं नारायणमाहुः।

प्रवृद्धप्रतापतृतीयलोचनानलः परमैश्वर्यमातिष्ठमानो राष्ट्रकण्टकान् द्विषद्दानवान् छेत्तुं यतते विजिगीषुभूपतिर्भवति पिनाकपाणिः॥

२९. इण्डियन एण्टिक्वेरी—२; पृ० ३६३, हर्षचरित (अंग्रेजी अनु.) पृ. १९३।

३०. Political Thought in England p. 7.

३१. शान्ति ६८।४०

नहि जात्ववमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥

बुद्धिमानों का कथन है कि देव तथा नरदेव (–राजा) तुल्य हैं।[३२] मनु ने भी इस मत का समर्थन किया है।[३३]

ऐतिहासिक दृष्टिकोण—

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस विषय का अनुशीलन कम महत्त्वपूर्ण न होगा। विषय का मूल वैदिक वाङ्मय में है। इस सिद्धान्त का बीज-वपन "यजुर्वेद" ने किया था। उसका कथन है कि "सविता" से आज्ञा प्रसारित करने के लिए, "अग्नि" से गृहस्थों की रक्षा के लिए, "सोम" से वनस्पतियों की रक्षा के लिए, "बृहस्पति" से वाणी के लिए "इन्द्र" से ज्येष्ठता के लिए और "वरुण" से धर्म की रक्षा के लिए राजा शक्ति ग्रहण करता है।[३४] "अथर्ववेद" उसे इन्द्र, सोम, वरुण, मित्र, यम, पितृ तथा सविता का भागस्थ मानता है।[३५] शतपथ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण राज्याभिषेक का विस्तृत वर्णन करते हैं जिसके अनुसार वैधानिक राजत्व प्राप्त करने के पहले उसके (राजा के) किसी प्रकार के अधिकार नहीं होते थे।[३६] वह विभिन्न दैवी शक्तियों के क्षेत्रों पर शासनाधिकार उन शक्तियों से प्राप्त करता था।[३७] वैदिक वाङ्मय से राजनीतिक तत्त्वों का संकलन, चयन तथा सिद्धान्तीकरण का कार्य बृहस्पति की विशेषता है, जिसके कारण उन्हें राजनीतिक परम्परा को जन्म देने का श्रेय प्रदान किया गया है।

---

३२. वही, ५१।१२९-३०, १४० ।

३३. मनु ७।८

३४. वाजसनेयी संहिता ९।३९, १०।२१, २८

३५. अथर्ववेद १०।५।८-१४ ।

३६. शतपथ ब्राह्मण ३।२।३।१९
तैत्तिरीय ब्राह्मण १।२।१०

37. Hindu Polity—p. 224.

With the actual observation of the sacrament of Coronation Oath, it was impossible for a theory of origin other than human to take root in Hindu Politics. Even a usurper, as long as he was a Hindu, had to undergo the sacrament of coronation and when he actually took the oath his old title of force and conquest disappeared.

वाजसनेयी संहिता १०।१७

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिंचाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा।
इन्द्रस्येन्द्रियेण क्षत्राणां क्षत्रपतिरस्येति दिद्यून् पाहि ॥

उपर्युक्त वर्णनों का समर्थन करते हुए डा० प्रमथनाथ बनर्जी ने अपना मन्तव्य प्रकट किया है—

The king in India was invested with something like a divine halo, but it was only a righteous monarch who was regarded as divine. The Hindu king's claim was very different from the divine right—"the right divine to govern wrong", to use the words of a famous historian—which was claimed by the monarchs of Europe in the latter part of the Middle Ages. Kingship in India was a political office and not the sphere of power of a fortunate individual ....Whatever might be the character of the monarchy on the surface, there is no doubt that at bottom the relations between the ruler and the ruled were contractual. It was in return for the services he rendered to the people that he received their obedience and their contributions for the maintenance of royalty.

Public Administration in Ancient India pp. 71-72.

मैनपुरी की प्राचीन मूर्तियां तथा धार्मिक-ऐतिहासिक स्थान

[श्री चतुर्भुजदास]

मैनपुरी उत्तर प्रदेश के जिलों में से एक जिला है जो अपनी ऐतिहासिक बातों के लिए तथा वीरता के लिए प्रसिद्ध है । जैसा कि बहुधा सुना जाता है— 'मैनपुरी के आये वीर' ।

मैनपुरी ईसन नदी के दाहिने तट पर बसा हुआ है **'ईसन नद के दहिन तट मैंनपुरी शुभ स्थान जहां वसति सब जाति हैं धीर वीर बलवान ।'** मैनपुरी अति प्राचीन स्थान है जहां कभी मैन (कामदेव) की तपोभूमि थी । इस जगह मैनी देवता का प्रत्येक मंगल कार्य में पूजन होता है । इस लिए इस स्थान का नाम मैनपुरी पड़ा । यहां मैनी देवता की बृहत्काय मूर्ति है । यह मूर्ति अन्तिम मौर्य काल की है । मेरी राय में यह मूर्ति शेषशायी भगवान् विष्णु की हो सकती है । परन्तु लोकाचार में यह मैन देवता करके पूजित है ।



(मैनी देवता की लेटी मूर्ति तथा लेखक)

भारतवर्ष में जिस समय बौद्धमत का प्रचार एक उग्र रूप धारण कर रहा था उस समय सनातन धर्म की रक्षार्थ ऋषियों ने अर्बुद गिरि (आबू) के पहाड़ पर, जो राजस्थान में है, अग्निकुण्ड रचा जिस में चार प्रकार के क्षत्रिय प्रमर, चौहान, सोलंकी और परिहार उत्पन्न हुए । इन में चौहान वंश का प्रताप भास्कर समस्त भारतवर्ष में प्रकाशमान हुआ जिन्होंने बौद्ध मतावलंबियों की शक्ति को क्षीण कर वैदिक धर्म की ध्वजा फहराई । इनमें जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है चौहानों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई है । इस में प्रथम निरंकार हुए इनके पुत्र ओंकार जिनके आत्मज जलस्वरूप हुए । उनके पुत्र कमल जिनके ब्रह्म, ब्रह्म के सुत वक्षःस्थल हुए जिनके पुत्र चतुर्भुजस्वरूप ने सोमवंश की कन्या के साथ विवाह किया । इनसे जगदत्त उत्पन्न हुए । इनके पुत्र मूर्तिसेन, मूर्तिसेन के सूर्यदत्त; इनके रणकीर्तिदेव हुए । रणकीर्तिदेव के पुत्र कुमार महाराज जयब्रह्म हुए जिन्होंने पश्चिम में म्लेच्छों पर विजय पाकर राज्य का विस्तार किया और विजय होने के उपलक्ष्य में एक बड़ा यज्ञ किया । इनके पश्चात् महाराज रणवीर दारुणदेव ने मंदराज तक राज्य का विस्तार किया । फिर इस वंश के राजाधिराज सूर्तिदेव ने कछवाहों को परास्त किया और राज्य छीन कर अपना प्रभाव बढ़ाया । इस वंश के ४७वें महाराज मानसुवक वर्मा ने दो हजार यज्ञ किए । ये महाराज मानचन्द्र बड़े प्रतापी हुए जिन्होंने चन्देरी से दक्षिण तक अपने अधिकार में कर लिया और सम्वत् ४२० पर्यंत राज्य किया । इस वंश के ५४वें राजा माणिकवाराह ने आसावरी देवी को सम्भरि में स्थापित कर गढ़ बनवाया । इसी समय से चौहानवंशोद्भव राजा सम्भरीनरेश कहलाने लगे । महाराज मलियागिरि ने मालागढ़ का निर्माण कराया और उनके पुत्र मलसिररणधीर ने विजयगढ़ बनवाया ।

महाराज मानकृतविष्णु के कुमार सामथसेन ने चित्तौरगढ़ और नरवरगढ़ निर्माण किए । इस वंश के ६१वें राजा अजयभूपालदेव चक्रवर्ती हुए । ६४वें राजा मानचात्रकदेव वर्मा हुए जिनके पुत्र वीरबलवनदेव के कुमार महाराज विष्णुबलदेव ने

धर्म्म-यज्ञों को किया। उनके २० पुत्र हुए। ६७ वें राजा पिथौरा सम्वत् ६७ में हुए। इनके बीस पुत्रों ने पश्चिम में हाड़ा, खीची आदि स्थानों में राज्य स्थापित किए।

महाराज अल्हनदेव ने अलवर में राज्य स्थापित किया और गढ़ बनाया। इनके पुत्र महाराज अनआन-देव हुए। ७०वें राजा गोदवर्मा के पुत्र राजा कंठ-पाल वर्मा हुए जिनके पुत्र राजा गंगावर्ण देव सम्वत् ११४१ में विद्यमान थे। ७३वें राजा सोमेश्वर हुए। इनके दो रानिया थी पहली दिल्ली के तोमर वंश की थी जिससे महाराज पृथ्वीराज उत्पन्न हुए और दूसरी उज्जैन के प्रमरवंश की थी जिनसे चौहान देव उत्पन्न हुए।

महाराज सोमेश्वर का राज्य दक्षिण में सोमनाथ तक और सम्पूर्ण बंगाल में था। ७४वें राजा पृथ्वीराज ने तोमरों से दिल्ली छीन ली। इनकी तीन रानियां थीं, पहली राठौरों की, दूसरी कछवाहों की और तीसरी कन्नोज के राजा जयचन्द की पुत्री पद्मिनी थी। इनके कोई पुत्र नहीं था, अतः इन्होने एक निकट के सम्बन्धी का लड़का गोद लिया जिसका नाम विजयराज था। ११९१ ई० में पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन गोरी को पराजित किया, परन्तु सन् ११९३ मे पृथ्वीराज की हार हुई। दिल्ली का राज्य शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज के निकट सम्बन्धी को दे दिया। ७५वे राजा विजयराज ने अजमेर में राज्य किया और उनके बाद लखनदेव राजा हुए।

७७वें राजा संकटरणधीर हुए इनके आठ रानिया थी जिनसे २२ पुत्र हुए थे। ये सब पृथक्-पृथक् देशों के राजा हुए। इनकी एक रानी कुशवंशी से, जो नरवर की थी, तीन पुत्र हुए। प्रथम पुत्र समेरसाह की औलाद में परतापनेर के राजा, द्वितीय पुत्र देव-ब्रह्म असौली में स्थापित हुए। इनकी सन्तान मैनपुरी-नरेश हुए और तीसरे पुत्र राजदेव जो रिजोर के राजा हुए। (राजा शिवमंगलसिंह जी राजा बहादुर फोर्ट मैनपुरी के वंशवृक्ष, डायरी एवं एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर उपर्युक्त परिचय दिया गया है।)

७८वें राजा देवब्रह्म विक्रम सम्वत् १२७५ में असौली गाँव से मैनपुरी में आए। इनके प्रपौत्र महाराज वीरसिंहदेवजू ने १४९८ वि. स. यानी १४४१ ई० में मैनपुरी के किले का निर्माण कराया। इसी वंश में वीरशिरोमणि महाराज तेजसिंह हुए जिनका युद्ध सन् १८५७ ई० में अंग्रेजों के साथ हुआ था। राजा तेजसिंह स्वतंत्रता के पुजारी वीर, सेनानी थे, जिनकी करवाल ने अंग्रेजों के दाँत खट्टे किए थे। आप बागी करार किए गए और काशी बनारस में रखे गए। आप का स्वर्गवास ४ अगस्त सन् १८९९ को ६४ वर्ष की आयु में हुआ था।



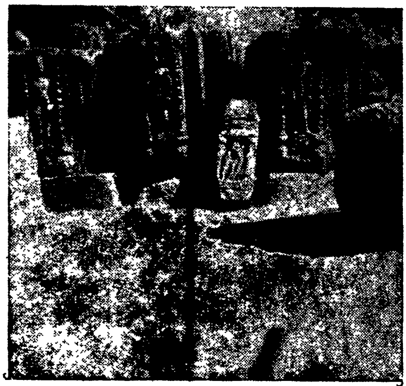
(मैनपुरी राज्य का किला)

महाराज तेजसिंह अंग्रेजों द्वारा निर्वासित किए गए थे, अतः इनके भाई राजा भवानीसिंह को खान-पान दिया गया। भवानीसिंह के पुत्र प्रतापसिंह और मैनपुरी राज्य तथा चौहान वंश के अन्तिम नरेश राजा शिवमंगलसिंहजूदेव थे जिनका जन्म मिती श्रावण सुदी ७, गुरुवार दि ३१ जुलाई सन् १८७३ ई० में हुआ और मृत्यु १९३७ ईसवी में हुई। राजा शिव-मंगलसिंहजूदेव, जो चौहान वंश के चमकते अन्तिम नरेश थे, बड़े साधु प्रकृति के सौम्य क्षत्रिय थे, सनातन धर्म के पूर्ण अनुयायी थे। लेखक के पिता स्वर्गीय रावत, राधामोहन चतुर्वेदी आप के राज्य के जरनल मैनेजर थे। और लेखक भी कुछ समय तक आपके राजकुमार का शिक्षक तथा निरीक्षक रहा। राजकुमार

के दिवंगत होने पर इस लेख का लेखक प्राइवेट सेक्रेटरी भी रहा।

राजा शिवमंगलसिंह ने जन-हित और समाज-कल्याण के अनेक कार्य किये हैं जिनके स्मारक अब तक उनकी धवल कीर्ति के साक्षी हैं।

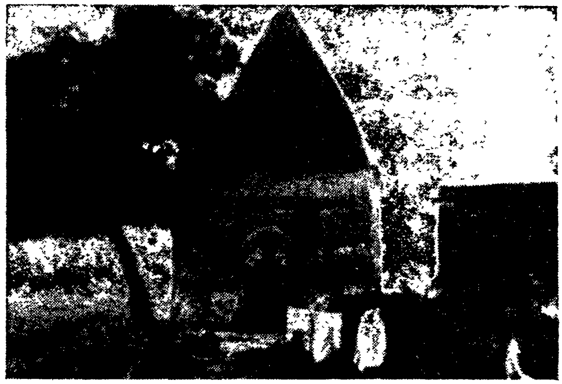
मैनपुरी में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि इस वंश के राजा जगतमणि एक समय दर्शनार्थ बड़े मानिकपुर गए थे वहाँ श्री देवी जी ने इनको स्वप्न दिया कि हमको अपने साथ मैनपुरी ले चलो। वस्तुतः महाराज उनको ले आए और किले से एक मील की दूरी पर मन्दिर बनवा कर देवी जी को वहाँ स्थापित किया,



(देवी की मूर्तियां)

अद्यपर्यन्त राज्य में उनका पूजन होता है। कुछ लोगों का कहना है कि ये देवी जी नगर कोट की है। प्रयाग अलोपी देवी के मन्दिर के पण्डों के कथनानुसार ये देवी वहाँ से अलोप होकर मैनपुरी में प्रकट हुई।

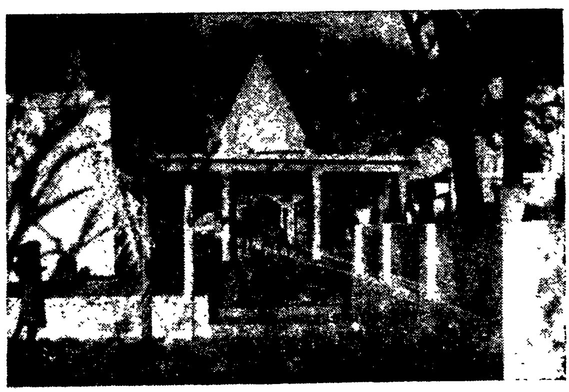
मैनी देवता के स्थान के निकट एक कुण्ड है जो सूखा पड़ा रहता है और इसी के समीप कुण्डेश्वर महादेव जी की मूर्ति तथा धर्मस्थान मन्दिर



(मन्दिर शंकर जी नगरिया मयन ऋषि के स्थान के पास)

है। यह मन्दिर राजा दलेलसिंह की रानी द्वारा बनवाया गया था जिसके भित्ति-चित्र उस समय की कलात्मक कारीगरी के अनुपम उदाहरण हैं। कुण्ड का स्थान बड़ा रमणीक है, किन्तु अब भग्न होता जाता है (चित्रों के छविकार योगेश्वरनाथ तथा शरच्चन्द्र बधाई के पात्र हैं जिनके द्वारा चित्र प्राप्त किये गये।)

मैनपुरी शहर से करीब एक मील पूर्व की तरफ श्री चांदेश्वर महाराज का प्राचीन मठ है। यह स्थान सिद्धपीठ के नाम से प्रसिद्ध है जहां मैनपुरी राज्य के गुरु एवं उपदेशक वेदवेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ, सर्वशास्त्र-निष्णात, परम भागवत मिश्रकुल-कमल-दिवाकर माथुर



(मन्दिर श्री चान्देश्वर जी महाराज मैनपुरी)

(शेष पृष्ठ १८ पर)

खोटा पैसा

[श्री कन्हैयालाल]

नववधू के आगमन पर घर के सभी प्राणी प्रफुल्लित हो उठते हैं। सभी उसके विषय में अधिक-से-अधिक जानने को उत्सुक रहते हैं। एक ओर पति महोदय जहां परिजनों से आंख बचा कर उसके रूप तथा चेष्टाओं को लोलुप दृष्टि से बार-बार देखने का प्रयत्न करते हैं, तो दूसरी ओर सास-ससुर आदि अपने प्रति उसके व्यवहार को परीक्षक की भांति पैनी नजर से देखते हैं। बालकों के मन भी वल्लियों उछला करते हैं। उनके अनुमान से नवागन्तुका सभी प्रकार से दोषरहित एवं सर्वगुणसम्पन्न ही हुआ करती हैं।

जमुना को द्विवेदी परिवार में आये अभी केवल दो ही दिन हुए हैं। इस घर में उसके पति के अतिरिक्त सास-ससुर तथा दो देवर कुल मिलाकर छः प्राणी हैं। घर के एक कोने से अवगुण्ठनवती वह, लज्जा के भार से दबी-सी, घुटनों में सिर दुबकाये बैठी है। नवेली को देखने के लिए गांव-भर की स्त्रियां तांता लगाये हैं। एक मण्डली जाती है तो दूसरी आती है। वृद्धा सास ने समीप जाकर कहा :—"उठो बेटी, कुछ खा लो।"

"ना मां जी, भूख नहीं हैं।"

"देखो बेटी, शर्माओ नहीं। यह तुम्हारा ही तो घर है।" इतना कहते हुए राधादेवी ने वधू के मुख में कौर दिया ही था कि खांसते हुए ससुर पंडित रघुनाथ ने पुकारा :—"सुनती हो गणेश की मां, आज पन्द्रह तारीख है। हरिया और नरेश दोनों को फीस देकर स्कूल भेज दो।"

'अच्छा जी अभी भेजती हूँ" कहते हुए राधा ने आवाज दी—"हरिया! ओ हरिया! आज क्या अभी दस नहीं बजे हैं?

नरेश दसवीं कक्षा में पढ़ता है। वह स्वयं स्कूल के लिये तैयार हो गया। परन्तु हरिया अभी बच्चा है। प्रतिदिन मां उसे स्कूल जाने के लिये तैयार करती थी। आज मां को फुर्सत न थी। वह उसे तैयार करके स्कूल भेजने का आदेश बहू को दे कर बाहर बैठी स्त्रियों को दहेज का सामान दिखाने लगी। इधर दोनों बच्चों ने टिफिन में दोपहर का कलेवा रखती हुई भाभी से कहा "आज तो बारह बजे ही लौट आना है भाभी, खाने की क्या जरूरत पड़ेगी?"

शीघ्र घर लौटने की उत्कण्ठा को समझ कर जमुना मन-ही-मन में प्रमुदित हो उठी। बच्चों ने भी अनिच्छापूर्वक स्कूल की राह ली।

× × ×

प्रायः देखने में आता है कि प्रथम परिचय में जो चेहरे हमें भले लगा करते हैं, कालान्तर के परिचय से उनके प्रति हमारी श्रद्धा और भावनाएं लुप्त-सी हो जाती हैं। विवाह हुए दो वर्ष हो गये। सास-ससुर और यहां तक कि दोनों, छोटे देवर सभी का जमना के झगड़ालू व्यवहार से नाक में दम है। हरिया को कभी-कभी धमकाना तो वह अपना अधिकार ही समझती है। तभी तो आज अपने दुधमुँहे शिशु को खाट पर बिलखते देख उसने हरिया को डाँटा :—

"दीखता नहीं बच्चा कब से रो रहा है। और तू नवाब साहब कौडियां ही खेल रहा है?"

"भाभी, आप ही क्या कर रही हैं? खुद क्यों नहीं उठा लेती?"

"अच्छा, तू अब बहुत बोलने लगा है। देख, आज तेरी कैसी मरम्मत कराऊँगी।"

"करा लेना", मुँह बनाते हुए हरिया ने उत्तर दिया। उसे विश्वास था कि भाभी अधिक-से-अधिक बड़े भय्या से उसकी शिकायत करेगी। और भय्या उसकी इस शिकायत पर कुछ भी नहीं कहेंगे। परन्तु बच्चे से हरिया बहुत प्यार करता है। वह उसके लिये खिलौना है। बच्चे को सचमुच रोते देख वह दौड़ा उसे उठाने। बच्चा अपने नन्हे हाथों से नीचे बिछाये कपड़े को ऊपर खींच लाया था। खरहरे में पड़े रहने से होने ही वाली पीडा के कारण चिल्ला रहा था। हरिया ने उठाकर कन्धे से चिपकाया और चला बाहर

खिलाने। अभी वह घर से बाहर गली में आया ही था कि साथी बच्चों ने खिल्ली उड़ाई। एक बोला—'ऊँह! बेचारे को भाभी के बच्चे खिलाने का काम मिला है।'

दूसरा—'न खिलाये तो रोटी भी न मिले।'

हरिया खिसिया कर उल्टे पैर घर में आ गया। उसने सोचना प्रारम्भ किया। क्या सचमुच घर में भाभी की ही इच्छा पर मुझे रोटी मिलती है? क्या किसी दिन यह भी हो सकता है कि भाभी मुझे खाने को भी मना करेगी? नहीं, जब तक मेरी मां है तब तक भाभी की क्या मजाल जो वह मुझ पर हुकम चलाए। वह इस विचार वेला में विचरण कर ही रहा था कि खेत से लौट कर चारे का गठ्ठर सिर से आंगन में पटक कर मां ने आवाज लगाई :—'हरिया बेटा'

हरिया न बोला।

"कहां है बहू वह" मां ने दुलार से पूछा।

"वह बैठा घर-घुसा लाडला।"

"अरी तो कौन बात है। तू हर समय उसके पीछे पड़ी रहती है।"

हरिया मां की सहानुभूति पा कर सिसकने लगा। उस दिन सास-बहू में कुछ झड़प भी हो गई। जमना यथावसर सास को भी अपनी जिह्वा की कटुता का परिचय दिये बिना न रहती थी। हरिया कभी-कभी भाई गणेश से भाभी की शिकायत करता तो वह केवल चुप ही रह जाते। वस्तुतः भाइयों तथा मां के प्रति उसकी भावनाएँ अत्यंत स्नेहिल थीं। परन्तु पत्नी को कुछ कह भी नहीं सकता था। क्योंकि उसके लिये जमुना वह कंटीली बेरी थी, जिसके सुस्वादु फलों के लोभ में उसे उसके कांटों की परवाह न थी।

× × ×

पण्डित रघुनाथ मंझले लड़के नरेश की शादी करके ही स्वर्ग सिधार गये। जमुना की देवरानी स्वभाव से सीधी-साधी तथा कुछ पढ़ी-लिखी भी है। उसके लिये अधिक गहनों का बनवाया जाना ही दोनों के बीच एक दीवार बन गया था। जमुना ने उसी समय आपत्ति भी की थी। परन्तु ससुर बोले थे—"अरे वह ऊंचे घर की लड़की है। इतने गहने भी वह कम ही बतलायेगी।" नई बहू के घर में आ जाने से सभी का उसके प्रति स्नेहिल व्यवहार देखकर तो उसके कटे घाव पर मानो नमक ही पड़ गया। गणेश जब से जेठ जी बने हैं, घर में कम आने-जाने लगे हैं। आज जब वह दोपहर का भोजन करने आये तो मौका पाकर जमुना ने कान भरे—"अपने-अपने भाग्य हैं। जब से इस घर में आयी हूँ सबकी दुश्मन बनी हूँ एक दूसरी भी है, जिसके घर में पाँव रखते ही जादू चढ़ गया है।'

शीला ने जब आंगने में से जेठानी की यह बात सुनी तो वह मन-ही-मन रो उठी।

पिता का हाथ सिर से उठ जाने के पश्चात् नरेश को लाचार हो कर पढ़ाई छोड़ नौकरी करनी पड़ी। उसके मैट्रिक करने पर ही उन्हें १५० रु० मासिक की सरकारी नौकरी मिल जायेगी ऐसी किसी की आशा न थी। अपने वेतन में से प्रतिमास हरिया की फीस वे भेज देते। शेष घर वालों से न कुछ लेना और न ही कुछ देना।

इधर जेठानी का असह्य व्यवहार शीला अधिक दिन सहन न कर सकी। एक दिन तंग आ कर उसने हरिया के हाथ लिफाफा मंगाकर पतिदेव को लिख ही दिया। पत्र मिलते ही नरेश उसे अपने पास लिवा ले गया।

छुट्टी के दिन थे। आज हरिया सवेरे उठकर ही भय्या के साथ खेत गया था। भरी दुपहरी में वह खेत से लौटा। उसके भय्या अभी एक रहट पर रास्ते में स्नान करते रह गये थे। हरिया जब अकेले ही घर पर लौटा तो देखा मां और भाभी में वही आये दिन का वाग्युद्ध छिड़ा है।

मां ने खाना परोसा। हरिया ने एक कौर भी मुंह में न दिया। भाई के आने पर उसने देखी-सुनी सभी उनसे कही। भय्या बोले, "अरे इनके बीच में बोलना ठीक नहीं। आज लड़ें कल फिर मां-बेटी हैं।" छोटे भाई को समझा-बुझा कर गणेश ने आज जमुना को खूब खरी-खोटी सुना दी और तीसरे पहर फिर अपने काम पर चले गये। हरिया जब जगा तो देखा भाभी बड़बड़ा रही थी, "सब मिल कर मुझे घर से निकलवाने पर उतर गये हैं। मैं सबकी आंख की किरकिरी हूँ। मैं भी यहीं सबकी छाती पर मूंग दलूंगी। कोई आकाश से थोड़े ही आ गिरी हूँ। इस घर में मेरा भी तो कुछ अधिकार है।"

हरिया—तो क्या हम सब ही भाग जाएँ यहाँ से। जैसे दूसरे चले गए।

जमुना—हम पर क्या एहसान होगा?

"अच्छा तो, भाभी परन्तु याद रखना खोटा पैसा भी समय पर काम आता है।" हरिया की आखों में आंसू छलक आए।

दूसरे दिन प्रातः ही हरिया की चारपाई पर केवल चादर ऐसे ढंग से रखी हुई मिली, मानो कोई सचमुच सोया है। सारे दिन ढूंढ़ मची। नरेश को तार किया गया, पर सब जगह से निराशा मिली। भाई ढूंढ़ते-ढूंढते थक गए। सारा परिवार शोक-सागर में डूब गया।

भाई को खो देने पर गणेश का हाथ ऐसा रुका कि काम में भी उसका मन न लगता था। जब तक हरिया था, वह अपनी पढ़ाई के बहाने नरेश से अधिक पैसा मंगा कर कभी-कभी घर का काम चला दिया करता था। खेती से जो फसल पर पैसा मिलता सब साहू को भेंट कर दिया जाता। इस वर्ष तो फसल मारी जाने से उस का रुपया भी न फिरा। आज घर में कल के लिए अन्न का दाना भी नहीं है। लोगों से सहायता मांगी, पर जवाब मिलता अरे जिसके दो भाई कमाते हों वह भी मारा-मारा फिरे। दूसरे कहते,'अब अपनी करतूत का फल मिला है। घर वाली को और मुंह लगाओ।' तंग आकर जमुना के दो गहने, जो वह देने को तैयार न थी, गिरवी रखने के लिए चला। रास्ते में किसनू डाकिए ने एक चिठ्ठी हाथ में दी। "अरे किसनू ताऊ तुम्हीं पढ़कर सुना दो। मैं कौन पढ़ा-लिखा हूँ। फौजी कार्यालय के द्वारा सूचना आई थी कि हरिसिंह चीनी आक्रमण से देश की रक्षा करने में वीर-गति को प्राप्त हुआ। उसने ५०० रु० की अपनी जमा रकम में से दोनों भाइयों में परस्पर बांटने के लिए डायरी में लिख छोड़ा था।

पूरे दो वर्ष बाद यह हरिया की खबर मिली, जिसे गणेश अवाक्-सा खड़ा-खड़ा सुन रहा था।

× × ×

और दूसरे दिन जमना स्वयं सास के साथ अपने गहने लिए उस लाइन में खड़ी थी जहाँ एक अफसर देश के सीमा-प्रहरियों के लिए दी गई भेंट स्वीकार कर रहा था जमुना का आठवर्षीय लड़का धन्नू भी संग था। माँ की आँखों मे आँसू देख वह बोला—'माँ लोती हो?' अफसर ने गहने लिए तथा डायरी में कुछ लिखा। दादी की लठिया पकड़े धन्नू ने हाथ बढ़ाया और एक पैसा अफसर के हाथ में दिया। अफसर हँसा और पैसे को देख कर मन ही मन आनन्द-विभोर हो गया। धन्नू उसे यों ध्यान से पैसे को देखते हुए देख बोल उठा—'मेरा पैसा खोटा तो नहीं है।'

'खोटा पैसा भी समय पर काम आता है बेटे" अफसर ने उसके गाल पर प्यार-भरा हल्का चपत लगाते हुए कहा।

जमुना चित्र की तरह खड़ी यह सब सुन रही थी।

(पृष्ठ १५ का शेष)

चतुर्वेद श्रीहरिदास जी महाराज (जन्म सं० १५३७ वि० एवं स्वर्गारोहण आश्विन शुक्ल पूर्णिमा सं० १६३८ वि०) के वंशज श्री वनवारीलाल मिश्र के पौत्र श्री बाचाराम मिश्र के द्वितीय तनुजन्मा एवं मुरलीमनोहर मिश्र के सोदरानुज भगवद्भक्त श्री मुण्डदास मिश्र ने मैनपुरी-मण्डलान्तर्गत "अकुड़इया' नामक तपोभूमि में श्री चान्देश्वर महाराज का मन्दिर एवं तन्निकटस्थ कूप निर्माण कराकर प्रायः २५० वर्ष पूर्व स्वकीय कर-कमलों द्वारा ही शिवमूर्ति स्थापना की थी।

यह स्थान गङ्गा-यमुना-मध्यवर्ती केन्द्र स्थान पर स्थापित श्री दुर्गा देवी तथा तत्पृष्ठतः गङ्गा-सागर ख्यात कूप से प्रायः दो मील पर ईसन नदी के दक्षिण तट विद्यमान है। (श्री हरिदास जी महाराज तथा वंश का परिचय पण्डित डम्बरलालमिश्रात्मज श्री भगवानदास मिश्र के सौजन्य से प्राप्त हुआ है)।

प्रशासन-कला : वैज्ञानिक प्रबन्ध

[श्री हरिचन्द पराशर]

प्रशासन मानवीय मस्तिष्क की उच्चतम विद्या है। इस पर सामाजिक स्थैर्य निर्भर करता है। प्रत्येक सामाजिक कार्य के सम्पन्न करने में एक से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इसलिए उन व्यक्तियों में कार्य की बांट एक सोपानात्मक प्रणाली में की जाती है। इस प्रणाली में प्रत्येक व्यक्ति कार्य की किसी-न-किसी अवस्था से सम्बन्धित होता है। कार्य की विभिन्न अवस्थाओं में समन्वय लाने केलिए किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जिसका कर्तव्य केवल इतना हो कि वह कार्य में लगे दूसरे व्यक्तियों को निर्देशन दे, उनके कार्य में समन्वय लाए और उनकी विभिन्न क्रियाओं पर नियंत्रण रखे। उस व्यक्ति को प्रशासक अथवा प्रबन्धक कहा जाता है। प्रशासन अथवा प्रबन्ध स्वयमेव एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। क्योंकि समुचित निर्देशन, समन्वय और नियंत्रण के बिना कार्य सफल रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता।

प्रशासन अथवा प्रबन्ध का उद्देश्य यह है कि किसी निश्चित कार्य में जितने कर्मचारी लगे हैं और जितने साधन जुटाए गए हैं, उन कर्मचारियों और साधनों का अधिकतम प्रयोग किया जाए ताकि फल यथासम्भव सर्वोत्कृष्ट हो। कर्मचारियों और साधनों के प्रभावात्मक प्रयोग के लिए यह अनिवार्य है कि व्यर्थता के बहिष्करण केलिए उपाय सोचे जाएँ। चूंकि उपलब्ध साधनों का मूलत: प्रयोग कर्मचारियों को करना होता है, इसलिए कर्मचारियों की सद्भावना प्राप्त करनी आवश्यक होती है। एक सफल प्रशासक कर्मचारियों के कल्याण की योजनाओं में पूरी दिलचस्पी लेता है, क्योंकि वह जानता है कि कर्मचारियों की सद्भावना के बिना साधनों का लाभदायक प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि उनके कल्याण का ध्यान नहीं रखा जाएगा, तो वे साधनों के प्रवीण और निपुण प्रयोग का ध्यान नहीं रखेंगे। प्रशासन का प्रयोजन है कि वह शासन के तंत्र को लक्ष्योन्मुख करे, इसके कामकाज को अधिकाधिक वाणिज्य-प्रणाली में ढाले, संगठन को मजबूत और शुद्ध करे और कर्तव्य को भक्ति का श्रेय दे। यदि सरकारी कामकाज को वाणिज्य-प्रणाली में ढाला जा सके तो बहुत सारी व्यर्थता का बहिष्करण किया जा सकता, और राष्ट्रोन्मुख प्रयोग किया जा सकता है।

व्यर्थता का बहिष्करण कैसे किया जाए ? इस समस्या पर प्रशासन-विद्या के विद्वानों ने काफी विचार-विमर्श किया है और आज के प्रौद्योगिक युग की पेचीदगियों के अनुकूल उन विद्वानों का मत है कि वैज्ञानिक-प्रबन्ध की धारणा को प्रशासन में प्रयुक्त किया जाए।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के आधारभूत नियम तीन हैं :—

(१) किसी काम क करने का सर्वोत्तम मार्ग एक ही है; (२) वैज्ञानिक खोज द्वारा उस मार्ग की खोज की जा सकती हैं; और (३) इस खोज को आरम्भ करना और उसको निभाना सम्बन्धित संस्था का काम है।

जब तक यह मूलभूत धारणा क्रियान्वित न हो कि किसी कार्य को करने का एक ही सर्वोत्तम मार्ग है तब तक कार्य में लगे हुए व्यक्तियों की शक्तियों का एक केन्द्र में विन्यास नहीं किया जा सकता, और जब तक कार्य में संलग्न सभी शक्तियों को एक नाभ्यन्तर की ओर लक्ष्योन्मुख न किया जाए, तब तक कार्य के बिखरे हुए तत्त्वों में संगति नहीं आएगी। स्वार्थों की टक्कर के कारण कर्मचारियों की शक्तियों का परस्पर विरोधी हो जाना स्वाभाविक है, परन्तु प्रशासन का प्रयोजन इसी में निहित है कि सभी शक्तियों को समन्वित करके कार्यदक्षता में वृद्धि की जाए।

आधुनिक प्रशासन में वैज्ञानिक प्रबन्ध की प्रयुक्ति के कारण प्रशासनिक स्थितियों में काफी सुधार हुआ है, और सिद्धांत रूप में निम्नलिखित तीन असूल स्थिर हुए हैं :—

(१) आदेशैकता, अर्थात् किसी अधीनस्थ को एक ही समय में एक से अधिक वरिष्ठों की आज्ञा का

दास न बनाया जाए, अन्यथा दोलायमानता और अनुशासनहीनता आएगी;

(२) कार्यता, अर्थात् प्रत्येक कर्मचारी के पास अपने कर्तव्यों, शक्तियों और ज़िम्मेदारियों का पूरा विवरण हो;

(३) प्राधिकार और उत्तरदायित्व में अनुरूपता, अर्थात् किसी अधिकारी को अपने अधीनस्थों के प्रशासनार्थ जितना अधिकार दिया गया है, कार्य-सम्पन्नता में उस अधिकारी का उत्तरदायित्व उसी अनुपात में होना चाहिए। परन्तु व्यवहार में ऐसा देखने में आया है कि प्राधिकार उत्तरदायित्व का पूर्ववर्ती नहीं, वरन् परवर्ती है। ऐसी स्थिति में इस असूल को इन शब्दों में प्रतिपादित किया जा सकता है कि उत्तरदायित्व की मात्रा वस्तुतः उपलब्ध प्राधिकार और साधनों के अधिकतम प्रभावात्मक प्रयोग की मात्रा से नहीं बढ़ती। इसी लिए निष्पादक अधिकारी के लिए यह सिद्धांत-वाक्य है कि प्राप्त साधनों का समुचित प्रयोग करो।

प्रशासनिक दृष्टि से किसी संस्था अथवा संगठन के तीन मुख्य भाग होते हैं :—

(१) उच्च प्रबन्ध अर्थात् राजनीतिक प्राधिकार और उस प्राधिकार की कार्यान्विति के लिए सचिवालय;

(२) माध्यमिक प्रबन्ध अर्थात् निदेशालय; और

(३) कर्मचारिवर्ग।

इन तीन भागों में से प्रमुख और महत्त्वपूर्ण भाग माध्यमिक प्रबन्ध का है, क्योंकि यही प्रबन्ध कार्य के यथार्थ उत्पादन का निदेशन और नियन्त्रण करता है। माध्यमिक प्रबन्ध में नियुक्त अधिकारी और कर्मचारी विशेषज्ञ होते हैं, उन्होंने सम्बन्धित कार्य की व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त की हुई होती है। व्यावसायिक शिक्षा के अतिरिक्त उस संगठन विशेष के अधिनियमों, विनियमों, नियमों और न्यायालय के तत्सम्बन्धी निर्णयों और आदेशों की पूरी जानकारी भी माध्यमिक प्रबन्ध के लिए अनिवार्य है। माध्यमिक प्रबन्ध के भी तीन अन्तर्भाग हैं :—

(१) निर्देशक वर्ग,

(२) सहायक निर्देशक वर्ग, और

(३) प्रथम पंक्ति प्रभारी वर्ग।

इन तीन भागों में से भी सहायक-निर्देशकवर्ग का एक अलग महत्त्व है, क्योंकि इसे दोहरा कर्त्तव्य निभाना होता है।

एक ओर तो इस वर्ग को निर्देशक को निर्देशन-कार्य में सहायता देनी होती है, और दूसरी ओर प्रथम पंक्ति प्रभारी वर्ग के माध्यम से कर्मचारिवर्ग पर नियंत्रण रखना होता है, उनके कल्याण का उचित ध्यान रखते हुए कार्य के अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य पूरा कराना होता है। व्यक्तित्व-प्रशिक्षण के दृष्टिकोण से भी इस वर्ग का व्यक्तित्व दोहरा होना अपेक्षित है। एक ओर तो तकनीकी कार्य में विशेषज्ञ और पारङ्गत होना अपेक्षित है, और दूसरी ओर प्रथम-पंक्ति प्रशासक होने के नाते इन्हें साधारणज्ञ भी होना चाहिए। दक्षता और प्रज्ञा दोनों का सुन्दर समन्वय इस वर्ग में अपेक्षित है।

माध्यमिक प्रबन्ध का एक विशेष उत्तरदायित्व यह है कि प्रबन्धकीय संगठन और प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाए, ताकि प्रशासनिक सुधार के लिए उच्च-प्रबन्ध को सुझाव दिये जा सकें। प्रशासनकला का एक और महत्त्वपूर्ण अंग है कर्मचारिवर्ग की दक्षता का मूल्यांकन। प्रशासनकला में वैज्ञानिक प्रबन्ध की धारणा के साथ दक्षतामूल्यांकन की एक नई प्रविधि का विकास हुआ है जिसे 'उत्पादन-रिकार्ड' कहा जाता है। यह प्रविधि वस्तुनिष्ठ है, परन्तु इस प्रविधि की अपनी सीमा है। यह ऐसे कार्य के बारे में लागू की सकती है जहां प्रक्रिया आवृत्यात्मक हो, निर्णय की अपेक्षा कौशल अधिक अपेक्षित है। व्यवहार में देखा गया है कि कई बार जिस कर्मचारी का उत्पादन-इंडैक्स सबसे अधिक होता है, उसका व्यक्तित्व दूसरे कर्मचारियों के लिए अखरता है, और परिणामतः, ग्रुप में असन्तुलन-सा आ जाता है जोकि सहकारिता को हानि पहुंचाता है। इसके अतिरिक्त उत्पादन-इंडैक्स के माध्यम से हम सुपरवायजर के पद के लिए कर्मचारिवर्ग में से चयन नहीं कर सकते। सफल सुपरवायजर होने के लिए उच्च उत्पादन-इंडैक्स की अपेक्षा समर्थ व्यक्तित्व की अपेक्षा हुआ करती है। इसलिए उत्पादन-इंडैक्स के साथ-साथ व्यक्तित्व

इंडैक्स भी तैयार किया जाना चाहिए। व्यक्तित्व इंडैक्स को सुपरवायज़रों की भाव-भंगिमा का शिकार होने से बचाने के लिए व्यक्तित्व-इंडैक्स को व्यापक और विवरणात्मक बनाया जा सकता है। इस इंडैक्स के लिए कुछेक मद्दें इस प्रकार की हो सकती हैं :—

(१) अत्यधिक सनकी और कर्कश।
(२) दूसरों के साथ व्यवहार करते समय व्यर्थ में विरोधी बन कर वैर मोल लेने वाला।
(३) कर्त्तव्य के प्रति लापरवाह।
(४) सुझावों और नुक्ताचीनी व आलोचना आदि के प्रति झुंझलाहट दिखाने वाला।
(५) अधिकाँश असन्तुष्ट रहने वाला।
(६) बहुधा शिकायत और फरियाद करने वाला।
(७) बहुधा सरल कार्य की ओर निहारने वाला।
(८) साधारणतया कार्य-आदेश की प्रतीक्षा में रहने वाला।
(९) चुभन और डाँट की अपेक्षा रखने वाला।
(१०) पर्याप्त निगरानी की अपेक्षा रखने वाला।
(११) अत्यधिक विनीत और शालीन।
(१२) अपने अधिकारियों का अधिक आदर करने वाला।
(१३) सदा कार्यव्यस्त।
(१४) नियंत्रित और प्रविधिपूर्वक।
(१५) विश्वसनीय।
(१६) ग्रुप-कार्य में लोकप्रिय सहकारी।
(१७) वैयक्तिक साज-सज्जा में लापरवाह।
(१८) मधुरभाषी और आकर्षक ढंग वाला।
(१९) नियत कार्य की सफल और प्रभावात्मक योजना बनाकर रखने वाला।
(२०) आकस्मिक आपत्कार्यों में प्रज्ञात्मक ढंग से बुद्धिमत्ता दिखाने वाला।

दक्षता-मूल्यांकन का उद्देश्य यही है कि कर्मचारियों के व्यक्तित्व, उनके स्वभाव और कौशल की प्रमुख बातों को अंकित किया जाए, ताकि कर्मचारियों को अपनी सम्भावनाओं और शक्तियों का पता लगे और वे उनका सर्वाधिक लाभदायक प्रयोग कर सकें, जिससे कार्य-उत्पादन में भी वृद्धि हो, और उनके व्यक्तित्व में भी निखार आए।

आत्म-निवेदन

[रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

हे प्रभो ! कर दो क्षमा, अपराध सब छोटे-बड़े।
याकि मेरे हाथ से अन्याय जितने बन पड़े॥
यदि बना बाधक किसी के मार्ग में अपमान कर,
है यही विश्वास फिर भी, दास अपना जान कर॥
निज दया की दृष्टि डालोगे, रखोगे शीश पर—
अभय कर दोगे मुझे, आशीष दे, निज-वरद कर।
इस महामहिमान्वित जग में उदित नववर्ष यह,
दिव्य जीवन में हमारे, व्याप्त कर दे हर्ष यह॥
वास पृथ्वी पर, तथा आलोक में संचार का,
गगन तल में विचर कर, गौरव मिला आधार का।
किंतु तुमको चित्त में यदि पूर्णता से धार लें,
तो समस्त विषाद मन से, मृत्यु से भी तार लें॥
प्रेम कर मैं ने 'जगत्' से 'महत्' को करके नमन।
कामना की मुक्ति की, जग-वासना करके दमन।
'मुक्ति' वह जो परमपुरुष-समक्ष आत्म-निवेदिता—
सत्य पर विश्वास रक्खा, जान कर 'चिन्मय' सदा॥
वास करता जो निरन्तर जन-हृदय में आप ही—
जो महामानव बना देता बिना परिताप ही।
इस पुण्य भारत भूमि पर, नर-जन्म पाकर धन्यता,
मानता कृतकृत्य, रखता भक्तिभाव अनन्यता॥
सब देश सब ही जाति के सब काल का इतिहास भी—
सन्निवेशित केन्द्र में जो वेदिका के पास ही।
गुरुदेव के पावन पदों में बैठ कर एकान्त में—
हूँ चाहता क्षालन करूँ, पातक सभी दुर्दान्त मैं॥
हो दूर मेरे हृदय से, यह अहंता की भावना,
हो भेद-बुद्धि विलीन, जागे साम्य की उद्भावना।
यों हो रहा तत्पर यदपि, दुःसाध्य इस को जानता,
तेरी कृपा से हे प्रभो ! कृतकृत्यता हूँ मानता॥

अनु०—गोपीवल्लभ उपाध्याय

रात डेढ़ बजे के विचार

[श्री उदित मिश्र]

रात निद्रा खुल गई। घड़ी बंद है। कुछ देर गायत्री-जप में मन लगा। फिर चित्त कहीं ठहरता नहीं था। कहां-कहां गया—इस का हिसाब नहीं।

दाएं पैर के पंजे में वात का रोग है। चलने-फिरने में कष्ट होता है। इधर तीन वर्ष से शरीर कृश हो चला है। इस का मन पर भी प्रभाव है। जानता हूँ। संस्कार भी ऐसा है कि संसार की कोई चीज साथ नहीं जायगी। फिर यह चिन्ता कि यह नहीं हुआ—वह नहीं हुआ। आगे सब बर्बाद हो जायगा। बाग कौन संभालेगा—खेत कौन देखेगा। मामले-मुकदमे की देख-भाल कौन करेगा? दुश्मन तंग करेंगे। ऐसी प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। शरीर का अब कोई ठिकाना नहीं। अब तो हम पके आम हो गए हैं। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों शरीर साथ छोड़ेगा ही। यही बातें सामने आती हैं और चली जाती हैं।

गांव में कोई साधु-संत नहीं। बातचीत करें तो किस से करें। अब आवश्यकता है कि कोई समवयस्क हो, वृद्ध हो, अनुभवी हो जिससे घण्टे दो घण्टे बातें हों। यहां कौन है? शहर में चल कर रहें। राम, राम—शहर में बड़ा कष्ट है। ऐसा एकान्त कहां मिलेगा। दिन-रात खड़खड़ाहट। साफ हवा का अभाव अलग। रुपये-पैसे बात-बात में चाहिएँ। हम, जहाँ हैं वहीं अच्छा है।

दूध मिलता है। भोजन अच्छा मिलता है। सोने की जगह अच्छी। शौचादि का प्रबन्ध ठीक अब चाहिए तो क्या चाहिए।

विचारों को भोजन गीता से मिल ही जाता है। पुराने संस्कार अच्छे ही हैं। अब चित्त में उथल-पुथल होती है तो वे विचार संभाल लेते हैं। बुढ़ापा तो आ गया है। यह जाने वाला नहीं। चाहे इसके साथ रहने का मन हो या न हो। यह खुद संग नहीं छोड़ेगा। इसका प्रेम रखना ही ठीक है। बुढ़ापे की रक्षा की विधि क्या है। यह भी हम सोचते हैं। मन को गिरने से बचाना—चित्त में सदा उत्साह रखना। उद्देश्य पवित्र रखना। विचार विमल रखना। गंदगी से सदा दूर रहना। यदि शक्ति हो—बल हो—आत्मिक निरीक्षण का अभ्यास हो तो भगवान् के सामने अपने को समर्पण कर देना। रोने का समय हो तब रोना, गाने के समय में गाना।

मस्तिष्क को सदा-प्रतिक्षण कूड़ा-करकट से बचाना। जितने दिन जीने का मन हो जीना—नहीं तो फिर मरने की ओर मन लगाना—पर मरने में भी भाव को पवित्र ही रखना। जान छुड़ाने वाली प्रवृत्ति से नाता हर्गिज नहीं जोड़ना।

प्रकृति गाती है—गाना सुनने का प्रयास करना चाहिए। संसार हंसता है, इस को देखिए। हम जाँएंगे—हम मुसाफिर हैं। इस बात की चिन्ता कीजिए या न कीजिए, यह तो अवश्यम्भावी है। यदि तय्यारी करते रहेंगे, यात्रा को मंगलकारी बनाते रहेंगे तो आनन्द से यात्रा होगी, नहीं तो कष्ट मिलेगा।

कष्ट मिलने वाले कामों से सदा विरत रहिए। अभ्यास से यह काम आसान हो जाएगा। ध्यान एक ही बात का रखना है कि ध्यान टूटे नहीं। भगवान् से नाता छूटे नहीं।

संसार में सब-कुछ है, पर हमारे लिए वही सब से अच्छा है जो हमारे तन-मन को स्वस्थ रखे। स्वास्थ्य की रक्षा परम धर्म है। धर्म न भूलने की चीज है, न छोड़ने की। वही तो हमारे लिए बहुत सुन्दर मार्गप्रदर्शक है। उसी का आश्रय-सहारा तो भगवान् का दर्शन कराता है।

पक्षपात का नाम धर्म नहीं। अन्याय-अविवेक से पिंड छुड़ाना धर्म है। आत्मशक्ति को बढ़ाने वाला धर्म है। आत्म-बल जिस काम से जिस बात में कम हो वही अधर्म है।

अधर्म से विचारों को सबसे पहले बचाओ। विचार बड़े बलिष्ठ होते हैं। इनकी प्रार्थना सदा करो—विचार-धारा निर्मल रहने में जीवनधारा सदा पवित्र बनी रहेगी। जीवनधारा पवित्र रहने से बुढ़ापा सुखदायी रहेगा।

आज रात ऊपर की पंक्तियों को लिखा है। लिखने के बाद कुछ शान्ति अनुभव कर रहा हूँ। इस शान्ति को भगवान् ही स्थिर कर सकते हैं।

लिखने-पढ़ने विचार करने में ही शान्ति मिलती है। विचारों का मार्ग मिलना चाहिए। ●

खाला का घर नाहीं

[श्री मोलूराम]

भारत के सुदूर पूर्व में स्थित पंजाब राज्य का कांगड़ा जिला इतिहास में आदिकाल से एक विशेष महत्त्व रखता है। केवल इसी लिए नहीं कि इस में कुल्लू-मनाली जैसी सुन्दर घाटियां है, जहां भारत से ही नहीं, विदेशों से भी लोग यात्रा पर आ कर प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेते हैं, अपितु इस लिए भी कि यहाँ के लोग अपनी सुन्दरता और कला-प्रेम एवं कला-कौशल के लिए भी प्रसिद्ध हैं। परन्तु यहाँ की सब से महत्त्वपूर्ण विशेषता तो प्रेम का स्वच्छ स्वरूप है। उन के प्रेम में तन्मयता तथा स्थिरता का तादात्म्य है। यहाँ प्रेम सदा एकनिष्ठ रहा है तथा यहाँ के लोग सच्चे प्रेम के लिए राजमहलों के सुखोपभोग को भी तिलांजलि देने से संकोच नहीं करते। इस बात का प्रमाण हमें यहाँ के लोक-साहित्य के सभी क्षेत्रों में मिलता है। यहाँ के लोक-गीतों में प्रचलित प्रस्तुत सत्य-कथा भी इसी का समर्थन करती है।

काफ़ी समय की बात है। रेलू गाँव के निकट गद्दियों की बस्ती थी, वहाँ रिझा नाम की गद्दियों की एक किशोरी थी। लड़की क्या थी, मानो चन्द्रमा भी उस की सुन्दरता के सामने सिर झुका देता हो। पहाड़ों में गद्दियों का कबीला खूबसूरती में अपना सानी नहीं रखता। पहाड़ों की ऊंची-ऊंची चोटियों पर स्वच्छ वायु और फल-फूलों के सेवन से उनके शरीर में सच-मुच प्रकृति वास करती है। परन्तु रिझा तो उन सब से बढ़-चढ़ कर अपने-आप में एक मिसाल थी। एक दिन कांगड़ा का राजा कहीं उधर आखेट पर निकल आया, शिकार का पीछा करते हुए जब प्यास से उसका गला सूखा जा रहा था तो उसे भेड़ों का एक रेवड़ नज़र आया। प्यास बुझाने का एक मात्र साधन जान कर जब वह पास पहुंचा तो रिझा का रूप-यौवन देख कर उसकी प्यास रफू हो गई। रिझा के लम्बे-लम्बे बाल, चमकीली आँखें, सेब जैसे लाल गाल, हल्के-फुल्के कदम ने राजा पर जादू कर दिया—

मेरी ए बांकी ए, ओ गादनी ए
...आ राजा हेड़ जो चढ़ेआ, ओ हेडे जो चढ़ेआ
...ी होया पागल अडीए, पागल अडीए
ओ छैल बांकी गादनी ए,

हे सुन्दर गद्दियों की युवती, रेलू के जंगल में राजा शिकार खेलने आया है और तेरी सुन्दरता का उस पर जादू हो गया है।

अपने अजनबीपन से सम्भाव्य डर को दूर करने करने के उद्देश्य से राजा ने अपने प्यास की बात छेड़ी और पानी मांगा।

भला वहां पानी कहां रखा था। फिर भी लड़की के दयालु हृदय ने पथिक की प्यास बुझाने के लिए बकरी का दूध दूहा और उस के हवाले किया। राजा उस पर मोहित हो चुका था। अतः उस का दिल फुसलाने के लिए उसने चकमे देने आरम्भ किए—

छोड़ी देना गदनी ए पहाड़ा रा जीणा,
ओ जंगला फिरना
पाथरे मदाने च बंगलू पुआणा,
बने बगीचड़ लाणा बो
छोड़ी देना गदनी ए चोले रा पाणा
ओ चोले रा पाणा
रेसमी पोसाक पाई लेणी वो,
मेरी ए बांकी गादनी ए, ओ छैल बाकी गादनी ए

'आखिर इन पहाड़ों में क्या रखा है', राजा ने कहा, 'यहां का जीवन तुच्छ है, इन जंगलों में फिरना व्यर्थ है, तुझ जैसी सुन्दर युवती को तो मैदानों के डाक-बंगलों में रहना चाहिए। इस फूलों जैसे कोमल शरीर के ऊपर तेरा इतना बड़ा चोला (गद्दियों का एक बड़ा सारा कोट जो पहनने और सोने दोनों का काम देता है) तेरी सुन्दरता की अवहेलना करता है। इसे छोड़ कर तुझे तो रेशमी वस्त्र पहनने चाहिएं। तेरी सुन्दरता तो शहरों के लिए है, इन जंगलों में तेरे रूप-यौवन की प्रशंसा करने वाला कौन है।"

ग्रामीण परिस्थितियों में पली गद्दनी के लिए राजा का यह तर्क एकदम आश्चर्यजनक था। विचारी ने रेशम और मखमल स्वप्न में भी देखा न था। लाल, पीले, हरे, नीले, गर्ज हर रंग के कुदरती फहरता उसके भूषण और वस्त्र थे। राजा के ... नहीं। और वस्त्र की तो वह कल्पना ... ने-फिरने ... सकती थी। ... हे

"रेशम क्या होता है?" आखिर उसने पूछ ही तो लिया

"एक प्रकार का कपड़ा, सुन्दर और सुकोमल," ...

'रेशम का रंग कैसा होता है।'

'इस गुलाब और आड़ जैसा।' राजा ने साथ के फूलों के गुच्छों की ओर संकेत करते हुए कहा।

'उन्हें लगाता कौन है, हम ने तो कभी ऐसा कपड़ा देखा नहीं', गद्दनी ने पूछा।

'उच्च घराने के हम सभी शहर के लगाते हैं।'

'तो फिर ये मेरे स्वभाव के नहीं'—

रेशमी पोसाक ओ राजा राणियां जो सजदा
ओ राजा राणियां जो बणदा
गद्दनी जो सजदा चोला ओ,
मेरे देसा देआ राजे आ, ओ मेरे हाकमां
मलमल रे कपड़े बूट जो पाए
ए है अमीरां दा रहणा ओ रहणा ओ
चिटड़े चोले कढाइयां जे कढीयां
ए है आसां दा बाणा ओ

"रेशम और मलमल के कपड़े और बूट-सूट तो महलों में रहने वाले राजा-रानियों तथा अमीरों के लिबास हैं। हम जंगलों में फिरने वालों को तो वे शोभा नहीं दे सकते। हमें तो यही चोला सुन्दर लगता है। देखते नहीं मेरे चोले के दामन के वे फूल इन पौधों के फूलों के साथ कैसा मेल खाते हैं" गद्दनी ने अपने चोले पर हाथ से विभिन्न रंगों के धागों से चित्रित फूलों का गुलाब के समीप जा कर मुकाबला कराया। एक ... ... थी, जिसे किसी की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त नहीं, ... चोले पर बने फूल देखकर राजा दंग रह गया। उसके दरबार में भी तो उच्च कोटि के कलाकार थे, परन्तु इस सरल, परन्तु सुन्दर हाथ की कला की कोई तुलना न थी। चोले का सारा दामन हाथ से चित्रित फूलों से यूँ सजा हुआ था जैसे सचमुच जंगल के ताजा फूल तोड़ कर लगाए हों। "इन्हें देख कर तो तितलियाँ भी धोखा खा जाती होंगी।" राजा ने मन ही मन सोचा जब उसके नेत्र स्वयं धोखा खाए जा रहे थे। राजा को कला से प्रेम था अवश्य, और गद्दनी में कला और सुन्दरता का अटूट समावेश था। उस के प्रति राजा की वृत्ति और भी तेज हो गई। परन्तु उसके तर्क-वितर्क, लोभ-लालच गद्दनी के सद्भावी और स्वच्छ हृदय को अपने जाल में फंसाने में सफल न हो सके और वह लाचार वापस लौटा।

आखेट में अब रुचि न होने पर जब राजमहल में पहुँचा तो गद्दनी को पाने की तृष्णा और भी तीव्र हो चुकी थी। रात-भर राजा पलक भी नींद न ले सका। सवेरे शाही आदेश के साथ सिपाही भेज कर रोती-चिल्लाती रिमझा को राजमहल में लाया गया, और राजा ने प्रेम की वस्तु को बाहुबल से प्राप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु रिमझा के लिए तो राजमहल एक डरावना जेलखाना था। उसे रह-रह कर अपने मा-बाप, गांव, सहेलियों और भेड़-बकरियों की याद आती। परन्तु सब से अधिक याद तो उसे अपने एक प्रियतम धरमू की आती जिसे वह अपना दिल दे बैठी थी। महल में बैठी जब कभी वह आस-पास की पहाड़ी की चोटी से मधुर बांसुरी की धुन सुनती तो उसे लगता जैसे धरमू उसे बुला रहा हो। वह धरमू से मिलने के लिए रात-दिन तड़पती रहती। रेशम के कपड़े और मखमल के बिस्तर उसके लिए कांटों की सेज थे। हर पल हर घड़ी उस की आंखों के सामने अपने सम्बन्धी-जन याद आते, धरमू की तस्वीर की झांकी उस के सामने रहती।

और धरमू कैसा था? उस का सुडौल शरीर, सुदृढ भुजाएं, विशाल चेहरा, लम्बा कद उसे राजा ही तो बनाते थे। और उसका बल! "उस की ताकत का तो कोई मुकाबला नहीं कर सकता। वह तो अकेला इन सिपाहियों को एक-एक करके मार दे," रिमझा प्रायः सोचती। "तो फिर वह मुझे बचाने आता क्यों

नहीं !..." रिमझा पढ़ी-लिखी तो थी नहीं, फिर भी कुछ दिनों के बाद उस ने अपना संदेश धरमू तक पहुँचाने का प्रयत्न कर ही लिया:—

मैहला रे हेठ गदी बकरियां चारे
ओ बकरियां चारे
बंसी की धुनक सुनाई ओ मेरे धरमू गदिया।
संसाला रे गासा गासा, चोटियां रे कनै-कनै
रींडुआं रे गभै-गभै, खड्डां रे बनै-बनै
सेऊंका रे ओल्थूआं असां दा जमाना बो
थोड़ी-थोड़ी बुरी मिंजो छेलुआं री लगदी
ओ भेडुआं री लगदी
गदी ए री बगी जांदी छुरी ओ
मेरे देसे रेआ हाणियां

"तू जब भेड़ें चराते-चराते महलों के निकट आ जाता है तो तेरी बांसुरी की धुन से मैं मुग्ध हो जाती हूं। मुझे अपने उस समय की याद आती है जब हम गांव से दूर पहाड़ों की ऊंची-ऊंची चोटियों पर भेड़-बकरियां चराते थे। गहरी घाटियों में और नदियों के साथ-साथ इकट्ठे घास काटते थे। किस तरह हम एक बार अपने एक सम्बन्धी के घर गए थे तथा एकांत रास्ते मे हम ने प्रेम सम्बन्धी क्या-क्या संकल्प उठाए थे ? वैसे तो मुझे भेड़-बकरियों की भी याद सताया करती है, परन्तु जब तेरी याद आती है तो मानो मेरी छाती पर तीर लगता है, तू मेरे देश का जन्म का साथी है, तो क्या तू मुझे इस जेल से छुड़ा न सकेगा ?"

संदेश मिलते ही धरमू जैसे घोर तन्द्रा से जाग उठा हो। वह एकदम सटपटाया। संदेश लाने वाले व्यक्ति की सहायता से उसे रिमझा को मुक्त कराने में विशेष कठिनाई न हुई, क्योंकि अभी तो इस प्रकार का शक भी न हो पाया था। परन्तु जब राजा को यह सूचना मिली तो राजा ने घोषणा जारी की कि रिमझा को उठा ले जाने वाले व्यक्ति का पता लगाया जाए। राजा के कठोर परिश्रम जब असफल रहे तो राजा ने आदेश दिया कि जो कोई भी उस व्यक्ति को जीता या मरा राजा के सामने पेश करेगा उसे एक लाख रुपये इनाम मिलेगा। इनाम के लालच से धरमू के अपने भाई विश्वासघात पर उतरे तथा उन्होंने राजा के पास धरमू का पता बताया। जब राजा के सिपाही पता लगने पर वहां पहुँचे तो उस समय धरमू मकान की छत पर सोया हुआ था। भय की घड़ी सामने देखते ही उस ने अपनी तलवार सम्भाली और सिपाहियों पर टूट पड़ा। किसी दूसरे मकान में बैठी धरमू की मां को रिमझा बताती है :—

तू कैन्जो रोन्दी धरमू री माता धरमू नी हादा मार ओ
चढ़ कोठे पर धरमू जो सुता हुआ नीं खांदा मार ओ
सबके भाईए चुगली जे लाई सदी ले आन्दा ठाणेदार ओ
इकनी हाथे डाडा बने जे पकडेआ दूजे पाकडी तलवार ओ
थानेदारे दरवाजा जे ठोरेआ निकल ओं धरमू बाहर ओ
छाती तानी के धरमू जे निकलेआ गुस्सा बेसुमार ओ
पंज ता बड्डे पुलिस सिपाही छेवां बड्डेआ थानेदार ओ
सतवें सिपाही जो तलवार जे बजी पेआ मुँह दे भार ओ

"हे धरमू की मां तू क्यों रो रही है। धरमू किसी से हार खाने वाला नहीं, वह आराम से मकान की छत पर सोया था। उसके सगे भाइयों ने शिकायत की और थानेदार को बुला लाये। जब थानेदार ने दरवाजे पर दस्तक दी तो धरमू छाती तान कर बाहर निकला। उसके एक हाथ में तलवार और दूसरे में एक भारी डण्डा था। उसे बेशुमार गुस्सा आया था और उसने पांच सिपाही और एक थानेदार को मौत के घाट उतारा। जब सातवें को उस ने तलवार मारी तो सिपाही मुँह के भार भूमि पर गिर पड़ा।"

जब यह समाचार राजा के पास पहुँचा तो फिर किसी को दोबारा साहस न हुआ कि धरमू को पकड़ा जाए। फलत: उस के भाई के साथ फिर साजिश की गई और उसने धरमू को धोखे से पकड़वा दिया :—

भाईए आई के धोखा जे दिता
पकडेआ बोली के भाईचार ओ
धरमू चुकी के गड्डिया च पाइआ, गड्डीं गई मंझधार ओ
गड्डी जाई करी शहर खड़ोती, शहरा मची गइ हड़ताल ओ

पकड़ कर धरमू को गाड़ी में डाल कर राजा के पास लाया गया। गाड़ी जब शहर पहुंची तो सारे शहर में हड़ताल मच गई। कामान्ध राजा के इस कामाभिलाषा-सम्बन्धी आचरण का लोगों द्वारा तिरस्कार किया जाना आवश्यक था। राजा ने अपने वचनानुसार धरमू के भाई को तुरन्त ही उच्च पद पर नियुक्त कर दिया।

अब धरमू को छुड़ाने की रिमझा की बारी थी। जिस प्रकार धरमू ने उसे कामातुर राजा के काम-वासना सम्बन्धी अत्याचार से छुटकारा दिलाया था, वैसे ही वह भी अब उसे मुक्त कराने के लिए तैयार हुई। लोगों ने उसे समझायाः—

मत कर अड़ी ओ बांकी गादनी ए,
जिन्दड़ी नी दुखा च पाणी ओ

हे सुन्दर गद्दनी इठ मत करो, अब जीवन को और अधिक दुःख में मत डालो। परन्तु वह तो धरमू लिए हर प्रकार की कुर्बानी देना चाहती थी। अतः उसने राजा को सन्देश भेजा :—

छोड़ी दे राजेआ धरमू री जानी ओ
अहं हा हाजर हुँगी ओ

हे राजा तुम धरमू को छोड़ दो, तो मैं स्वयं महल में हाजिर हो जाऊंगी। अन्धा क्या चाहे दो आंखें। राजा ने तुरन्त उत्तर भेजा, धरमू को रिमझा के आने पर छोड़ दिया जायगा।

रिमझा राजमहल को रवाना हुई। उस की आंखों से क्रोध और प्रतिशोध के आंसू टपक रहे थे। राज-महल में आकर उस ने प्रार्थना की—

धरमू री नजर मिलाई दे आ राजेआ
होई जांगी जानी पचानी ओ

हे राजा, धरमू को छोड़ने से पहले मुझे अन्तिम बार उस के दर्शन करा दो। हम विदाई का नमस्कार करेंगे।

जब रिमझा को धरमू के पास ले जाया गया तो धरमू का भाई भी अपनी नौकरी पर वहीं पहरा दे रहा था......उफ! यह क्या? वह तो भूखे भेड़िये की तरह उस पर झपट पड़ा। अपने चोले के बीच से दराट (एक प्रकार का औजार जिस से गद्दी लोग लकड़ियाँ काटते हैं) निकाला और एक ही बार में उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया और देखते ही देखते दूसरे प्रहार से अपनी भी वहीं हत्या कर ली। परीक्षा का समय सामने देख धरमू ने रिमझा का दराट उठाया और आन-की-आन में कई दरबारियों को मौत की गोद में सुला दिया और स्वयं भी वीरता के साथ लड़ता हुआ वहीं काम आया। उसकी प्रशंसा में लोग गाते हैं :—

कागड़े रे राजा ओ लास मंगाई
नाम दिता तित्र हजार ओ
पंज सेर पक्का कलेजा निकलेआ
चरबी बेसुमार ओ
तू कैंजो रोन्दी धरमू री माता
धरमू नी खान्दा मार ओ

धरमू की मृत्यु पर राजा ने उसका शव मंगवाया। तिहत्तर हजार रुपये इनाम दिया गया (उसके भाई को मिले पुरस्कार की ओर संकेत है) उस की वीरता का रहस्य जानने के लिए जब उस का हृदय (दिल) तोला गया तो पूरे पाँच सेर उसका वजन था और चर्बी तो बेशुमार थी। हे धरमू की माँ, तू क्यों रोती है, धरमू ने तो अपना नाम अमर कर दिया है।

गीत [श्री कृष्णजी भटनागर]

है तुम्हारी बीन औ' झंकार मेरी।

तुम अपरिचित से खड़े प्रिय शान्त संसृति के किनारे,
डूबता-सा मन; युगों की टीस व्रीडा के सहारे।
काँपता, डरता भ्रमाकुल विकल अंगों को लिए मैं,
आप अपने को छिपाता साधना मेरी अधूरी॥
पर तुम्हारे इंगितों पर ही तरल झंकार छेड़ी।
है तुम्हारी बीन औ' झंकार मेरी॥

तब तुम्हीं ने सजल उस अनुगूँज के माने बताए।
खोल कर सौ पृष्ठ सारे रास्ते घर के बताए॥
और सारे दिन खुली आँखों प्रतीक्षा में रहे रत।
देखने मुझको, न छोड़ेगी मुझे यह गृह-विकलता॥
है तुम्हारी जीत निश्चय पर न है यह हार मेरी।
है तुम्हारी बीन औ' झंकार मेरी॥

पर बताओ और कब तक चल सकेंगे प्रणय-साधन?
यह विरह या घन मिलन ही तब हरेगा अलम यह घन?
मैं बहूँ बस बद्ध इन छल-छद्म के जड़ बन्धनों में,
और करुणा-स्नात निर्मल मन तुम्हारा बहे निर्मम॥
बस तुम्हारी भीति उर में और बने सब बात मेरी।
है तुम्हारी बीन औ' झंकार मेरी॥

भक्तकवि पोतन्ना

[श्री अनवर आगेवान]

बम्मेर पोतनामात्य आन्ध्र महाभागवत के अमर प्रणेता हैं। हिन्दी-साहित्य में सूर और तुलसी का जो स्थान है वहीं तेलुगु साहित्य में पोतन्ना का है।

भारतीय कवियों में पोतन्ना की विलक्षण विशेषता यह है कि, उन्होंने गुणगान किया कृष्ण का, किन्तु उपासना की राम की। इस प्रकार पोतन्ना सख्य और सेवक-भाव का अभूतपूर्व समन्वय कर पाए हैं। सूर के आराध्य देवता सौंदर्य-स्वरूप रसिकवर श्रीकृष्ण और तुलसी के स्वामी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र दोनों एक स्वरूप होकर पोतन्ना के हृदय-मन्दिर में विराजित हैं।

पोतन्ना ने तत्कालीन शैव और वैष्णव धर्म के पारस्परिक वैषम्य को भी दूर करने का अन्तःकरण-पूर्वक प्रयत्न किया था। इसी समन्वयात्मक भावना से समन्वित उनकी एक प्रसिद्ध काव्यसूक्ति है—

चेतुलारंग शिवनि पूजियरेनि
नोरुनोव्वंग हरिकीर्ति नुडुवरेनि,
दययु सत्यमु लोनुगा दलपरेनि
पुट्टनेटिकि तल्लुल कडुपुचेत।
(यदि मुक्त कर न पुजो शिव-शरण
यदि न मन भर करो हरिनाम स्मरण
यदि न सत्य तथा दया धारो हिये
तो विफल ही प्रसव तुम मा के लिये।)

पोतन्ना ने अपनी बाल्यावस्था में 'भोगिनी दंडकम्' की रचना की थी। यों जन्म से ही वह कवि थे, सरस्वती के वरद पुत्र थे। किंतु लक्ष्मी उन पर रूठायमान थीं। सिर पर दारिद्रय सवार था। उस काल में राजा लोग कवियों को खूब प्रोत्साहन दे रहे थे, किंतु स्वमानी पोतन्ना राज्याश्रय में नहीं जाना चाहते थे। वे खेती से अपना गुजारा करते थे। ऐसी दारिद्रय अवस्था में चिदानन्द योगी ने इन्हें मार्ग दिखाया और वे गुरु के दिखाए पथ पर बढ़ते, ईश्वर-उपासना-मग्न रहने लगे। ऐसी अवस्था में एक दिन आकाश-वाणी सुनाई दी—"श्रीमद्भागवत की रचना करो, भवबन्धन से मुक्ति मिलेगी।"

और पोतन्ना के स्वमुख से आकस्मिक यह शब्द प्रस्फुटित हुए—

ओनरन् नन्नयादि कवुली पुरमिन् पुराणावलुल
तेलुगुन जेयुचु मत्पुराकृतशुभाधिक्यंबु दानेट्टिदो।
तेलुगुन जेयरु मुन्नु भागवतमुन् दीनिन् दैनिंगिच ना,
जन्मंबुन सफलंबु जेसेद बुनर्जन्मंबु लेकुंडगन॥

—नन्नय आदि कवियों ने पुराणों का अनुवाद करके अपना जन्म सार्थक किया है। महाभारत और रामायण अनूदित हो चुके हैं, किन्तु भागवत के लिये अभी तक यह भाग्य प्राप्त नहीं है। अतः भागवत को तेलुगु में रचकर मैं अपने जन्म को पुनर्जन्म के बन्धनों से मुक्त करूंगा।

पोतन्ना का यह भागवत इतना लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध हुआ कि, कर्नाट के राजा ने मुग्ध होकर, पोतन्ना के बहनोई—आन्ध्र के ख्यातनामा शृंगारिक कवि श्रीनाथ को उसे राजाश्रय में लाने के लिये भेजा।

पोतन्ना अपने खेत में हल चला रहे थे, वहां श्रीनाथ ने आकर कुशल-समाचार पूछा और प्रशंसा करते हुए कहा:—

कम्पनि ग्रन्थं बोक्कटि
  यिम्मुग नेनृपतकेन तियिच्चन बो,
गम्मनि यीमरे केय्या—
  लेम्महि दुन्नंगनेल निट्टिमहात्मुल।
(अये! ऐसे सुन्दर काव्य रचित,
  हो किसी नृप-भेंट में समर्पित,
तो कंचन बरसे न क्यों घर घर,
  खेत जाते सुकवि क्यों हल धर!)

यह सुनकर सरस्वती के इस अनन्य भक्त पोतन्ना ने राजाश्रयी तथा विलासी कवि श्रीनाथ को ऐसा ही मर्मयुक्त चोटदार प्रत्युत्तर दिया—

बाल रसाल साल नव पल्लव
  कोमल काव्य कन्यकन्,

कूकल किच्चि यप्पुडुयु-कूडु
भुजिपुटकंटे सत्कवुल,
हालिकु लैयनेमि गहनांतर सीमल
कंद भूल गो
दालिकु लैननेमि निजदार
सुतोदर पोषनार्थ मे !

(अये ! बाल-रसाल-साल-प्रवाल-सी कृति कन्यका
बेच नीचों के करों में गांठ ले कोई टका।
हल चलावे, या कुदाला, सुकवि ऐसे ही भले
कंद-मूल फलादि से भी घर गृहस्थी तो चले।)

—'श्रीनाथ तुम मेरे बहनोई हो, तुम्हें मैं क्या कहूं, किंतु यह याद रहे कि, कोमल किसलय जैसी काव्य-कन्या को उन दुष्ट लोगों के कर्कश हाथों में सौंप कर सुख भोगने की अपेक्षा सत्कवि जंगलों में अपनी पत्नी तथा संतान का पेट भरने के लिये खेती करना गौरव की बात समझते हैं।'

यह सुन कर श्रीनाथ अवाक् रह गया। उसने कल्पना तक न की थी कि पोतन्ना से ऐसा उत्तर मिलेगा। श्रीनाथ तो निराश होकर लौट गया, किंतु पोतन्ना किंकर्तव्यविमूढ हो गए। उसी समय उनकी आंखो के सामने देवी सरस्वती आसू गिराते हुए दिखाई दी। तब सरस्वती को आश्वासन देते हुए प्रतिज्ञा की—

काटुक कंटिनीरु चनुगट्टु
पइन बडनेल येड्च दो
कैटभ दैत्य मर्दनुनि गादिलि
कोडल यो मदम्ब ओ
हाटक गर्भु राणि निनु
नाकटिकिन गोंयोइ यल्ल
कर्नाट किरात कीचकुल
कम्म त्रिशुद्धिग नम्मु भारती !

(कज्जल-रंजित-धार क्यों बहाती
अम्ब उरोज तटी पर !
यह देख उर मेरा होता है चूर !
कमी तुम्हें है किस बात की ?
विष्णु-वधू तुम, ब्रह्म-सती तुम,
क्यों सिसकार रही सिसकी भर !
क्षुधि-निमित्त कभी तुमको,
यह झूठ नहीं, सच बात बराबर,
ये कर्णाट किरात-निशाट रहें
बस बेच न दूं उनके कर !)

भक्तकवि आजीवन आर्थिक संकटग्रस्त रहे, किंतु किसी के आगे हाथ नहीं पसारे। और न ही किसी की खुशामद की। उन्होंने तो उस परमपुरुष के ही गुण-गान गाए और उसी मे मस्त रहे—

मंदार मकरन्द माधुर्यमुन देलु
मधुपंबु वोवुने मदनमुलकु
निर्मल मंदाकिनी वीचिकल दूगु
रायंच जनुने तरंगिणुलकु
ललित रसाल पल्लव खादियै चोक्कु
कोयलि सेहने कुटजमुलकु
पूर्णेन्दु चन्द्रिका स्फुरित चकोरकं
बरुगुने सांद्र नीहार मुलकु
अंबुजोदर दिव्य पादारविंद
चिन्तनामृत पान विशेष मत्त
चित्त मेरीति नितरंबु जेरे नेर्चु
विनुत गुणशील माटलु वेयुनेल।

(मंदार-मकरन्द-मधुरिमा का प्यासा
भ्रमर, कभी नीम की ओर चलेगा ?
मंदाकिनी की निर्मल वीचिकाओं का वासी
हंस, कभी लघु निर्झर में बहेगा ?
कोमल रस-पल्लव का चाहक कोकिल,
भूले से कभी उजड़े वृक्ष पर बैठेगा ?
पूर्णिमा की उज्ज्वल किरणों का प्यासा
चकोर, ओस बूंदों पर लुभायेगा ?
ऐसे ही मेरा मन,
विष्णु पादारविंदों की सुधा को
छोड़ कर कभी,
अन्य रसों को क्यों पीयेगा ?

इस प्रकार, सूर के रसीले कृष्ण और तुलसी के मर्यादापुरुषोत्तम राम, दोनों ही पोतन्ना की कविता-कामिनी की वीणा-मधुर झंकार में एकमेक होकर एक-लय हो गए हैं। सूर का शृंगार और तुलसी की भक्ति का सारगर्भित समन्वित रूप ही पोतन्ना की कविता है।

ताज पर

[श्री लखपतराय प्रभाकर]

आगरा नगर में इस समाचार से बहुत सनसनी फैल गई कि पुलिस ने पिछली रात एक शौकीन दम्पति को ताज महल की चार दिवारी के अन्दर विध्वंसक कार्यवाही के सन्देह में गिरफतार कर लिया है। नाना प्रकार की अटकलबाजियां और गप्पें इस घटना के सम्बन्ध में वहाँ के निवासियों ने घड़ीं। इस मामले की चर्चा पानवालों की दुकानों से लेकर बड़े-बड़े होटलों में होने लगी। सभी लोग हैरान थे कि आखिरकार वह दम्पति अन्धेरी रात में वहाँ ताज पर क्यों सन्देह की स्थिति में घूम रहे थे? उन्हें यह भी पता चल गया कि दम्पति कहीं बाहर के हैं। अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए कुछ लोग तो पुलिस स्टेशन भी पहुंचे जहाँ उन्हें पता लगा कि उस दम्पति को उसी दिन स्थानीय मैजिस्ट्रेट की अदालत में मामले की पूरी जाँच करने तक उनका रीमान्ड लेने के लिए पेश किया जायगा।

इस समाचार से लोगों की उत्तेजना बढ़ गई और वे कचहरी में पहुंच कर अधीरता से इस दम्पति के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। ठीक दस बजे एक पुलिस की गाड़ी कचहरी के अहाते में पहुंची और उसमें से वह दम्पति हथकड़ी से बन्धी निकले। पुरुष लम्बा, स्वस्थ, दाढ़ी-मूंछ सफाचट और अच्छे वस्त्र पहने था। स्त्री मंझले कद, श्यामवर्ण, ऐनक लगाए थी, किन्तु अभी भी उसके मुख पर पाऊडर, रूज् एवं लिप्स्टिक से पुते होने के चिह्न थे। शीघ्र ही उन्हें मैजिस्ट्रेट श्री माथुर के समक्ष पेश किया गया। कचहरी का कमरा तब दर्शकों से खचाखच भर गया था।

सरकारी पक्ष की ओर से सारा आरोप ऊंचे स्वर से पढ़ा गया। फिर मैजिस्ट्रेट के पूछने पर पुरुष ने अपना नाम दीपक तथा स्त्री ने कुमुद बतलाया। पुरुष ने यह भी बताया कि वह कनाट सर्कस नई दिल्ली में एक दुकान का मालिक है। पुलिस इन्सपैक्टर ने तब उस से पूछा "नीरव अन्धकार में आप दोनों गत रात ताज पर अवारागर्दी क्यों कर रहे थे?

"क्षमा करें श्रीमान्।" झट से कुमुद बोली। "यदि आप आज्ञा दें तो प्रश्न का उत्तर मैं देती हूँ।"

"देवी, तुम्हें अपने बचाव के लिए सब-कुछ कहने का पूर्णाधिकार है।" मैजिस्ट्रेट ने कहा।

दर्शकों की उत्सुकता और भी बढ़ गई।

'श्रीमान् जी', फिर कुमुद ने अश्रुप्लावित नेत्रों से कहना आरम्भ किया। "हम दोनों का विवाह दस वर्ष पूर्व हुआ था। हमारा वैवाहिक जीवन इतना मधुर एवं सुखमय था कि हमारे पड़ोसी तथा हमारे सम्बन्धी भी हमारे प्रेम को देखकर ईर्ष्या करते थे। मधुमास के समय हम दोनों यहाँ आगरा आए थे और पूर्णिमा की रात्रि को जब चाँद का प्रकाश ताज पर सफेद संगमरमर पत्थरों पर ठिठक रहा था तो हम दोनों का मन रूपी मयूर नाच उठा था। हम झूम रहे थे उस जादूगरी कला-कृति को देखकर।" फिर कुछ रुक कर कुमुद बोली, "तब मेरा पति मेरे रूप-आकर्षण पर मुग्ध होगया। मेरे बालों को प्यार से सहलाने लगा। तभी मैंने इनसे वचन लिया कि मृत्यु पर्यन्त वह मेरे प्रेम-पाश में उसी प्रकार बन्धे रहेंगे जैसे मुमताज एव शाहजहान की पास में कबरें उनके मरने पर भी उनके अनश्वर मूक प्रेम की निशानियाँ हैं।"

इतना कहकर कुमुद गर्दन नीचे करके चुप हो गई। किन्तु मैजिस्ट्रेट तथा दर्शकों की उत्सुकता आगे का हाल जानने के लिए और भी बढ़ गई और फिर मैजिस्ट्रेट ने अधिकारपूर्ण स्वर में कह ही तो दिया, "देवि अपना बयान शीघ्र समाप्त करो।"

शब्द सुनकर कुमुद मानो स्वप्न से जगी जैसे उसे बिजली का झटका-सा लगा। आँखें तरेरते हुए उस ने पुनः कहना आरम्भ किया—

"मेरे पति महोदय ने अपने इस वचन को अभी तीन मास पीछे तक निभाया। किन्तु कुछ समय से मैं देखती थी कि वह एक अन्य स्त्री रजनी जो कि

हमारे पड़ोस ही में रहती है, विधवा है, कोई बच्चा नहीं, पर है सौंदर्य की साक्षात् प्रतिमा, उस की ओर आकर्षित हो रहे हैं। और मेरे में जैसा आप देखते ही हैं अब इतना रूप-यौवन नहीं रहा। आप श्रीमन्, स्वीकार करेंगे कि यह स्थिति मेरे लिए असहनीय थी।"

वह फिर रुक गई। दो-चार अश्रु उसके कपोलों पर ढुलक गए और गर्दन फिरा कर उसने पुनः कहना आरम्भ किया, "श्रीमन्, आप स्वीकार करेंगे कि हिन्दू समाज एवं हिन्दू परिवार की आधारशिला ही यही है कि आर्य नारी अपने पति को अपना प्रेम ही नहीं वरन् सब-कुछ ही सौंप देती है, अर्पण कर देती है, पर अपने पति को अन्य स्त्री से प्रेम करते देखने की अपेक्षा वह मृत्यु का आलिंगन श्रेयस्कर समझती है। अतएव मैंने बहुत बार इन से प्रार्थना, याचना एवं आग्रह किया कि वह रजनी का ध्यान छोड़ दें, किन्तु वह टस-से-मस नहीं होते थे। अन्ततः विवश होकर मैंने योजना बनाई कि हम पुन: इस ताज पर रात्रि को घूमें जहाँ इन्होंने जीवन-भर अपना प्रेम-दान-संकल्प किया था। इसी कारण ही तो हम दोनों पिछली रात ताज पर घूम रहे थे।"

इतना कह कर कुमुद फिर रुक गई! दर्शक एवं मैजिस्ट्रेट आश्चर्य से सब-कुछ सुन कर चकित हो रहे थे, मानो कुमुद की सामाजिक बुराई को हटाने की सूझ-बूझ की मूक प्रशंसा कर रहे थे! फिर मैजिस्ट्रेट के चेहरे पर कुछ मुस्कान खेल गई और आंखें तरेरते हुए उन्हों ने पूछा, 'फिर देवि, वहां घूमने का कुछ परिणाम भी निकला?' अब कुमुद के अधरों पर भी कुछ मुस्कान थिरक गई और बोली—

'क्यों नहीं श्रीमन्, वहां ताज पर पवित्र प्रेम की सुगन्धि बिखरी रहती है। वहाँ के वातावरण ने मेरे पति के अन्तःस्थल में मनोवैज्ञानिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। उन को मेरे प्रति प्रेम की बुझी हुई ज्योति पुनः जाग्रत हो उठी है और उन्हों ने पश्चाताप से अपने पापों को स्वीकार करके मुझे प्रेम लौटा दिया है और अपने अपराधी अन्तःकरण की कालिमा को धो दिया है।'

कुमुद के अन्दर मानों हर्ष की, उल्लास की तब तरंगें उठने लगीं जैसे उसके मन पर पड़ा भारी बोझ उठ गया हो और उस ने मुस्करा कर दीपक की ओर, जो अभी तक मूर्तिवत् खड़ा था, कनखियों से निहारा। मैजिस्ट्रेट यह सब सुन कर दुविधा में पड़ गया। फिर उस ने दीपक से पूछा कि उसे क्या कुछ कहना है? दीपक ने तब भर्राये हुए स्वर में कहा—

'श्रीमन्! मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि जो-कुछ मेरी प्राणवल्लभा ने कहा है वह प्रतिशत ठीक है। हमारे समाज में स्त्री पति के परस्पर मतभेद होने के कारण जो तलाक, पारिवारिक अवसाद एवं कलह हो जाता है मैं समझता हूँ कि स्त्री अपनी दूरदर्शिता एवं सूझ-बूझ से मिटा सकती है जैसा कि कुमुद ने किया। कुमुद तो देवी है, देवी! सच्ची भारतीय स्त्री।'

इतना कहते-कहते वह फूट-फूट कर रोते हुए वहीं कुमुद के पांव पर गिर कर पुनः क्षमा याचना करने लगा।

मैजिस्ट्रेट ने तब सरकारी पक्ष से पूछा कि क्या उन के पास इस दम्पति के बयान को झुठलाने के लिये कोई, प्रमाण हैं? सरकारी वकील ने केवल इतना ही उत्तर दिया—

'श्रीमन्, जैसे निवेदन कर चुका हूँ, ये लोग सन्देह की स्थिति में ताज पर गत रात अन्धकार में फुसफुसाते घूम रहे थे जिस से वहाँ के चौकीदारों को इन के आचरण पर सन्देह हुआ था और इन्हें पकड़ लिया गया।'

'तो इसका वह अर्थ हुआ कि आप के पास इन के विरुद्ध कोई ठोस आरोप नहीं है।' इतना कह कर मैजिस्ट्रेट ने उस दम्पति को वहीं मुक्त करने का आदेश दे दिया। दर्शकगण जिन्हें इस मामले में अतीव सनसनी की आशा थी उस दम्पति को उत्सुक, किन्तु स्वीकारात्मक दृष्टि से देखते-देखते तितर-बितर हो गए। उन्हें लगा कि सामाजिक गिरावट के कारण कैसे दो टूटे हुए दिल, दो विमुख हुए चेहरे पुनः स्नेह पाश में बन्ध गये, मानो उन्होंने भारतीय समाज का मार्गदर्शन किया, एक नई राह दिखाई।

काव्य के स्वरों में वसन्त

[श्री चक्रधर 'नलिन']

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है— "मनुष्य को सौन्दर्य की परख तभी होती है जब कि आंखों के पीछे मन की दृष्टि मिली रहती है।" वस्तुतः कवि का प्रकृति से तादात्म्य ही उसकी वाणी में माधुर्य और सौन्दर्यानुराग उत्पन्न करता है। कवि जगत् में सतत चिरतन सत्य की खोज कर मानव और प्रकृति का, जड तथा चेतन का गठबंधन करता है। कवि जगत् में बिखरे सौन्दर्य का अवलोकन कर विश्व को सत्य, शिव तथा सुन्दर का सन्देश देता है। कवि की जगत् के प्रति शिव की भावना उसे सत्य तथा सुन्दर का अन्वेषण करने के हेतु, प्रेरित करती है। प्रकृति-व्याप्त सौन्दर्य ही मानव-मन की पूर्णनिधि है। वसन्त में प्रकृति अपना सौन्दर्य लुटाती है और इस सौन्दर्य में शाश्वत सत्य का सुमधुर रूप सुरक्षित है।

मानव को आदिकाल से ही वसन्त की सौन्दर्याभा का, उसकी मादकता तथा कमनीयता का अनुभव होता रहा है। यजुर्वेद की इस वसन्त-कल्पना ही में जीवन की छाया है, जीवन का स्वर है—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्तु ओषधीः॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमानस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥

वसन्त ऋतु में मधुर पवन बहती है। जल, वनस्पति, फल-फूल, दिन,रात्रि और उषाकाल, आकाश और पृथ्वी का प्रत्येक अणु माधुर्ययुक्त है, भास्कर का प्रकाश मधुमय है और गायों का दूध भी इसी मधु से पूर्ण है।

वसन्त का यह अलौकिक, मन-भावन वर्णन मानव को युगों-युगों से यौवन का अप्रतिम संदेश देता आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोचनों के समक्ष का दृश्य उसके अन्तर में प्रवेश कर चुका है। वसन्त की इस अक्षय रमणीयता में पृथ्वी अपना नव-शृङ्गार करती है। जिससे ऋषियों ने इसे मधु का नाम दिया है—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मम्,
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः,
सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते॥

सर्वत्र वसन्त की मादकता छाई हुई है। वृक्ष पुष्पों से लदे हुए हैं। जलाशय कमलों से पूर्ण हैं, रमणियां मतवाली हैं, वायु सुगंधमय है, संध्या, रात्रि और दिन सभी की सुषमा बढ़ गई है। अस्तु प्रिये, चारों ओर रमणीयता ही रमणीयता है।

संस्कृत-साहित्य में कालिदास और भवभूति आदि प्रसिद्ध महाकवियों ने उत्तर-रामचरित तथा मेघदूत जैसी कृतियों में वसन्त के प्राकृतिक सरस चित्रों के अंकन के भाव-भीने प्रयास किये हैं। कुमारसंभव के आरम्भ में ही प्रकृति का मधुरतम चित्रण है। वाल्मीकि ने भी प्रकृति-चित्रण संश्लिष्ट रूप से किया है।

हिन्दी-काव्य में मुख्यतः प्रकृति-चित्रण प्रस्तुत और अप्रस्तुत दो रूपों में मिलते हैं। वस्तुतः प्रकृति-चित्रण में अर्थग्रहण और बिम्बग्रहण ये दो रूप हैं। बिम्बग्रहण को लेकर उसका चार प्रकार से कवियों ने चित्रण किया है—शुद्ध प्रकृति-वर्णन, पृष्ठभूमि के रूप में, मानवीकरण तथा अलंकृत रूप में। प्रकृति के अप्रस्तुत रूप को लेकर कई प्रकार से प्रकृति-चित्रण किया गया है—उद्दीपन रूप में, रहस्यवाद के रूप में, और आदेशात्मक रूप में। इसके अतिरिक्त प्रकृति-रूप तथा दूतरूप में भी काव्य-चित्रण होता रहा है।

प्रकृति और पुरुष की अपरम्पार लीला का दिग्दर्शन भारतीय कवियों ने बड़े अलौकिक ढंग से किए हैं। महाकवि श्री निराला सखि को वसन्त का सम्बोधन करते हैं। चतुर्दिक् हर्ष की उठती हुई लहरें, पिक-स्वर का नभ तक गमन एक मनमोहक वातावरण प्रस्तुत करता है। कवि अन्तर्दृष्टि द्वारा रूप माधुर्य के साथ-साथ जीवन के रहस्यमय तत्वों का उद्घाटन भी करता

है। वह मानवीय-क्रियात्मक, विकासात्मक कान्त-सम्मत स्नेह-रश्मियों का अवगुंठन करता है। वह "गीतिका" में गा उठता है—

सखि, वसन्त आया,
हरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया।
किसलयवसना, नव लय लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर, तरु पतिका,
मधुप-वृन्द वन्दी,
पिक-स्वर नभ सरसाया।
लता मुकुल-हार-गन्ध-भार-भर,
बही पवन मन्द-मन्दतर
जागी नयनों में वन यौवन की माया।
आवृत सरसी-उर-सरसिज उठ
केशर के केश, कली के छुटे
स्वर्ण-शस्य अंचल,
पृथ्वी का लहराया।

महाकवि श्री सुमित्रानंदन पंत ने अपनी वसन्त की कविताओं में अनंत-सौन्दर्य-शिखाओं का मधुर तलस्पर्शी वर्णन किया है। यह सहजता तथा शब्दों की लावण्यता कवि को जगत् की भौतिक सत्ता के प्रति सतत जागरूक रखती है। कवि वसन्तागमन के साथ ही धरती पर स्वर्गिक सुन्दरता के प्रवाह के दर्शन करता है। वह "हरितो-जगत्, जगतो हरिः" की समदृष्टि में समाना चाहता है—

चंचल पग दीप-शिखा के घर
गृह-मग, वन में आया वसन्त।
सुलगा फागुन का सूनापन
सौन्दर्य-शिखाओं के अनंत,
सौरभ की शीतल ज्वाला से
फैला उर-उर में मधुर-दाह,
आया वसन्त भर पृथ्वी पर
स्वर्गिक सुन्दता का प्रवाह।

छायावादी (हिन्दी) काल की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा अपनी 'बसन्त रजनी' नामक कविता में जगत् की आश्चर्यपूर्ण गुत्थियों का रहस्योद्घाटन करती हैं। वे बहुधा प्रकृति संबंधी कविताओं में चिन्तन व दार्शनिक विचारों का समन्वय करती हैं। वे वसन्त रजनी शीर्षक कविता में लिखती हैं—

मर्मर की सुमधर नूपुर ध्वनि
अलि गुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पद-गति में अलस तरंगणि,
तरल रजत की धार बहा दे।
मृदुस्मृति से सजनी
बिहँसती आ वसन्त रजनी
सिहर-सिहर उठता सरिता-उर
खुल-खुल उठते सुमन सुधा-भर,
मचल-मचल आते फिर-फिर
सुन प्रिय की पदचाप हो गयी-
पुलकित यह अवनी।
सिहरती आ वसन्त रजनी।

महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत में उर्मिला के त्याग, शौर्य तथा जाज्वल्यमान चरित्र को बड़े सुमधुर भावों में वर्णन किया है। वह वसन्त को चेतावनी देते हुए कहती है—

काली-काली कोयल बोली
होली-होली-होली
हँसकर लाल-लाल होंठों पर हरियाली हिल डोली।
फूटा यौवन फाड़ प्रकृति की पीली पीली चोली।
ऋतु ने रवि-शशि के
पलड़ो पर तुल्य प्रकृति निज तोली।
सिहर उठी सहसा क्यों
मेरी भवन-भावना भोली।

हिन्दी के प्रसिद्ध वीर-रस के कवि श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने कोकिल के मधुर स्वरों में वसन्त की प्रभुता, का मार्मिक चित्रांकन किया है। वह कोकिल से मन्त्रमुग्ध होकर पूछते हैं—

भावों का यह व्याकुल प्रवाह।
अन्तरतम की यह मधुर-तान
किस विजन वसन्त भरे वन में
सखि मिला तुझे स्वर्गीय गान
थे नहा रहे चांदनी बीच जब गिरि
निर्झर, वन विजन गहन
तब वनदेवी के साथ बैठ,
कब किया कहो सखि, स्वर साधन।

हिन्दी के महान् प्रयोगवादी कवि श्री भवानीप्रसाद

मिश्र ने वसन्त की कोयल को सम्बोधन करके स्वयं को जगत् की वेदना से सम्बोधित किया है। वह वसन्ती कोयल से कहते हैं—

अमराइयाँ वे मंजरी से भरीं,
कोई गन्ध तरल तराइयाँ वे।
खाइयों में मौत की जो लोग
साँसें खींचते हैं,
हृदय से जिनके स्वयं यमराज
आंखें मींचते हैं
सामने उनके तुम्हारा व्यर्थ है आरोह,
या अवरोह पंचमताल, ताल॥

कविवर श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने "कैदी की कोयल" नामक कविता में, जो उन्होंने सन् १९३० में जबलपुर कारागार में लिखी थी, युग की विषम परिस्थितियों का मार्मिक विवेचन है—

क्या गाती हो?
क्यों रह रह जाती हो?
कोकिल बोलो तो?
क्या लाती हो?
काली तू, रजनी काली,
शासन की करनी भी काली
इस काली संकट-सागर पर
मरने की मदमाती।

श्री सोहनलाल द्विवेदी ने अपनी प्रसिद्ध कृति "चित्रा" में वासन्ती कविता में लिखा है—

प्रियतम की मधु वाणी-सी
कुहुक उठी वह कल्याणी
वन वन, उपवन, उपवन उत्सव
आयी मधुऋतु की रानी।

श्री रामेश्वर शुक्ल अंचल ने अपनी मधुमास से संबन्धित कविताओं में समष्टि को अपने व्यक्तित्व की ओर खींचने का प्रयास किया है वह भावोल्लास में लिखते हैं—

आज तो मधुमास रे मन,
आज फूलों से सुवासित, हो उठी तृष्णा विजन की
आज पीले मधुकणों से भर गई छाती पवन की
आज द्राक्षा-पर्णिका से उड़ चली मस्ती गगन की
आज पूनो बह चली रसफुल्ल महुओं के सदन में।

कवयित्री श्रीमती विद्यावती पतझर को संबोधन करती हुई मानव-जीवन तथा प्रकृति का तादात्म्य स्थापित करती है। मानव की आर्थिक विषमता तथा जीवन की पंगु जटिलताओं का, जिसने कि सब की मधुकली को मुरझा दिया है, सुन्दर ढंग से विवेचन किया है। वह "मन में पतझर अभी किन्तु वन-उपवन में मधुमास है" नामक गीत में कहती है—

फलित हुए हैं विटप, यहां फल का अनुचर निष्काम है,
वहां मुक्ति है, यहां विवशता ही संयम का नाम है,
पी-पी कह स्वच्छन्द पपीहा प्रिय को पास बुला रहा,
किन्तु प्रेम करना इस दुनिया में चोरी का काम है
इसीलिए अन्तर में तम है, बाहर दिव्य प्रकाश है।

× × ×

अति उदार बन प्रकृति सृष्टि में भरती नव उल्लास है
पर मुझ में तो स्वार्थ, मोह, छल, अहंभाव की गन्ध है,
क्षमता देती आत्म-त्याग है, दुर्बल होती प्यास है।
मन में पतझर अभी किन्तु वन-उपवन में मधुमास है।

साहित्य और प्रकृति का यह मधुर सामंजस्य कवियों ने अपने काव्य-स्वरों में साकार किया है। प्रकृति-प्रिय अंग्रेजी कवि विलियम वर्ड्सवर्थ महोदय प्रकृति को 'दि आंकर ऑव प्योरेस्ट थाट्स' 'दि गार्जियन' 'दि गाइड' आदि कह कर पुकारते हैं। अंग्रेजी की अधिकांश कविताओं में वसन्त के जो तलस्पर्शी चित्रांकन हुए हैं, उनमें सौन्दर्य की विराटता, माधुर्य तथा प्रकृति के मनोहारी चित्रण हैं, जो अपने में स्वतः पूर्ण तथा रससिक्त हैं।

संस्कृत के महाकवि कालिदास ने मेघदूत में जिस सत्य का चित्रण किया है—वह मनोरमता तथा प्रकृति तथा यथार्थ रूप दर्शनीय है, उसमें रस है, मन को आनन्द देने की ओषधि है—

मलयपवनविद्धः कोकिलालापरम्यः
सुरभिमधुनिषेकाल्लब्धगन्धप्रबन्धः।
विविधमधुपयूथैर्वेष्ट्यमानः समन्ताद्
भवतु तव वसन्तः श्रेष्ठकालः सुखाय॥

हरिचरणदास कृत 'भाषा-दीपक'[1]—एक परिचय

[श्री मदनराज दौलतराम मेहता]

हरिचरणदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में डा० मोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' ग्रन्थ में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। डा० मेनारिया के अनुसार हरिचरणदास सरयूपारीण ब्राह्मण थे तथा उनका जन्म १७६६ (वि० सं०) में हुआ था। उन्होंने कवि-वल्लभ ग्रन्थ के आधार पर हरिचरणदास का १८३६ (विक्रम संवत्) के बाद तक जीवित होने का उल्लेख किया है।

हरिचरणदास-कृत ग्रन्थों में मेनारियाजी ने (१) केशव-कृत रसिकप्रिया की टीका (२) केशव-कृत कविप्रिया की टीका, (३) बिहारी-सतसई की टीका (४) जसवन्तसिंह-कृत भाषा-भूषण की टीका (५) सभाप्रकाश और (६) छविवल्लभ आदि ६ ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की है।

हमारे संग्रह में हरिचरणदास-कृत 'भाषादीपक' ग्रन्थ की १८८६ (वि० सं०) में लिपीकृत एक प्रति विद्यमान है। 'भाषा-दीपक' की पुष्पिका में हरिचरणदास ने कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य लिखे हैं, जिनसे कवि के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के सम्बन्ध में नवीन जानकारी मिलती है।

छुप्पय—

संवत अठारह सो जु चारि चालीस के ऊपर।
भाद्र कृष्ण तिथि अष्टमी सुदिन राजत बुध कर।
उमिरि उनासी वर्ष की जु किय भाषा दीपक।
कंठ करेति वढ़ि जाए सुकवि मानस विद्या छक।
निज रसिक प्रिया टीका करी करि विहारी टीकादि हरि
तिन कियो ग्रंथ तुलसी निकट राधा मोहन चित धरि(६८)
आदि पद सों मोहन लीला औ रामायन सार।
कविप्रिया की टीका औ भाषा भूषन की टीका
औं सभा प्रकास कवि-वल्लभ जामें दोष गुन।
के निर्नय (निर्णय))। औ दोय कोन कोश श्रुति भूषन औ
करना भरन औ भागवत प्रकाश। इतने ग्रंथ किये।
इति श्री हरिचरणदास कृतो भाषा दीपक··· ग्रंथ सपूर्णम।

पुष्पिका में मेनारियाजी द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ-सूची के अतिरिक्त जिन ग्रंथों का नामोल्लेख हुआ है, वे इस प्रकार हैं:—

श्रुतिभूषन (कोश),
कर्णाभरण (कोश) तथा भागवत प्रकाश।

'भाषा दीपक' की रचना रचयिता ने ७६ वर्ष की अवस्था में संवत् १८४४ में की थी। इससे उनके १८३६ (वि. सं) के और भी बाद तक जीवित रहने की पुष्टि होती है।

ग्रंथ परिचय—भाषा दीपक ग्रंथ में कुल ६८ छंद हैं। कवि ने दोहा, सवैया, छुप्पय, आदि छंदों में नायिका-नायक-भेद, रस-लक्षण, शब्द-वृति, के संबंध में उदाहरण-सहित विवेचन किया है।

आदि :—

अखिल सुखन की साधिका राधिका सु अभिराम।
पुरै मनोरथ दास के अटल बिहारी स्याम।१
श्री राधा गोविन्द के यह गुन लखि आराध।
अपराधी आवे शरण छमा करत अपराध।२

मध्य :—

रस-लक्षण

मिलि विभाव अनुभाव अरु सात्विक अरु संचारि।
थाई अति वटि होन रस सुख रूपै सुविचारि॥

सवैया—

जो रसभावहि कों उपजावत सो है विभाव इहै मन में गन।
औसें नवों रसमें अनुभाव बतावे जो भावति या को सही सन।
सात्विक स्तंभ रु स्वेदरु कंप रोमांचरु औ स्वर भंग कह्यो मन।
अश्रु प्रलय जह चेन रहन लखो वै बर्न्यं करे रंग कों तन।४७

अंत :—

इति श्री हरिचरणदास कृतो भाषा दीपको......
ग्रंथ संपूर्णम ॥ संख्या श्लोक ३००।

सं १८८६ रा मिती वैसाख वद ७७ प्र ॥ सुकवार दसखत भंडारी विरधीचन्द रा है जोधपुर मधे ॥ ●

१. श्री दौलतराम मेहता प्राच्य ग्रंथागार (सरदारपुरा जोधपुर) की हस्तलिखित प्रति के आधार पर।

कर्म-सिद्धांत

[श्री करमनारायण कपूर]

मनुष्य को इस संसार में सभी प्रकार के, अच्छे और बुरे, कर्म करने की स्वतंत्रता प्राप्त है, परन्तु कर्म कर लेने के पश्चात् वह कर्म-सिद्धांत के अधीन उसका फल प्राप्त किए बिना नहीं रह सकता।

कर्म-सिद्धांत के अनुसार मनुष्य का यह जीवन अनादि है। इसका अर्थ यह है कि, कर्म की दृष्टि से, ऐसा कोई कर्म नहीं है जिसे सच्चे अर्थों में प्रथम कर्म कहा जा सके।

कर्म-सिद्धांत का अर्थ यह है कि इस जीवन में मनुष्य अपने गत जीवन के कर्मों के फल भोगता है और इस जीवन में किए गए कर्मों का फल उसे अगले जीवनों में भोगना होगा।

गीता (अध्याय १८, श्लोक १२) में कहा है—जिन लोगों के कर्म कामना से संचालित होते हैं, उन्हें अगले जन्मो में सुखपूर्ण, दुःखपूर्ण तथा मिश्रित, तीन प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। कामना का त्याग करने वाले संन्यासी के कर्म फलदायी नहीं होते।

यदि किसी जन्म में किए गए अच्छे और बुरे कर्मों का परिणाम उसी जन्म में प्राप्त हो जाय, तो आगामी जन्म को उत्पन्न करने के लिए पाप या पुण्य का कोई भी तन्तु शेष नहीं रहेगा।

कर्म-सिद्धात के साथ ही आत्मा की अमरता तथा उसके आवागमन का सिद्धात भी जुड़ा हुआ है। आत्मा ईश्वरीय तथा अमर होते हुए भी शरीर के पिंजड़े में बंदी है। मृत्यु उसे मुक्त करती है, परन्तु यह कुछ समय के लिए ही होता है क्योंकि कर्म-सिद्धात के अधीन यह मुक्त आत्मा पुनः-पुनः बंदी होने के लिए बाध्य है। जन्म तथा पुनर्जन्म का चक्र सदा ही चलता रहता है। इस प्रकार आत्मा बारम्बार स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी, कीड़े तथा पेड़-पौदों में अवतरित होता हुआ अपने अच्छे और बुरे कर्मों का फल भोगता रहता है।

परन्तु मनुष्य शरीर में अवतरित होने पर ही आत्मा किसी भी प्रकार के अच्छे या बुरे कर्मों को करने में समर्थ होता है; इससे नीची योनियों, यथा पशु, पक्षी और वनस्पति में जन्म लेकर वह मुख्यतः अपने बुरे कर्मों के परिणाम ही भोगता है और स्वतः कोई भी कर्म नहीं कर पाता। यह ईश्वर की महती दया और न्याय ही है कि इन नीची योनियों में वह अपने दुष्कर्मों के भार से मुक्त हो लेता है और हलका हो जाता है। फिर जब पाप और पुण्य का पलड़ा समान हो जाता है, तब वह पुनः मनुष्य-योनि में जन्म लेने का अधिकारी हो जाता है।

कर्म-सिद्धांत को भली-भांति समझ पाने के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि अच्छे-बुरे कर्मों को करने में पांचों इन्द्रियां मन तथा बुद्धि की, जो सूक्ष्म शरीर के रूप में प्रत्येक जन्म में आत्मा का साथ देती हैं, सहायता अनिवार्य रूप से लेती हैं। इसलिए नए जन्मों में शरीर का परिवर्तन हो जाने पर भी ये ही इन्द्रियां, मन और बुद्धि ही कर्मों के अच्छे-बुरे फल को भोगते हैं। भारत के प्रथम स्मृतिकार, मनु ने इस विषय में कहा है :—

"मन ही अपने किए अच्छे-बुरे कर्मों का परिणाम भोगता है। वाणी के संबंध में भी यही सत्य है। शरीर की अन्य इन्द्रियां भी इसी प्रकार अपने कर्मों का फल भोगती हैं।" (मनुस्मृति, १२-१८)

यदि मनु द्वारा निर्धारित यह नियम ठीक है, तो यह मानना पड़ेगा कि जो बच्चा जन्म से ही अन्धा या बहरा होता है, वह चूंकि इस जीवन में उन इन्द्रियों से कोई पाप करने का अवसर ही नहीं पाता, इसलिए उसकी यह अक्षमता गत जन्मों के उसी इन्द्रिय से किए किसी पाप का परिणाम होती है।

प्रतीत होता है कि कोई भी ऐसा स्वर्ग या नरक नहीं है जिसमें मनुष्य की आत्मा, शरीर छोड़ने के बाद, अपने अच्छे और बुरे कर्मों का परिणाम भोगने के लिये भेजी जाती हो। यदि स्वर्ग और नरक की वास्तव में सत्ता होती, तो उन्हें मनुष्य, पशु, पक्षी तथा वनस्पति रूपी शरीरों में अवतरित होकर अपने अच्छे और बुरे कर्मों के परिणाम भोगने की आवश्यता ही

नहीं होती। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि उच्च स्तर तक पहुंची आत्माओं को अपने अच्छे कार्यों के फल भोगने के लिए जन्म लेना आवश्यक होता है। इसका अपवाद एक ही है और वह तब जब आत्मा अपने सब पापों तथा अपवित्रताओं से मुक्त और शुद्ध हो जाती है; तब वह अशरीरी रह कर ही मोक्ष-सुख का अनुभव करती है। परन्तु इस अवस्था में भी वह अपना व्यक्तित्व नहीं खोती, क्योंकि मोक्ष की दशा व्यतीत हो जाने पर उसे फिर शारीरिक धरातल पर वापस लौटना पड़ता है।

यदि पूर्वजन्म न हो, तो मनुष्य-मनुष्य के बीच के भेद तथा मनुष्य और पशु के बीच के भेद की व्याख्या कैसे की जाए? यदि उनका सम्बन्ध गत जन्मों के कर्मों से न जोड़ा जा सके, तो उन्हें ईश्वर से जोड़ना होगा, और तब ईश्वर को अन्यायी तथा सुख-दुःख का असमान वितरण करने वाला मानना होगा।

कुछ व्यक्तियों की यह गलत धारणा हो गई है कि मनुष्य अपने उसी जीवन में पाप-पुण्य का फल भोग लेता है और कर्म-सिद्धान्त का कोई ठोस आधार नहीं है। इस धारणा का आधार यह वास्तविकता प्रतीत होती है कि समाज में अपराधियों को अपने अपराधों का परिणाम उसी जीवन में भोगना पड़ता है। परन्तु यह धारणा ठीक नहीं है, क्योंकि इससे आवश्यक रूप में उपर्युक्त निर्णय नहीं निकलता।

कर्म-सिद्धान्त के कठोरतम आलोचकों को भी यह मानना होगा कि समाज के ९५ प्रतिशत के लगभग व्यक्ति अपराध नहीं करते, फिर भी उन्हें ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जो अकारण तथा अन्याय-पूर्ण प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार बहुत से लोगों को इस जीवन में अच्छे कार्य किए बिना ही सुख, सम्पत्ति, स्वास्थ्य तथा यश प्राप्त हो जाता है। कुछ अपराधी भी साफ बच निकलते हैं तथा कुछ को जरूरत से कहीं ज्यादा दंड भोगना पड़ता है। निम्नलिखित उदाहरण से उपरोक्त तर्क की निरर्थकता सिद्ध होती है।

क, ख, ग, घ, च और छ नामक ६ डाकुओं का एक गिरोह षड्यंत्र करता है कि एक धनी जौहरी की दुकान में डाका डालकर माल चंपत कर दिया जाय। जब वे अपना काम पूरा करके लौटते हैं, तब पुलिस के दो सिपाही उन्हें रोकते हैं और उन पर गोलियाँ चलाते हैं। फलस्वरूप क घटनास्थल पर ही मर जाता है, ख बुरी तरह घायल होता है तथा ग और घ के साथ बंदी बना लिया जाता है। शेष दोनों, च और छ माल लेकर भाग निकलते हैं। बाद में च भी पकड़ा जाता है। परन्तु छ किसी भी प्रकार पकड़ा नहीं जाता। इसके दौरान च अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और पुलिस को उस स्थान पर ले जाता है जहाँ उसने अपने हिस्से का धन गाड़ रखा है। अब पुलिस छ के स्थान पर म को जुर्म में फाँस लेती है। घ मुकदमे के बीच मर जाता है। ख, ग, च और म न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाते हैं और चारों को ५-५ वर्ष का सपरिश्रम कारावास दिया जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि यदि क घटनास्थल पर ही मारा न जाता, तो उसे भी ५ वर्ष का कारावास भोगना पड़ता। इस अवस्था में कहना यह होगा कि क, जिसे अपने जीवन से ही हाथ धोना पड़ा, कानून द्वारा दी गई सज़ा से कहीं ज्यादा सज़ा पाता है। ख को सपरिश्रम कारावास के अलावा अपनी टाँग भी, जो चिकित्सा के समय काट दी गई, खोनी पड़ी। ग और च की तुलना में उसे भी ज्यादा दंड मिला है। ग का दंड ठीक ही है। परन्तु घ को अपने अपराध का कोई भी दंड नहीं मिला—वह जैसे बिलकुल ही बच निकला। च ने यद्यपि पश्चात्ताप करके अपना भाग भी वापस लौटा दिया, परन्तु उसे भी ग के बराबर ही दण्ड का भागी होना पड़ता है।

अब छ, जो शेष पाँचों के समान ही दोषी है, बिलकुल भी सजा नहीं पाता और मौज करता रहता है। रह गया म, जो बिल्कुल निर्दोष होते हुए भी सब के बराबर सजा भोगने को बाध्य है। उसने कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी उसे न्याय का कुठार सहना पड़ता है। यह न्याय सामाजिक धरातल का है। निस्सन्देह यही न्याय ईश्वरीय धरातल का भी है क्योंकि वहाँ यह अटल कर्म-सिद्धान्त द्वारा निर्धारित है। इस दृष्टि से देखने पर प्रतीत होगा कि समाज का अन्याय वास्तव में ईश्वर का न्याय ही है।

इस उदाहरण में ख, ग और घ को मिले असमान

(शेष पृष्ठ ३७ पर)

मकराना—भारत का रटलैंड

[प्रा. सुन्दरलाल गुप्त]

संयुक्त राज्य में रटलैंड और इटली में करारा संगमरमर उद्योग के लिए समस्त विश्व में इसी प्रकार प्रसिद्ध हैं जिस प्रकार मैनचेस्टर सूती कपड़ा उद्योग, पिटसबर्ग लोह और इस्पात उद्योग, बरमिंघम साइकिल उद्योग तथा हावड़ा जूट उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। भारत में संगमरमर का उद्योग बहुत प्राचीन है। मोहनजोदाड़ो और हरप्पा की खुदाई में ऐसी पॉलिश की हुई शिलाएँ मिली हैं जो मकराना संगमरमर से पूर्णतया मेल खाती हैं। भारत में इस उद्योग का सबसे बड़ा, प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण केन्द्र मकराना ही है। मकराना न केवल भारत, अपितु एशिया का संगमरमर उद्योग के लिए सबसे महान् केन्द्र है। अतः यदि मकराना को भारत का रटलैंड अथवा करारा कहा जाय तो कोई अनौचित्य और अतिशयोक्ति न होगी। मकराना ने ही जगत्-विख्यात मुग़ल इमारत 'ताज' (आगरा), दिलवाड़ा मन्दिर (माउँट आबू), सरस्वती मन्दिर (पिलानी) तथा विक्टोरिया मैमोरियल (कलकत्ता) आदि भव्य और ऐतिहासिक इमारतों के लिए श्वेत संगमरमर प्रदान किया है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है संगमरमर का उद्योग भारत में पर्याप्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। आज भी आगरा, जयपुर और मकराना में शिल्पकार और कारीगर संगमरमर की मूर्तियाँ, खिलौने, ताज के माडल, कलमदान तथा अन्य कलाकारी के नमूने बनाते हुए दिखाई पड़ेंगे। लेकिन आधुनिक ढंग पर इस उद्योग का विकास भारत में १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में आरम्भ हुआ, जबकि पहली बार सन् १८७५ ई० में संगमरमर को काटने वाली फैक्ट्री की स्थापना मकराना में हुई। धीरे-धीरे इस उद्योग ने बड़ी प्रगति की जो इस तथ्य से प्रकट है कि आज मकराना में संगमरमर काटने वाली मशीनों की संख्या ११० से भी अधिक है। इसके अतिरिक्त अब यहां अनेक क्रशर और चक्कियाँ भी स्थापित कर दी गई हैं जो संगमरमर की बजरी और चूर्ण तैयार करने के कार्य में संलग्न है।

वैसे तो भारत के अनेक राज्यों जैसे पंजाब, गुजरात, बंगाल में यह उद्योग अस्तित्व में आया है जहां क्रमशः नारनौल, छुछापुरा और कलकत्ता में इसकी फैक्ट्रियां स्थापित की गई हैं। लेकिन इस काम में राजस्थान का प्रमुख हाथ है जहां चित्तौड़गढ़, किशनगढ़, आबूरोड और मकराना में यह उद्योग पनपा है। इन सब में मकराना उसी प्रकार विख्यात है जैसे कि सूती कपड़ा उद्योग में बम्बई अथवा अहमदाबाद। सच तो यह है मकराना में ९५ प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इसी उद्योग पर आश्रित है। यहां इस उद्योग की ९५ के लगभग फैक्ट्रियां दिन-रात संगमरमर की विभिन्न उपजों को तैयार करने में व्यस्त रहती हैं।

(पृष्ठ ३६ का शेष)

दण्ड और म को मिले दोषहीन दण्ड की व्याख्या कर्म-सिद्धान्त से हो जाती है और उसी से इसकी न्यायता भी ठहरती है। इस सिद्धान्त के अनुसार आत्मा के अच्छे और बुरे कर्म न केवल उसी अपितु अगले जीवन में भी फलीभूत होते हैं।

प्रत्यक्षतः ख, ग और च को दण्ड मिला है डकैती का, परन्तु वास्तव में उनको तथा म की, जिसने डकैती में भाग ही नहीं लिया, पिछले जीवन के किन्हीं कर्मों का दण्ड भोगना पड़ा है। इस डकैती का वास्तविक दण्ड तो उन्हें बाद के किसी जन्म में ईश्वर की ओर से दिया जायगा। इससे उन्हें छुटकारा नहीं मिल सकता अन्य किसी आधार पर ख, ग च और म को मिले दण्डों का समर्थन ही नहीं किया जा सकता। ईश्वरीय धरातल पर न्याय से बचने का कोई उपाय नहीं है और वहाँ असमान या अनावश्यक दण्ड भी नहीं दिया जाता। (अंग्रेजी से अनूदित)

मकराना राजस्थान के जोधपुर ज़िले में फुलैरा-जोधपुर रेलवे लाइन पर फुलैरा से ४० मील दूर स्थित है। इसकी जनसंख्या २५००० के लगभग है जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि मकराना में संगमरमर उद्योग की ६५ के लगभग फैक्ट्रियां स्थित हैं, परन्तु मुख्य युनिटें केवल १५-१६ ही हैं जिनका ब्यौरा नीचे की तालिका में दिया गया है—

तालिका न० १

क्रम संख्या	युनिट का नाम	किस सन् में आरम्भ हुई	चिराई-मिलों की संख्या	चक्कियों की संख्या	क्रशरों की संख्या	हासिया काटने वाली मशीनों की संख्या	अधिकृत खानें
१	एच. एस. हुसैन बख्श फाजिल जी	१८७५ ई०	६	२	१	नहीं	३
२	एस. अब्दुल हकीम एण्ड संस	१९४० ,,	५	६	१	१	४
३	मकराना मार्बल एण्ड स्टोव	१९४० ,,	६	२	१	नहीं	१
४	रघुनन्दनप्रसाद एण्ड को.	१९५२ ,,	२	२	२ (चालू एक) लग रही है		
५	बी.एल. वैश एण्ड सन्स	१९३० ,,	३	२	१	१	नहीं
६	आर. जी. बंसल एण्ड को.	१९१५ ,,	३	४	२	१	१
७	जैन अशोक मार्बल फैक्ट्री	१९६० ,,	४	२	१	नहीं	२
८	नाहटा मार्बल फैक्ट्री	१९५६ ,,	३	कोई नहीं	कोई नहीं	१	नहीं
९	राजस्थान मार्बल वर्क्स	१९४७ ,,	४	२	१	१	नहीं
१०	जैन मार्बल फैक्ट्री	१९५६ ,,	४	२	१	नहीं	नहीं
११	चौधरी मार्बल फैक्ट्री	१९५७ ,,	३	कोई नहीं	कोई नहीं	१	,,
१२	एस. छोटू गुलाब जी एण्ड को.	१९४२ ,,	४	२	१	नहीं	,,
१३	कमल मार्बल फैक्ट्री	१९५७ ,,	३	कोई नहीं	कोई नहीं	१	सूचना अप्राप्त
१४	हाज़ी शेख नत्थू	१९४२ ,,	४	२	१	नहीं	नहीं
१५	कैलास मार्बल फैक्ट्री	१९५८ ,,	३	कोई नहीं	१	,,	,,
१६	मुस्तफा एल्फू एण्ड को.	१९५७ ,,	३	,,	कोई नहीं	,,	,,

नोट—आर. जी. बंसल एण्ड को. मकराना का सबसे बड़ा यूनिट है जो कि साझीदारों के आपसी झगड़े के कारण गत तीन वर्ष से बन्द है।

तीन प्रमुख उपजें

मकराना में संगमरमर की तीन प्रमुख उपजें तैयार की जाती हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. संगमरमर की शिलाएँ।
२. संगमरमर की बजरी।
३. संगमरमर का पाउडर।

संगमरमर की स्लैबों का उपयोग मूल्यवान् और विशाल भवनों के फर्श-निर्माण के लिए किया जाता है। संगमरमर की शिलाओं से बना फर्श सुन्दर और चित्ताकर्षक होने के साथ ही साथ मजबूत और टिकाऊ भी होता है। इस प्रमुख उपयोग के अतिरिक्त अब इन शिलाओं का प्रयोग मेज के ऊपरी भाग के रूप में भी किया जाने लगा है। बड़े-बड़े होटलों, रेस्ट्राँ, बैंकों के कॉउटर भी इन्हीं शिलाओं से बनाए जाने लगे हैं। चिप का प्रयोग बुन्दकीनुमा फर्श के साथ टाइलें बनाने में भी किया जाता है जबकि संगमरमर के पाउडर का प्रयोग टाइलें बनाने के अतिरिक्त कागज और रबड़ उद्योग में फिलर के रूप में भी प्रचुरता से किया जाता है।

मकराना के इस उद्योग की प्रगति का श्रेय यहाँ से एक मील दूरी पर स्थित एक सामान्य ऊँचाई वाली पहाड़ी को है, जो सदियों से संगमरमर प्रदान कर रही है। यह पहाड़ी पूर्व-पश्चिम तक लगभग सात मील

की लम्बाई में फैली हुई है। इसकी चौड़ाई भी आध मील के लगभग है। यह पहाड़ी संगमरमर का अक्षय भाण्डार है और प्राचीन काल से इसी ने भारत की विभिन्न ऐतिहासिक इमारतों के निर्माण हेतु संगमरमर प्रदान किया है। मार्के की बात तो यह है कि इस पहाड़ी की समस्त लम्बाई-चौड़ाई में संगमरमर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं और संगमरमर भी सफेद और उत्तम प्रकार का है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इसी पहाड़ी पर लगभग एक हज़ार से भी अधिक खानें विकसित की गई हैं और इनके विकसित करने में लाखों की पूंजी लगी हुई है। आजकल केवल ७००-८०० खानों पर ही कार्य चल रहा है, शेष पर काम बन्द है। अनेक खानें, जिनकी संख्या लगभग एक सौ से अधिक है, मुग़ल काल से चल रही हैं और अब इनकी गहराई २०० फुट से भी अधिक हो गई है और इनसे संगमरमर का ऊपर लाना क्रेनों के बिना सम्भव नहीं है। अतः ऐसी लगभग २०० क्रेनें मकराना की खानों पर कार्य करती दिखाई पड़ती हैं। अधिकतर ऐसी खानों पर, जिनकी गहराई २०० फुट से अधिक है, कार्य बन्द कर दिया गया है, क्योंकि आर्थिक दृष्टिकोण से इनका शोषण लाभप्रद नहीं रहता। लगभग ८००० व्यक्ति श्रमिकों के रूप में इन खानों पर काम करते हैं। इसके अतिरिक्त २००० व्यक्ति संगमरमर को खानों से फैक्टरियों तक लाने-लेजाने में व्यस्त हैं।

खानों से इस्पात की सलाखों की सहायता से संगमरमर के बड़े-बड़े पत्थर तोड़े जाते हैं। फिर इनकी छैनियों से छटाई की जाती है और इनको आवश्यकतानुसार आयताकार शिलाओं में परिणत किया जाता है। इनका साइज़ भी भिन्न होता है जो मूल शिला की लम्बाई-चौड़ाई पर निर्भर है। अनेक खानों से ब्लास्टिंग की सहायता से संगमरमर के बड़े-बड़े पत्थर प्राप्त किए जाते हैं। फिर श्रमिकों की सहायता से इन्हें तोड़कर २"–२½" व्यास के रोड़ों में बदल दिया जाता है। यह सभी कार्य मानवीय श्रम द्वारा सम्पन्न कराया जाता है और बड़ा कठिन तथा दिक्कत वाला है।

खानों से बड़े-बड़े आयताकार संगमरमर के ब्लाकों को फैक्टरियों में लाया जाता है। फैक्टरियाँ अधिकतर मकराना रेलवे स्टेशन के इर्द-गिर्द ही स्थापित की गई हैं। जिसका मुख्य कारण यह है कि फैक्टरियों की उपजों को सरलतापूर्वक बाहर भेजा जा सके। फैक्टरियों और खानों के मध्य की दूरी एक-आध मील से अधिक नहीं है और इसके मध्य पक्की सड़क उपस्थित है। भैंसागाड़ी अथवा बैलगाड़ी यातायात का प्रमुख साधन है। ट्रकों का प्रयोग नहीं के बराबर है। इसके अतिरिक्त चित्तौड़गढ़, भैंसलाना, जैसलमेर और किशनगढ़ आदि स्थानों से भी विभिन्न शेड का संगमरमर मकराना की फैक्टरियों को सप्लाई किया जाता है। भैंसलाना से श्यामवर्ण और शेडेड संगमरमर मकराना को भेजा जाता है जो चिराई, घिसाई और पालिश के उपरान्त अत्यन्त सुन्दर, मोहक और अनेक सीन-सीनरी प्रदर्शित करता है।

संगमरमर के आयताकार ब्लाकों को संगमरमर चीरने वाली मशीनों के नीचे सुव्यवस्थित ढंग से जमाकर रखा जाता है। इन मशीनों की कुल संख्या ११० के लगभग है। एक मशीन में ३०-३५ आरे लगे होते हैं जोकि एक ब्लाक को डबल शिफ्ट में काम करने पर १५-१६ दिन में चीर देते हैं। एक ब्लाक से मशीन में लगे आरों की संख्या के बराबर ही स्लैबें प्राप्त होती हैं। स्लैबों का साइज़ मौलिक ब्लाकों के आकार पर निर्भर है, लेकिन मोटाई एक इंच होती है। अभी तक फैक्टरियाँ डीजल पावर से संचालित होती हैं, लेकिन शीघ्र ही पन-विद्युत् आने वाली है।

फर्श-निर्माण में प्रयुक्त होने से पहले इन स्लैबों के किनारों की छटाई की जाती है और यह काम भी मशीनों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। संगमरमर चीरने वाली मशीनों के अतिरिक्त ५० क्रशर और १०० चक्कियाँ और ७ किनारे काटने वाली मशीनें मकराना की फैक्टरियों में उपस्थित हैं। नीचे की तालिका में संगमरमर की तीनों उपजों का मासिक उत्पादन दिया गया है—

तालिका नं. २ (सन् १९६१-६२)

उपज का नाम	उत्पादन (प्रतिमास)	प्रति वर्ष
१. स्लैब	१५०००० वर्गफुट	१८०००००व.फु.
२. चिपस	३०००० टन	३६०००० टन
३. पाउडर	३०००० टन	३६०००० टन

अब मकराना के संगमरमर का उपयोग कम होता जा रहा है, क्योंकि मार्केट में नारनौल की धारीदार, शेडेड और विभिन्न दृश्य प्रदर्शित करने वाली स्लैबों को इंजीनियर और भवन-निर्माणविशेषज्ञ मकराना की सफेद स्लैबों के मुकाबले में अधिक तरजीह देते हैं और मकराना स्लैबों का अधिकतर प्रयोग अब मन्दिरों आदि के लिए ही सीमित हो गया है। फिर भी अनेक गुण-सम्पन्न होने के कारण मकराना मार्बल की लोकप्रियता कम नहीं हुई है। ये गुण निम्नांकित हैं—

१. मकराना मार्बल की शिलाएँ पर्याप्त लम्बे समय तक विकृत नहीं होतीं और इनकी सुन्दरता में कोई कमी नहीं आती। मौसमी शक्तियों का भी इन पर शीघ्र प्रभाव नहीं पड़ता। अतः भवन-निर्माता इन्हें बड़ा पसन्द करते हैं।

२. इनके किनारे काटना कठिन और दुःसाध्य नहीं है। इस क्रिया के माइर्ट्रैत शिलाएँ तड़कती नहीं।

३. मकराना स्लैबें पालिश खूब ग्रहण करती हैं जबकि अन्य स्थानों में उत्पादित स्लैबों में यह गुण नहीं रहता।

४. मकराना का संगमरमर वैसे तो कठोर है, लेकिन शिल्पकारी और बारीक खुदाई आदि के लिए बहुत अनुकूल सिद्ध हुआ है। अतः आकर्षक खिलौने, मूर्तियां, ताज के माडल, कलमदान आदि बनाने में इसका प्रयोग बहुत बढ़ गया है।

मकराना में उत्पादित संगमरमर की उपजों के लिए बाजार विशेष रूप से भारत के बड़े-बड़े नगरों जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, अहमदाबाद आदि में उपलब्ध हो जाता है, जहां संगमरमर की माँग पर्याप्त अधिक है और प्रचार के साथ यह माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है। चिप का निर्यात बम्बई, अहमदाबाद और कलकत्ता को किया जाता है, जहाँ इसका उपयोग टाइलें बनाने में किया जाता है। मकराना में कुछ यूनिटें विशेष-दक्षता प्राप्त शिल्पकारों की सेवाओं का भी उपयोग करती हैं। ये शिल्पकार बड़ी-बड़ी विशाल मूर्तियाँ, जो किसी देवी-देवता अथवा नेता से सम्बन्धित होती है, बनाने में संलग्न पाये जाते हैं। एच. एस. हुसैन बख्श फाजिल जी और मकराना मार्बल एण्ड स्टोन आदि फैक्टरियों में इस विशेष कार्य पर विशेष ध्यान दिया गया है।

यह ठीक है कि मकराना में उत्पन्न की गई संगमरमर की उपजों को विक्रय करने में उद्योगपतियों को किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। क्योंकि माँग सदा ही उत्पादन से अधिक रहती है, पर इतना अवश्य है कि विक्रय सुव्यवस्थित और संगठित ढंग से नहीं किया जाता और मकराना में ऐसी कोई संगठित एजेंसी नहीं है जो ग्राहकों से सौदाबाजी कर सके।

उद्योग का भविष्य

अभी तक इस उद्योग पर कोई विशेष खोज-कार्य नहीं हुआ है और किसी विशेषज्ञ ने अभी तक समस्त भारत में संगमरमर की माँग का अधिकारपूर्ण अनुमान नहीं लगाया है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमारे संगमरमर को विदेशी बाजार किस सीमा तक उपलब्ध होगा। इस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है। तो भी यह अटल विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि देश में संगमरमर की विभिन्न उपजों की माँग पर्याप्त अधिक है और यह माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है। यदि सुनियोजित ढंग से प्रचार किया जाय तो निश्चय ही भारतीय संगमरमर को पड़ौसी विदेशी बाजार में भी लोकप्रिय बनाया जा सकता है। अत: इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए पड़ौसी देशों की राजधानियों में प्रदर्शन-कक्ष स्थापित किए जाएँ और अन्तरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों में, जिन में भारत भाग ले, संगमरमर की उपजों का भी प्रदर्शन किया जाय। ऐसा करने के साथ-साथ भारतीय उद्योगपतियों को संगमरमर की स्लैबों की कीमत कम करने की ओर भी ध्यान देना चाहिए। इसके लिये यह आवश्यक है कि संगमरमर की खुदाई, ढुलाई, चिराई और पिसाई आदि का सभी कार्य यान्त्रिक ढंग से किया जाय और इस कार्य में विदेशी विशेषज्ञों की सहायता ली जाय।

भगवान् सूर्य का आत्म-परिचय

★

परिचय की दूतिकाएँ (११)

[श्री कुलदीप चड्ढा]

जानते हो वत्स ! आज मैं किसकी चर्चा छेड़ने वाला हूँ ?

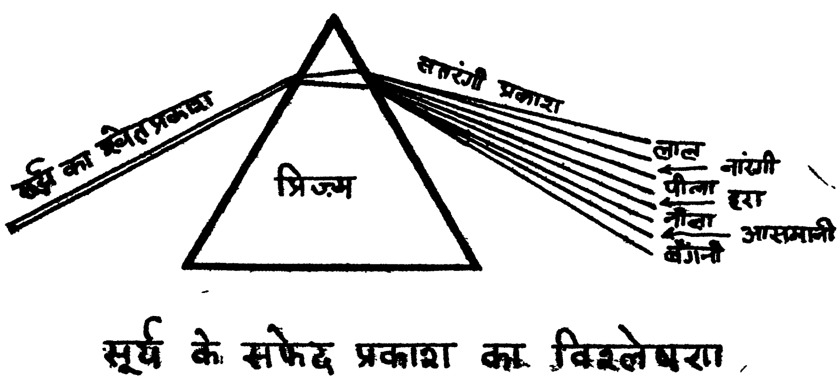
—उन दूतिकाओं की जिनके द्वारा तुम्हारे वैज्ञानिक मेरे बारे में सारी जानकारी हासिल करते रहते हैं। मेरे घर की मेदिनी इन दूतिकाओं की पल्टन इतनी बड़ी है कि इन्हें गिन पाना बिल्कुल असंभव है। और इनकी चाल इतनी तेज है कि नौ करोड़ मील की दूरी तक, मेरे समाचार ले जाने में इन्हें केवल आठ मिनट के लगभग समय लगता है।

भला जानते हो, ये दूतिकाएं कौन हैं ?

मेरे प्रकाश की किरणें !

अपनी सूक्ष्मता के कारण ये लगभग बिना रोक-टोक तुम्हारी पृथ्वी तक जा पहुंचती हैं। हैं तो वे गूंगी, इसीलिए बोल तो कुछ पाती ही नहीं। पर तुम्हारे वैज्ञानिक, इनका रंग-रूप देखकर ही मेरा हाल-चाल जान जाते हैं। इसी को तो कहते हैं, लिफाफा देखकर मजबून जान जाना।

लेकिन तुम्हें शायद एक शंका हो। मेरे प्रकाश का रंग प्रायः पीला-सफेद-सा ही प्रतीत होता है। फिर यह रंग देख कर, हाल-चाल जान लेने की बात का मतलब ?



सूर्य के सफेद प्रकाश का विश्लेषण

पर वास्तकिकता यह है वत्स ! कि वासंती-सा दिखाई देने वाला मेरा प्रकाश लाल पीली नीली अनेक रंग की किरणों से मिल कर बनता है। इस बात को जाने इन्सान को कोई तीन सौ साल ही हुए हैं। न्यूटन नामक तुम्हारे एक वैज्ञानिक ने सन् १६६६ में एक प्रयोग द्वारा इस रहस्य का सर्वप्रथम उद्घाटन किया। जानते हो कैसे ?

मेरे प्रकाश को छान कर।

इसके लिए उसने काँच के एक तिकोने खंड में से प्रकाश की एक बारीक-सी रेखा गुजारी। लेकिन दूसरी ओर से निकलने वाला प्रकाश, दिवार पर एक सफेद से बिन्दु के रूप में प्रकट होने के स्थान पर, सतरंगी रूप में फैल गया। बैंगनी, आसमानी, नीले, हरे, पीले, नारंगी और लाल रंगों से बनी छाया, मानो एक छोटा-सा इन्द्रधनुष थी।

इस प्रयोग के परिणामस्वरूप, जब मेरे प्रकाश के बहुरंगी रूप में सबको विश्वास हो गया तो प्रश्न उठा कि संत्रेत्र अथवा प्रिज्म कहलाने वाला काँच का तिकोना टुकड़ा, मेरी किरणों को छान कर अलग-अलग कैसे कर पाया ?

काफी लम्बी कहानी है तुम्हारे वैज्ञानिकों के सोच-विचार और तर्क की। अन्त में कुछ विद्वानों ने प्रस्ताव रखा कि मेरे प्रकाश की किरणें तरंग-रूपा हैं। अलग-अलग रंग की प्रकाश-तरंगों की लम्बाई भिन्न-भिन्न होती है। इनके इसी गुण की भिन्नता के कारण, प्रिज्म उनमें भेद कर सकता है।

पर, जानते हो मेरे प्रकाश की तरंगें कितनी लम्बी होती हैं ? लो कुछ उदाहरण सुनो, मेरे लाल रंग की १३ हजार तरंगें मिल कर एक सैंटीमीटर लम्बी बन पाती हैं—अथवा ऐसी ३२ हजार तरंगों की कुल लम्बाई केवल एक इंच होगी। तुलना में नीले रङ्ग की तरंगें इन से भी कोई आधी होती हैं। ऐसी २० हजार तरंगें एक सैंटीमीटर अथवा ५० हजार तरंगें एक इञ्च के तुल्य होंगी ! इस प्रकार मेरी किरणों की तरंगता इतनी कम है कि व्यवहार में वे लहरें न हो कर रेखाएं मात्र प्रतीत होती हैं। तो भी प्रिज्म से गुजरते समय, अलग-अलग रंग की किरणें, अपनी तरंग-लम्बाई (वेवलैंथ) की भिन्नता के कारण, अलग-अलग छंट जाती हैं। मेरे प्रकाश में, अलग-अलग रंग की किरणों के परिमाण की जांच-पड़ताल-से ही तुम्हारा वैज्ञानिक मेरे स्वभाव की बारीकियों को जान पाता है।

पर सो कैसे ?

कारण यह है वत्स ! कि वह मेरा एक गहरा भेद जान गया है—मेरा ही नहीं, सृष्टि-भर का गहरा भेद है यह। वह जान गया है कि मेरा प्रकाश मेरे परमाणुओं (एटमों) से पैदा होता है ! जरा देखो तो इस छोटे-से इन्सान की सूझ ! अरबों मन बोझ के 'सूर्य भगवान्' का परिचय पाने के लिए, वह शरण में गया उन परमाणुओं की, जो अरबों की संख्या में मिलकर भी, एक छटांक के तुल्य वजन नहीं जुटा पाते।

परमाणु की शरण कहां गया वह ? परमाणु का तो छानबीन से उसने अजर-पंजर ही ढीला कर डाला यह जानने के लिए कि इससे प्रकाश निकलता कैसे है। और यदि उसे अन्त में सफलता मिल गई तो वह इसका उचित भागी था क्यों कि उस ने परिश्रम भी कम नहीं किया था।

लेकिन हमारे पास तो फुर्सत नहीं, उसकी श्रमपूर्ण खोज का सारा किस्सा सुनने-सुनाने की। इसलिए, तुम्हें दो-चार मोटी-मोटी बातें ही समझा दूंगा।

जैसा कि मैंने तुम्हें पिछली बार भी बतलाया था, प्रत्येक परमाणु के बीचो-बीच एक नाभिक (न्यूक्लियस) रहता है, जिसके चारों ओर छोटे-छोटे ऋणानु घूमते हैं। लेकिन ऋणानुओं (इलैक्ट्रान) का नाभिक के गिर्द घूमना, भँवरों द्वारा फूलों के गिर्द मण्डराने के समान अव्यवस्थित नहीं, ऋणानुओं के घूमने के लिए परिक्रमा की कक्षाएं निश्चित हैं। यही क्यों, इन कक्षाओं में घूमने वाले ऋणानुओं की अधिकतम संख्याएं भी निश्चित हैं—किसी कक्षा में, इस संख्या से अधिक इलैक्ट्रॉन नहीं समा सकते ! उदाहरण के तौर पर, जो कक्षा नाभिक के अधिकतम निकट होती है, उस में केवल दो ऋणानु समा सकते हैं। प्राकृतिक नियमों के कारण ऋणानुओं की यही चेष्टा रहती है कि वे नाभिक के जितना संभव हो निकट रहें। इसलिए प्रायः नाभिक की निकटतम कक्षाएं ही ऋणानुओं से पूरित रहती हैं। पर जब पदार्थ को गर्म किया जाता है तो ऋणानु दूर की कक्षाओं की ओर गतिशील होते हैं। वास्तव में विभिन्न कक्षाएं शक्ति के स्तर हैं। ऊपर की कक्षा में वे ही ऋणानु

जा सकते हैं जिन में अधिक शक्ति हो । पदार्थ के गर्म किए जाने का अर्थ है, उसे अधिक शक्ति मिलना, क्योंकि ताप शक्ति का एक रूप है।

इस सम्बन्ध में तुम अपने सिनेमा के हाल की कल्पना कर सकते हो। पर्दे के निकट की सीटों पर वे ही लोग बैठते हैं जिन की आर्थिक क्षमता सस्ती टिकट खरीदने तक सीमित रहती है । यदि इन दर्शकों के पास अधिक धन होता तो इनकी चेष्टा रहती ऊंचे दर्जे में बैठने की।

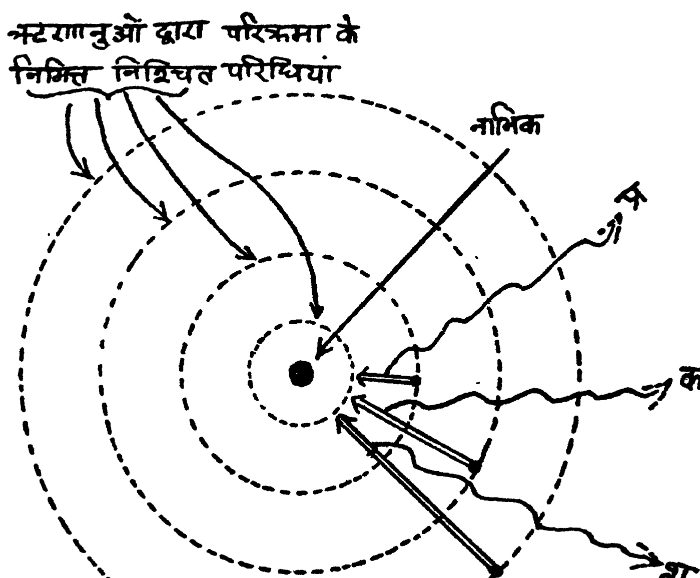
अब आओ, एक अटपटी-सी कल्पना करें। कोई धनी व्यक्ति सिनेमा घर के बाहिर खड़ा होकर धन लुटाना शुरू कर देता है। इस लूटे हुए धन के कारण सिनेमा हाल की सारी आन्तरिक व्यवस्था ही बदल जायेगी। जो लोग नीचे की क्लास में बैठने को बाधित थे, वे ऊंचे दर्जे में जा बैठेंगे। लेकिन वे किस ऊंचे दर्जे में जा पाते हैं, यह तो उन्हें मिले अतिरिक्त धन पर निर्भर करता है।

परमाणु का ढाँचा भी कुछ-कुछ इसी प्रकार है। नाभिक के निकटतम कक्षा में सब से कम शक्ति के ऋणाणु घूमेंगे। उससे कुछ अधिक शक्ति के ऋण दूसरी कक्षा में, उनसे अधिक शक्ति के तीसरी कक्षा में, आदि। लेकिन जब पदार्थ गर्म किया जाता है तो लूट के धन के अनुरूप, ऋणाणु अधिक शक्ति उपलब्ध करके ऊपर की कक्षा में जा स्थापित होते हैं।

लेकिन शक्ति का टिकट "अहस्तान्तरणीय" नहीं। सिनेमा में तो किसी चित्र के दिखाए जाने के दौरान टिकट अथवा क्लास बार-बार बदलना संभव नहीं। पर परमाणु संसार का नियम ढीला है। अधिक शक्ति वाला ऋणाणु चाहे तो वापिस किसी निचली कक्षा में भी लौटकर आ सकता है। लेकिन एक शर्त है—उसे अतिरिक्त शक्ति का त्याग करना होगा। सो कैसे? किरण के रूप में!

अरे हाँ, प्रकाश की किरणें शक्ति का रूप है, शक्ति की मात्राओं के सिक्के। अलग-अलग रंग की किरणें केवल भिन्न-भिन्न लम्बाई वाली ही नहीं, अलग-अलग शक्ति की भी द्योतक हैं। इस विचार से लाल रंग की अर्थात् अधिक तरंग की लम्बाई की किरणें कम शक्ति की द्योतक हैं। तुलना में नीली और आकाशनी किरणों में शक्ति की मात्रा अधिक है।

अब कल्पना करो, तुम लोहे की एक सलाख को धीरे-धीरे गर्म करते हो। पहले तो उसका श्यामल रंग भूरा हो जाता है, फिर क्रम से लाल, नारंगी, पीला, सफेद आदि होने लगता है। लोहे के परमाणुओं के ताप शक्ति मिलने के कारण, इलैक्ट्रॉन ऊंची कक्षाओं की यात्रा शुरु कर देते हैं। वहाँ वे स्वल्प समय रुककर वापस किसी निचली कक्षा में आ जाते हैं। इस प्रयास में, दो कक्षाओं की अन्तर्वर्ती शक्ति के तुल्य शक्ति का, वे किरण के रूप में त्याग करते हैं। ज्यों-ज्यों पदार्थ को अधिक गर्मी मिलती जाती है, उसमें के ऋणाणु अधिकाधिक ऊंची कक्षाओं की यात्रा कर पाते हैं और वापसी पर अधिक शक्ति की किरणों को उत्पन्न करते हैं।

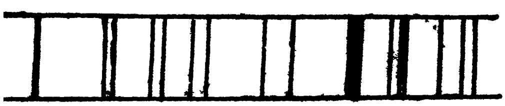


छोटे से परमाणु का बढ़ा हुआ रूप—ताप शक्ति के कारण ऊँची परिधियों में गए हुए ऋणाणु, वापसी यात्रा में, प्रकाश की किरणों को जन्म देते हैं।

अतः लोहे की गर्म सलाख से निकलने वाले प्रकाश में लाल रंग की किरणें कम-से-कम होती जाती हैं और पीली, हरी, नीली आदि किरणों की मात्रा बढ़ती जाती है। परिणामस्वरूप समूचा प्रकाश अन्त में पीली-सफेद आभा वाला हो जाता है।

अब आओ, एक कदम आगे बढ़ें।

सृष्टि के भिन्न-भिन्न पदार्थों के परमाणुओं में, ऋणाणुओं की कक्षाएं भिन्न-भिन्न दूरी पर होती हैं। अतः अलग-अलग पदार्थों के तपाए जाने पर निकलने वाली किरणों का रंग भी भिन्न-भिन्न होता है। सैकड़ों साल पूर्व भी, एक से दिखाई देने वाले पदार्थों की पहचान, किसी ज्वाला पर पदार्थ का चूर्ण फेंककर, उससे निकलने वाले प्रकाश के रंग से की जाती थी। उदाहरण के तौर पर किसी ज्वाला पर नमक छिड़कने पर, नमक में निहित 'सोडियम' तत्त्व के कारण, ज्वाला का रंग गहरा पीला हो जायगा। तुलना में, ज्वाला पर ताँबे का चूर्ण छिड़कने पर, हरे रंग की आभा प्रकट होगी। इस प्रकार के साधनों का जिक्र तुम्हारे देश की लगभग एक हजार साल पुरानी पुस्तक "रसार्णव" में भी है। पर इस में सन्देह नहीं कि प्रकाश-विज्ञान का उपर्युक्त विस्तार केवल वर्तमान युग की उपलब्धि है। इसलिए तुम्हारे आज-कल के वैज्ञानिक इस प्रणाली का अधिक विशद लाभ उठा सकते हैं। लगभग समान रंग का प्रकाश देने वाले पदार्थों में भी भेद करने के लिए वह उनसे निकले प्रकाश को विशेष साधनों से छितरा कर, समूचे प्रकाश में मिली किरणों का विस्तृत वर्गीकरण करता है। जिस काँच के प्रिज्म का मैंने शुरु में जिक्र



जब वैज्ञानिक परीक्षागत प्रकाश को, स्पैक्ट्रोमीटर (वर्ण-विश्लेषक) कहलाने वाले विशेष यंत्रों की सहायता से छितरा देता है, तो वह अलग-अलग रंग की रेखाओं अथवा पट्टों (बैंड्ज़) के रूप में प्रकट होता है। इनकी स्थिति और मोटाई आदि माप कर, पदार्थ का रूप और तापमान आदि की अवस्था जानी जा सकती है।

किया था, वह अब प्रकाश को छितराने का सुलभ साधन हो गया है। आज-कल काँच आदि के टुकड़े पर बहुत बारीक रेखाएं उत्कीर्ण करके "ग्रेटिंग" बनाकर, उसे प्रयोग करने की प्रथा है। जब प्रकाश इस ग्रेटिंग में से गुजरता है तो तरंगों की लम्बाई के अनुसार अलग-अलग रंग की किरणें, अलग-अलग दिशा में मुड़ जाती है। इस छितराए प्रकाश के फोटो लेकर वैज्ञानिक पदार्थ का अनुमान बखूबी लगा सकता है।

ऊपर की चर्चा के बाद शायद यह कहने की जरूरत नहीं रह जाती कि एक ही पदार्थ, कम-अधिक गर्म किया जाने पर—अर्थात् भिन्न-भिन्न तापमानों (टैम्प्रेचर) पर, भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रकाश देगा। इस प्रकार वर्णपट-विश्लेषण (स्पैक्ट्रम एनैलेसिस) की प्रणाली से, तप्त पदार्थों को न केवल पहिचाना जा सकता है, बल्कि उनके तापमान का भी अनुमान लगाया जा सकता है। केवल यही नहीं, किसी पिंड में पदार्थ की कितनी घनता (डैंसिटी) है, अथवा गैसीय पदार्थों में कितना दबाव (प्रैशर) है, उनके कण कितने वेग से इधर-उधर भाग रहे हैं, इस पिंड के पड़ोस में कोई विद्युत् अथवा चुम्बक का क्षेत्र तो नहीं, यह सब-कुछ प्रकाश की किरणों के विश्लेषण से जाना जासकता है।

ऋणाणुओं की जिस दौड़-धूप का मैंने ऊपर जिक्र किया उसके कारण पैदा होने वाली तरंगें, प्रकाश की तरंगों तक ही सीमित नहीं। ऐसी भी तरंगें पैदा होती हैं, जो देखी तो नहीं जा सकतीं, पर कुछ विशेष वैज्ञानिक साधनों से उनका अनुभव किया जा सकता है। इनकी लम्बाई लाल किरणों से अधिक तथा बैंगनी-आकाशनी किरणों से कम होती है। मेरे कलेवर से पैदा होने वाली ऐसी अनेक तरंगें, तुम्हारी पृथ्वी तक पहुंचने से पूर्व रास्ते में ही सोख ली जाती हैं, विशेष तौर पर तुम्हारे वायुमण्डल में।

...पर जानते हो आज मैंने यह चर्चा क्यों कर छेड़ी?

वास्तव में मेरा तुम्हारी धरती माँ से मुख्य सम्बन्ध, अब इन प्रकाश-तरंगों के द्वारा ही है। हमारे बीच की ९ करोड़ मील की दूरी में ये सेतु अथवा पुलिया का काम करती हैं। अपनी दुनिया की प्रमुख गतिविधियों की कहानी सुना कर अब मेरी इच्छा थी, आपसी सम्बन्धों की चर्चा करने की। पर इसके लिए, क्या इस सेतु का कुछ विस्तार से उल्लेख करना जरूरी नहीं था?

(क्रमशः)

❀ बाल-भारती ❀

ऋतुराज (१)

[श्री हरगोबिन्द पाराशर]

प्रकृति रंगों से विचित्रित
कुसुम मधुकर से विचुम्बित,
विटप भी नव पल्लवित हो
मधुर गुञ्जित गान लाया।
नव उमंगों को लिए शुचि
यह मधुर ऋतुराज आया ॥

मधुरता के रंग में रंग
तीखपन कांटों का छोड़ा,
नम्र कोमल विनत होकर
सज्जनों का रूप लाया।
नव उमंगों को लिए शुचि
यह मधुर ऋतुराज आया।

वसन्त हमको सत्य शिव का
नित्यप्रति सन्देश लाता,
जिससे हम सब सत्य में
तल्लीन हों, यह भाव लाया,
नव उमंगों को लिए शुचि
यह मधुर ऋतुराज आया।

❀ ❀ ❀

जीवनरूपी नौका लेकर

[श्री राजेन्द्रमोहन शर्मा 'भृङ्ग']

जीवनरूपी नौका लेकर,
सत्य अहिंसा की पतवार।
कार्य-क्षेत्र में मैं उतरा हूँ,
करने भवसागर को पार ॥

मग में आएँगी बाधाएँ,
साहस से प्रतिकार करूँगा।
कितनी ही बाधाएँ आएँ,
अपने उर में धैर्य धरूँगा ॥

ज्वार और भाटे आएँगे,
नय्या डगमग डगमग होगी।
मुझे निराशा घेरे होगी,
दूर चमकती आशा होगी ॥

धूमिल आशा शेष रहेगी,
करने को जगती को पार।
मुझ को दृढ़ विश्वास यही है,
खे लूंगा नौका मंझधार।
देखूंगा मैं सृष्टि उधर की,
बसी हुई जो जग के पार।

देखूंगा कैसे मानव हैं,
कैसी है उनकी संस्कृति।
कार्यक्षेत्र मानव के क्या क्या,
और वहां की कैसी कृति ॥

उत्कंठा बस यही हृदय में,
'भृङ्ग' बार इक करे विहार।
देखे वह उस पार क्षितिज के,
बसा हुआ जो नव संसार ॥

❀ ❀ ❀

भारत की कहानी (७)

[श्री चन्द्रपालसिंह 'मयंक']

भारत की पैदावार—

इस भारत-भू के क्या कहने!
होते हैं सब अन्न यहां।
उपजाऊ इस भाँति विश्व में
भला और है ठौर कहाँ?
सोने का-सा 'गेहूँ' देता
है यू०पी०, पंजाब, बिहार;
जिसको खाकर हम सबके तन
में होता बल का संचार।
है बंगाल, बिहार, और यू०पी०
में बच्चो, होता 'धान';
जिसका चावल ऐसा अच्छा
खाकर चाटो खूब जबान।
दार्जिलिंग-आसाम आदि की
पहाड़ियों पर होती 'चाय';
जिसको पीकर फुर्ती पाते,
देते आलस दूर भगाय।
राजस्थान, मद्रास प्रान्त में
यू०पी०, मध्यप्रदेश, बिहार
ज्वार-बाजरा औ' मक्के की
होती अच्छी पैदावार।
दक्षिण के पठार में बच्चो,
पैदा होती खूब 'कपास';
जिससे रंग-बिरंगे कपड़े
आते हैं हम सबके पास।
दक्षिण में समुद्र के तट पर
'पेड़ नारियल' की भरमार,
मिलता तेल, दूधिया मीठी
गरी दिखाती खूब बहार।
'पटसन-जूट' देश को देता
है बच्चो, केवल बंगाल।
बनता जिससे भाँति-भाँति का
शानदार पटसन का माल।
'गन्ने की खेती' की जाती
यू०पी० औ' बिहार में खूब;
गुड़-शक्कर खाकर, रस पीकर
जाते हम मीठे से ऊब।
किशमिश औ' बादाम-सेब
मेवे—फल देता है कश्मीर।
जिसकी है जल-वायु निराली,
अमृत-रस से सना समीर।
चना खूब पैदा होता है,
अरहर, उड़द, मूंग की दाल।
भारत की धरती हम सबको
देकर करती खूब निहाल।
खूब पकौड़े, दाल मोठ औ'
दही-बड़े होंगे खाए।
लड्डू और समोसे, पापड़
लगते कितने मनभाए।
सब फसलें होतीं 'भारत' में;
जिनसे बनते ये पकवान।
ऐसा देश नहीं दुनिया में
जो हो भारत-भूमि-समान।

❀ ❀ ❀

संक्रान्ति पर्व

[श्री एम. वी. नारायण राव]

कर्णाटक राज्य में संपन्न होने वाले पर्व-त्योहारों में संक्रान्ति पर्व भी एक है। यह पर्व उत्तरायण-पुण्यकाल में मनाया जाता है। परम्परागत प्रथा के अनुसार खलिहानों में फसल की पूजा होती है। यह त्योहार सप्ताह-भर चलता है। इसकी खास विशेषता है गाय की पूजा। सब लोग मंदिर में इकट्ठे होकर भगवान् की पूजा करते हैं और एक कण्ठ से प्रार्थना

करते हैं कि गाय की सन्तान बढ़े, गाय की कृपा से गांव की सम्पत्ति में दिन दूना रात चौगुना होवे। पूजा-पाठ के बाद खा-पीकर नए कपड़े पहनते हैं। खलिहानों में नाच-गान होते हैं। इसके बाद गांव के सब लोग एकत्र होकर गाय का गीत गाते हैं। दूध और बर्फी बच्चों में बांटते हैं। सातवें दिन में त्योहार मंगलमय होता है।

गाय की कहानी एक देशी गीत है। इसकी कथा-वस्तु संक्षेप में यों है—कर्नाटक राज्य में अरुणगिरि एक पहाड़ी प्रदेश है। वहां कालिंग नाम वाला एक ग्वाला शान से रहता था। उसकी बनवाई गोशाला जंगल के बीच में थी। ग्वाला बड़ी होशियारी से गायों की देख-रेख करता था। उस पहाड़ी प्रदेश में अर्भुत नामक एक व्याघ्र रहता था। एक दिन, गोधूली के समय में, रोज की भान्ति, गायें गोठ लौटती थीं। बाघ को बड़ी भूख लगी थी। सात दिन से खाना नहीं मिला था। उसने घण्टियों की टणटणाहट सुनी। मांद से बाहर आया। धेनुओं की ओर झपटा। गायें घबरा गयीं। अन्धा-धुन्ध दौडीं। हाथ आयी गायें भाग निकलीं। बाघ का क्रोध बढ़ा। ऊधर सब से पीछे एक गाय धीरे-धीरे आ रही थी। वह पुण्यकोटि थी "चित्त उसका वत्समय था। देह की सुध-बुध नहीं थी। व्याघ्र रूपी मृत्यु-मुख में, गाय सीधे आ खड़ी।" व्याघ्र भी वही चाहता था। गाज गिरते-से-गिरा। तब शान्त मन से गाय बोली, प्रलय-भीकर व्याघ्र से। "बाघ भैया, सुनो बिनती, लाल मेरा गोठ में है। थन पिला कर शीघ्रता से, लौट आऊंगी अभी।" गाय की बात बाघ ने नहीं मानी तो गाय ने प्रतिज्ञा की। व्याघ्र उसकी प्रतिज्ञा से, हो प्रसन्न बड़े दयालु, दे चुका आज्ञा खुशी से, गोठ जाकर लौटने।" गाय की इच्छा पूरी हुई। वह बड़े उत्साह से गोठ आई। मौत के मुंह से बच कर आयी उसे देख कर बहिन गायें खिल उठीं। किन्तु इस सन्तोष में भाग लेने के लिए पुण्यकोटि तैयार न थी। उसे अवकाश भी नहीं था। यथाशीघ्र बाघ के पास जाना था। इस लिए अपने बछड़े को पास बुला कर थन पिलाती रही। उसकी आंखों से धन्यता के आंसू बह निकले। गाय ने अपने बच्चे को उपदेश दिया:—

"बेटे, यही अन्तिम बार है। भर पेट दूध पी लो। मेरा और तेरा नाता टूट चुका। मैंने वचन दिया है। बाघ के पास जाना है। लेकिन याद रखो, हरी घास के लालच में पड़ कर जंगल की सीमा तक मत जाना, अकेला न रहना। इन्हीं गायों के बीच रहना"—मां की बातें सुन कर बच्चे का कलेजा कांप उठा। "तुझे मरना क्या पड़ा है? चुप रहो मां यहीं हम से" यों अमायक लाल बोला, सन्न हो आगे खड़ा। पुण्यकोटि ने उसका आंशिक सत्य मान लिया। लेकिन उसकी आंखों के सामने भूखे बाघ का चित्र आ गया तो वह बच्चे से बोली—वचन देकर टालना क्यों? बुराई अब सोचना क्यों? नियम से मैं वहीं जाती, यों अशाश्वत देह धन से मोल लेती सत्य को।"

बच्चे को सांत्वना देकर पुण्यकोटि ने उसे बहिन गायों के हाथ सौंपा। उन गायों ने पुण्यकोटि को गुफा जाने से रोका। किन्तु गाय ने एक न मानी। बिदा होकर सीधे गुफा तक चली। "बिना देरी किए उसने बाघ को आवाज दी।—बाघ भैया, क्षमा कर दो। भूख से तुम तड़पते हो, पाप मेरा हुआ पूरा। शान्त हो खा कर मुझे। मांस खा लो, रक्त पी लो, आँतड़ी का स्वाद ले लो, सभी खा लो अभी खा लो जगत में जीते रहो।"

गाय की इस सच्चाई पर बाघ दंग रह गया। वह अपनी करनी पर पछताने लगा। "यह धेनु मेरी बड़ी बहिन है। इसे खाना अनुचित है। गिरूं इसके चरण तल में, यहीं मेरा अन्त हो।"

"व्याघ्र ने यों बताया औ', दण्डवत् भी किया उसको। अश्रुधारा से उसके पैर धोए। देवता को हाथ जोड़ा, देखते आठों दिशाएं,

उछल ऊपर गिरा नीचे, सांस आखिर तोड़ दी।"

तब "हरि हर ब्रह्मा सभी ने, व्याघ्र बलि से हर्ष पाया, गगनतल से पुष्प-वर्षा, बाघ पर होने लगी। लिए विधि ने प्राण उसके, चर्म ओढा चन्द्रधर ने, सांत्वना दे विष्णु ने भी, भेज डाला गाय को।" बिदा लेकर गोठ आई। कामधेनु आ गयी-सी, बहिन गायें देख उसको, हर्ष से फूली सभी।"

"गोप कालिंग दौड़ आया, दण्डवत् भी किया उसको एक ही वरदान मांगा, "बढ़े गो-धन भाग्य से।" "गाय ने तब लाडले को, सांत्वना दी, थन पिलाया। कहा कालिंग से खुशी से "गोप-वंश बढ़े रहे।" "बढ़ेगी सन्तान मेरी, बढ़ेगा औ' कुल तुम्हारा, पर्व संक्रान्ति मनाओ, कृष्ण को भजते रहो। दूध-बर्फी बांट दे दो, कपिल गायें खूब पालो, गोप कृष्ण प्रसन्न होवे, सत्य-हित जीते रहो।"

इस तरह पुण्यकोटि के कथा-गीत गाते हैं। संक्रान्ति पर्व से संबन्धित यह कथा संक्षेप में मैंने दी है। गीतों का सरल अनुवाद यत्र-तत्र ज्यों का त्यों दिया है। उस कथा के भरत-वाक्य के अनुसार "पुण्यकोटि की कथाएं जो सुनें वे पुण्य लूटें, सत्य का साम्राज्य राजे, कामधेनु भला करे। गाय छोटी, बाघ छोटा, कौन कहते 'सत्य छोटा ?' अमृत चाहे हो कहीं भी, उसे ले मानव जिये।"

❀ ❀ ❀

हे नगेश !

[श्री गिरीशचन्द्र ओझा "निर्मोही"]

हे गिरिवर हे भारत-माँ के
गौरव उन्नत भाल।
हिमाच्छन्न हे ! धवल-विमल
हे ! शान्ति दिव्य साकार।
श्रेष्ठ प्रेष्ठ हे ! शुभ्र मुकुटधर
हिम-पुत्री प्रियतात।
गौरीशंकर शिखर विभूषित
हे उन्नत विख्यात ॥
देव यक्ष गन्धर्व ललित
है क्रीडा कलित ललाम।
निरत साधना यतियों के
हित सुख सुन्दर विश्राम।
गङ्ग-प्रभव हे महिमाधारी
हे मणिगण द्युतिमान।
भारतीय सीमा प्रहरी
हे दृढ नव शक्ति निधान ॥
प्रबल शत्रु इस चीन दुष्ट से
गौरव तेरा क्रान्त ॥
निज मर्यादा से च्युत होकर
तुम बैठे हो श्रान्त।

हे गिरीश ! तव तुङ्ग शिखर
पर आज शत्रु आवास।
छल-बल से अधिकार जमा कर
करता तव उपहास ॥
हम परिजन तेरे हैं, तू है
भारत कीर्ति विधाता।
स्वार्थ-लिप्त जीवन भव का
पर तू रक्षक सुखदाता।
तुझे समर्पित जीवन अपना
जन-मन की यह वाणी।
तेरी रक्षा में हैं तत्पर
हम भारत के प्राणी ॥
केरल मलय द्रविड़ गुजराती
और पञ्चनद वासी।
राजपूत गुर्जर कलिङ्ग सब
अंग वंग अरू झांसी।
आर्य सिक्ख औ यवन
ईसाई बाल वृद्ध नर नारी।
भारत भूमि का कण कण
तेरे चरणों पर बलिहारी ॥

तू भारत की एक शान
औ' शत्रुमान का अपहारी।
तेरे हित हम आज मिटेंगे
नव-नव आयुधधारी।
हो मानसरोवर अग्निकुण्ड
रिपु रुधिर आज्य सामग्री।
यज्ञभूमि कैलाश बने
औ' होता भारतवासी॥

ताण्डव नृत्य करें शंकर
औ' शिवा बने रण चंडी।
सैन्य रूप हों भूत-प्रेत
औ' वाहन केहरि नन्दी।
हे नगेश! क्या देख रहे
इस पीडित भारत-भू को।
अट्टहास कर बिगुल बजाओ
मार भगाओ अरि को॥

❀ ❀ ❀

वह क्षण

[श्री नारायणचन्द्र पाराशर]

कितना सुहाना वह समय था,
उषा की लालिमा मुस्कान-सी थी
आस को मैं सामने से देख पाया
स्वप्न से लावण्य में,
इक नया संगीत पाकर
हृदय सरिता चिरतरङ्गित हो उठी थी,
कितनी कलियां खिल गई थीं
एक पल में भूल उजड़े उपवनों में
बहार आकर,
भविष्य का संकेत हल्के दे गई थी,
किस तरह, सूने डगर की वह बटोहिन
कल्पना भी एक क्षण तब रुक गई थी।
आनन्द का कैसा शिखर था,
जहाँ से इक नज़र देखा था मैंने,
ऊसरों में फूल खिलते जा रहे थे,
हर्ष के उन्माद में
विस्मृति का दूर तक फैला था आगत,
चेतना कितना समय फिर सो गई थी।

❀ ❀ ❀

अशान्त

[श्री मदनमोहनलाल शर्मा]

बोझिल दिल से कैसे गाए,
कोई हलका गीत।
जीवन मेरा एक पराजय,
कैसे देखूं जीत॥
आज भरा आकाश नयन का,
चला नियति का तीर।
आज निराशा की बदली से,
बरस रही है पीर॥
रुके कण्ठ से कैसे गाऊं,
आज मनोहर गीत।

हिम्मत सारी हार चुका हूँ,
कैसे बाँधूं धीर॥
फूलों को सब मसला करते,
है यह कोमल चीज़।
कांटों से सब कांपा करते,
हैं जो "टेढ़ी खीर"॥
काट दिया करता केले को,
उग कर पास करीर।
बांट नहीं लेता है कोई,
देते हैं सब पीर॥

❀ ❀ ❀

तू गीत प्रीत के गाता चल

[श्री देवेन्द्र 'स्नेही']

पत्थर पिघलेंगे निश्चय ही,
तू गीत प्रीत के गाता चल।
लहराएगी बञ्जर धरती,
नयनों का जल बरसाता चल ।।

सारी संसृति आज जुट रही
आकर सर्वनाश के तीरे।
कण-कण में है सुलग रही
भय की चिनगारी धीरे-धीरे ।।
आज जिधर भी नजर घूमती
हाहाकार सुनाई पड़ता ।
रक्त-पिपासा जागी जग में,
नृत्य कर रही है विह्वलता ।।
अविश्वास से भरा हुआ
इन्सान खून का प्यासा बैठा।

क्षत-विक्षत है पड़ी सभ्यता,
तू अनुलेप लगाता चल ।
पत्थर पिघलेंगे निश्चय ही,
तू गीत प्रीत के गाता चल ।।

बड़ी शान से कहते हैं जो,
हमने वायुयान रच डाले।
सागर अम्बर औ' भूमण्डल
तीनों एक साथ मथ डाले।
उनसे कुछ भी होड़ नहीं है,
वे अमरत्व अरे क्या जानें।
हैं मस्तिष्क निराले उनके,
तत्त्व हृदय के क्या पहिचाने ।।
तू है अमर, सभ्यता तेरी नहीं
कभी भी मर सकती है ।।

निर्भय हो तू हृदय तत्त्व का
मीठा पाठ पढ़ाता चल ।
पत्थर पिघलेंगे निश्चय ही,
तू गीत प्रीत के, गाता चल ।।

आयेगा वह दिन भी जल्दी,
जग में खुशहाली छायेगी।
बांसुरी सुनायेगी सरगम,
तलवार म्यान में जायेगी ।।
ज्वालामुखियों की छाती में,
चन्दन की शीतलता होगी।
मेघों से भरा गगन होगा,
फूलों से भरी धरा होगी
होगी प्रस्तर के नीचे भी
झरने की निर्मल धाराएँ--

अपनी वीणा पर प्यार-भरा
मादक संगीत सुनाता चल।
पत्थर पिघलेंगे निश्चय ही,
तू गीत प्रीत के गाता चल ।।

❀ ❀ ❀

वसन्त आया

[श्री राधेश्याम भावसार, 'कदम']

आज मेरे आँगन में क्यों वसंत-ऋतु आयी।
शोभन बगिया ये माली ने सजायी ।।
ठंड अब इन्हें कुछ नहीं सताती।
हलकी धीमी सर-सर बयार आती ।।
बोल रही है कोयल रानी।
पेड़ों पर नई नव-कोपलें निकलीं ।।
झूम रही है डाली-डाली ।
डोल रही हैं, तितली रानी ।।
चिड़ियाँ इन पर चहक रही हैं।
गगन फूलों को चूम रही हैं ।।
क्यारी में सरसों के फूल उग आये।
फूल खिलते कितने प्यारे ।।
भौंरा उन पर नाच रहा ।
मन से गीत सुना रहा ।।
आज मेरे आँगन में नव किरणें आयीं।
वसंत को देख, बगिया माली ने सजायी ।।

❀ ❀ ❀

शरद्-काल

[श्री राष्ट्रबन्धु]

जाड़े की यह धूप कुनकुनी,
इतनी मीठी जितनी मिठिया।
लेकिन तुमको कैसी लगती,
क्या बतला सकती हो बिटिया॥
आसमान पर किस बालक ने,
खड़िया खींची चित्र बनाये।
ये विचित्र मन-भावन, मनहर,
भाव-चित्र सबने अपनाये॥
ठण्डी हवा छेड़ती सबको,
पता नहीं किसकी लड़की है।
इसका साथ सुहाता हमको,
माँ शैतानी से भड़की है॥
क्या तुमको वसन्त ने भेजा,
ओ जाड़े की धूप सुनहरो।

नहीं बात सुनने को ठहरी,
लगता है हो गूंगी-बहरी॥
तुम कपास से बालों वाली,
दिल से बर्फीली पिघलो तो।
जाड़े की उजली रातों में,
छुई-छुअव्वल को निकलो तो॥
चंदा माँग रहा है चंदा,
सभी अनसुनी करने चुप हैं।
निशा-निराशा बढ़ती जाती,
सबके सम्मुख अपने दुख हैं॥
'मुझको तुम मत छोटा समझो',
कहने वाले नन्हे तारे।
खामोशी में होड़ लगाये,
टिम-टिम चमक रहे बेचारे॥

❀ ❀ ❀

सत्य की सीता

[श्री बाबूलाल शर्मा 'प्रेम']

असत् का रावण स्वयं मिट जाएगा,
सत्य की सीता न झुक सकती कभी।

जो घटाएँ छा रहीं अभिशाप की
और दुर्दिन की चमकतीं बिजलियाँ,
व्यर्थ होंगी अन्त में सारी यहाँ
शोर करतीं यह प्रलय की आँधियाँ।

द्वेष के जर्जर-महल उड़ जाएँगे,
ज्योति कुटियों की न बुझ सकती कभी।

चुभ रहे कांटे, उदासी हँस रही
लक्ष्य से अपने पथिक अनजान है,
प्रतिध्वनित निस्सीम में झंकार-सा
खो रहा डूबे हृदय का गान है।

धूल सब कठिनाइयाँ बन जाएंगी,
प्रगति जीवन की न रुक सकती कभी।

आस्था है भाग्य की भगवान् में
प्यार मन की साधना का मंत्र है,
जीत लेगा ही सतत संघर्ष को
देश का इन्सान आज स्वतंत्र है।

दुःख-दर्द की बेड़ियाँ कट जाएँगी,
मनुज की महिमा न घट सकती कभी।

असत् का रावण स्वयं मिट जाएगा,
सत्य की सीता न झुक सकती कभी॥

❀ ❀ ❀

विष घोलो मत आग लगाओ

[श्री रवि सारस्वत]

'सतलुज' के पावन जल में तुम—
विष घोलो मत आग लगाओ।
'रावी' का दिल 'व्यास' हृदय को—
और न अब संकीर्ण बनाओ ॥
झुलस न जाएँ कहीं बहारें—
रूठ न जाएँ गीत जहाँ का,
रूप हरि का ढूँढ़ेगा फिर—
राँझे जैसा मीत जहां का।
स्वर्ण जहाँ का लावा बन कर—
खेतों में बह जाएगा सब,
भँगड़े की अल्हड़ मस्ती को—
कंकाली मत नाच सिखाओ।
विष घोलो मत आग लगाओ ॥
राजगुरु, सुखदेव भगतसिंह—
के अरमानों को मत लूटो,
जलियाँवाला मूक शहीदों—
के बलिदानों को मत लूटो।
बांटो मत पगड़ी वीरों की—
मत बेचो गौरव वीरों का,
लाखों लाशों-से हैं मरते—
मत धरती पर घाव लगाओ।
विष घोलो मत............॥
'आदिम कवि' के करुण हृदय पर—
यहीं अचानक चोट लगी थी,
यहीं किसी सरिता के तट पर—
'पाणिनीय' की ज्योति जगी थी।
गीता उपनिषदों का उद्गम—
यह वाहीक खंड है प्यारा,
'तक्षशिला का अध्यापक' बन—
भारत को फिर मार्ग दिखाओ।
विष घोलो मत............॥
कौन जन्म से बालक होता—
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई,
कहां धर्म में लिखा हुआ है,
'वह' है किसी एक का—भाई।
दश गुरुओं की मृदु वाणी का—
अर्थ यही क्या तुम समझे हो,
रामतीर्थ की मस्ती के पथ में—
तुम मत काँटे बिखराओ।
विष घोलो मत..............॥
शब्दाडम्बर के बन्धन से—
मुक्त हुई चाहें भाषाएँ,
टकरा-टकरा आज परस्पर—
टूट चली सब ही सीमाएँ।
पर उपदेशों का युग बीता—
अब अपनी तुम बात कहो,
अपने अन्तस् की कटुता पर
कुछ तो रवि अमृत बरसाओ।
विष घोलो मत आग......॥

तितली

[श्री श्रीकान्तप्रसादसिंह]

तितली रानी ! तितली रानी !!
ठहर जरा, सुन ओ दीवानी।
फूल-फूल पर झूम-झूमकर
रस पीने वाली मस्तानी ॥
आओ, फूलों की झुरमुट से
मेरी कविता पर इठलाओ।
स्वर्गलोक की परी, अरी सुन,
मेरा आकुल मन बहलाओ ॥
इन्द्रधनुष का चीर पहन कर
उड़ती फिरती हो उपवन में,
रसवन्ती, दो बूंद चुराकर
रस दे दो मेरे जीवन में।

एकलिपि विस्तार



आलीसें उशीरा (मराठी)

[श्री बा० रा० कान्त]

आलीस कशाला जीवनांत मोहिनी
विसरल्या युगींच्या गीत लकेरीपरी
जाशील एक दिनिं अशीचनिघुनि दुरी
ढळतमें चांदणें जसें गवाक्षांतुनी
अस्पष्ट बोलता श्वासें उर दाटुनी
गुंजले फुलांवर भ्रमर कुठें कातर
पाहिले श्यामले, आणि वळुनि जेधवा
दंहिवरले डोळे, गंहिवरले अंतर
तपकीरी डोळे किंचित गहिरे तुझे
उठविती भोंवती मदिरेचें वादळ
बेहोष न पुरतें मधुराणी मज करी
पाउलां जाणवें अजुनी जीवन-तळ
पसरुनी बाहु कां जीवन सरिते अशी
येतेस शराबी भावलहरि फेंकित
तव तरंग एकहि धरुनि ठेउं ना शके
निस्तब्ध भंगला माझा जीवन-तट !
आलीस उशीरां जीवनांत, साजणी
वरदान त्यामुळें शाप तुझें जाहलें
संपल्या रात्रि तूं उजळलीस चंद्रिके,
जळतें दिनाच्या तुझे चांदणें जळे !!

क्यों देर हुई आने में (हिन्दी)

[प्रा. देवेन्द्र 'कमल']

तुम विसरे युग की गीत-लहर-सी बाले
क्यों आई हो जीवन में बोलो मेरे !
चंद्रिका ढल जाती ज्यों वातायन से
जाओगी त्यों ही तोड़ मोह के घेरे
अस्पष्ट बोलते हुए कंठ भरांया
गुंजारे ज्यों फूल पर भँवरा कातर
शामले और जब मुड़कर देखा तुमने
पलकें भीगीं औ' भर आया अभ्यंतर
किंचित् गहरे ये भूरे नयन तुम्हारे
अविराम उठाते हैं मदिरा की हलचल
पर मधु रानी मदहोश न हो पाया मैं
पाओं ने छोड़ा नहीं अभी जीवन-तल
बाहें पसार क्यों आते जीवन-नद
ले भावलहर का संग शराबी घेरा
मैं पकड़ नहीं पाया हूँ एक लहर भी
निस्तब्ध हुआ खण्डित जीवन-तट मेरा
आने में कर दी देर प्रिये जीवन में
वरदान उसी से शापित हुआ तुम्हारा
चाँदनी जलेगी अब दिन की ज्वाला में
तुमने निशांत पर क्योंकर चन्द्र उभारा

❀ ❀ ❀

बे मार्ग वच्चे करवी पसन्दगी

(गुजराती)

[श्री बालमुकुन्द दवे]

उत्क्रांतिनो पन्थ अनन्त कापती
आवे विश्वनी विक्रम कूच आजे,
विज्ञाननी पीठ परे, पलाणी
आवी उभी उन्नत शैल शृंगे।

इतिहासना पृष्ठ परे न आटली
नोंघायली भौतिक सिद्धि पाछली,
घूमो रह्यो मानव भौम व्योम
जेवी समुद्रे विलसंत माछली।

पूर्वे हतुं जे शतकोटि जोजन,
ते आज तो मात्र लटार लागतुं,
घटी रह्युं अन्तर, वेग वाधतो,
बनी रह्युं नीड शुं विश्व आजे।

प्रजा-प्रजाओ प्रति खंड खंडनी
मथी रही विश्व कुटुंब काजे।

किन्तु न जाणे, कशुं एवुं छे ज शुं
जे रोधतुं मार्ग उभुं प्रचण्ड।

नाथ्यां भले पंच महाभूतों ने
ना मानवी नाथी शक्यो घमंड।

मुठी महीं मोत लइ फरे छतां
क्षणे क्षणे भीति तणी ज लागणी।

हसी हसी हाथ मिलावतो छतां
डसी रही अंतर कोक नागणी।

माळा समुं विश्व भले बन्युं छतां
हजुं न शीख्युं सहवासनी कला,
समष्टिनी वात भले करे छतां
व्यक्ति अहंनी फुत्कारती फणा।

कल्याण केडी विरची जवी, वा
विनाशनी कोतरवी कमानो
बे मार्ग वच्चे करवी पसंदगी,
जोइए हवे शुं करशे जमानो।

दो रास्तों में करनी है पसन्दगी

(हिन्दी)

[श्री अरविन्द जोशी]

काटती उत्क्रान्ति का अनन्त पथ
विश्व की विक्रम कूच आज,
विज्ञान की पीठ पर चढ़कर
उन्नत शैलशृङ्ग पर अब खड़ी है।

पृष्ठ पर इतिहास के कभी
न अङ्कित हुई इतनी भौतिक सिद्धियां
घूम रहा है मानव धरती और गगन में
घूमें सागर में जैसे मछलियाँ।

शत कोटि योजन था जो पहले
बिल्कुल पास लगता है वह आज,
रहस्य-भरे नक्षत्रों के मण्डल को
अब राकेट नापता है।

अन्तर घटता है, वेग बढ़ रहा है
क्या आज एक नीड बन रहा है विश्व?
प्रयत्नशील है विश्व-कुटुम्ब के लिए
सम्पूर्ण प्रजा देश-देश की
किन्तु क्या जानें, कुछ ऐसा क्या है,
जो रोंधता खड़ा मार्ग प्रचण्ड।

पंच महाभूतों को बाँध लिया हो भले ही
पर मानव बाँध न पाया निज घमंड को।
मुट्ठी में मौत घूमें लेकिन,
पल-पल पर भीति का एहसास।
हँस-हँस कह हाथ मिलाए लेकिन,
भीतर से डसती है कोई नागिन।
भले ही विश्व बना नीड-सा, पर
सहवास की कला सीखा नहीं है,
समष्टि की बातें करता भले ही, पर
व्यक्ति अहं का फन फुत्कारता।
अब क्या खोदना विनाश की कमानें
कि कल्याण की पगडंडी बना जाना,
दो रास्तों में करनी है पसन्दगी
देखते हैं क्या करता है जमाना।

पुस्तक परिचय

मानसार वास्तुशास्त्र—अनुवादक, श्री ब्रजमोहनलाल, आई, एस० ई०, एम० आई० ई०—प्रकाशक, इंस्टिट्यूशन आफ इंजीनियर्स (इण्डिया), ८, गोखले रोड, कलकत्ता २०।

संसार के सभी देशों में विभिन्न प्रकार के भवनों, दुर्गों, राजप्रासादों, मन्दिरों आदि का निर्माण होता है और इसके विशेष शास्त्र या कला को वास्तुशास्त्र या वास्तुकला कहते हैं। प्रत्येक देश की इस शास्त्र में अपनी विशेषता भी होती है और भारत ने अत्यन्त प्राचीनकाल से अपने देश की जलवायु, परिस्थितियों तथा प्रतिभा के अनुकूल विशेष शैली का विकास और विस्तार किया है। इसकी भी अनेक उपशैलियां देश के विभिन्न भागों में प्रयुक्त होती रही हैं। इस शास्त्र तथा इसके सहायक शास्त्रों पर आरम्भ से ही ग्रन्थों की भी रचना की जाती रही है। ये ग्रन्थ न केवल स्वतन्त्र रूप से ही लिखे गए, अपितु पुराणों, महाभारत आदि में भी स्थान-स्थान पर इनका विस्तृत विवेचन किया गया है। महर्षि भृगु ने अपनी 'शिल्प-संहिता' में शिल्पशास्त्र के दस उपशास्त्र और इन उपशास्त्रों की ३२ विद्याएं तथा ६४ कलाएँ बताई हैं। कल्पना की जाती है कि पंद्रहवीं शताब्दी तक इन सभी पर हजारों ग्रन्थ लिखे गए, जिनमें से अधिकांश अब यद्यपि प्राप्त नहीं होते, फिर भी हजार के लगभग हस्तलिखित ग्रन्थ भारत तथा विदेशों के पुस्तकालयों में अवश्य प्राप्त हैं। उनमें से कुछ ग्रंथ देश के विभिन्न शोध संस्थान प्रकाशित करते रहे हैं, परन्तु अब वे भी प्रायः अप्राप्य हो गए हैं।

'मानसार' शल्प-विद्या का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता रहा है। गत शताब्दी के आरम्भ से इस पर विद्वानों में चर्चा आरम्भ हुई और इसको प्रकाशित करने का उद्योग शुरू हुआ परन्तु यह कार्य अत्यन्त कठिन था। कारण यह कि जो इस विषय के जानकार—अर्थात् इंजीनियर आदि—थे वे संस्कृत तथा अन्य भारतीय लिपियां नहीं जानते थे, और जो संस्कृत आदि के विद्वान् थे, वे विषय तथा उसके पारिभाषिक शब्दों से परिचित नहीं थे। परन्तु इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत प्राध्यापक, डा० प्रसन्नकुमार आचार्य ने २० वर्ष के परिश्रम के पश्चात् न केवल इसका पूर्ण और शुद्ध रूप ही प्रस्तुत कर दिया, अपितु उसका सुबोध अंग्रेजी अनुवाद और रेखाचित्र भी साथ जोड़ दिए। सन् १९३३ में यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इसकी रचना में उन्होंने भारत तथा विदेशी पुस्तकालयों के, विविध लिपियों में अत्यन्त अपूर्ण और अशुद्ध रूप में लिखे, एक दर्जन के लगभग हस्तलेखों की सहायता ली तथा जब कई वर्षों के परिश्रम से पाठ को शुद्ध और संकलित कर लिया, तब उसे समझने के लिए अफगानिस्तान से सुदूर दक्षिण तक की यात्रा की जिसमें विविध प्रकार के भवनों का उन्होंने अध्ययन और मिलान किया और पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या की।

डा० आचार्य द्वारा संपादित ग्रन्थ में ७० अध्याय हैं। पहले ४० अध्यायों में भवन-निर्माण-कला, अगले १० अध्यायों में राजा के मुकुट, रथ, शय्या, सिंहासन आदि बनाने की कला तथा शेष २० अध्यायों में वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि सभी शैलियों की मूर्तियां बनाने की कला का वर्णन है। यहाँ प्रश्न यह भी खड़ा होता है कि 'मानसार' का वास्तविक अर्थ क्या है और इसकी रचना कब तथा किसने की? इन सब बातों का कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सका है। कुछ लोग इसे अनेक व्यक्तियों की रचना मानते हैं, कुछ

एक ही व्यक्ति की। कुछ मानसार को राजा, कुछ शिल्पी और कुछ केवल विषयबोधक शब्द (मानसार= मापने का सार) मानते हैं। इसी तरह कुछ इसे ईसा पूर्व की रचना मानते हैं और कुछ सातवीं शताब्दी की। जो भी हो, यह अपने विषय का अत्यन्त पूर्ण ग्रन्थ है और अत्यन्त प्राचीन भी है।

इसी अंग्रेजी अनुवाद के एक अंश, अर्थात् पहले ४० अध्यायों का सरल हिन्दी अनुवाद श्री ब्रजमोहन लाल ने प्रस्तुत किया है, जो निश्चय ही राष्ट्रभाषा की बड़ी सेवा है। वे अपने विषय की दृष्टि से हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों आदि के निर्माण का कार्य बहुत दिनों से अत्यन्त उत्साहपूर्वक करते रहे हैं। यह अनुवाद पहले इन्स्टीट्यूशन आफ इञ्जीनियरिंग की हिन्दी पत्रिका में वर्षों छपता रहा, अब उसी के पुनर्मुद्रण संकलित करके पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया गया है। इससे उसमें अवश्य ही कुछ अपूर्णताएँ रह गई हैं, परन्तु इतना भी कम नहीं कहा जा सकता। श्री ब्रजमोहनलाल निश्चय ही इस कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं।

इन ४० अध्यायों में भवन-निर्माण के सभी पक्षों का सविस्तार शास्त्रीय विवेचन है। शिल्पी कैसे होने चाहिए, भूमि कैसी हो तथा उसकी परीक्षा कैसे की जाए, गाँव कैसे हों, नगर कैसे हों, नींव डालने से लगाकर, पीठ, अधिष्ठान, स्तंभ आदि तक का निर्माण कैसे किया जाय, प्राकार, गोपुर, मंडल, शाला, आवास, राजप्रासाद आदि कैसे बनाये जाएँ, आदि बातें इन अध्यायो में हैं।

विषय की सूक्ष्मता तथा वैज्ञानिकता का ज्ञान प्राप्त करना हो तो मापने की इकाईयों को देखना चाहिए। वे परमाणु से शुरू होती हैं, जिसे मुनियों के नेत्र ही देख सकते है, तथा आधुनिक माप के अनुसार जो इंच का ३४८५२वाँ भाग है। अन्य इकाइयाँ इस प्रकार हैं।

८ परमाणु = १ रथधूलि (रथ का धूलिकण)
८ रथधूलि = १ बालाग्र (बाल का सिरा)
८ बालाग्र = १ लिक्ष (जूं का अंडा)
८ लिक्ष = १ यूक (जोंक)
८ यूक = १ यव (जौ का दाना)
८ यव = १ अंगुल (¾ इंच)
१२ अंगुल = १ वितस्ति (बालिश्त = ९ इंच)
४ हस्त = १ धनु (६ फुट)
८ धनु = १ रज्जु (४८ फुट)

इस सामान्य निर्देश से ही पुस्तक की महत्ता तथा रोचकता का पता चल जाता है। यह बात विवादास्पद हो सकती है कि आज जब भवन-निर्माण कला में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं, यह शास्त्र कितना उपयोगी हो सकता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसका अध्ययन अवश्य किया जाना चाहिए क्योंकि यह भारतीय जीवन और संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस से तथा इस प्रकार के अन्य अध्ययनों से भारत के प्रति गौरव जाग्रत करने में महती सहायता मिल सकती है। सभी पुस्तकालयों को इसकी प्रति अपने यहां अवश्य रखनी चाहिए। हिन्दी में होने के कारण यह व्यापक प्रचार की पात्र है। —चिरंतन

वैदिक निबन्धावली— लेखक, डा० मुन्शीराम शर्मा—प्रकाशक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी—१। मूल्य रु. ४.००। पृष्ठ संख्या १७२।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के वेद-सम्बन्धी २५ उत्कृष्ट निबन्धों का तीसरा संग्रह है। इसी प्रकार के दो संग्रह 'प्रथमजा' और 'संध्या-चिन्तन' पहले प्रकाशित हो चुके हैं। आलोच्य पुस्तक में 'जो उसका' एवं 'गीत और काम' जैसे निबन्धों का यद्यपि वेद से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं, पुनरपि भावना और विचारों के वैदिक होने से उन्हें भी परम्परा सम्बन्ध से वेद संबन्धी माना जा सकता है।

अति प्राचीनकाल से लेकर अद्यपर्यन्त, जैन और चार्वाक सम्प्रदायों को छोड़कर, सम्पूर्ण भारतीय परम्परा में वेद को सर्वोच्च सम्मान और श्रद्धा का स्थान प्राप्त रहा है। इस श्रद्धा एवं सम्मान का मूलकारण इस विचार में निहित है कि "वेद अपौरुषेय हैं, दिव्य ज्ञान की पुस्तक हैं, ये इस जगत् और उस जगत् की नियामक सत्ता के प्रति मानव के सम्बन्धों और आचारकलापों के निर्भ्रान्त प्रतिपादक विधिग्रन्थ हैं।" इस विचार के अनुसार वेद में मूलोद्देशतः सम्पूर्ण व्यावहारिक तथा पारमार्थिक ज्ञान निहित है।

वेद सम्बन्धी इस विचारधारा के लगभग साथ ही

साथ एक और विचारधारा भी मिलती है, कि वेद अत्यन्त स्थूल रूप के याज्ञिक कर्मकाण्ड में पढ़े और गाए जाने वाले ऐसे मन्त्रों के संग्रह-ग्रन्थ हैं, जिनमें यजनीय देवताओं से युद्धविजय, धन, पशु, पुत्र आदि की प्रार्थनाएं की गई हैं। ये कर्मकाण्ड के ग्रन्थ हैं और ज्ञानकाण्ड वेदों के परिशिष्टभूत आरण्यक और उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है। प्रायः इसी परम्परा का विस्तार पिछली एक शताब्दी में किए गए आधुनिक पाश्चात्य ढंग के वैदिकशोध सम्बन्धी प्रयत्नों में परिलक्षित होता है।

हमारी आलोच्य पुस्तक पहली विचारधारा का अनुगमन करती है। विद्वान् लेखक ने 'ईश्वरीयज्ञान', 'वेद मर्यादा' और 'वैदिक कहानियां' इन निबन्धों में इसी परम्परा का दक्षता से निरूपण और निर्वाह किया है।

वेदमन्त्रों में निस्सन्देह यज्ञ तथा उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों का सतत रूप से उल्लेख मिलता है और यह यज्ञ वैदिक-संस्कृति की सचमुच रीढ़ है। परन्तु क्या इस यज्ञ का एकमात्र अभिप्राय स्थूल रूप का भौतिक कर्मकाण्ड भर है या कि इस स्थूल रूप के साथ ही साथ यह किन्हीं सूक्ष्म, आन्तरिक और व्यापक अर्थों का भी ज्ञापक है? स्वयं वेद और परवर्ती वैदिक साहित्य में ऐसे स्पष्ट संकेत मिलते हैं जो यज्ञ के अत्यन्त व्यापक स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। यज्ञ का यही स्वरूप 'यज्ञ संस्था', 'यज्ञ और शान्ति' आदि निबन्धों में उन्मिषित हुआ है।

'यज्ञ से मूर्तिपूजा तक' निबन्ध अपनी मौलिकता के कारण विशेष महत्त्व रखता है। बहुप्रचलित वादों के अनुसार मूर्तिपूजा की प्रथा भारत में विदेशों से आई है। विद्वान् लेखक ने इससे अपनी विमति प्रकट करते हुए मूर्तिपूजा का मूल यज्ञसंस्था में पाया है। किसी ठोस निर्णायक प्रमाण के अभाव में, सादृश्य एवं तुलना के आधार पर निकाला गया यह निष्कर्ष एक 'निर्णीत सत्य' भले ही न जंचे, फिर भी विचारकों के लिए यह नई सामग्री प्रस्तुत करता है।

'ऋत क्या है' और 'ऋत की महिमा' विचारोत्तेजक निबन्ध हैं। 'वैदिक सम्पत्ति भावना', 'गृहस्थ में स्वर्ग', 'वेद और काम' नामक निबन्धों में, आज की अर्थकाम-प्रधान भौतिक संस्कृति के विरुद्ध, धर्मप्रधान आध्यात्मिक वैदिक संस्कृति का अर्थ और काम विषयक सही दृष्टिकोण सामने आता है।

सभी लेख जहाँ सुलझे हुए विचार और ज्ञान-सामग्री प्रदान करके पाठक के बुद्धि पक्ष को दीप्त करते हैं, वहाँ आध्यात्मिक भावनाओं से भावित होने से भावपक्ष को भी स्फूर्ति एवं निखार प्रदान करने में समर्थ हैं। कागज और छपाई सुन्दर है, फिर भी मन्त्र भाग के लिये भिन्न टाइप और अधिक शुद्ध मुद्रण की अपेक्षा थी। ऐसे सुन्दर प्रकाशन के लिये लेखक और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

—वीरेन्द्र शास्त्री

योगवासिष्ठ की कहानियां—डा० भीखन लाल आत्रेय—दर्शन प्रिन्टर्स, मुरादाबाद—मूल्य २॥ रु०

'योगवासिष्ठ' भारतीय दर्शन तथा ब्रह्म-चिंता का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। इसमें महर्षि वसिष्ठ द्वारा रामचन्द्र जी को दी हुई शिक्षाओं का संग्रह है, जिनका विषय योग-साधना तथा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है। इसे वाल्मीकि-रचित बतलाया जाता है परन्तु बाद में इसका विस्तार—अन्य प्राचीन ग्रंथों की भांति—कालिदास के कुछ समय पश्चात् किया गया। बहुत से विद्वान् इसे और भी पश्चवर्ती रचना मानते हैं। जो हो, इसकी महत्ता असंदिग्ध है और कुछ लोग तो इसे गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र से भी ऊंचा स्थान देते हैं। इसका प्रभाव अनेकानेक दार्शनिकों तथा आचार्यों पर पड़ा। इस ग्रंथ की विशालता के कारण लोगों ने अपनी रुचि के श्लोक छाँट-छाँट कर स्वतंत्र उपनिषद् बना लिए या अन्य उपनिषदों में इसके अंश जोड़ दिए।

इतना महत्वपूर्ण होते हुए भी नए दर्शन लेखकों का ध्यान इसकी ओर बहुत कम गया था। पहले-पहल प्रस्तुत पुस्तक के लेखक, डा० आत्रेय ने इस पर शोध कर इसे प्रकाशित किया। फिर उन्होंने इस विषय पर और भी पुस्तकें लिखीं और जनता का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट किया। तबसे इसका प्रचार निरंतर बढ़ता ही गया है।

यह ग्रंथ अन्य दार्शनिक ग्रंथों की भांति शुष्क और खंडन-मंडनात्मक नहीं है। यह वास्तव में प्रत्यक्ष अनुभूति का ग्रंथ है, जिसे समझाने के लिए विविध उदाहरण तथा आख्यानों की सहायता ली गई है। इस प्रकार यह अद्वैत के उच्चतम शिखर छूता है और उसे पाठक के मन में स्थाई रूप से बसा भी देता है। परन्तु तत्त्व और कथाओं का सम्मिश्रण होने से कुछ पाठक इसमें उलझ भी जाते है। उन्हें कहानियों की शृङ्खला कहीं-कहीं टूटी भी लगती है, जिससे तत्त्व का आस्वादन पूर्ण रूप से नहीं हो पाता। इसलिए लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में कहानियों को अलग करके सरल भाषा में लिख दिया है। आरम्भ में एक अध्याय 'योगवासिष्ठ' के उपदेशों का सार भी प्रस्तुत करता है, जिससे कथाओं को समझने में सहायता मिलती है। इस प्रकार पुस्तक अत्यन्त उपयोगी बन गई है और सभी इससे लाभ उठा सकते हैं।

आदर्श, अवसाद और आस्था—बालकृष्ण बलदुवा—स्वस्तिक प्रकाशन प्रतिष्ठान, ५७/१२७ सिरकी मुहाल, पो. बा. २६८, कानपुर—मूल्य रु. २।

श्री बालकृष्ण बलदुवा हिन्दी के जाने-माने गद्य-काव्य लेखक और कवि हैं। आपकी रचनाओं में झरनों की कल-कल ध्वनि, चन्द्रमा की शीतल ज्योति तथा एक ऐसी अनुपम रहस्यमयता है, जो अजाने मन प्राण को अपने पाश में बाँध लेती है। जो भी आपने अब तक लिखा है, उसमें जीवन के अनुभव की गहराई है, जो मीठी, तीखी और अन्य सभी संभव स्वादों से परिपूर्ण है। उनमें शिखर छूने तथा आगे बढ़ने की उदात्तता है, कभी-कभी ठोकर खाने और गिर पड़ने की उदासी और चोट है और है इस सब हलचल के अन्धेरे-उजाले के बीच से आस्था की लकुटी को ढूंढ और पकड़ पाने कर अविरत चेष्टा।

आपका यह तीसरा गद्य-काव्य संग्रह है। इसमें विविध शीर्षकों से मन और मस्तिष्क की विविध अनुभूतियाँ मानों माला के फूलों की तरह पिरोई हैं। सभी रचनाएँ सन् १८५०—६० के मध्य की गई हैं। इन्हें पढ़ते हुए प्रायः प्राचीन सूक्तियों तथा बोध-वाक्यों के पढ़ने का आनन्द आता है। कुछ उदाहरण देखिए:—

> **जिंदगी मेरे लिए माखन-सी पौष्टिक नहीं बनी,**
> **बनी चने-सी ताकत देने वाली। चने सी, जिसके**
> **पानीदार दाने गिजा देते हैं, तो बेपानी दाने टकराते**
> **भी हैं लोहे-से—चोट करते हुए, पीर देते हुए।**

या—

> **यदि ऐसे मां-बाप मिले होते, जिनका प्यार सदैव सुलभ होता।**
> **यदि ऐसी पत्नी मिली होती, जिसके सब जगह गुण गाए जाते।**
> **तो—क्या मन का कोई कोना खाली भी रहता।**
> **ऐसा नहीं हुआ, इसीलिए तो मन रीता-रीता है।**
> **और मैं सारी दुनिया के प्रेम से उसे भरना चाहता हूं।**

पुस्तक की छपाई-सफाई अत्यन्त उत्तम है। हम इसकी सफलता की कामना करते हैं।

प्रथम किरण—(कविता-संग्रह)—ले० कृष्ण कल्याणकारी—प्रकाशक, दक्षिणायन, देवकुंज, ९२/ए, डावटन रोड, बोलारम, आंध्र—मूल्य १ रु०।

अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में साहित्यिक रूप से हिन्दी के बढ़ते हुए प्रचार का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत रचना है। इसमें श्री कृष्ण कल्याणकारी की कविताएं संग्रहीत हैं। आप सम्भवतः तेलुगुभाषी हैं परन्तु आप का वास्ताविक नाम का है, कहां के निवासी हैं, आपने और क्या-क्या लिखा है, आदि विषयों की कोई जानकारी नहीं दी गई है। कविताएं भी शीर्षक तथा क्रम से हीन हैं। एक छोटी सी भूमिका भी होनी चाहिए थी। जो हो, प्रथम प्रयत्न और प्रकाशन के रूप में संग्रह अभिनन्दनीय है।

कुछ मास पूर्व ऐसे ही दो दक्षिणी कवियों के एक संयुक्त संकलन की हमने इन पृष्ठों में समालोचना की थी। उससे तुलना करनेपर प्रस्तुत कृतियाँ अधिक प्रवाह-पूर्ण और छन्द आदि की दृष्टि से पुष्ट प्रतीत होती हैं। गति भंग बहुत कम है, जो प्रशंसा की बात है। परन्तु शब्द भाँति-भाँति के प्रयुक्त हुए हैं और खड़ी बोली के साथ लोक भाषा के शब्द इस तरह मिला दिए गए हैं कि वे खटकते हैं। परन्तु जो व्यक्ति दैनन्दिन रूप से हिन्दी के सम्पर्क में नहीं आता, उसके लिए इसका कोई उपाय भी नहीं है।

—अशोक

सम्पादकीय



कुछ पत्रिका के अपने बारे में—

विश्वज्योति इस अंक के साथ अपने जीवन का १२वाँ वर्ष पूरा कर रही है। संस्थान के कार्यकर्त्ताओं ने इस बात मे कभी कोई कसर उठा नहीं रखी कि इसके अपने ऊंचे ध्येय के अनुरूप उत्तम से उत्तम सामग्री इसके द्वारा पाठकों तक पहुंचती रहे और इस का प्रत्येक अंक नियत तिथि पर ही अवश्य चालू होता रहे। हमें इस बात का पूरा भरोसा है कि हमारे मान्य सदस्य, ग्राहक एवम् अन्य सब पाठक इन दोनों विषयों में पूर्णतः संतुष्ट रहे होंगे। वस्तुतः, इस पत्र के लिए यह गौरव की बात है कि हिन्दी के पत्रों मे इसे अपना मान और स्थान प्राप्त है तथा शिरोमणि-समान लेखक पारिश्रमिक-निरपेक्ष होकर इसे अपनी रचनाओं द्वारा उपकृत करते रहते हैं। इसका कार्यक्रम एक विश्वकल्याण-यज्ञ के समान है जिसमें आत्मोद्धार, राष्ट्रोद्धार एवं विश्वोद्धार संपन्न करा सकने वाले गम्भीर विचारों और उदात्त उद्‌गारों की, मानो, आहुतियाँ पड़ती रहती हैं।

परन्तु इस चित्र का एक दूसरा व्यावहारिक पक्ष भी है, जो आकर्षण और संतोष का विषय न होकर बराबर भय और चिन्ता का विषय बना चला आता है। यह बड़े खेद की बात है कि आर्थिक दृष्टि से यह पत्र अभी तक अपने पाँव पर खड़ा नहीं हो पाया। जिन विपरीत परिस्थितियों के कारण ऐसी स्थिति परिणत हुई है, वे बराबर बनी हुई हैं और उनका सामना करते चले आना संस्थान के बस की बात देख नहीं पड़ती। इस पत्र को चलाने में १०,००० रु. वार्षिक तक संस्थान को अपने पास से डालना पड़ता है। स्पष्ट ही यह भार इसके लिए नितांत असह्य हो रहा है।

केन्द्रीय प्रशासन अहिन्दीभाषी प्रदेशों में हिन्दी-प्रचार के लिए आर्थिक तथा अन्य विशेष सुविधाएं देता है। परन्तु अभी तक हमें कोई ऐसी सुविधा नहीं मिल पाई है।

एक तीसरा पक्ष और भी है। संस्थान के प्रत्येक सदस्य को यह पत्र भेंट के रूप मे भेजा जाता है। परन्तु हमारे ३००० सदस्यों में लगभग आधे ऐसे हैं जिन्हें उर्दू या अंग्रेजी पढ़ने का तो अभ्यास है, परन्तु हिन्दी का नहीं है। इस कारण वे इस पत्र को पाकर भी इसका पूरा उपयोग नहीं कर पाते। सैकड़ों सदस्य आसाम, बंगाल, मद्रास ऐसे अपने प्रदेशों एवम् अनेक अन्य देशों से हैं और वे भी अभी हिन्दी नहीं पढ़ सकते।

इस तीसरे पक्ष की कठिनाई का ध्यान रखते हुए ऐसा विचार प्रस्तुत हुआ है कि इस पत्र के पृष्ठ ६४ के स्थान पर ८० कर दिए जाएं, जिनमें से ४८ पृष्ठ तो हिन्दी के रहें और शेष ३२ अंग्रेजी के हो जाएं। ऐसा प्रबन्ध हो जाने से पत्र का वर्तमान सदस्यों द्वारा सदुपयोग तो निश्चय ही बढ़ जायगा और, साथ ही, यह आशा भी की जानी चाहिए कि इसका और अधिक क्षेत्र-विस्तार व प्रचार भी हो सकेगा। उस अवस्था में इसका वार्षिक शुल्क ८ रु. के स्थान पर १० रु. करना पड़ेगा, जिसमें, आशा है, हमारे किसी भी प्रेमी को कोई आपत्ति नहीं होगी।

उपर्युक्त प्रस्ताव को कार्यान्वित करने की ओर बढ़ने से पूर्व हम इस बारे में अपने सदस्यों, ग्राहकों एवम् अन्य सभी प्रेमी वर्ग के भावों को जानना चाहेंगे। इसलिए उन सभी से हमारा निवेदन है कि इस विषय में अपना परामर्श प्रदान करने की कृपा करें।

प्राच्यविद्या-विश्वसम्मेलन—

प्राच्यविद्या-विश्वसम्मेलन का २६वाँ (परन्तु एशिआ में १म) त्रैवार्षिक सत्र नई दिल्ली में जनवरी ४ से १० तक लगा। इसमें ६०० के लगभग भारतीय तथा इतने ही विदेशी विद्वानों ने भाग लिया। हमारे **संस्थान** के भी आधे दर्जन प्रतिनिधियों ने, संचालक-सहित, आरम्भ से अन्त तक संपूर्ण कार्यवाही में भाग लिया तथा दो ने शोध-प्रबन्ध भी प्रस्तुत किए। सम्मेलन द्वारा बड़ी सफलतापूर्वक आयोजित हस्तलेखों तथा महत्त्वपूर्ण शोध-प्रकाशनों की प्रभावशाली प्रदर्शनियों में **संस्थान** के हस्तलेख तथा प्रकाशन भी प्रदर्शित किए गए।

सम्मेलन का प्रबन्ध भारत सरकार के सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय द्वारा किया गया तथा उसी विभाग के पूर्व मंत्री प्रो० हुमायूं कबीर सम्मेलन के इस वर्ष के अध्यक्ष थे। प्रबन्ध के सभी पक्ष अत्यन्त सुव्यवस्थित और सुरुचिपूर्ण थे, जिसकी सराहना अनेक अतिथियों ने की है।

४ जनवरी के पूर्वाह्न में राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन को सम्मेलन का उद्घाटन करना था, परन्तु अस्वस्थता के कारण वे उपस्थित न हो सके और उनका भाषण प्रो० कबीर द्वारा पढ़ा गया। भारतीय ज्येष्ठ विद्वान्, डा० पांडुरंग वामन काणे ने प्रतिनिधियों का स्वागत किया तथा संमेलन के पूर्व अध्यक्ष, डा. गफूरोव व नए अध्यक्ष, प्रो. हुमायूं कबीर के भाषणों के साथ प्रातःकाल की कार्यवाही पूर्ण हुई। सायंकाल प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू का भाषण हुआ।

दूसरे दिन से विभिन्न देशों से संबन्धित विद्याओं और अध्ययनों के १० विभागों में शोध पत्र पढ़े जाने का मुख्य कार्य आरम्भ हुआ। ये विभाग थे क्रमशः (१) मिस्री, (२) अरबी-यहूदी, (३) हित्ती-काकेशियाई, (४) अल्ताई-तुर्की, (५) ईरानी, (६) भारती, (७) द. पूर्व एशियाई, (८) पूर्व एशियाई, (९) इस्लामी तथा (१०) अफ्रीकी। सम्मेलन को प्रस्तुत किए गए लगभग ८०० शोध-पत्रों में से ५०० से अधिक भारती विभाग से संबन्धित होने के कारण इस विभाग के पांच उपविभाग बना लिए गए थे, यथा (१) वैदिक, (२) प्रौढ़ संस्कृत, (३) धर्म और दर्शन, (४) इतिहास और संस्कृति तथा (५) आधुनिक भारतीय भाषाएं और भाषा विज्ञान।

अपने-अपने विषयों के अनुसार प्रतिनिधिगण विभिन्न विभागों के कार्यक्रमों में भाग लेते रहे। सैंकड़ों शोध-पत्र पढ़े गए और उनमें से किसी-किसी पर कुछ-कुछ विचार भी हुआ। परन्तु समय कम रहने के कारण बड़े-बड़े गम्भीर विषयों पर भी पर्याप्त चर्चा न चलाई जा सकी। यह भी बराबर प्रतीत होता रहा कि शोध-पत्रों की पहले से ही छाँट हो जाती और उनमें से सीमित संख्या में विशिष्ट महत्व वाले निबन्ध ही पढ़े जाते, तो कहीं अधिक अच्छा रहता। परन्तु अभी तक इस कार्य के लिए सम्मेलन के पास कोई प्रबन्ध नहीं था। आशा है, इस सत्र के अनुभव के फल-स्वरूप भावी सत्रों के लिए इस बारे में पर्याप्त प्रबन्ध किया जा सकेगा।

इस अवसर पर तीन विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रमों (१) 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक का खेल, (२) उस्ताद विलायत अलीखाँ का सितार-वादन तथा (३) बालसरस्वती के नृत्य का भी आयोजन किया गया, जो बहुत सफल रहा।

सम्मेलन का २७वाँ त्रैवार्षिक सत्र अमेरिका में होना निश्चित हुआ है। उसका निमन्त्रण सुप्रसिद्ध अमेरिकन ओरियन्टल सोसाइटी ने दिया है। सन् १८७३ में स्थापित इस सम्मेलन के कारण प्राच्यविद्या के सभी क्षेत्रों की महती प्रगति हुई है। आशा की जाती है कि आने वाले वर्षों में इसकी यह बहुमुखी प्रगति और भी अधिक होगी।

इसी बीच में दो विशेष गोष्ठियाँ भी की गईं। इनमें से एक के अन्दर यह स्पष्ट करने का यत्न किया गया कि मानवता-विकासिनी विद्याओं के क्षेत्र में प्राच्यविद्या का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूसरी में इस्लामी व्यक्तिगत विधान में परिवर्तन की उपयोगिता पर चर्चा हुई। इसके अध्यक्ष, श्री छागला ने उक्त परिवर्तन की अपेक्षा को समर्थित करते हुए कहा कि व्यापक प्रजातन्त्र के अन्तर्गत व्यक्तिगत विधान समूची जनता के लिए एक-समान ही होना चाहिए।

विश्व-मानवता को संबल—

गत मास दिल्ली में हुए प्राच्य-विद्या विश्व-सम्मेलन में सभी ओर से विश्व-मानवता के निर्माण पर बल दिया गया। राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन ने अपने उद्घाटन-भाषण में देश-विदेश से आए विशिष्ठ विद्वानों को संबोधित करते हुए कहा कि मानव जाति मूलतः एक थी, जो कालान्तर में विभिन्न देशों और समाजों में बंट कर खण्ड-खण्ड हो गई परन्तु वह आज फिर एकता की अपनी उसी मूल भावना को अपने अन्दर अधिकाधिक झलका पाने के मार्ग पर अग्रसर हो रही है। सम्मेलन के अध्यक्ष प्रो. हुमायूँ कबीर तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, रूसी विद्वान् डा. गफूरोव ने भी मानव मात्र की एकता-परक भावनाओं का समर्थन किया।

आज सभी देश इतने समीप हो गए हैं कि वे सब अब परस्पर पड़ौसी प्रतीत होते हैं। विज्ञान ने उनके अलगाव को बिल्कुल नष्ट सा ही कर दिया है। अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी भावनाओं को भी तदनुरूप परिवर्तित करें और एक विश्व-परिवार की रचना का सचेत उद्योग करें। उक्त सम्मेलन के मंच से भी एकता का यह मानवी स्वर उठना निस्संदेह महत्त्वपूर्ण और अभिनन्दनीय है। इसमें विविध प्राच्यविद्या सम्बन्धी विषयों के चोटी के विद्वान् एकत्र होते हैं, जिनका मत तथा जीवनाचार अपने-अपने देश के वातावरण का निर्माण करने में महत्त्वपूर्ण योग देता है।

विश्व-परिवार में प्रत्येक सदस्य देश की अपनी विशेषता नष्ट हो जाएगी, ऐसा नहीं है, अपितु सब सदस्य देश एक दूसरे की विशेषताओं को समझना और उनका आदर करना सीखेंगे। मानव-परिवार की भावनात्मक एकता इसकी व्यावहारिक अपार विविधता को अक्षुण्ण बनाए रख सकेगी, ऐसा विश्वास करना चाहिए। हां, परस्पर आदान-प्रदान द्वारा रहन-सहन, खान-पान आदि के व्यवहारों में भी अनेक अंशों में कुछ अधिक समता का आविर्भाव होगा, जैसा कि मानव जाति के इतिहास में युग-युगान्तर में होता ही चला आया है। देश-देश की व्यावहारिक विविधता की ऐसी काँट-छाँट स्वाभाविक है और कई अंशों में लाभदायक भी है। कारण, इसके द्वारा रूढ़ि मात्र के बल से चले आ रहे कितने ही हानिकारक अवैज्ञानिक तत्त्व निकल जाने से सामाजिक व्यवहार का कलेवर नित्य नया और सबल होता रहता है।

जैसा कि राष्ट्रपति महोदय ने कहा, मनुष्य को समग्र मानवता के प्रति निष्ठावान् होना सीखना चाहिए। आधुनिक जगत् में व्यक्ति, दल, जाति राष्ट्र, धर्म या सम्प्रदाय मात्र के प्रति ही अपनी निष्ठा सीमित करना ठीक नहीं है। वस्तुतः, ऐतिहासिक दृष्टि से यह मानवता की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रगति है, जो बीसवीं शताब्दी के इस उत्तरार्ध में संपन्न हो रही है। इससे पूर्व राष्ट्र या धर्म के आधार पर खड़ी एकता का ही युग चलता रहा है। दोनों महायुद्ध इसी के कारण हुए। परन्तु उनके द्वारा हुए विनाश ने संसार के नेताओं को अब अपने विचार परिवर्तित करने को बाध्य कर दिया है। अब सभी यह भी जानते हैं कि तीसरा महायुद्ध यदि किसी कारण हुआ तो नए वैज्ञानिक यन्त्र आधी मानवता को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इस प्रकार यद्यपि भय का नकारात्मक आधार भी लोगों को मानवता की ओर बढ़ने को प्रेरित कर रहा है, परन्तु उसे स्वीकारात्मक दार्शनिक अधिष्ठान प्रदान करके इस वैचारिक क्रांति को ठोस स्वरूप देना सब भांति उचित और स्वागत-योग्य है। इसी की नींव पर मनुष्यता का भावी महल खड़ा होगा। बीज पड़ चुके हैं, अच्छा खाद-पानी देकर उसे उगाना और पुष्पित करना शेष है।

—विश्वबन्धु

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन-समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१, श्री दौलतराम गुप्ता, (दिल्ली), २. डा. पुरुषोत्तम विश्वनाथ बापट, (पूना), ३. ज्ञानी गुरदित्तसिंह, (चण्डीगढ़) तथा ४-५. डा. बृजलाल गोस्वामी, प्रो. प्रीतमसिंह, लुधियाना।

नए सदस्यों का स्वागत—गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए—

१-६. श्री पिंडीदास, १०), श्री ओ. पी. सूद, १०), श्री धर्मपाल खन्ना, १०), श्री दुर्गादास तालवाड़, १०), श्री अयोध्याप्रसाद तालवाड़, १०), श्री वसन्तसिंह मसीन, १०), श्री ओमप्रकाश खन्ना, १०), श्री ओम्प्रकाश, (होजरी वर्क्स), १०), श्री प्यारीलाल, १०), लुधियाना, १०. प्रो. श्री दुर्गामोहन भट्टाचार्य कलकत्ता, १०), ११. श्री गोपाल लाल सेठी, नई दिल्ली, ५०).

अन्य प्राप्ति—सर्वश्री के. एल. आनन्द एण्ड सन्ज, बम्बई, २५००), २. श्री रामलाल आनन्द, देहली, १०००), ३. सर्वश्री वजीर सुल्तान टोबैको कम्पनी, हैदराबाद, ५००), ४. सर्वश्री वेदप्रकाश ज्ञानचन्द, लुधियाना, १५०), ५. श्री चन्द्रमोहन ब्रह्मचारी, संवाई (आगरा) ७४), ६. श्री श्रीकृष्ण, लुधियाना, ६१), ७. बिड़ला मन्दिर ट्रस्ट, नई दिल्ली, ५१), ८. श्रीमती संतोष भाटिया, नई दिल्ली, ३०), ९. डा. श्रीमती एस. जे. नन्द, नई दिल्ली, २०), १०. डा. पृथ्वीनाथ सूद, होशियारपुर, २०), ११. डा. नागपाल, देहली, २०), १२. श्री हैलमट वेगेण्ड्ट (जर्मनी) १५.८५), १३. प्रिं. भगवानदास, शोलापुर, ११), १४-१५. वैद्य बलभद्र भास्कर, १०), स्वामी सच्चिदानन्द, हरद्वार, १०), १६-१७. श्री हरिचरण व्यास,१०), प्रिं. कुमारी लज्जावती, जालन्धर, १०), १८. चौ. अनन्तराम आनन्द, पूना, १०), १९. श्री किशनचन्द ओहरी, अमृतसर, १०), २०. डा. सुखदेव कानपुर, १०), २१. बा. जगदेवसिंह, पोर्ट लुईस, (मारीशस) १०), २२. सर्वश्री पानीपत वूलन एण्ड जनरल मिल्स, खरड़, १०), २३. श्री मोतीराम, मुक्तसर, १०), २४. श्री सरदार एम. आर. फालके लश्कर (गवालियर) १०), २५. उमादत्त, बालांवाली (बिजनौर), १०), २६. दीवान हुकमचन्द, अम्बाला छावनी, १०), २७-२९. श्री द्वारकानाथ, १०), प्रो. कृष्णकुमार भवन, १०), डा. जी. पी. शर्मा, चण्डीगढ़, १०), ३०. डा० भाई जोधसिंह, पटियाला, १०), ३१. श्री वैंकटराम शास्त्री, मद्रास, १०), ३२-४०. सर्वश्री रतनचन्द रिखबदास जैन, १०), मास्टर वीरसिंह, पट्टी, १०), श्री सूर्यकुमार जैन, १०), श्री गुरदासराम, १०), मास्टर देवराज, १०), श्री देवीचन्द १०), श्री बालकृष्ण सूद, १०), डा० सूर्यभानदेव, १०), श्री जगन्नाथ सांघी, होशियारपुर, १०), ४१. जमादार लब्भामल्ल c/o ५६ ए. पी. ओ., ५)।

उपराष्ट्रपति महोदय का पत्र— गत नवम्बर में संस्थान के ६०वें वार्षिकोत्सव पर भारत के

उपराष्ट्रपति, डा. ज़ाकिर हुसेन संस्थान में पधारे थे। अब दिल्ली से उनका एक पत्र प्राप्त हुआ है, जो नीचे दिया जाता है :

NEW DELHI

January 8, 1964.

I had the pleasure of visiting the Vishveshvaranand Vedic Research Institute and spending a full day there I was shown round the Institute by Shri Vishva Bandhu and was very glad, indeed, to see the various sections and the actual work that was being carried on by the Institute. The Institute undoubtedly owes much to the zeal and enthusiasm of Shri Vishva Bandhu who is single-mindedly devoting himself to this work. I was greatly impressed by the quality of the research work done at the Institute and by the single-minded devotion of the Director and his able associates.

I hope the Institute will never have to curtail the scope of its valuable work for lack of funds.

Zakir Husain

अनुवाद

नई दिल्ली

८ जनवरी, १९६४

मुझे विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान देखने तथा वहां पूरा एक दिन व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्री विश्वबन्धु ने मुझे संस्थान दिखाया। मुझे संस्थान के सभी विभाग और उनका दैनंदिन कार्य देख कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। संस्थान निस्सन्देह श्री विश्वबन्धु के, जो एकनिष्ठ भाव से इस कार्य मे लगे हुए हैं, उत्साह और स्फूर्ति का ऋणी है। संस्थान मे किए जाने वाले शोध-कार्य की उत्तमता तथा उसके संचालक और उनके सुयोग्य सहायको की एकनिष्ठ कर्मठता देखकर मै अत्यन्त प्रभावित हुआ।

मुझे आशा है कि धन के अभाव में संस्थान को अपने मूल्यवान कार्य का कोई भी अंश स्थगित नहीं करना पड़ेगा। —ज़ाकिर हुसेन

प्रशंसनीय दान—गत मास स्व. सरदार उमरावसिंह शेरगिल मजीठिआ के समरहिल, शिमला वाले निजी पुस्तकालय की १२९४ अमूल्य पुस्तकें उनकी सुपुत्री, श्रीमती इन्दिरा सुन्दरम् द्वारा संस्थान पुस्तकालय को भेंट रूप में प्राप्त हुईं।



स्व. सरदार उमरावसिंह शेरगिल

इस उपलक्ष्य मे आपको संस्थान की जीवन सदस्या बनाया गया है।

स्व. सरदार उमरावसिंह जी स्व. सरदार सर सुन्दरसिंह मजीठिआ के बड़े भाई थे। जब आप चीफ़स कालेज, लाहौर मे पढ़ा करते थे, तभी अपनी कुमारावस्था में आपको विज्ञान के तत्कालीन विख्यात प्राध्यापक और स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन के अन्तिम शान्तिमय प्रभाव से प्रेरित होकर संस्कृत एवं योगविद्या में प्रगतिशाली, स्व. प. गुरुदत्त विद्यार्थी का प्रेरणामय संपर्क प्राप्त हो गया था। उसके फलस्वरूप ही आपका जीवन रईसी और राजसी ठाठ-बाठ और खा-पीकर रंग-रलने के मार्ग पर न पड़ कर, तभी से विद्या, विज्ञान, संस्कृत, योग, विचार, संयम, सेवा तथा विश्व-प्रेम की दिशा पर अग्रसर हो पड़ा था। आप प्रसिद्धि की चकाचौंध से हट कर, चुपचाप कर्त्तव्यपरायण होकर, गुप्त रूप से देश के उद्धार और समाज के उपकार के पवित्र कार्यों में सहायक और पोषक बनने वाले सज्जन थे। वे प्रायः शिमला में रहते रहे, परन्तु उनके जीवन का पर्याप्त भाग फ्रांस एवं अन्यत्र पश्चिम में बीता था। आपका महात्मा टालस्टाय व. महात्मा गाँधी ऐसे उच्चतम-

विचारकों और साधकों के साथ संपर्क बना रहता था। आप जाति-पांति की ऊँच-नीच की भेद-भावना से अछूते रहे। आपने अपने लड़के-लड़कियों के विवाह-सम्बन्ध अपने खुले उदार विचारों के अनुसार ही पसन्द और सम्पन्न किए। आप अपने यहां तथाकथित हरिजनों को ही भृत्यों के रूप में विशेष करके रखा करते थे।

आप स्व. स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी तथा स्व. रा. ब. मूलराज जी के मित्र थे। उनके द्वारा ही हमें भी आपके संपर्क में आने का सौभाग्य मिला था। आपने लाहौर में संस्थान में पधार कर प्राचीन शिक्षाशास्त्र पर व्याख्यान भी दिया था।

हमें बड़ी प्रसन्नता है कि उनकी वैज्ञानिक, धार्मिक और कलाप्रिय प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब-स्वरूप उनका पुस्तकालय उनके चिर-स्मारक के रूप में संस्थान में आकर प्रतिष्ठित हुआ है। हम चाहते हैं कि आप ऐसे मनीषी महापुरुष की जीवन-कथा प्रकाशित की जाय और आशा करते हैं कि इस पवित्र कार्य में उनके मजीठिआ परिवार का पूरा सहयोग मिलता रहेगा।

आशीर्वाद के पात्र, हमारे प्रिय श्री शंकर गौड़ की प्रेरणा एवं पुरुषार्थ से उक्त पुस्तकालय संस्थान में पहुँच पाया है, यह अंकित करते हुए हमें संतोष होता है। —विश्वबन्धु

लोहड़ी और वसन्तोत्सव—१३ जनवरी को सायंकाल लोहड़ी का पर्व मनाया गया।

१९ जनवरी को वसन्तोत्सव के उपलक्ष्य में दिन भर खेलों की प्रतियोगिताएं हुईं, दोपहर को सहभोज हुआ और अपराह्न में विजयी प्रतियोगियों को पुरस्कार-वितरण का कार्यक्रम प्रो. निर्मलचन्द्र के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

गणतन्त्र दिवस— २६ जनवरी को गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष्य के प्रातःकाल डा. बालकृष्ण, एम. एल. ए., द्वारा ध्वजारोहण और भाषण हुआ।

सरस्वती-समाज— आचार्य श्री विश्वबन्धु जी की अध्यक्षता में परिषद् के २८वें अधिवेशन (२७ दिसम्बर) में श्री के. वेङ्कटेश्वर शर्मा ने 'प्राचीन भारत में ग्रन्थ-शोध-परम्परा' विषय पर अपना निबन्ध प्रस्तुत किया।

डा. बापट का भाषण—१६ जनवरी को दिल्ली विश्वविद्यालय के पालि तथा बौद्ध धर्म और दर्शन विभाग के भूतपूर्व प्रोफेसर डा. पुरुषोत्तम विश्वनाथ बापट का भाषण हुआ, जिसका विषय था "बौद्ध अध्ययन की महत्ता"।

संस्कृत-कविता-प्रतियोगिता—शनिवार, ८ फरवरी १९६४ को २ बजे संस्थान में संस्कृत-कविता-प्रतियोगिता तथा तत्काल-समस्यापूर्ति-प्रतियोगिता का आयोजन हो रहा है।

बधाई—संस्थान-जीवन-सदस्य श्री सोमनाथ कपूर (नई दिल्ली) को उनके सुपुत्र श्री अशोक के शुभ विवाह पर, प्रिंसिपल रलाराम, एम. एल. ए, (होशिआरपुर) को उनके सुपुत्र मेजर ऋषिदेव के शुभ विवाह पर, श्री आज्ञाराम गांधी (दिल्ली) को उनकी सुपुत्री सुश्री शशि के शुभ विवाह पर, और संस्थान-कर्मिष्ठ व सदस्य श्री भीमदेव जी को उनके सुपुत्र डा. वासुदेव शर्मा के शुभ विवाह पर हार्दिक बधाई।

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान-सदस्य डा. किशोरचन्द्र पाठक (अमृतसर) का और रा. ब. जरसाराम जी (दिल्ली), सं. जीवन सदस्य रा. ब. बृजमोहनलाल (नई दिल्ली) की धर्मपत्नी जी का, श्री विप्रबन्धु (अमृतसर) की माता जी और पोस्ट एंड टेलीग्राफ के पूर्व डायरेक्टर जनरल, श्री हरबंसलाल जेरथ का नई दिल्ली में देहान्त हो गया। दिवंगत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

विश्वज्योति

का

बुद्ध-अङ्क (मई १९५६)
नव वर्ष अङ्क (मार्च १९५७)
नव वर्ष अङ्क (,, १९५८)
नव वर्ष अङ्क (,, १९५९)
स्वास्थ्य अङ्क (,, १९६०)
महापुरुष अङ्क (,, १९६१)
रवीन्द्र-दर्शन अङ्क (जुलाई १९६१)
महामना मालवीय अङ्क (जनवरी १९६४)
सदाचार अङ्क (मार्च १९६२)
परिवार अङ्क (मार्च १९६३)

आप ने देखा और उन की प्रशंसा की

और अब

"**विश्वज्योति**" के तेरहवें वर्ष में पदार्पण के उपलक्ष्य में

मार्च १९६४ में

राष्ट्रीय भावनात्मक एकता अङ्क

इस में "राष्ट्रीय भावनात्मक एकता" से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर ज्ञानवर्धक लेख, मनोहर कहानियां, रोचक एकाङ्की और सरल भावपूर्ण कविताएं पढ़ें

वार्षिक ग्राहकों को मुफ्त

विज्ञापन सम्बन्धी जानकारी के लिए लिखें :—

व्यवस्थापक 'विश्वज्योति'

साधु आश्रम, होशियारपुर (पं.)

Name of owner :—Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri**
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur.

विश्व ज्योति

सफलता का मूल्य

सफलता रूपी वस्तु संसार के बाजार में बिकाऊ तो है, पर इसका मूल्य कोई-कोई ही दे पाता है। वह मूल्य है, अपने आपको पहले अपने द्वारा वरे गए लक्ष्य के हाथ चुपचाप बेच देना। लक्ष्य के साथ अपनी पूरी एकतानता पैदा कर लेना, उसी के ऊपर जीना और, यदि आवश्यकता पड़ जाय तो, उसी के ऊपर, दीपक पर पतंग की तरह, अपना बलिदान भी कर देना। जो मनुष्य अपने जीवन में किसी भी प्रकार की ज्ञानमयी या द्रव्यमयी सम्पत्ति के सफल स्वामी बन सके हैं, उन सब में अपने-अपने लक्ष्य के प्रति ऐसी ही सम्पूर्ण लगन देखने में आई है।

—विश्व[illegible]

● ● ●

आप के एवं आप के सब इष्ट-मित्रों के प्रति

नववर्ष-मङ्गलम्

विक्रम सम्वत् २०२१

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

होवें सुख-भागी सभी, सभी रहें नीरोग,
सभी भद्र देखें घने, दुःख लहें मत लोग ॥

विश्वबन्धु

To you and all your dear and near ones

Happy New Year

Vikram Era 2021

May happ'ness come to all,
With freedom from disease !
May all see th' best of life,
And from mis'ry release !!

Vishva Bandhu

सूचना

'विश्व-ज्योति' का यह विशेषांक मार्च तथा अप्रैल, १९६४ का संयुक्तांक है । आगामी अंक मई, १९६४ का होगा जो २८ अप्रैल को भेज दिया जायगा ।

ज्यों-ज्यों मानव के अंदर दैवी संपद् के क्षेत्र में विहरण-रुचि बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसके अंदर अपने द्वारा संग्रह किए गए या किए जा रहे सब प्रकार के पदार्थ-भण्डार के द्वार को दूसरों के लिए खोल देने की इच्छा भी बढ़ती जाती है। इसे कहते हैं व्यक्ति की समष्टि में परिणति।

—श्री विश्वबन्धु

● ● ●

बचपन में ही मनुष्य को यह सिखाया जाना चाहिए कि हम सब तभी सुखपूर्वक रह सकते है, जब हम न केवल दूसरों को सताएं नहीं, वरन् उनके अधिकारों को भी अपने अधिकारों के समान सम्मान की दृष्टि से देखें।

—श्री विश्वबन्धु ('मानवता का मान' से)

● ● ●

ऊँचा आदर्श पहले मस्तक में उदय होता है। परन्तु जब हार्दिक प्रेरणा तथा उत्तेजना पैदा होकर प्रचंड श्रद्धा का रूप धारण करती है, तभी मनुष्य साधक बनकर आदर्श को अपने व्यवहार में परिणत करता है।

—श्री विश्वबन्धु

● ● ●

सज्जन और दुष्ट

नारिकेल-समाकारा, दृश्यन्ते केऽपि सज्जनाः ।
अन्ये बदरिकाकारा, बहिरेव मनोहराः ॥

सज्जन पुरुष नारियल के समान दिखाई देते हैं। अर्थात् उनका बाहरी रूप मनोरम नहीं होता परन्तु भीतर से वे गरी के समान कोमल, श्वेत और मधुर होते हैं। इसके विपरीत दुष्टजन बेर के समान यद्यपि बाहर से मनोहर, रंगीन होते हैं परन्तु भीतर से गुठली के समान कठोर होते हैं।

—चाणक्य-नीति

• • •

सदाचार

अपने संबन्धियों से विरोध नहीं करना चाहिए, बलवान् से स्पर्धा नहीं करनी चाहिए और स्त्री, बालक, वृद्ध तथा मूर्खों से विवाद नहीं करना चाहिए।

स्वादिष्ट भोजन अकेले नहीं खाना चाहिए, किसी विषय पर अकेले विचार नहीं करना चाहिए, यात्रा पर अकेले नहीं जाना चाहिए और अकेले सोए हुए को जगाना नहीं चाहिए।

देर तक सुनना चाहिए, परन्तु सुने हुए को समझ लेना चाहिए। समझ कर उस पर विचार करना चाहिए।

—शुक्र-नीति

• • •

नानक-वाणी

पवन गुरु पानी पिता, माता धरत महत।
दिवस रात दुए दाई दाया, खेल सकल जगत।
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचे धरम हदूर।
करमी आपो आपनी, के नेडे के दूर।
जिन्नी नाम ध्याया, गये मसक्कत घाल।
नानक ते मुख उज्जले, केती छुट्टी नाल।

पवन गुरु है, जल पिता है और महान् धरती माता है। दिन और रात दोनों दाई-दाया हैं, जिनकी गोद में यह समग्र संसार खेल रहा है। प्रत्येक के अच्छे और बुरे कार्यों को धर्मराज देखता है और उनका फल, कभी तुरंत, कभी कुछ समय बाद, देता है। जिन्होंने ईश्वर का नाम लिया, वे कष्टों से पार हो गए। नानक कहते हैं, उनका मुख उज्ज्वल है और उनके साथ कितनी ही प्रजा कष्टों से छूट चुकी है।

—जपजी साहब

● ● ●

आर्य कौन ?

जो धर्म, अर्थ तथा काम संबन्धी कार्यों का आरम्भ उद्वेगपूर्वक नहीं करता, पूछे जाने पर जो तथ्य ही बतलाता है, मित्र के साथ जो विवाद नहीं करता और सम्मानित न होने पर जो क्रुद्ध नहीं होता, वह आर्य है।

जो अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता, दूसरों के दुःख देख कर हर्षित नहीं होता, दान देकर जो उसके लिए पश्चात्ताप नहीं करता, वह आर्य है।

—विदुर-नीति

• • •

कपड़ा

कपड़ा स्वयं में न मैला होता है न उजला।

हाँ, मैला होने में उसे कोई कष्ट नहीं होता। उजला बनने में अवश्य कुटना-पिटना पड़ता है।

उजला बनाने वाला उसे निर्ममता से पाटे पर पीटता है।

निर्ममता में कमी रहने पर उज्ज्वलता में भी कमी रह जाती है।

अवश्य ही इतनी निर्ममता से नहीं पीटता कि कपड़ा उजला होते-होते फट जाय।

—बालकृष्ण बलदुवा

● ● ●

वहां रहिए

वहां रहिए जहां सत प्रेम की बारिश बरसती हो,
वहां रहिए जहां चारों तरफ़ मस्ती ही मस्ती हो।

वहां रहिए जहां खिदमत के पैमाने झलकते हों,
वहां रहिए जहां इखलाक के मोती चमकते हों।

वहां रहिए जहां नूरे हकीकत का उजाला हो,
वहां रहिए जहां इफलास दौलत से न डरती हो।

वहां रहिए जहां मानव ईश्वर से प्रेम करता हो,
वहां रहिए जहां विषय-वासनाओं की नींद न आती हो।

वहां रहिए जहां रूहानियत नग़मे सुनाती हो,
वहां रहिए जहां पर याद ईश्वर की सताती हो।

वहां रहिए जहां भोजन का ग़म खाना न पड़ता हो,
वहां रहिए जहां सबों से शरमाना न पड़ता हो।

वहां रहिए जहां दौलत से भी अफज़ल शराफत हो,
वहां रहिए जहां दिल को शांति पूरी हासिल हो।

वहां रहिए जहां के रहने वाले सुन्दर ही सुन्दर हों।

—सुंदरदास लुगानी

"भावनात्मक एकता—गीता-अध्यात्म सन्देश"

अद्वेष्टा सर्वभूतानां, मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः, समदुःखसुखः क्षमी॥

संतुष्टः सततं योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्, यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

जो मेरा भक्त सब प्राणिओं के प्रति द्वेष-भाव से रहित, एवं मित्र-भाव व करुणा-भाव से युक्त रहता है; अहंता और ममता के भावों से मुक्त होता है; सहिष्णु होता हुआ सुख और दुःख को अपने लिए सम बना सकता है; नित्य संतोष युक्त, योग-युक्त, संयमी और पक्के निश्चय वाला होता है, और जो अपने मन और बुद्धि को मुझ में केन्द्रित किए रहता है, वह मुझे प्रिय लगता है।

यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्, मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

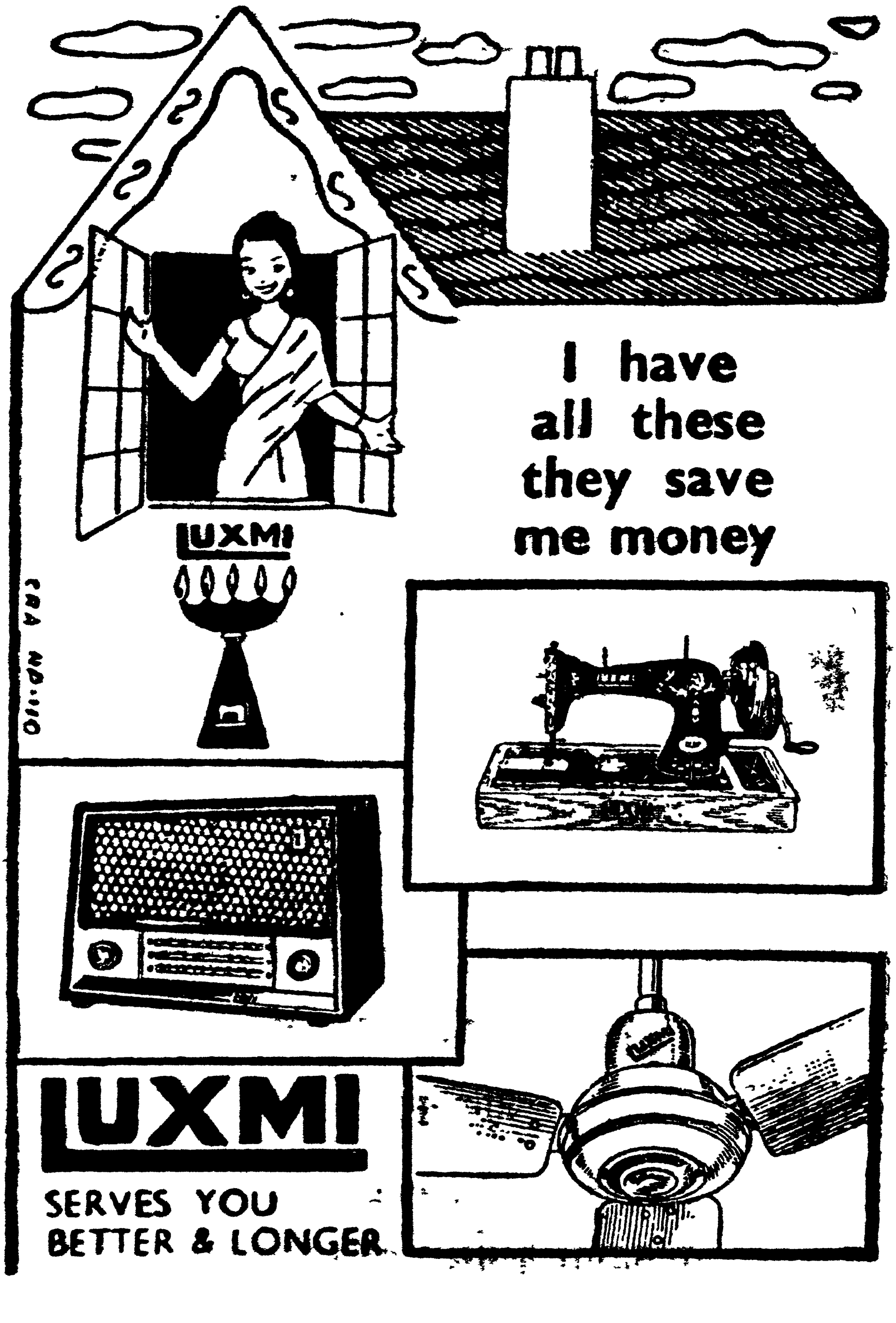
जिससे लोगों को उद्वेग नहीं होता, जो लोगों से उद्वेग नहीं करता और जो अहंकार, असहिष्णुता, भय तया उद्वेग से मुक्त रहता है, वह मुझे प्रिय लगता है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥

जो भक्तियुक्त होता हुआ राग, अपराग, शोक और कांक्षा से रहित रहता है, और त्यागपूर्वक शुभ और अशुभ प्रतीत होने वाले कर्तव्य-कर्म के करने में लगा रहता है, वह मुझे प्यारा लगता है।

("मानवता का मान" से उद्धृत)

● ● ●


I have
all these
they save
me money
LUXMI
LUXMI
SERVES YOU
BETTER & LONGER
CRA ND-110

सच्चा मित्र वही होता है जो जिस व्यक्ति को अपना मित्र कहता और समझता है, उसका सदा हितचिंतन करता हो और उसके विभिन्न कार्यों में उसकी आवश्यकता के अनुसार यथासंभव योग देता हो।

—श्री विश्वबन्धु ('मानवता के मान' से)

• • •

प्रभु का प्यार चाहने वाले साधक को जीवन-साधना का प्रथम सोपान यह है कि उसे अपने मन, वचन और आचरण में से द्वेष-भाव अर्थात् हिंसा-वृत्ति को निकाल कर अद्वेष-भाव अर्थात् अहिंसा-वृत्ति को सुप्रतिष्ठित करते रहना चाहिए।

—श्री विश्वबन्धु ('मानवता का मान' से)

• • •

हमारे नये प्रकाशन

१. **सदाचार-शास्त्र** (प्रथम भाग)—
(विदुर, शुक्र, चाणक्य एवं भर्तृहरि-प्रणीत नीतियों का सटीक संग्रह)। ५.७५

२. **जप-संहिता**—स्वामी हरिप्रसाद वैदिक-मुनि।
(जपजी साहब का संस्कृत व हिन्दी में भाष्य तथा उस पर विस्तृत परिचय से युक्त भूमिका)। ५.७५

३. **विश्व के दार्शनिक**—रत्नचन्द्र, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ।
(भारत, चीन तथा यूरोप और अमेरिका के चुने हुए दार्शनिकों का जीवन-वृत्तान्त)। ४.५०

४. **जीवन-धर्म**—निर्मलचन्द्र। १.५०

५. **गीतावाद**—श्रीराम एम.ए.।
हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद। ०.७५

६. **एकत्व-दर्शन**—निर्मलचन्द्र। १.५०

मिलने का पता :—

विश्वेश्वरानन्द विक्रय-विभाग, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) Shāntakuṭi Vedic Series :

Volumes I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa (*A Vedic Word-Concordance*), in Sections I-V, split up into 15 parts, treated as volumes in the series, [Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II (Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upanisads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in I pt.] covering 11,000 (10"×7") pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40 ; Q. II, Rs. 30 ; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional sets (but not individual parts) entertained. 14 parts on sale, remaining 1 part due '64.

Volume XVI. A Grammatical Word-Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Grammatical Word-Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volumes XVIII-XIX. A Grammatical Word-Index to the Four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Grammatical Word-Index to Taittirīya Saṁhitā, Rs. 40.

Volume XXI. A Grammatical Word-Index to Upaniṣads, due '64, Rs. 30.

(B) Vishveshvarānand Indological Series :

Volumes I-II. Siddha Bhāratī (*A Rosary of Indology*), Pts. I-II, 108 clasified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā (*A Concordance of Purāṇa Contents*), by Prof. Y. P. Tandan. Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha (*Texts on Courtezans in Classical Sanskrit*), texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20.

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern philology by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī (*The Homage of Indology*), 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Agrawal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr. U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Culural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volumes X-XI. Catalogue of VVRI Collection of Manuscripts, 2 Pts., Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L. Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-Pāṭha and Sāyaṇācārya's commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVI ready, Rs. 180.

Volume XVIII. Saṅkarṣa Kāṇḍa Sūtras of Gemini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Volumes XIX-XXVI. Ṛgveda, in 8 parts, first cri. edn. of the Bhāsyas of Skandasvāmin, Udgītha, Mudgala and Venkaṭa-Mādhav, Ed. Vishva Bandhu, Pts. 2 and 3 ready, Rs. 90.

Volumes XXVII-XXIX. Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, first cri. edn. by L. Sternbach, Vol. XXVII ready, Rs. 30.

Volume XXX. Dṛggaṇitam of Parameśvara, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

(C) Woolner Indological Series :

Volume I. The Foreign Policy of Warren Hastings, by Ram Prakash. Rs. 5.

Volume II. Tagore Centenary Volume, Ed. Shri Mahendra Kulasrestha, Foreword by Prof. Humayun Kabir. Rs. 16.

Volume II A. The Genius of Tagore, P. I of the above. De-luxe Rs. 12, Standard Rs. 12.

Volume II B. Aspects of Indian Culture, P. II of the above. De-luxe Rs. 18, Standard Rs. 12.

Volume III. Outline of Indian History, by Sri Ram Sharma, Rs. 8.

Volume IV. The Sāṅkhya Kārikā of Iśvarakṛṣṇa, by C. Kunhan Raja, Rs. 10.

Volumes V-VIII. Rājataraṅgiṇī, cri. edn. of its texts by Kalhaṇa, Jonarāja Śrīvara and Śuka, Vol. V ready, Ed. Vishva Bandhu, Rs. 30.

(D) Sarvadānand Universal Series :

Volume XII. Mental Health in Theory & Practice, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 2·25.

Volume XVIII. A Story of Indian Culture, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 5.

Volume XXV. The Theory of Socialism, Ancient and Medieval, by Prof. R. M. Uppal, Rs. 1·25.

Volume XXVI. Great Thoughts of Great Men, by Prin. Sain Das, Rs. 3.50.

Volume XXVII. The Religion of Buddha and its Relation to Upaniṣadic Thought, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 4·50.

Volume XXX. Popular Talks on Psychological Topics, by Dr. Prem Nath, Rs. 2·50.

Volume XXXI. An Introduction into Lamaism, The Mystical Buddhism of Tibet, by R. P. Anuruddha, Rs. 8.

Volume XXXIV. Shri Krishna, His Philosophy and His Spiritual Path, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Volume XL. Dayanand, A Study in Hinduism, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Can be had of :

VISHVESHVARANAND BOOK AGENCY,

P. O. Sadhu Ashram, HOSHIARPUR (Pb., India)

हमारे हिन्दी प्रकाशन

१.	वेद-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.५०
२.	श्रीमन्त्र पुष्पाञ्जलिसूक्त—आचार्य विश्वबन्धु	...	०.२५
३.	वेद-नवाह्निक— „ „	...	०.५०
४.	ईशावास्योपनिषद्-दर्पण—श्री सत्यदेव, बी. ए.	...	१.००
५.	केनोपनिषद्-दर्पण— „ „	...	०.७५
६.	कठोपनिषद्-दर्पण— „ „	...	१.३१
७.	कठोपनिषद्—श्रीमती विद्यावती मिश्र	...	०.८१
८.	उपनिषद्-दिग्दर्शन—डा. दीवानचन्द एम. ए.	...	२.७५
९.	ब्रह्मविद्या— स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	६.००
१०.	अध्यात्म-दर्शन— „ „ „	...	४.००
११.	कर्म और योग— „ „ „	...	२.५०
१२.	आनन्द-मार्ग— „ „ „	...	२.००
१३.	आत्मानुभूति— „ „ „	...	२.००
१४.	धर्म की आवश्यकता— „ „	...	१.००
१५.	संस्कृत-शिक्षा-विधि——प्रो. गौरीशंकर एम. ए., बी. लिट.	...	३.२५
१६.	सत्संग-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.३७
१७.	सुखी संसार— „ „	...	०.५०
१८.	पंजाबी रामायण—श्री रामलुभाया आनन्द 'दिलशाद'	...	१०.००
१९.	मानस गंगा—श्री उमादत्त, बी. ए., एलएल. बी.	...	२.००
२०.	स्वर्ण-पादुका—प्रो. परमानन्द शर्मा, एम. ए.	...	१.२५
२१.	प्रवेस्ता—श्री राजाराम शर्मा	...	१.२५
२२.	वीर वौना (सचित्र)—कान्ता डोगरा	...	१.२५
२३.	फतेहनामा गुरु खालसा जी का—प्रो. सीताराम कोहली	...	३.६०
२४.	ध्वस्त नीड़—श्री श्रीपाद जोशी	...	३.००
२५.	हमारा समाज—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	४.००
२६.	आदर्श पत्नी— „ „	...	२.५०
२७.	हमारे बच्चे— „ „	...	३.७५
२८.	बच्चों की देख-भाल—प्रि. बहादुरमल्ल, एम. ए.	...	१.७५
२९.	मन की अद्भुत बातें— „ „ „	...	२.००
३०.	दुनिया तुम्हारी है—डॉ. रामचरण महेन्द्र, एम. ए., पीएच. डी.	...	३.३७
३१.	संसार को चुनौती—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	२.६२
३२.	नागरिक गीता—श्री चमनलाल	...	१.७५
३३.	शिष्टाचार—श्री सन्तराम बी. ए.	...	२.००

३४. व्यवहारिक ज्ञान—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	२.७५
३५ लोक-विजय — ,, ,,	...	३ २५
३६. युवक मनोविज्ञान—प्रि. बहादुरमल, एम. ए.	...	२.००
३७. सेवाकुञ्ज— श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.५०
३८. चमत्कारों की दुनिया— ,, ,,	...	०.७५
३९. फलाहार— ,, ,,	...	१.२५
४०. महाभारत के श्रीकृष्ण—श्री देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर	...	२.२५
४१. छत्रपति—प्रो. परमानन्द शर्मा	...	३.००
४२. वीर शिवाजी—श्री श्रीपाद जोशी.	...	२.७५
४३. स्वामी नित्यानन्द : जीवन और कार्य—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	२.५०
४४. भारतीय नवोदय के अग्रदूत—	...	३.५५
४५. राजा राममोहन राय—श्री अखिल विनय, एम. ए.	...	०.७५
४६. महर्षि दयानन्द—श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'	...	०.७५
४७. विश्व के दार्शनिक—श्री रत्नचन्द्र श्री महेन्द्रकुलश्रेष्ठ	...	४.५०
४८. स्वामी रामतीर्थ—श्री रामकृष्ण	...	०.७५
४९. योगी अरविन्द—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	०.७५
५०. महाबली भीम [सचित्र]—श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर	...	१.५०
५१. भीष्म पितामह [सचित्र]— ,, ,,	...	१.५०
५२. धर्मराज युधिष्ठिर [सचित्र]—,, ,,	..	१.५०
५३. वीर अर्जुन [सचित्र]— ,, ,,	..	१.५०
४४. विद्यापति और चण्डीदास—श्री रामावतार	...	१.२१
५५. आधुनिक हिन्दी कविता के वाद—श्री विनयमोहन शर्मा	...	१.३१
५६. रस-धारा—श्री सन्तराम, बी. ए.		०.७५
५७ सूखे संतरे—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	१.३७
५८. प्रलय और सृष्टि— ,, ,,	...	२.००
५९. मिट्टी का कलश—श्री शिवनाथ दुबे	...	१.२५
६०. महाभारत की कहानियाँ (द्वितीय संस्करण)—श्री देवदत्त शास्त्री	...	१.००
६१. बड़े लोग श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.२५
६२. रसवन्ती— ,, ,,	...	२.००
६३. नए युग की कहानियां— ,, ,,	...	१.७५
६४. अच्छी अच्छी कहानियां [सचित्र],, ,,	...	०.८७
६५. बात की बात—प्रो. परमानन्द शर्मा,एम. ए.	...	१.००
६६. बालभूषण—श्री राष्ट्रबन्धु	...	१.२५
६७. तितली—श्री सुन्दरलाल 'अशोक'	...	१.५०
६८. आत्म-तत्त्व-प्रकाश—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	१.५०

विश्व-ज्योति

FORM IV

(See Rule 8)

1.	Place of Publication	.. **Sadhu Ashram, Hoshiarpur.**
2.	Periodicity of its Publication	.. **Monthly.**
3.	Printer's Name	.. **Shri DEV DATTA Shastri.**
	Nationality	.. **Indian.**
	Address	.. **Sadhu Ashram, Hoshiarpur.**
4.	Publisher's Name	.. **Shri DEV DATTA Shastri.**
	Nationality	.. **Indian.**
	Address	.. **Sadhu Ashram, Hoshiarpur.**
5.	Editor's Name	.. **Shri Vishva Bandhu & Shri Sant Ram.**
	Nationality	.. **Indian.**
	Address	.. **Sadhu Ashram, Hoshiarpur.**
6.	Name and addresses of individuals who own the newspaper and partners or share-holders holding more than one percent of the total Capital.	.. **V. V. Research Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.**

In, DEV DATT SHASTRI, hereby declare that the particulars given above are, true to the best of my knowledge and belief.

DEV DATTA Shastri,
Publisher.

Date : 28-2-64.

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, फाल्गुन, २०२०; मार्च १९६४ { संख्या १

भावनात्मक-एकता-वेदामृत

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।

इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर॥ (ऋ. १०,१९१,१)

हे मेल बढ़ाने वाले अग्नि-देव, तुम्हारा (सभी पर) अधिकार है (और) तुम सभी को बहुत अच्छे प्रकार से संगठित करते हो। (हमारे परस्पर के) मेल-मिलाप को बढ़ाने के लिए ही (तुम हमारे द्वारा) प्रज्वलित किए जा रहे हो। (कृपया) लोगों को (प्रेरित करके) हमारी ओर (हमारे साथ प्रेम-पूर्वक मिल कर रहने के लिए) ले जाओ।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ (ऋ. १०,१९१,२)

(हे लोगो), परस्पर मिलकर रहो। परस्पर संवाद किया करो। तुम्हारे मन परस्पर मिले रहें। यही तुम्हारा पालन करने योग्य कर्त्तव्य है। (देखो), पूज्य देवता भी परस्पर मिल कर (ही संसार-चक्र को चलाने का अपना-अपना) कर्त्तव्य-भाग सम्पन्न कर रहे हैं।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ (ऋ. १०,१९१.३)

इन (देवताओं) का मन्त्र समान है। (इनकी) समिति समान है। (इनका) मन समान है। (इनका) चित्त मिला हुआ है। (हे लोगो), मैं तुम्हारे (सब) की समान मन्त्र (में आस्था) के लिए मन्त्र का उपदेश करता हूँ। मैं तुम (सब) की (ओर से दी जाने वाली) समान हवि द्वारा यज्ञ-हवन करता हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ (ऋ. १०,१९१,४)

(हे लोगो), तुम्हारे अन्दर की भावना समान हो। तुम्हारे हृदय समान हों। तुम्हारा मन समान हो ताकि तुम्हारा संगठन (सदा) बना रहे।

अश्मन्वती रीयते संरभध्वम् उत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥ (ऋ. १०,५३,८)

पथरीली नदी (वेग से) चल रही है। आओ, मित्रो, तैयार हो जाओ और एक-दूसरे से जुड़ कर इसे पार कर चलो। आओ, बुरे भावों का यहीं परित्याग करें, ताकि अच्छे भाव हमें प्राप्त हों।

सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ (अथर्व. १२,१,१)

विशाल सत्य, उग्र ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ (पृथिवी पर रहने वाले मानवों के जीवन) के आधार हैं। वह (उक्त आधारों पर खड़ी) पृथिवी (हमारे) भूत और वर्तमान की रक्षा करती हुई (हमारे भावी विकास के लिए) लिए हमें (अपना) विस्तृत क्षेत्र प्रदान करे।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।

तयोर्यत् सत्यं यतरद् ऋजीयस् तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ (ऋग् .७,१०४,१२)

सच और झूठ लड़ रहे हैं। परन्तु बुद्धिमान् के लिए यह समझना सुगम होना चाहिए कि प्रेरणा-स्वरूप परमात्मा उसी की रक्षा करता है जो विशेष करके सत्य और सरल होता है, (और कि वह) उसे मार गिराता है जो असत् होता है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ (यजु. ४०,२)

(हे साधक, दीन-दुखियों की सहायतार्थ पुण्य) कर्मों को करते हुए ही सौ वर्ष (और उससे भी अधिक समय) तक जीवन पाने की इच्छा से युक्त (और उसके लिए प्रयत्नशील) रहो। इस प्रकार जब तुम (दानवीर, परोपकारी) नर (बनकर रहोगे), तो तुम पर (कोई) मल जम नहीं पावेगा। (परन्तु निश्चय जानो, निर्मलता की प्राप्ति) इससे अन्य किसी मार्ग का अवलंबन करने से (कदापि) नहीं हो सकेगी।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानु पश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ (यजु. ४०,६)

परन्तु जब (एक साधक) सब प्राणियों को अपने-आप में और अपने-आप को सब प्राणियों में समाया हुआ देख लेता है, तो (वह अब) उन सब की ओर से निर्भय और निःशंक हो जाता है और किसी से भी घृणा नहीं करता।

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ (यजु. ३६,१८)

सब लोग मुझे मित्र-दृष्टि से देखें। सब को मैं मित्र-दृष्टि से देखूं। हम सब (परस्पर) मित्र-दृष्टि से देखने वाले हों।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागाम् शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।

असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ (अथर्व. १९,१४,१)

आहा! मैं कल्याण की सीमा पर पहुंच रहा हूँ। भूमि और आकाश कल्याण-स्वरूप हो रहे हैं। किसी ओर कोई शत्रु नहीं रहा। अब मेरा किसी से द्वेष नहीं (और) अब कहीं से कोई भय नहीं रहा।

—आचार्य विश्वबन्धु

डा. एम. मलिक मोहम्मद
डॉ. एस. एन. गणेशन

भावनात्मक एकता के अमर गायक तमिल कवि भारती

आधुनिक तमिल काव्य-धारा को एक नयी दिशा प्रदान करने का श्रेय महाकवि सुब्रह्मण्य भारती को है। भारती ने तमिल के काव्य क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि साहित्य के अन्य अंगों के क्षेत्रों में भी एक नवीन युग का आरम्भ किया। वे युगप्रवर्तक कवि और चिंतक थे। यद्यपि इस महान् कवि ने सन् १९२१ ई० में ही (केवल ३९ वर्ष की आयु में) इस धरती को छोड़ दिया, तो भी उनकी कविताओं ने तमिल भाषियों के मानस में अमिट छाप डाल दी है और वे अमर हैं। उनकी कविताएं आज भी उतनी ही गौरवपूर्ण और प्राणवान् हैं, जितनी वे उनके समय में थीं।

भारती की कविताओं में प्रमुख रूप से मातृ-भाषा-प्रेम, देश-भक्ति और राष्ट्रीय एकता की भावनाएँ भरी पड़ी हैं। तमिल-प्रदेश में राष्ट्रीय जागरण के वातावरण को उत्पन्न करने में भारती की कविताओं ने अद्भुत सफलता प्राप्त की। उनकी कविताओं में एक विशिष्ट शक्ति थी जो जन-मानस में राष्ट्रीय चिंतन और राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को अनायास ही जगा देती थी। परतन्त्रता के उस युग में देश की आजादी के लिए कवि का हृदय तड़प उठा। कवि ने उस दिन का स्वप्न देखा जबकि भारत माता के करों से बेड़ियाँ गिर पड़ेंगी और भारतवासी दासता के मोह से मुक्त होंगे। कवि की तीव्र आकांक्षाएं उत्तरोक्त पंक्तियों में स्पष्टतः प्रकट हुई हैं—

"एन्ड्रे तणियुम् इन्तच्चुतंतिर ताहम् ?
एन्ड्रे मडियुम् एंकळ अडिमैयिन मोहम् ?
एन्ड्रेमतन्नै कैविलंकुकळ् पोहुम् ?
एन्ड्रेमतिन्नलकळ् तीर्न्तु पोय्याकुम ?"

—कब बुझेगी हमारी यह स्वतन्त्रता की प्यास ? कब मिटेगा हमारा यह दासता-मोह ? कब गिर पड़ेंगी ये बेड़ियाँ, माँ के करों से ? कब दूर होंगी हमारी यातनाएँ ?

भारती ने राष्ट्र के स्वातंत्र्य को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उन की दृष्टि में और सभी चीजें गौण हैं। उनका कहना है—"जो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए कमर कस चुके हैं, उनका मन किसी दूसरे लक्ष्य की ओर कैसे आकृष्ट होगा ? जो अमृत-पान की इच्छा कर चुके हैं, वे मद्यपान से कैसे सन्तुष्ट हो सकते हैं ? जो कोई इस पृथ्वी में जन्म ले चुका है, एक-न-एक दिन मरेगा ही। किन्तु अपमान सहकर भी जीना भी, क्या जीना है ? वैयक्तिक सुख-प्राप्ति की इच्छा से स्वातंत्र्य को खो बैठना कितनी बड़ी मूर्खता है ? नेत्रों को बेचकर चित्र खरीदने वाला कितना बड़ा मूर्ख है ?"

सुब्रह्मण्य भारती के मन में भारत के स्वतन्त्र हो जाने के विषय में कितना दृढ विश्वास था, इसका परिचय उनके एक गीत से मिल जाता है, जिसे उन्होंने भारत के स्वतन्त्र होने के लगभग तीस वर्ष पहले ही गाया था। उन्होंने स्वतन्त्र भारत को दूर से देखा और गाया—

"आडुवोमे पळ्ळु पाडुवोमे
आनन्द सुदन्तिरम् अडैन्तुविट्टोमेन्ड्र
एंकुम् सुदन्तिरम् एन्पदे पेच्चु नाम्
एल्लोरुम् सममेन्पदु उरुदियाच्चु"

—हम गाएँ और नाचें, हम ने तो आनन्द प्रदायिनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। सर्वत्र यही स्वर गूंज उठता है कि हम आजाद हो गए। अब यह निश्चित हो चुका है कि हम सब बराबर हैं।

कवि के शब्दों में कितना दृढ विश्वास छिपा है। भारती परतन्त्रता को विष से भी भयंकर समझते थे। उन्होंने उस युग में ही यह घोषणा कर दी थी—

"नामिरुक्कुम् नाडु नमदेन्पतरिन्तोम् —इदु
नमक्के उरिमैयाम् एन्पदरिन्तोम् —इन्तै
भूमियिल् एवर्कुम् इनि अडिमै चेय्योम् —परि
पूरणनुक्के अडिमै चेयतु वाळ्वोम्"

—हम यह भली-भान्ति जान चुके हैं कि यह देश हमारा है जिस में हम रहते हैं। इस पर हमारा ही हक है। इस पृथ्वी पर हम किसी दूसरे (विदेशी) की

दासता स्वीकार कभी नहीं करेंगे। केवल हम परमेश्वर की ही दासता स्वीकार कर सकेंगे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् उस प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा करना भी सब से बड़ा और सब का कर्त्तव्य है। इसका भी आदेश भारती दे गये हैं। कवि स्वातन्त्र्य-वृक्ष को सूखने नहीं देना चाहते। सब-कुछ अर्पित करके भी उस प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा करना चाहते हैं—

"तण्णीर विट्टो वळर्त्तोम् सर्वेशा इप्पयिरै
कण्णीराल् कात्तोम् करुकत्तिरुवुळमो !"

—इस स्वातन्त्र्य-वृक्ष को हम कैसे सूखने देंगे ! परमेश्वर, हमने तो इसे जल से नहीं, अश्रुजल देकर बचाया है।

भारत की भावनात्मक एकता को चाहने वाले भारती की अन्तरात्मा से जो वाणी निकलती है, उसने उत्तरोक्त प्रकार से काव्य-रूप धारण कर लिया है—

'मुप्पतु कोडि मुखमुडैयाळ् उयिर
मोइम्पुर ओन्ड्रुडैयाळ् —इवळ्
सेप्पुम् म ळी पदिनेट्टुडैयाळ् एनिर्
चिंतनै ओन्ड्रुडैयाळ्'

—हमारी भारत माता तीस करोड़ (अब चवालीस) मुखवाली है। किन्तु उसकी जान तो एक ही है। यह अठारह भाषाएं बोलती है। किन्तु उसका चिंतन तो एक ही है।

भावनात्मक एकता को किसी दूसरे कवि ने शायद ही इतने सुन्दर काव्यात्मक ढंग से व्यक्त किया हो। भारती घोषित करते हैं कि भारत माता अठारह भाषाएं तो बोलती है, पर एक ही मन से सोचती है। भारती ने कल्पना तक नहीं की होगी कि भारतवासी स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के बाद इतने अल्प समय में भाषा को लेकर आपस में लड़ने को तैयार हो जायेंगे। कितना ऊंचा लक्ष्य था कवि का, वे तो अठारह भारतीय भाषाओं को समान रूप से मानते थे। उन्होंने तो भारतीय ऐक्य को सब से अधिक महत्त्व दिया है।

आज देश की भावनात्मक एकता की रक्षा के लिए प्रयत्न हो रहे हैं। किन्तु आज से पचास वर्ष पहले ही भारती ने भावनात्मक एकता की आवश्यकता की घोषणा की थी। आज हमें जिस चीज की आवश्यकता है, जिस सन्देश की जरूरत है, उसे भारती पचास वर्ष पहले ही दे गये हैं। उत्तर और दक्षिण, पूरब और पश्चिम की भिन्नता-भावना को जड़ से उखाड़कर फेंकने का आदेश भारती ने दिया है। उनकी दृष्टि में भारत एक है और उस की आत्मा एक है।

समूचे भारतवर्ष को भावनात्मक एकता के सूत्र में बान्धने की भारती की तीव्र आकांक्षा काव्य रूप का सहारा लेकर इस प्रकार प्रकट हो रही है—

"सिन्धु नदियिन् मिशै निलविनिले
चेर नन्नाट्टिळम् पेण्कळुडने
सुन्दर तेलुंकिनिल् पाट्टिसैत्तु
तोणिकळोट्टि विळैयाडि वरुवोम्"

—सिन्धु नदी में चाँदनी रात में हम चेर देश (केरल) की सुन्दरियों के साथ नौका-विहार करेंगे। वहाँ सुन्दर तेलुगु भाषा में मीठे गीत गाकर नौका चलायेंगे।

भावनात्मक एकता की काव्यात्मक अभिव्यक्ति भारती की कविताओं में बहुत ही सुन्दर ढंग से हुई है—

"गंगै नदिप्पुरत्तु कोदुमैप्पंडम्
काविरि वेट्रिलैक्कु मारु कोळ्वोम्
सिंग मराठियरतम् कवितै कोण्डु
चेरत्तु दन्तंकळ् परिसळिप्पोम्"

—हम कावेरी नदी के तट पर पैदा होने वाले पान देकर गंगा-तट पर पैदा होने वाले गेहूं से बने पकवान मोल लेंगे। वीररस-प्रधान मराठी कविताओं के रचयिताओं को केरल के हाथी-दात पुरस्कार स्वरूप प्रदान करेंगे।

उत्तर और दक्षिण, पूरब और पश्चिम आदि के भेद-भावों को मिटाकर समस्त भारतवर्ष के लोगों को एकता के सूत्र में बाँधने की कवि की प्रबल कामना काव्य-कल्पना का सहारा लेकर इस प्रकार प्रकट होती है—

"काशी नगर पुलवर् पेशुम् उरै दान
काँचियिल् केट्पदर्कुं ओर् करुवि चेय्वोम्
राजपुत्तानत्तु वीरर् तमक्कु
नल्लियर् कन्नडत्तु तंकम् अळिप्पोम्"

—काशी के विद्वानों के भाषणों को काँचीपुरम (मद्रास प्रान्त में) में रहते हुए सुनने की व्यवस्था करेंगे। राजपूत वीरों को कन्नड़ देश (मैसूर) का सोना पुरस्कार-स्वरूप प्रदान करेंगे।

कवि की इन सुन्दर कल्पनाओं में भारतवासियों को एक सूत्र में बाँधने की भावना ही मुखरित है। सुब्रह्मण्य भारती संपूर्ण भारत को (न केवल तमिल-प्रदेश को ही) अपना देश मानते हैं। भारतवासियों में एकता की आवश्यकता पर जोर देते हैं। देश का गौरव सब का गौरव है।

"मन्नुम् इमयमलै एंकळ् मलैये
मानिलमीदतु पोल् पिरिदिल्लैये !
इन्नरु नीर कंकैयारेंकळ् आरे.
इंकिदन् माणिपर्कु एतिरेदु वेरे. ?"

—यह महान् हिमगिरि हमारा है। संसार का दूसरा कौन-सा पर्वत इस की बराबरी कर सकता है? मधुर कल्याणदायिनी गंगा हमारी है। विश्व की कौन-सी नदी इसके समान है?

भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण कर भारती का मस्तक ऊंचा हो उठता है। गर्व के साथ वे गाते हैं—

"पन्नरुम् उपनिट नूलेंकळ् नूले
पारमिशैयेदोरु नूल् इदु पोले?
पूरण ज्ञानम् पोलिन्त नन्नाडु
पुत्त पिरानरुळ् पोंगिय नाडु"

—श्रेष्ठ वेद, उपनिषद्-ग्रन्थ सब हमारे ही हैं। इनकी समता करने वाला दूसरा कौन-सा ग्रन्थ है, संसार में? यह प्राचीन देश ज्ञान के लिए सर्वदा प्रसिद्ध रहा है। इस देश को ही महात्मा बुद्ध को जन्म देने का गौरव प्राप्त है।

स्पष्ट है कि भारती ने भारत के अतीत गौरव का स्मरण कर उसकी महिमा गायी है और भारतवासियों को अपनी कविताओं के द्वारा ऐक्य के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया है। "तायिन मणिक्कोडि" (मातृ-देश का सुन्दर झण्डा) शीर्षक कविता में भारती ने लिखा है कि विभिन्न भाषा-भाषी भारतवासी उस एक झण्डे के नीचे एकत्र होकर श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। "पवित्र तमिल-प्रदेश के विद्वान्, चेर देश (केरल) के वीर, दृढ चिंतन वाले तेलुगु भाषी, माता के पादों की पूजा करने वाले तुळु भाषी, कन्नड़ देश के ज्ञानी, युद्ध में यमराज को भी धमकी देने वाले महाराष्ट्रीय वीर, पंचनदी-तट पर वास करने वाले, विश्व में अमर कीर्ति प्राप्त राजपूत वीर, मर-मिटते वक्त भी मातृ-देश की रक्षा करने वाले बंगभाषी, ये सब मिल कर मातृ-देश के झण्डे की रक्षा करते हैं।" भारती ने भारतीय एकता को बनाये रखने का अमर संदेश दिया है। उनकी प्रत्येक कविता में भारत की भावनात्मक एकता का स्वर गूँज उठता है।

भारती यहां तक कह चुके हैं—"यह ठीक है कि इस देश में हजारों जातियाँ हैं। किन्तु हम विदेशी को यहां कैसे आने देंगे? एक ही माता के बच्चे आपस में लड़ें, तो भी भाई-भाई तो हैं!" भारती यह चेतावनी देते हैं—

"ओन्ट्र पट्टाल् उण्डु वाळ्वु नम्मिल् ओट्रमै
नींकिल अनैवरुक्कुम् ताळ्वे"
"मुप्पदु कोडियुम् वाळ्वोम्—वीळिल्
मुप्पदु कोडियुम् मुळुमैयुम् वीळ्वोम्"

—हम सब अपने को एक मानें, तभी जीवन सुख-मय होगा। यदि हम एक नहीं होंगे तो राष्ट्र का भविष्य खतरे में होगा। हमें इसको भली भांति समझ लेना चाहिए। अगर हमने यह प्रण कर लिया तो डर फिर किसी से नहीं, जीयेंगे तो हम तीस करोड़ (अब चवालीस) एक साथ जीयेंगे। मरेंगे भी तो हम एक साथ मरेंगे।

देश की एकता की आवश्यकता और उसके महत्त्व को उचित ढंग से व्यक्त करने के लिए भारती के उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त दूसरे शब्दों को ढूँढ़ निकालना कठिन है। भारत की भावनात्मक एकता को बनाये रखने का संदेश भारती की कविताएँ आज भी दे रही हैं।

—डा. एम. मलिक मोहम्मद

राष्ट्रीय कवि—

राष्ट्रीय कवि के रूप में महाकवि भारती का महत्त्व उनके 'देशीय गीत' से ज्ञात होगा। इस कविता-संग्रह में जो गीत संगृहीत हैं, उनमें भारती ने हमारे गौरवमय अतीत का यश गाया है, परतन्त्र भारत की दुर्दशा का चित्रण किया है, देश की विघटनकारी शक्तियों को नष्ट करके एक सङ्गठित समाज की स्थापना की आवश्यकता बताई है और अपनी ओजस्वी वाणी में जागरण का सन्देश सुनाया है।

भारती जानते थे कि जन-हृदय में देश के प्रति ममता उत्पन्न करना और उनमें सोए पड़े देशीय अभिमान को जगाना हमारी सबसे पहली आवश्यकता है। अतः अतीत की ओर ध्यान को आकृष्ट करते हुए कहते हैं—

एन्दैयुम् तायुम् महिष्न्दु कुलावि-
यिरुन्ददुमिन्नाडे, अवर्
मुन्दैयरायिरम् आण्डुहळ् वाष्न्दु
मुडिन्ददुमिन्नाडे, अवर्
चिन्दैयिलायिरमेण्णम् वळर्न्दु
चिरन्ददुमिन्नाडे, इदै
वन्दनै कूरि मनदिलिरुत्तियेन
वायुरवाष्त्तेनो, इदै
'वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्'
एन्ट्र वणंगेनो?

—देश यही है जिसमें मेरे
मात-पिता सानन्द बसे,
उनके भी जो पूर्व पुरुष थे
जीते मरते यहीं लसे।
उनके गहरे चिन्तन में नव
भाव सहस्रों थे विकसे,
वन्दन कर मन में रख इसको
यश नित गाऊँगा मन से।
'वन्देमातरम्' कहते-कहते
क्यों न करूँ मैं इसका वन्दन?

बाबू मैथिलीशरण गुप्त के समान भारती भारत की अतीत साधनाओं का स्मरण करते हैं—

पारुक्कुळ्ळे नल्ल नाडु मंगळ-भारत-नाडु।
ञानत्तिले परमोनत्तिले—उयर्
मानत्तिले अन्नदानत्तिले
गानत्तिले अमुदाह निरैन्द
कवितैयिले उयर् नाडु
तीरत्तिले पडै वीरत्तिले-नेंजिल
ईरत्तिले उपकारत्तिले
सारत्तिले मिहु शात्तिरंगण्डु
तरुवदिले उयर् नाडु—इन्द
पारुक्कुळ्ळे नल्ल नाडु—एंगळ भारत नाडु।

—अति समुन्नत है हमारा देश भारत विश्व में,
ज्ञान में, परमार्थ में, वर मान में, शुभ दान में,
गान में, मधुर-मधुर मंजुल काव्य के निर्माण में,
धैर्य में, दृढ वीर्य में, हृदय के अवदान में,
सार-गर्भित शास्त्र-ग्रन्थों के अनन्त विधान में,
अति समुन्नत है हमारा देश भारत विश्व में।

ऐसे महान् देश के घोर अधःपतन को और उनमें फैले हुए पारस्परिक वैमनस्य को देखकर भारतीय अत्यंत विक्षिप्त हैं। उनकी प्रगाढ वेदना 'भारत नाट्टिन तर्कोल निलैमै' (भारत देश की तत्कालीन दशा) 'एनदु नाय्नाट्टिन् मुन्नाट्पेरुमैयुम् इन्नाट्चिरुमैयुम्' (मेरी मातृभूमि का अतीत गौरव और तत्कालीन दुर्दशा) जैसी कविताओं में व्यक्त हुई है।

स्वतन्त्रता की अदम्य पिपासा—

इस दुर्दशा से भारत की मुक्ति के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति अनिवार्य आवश्यक थी और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए ऐक्य की स्थापना अपेक्षित थी। भारती ने देश-भर की जनता को जगाया और संगठित होकर आगे बढ़ने का आह्वान दिया। स्वतन्त्रता की महत्ता और लौकिक जीवन की तुच्छता दिखाते हुए भारती गाते हैं—

वीर सुदन्दिरम् वेण्डि निन्ट्रार पिन्नर
वेरोन्ट्रम् कोळ्वारो?
... ...
... ...
पिरन्दवर् यावरुम् इरप्पतुरुदियेन्नुम्
पेट्रियै अरिन्दारेल्—मानम्
तुरन्दरम् मरन्दुम् पिन उमिर् कोण्डुवाष्वदु
सुहमेन्ट्र मदिप्पारो?
मणियणिन्दिंगळै विरुम्बि सुदन्दिरत्तिन्

मायिवनैयिवप्पारो ?
कण्णिरण्डुं विट्रू चित्तिरम् वांगिनाल्
कैकोट्टिच्चिरियारो ?

—जिस मानव ने की हो
वीर-स्वतन्त्रता की ही अभिलाषा,
उसमें कैसे हो सकती है
अन्य किसी भी धन की आशा ?
'जन्म मिला, तो मरना भी है'—
इस यथार्थ को जिसने जाना,
होगा कैसे मान धर्म तज
सुखपूर्वक ही उसका जीना ?
करके इच्छा लोक-सुखों की,
स्वतन्त्रता को कौन तजेगा ?
नयनों को दे, चित्र खरीदें,
तो क्या इस पर जग न हँसेगा ?

भारती के ऐसे दर्जनों गीत आन्दोलन के समय नवयुवकों की जीभ पर रहते थे और सबकी धमनियों में उष्ण रक्त का संचार करते थे।

एकता की अभिलाषा—

देशीय एकता के बारे में और उस एकता को नष्ट करने वाली शक्तियों को विनष्ट करने के ध्येय से भारती ने जो-कुछ कहा है, वह आज भी भारतीय जनता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारती की स्वतन्त्रता राजनैतिक स्वाधीनता की परिधि के अंदर सीमित नहीं है। साम्प्रदायिक एवं प्रादेशिक वैमनस्य से मुक्ति तथा आर्थिक असन्तुलन से विमुक्ति के बिना भारती का मन सन्तुष्ट नहीं होगा। पर उन्होंने देखा कि धर्म और ईश्वर के नाम पर जनता के एक विराट् अंश को जीवन के मौलिक अधिकारों तक से वंचित किया जा रहा है। जाति-पांति का विरोध करते हुए भारती ने घोषणा कर दी—

मनिदरिल् आयिरम् जाति-एन्ट्र
वंचक वार्त्तैयै आप्पुवदिल्लै।

—शत-शत जातियां मनुजों में,
नहीं मानेंगे इस ढकोसले को।

भावी भारत की आदर्श-कल्पना करते हुए उन्होंने कहा—

एवैयेन्ड्रुम् अडिमैयेन्ड्रुम् एवनुमिल्लै, जातियिल्—
इषिवु कोण्ड मनिदरेन्बदिन्दियाविल् इल्लैये।

—दरिद्र और दास हैं यहां नहीं,
जाति में यहां न कोई नीच ही।

साम्प्रदायिकता की जो भावना सैकड़ों वर्षों की मान्यता पाकर हमारे समाज में रूढमूल हो चुकी थी और जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रत्येक व्यक्ति में शैशव में ही अंकुरित होकर बढ़ती थी, उसे नष्ट करना सरल कार्य नहीं था। भारती इसे अच्छी तरह जानते थे। इसलिए वे उठती हुई पीढ़ी के कोमल मन से ही जाति-पांति की भावना को दूर करना चाहते हैं। वे 'पाप्पा पाट्टु' (बालक-गीत) में एक अमूल्य आदर्श के रूप में उपदेश देते हैं कि जाति-पांति को मानना घोर पाप है; जो न्यायी और ज्ञानी हो जो प्रेम से लबालब मन रखते हों, वे ही सचमुच श्रेष्ठ हैं।

'भेरी-गीत' (मुरसु) में भारती ने विजय-भेरी को सम्बोधित करके जाति-पांति का विनाश करते हुए, समता एवं प्रेम का सन्देश फैलाते हुए बजने की अभ्यर्थना की है—

निहरेन्ड्रू कोट्टु मुरसे—इन्द
नीणिलम् वाषुबवरेल्लाम्।
तहरेन्ड्रू कोट्टु मुरसे—पोटमै
जाति वट्टुप्पिनैयेल्लाम्।

—'सम हैं सब' कह बज भेरी!
'जगती में जो रहते हैं।'
'तोड़ो सब' कह बज भेरी!
'जाति-विभाजन जितने हैं।'

प्रेम की भेरी ही भारती के लिए विजय-भेरी है। प्रेम ही वह मोहन-मन्त्र है जो हमारे दुःखों और विपत्तियों को दूर करेगा और हमें भौतिक ऐश्वर्य और मानसिक आनन्द प्रदान करेगा।

अन्बेट्रू कोट्टु मुरसे—अदिल्
आक्कमुण्डामेन्ड्रू कोट्ट
तुन्बंगळ यावुमे पोटटुम्—वेरुम्
चूतुप्पिरिवुकळ् पोनाल्
अन्बेट्रू कोट्टु मुरसे—मक्कळ्
अत्तनै पेरुम् निहराम्

इन्पंगळ् यावुम् पेरुहुम्—इंगु
यावरुम् ओन्डेट्र कोण्डाल् ।
—'प्रेम करो' कह बज भेरी !
शक्ति उसी में होती है ।
वैर-विरोध हटावेंगे
तो सब दुख मिट जावेंगे ।
'प्रेम करो' कह बज भेरी
मानव सब सम होते हैं ।
सबको सम जब मानेंगे
तब सब सुख बढ़ जावेंगे ।

समाज की साम्प्रदायिकता और विदेशी शासन ने सामान्य जनता को निरन्तर शोषण द्वारा अत्यन्त दरिद्र और रक्तहीन बनाया था। इस नृशंस शोषण-व्यवस्था को देख भारती की आत्मा तिलमिला उठती है और वे असीम आवेश से चुनौती देते हैं—

मनिदरुणवै मनिदर परिक्कुम्
वषक्कम् इनियुण्डो ?
मनिदर् नोह मनिदर् पार्कुम्
वाष्कैयिनियुण्डो ? —पुलनिल्
वाष्कैयिनियुण्डो ? —नम्मिलन्द
वाष्कैयिनियुण्डो ?
—मानव के खाने को मानव छीने—
आगे ऐसा भी क्या अक्रम होगा ?
मानव को दुखते ही मानव देखे—
आगे ऐसा भी क्या जीवन होगा ?
हममें ऐसा भी क्या जीवन होगा ?
जग में ऐसा भी क्या जीवन होगा ?

मानवमात्र की समता पर विश्वास करने वाले इस महाकवि ने भारत की नारियों को भी जाग्रत होकर समानाधिकार प्राप्त करने का सन्देश सुनाया है। हिन्दू-समाज ने अपनी रूढियों और परम्पराओं से समर्थित जो अविचल नियम बना रखे थे, उनमें नारी की समस्त मौलिक शक्तियां एकदम नष्ट हो गई थीं; उसकी सारी सर्जनात्मक दक्षताएं विवश होकर सर्वदा के लिए दब गई थीं। समाज के इस अत्याचार के प्रति भारती का धार्मिक रोष चरम सीमा में प्रकट हुआ है। उनकी 'पुदुमै पेण्' (नव नारी), 'पेण्गळ् विडुदलै' (नारी-स्वतन्त्रता) आदि कविताओं में जाग्रत होती हुई नारी की आत्म-शक्ति का मार्मिक चित्र उपलब्ध है।

भारती ऐसे ही भारत का स्वप्न देखते हैं जिसमें किसी भी प्रकार का विघटन न हो, सबल द्वारा निर्बल का शोषण न हो, पर सभी प्रकार के लोग समान अधिकार प्राप्त करके सुख-पूर्वक जीवें।

वाषि कल्वि शेल्वम्
एय्दि मनमहिष्न्दु कूडिये
मनिदर् यारुम् ओरु
निहर् समानमाह वाष्वमे
तादर एन्द्र निलैमै
मारि आण्गळोडु पेण्गळुम्
सरिनिहर समानमाह
वाष्वमिन्द नाट्टिले ।
—प्राप्त कर सम्पत्ति, विद्या
और मनके मोद को,
सब समान मनुज बन
मिले रहें इस देश में ।
नारियों की दासता की
रीति का भी नाश हो,
पुरुष नारी तुल्य हो
रहें पुनीत देश में ।

भारती की सबसे बड़ी महत्ता इस बात में है कि उन्होंने विभिन्न भाषाओं, धर्मों और आचार-विचारों से भरे भारत को एक देखा और भारतीय संस्कृति के वैविध्य में एक मूलभूत एकता को पहचाना। ऐसे ही भारत के प्रति उन्हें असीम प्रेम है। बालकों को भी वे इसी भारत से प्रेम करने का उपदेश देते हैं। 'पाप्पा पाट्टु' (बालक-गीत) में उन्होंने तमिष् नाडु के बालक को तमिष् देश को मान कर पूजने का उपदेश दिया है, तो भारत माता को देवी मानकर प्रतिदिन उसकी उपासना करने का आदेश दिया है। जिस दिन इस महान् स्वप्न-द्रष्टा के स्वप्न यथार्थ होंगे, उस दिन भारत सच्चा राष्ट्र बनेगा।

—डॉ० एस० एन० गणेशन

श्रीजगत्प्रिय

मानव और भारत की भावनात्मक एकता

इस पृथिवी को महज मृत जड़ तत्त्व का एक स्तूप मात्र समझना एक भूल है। इसका दृश्यमान रूप तो केवल इसका शरीर है। वस्तुतः उसकी अपनी एक पृथक् चेतना और व्यक्तित्व भी है। पृथ्वी का निर्माण भागवत कार्य को पूरा करने के विशेष लक्ष्य के साथ किया गया है। इसमें मानव समस्त सजीव आकारों की आदर्श मूर्ति है। पर वस्तुतः मानवीय जीवन को ही चेतना के क्रमिक विकास की चरम परिणति मान लेना भी न्यायसंगत नहीं। मनुष्य को अपनी चेतना को और भी अधिक उच्चतर धरातल पर ले जा कर प्रतिष्ठित करना है। जहां पहुंच कर उसके जीवन की संचालक व प्रेरक शक्ति मन न रह कर परम दिव्य-चेतना या शरीर की मूल अधिष्ठात्री आत्मशक्ति होगी। उसके द्वारा ही हमारे बाह्य एवं आन्तर जीवन का समग्र व्यवहार अनुप्राणित होगा। इस स्थिति में पहुंच कर स्वतः ही जीवन की परिभाषा, उसके मूल्य तथा अन्य सर्वविध मान्यताएं सभी-कुछ एक दम परिवर्तित होकर एक नवीन रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होगा।

श्रीअरविन्द ने अपने जीवन की एकान्त साधना में इसी परम सत्य का अनुसन्धान व आविष्कार करके इसे अतिमानस अवस्था का नाम दिया है। मानवीय इतिहास में यद्यपि कुछ तपःपूत महापुरुषों ने इस अवस्था को व्यक्तिगत तौर पर आंशिक रूप से अवश्य अधिगत किया है, पर इस प्रकार के दिव्य-जीवन के कुछेक गिने-चुने दृष्टान्त ही हमारे सामने आये हैं। सामूहिक रूप से इस दिव्य-जीवन को हस्तगत करने का सुझाव और उसके क्रियात्मक उपाय श्रीअरविन्द की संसार को सब से बड़ी आध्यात्मिक देन है। इसी तथ्य के प्रकाश में ही भारतीय या जागतिक भावनात्मक एकता विषयक उनके विशेष दृष्टिकोण का मूल्य भली-भान्ति आँका जा सकता है।

श्रीअरविन्द ने अपने जीवन-काल में जिन जगद्व्यापी आन्दोलनों या कर्मों का सूत्रपात किया, उन सभी का भारत की भावनात्मक एकता के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध है। उनकी क्रान्तिकारी विचारधारा का प्रथम लक्ष्य था, स्वाधीन व एकीभूत भारत को जन्म देना। श्रीअरविन्द सदृश अन्यान्य अनेक भारत माता के सपूतों के अपूर्व बलिदानों से मातृ-भूमि विदेशी दासत्व से मुक्त तो हुई, किन्तु विभाजन के रूप में इसका बहुत बड़ा मूल्य उसे चुकाना पड़ा। इस अधूरी स्वाधीनता का विश्लेषण श्रीअरविन्द ने स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार किया है।

'हिन्दुओं और मुसलमानों का पुराना साम्प्रदायिक वैमनस्य बद्धमूल होकर देश के स्थायी राजनीतिक विभाजन के रूप में जड़ पकड़ गया अवश्य प्रतीत होता है, पर इस स्वीकृत विभाजन को सदा के लिए अन्तिम रूपेण निर्णीत मान लेना दूरदर्शिता की बात नहीं।' श्रीअरविन्द की यह निश्चित धारणा थी कि 'यह एक अस्थायी उपाय के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं। क्योंकि इसके बने रहने में भारत न केवल भयानक रूप में दुर्बल ही होगा, अपितु अपंग भी हो सकता है। गृह-कलह की सम्भाव्यता उसमें सदा बनी रहेगी। इससे भी आगे बढ़कर नये आक्रमण के साथ पुनः विदेशी राज्य की प्रतिष्ठा तक हो सकती है। भारत की आन्तरिक समृद्धि तक रुक सकती है। राष्ट्रों के बीच वह अपनी स्थिति में दुर्बल हो सकता है। उसकी भवितव्यता कुण्ठित हो सकती है। यह सब बिलकुल नहीं होना चाहिए। अतः देर-सबेर में देश का विभाजन, जैसे भी हो, समाप्त होना ही चाहिए, और वह होकर भी रहेगा। अन्ततः यह एकता किसी-न-किसी रूप में सम्पादित अवश्य होगी। आशा रखनी चाहिए कि यह कार्य अपने स्वाभाविक रूप से सम्पन्न हो। न केवल शान्ति और मेल-मिलाप, अपितु पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता को समझ लेने के द्वारा यह साधित हो। भारत के भविष्य की

महत्ता के लिए यह आवश्यक है।'

उत्तुङ्ग हिमालय तथा समुद्र से परिवेष्टित भारत अपने अस्तित्व के साथ सदा ही एक विलक्षण जाति का घर रहा है। जिसकी सम्पन्न संस्कृति, जीवन-शैली एवं अन्य सर्वविध सामाजिक कला-कलाप दूसरों से एकदम भिन्न प्रकार का रहा है। तिसपर भी अपनी मूलभूत एकता में यह कभी विच्छिन्न नहीं हुआ। प्रत्युत जो भी कोई बाह्य तत्त्व इस के निकट आये, उन्हें इस ने अपनी उसी एकता के सांचे में एकीभूत कर डाला। अनेकविध तत्त्वों के एकीकरण तथा उन्हें एक केन्द्रीय चक्रवर्ती राज्यान्तर्गत अभिन्न राजनीतिक अखण्डता के सूत्र में पिरो कर सम्पूर्ण देश को राजनीतिक व सांस्कृतिक तौर पर एक कर देने की अनवरत प्रवृत्ति इसके इतिहास में दृष्टिगोचर होती है।

किन्तु देश की विशालता, यातायात के प्रचुर साधनों के अभावादि कारणों से भारत राजनीतिक रूप में कभी भी पूर्णतया एक नहीं बना। इस दिशा में महाभारत काल में श्री कृष्णचन्द्र ने एक बृहत् प्रयास किया था। युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ उसी की चरमावस्था का एक प्रतीक था। पश्चात् चाणक्य, सम्राट् हर्षवर्धन प्रभृति राजनेताओं ने भी इस लक्ष्य को साधने के लिए चक्रवर्ती आर्य-राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया। छत्रपति शिवा जी का स्वप्न भी कुछ इसी प्रकार का था। १९वीं शताब्दी में भारत के अन्दर ब्रिटिश साम्राज्य के पदार्पण के बाद अपनी सुविधा के लिए गौरांग-महाप्रभुओं ने भारत का कृत्रिम तौर पर पुनर्गठन किया। उन्होंने एक ही प्रकार के शासन-प्रबन्ध एवं अंग्रेजी भाषा के माध्यम से देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों में निकटतर पारस्परिक व्यवहार का स्वभाव-सा डाल दिया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के संघर्ष ने भी देश की एकता की आवश्यकता का पोषण ही किया।

किन्तु प्राप्त स्वतन्त्रता देश की अभीष्ट पूर्ण-एकता नहीं लाई। इसके विपरीत द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त के आधार पर जान-बूझ कर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के रूप में देश को विभाजित कर दिया गया। जिसके घातक परिणामों से हम भली प्रकार अवगत हैं।

आन्ध्र विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९४८ में 'राष्ट्रीय पुरस्कार' से सम्मानित होने के अवसर पर श्रीअरविन्द ने विश्वविद्यालय को प्रेषित अपने संदेश में "विभिन्नता में एकता" के सिद्धान्त को ही भारत की भावनात्मक एकता की प्रकृति और सत्ता के अनुकूल, उसके लिए सहज और सामान्य बताया था। इसके विपरीत ऐसे नियन्त्रित एकीकरण में, जिसके अन्दर नियत तथा एकसार राज्य-प्रबन्ध, भाषा, साहित्य, संस्कृति, कला, शिक्षा आदि एक ही माध्यम से संचालित हों, एकमात्र सच्ची एकता या राष्ट्र के दर्शन करना इस समय तो अव्यवहार्य है ही, किन्तु भारत के लिए यह वाञ्छनीय भी है, यह स्वयं ही एक विवादास्पद विषय है।

भारत के लिए इस समय जो गम्भीर प्रश्न उपस्थित हुआ है, वह यह है कि क्या उसे भी कुछेक प्रलोभक पथों का अनुसरण करना है? अपने समृद्ध वाणिज्य-व्यवसाय, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का प्रबल संगठन व अपरिमित सैनिक बल विकसित करके शक्ति-राजनीति के दांव-पेच खेलने में उच्चकोटि की सफलता हस्तगत करके अपनी प्राप्तियों और हितों की उत्साहपूर्वक रक्षा करते हुए संसार के विस्तृत भाग पर प्रभुत्व स्थापित करना है? प्रत्यक्ष गौरवशाली अभ्युदय में अपने स्वधर्म को त्याग अपनी आत्मा को खो देना है? दूसरे शब्दों में क्या वह अपने बाह्य-जीवन में अधिक निर्बाध रूप से उन्नति करे और अपने आध्यत्मिक ज्ञान की दृढ रक्षित ऐश्वर्य-राशि को सर्वथा खो दे।

इससे बढ़कर दुःखद व्यंग्य या आत्मप्रवञ्चना और क्या होगी कि भारत अपनी आध्यात्मिक पितृ-सम्पत्ति ठीक ऐसे समय में गंवा बैठे, जब कि शेष सम्पूर्ण संसार आध्यात्मिक सहायता और प्रकाश पाने के लिए उसकी ओर श्रद्धा और आशा के साथ झुक रहा है। ऐसा कभी नहीं होना चाहिए, और न ही होगा भी। परन्तु इसकी प्रबल आशंका जरूर है। यदि हमें भारत का सच्चा भविष्य चरितार्थ करना है, तो महान् आन्तर एवं बाह्य उद्धार व परिवर्तन, विशाल आन्तर और बाह्य विकास नितान्त आवश्यक है। भारत का निश्चित श्रेय इसी में सन्निहित है।

केवल अपनी ही पूर्वोक्त एकता को साधित कर

लेना ही भारत के लिए पर्याप्त नहीं। उसे अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार करते हुए एशिया-भर की समस्त जातियों के पुनरुत्थान तथा स्वातन्त्र्य की मंजिल भी तय करनी है। यह कार्य बहुत-कुछ हो चुका है, थोड़ा ही बाकी है। एशिया के हो रहे इस अभ्युदय और एकता के अन्दर भारत अपनी सामर्थ्य और योग्यता के साथ पूरा योगदान दे रहा है।

एकीकरण की इस विश्वव्यापिनी युग-प्रवृत्ति को भारत को केवल एशिया तक ही सीमित नहीं रखना, अपितु उसका लक्ष्य या स्वप्न तो एक ऐसे विश्वसंघ का निर्माण करना है जो मानव जाति के लिए एक उच्चतर, उज्ज्वलतर और उदात्ततर जीवन का बाहरी आधार निर्माण करे। समूची मानव जाति के संगठन के अधूरे प्रारम्भ को भारत ने पूर्ण बनाकर उसे प्रगति देनी है। यही वह कार्य है जिसे उसे करना है और इसके अन्दर उसने प्रमुख रूप से अपना भाग अदा करना प्रारम्भ भी कर दिया है। उसे विदित है कि यह एकीकरण, प्रकृति की आवश्यकता है। अनिवार्य गति है। सभी के हित के लिए यह अपेक्षित है। केवल मानवीय दुर्बलता और मूर्खतापूर्ण स्वार्थ ही इसमें बाधा पहुँचा सकते हैं। किन्तु ये सभी प्रकृति की आवश्यकता और भगवान् की इच्छा के विरोध में सदा टिक नहीं सकते। इस चरितार्थता के लिए केवल बाहरी आधार ही पर्याप्त नहीं हैं, अन्तरराष्ट्रीय भावनाओं और दृष्टि का विकास भी अवश्य होना चाहिए। अन्तरराष्ट्रीय रीति-रिवाज और ऐसी संस्थाएं भी उत्पन्न होनी चाहिएँ, जिन में एक साथ ही अनेक देशों का नागरिक होना, संस्कृति एवं सभ्यताओं का पारस्परिक ऐच्छिक दान-प्रतिदान स्वाभाविक रूप से होगा।

एकत्व की इस नयी भावना से मानव जाति के अभिभूत हो जाने के बाद ही भारत की संसार को आध्यात्मिक देन, जिसका प्रारम्भ पहले से ही हो चुका है, अपना वास्तविक रंग लाएगी और यह देवयजनी पृथिवी द्युलोक के समान ही बहुतायत से सुशोभित होकर स्वर्ग का रूप धार लेगी।

राष्ट्रिय ध्वज

[डा. हरिशंकर शर्मा]

झुम-झुम लहरे-फहरे प्यारा,
झंडा जीवन-प्राण हमारा।

त्रिगुण तिरंगा व्योम-विहारी,
शक्ति, शान्ति, आशा ध्रुवधारी,
जन-मन-मोहन मंगलकारी,
दिव्य ज्योति का स्रोत सितारा—
झंडा जीवन-प्राण हमारा।

जल, थल, नभ, भव पर फहराए,
तार-तार वैभव बरसाए,
लहर-लहर सन्देश सुनाए—
मिलती विजय त्याग-तप द्वारा—
झंडा जीवन-प्राण हमारा।

भारतीय जनता का जीवन,
अमर शहीदों का चिर चिन्तन,
श्रमिक, किसान, निर्धनों का धन,
'मानवता' का सबल सहारा—
झंडा जीवन-प्राण हमारा।

जन-जन जीवन, जन-जन वन्दन,
सुख-समृद्धि, शुचिता-अभिनन्दन,
पुण्य-प्रतीक, कुनीति-निकन्दन,
प्राण, त्राण, कल्याण हमारा—
झंडा जीवन-प्राण हमारा।

जीकर, मरकर मान बढ़ाएँ,
शान रहे जी-जान लड़ाएँ,
गौरव-गिरि पर चढ़ें-चढ़ाएँ,
निर्मल निर्भय भाव प्रचारा—
झंडा जीवन-प्राण हमारा।

भक्ति-भाव से सीस नवाएँ,
रक्षा-हित हम बलि-बलि जाएँ,
कोटि-कोटि कंठों से गाएँ,
अजर-अमर, अक्षय ध्रुवधारा—
झंडा जीवन-प्राण हमारा।

प्रा. व्रजदेवप्रसाद राय

अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में भावनात्मक एकता

वेदों में हम सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक सत्यों के प्रतिपादन पाते हैं, जिनकी महत्ता प्रत्येक युग एवं प्रत्येक देश के लिए श्रेयस्कर है। अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त में हमें मातृभूमि के प्रति अपार श्रद्धा एवं राष्ट्रीय-चेतना का आभास मिलता है,जिसमें संकुचित मनोवृत्ति नहीं है, राष्ट्र किसी वर्ग विशेष का नहीं है एवं सभी को मिल कर सुख और शान्ति के साथ रहने का पावन उपदेश है।

भावनात्मक एकता में सबसे बड़ी बाधा है वह वृत्ति जो विभिन्न देशों के निवासियों को एक नहीं मानती है। पृथिवी सूक्त के ऋषि ने इस धरती पर रहने वालों को 'मानव' कहा है, आर्य या अनार्य नहीं, माद्र, सैंधव, मागध, वैदर्भी या अन्य नहीं। क्या ही अच्छा होता यदि हम भारतवासी भी सभी भेदभावों को भूलकर अपने को केवल मानव कहते, जिस से एकता दृढ होती, उत्तर-दक्षिण, हिन्दू-मुसलमान, बंगाली-बिहारी, पंजाबी-मद्रासी एवं गुजराती-मराठी के भेद मिट जाते और सारा राष्ट्र एक रहता। भारत महामानव समुद्र है। पर इसमें जल अलग-अलग हैं, आवश्यकता है सारे बन्धनों को तोड़ कर मानव हो जाने की।

देश के प्रति प्रत्येक निवासी के सम्बन्धों की प्रकृति के बारे में इस सूक्त में एक अत्यन्त महत्त्व की बात कही गई है "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" तथा "पर्जन्य: पिता"। प्रत्येक देशवासी को समझना चाहिए कि यह धरती माता के समान है, जहां हम जन्म लेते हैं एवं जिसकी मिट्टी में पलते हैं, हवा में सांस लेते हैं तथा इसी धरती पर सुख-शान्ति से रहते हैं। माता तो अपना कर्त्तव्य कर देती है, पर पुत्र को भी कृतघ्न नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार हम अपनी माता की सेवा को परम कर्त्तव्य एवं परम पुण्यमय कार्य मानते हैं वैसे ही मातृभूमि के लिए भी हमें करना चाहिए। अगर हम इस सिद्धान्त को मान लें तो एक बहुत बड़ी समस्या हल हो जाती है।

हमें इस देश में प्रेम से रहना है, द्वेषभाव से नहीं, न तो किसी से द्वेष करना है एवं न किसी को नष्ट करने के उपायों को सोचना है (पृथिवी सूक्त १४)। अगर इन सब बातों पर हमने ध्यान दिया होता तो मातृभूमि का विभाजन नहीं होता एवं लाखों लोग बे-घरबार होकर कष्ट नहीं झेलते, नाना प्रकार की आपदाएं नहीं आतीं। अभी भी समय है, हमें सचेत हो जाना चाहिए एवं देश के जो विभिन्न वर्ग हैं, उन्हें पारस्परिक द्वेष त्याग कर प्रेम से रहना चाहिए, मानवीय भावनाओं के अनुसार। द्वेष भी विपत्तियों का द्वार हुआ करता है। भारत में विभिन्न वर्गों एवं धर्मों के लोग हैं, उनमें विचार वैभिन्न्य स्वाभाविक है। कभी-कभी द्वेष इतने उग्र होते हैं कि बहुत बड़े पैमाने पर सामूहिक हत्या आरम्भ हो जाती है, सैकड़ों मारे जाते हैं। यह महान् वध सामूहिक उत्पीडन एवं हत्या बहुत ही निकृष्ट हैं, इस लिए ऋषि कहते हैं, "वरीयो यावया वधम्" (पृथिवी सूक्त ३२) अर्थात् महान् वध को दूर करो। हमारे लिए यह एक अत्यन्त उपादेय उपदेश है, जिसके क्रियान्वयन से हम महान् उत्पीडन से बच सकते हैं। द्वेष से पारस्परिक मनोमालिन्य बढ़ते हैं, फलत: एक वर्ग दूसरे वर्ग का जन्मजात शत्रु बन बैठता है। पृथिवी-सूक्त का ऋषि इसीलिए बार-बार कहता है "मा नो द्विक्षत कश्चन" मुझसे कोई द्वेष न करे।

जब हममें एक-दूसरे के प्रति सद्भावना होगी तभी हम दूसरे से द्वेष नहीं करेंगे। सद्भावना को उत्पन्न करने में मधुर वाणी का बहुत अधिक स्थान है, फटे दिलों एवं शत्रुओं को भी इस से जोड़ा एवं अपना बनाया जा सकता है। इस सूक्त में इसी को ध्यान में रख कर कहा गया है "यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि" (पृथिवी-सूक्त ५८) यानी जो बोली मैं बोलूँ वह माधुर्यमयी हो। यही नहीं, इच्छित वस्तुओं की भी प्राप्ति के लिए क्रियाशील होना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है, तथा जो लोग भय उत्पन्न करते है उनका निराकरण करना चाहिए। मधुरा वाणी अगर हम बोलें तो धर्म, जाति, भाषा एवं अन्य चीजों को लेकर होने वाली क्षुद्र प्रवृत्तियों का नाश हो सकता है। इसी को हम विस्तृत अर्थ में लें तो इसकी तुलना हम अशोक की वचोगुति [वचोगुप्ति] (शिला लेख १२) या वाक्-नियन्त्रण से कर सकते हैं, जहां कहा गया है कि धर्मों के मूलतत्त्व की वृद्धि सर्वाधिक वचोगुति से होती है। यह वचोगुप्ति है, न तो अपने पक्ष की प्रशंसा एवं न तो दूसरे पक्ष की हीनता के बारे में कहना। यहां भी मधुरा वाणी की ओर संकेत है। हम मधुरा वाणी ही सर्वत्र बोलें, यही भावनात्मक एकता की जड़ है।

भाषा एवं धर्म को लेकर हमारी काफी क्षति हो चुकी है और आज भी हो रही है। भावनात्मक एकता में ये दो बड़े रोड़े हैं। इस सूक्त में कहा गया है कि विभिन्न बोलियों एवं भाषाओं को बोलने वाले एवं विभिन्न धर्मों को मानने वाले मनुष्यों को धारण करने वाली पृथिवी निश्चल होकर शांति से खड़ी रहने वाली गाय की तरह लोगों के लिए धन की सहस्रों धाराएँ प्रदान करे। (पृथिवी-सूक्त ४४)। इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिकूल अवस्था में भी हम, विभिन्नता रखते हुए भी, शांति से रह कर, समृद्धि की ओर अग्रसर हो सकते हैं। यही हमारे लिए सन्देश है।

देश में नृत्य एवं संगीत होते हैं, युद्ध होते हैं, दुःख भी होता है, तथा दुन्दुभि भी बजती हैं। ये राष्ट्र के अपने मामले हैं। पर हमारा पहला काम है शत्रु को देश से बाहर निकालना, क्योंकि अगर शत्रु हमारी सीमा में आ जाए तो राष्ट्रीय जीवन अव्यवस्थित हो जाता है (पृथिवी सूक्त ४१)। हर नागरिक का आदर्श ऊंचा होना चाहिए, श्रेष्ठ बनने का प्रयास करना चाहिए, शत्रुओं को दबाना चाहिए, इससे देश सबल होता है (पृथिवी सूक्त ५४)। देश का गुणगान सर्वत्र होना चाहिए, राष्ट्र की गौरवमयी कीर्ति एवं उपलब्धियों की कीर्ति-गाथा, गाँव, अरण्य, सभा, समिति एवं अन्य दूसरी जो जगहें एवं संस्थाएं हैं, उन सभी में होनी चाहिए (पृथिवी सूक्त ५६)। पृथिवी पर रहने वाले, चाहे वे किसी भी धर्म के क्यों न हों, समान हैं एवं उनकी उत्पत्ति का मूलस्थान भी एक है, यह धरती लोगों की रक्षिका है (पृथिवी सूक्त ५७)। जब तक देश में शांति नहीं होती, सुख-साधन की सामग्रियां नहीं रहतीं, अन्न-पान की जब तक समुचित व्यवस्था नहीं होती तब तक लोग सुखी नहीं हो सकते हैं (पृथिवी सूक्त ५६)।

यह सूक्त अन्तरराष्ट्रीय भावनात्मक एकता में बहुत सहायक हो सकता है। इसका एक-एक शब्द राष्ट्रीयता को दृढ करने वाला है। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कराकर इसका वितरण लोगों में किया जाए, जिससे लोगों में राष्ट्रीय-चेतना का संचार हो, वे भाषा, धर्म एवं वर्ण के निम्न धरातल से उठकर समान भाव से राष्ट्र के स्वर्णिम-पीठ पर बैठ सकें।

हमारे सामने बहुत-से महान् कार्य हैं, लेकिन मैं समझता हूँ कि सब से महत्त्वपूर्ण है—जनता की भावनात्मक एकता। विभिन्न तत्त्वों को मिला कर भारतीय राष्ट्र को एकताबद्ध करना है। जनता के सामने एक आदर्श के उन मूल्यों को रखना है जो उन्हें स्वयंप्रेरित बलिदान के लिए तैयार करें। यह आदर्श उन आधार-स्तम्भों पर नहीं टिक सकता जो प्रतियोगिता पर निर्भर हैं। पश्चिमी जीवन उन्हीं से तत्त्व ग्रहण करता है। इसकी जड़ें भारतीय विचार में जमी होनी चाहिएँ—जो एक-दूसरे पर निर्भर हो, जिसमें परस्पर सहयोग हो, सभी की भलाई के लिए।

—डॉ. सम्पूर्णानन्द

प्रा. पु. रामचन्द्रुडु

संस्कृत भाषा और साहित्य तथा भावनात्मक एकता

आज-कल "भावनात्मक एकता" इस शब्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हो रहा है, और ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो समझते हैं कि यह भावनात्मक एकता भी उन वस्तुओं में से है जो हमारे यहां के विदेशीय-पालकों की देन है। लेकिन विचार करने पर मालूम होगा कि यह हमारे लिए कोई नई वस्तु नहीं है, यह शब्द नया भले ही क्यों न हो।

हमारा सारा संस्कृत साहित्य इस बात का प्रमाण देता है कि हजारों वर्षों से यह भावनात्मक एकता हमारे पूर्वजों का ध्येय बनी रही है और इस को पाने में भी उनको कई बार सफलता मिली है।

भावनात्मक-एकता एक ऐसी सुनहली लता है जो भौगोलिक एकता रूपी सुक्षेत्र में पनपती है और अपनी पुष्टि के लिए सांस्कृतिक-एकता रूपी शीतल वारिधारा की अपेक्षा रखती है। जैसे हमारा पुराना साहित्य बताता है, इन दो चीजों की पहले से ही हमारे यहाँ कोई कमी नहीं है।

प्रायः हमारे सारे प्राचीन इतिहास और पुराण भारतवर्ष की भौगोलिक-एकता की मुक्तकण्ठ से उद्घोषणा करते हैं। उदाहरणस्वरूप श्रीमद्भागवत ले सकते हैं। पञ्चम-स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में हम भारतवर्ष के प्रायः सभी बड़े-बड़े नद-नदी और महाशैलों का नाम-निर्देश देखते हैं जो इस विषय को सिद्ध करता है कि भारतवर्ष, जो इन सब का निलय है, एक अखण्ड देश है।

भौगोलिक एकता के ऐसे प्रमाण श्रीमद्-रामायण और महाभारत में भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। श्रीरामचन्द्र जी के बाण से विद्ध होकर बालि नीचे गिरता है और उनकी निन्दा करता है कि बिना किसी कारण के अधर्मयुद्ध से उन्होंने उस को मार दिया, इसके प्रत्युत्तर रूप में भगवान् रामचन्द्र कहते हैं कि हम महाराज भरत के आज्ञानुसार उनके राज्य में धर्म की रक्षा के लिए संचार कर रहे हैं, और यह हमारा कर्त्तव्य है कि तुम जैसे धर्मपथ-च्युतों को दण्ड दें। वे कहते हैं—

"इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि।"

अयोध्या से लेकर सुदूर किष्किन्धा और इससे भी आगे तक एक ही अखण्ड साम्राज्य है, ऐसी भावना का तब भी अस्तित्व है।

पाण्डवों के दिग्विजय के प्रसंग में महाभारत के सभापर्व के पच्चीसवें अध्याय में बताया गया है कि युधिष्ठिर के चारों अनुज भारत के चारों प्रान्तों को जीतने के लिए गए थे।

'दिशं धनपतेरीशम् अजयत् पाकशासनिः।
भीमसेनस्तथा प्राचीं सहदेवस्तु दक्षिणाम्।
प्रतीचीं नकुलो राजन् दिशं व्यजयतास्त्रवित्।"

अर्जुन, भीमसेन, सहदेव, और नकुल ने क्रमशः उत्तरा, प्राची, दक्षिणा और प्रतीची दिशाओं को जीत लिया था। ऐसे संक्षिप्त वर्णन के बाद २६वें अध्याय से लेकर ३२वें अध्याय तक के सात अध्यायों में भारतवर्ष के सारे प्रदेशों का विस्तृत वर्णन किया गया है जो उसकी भौगोलिक एकता का ज्वलंत प्रमाण है।

आगे चल कर बहुत से काव्यों एवम् अन्य ग्रन्थों में भी इसी भावना का संकेत हम सुस्पष्ट रूप से देख सकते हैं। कविता-वधूटी का हास प्रसिद्ध नाटककार भास ने, जिसके नाटक कालिदास के भी गौरव के पात्र थे, अपने दो नाटकों के भरत-वाक्यों में धवल-हैमसुकुटालंकृत तुहिनगिरि से लेकर प्रशान्त हिन्दू महासागर तक के विशाल भू-भाग को एक ही अखंड देश के रूप में उपस्थित किया—

"इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥"

महाकवि कालिदास ने अपनी अमर कृति मेघदूत में तो रामगिरि से लेकर कैलास तक आर्यावर्त का सुन्दर शब्द-चित्र हमारे सामने खींचा ही है। लेकिन भारत की भौगोलिक एकता सम्बन्धिनी उनकी भावना और भी सुस्पष्ट रूप से उनके रघुवंश महा-काव्य में अभिव्यक्त होती है।

दिलीप के बाद भारत-महासाम्राज्य के मूर्धाभिषिक्त महाराज रघु दिग्विजय-यात्रा में निकल पड़ते हैं। इसी दिग्विजय-यात्रा का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास भारत देश की भौगोलिक एकता का सुस्पष्ट परिचय देते हैं। उत्तर-कोसल राजधानी अयोध्या से निकलकर महाराजा रघु पौरस्त्य जनपदों का आक्रमण करते हुए महासागर के तीर पहुँच कर सुह्मदेश को, जो वंगदेश के पश्चिम में था, अपने वंश में लाया। बाद में वंगदेश (आधुनिक बंगाल) उत्कल और कलिंग देश को जीत कर समुद्र के किनारे-किनारे दक्षिण की तरफ बढ़ा, कावेरी नदी को पार किया और पांड्य देश को अपने वश में लाया। इसके बाद मलय और दर्दर पर्वतों के मध्य के रास्ते से होकर निकला और केरल को भी जीत लिया। वहाँ से निकल कर मार्ग-मध्य के कोङ्कणादि देशों को जीतते हुए रघु स्थल-मार्ग से ही पारसीक देश पहुंचा और पारसीकों को परास्त किया। वहाँ से हिन्दूकुश पर्वत, पर्वत-प्रान्त के मार्ग से उत्तराभिमुख चल कर वंक्षु नदी, जो आज-कल की आक्सस् नदी है, के तीर पहुंचा और वहाँ के हूणों पर विजय प्राप्त की। उसके बाद कश्मीर के उत्तर-पूर्व दिशा में विद्यमान कांभोज देश और हिमालय की उपत्यकाओं के प्रान्त जीत कर, लौहित्या नदी को, जिसका दूसरा प्रसिद्ध नाम ब्रह्मपुत्रा है, पार कर कामरूप देश (आज का असम) पहुँचा। इस तरह कालिदास के अनुसार भारत देश आक्सस् से असम तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक विस्तीर्ण था और इसी अखण्ड भारत को एक छत्र की छाया में लाना सभी चक्रवर्तियों का एकमात्र ध्येय रहा। केवल कालिदास का ही नहीं, सभी संस्कृत कवियों और शास्त्रकारों के मानस-फलक पर लगभग भारत का यही स्वरूप चित्रित था और उसी चित्र को सामने रख कर उन्होंने अपनी रचनाएँ कीं। उदाहरण स्वरूप 'राजतरंगिणी' के रचयिता कल्हण ने भी ललितादित्य की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में भारत की उसी मूर्ति को, जो कालिदास के लिए मान्य था, हमारे सामने उपस्थित किया।

स्वर्गीय राजेन्द्रप्रसाद जी के शब्दों में "यह एक गलत धारणा है कि भारतवर्ष एक देश नहीं है, बल्कि अनेक देशों का बना हुआ एक महा देश है, जिस में एकता न है, न कभी थी, और न कभी होगी। आज हम इस देश की चौहद्दी भी ठीक नहीं जानते, यद्यपि ईश्वर ने उत्तर में हिमालय, पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर में पहाड़ों की श्रेणियाँ और बाकी सब तरफ समुद्र द्वारा इसकी हदबंदी कर दी है। द्राविड़ और आर्य चाहे एक-दूसरे से झगड़े हों, पर वे एक-दूसरे में इस प्रकार हिल-मिल गये कि उनका अलग अस्तित्व बहुत बातों में लुप्त हो गया।" ["संस्कृत और संस्कृति" पृ० १०८]

यह हुई भौगोलिक एकता। अब देखेंगे सांस्कृतिक एकता को जो हजारों वर्षों के संस्कृत-साहित्य में सुस्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हो रही है। हर-एक देश में कई नैतिक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक मान्यताएं होती हैं जिनके अनुसार वहाँ के लोग अपने जीवन-यापन को परम-ध्येय मानते हैं। इसी जीवन-विधान को हम उस देश की संस्कृति कहते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि भारत देश की भी अपनी संस्कृति है जो हजारों वर्षों से अविच्छिन्न रूप से चलती आ रही है। यह इस देश के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त है और उसका मूलस्रोत है संस्कृत भाषा। वेद, इतिहास और पुराण इस संस्कृति के मूल स्तम्भ हैं और इसीलिए वे अन्य सारे देश में पूज्य माने जाते हैं। वेदों का सस्वर उच्चारण, पठन-पाठन-क्रम, और विविध वैदिक कर्मों का विधान सुदूर दक्षिण में भी वैसे ही होता है जैसे कि सुदूर उत्तर में। इस पर बहुत से विज्ञ लोग भी बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हैं। इसी तरह रामायण, महाभारत और पुराण आदि की कश्मीर में भी वैसी ही मान्यता है जैसे कि सुदूर केरल में। आज भी किसी देवता की ऐसी पूजा नहीं हो सकती है जिसके प्रारम्भ में ही पूजा के जल में "गंगे च यमुने कृष्णे गोदावरि सरस्वति. नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु" कह कर सारी पुण्य नदियों

का आवाहन न किया जाता हो। जनन से मरण तक भारतीयों के सारे संस्कार संस्कृत से संबद्ध रहते हैं और कोई ऐसा मनुष्य शायद ही हो जिसके आचार-विचार संस्कृत-वाङ्मय से कुछ-न-कुछ प्रभावित न हों। इस तरह भारतीय संस्कृति और संस्कृतवाङ्मय हजारों वर्षों से ऐसे ओतप्रोत हैं कि इनका अलग करना कठिन ही नहीं असंभव भी है।

रामायण और महाभारत दो ऐसे महाग्रन्थ हैं जिन्होंने सैकड़ों वर्षों से सारे भारत देश में अपना गहरा प्रभाव डाला। ऐसा कोई भारतीय नहीं जिसका हृदय श्रीरामचन्द्र की सत्यपरायणता, सीता का पातिव्रत्य, भरत-लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति, हनुमान् का निस्स्वार्थ सेवा-भाव आदि से किसी-न-किसी समय विचलित न हो। सारे भारत में ऐसा कोई ग्राम, कितना ही छोटा क्यों न हो, नहीं है जिसमें भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम का पावन मन्दिर विराजमान न हो। ऐसी ही बात महाभारत की भी है। "महाभारत को उज्ज्वल चरित्रों का वन कहा जा सकता है। यह कविरूपी माली का यत्नपूर्वक संवारा हुआ उद्यान ही नहीं है जिसके प्रत्येक लता-पुष्प-वृक्ष अपने सौन्दर्य के बाहरी सहायता की अपेक्षा रखते हैं, बल्कि यह अपने-आप की जीवन-शक्ति से परिपूर्ण वनस्पतियों और लताओं का अयत्न परिवर्धित विशाल वन है जो अपनी उपमा आप ही है। मूलकथानक में जितने ही चरित्र हैं वे अपने-आप में पूर्ण हैं। भीष्म जैसा तेजस्वी और ज्ञानी, कर्ण जैसा गम्भीर वदान्य, द्रोण जैसा योद्धा, बलराम जैसा फक्कड़, कुन्ती और द्रौपदी जैसी तेजोदृप्त नारियाँ, गान्धारी जैसी पतिपरायणा, श्रीकृष्ण जैसा उपस्थितबुद्धि और गम्भीर तत्त्वदर्शी, युधिष्ठिर जैसा सत्यपरायण, भीम जैसा मस्तमौला, अर्जुन जैसा वीर और विदुर जैसा नीतिज्ञ चरित्र दुर्लभ हैं। मूल कथा को छोड़ भी दिया जाए महाभारत में वर्णित नल और दमयन्ती, सावित्री और सत्यवान्, कच और देवयानी, शर्मिष्ठा और चित्राङ्गदा आदि चरित्र संसार में बेजोड़ हैं।" ["संस्कृत और संस्कृति" पृ० ६२]

आश्चर्य की बात नहीं कि ऐसे गौरवास्पद महान् ग्रन्थों से प्रेरणा पाकर कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ और सहस्रशः महाकवियों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इन ग्रन्थों के कई अंश लिए और हजारों महाकाव्य, नाटक, चम्पू और गद्यकाव्य आदि की रचना की। इस साहित्य ने एक कोने से दूसरे कोने तक सभी भारतीयों के हृदयकमलों को एकता-भावना रूपी सूत्र में पिरो लिया।

जब प्रादेशिक भाषाओं का परिपूर्ण विकास नहीं हुआ तब संस्कृत ही ऐसी भाषा थी जिसके द्वारा सारे भारत में उच्चविचारों का विनिमय होता था। आज भी इसकी सार्वदेशिकता प्रत्यक्षसिद्ध ही है। इस लिए संस्कृत भाषा न उत्तर प्रदेश की भाषा है न द्रविड देश की, यह है भाषा भारत देश की। यह है भारत देश की एकता का जीता-जागता प्रमाण, इसीलिए यह भाषा सभी प्रान्तों में समान रूप से आदर पा सकती है। इसके ग्रन्थ सभी प्रान्तों के समादरपात्र बनते हैं, भले ही उनके रचयिता भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोग क्यों न हों। शंकर, रामानुज और मध्व के ग्रन्थ सुदूर प्रान्तों में भी उतने ही सम्मान के पात्र हैं जितना कि इन आचार्यों के जन्म-स्थान पर। गदाधर भट्ट भारतीयों का तार्किक शिरोमणि है न कि केवल वंग देश का। आलङ्कारिक-शिरोमणि आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त आदि कश्मीर के ही नहीं, सारे भारत देश के गर्व-कारण हैं। कालिदास को कई लोग भले ही अपने-अपने प्रदेशों की सीमाओं में बाँधने का प्रयत्न करें, लेकिन वह है सारे भारत का कविकोकिल। संस्कृत भाषा प्रादेशिकता रूपी बन्धन से दूर है। यह सारे भारत को अपनेपन से जोड़ती है और सभी प्रादेशिक भाषाओं से सगा-संबन्ध रखती है, और यदि यहाँ की कोई प्रादेशिक भाषा दूसरी भाषा से अपना संबन्ध सिद्ध कर सकती है तो इसी भारतव्यापिनी भाषा के द्वारा। इसीलिए सारी प्रादेशिक भाषाएं बिना किसी हिचकिचाहट के इससे सहायता ले सकती हैं, और यह भी अपना सारा भांडार खोल कर उनकी सहायता के लिए सदैव तैयार रहती है।

डॉ. वीरेन्द्रकुमार बड़सूवाला

भावनात्मक एकता : स्वरूप और सीमा

यह कहना असंगत नहीं कि आधुनिक युग मानववाद का युग है। सभी दार्शनिक ईश्वर, प्रकृति और विज्ञान की अपेक्षा आज मानव पर अधिक केन्द्रित हैं। शारीरिक सामर्थ्य और बाहरी पारस्परिक आर्थिक निर्भरता के सहारे मानव दूसरे मानव के व्यापारों में रुचि लेने लगा है, एक दूसरे से उदासीन होकर वह बैठ नहीं सकता। सामाजिकता के प्रांगण में विचरण करने वाले मानव का बुद्धि-कौशल विलक्षण है। विधाता की इस विलक्षण सृष्टि में अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य सामाजिक भावों के साथ जन्मा है। बुद्धि एवं मनन-शक्ति मनुष्य के विशिष्ट गुण हैं।

भावना (√भू सत्तायां-णिच्-ल्युट्-टाप्) ही मनुष्य का जीवन है। मनुष्य का व्यक्तिशः अस्तित्व उसके स्वयं के भावन-व्यापार पर ही निर्भर करता है। अन्यथा भावना-रहित पदार्थ तो चेतन-कोटि से निकल कर जडता के घेरे में चले जा सकते हैं। भावना एक महती शक्ति है। मानव के लिए वह ईश्वरीय देन है। स्वरूपतः व्यक्ति में अनेक भावनाएँ एवं अनेक भावनाओं के संज्ञान-केन्द्र हैं। भावनाओं की एक-स्वरता—एकतानता या एकाग्रता उसके अपने जीवन में अद्भुत कल्याण की प्रतिष्ठापिका होती है। लौकिक दृष्टि से मानव विभिन्न कल-पुर्जों से युक्त एक विशेष यन्त्र मात्र है। अनाज का चूर्ण बना देने में समर्थ, परन्तु निर्जीव पड़ी मशीन में जलीय-विद्युत्-प्रवाह कैसा अतुलनीय बल भर देता है? भावनाओं से भरा व्यक्ति भी यकायक वैसे ही क्रियाशील हो उठता है। उसमें अपार जीवन-बल आ जाता है। वह किसी एक दिशा में कुछ कर गुजरने के लिए मचल उठता है।

भिन्न व्यक्तित्व पर समाज का प्रासाद खड़ा होता है। मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना और सहज स्वार्थवश सामाजिक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न (विरोधिनी) भावनाओं (मत-मतान्तरों) का पनपना स्वाभाविक है। इस भाव-वैविध्य में ही असार संसार की सारता है। मानव और विशेष कर भारतीय मानव इस भाव-अनेकत्व में एकत्व की धारणा करता आया है। उसका इतिहास और संस्कृति इस बात के साक्षी हैं। 'भावनात्मक एकता' का अर्थ भावना से भरी अर्थात् सजीव एकत्व की भावना बनता है। विभिन्न भावों का ऐक्य इसका अर्थ नहीं, नाना भावनाओं में एकत्व की स्थापना ही इससे अभिप्रेत है। यह एक साधना की स्थिति है। ऐसी साधना व्यक्ति करता है और समझदार ऊर्ध्वंग समाज भी। तरह-तरह की भावनाओं का समुदाय व्यक्ति अपने उद्देश्य के अनुसार अपनी अपेक्षाकृत कम महत्त्व की भावनाओं को दबा कर—उन्हें विजित कर किसी एक प्रदीप्त भावोद्रेक में प्रगति करता है। भावनाओं का नियन्त्रण ही उसकी साधना है। इसी प्रकार जब किसी राष्ट्र के निवासी अपने विभिन्न सम्प्रदाय-भाषा-जाति के विचारों को भुला कर अपने को एक ही राष्ट्र के निवासी समझते हैं (खाली प्रदर्शन ही नहीं करते), उसकी रक्षा व उन्नति के लिए सर्वस्व होम करने को तैयार रहते हैं तो उनकी इस विशेष स्थिति को 'भावनात्मक एकता' की स्थिति कह सकते हैं।

अध्यात्मप्राण भारतीयों के लिए भावनात्मक एकता का पाठ कोई नया पाठ नहीं है। भारतीय संस्कृति और इतिहास इस विषय में मुखर हैं कि यहाँ नाना जातियों, विभिन्न मतावलम्बियों, भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों तथा भौगोलिक अनैक्य से युक्त होते हुए भी एक अद्भुत सामाजिकता एवं सांस्कृतिक एकमूलता का विकास हुआ। इस प्रकार की सांस्कृतिक एक-सूत्रता अन्यत्र दुर्लभ है। जिस-किसी ने भी भारतीय संस्कृति को अपनी संस्कृति और भारत को अपना देश मान लिया, वह विदेशी होता हुआ भी भारतीयों द्वारा समादृत हुआ। भारतीय-संस्कृति किसी भी विश्वास विशेष के लिए दुराग्रह नहीं रखती। वह सहिष्णुता,

स्वाधीन-चिन्तन एवं वैयक्तिक स्वतन्त्रता की संसार में सबसे बड़ी पक्षपातिनी रही है। चाहे आस्तिक रहो या नास्तिक, चाहे साकार की उपासना करो या निराकार की, चाहे एकदेववादी बनो या बहुदेववादी, किन्तु यदि तुम हिन्दू बने रहना चाहते हो तो तुम्हें हिन्दू-समाज से कोई निकालेगा नहीं। इतनी स्वतंत्रता अपने अनुयायियों को संसार के किसी देश, धर्म अथवा संस्कृति ने नहीं दी। भौगोलिक दृष्टि से उत्तर के हिम-मण्डित प्रदेश, दक्षिण के दहकते पठार, राजस्थान की मरुभूमि एवं कन्याकुमारी की सागरीय नीलिमा; जलवायु की यह विभिन्नता होते हुए भी एक ऐसी एकता है जिससे देश के प्रत्येक व्यक्ति का जीवन एक-दूसरे से संपृक्त है। माँ की गोद में मिमियाने से लेकर व्यक्ति के मरघट में पहुँचने तक ऊपर से कहीं-कहीं सर्वथा भिन्न प्रतीत होने वाले लौकिक संस्कारों में अद्भुत एकता व्याप्त रही है। आचार्य शंकर यद्यपि दक्षिण में उत्पन्न हुए किन्तु धार्मिक एकता की दृष्टि से उन्होंने चारों कोनों पर अपने मठ स्थापित किए। समस्त देश में शक्तिपीठों की कल्पना, विभिन्न धामों की यात्रा द्वारा सारे देश का भ्रमण, आसेतु-हिमाचल भूमि में अपनत्व की भावना—सभी तो एक ही लक्ष्य की ओर इंगित करते हैं। यही कारण है कि आज विचारक श्रीरामधारीसिंह दिनकर की यह सम्भावना सही है कि ऐसा लगता है; मानो विश्व की एकता को सम्भव बनाने के लिए, प्रकृति ने भारत-भूमि में एकता का प्रयोग किया हो। यदि भारत की सामाजिक संस्कृति सत्य है तो एक दिन विश्व-संस्कृति एवं विश्व-मानवता की कल्पना भी सत्य होगी। स्पष्ट ही भावनात्मक एकता की अट्टालिका व्यक्तिगत धरातल पर उभरी है; पर, फिर भी इसमें स्वदेश के ही नहीं विदेशों के भी—यही नहीं, यदि सम्भव हो तो विश्व-भर के मानवों के सुखद आवास की व्यवस्था है। इसीलिए तो यहाँ के मनीषियों का सिद्धान्त-वाक्य रहा है—

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अतीत-गौरव-गान ही पर्याप्त नहीं है। फिर अतीत में भी ऐसे अनेक दृष्टान्त दृग्गत होते हैं, जबकि इस प्रकार की विशिष्ट साधना में शैथिल्य आया। भ्रष्ट योगी दीन और दुनिया दोनों से जाता रहता है। मनुष्य की भावनाएँ व्यक्तिगत हित के लिए भी क्रियाशील रही हैं और देश-हित के लिए भी। भारतीय इतिहास में व्यक्तिगत हित व गौरव की भावना से उत्तेजित व्यक्तियों ने ही भारतवर्ष में मुगलों के साम्राज्य की स्थापना कराई। तदनन्तर भारतवर्ष के छोटे-छोटे राजाओं की व्यक्तिगत हित एवं थोथे गर्व की भावनाओं ने देश को अंग्रेजों का गुलाम बनाया।

ठीक है, भारत अब एक स्वतन्त्र धर्मनिरपेक्ष गणतन्त्रीय देश है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के मार्ग में अवरोध उपस्थित करने वाली विदेशी शक्तियों से लोहा लिया जा चुका। लेकिन, व्यक्तिगत स्तर पर दूषित हो चली 'भावनात्मक एकता' की साधना ने सन् १९६१ के आरम्भ से अजब रंग दिखाने शुरु किए।

ऐसा प्रतीत होने लगा कि भारत अब फिर से प्रान्तीयता और भाषावाद का शिकार होने को है। फूट डालने वाली प्रवृत्तियों के आगे वह घुटने टेकने वाला है। तब सब क्रियाशील भारतीय दलों ने परस्पर विचार किया और देश में और अधिक मात्रा में भावनात्मक एकता के संपोषण का कार्यक्रम निर्धारित किया गया।

परन्तु भारत में किस प्रकार की राष्ट्रीय एकता की कमी आ गई है? क्या यहां के वासियों में भारत के प्रति आस्था का अभाव हो गया है, क्या वे भारतीय नहीं रहे हैं, या इसका आशय यह है कि यहां के भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय आपस में घुल-मिल कर नहीं रहते और भारतीय सामाजिक जीवन के प्रति उनमें सहानुभूति का अभाव है? हमारा ख्याल है कि कोई भी महत्त्वपूर्ण एवं गण्य भारतीय सम्प्रदाय ऐसा नहीं जिसमें भारत के प्रति आस्था का अभाव हो।

तथ्य यह है कि प्रान्तीयतावाद, भाषावाद और साम्प्रदायिक तनाव ये ऐसी समस्याएँ हैं जो गणतन्त्र में सर्वत्र सुलभ हैं। विश्व-भर में कोई भी देश ऐसा नहीं जहाँ के वर्तमान निवासियों में राष्ट्रीय और भावनात्मक एकता पूर्ण रूप से विद्यमान हो। भारत में यह समस्या एकता या संगठन के अभाव से नहीं,

अपितु भारतीय समाज की बहुमुखी प्रकृति के कारण से उठी है। पिछले सात सौ वर्षों से भारत के समाज में हिन्दुओं और मुसलमानों के दो वर्ग प्रधान रहे हैं। राष्ट्रीय एकता से सम्बद्ध हिन्दु-मुसलमान-संबंध एक प्रधान समस्या है, क्योंकि ईसाई, पारसी, सिख आदि दूसरे वर्ग के लोग मुसलमानों जैसे अपने खास ऐतिहासिक अधिकारों का उल्लेख करने वाले नहीं हैं। प्रश्न हो सकता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य भावनात्मक या सामाजिक एकता हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए क्या सर्वथा अनिवार्य है? वस्तुतः किसी बहुमुखी समाज में विभिन्न वर्गों के समीकरण की अपेक्षा आवश्यकता है एक सर्वोपरि राष्ट्र के प्रति आस्था की और एक-दूसरे के आदर्शों के प्रति सहिष्णुता की। सामाजिक और भावनात्मक एकता का जहाँ तक सम्बन्ध है, पिछले ७५० वर्षों में, जब से मुसलमान भारतीय जीवन का अंग बने, किसी भी क्षेत्र में पूर्ण एकता के दर्शन नहीं हुए। कला, साहित्य, धर्म और संस्कृति में मिश्रण हुआ अवश्य, पर दोनों वर्गों का अस्तित्व मिलकर एक न हो सका। प्रान्तीयता का तत्व भी भारतीय एकता में बाधक रहा—ऐसा कहने को कहा जा सकता है। परन्तु यह ध्यान रहे कि कोई भी वास्तविक गणराज्य सच्ची एवं स्वस्थ प्रान्तीयता की भावना के अभाव में जिन्दा नहीं रह सकता।

पंजाब, गांगेय प्रदेश, बिहार, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र, तमिलनाड केरल, कर्नाटक आदि प्रान्तों को छोड़कर क्या हम भारतवर्ष की कल्पना कर सकते हैं? इनकी व्यक्तिशः विकसित भाषा-सम्बद्ध ऐतिहासिक संस्कृतियों और परम्पराओं की विशिष्टताओं की क्या उपेक्षा की जा सकती है? इनकी विभिन्नता हमारी कमज़ोरी का नहीं, समृद्धि का उद्‌घोष करती है। तथापि प्रान्तीय आभिजात्य-भावना अवश्य ही अमंगलकारी है और हेय भी।

भारत एक राजनीतिक गणतन्त्रीय संघ मात्र नहीं है। विभिन्न भाषाओं से सिंचित विभिन्न संस्कृतियों का संघ भी है।' सांस्कृतिक संघ में भी एक संस्कृति और समाज प्रधान स्थान ग्रहण करता है, परन्तु दूसरी समानान्तर संस्कृतियां (जैसे यहां मुसलमानी, ईसाई, पारसी आदि) भी आश्वस्त जीवन-यापन का अधिकार पाती हैं। उन्हें भी राष्ट्र से बराबर प्रोत्साहन मिलता है। भारत में ऐसी ही सामाजिक या भावनात्मक एकता का प्रसार हुआ है।

भावनात्मक एकता सच्चे अर्थों में व्यक्ति का ही नहीं देश का भी हित करने में समर्थ है। भावनाओं का रूप जैसे सीमित नहीं वैसे ही भावनात्मक एकता का क्षेत्र भी सीमित नहीं कहा जा सकता। मानव-हृदय भाव-सागर है। मनुष्य जब मनन करता है तब उसके मन में अनेक प्रकार की भावनाएँ उठती हैं। उनमें कुछ भावनाएँ तो मुकुलित होते ही आँख मूंद लेती हैं। परन्तु कुछ भावनाएँ प्रबल होती हैं। ये भावनाएँ जब तक परितुष्ट नहीं हो जातीं तब तक मनुष्य चैन से नहीं बैठ पाता। इनमें कुछ भावनाएँ व्यक्तिगत हित की होती हैं और व्यक्तिगत हित से सम्बद्ध होने के कारण देश के दूसरे मनुष्यों का समर्थन नहीं प्राप्त कर पातीं। परन्तु साथ ही मनुष्य में कुछ भावनाएँ ऐसी होती हैं जो देशोन्मुख होती हैं। ऐसी भावनाएँ देश के अन्य व्यक्तियों का आसानी से समर्थन प्राप्त कर देश-हित में पुरःसर होती हैं।

आकाश-सी असीम ये भावनाएँ प्रत्येक व्यक्ति में बिखरी रहती हैं और ऐसी सूरत में इनमें एकता न रहने के कारण देश-हित को नहीं कर पातीं। इनमें एकता न होने का एक कारण नेतृत्व या मार्ग-प्रदर्शन का अभाव है। परन्तु देश में प्रायः हर युग में कोई ऐसा व्यक्ति निकलता है जिसमें राष्ट्र-हित की भावना कूट-कूट कर भरी होती है और जिसमें मार्ग-प्रदर्शन का साहस भी होता है। ऐसा व्यक्ति अपने नेतृत्व में व्यक्तिशः बिखरी हुई राष्ट्रहित की सारी भावनाओं को एकत्र कर—उन सब अनुयायियों में राष्ट्रीय भावनात्मक एकता स्थापित कर देश का कल्याण करता है।

हम व्यक्तिगत जीवन में सम पर चल रहे हों या विषम पर, हमारी स्वदेशी स्थिति शान्त हो या हम क्रूर आक्रान्ताओं से ललकारे गए हों 'भावनात्मक एकता' देश और व्यक्ति दोनों के जीवनों में सोद्देश्य प्रगति के लिए एक अपरिहेय सम्बल है।

डा. रामानन्द तिवारी

राष्ट्रीय एकता के साधक और बाधक

मनुष्य का कुछ ऐसा स्वभाव है कि वह अभाव में ही चीत्कार करता है। भाव में वह सन्तुष्ट और निश्चेष्ट रहता है। स्वस्थ रहने पर हम स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं करते। किन्तु रुग्ण होने पर हम नीरोगता के लिए आकुल रहते हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक, दोनों प्रकार के, जीवन में मनुष्य का कुछ ऐसा ही हाल रहता है। जीवन के महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक तत्त्वों के बीच में भी मनुष्य का यह स्वभाव फलित होता है। उपनिषद्-काल में आत्मा की पुकार हुई। ऋषियों ने कहा—"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"। आत्मा की गहरी चर्चा और खोज हुई। पूर्ववैदिक-काल में समाज के साम्य-मूलक कृत्यों में आत्मा का भाव सहज रूप से सुरक्षित और फलित था। भाव की इस अवस्था में आत्मा की पुकार नहीं हुई, वरन् साक्षात् जीवन में आत्मभाव को चरितार्थ बनाने वाले वैदिक युग को वेदान्त के आचार्यों और आधुनिक विद्वानों ने स्थूल कर्मकाण्ड का युग कहा। उत्तरवैदिक-काल में जब साक्षात् जीवन में आत्मा का भाव कम होने लगा तो उपनिषदों में आत्मा की पुकार हुई।

हमारी स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता के प्रसंग में फिर मनुष्य का उक्त स्वभाव चरितार्थ हुआ है। प्राचीनकाल में जब हम स्वतन्त्र थे तब हम अपनी स्वतन्त्रता का आदर और उसकी रक्षा नहीं कर सके। पराधीन होने के बाद स्वतन्त्रता की पुकार हुई। यह भारतवर्ष का सौभाग्य है कि अनेक आन्तरिक और अंतरराष्ट्रीय शक्तियों के सहयोग से उसे स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। कुछ आन्तरिक शक्तियाँ और कुछ राजनीतिक संयोग मिलकर राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में भी इसी सौभाग्य को सफल बनाएं, ऐसी आशा करना हमारा कर्त्तव्य है। किन्तु राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में भी कुछ वैसी ही बात हुई है जैसी कि आत्मा और स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में घटी है। देश के विभाजन के बाद तथा स्वतन्त्रता के काल में अनेक विभाजक तत्त्वों के प्रकट होने पर एकता की पुकार हो रही है। युगों से एक भारत के लिए वर्तमान एकता एक समस्या बन गई है। कुछ विशेष राजनीतिक दृष्टिकोण और विशेष राजनीतिक स्वार्थ रखने वाले नेताओं ने ऐसी धारणा उत्पन्न कर दी है, मानो प्राचीन और मध्यकाल में किसी प्रकार की एकता नहीं थी। उन लोगों ने प्राचीन और मध्यकाल के उन पक्षों को अधिक ज़ोर दिया है जो एकता के विपरीत थे। ऐसे विषम तत्त्व समाज में सदा रहते हैं। कोई भी सामाजिक भाव परिपूर्ण नहीं होता। राजनीतिक दृष्टिकोण और राजनीतिक स्वार्थ के कारण ये लोग ऐतिहासिक भारत के उन तत्त्वों को महत्त्व देना नहीं चाहते जिनमें भारत की एकता के सुदृढ सूत्र और आधार निहित हैं।

कुछ नेताओं का यह दृष्टिकोण हमारी वर्तमान राष्ट्रीय एकता का सबसे अधिक बाधक तत्त्व है। भारत जैसे प्राचीन देश की वर्तमान राष्ट्रीय एकता के लिए इन पक्षों का प्रकाशन सब से प्रबल साधन बन सकता है। इन पक्षों के प्रकाशन में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इनमें वर्तमान भारतीय समाज के उन वर्गों का कोई योग नहीं है जो कुछ पिछली शताब्दियों से ही भारत में प्रकट हुए हैं और जो भारत में रह कर भी अनेक दृष्टियों से अपने वैदेशिक सम्बन्धों को प्रथम और प्रमुख मानते हैं। इन्हीं वर्गों के साथ पक्षपात की दृष्टि से अन्य लोग भी, जोकि उन पक्षों के पोषकों के वंशधर हैं, इन पक्षों की उपेक्षा कर रहे हैं तथा किसी अभिनव मरीचिका के मार्ग में राष्ट्रीय एकता का सूत्र खोज रहे हैं। एक समृद्ध संस्कृति के विधायकों की अपने वैभव के प्रति यह उपेक्षा इतिहास की सबसे अधिक शोचनीय विडम्बना है। इसी विडम्बना का परिणाम है कि आज एक भ्रष्ट दिशा में एकता का मार्ग खोजा जा रहा है।

राष्ट्रीय एकता की यह दशा वह है जिसमें भारतीय समाज के सभी वर्तमान वर्गों का सन्तोष और समाधान हो सके। यह समाधान इन वर्गों के संपूर्ण दुराग्रहों और अनाचारों के साथ इन वर्गों की वर्तमान

रूढ दशा में ही खोजा जा रहा है। इस समाधान को सम्भव बनाने के लिए इन दुराग्रहों और अनाचारों का शमन भी आवश्यक नहीं समझा जा रहा है। ऐसी भ्रान्तियों के कारण भारतवर्ष की प्राचीन एकता भूल रही है और वर्तमान एकता विशीर्ण हो रही है तथा भावी एकता दुर्लभ बन रही है।

भारत की राष्ट्रीय एकता का सबसे प्रबल साधक तत्त्व यह है कि कुछ शताब्दियों पूर्व तक कुछ विदेशी और विघातक तत्त्वों के आगमन के पूर्व भारतवर्ष में अनेक रूपों में एकता विद्यमान थी। पिछली शताब्दियों में भी वह एकता बहुत-कुछ बनी रही और आज भी वह एकता बहुत-कुछ वर्तमान है। एकता के इस प्राचीन, किन्तु सूखते हुए वटवृक्ष को ही सींचने की आवश्यकता है जिससे इस वटवृक्ष में दूसरी जड़ें निकल कर वे राष्ट्रीय एकता की एक अधिक व्यापक परम्परा का निर्माण कर सकें।

यह ठीक है कि प्राचीन काल में राजनीतिक दृष्टि से भारत एक नहीं था। इसके विशाल अंचल में अनेक छोटे-बड़े राज्य बनते और बदलते रहे हैं। विशाल देशों की राजनीतिक एकता एक अर्वाचीन उपलब्धि है। चीन और रूस के विशाल देशों में भी बहुत काल तक अनेक राज्य रहे। यूरोप के भूभाग में आज भी अनेक राज्य हैं। अमेरिका और आस्ट्रेलिया में किसी राज्य के अभाव में अर्वाचीन काल में विशाल राज्य स्थापित हो सके। राजनीतिक एकता न होते हुए भी प्राचीन भारतवर्ष में सांस्कृतिक और धार्मिक एकता थी। आज भारतवर्ष में राजनीतिक एकता स्थापित हो चुकी है, किन्तु सांस्कृतिक और धार्मिक एकता उपेक्षित और खण्डित होने के कारण वह राजनीतिक एकता कृतार्थ नहीं रही है। केवल राजनीतिक एकता अमेरिका और आस्ट्रेलिया जैसे अर्वाचीन इतिहासहीन देशों के लिए ही पर्याप्त हो सकती है। भारत जैसे प्राचीन देश की राजनीतिक एकता सांस्कृतिक और धार्मिक एकता की प्राण-प्रेरणा से ही सफल हो सकती है।

सांस्कृतिक और धार्मिक एकता के अभिप्राय को प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण से समझना होगा। पश्चिमी देशों में एकेश्वरवाद का प्रभुत्व है। वे एक ईश्वर, एक पैगम्बर, एक धर्मग्रन्थ आदि को मानते हैं और इसी को धर्म का सर्वोत्कृष्ट रूप समझते हैं। अनेकतावादी धर्मों को वे हीन और आदिम मानते हैं। उनकी एकता का अर्थ एकरूपता है। इन पश्चिमी देशों में धर्म के साथ-साथ वेष-भूषा आदि में भी एकरूपता है। एकता का आग्रह जीवों की प्राकृतिक इकाई के अनुरोध का जीवन में प्रतिफलन है। श्रेष्ठता के अभिमानी अपनी इस एकता की हीनता को समझने का प्रयत्न करें। यह एकरूपता प्राकृतिक इकाइयों के अनुरोध से भी हीनतर है। प्राकृतिक इकाइयों में इकाइयों के अनुरोध के साथ अनेकरूपता भी है। पशुओं और वनस्पतियों के जगत् में प्रकृति की इस अनेकरूपता का वैभव दर्शनीय है।

समाज और संस्कृति के क्षेत्र में एक साम्यपूर्ण अनेकरूपता ही सम्पन्न एकता का रूप है। एकरूपता एकता का दीनतम प्रकार है। भारतवर्ष में इसी साम्यपूर्ण अनेकता से सम्पन्न एकता की आराधना होती रही है। ऋग्वेद के "समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः" में इस साम्य का मूलस्वर मिलता है। भारत के विभिन्न प्रान्तों की वेष-भूषा, भाषा, खान-पान, रीति-रिवाज तथा विभिन्न धार्मिक मान्यताओं के साम्य में यह सम्पन्न एकता पलती रही है। इसके साथ-साथ कुछ एकता के अधिक व्यापक सूत्र भी रहे हैं, जिन्हें राष्ट्रीयता के चक्र की अनेकरूप अराओं की नाभि कहा जा सकता है। मनुष्य का आदर, विवाह की पवित्रता, अविरोध, अनाक्रमण, सहिष्णुता, सद्भाव, परमत का आदर, परदेवता का आदर, पर-ग्रन्थ का आदर आदि इस नाभि के सिद्धान्त-सूत्र हैं। विवाह का उत्सव, दीपावली का दीपोत्सव, होली का रंगोत्सव, रक्षाबन्धन आदि इस एकता के साकार विधान हैं। इसके धार्मिक संश्लेषों को छोड़ कर इनके शुद्ध सांस्कृतिक भाव एवं रूप उक्त सिद्धान्तों के सहयोग से भारत की अर्वाचीन एकता के सुदृढ सूत्र बन सकते हैं।

धर्म, भाषा आदि के विरोधों को सांस्कृतिक एकता के सौन्दर्य में समाहित किया जा सकता है। भाषा का प्रश्न कई भ्रान्तियों से उलझ गया है। वह भाषा के सम्बन्ध में अनारोपण, अनाग्रह, अत्वरा, आदि के उदार दृष्टिकोण से सुलझाया जा सकता है। भाषा

की एकता की पुकार भी अभाव में ही हो रही है। उदारता और आदर के साथ अनेक भारतीय भाषाओं की अराओं के बीच छत्रदण्ड की भान्ति राष्ट्रभाषा का विकास हो सकता है। वृक्ष के स्तम्भ की भान्ति वह अन्य भाषाओं की शाखाओं का धारण और पोषण कर सकती है। धार्मिक एकता उस रूप में भारतीय एकता के लिए आवश्यक नहीं है जिस रूप में पश्चिमी समाज उसे देखते हैं। भारतीय परम्परा में एकता का अर्थ केवल अनेकता का सामञ्जस्य है। ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी एकता का अनुरोध भारतीय विचार में नहीं मिलता। उस ब्रह्म को भी एक कहने में ऋषियों ने संकोच किया है। ब्रह्म को एक कह कर उसे तत्काल 'अद्वितीय' कह कर संशोधन किया है। ब्रह्म का अर्थ एकता नहीं, आत्मा का अद्वैतभाव है। पश्चिम की ओर देखने वाले भारतीय वर्ग ही धार्मिक एकता में कठिनाई देखते हैं और कठिनाई उत्पन्न करते हैं। एकरूपता अन्य रूपों को मिटा कर ही सम्भव हो सकती है। पश्चिमी समाजों ने इसका प्रयत्न भी किया, किन्तु वे इसमें सफल नहीं हो सके। जहाँ के धर्म, संस्कृति और समाज दुर्बल थे वहाँ वे सफल हो सके। भारतवर्ष उनकी असफलताओं का एक महान् और विशाल क्षेत्र है। इसीलिए वह उनकी आँखों में अखर रहा है।

भारतीय परम्परा के अनुसार किसी प्रकार की भी एकता के लिए एकरूपता आवश्यक नहीं है। अनेक धर्म-सम्प्रदाय साम्य के साथ भारत में पलते हैं। अनेक देवता, ग्रन्थ, आचार्य आदि भारत में पूजित रहे हैं। इसमें प्रायः परस्पर विरोध नहीं रहा। मनुष्य-स्वभाव की विवशता से कुछ विरोध हुआ भी तो उसका अन्त साम्य और सामंजस्य में ही हुआ। इस साम्य और सामञ्जस्य के लिए दूसरों की धार्मिक स्वतन्त्रता और उनकी धार्मिक आस्था का आदर अपेक्षित है। एकेश्वरवादी पश्चिमी समाज इसके विपरीत आरोपण और प्रचार को अपना प्रबल धार्मिक कर्त्तव्य समझते रहे हैं। भारतीय धारणा के अनुसार आरोपण और प्रचार सबसे अधिक अधार्मिक कृत्य हैं। भारत के धार्मिक नेताओं ने इन्हें नहीं अपनाया। इसलिए भारतीय धार्मिक परम्परा सबसे अधिक धार्मिक है। पश्चिमी समाज धर्म के आरोपण और प्रचार के लिये आक्रमण और नरमेध को भी उचित मानते रहे हैं। इन पश्चिमी समाजों के भारतीय बंधुओं की ऐसी उग्र धारणाएँ भारतीय एकता की सबसे बड़ी कठिनाइयाँ हैं। इन धारणाओं के रहते हुए भारतवर्ष में वास्तविक एकता का स्थापन कठिन है। भारतवर्ष जैसे देश में, जिसमें धर्म, जाति, भूषा, भाषा आदि अनेक क्षेत्रों में अनेकरूपता है, उदारता, सहिष्णुता, अनारोपण, अप्रचार आदि के आधार पर ही एकता सम्भव हो सकती है। इस एकता का रूप एकरूपता न होकर अनेकता का सामञ्जस्य होगा जिसे भारत सदा आदर देता रहा है। एकता के उक्त बाधकों की घातक प्रवृत्तियों का पोषण करने वाले वर्ग अपनी संकुचित नीति को उदारतापूर्वक छोड़ने के लिए तैयार होंगे। इन्हें तैयार करने के लिए शेष समाज और सरकार को दृढता और उदारता दोनों का मार्ग अपनाना होगा।

भारतीय एकता के इन बाधक तत्त्वों का समाधान एकता का केवल निषेधात्मक रूप है। उसको भावात्मक रूप देने के लिए साधक तत्त्वों की आराधना करनी होगी। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण साधक तत्त्व भारतीय इतिहास के गौरवमय तथ्य, भारत की भूमि के गौरवमय स्थल और भारत की संस्कृति के महिमामय रूप हैं। शिक्षा और व्यवहार में इन साधक तत्त्वों को गर्व के साथ अपनाना होगा। हमारे समाज और हमारी सरकार का इन तत्त्वों की ओर इतना श्रद्धामय भाव नहीं है कि राष्ट्रीय एकता की प्रेरणा बन सकें। इसमें भी पश्चिम की ओर देखने वाले वर्गों का संकुचित आग्रह तथा समाज और सरकार की दृष्टि में इस आग्रह का अनुचित आदर बाधक है। किन्तु जब तक भारत के चिरंतन गौरव के ये प्रतीक समस्त भारतीय जनता के मन-मन्दिर में पूजित नहीं होंगे तब तक भारतीय एकता एक कठिन कल्पना ही बनी रहेगी। इन महिमामय प्रतीकों की प्रेरणा ही समस्त भारतीयों के हृदयों में साम्य का स्वर जगाकर राष्ट्रीय एकता का जयनाद बनेगी और राष्ट्रीय प्रगति के अभियान का मंगलाचरण रचेंगी।

प्रा. चन्द्रशेखरन नायर

युग-संगम

(प्रथम दृश्य)

[पाताल लोक। बलि का विशाल भवन। सुन्दर कलात्मक साज-सज्जा। एक मूर्त्ति-शिल्प, जिसमें वामन और बलि का मिलन-दृश्य अंकित है। पुराण-कथाओं से सम्बन्धित अनेक चित्र यत्र-तत्र दीखते हैं। अनेक बत्तियों वाला एक बड़ा दीपक जल रहा है। भवन दीपमालाओं से अलंकृत है। समय द्वापर।

दो सुन्दर युवक खड़े हैं, जो श्रीकृष्ण के जैसे मालूम होते हैं। उनकी जैसी शक्ल-सूरत और वैसा ही वस्त्र-धारण। दोनों भाई हैं।]

पहला—क्यों भाई, आज यह अचानक साज-सज्जा क्यों है? कुछ मालूम है?

दूसरा—क्या भाई ने कुछ नहीं सुना? जब मैं अभी-अभी शिकार से लौटा तो सुना कि आज मर्त्यलोक से भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं। उनके स्वागत-सत्कार में पिताजी लगे हुए हैं।

पहला—तो खूब रहा; क्या तुम उनसे नहीं मिले?

दूसरा—नहीं तो। मैं अभी स्नान करके वस्त्र बदल कर आ रहा हूँ। आप क्यों इतने व्यग्र मालूम होते हैं?

पहला—भाई, मुझे बड़ी आशंका है, आज भी कुछ अनिष्ट होने की सम्भावना है।

दूसरा—अनिष्ट?

पहला—हां, बड़ा ही अनर्थ हो सकता है। (बलि और वामन के मूर्त्ति-शिल्प को दिखाते हुए) क्या तुम उस शिल्प को देखते नहीं?

दूसरा—हां, देखता हूँ।

पहला—उसमें छल-कपट का जो भाव प्रकट है उसका रहस्य जानते हो?

दूसरा—नहीं तो। छल-कपट का क्यों?

पहला—भाई, तुम हमेशा की तरह इसके बारे में भी हम भाइयों से मत-भेद रखते होगे। सुनो, हमारे पिताजी ने जब वचन दिया कि आपको तीन पग भूमि हम दे देंगे तब वामन ने पिताजी के सत्य-वचन का अनुचित लाभ ही उठाया।

दूसरा—वह कैसे?

पहला—वामन ने अन्य सभी भुवनों को दो पगों में नाप लिया और तीसरे पग को पिताजी के सिर पर रखा तभी तो हम इसी अधोलोक में पड़ गए हैं। क्या यह बड़ा अन्याय नहीं है?

दूसरा—रहे। इन सब कथाओं से क्या होता है? मुझे ऐसी कथाएँ पसन्द ही नहीं। इसलिए मैंने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। अस्तु, अब क्या अनर्थ हो सकता है? आपका क्या मतलब है?

पहला—भाई, जिस वामन ने हमारे पिताजी को इस प्रकार नीचा दिखाया है वही अब श्रीकृष्ण के रूप में मर्त्यलोक में कुचक्र करते फिरते हैं। उनके नाम से सभी नरेश भय-चकित हैं और अब भूमण्डल में इने-गिने नरेश ही शेष रह गए हैं, बाकी सबको इन्होंने मरवा डाला।

दूसरा—हाँ याद है, एक बार पिताजी ने कहा था कि अब मर्त्यलोक में कुरुक्षेत्र-युद्ध चल रहा है। वे उसे देखने के लिए जाने वाले थे।

पहला—हाँ, याद है न? उस युद्ध के बाद अब मर्त्य-लोक की दशा बड़ी ही करुण जान पड़ती है। कृष्ण ने इस युद्ध में भी न-जाने कितने वीरों को मरवा डाला है। धर्म-युद्ध के नाम पर बड़ा अधर्म ही उन्होंने स्वयं किया-कराया है।

दूसरा—तब यहाँ भी हमारे पिताजी से बदला लेने आए होंगे। यही आशय है न?

पहला—पिताजी का उनसे कोई विरोध नहीं। इस बार किस तरह का अनर्थ होने वाला है, यह कहना कठिन है। हाँ, ये कृष्ण बड़े ही कुशल जादूगर हैं।

दूसरा—भाई, तब आपके मन में कौन-सी शंका है, इनके आगमन से ?

पहला—वे किसी असाधारण बात पर कोई नयी व्याख्या रच कर यहाँ आए होंगे। पिताजी इनके पूरे भक्त बने हैं। अब उनके पीछे से पल-भर के लिए भी नहीं हटेंगे। जो चाहे, दे देंगे। लेकिन, हम इसे सारी शक्ति लगाकर रोक लेंगे। याद रहे, मेरी आज्ञा तुम छहों भाइयों को पूरी-पूरी माननी पड़ेगी। हम सब मिलकर इनके अन्याय को रोकेंगे।

दूसरा—पर वे अन्याय करने के लिए आए हैं, इसका क्या प्रमाण है ?

पहला—प्रमाण तो अनुभव है। जैसा मैं उनको जानता हूँ, तुम नहीं जानते। तुम संभल कर रहो। जब उनसे मिलोगे, उनके प्रलोभन में न पड़ो। फिर मैं देख लूंगा।

दूसरा—यह कैसे हो सकता है ? कोई माननीय अतिथि घर पर आवें तो उनसे हम पृथक् मन लेकर कैसे रह सकेंगे ? अतिथियों का सेवा-सत्कार करना हमारा धर्म है।

पहला—तब तो हो चुका, भाई, मेरा मतलब यह है, तुम अतिथि-सत्कार करो, पर उनके प्रलोभन में न पड़ो। किसी से अधिक ममता-सम्बन्ध रखना अनर्थ का कारण बन जाता है। हाँ, मेरी यह राय है, तुम खूब सोच-समझकर उनसे मिलो।

[एक दानव भृत्य का प्रवेश। वंदना करके]

भृत्य—महात्मन्, भगवान् के मनोरंजन के लिए एक नाटकाभिनय का प्रबन्ध कराना चाहिए। राजाधिराज पिताजी की आज्ञा है। निश्चित समय पर भगवान् पिताजी के साथ सभा-मंडप में आ विराजेंगे।

पहला—(सोचता है) हाँ, पिताजी को बताओ, इसका प्रबन्ध किया जा रहा है। (भृत्य वंदना करके जाता है)।

पहला—भाई, आज हमारा दिन है। नाटक हम स्वयं खेलेंगे। अच्छा चलो, अब समय नहीं है।

[दोनों जाते हैं और उनके जाने पर बलि श्रीकृष्ण के साथ प्रवेश करते हैं]

कृष्ण—सखा, भाइयों के दर्शन के लिए मेरी आँखें तरस रही हैं। क्या वे अभी तक नहीं आए ?

बलि—भगवन्, आपका मन इतना कोमल है ! आपके भाई सुशिक्षित हैं। वे इस लोक पर सत्य का शासन करते हैं।

कृष्ण—धर्मावतार बलि, आप जहाँ रहते हैं वहाँ आपका पूरा-पूरा प्रताप है। स्वर्ग में भी इतनी शक्ति प्राप्त नहीं होती। यह कैसा अद्भुत है।

बलि—प्रभो, सब आपकी कृपा है। जो-कुछ करता हूँ आपके चरणों पर समर्पित करके। इसलिए, मेरे लोक मे स्वार्थ के लिए स्थान ही नहीं।

कृष्ण—हाँ, यह मैं खूब जानता हूँ, यह सारा ब्रह्माण्ड सत्य के बल पर टिका हुआ है। और मैं भी उसी सत्य के आकर्षण से कर्म-रत हूँ। सत्य वह भावना है, जिसमें लौकिक और अलौकिक सारे गुण अन्तर्हित हैं।

बलि—भगवन्, आपके वचन कितने रहस्यमय हैं ! उस दिन, जब आपका चरणारविन्द मेरे सिर पर पड़ गया, मानो मैंने तीनों लोकों का धन उठा लिया था। मेरा अन्तःकरण किसी दिव्य प्रभा से जगमगा उठा। मुझे लगा, इस शरीर को अब किसी वस्तु की चाह नहीं हो सकती। अपूर्व गुरुता से मैं अनुगृहीत हो गया। मुझसे बढ़कर इस संसार में कौन भाग्यवान् हो सकता है। स्वामिन्, उस दिन मेरा सारा अहम् विलीन हो गया।

कृष्ण—चिरजीवी, आप तो महान् हैं, इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है। अपने कर्म से कोई महान् या हेय बनता है। आप मेरे लिए प्रिय बन्धु हैं। आपसे बढ़कर कोई दूसरा विश्वासपात्र जगत् में और कौन हो सकता है ? मैंने अपने भाइयों को आपकी ही देख-रेख में छोड़ दिया था। यही इसका प्रमाण है न ?

बलि—दयामय, आपने यह अवतार लेकर मर्त्यलोक को आश्चर्य-स्तब्ध कर दिया है। आपका व्यक्तित्व अब अनेकों युग तक वर्णोज्ज्वल बना रहेगा।

कृष्ण—प्यारे, बौद्धिक युग का प्रारम्भ हुआ है। तब अवतार भी उस योग्य रहना चाहिए। महाभारत

का मायक होने के कारण अन्य अवतारों की अपेक्षा मुझमें अनेकविध व्यक्तित्व पाया जा सकता है। मेरे बहुरंगे व्यक्तित्व की व्याख्या आने वाले युगों में ही पुष्ट होती जायगी। मगर कोई भी भाष्यकार ऐसा नहीं मिलेगा जो मुझे सम्पूर्ण रूप से देख पाने में समर्थ हो।

बलि—भगवन्, मुझे डर है कि भविष्य में अश्वत्थामा के घृणित कर्म की पुनः-पुनः आवृत्ति होती रहेगी। क्या आप उन महान् नाशों से संसार को बचा नहीं सकते ?

कृष्ण—मैंने भी कई बार वह प्रश्न स्वयं अपने से किया है। लेकिन, इसका समाधाम करने में मैं भी असमर्थ हूँ। हाँ, अपनी इच्छा-शक्ति को मनुष्य यदि स्वार्थमय दिशा में कभी न मोड़े, तो कोई अनर्थ नहीं हो सकता। ब्रह्मशिरा के अनुचित प्रयोग का फल संसार ने देख लिया है। यह पाठ संसार कभी न भूले।

बलि—भगवन्, गीता का सयुक्तिक उपदेश देकर आपने बुद्धिवादी कलियुग के लिए भी चेतावनी दी है।

कृष्ण—हाँ, गीता भावी नाशोन्मुख वृत्तियों के लिए चेतावनी है। कलियुग में इसका पठन-पाठन अधिकाधिक होता जायगा। पर उसका अनुसरण करने वाले विरले ही मिलेंगे।

बलि—क्या ऐसा कोई महान् हो सकता है जिस में आपका अवतार-कार्य भी निबट जायगा ? मुझे यह रहस्य आपके मुँह से सुनने की बड़ी इच्छा है। यदि··· ···

कृष्ण—(मुस्कराता है) भाई, यह बड़ा ही गूढ प्रश्न है और इसका उत्तर भी है उतना ही गूढ।

[शुक्राचार्य का प्रवेश। कृष्ण की वंदना करता है]

शुक्राचार्य—प्रभो, आपको कलियुग में अपने अंशावतार का कार्य निभाते हुए बड़े कष्ट का अनुभव होगा। अंत में निराश भी होना पड़ेगा।

कृष्ण—(अविचल होकर) इससे क्या आचार्य जी, संसार अधिकाधिक जटिल होता जा रहा है। वहाँ सज्जनों को निराश होना ही पड़ेगा। पर इससे मुंह मोड़े, तब न ? मगर कलियुग में भी सत्य की आराधना पूर्वाधिक होगी।

शुक्रा—क्षमा हो, उस सत्य का निर्वाह करने में ही आपको निराश होना पड़ेगा। सत्य के दर्शन के लिए अहिंसा का प्रचार किया जायगा। पर, हिंसा का कठिन प्रहार उसका पुरस्कार रहेगा। भगवन् आपने जिस दिन बलि की सत्य-निष्ठा का अपमान किया उसी दिन से धरा पर से सत्य के प्रति निष्ठा उठ जाने लगी।

कृष्ण—आचार्य जी, आप त्रिकालज्ञ हैं। आपका आशय मैं समझ रहा हूँ।

बलि—अच्छा, अब नाटक का समय हो गया है। चलियेगा। थोड़ा मनोरंजन हो जाएगा।

कृष्ण—श्रीमन्, आपकी इच्छा का मैं कैसे तिरस्कार कर सकता हूँ ?

शुक्राचार्य—भगवन्, नेपथ्य में कुमार मेरी सहायता चाहते हैं। आज्ञा दें। (सब का प्रस्थान)

पटपरिवर्तन

दूसरा दृश्य

[नाटक का अभिनय है। श्रीरामचन्द्र विरही के रूप में व्याकुल खड़े हैं। लक्ष्मण उनके समीप उन्हें शान्त करने के प्रयत्न में हैं। स्थान दण्डकारण्य समय, त्रेतायुग]

लक्ष्मण—प्रभु, आपकी यह कठोर व्यथा मुझ से देखी नहीं जाती।

राम—भाई, मैं क्या करूं ? कितनी चेष्टा करता हूँ, सब व्यर्थ हो जाती है। मेरे दिल में दावानल भड़क उठता है। हाय ! पीडा के कारण अंतःकरण धुँधला-सा पड़ जाता है। यह असह्य व्यथा कैसे मुझे खाये जाती है ?

लक्ष्मण—ज़रा इस प्रशान्त प्रकृति का निरीक्षण कीजियेगा। शान्ति मिलेगी।

राम—अनुज, जिस अभागे की प्रकृति जल उठी है उसे फिर बाह्य प्रकृति क्या शान्त करेगी !··· देखो, उधर देखो, वह शम्बूक, वह शूद्र राजा अपनी करुणार्द्र दृष्टि से मुझे देखता है।··· ··· वह पूछता है, 'हे राजराजेश्वर, रामचन्द्र मैंने आपका क्या अपराध किया ? कुछ नहीं, नहीं। फिर आपने यह अन्याय क्यों किया ?···देखो,

उसकी स्त्री·· वह निर्दोष असहाय प्राणी रो रही है। बहिन, रोओ। तुम्हारे रुदन-जल के प्रलय में यह राम बह जाय।···भाई, लक्ष्मण, गुरुदेव की अनुज्ञा सुनाई पड़ रही है। जरा सुनो तो। उनकी सान्त्वनोक्ति तो सुनो। हाँ, हाँ, ठीक है, गुरुदेव! आपने ठीक कहा।

[नेपथ्य में वसिष्ठ का स्वर—वत्स, रामचन्द्र तूने कोई अपराध तो नहीं किया। जो-कुछ किया, धर्म की सुरक्षा के लिए किया। इस पर तुझे क्या? तू दुःखी क्यों होता है?···छिः! छिः! यह तेरे लिये शोभा की बात नहीं। शान्त हो जा।]

राम—हाँ, गुरुदेव, मैंने कोई अपराध नहीं किया। मैंने आपकी आज्ञा का पालन मात्र किया। लेकिन, देखिये, वह बेचारी स्त्री शम्बूक की स्त्री रो रही है। हाय, मेरे कारण एक भद्र महिला रो रही है। मुझे लगता है कि वह प्राणप्रिय सीता ही रोती है। (थोड़ा रुक कर) भाई, मैंने तुम्हें भी बड़ा दुःखी बनाया। अब ऐसा नहीं करूँगा। हाँ, मेरा मन मज़बूत होता जा रहा है। ठीक है, राम दुर्बल नहीं हो सकता। मैं राजा हूँ, मुझमें सब-कुछ सह लेने की शक्ति सुरक्षित रहनी चाहिए। नहीं तो, प्रजाहित कैसे राज कर सकता हूँ? हः हः हः! राम राजा है। वह दुर्बल नहीं बनने का। वह स्त्री का रोना सुनकर पिघल नहीं सकता। एक स्त्री के लिए वह सारी प्रजा का त्याग नहीं कर सकता।···भाई लक्ष्मण! सीता का त्याग करना उचित नहीं था क्या? इस पर तुम्हारा हमेशा मत-भेद है, मुझे मालूम है।

लक्ष्मण—भाई, आपने गुरु की आज्ञा मानी। जनता की भलाई देखी। फिर भी भाभी ने क्या अपराध किया था? क्या उनकी आत्मा इस समय तड़पती नहीं होगी?

राम—सीता मेरी स्त्री थी। वह पतिव्रता होगी, नहीं वह पतिव्रता ही है। लेकिन उस पर मोह करके जनता का, हजारों लोगों का तिरस्कार और अपमान करना कैसे सम्भव है? अगर ऐसा करता हूं तो वह स्वार्थ नहीं होता?

लक्ष्मण—क्षमा कीजिये, इस विचार से मैं तो सहमत नहीं हूँ। अगर एक प्राणी अगर सच्चा और पवित्र है और वह निरपराध है, तो उसकी रक्षा के लिए हजारों के भी विरुद्ध लड़ना पड़े तो अवश्य लड़ना चाहिए ही। अगर ऐसा नहीं किया जाय तो वही तो सब से भयानक स्वार्थ है। इसका तात्पर्य है, कि फिर कभी किसी को सच्चरित्र रहने की आवश्यकता ही नहीं।

राम—वही बात है, फिर भी मैं राजा हूँ। (अयोध्या का राजा हूँ। सूर्य वंश में कोई स्वार्थी नहीं हुआ है। कोई असत्यवादी नहीं हुआ है।) राजा का धर्म प्रजा-पालन मात्र है। प्रजा के सामने स्त्री ही क्या माता भी नगण्य है।

लक्ष्मण—तब आप निर्दय हैं। फिर, इस प्रकार व्याकुल होने की क्या आवश्यकता है? आप अपने सत्य की व्याख्या के सहारे मनुष्यत्व का नाश भी कर सकते हैं। एक बार वामन ने सत्य-वादी बलि से घोर अन्याय किया। बड़ों का यह न्याय-विचार बड़ा ही विचित्र है। इस तरह मानवीय गुणों का रक्षण असंभव हो जायगा। सत्य का नाश होगा तो फिर बचेगा क्या? संसार के सम्मुख वामन की वह कूटनीति कितनी क्षुद्र थी। सत्ययुग में सत्य का यही आभास रहा था। अब इस युग में आप जो दिखाते हैं उसका फल अगले युग में हो जायगा। समझ लीजिए वर्ण-भेद और राजनीति में भी असत्य का बोल-बाला हो गया है न? इसका नतीजा द्वापर में बिल्कुल अप्रत्याशित होगा।

राम—भाई मैंने जो-कुछ किया आज्ञा-पालन ही किया। धर्माधर्म का विवेचन करने के अधिकारी गुरुदेव हैं।

लक्ष्मण—धर्माधर्म के विवेचन का पूरा कर्तृत्व गुरुदेव को है। यह भी पराधीनता है। इस युग की इस पराधीनता का दोष-फल द्वापर को भोगना पड़ेगा। फिर वह शृंखला बढ़ती ही जायगी। मेरे विचार में द्वापर शान्त नहीं रहेगा। उस समय मूर्खों का राज चलेगा। फिर इसका समाधान करने के लिए भगवान् को ही अवतरित होना पड़ेगा।

राम—हाँ, हो सकता है। लेकिन जब एक बार प्रकृति मायानिमग्न हो जाती है तो, फिर वह अपना प्रताप दिखायगी ही। वह मनुष्य को क्या नाच नचायेगी, कह नहीं सकता।

[सामने वाले स्थान को ध्यान से देखकर]

भाई, इसी स्थान पर जानकी के साथ मैं बैठकर प्रेमालाप करता था। हाय, देवी, तुम अब कहाँ हो? तुमने उस दिन! मुझसे कहा था—"प्रिय प्राण, मैं इस कठोर वन में भी कितनी आश्वस्त हूँ। आपकी स्नेह-छाया में रहते हुए मैं अपने अन्दर संपूर्णता का अनुभव कर रही हूँ। वाह, यह मन कैसा चालाक है। अपने प्यारे के समीप रहते हुए यह सारी दुनियाँ को भूलने की चेष्टा करता है।"....प्यारी प्राणप्रिये, तुम कहाँ हो? कहाँ हो? [बेचैनी के साथ हाथ फैला देते हैं और दूर जैसे सीता को देखकर] प्रिये, तुम इतनी दूर क्यों खड़ी रहती हो? क्या मेरी छाया से भी तुम अपवित्र हो जाओगी? आओ, जरा मेरे पास तो आओ। (थोड़ा सोचकर) देवी, मुझे अधिक लज्जित मत करो। एक पति अपने ही हाथों आहत पत्नी से इस प्रकार कर सकता है? वसुंधरा देवी, तुम अपनी प्रिय-पुत्री की रक्षा करो। तुम और तुम्हारी पुत्री दोनों सर्वसहा हैं। मेरा डर है, मेरे ही कारण इस भूमण्डल पर इस प्रकार की निर्दय भावनाओं की संभावना है।

लक्ष्मण—भाई, अपने शील गुणों से आप सर्वाराध्य हैं। आपको ही यह कलंक भी लगा है। अच्छा आप अपने मनोवेग को संयत कीजिए। नहीं तो न-जाने यह आपको कहाँ ले जाकर गिरा देगा।

राम—भाई, मेरा मन आवेगयुक्त तो नहीं है। कभी-कभी मैंने उचित समझकर असत्याचरण किया हो, यही आशंका है। नहीं तो यह मानसिक जलन क्यों हो? किसी पाषाण-हृदय में इस प्रकार की जलन हो सकती है? सत्य और असत्य के परीक्षण में इस प्रकार की मानसिक पीडा हो सकती है? [दूर देखकर पुनः भावावेश में] क्या कहा, वानरराज, मैंने अपनी पत्नी को खोज लाने के स्वार्थ में पड़कर तुम जैसे वीर पर छिपा कर वार किया? अब उस अपनी स्त्री के कारण आगे भी मुझे दुःख भोगना पड़ेगा? तुम मुझे और भी शाप देने पर तुले हुए हो? क्या?...अगले जन्म में अपनी कूटनीति का बुरा फल मुझे चखना पड़ेगा? ...ठीक है। तुमको मार कर सुग्रीव को राज देने का मेरा काम अच्छा नहीं हुआ।...हाय, भविष्य में राजनीति का क्षेत्र छल और प्रवंचना की यंत्रणा से विषाक्त हो जायगा।...राम, तुझे इस शाप का फल भोगना ही पड़ेगा। नहीं...नहीं...यह नहीं हो सकता। [व्यग्रता के साथ प्रस्थान]

पटपरिवर्तन

तीसरा दृश्य

[कृष्ण और अर्जुन खड़े हैं। अभिनय चल रहा है। समय द्वापर]

कृष्ण—नर, कैसी-कैसी यातनाएँ भोगनी पड़ीं। क्या-क्या सत्य-असत्यों का अनुसरण किया। परन्तु, अंत में लाभ हुआ ही क्या? भयानक अग्नि-परीक्षाओं के पश्चात् यह कुरुक्षेत्र-युद्ध जीत लिया है। भाई मुझे, सचमुच निराशा मालूम होती है।

अर्जुन—नारायण, जिस पूजनीय मेरे बन्धु ने आयुध लेकर मैदान में मुझे प्रवृत्त कराने के लिए कठोर यत्न किया, जिस दिव्यात्मा ने विश्वरूप के दर्शन से मुझे कर्त्तव्य-बोध दिलाकर निराशा से निवृत्त कर दिया वे ही मेरे प्राणवान् स्वामी ही अब निराश हो गये हैं? हाय, यह भी देखने को आया है। यह संसार कितना जटिल, असार और दुःखमय है।

कृष्ण—अर्जुन, धर्म की स्थापना के लिए मैंने कुरुक्षेत्र युद्ध का कर्तृत्व ले लिया था। मगर सारे कुरुक्षेत्र-संग्राम के बाद भी अधर्म की आग ही भड़क उठी है। अश्वत्थामा ने अपनी प्रतिहिंसा की आग में हजारों निरपराध सैनिकों और तुम्हारे वंश को भी जला दिया है। यह कैसा शाप है?

अर्जुन—भगवन्, दिशाएँ अस्पष्ट और अंधकारमय होती हैं!

कृष्ण—हाँ भाई, अब मुझे यहां से वापस जाने की सूचना मिल रही है? अब कलियुग का

आरम्भ है। बालि के शाप का पूरा फल मैंने नहीं भोगा। राधा के रुदन को मैं कैसे भूल सकता हूं। दो-चार दिनों के अन्दर वापस जाने का वचन देकर मैं मथुरा आया था। मगर आठ कोस के फासले पर स्थित ब्रज की ओर एक बार फिर कर देखने को भी मुझे फुरसत नहीं मिली। उस दिन प्रभास तीर्थ पर बेचारी असहाय और क्षीणकाय अपनी राधा को देखकर मैं एकदम शोकमग्न हो गया था। मेरा दिल व्यथा से विदीर्ण हो रहा था। राजनीति का बन्धन कितना कठोर है भाई! एक बार जब उसमें फंस जाता है फिर कोई उससे मुक्ति नहीं पा सकता। प्रिय-जनों को भी विस्मृत करना पड़ जाता है! हाँ, उस दिन तुम भी वहां मौजूद थे। तुमने देखा न? आँसुओं से प्रभास की मिट्टी डूब गई थी। (सामने देखकर) अर्जुन! देखो, वह कौन रोती-पीटती आ रही है?

अर्जुन—हाय! यह कैसा करुण दृश्य है! यह हमारी प्यारी बहिन दुःशला है!

(दुःशला प्रवेश करती है। बिखरे हुए बाल, निराशापूर्ण मुख, अश्रुधारा बह पड़ी है। कन्धे पर बच्चा है। दुःशला को देख कर अर्जुन और कृष्ण बिलकुल विषादमग्न हो जाते हैं।)

दुःशला—भगवन्, आप दयामय हैं। भाई से कहें, मेरे बच्चे को छोड़ दें। यह अनाथ है। इसके पिता युद्ध में मारे गए! अब इसका कोई सहारा नहीं है। मैं आपके चरणों पर गिर कर प्रार्थना करती हूं, मेरे बच्चे को छुड़ा दें। इसे ज़िन्दा छोड़ दें। (अर्जुन के सामने घुटने टेकती है।)

अर्जुन—(उस पर हाथ फेर कर उसे उठाते हुए) बहिन, उठो, उठो। हमें तुम अधिक लज्जित मत करो। हाय! भगवन्, इससे बढ़ कर क्या पतन हो सकता है! माधव, दुःशला बहिन का भय निराधार है? वह अपने बच्चे की प्राण-भिक्षा मांगती है!

कृष्ण—बहिन, शान्त हो जाओ। तुम्हारे बच्चे को कौन मारने आया है? मुझे तो इसलिए दुःख लगता है कि तुम्हारी यह कैसी दशा हो गई है! कौरवों और पाण्डवों की एकमात्र बहिन थीं तुम। तुम उनकी कितनी लाड़ली थीं।

दुःशाला—(फूट-फूट कर रोती है) भाई, मुझे विश्वास नहीं आता। मेरा मन कांप जाता है। सुना, अश्वमेध के पहले आप मेरे बच्चे को भी मारना चाहते हैं। भाई, एक बार मेरी ओर देखिए। मैं वही दुःशला हूं, जिसे रोती देख कर आप उठा कर प्यार करते थे। अब इस असहाय दशा में भी आप मुझे अपनी ही बहिन समझ कर मेरे एकमात्र बच्चे को छोड़ दीजिए।

अर्जुन—बहिन, शान्त हो जाओ। क्या तुम मुझे एक पिशाच ही समझती हो? प्रभो, इस घोर कलंक को धारण करते हुए आगे जीवित रहना व्यर्थ है। अश्वमेध की पूर्ति ही क्यों हो?

कृष्ण—बस, बस, बहिन! अर्जुन आज भी तुम्हारा भाई है।

अर्जुन—(बच्चे को प्यार करते हुए) चलो बहिन, तुम्हें घर तक पहुंचा दूँ। (सबका प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[नाटक का अभिनय। समय कलियुग। रंगमंच पर गान्धी जी और उनके दो सहायक (एक स्त्री है) खड़े हैं। नेपथ्य में नारे लगते हैं—"महात्मा गांधी की जय!" दरिद्र नारायण की जय!" ..."उसे गोली मार। एक गान्धी के कारण हमारे धर्म का नाश हो रहा है। बढ़ो, मारो, मारो"]

स्त्री—बापू, अपनी रक्षा की व्यवस्था कराइए। ये धर्मान्ध लोग पागल हुए जा रहे हैं।

गांधी—बेटी, घबराओ मत। ये पागल तो नहीं बन रहे हैं। जीवन को सम्पूर्ण रूप से ये देख नहीं पा रहे हैं। इसलिए सत्य और असत्य की ठीक पहचान नहीं हो पाती। भारत अनेक जाति, पन्थ व मजहबों के लोगों से सम्पन्न है। प्रभु के सामने मानव का अन्य मानव से अन्तर कभी नहीं माना जाता। यह सारी भेद-भावनाएं मानव की ही निर्मित हैं। रही मेरी रक्षा की बात! ईश्वर ही मुझे बचा सकता है। अगर वह चाहता है, तो बच जाऊंगा। पर इसके

लिए दूसरे की सहायता चाहूं तो इससे बढ़ कर क्या अपमान हो सकता है? निर्भय रहना ही अब तक मैंने पढ़ा है।

बहिन—बापू, तब इतने वर्षों की कठिन तपस्या का यही फल निकला? करीब आधी शताब्दी तक आपने जैसी महान् जनसेवा निःस्वार्थ भाव से की है वैसी सेवा किसी ने नहीं की है।

गान्धी—बेटी, यह कैसी बातें करती है? मैं नहीं समझता कि मैंने ऐसा कोई महान् नूतन कार्य किया हो। सत्यस्वरूप भगवान् का रास्ता अहिंसा का ही हो सकता है। उसे मैंने कस कर पकड़ लिया। जितना उस मार्ग से मैं बढ़ा उतना परमेश्वर का मुझे आभास मिलता गया है। इसे मैं अपना व्यक्तिगत भाग्य समझता हूं। मेरा व्यक्तिगत सुख स्वार्थ नहीं है। अतः वह सुख सबके लिए बंट सकता है। इससे बढ़ कर मैंने क्या किया है?

पुरुष—बापू! आप संसार में विनम्रता के अवतार-स्वरूप हैं। आपके मुँह से ही ऐसी वाणी निकल सकती है। लेकिन, आपको छोड़ कर इस संसार में सत्य को इतना व्यापक देखने का प्रयास और किसी ने नहीं किया था। इस कलियुग में जटिल व्यावहारिक जीवन के साथ सत्य और अहिंसा का सामञ्जस्य करके ले जाना कितना कठिन-साध्य है! मगर आपने अपनी भीषण प्रतिज्ञा में भीष्मपितामह को भी लज्जित कर दिया है। आप में अनेकों महापुरुषों के गुण मिलते हैं। एक सच्चे भारतीय की हैसियत से जीवन-निर्वाह किया। मगर, लोकमंगल ही आपका लक्ष्य था। शुद्ध सात्त्विक भावों के निर्वहण में किसी ने भी इतनी सफलता नहीं पाई थी। और, अब भी आप अपने लिए उत्कण्ठित नहीं हैं।

गान्धी—भाई, परम पिता ही संसार की रक्षा कर सकता है। मुझे अपने कारण दुःख नहीं है। खेद तो है, मनुष्य अहिंसा के सर्वव्यापी बल को पा लेने में इतनी कंजूसी क्यों करते हैं? जब तक मनुष्य स्वयं अपने को देख नहीं सकते तब तक व्यापक जगत् को क्या देखे? मैंने भारत को प्यार किया और इस प्यार ने मुझे इतना कर्म-निरत कर दिया। मैंने कभी फल की ओर नहीं देखा, केवल कर्म ही किया। अच्छा, चलो, प्रार्थना-मण्डप भरा है।

[नेपथ्य में उपनिषद् एवं गीता के गीतों का पठन। गान्धी जी रंगमंच के मध्य आकर सभा को प्रणाम करके बैठना ही चाहते हैं तब तक तीन गोलियां खाकर वे उसी तरह हाथ जोड़ते हुए "हे राम, हे राम" का उच्चारण करते हुए गिर पड़ते हैं। उनके साथी उन्हें संभाल लेते हैं। नेपथ्य में 'रघुपति राघव' कीर्तन सुनाई पड़ता है।]

जीवन उसको कहते हैं

[श्री रमाकान्त दीक्षित]

चलते चलते रुके नहीं जो, जीवन उसको कहते हैं।
अन्यायों से झुके नहीं जो, जीवन उसको कहते हैं।
यम के सब कानून बदल दे, अपने एक इशारे पर,
ब्याज सहित ही चुके सदा जो, जीवन उसको कहते हैं।

देता पथ को मोड़ यहाँ जो, जीवन उसको कहते हैं।
देता चिन्ता छोड़ यहाँ जो, जीवन उसको कहते हैं।
मरुथल के सूने आँचल में, मधुकण की बर्षा करने,
देता विष-घट फोड़ यहाँ जो, जीवन उसको कहते हैं।

झेला करता वार सदा जो, जीवन उसको कहते हैं।
रिपु को देता हार सदा जो, जीवन उसको कहते हैं।
बिसरा कर निज रामकहानी, प्रेम मिलन के बदले में,
बढ़कर देता प्यार सदा जो, जीवन उसको कहते हैं।

जगती का शृङ्गार अमर जो, जीवन उसको कहते हैं।
यश का है विस्तार अमर जो, जीवन उसको कहते हैं।
फैला अत्याचार मिटाने, दानवता के सीने पर,
मानवता का सार अमर जो, जीवन उसको कहते हैं।

❀ ❀ ❀

डा रामशंकर भट्टाचार्य

भारत की भावनात्मक एकता में पुराण-साहित्य का योगदान

विभिन्न आचार और संप्रदायों में विभक्त इस देश में चिरकाल से ही एक योगसूत्र रहा है। जैसा कि पर्यवेक्षण से जाना जाता है। यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से हमारे देश में जनपदों में परस्पर संघर्षों की धारा भी चिरकाल से ही प्रवाहित रही है। हमारे देश में 'जानपदी भावना' थी, इस सत्य का अपलाप हम नहीं कर सकते। इस देश में जनपदनामों के मूल में (अङ्ग, वंग, कलिंग, शिनि, पाञ्चाल आदि) संस्थापक क्षत्रिय के प्रति आस्था का भाव विद्यमान है, अतः व्यक्ति पर श्रद्धा रखने वाले जनों की बुद्धि में जानपदी मनोवृत्ति का होना स्वाभाविक ही है। भारत के लिए जनपदों को भजनीय भी पूर्वाचार्य समझते थे, उनकी जानपदी निष्ठा की सूचना संस्कृत भाषा से भी ज्ञात होती है (द्र० पाणिनि का सूत्र 'भक्तिः', ४,३,९५)।

पर यह 'जानपदी भावना' हमारे मानस-लोक को कभी संकुचित न कर सकी और हम भारतवासी साहित्य या दर्शनादि के क्षेत्र में मानसिक दृष्टि में परस्पर प्रेमी थे। हमने जनपदनाम घटित 'लाटी-वैदर्भी-गौडीया' रीतियों के नामों को श्रद्धा से सर्वत्र स्वीकार किया है। ऐसा आन्दोलन इस देश में कभी नहीं हुआ कि इन नामों के बहिष्कार के लिए अन्य जनपद के लोगों ने प्रचेष्टा की हो। हमारे पूर्वाचार्य देश-भेद से प्रवृत्ति-भेद को उचित और स्वाभाविक ही समझते थे। हमारे पूर्वाचार्यों में वर्तमान काल की प्रान्तीय भावना नहीं थी। वे गौड, द्राविड आदि शब्दों को स्थाननाम के रूप में ही मानते थे, उससे व्यक्ति के प्रकर्ष या प्रामाण्य में भेद नहीं मानते थे। यही कारण है कि सुरेश्वर ने अपने गुरु (द्रविड़ देश-वासी शंकराचार्य) और परमगुरु (गौडपादाचार्य) के उल्लेख करने के समय स्थाननाम का उल्लेख कर 'एवं गौडैर्द्राविडैर्नः पूज्यैरर्थः प्रभाषितः' कहा है।

बहुजनपद विशिष्ट (और राजनैतिक दृष्टि में कुछ-न-कुछ विरोधयुक्त) इस देश में 'भावनात्मक एकता' का गूढ प्रवाह वस्तुतः दर्शन-धर्म-साहित्यादि क्षेत्र में ही रहा है—लौकिक ऐश्वर्य के क्षेत्र में यह भावना बहुत ही कम है। पुराणवाङ्मय ने इस गूढ योग-सूत्र को लेकर बहुत बड़ा एकता का कार्य किया है, यह हम अनुपद दिखाएँगे।

विचारकों को विचारना चाहिए कि सब भारतवासी पुराणोक्त गयातीर्थ में पिण्डदान करने के लिए व्यग्र रहते हैं, गंगा, यमुना, कावेरी, नर्मदा में स्नान करने के लिए सहर्ष तैयार रहते हैं, पुष्कर, अर्बुद, सेतु, कनखल, कामरूप आदि पौराणिक तीर्थों में यात्रा करने के लिए हर प्रकार का कष्ट स्वेच्छा से उठाते हैं। इस सार्वभौम प्रवृत्ति के मूल में देश की समग्र सत्ता पर श्रद्धा ही है। इस श्रद्धा (जो कथमपि सांप्रदायिक नहीं है, बल्कि त्याग-सदाचारबहुल है) के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में इतिहास-पुराण का दान सर्वाधिक है। हमारे देश में कभी यह आन्दोलन नहीं हुआ कि हम दक्षिण देशवासी उत्तर देश के गया तीर्थ में जाकर पिण्ड क्यों दें? इतिहास-पुराणों की तीर्थ-सूचियाँ इस प्रसंग में द्रष्टव्य हैं। यदि पूर्ण देश के प्रति ममत्वबोध और पुण्य दृष्टि नहीं रहती तो ये प्रकरण नहीं लिखे जा सकते थे। आज राजनीति के प्रवाह में हम इस महनीय दृष्टि को भूलते जा रहे हैं। हम उत्तर देशवासी दक्षिण देश के शंकर, रामानुज को अपना आचार्य क्यों समझें? ऐसी चिन्ता हमारी दार्शनिक परम्परा में कभी उत्पन्न नहीं हुई। विद्वानों में विद्या के क्षेत्र में किसी प्रकार की प्रान्तीय भावना नहीं थी, यह भी अनेक उदाहरणों से सिद्ध होता है। इस भावना के प्रचार

में भी पुराणों का हाथ है, जैसा कि हम आगे दिखाएँगे।

हम मानते हैं कि हमारे देश में उस प्रकार की भावनात्मक एकता नहीं है (या थी) जैसी यूरोप खण्ड में देखी जाती है। परस्पर भोजन करने में या एक ही प्रकार के वस्त्र पहनने में जो 'एकता' उत्पन्न होती है, (जिस एकता पर बहुत जोर यूरोप वाले देते हैं) वह कोई मानसिक एकता है, यह भारतवासी नहीं मानते। चित्त-भावना की एकता (अन्य की सद्-मनोभावना का आदर करना—व्यवहार क्षेत्रों में भिन्नता होने पर भी) ही सच्ची 'भावनात्मक एकता' है। सदृश भोजन और आच्छादन के रहने पर भी परस्पर घोर युद्ध होते ही हैं—यूरोप के विभिन्न देशों में चलने वाले युद्ध इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जातियों में यदि कोई एकता हो सकती है तो वह 'भावनात्मक' (परस्पर के प्रति सहनशीलता के साथ) ही होगी, स्थूल एकता तो कथमपि संभव नहीं। स्थूल अनेकता में एक उच्च स्तर का रस भी है। चूँकि बालक, किशोर, युवा, प्रौढ, वृद्ध हैं, अतः सभी शारीरिक अवस्थाएँ मर्यादित, उपादेय एवं आवश्यक जान पड़ती हैं, यदि ये भेद न रहते तो जीवनव्यापी कलह ही होता।

साहित्य, धर्म, दर्शन और जीवनादर्श के क्षेत्र में इस बहुधा विभक्त देश में जो 'भावनात्मक एकता' है, उसकी वृद्धि के लिए पुराण-साहित्य का बहुत बड़ा हाथ है, अब यह दिखाया जा रहा है। हम यह कहने में अणुमात्र नहीं डरते कि इस भावनात्मक एकता का नाश तब से होना शुरू हो गया है जब से हम साधारण राजनीतिक नेताओं को प्रमाण पुरुष मानकर उनके द्वारा फैलाई हुई जातीय और प्रान्तीय भावना को मानकर जीवन चलाने लगे हैं। जब तक इस देश के लोग इतिहास-पुराण में प्रतिपादित देश-भक्ति के प्रति पुनः श्रद्धालु नहीं होंगे, तब तक प्रान्तों में परस्पर विरोध बढ़ता ही जाएगा।

पुराण का स्वरूप ही 'भावनात्मक एकता' का ज्वलन्त प्रतीक है। वेद की शाखाएँ चरणों (अध्येतृ-संप्रदाय) पर नियत रहती थीं, पर पुराण की रचना 'सार्वभौम' थी। किसी कुल, देश या जाति पर कोई पुराण नियत नहीं है (तन्त्रवार्तिक १,३,७,१५)। विभिन्न सम्प्रदायों के द्वारा सार्वभौम रूप से पठ्यमान होने के कारण यह पुराणवाङ्मय वस्तुतः मानसिक एकता कारक हो गया था। पुराणों की सार्वभौमिकता (अर्थात् सर्वलोकग्राह्यता) के कई प्रमाण दिए जा सकते हैं। पुराण, इतिहास, महाभारत, रामायण आदि को 'जय' शब्द से कहा जाता था, यह भी ज्ञापित करता है कि जनता की पुराणों पर कितनी आस्था थी। सभी प्रकार के लोग पुराणों से ही अपने महापुरुषों के आदर्श को निश्चित करते थे, इस प्रकार अन्तःकरण की दृष्टि से जो भावनात्मक एकता है, उसमें पुराणों का बलिष्ठ हाथ था, यह ज्ञात होता है।

भारत की प्रजाओं की भावनात्मक एकता में पुराण की उपादेयता का एक बलिष्ठ प्रमाण है। वह यह है कि पूर्वाचार्य (आज की भाषा में कट्टर सनातनी) भी यह मानते थे कि जो वेद के माध्यम से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता, वह भी इतिहास-पुराण के माध्यम से ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर सकता है। वेदान्त-दर्शन के अपशूद्राधिकरण (शारीरकभाष्य १.३.३८) में शंकराचार्य ने ऐसा ही कहा है पुराण ने लोक-मानस के एक अभाव की पूर्ति इस क्षेत्र में की है, जिसके द्वारा अज्ञ जन भी आत्म-ज्ञान का गौरव कर सकता है। भावना की एकरसता के क्षेत्र में पुराण का यह दान उच्चतम माना जाना चाहिए।

यह कहा जाता है कि इतिहास-पुराण अथर्ववेद रूपी पुष्प का फल है। (छान्दोग्य ३,४,१)। यह उक्ति भी इतिहास-पुराण की भावात्मक एकता संपादन शक्ति को लक्ष्य करती है। सभी लोगों की जो मुख्य कामनाएं हैं, वे अथर्ववेद में अभिव्यक्त हुई हैं, अतः अथर्ववेद 'जनता-वेद' के रूप में संमानित होता है। इस वेद से या इस वेद के प्रवर्तक अथर्वाङ्गिरस ऋषियों के द्वारा पुराण के प्रवचन होने के कारण (द्र. छान्दोग्य ३,४,२ और न्यायभाष्य ४,१,६२) पुराण निश्चयेन सर्वजन-संग्राहक के रूप में ही मूल में निर्मित हुआ होगा, इसमें कोई संशय नहीं है। यही कारण है कि पुराणों में सर्वप्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति मिल जाती है। सभी प्रकार की उपासना-पद्धति, सभी प्रकार के विचार, तथा विभिन्न आचार-व्यवहार के विवरण इत्यादि सर्वजन-संमानित विषय विस्तार के साथ पुराणों में विवृत हुए हैं। सभी प्रकार के रुचि वालों

को ध्यान में रख कर पुराण प्रणीत हुआ है, अतः सभी की भावनाएं यहाँ मर्यादित हुई हैं, यह मानना होगा। इस प्रकार सभी को एक ही धरातल में खींचने का श्रेय पुराण को ही है।

सर्वसंग्राहकता और सर्वप्रशंसा परायणता ही भावनात्मक एकता का बीज है। विष्णु, शिव आदि सभी देवों की प्रशंसा पुराणों में मिलेगी, जिससे पुराण सभी के मन को संतोष देता है। पुराणों में सभी महापुरुषों, विद्वानों, वीरों और स्त्रियों आदि के गुणों के साथ कुछ-न-कुछ दोष भी दिखाए गए हैं, अतः सभी प्रकार के मतवादी को अपने-अपने पक्ष के उदाहरण और तर्क पुराणों में मिल जाते हैं. इस प्रकार सभी की भावना की कुछ-न कुछ पुष्टि पुराणों से मिल जाती है। विवदमान सभी संप्रदाय और विचारक मनीषियों में एक सामान्य एकता ज्ञान के लिए पुराणकारों की यह शैली वस्तुतः महत्त्वपूर्ण और सार्थक है।

जहाँ तक संभव हो सका, पुराणकारों ने सबको उच्चतम महत्ता दी है। सभी मतों की प्रशंसा पुराणों में मिलेगी (निन्दा भी है)। नदी, पर्वत आदि जड़ पदार्थों की प्रशंसा भी पुराणों में कम नहीं है। नदी के लिए पुराणों में 'विश्वस्य मातरः' 'शिवजलाः' आदि महनीय विशेषण दिए गए हैं और निरपेक्षरूप में सब जनपदों के अन्तर्गत सब नद-नदी, पर्वत, वन, प्रस्रवण, आश्रम, ह्रद, कूप, वृक्ष आदि की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। सब को एक साथ खींचने के लिए इससे अधिक आकर्षक और कोई मार्ग नहीं हो सकता।

पुराणों की भाषा और प्रतिपादनशैली भी सर्वजनाकर्षणकारी है। जिस शैली में पुराण मतादि का प्रतिपादन करते हैं, वह आकर्षक है, यह तो मानना ही होगा। साथ ही लोकप्रचलित सब विद्या सदाचार और व्यवहारों का प्रतिपादन (मर्यादित रूप में) भी पुराणों में इस रूप से किया गया है कि श्रोता जन उससे अपने को गौरवित देख पाते हैं (कई पुराणों में कहा गया है कि "इतिहासपुराणानि भिद्यन्ते लोकगौरवात्।" लोक के साथ पुराणों का कितना घनिष्ठ संबन्ध है, यह इससे जाना जाता है। इससे यह भी ध्वनित होता है कि भावनात्मक एकता के प्रसार-प्रचार में पुराणों का हाथ सर्वाधिक था) यही कारण है कि भारत में वेदादि का पठन-पाठन क्रमशः लुप्त होता गया और उसके स्थान पर पुराणवाङ्मय ही प्रतिष्ठित होता गया। लोकमानस ने अपने जीवन को पुराण के रस से सिंचित किया और क्रमशः विभिन्न जनपदों के लोग एक दूसरे के पास (मन की ओर से) आते गए, और आज पुराण के मत या पुराण के महापुरुष किसी एक जनपद या काल के न होकर सबके गौरव की वस्तु हो गए हैं। प्रत्येक की भावना का आदर करना ही भावनात्मक एकता का बीज मन्त्र है, जो बीज बहुत ही प्रस्फुटित हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। भावनात्मक एकता के क्षेत्र में पुराण का दान परम महनीय है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है।

मानवता के आराधक

[श्री विजय निर्बाध]

तन के कारण भले किसी को दीखें रूप अनेक।
मानवता के आराधक हम मन से हैं सब एक॥

भिन्न-भिन्न भाषाएँ अपनी जाति-धर्म सब भिन्न
बंधे प्रेम के पुण्य सूत्र में फिर भी हम अविच्छिन्न
पालक-पोषक एक सभी का रूप-रंग प्रतिकूल
हम सब पंछी एक डाल के एक बाग के फूल
एक लक्ष्य, आधार एक है, एक हमारी टेक।
मानवता के आराधक हम मन से हैं सब एक॥

अपनी पावन पुण्य मही के कण-कण में सुरधाम
जो भी चाहे, जैसे चाहे, ले ईश्वर का नाम
मन्दिर और मस्जिद में झुकते जैसे शीश हमारे
उसी तरह से परम पूज्य हैं गिरजा और गुरुद्वारे
सदा ज्ञान के चरणों में नत रहता है अविवेक।
मानवता के आराधक हम मन से हैं सब एक॥

अमर प्यार का प्रश्रय पाकर जीवन सुखसरसाए
आसमान से अमृत बरसे धरती मंगल गाए
भेद-भाव से मुक्त सर्वथा सकल विश्व हो अपना
करें स्वयं साकार आज हम रामराज्य का सपना
हम नव युग का नई ज्योति से करें नित्य अभिषेक।
मानवता के आराधक हम मन से हैं सब एक॥

श्री सूर्यनारायण व्यास

भावनात्मक-एकता विश्रृङ्खलित कड़ियाँ

भावनात्मक-एकता को सुरक्षित रखने वाली भारत में अनेक कड़ियाँ रही हैं और उन्होंने शताब्दियों से हमको संगठित बनाए रखा है, परन्तु आज वे विश्रृङ्खलित होती जा रही हैं। हमारी पश्चिमाभिमुखी प्रगति और प्रवृत्ति ने उन्हें और भी शिथिल बनाया है। उसे उपेक्षित करने के कारण हममें विभिन्नता की भावना जाग्रत हुई है। भावना का सम्बन्ध राजनीति से नहीं होता। राजनीति सदैव पक्षों की जननी रही है। पक्षों में प्रपंच उत्पन्न होता है। वे प्रपंच भेद-भावना को जन्म देते हैं। भावना का सूत्र धर्म-दर्शन-अध्यात्म से बन्धा रहता है, और इन्हीं भावनाओं ने हमें अपने देश में ही नहीं, विदेशों में भी निकटता साध्य करने का अवसर दिया है। आज हम इन मूलभूत तथ्यों की ओर से उदासीन हो गए हैं। हमारा अध्यात्म और दर्शन न केवल भारतीय मानवों को, बल्कि विश्व-मानवता को सूत्रबद्ध बनाता आया है। धर्म की उदात्त-भावना में, जागतिक धर्मों के मूलभूत तथ्य निहित हैं।

दूसरी बात हमारा संस्कृत-साहित्य है। उसने सारे देश में एकता की भावना आत्मीयता को पोषण दिया है, पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर पर्यन्त को अपने संस्कार-सूत्र में आबद्ध बनाए रखा है और भाषा-भगिनियों में चाहे विभेद-भावना उत्पन्न हो जाती हो, पर संस्कृत का सूत्र सीधे हृदय की मणि-माला को स्पर्श कर लेता है। संस्कृत ने समग्र भारत की एकता को इस विभेद-भरी स्थिति में स्थिर बनाए रखा है, चाहे वाल्मीकि हो, व्यास हो, कालिदास हो, सभी के हृदय में समान समादर-भाजन बने हुए हैं। देश में यह समानता स्वाभाविक हो सकती है, परन्तु महाकवि कालिदास की कृतियों ने विश्व-मानवों को अपने प्रेम-पाश में बांध रखा है। चाहे कम्युनिस्ट देश हो, पूंजीवादी हो, साम्राज्यवादी हो, किसी भी विचारधारा में कालिदास की कालिन्दी ने अपनी सरस रसधारा को सम्मीलित कर एकता साध्य की है। यह महत्त्व केवल संस्कृत की गरिमा को ही है, केवल इन कवि-कोविदों की रसवन्ती से आकर्षित हो समुद्र पार के प्रज्ञावन्तों ने संस्कृत की स्रोतस्विनी का अवगाहन किया है। जबकि हमारी इस भावनात्मक-एकता की अमर औषधि को हमने ही विस्मृत-उपेक्षित किया है। संस्कृत-साहित्य का रस-भाण्डार किसी जाति, धर्म, सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं। वह विश्व की निधि है। हमारे आचार्य-वर्ग भी चाहे अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार करते हों, परन्तु उनमें भी व्यापक रूप से जन-कल्याण की भावना ही रही है। उनके सिद्धांत मानव-मात्र के लिए मंगलमय रहे हैं। उनका धर्म, संस्कृति और एकता की रक्षा के लिए ही रहा है।

तीसरा हमारा संगीत है। हमारे संगीत का लक्ष्य भी केवल मनोरंजन नहीं रहा है। उस में निजानन्द के साथ आत्मानन्द की भव्य-भावना रही है। संगीत भी किसी को भेद-भाव नहीं सिखलाता। उसमें जाति, धर्म, सम्प्रदाय को भी कोई स्थान नहीं है। जिसमें आत्मलीन हो जाने की शक्ति हो, वहां क्षुद्र भावनाएँ कैसे स्थान ले सकती हैं? सूर, मीरा, तुलसी, कबीर, नानक के गीतों के गायक कब उनमें अन्तर करते हैं? आज जय-जयवन्ती, भैरव, भैरवी, मालकंस जिस तरह भारत में समादृत हैं उसी तरह भीषण भेद-भावों की आंधी में भी पाकिस्तान में प्रतिष्ठित हैं! चाहे हिन्दू हो या मुसलमान उसी प्रेम से 'मैया मेरी मैं नहीं माखन खायो' में रस-विभोर बनता है। अनेक मुसलमान उस्तादों के हिन्दू शागिर्द अपने को गौरवान्वित मानते हैं। कला ने भारतीय

भावना को एकता के सूत्र में स्नेह से पिरो रखा है। आज भी दक्षिण से उत्तर तक, पूर्व से पश्चिम तक सूर-मीरा समान रूप से संगीतज्ञों के आराध्य हैं और श्रोताओं के हृदय के मर्म को छूते हैं। पर फिल्मों के रागों, निरर्थक गीतों ने सस्ते मनोरञ्जन के रूप में संगीत की मर्म-स्पर्शी भावना को भी आघात पहुंचा दिया है। रस-राग की सुन्दर सृष्टि को समेट कर रख दिया है।

राजनीति द्वारा प्रेरित भावनात्मक एकता प्रचार की पूञ्जी लेकर पनप नहीं सकती। वह क्षणस्थायी है। उसका आत्मा से सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता।

आध्यात्मिक-भावना की भावभूमि पर स्थापित एकता ही भारत की आत्मा के निकट जा सकती है। उस परम्परा का पल्ला पकड़े सिवा हमारा भावी उज्ज्वल नहीं बन सकता। परन्तु भौतिकवाद से प्रभावित समाज को सही मार्ग पर लाना आज एक समस्या बन गया है।

मनुजता की आत्मा पहिचान !

[प्रा. विद्यानंदन राजीव]

मुक्त धरती और मुक्ताकाश
मुक्त मारुत और मुक्त प्रकाश
दे दिये जिसने उसे पूछो,
वह बताएगा कि उसका—
इन विभेदों में नहीं विश्वास !

× × ×

मृत्तिका का बना यह मन्दिर
सांस की बैठी वधू जिसमें
कर रही है नित नया श‍ृङ्गार,
क्योंकि रूपसि आत्मा का
प्राणप्रिय परमात्मा से प्रेम का व्यवहार—
उस महोदधि के रुपहले बिन्दु ही तो
हर मनुज की देह में आकर हुए साकार !

× × ×

किन्तु यह कैसा नया व्यवधान !
यह बदलते मानवों की विषभरी मुसकान,
भाव कब स्वीकारता यह भेद की दीवार
एक भाई इस किनारे एक है उस पार,
मध्य में कोई घृणा करती खड़ी चीत्कार
आज का हर हाथ उठता है लिये संहार
पांव उठते हैं उगलते राह पर अंगार,
रो रही दुखिया धरित्री, कोसती है दूध अपना
क्या यही दिन देखने को पुत्र को देती रही थी प्यार ?

× × ×

इस तरह संसार सारा बट रहा है
तिमिर नभ में बढ़ रहा, आलोक जग से छट रहा है
रंग के आधार पर संसार बाँटा जा रहा है
अर्थलोलुप आदमी, अपने पड़ौसी की कमाई पर—
आज अपनी गृद्ध-दृष्टि उठा रहा है,
विश्व में सब ओर नफरत बढ़ रही है
और जीवन पर नयी विष-बेल कोई चढ़ रही है !

× × ×

और ऊँचा उड़ कुंआरी भावनाओं के पखेरू
इन घिनौनी परिधियों को तोड़ !
जिन्दगी भ्रम में पड़ी, अभिशाप का परिधान पहिने—
उस दिशा में पंख अपने मोड़ !
तू बता दे यह कि—चुनरी श्वेत हो या स्याह काली
किन्तु उसके क्रोड में है एक-सी जगमग दिवाली
आदमी से कह ! कि सुन ओ बावले इंसान,
मूरतों के रूप-रँग के भेद को मत मान !
तू मनुज है—मनुजता की आत्मा पहिचान !

❀ ❀ ❀

डॉ. विश्वनाथ अय्यर

भारत की भावनात्मक एकता और भाषा-विज्ञान

हम भारतवासी अतीत से बड़ी दूर आगे बढ़ चुके हैं। गाँव, नगर, राज्य और राष्ट्र की सीमाओं को पार कर हम लोग अब अन्तरराष्ट्रीय स्वर का जीवन बिताने लगे हैं। केरलीय व्यक्ति खाने का चावल आंध्र या अन्य प्रान्त से मंगवाता है। दूसरे अनाजों में गेहूँ आस्ट्रेलिया से आता है। उसके पहनने के कपड़े बम्बई या अहमदाबाद की मिल में बनते हैं और कभी-कभी उसकी रूई विदेश से आती है। पहनने की कलघड़ी वह स्विट्ज़रलैण्ड से मंगवाता है। इंग्लैंड से आए फिल्म व कागज़ पर उसका फोटो छपता है। उसके बच्चे जापानी खिलौनों से खेलते हैं तो उसके छुरे-उस्तरे जर्मनी से आते हैं। यों संसार के अनेक देशों की वस्तुओं से ही एक केरलीय के जीवन की ज़रूरतों का निर्वाह होता है।

राजनैतिक दृष्टि से भारत का स्वाधीनता-स्वप्न सफल हो चुका है। यहाँ जितनी छोटी-मोटी रियासतें थीं वे भी शेष भारतखंड में विलीन हो गई हैं। उनका भी सवाल नहीं है। अतएव हम अब स्वतन्त्र भारत के स्वच्छन्द नागरिक हैं और सभी एक अशोक-चक्राङ्कित तिरंगे झण्डे के नीचे खड़े हैं। इस एकता में रहते हुए अनेक संस्कृतियों का विकास कराने के लिए भाषा-वार प्रांतों का गठन भी किया गया है। अनेक चक्रों का सुन्दर रथ बन गया और आशा थी कि इसकी जैत्र-यात्रा सारे संसार को चकित करेगी। किन्तु दुर्भाग्य से बीच में भाषा, जाति, संस्कृति आदि के पीछे लोगों में अनैक्य का भाव फैलने लगा है। समस्या विकट होती चली तो हमारे जन-नेताओं ने एक नया उपाय सुझाया कि भारत में भावनात्मक एकता बसा दो। यह सन्देश अत्यन्त सामयिक रहा है और सारी पत्र-पत्रिकाएँ, प्रसारण-शालाएँ और सार्वजनिक मंच भावनात्मक एकता के नाद से मुखरित हैं। जहाँ-तहाँ इस एकता के पत्तल में छेद-ढूँढने और छेद डालने की इच्छा से कुछ लोग फूट का विष फैला रहे हैं। वे लोगों के विचार-प्रवाह में संखिया मिलाने की चेष्टा में लगे हैं, ताकि उनका विचार कभी स्वच्छन्न न हो सके। इसी परिस्थिति में भावनात्मक एकता के हर-एक पहलू पर विचार करने की आवश्यकता आ पड़ी है।

असल में बौद्धिक जीवन के प्रेमी लोग इस बेकार बहस की ज़रूरत ही नहीं मानते। जो विद्वान् भाषा से ज्ञानराशि की आशा रखते हैं वे किसी भी भाषा के कोष से सूक्ति-रत्न ग्रहण करने को तैयार हैं। भाषाओं की तुलना पर अधिष्ठित भाषा-विज्ञान के विद्वान् तो कभी समझ नहीं सकते कि भाषाओं की अनेकता देश की भावनात्मक एकता को क्यों नष्ट करे। आम लोग शीघ्र भावावेश में आकर अर्थ का अनर्थ कर बैठते हैं। वे गलत रास्ते पर भटकाने वाले लोगों के जादू से फँस भी सकते हैं। परन्तु शांति से विचार करने वाले इस मोह में नहीं पड़ेंगे। विचारवानों के विचार-क्षेत्र विभिन्न हैं। धर्म के विशेषज्ञों की दृष्टि धर्मों की विविधता-एकता पर, भूगोल एवं प्रकृति के विशेषज्ञों का ध्यान प्राकृतिक विलक्षणताओं पर तथा इतिहास के विशेषज्ञों का ध्यान अनेक युगों की बारीकियों पर जाता है। यों भाषा-विज्ञान के विद्वान् की दृष्टि भारत की अनेकों भाषाओं पर पड़ती है। इन भाषाओं की आत्माओं में निहित परमात्व-तत्त्व को वह खोजता है।

आर्य भाषाओं का इतिहास सीखते समय हम उसके तीन युगों की चर्चा पाते हैं। (१) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा-काल (१५०० ई०पू० ५०० ई० पू०)। (२) मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा-काल (५०० ई०पू० १००० ई०)। (३) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा-काल (१००० ई० से) प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक का विभाजन यह प्रमाणित करता है कि भाषाएँ परस्पर मिलती और प्रभावित होती रही हैं। लोगों की मेल-मुलाकात अनिवार्य थी, चाहे

वह कभी-कभी युद्ध के मैदान पर रही हो और कभी मित्रता के मंच पर। भाषाएँ बच्चों के समान होती हैं और उनके वक्ता बड़ों के तुल्य। जब बड़े लोग बच्चों के छोटे-छोटे कलह के पीछे आपस में लड़ते हैं तब बच्चे उनके देखते-देखते वैर-विरोध भूलकर हाथी-महावत बन जाते हैं। इसी प्रकार भाषाओं के बोलने वाले आपस में भले ही लड़ें, भाषाएँ आपस में बड़ी मित्रता से शब्दों-मुहावरों का लेन-देन करती हैं।

आर्य-द्राविड की बात ही पहले लें। वर्तमान राजनैतिक हलचल के प्रसंग पर यह विशेष विचारणीय है। हिन्दी के विरोध के कारणों में एक मार्मिक कारण यही बताया जाता है कि यह आर्य-भाषा है और द्राविड इसे स्वीकार नहीं कर सकते। इस तर्क का उत्तर स्वयं दोनों गोत्रों की भाषाएँ दे चुकी हैं। द्राविड भाषाओं ने आर्य-भाषा संस्कृत की सहायता से अपने शब्द-कोष को अत्यन्त समृद्ध बना लिया है। इसके उदाहरण यहाँ उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह बात सर्वविदित है। किन्तु यह जानकर कुछ लोगों को अविश्वास का अनुभव होता होगा कि संस्कृत ने अनेक द्राविड शब्द स्वीकार किए थे। प्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक श्री बरो, फादर काडवेल, श्री कीट्टल आदि ने ऐसे शब्दों की लम्बी सूची दी है। केरल में अभी जो मलयालम बृहत् कोष तैयार हो रहा है उसके विद्वान् सम्पादक प्रो. कुंजनपिल्लैजी के मत में इस कोटि के शब्दों की संख्या बहुत बड़ी है।

आर्य-भाषा संस्कृत ज्यों-ज्यों विविध प्रान्तों में फैलती गई त्यों-त्यों नई प्राकृतों या जनभाषाओं का विकास होता चला गया। अपभ्रंशों की कहानी भी यही है। अवश्य इन नई प्राकृतों-अपभ्रंशों के बहुत से शब्द संस्कृत द्वारा स्वीकृत किए गए होंगे और उन्हीं का उल्लेख संस्कृत में 'देशी' किया जाता है। इन नई भाषाओं के युग में भी एक आदर्श भारतीय भाषा की सुरक्षा पर लोगों का ध्यान रहा था। वे उसे साहित्य, शास्त्र, नीति, विज्ञान, धर्म आदि गम्भीर विषयों की चर्चा के योग्य स्तर पर रखते आए।

इस विकासक्रम से दो बातें प्रमाणित होती हैं—

(१) भाषाएँ बड़ी लचीली हैं और एक-दूसरे का प्रभाव ग्रहण करने में कुशल होती हैं।

(२) कई स्थानीय नवीन भाषाओं के विकास के समय दूसरी तरफ एक आदर्श भाषा की प्रतिष्ठा बनी ही रहती है।

अब हम भारतीय इतिहास के दूसरे युग में अर्थात् हिन्दू युग के बाद मुसलमान युग में प्रवेश करें। मुसलमान शासकों, विशेषकर मुगल शासकों के समय फारसी भारत में आई। इस तरह से दो प्रमुख भाषाओं की होड़ शुरू हुई। (१) देश की धार्मिक महत्ता और परम्परा की प्रतिनिधि संस्कृत और (२) सत्ताधारी शासनकर्ता मुसलमानों की भाषा फ़ारसी। राजाश्रय एवं सरकारी पत्र-व्यवहार के प्रयोग से फारसी का आदर बढ़ा। इसी के फलस्वरूप उर्दू नामक नई भाषा गढ़ी गई, जो अंग्रेज़ों के समय तक बड़ी प्रतिष्ठा पा सकी। अब इसके फलस्वरूप एक ओर संस्कृत-निष्ठ खड़ी बोली नामक हिन्दी बनती गई। दूसरी ओर फारसी, अरबी-निष्ठ उर्दू नामक भाषा सम्मानित हो चली। इन दो खेमों के लोग ऊपरी समझौते के लिए तैयार नहीं थे, क्योंकि संकुचित मनोवृत्ति एवं सांप्रदायिक विद्वेष इसमें बाधा डाल रहे थे।

संस्कृत और अन्य देशगत भाषाओं का सम्बन्ध जिस प्रकार गहरा था उसी प्रकार फ़ारसी का देश-भाषाओं से सम्बन्ध भी गहरा बन गया। जैसे, दैनिक-व्यवहार की कई चीज़ों के नाम फारसीमय रहे। जामा, मिर्जई, गुलूबन्द, शीशा, चिलम, नमाज़ आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। फ़ारसी शब्दों की नकल में उर्दू शब्दों का गठन भी कम महत्त्व का नहीं। समझदार, गाडीवान, पानदान, पीकदान आदि इसी ढंग के हैं। भाषान्तर के सम्पर्क में फ़ारसी शब्दों के अर्थ का परिवर्तन कहीं-कहीं हुआ है जो बिलकुल स्वाभाविक है। देश की उलझी हुई राजनैतिक दशा के कारण संस्कृत-निष्ठ हिन्दी एवं फ़ारसी-निष्ठ उर्दू की प्रतियोगिता बनी रही। दोनों कुछ-कुछ विकास करती चलीं।

भाषा की इसी होड के समय यान्त्रिक सभ्यता के प्रचारक, भारत के विजेता और सत्ताधारी अंग्रेज़ों की भाषा के तौर पर अंग्रेज़ी यहाँ आई। उसका प्रसार और प्रभाव बहुत तेज़ बढ़ा, क्योंकि अंग्रेज़ी के पास मुद्रण-कला आदि अनेक साधन थे। इन साधनों के ज़रिए

अंग्रेज़ी का महत्त्व दोहरा हो गया। यह आदर्श और व्यावहारिक—दोनों क्षेत्रों में प्रयुक्त थी। अंग्रेज़ी का साहित्यिक स्वरूप आदर्श भाषा का स्थान ग्रहण कर गया और साधारण व्यावहारिक स्वरूप व्यावहारिक भाषा का। प्रभाव व प्रसार के क्षेत्र में अंग्रेज़ी बड़ी प्रबल प्रतियोगी सिद्ध हुई। अब भाषाओं के वर्गों का त्रिकोण देश में था (१) देशी भाषाएं (२) अंग्रेज़ी और (३) संस्कृत।

युग के बढ़ते-बदलते संस्कृत व्यवहार-क्षेत्र से खिसकती चली या धकेली गयी। उन्हीं दिनों हमारे देश में स्वाधीनता-संग्राम चला और उसके अंग के रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार होने लगा। इस भाषा का राजनैतिक नेता समन्वय की भाषा (लिंक-लैंग्वेज) के रूप में समर्थन करते आए हैं। विविध भाषाओं के भारत में भावनात्मक एकता लाने वाली वाणी के रूप में इसका स्वागत सब लोगों ने किया। विदेशी सत्ता का सामना करने के लिए जो भी एकतादायक साधन थे उन सबको भारतीयों ने स्वीकार किया।

हमारे विशाल देश के बहुभाषी होने में कोई अचरज की बात नहीं है। भौगोलिक विस्तार और आबादी के हिसाब से भारत के विविध प्रान्त यूरोप के कई देशों से बड़े हैं।

अध्ययन करने पर पता चलता है कि एक-एक भारतीय भाषा का क्षेत्र एक बड़े यूरोपीय देश के क्षेत्र से मिलता-जुलता है। आदिवासियों की बोलियां, केवल बोलचाल में प्रयुक्त भाषाएँ आदि के वक्ता भी अतिरिक्त रूप से बड़ी संख्या में मौजूद हैं। ऐसे अन्य बहुभाषी देशों में एक भाषा मुख्य एवं राजभाषा मानी जाती है और शेष साधारण। जैसे, अमेरिका कई राष्ट्रों का संयुक्त देश है तो रूस कई समाजवादी राष्ट्रों का सम्मिलित देश है। जिस तरह अमेरिका में अंग्रेज़ी एवं सोवियत रूस में रूसी प्रमुख भाषा रही है उसी तरह भारत में हिन्दी प्रमुख भाषा रह सकती है, शेष साधारण भाषाएं। इनके मेल में भावनात्मक एकता भी सम्भव है।

आर्य-द्राविड-सङ्गम की बात पहले बताई जा चुकी है। यह भाषा-सङ्गम एक निरन्तर भाषागत प्रवृत्ति रही है। इसीलिए द्राविड भाषाओं में ऐसे अनेक फारसी-अरबी शब्द आ गए हैं जो हिन्दी में भी हैं। व्यापार, तीर्थ-यात्रा आदि के सिलसिले में हिन्दी-भाषी लोग भारत-भर की यात्रा करते आए हैं। राजनैतिक प्रभाव की बात पहले हम कह आए हैं। यह विविध प्रभाव दैनिक-जीवन, राजनैतिक व्यवहार आदि अनेक विषयों की शब्दावली की स्वीकृति में परिणत हुआ है।

इसके अलावा धर्म के क्षेत्र में मुसलमान समाज के सम्पर्क से इन भाषाओं में अनेक अरबी शब्द घुल-मिल गए हैं। यहाँ तक कि इन शब्दों को निकाल देना दूध से शक्कर को निकाल देने के समान कठिन है। यदि इन्हें निकाल कर नए गढ भी लें तो भी साधारण भाषा से ये नहीं निकलेंगे। भाषा के विकास की इस प्रक्रिया को रोकना असम्भव है। इन उधार के शब्दों और मुहावरों के विश्लेषण से जो अन्य बात प्रकट होती है वह यही है कि भारत के सारे प्रान्तों का वैचारिक विकास एक ही रफ्तार या तेज़ी से और एक ही दिशा में होता है।

आज भारत के गांव वालों की विचार-शैली पूरे भारत में समान है। नगर वालों की समस्याएं सम्पूर्ण भारत में समान हैं। हर जीवन-क्षेत्र के लोगों की विचारधाराएँ समान हैं। अखिल भारतीय संस्थाओं की स्थापना से यह प्रकट होता है। भाषाओं की विविध समान प्रवृत्तियों से भी इसका अनुमान किया जा सकता है। भाषा-विज्ञान के अध्येता भाषाओं की इस अनुपम समन्वय-शक्ति से परिचित हैं। वे भारत की भावनात्मक एकता को सहज और आवश्यक ज़रूर समझते हैं। अतएव अन्य दृष्टिकोण की तरह भाषा-विज्ञान का दृष्टिकोण भी भारत की भावनात्मक एकता को अत्यन्त सुलभ और आवश्यक घोषित करता है।

श्री अनन्तकुमार पाषाण

जो श्रृङ्गेरी से आया है वह जोशीमठ तक जायेगा

जो शृङ्गेरी से आया है, वह जोशीमठ तक जायेगा।
लौटते हुए द्वारका पीठ में दो क्षण को सुस्तायेगा।
दक्षिण की ज्योति सुलगती है उत्तर के हिम-खंडों में जा
निम्बार्क आज्ञा देते हैं–यह रवि अब डूब नहीं सकता।

निम्बार्क, हृदय-केतन जिनका
शोभित करता है वृन्दावन,
जिनकी वाणी है सरस्वती
जो संगम तक में है गोपन।

उठ आन्ध्रदेश से काशी में
वल्लभ के पूर्वज आ पहुंचे,
गुर्जर प्रदेश के वणिकों में
नूतन नयनों के प्राण जगे।

उठ, आन्ध्र छोड, काशी होता
वह बादल क्षण में फैल गया।
उस वर्षा से अत्यधिक तृप्त
गुर्जर प्रदेश का हृदय हुआ।

गुर्जर प्रदेश से दयानन्द
ने उठ कर जय का नाद किया।
सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा में
नव जनता से संवाद किया।

हिन्दी के वे जीवन-दाता, वे जन-जीवन के निर्माता।
वे दयानन्द, नानक, मीरा, औ' तिलक राष्ट्र-भाषा-त्राता।
आगे सुभाष भी आये जो सम्पूर्ण राष्ट्र को एक देख,
पाने के लिये कामनाएँ, हैं खींच गये वह स्वर्ण-रेख।

जो फौलादी भविष्य की सूचक बनी चमकती उल्का-सी,
वे मेगस्थनीज, सिल्यूकस भी बन गये यहाँ संस्कृतभाषी।
वीथियाँ घिरीं अंधियारे से, कुछ नाम चमकते तारे-से,
प्रतिबिम्ब दिख रहे तारों के जन-जन-दृग में अंगारे-से।

कर पार अरण्यों की यामा गुरु गोरखनाथ आ रहे हैं,
जाते बिहार, नर्मदा-तीर—रंजन-उपकरण बदलते हैं।
हो रहे विलास जहाँ पर थे, थी पञ्च मकारों की पूजा,
अब अलख निरंजन का प्रबुद्ध समवेत वहाँ नव स्वर गूँजा।

राजाओं के संरक्षण से फिर धर्म निकल आया बाहर,
गुरु गोरखनाथ गरजते हैं जैसे किशोर गरजे नाहर।
श्रीनामदेव जब महाराष्ट्र से गये बसे अमृतसर में,
श्री गहिनीनाथ यहाँ आये मानो उनके ही उत्तर में।

वह नाथपंथियों की ज्वाला आ महाराष्ट्र में सुधा बनी,
श्री ज्ञानेश्वर का स्वर गूंजा, बन गयी ज्योत्स्ना ज्वाल घनी।
श्री गहिनीनाथ नाथपंथी कर गये प्रस्फुटित परम्परा,
उनके शिष्यों ने विश्वप्रेम की भाषा व्यक्त करी अपरा।

हे पुण्यभूमि, हे महाराष्ट्र
तुमको प्रणाम सह्याद्रि-देश
बाहों में बाँहें डाल खड़ा
है साथ तुम्हारे मध्यदेश।

वह मध्यदेश, सन सत्तावन
में हुआ रुधिर से यह पावन,
थोडा आगे बढ़ बंगभूमि
जिसने नवीन रस का श्रावण।

सम्पूर्ण देश में प्रकट किया
मिल गये ब्राह्मण और यवन,
चैतन्य महाप्रभु बिना भेद
हरिनामों का करते वितरण

एकता देश की, संस्कृति की मां के कुकुंम में आलोकित,
बद्धता हृदय की, निश्चय की जिससे ससृति है आलोडित।
सारी वसुधा कुटुम्ब जिनका, पृथ्वी घर औ' अम्बर छत है,
वह सहनशील हैं भारतीय, वह देश हमारा भारत है।

माँ-बहनों के उन्नत ललाट पर यही एकता आँचल है,
है यही शहीदों का लोहू, उनकी माता का दृग-जल है।
उत्साह प्रणय का यह ही है, निर्वाह प्रलय का है इससे,
इसने खाँसा, तो हिंसा के जंगल के सब पत्ते कँपते।

कोंकण के नीर-क्वणित कूलों औ' चण्डीगढ़ के फूलों से,
राजस्थानी मरु के शूलों से, नीमों और बबूलों से,
केवल यह ही स्वर निःसृत है, जिससे जग नत हो जायेगा,
जो शृङ्गेरी से आया है, वह जोशीमठ तक जायेगा।

श्री श्रीरञ्जन सूरिदेव

भावनात्मक एकता और जैन-साहित्य

राष्ट्रीय एकता के लिए भावनात्मक एकता अनिवार्य है। चूंकि, इन दोनों एकताओं में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, इसलिए इनमें एक के बिना दूसरे की सिद्धि कदापि सम्भव नहीं। इतिहास साक्षी है, प्राचीन-काल में जब बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म साथ-साथ प्रेम से रहे, तब भारत का गौरव भी अपनी चोटी पर पहुँचा और जब ब्राह्मण धर्म में कट्टरता आई तथा बौद्ध-धर्म का दमन हुआ, तब भारत की भी अधोगति हुई।

इसी प्रकार, मध्य-काल में सम्राट् अकबर ने जब सभी धर्मों के साथ एकत्व या सम-भाव बनाए रखा, तब मुगल-राज्य उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा, लेकिन उसके उत्तराधिकारियों ने जब एकता की नीति का परित्याग कर दिया, मुगल-साम्राज्य का पतन हो गया।

निश्चय ही, इस देश में राष्ट्रीयता बराबर संस्कृति से सम्बद्ध रही है और सच पूछिए, तो संस्कृति का विस्तार ही भावनात्मक एकता की सृष्टि मे सन्निहित है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में 'जब यह एकता अपने जातीय जीवन अथवा नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए स्वाभिमान के साथ क्रान्ति की घोषणा करती है, तब राष्ट्रीयता की रूपरेखा का निर्माण होता है।'

तो राष्ट्रीयता की सुदृढता के लिए भावनात्मक एकता का उद्घोष हमें प्राचीन वैदिक-साहित्य से अर्वाचीन साहित्य तक में मुखरित मिलता है।

वैदिक-काल का परिव्राजक एक जाति की प्रजाओं के ही किसी कारण से उत्पन्न पारस्परिक द्वेष को उन्मूलित करने का प्रयास नहीं करता था, बल्कि वह 'परिव्राजक' नाम सार्थक करने के निमित्त संसार की विभिन्न जातियों में भ्रमण कर उनके बीच प्रीति-संस्थापन का यत्न करता था, ताकि वे युद्ध आदि से अलग रह कर शान्ति-प्राप्ति के साधनों में लगे रहें। इसी मंगल-कामना के कारण परिव्राट् संन्यासी एक जाति का नहीं, प्रत्युत सभी मनुष्य-जातियों का पूजनीय माना जाता था, लोग उसे जगद्गुरु की उपाधि से भूषित करते थे और बड़े-बड़े नरेश उसके समक्ष नतशीर्ष होते थे।

इसी वैदिक परम्परा के आलोक में जैन तीर्थङ्करों तथा उनके अनुयायी आचार्यों ने राष्ट्र-कल्याण या जनहित के लिए भावनात्मक-एकता का सन्देश-शंख ध्वनित किया था। चूंकि, बिना भावनात्मक एकता के मनुष्य आत्मौपम्य की स्थिति में नहीं पहुँच सकता, इसलिए भगवान् महावीर ने सब जीवों को आत्म-तुल्य (सर्वभूतेषु आत्मवत्) समझने का उपदेश (दशवैकालिक, १०.५) दिया था—

अत्तसमे मनिज्ज छप्पि काए।

इसी बात की प्रतिध्वनि धम्मपद (दण्डवर्ग १) और गीता (६, २१)में भी श्रवणगोचर होती है—

सब्बे तसंति दण्डस्य सब्बे भायंति मच्चुनो।
अत्तान उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

वस्तुतः, मनुष्य समदर्शी तभी हो सकता है, जब वह प्राणिमात्र को समभाव से देखने लगता है। इसी लिए, भगवान् महावीर ने अवर्णवाद का ज़ोरदार समर्थन किया है और गोत्रवाद या जातिवाद का ढिंढोरा पीटने वालों को चेतावनी देते हुए कहा है—

१. से असइं उच्चागोए, असइं नीआगोए
नो हीणे नो अइरित्ते नोऽपीहए।
इय संखाय को गोयावाइ को माणावाई?
कंसि वा एगे गिज्झे।

२. तम्हा नो हरिसे नो कुप्पे,
भूएहिं जाण पडिलेह सायं
समिए एयाणुपस्सी।

(आचारांग, श्रुतस्कन्ध १, लोकविजयाध्ययन, सू. २८-२९)

अर्थात्, यह जीव अनेक बार उच्च गोत्र में उत्पन्न हुआ और अनेक बार नीच गोत्र में। इससे

न कोई हीन हुआ और न अतिरिक्त बड़ा। यह विचार कर कौन अपने गोत्र का वाद करेगा या उसका अभिमान करेगा या उसके प्रति आसक्त होगा ?

अतः (अपने उच्च गोत्र का) हर्ष न करे, न (नीच गोत्र के कारण) दूसरे किसी के प्रति कुपित हो। विचार का ज्ञान प्राप्त करे। सुख सब जीवों का प्रिय है, यह जानने वाला पुरुष 'समित' यानी समभाव बनने का प्रयास करे।

जातिवाद से चूर व्यक्ति कदापि नहीं समझता कि भावनात्मक एकता का राष्ट्रीय उत्थान में कितना महत्त्वपूर्ण योगदान सम्भव है। उसके लिए भगवान् महावीर ने आचारांग सूत्र (श्रुतस्कन्ध १, सूत्र, ५५) के लोकसार अध्ययन में इस प्रकार तर्जनी-संकेत किया है—

तुमंसि नाम सच्चेवं जं हंतव्वंति
मन्नसि, तुमंसि नाम सच्चेवं
जं अज्जावेयव्वंति मन्नसि, तुमंसि
नाम सच्चेवं जं परियावेयव्वंति
मन्नसि एवं जं परिघितव्वंति
मन्नसि, जं उद्दवेयव्वंति मन्नसि,

अर्थात्, हे पुरुष ! जिसे तू मारना चाहता है, सोचो, वह भी तेरे जैसा ही सुख-दुःख का अनुभव करने वाला प्राणी है; जिस पर हुकूमत करना चाहता है, जिसे दुःख देने को तेरा जी चाहता है, सोचो, वह भी तुम जैसा ही प्राणी है; जिसे अपने वश में करना चाहता है, जिसे मृत्यु-मुख में डालना चाहता है, सोचो, वह भी तेरे जैसा ही प्राणी है।

इसी परिप्रेक्ष्य में आचार्य तुलसी कहते हैं—"धर्म की मूल भित्ति है विश्व-बन्धुता, विश्वमैत्री। व्यक्ति अपने परिवार के प्रति, अपने इष्ट मित्रों के प्रति मैत्रीभाव रखता है, यह कोई खास बात नहीं। पशु-पक्षी भी अपनी सन्तान के प्रति मैत्री-भाव रखते हैं। धर्म की भित्ति इतने तक ही सीमित नहीं रह जाती। उसका दायरा तो व्यापक और विश्व-भर में व्याप्त है। उसकी भित्ति है—समूचे संसार के प्रति मैत्री-भाव रखना। प्रत्येक प्राणी को आत्म-तुल्य समझो। किसी को घृणा की दृष्टि से मत देखो। धर्म-प्रचार के पन्थ चाहे अलग-अलग हों, पर सबकी आत्मा परमात्मा-स्वरूप है। कोई किसी से कम नहीं।"[1]

आचार्य तुलसी की उपर्युक्त वाणी में भगवान् बुद्ध का निम्नलिखित एकतोद्घोषक प्रवचन-पीयूष अन्तःप्रवाहित है—

खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणई॥ (धम्मपद)

अर्थात्, मैं सभी जीवों से क्षमा-याचना करता हूँ, सब मुझे क्षमा करें। सब जीवों से मेरी मैत्री है। मेरा किसी से वैर नहीं है।

यों तो जैनाचार्यों ने अपने महनीय ग्रन्थों में भावनात्मक एकता के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए उसके कल्याणीय पक्ष की बहुशः व्याख्या की है, परन्तु उन्होंने जैनदर्शन के मुख्य स्तम्भ अहिंसा और स्याद्वाद को भावनात्मक एकता के सुदृढीकरण का प्रधान माध्यम स्वीकार किया है। इसलिए, जैन-साहित्य में भावनात्मक एकता की चर्चा प्रकारान्तर से अहिंसा और स्याद्वाद का ही कीर्तन है। अहिंसा भावनात्मक एकता का व्यावहारिक पक्ष है, तो स्याद्वाद वैचारिक पक्ष। स्पष्ट है, जब तक मानव-मानव के बीच भावनात्मक एकता स्थापित नहीं होगी, एक-दूसरे के प्रति दया, ममता और समता की स्निग्धता नहीं उत्पन्न होगी, तब तक अहिंसा अस्तित्ववती नहीं हो सकेगी। इसी प्रकार, जब तक वैचारिक एकता या समता का उदय नहीं होगा, तब तक स्याद्वाद सुप्रतिष्ठ नहीं हो सकेगा। प्रसिद्ध जैनाचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने परस्पर राग-द्वेष और भेद-भाव के अप्रादुर्भाव को अहिंसा माना है और इसे ही जैनागम का मुख्य लक्ष्य कहा है—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसा जिनागमस्य संक्षेपः॥
(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लो० ४४)

अभिमान, भय, घृणा, काम, क्रोध, शोक, मोह आदि भावनात्मक एकता के विनाशक तत्त्व हैं, जिनका पर्याय ही हिंसा है। अतएव, हिंसा-त्याग के बिना

---

1. प्रवचन-डायरी, १९५३; प्र. जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा, कलकत्ता, पृ. ७२।

अहिंसा की स्थिति सम्भव नहीं और बिना अहिंसा के भावनात्मक एकता का उद्गम और विकास अकल्पनीय है। महात्मा गान्धी ने भी इसी अहिंसा यानी भावनात्मक एकता के बल पर बिना रक्तपात के राष्ट्र को प्रगति-पथ पर द्रुतगति से बढ़ चलने का स्वप्न साकार किया था।

स्याद्वाद अपने विचारों के साथ ही दूसरे के भी विचारों को आदर देने का पक्षपाती है। वह किसी एक को प्रश्रय न देकर समष्टि का समादर करता है। उसमें अनेक धर्मों की स्वीकृति होने के कारण ही वह अनेक धर्मवाद या अनेकान्तवाद के नाम से अभिहित होता है। लघीयस्त्रय में अकलङ्कदेव ने लिखा है—'अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वादः।' अतएव अनेकत्व में एकत्व और एकत्व में अनेकत्व की दृष्टि उत्पन्न होने पर ही हम एक-दूसरे की भावना को सम्मान दे सकते हैं और तभी हमारे हृदय में भावनात्मक एकता बद्धमूल हो सकती है।

इस प्रसंग को हम और स्पष्ट करें। भावनात्मक एकता के लिए विचार और आचार दोनों की एकता अपेक्षित है। विचारों का मूल है स्याद्वाद, तो आचारों का मूल है अहिंसा। निष्कर्ष यह कि न किसी के साथ अन्याय हो, न किसी प्राणी के जीवन के साथ खिलवाड़। सब सब के विचारों को समझें और सब सबके जीवनों की रक्षा करें। जिनों के उपदेश का यही मूल सिद्धान्त है।

हितोपदेशी जिनों की दृष्टि में प्राणिमात्र के मनोभाव समानधर्मा हैं। उनके उपदेश व्यक्ति-विशेष, वर्ग-विशेष या सम्प्रदाय-विशेष की हित-कामना के लिए नहीं हैं, वरन् प्राणिमात्र के हितभावन हैं। वे केवल मनुष्यों के ही हित की बात नहीं बतलाते, बल्कि जंगम और स्थावर सभी प्राणियों के हित की बात बतलाते हैं। उनका मूलमन्त्र ही है—'मां हिंस्यात् सर्वभूतानि।' किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो। न वे पशुओं को वध्य कहते हैं और न वर्ग-विशेष को अवध्य। उनकी वीतराग दृष्टि में सब बराबर हैं। न वे ब्राह्मण की पूजा करने का उपदेश देते हैं, न चाण्डाल से घृणा करने का। इसलिए आचार्य अकलङ्कदेव ने लघीयस्त्रय में प्रणाम करते समय स्याद्वादी शब्द से समलंकृत किया है—

धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमो नमः।
ऋषभादिमहावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये॥

जैनों की स्याद्वाद-शैली से लौकिक लाभ यह है कि जब हम भावनात्मक एकता की दृष्टि से अन्य व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करेंगे, तब पारस्परिक भ्रममूलक दृष्टिजन्य विरोध-विवाद का अन्त होकर निश्चय ही मैत्री में एकत्व की सृष्टि होगी।

भावनात्मक एकता की समस्या के उपर्युक्त विहंगावलोकन से यह तथ्य निकलता है कि सम्प्रति विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के बीच हिंसामूलक व्यवहार का प्राधान्य है। स्वार्थपरता, बेईमानी, धोखेबाजी ये सभी हिंसा के ही प्रतिरूप हैं। इनके रहते हुए जैसे दो व्यक्तियों में प्रीति, मैत्री और एकता नहीं हो सकती, वैसे ही राष्ट्रों और जातियों में भी एकता नहीं स्थापित हो सकती। 'जियो और जीने दो' का जो सिद्धान्त व्यक्तियों के लिए है, वही जातियों और राष्ट्रों के लिए भी है। भावनात्मक एकता के लिए विभिन्न राष्ट्र और जातियाँ जब तक अहिंसा और स्याद्वाद के सिद्धान्त को नहीं अपनाते, तब तक विश्व की समस्याएँ नहीं सुलझ सकतीं।

ध्यातव्य है कि समग्र जैन-साहित्य की सर्जना स्याद्वाद और अहिंसा के सिद्धान्त पर ही हुई है, इसलिए उसमें भावनात्मक एकता का सुरम्य सन्देश राष्ट्रीय अभ्युत्थान के निमित्त पदे-पदे प्रतिध्वनित है।

संस्कृत राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति का साधन तथा उत्तर और दक्षिण के बीच ऐक्य उत्पन्न करने वाला एक पुल है।

—श्री अनन्तशयनम् आयंगर

डा० प्रभाकर माचवे

भारतीय साहित्य में भावनात्मक एकता

बार-बार प्रश्न उठाया जाता है कि भारत की एकता के सम्बन्ध में साहित्य का क्या लक्ष्य है ? प्राचीन काल में ठीक था, जब इतने जनपद नहीं थे, इतनी प्रादेशिक भाषाएँ विकसित नहीं थीं, संस्कृत एक प्रकार से सब भाषाओं को एक सूत्र में बान्धने का साधन थी। वही हमारी भावनात्मक एकता की प्रतीक थी।

मध्ययुग में भी दो स्तरों पर साहित्यों में एकता थी—भक्ति-आन्दोलन में साधु-सन्त रमते-राम थे। महाराष्ट्र के नामदेव की वाणी पंजाब के आदिग्रन्थ में मिलती है; बाउल गाने वाले सन्तों ने बंगाल के हिन्दू-मुसलमानों को एक किया था; जयदेव और विद्यापति, चण्डीदास और तुकाराम, नरसी मेहता और मीराबाई, पोतन्ना और सूरदास एक ही कृष्ण-गाथा से आप्लावित थे। संगीत और संकीर्तन, यात्रा और नाम-महिमा-प्रचार ने मध्ययुगीन वैष्णव सन्त-साधना में एक-सा स्वर उंडेला था—चाहे वे पंढरपुर के वारकरी हों, चाहे दिव्य-प्रबंधम् गाने वाले 'आलवार', या वृन्दावन के अष्टछाप के कवि ! यह सारा ईश्वरार्पित-साहित्य का एक ही शांत और वात्सल्य रस था।

दूसरा स्तर था दरबारी कविता का। मध्ययुग के जीवन में राजा-महाराजा, मांडलिक-सामन्त, बादशाह-सुलतान का माहात्म्य बढ़ गया था। इसने एक ओर भट्टि-काव्य, भाट-चारणों के वीर-काव्य, 'आल्हा' और पोवाडे, दूहा और रयोद्धता और पद्धरी छन्द को प्रोत्साहन दिया। भूषण त्रिपाठी ने अतिरञ्जित कवित्त रचे, दक्षिण में प्रबन्ध-युग में कई रचनाएँ युद्ध-प्रसंगों को लेकर लिखी गईं। दूसरी ओर अत्यन्त ह्रासोन्मुखी विकृत श्रृङ्गार का महत्त्व भी बढ़ा। राजाओं की प्रियाओं पर 'रसिक-प्रिया' की रचना हुई, और एक-एक दोहे पर एक-एक अशर्फी सतसैयों पर मिलने लगी; 'लावणियों' में मराठी में उत्तान श्रृङ्गार का खुला वर्णन मिलने लगा, वर्जित प्रेम की कहानियाँ हीर और राँझा, सोहणी-माहीवाल, शशी-हाशम बनकर जनता की ज़बान पर चढ़ीं। जहाँ वीर और श्रृङ्गार-रस का यह सूत्र देशभर के साहित्य में अंतरंग धारा बनी; दूसरी ओर करुण-रस, जोकि साहित्य का अधिक स्थायी अंग है, जिसकी आर्तता सन्त और भक्त कवियों की 'बानी' में सुन चुके थे सोलहवीं सदी तक, सत्रहवीं-अट्ठारहवीं सदी में लोकगीतों में बिखर गया। प्राकृत गाथाओं से अँग्रेज़ों के आने के बाद छप्पन के अकाल का उल्लेख करने वाली इन जनपद-गीतियों में, जाँते के गानों में और पहाड़ों में दूर ब्याही हुई बहन की भाई की याद में, तेलुगु में, 'योंकि पाट्टलु' में और महाराष्ट्र के 'अपौरुषेय वाङ्मय' (यानी पुरुषोंने न बोला हुआ साहित्य या 'स्त्री-गीतों' की ओवियों मे) यही करुणा बराबर बहती हुई मिलती है। पांडित्य के रीति-बद्ध मरुस्थल में इन्हीं गीतियों ने आर्द्रता और सजलता बराबर कायम रखी।

भावनात्मक एकता का प्रश्न अंग्रेज़ों के आगमन या आक्रमण तक प्रधान नहीं था। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ परस्पर सहिष्णुता और सह-अस्तित्व का पाठ उसी भाति सीख गई थीं जैसे पूर्वकाल में आर्य और आर्य-पूर्व (शायद मोहेंजोदाडो) संस्कृतियाँ, हिन्दू और बौद्ध-जैन परम्पराएँ और हिन्दुओं में भी शैव-वैष्णव या लोकायत विचार-धाराएँ। परन्तु पश्चिम के साथ न केवल एक भिन्न विचार और आचार-पद्धति परन्तु विज्ञान और वाणिज्य का एक ऐसा गठबन्धन हमारे जीवन पर रेला-सा उतर आया कि हम उससे चौंधिया गए। गोआ में पुर्तगालियों ने, पाण्डीचेरी-चन्द्रनगर में फ्रांसीसियों ने और सेरामपुर-कलकत्ता, फोर्ट विलियम और बम्बई-सालसिट में ब्रिटिशों ने अपना तिहरा आक्रमण हमारी साहित्य-संस्कृति पर शुरू कर दिया : धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक ! मिशनरी क्रास के साथ-साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तराज़ू और क्लाइव जैसे साहसी-सैलानी सिपाहियों की बन्दूक का कुन्दा भी आया। संस्कृत चटशालाएं और पाठशालाएं और अरबी मक्तबे बन्द किए गए, अंग्रेज़ी स्कूल शुरू हुए। भारत के राष्ट्रीय

नेताओं का जन-मानस दो धाराओं में बंट गया: एक थे जो अंग्रेज़ी और उसके साथ आने वाले समाज-सुधार और व्यापक दृष्टिकोण के हिमायती थे; दूसरे उसे 'बाघिन का दूध' मानते थे। जैसे कि विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने महाराष्ट्र में कहा और 'गौरांग-महाप्रभुओं' की इस माया से बंकिमचन्द्र की तरह बचना चाहते थे। तभी से हमारी भावनात्मक एकता का प्रश्न, सांस्कृतिक-साहित्यिक स्तर पर दो तरह की चिन्तन-शैलियों में बंट गया और अभी तक वह द्वन्द्व सुलझा नहीं है।

लोगों ने इन दो ढंग के सोचने को कई नाम दिए हैं। पुनरुज्जीवनवादी (रिवाइवलिस्ट) और अन्तर-राष्ट्रीयतावादी या इतिहास की पुनरावृत्ति चाहने वाले (पुनः वैदिक काल की ओर राम-राज की ओर या बुद्ध अशोक के समय, या फिर अकबर के काल की ओर लौटने का आदेश देने वाले) और दूसरे जो इतिहास के तर्क को निर्मम भौतिकवादी द्वन्द्वात्मकता से निर्णीत मानकर रूसो-दिदेरो-वाल्तेयर के फ्रैंच-क्रांति के चिन्तकों या मार्क्स-लेनिन वाले रूसी-क्रांति के चिन्तकों या जेफरसन-इमर्सन-लिंकन वाले अमरीकी क्रांति के चिन्तकों की ओर इशारा करते रहते हैं और बाहर से आने वाले प्रकाश और खुली हवा को बहुत ज़रूरी समझते हैं। साहित्य में भी एक पक्ष अतीत का गुणगान करने वालों का है, दूसरा पक्ष धर्मातीत समाजवाद और जनतन्त्र का पक्षधर। वैचारिक स्तर पर यह द्वंद्व तो बराबर बना रहा है और आज भी है: गीता के जो भाष्य अरविंद, तिलक, गांधी ने लिखे हैं उनमें बराबर यह ज्ञान-कर्म-भक्ति योग वाली पुरानी त्रिवेणी तीन रंगों में बहती मिलती है—चाहे समय का रथचक्र उसे 'अ-शोक' बनने की ही प्रेरणा क्यों न देता हो। मैं इस तरह से सोचने वाले दो पक्षों को पूर्वाभिमुख और पश्चिमाभिमुख; या आध्यात्मिक और भौतिकतावादी मानता हूँ। भारतीय साहित्यों में हर भाषा में गए डेढ-सौ वर्षों के साहित्य में यह धाराएं स्पष्ट हैं।

कविता में एक ओर प्रबन्ध-काव्य और खण्ड-काव्य लिख कर पौराणिक विषयों को अधिक मानवीय रूप में प्रस्तुत करने के यत्न हुए हैं। साकेत और गीत-रामायण (मराठी) श्री रामायणदर्शनम् (कन्नड़), विश्वनाथ सत्यनारायण की तेलुगु रामायण आदि एक ओर हैं। तो दूसरी ओर घन-गरज के साथ परम्परा पर आघात करने वाली ओजस्वी रचनाएं सभी भाषाओं में हैं: इकबाल ने 'नया शिवाला' चाहा (और बनाया एक पुख्ता पाकिस्तानी इबादतगाह), सावरकर ने धर्म और देश की कल्पनाओं को एक करके 'स्वतन्त्रता का स्तोत्र' लिखा। बाद में प्रगतिवादी, मूर्तिभंजक, उग्र-समाजवादी, आतंकवादी स्वरों ने आस्थाओं के ये दुर्ग ढहा दिए। जोश और नज़रुल इस्लाम, 'निराला' और श्री-श्री, शिवमंगलसिंह 'सुमन' और शरच्चन्द्र मुक्तिबोध आदिने पुरानी मान्यताओं के बदले एक नए तरह के मानवतावादी विश्वास को जगाया। ब्रह्म-केन्द्रित और सामन्त-केन्द्रित साहित्य मानव-केंद्रित हो गया। यह नया 'मानव' पश्चिम की खुर्दबीन से जंचा हुआ, भूख और वासनाओं की गठरी मात्र नहीं था; इसके दिलो-दिमाग पर विवेकानन्द और बुद्ध, गांधी और विनोबा भी छाए हुए थे। सन् '३४ के करीब शुरु हुए भारतीय साहित्य में यह क्रान्ति का उफान, यह 'विप्लव-गायन' और 'इन्सानियत के कोरस', यह 'रुद्रास आवाहन' और 'कनकावतार', यह 'विद्रोही' और 'अग्निपथ' बहुत महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि साहित्य की धारा को इन्होंने मोड़ा। एक नए तरह की भावनात्मक एकता कविता में जागी। 'अरे द्वार रुद्ध कर देवालय के एकांत अंधेरे कोने में देवता की उपासना क्यों करता है; तेरे देवता तो वहां हैं जहाँ किसान मिट्टी गोड़ रहा है, जहाँ बारह मास वह खटता है" रवीन्द्रनाथ ने 'गीतांजलि' में कहा; 'निराला' ने लिखा 'वह तोड़ती पत्थर इलाहाबाद के पथ पर' और बाद में भगवतीचरण वर्मा ने 'भैंसागाडी' लिखी और 'नवीन' ने 'जूठे पत्ते दोने' चाटने वालों पर लिखा—करुणा और अमर्ष की दिशा 'दरिद्र-नारायण' की ओर मुड़ गई।

इस भावनात्मक एकता के निर्माण में गाँधी का बहुत बड़ा प्रभाव था। वे ही 'हरिजन' के प्रश्न को दैनन्दिन जीवन के परिप्रेक्ष्य में इतने तीखे ढंग से सामने लाए। उनसे पहले भी समाज-सुधारकों ने जाँत-पाँत के सवाल को उठाया था। विधवा के दुःखों और बाल-विवाह की बुराइयों की ओर इंगित किया

था—राजा राममोहनराय, दयानन्द, जोतिबा फुले, आंबेडकर आदि का कार्य न होता तो साहित्यकार 'पण लक्षांत कोण घेतो ?' या 'सेवासदन' या 'बीशि पूबु' या 'मुनाजाते बेवा' न लिखते। पर गाँधी के आगमन के बाद 'कंठपुर' और 'कुली' और 'अछूत', 'गोदान' और 'पल्ली-समाज', और 'मालपल्ली', 'सात लाखातीस एक' और 'आलै ओशै' और 'एक चादर मैली-सी' तक 'मैला आँचल' की चर्चा करने वाले ग्राम-जीवन की कठिनाइयों पर उपन्यास लिखे गए। 'छः बीघा ज़मीन' (छमण अठगुंठ) और 'दो बीघा ज़मीन' की चर्चा साहित्य और सिनेमा में हुई; 'सेउ जी पातर काहिनी' (हरी पत्तियों की गाथा—चाय-बागानों पर बिरिंचिकुमार बरुआ का असमिया उपन्यास) या र. वा. दिघे के मराठी उपन्यास 'माँ खेत में खड़ी है' की रचना हुई। साहित्य के आधुनिक गद्य-क्षेत्र में शहर से गांव की ओर, प्रतिष्ठित भद्र-वर्ग से लुंठित-मुंचित उपेक्षित दीन-दलितों की ओर, रोमांटिक ढंग से तटस्थ दूरी से पनिहारिन 'ग्राम्याओं' के अंचल-पट, कटितट, घट की ओर देखते रहने के बजाय 'गुनिया के यौवन' की ओर कथाकारों का ध्यान गया। 'पथेर पांचाली' जैसे फिल्म बने, 'सुजाता' जैसे फिल्म बने। साहित्य का प्रधान रस करुणा का स्रोत उस दिशा में बहा, जहाँ उसे अनिवार्य रूप से जाना था।

चीन के आक्रमण के बाद साहित्य में वीर-रस की एक प्रबल धारा उमड़ी। क्रोध विश्वासघाती और अन्ध-साम्राज्य-लिप्सु चीनी शासकों पर और उनकी संकीर्ण विचारधारा के प्रति प्रकट होना स्वाभाविक ही था। परन्तु सिर्फ गुस्से के इज़हार से स्थायी साहित्य निर्मित नहीं होता। वीर-रस का अपचय एक ऐसे स्थान या व्यक्ति या व्यवस्था पर कर देने से क्षणिक तृप्ति हो सकती है। जैसे भारत-विभाजन के समय, बहुत-सा साहित्य, क्रोध शांत करने के लिए, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, बंगाली साहित्यकारों ने इस या उस जमात पर या सम्प्रदाय पर अपना गुस्सा उतार कर क्षणिक उत्तेजना पैदा करने के लिए लिख डाला था। उसका स्थायी मूल्य नहीं होता। चीन के आक्रमण के बाद उफने हुए क्रोध को साहित्य में स्थायी रूप देना चाहिए था, आत्म-शोधन की दिशा में उसे मोड़ना ज़रूरी था। पर हमारे लेखकों की अधीरता और छिछलेपन ने वैसा फिलहाल तो होने नहीं दिया। स्थायी महत्त्व की पुस्तकें इस विषय पर भी लिखी जाएँगी, जब भावना और विवेक का सही परिपाक होगा।

दुर्भाग्य से आधुनिक साहित्य में शृङ्गार-रस को उचित दिशा नहीं मिल पाई। पहले वर्जनाओं के साथ अशरीरी प्रेम की बहुत चर्चा होती रही—रावीन्द्रिक और छायावादी युग में। उसकी प्रतिक्रिया में स्थूल मांसलता का वर्णन जुगुप्सा की हद तक साहित्य में आया और 'उग्र' और मंटो जैसे लेखक प्रायः सभी भाषाओं में हुए। सब मोपांसा और कुप्रीन बनना चाहते थे। गाँधीवाद ने एक और प्रकार की शुद्धिवादी वर्जना का लेप दिया। पर आज राष्ट्र के जीवन में, यदि हिन्दी फिल्मों की लोकप्रियता कोई मानदण्ड लोकरुचि का हो तो, अबाध मात्रा में पनियल और विकृत शृङ्गार का परनाला-सा बहता हुआ नज़र आता है। ऐसा लगता है कि राष्ट्र-जीवन में अन्य अंगों की तरह भ्रष्टाचार का यह ज्वलंत, दिगम्बर रूप है। साहित्य के क्षेत्र में भी सारी शेरो-शायरी की किताबें, 'प्रेमगीतों' के संकलन (चाहे पुरुषों के हों या स्त्रियों के) और आत्महत्या से भरी कहानियों की जैसे बाढ़ आ गई है। इस क्षेत्र में पूर्वाभिमुख और पश्चिमाभिमुख साहित्य-प्रेमी मानो एकराय हैं। 'नर-नारी' पत्रिका में प्राचीन कामसूत्रों की व्याख्या छपती है; कहानियों की पत्रिकाओं में अमरीका और फ्रांस के कामुक साहित्य का अनुवाद धडल्ले से बिकता है। साहित्य-सम्मेलन में 'अश्लीलता' के प्रस्ताव पर बहस होती रहती है। और कहीं कोई रोक नहीं है। जैसे शराबबन्दी वाले सूबों में 'हाथ-भट्टी' या अवैध ढंग से शराब खींचना और बेचना बढ़ा और अपराध-वृत्ति भी बढ़ी; जैसे वेश्याओं के निश्चित मुहल्ले साफ करने के जोश में वेश्यावृत्ति सूक्ष्म रूप से अन्यत्र-सर्वत्र फैल गयी—साहित्य में भी शृङ्गार के स्वस्थ चित्रण रसास्वादन के विषय में वैज्ञानिक ढंग से हमें सोचना होगा। अन्यथा यहां आकर हमारी भावात्मक एकता अभावात्मक अनेकता में खंडित हो जायगी, ऐसा भय है।

श्री बालकृष्ण बलदुवा

विश्व-काव्य और भावनात्मक एकता

दो या अनेक मानवों में किसी एक ही केन्द्र-बिन्दु के प्रति आकर्षण उनमें सदृश भावनाएँ उत्पन्न करता है और सदृश भावनाओं की अनेक बार अनुभूति उनमें भावनात्मक एकता का सृजन करती है। आदर्श, राह, पड़ाव-टिकाव और लक्ष्य की समानता भावनात्मक एकता को पालित-पोषित करती है। जितनी ही अधिक यह समानता होगी—रहेगी, उतनी अधिक दृढ भावनात्मक एकता बनेगी-टिकेगी।

अपने भौतिक रूप में मानव स्वयं में सत्-असत्, शिव-अशिव, सुन्दर-असुन्दर का अद्भुत आलय रहा है, परन्तु मानवता मात्र सत्यं-शिवं-सुन्दरम् का ही समन्वय है। मानव राग-द्वेष, मद-मोह, काम-क्रोध, लोभ-लालच आदि अवगुणों से नितान्त अछूता नहीं है, किन्तु मानवता सदैव समता-बंधुत्व, प्यार-आदर, सेवा-सहयोग, त्याग-तपस्या आदि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए हितकर-उन्नतिकर गुणों से ही विभूषित रही है। यों मानवता व्यक्ति-मानव को विश्व-मानव बनाती है और बनाती है उसके मन-मस्तिष्क को निखार कर, उनमें उदात्त विचार-भावनाएँ प्रबलतम कर। अन्ततोगत्वा व्यष्टि-समष्टि का स्वेच्छित एकीकरण होता है सर्वांशतः भावनात्मक एकता की सतत अनुभूति द्वारा।

धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में, इतिहास बताता है, कभी मानव आगे बढ़ा है तो कभी मानवता, किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में सदैव मानवता ही आगे बढ़ी है। सनातन से साहित्य के क्षेत्र में मानवता ही वंदनीय रही है। वे ही साहित्यकार स्मरणीय रह सके हैं, जिनकी रचना-सृष्टियाँ मानवता की ज्योति से प्रभान्वित हैं।

साहित्य के क्षेत्र में सबसे प्राचीन रूप है—पद्य, जिसकी सर्वोत्कृष्ट विधा है—काव्य। काव्य में सदैव सब कहीं मानव का हृदय-पक्ष सर्वाधिक उभड़ा है, उमड़ा है और भावनात्मक अनुभूतियों में विश्व के सभी श्रेष्ठ कवियों में अद्भुत रूप से एकरूपता है, एकरसता है। इसी कारण सभी जातियों और देशों के श्रेष्ठ कवि समस्त विश्व में आदृत, प्रशंसित और प्यारे हैं। उनके काव्य-कलाप सभी जातियों और देशों को विभोर करते हैं, प्रेरणा देते हैं।

विश्व-काव्य मानव और मानवता की भावनात्मक एकता का सर्वोत्तम प्रतीक है साथ-ही-साथ सर्वोत्तम प्रेरक भी। विश्व-काव्य की कोई भी श्रेष्ठ कृति सभी देशों और समाजों के पाठकों में एक-सी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। 'यह तो मेरे ही मन की बात है', "इसमें तो मेरे ही आदर्श का चित्रण है", "नितान्त सत्य है यह!", 'कितनी सारगर्भित बात कितने सुन्दर रूप में कह दी गई है!" आदि-आदि। प्रतिक्रिया की यह समानता भावनात्मक बंधुत्व स्थापित करती है। कवि के प्रति प्यार-बंधुत्व अनजाने ही स्वेच्छया हमें उसके समाज और राष्ट्र के प्रति सहृदय बना देता है और हमारे कदम राष्ट्रीयता से अन्तरराष्ट्रीयता की ओर अपने-आप बढ़ने लगते हैं। हममें विश्व-मानव की, मानवता की शनैः-शनैः बढ़ोतरी होने लगती है। कालिदास, उमर खैय्याम, रवि ठाकुर आदि के माध्यम से पश्चिम ने पूर्व को अपने निकट पाया, तो शेक्सपियर, शेली, लाँगफेलो आदि के माध्यम से पूर्व ने पश्चिम की आत्मीयता अनुभव की। परिणामस्वरूप—पूर्व और पश्चिम मिलने लगे, सहृदय हुए एक-दूसरे के प्रति, समझने लगे एक-दूसरे को और विरोध-वैषम्य घटे, बंधुत्व सहयोग बढ़े।

भावनात्मक एकता उत्पन्न कर बंधुत्व बढ़ाने का यह कार्य विश्व-काव्य सहस्रों वर्षों से कर रहा है। एक सूर्य-स्तुति के कुछ अंश यों हैं—

अभिवादन, ओ सूर्य! तेरे प्रबल उदय पर।
तू उदित है, तू प्रकाशान्वित है। मेघ-समूह एक ओर हट गए।

तू रात्रि के छिपे द्वार से आता है।
शोक-मग्न जीवों की आत्मा प्रफुल्लित करता।
सत्य-प्रतिज्ञ, शान्त हृदय तेरा प्रकाश पान करने
को उठते हैं।

तू वर्तमान है, अतीत है, भविष्य है।
अभिवादन, ओ सूर्य ! सुषुप्ति से जीवन जगाने वाले।
तू उदित है। तू प्रकाशान्वित है। तेरा आभामय
श्रीमुख दृष्टिगोचर हो रहा है।
असंख्य वर्ष बीत गए। हम उन्हें गिन नहीं सकते।
असंख्य वर्ष आएँगे। तू उनसे परे है।
अभिवादन, ओ सूर्य ! तेरे प्रबल उदय पर।"

सूर्य की यह स्तुति मिस्री भाषा में भले ही हो, परन्तु है सभी के मनों को छूने वाली। भले ही ५५०० वर्ष पहले के 'मृतक-ग्रन्थ' में संकलित की गई हो, परन्तु आज भी यदि कहीं दो विजातीय या दो विदेशीय साहित्य-रसिक बैठकर इस पर चर्चा करने लगें, तो कुछ क्षणों में ही वे अजनवी से सुहृद् हो जाएँगे।

एक पृथ्वी-स्तोत्र यों है—

"ऐ नित्य समय से अति गहरी नींव रखने वाली, विश्वधात्री प्राचीनतम, महान् पृथ्वी, मैं तेरे गीत गाता हूँ।

"सागर-वासी समस्त वस्तुएँ, गगन-गामी समस्त विहंगम और स्वर्गीय भूमि पर पालित-पोषित चंचल जीव—ये सब तेरे हैं। इन सबको तू अपनी राशि-राशि विभूति से रचती है।

"ऐ आदृत देवि, तुझसे सुन्दर शिशु जन्मते हैं और प्रत्येक वृक्ष पर परिपक्व, बड़े-बड़े फल लटकते हैं।

क्षणभंगुर मानव-जीवन पर तेरा अधिकार है। तेरी शक्ति पोषण और विनाश दोनों ही करती है।

वे सुखी रहते हैं, जिन्हें तेरी कृपा-दृष्टि का सहारा है। उनके चतुर्दिक् सभी वस्तुएँ निष्कलंक रूप से उत्पन्न होकर फलती-फूलती हैं।

उनके लिए जीवनदायक खेत फसल-भार सहते हैं। उनके पशु खूब बढ़ते हैं और उनके घर धन से भरे रहते हैं।

ऐसे आदृतजन सलोनी स्त्रियों के निवास-स्थान, सुन्दर स्वतन्त्र नगरों में रहते हैं। उनके पुत्र यौवन की नव-विकसित प्रफुल्लता से विभोर रहते हैं और उनकी प्रसन्न पुत्रियाँ निर्द्वन्द्व, निःशोक, हरित-राजि बीच कोमल पुष्पों पर आह्लादित नृत्य और आनन्द-कर गीत साथ, उनके चारों ओर क्रीडा करती हैं।

विभव-शक्ति, आदृत देवि, तू ऐसे आनन्दों की प्रदात्री है।

देव-धात्री, तारिकान्वित गगन-पत्नी, प्रणाम। दया-दृष्टि बनी रहे। इस छोटे-से गीत को सुखद जीवन देना। तू और अन्य गीत विस्मृत न रहेंगे।"

ग्रीस के महाकवि होमर (९०० ई० पूर्व) की यह रचना भारत ही क्या धरती के किसी भी छोर पर बसने वाले को अटपटी नहीं लगेगी। सीधे-साधे ढंग से कही गई माँ की विशेषताएँ किस पृथ्वी-पुत्र को सुहावनी न लगेंगी ?

होमर से चार सौ साल बाद ग्रीस में ही एक प्रार्थना लिखी गई—

"प्रभो, प्रार्थना स्वीकृत हो।
टेढ़ी-मेढ़ी राह बचाऊँ।
सीधी, सच्ची दौड़ लगाऊँ॥
जिससे ऐसा नाम न हो,
जिसे श्रवण कर बच्चे मेरे।
शरमा कर नीचे को हेरें॥
ज़र-जमीन जो चाहते हों,
उन्हें खोजने दे तू उनको।
सम्मानित समाधि दे मुझको॥
सद्गुण से सज्जित करने को।
दुर्गुण से नफ़रत भरने को॥
प्रभो, प्रार्थना स्वीकृत हो।"

कविवर पिण्डार की यह प्रार्थना किसकी प्रार्थना न होगी ? सभी तो चाहेंगे अपने बच्चों के लिए नेकनामी की विरासत छोड़ना।

आध्यात्मिक स्तर पर यही काँक्षा ईश्वर को अपना पालक समझने लगती है—

"मेरा पालक है—ईश्वर।
मुझे अभाव किस बात का ?"
वह मुझे हरितावलि में सुलाता है। वह मुझे
शान्त नदी तट पर ले जाता है।

वह मुझे अन्तःकरण लौटाता है, अपने विरद की
रक्षा हेतु वह मुझे भलाई का मार्ग दिखाता है।
हाँ, मृत्यु की घाटी में चलने पर भी मैं बुराई
से भय नहीं खाऊँगा, क्योंकि तू मेरे साथ है।...
निश्चय ही समस्त जीवन भलाई और दया मेरे
पीछे-पीछे चलेंगी और मैं सदैव के लिए
ईश्वरीय निवास-गृह में वास करूँगा।"
—पवित्र ग्रंथ (बाइबल), (यहूदी भाषा)

यही विश्वास फारस के प्रसिद्ध सूफी कवि हल्लाज से कहलवाता है—'हो तेरी इच्छा-पूर्ति'—

"ओ मेरे अस्तित्व-सार! आकाँक्षाओं के लक्ष्य!
ओ मेरे वाणी, भावों संकेतों के अध्यक्ष!
ओ मेरे सम्पूर्ण पूर्ण! द्रष्टा! श्रवणों की शक्ति!
ओ मेरे पूर्णत्व! तत्व! रज-कण की सूक्ष्म विभक्ति!
ऐ जीवन के अर्थ, सार, ध्येयों की जीवित मूर्ति!
ऐ मेरे मालिक-स्वामी! हो तेरी इच्छा-पूर्ति॥"

सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी सूफी कवि रूमी भी उसी की काँक्षा अनुसार अपने को ढालना चाहते हैं—

'समस्त संसार बीच मैंने केवल तुझे ही चुना।
क्या तू मुझे विषाद से विश्राम न देगा?
मेरा हृदय तेरे हाथ में लेखनीवत् है।
तू मेरे विषाद और आह्लाद—दोनों ही को लिख सकता है।
तेरी काँक्षा के अतिरिक्त मुझमें कौन काँक्षा रह गई?
तू ही मुझमें कभी कांटे को, कभी फूल की
उत्पत्ति करता है।
यदि तू मुझे ऐसा ही चाहता है, तो मैं ऐसा ही रहूँगा।
यदि और किसी भांति, तो तेरी काँक्षा का विरोध न करूँगा।'

यह अविरोध आता है प्रेमी में प्रियतम के प्रति सम्पूर्ण आत्म-समर्पण की भावना द्वारा। प्रेम सभी अन्य अनुभूतियों को आत्म-सात् कर सकता है और प्रेमी का सर्वस्व बन उठता है। इसे भी वह प्रियतम के 'श्रीचरणों में'—चढ़ा देता है, कहता हुआ (अंगरेज कवि स्विनबर्न के शब्दों में)—

"प्रेम छोड़कर और नहीं है कुछ भी मेरे पास।
इसीलिये तुमको देता हूँ, प्रिय-तेरा ही प्रेम॥
दे वह तुमको और वस्तु, जो रखता हो देने को।
जिसके पास पंख हो, उड़ने का वह करे प्रयास॥
मुझ पर हृदय, उसे श्रीपद पर रखना मेरा नेम।
क्योंकि प्यार तेरा आवश्यक है जीवित रहने को॥"

प्रियतम के श्रीचरणों में अपना हृदय समर्पित कर प्रेमी में एक ऐसी विभोर तल्लीनता आ जाती है, जिसका अन्त नहीं। समय भी उसे लुढ़काने में असमर्थ हो उठता है। विश्व-प्रसिद्ध उपन्यासकार, कवि-श्रेष्ठ विक्तर यूगो (१८०२-१८८५) (फ्रांस) ने इस अवस्था का बड़ा ही समर्थ चित्रण किया है—

'जब से मैंने अपने ओठ तेरे
लबालब प्याले पर लगाये हैं,
जब से मैंने अपना पीत मुख
तेरे हाथों बीच रखा है।
जब से मैंने तेरा हृदय उसकी समस्त लाली और
उसकी छाया बीच छिपी समस्त दुर्लभ सुगन्धि को
जाना है।
जब से मैंने एक हर्षित क्षण तेरे हृदय के समस्त
रहस्य बताने वाले शब्द सुनने का अवसर
पाया है।
जब से मैंने तेरा रुदन, तेरा हास्य, अपने ओठों
पर तेरे ओष्ठ और अपनी आँखों पर तेरी सदैव
आवरणमय तारिका की रश्मि—केवल एक
रश्मि—को झलमलाते—चमचमाते जाना है।
जब से मैंने अपनी जीवन-सरिता में तेरे दिवस-
पुष्पों में से तोड़ी गई एक पत्ती के गिरने
का अनुभव किया है।
तब से,
मुझमें साहस आ गया है कि मैं द्रुतगति-परिवर्तन-
शील घड़ियों से कहूं—
"चली जाओ, अपने रास्ते चली जाओ। मैं
कभी वृद्ध नहीं होने का।
अपने समस्त मुरझाए फूलों के साथ अन्धेरे
गह्वर में बह जाओ। मैं अपने हृदय बीच एक
फूल लिए हूँ, जिसे कोई नहीं तोड़ सकता।
तुम्हारे भगते पंख टकरा भले ही जाएँ परन्तु वे
लुढ़का नहीं सकते उस प्रेम-प्लवित प्याली को,
जिससे मेरे ओठ तर हैं।
मेरे हृदय में उससे कहीं अधिक है, जितनी तुम
जमा कर बर्फ कर सकती हो।

मेरी आत्मा में उससे कहीं अधिक प्रेम है,
जितना तुम उसे विस्मृत करा सकती हो ।"

प्रेम की आग में तपा कर विक्तर यूगो काल का पानी उतार देते हैं, तो लेटिन कवि केटुलस ने प्रेम-शिविर से शान्ति की ऐसी तुरही बजाई है, जिसका निनाद दो हजार वर्ष बीतने पर भी मृत्यु-पदचाप मद्धिम नहीं कर पाई है—

'यदि सभी मेरी भांति प्रेममय जीवन व्यतीत करते,
तो रक्त-रंजित तलवारें और लोहत्राण न होते।
तब प्रेम-शिविर के अतिरिक्त और कहीं की
ढोल-तुरही शांतिमय निद्रा भंग न करतीं।
परन्तु मूर्ख जीवित रहते हैं और अपने क्षुद्रदीप
को नष्ट करते हैं और कष्ट सह-सहकर अनन्त
रात्रि को खोजते हैं।
जब, उचित समय पर मृत्यु मेरे जीवन-भाग्य
का अन्त कर दे—
तब मेरी अर्थी को रोते-कलपते मित्र पीड़ा न पहुँचायें !
विजय-दीप्ति-प्रतिभासित प्रेमी आयें
और मेरी प्रसन्न समाधि को मीठी क्रीड़ाओं से सजायें !"

कवि-श्रेष्ठ केटुलस ने जिन विजय-दीप्ति-प्रतिभासित प्रेमियों की मीठी क्रीड़ाओं से अपनी समाधि सजाने की काँक्षा की है, उन प्रेमियों को विजय-दीप्ति सहज ही नहीं मिली है। बड़ी-बड़ी झकझोरें सहनी पड़ी हैं उन्हें। पश्चिम की मीरा, ग्रीक कवियित्री सफो (६३०-५७० ई० पूर्व) ने अपनी झकझोर यों व्यक्त की है—

'पर्वतीय वृक्षों को मारुत झंझा में झकझोरे जैसे,
मेरा तन, मेरा मन, मेरा जीवन प्रेम झकोरे वैसे।'

जापानी कवि यकामोसी की टीस की तीक्ष्ण साँकेतिक अभिव्यक्ति हुई है 'स्वप्न-संयोग' में—

"ये स्वप्न-संयोग।
कितने विषादपूर्ण हैं ये—
जब चमक कर, जग कर,
इधर-उधर टटोलने पर भी,
किसी का स्पर्श नहीं होता!"

जापानी-कवि-शिरोमणि हितोमेरो तो निराशा की सीमा पर कर तुल गए हैं मर कर भी प्रिय-मिलन-प्राप्ति के लिए 'मरने दो!" कहकर—

"यदि मैं प्रेम में मृत्यु प्राप्त करूँ,
तो क्या हानि?—मुझे मरने दो!,
क्योंकि तब तो मेरी बहिया
मेरे घर की ड्योढ़ी लाँघेगी ही।।"[1]

प्रेम-जगत् के जाने-माने कवि-कुल-भूषण हाफ़िज़ भी तड़पे हैं और तड़पन से छुटकारा पाने को साकी के माध्यम से मधु-पात्र और मृत्यु-कारवाँ तक पहुँचे हैं—

"साकी! भगवान् के लिए आ और मेरा मधु-पात्र
भर दे! भग्न हृदय के लिये, ओ साकी! मदिरा ला।
क्योंकि यह अनोखा प्यार, जो पहले कितनी
सीधी और भोली वस्तु दीख पड़ती थी, कितना
कठिन है। आह कितना कठिन है।
क्योंकि नैश-समीरण ने चंचल युवती की धवल
भौंहों पर आ पड़ी सुगन्धित अलकों का चुम्बन
किया और इधर से जाते समय उस चुराए
चुम्बन में से आधा मुझे दे दिया।
किसने सोचा होगा कि इस-सी अत्यन्त ही छोटी
वस्तु के लिए किसी का हृदय टूट जाएगा—
रक्त बहाएगा?
मदिरा, साकी! मदिरा—लाल-लाल मदिरा।
इतनी तो दया कर।
ओ साकी! ईश्वर से प्रार्थना कर कि मैं मर जाऊँ।
यदि कहीं इसी समय मैं वह घण्टी सुन पाता,
जो यात्री को यात्रा के लिए प्रस्तुत होने का
उपदेश करती है!
फिर चाहे दूसरा-विश्राम-स्थल स्वर्ग या नरक
ही क्यों न होता।
मृत्यु का अनोखा कारवाँ—मुझे अन्धेरी यात्रा
का भय नहीं। भयावनी नदी और भँवर-चक्रों
को मैं सहर्ष पार कर लूंगा।
आह, वे जो उस पार रहते हैं, इस भार को क्या
जानें, जिसे हम उठाए हैं?
प्रतिभासित, आह्लादित आनन लिये मर कर,
वे प्रेम के विषम रहस्य को क्या जानें?
हाँ, प्रेम के, जिसने मुझे इस तरह मूर्ख बना
दिया है।
हाफ़िज़ और मूर्ख?—हाँ, मूर्खों में मूर्ख।"

प्रेम अब फारस के महा विद्वान् हाफ़िज़ को और

भारत के महामुनि नारद को मूर्ख बना सकता है, तो रूस के महाकवि पुशकिन को वह एक प्रवंचक याचक बना दे, तो आश्चर्य ही क्या? पुशकिन ने ही लिखा है—

"मैंने प्यार किया तुमको, कर लूंगा यह भी मैं स्वीकार,
अब तक उसकी कुछ चिनगारी बनी हुई हैं ऊष्मागार।
पर न, देखना और अधिक पीड़ा यह तुम तक ले आये,
मैं न चाहता तुम पर फिर से व्यथा अँधेरी छा जाये॥
आशाहीन, मूक-जिह्वा रहकर भी अतिशय प्यार किया।
कायर, ईर्ष्यावानों की कसकन का अनुभव खूब लिया॥
कितना था सुकुमार प्रेम मेरा! कितना सच्चाई सार!
करता हूँ प्रार्थना—ईश दे फिर से तुमको वैसा प्यार॥"

पुशकिन के प्रेमी को प्रिय पर व्यथा अँधेरी छा जाना सह्य नहीं, तो महाकवि शेक्सपियर के प्रेमी को प्रिय की नश्वरता की आशंका विचलित कर देती है और वह नश्वर को अविनश्वर बनाने का दुस्सह दायित्व अपने ऊपर सहर्ष ले लेता है, सोचते हुए—

"पीतल हो या लोहा हो या पृथ्वी हो अनंत सागर,
सबके बल पर दुखमय नश्वरता करती अपना शासन।
इस विनाश के सम्मुख कैसे सुन्दरता टिक पायेगी,
जिसके कार्य न कभी पुष्प से होते अधिक शक्ति-आगर?
कैसे स्थिर रह पायेगा ग्रीष्म समय का मधु-निश्वास
ध्वंसक दिवसों के विध्वंसक परिवेष्टन में वेष्टित हो,
जबकि अभेद्य शिला-खण्डों में भी होती इतनी न समर्थ
लोह-द्वार भी शक्त न इतने? समय सभी का क्षय-आवास॥
कैसा भयकारी विचार यह, आह, कहाँ पर छिप पायें
काल-जौहरी से उसके ही सबसे अच्छे उत्तम रत्न?
किसका हाथ शक्तिशाली है रोक सके द्रुतगति उसकी?
किसके कहने से उसका सौंदर्य-विनाशन रुक जाये?
अरे नहीं! कोई भी ऐसा, यदि न शक्ति इस कौतुक में—
काली स्याही में भी मेरा प्यारा खूब चमक जाये॥"

(महान् शेक्सपियर का यह प्रयत्न अनोखा नहीं है। उनके पहले इटली ही नहीं, आधुनिक पश्चिम के श्रेष्ठतम महाकवि दान्ते काली स्याही में ही अपनी प्रियतमा बीट्रिस को अमर कर चुके हैं अपने महाकाव्य 'महागान (कामेडिया (डिवाइग कामेडी))' और गद्य-पद्य में ताजमहल-सी अलबेली मीनाकारी लिए अपने प्रेम-गीत-संग्रह 'नव्यजीवन (वाइटानुयोवा)' द्वारा। निम्न गीत में प्रिय-दर्शन की अनिवार्यता और गहनता की सीधी-सादी भाषा में कितनी जोरदार अभिव्यक्ति है—

"कभी-कभी (हाँ, बहुधा) मैं सोचा करता हूँ
अपनी प्रेम-प्राप्त पीड़ा की तीव्रता पर।
तब करुणा मेरे स्वर को क्षीण कर देती है,
यह कहकर—
"क्या कहीं भी कोई और भी इसी अवस्था में है?"
प्रेम, जिसका भार-सहन हानिकर है,
मुझ पर प्रहार कर रहा है।
मुझमें जीवन का कोई भी चिह्न नहीं बचा,
केवल एक विचार के अतिरिक्त।
और वह भी तेरा होने के कारण
इस शरीर को नहीं छोड़ता, वरंच इसी में रहता है।
और तब मैं, जिसे सभी सहायक छोड़ चुके हैं,
अपनी सहायता स्वयम् करता हूँ।
और कौशल अनभिज्ञ होने के कारण, अंतिम
उपाय समझ—
प्रसन्नता से तेरा दर्शन करना चाहता हूँ।
परन्तु देखने के लिए नेत्र उठाने के साथ ही,
ऐसा मालूम पड़ता है,
हृदय से रक्त दौड़ चला,
और मेरी सभी नाड़ियां द्रुतगति से एक बार धड़क
कर रुक आती हैं।"

कवि-श्रेष्ठ शैली ने तो नश्वरता को ही नश्वर बना दिया। अस्तित्व के लिए रूप ही सब-कुछ थोड़े है!—

"संगीत मृदुल स्वर रुकने पर
स्मृति में कंपन करता रहता।
मृदु गंध पुष्प मुर्झाने पर
आह्लादित अनुभव में रहता॥
पंखुड़ी, पुष्प की मृत्यु बाद,
प्रिय-शय्या पर हों एकत्रित।
तव गमन बाद तव चिन्तन पर
स्वयमेव प्रेम होगा निद्रित॥"

यों प्रेम की पार्थिवता ने नश्वरता से बचने के लिए चिन्तन की दार्शनिकता का सहारा लिया। जैसे प्रेम निरापद नहीं है, वैसे ही जीवन भी। ऊबड़-

डा. गोपीनाथ तिवारी

भावनात्मक ऐक्य एवं रामचरितमानस

गोस्वामी जी के सामने प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे अपने काव्य-ग्रन्थ का नाम क्या रखें? रामायण नाम उनके सामने था। एक अंधेरी रात में वे अपनी कुटिया में बिछी चटाई पर लेटे सोचने लगे—क्या नाम चाहिए? मेघ के मानस में बिजली कौंध रही थी, गोस्वामी जी के मन में प्रकाश आया। उन्होंने सोचा—मेरा उद्देश्य केवल राम-कथा मात्र कहना नहीं है? राम कथाकार बहुत हैं, वे बड़े समर्थवान् हैं। फिर मैं क्यों कथा कहूं? उन्होंने अपने-आप उत्तर दिया—मुझे जग को, भारत को राम का भक्त बनाना है। किन्तु...किन्तु...राम का भक्त क्यों बनाऊं?

धर्म की मान्यताओं और पूजा-प्रणालियों के कारण समाज की विशृङ्खलता उनके नेत्रों के सामने नाचने लगी।

ज्ञानी शिव उनके हृदय-नेत्रों के सामने आए। गोसाईं जी ने प्रणाम किया। उन्होंने देखा—उनके हृदयस्थल पर कुछ विचित्र प्रकाश था। ज्ञानी श्रेष्ठ शिव बोले—ये मेरे मूर्ख उपासक द्वेष फैलाते हैं। राम का चरित्र तो मेरे हृदय में धरा है। तुलसी! तू अंधेरे में भटकती जनता को रास्ता दिखा। उनको ऐसा मन्त्र दे कि वे धार्मिक और सामाजिक भेदभावों को भूल कर एक हो जाएँ।

तुलसी ने लेखनी उठाई और लिख दिया—'राम-चरित-मानस'। वे बैठकर सोचने लगे—यह भी तो मेरे मानस से निकला जल है। बुद्धि एक पाषाण है, मानस है जल। मेरे मानस से प्रवाहित जल में सब स्नान करें और भेदभाव छोड़ कर एक हो जाएं। राम इस ऐक्य का प्रतीक होगा। जो तुलसी ने सोचा और अनुभव किया, वह मानस के माध्यम से बह निकला। फलतः राम-चरित-मानस ने समाज को भावनात्मक ऐक्य दिया। तुलसी का प्रभाव ऐसा पड़ा कि शिव और राम का विद्वेष समाप्त हो गया।

वर्णाश्रम धर्म की सीमा में समाज की स्थापना कर गोस्वामी जी ने उनको एक सूत्र में बाँधा और कहा—शरीर से तुम भिन्न हो, हृदय से नहीं। हृदय में राम की स्थापना करो। यहां आकर यवन, श्वपच, चांडाल, भंगी, ब्राह्मण, शबर, गुह, केवट—सब एक हैं। तभी तो निषाद को वशिष्ठ बरबस हृदय से लगाते हैं तो राम शबरी के बेर खाते हैं। इस हृदय के पवित्र क्षेत्र में उन्होंने भेद बढ़ाने वाले बाह्य आडम्बरों को मान्यता नहीं दी है और वैधी भक्ति के विधानों को मानस में स्थान नहीं दिया है। उनकी नवधा-भक्ति में पूजा-अर्चना, पाद-सेवन और माल्यार्पण नहीं है वरन् है—प्रेम, नामस्मरण, आत्म-निवेदन और सदाचार।

तुलसीदास ने न कोई मत चलाया और न कोई सम्प्रदाय। हां, उन्होंने धर्म का पक्ष लिया किन्तु उनका धर्म भी आडम्बर-विहीन है। उन्होंने धर्म माना है परहित को और पाप स्वीकारा है पर-पीडन को—

पर-हित सरिस धर्म नहीं भाई।
पर-पीडा सम नहीं अधमाई॥

उनकी भक्ति में ज्ञान का, बुद्धि का विरोध नहीं है, वरन् वह भक्ति का प्रधान अंग है! तुलसीदास भक्ति का लक्षण देते हुए कहते हैं—

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ,
संजुत विरति विवेक।

इस विवेकमय भक्ति-मार्ग का द्वार सबके लिए सुगम बनाने के लिए उन्होंने प्रेम को इसका आधार बनाया, न कि पूजा-पद्धति एवं मूर्ति को। रामचरित-मानस के राम का निवास मनुष्यों का मानस है। राम को भूख है केवल निश्छल हृदय की। तुलसी-काव्य का प्रत्येक पृष्ठ इस तथ्य का साक्षी है। राम अन्धे बावले होकर हृदय की पुकार पर दौड़ पड़ते हैं। दूसरे शब्दों में हृदयों की सन्धि बड़े-से-बड़ा काम कर सकती है। मानव-हृदय बड़ा शक्तिशाली है, बुद्धि से भी अधिक, यह तुलसी-काव्य का सन्देश है। अतः ईश्वरीय मानसिक स्नेह द्वारा तुलसी ने समाज को निकट लाकर खड़ा कर दिया और भारत में बुद्ध शंकर के बाद भावनात्मक ऐक्य लाने का सबसे सबल और सफल उद्योग किया। ●

प्रा. भीमसेन 'निर्मल'

भावनात्मक एकता और आन्ध्र-साहित्य

भारतीय विचार-धारा की सबसे बड़ी देन उसका आध्यात्मिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण है जो अपने विभिन्न रूपों में भारतीय संस्कृति की एकता की घोषणा करता है। भारत की भावनात्मक एकता का मूलाधार स्तंभ विभिन्न भाषाओं का विपुल साहित्य है, जिसमें हमें पग-पग पर भारतीयता के दर्शन होते हैं। भाषागत एवं विषयगत जो भिन्नता दृष्टिगत होती है, वह केवल प्रयोगगत है, केवल अभिव्यक्ति के माध्यम या पद्धति पर आधारित है। किन्तु उसका हृदय एक ही है, जो भारतीय है।

समस्त भारतीय भाषाओं के समग्र अनुशीलन करने से निम्न समानताएँ परिलक्षित होती हैं। सभी आधुनिक भाषाओं में साहित्य का प्रारम्भ लगभग दसवीं-ग्यारहवीं शतियों में हुआ है और इन हजार वर्षों का साहित्य चार युगों में विभक्त किया जा सकता है। रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का तथा इस्लामी संस्कृति के प्रसार का प्रभाव सभी भाषा-साहित्यों पर समान रूप से लक्षित होता है। मध्ययुग में भक्ति-आन्दोलन से प्रभावित रचनाएँ प्रत्येक भाषा में दृष्टिगत होती हैं। १९वीं शती में पुनर्जागरण काल में, सांस्कृतिक अध्यात्मवाद के साथ, विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का प्रभाव, रोमांटिक काव्यधारा आदि समान साहित्यिक धाराओं के दर्शन होते हैं। "पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के साथ सम्पर्क एवं संघर्ष और उनसे पुनर्जागरण युग का उदय, राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रेरणा से साहित्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का उत्कर्ष, साहित्य में नीतिवाद एवं सुधारवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया और नई रोमानी सौन्दर्य-दृष्टि का उन्मेष, चौथे दशक में साम्यवादी विचारधारा के प्रचार से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का प्रभाव, इलियट आदि के प्रभाव से नए जीवन की बौद्धिक कुण्ठाओं और स्वप्नों को शब्द-रूप देने के नए प्रयोग और अन्त में स्वतन्त्रा के बाद विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का विस्तार'—यही संक्षेप में आधुनिक भारतीय वाङ्मय के विकास की रूप-रेखा है जो सभी भाषाओं में समान रूप से लक्षित होती है। अतः स्पष्ट है कि भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है। हम यहां संक्षेप में आन्ध्र प्रदेश की साहित्य-साधना का परिचय देंगे जिससे उपर्युक्त तथ्य का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत हो।

समग्र दक्षिण भारत में आन्ध्र और समस्त दक्षिण भारतीय भाषाओं में तेलुगु, इन दोनों ने भारत की भावनात्मक एकता की सिद्धि में, अति प्राचीन काल से अपना हाथ बटाया है। भारतवर्ष के मध्यभाग में स्थित होकर आन्ध्रों ने उत्तर और दक्षिण में समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। आर्य और द्राविड भाषाओं को, साहित्यिक शैलियों को, सांस्कृतिक मर्यादाओं को समन्वित करने के प्रयास के प्रमाण हमें आन्ध्र भाषा में, साहित्य में और आन्ध्र के जन-जीवन में परिलक्षित हो सकते हैं। आन्ध्रों ने संस्कृत साहित्य की अपार सेवा की है। संस्कृत के बाद, अपभ्रंश, प्राकृत और हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में अपनी शक्ति लगाकर, संकीर्ण दृष्टि से मुक्त विशाल दृष्टिकोण का परिचय दिया है। आन्ध्र के सामाजिक जीवन का सुष्ठु अध्ययन करने पर यह प्रमाणित हो जाता है कि संकुचित प्रादेशिक भावना को आन्ध्रों ने अखंड भारत की भावना से प्रेरित होकर, भारत की भावनात्मक एकता को सिद्ध करने का सराहनीय कार्य किया है।

तेलुगु भाषा और साहित्य संस्कृत भाषा-साहित्य से इतने प्रभावित हैं कि विद्वानों में यह विषय मत-भेद उत्पन्न करता आया है कि तेलुगु भाषा संस्कृत-प्राकृत जन्य है या द्राविडी। किन्तु अधिकतर विद्वानों का मत तेलुगु को मूल द्राविडी परिवार से संबद्ध, मातृ-परिवार से, अन्य भाषाओं की अपेक्षा दूरीकृत और

संस्कृत-प्राकृत से अत्यधिक प्रभावित मानने की ओर है। परन्तु कब इस प्रकार हुआ और तदुपरान्त विकास-क्रम कैसा रहा, इन बातों का परिचय प्राप्त करने के लिए साधन नहीं के बराबर है। ११वीं शती तक लिपिबद्ध साहित्य तो मिलता नहीं है। परन्तु कुछ लोक-गीतों व शिलालेखों द्वारा तेलुगु भाषा के स्वरूप का थोड़ा-बहुत परिचय मिलता है जो नन्नयभट्ट के प्रौढ काव्य-रचना की पृष्ठभूमि का काम देता है। नन्नय ही तेलुगु के आदिकवि माने जाते हैं और उनसे पूर्व का युग 'अज्ञात युग' कहलाता है। इस युग से संबद्ध विषय-प्रधान कुछ शिलालेख और संदिग्ध लोकगीत प्राप्त हैं।

११वीं से १३वीं शती तक 'पुराण युग' या 'अनुवाद युग' कहलाता है। इस युग में वैदिकधर्म-निष्णात महाराजाओं के प्रोत्साहन से धर्मनिष्ठ कवियों ने संस्कृत के कतिपय पुराणों का अनुवाद, बड़ी कुशलता के साथ किया है। नन्नय, भीमकवि, नन्नेचोड़; सोमनाथ, तिक्कन्न, केतन्न, बद्देना, एर्रप्रिगड, नाचन सोमन्न, गौरन्न, त्रिपुरान्तक आदि इस युग के महाकवि हैं।

राजमहेंद्री को राजधानी बना कर, आन्ध्र-प्रदेश पर राज्य करने वाले पूर्वचालुक्यवशीय राजराजनरेंद्र (ई० १०१२-१०६३) की सभा में नन्नयभट्ट विद्यमान थे। उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती भाषा एवं काव्यरचना को सुव्यवस्थित रूप देकर, 'आन्ध्र-वागनुशासक' की उपाधि को सार्थक बनाया। संस्कृत शब्दों और तत्सम क्रियारूपों का आधार लेकर उन्होंने तेलुगु भाषा को महाकाव्य की रचना के उपयुक्त बनाया। 'आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणि' के नाम से सूत्रपद्धति में तेलुगु का व्याकरण, संस्कृत में रचा। संस्कृत महाभारत के ढाई पर्व तक ही अनुवाद कर पाए कि कालपुरुष ने उनकी लेखनी थाम दी।

नन्नय के बाद भारत की रचना को सम्पूर्ण करने वाले तिक्कन्न सोमयाजी हैं। महाभारत के शेष १५ पर्वों का तिक्कन्ना ने बड़ी ही प्राजल-शैली में, अनुवाद किया है। शैली, विषय-निर्वाह, कथा-प्रसंग आदि के दृष्टिकोण से तिक्कन्ना के जोड़ का कवि नहीं है।

एर्रप्रगड ने अरण्यपर्व के शेष भाग की पूर्ति की है। महाभारत की रचना करने वाले इन तीन कवियों को 'कवित्रय' कहते हैं और काव्यरचना के क्षेत्र में इन्हें आदर्श माना जाता है। आन्ध्र के साहित्य के इतिहास में कवित्रयकृत महाभारत का अद्वितीय स्थान है और इस काव्य ने जनजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है।

नन्नेचोड कवि के 'कुमारसंभव' पाल्कुरिकि सोमनाथ के 'बसवपुराण' 'पण्डिताराध्य चरित्र' आदि पर देशी काव्यधारा का विशिष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। द्विपद (हिन्दी के दोहे का समकक्षी) में रचना कर, वीर-शैव सम्प्रदाय का ज़ोरों से प्रचार करने वाले कवि सोमनाथ थे।

'रंगनाथ रामायण' द्विपद छन्द में लिखा गया अनुपम महाकाव्य है। केतना का 'दशकुमार-चरित', बद्देना का 'नीतिशास्त्र मुक्तावली', मारन्न का 'मार्कंडेय पुराण' नाचन सोमन्न का 'उत्तर हरिवंश', तिप्पन्ना का 'त्रिपुरान्तकोदाहरण' आदि सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'भास्कर रामायण' चार कवियों की समष्टि रचना है।

पुराण युग के पश्चात् 'काव्य युग' (१४वीं से १५वीं तक) का समय आता है जिसमें कला-कौशल और रचनाविधान को महत्त्व दिया गया। महाभारत, रामायण, हरिवंश आदि पौराणिक काव्यों के अनुवाद कर चुकने के बाद, कवियों की दृष्टि संस्कृत के अन्य काव्यों की ओर गई जिनकी रचना में वे अपने कला-कौशल को प्रदर्शित कर सकें और अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न कर सकें। इस युग के सुप्रसिद्ध कवियों में सर्वप्रथम कविसार्वभौम श्रीनाथ का नाम लिया जाता है। अनेक ग्रन्थों की रचना कर, अनेक राजाओं के आश्रय में रहकर, महावैभव का उपभोग कर, इस महाकवि ने अपने प्रचण्ड तेज से, उस समय के साहित्यिक क्षेत्र को आतंकित बनाए रखा। 'शृङ्गार नैषध' उनका प्रसिद्ध महाकाव्य है। 'मरुत्तराट् चरित्र', 'शालीवाहन सप्तशती', 'हरविलास', 'काशीखण्ड', 'भीमखण्ड' आदि अनेक काव्यों की रचना की है। श्रीनाथ का 'पलनाटि वीरचरित्रम्' द्विपद छन्द में लिखा गया वीररसप्रधान काव्य है जिसमें आंध्र देश के 'पलनाडु' प्रांत के वीरों की कथा वर्णित है। कहते

हैं, महाभारत के युद्ध से संतृप्त न होकर, कौरव और पांडवों ने इन वीरों के रूप में अवतार लिया है। इन्होंने 'क्रीडाभिराममु' नामक वीथिनाटक की रचना भी की है।

संस्कृत महाभारत का अनुवाद करने वाले महाकवि बम्मेर पोतन्न का आन्ध्र-साहित्य में अपूर्व महत्त्व है। भागवत की रचना कर पोतन्न अमर हो गए तो उनकी लेखनी के स्पर्श से भागवत भी अमर बन गया। (पोतन्न के बाद महाभागवत का अनुवाद किसी ने भी नहीं किया है)। राज्याश्रय से दूर, खेती कर जीविका चलाते हुए इस महाकवि ने सरस और सरल शैली में भागवत की रचना की है।

जक्कन्न का 'विक्रमार्क चरित्र', अनन्तामात्य का 'भोजराजीयमु, रसाभरणमु', गौरन्न के 'हरिश्चन्द्रोपाख्यानमु', 'नवनाथ-चरित्र', दुग्गय्य का 'नासिकेतोपाख्यान', दूबगुंट नारायण कवि का 'पंचतन्त्र', पिनवीरभद्र का 'शृङ्गार शाकुन्तल', 'जैमिनी भारतमु' आदि इस युग के विशिष्ट काव्य हैं। नंदिमल्लय्य और घंट सिंगय्य नामक कवियों ने मिलकर 'प्रबोधचन्द्रोदय' और 'वराहपुराण' नामक काव्यों की रचना की है।

'पुराण युग' और 'काव्य युग' में संस्कृत के अनेकानेक पुराणों और काव्यों के जो अनुवाद हुए हैं, वे केवल अनुवाद मात्र न होकर, मौलिक रचनाओं के-से प्रतीत होते हैं। देवभाषा और वैदिक-धर्म पर प्रगाढ श्रद्धा के कारण इन कवियों ने, उन संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद करना ही देश, भाषा व धर्म की उत्कृष्ट सेवा समझी और राजाओं ने ऐसे धार्मिक काव्यों की रचना करवाना ही अमरता का साधन समझा। मूल कथा का आधारमात्र लेकर, इन महाकवियों ने अपनी प्रतिभा तथा कल्पना-शक्ति से प्रौढ काव्यों की रचना की है। तेलुगु भाषा के महाकाव्य चम्पू पद्धति के हैं।

इस काव्य-युग में आतुकूरि मोल्ल नामक कुम्हारिन ने ध्वनि-प्रधान एवं सरस शैली में रामायण की रचना की है।

विजय नगर के प्रसिद्ध महाराजा श्रीकृष्णदेवराय के युग को 'प्रबन्ध-युग' (१६वीं शती से १८वीं शती तक) कहते हैं। इस युग में अनुवादात्मक रचनाओं को छोड़कर, मौलिक काव्यों की रचना होने लगी। इस युग के कवि किसी पुराण की किसी कथा को आधार बना कर, अपनी रुचि व प्रतिभा के अनुसार प्रबन्ध-काव्य का निर्माण करते थे। पूर्ववर्ती कवि जब कथावस्तु को प्राधान्य देते थे तो ये कवि वर्णनों में, अलंकार-विधान के निर्वाह में अपनी कुशलता दिखाते थे। रसों में शृंगार रस को प्राधान्य दिया जाने लगा।

सफल शासक होने के साथ-साथ श्रीकृष्णदेवराय महाकवि भी थे। संस्कृत में अनेक काव्यों की रचना कर, इन्होंने तेलुगु में 'आमुक्तमाल्यदा' के नाम से, वैष्णव भक्तों की कथाओं को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से, एक महाकाव्य की रचना की है। इनकी शैली अत्यन्त प्रौढ तथा क्लिष्ट होती है।

अल्लसानि पेद्दन्न का 'मनु चरित्र' आन्ध्र के पंचमहाकाव्यों में प्रथम स्थान का अधिकारी है। रस, भावानुकूल शैली का प्रयोग कर, रमणीय कथा-काव्य की सृष्टि की है पेद्दन्न ने। नंदि तिम्मन्न का 'पारिजातापहरण', मल्लन्न का 'राजशेखरचरित्र', धूर्जटि का 'श्रीकालहस्तीश्वरमाहात्म्यमु', रामभद्र का 'रामाभ्युदयमु', पिंगलिसूरन्न के, 'राघवपांडवीयम्' (द्वयर्थी), 'कलापूर्णोदयमु', 'प्रभावती प्रद्युम्नमु', रामराजभूषण के 'वसुचरित्र, हरिश्चन्द्रनलोपाख्यानमु' (द्वयर्थी), तेनालि रामकृष्ण का 'पांडुरंग माहात्म्यमु' आदि इस युग के श्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य हैं। उपरोक्त आठ कवि श्रीकृष्णदेवराय की सभा के अष्टदिग्गज माने जाते हैं। 'कलापूर्णोदयमु' अपनी कल्पित कथावस्तु और रचना-चातुर्य के लिए विशेष प्रसिद्ध है।

यहाँ पर गोलकुण्डा के कुतुबशाही राजाओं का स्मरण करना चाहिए जिन्होंने तेलुगु काव्यरचना को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया है। इन राजाओं के आश्रय में कवियों ने शुद्धान्ध्र (ठेठ तेलुगु के) काव्यों की रचना की है। पोन्नकंटि तेलगन्न का 'ययातिचरित्र' प्रथम और श्रेष्ठ शुद्धान्ध्र काव्य है।

तालिकोट युद्ध (१५६४ ई०) के बाद विजयनगर साम्राज्य का पतन हो गया था। तदनन्तर आन्ध्रसाहित्य का पोषण व संवर्द्धन तंजाऊर, मदुरै, पुदुक्कोट आदि सुदूर दक्षिण के आन्ध्र नायक राजाओं के राज्य में हुआ। अतः इस युग को 'दक्षिण आन्ध्र युग' कहते

हैं। इस युग में प्रबन्ध युग की श्रृङ्गार-रस-पोषण की भावना अपनी पराकाष्ठा को पहुंची और श्रृङ्गार-रस-प्रधान—कहीं-कहीं अश्लीलता की हद कर दी गई है—काव्यों की रचना अधिक मात्रा में हुई। इस युग में काव्यरचना के अतिरिक्त गीत, वचन, यक्षगान आदि विविध देशी साहित्य प्रक्रियाओं की सर्जना की गई है।

तंजाऊर के नायक राजाओं में रघुनाथ नायक का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। शासन-कुशलता में, साहित्य-प्रेम में यह राजा श्रीकृष्णदेवराय के समकक्षी हैं। इन्होंने संस्कृत और तेलुगु में अनेक काव्यों की रचना की है और अनेक सुप्रसिद्ध कवियों को आश्रय दिया है। इनकी सभा में चेमकूर वेंकट कवि ने 'सारंगधर चरित्र' और 'विजय-विलास' की रचना की है। कृष्णाध्वरि ने अनेक काव्यों की रचना कर रघुनाथ भूपाल को समर्पित किया है। रंगाजम्भ नामक विदुषी ने पांच प्रबन्ध काव्य, एक यक्षगान और अनेक मुक्तक पदों की रचना कर, विशेष ख्याति प्राप्त की है। स्त्री कवियों में मुद्दु पळनि का नाम भी प्रसिद्ध है, जिसने 'राधिका-सान्त्वनमु' नामक श्रृङ्गाररस-प्रधान काव्य की रचना की है।

इस युग के कवियों में क्षेत्रय्य और त्यागराज का उल्लेख होना चाहिए। क्षेत्रय्य ने भगवान् मोव्व (एक ग्राम का नाम) गोपाल पर अनेक सुन्दर पदों की रचना की है जो भक्ति और श्रृङ्गार की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। त्यागराज ने रामभक्ति में विभोर होकर जो पद लिखे है (जिन्हें कृतियाँ कहते हैं) वे मानो कर्नाटक संगीत के प्राण हैं। क्षेत्रय्य अनेक राजाओं के आश्रय में रहकर, माधुर्य भक्ति के पदों की रचना करते थे, तो त्यागय्य 'निधि' (धन-दौलत) को ठुकरा कर, भक्तिभाव में तल्लीन हो, पद गाते थे।

समुखमु वेंकट कृष्णप्प के 'अहल्यासंक्रंदनीयमु' व 'राधामाधव-संवादमु', शेषमु वेंकटपति का 'तारा-शशांकमु' उत्कट श्रृङ्गारिक काव्य हैं। मैसूर राज्य के पालवेकरि कदिरीपति की 'शुकसप्तति' में उस समय की सामाजिक दशा का स्पष्ट चित्रण मिलता है। अनेक काव्य-ग्रन्थों के कर्ता कविसार्वभौम कूचिमंचि तिम्म-कवि के शुद्धान्ध्र काव्य 'नीलासुन्दरी-परिणयमु' व 'अच्च-तेनुगु रामायणमु' का तेलुगु साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

भर्तृहरि के शतकों को एनुगु लक्ष्मण कवि, एलकूचि बालसरस्वती, पुष्पगिरि तिम्मन नामक तीन कवियों ने अपनी-अपनी शैली में अनुवाद प्रस्तुत किए हैं।

महायोगी वेमना ने वैराग्यपरक पद्य की रचना कर, सामाजिक कुरीतियों व बाह्याडम्बरों का खण्डन करके, सच्ची भक्ति एवं सरल जीवन का उपदेश दिया है।

इस युग में तंजाऊर, मदुरा से लेकर तेलंगाने तक के विस्तृत देश में साहित्य की जो सृष्टि हुई है वह अपार है।

अन्य भारतीय भाषाओं के समान ही १९वीं शती के उत्तरार्द्ध से तेलुगु सहित्य का आधुनिक युग आरम्भ होता है। एक नई जागृति के कारण समस्त देश में एक नवचेतना व्याप्त हो गई थी। वीरेशलिंगम पन्तुलु को आधुनिक युग का जन्मदाता माना जाता है, जिन्हों ने अनेक नवीन साहित्य विधाओं का श्रीगणेश किया। सामाजिक सुधार के आन्दोलन के साथ, उन्होंने कविता को रूढिमुक्त कर, स्वच्छन्दता प्रदान की।

इस प्रकार एक हज़ार वर्षों के तेलुगु साहित्य का अध्ययन करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि तेलुगु साहित्य का विकास, अपनी विशिष्टताओं को बनाए रखते हुए भी, भारतीय साहित्य के अंग के रूप में ही हुआ है। भाव-पक्ष और कला-पक्ष की दृष्टि से पग-पग पर अनेक समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। भक्ति-परक साहित्य में पोतन्न और त्यागय्य की तुलना तुलसी और सूर से और वेमना की तुलना कबीर से की जा सकती है। कहीं-कहीं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव लक्षित होता है। साहित्यिक इतिहास, परिचय, तुलनात्मक अध्ययन, तुलनात्मक अनुसन्धान, अंतः-साहित्यिक गोष्ठियां आदि की सम्यक् व्यवस्था द्वारा पारस्परिक आदान-प्रदान की सुविधा हो तो इस बात के पुष्ट प्रमाण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सकेंगे कि भारत की प्रत्येक भाषा का साहित्य, भारतीय-संस्कृति की अभिव्यक्ति का एक विशिष्ट रूप है। भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए सांस्कृतिक एकता का आधार अनिवार्य है और सांस्कृतिक-एकता का सबसे बड़ा एवं स्थायी आधार है साहित्य। अतः परस्पर के भाषा-साहित्य के सम्यक् अध्ययन से भावनात्मक एकता की भावना को बल मिल सकेगा। ●

डॉ० न० चि० जोगलेकर

भावनात्मक एकता में महाराष्ट्र के वैष्णव संतों का योगदान

मध्ययुग का भक्ति आन्दोलन भावनात्मक एकता और सांस्कृतिक एकता को अभिव्यक्त करने वाला एक महान् राष्ट्रीय आन्दोलन था। यह दृष्टि और उसका अभिनिवेश एवम् आवेश आज के युग का तकाजा है। मध्ययुग की सांस्कृतिक चेतना अपनी व्यापक सहिष्णुता और मानवतावादी विशेषताओं से संपन्न और पुष्ट थी। एकराष्ट्रीयत्व के साथ इस युग के तपस्वी, ओजस्वी और मनीषी संत और भक्त साहित्यकारों ने कुछ ऐसे जीवनमूल्य हमें दिये हैं जो अनेक शताब्दियों तथा युगों के बीत जाने पर भी अपना महत्त्व नहीं खो सकते। मैं तो यही कहूँगा कि ये मूल्य शाश्वत हैं और इसी रूप में रहेंगे, क्योंकि इनमें जिजीविषा है और है परम एवं ठोस श्रद्धामूलक आस्था की की प्रतिष्ठा। आज के स्वतंत्र भारत को भावनात्मक एकता की संजीवनी गुटिका इसलिए बार-बार पिलानी पड़ती है, क्योंकि उसकी हिमालयीन क्षेत्र-सीमाएं आज विदेशी और बर्बर हूण और चंगेज वंशीय पीत सैनिकों से आक्रान्त हो उठी हैं। ऐसे कठिन अवसर पर गीता भागवत, रामायण और महाभारत जैसे भारतीय महा ग्रंथों की दार्शनिकता और आचरण पक्ष की शुचिता को अपने-अपने काव्यों में इन संतों ने उद्भावित किया। ऐसा करते हुए उन्होंने एक बहुत बड़ा क्रान्तिकारी कार्य संपन्न किया। यह कार्य आध्यात्मिक विचारों का मंथन और सामाचिक जागरण के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसे केवल भक्ति तथा ईश्वर विषयक क्षेत्र या चिन्तन के क्षेत्र तक ही सीमित रख कर नहीं आंका जा सकता। यात्रा तथा यातायात के साधनों की जब सुविधाएँ नहीं थीं तब यात्राएं करते हुए, लोकोद्धार का कोई अवसर न चूकते हुए मंदिरों में, देव-स्थानों में नदियों के पुलिनों पर सर्वत्र इन सन्तों ने आबालवृद्ध नर-नारियों को मुक्त रूप से आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण का उपदेश दिया। यह उपदेश कोरा उपदेश नहीं था, क्योंकि "परोपदेशे पाण्डित्यम्" वाली प्रवृत्ति इन संतों की नहीं थी। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, रामदास, तुकाराम आदि संतों ने अपने-अपने आचरण में पहले इन जीवन-मूल्यों को उतारा था। इन्हें प्राप्त करने में अंधविश्वासों, पाखंडों तथा कई अन्य कुरीतियों का पर्दाफाश करते हुए जननिन्दा के कठोर प्रहारों को झेलना पड़ा। पुराणकालीन महर्षियों की तरह क्रोधित होकर निंदकों को शाप-दग्ध न करते हुए, शान्त चित्त से समाज के प्रति किसी प्रकार प्रतिशोध की भावना न रखकर अपना कार्य किया। यह एक महत् उपकार महाराष्ट्रक्षेत्रीय लोगों पर इन वैष्णव संतों का हुआ है। इसी तरह दूसरा सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता का कार्य यह है कि इन लोगों ने अपनी जनपदीय मराठी भाषा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिन्दी के उस समय के रूप में भी अपनी कविता के माध्यम से अपनी भक्ति का प्रचार किया। संत नामदेव पंढरपूर से पंजाब तक गये और वहां रहे इसका प्रमाण घोमान में कम-से-कम उपलब्ध है। परन्तु ज्ञानेश्वर, एकनाथ और रामदास ये भी भ्रमण कर चुके थे। इन्होंने यात्राएं की थीं देश की सारी राजनैतिक एवम् सामाजिक परिस्थिति का अवलोकन किया था तभी तो एक उत्तरदायित्वपूर्ण रीति से सामाजिकता को सुरक्षित रखते हुए सामाजिक और सांस्कृतिक एकता का आशय वे अभिव्यक्त कर सके।

इन वैष्णव सन्तों का यह कार्य ध्वंसकारी कदापि नहीं था, वरन् वह एक निर्माणकारी कार्य था जिसने ऊपर्युक्त जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा प्रस्थापित की तथा लोगों के अन्तःकरण के दैन्य तथा निराशा को भगा कर उनको स्वावलंबी, सहकार्य और सहजीवन-तत्पर बनाया जिस से स्वराज्य और सुराज्य की स्थापना हो गई।

जिस काल में इन वैष्णव संतों ने यह देखा कि बाह्य आक्रमणों से समाज की सुरक्षा होना असंभव है तब उन्होंने सदाचार और नीति से संपन्न धर्माचरण का उपदेश समाज के सभी स्तरों को देने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इस से एक प्रश्न हमारे मन में उपस्थित हो जाता है कि इन वैष्णव सन्तों का यह कार्य किस कोटि का माना जाएगा? क्या हम उसे केवल अपने अधःपतन से रोकने वाला एक कार्य मानें अथवा यह एक पूरा क्रान्तिकारी और नूतन अमोघ कार्य मानें? परिणाम की ओर देखते हुए यह निष्कर्ष निकालना उपादेय हो जाता है कि समाज को उन्नत दशा की ओर ले जाने का वह एक महान् प्रयत्न था जिस से समाज खण्ड-खण्ड होने से बच गया। उसकी भावनात्मक इकाई और एकता सांस्कृतिक दृष्टि से सुरक्षित रही। फिर यदि इस कार्य को प्रिवेंटिव भी कोई क्यों न माने तब भी उसका महत्त्व रत्ती-भर भी कम नहीं होता, वरन् और भी अधिक बढ़ जाता है।

उस समय की प्रचलित भाषाओं में लोकाभिमुख साहित्य की सृष्टि करते हुए संस्कृत भाषा में स्थित जीवन की प्रभुता और विभुता सिद्ध करने वाले सिद्धान्तों को इन जन-भाषाओं में प्रस्तुत कर दिया। यह बहुत मार्के की बात ही मानी जायगी। यह कार्य करते समय आमूलाग्र नये रीति-रस्मों का या रहने सहने के ढंग का अथवा पारस्परिक दैनंदिन व्यवहारों का परिवर्तन नहीं किया, बल्कि परकीय आक्रमण के प्रतिरोध के लिए जितना उन्हें आवश्यक प्रतीत हुआ उतना उसे प्रतिबन्धक रूप प्रदान किया। इसमें हिन्दुमात्र का कर्णछेदन, चोटी रखना, सती जाना जैसी बातों का समावेश है। आज बदले हुए युगानुसार ऐसी बातें हमारे लिए अड़चनों और रुकावटों की तरह भासित होती हैं। अनावश्यक बातों को हम छोड़ते भी जा रहे हैं। पर हिन्दू धर्म की सामाजिकता केवल इसी पर निर्भर नहीं है। उसके लिए भगवद्-भजन में सबको समानता हो तथा किसी भी भाषा में भगवद्-भजन और नाम-स्मरण किया जाए तो वह अवैध नहीं है यह तथ्य इन वैष्णव सन्तों ने अवश्य प्रतिपादित किया। ईश्वर की कल्पना और धारणा इन वैष्णवों की बड़ी पक्की और दृढ थी। अपनी हिन्दी कविताओं में भी उन्होंने इसकी झलक पेश की है। आस्तिकता की ठोस नींव पर ज्ञानेश्वर ने यह मन्दिर बनाना आरंभ किया। कैंकर्य भाव से नामदेव ने उसका विस्तार और सेवा की। एकनाथ ने अपने भागवत धर्म और भागवती भक्ति से यह मंदिर सुदृढ स्तम्भ से मजबूत बनाया और तुकाराम ने अपनी कठोर सगुण साधना से उसका कलश उत्पन्न कर दिया। यही कार्य उत्तर में नामदेव से आरम्भ हुआ जिसका कबीर ने विस्तार किया। तुलसीदास ने अपनी ठोस सगुण रामोपासना का सुदृढ स्तम्भ देकर इसे मजबूत बनाया और सूर और मीरा ने इस मन्दिर का कलश निर्माण किया। शैवों के प्रति महाराष्ट्रीय वैष्णवों की भावना वैर की नहीं, प्रेम की है। मंगलविधायिनी दृष्टि ने इनको धर्मसहिष्णु बनाया। नाम-माहात्म्य में चिर विश्वास होने से "ब्रह्म राम ते नाम बड़" या "गोड़ नाव विठे वाचे," जैसी उक्तियां हमें सुनने को नित्य मिलती रही हैं। रामदास, तुलसी और एकनाथ ने सगुण राम की उपासना से स्वधर्म और लोकधर्म का पाठ जनता को सिखा कर उसे एक धार्मिक दृढता प्रदान की है। सूर, मीरा और तुकाराम तथा नामदेव एवं ज्ञानेश्वर सौंदर्यपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और विट्ठल की उपासना से जनता को व्यवहार में भक्ति और प्रेम करना सिखाते हैं। कबीर, नामदेव और तुकाराम कठोर और अक्खड़ वाणी में पाखंड का खंडन कर सदाचरण का उपदेश देते है। इस तरह आत्माराम बनकर परमात्मा को देखना इन वैष्णव साधकों ने सबको बतलाया।

शिवाजी के द्वारा निर्मित स्वराज्य में इस भावनात्मक एकता के और सांस्कृतिक एकता के सुफल हमें देखने को मिले हैं। पर यह सारा परिपाक इन महात्मा वैष्णव सन्तों की साधना का ही माना जाना चाहिए। आज इस के मर्म को पुनः पुनः समझ लेने की नितान्त आवश्यकता हो गई है। भारत की इस तपोभूमि में विवेकी, अहंभाव-रहित, स्वीकृत की चिन्ता करने वाले, स्वधर्म-रत रहने वाले, सद्गुणों का संवर्धन करने वाले, ज्ञानी और भक्त सन्तों की यदि आज पुनः अवतारणा होजाय तो वह एक बहुत कल्याणप्रद बात होगी।

कल्पना कीजिए कि इन सन्तों ने संस्कृत के जटिल गुत्थियों वाले सिद्धान्तों का लोकभाषाओं में पाण्डित्य-पूर्ण तर्कप्रधान शैली में कोरा और शुष्क विवेचन मात्र किया होता तो जो जीवन जागृति हुई वह न हुई होती। फलत: यह मानना ही पड़ेगा कि इन सन्तों ने अपने वैष्णव धर्म का प्रतिपादन किसी एक ही विशिष्ट सिद्धान्त से नहीं किया, अपितु सभी सिद्धान्त अच्छे हैं ऐसा कहकर उनका लोक-संग्रह करते हुए सर्व-समन्वयात्मक रूप में उनको प्रस्तुत किया। इस में विचारों की संमिश्रता समाज के लोगों के विचार-प्रवाहों में घुल-मिल कर संपन्न होती गयी और उनके संस्कारी मनःपटल पर इसका प्रभाव पड़ता गया। इसी से पारस्परिक ऐक्य और सहकार्य-सद्भावना को पुष्टि और बल संप्राप्त होता गया। भक्तिमार्ग और दैनंदिन आचार धर्म की संहिता इन लोगों ने अपने-अपने प्रामाणिक सामर्थ्य के बल पर तथा ईश्वर के अधिष्ठान पर संपूर्ण विश्वास रखते हुए स्वधर्म और लोकधर्म का पालन किया और अपने युगीन लोगों को भी वैसा करने का आदेश ही नहीं दिया, वरन् उनसे वैसा करवा भी लिया। इसी में मराठी वैष्णव संत साहित्यकारों की महत्ता हमें प्रतीत होती है। मराठी में लिखी गयी गीता की भावार्थदीपिका अर्थात् ज्ञानेश्वरी भागवत के एकादश स्कंध की एकनाथ महाराज की नाथ भागवत टीका, भावार्थ रामायण, संत रामदास का दासबोध और रामायण, नामदेव तथा तुकाराम के मराठी में लिखे गये अभंग इसकी साक्ष्य बराबर देते रहे हैं। यहाँ पर उनके साहित्य से उदाहरण लेकर अपने विवेचन के प्रमाण उपस्थित करने की गुँजाइश नहीं है। अन्यथा विस्तृत रूप में इस पर बहुत-कुछ लिखा जा सकता है।

भारत-भावना

[श्री आरसीप्रसादसिंह]

सृष्टि के संगीत के तुम एक स्वर हो।
विश्व-सागर-चेतना-जल की लहर हो॥
अंग-अंगी-रूप से देखो भुवन को।
अंश-अंशी-भाव से छू लो गगन को॥
एक हो तुम इस जगत् के साथ निश्चय।
तत्त्व तुम में भी वही है एक अव्यय॥
एक कण हो तुम उसी जीवन-अनल के।
प्रज्वलित है भाल पर जो व्योमतल के॥
तुम वही हो, मूल में अपने अखण्डित।
एक मानव, सहज स्वर्णालोक-मण्डित॥
एक हो तुम, भव्य भारतवर्ष-वासी।
एक जननी के सभी सुत हो सुहासी॥
भिन्नता में भी तुम्हारी एकता है।
पुष्प अगणित, एक ही जीवन-लता है॥
एक की उन्नति, समुन्नति देश की है।
एक की अवनति, अधोगति देश की है॥
एक का उल्लास, सारे देश का है।
एक का उपहास, सारे देश का है॥
एक का सन्ताप, सारा देश सहता।
एक का अपलाप, सारा देश कहता॥
इसलिये जो भी करो, वह देश के हित।
सामने जो पग धरो, वह देश के हित॥
है वही सत्कर्म, जिससे देश की जय।
है वही अब धर्म, जिससे देश की जय॥
देश की जय हो, वही अब गीत गाओ।
देश के सौभाग्य की वाणी जगाओ॥
मुक्ति आयी है यही सन्देश लेकर—
देश का गौरव बनाओ प्राण दे कर॥
देश का सम्मान खो कर, क्या रहेगा?
देश पर बलिदान होने कौन देगा?
विश्व में गौरव बढ़े, भारत-धरा का।
शान्ति-सुख की चिर—अमर हो जय-पताका॥
तुम चलो संसार में उत्कर्ष ले कर।
तुम वरो जीवन, यही आदर्श ले कर॥
देश की माटी, हवा, जल को जगा दो।
शंख फूँको, देश से भय को भगा दो॥

प्रा. शाहजहां

दिलों की दूरी

पात्र-परिचय

अब्दुल्ला खां—शहर के बड़े वस्त्र-व्यापारी, लम्बी दाढी, सालों-भर की इबादत का सबूत है। नमाज़, शेरवानी और टोपी को खां साहब कभी नहीं भूलते। उम्र कोई पचपन वर्ष की है।

फातिमा—उनकी पत्नी, आयु कोई पैंतालीस वर्ष।

नज़ीर अहमद—यूनिवर्सिटी का प्राध्यापक। अच्छा साहित्यकार है, आयु लगभग २६ साल।

नसीम—अब्दुल्ला खां की बेटी, विश्वविद्यालय की विद्यार्थिनी, आयु बीस साल।

फ़िरोज खां—नसीम का बड़ा भाई, आयु पच्चीस साल।

(अब्दुल्ला खां के मकान का ड्राइङ्ग रूम। दाईं दीवार का दरवाज़ा बाहर चबूतरे में खुलता है और बाईं दीवार का दरवाज़ा भीतर के कमरे की ओर जाता है। उस दरवाज़े से होकर आङ्गन में पहुँच सकते हैं। सामने की दीवार पर 'कअबा' की तसवीर टंगी हुई है। जब पर्दा उठता है तो खां साहब 'वाकिंग स्टिक' टेकते हुए तेज़ी के साथ आते हैं।)

अब्दुल्ला खां—(गुस्से के साथ ज़ोर से) ओ...नसीम की मां...अरे सुन कयामत आ गई...लाहौल बला कुव्वत...सब चौपट हो गया।

फातिमा—(अन्दर से भागती हुई आती है,घबरा कर) हाय अल्लाह। क्या हो गया?

अब्दुल्ला खां—(कड़े स्वर में) मैं पूछता हूँ अब क्या बाकी रह गया? मुझे तभी मालूम था कि इसका यही नतीजा निकलेगा।

फातिमा—(जिज्ञासा और भय के साथ) आखिर बात क्या है?

अब्दुल्ला खां—तुम्हारी बेटी की शाबासी हो रही है।

फातिमा—(आश्चर्य के साथ) शाबासी? किस बात की?

अब्दुल्ला खां—अजी मैंने तो तभी कहा था कि लड़कियों को पढ़ाना नहीं चाहिए। उनका यही नतीजा है। हमारे खानदान में भी कोई पढ़ी-लिखी औरत है? मैं पूछता हूँ कोई है? हमारे बाप-दादाओं ने कितना पढ़ा था? (गौरव के साथ) मगर बिना पढ़े-लिखे ही सब आलिम बन गए। उनकी इबादत क्या? उनकी तमीज़ क्या? वाह...वाह..सुब्हानल्लाह? वह भी एक ज़माना था। (नाराज़ होकर) मैं पूछता हूँ कि आज के पढ़े-लिखों में से कितने हैं जो अच्छी तरह पेश आना जानते हैं। आज दुनियाँ की पढ़ाई-लिखाई सब बेकार है। तुमने ही कहा था न? नसीम को पढ़ाओ।

फातिमा—तो क्या हुआ? अजी वह ज़माना नहीं लौट कर आयगा। वे दिन ऐसे थे जब नवाब साहब हवेली पर बैठकर हुक्का पिया करते थे और नौकर-चाकर उनकी खिदमत किया करते थे। आज सब नक़ली नवाब हैं। पढ़े-लिखे लोगों की ही इज़्ज़त की जाती है।

अब्दुल्ला खां—इज़्ज़त? तुम्हें शर्म नहीं आती? मुहल्ले वाले क्या कहते हैं, तुम्हें इसका पता है?

फातिमा—जो भी कहें, हमें क्या मतलब?

अब्दुल्ला खां—तुम तो घर की चारदीवारी के अंदर बैठती हो, तुम्हें क्या पता। आज चार लोगों के सामने मेरा सिर झुक जाता है। आखिर उस बदमाश से?

फातिमा—तौबा इलाही, कैसी बातें कह रहे हैं?

अब्दुल्ला खां—क्या वह शरीफ है? अगर शरीफ होता तो अपनी शागिर्द से मुहब्बत कैसे करता?

फातिमा—मुहब्बत करना कोई बुरी बात है? इसमें क्या गलती है?

अब्दुल्ला खां—(अचरज के साथ) लाहौल वला कुव्वत, मैं क्या सुन रहा हूं। परवरदिगार यह मेरी बीवी...

फातिमा—(बीच में बात काटती हुई) इसलिए मैं कह रही हूँ कि ज़माना बिलकुल बदल गया है। देखो, आखिर उसमें क्या कमी है?

अब्दुल्ला खां—(सोफे पर बैठते हैं) इसका मतलब है उसे पसन्द करती हो।

फातिमा—(कान बन्द कर) गुनाह मुआफ हो, खुदाया मैं क्या सुन रही हूँ।

अब्दुल्ला खां—(जल्दी से) मेरा मतलब, तुम उसे अपना दामाद बनाना चाहती हो।

फातिमा—आज के ज़माने में औरत के लिए मर्द चाहिए और मर्द के लिए औरत। अगर कोई अपनी शागिर्द से मुहब्बत करे तो इसमें कोई भूल नहीं। अजी पीर-पैगम्बरों की बात दूसरी थी। मगर...

अब्दुल्ला खां—(शान्त भाव से) हूँ... कयामत के दिन नज़दीक आ गए। भइ तुम आखिर क्या चाहती हो?

फातिमा—अगर नज़ीर और नसीम आपस में चाहते हैं तो उनके बीच हम अड़चन क्यों डालें?

अब्दुल्ला खां—(अचम्भे के साथ) क्या नसीम उसे चाहती है?

फातिमा—नहीं तो मुहब्बत कैसे होगी?

अब्दुल्ला खां—(रोष-भाव से) उसे यूनिवर्सिटी भेजने का यही नतीजा है। आखिर लड़कियाँ तालीम सीखने जाती हैं या मुहब्बत करने?

फातिमा—खुद अपने से यह बात पूछो। जब मदरसा में पढ़ा करते थे तो हमारे घर क्यों आया करते थे?

अब्दुल्ला खां—(कुछ विवश होकर हँसते हुए) अरे... यह भी कोई पूछने की बात है। मैं...ऐसे ही तुम्हारे यहाँ खरगोश के बच्चों को देखने के लिए आया करता था।

फातिमा—वाह...मगर भला बहाना ढूंढ़ निकाला।

अब्दुल्ला खां—खैर...मगर उसके खानदान के बारे में?

फातिमा—खानदान तो ज़रूर अच्छा होगा।

अब्दुल्ला खां—कैसे पता!

फातिमा—अगर अच्छे खानदान का न हो तो इतनी दूर आकर तालीम कैसे पूरी करता?

अब्दुल्ला खां—(दृढता से) फातिमा, देखो यह शादी नहीं चलेगी।

फातिमा—(आकांक्षा से) क्यों नहीं?

अब्दुल्ला खां—वह मद्रासी है, कहता है कि कोई मद्रासी मुसलमान है, पता नहीं कौन काफिर है।

फातिमा—हाय अल्लाह गुनाह माफ हो...

अब्दुल्ला खां—पता है तुम्हें, मद्रास के रहने वाले कोई मुसलमान नहीं होते। न नमाज़ पढ़ते हैं न रोज़ा रखते हैं—

फातिमा—अगर कोई नमाज़ न पढ़े तो क्या वह काफिर बन जायगा।

अब्दुल्ला खां—बिल्कुल इसमें क्या शक है?

फातिमा—मुझे तुम्हारी बातों पर भरोसा नहीं।

अब्दुल्ला खां—(कुछ गम्भीर होकर) मैंने उसके बारे में बहुत छान-बीन की। कोई अच्छा नतीजा नहीं निकला। मेरे ख्याल से यह बात छोड़ देनी चाहिए। देखो वह हाजी अब्बास अली का बेटा है, वह बड़ा अच्छा लड़का है, बिल्कुल शरीफ है।

फातिमा—हाय अल्लाह अपनी बदकिस्मती पर रोए बिना क्या करूं। (गुस्से से) और कोई नहीं मिला, (हास्य भाव से) ढूँढ़ लाए अब्बास अली के बच्चे को। इससे भला लड़की को कुएँ में ढकेल दो... अपनी ज़िम्मेदारी खतम हो जायगी।

अब्दुल्ला खां—(उठ खड़े होकर) जो मैं चाहूँगा वही होगा।

फातिमा—यह शादी मेरी लाश पर होगी।

अब्दुल्ला खां—मुंह से खराब बातें मत निकालो। अजी मेरी बात तो सुनो, भई वह बड़ा पैसे वाला है।

फातिमा—(नाराज़ होकर) आखिर पैसा ही सब-कुछ है।

अब्दुल्ला खां—और क्या ? पैसा ही सब-कुछ बनाता है।

फातिमा—तो इसका मतलब है कि तुम अपनी बेटी को बेचना चाहते हो।

अब्दुल्ला खां—तुम जो भी कहो, कहां यह अब्बास का शेर-सा बच्चा, कहां वह यूनिवर्सिटी का मास्टर। आसमां-ज़मीन का फर्क। मैं उस नज़ीर के बच्चे को इस चारदीवारी के अंदर कदम रखने न दूँगा। जो भी हो, यह मेरा आखिरी फैसला है। (अब्दुल्ला खां गुस्से के साथ बाहर जाते हैं। भीतर से नसीम सिसकती हुई आती है।)

नसीम—अम्मीजान !

फातिमा—सुना, तेरे अब्बाजान बहुत नाराज़ हो गए हैं। वे हरगिज़ यह शादी नहीं होने देंगे :

नसीम—मैं और किसी से शादी नहीं करूँगी।

फातिमा—बुरी बातें मुंह से मत निकालो...तुझे...मैं खूबसूरत...

नसीम—अम्मीजान, मैं बिलकुल अनब्याही रहूँगी।

फातिमा - बेटी, अल्लाह जैसा चाहेगा......वैसा ही होगा...मैंने लाख कोशिश की। तेरे अब्बाजान उसके खानदान के बारे में भी जान चुके हैं। क्या करें लड़का तो शरीफ है।

नसीम—भाईजान की क्या राय है ?

फातिमा—अरे...वह क्या कर सकता है। अब और कोई रास्ता न रहा। तुझे अपना फैसला बदलना ही पड़ेगा।

नसीम—अम्मीजान, यह कभी नहीं होगा।

फातिमा—अच्छा तो सुन, मैं नज़ीर से मिलूँगी। आज ही आदमी भेज देती हूँ। फिर देखना क्या होगा। आखिर मजबूरियों के सामने औरत को झुकना ही पड़ता है।

(नसीम आँख पोंछती हुई अन्दर जाती है)

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

(वही कमरा। जब पर्दा उठता है तो फिरोज़ खां अखबार पढ़ते हैं। सोफा पर बैठे हैं। तभी दरवाज़े पर दस्तक सुनाई पड़ती है। अखबार नीचे कर दरवाज़े की ओर देखता है।)

फिरोज खां—(अन्वेषण मुद्रा में) कौन ?

[बाहर से आवाज़—अन्दर आ सकता हूँ ?]

फिरोज खां—ज़रूर-ज़रूर...तशरीफ लाइए (बाहर की ओर देखता है। नज़ीर अहमद भीतर आते हैं। फिरोज़ खाँ उठ खड़े होकर) अस्सलामु अलैकुम, आइए नज़ीर साहब, तशरीफ रखिए। आप ही का इन्तज़ार कर रहा था।

नजीर—(बैठते हुए) देर हो गई क्या ?

फिरोज खां—नहीं आप बिल्कुल ठीक टाइम पर आए।

नजीर—और सुनाइए, खैरियत।

फिरोज खां—बस आप की दुआ है।

नजीर—आज-कल आपका बिजिनस कैसे चल रहा है ?

फिरोज खां—अरे ऐसे ही चल रहा है ? हमारी कौन पूछता है ? आप जैसे प्रोफेसर लोगों की तो...

नजीर—वाह...वाह...आप हमारी हालत क्या जानते हैं। कोट और टाई के सिवा हमारे पास कुछ नहीं।

फिरोज खां—(हँसते हुए) इल्म भी नहीं ?

नजीर—वाह...कमाल कर दिया...(हँसते हैं)

फिरोज खां—सुनिए प्रोफेसर साहब, तालीम ही सब-कुछ है।

नजीर—हिन्दुस्तान को आज़ाद हुए सोलह साल हो गए, मगर हमारी हालत वही रही। हमारी कौन पूछता है। मैं हमेशा यही सोचा करता हूँ कि बिजिनस करना अच्छा है। मगर हमारी तबियत नहीं लगती !

फिरोज खां—आपको तो काफी 'रायल्टी' मिलती होगी, बाज़ार में तो पाँच-छः किताबें आ गई।

नजीर—अरे...रायल्टी की बात मत पूछिए। इस ज़माने में ईमानदारी भी कोई चीज़ होती है। सब-का-सब पब्लिशिंग कम्पनी वाले खा जाते हैं।

फिरोज खां—वाह...यह हालत है। अच्छा। पिछले जुम्मे को आपका रेडियो-नाटक आया था न ?

नजीर—जी हां।

फिरोज खां—वाक़ई, बहुत शानदार था। मौलाना साहब का जो रोल आपने खींचा था, वह बिल्कुल हमारे अब्बाजान जैसा था। कमाल कर दिया आपने।

नजीर—बहुत शुक्रिया...कहीं आपके अब्बाजान तो नहीं ?

फिरोज़ खां—अगर होते तो, हम में इतनी हिम्मत कहां से होती ? वे बाहर गए हैं।

(एक नौकर चाय का ट्रे लाकर रखता है। फिरोज़ दोनों के लिए चाए बनाता है।)

फिरोज़ खां—(चम्मच हाथ में उठा कर) चीनी दो चम्मच या ?

नजीर—बस ठीक है, आप क्यों इतनी तकलीफ...

फिरोज़ खां –(बात काटते हुए) वाह...नज़ीर साहब, यह भी कोई तकलीफ होती है। मेहमान की खातिर करना हमारा फर्ज़ है। लीजिए चाय पीजिए (चाय की प्याली बढ़ाता है और नज़ीर चाय की प्याली लेते हैं।)

नज़ीर—(चाय पीते हुए) चाय बहुत अच्छी बनाई आपने।

फिरोज़ खां—शुक्रिया, नज़ीर साहब मुझे आपसे एक ज़रूरी बात करनी है।

नज़ीर—ज़रूरी बात ? अच्छा सुनाइए।

फिरोज़ खां—माफ कीजियेगा...मैं आपसे कुछ खास बातें पूछना चाहता हू।

नजीर—बिल्कुल पूछिए।

फ़िरोज़ खां—आप मद्रास के रहने वाले हैं न ?

नजीर अहमद—नहीं मैं केरल का रहने वाला हूं।

फिरोज खां– सुना था कि आप मद्रासी हैं।

नजीर अहमद—फिरोज साहब, बात यह है यहां के लोगों का यह ख्याल है कि दक्षिण भारत से आने वाले सबके-सब मद्रासी हैं। यह गलत-फहमी है।

फिरोज खां—(आश्चर्य से) आप केरल के हैं। मैं तो केरल के बारे में बहुत जानता हूँ।

नजीर अहमद—क्या जानते हो ?

फिरोज खां—सुना है कि इल्म हासिल करने में वहां के लोग बहुत आगे हैं। और भी सुना है कि लोग बहुत मुहब्बत के साथ रहा करते हैं। सही है न ?

नजीर अहमद—(खुश होकर) बिल्कुल सही।

फिरोज खां—(कुछ गम्भीर होकर) अच्छा, आपकी शादी तो नहीं हुई ?

नजीर अहमद—जी नहीं।

फिरोज खां—आपका क्या ख्याल है ?

नजीर अहमद—आपका मतलब ?

फिरोज खां—मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप शादी करना नहीं चाहते ?

नजीर अहमद—शादी तो करना चाहता हूँ···मगर

फिरोज खां—अरे मगर-अगर की क्या बात है। शायद आप मेरी बहन को जानते होंगे।

नजीर अहमद—नसीम को, हां वह तो मेरी 'स्टूडेन्ट' रह चुकी है। (इतने में फातिमा आती हैं)।

फिरोज खां—यह मेरी अम्मीजान हैं।

नजीर अहमद—(उठ खड़े होकर) आदाब अर्ज है।

फातिमा—आदाब अर्ज, तशरीफ रखिए (बैठती है) आपको मैने बुला भेजा था।

नजीर अहमद—जानता हूँ।

फातिमा—मैं आपसे कुछ बातचीत करना चाहती हूँ।

नजीर अहमद—जी जरूर।

फातिमा—मैं साफ-साफ बात करने वाली हूँ।

नजीर अहमद—मै भी वही पसन्द करता हूँ।

फातिमा—(दूर देखती हुई) सुना था कि आप और नसीम का अच्छा रिश्ता है। क्या आप उस रिश्ते को निभाना चाहते हैं ?

नजीर अहमद—रिश्ता बनाते हैं तो निभाना फर्ज है।

फातिमा—नसीम ने बहुत-कुछ कहा। इसके बाद मैने सोचा कि आपसे बातचीत कर लूँ। मैं आपके खानदान के बारे में जानना चाहती हूँ।

नजीर अहमद—जरूर सुनाऊँगा।

फातिमा—आप मद्रासी हैं, सुना है कि वहा के मुसलमान नमाज़-रोज़ा कुछ नहीं रखते।

नजीर अहमद—यह किसने कहा ? बिल्कुल गलत है। मगर यह सही है कि वहां मज़हब के नाम पर कोई पागल नहीं बनता। हिन्दू और मुसलमान का फर्क नहीं रहता।

फातिमा—तो आपका क्या ख्याल है ?

नजीर अहमद—मैं यह समझता हूं कि हरेक इन्सान को अपने-अपने ढंग से सोचने का हक है।

फातिमा—तो मज़हब की कोई कीमत नहीं क्या ?

नजीर अहमद—यह मैं नहीं कहता। इन्सान जिस भी मज़हब पर ईमान रखे कोई इतराज नहीं, मगर उसके काम अच्छे होने चाहिएँ। मेरा यही ख्याल है।

फिरोज खां—आपने बिल्कुल ठीक कहा है।

नजीर अहमद—आप मेरे खानदान के बारे में सुनना चाहती हैं। सुन लीजिए (उठ खड़े होकर दाएँ दरवाजे की ओर जाता है और फिर गंभीरता के साथ कहता है) मेरे अब्बाजान का नाम शेर खां है और मैं मुसलमान हूं। मगर पहले मैं इन्सान हूँ, फिर मुसलमान। मैं इन्सानियत को सबसे बड़ा मज़हब मानता हूँ। मेरी एक बहिन है। उसकी तालीम पूरी नहीं हुई। तालीम पूरी होने के बाद उसकी शादी उस आदमी से करवाऊँगा जिसको वह चाहती है। चाहे वह किसी मज़हब, किसी जाति अथवा किसी देश का हो। मेरी नजरों में जात-पाँत या मज़हब सब इन्सान की बनाई हुई दीवारें हैं।

फातिमा—नज़ीर मियाँ आपने जो भी कहा वह ठीक है मगर।

नजीर अहमद—मैं जानता हूँ कि सभी इन्सानों का दिल एक-सा नहीं होता, कहां केरल का कच्चा मुसलमान और कहां लखनऊ के शरीफ खानदान की लड़की। क्या कभी इनका मिलन हो सकता है! (आखिर लोगों के दिल में इतनी जगह ही कहां कि जो इतनी दूरी को बर्दाश्त कर सके। मगर यह दिलों की दूरी है।

फातिमा—सुनिए नजीर मियाँ, इस बात में तो मुझे कोई एतराज नहीं। लेकिन बात ऐसी है कि नसीम के अब्बाजान··· ···

नजीर अहमद—मैं समझ गया।

फातिमा—देखिए मैं औरत हूँ··· ···मैं कुछ नहीं कर सकती, इसलिए आपके लिए यह अच्छा होगा··· ···

(नसीम वहां आती है। वह कुछ हैरान-सी लग रही है)।

नसीम—अम्मीजान··· ···ऐसा मत कहो··· ···

नजीर—सुनिए बेगम साहिबा, मैंने नसीम से मुहब्बत की है, यह सच है। कुछ कोशिश करने पर उसको भूल भी सकता हूँ। आज लैला-मजनू की-सी मुहब्बत नहीं होती, यह सब एक बाहरी दिखावट है, आपको अपनी बेटी सलामत··· ···मैं जाने की इजाजत चाहता हूं··· ···

(इतने में अब्दुल्ला खां वहां आते हैं। सिर पर और हाथ पर पट्टी बँधी हुई है। बहुत कमजोर नज़र आते हैं!)

अब्दुल्ला खां—रुकिए, नज़ीर मियां आपको अपनी बीबी सलामत (सब आश्चर्य के साथ अब्दुल्ला खां की ओर देखते हैं)।

फातिमा—(उठ खड़े होकर भयाश्चर्य के साथ) हाय अल्लाह। यह क्या हुआ?

फिरोज खां—अब्बाजान, यह क्या हो गया?

नसीम—हाय अल्लाह।

नजीर अहमद—(शान्त भाव से) आपको क्या हुआ?

अब्दुल्ला खां—जो होना था वही। नजीर मियाँ, आपने अब तक जो भी कहा सब ठीक है। मैं सब सुन रहा । आप इन्सानियत को ही अपना मज़हब समझते हैं, बहुत खूब··· ···बहुत खूब।

फातिमा—ये पट्टी क्यों बाँधी गयी है, जरा बताओ तो!

अब्दुल्ला खां—ऐक्सीडेन्ट हो गया। किसी आदमी की इन्सानियत ने मेरी जान बचायी, बेचारा खुद घायल हो गया। सुबहानाल्लाह ऐसे भी लोग हैं दुनिया में। वाकई मेरी आंखें आज खुल गयी हैं। नसीम मेरे पास आओ। नजीर मियाँ मैं तुम दोनों को मुहब्बत के धागे से बाँधना चाहता हूं। (नजीर और नसीम का हाथ मिलाकर) तुम्हारा सुहाग सलामत। परवरदिगार तूने आज मुझे राह दिखायी।

[पर्दा गिरता है]

प्रा. कृष्ण दिवाकर

भक्तिकालीन हिन्दी-काव्य में भावनात्मक-एकता

भारत एक विशाल एवं वैशिष्ट्यपूर्ण देश है। इसमें धर्म, पन्थ, जाति, भाषा, प्रदेश, प्रथा, खाद्य-पेय आदि में भिन्नता होते हुए भी आंतरिक अभिन्नता के दर्शन होते हैं। इस रहस्यमयी व्यवस्था का पृष्ठाधार भारत की प्राचीन परम्परा एवं सर्व-समावेशक संस्कृति ही है। विश्व के इतिहास से ज्ञात होता है कि अनेक विकसित एवं सम्पन्न संस्कृतियों को पतन के गर्त में विलीन होना पड़ा है। कुछ अपवादात्मक संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति भी विशेष उल्लेखनीय है जिसने शताब्दियों से अपनी उज्ज्वल परम्परा की रक्षा की और अपनी अलौकिक शक्ति से सम्पूर्ण विश्व में आकर्षण निर्माण किया। उसके इस गौरव का वास्तविक श्रेय उन मनीषियों को देना चाहिए जिन्होंने भारतीय संस्कृति की क्रोड में मानवता की रक्षा की और अपने जीवन को कृतार्थ बनाया। इन मनीषियों में भक्ति-कालीन हिन्दी कवियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है!

प्राचीन-काल से प्रचलित परम्परा अन्य देशों के समान नष्टप्राय न होते हुए आज भी भारत में सुरक्षित रूप में पाई जाती है। इससे भारतीय संस्कृति का उदात्त तथा मानवतावादी दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट हो जाता है। मानवता भारतीय संस्कृति की आत्मा है। मनुष्य में सत्प्रवृत्ति तथा दुष्प्रवृत्ति दोनों का अस्तित्व होता है। कभी-कभी मनुष्य में स्वार्थ का आकर्षण इतना बढ़ जाता है कि वह सत्प्रवृत्तियों का आश्रय छोड़ देता है और काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि षड्रिपुओं के जाल में फँस जाता है। यही प्रवृत्ति जब व्यष्टि से समष्टि में प्रसारित होती है तब समाज तथा संस्कृति के पतन का भय बना रहता है। साम, दाम, दण्ड; भेद आदि में से किसी भी समयोचित उपायों से यदि समय पर ही इन दुष्ट प्रवृत्तियों के दमन का प्रयत्न किया जाए तो समाज एवं संस्कृति का संरक्षण हो सकता है। ऐसी स्थिति में धार्मिक द्वेष, जातीय भेद-भाव, प्रान्तीय अभिमान इत्यादि दुष्प्रवृत्तियों को मूलतः नष्ट कर उनमें ऐक्य प्रस्थापित करने का आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य कुछ लोगों को करना पड़ता है। भारत में इस प्रकार के प्रयत्नों की अखण्ड परम्परा पाई जाती है। जब देश में ऐसी स्थिति प्राप्त हुई थी तब-तब भारतीय सन्त-कवियों ने 'पर-हित सरिस धर्म नहीं भाई' का संजीवनी-मन्त्र देकर भारत की जनता में भावनात्मक-ऐक्य प्रस्थापित कर उसे दृढ बनाने का कार्य किया।

सन्तों ने समाज को केवल निवृत्ति-मार्ग की शिक्षा दी जिससे समाज में विफलता तथा निराशा की भावना निर्मित हुई—यह सन्त-काव्य की ओर देखने का एकांगी दृष्टिकोण है। परन्तु विशाल दृष्टि से तत्कालीन परिस्थिति की पार्श्व-भूमि पर सन्तों के कार्य का विचार करने से ज्ञात हो जाता है कि सन्त-कवियों ने समाज को निर्बल तथा उदासीन नहीं बनाया, अपितु निर्बल के बल राम की उपासना सिखा कर समाज को विश्रृंखलित होने से बचाया। सन्तों ने सम्भ्रान्त जनता को जीवन की नई दृष्टि देकर दुर्बल तथा अनिष्ट प्रवृत्तियों का प्रतिकार कर 'रामराज्य' की स्थापना के लिए सुसज्जित किया। तत्कालीन परिस्थिति में भारत का सामाजिक नेतृत्व सन्तों ने ही किया था।

व्यापक अर्थ में 'सन्त' शब्द सगुणोपासक तथा निर्गुणोपासक दोनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस लेख में भी सन्त शब्द का प्रयोग इसी व्यापक अर्थ में किया गया है। मानवतावाद के श्रेष्ठ समर्थक महात्मा कबीर की वाणी में प्राप्त आत्मविश्वास, निर्भीकता, अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह, आडम्बर-युक्त धार्मिक प्रथाओं के निर्मूलन की भावना देखकर कौन कह सकेगा कि उन्होंने दुर्बल, जर्जरित तथा सम्भ्रान्त समाज को सबल तथा सशक्त नहीं बनाया ? गोस्वामी तुलसीदास के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरित मानस' में एक श्रेष्ठ लोकरक्षक, आदर्श मर्यादा-पालक, महान् राष्ट्र-नायक के रूप में जो श्री रामचन्द्र जी का चरित्र प्रस्तुत किया है उसे देखकर जीवन-विषयक नवीन दृष्टि प्राप्त हो जाती है। महाकवि सूरदास जी ने अपनी सरस और मधुर वाणी के माध्यम से कृष्ण-भक्ति का जो प्रचार किया वह इतना

प्रबल था कि इस कृष्ण-प्रेम के सूत्र में विविध धर्मीय तथा विविध श्रेणी की भारतीय जनता पिरोई गई थी। मध्ययुग का यह आन्दोलन आसेतु-हिमाचल प्रसारित हुआ था। इस युग में अनेक छोटे-मोटे वैचारिक प्रवाहों का मिलन होने से भारत का राष्ट्रीय तथा जातीय-जीवन उज्ज्वलित हो चुका था जिसके फलस्वरूप मानवधर्म और भारतीय-संस्कृति की रक्षा हो गई।

भक्तिकालीन हिन्दी काव्य का सूक्ष्म तथा गहराई से अध्ययन करने पर ज्ञात हो जाता है कि संत कवियों ने भी समाजवाद के लगभग सभी सिद्धान्तों का समर्थन किया है। आधुनिक युग में उत्पन्न किसी 'वाद' का संत-काव्य पर आरोप करना उनके प्रति अन्याय करना है। अतः यदि इतना कहा जाय तो अनुचित न होगा कि मानवता-प्रेम जागृत करने तथा मनुष्यों की सुख-शांति के लिए समाजवाद के द्वारा आज जो प्रयत्न किए जा रहे हैं उसी प्रकार मनुष्यों की समता के प्रयत्न भक्ति और अध्यात्म के माध्यम से भारतीय संत-कवियों ने किया था।

कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि संत-कवियों ने अत्यन्त स्पष्ट रीति से सामाजिक समता की भावना जागृत करने का प्रयत्न किया। जाति-भेद, वर्ण-भेद ही नहीं, वरन् धर्म-भेद भी उन्हें मान्य न था। ईश्वरोपासना के समान सर्वव्यापक क्षेत्र में सभी प्रकार के कृत्रिम भेदाभेद समूल नष्ट करने के अनेक प्रयत्न अत्यन्त निष्ठा तथा सातत्य से उन्होंने किए। गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि सूरदास, मीराबाई आदि सगुणोपासक संत कवियों ने भगवद् गीता जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ का आदर्श समाज के सामने रखा और सन्देश दिया कि अपना कर्त्तव्य-पालन करते हुए वर्ण-वैषम्य तथा अन्य भेदाभेद को महत्त्व देना उचित नहीं है।

संतों ने अपने उपदेशों में सत्य का पुरस्कार, असत्य का परित्याग, अहिंसा-पालन परमार्थ, स्वार्थ-त्याग, ईश्वर-प्रेम, आत्म-संतोष, दया, उदारता आदि मानव-धर्म के लिए पोषक बातों का सदैव समर्थन किया। समाज की सुव्यवस्था तथा उन्नति के लिए सत्य का पुरस्कार आवश्यक हो जाता है। क्योंकि यह सत्य है कि असत्य की बुनियाद पर खड़ी कोई भी सामाजिक इमारत शाश्वत नहीं रह सकती। 'सत्यमेव जयते' इस महान् सिद्धान्त का रहस्य संत कवियों ने अच्छी तरह से जान लिया था। सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए उन्होंने सत्य का पुरस्कार किया। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने 'सत्य' को ईश्वर का प्रतिस्वरूप मान लिया था। पाखण्ड, ढोंग, आडम्बर जैसे असत्य पर आधारित सामाजिक प्रथाओं को उन्होंने विरोध किया। धर्म के नाम पर अधर्म, न्याय के नाम पर अन्याय और आचार के नाम पर अनाचार आदि का तत्कालीन समाज में प्रचलन देखकर भक्तिकालीन हिन्दी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से उसके सत्य स्वरूप को अनावृत कर जनता के सम्मुख रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

इन कवियों ने समाज में समता प्रस्थापित करने की इच्छा से लगभग सभी कल्याणकारक उपायों को प्रोत्साहन दिया। सभी सन्तों के उपदेशों का सार यही है कि हम सब मानव हैं। अतः मानवधर्म का पालन करने में ही हमारी भलाई है। जाति-भेद, धर्म-भेद, वर्ण-भेद आदि जैसी स्वार्थी एवं संकुचित वृत्तियों से समाज-जीवन दूषित हो जाता है। उसे शुद्ध और निर्मल रखना हमारा कर्त्तव्य है। सत्य, प्रेम, अहिंसा, दया, आत्मसंतोष, औदार्य आदि 'मानवता' की पूजा के प्रमुख साधन हैं। परम्परागत प्रचलित रूढियाँ, प्रथाएँ यदि कालानुरूप न होंगी तो उनमें परिष्कार करना अथवा परिवर्तन करना हमारा धर्म है। मन्दिर में जाकर जडमूर्ति की पूजा करने की अपेक्षा जीवित मनुष्य प्राणियों की पूजा करना श्रेयस्कर है। मानवता की पूजा का महत्त्व समझाते हुए सन्त पलटुदास लिखते हैं—

हिन्दु पूजै देवखरा, मुसलमान मसजीद।
पल्टू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद॥

मध्ययुग में सन्त कवियों ने धर्म के माध्यम से मानवता की पार्श्वभूमि पर भारतीय जनता में भावनात्मक ऐक्य निर्माण करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया। आज भी परिवर्तित काल के अनुसार 'धर्म' के स्थान पर 'राष्ट्र' के माध्यम से मानवता की पार्श्वभूमि पर भावनात्मक एकता निर्मित के प्रयत्न होना आवश्यक है। ●

श्री सी. जी. राजगोपाल

भावनात्मक एकता और प्रान्तीय भाषाएँ

भारत में भावनात्मक एकता की स्थापना के पथ पर बाधा उपस्थित करने वाले विघटनकारी तत्त्वों में भाषापरक भेद-भावना का प्रमुख स्थान है! लोगों में धर्मगत या दलगत भेद-भावनाओं का उत्पन्न होना और राष्ट्रहित पर उनका दुष्प्रभाव पड़ना सहज है। पर भाषा को लेकर कटुता और वैमनस्य की भावना कैसे उत्पन्न हो सकती है—यह बात समझ में नहीं आती। भाषा तो भावों की अभिव्यंजना का साधन है। समस्याओं को हल करने में हमारी सहायता करने वाली भाषा खुद हमारे सामने विकट समस्या का रूप धारण किए खड़ी हो—यह एक विचित्र विडम्बना है। भाषा की उत्पत्ति ही लोगों को एक-दूसरे के निकट लाने के लिए हुई है। मनुष्य सामाजिक प्राणी कहलाते भी भाषा के ही कारण हैं। किन्तु हमारे यहां तो भाषा का प्रयोग विद्वेष और वैमनस्य की भावना को मिटाने की जगह, भड़काने के काम में अधिक होता है।

भाषा उन्हीं के यहां एक समस्या बन जाती है जो उसे अपने भावों से अधिक महत्त्व देते हैं। भावाभिव्यक्ति का साधन है भाषा, और साधन को साध्य मान बैठना मूर्खता नहीं, तो दुर्भावना अवश्य है। आखिर, मनुष्य के भाव-जगत् से भिन्न, भाषा का अस्तित्व ही कहाँ है! पर, पता नहीं, क्यों कोई अपनी भाषा से इतना प्रेम करने लगता है कि वह उस प्रेम की साधना में प्राणाहुति करने पर कटिबद्ध रहता है। कोई अपने धर्म या जाति के हित मर मिटे तो कुछ बात भी है। आए दिन कुछ लोगों का अन्धा भाषा-प्रेम इस हद तक बढ़ा है कि लगता है कि वे राष्ट्र की जड़ खोदकर ही दम लेंगे।

अंग्रेज़ी शासन के युग में तो "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति का मूल" वाली भावना का अपना विशेष स्थान था। वस्तुतः पराधीन भारत में मातृभाषा के प्रति प्रेम की यह भावना विदेशी शासन के प्रति हमारे विद्रोह और स्वाधीनता के प्रति मोह की अभिव्यक्ति थी। उसका महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था। किन्तु स्वाधीन भारत में मातृ-भाषा को लेकर भावावेश दिखाना न केवल हमारी कुत्सित मनोवृत्ति का प्रदर्शन ही है, अपितु राष्ट्र की उन्नति के पथ पर बड़ी बाधा भी है। इस मनोवृत्ति का हानिकारक प्रभाव जितना भारत पर पड़ सकता है उतना और किसी राष्ट्र पर नहीं। कारण, भारत भिन्न-भिन्न भाषाओं की प्रदर्शन-स्थली जैसा है। भौगोलिक कारणों से हमारे यहां ऐसा होना स्वाभाविक भी था। किन्तु इस भिन्नता में अभिन्नता का अनायास ही दर्शन किया जा सकता है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि हमारी प्रान्तीय भाषाओं में विचारधाराओं की गति प्रायः एक-सी है। हमारा भावजगत् एक ही है; भावाभिव्यंजना की शैली भी एक-सी है; अन्तर रहा है केवल अभिव्यक्ति के साधन का। क्या साहित्यिक प्रवृत्तियों, विचारधाराओं और अभिव्यक्ति की विधाओं की यह समानता इस बात का प्रमाण नहीं है कि इन विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में एक ही हृदय का स्पन्दन सुनाई दे रहा है!

प्रान्तीय भाषाओं की साहित्यिक प्रवृत्तियों की समानता को साधारण बात कहकर कोई भले ही टाल दे, पर स्वयं उन भाषाओं की समानता ध्यान देने योग्य है। आर्यभाषा-परिवार की हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती जैसी भाषाओं में परस्पर इतनी समानता है कि इनमें से कोई-एक भाषा जानने वाले को दूसरी भाषा समझने में कोई बड़ी कठिनाई नहीं होती। यही स्थिति तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम जैसी द्राविड भाषाओं की भी है। यद्यपि इन दोनों भाषा-परिवारों के ढांचे अवश्य ही अलग-अलग हैं, परन्तु फिर भी हमारी प्रान्तीय भाषाओं की शब्दावलियाँ प्रायः समान हैं। आर्य-भाषाओं की बात ही क्या, खुद द्राविड भाषाओं में भी संस्कृत के शब्दों की भरमार है। उदाहरण के लिए एक मलयालम्-कविता की ये पंक्तियाँ देखिए—

> "नळिनदळमोहननयनविलासम्
> नवकुन्दसुमसुन्दरवरमंदहासम्
> घननीलविपिनसमानसुकेशम्
> कुनुकुन्तळवलयांतिककर्णांतिकदेशम्"

यों भारत की प्रत्येक प्रान्तीय भाषा पर संस्कृत का बड़ा प्रभाव पड़ा है। मलयालम् में संस्कृत शब्दों का प्रयोग इतना अधिक होता है कि एकबार विख्यात विद्वान् श्री के. एम. मुंशी ने कहा कि किसी मलयाली परिवार में हुए वार्तालाप को सुनकर उन्हें लगा कि जैसे वे कण्वाश्रम में बैठे हों। कहना न होगा कि संस्कृत भाषा की यह शब्दावली, भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लोगों में भावनात्मक-एकता की अनुभूति उत्पन्न करने में कितनी सहायक है।

ये प्रान्तीय भाषाएँ भिन्न-भिन्न जन-समुदायों की भावाभिव्यक्ति के भिन्न-भिन्न रूप है, हालांकि सबका भाव-जगत् एक ही है। अतः एक राष्ट्र के लिए एक सामान्य भाषा अपेक्षित है जिसमें उसका प्रत्येक नागरिक आत्माभिव्यक्ति कर सके और जो भाव-भावनाओं के आदान-प्रदान का अन्तर्राज्यीय माध्यम रहे। भारत में अब तक अंग्रेज़ी यह काम कर रही थी; कहना पड़ता है, अब भी कर रही है। पर आगे अंग्रेज़ी को उस पद से हटा देना होगा; क्योंकि किसी भी राष्ट्र के लिए एक विदेशी भाषा को राष्ट्रभाषा का गौरवमय स्थान देना अपमान की बात है। यही कारण है कि हमने बहुमत का सम्मान करते हुए हिन्दी को राष्ट्रभाषा निर्धारित किया। भारत की प्रान्तीय भाषाओं में, राष्ट्रभाषा होने की योग्यता हिन्दी मे इसलिए अधिक है कि वह न केवल बहुसंख्यक लोगों की भाषा है, अपितु संस्कृत की उत्तराधिकारिणी भाषा होने के कारण अन्य प्रान्तीय भाषाओं के अत्यन्त निकट भी है।

हिन्दी को हमें राज्यभाषा के रूप में नहीं राष्ट्र-भाषा के रूप में, अर्थात् भावनात्मक एकता की स्थापना के महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में देखना-समझना होगा। इस नवीन परिदृश्य में रख कर उसका अवलोकन करने पर हमें विदित होगा कि प्रान्तीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने के विषय में हिन्दी की कौन-सी कमी है और उसकी पूर्ति में प्रांतीय भाषाओं का योगदान कितना महत्त्वपूर्ण है।

राष्ट्र-प्रेम की प्रेरणा राष्ट्र के प्रति आत्मीयता की भावना है और यही भावना राष्ट्र-भाषा-प्रेम का भी प्रेरणास्रोत है। जैसे किसी प्रान्त के लोग केन्द्रीय सरकार को अपनी सरकार तभी मानते हैं जब कि संसद में उनका भी प्रतिनिधित्व हो, वैसे ही किसी भाषा को तभी वे राष्ट्रभाषा मानेंगे जबकि वे उसमें अपने जीवन को प्रतिबिंबित देख सकें और अपनी भाव-भावनाओं की अभिव्यक्ति पाएं। हिन्दी का रूप ऐसा हो कि वे अनुभव करने लगें कि यह हमारी भाषा है और इसका विकास हमारे भाव-जगत् का विस्तार है। राष्ट्र-भाषा का अर्थ है सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा—कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और पंजाब से लेकर बंगाल तक अभिव्यक्त समग्र भारत की भाषा। अतः राष्ट्र-भाषा के नाते हिन्दी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि उसके साहित्य के क्षितिजों का इतना विस्तार हो कि उसमें सम्पूर्ण भारत के जन-जीवन का समावेश हो पाए। उसमें न केवल उत्तर भारत का, बल्कि समूचे भारत का हृदय बोल उठे।

हिन्दी-साहित्य का यह क्षितिज-विस्तार भाषा के क्षेत्र में भावनात्मक-एकता स्थापित किए जाने का सबल आधार है। इसका उपाय प्रान्तीय-भाषाओं के साहित्य का उसमें समावेश करना ही है। उन भाषाओं के अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि हिन्दी के प्रति प्रान्तीय भाषा-भाषियों के हृदय में आत्मीयता की भावना जागृत होगी। आत्मीयता की यही भावना वास्तव में भावनात्मक एकता का मूलमन्त्र है। साथ ही साथ, हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि भी होगी। जैसे यमुना, सरयू, गोमती-घाघरा जैसी पोषक नदियों से जीवन-जल पाकर गंगा समुद्र को प्राप्त होती है, वैसे ही भारत की विभिन्न प्रान्तीय-भाषाओं की नानामुखी प्रतिभाओं से सम्पुष्ट होकर हिन्दी राष्ट्रभाषा के सच्चे गौरव से युक्त हो पायगी।

हिन्दी के विरुद्ध आन्दोलन चलाने वाले लोगों की यह कल्पना सर्वथा निराधार एवं भ्रान्तिपूर्ण है कि प्रान्तीय भाषाओं पर उसका आधिपत्य हो जायगा। उन्हें स्मरण हो कि हिन्दी का काम अन्य भाषाओं पर अपना अधिकार जमाना नहीं, अपितु उनको एकता के सूत्र में बाँधना है। भारतीय जनता के हृदय में भावनात्मक एकता की अनुभूति उत्पन्न करना उसका लक्ष्य है। इस महत्त्वपूर्ण लक्ष्य की पूर्ति प्रान्तीय भाषाओं के योगदान की अपेक्षा रखती है। ●

डा देवीदत्त शर्मा

भावनात्मक एकता के प्रतीक : चार धाम

भारत भी बड़ा विचित्र देश है, संसार में ऐसा कोई भी दूसरा देश नहीं जिसमें इतनी विविधता हो जितनी कि भारतवर्ष में। किसी विदेशी के लिए तो भारत विभिन्न संस्कृतियों, जातियों, धर्मों और सम्प्रदायों का एक अजायबघर ही है। उसकी कल्पना की सीमा में भारत की भावनात्मक एकता का चित्र शायद समा भी न सकेगा। पर भारत के दूरदर्शी नायकों ने प्रारम्भ से ही भारत की भावनात्मक एकता को बनाए रखने के लिए जिस सूझ-बूझ का परिचय दिया है उसे देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने इस देश के धर्म, समाज आदि का गठन इस रूप में किया है कि उसमें पारस्परिक एकता की भावना सदा प्रभावित होती रहे। सब अलग-अलग होते हुए भी अपने को एक-दूसरे के साथ बँधे हुए समझते रहें। विविधता में एकता भारत की अपनी सांस्कृतिक मौलिकता है ही।

इतिहास साक्षी है कि इस देश में समय-समय पर विभिन्न संस्कृतियों का आगमन हुआ। किन्तु उनमें से आज तक कोई भी ऐसी नहीं बची जोकि सदा के लिए अपने पृथक् अस्तित्व को बनाए रख सकी हो। यहां के भाषा, भाव, सदाचार, धर्म, सम्प्रदाय आदि किसी-न-किसी के साथ उन्हें सम्बन्ध स्थापित करना ही पड़ा। एकता की यह कड़ी किसी प्रकार के दबाव या बल-प्रयोग के कारण नहीं, वरन् स्वेच्छा से जोड़ी गई है। इसीलिए यह सदा दृढ से दृढतर होती गई है। शक, हूण, मंगोल, यवन, कुषाण आदि कितनी ही विदेशी संस्कृतियाँ यहां आई पर सभी कालान्तर में यहां की संस्कृति के अंग बन गई। उनका आज कोई पृथक् अस्तित्व नहीं, वे सब भारतीय संस्कृति के ही अंग हैं।

भारत में सांस्कृतिक एकता की समस्या केवल बाह्य तत्त्वों के समन्वय की ही नहीं थी, अपितु आन्तरिक तत्त्वों के बीच भी समन्वय बनाए रखने की थी। स्वयं भारत में ही अति प्राचीन काल से ही दो बड़ी समृद्ध संस्कृतियाँ इसके दो बड़े भू-भागों पर फैली हुई थीं। फिर प्रत्येक के अन्दर एक नहीं अनेक विभाजक रूप थे, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के अनेक तत्त्व ऐसे थे जो भीतर से ही एकता को खण्डित करने के लिए पर्याप्त थे। स्वयं आर्यों में ही अनेक देवी-देवताओं तथा विभिन्न उपासना-पद्धतियों का विकास हो चुका था, समस्त देश का क्षेत्र-विस्तार इतना था तथा उसमें प्राकृतिक विभाजक रेखाएँ इतनी थीं कि थोड़ी-सी उपेक्षा या असावधानी के कारण देश में विभिन्न संस्कृतियों का, एक-दूसरे से बिल्कुल निरपेक्ष्य होकर, विकसित हो जाना स्वाभाविक था। ऐसी स्थिति में देश के एक छोर से दूसरे छोर तक एकत्व की भावना को जाग्रत रखना अवश्य अति कठिन कार्य था किन्तु उस काल में ही उन अद्भुत मेधावी राष्ट्रनायकों ने इसे बनाए रखने के लिए कुछ ऐसे कार्य किए जिनका महत्त्व आज भी कम नहीं हुआ है।

आस्तिकता भारत का प्राणवायु रहा है और इसने भारत की सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने में बड़ा योगदान किया है। भारतीय जीवन की इस शाश्वतिक धारा को पहचान कर ही इस देश और समाज के नायकों ने समस्त देश के निवासियों के लिए कुछ ऐसे सांस्कृतिक महत्त्व के केन्द्र निश्चित किए जो सदा ही राजनैतिक एकता से निरपेक्ष्य रहते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से देश को एक सूत्र में बांधे रख सके। इसके लिए भरत-भू-खण्ड की कुछ नदियाँ, कुछ महत्त्वपूर्ण नगर तथा, कुछ अन्य ऐसे स्थान चुने गए जिनका सांस्कृतिक महत्त्व प्रत्येक भारतवासी के लिए समान है। फलस्वरूप सात नदियाँ निश्चित की गई, जिनमें से कुछ उत्तर भारत की थीं तथा कुछ दक्षिण भारत की, इनमें स्नान करना व इनका स्मरण करना प्रत्येक जाति, वर्ण, धर्म या सम्प्रदाय के भारतीय के लिए समान रूप से भावनात्मक व फलदायक माना गया। इतना ही नहीं, अपितु प्रत्येक आस्तिक भारतीय

के लिए किसी भी पुण्यकर्म के अवसर पर इनका आवाहन करना उसके कृत्य का एक अंग हो गया। इसीलिए आस्तिक वर्ग में अब तक किसी भी मंगल-पूजन आदि के अवसर पर—"गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति, नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु" के रूप में इन समस्त नदियों का आवाहन किया जाता है।

इसी प्रकार देश के विभिन्न भागों को ध्यान में रखते हुए सात मोक्षदायक पुरियों का भी निर्धारण किया गया। प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति के लिए इनका दर्शन व प्रातःस्मरण मोक्षदायक माना गया। उत्तर भारत से अयोध्या, मथुरा और काशी को लिया गया तो दक्षिण से कांची को। पूर्व में जगन्नाथपुरी को लिया गया तो पश्चिम में द्वारावती को।

ऐसे ही समस्त देश में द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों की भी परिगणना की गई। इनके चुनाव में भी देश की समस्त भौगोलिक स्थिति को बराबर ध्यान में रखा गया। इनका दर्शन और स्मरण विशेष रूप से पुण्यदायक तथा महत्त्वपूर्ण माना गया।

कहने का अभिप्राय यह है कि उत्तर भारत के निवासी के लिए जितनी पवित्र गंगा और यमुना हैं उतनी ही पवित्र हैं कावेरी और गोदावरी भी। वह दोनों का एक साथ ही आवाहन करता है। दोनों के दर्शन व स्नान को समान रूप से पुण्यदायक व पापनाशक मानता है। इसी प्रकार उसके लिए देव-स्थली कांची, द्वारकापुरी या जगन्नाथपुरी भी काशी से किसी भांति भी कम मोक्षदायिनी नहीं, यही स्थिति है पूर्व-पश्चिम व दक्षिण के निवासी की भी। अर्थात् न पूर्व के निवासियों के लिए गंगा-सागर-संगम या जगन्नाथपुरी अधिक है, न पश्चिम वालों के लिए द्वारिका और न दक्षिण वालों के लिए काँची ही। देश के सभी भागों के व्यक्तियों के लिए इस देश के सभी सांस्कृतिक महत्त्व के स्थान समान रूप से पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

इन सबका फल यह हुआ कि अनेकानेक कठिनाइयों एवं विभाजक रेखाओं के बावजूद भारत के प्रत्येक स्थान के निवासी के लिए इन सभी स्थानों का सांस्कृतिक व धार्मिक महत्त्व समान रूप से बना रहा। और सांस्कृतिक सूत्रों को दृढतर करने की माध्यम तीर्थयात्राएँ बराबर चलती रहीं। एक-दूसरे के सम्पर्क में आते रहे और पारस्परिक आदान-प्रदान बढ़ता रहा। इससे ही समस्त देश भावनात्मक एकता के सूत्र में अनायास ही बँधा रहा, इनके ही फलस्वरूप देश के एक कोने के आचार-विचार, वेष-भूषा आदि का दूसरे कोने के लोगों से परिचय होता रहा, इतना ही नहीं, अपितु राष्ट्रीय तथा धार्मिक विचारों का विनिमय भी इन्हीं के माध्यम से होता रहा। वस्तुतः इसकी नींव इतनी गहरी पड़ी कि कई सहस्राब्दियों के बाद भी कभी यह देखने में नहीं आया कि देश के एक भाग ने अपने-आपको सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वथा निरपेक्ष समझा हो।

सांस्कृतिक एकता की इसी परम्परा में आते हैं भारत के चार पावन धाम भी। इनकी भौगोलिक स्थिति पर विचार करने से पता चलता है कि इनका निर्णय बहुत सोच-समझ कर किया गया है, बद्रिकाश्रम यदि भारत के धुर उत्तर में है तो रामेश्वरम् एकदम भारत के दक्षिणी द्वार पर। इसी प्रकार श्री जगन्नाथपुरी यदि एकदम पूर्वी तट पर है तो द्वारिकापुरी एकदम पश्चिमी तट पर; ये चार धाम मानों भारतीय संस्कृति भवन के चार सुदृढ स्तम्भ हैं। भारत की सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने में इन्होंने जो कार्य किया है वह अद्भुत है। शायद इतना सबल और स्थायी कोई अन्य उपाय इस कार्य के लिए नहीं हो सकता था, जब, दक्षिण; पूर्व या पश्चिम का कोई यात्री 'गंगा मैय्या की जय' या 'बद्री विशाल की जय' कहता हुआ हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार करता हुआ श्रद्धा और विश्वास के साथ बद्रिकाश्रम की ओर कदम बढ़ाता हुआ चलता है दो तब उसके मन से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण का भाव सर्वथा लुप्त हो जाता है। वह अपने को भारत का, केवल भारत का निवासी समझता है। वह चाहे कोई भाषा बोलता हो, देश के किसी भाग में रहता हो, किसी भी जाति, धर्म वा सम्प्रदाय का हो किन्तु उसके लिए बद्री विशाल या गंगा मैय्या का वही महत्त्व है तथा उसपर उसका उतना ही अधिकार है जितना कि स्वयं उस प्रदेश के निवासी का हो सकता है। इस केन्द्र-बिन्दु पर आकर सारी भिन्नता

एकता में विलीन हो जाती है। यह बात प्रत्येक धाम के लिए की जा सकती है। इन धामों के विशाल परिवेश में आर्य, द्रविड़, जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सभी भेद मिट जाते हैं, वे भारतीय केवल भारतीय रह जाते हैं।

भारत की चारों प्राकृतिक सीमा-रेखाओं को भारत के चार पुण्यधाम होने का गौरव दिया गया है। इनमें से श्री जगन्नाथपुरी, श्री रामेश्वरम् तथा श्री द्वारावती तो भारत के तीन समुद्री तटों पर स्थित हैं तथा चौथा भारत की उत्तरीय सीमा पर्वतराज हिमालय के अंचल में। जब कोई यात्री एक छोर से दूसरे छोर के पुण्यधाम के दर्शनों के लिए चलता है तो उसे इस दीर्घ यात्रा के बीच अनेक भारतीय जनपदों को पार करना ही पड़ता है, जिससे सहज ही उसके मानस पर भारत की विशालता व विविधता का चित्र प्रतिबिंबित हो उठता है। वह अपने-आप को इस विशाल देश का अंग समझता है और इस धरती के प्रत्येक कण में अपनत्व का व पावनता का अनुभव करता है। हिमालय से लेकर रामेश्वरम् तक का और जगन्नाथपुरी से द्वारिका तक का समस्त भूभाग उसका अपना है और इसके मध्य-क्षेत्र के सभी निवासी उसके अपने सहधर्मी तथा उसकी अपनी संस्कृति के साझेदार हैं। यही तो है भारत के चार सीमान्त प्रदेशों में इन चार धामों की स्थापना की प्रेरक-प्रवृत्ति। अपनी इसी पूर्व परंपरा को दुहराया था पुनः एकबार श्री आदि शंकराचार्य जी ने भारत के चार कोनों पर चार शक्ति-पीठों की स्थापना करके।

ये धाम किस प्रकार भावनात्मक एकता की स्थापना तथा प्रसार करते हैं यह भी द्रष्टव्य है। श्री बद्रीधाम के दर्शनों को जाने वाला दर्शनार्थी जब मार्ग की विविध कठिनाइयों को पार करके इस पुण्यधाम में पहुँचता है तो नर-नारायण तथा भक्त-प्रवर उद्धव की एवं अनेक ऋषियों मुनियों तथा योगियों की इस इस तपोभूमि को देखकर उसका सारा श्रम जाता रहता है और उसका हृदय आनन्द से विभोर हो उठता है। ११,१५० फुट ऊंचे उस शिखर से जब वह भारत के विशाल प्रांगन की ओर निहारता है तो उसका हृदय स्वयं ही विशालता का अनुभव करने लगता है और उस समय उसके हृदय की उस विशालता में वह सब-कुछ समझ जाता है जो-कुछ भी भारतीय है।

यहां आकर उसे भारतीय जीवन-दर्शन के साक्षात् दर्शन होते हैं। वह भगवान् के एक ही रूप में ऐश्वर्य भोग और निर्माण की झांकी देखता है। अर्थात् प्रातःकाल के दर्शनों के समय वह भी बद्री विशाल को अनलंकृत-निर्वाण रूप में देखता है तो सायंकाल के दर्शनों में उन्हें विविध रत्नालंकारों से सुसज्जित परम अलंकृत रूप में; यही तो है विविधता में एकता।

भावनात्मक एकता तथा समदर्शिता का अद्भुत रूप प्रस्तुत करने वाला दूसरा धाम है श्री जगन्नाथपुरी। अनेक पुराणों तथा महाभारत में इसकी महिमा का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। भावनात्मक एकता के जैसे दर्शन इस धाम में होते हैं वैसे अन्यत्र कहीं नहीं, विश्वास किया जाता है कि इस धाम के पुण्य-क्षेत्र में सब-कुछ पवित्र हो जाता है। इसलिए यहाँ पर किसी भी प्रकार के पारस्परिक भेद-भाव का अभाव पाया जाता है। किसी भी जाति, वर्ण या सम्प्रदाय का व्यक्ति किसी भी अन्य जाति, वर्ण या सम्प्रदाय के व्यक्ति के साथ एकत्र एक ही पत्तल पर श्री जगन्नाथ जी का भोग पा सकते हैं। यहां तक कि श्री जगन्नाथ जी की पूजा वर्ष में ग्यारह महीने तो यहां के पण्डों द्वारा होती है, किन्तु ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा से आषाढ शुक्ल पूर्णिमा तक एक मास के लिए साबर वंश के शूद्रों द्वारा होती है। इसी प्रकार रत्नवेदी पर स्थित श्री जगन्नाथजी, श्री सुभद्राजी तथा श्री बलराम जी की प्रधान मूर्तियों के समीप जाने तथा उनकी पूजा करने की किसी भी जाति व वर्ण के लोगों के लिए कोई रोक-टोक नहीं। यहाँ भी श्री जगन्नाथ जी का दिन-भर में कई रूपों में शृङ्गार किया जाता है। जिस में उन्हें दामोदर वामन, बुद्ध, गणेश आदि कई रूपों में सजाया जाता है। एक ही मूर्ति को प्रतिदिन विभिन्न देवों के रूप में शृंगारित करना भावनात्मक एकता का प्रतीक नहीं तो और क्या है? विशेष ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि न केवल हिन्दू-देवों के रूप में श्री जगन्नाथ जी का शृङ्गार होता है अपितु 'बुद्ध-वेष' में भी उनका शृङ्गार किया जाता है। क्या कोई विदेशी इस बात की कल्पना कर सकता है कि वैदिक

विष्णु की मूर्ति का वेद-विरोधी भगवान् बुद्ध के रूप में भी शृङ्गार व पूजन किया जाता हो। क्या संसार में धार्मिक सहिष्णुता तथा भावनात्मक-एकता का इससे भी अच्छा कोई और उदाहरण मिल सकता है।

भारत के चार धामों तथा बारह ज्योतिर्लिङ्गों में अन्यतम धाम श्री रामेश्वरम् की कहानी भी सांस्कृतिक एकता की एक जीवित कहानी है। भारत के दक्षिणी तट पर स्थित इस धाम का महत्त्व और भी अनेक रूपों में है। उत्तर को दक्षिण के सम्पर्क में लाने का जो अद्भुत कार्य सहस्रों वर्षों से इस धाम ने किया है वह अविस्मरणीय है। इस स्थान पर भगवान् विष्णु के अवतार, आर्य-संस्कृति के आदर्श-पुरुष भगवान् राम द्वारा अनार्य-संस्कृति के परमाराध्य भगवान् शङ्कर की सर्वप्रथम आराधना हुई थी। इसके समीप ही गलबाँही डालकर प्रेम से मिलते हुए दो महासागर भारत की दो महान् संस्कृतियों के मिलन की कहानी अब भी प्रत्येक यात्री को सुनाते रहते हैं और उस आदर्श महापुरुष के आदर्श की याद दिलाते हैं जिसने कि सर्वप्रथम इस मिलन की नींव डाली थी। तबसे आज तक यह पावन धाम निरन्तर आर्य और द्रविड संस्कृतियों के मिलन और आदान-प्रदान का मुख्य केन्द्र रहा है। प्रतिवर्ष भारत के कोने-कोने से लाखों यात्री दक्षिण भारत की इस पावन भूमि की यात्रा करते हैं और सांस्कृतिक सम्बन्धों की युग प्राचीन कड़ियों को दृढतर बनाते रहते हैं।

यही स्थिति है सप्त-पुरियों तथा चारों धामों में श्रेष्ठ धाम द्वारिका की भी। भारत के पश्चिमी समुद्र के तट पर स्थित इस धाम के दर्शनों को भारत के विभिन्न कोनों से आने वाले श्रद्धालु यात्रियों के द्वारा भावनात्मक एकता का जो सन्देश भारत के कोने-कोने में पहुँचता है वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। द्वारिकाधीश की छाती पर श्री भृगु द्वारा मारी गई लात का चिह्न मानो अपने भक्तों को पारस्परिक-सहिष्णुता का अमर-सन्देश देता रहता है।

आज के भौतिकवादी-युग का भारतीय तीर्थों के इस महत्त्व को भुलाता जा रहा है। जोकि देश के लिए शुभ लक्षण नहीं। केवल राजनैतिक-एकता के बल पर ही इतने विशाल और विविध भाषा, वेष, धर्म-सम्प्रदाय वाले देश को एक सूत्र में बांधे रखना सरल नहीं। इसी लिए हमारे प्राचीन राष्ट्र-नायकों ने राजनैतिक-एकता की अपेक्षा सांस्कृतिक व भावनात्मक एकता को अधिक महत्त्व दिया था और उसे ही दृढ बनाए रखने का अनेक रूपों में प्रयत्न किया था। कहना पड़ेगा कि वे अपने इस प्रयत्न में सफल, सर्वथा सफल रहे। ●

भावनात्मक एकता

श्री रूपचन्द पारीक

जब-जब सूत्र विलग होते हैं
व्याकुल जीवन को करते हैं
व्यर्थ दम्भ-द्वेष रखते हैं
तब-तब उनका गुन्थन करने
कोई मन्त्र नवीन चाहिए।

जब-जब पृष्ठ विलग होते हैं
नहीं परस्पर युत होते हैं
नहीं व्यक्त निज को करते हैं
तब-तब उनकी अभिव्यक्ति को
कोई ग्रन्थ नवीन चाहिए।

जब-जब तत्त्व विलग होते हैं
धर्म-कर्म विलग करते हैं
तथ्य-कथ्य निष्क्रिय रहते हैं
तब-तब उनके सम्मिश्रण को
कोई तन्त्र नवीन चाहिए।

जब-जब पंथ विलग होते हैं
धूमिल मत, पथ को करते हैं
नहीं लक्ष्य तक जा सकते हैं
तब-तब उनकी लक्ष्य सिद्धि को
कोई मनन नवीन चाहिए।

जब-जब भेद विलग होते हैं
व्यथा, खेद मन में भरते हैं
थकित भ्रमित जन-मन करते हैं
तब-तब उनके महामिलन को
कोई तीर्थ नवीन चाहिए।

ऐसा एक मन्त्र है भारत
ऐसा एक तन्त्र है भारत
ऐसा एक तीर्थ है भारत
ऐसा एक ग्रन्थ है भारत
ऐसा एक मनन है भारत॥

प्रा. जी० गोपीनाथन्

भारत के सामूहिक आचारों और त्योहारों में एकता का स्वर

भारत की संस्कृति अनेकरूपता के रंगों से निर्मित एक मिश्रित संस्कृति है। वैविध्य में एकत्व भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता है। संस्कृति अवश्य ही एक अमूर्त वस्तु है, लेकिन हर देश के आचार-विश्वासों और परम्परागत त्योहारों में उसका प्रतिफलन पड़ना स्वाभाविक है। अतः भारतीय संस्कृति की आधारभूत एकता के दिग्दर्शन करने के लिए यहां के सामूहिक आचार और त्योहारों में पाए जाने वाले एकत्व को समझना परम आवश्यक है। आराधना और पूजा-विधियां, विवाह, शव-संस्कार, श्राद्ध, जन्म-दिन का उत्सव आदि कर्मों और वेश-भूषा में पायी जाने वाली एकता हर देश की सांस्कृतिक एकता की ओर संकेत करने में पर्याप्त है। ठीक इसी तरह हर देश के त्योहारों में वहां की संस्कृति की गहरी छाप पड़ना स्वाभाविक है, क्योंकि सामूहिक त्योहार और जनता की संस्कृति में अभिन्न सम्बन्ध होता है। संस्कृति यदि सूक्ष्म और गहन तत्त्व है तो सामूहिक त्योहार और आचार-विचार ही मानो उसका स्थूल और प्रत्यक्ष रूप है। अर्थात् उसमें पायी जाने वाली एकता संस्कृति की अखण्डता एवं ऐक्य का स्फुरण करने वाली होती है।

भारत-भर में आराधना किए जाने वाले देवताओं और मूर्तियों में बहुत अधिक समानताएँ हैं। लेकिन उनकी पूजा विधियों में कई भेद दिखाई पड़ते हैं। इन विभिन्नताओं के बावजूद भारत-भर की पूजा-विधियों और आराधना के तौर-तरीकों में कुछ समानताएँ दृष्टिगत होती हैं। उदाहरण के लिए 'षोडशोपचार' सारे भारत में पूजा के अभिन्न अंग हैं। नालिकेर, फूल, फल, खील, नैवेद्य, गुड़, मिष्टान्न आदि चीज़ें भारत के सभी प्रान्तों की पूजा-विधाओं में प्रयोग की जाती है। शंखनाद, वाद्य यन्त्र, घण्टा, आरती, पुष्पार्चना आदि भी इन्हीं समानताओं में आते हैं। समस्त भारत में पूजा-विधियों के कई मन्त्र एक ही हैं जो हमारी धार्मिक एकता को बुलन्द करते हैं।

विवाह के कर्मों में जातिगत और प्रान्तीय भेद अवश्य हैं। लेकिन इसके भी अनुष्ठान में कई समानताएँ दिखाई पड़ती हैं। विवाह के लिए वर और कन्या पक्ष वालों का आपस में वाग्दान आदि कार्य सब जगह विद्यमान हैं। विवाह के समय वर-यात्रा भारत के सभी प्रान्तों में समान रूप से प्राधान्य रखती है। उत्तरी भारत में वर के स्वागतार्थ द्वारपूजन होता है। केरल में वर का स्वागत बाजे के साथ होता है और कन्या का भाई उसे पुष्पों की माला पहनाकर, माथे पर चन्दन का तिलक लगाता है। आँध्र प्रदेश में वर-पूजन बहुत ही प्रमुख कार्य है। तमिलनाड में भी इससे मिलती-जुलती प्रथाएँ हैं। दक्षिण भारत-भर में वर और वधू का आपस में माला पहनाना और वर का वधू के गले में 'मांगल्य-सूत्र' पहनाना विवाह के समय अनिवार्य समझा जाता है। उत्तर भारत में माथे में सिंदूर भरना इसी का दूसरा रूप है। मांगल्य-सूत्र (तमिल, तेलुगु और मलयालम में इसे ताली या ताडी कहते हैं) और माथे का सिंदूर दोनों सौभाग्य के चिह्न माने जाते हैं, दोनों के पीछे भावना एक ही है। विवाह-मण्डप सम्पूर्ण भारत में अनिवार्य रूप से बनाया जाता है। पाणिग्रहण संस्कार में कुछ विभिन्नता होते हुए भी समानताएँ अधिक हैं। विवाह के समय मंडप में होम आदि मांगलिक कार्य करना भी कहीं-कहीं समान रूप से होता है। सबसे बड़ी एकता विवाह के मन्त्र-तंत्रों की है। सप्तपदी या सात बार मण्डप की परिक्रमा बहुत ही प्राधान्य रखने वाला कार्य है जो भारत-भर में होता है। उस समय वर-वधू के कपड़ों के छोरों को आपस में बाँध देने की भावना भी यत्र-तत्र समान है।

दक्षिण की शैवधर्मावलम्बी कुछ जातियों को छोड़कर भारत के अन्य सभी वर्गों और जातियों में शव-संस्कार दाह कर्म के साथ होता है। उसके अनन्तर

कई दिनों तक बलि, श्राद्ध आदि चलते हैं। पुरखों को दिए जाने वाले वार्षिक श्राद्ध में भी कई समानताएँ हैं। उसके मन्त्र भी बहुधा एक ही होते हैं। कौवों को बलि-पिंड देने की प्रथा भारत के अधिकांश प्रदेशों में है। आन्ध्र प्रदेश में गौओं को भी बलि-पिंड खिलाया जाता है। केरल और तमिल नाड में श्राद्ध के दिन कौओं को बलि-पिंड खिलाया जाता है।

बच्चे का जन्मोत्सव और वर्ष-गाँठ दोनों भारत के सभी प्रदेशों में बहुत ही प्राधान्य रखते हैं। नामकरण संस्कार भारत-भर में समान रूप से संपन्न होता है, यद्यपि इसमें दिन का फर्क पड़ता है। वर्षगांठ और जन्मदिवस मनाने के ढंग में वैभिन्न्य होते हुए भी उनमें भावना की एकरूपता दिखाई पड़ती है।

इनके अलावा भारत के अन्य कई आचार-विश्वासों में भी एकता का यह स्वरूप दृष्टिगत होता है। अतिथि को देवता समझना, स्त्रियों का पति को देवता के समान पूज्य मानना, गुरु-जनों और अपने से बड़ों का श्रद्धा से चरण-स्पर्श करना, आपस में मिलते समय 'नमस्ते', 'नमस्कार' आदि शब्दों से प्रणाम करना, तीर्थ और मन्दिरों में विश्वास, दान-दक्षिणा आदि में अटूट श्रद्धा, पुराणों, रामायण, भागवत आदि का कथावाचन करना आदि अनेक कार्य भारतीय समाज में समान रूप से प्राप्त होते हैं। ये सब हमारे आचार-विचारों में प्रतिफलित सांस्कृतिक एकता के स्पष्ट निदर्शन हैं।

इनके अलावा एकादशी और शिवरात्रि के पर्व भारत-भर में व्रत के पालन के लिए प्रसिद्ध है। विद्वानों का अनुमान है कि इन दोनों पर्वों का भारत-भर में मनाया जाना आर्य-द्राविड संस्कृतियों के सम्मिलन का परिणाम है। शिवरात्रि सारे भारत में शैव धर्म का प्रचार और एकादशी वैष्णव धर्म के प्रचार की ओर संकेत करते हैं जो वस्तुतः भारत की अखण्डता और धार्मिक एकता के प्रतीक हैं।

भारत त्योहारों का देश माना जाता है। यहां के अगणित त्योहारों में पायी जाने वाली एकता भी हमारी सांस्कृतिक एकता की दिशा में प्रकाश फैलाती है।

भारत के सभी प्रान्तों में मनाया जाने वाला सबसे बड़ा त्योहार है दीपावली। इस त्योहार के मनाने में कुछ अन्तर अवश्य है। उदाहरण के लिए इसके बारे में प्रचलित पौराणिक कहानियों में अन्तर है। केरल, मद्रास, मैसूर और आन्ध्र प्रदेश में भगवान् विष्णु के नरकासुर-वध के साथ यह कहानी जुड़ी हुई है, जबकि उत्तरप्रदेश में यह एक लक्ष्मी-पूजन का त्योहार है। उत्तर में इससे सम्बद्ध जो यम और यमुना की पौराणिक कथा है, वह भी दक्षिण में पायी नहीं जाती। लेकिन इसके मनाने में कई समानताएँ भी हैं। पटाके छोड़ना, विशेष रूप से नहाकर स्वादिष्ट भोजन खाना आदि कार्य इसमें समान हैं। केरल को छोड़कर अन्य सभी प्रान्तों में इस समय नए कपड़े पहनना अनिवार्य माना जाता है। मद्रास में यह त्योहार विशेष प्रिय है। दीप-मालिकाओं के सजाने में भी केरल को छोड़कर अन्य सभी प्रदेशों में समानता दिखाई पड़ती है। केरल में दीपावली के दिन दीपमालाएँ सजायी नहीं जाती हैं बल्कि पटाके छोड़े जाते हैं। केरल में मलयालम के कार्तिक महीने में कार्तिक नक्षत्र के दिन एक त्योहार पड़ता है जिसमें दीपावलियाँ सजाई जाती हैं। यह त्योहार प्राचीन प्रकृत्युपासना का एक अवशेष है। इसमें दिए जला कर फल वाले वृक्ष, खेत, लता आदि को संबोधन करके सद्वचन कहे जाते हैं और कंद, मूल, फल वगैरह विशेष रूप से खाए जाते हैं। दार्शनिक दृष्टि से देखने पर दीपावली के पीछे दो ही सिद्धान्त निहित हैं—इसमें दीपक का प्रकाश ज्ञान और सुख का प्रतीक है और वह अन्धकार यानी दुःख और अज्ञान को मिटाता है। इसके पीछे 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की भावना निहित है जो हमारी संस्कृति का आधार तत्त्व है।

उत्तर भारत में वसन्त-पंचमी और होली दोनों विशिष्ट त्योहार हैं। ये दोनों वसन्त-ऋतु से सम्बन्ध रखने वाले त्योहार हैं। दक्षिण भारत में ये त्योहार मनाए नहीं जाते, लेकिन इनसे बहुत अधिक साम्य रखने वाले त्योहार—आन्ध्र प्रदेश और केरल में संपन्न होते हैं। आन्ध्र प्रदेश में वसन्तोत्सव का पर्व विशिष्ट माना जाता है जो 'चैत्र' के महीने में पड़ता है। 'वसन्त-नवरात्रि' उनके लिए बहुत प्रिय है। होली और वसन्त-पञ्चमी से इनका सम्बन्ध इसलिए है कि यह एक वार्षिकोत्सव है। साथ ही एक वसन्तोत्सव

भी। इसमें बैलों के सींगों आदि में रंग लगाया जाता है और बैलगाड़ी में रंगीला पानी भरा हुआ घड़ा रख कर जुलूस निकालते हैं। केरल में 'ओणम' का त्योहार होली से बहुत-कुछ साम्य रखता है, यद्यपि उसके मनाए जाने में बहुत अधिक अंतर है। ओणम मलयालम के श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन पड़ता है, होली भी फाल्गुन की पूर्णिमा को होती है। केरल में इस समय वसन्त का मौसम है, अतः ओणम एक वसन्तोत्सव भी माना जाता है। यह विशेष रूप से एक वार्षिकोत्सव भी है क्योंकि फसल काटने के बाद का यह त्योहार होता है जो किसानों के लिए प्रियकर है। होली भी एक वसन्तोत्सव है साथ-ही-साथ एक वार्षिकोत्सव भी। इन दोनों त्योहारों के पीछे समत्व, साहोदर्य और सौमनस्य की भावना समान रूप से वर्तमान है। स्वादिष्ट भोजन खाने और नए कपड़े पहनने के भाव भी समान रूप से होते है। लेकिन इनके मनाने के ढंग नितान्त भिन्न हैं। रंग छोड़ने का कार्य 'ओणम' में नहीं होता, लेकिन इन दोनों त्योहारों के पीछे उद्देश्य और आदर्श की समानता वर्तमान है।

महानवमी और विजय-दशमी के पर्व भी विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इस समय बंगाल में शक्ति-पूजा का विशेष आयोजन रहता है। केरल में इस समय विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की पूजा होती है और विद्यारम्भ का कार्य भी होता है। उत्तर प्रदेश में विद्यारम्भ का समय वसन्त-पञ्चमी होता है। बंगाल में भी शक्ति के साथ उलूक-वाहिनी सरस्वती और गणेश की पूजा होती है। लेकिन उत्तर प्रदेश और मैसूर में यह दशहरा का पर्व होता है। इन दोनों प्रदेशों में इस समय शक्ति-पूजा के लिए प्राधान्य कम है। फिर भी यह पर्व भारत-भर में विशिष्ट माना जाता है। सरस्वती-पूजन में ज्ञान, शक्ति-पूजन में शक्ति और दशहरा में बुराई के ऊपर भलाई की विजय की भावना का प्राधान्य है। ज्ञान, शक्ति और देवत्व की विजय हमारी संस्कृति की आत्म-चेतना है।

मकर-संक्रांति का पर्व भी भारत-भर में महत्त्व रखने वाला है। यह वस्तुतः आर्यों की देन कही जाती है। क्योंकि यह आर्यों की प्राचीन सूर्योपासना का ही दूसरा रूप है। सूर्य के दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर गमन के कारण प्रकृति और मनुष्य-जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन होता है। उसी के उपलक्ष्य में यह मनाया जाता है। दक्षिण भारत-भर में इसका विशेष महत्त्व है। सूर्य की पूजा के लिए प्रातः दूध या पानी में चावल डाल कर उबाला जाता है और जब सूर्य की किरणें उसपर पड़ती हैं तब सूर्य की पूजा की जाती है। इसको 'पोंकल' भी कहते हैं। इस समय बैल, गाय आदि को नहला कर उनके सींग और माथे पर रंग और तिलक लगाए जाते हैं। उत्तरी भारत में अक्सर ग्रहण के समय ही पालतू जानवरों के ऊपर रंग डाला जाता है। केरल, मद्रास, आन्ध्र, मैसूर, बंगाल, पंजाब और उत्तर प्रदेश आदि में मकर-संक्राति बहुत ही विशेष मानी जाती है। इसके पीछे सूर्योपासना का भी भेद निहित है।

इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत के विभिन्न आचार-विश्वासों और त्यौहारों में कुछ स्थूल वैभिन्न्य होते हुए भी वे सब कुछ-न-कुछ समानताएं लिए हुए हैं। उनमें एक प्रत्यक्ष अंतर यह है कि उत्तर भारत के सभी त्योहार किसी-न-किसी जाति विशेष के साथ सम्बद्ध है यद्यपि उनका सामूहिक महत्त्व कम नहीं है। लेकिन दक्षिण के अधिकांश त्योहार किसी भी जाति विशेष या वर्ग के साथ संबद्ध नहीं है, इस कारण धार्मिक सहिष्णुता, शांति और सहयोग की भावना दक्षिण में अधिक है। देश-भेद और काल-भेद के अनुसार इन त्योहारों और सामाजिक प्रथाओं में कई अंतर दिखाई पड़ते हैं लेकिन उनकी समानताएं और ऐक्य बहुत ही प्रबल है। कुछ समानताएं प्रत्यक्ष हैं। लेकिन कुछ तो अंतःस्रोत के समान वर्तमान है, जो विभिन्न त्योहारों और आचार-विश्वास में एकता के दर्शन कराते हैं। यह वस्तुतः हमारी संस्कृति की सूक्ष्म एकता का प्रत्यक्षीकरण नहीं तो क्या है। इस तरह यह स्पष्ट है कि कुछ त्योहार आपस में विभिन्न होने पर भी उनका सार-तत्त्व एक है जो हमारी संस्कृति का एकीभूत भाव है। इन बातों को देखने पर यह शंका होने लगती है कि शायद उन्हीं आचार-विश्वासों और त्योहारों के उत्सव से ही हमारी संस्कृति की स्रोतस्विनी बह पड़ी थी। ●

श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन

भावनात्मक एकता और बौद्ध-साहित्य

जब से इस चिन्तन-शील प्राणी ने विचार करना सीखा, तभी से ऐसा लगता है कि एकता की दिशा में किए गए उसके प्रयासों का इतिहास भी आरम्भ हो गया। जिस पृथ्वी पर उसका जन्म और विकास हुआ, उस पृथ्वी के बारे में भी उसके ज्ञान में धीरे-धीरे ही वृद्धि हुई। सभी धर्मों के प्राचीन ग्रंथों में जो भौगोलिक संकेत मिलते हैं, यदि उनका सङ्कलन किया जाए, तो अपने वर्तमान-आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में वे काफी मनोरंजक सिद्ध होंगे।

भौगोलिक-एकता भावनात्मक-एकता पर ही निर्भर करती है। यदि हमारे मन में भावनात्मक-एकता अपने ओज पर होगी तो हम हिमालय को भारत-माता की बिखरी हुई केश-राशि के रूप में चित्रित करेंगे और दक्षिण के समुद्र को भारत-माता के चरणों का प्रक्षालन करते हुए दिखाएंगे। किन्तु यदि मन में भावनात्मक एकता नहीं होगी तो बीच का विन्ध्याचल पर्वत ही उत्तर-दक्षिण को मिलाने वाली कड़ी न होकर उत्तर-दक्षिण की विभाजक-रेखा के रूप में हमारे मानस-पटल पर अंकित होने लगेगा।

जिन मनीषियों ने सभी में 'आत्मा' के दर्शन किए उन सभी ने मानव-मात्र में नहीं, प्राणि-मात्र में एकता-संपादन करने के प्रयास किए।

किन्तु बौद्ध-साहित्य को यह रास्ता ठीक नहीं जंचा। यदि सभी में एक-एक 'आत्मा' है और वह सत् तथा चित् है और उस सत्+चित् आत्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा में विलीन करना ही जीवन का उद्देश्य है तो ऐसी दृष्टि हर आदमी में उसके अपने-अपने 'आत्मा' को लेकर 'अहं' का सृजन करेगी और उसका यह 'अहंकार' ही उस मनुष्य की उस मोक्ष-प्राप्ति में बाधक होगा, जो उसका चरमोद्देश्य मानी गई है। इसलिए बौद्ध वाङ्मय को यह दृष्टि अमान्य रही।

फिर, यदि सभी में 'एक ही आत्मा' है और वह आत्मा ही वास्तव में कर्मों का कर्ता तथा सुख-दुःख का अनुभव करने वाला है, तो जब एक आदमी को सिर दर्द होता है, तो सभी को सिर-दर्द क्यों नहीं होता? और उस 'आत्मा' के अस्तित्व में जहाँ 'बुद्धि' की गति मानी ही नहीं गई है, शास्त्रयोनित्वात् (=शास्त्र-वचन) को छोड़कर दूसरा प्रमाण भी क्या है? और फिर 'शास्त्र-वचन' की प्रामाणिकता में भी क्या प्रमाण है? क्या 'प्रत्यक्ष' और 'अनुमान' ही पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि 'शब्द-प्रमाण' को भी प्रमाण माना जाया और फिर उसी के आधार पर आश्रित आत्मा-परमात्मा की उलझनों में बेकार उलझा जाय? इसीलिए बौद्ध वाङ्मय ने इस दृष्टि को भी नहीं अपनाया और उसे 'बुद्धिगोचर' तथा 'श्रेयस्कर' नहीं माना।

बौद्ध-साहित्य की स्थापना है कि यह सारा विश्व रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान—इन पाँच स्कन्धों के समूह के अतिरिक्त कुछ नहीं। ये पाँचों स्कन्ध अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं, 'अनात्मक' हैं। उनका यह परिवर्तनशील होना तथा उनके परस्पर एक को दूसरे से पृथक् करने वाले किसी 'आत्मा' का न होना अथवा उनका 'नैरात्म्य' होना ही उन्हें वह एकता प्रदान करता है, जो विश्व की आधार-शिला है और जिसकी मानव-मात्र को आकांक्षा है। ईसानुयायी प्रसिद्ध सन्त पॉल के इस कथन में कि सारी मानवता एक रक्त है, बौद्ध-तत्त्वज्ञान की गूंज स्पष्ट है।

मानवता की बात छोड़ कर अब हम ज़रा अपने भारतीयता के सीमित-क्षेत्र की ओर अग्रसर हों। वैदिक-वाङ्मय ने जिस विराट् पुरुष की कल्पना की और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों तथा शूद्रों को जिसके अंग बताया, उसका उद्देश्य भी भावनात्मक-एकता के साथ-साथ सामाजिक-एकता की स्थापना करना ही प्रतीत होता है। किन्तु, देश के दुर्भाग्य से यह वैदिक-कल्पना भारतीय-समाज को एकता की ओर अग्रसर न कर उसके विगठन को ओर ही मुखरित कर सकी। बौद्ध-वाङ्मय ने चारों वर्णों के जन्माश्रित वर्गीकरण को

सर्वथा अस्वीकार किया। भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट कहा—

न जच्चा वसलो होति,
न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मना वसलो होति,
कम्मना होति ब्राह्मणो॥

—जन्म किसी को 'ब्राह्मण' या 'शूद्र' नहीं बनाता, कर्म ही है जो किसी को 'ब्राह्मण' या 'शूद्र' बनाता है।

वर्तमान-युग में आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी ने इसी गुण-कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश की। लेकिन किसी ने भी उनकी ओर पूर्णतः ध्यान नहीं दिया।

स्वर्गीय पुरुषोत्तमदास टण्डन ने—जब वे उत्तर-प्रदेश के प्रवक्ता (स्पीकर)थे,भारतीय-संस्कृति-परिषद् की ओर से एक नया आन्दोलन चलाने का प्रयास किया था कि जिसके अनुसार वर्ण-व्यवस्था को जन्माश्रित तथा कर्माश्रित दोनों माना जा सके। उनके प्रभाव से काशी-प्रयाग के बहुत से ब्राह्मणों ने उनके द्वारा तैयार कराए गए 'व्यवस्था-पत्र' पर हस्ताक्षर भी कर-करा दिए। टण्डन जी स्नेह-मूर्ति थे। उनके आग्रह को टालना आसान न होता था। मुझ से बोले—'आप भी तो इसपर हस्ताक्षर कर ही सकेंगे?' मेरा विनम्र उत्तर था—'नहीं'। बोले—'इसमें क्या हर्ज है? इसमें तो लिखा है कि वर्ण-व्यवस्था गुणकर्मानुसार भी मान्य है।' मेरा उत्तर था—"लेकिन इसमें यह भी तो लिखा है कि 'वर्ण-व्यवस्था जन्मानुसार भी मान्य है।' हमारे तो भगवान् बुद्ध ने कहा है कि जन्म से कोई 'ब्राह्मण' या 'क्षत्रिय' आदि होता ही नहीं।" बोले—'भाई! तुम बड़े कठिन जीव हो।' सच्ची बात यह है कि इस प्रकार के किसी भी वर्गीकरण की यदि कोई कल्पना की जा सकती है और यदि उसकी कुछ भी उपादेयता हो या रही हो, तो वह जन्मानुसार ही सम्भव है। गुण-कर्मानुसार वर्गीकरण अपनी जगह उचित और मान्य हो सकता है, लेकिन उसको चार खानों में ही विभक्त मानना, समाज को चार नहीं, चार हजार नहीं, शायद चार लाख से भी अधिक टुकड़ों में विभाजन करने के प्रयास के अतिरिक्त कुछ नहीं।

यह जातीयता-आश्रित भेद-भाव, यह जात-पाँत का कोढ़ हमारे उठने-बैठने, हमारे खान-पान, हमारे शादी-विवाह को तो ग्रसे ही रहा, इसने गृह-त्यागियों तक का उनके आश्रमों और मठों में घुस कर पीछा किया।

भगवान् बुद्ध ने अपने भिक्षु-संघ में इस जातिवाद के प्रवेश पर पूरी पाबन्दी लगा दी। उन्होंने कहा—जिस प्रकार गङ्गा, यमुना आदि नदियां समुद्र में मिलने पर अपने नाम आदि को गँवा बैठती हैं, उसी प्रकार जो भी कुल-पुत्र भिक्षु-संघ में दीक्षित होता है, वह अपने जाति-वर्ग-गोत्र आदि से सर्वथा हाथ धो बैठता है।"

भिक्षु की 'प्रव्रज्या' के अनन्तर उसकी 'उपसंपदा' होती है। उस समय 'दीक्षा' की स्वीकृति होने से पहले संघ उससे कई प्रश्न पूछता है, जैसे क्या माता-पिता की आज्ञा है? किसी का ऋण तो सिर पर नहीं है? कोई गम्भीर रोग तो नहीं है? आदि। लेकिन पिछले ढाई हज़ार वर्ष के इतिहास में जो प्रश्न नहीं पूछा गया और जो आज भी नहीं पूछा जाता है, वह है कि 'तुम्हारी जाति क्या है?"

भावनात्मक-एकता वह आकाश-बेल नहीं है, जो किसी भी पेड़ पर डाल दी जाए और यूंही फलने-फूलने लगे। वह तभी दृढ़ और समृद्ध हो सकती है, जब उसे ठीक मिट्टी मिले, उचित खाद मिले और पर्याप्त पानी मिले।

सामाजिक-समानता और आर्थिक-समता ही, वह खाद और पानी हैं, जिनके बल पर भावनात्मक-एकता का पौदा भारतीय मिट्टी में फल और फूल सकता है।

भगवान् बुद्ध की अपने जम्बुद्वीप-वासियों के प्रति कैसी आस्था थी, यह उनके अंगुत्तर निकाय (नौवें निपात) में आए इस कथन से प्रकट होती है—"भिक्षुओ, तीन बातें ऐसी हैं जिनके होने से जम्बुद्वीप के मनुष्य उत्तर-कुरु के लोगों से ही नहीं, देवताओं से भी बाजी मार ले जाते हैं। वे तीन बातें कौन-सी हैं? वे शूर होते हैं, वे विचारवान् होते हैं, वे संयत होते हैं।"

शूरवीर बनना, विचारवान् बनना, संयत बनना—ये तीनों गुण भी उस भावनात्मक-एकता के मूल स्तम्भ कहे जा सकते हैं,जिसकी आज के जम्बुद्वीप को (इण्डिया अर्थात् भारत को) नितान्त आवश्यकता है। ●

प्रा. वेल्लायणि अर्जुनन्

भावनात्मक एकता तथा हिन्दी एवं प्रान्तीय भाषाएँ

भारतवर्ष एक ऐसा राष्ट्र है जिसमें अनेक भाषाओं और संस्कृतियों का सदियों से सम्मिलन होता आया है। लेकिन हमारे लिए यह हर्ष, सन्तोष और गर्व का विषय हो सकता है कि इस अनेकता और विभिन्नता में भी परस्पर आश्चर्यजनक समानता तथा एकता पाई जाती है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच की इस एकता के सूत्र की खोज करना, उनमें पारस्परिक आदान-प्रदान बढ़ाना तथा उनकी समृद्धि सुनिश्चित करना वर्तमान परिस्थितियों में बड़ा आवश्यक है। राष्ट्रीय स्तर पर देशवासियों में भावनात्मक तादात्म्य स्थापित करने के लिए और पड़ोसी राज्य के साथ हमारे तनावपूर्ण सम्बन्ध शाश्वत करने योग्य एक सांस्कृतिक राजमार्ग प्रशस्त करने के लिए भारत का प्रत्येक भाषा-भाषी इसके सम्बन्ध में अपने दायित्व का अनुभव करे।

सम्यक् विश्लेषण करने के पश्चात् यह विदित हुआ कि भारत की अधिकाश भाषाओं का उद्गम संस्कृत से ही सम्बन्ध रखता है। द्राविड़ परिवार की तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ तुलु आदि भाषाओं में भी संस्कृत के शब्दों की बहुलता है। इसलिए हम सुदृढ शब्दों में कह सकते हैं कि भारत की प्रान्तीय भाषाएँ सस्कृत की 'आत्मीय पुत्रिया' या संतत सहेलियां हैं। इसके सम्बन्ध में काका कालेलकर ने लिखा है—

"We must not forget that Sanskrit is the Symbol 'Par-excellence' of the unity of India. The language of Hindustan have been fostered and have developed in the cultural atmosphere created by Sanskrit. They are the soul-daughters of Sanskrit."[1]

काका साहब का यह अभिप्राय अक्षरशः ठीक है। वास्तव में यह समानता और प्रभाव केवल शब्द-भण्डार में ही नहीं, बल्कि भाषाओं के विकास के प्रत्येक स्तर पर देखने में आता है।

भारत की भाषाओं पर संस्कृत का जो प्रभाव पड़ा है उसे दिखाने के लिए बंगला, हिन्दी, मराठी, गुजराती, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि भाषाओ मे से सैकड़ों उदाहरण लिए जा सकते हैं, जो इन भाषाओं में सार्वजनिक और सार्वत्रिक हो गए हैं। परन्तु यह बात ध्यान में रखनी है कि हर भाषा के स्वभाव और स्वरूप के अनुसार शब्दों में अर्थ-परिवर्तन और रूप-परिवर्तन भी हो जाते हैं।

मलयालम में संस्कृत की अधिकता के लिए कुछ नमूने देखिए—

"जल-पात्रौघस्थित-रविमण्डलं पोले
सकल-चराचर-जन्तुवकळुळिळल् वाषुम्
परिपूर्णात्मानमद्वयमव्ययमेकम्
परमं परापरं प्रणतोस्म्यहं रामम् ।"[2]

इन चार चरणों में मलयालम के अपने शब्द केवल तीन ही हैं—पोले, उल्लिल, वाषुम्। शेष तमाम भाग संस्कृत से भरे पड़े हैं। मलयालम रामायण का अधिकाश भाग ऐसा ही रचा गया है।

"घटन-पति विलासि चेय्किलुम्
पिट-मृगनेत्र कृपार्द्र आकिलुम्
स्फुटमकमलियाते मेविनाल्
तटशिल-पोले तरंग-लीलयिल् ॥"[3]

आधुनिक काव्य-शैली का एक उदात्त उदाहरण है यह चतुष्पदी। इसमें नौ संस्कृत शब्दों का समावेश दिखाई पड़ता है। मलयालम शब्द सिर्फ पांच ही हैं।

"सुशिक्षितनाय ओरु योगिवर्यनायिरुन्नेन्किलुं, ओरु कलाकारनु सहजमाय हृदयालुत्वं कोण्टु, मानुष भावं कोण्टु एषुत्तच्छन् अनुग्रहीतनायिरुन्नु। ई मनुष्य-

1. Kaka Kalelkar—'National Language for India.' P.P. 108.
2. एषुत्तच्छन—'रामायण'—आरण्यकाण्ड—१६वीं सदी।
3. कुमारन् आशान्—'लीला'—आधुनिक काल।

त्वमाणु ओरु कवि येन्नुळळ निलयिल् अद्देहत्तिन्टे विजयत्तिन्टे मुख्य निदानम्।"[1]

यह गद्य भाग आधुनिक मलयालम गद्य का एक अच्छा नमूना है। इसमें भी ग्यारह संस्कृत शब्दों का अनायास प्रयोग किया गया है। इन उदारणों के द्वारा यह बात स्पष्ट होती है कि मलयालम में संस्कृत का समावेश बहुत ज्यादा है। यही स्थिति हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, तेलुगु आदि भाषाओं में भी परिलक्षित होती है।

इस प्रसंग में एक और बात उल्लेखनीय है कि द्राविड भाषाओं से भी असंख्य शब्द संस्कृत में आ गए हैं। डा. किट्टल के 'कन्नट अंग्रेजी कोश'[2] और 'इन्ट्यन एन्टिक्वरि'[3] भाग १-२-३ के भाषावैज्ञानिक लेख, डा. गुंटर्ट के 'मलयालम अंग्रेजी कोश' तथा 'जर्मन जर्नल'[4] में प्रकाशित लेख, काल्ड्वल का व्याकरण ग्रन्थ[5] आदि द्राविड भाषा-विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों में इस विषय की विद्वत्तापूर्ण चर्चा हुई है। लेवि, प्रिज़ूलुस्कि, ब्लोक़— इन तीनों के संयुक्त प्रयास से प्रकाशित 'प्रि-आर्यन एण्ड प्रि-द्रवीडियन इन इण्डिया'[6] और प्रोफेसर बरोव के कुछ लेखों[7] में भी संस्कृत पर पड़े द्राविडी भाषाओं के प्रभाव पर विस्तृत विवेचन किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत के दोनों प्रमुख भाषा-परिवारों की भाषाओं का पारस्परिक संपर्क, सम्बन्ध और घनिष्ठ मित्रता; धारा एवं तरंग की तरह दिखाई पड़ते हैं।

संस्कृत से अक्षुण्ण सम्बन्ध रखने वाली भाषा है हिन्दी। हिन्दी की शब्दावली का ७० प्रतिशत संस्कृत के तत्सम या तद्भव के रूप में बनाए हुए हैं। पहले ही कह चुका हूं कि भारत की अन्य भाषाओं पर संस्कृत शब्दों का जो प्रभाव पड़ा है वह काफी उल्लेखनीय है। इसलिए हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं में असीम समानताएँ दीख पड़ना स्वाभाविक है। अतएव दूसरे भाषा-भाषियों को हिन्दी पढ़ने में थोड़ी भी कठिनाई या असुविधा नहीं होगी। संविधान में हिन्दी को राज-भाषा घोषित किया गया है। अगले कुछ ही वर्षों में प्रशासन, शिक्षण, तथा कानून के काम हिन्दी में होने लगेंगे। इसकी तैयारी हमें अविलम्ब करनी है। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के स्थान पर रखने के लिए आज-कल की हिन्दी में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ेगी। इस तथ्य के बारे में जी०वी० मावलंकर ने एक बार जो अभिप्राय रखा था वह इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। "हर प्रान्त की जो-कुछ प्रान्तीय विशेषता, रहन-सहन, खान-पान, पोशाक, साहित्य, काव्य और कलाएँ हो, उसको व्यक्त करने की ताकत भारतीय हिन्दी में होनी चाहिए। जब तक हिन्दी का वैसा व्यापक भारतीय स्वरूप नहीं होगा तब तक पूर्ण रूप से भारतीय एकता असंभव है। हिन्दी भाषा-भाषियों का अन्य प्रान्तिक भाषाओं पर आक्रमण हो रहा है ऐसी भावना कदापि होने न पावे। भारत के सम्पूर्ण संगठन में यह बड़ी बाधा होगी। इसलिए राष्ट्र-भाषा हिन्दी का स्वरूप यू. पी. के रहने वालों की मातृभाषा हिन्दी से भिन्न होगा, अलग-अलग क्षेत्रीय भाषाओं का उस पर असर होगा और संभव है भिन्न-भिन्न प्रांतों में इसका रूप कुछ अलग-अलग हो। इसमें डर की कोई बात नहीं। ऐसी भिन्नताओं की राष्ट्र-भाषा हिन्दी में अवश्य गुंजाइश है। इससे इसके कुदरती विकास के साथ-साथ परस्पर प्रेम और आदर

---

1. पी०के० परमेस्वरन् नायर—'आधुनिक-मलयाळ-साहित्यम्'—पृ. २१।
2. F. Kittel—'Kannada-English Dictio nary'.
3. 'Indian Antiquary' Vols. I,II,III.
4. Dr. Gundert. 'German Journal' P. 517, 1869.
5. R. Caldwell. 'A Comparative Gra. mmar of the Dravidian or South Indian Family of Languages.'—London—1856.
6. Levi, Przyluski, Block. 'Pre-Aryan and Pre-Dravidian in India'—Calcutta.. 1929.
7. Prof: T. Burrow. 'Dravidic Studies'—Bulletin of the School of Oriental and African Studies'—1938,1940 etc.

बढ़ता रहेगा तथा प्रान्तीयता जड़ न पकड़ पाएगी[1] ।" श्रद्धेय स्व. डा. राजेन्द्रप्रसाद जी ने भी इस विचार को सुदृढ करके एक बार अपना सुझाव प्रकट किया था। उन्होंने लिखा—"हिन्दी का दरवाजा खुला रहे और दूसरी भाषाओं के शब्द भी, विशेष करके भारत की प्रादेशिक भाषाओं के शब्द जिनके लिए ठीक पर्याय-वाची हिन्दी में नहीं मिलते, लाए जाएँ[2] ।"

इन विद्वान् नेताओं के कहने का तात्पर्य यह है कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाएं विकसित साहित्य और पर्याप्त शब्दावली से समृद्ध है तथा उन्हें भी हिन्दी की समान मान्यता देकर आपस में लाभदायक आदान-प्रदान करने की चेष्टा करें तो भारत की भावनात्मक-एकता सार्थक हो जायगी। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि कुछ लोगों की धारणा है कि प्रान्तीय भाषाओं में कोई साहित्य नहीं है और वे भाषाएं असंपुष्ट और अविकसित हैं। इस मिथ्याबोध के निराकरणार्थ २६ वर्ष पूर्व ही प्रधानमन्त्री नेहरू जी ने लिखा है—

"Our great provincial languages are no dialects or vernoculars as the ignorant sometimes calls them. They are ancient languages with a rich inheritance, each spokes by many millions of persons, each tied up inextricably with the life and culture and ideas of the masses as well as of the upper classes."[3]

जिस तरह संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, पुर्तगाली, अंग्रेज़ी आदि शब्दों का समावेश हिन्दी में साधारणतया सार्वत्रिक हुआ उसी तरह प्रान्तीय भाषाओं में भी उक्त भाषाओं के शब्द-समूह शताब्दियों से परिलक्षित होते हैं। घरेलू वस्तुओं के नाम (तवा, हांडी, तवला, मेज़ आदि), हथियारों और औज़ारों के नाम (तुपक, कटार आदि), पहनावे और आभूषण (चोली, पावडा, टोपी-कुर्ता, अंगरखा, लोलक आदि), खाद्य-वस्तुओं के नाम (पकौड़ा, बड़ा, रोटी, चपाती, चटनी, लड्डू आदि), गालियां (बडवा या बडुवा), अदालती शब्द (कचहरी, तालुका, वकील, ज़िला, इलाका, तहसीलदार, गुमाश्ता, दरखास्त, वकालत, मुंसिफ आदि), विस्मयादि बोधक (शाबाश, ज़ोर आदि) अनेक अरबी-फ़ारसी और तुर्की शब्द जो हिन्दी के अपने शब्दों के रूप में प्रयुक्त किए जाते है, मलयालम तमिल आदि दक्षिण-भारतीय भाषाओं में भी सार्वजनिक हो गए हैं। किताब, रक़म; बाक़ी, दरबार, मुरम्मत, अतर, अंबारी, हलवा, असल, हराम, अमीन, इखलास, इनाम, इस्लाम, ईद, हुक्का, हुण्डी, वसीयत, कानून, कमान, कंबल, हलचल, कवायद, कसाई, कसरत, करार, खानाशुमारी, काफिर, किशमिश, खुशहाल, कूजा, कुत्ती, कुली, कोतवाल आदि विविध विधाओं के असंख्य अन्य शब्द भी मलयालम और तमिल में चालू हैं।

अलमारी, अस्पताल, सकलात, चपाट, चाबी, तांबा, तरीफ, तौलिया, टोपी आदि कई पुर्तगाली शब्द हिन्दी और मलयालम में समान अर्थ में प्रयुक्त हुआ करते हैं।

इस प्रकार अंग्रेज़ी तुर्की आदि भाषाओं से भी काफ़ी शब्द हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं में आ गए हैं। फ्रेंच, जर्मन, लेटिन भाषाओं के शब्द भी थोड़ा-बहुत सभी भारतीय भाषाओं में पा सकते हैं। इसलिए हम इस निष्कर्ष पर आ पहुंचते हैं कि हिन्दी और आधुनिक भारतीय भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ तथा सुदृढ है। विदेशी शब्दों को अलग करके निरीक्षण करें तो यह न तथ्य व्यक्त हो जायगा कि हिन्दी के निजी शब्द केवल चालीस प्रतिशत हैं और इन शब्दों के पढ़ने में अहिन्दी-भाषियों को कोई असौकर्य नहीं होगा। इस प्रकार हिन्दी-भाषियों को भारत की अन्य भाषाओं के पढ़ने में भी सुगमता और सरलता होगी। इसलिए हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओं की शब्दावली को मिश्रित करके

1. जी. मावलंकर—अध्यक्ष भाषण—'पश्चिम भारत राष्ट्र-भाषा सम्मेलन बम्बई', जून २४, १९५०।
2. डा० राजेन्द्रप्रसाद—'हिन्दी का विकास'—नई दिशा—'भाषा' वर्ष १, अंक १ अगस्त १९६१।
3. Jawaharlal Nehru "The Question of Language". P. 3, I Ed 1937.

नई हिन्दी का सर्जन करना सब भारतवासियों के के लिए सुविधा-जनक ही रहेगा।

आज-कल भाषा के नाम पर राष्ट्रीय स्तर में होने वाले सारे कशमकश और खींचातानी का शिथिल होना अवश्यंभावी है। इस बीसवीं सदी की विचारधारा की अभिव्यक्ति के लिए और नई चेतना एवं प्रेरणा प्रदान करके जन-मानस में एकता की लहरें पैदा करने के लिए भारतीय भाषा साहित्यों की विकासोन्मुख प्रवृत्तियों को त्वरित करना हर एक व्यक्ति का परम कर्त्तव्य है। वास्तव में भारत की भावनात्मक एकता का शाश्वत भाव भाषा-सम्बन्धी ऐक्य में ही निहित है। इसे प्रफुल्लित करें तो समस्त भारतवर्ष में शान्ति और सन्तोष तरंगित हो जाएँगे। अतः हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके उनके पारस्परिक सम्बन्ध को जनता के सामने रखना हमारे भाषा-शास्त्रियों का कर्त्तव्य बन गया है। जितना अविलम्ब यह समन्वय हो सके उतनी शीघ्रता से हमारे भाषा-सम्बन्धी झगड़े भी दूर हो जावेंगे।

कुछ नए त्योहार मनाए जाएँ

[डा. रामचरण महेन्द्र]

अब हम आजाद हैं। यह विस्तृत महान् देश वर्षों के संघर्ष के पश्चात् जाग्रत हो गया है। इस स्वतन्त्रता को लाने में हमारे देश के लाखों देश-प्रेमियों, नेताओं, विचारकों, स्वतन्त्रता के पुजारियों, सैनिकों और शहीदों को अपना बलिदान करना पड़ा है। इन योद्धाओं का त्याग और बलिदान कभी भी विस्मृत करने योग्य नहीं है। ये भारतीय जनता के लिए प्रेरणाओं के अक्षय केन्द्र हैं। ये शहीद युग-युग तक हमारी स्मृतियों में तरोताजा बने रहेंगे। भारतीय जन पुण्य भाव से सदा इन्हें श्रद्धांजलियाँ भी अर्पित करते रहेंगे। नई पीढी इनके चरणचिह्नों पर चलने में अपना परम सौभाग्य मानेगी।

आवश्यकता यह है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम के शहीदों, महान् विचारकों, एकता बढ़ाने वाले महापुरुषों, राष्ट्रनायकों को प्रतिवर्ष श्रद्धा के फूल समर्पित करने के लिए महापुरुषों के जन्मदिवस त्योहारों के रूप में मनाए जाने की देशव्यापी व्यवस्था हो। ये विचारक और महापुरुष देश में सदा समन्वय बनाए रख सकते हैं।

उदाहरण के लिए धार्मिक समन्वय के अमर साधक संत कबीर का जन्मदिन मनाया जा सकता है। उनकी सबसे बड़ी देन हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावनाएँ थीं। कबीर ने दोनों को मिलाने के लिए जितना प्रयत्न किया था, उतना कदाचित् भारत के किसी नेता ने नहीं किया है। उन्होंने दोनों धर्मों की एक-एक गाँठ खोलकर धर्म के ठेकेदारों की कलई खोलकर समाज के समक्ष रख दी। वे सार्वभौमिक एकता पर दोनों को खड़ा करना चाहते थे।

राष्ट्रीय उन्नति, देश की परम्पराएँ, देश की आजादी के आन्दोलन, शहीदों के दिन, हमारे देश में एक सूत्रता पैदा कर सकते हैं। हम ऐसे महापुरुषों तथा ऐसी घटनाओं को भी चुनें जो देश के कोने-कोने में हुए थे। प्रत्येक प्रान्त के और प्रत्येक सम्प्रदाय के महापुरुषों या घटनाओं को समान महत्त्व मिलना चाहिए जिससे प्रान्त-भेद का और सम्प्रदाय-भेद का कलंक मिट सके। भाषा की संकुचितता दूर करने के लिए भारत की सभी भाषाओं के विद्वानों की जन्म-तिथियाँ मनाई जाएँ। हिन्दी, बंगला, उर्दू, गुरुमुखी, कन्नड़, तामिल, तेलुगु आदि भाषाओं के महान् लेखकों को श्रद्धांजलियाँ देने के लिए प्रयत्न किए जाएँ बुद्ध, शंकर, महावीर, नानक, कबीर, तुलसी आदि समस्त भारत के महापुरुष थे, अतः इस प्रकार की सभी महान् आत्माओं को दृष्टि में रखकर हम नए त्योहार बना सकते हैं। राष्ट्रीय महत्त्व के स्थानों, जहाँ उद्योग-धन्धे, बाँध, बिजली के बड़े कारखाने स्थापित हुए हैं हमारे नए तीर्थ बन सकते हैं। इससे भावनात्मक एकता में बड़ी सहायता मिल सकती है।

प्रो. एम. श्रीधर मेनोन

भावनात्मक एकता और साहित्य

पश्चिम के लेखकों के मत में भारत उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में ही एक राष्ट्र बना और यह राष्ट्रीय एकता ब्रिटिश शासन की ही एक देन थी। रामज़े म्यूर ने 'राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता' नामक अपने ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है—'यह ध्यान देने की बात है कि जब तक भारतीय जनता ब्रिटिश साम्राज्य-स्थापना के साथ-साथ आए हुए लौह-शासन एवं व्यवस्थित सरकार के अधीन न हुई तब तक उनमें राष्ट्रीयता के आशय का उदय नहीं हुआ था।" गिलक्राइस्ट का अभिप्राय है कि अन्य राष्ट्रों में कई बातों में एकता पाई जाती है, लेकिन भारत में भौगोलिक एकता ही दिखाई देती है और भारत की राष्ट्रीयता के दो ही आधार हो सकते हैं—सामान्य अधिकार और सामान्य संस्थाएँ।

भारत के लेखक-गण इस विचार से सहमत नहीं हैं। राधाकुमुद मुखर्जी ने इस प्रकार कहा है—"ब्रिटिशों के आगमन के बहुत पहले भारत एक भौगोलिक इकाई तथा मातृभूमि के रूप में माना जाता था और उसका इतिहास बहुत प्राचीन काल तक प्रसरित है।" डा. आबिद हुसैन की राय में राष्ट्रीयता के लिए सबसे अधिक आवश्यक समझी जाने वाली तीन मौलिक बातें हम भारत में देखते हैं और ये हैं—भौगोलिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक एकताएँ। धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि बातों में यहां बहुत-से भेद पाए जाते हैं, जो देश को विघटित कर डालने की क्षमता रखते हैं। फिर भी संस्कृति के क्षेत्र में एक ऐसी एकता भी विद्यमान है जिसकी जड़ दृढ है और जो उपर्युक्त स्थानीय एवं जातिगत भिन्नताओं की तह में अविराम गति से बहती रहती है और इसलिए देश की अविच्छिन्नता अब भी बनी रह पाई है। संभव है कि भारत की राष्ट्रीय एकता के अंग्रेज़ शासन के कायम होने की बात अंशतः तथ्य हो। सारा भारत, अंग्रेज़ सत्ता के पहले, किसी एक सम्राट् के शासन में कभी नहीं रहा है। और साम्राज्यों के अन्दर भी प्रादेशिक शासकों को कई बातों में स्वतन्त्रता भी मिलती थी जो आज-कल नहीं है। फिर भी भारत के एक हो जाने का पूरा श्रेय अंग्रेज़ों को दिया नहीं जा सकता। उन्होंने इस देश को प्रशासनिक एकता ही दी है—और कुछ नहीं।

भारत के एक राष्ट्र होने की बात प्राचीनतम युग में भी मान्य थी, चाहे यह राष्ट्रत्व वर्तमान काल की परिभाषा से कुछ-कुछ भिन्न हो। विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत जैसे प्राचीन ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख है। भारतवर्ष नामक यह राज्य जंबुद्वीप के नौ खंडों में से एक था और उसके दक्षिणी भाग में पड़ा था। हिमालय पर्वत इसकी उत्तरी सीमा पर था। यह भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र माना जाता था। दूसरे सभी खण्ड भोग के स्थान है। हजारों जन्मों के बाद ही अपने पुण्यों के कारण जीव इसमें जन्म पाते हैं। देवगण गाते हैं कि जो, स्वर्ग और मोक्ष को ले जाने वाले कर्मक्षेत्र-भूत भारतवर्ष में जन्म लेकर, और फल की इच्छा किए बिना अपना सारा काम परमात्मा विष्णु के अर्पण में, पूरा करने से शुद्ध होकर अनन्त में लीन हो जाते हैं, वे हमसे अधिक भाग्यवान् हैं। हमारे पुराणों और इतिहासों में वर्णित सभी दिग्विजयों में हिमालय से लेकर केरल तक और गान्धार से लेकर असम तक के सभी प्रदेश आ जाते हैं। स्नान करते समय उत्तर की ही नहीं, अपितु दक्षिण की नदियों से भी प्रार्थना की जाती है कि वे इस जल में उपस्थित हो जाएँ। यहाँ के मुख्य-मुख्य मन्दिर और तीर्थ देश के भिन्न-भिन्न भागों में स्थापित हैं और लोग बिना किसी विघ्न के देश के एक कोने से दूसरे कोने तक तीर्थयात्रा कर सकते थे। कहने का मतलब यह कि राष्ट्र की आधुनिक परिभाषा के पूर्ण रूप से घटित न होने पर भी धर्म, संस्कृति आदि बातों में भारत की एकता, प्राचीन समय में भी मान्य थी। उस सुदूर अतीत में इसे दृढ करने वाली दो चीज़ें थीं हिन्दु-धर्म एवं आर्य-भाषा संस्कृत। यवन, हूण, शक जैसे बहुत-से विदेशियों का भारत पर आक्रमण हुआ और यहां भिन्न-भिन्न स्थानों में उनका शासन भी चला। लेकिन धीरे-धीरे ये भारतीय

बने और यहाँ के धर्म और संस्कृति को अपनाया। लेकिन मुसलमानों और पाश्चात्यों की चढ़ाइयों ने परिस्थिति को बदल दिया। उनकी सामाजिक व्यवस्था, धर्म, संस्कृति, संघटन और संस्थाओं के अपने-अपने व्यक्तित्व थे और वे ठोस भी थे कि हिन्दू उन्हें अपने में मिला नहीं सके। अलावा इसके कई दूषित बातों के कारण हिन्दू जाति अब तक विशृंखलित भी हो चुकी थी। कबीर का पंथ, अकबर की दीन इलाही, ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज, थियोसफी आन्दोलन आदि मध्ययुग एवं वर्तमान युग के ऐसे प्रयत्न थे जिनका लक्ष्य भारतीयों में धार्मिक एवं दार्शनिक एकता तथा पुनरुद्धार लाना था। लेकिन इन में से किसी को भी पूरी सफलता नहीं मिली। अंग्रेजों का शासन समूचे भारत को एक केन्द्र सत्ता के अधीन लाया; तो दूसरी ओर भिन्न-भिन्न धर्मावलंबियों एवं सम्प्रदाय वालों में उसी ने बाद में फूट का बीज भी बो दिया। परिणाम यह हुआ कि १९४७ में देश का बंटवारा हुआ और भारतवर्ष नामक वह भौगोलिक इकाई, जो अनादि काल से चलती आ रही थी, दो स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हो गई।

आज हमारे देश में विघटन की बहुत-सी शक्तियाँ काम कर रही हैं। कहीं भाषा के नाम पर लोग मरने-मारने को सन्नद्ध हैं, तो और कहीं अपने प्रदेश की, भारत-राष्ट्र के बाहर, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए। हर जगह, राजनीतिक स्वार्थ एवं महत्वाकांक्षा के कारण, गुट्ट बंदियां और दल-बंदियां चल रही हैं जो हमारे राष्ट्र के तन-मन को दुर्बल बनाती रहती हैं। हमारे मन में भारतीयता का तत्त्व अब भी उतना दृढ नहीं, जितना स्थानीयता एवं साम्प्रदायिकता का मोह। भारत के इतिहास के किसी भी युग में ऐसा मालूम होता है, इतने अधिक भेद भारतीयों में नहीं थे जितने आज हैं। हम अपनी प्रान्तीय भाषा और प्रान्तीय संस्कृति पर बहुत ज़ोर दे देते हैं और उन तत्त्वों को भूल जाते हैं जो सब में समान रूप से विद्यमान हैं हम संस्कृति को उसके सच्चे अर्थ में ग्रहण नहीं करते और कुछ बाहरी विधि-विधानों एवं आचरण-अनुष्ठानों को ही, जिनका इतने विस्तृत देश के सभी स्थानों में समान रहना असम्भव है, संस्कृति मान बैठे हैं। अगर भावों का परिमार्जन ही संस्कृति माना जाय, और यह परिमार्जन सद्ग्रन्थों के अध्ययन-अनुशीलन, महत् निदर्शनों के दर्शन और सदनुष्ठान से प्राप्य समझा जाय, तो केरल या बंगाल या पंजाब की अपनी-अपनी अलग संस्कृतियां नहीं हो सकतीं। अपनी स्वतन्त्रता को स्थायी एवं सुदृढ बनाने के लिए हमें भारतीयता का प्रचार करना चाहिए। राष्ट्रीय झण्डा, राष्ट्र-भाषा, संघात्मक संविधान आदि इसके साधन हैं। साहित्य द्वारा इस एकता को कैसे और कहां तक बढ़ावा दिया जा सकता है—यही इस लेख में विचारणीय है।

गिल क्राइस्ट की राय में राष्ट्रत्व एक मानसिक तत्त्व है—वह एक भाव है। वंश, भाषा, धर्म, संस्कृति, राजनीतिक परम्परा आदि इसे बढ़ाने वाली बातें हैं। लेकिन एक जनता के राष्ट्र बन जाने के लिए इन में से एक भी अनिवार्य नहीं है। जब एक जन-समूह अपने एक राष्ट्र होने पर विश्वास करने लगता है, तभी वह राष्ट्र बन जाता है। एक जाति के प्रत्येक सदस्य के हृदय में उसी जाति के दूसरे सदस्यों के प्रति अपनेपन का वह भाव पैदा हो जाता है, जो अन्य समूह के किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, तभी वह जाति राष्ट्र की दशा को पहुँच जाती है। सारांश यह कि राष्ट्रत्व का मूलभूत तत्त्व भावगत है। और, भावनात्मक एकता उसके अस्तित्व एवं स्थायित्व के लिए प्रधान है। वस्तुस्थिति यह है कि अगर मानव का कोई तत्त्व आपेक्षिक रूप से स्थायी हो तो वह उसका भाव-जगत् है। प्राचीनकाल के गुहानिवासियों तथा बीसवीं शताब्दी के नगरवासियों की मानसिक अन्तर्वस्तु में बहुत भेद नहीं है। शोक, करुणा, प्रेम, जुगुप्सा, विस्मय, द्वेष, रति, विरति, हास-परिहास आदि अनेकानेक भाव दोनों में समानता से पाए जाते हैं। इन भावों की वाणी या क्रिया द्वारा अभिव्यक्ति में ही, सभ्यता एवं संस्कृति के स्तर के अनुसार, थोड़ा-बहुत अंतर दिखाई देता है। बुरे भावों को दबाकर रखने और अच्छे भावों को विकास देने एवं भले मार्ग से प्रवाहित करने में साहित्य बहुत उपयोगी है।

भावनात्मक एकता की दृढता के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक भारतवासी में दूसरों से एकता और ममता पैदा हो जाय। परस्पर परिचय एवं जानकारी के अभाव में यह सम्भव नहीं है। भारत के भिन्न-भिन्न

प्रान्तों के निवासी एक-दूसरे को जानें-समझें, उनकी जीवन-रीतियों, सामाजिक एवं धार्मिक विधि-विधानों, और आर्थिक परिस्थितियों—परवशताओं से अवगत हो जाएँ—भावनात्मक एकता के लिए यह नितान्त आवश्यक है। जब एक प्रदेश के नागरिक समझेंगे कि अन्यत्र रहने वालों की समस्याएँ, उनकी आशाएँ, निराशाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ वे ही हैं जो हमारी भी हैं तो उनमें दूसरों के प्रति सहानुभूति, समवेदना एवं सौहार्द जाग्रत हो जायगा, और यही भावनात्मक एकता का ठोस आधार है। साहित्य में जन-जीवन का ही, समग्रता में, चित्रण है—बाह्य और आभ्यन्तर दोनों पहलुओं का। अतः किसी एक प्रदेश के साहित्य के अध्ययन से वहां के निवासियों के जीवन का परिचय प्राप्त होता है। इसलिए भावनात्मक एकता के लिए आवश्यक है कि भारत के भिन्न-भिन्न साहित्यों में आदान-प्रदान का काम अच्छी तरह चले। एक ओर संस्कृत और हिन्दी है जिनका थोड़ी-बहुत मात्रा में, सारे देश में प्रचार है और प्रचार होना आवश्यक भी है तो दूसरी ओर वे प्रांतीय भाषाएँ हैं जिनका साहित्यों के बहुत सम्पन्न होने पर भी प्रचार-क्षेत्र सीमित है। अक्सर हम संस्कृत को हिन्दुओं की धार्मिक भाषा-मात्र मान लेने की भूल करते हैं। हमें समझ लेना चाहिए कि उर्दू को छोड़कर भारत की भाषाओं और साहित्यों का निकटतम सम्बन्ध संस्कृत से हुआ है, इसलिए साहित्यिक आदान-प्रदान के लिए जो कार्यक्रम हम निर्धारित करेंगे उसमें संस्कृत को भी पर्याप्त स्थान मिलना चाहिए। और संस्कृत साहित्य को वर्तमान जन-जीवन की गति-विधियों से सम्बद्ध रखने का प्रयत्न भी हमें करना चाहिए। हिन्दी भाषा का यद्यपि देश के विभिन्न प्रान्तो में प्रचार हो रहा है फिर भी हमें मानना पड़ेगा कि उसका साहित्य अब भी अधिकतर प्रांतीय है।

हिन्दीतर प्रदेशों के जीवन का उसमें बहुत कम चित्रण है। चूंकि हिन्दी हमारी राष्ट्र-भाषा है अतः हिन्दी-साहित्य की यह न्यूनता किसी भी सच्चे भारतीय को बहुत अखरेगी। हिन्दी को इस दृष्टि से सम्पन्न करना भी उपर्युक्त कार्यक्रम में हमारा लक्ष्य होना चाहिए। भिन्न-भिन्न प्रान्तीय साहित्यों का संस्कृत एवं हिन्दी द्वारा परोक्ष संपर्क हो सकता है। लेकिन जिस साहित्यिक आदान-प्रदान की बात ऊपर सूचित की गई है उसमें इन साहित्यों के बीच में सीधा संबंध जुड़ जाने की सम्भावना भी होनी चाहिए।

आगे का विचारणीय प्रश्न होगा—यह साहित्यिक आदान-प्रदान कैसे सम्भव हो जाए। प्रत्येक साहित्य के चुने हुए उत्कृष्ट ग्रन्थों का अन्य भाषाओं में अनुवाद करना एक उपाय होगा। इस ओर अब तक व्यक्तिगत एवं फुटकल रूप से कुछ प्रयत्न हो चुका है और अब भी थोड़ा-बहुत हो रहा है। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। केन्द्र तथा प्रान्तों की साहित्यिक एकाडमियों को यह काम सौंप दिया गया है। लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि वे अपने यन्त्र को तेल लगा कर वेग दे दें। हमारी असमर्थता वास्तव में योजनाओं का अभाव कभी नहीं है। उलटे उनको ठोस कार्य का रूप देने में है। हमारे यहां की एक कहावत है—कागज की गाय घास नहीं चरती। इसे हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। जितना कार्य सम्पन्न हुआ है उस का बीच-बीच पर्यवेक्षण होना आवश्यक है। ग्रन्थों के चुनाव अनुवाद एवं काम के पर्यवेक्षण के लिए भिन्न-भिन्न साहित्यों की प्रतिनिधि वाली उपसमितियां बिठाई जा सकती हैं। योजना बनाने से ही हमें संतृप्त रहना नहीं चाहिए। प्रत्येक योजना की सफलता-असफलता की समय-समय पर जांच की जानी चाहिए।

साहित्यिक आदान-आदान के लिए यह भी आवश्यक है कि इन विविध भाषाओं के लेखक कभी-कभी एक-दूसरे से मिलें और विचार-विनिमय करें। इसके लिए सेमिनारों और अध्ययन-शिविरों का संचालन बहुत उपयोगी है। इनमें प्रत्येक साहित्य के नए-नए रूपों, गतिविधियों प्रवृत्तियों एवं समस्याओं पर परामर्श किया जा सकता है। इसी तरह विश्वविद्यालयों में विविध भाषाओं और साहित्यों की पढ़ाई के लिए व्यवस्था और सुयोग्य छात्रों एवं अध्यापकों के विनिमय का प्रबन्ध भी हो जाना चाहिए।

सारांश यह कि भावनात्मक एकता के आन्दोलन में साहित्यकार ही अग्रणी रहें—यह आवश्यक है। यह अहंमन्यता की बात नहीं है। कलाकार का कार्यक्षेत्र ही भाव-जगत् है। वह उसे जो रूप देना चाहता है दे सकता है। अतः भावनात्मक-एकता की किसी भी योजना में साहित्यकार को विश्रंभ में ले लेना चाहिए और उसका पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त कर लेना चाहिए। ●

प्रा. राजमल बोरा

भावनात्मक एकता और शिक्षा

विश्व के सामने आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि वैज्ञानिक साधनों का उपयोग मानवता के हित में कैसे किया जाय? विश्व में मानव यदि शान्ति के साथ जीवित रहना चाहता है तो उसे ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी जो उसे विज्ञान के उचित लाभ की ओर प्रेरित कर सके। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय दोनों दृष्टियों से यह आवश्यक है कि शिक्षा के दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाय। आज हो यह रहा है कि प्रत्येक राष्ट्र की सरकार या राज्य की सरकार की शिक्षा सम्बन्धी नीति अलग-अलग है। उनमें उनके स्थानीय हितों को अधिक ध्यान मे रखा गया है। एक राज्य का आदर्श दूसरे राज्य के आदर्श से भिन्न है और इन्हीं भिन्नताओं के आधार पर शिक्षा का दृष्टिकोण बदला हुआ है। इन आदर्शों का सम्बन्ध भावनाओं से होता है, और फिर जहां एक राज्य की भावनाओं का संघर्ष किसी दूसरे राज्य की भावनाओं से होता है तो फिर उनको एक करना कठिन हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भावनात्मक दृष्टि से एक होने के लिए शिक्षा का प्रसार अधिक-से-अधिक किया जाय। साथ ही इसकी नीति कुछ ऐसी निर्धारित की जाय जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना को पनपने का अवसर प्राप्त हो।

शिक्षा वैसे भी अपने में बड़ी लाभदायी है। शिक्षा मनुष्यों को सभ्य बनाती है; उसके ज्ञान में इससे वृद्धि होती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य को अपने परिवेश का ज्ञान होता है और वह अपने-आपको उसके अनुकूल बनाकर रहना सीखता है।

शिक्षा के कई विषय हैं, इनमें यदि हम विभाजन करें तो यह विभाजन उसके साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाएगा। फिर भी सुविधा के लिए ज्ञान को दो भागों में विभाजित किया है—विज्ञान और कला, वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन सर्वत्र एक ही होगा, क्योंकि विज्ञान कारणों और परिणामों का अध्ययन करता है और वह एक प्रकार से तथ्यों का उद्घाटन कर उनके गुण-दोषों का विवेचन करता है। भौतिक-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, जीव-विज्ञान आदि विषय इसी के अन्तर्गत आएँगे। इनका अध्ययन एक दृष्टि से सर्वत्र होगा और इससे भावनात्मक एकता में अंतर नहीं आएगा। कला के विषयों का अध्ययन मनुष्य की भावनाओं से सम्बन्ध रखने वाला है। अतः मनुष्यों को इन विषयों का अध्ययन करते समय ऐसी नीति का निर्धारण करना पड़ेगा जो उसे भावनात्मक दृष्टि से एक बनाए रखने में सहायक हो। धर्म, संस्कृति साहित्य और समाज-विज्ञान की अन्य शाखाएँ मनुष्य की भावनाओं का अध्ययन व्यक्ति और समाज दोनों के तथ्यों का उद्घाटन करते हुए करते हैं। इनमें यदि स्वार्थ से प्रेरित होकर कोई यदि गलत भावनाओं और गलत आदर्शों का प्रचार करने लग जाता है तो विषमता उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए धर्म को ले लें—थामस पेन का कहना है कि—"यदि प्रत्येक व्यक्ति से अपने धर्म-मत की परीक्षा करने को कहा जाय, तो कोई भी धर्म बुरा न सिद्ध होगा। किन्तु, यदि उनसे एक-दूसरे के धर्म-मतों की परीक्षा करने को कहा जाय तो विश्व में कोई भी धर्म दोष-रहित न मिलेगा. इसलिए जहाँ तक धर्म की विभिन्न संस्थाओं का प्रश्न है, या तो सारा संसार ठीक है या सारा-का-सारा गलत[1]।" इस दृष्टि से सोचने पर आज के युग में आवश्यकता इस बात की है कि धर्म को राजनीतिक रूप न दिया जाय। हमारे संविधान में किसी एक धर्म को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। सब धर्मों का समान रूप से आदर होना चाहिए। धर्म और राज्य जहाँ एक हो जाते हैं, वहां देश का अवपतन होने लगता है। भावनात्मक दृष्टि से एक होने के लिए हमें एक-दूसरे को आपसी धर्मों का सम्मान करना सीखना होगा। झूठे आदर्शों का पाठ न पढ़ाकर

---

१. थामस पेन के राजनैतिक निबन्ध—सम्पादक—नेल्सन ऐफ. ऐडकिन्स, (अनुवादक—भगीरथ रामदेव दीक्षित)—पर्ल पब्लिकेशन्स लिमिटेड बम्बई द्वारा प्रकाशित—पृ. ११८।

वास्तविक तथ्यों का उद्‌घाटन कर वर्तमान युग का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना चाहिए। बर्ट्रेण्ड रसेल लिखता है कि—"अब यह किसी एक देश का स्वार्थ नहीं कि वह दूसरे देश के मुकाबले में अपनी उच्चता पर जोर दे या अपने लड़के और लड़कियों में यह विश्वास जमाए कि वह युद्ध मे अजेय है, और न यह बात अच्छी है कि शूरवीरता की शान को ऐसे पेश किया जाय कि सब चीजों से वही प्रशंसनीय लगे[२]।" इतिहास जैसे विषयों का आज के युग के अनुकूल पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। भारतवर्ष का नया इतिहास वास्तविक तथ्यों के आधार पर लिखा जाना चाहिए और उसका अध्ययन सारे देश-भर में एक स्तर पर होना चाहिए। बर्ट्रेण्ड रसेल का कहना तो यह है—"प्रत्येक देश में उस देश का इतिहास विदेशियों द्वारा लिखित पुस्तकों से पढ़ाया जाना चाहिए। निस्सन्देह, इन पुस्तको में कुछ पक्षपात झलकेगा, लेकिन विद्यार्थियों में जो विरोधी पक्षपात होगा, वह इस पक्षपात का विरोध करेगा और इस प्रकार जो परिणाम निकलेगा, वह काफी उचित होगा[३]।" इतिहास ही नहीं और भी अनेक विषयों में इस तरह से परिवर्तन करना होगा।

भावनात्मक-एकता ही वास्तविक एकता है। विचारों की अपेक्षा भावनाओं में बल अधिक होता है। भावना का सम्बन्ध विश्वासों से है और विश्वास संस्कारों के आधार पर बनते हैं। संस्कारों के बनने में शिक्षा का बहुत बड़ा हाथ है। यदि बाल्यावस्था से ही ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाए जिसका उद्देश्य सभ्य और सुसंस्कृत बनना हो; तो संस्कारों में सुधार होगा। एवं इससे भावनात्मक एकता स्थापित करने में काफी हद तक सायता मिलेगी।

यहाँ संस्कृति के सम्बन्ध में लिखना कुछ उचित होगा। श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' संस्कृति के संबन्ध में लिखते हैं—"संस्कार या संस्कृति असल में शरीर का नहीं; आत्मा का गुण है और जबकि सभ्यता की सामग्रियों से हमारा सम्बन्ध शरीर के साथ छूट जाता है, तब भी हमारी संस्कृति का प्रभाव हमारी सभ्यता के साथ जन्म-जन्मान्तर तक चलता रहता है।"[४] दूसरे शब्दों में संस्कृति हमारे रक्त में मिली होती है। हमारे विचार, हमारे विश्वास, हमारी रूढि, हमारे सुख-दुःख एवं पाप-पुण्य की कल्पना सब-के-सब संस्कृति के द्योतक हैं। अतः जब तक मनुष्य एक-दूसरे देश की, एक-दूसरे प्रान्त की या एक-दूसरे मनुष्य की संस्कृति को पहचान कर उनका आदर करना नहीं सीखेगा तब तक वह एक-दूसरे के निकट नहीं आ सकेगा। राष्ट्र की वास्तविक एकता उसकी सांस्कृतिक-एकता में ही निहित है। इसी लिए आवश्यकता इस बात की है कि भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित विभिन्न सांस्कृतिक रूपों का अध्ययन समान रूप से सर्वत्र हो, क्योंकि इससे आपस में एक-दूसरे को समझने में सहायता मिलेगी। संस्कृति को समझने के लिए साहित्य से बढ़कर दूसरा सुन्दर माध्यम नहीं। अतः एक भाषा के साहित्य का अनुवाद दूसरी भाषा में होना चाहिए। अनुवादों को पढ़कर हम दूसरी भाषा के बोलने वालों के जीवन को अति निकट से देख सकते हैं। पाठ्यक्रमों में इस दृष्टिकोण को रखकर परिवर्तन किया जाना चाहिए।

अन्त में यह कहना है कि सभ्यता की दौड़ जितनी तेज़ी से हो रही है, उतनी तेज़ी से संस्कृति का उत्थान नहीं हो रहा है। सभ्यता की दृष्टि से हम बीसवीं शताब्दी का जीवन बिता रहे हैं किन्तु विचारों और विश्वासों में हम अभी बारहवीं या पन्द्रहवीं शताब्दी के हैं। विज्ञान ने जिन रहस्यों का उद्‌घाटन किया है और जिन तथ्यों को उसने हमारे सामने रखा है उनके अनुसार हमारे विश्वासों में परिवर्तन नहीं हुआ है। और जब तक यह नहीं होगा हम आज के युग के अनुकूल अपने-आपको व्यवस्थित करने में असफल रहेंगे। इस परिवर्तन में शिक्षा से बढ़कर कोई और दूसरा उपाय नहीं। अतः शिक्षा का प्रसार अधिक-से-अधिक होना चाहिए। ●

---

२. विवेक और विनाश— बर्ट्रेण्ड रसेल—अनुवादक—वीरेन्द्र त्रिपाठी—राजकमल प्रकाशन दिल्ली—पृ. ६४।

३. विवेक और विनाश—बर्ट्रेण्ड रसल—पृ. ६५.

४. संस्कृति के चार अध्याय —रामधारीसिंह 'दिनकर'—पृ. ६५३.

श्रीमती शशिप्रभा शास्त्री

धुँआँ और धुँध

आज सवेरे की गाड़ी से जगमोहन के भाई-भावज इत्यादि जा चुके थे। एक पखवाड़े से छाया हुआ बवंडर शान्त हो चुका था, किन्तु पद्मा का मन एक विचित्र कुण्ठा से भरा हुआ था। पिछले पाँच वर्षों से स्नेह की जो धारा अजस्र रूप से बह रही थी, उसमें किसी ने मानो आज आग लगा दी थी, किन्तु सत्य एक दिन इतने स्पष्ट रूप में सामने आ खड़ा होगा, इसकी उसने कल्पना भी न की थी। आज रह-रह कर पिता के शब्द उसे कौंच रहे थे—

"बेटी, तुम जानती हो, जिस जगमोहन से तुम विवाह करने पर तुली हो, वह आदमी जात का नाई है नाई।"

"जानती हूं पिता जी, किन्तु इतने योग्य व्यक्ति तो हमारे ब्राह्मणों तक में नहीं मिलते।" प्रत्युत्तर में उस दिन पद्मा संकोच छोड़ कर अपने पिता के सामने कह बैठी थी।

"यह तुम नहीं कह सकती।" पिता कह रहे थे, किन्तु पद्मा को आज वह दिन याद आ रहा था, जब जाति और मर्यादा को तिलांजलि दे उसके पिता को अपनी एकमात्र मातृविहीना पुत्री पद्मा का हाथ नाई जात के जगमोहन को पकड़ाना पड़ा था, पर विदाई के अवसर पर वे यह कहना भी न भूले थे—

"बेटी पद्मा, आज से तुम्हारे लिए यह दहलीज़ बन्द है। समझ लेना कि तुम्हारा अभागा बाप अब इस दुनियाँ में नहीं।" उस समय आंसुओं की धारा तीव्र से तीव्रतर हो उठी थी। किन्तु जगमोहन में पिछले पाँच वर्ष में उसे कोई भी कमी देखने को नहीं मिली थी—सुन्दर, सुशिक्षित, सुसंस्कृत, निष्ठावान्। यूनिवर्सिटी में रीडर के पद पर होना कोई कम बड़ी बात नहीं थी, सो पद्मा के दिन अब तक खूब रंगीन रहे थे, किन्तु आज पद्मा के प्रथम परिचय का वह प्रगाढ प्रेम, बारूद की सुरंग की तरह उड़ गया था, क्योंकि उसने आज वस्तुस्थिति प्रत्यक्ष देखी थी। विवाह के अवसर पर भी जगमोहन ने अपने जिन सगे-सम्बन्धियों को बुलाना उचित न समझा था वे आज अचानक बिना बुलाए, बिना सूचना दिए आ धमके थे। पिछले पखवाड़े से वह जगमोहन के भाई-भावज को देखती आई थी—वेष-भूषा में पूरे नाई, बातचीत और खानपान में बिल्कुल अपरिष्कृत ठेठ जंगली, गांव के गंवार। इस एक पखवाड़े में पद्मा उन्हें न-जाने कैसे निभाती आई थी। उसे अपनी जेठानी के बालों से चीकट की दुर्गंध आती थी, जेठ के हुक्के के मारे उसका नाक में दम था, सो इतने दिन से कुमकुमा बना हुआ अपना बंगला उसे उनके चले जाने पर भी कूड़े का ढेर लग रहा था। जाते समय पद्मा ने जेठानी को साड़ी-जम्पर, बच्चों केलिए कपड़े, खिलौने और न-जाने क्या-क्या दिया था, क्योंकि उसको उसके टल जाने के मुहूर्त पर बेहद खुशी हुई थी, किन्तु उसके जाते ही वह जगमोहन पर बरस पड़ी थी—

"देखिए, मैं आपके भाई-भावज को अपने घर में नहीं देखना चाहती।"

"क्यों?" जगमोहन को आज पद्मा का स्वर बड़ा विचित्र लग रहा था।

"क्यों, क्योंकि उन्हें बिल्कुल तमीज़ नहीं है, क्योंकि हमारी धोबिन और भंगिन उनसे कहीं अच्छे हैं...।" पद्मा बोले चली जा रही थी।

जगमोहन ने आज प्रथम बार पद्मा की यह विकराल मुखमुद्रा देखी थी। वे कुछ कहना चाहते थे, पर संभल गए। पद्मा कहे चली गई—

"इस घर में आकर मेरी मिट्टी पलीत हो गई। मेरी किस्मत फूटी थी, जिसमें ऐसे उजड्ड सम्बन्धी बदे थे। हाय राम, क्या स्वप्न थे, क्या हो गया।"

"पद्मा, तुम अब चुप भी होगी या नहीं। मैं ज़्यादा नहीं सुन सकता।" जगमोहन के धैर्य का बाँध टूट चुका था।

पद्मा चुप हो गई, किन्तु उसके हृदय का बवण्डर अभी शांत नहीं हुआ था। उसे अब जगमोहन से बू आने लगी थी। जगमोहन को वह खाना खाते देखती और उसे लगता, उसके जेठ का लघु रूप बैठा रोटियां भकस रहा है। जगमोहन की चाल-ढाल सबमें उसे

नाईपन झलकता दीख पड़ने लगा और उसका आभिजात्य-गर्व, जगमोहन की हर हरकत की खिल्ली उड़ाने लगा। आज पूरे पाँच वर्ष के बाद पद्मा को पश्चात्ताप हो रहा था कि उसने जगमोहन से विवाह क्यों किया। आख़िर कुल को लड़की के माता-पिता इसी लिए महत्ता देते हैं, पर अब वह क्या करे? जगमोहन के साथ समाज के सामने उसका विवाह किया गया था, वह उस विवाह-सम्बन्ध को कैसे विच्छिन्न कर ले?

वह विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं कर सकती है, पर वह दूसरे प्रकार के सम्बन्ध तो सदा-सर्वदा के लिए छिन्न कर सकती है। आज तक जो-कुछ ग़लत किया गया था, उसका प्रायश्चित्त पद्मा ने इस रूप में करना उचित समझा और पद्मा उस दिन सचमुच अपनी शय्या दूसरे कमरे में उठा कर चले गई। जगमोहन ने पूछा तो बोली—

"आप रात को पढ़ते हैं तो मेरी आँखों में चौंध लगती है।" पद्मा की नीयत जगमोहन ने समझ ली, किन्तु स्वाभिमानवश मुंह से एक शब्द भी न कहा।

पद्मा अपने जीवन से तंग आ गई। न हँसना न बोलना। यन्त्रवत् कार्य में लगे रहना, समय पर जगमोहन के सामने थाली परोस कर रख देना, समय पर उनकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहना। पद्मा ने सोचा, इस प्रकार वह जगमोहन के प्रति अपने द्वेष को किसी भी प्रकार सहीं निभा पा रही है और उसने जगमोहन के हर काम से हाथ खींच लिया—अब जगमोहन स्वयं अपना हर काम करते, उन्होंने पद्मा को समझाने की कोशिश कभी नहीं की। पद्मा का काम अब यही था कि अपने लिए संक्षिप्त-सा भोजन बना वह मुहल्ले मे जाकर बैठ जाती। जो पद्मा कभी गली-द्वार की औरतों से बात करने को कतराती थी, वही पद्मा अब हर पड़ोसिन से उसके रिश्तेदारों का ब्योरा पूछती रहती। उसके पड़ोसिन के जेठ कर्नल हैं, भतीजा कैप्टन है, चचिया ससुर डाक्टर हैं, अथवा वकील हैं, ऊंचे-ऊंचे पदों पर हैं, सुनकर उसकी छाती अंगारे-सी दहक उठती और तब किसी बहाने उठ कर वह अपने कमरे में आ पहुंचती और घण्टों पड़ी-पड़ी रोती। कभी वह अपनी सहेलियों के पतियों के बारे में ही सोच-सोच कर आंसू बहाती। अभी कल उसकी सखी की बहन के विवाह का निमन्त्रण-पत्र आया था—लड़का खत्री ए.आई.एस. था। जगमोहन को नीचा दिखाने के लिए वह निमन्त्रण-पत्र पद्मा ने उन्हीं की मेज़ पर फेंक दिया। पद्मा की ज़िन्दगी अब एक मरुस्थल की तरह हो गई—नीरस, शुष्क और बीहड़। उसे स्वयं आश्चर्य होता था कि वह शिक्षिता होकर भी इस प्रकार के विचारों को क्यों तूल दे बैठी थी।

पर दर्द बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। पद्मा ज्यों-ज्यों सच्चाई को भूलने का प्रयत्न करती, त्यों-त्यों सच्चाई उसके मन को मींजती जाती। उस दिन उसे अचानक बरेली से अपनी सखी यशोदा का इस आशय का पत्र मिला कि उसके पति का ट्रांसफर लखनऊ ही हो गया है, तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई। कम-से-कम उसे अब एक व्यक्ति तो ऐसा मिलेगा, जिससे वह अपनी व्यथा खुलकर कह सकेगी। यशोदा आई तो पद्मा प्रथम दिन ही उससे मिलने पहुंच गई। उसने यशोदा के पति को देखा—नगर के मैजिस्ट्रेट के पद पर आए थे वे, रंग एकदम आबनूसी। यशोदा के साथ बैठकर पद्मा से घण्टों बातें करते रहे। पर उन की बात करने के ढंग में एक शालीनता थी, जो पद्मा के हृदय को बाधे चली जा रही थी। आख़िर पद्मा को उठते हुए यशोदा के कान में कहना ही पड़ा—

"यशोदा, बड़ी भाग्यशालिनी है, जो इतने सभ्य सुशिक्षित पति पाए हैं।"

"अच्छा-अच्छा, बातें न बना। यह बता कि तू अपने श्रीमान् जी से कब परिचय करवाएगी।" यशोदा ने हिलक कर पूछा—

"बस वे अभी यूनिवर्सिटी से लौटे नहीं थे। आतुरता मुझे पूर्व ही खींच लायी, अबके ज़रूर आएँगे वे।" मन की बात छिपाते हुए पद्मा ने प्रत्युत्तर में कहा।

दोनों सखियां देर तक गत दिनों की स्मृतियों से अपने हृदयों को भरती रहीं। आख़िर पद्मा ने विदा ली।

मार्ग-भर उसका हृदय फिर पुराने विचारों से आन्दोलित होता चला।

"देखो इसे कहते हैं कुलमर्यादा, मान-मर्यादा। कोई रंग-रूप थोड़े ही देखा जाता है, गुण देखा जाता है। भला इनके सामने मैं उन्हें कैसे लाऊँगी, जिन्हें कुछ भी सभ्यता नहीं है, जिनका परिवार इतना अशिक्षित, कुल इतना निम्न है। आखिर कोई-न-कोई बहाना करके पद्मा जगमोहन को यशोदा के घर ले जाने से अथवा मिलने से बचाती रही। जिस दिन यशोदा के घर पर आने का प्रोग्राम होता पद्मा पति को किसी-न-किसी काम में उलझा कर बाहर भेज देती।

उस दिन नगर में एक विशिष्ट साहित्यिक जलसा होने वाला था। नगर के गण्य-मान्य व्यक्ति आमंत्रित थे। सरकार की ओर से इस जलसे में प्रदेश-भर के उच्च साहित्यिक व्यक्तियों को पुरस्कार देने की व्यवस्था थी। पद्मा भी यशोदा के साथ उस जलसे में मौजूद थी। यहां आने के लिए उसने जगमोहन से बात करना उचित नहीं समझा था।

किन्तु उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जगमोहन वहां पहले से ही उपस्थित थे। जगमोहन के नाम पुकारे जाने पर समस्त पंडाल तालियों की गड़-गड़ाहट से गूँज उठा। उत्कृष्ट साहित्य-सृजन करने पर जगमोहन को सबसे बड़ा पुरस्कार प्रदान किया गया था। पद्मा की छाती क्षण-भर को आनन्द से विभोर हो उठी, किन्तु ऐंठ के कारण वह आज भी जगमोहन का परिचय यशोदा और उसके पति से नहीं करवा पाई। किन्तु पद्मा के विस्मय का ठिकाना न रहा, जब स्वयं यशोदा के पति, नगर के प्रतिष्ठित मैजिस्ट्रेट, जगमोहन के गले में हाथ डालकर दोनों सखियों के सामने आ खड़े हुए। बोले—

"जानती हो यशोदा, ये हमारे लंगोटिया यार हैं। हमें क्या मालूम था कि ये जनाब यहीं रम रहे हैं।"

पद्मा के काटो तो खून नहीं, किन्तु मैजिस्ट्रेट साहब कहे जा रहे थे—

"कहो भाई, गांव कितने दिन से नहीं गए?" मैजिस्ट्रेट साहब के स्वर से लग रहा था, मालूम नहीं वे जगमोहन से न-जाने कब के परिचित हों।

"जबसे तुमने छोड़ा, तभी से नहीं जाना हुआ।" जगमोहन ने कहा।

"अच्छा भई, घर ज़रूर आना। तुम्हें देखकर आज हृदय कितना प्रसन्न है, मैं कह नहीं सकता। आंखों के कोनों में कुलबुलाते हुए आंसुओं को रूमाल से पोंछ कर पद्मा की ओर मुड़ कर उन्होंने कहा—

"आप हैं मेरी पत्नी की सहेली पद्मा!"

"और मेरी पत्नी।" जगमोहन ने ठहाके के साथ जोड़ा।

यशोदा और उसके पति स्तब्ध थे। प्रश्नसूचक दृष्टि से दोनों ने पद्मा की ओर देखा। उनकी दृष्टि में आश्चर्य के साथ-साथ स्पर्धा का भाव भी झूल रहा था, किन्तु पद्मा का हृदय ग्लानिपूर्ण आशंका से भरा हुआ था, वह सोच रही थी—एक गांव के होने के कारण यशोदा के पति जगमोहन की जात-पाँत भी जानते होंगे और अब ये यशोदा को ज़रूर बतलाएँगे। यशोदा तब क्या कहेगी, वह स्वयं यशोदा को मुंह कैसे दिखलाएगी?

किन्तु दूसरे दिन जब शाम धुंधला रही थी, यशोदा अचानक पद्मा के घर आ धमकी। गले में हाथ डाले रुँधे हुए कंठ से बोली—

"पद्मा, आज मेरे हृदय का बहुत बड़ा बवंडर शांत हो गया है। मैजिस्ट्रेट साहब की जात मेरे मन में हमेशा कुरेदन मचाए रहती थी, किन्तु आज मुझे कितना तोष मिला है जानती हो?"

"यही देखकर न कि तुम्हारी सखी ने भी वही भूल की है, जो तुमने की है।"

"पगली यह नहीं, यह सोचकर कि हम दोनों ने ही मिट्टी में से हीरे ढूँढ़ निकाले हैं। सचमुच मनुष्य मनुष्य है और कुछ नहीं।"

"सच!" पद्मा ने किलकारी भरते हुए कहा। वह नहीं कह सकी, उसका कितना बड़ा बवंडर आज शीतल झरना बन चुका है। दोनों सखियों के कहकहों में इतने समय से छाया हुआ धुंआ और धुन्ध मस्तिष्क से बहुत-बहुत दूर उड़ चुका था।

प्रा. गुरुनाथ जोशी

भावनात्मक एकता के प्रचारक संतवर महीपतिराय

कर्नाटक दक्षिण भारत की पुण्यभूमि है। इसकी धरती पर आर्य एवं द्राविड संस्कृतियों का संगम हुआ है। इसकी रत्ती-रत्ती ज़मीन से भावनात्मक एकता की सुरीली तान मुखरित होकर भारतीय भावनाकाश में व्याप्त हुई है। इसकी धरती पर प्राचीन काल से शैव, वैष्णव, भागवत तथा जैन सम्प्रदाय और क्रमश: उनकी वैदिक शैव, वीरशैव, शाक्त उपशाखाएँ; रामानुज तथा माध्व उपशाखाएँ; नाथ या सिद्ध, विठ्ठल या पांडुरंग, दत्त या अवधूत शाखाएँ तथा श्वेताम्बर और दिगम्बर उपशाखाएँ पनपकर, फूलकर, फलकर, जन-जन के हृदय-हृदय, मन-मन के बीच में भावनात्मक एकता का सेतुबंध करके सुखी जीवन का पथ दिखाने में सदा अग्रसर हैं। द्राविड में उपजी भक्ति का आन्दोलन यहीं वृद्धि पा गया है। इन सम्प्रदायों, उनकी उपशाखाओं और भक्ति-मार्गों में ऐसी विभूतियों का जन्म हुआ है कि उनकी वाणी ऐक्य-वाणी रही है, भक्ति की वाणी रही है, लोक-संग्रह एवं लोकमंगल की वाणी रही है, भाषा-भेद-विवर्जित वाणी रही है। ऐसी विभूतियों में से एक थे महीपतिराय भावनात्मक एकता के संतवर।

महीपतिराय के दादा रंग भट्ट जी थे। वे बागलकोट के कायोटे खानदान के थे। जवानी में ही काशी-यात्रा करके लौट रहे थे कि बेलगाँव जिले के ऐगळी ग्राम में ठहर गए थे। वहां के पटवारी की इकलौती बेटी के साथ उनका विवाह हुआ और पटवारी का काम भी वे सम्भालने लगे। उनकी दो सन्तानें हुईं—कोनेरीराय और गुरुराय। कोनेरीराय की दो सन्तानें हुईं—तुक्कव्व और महीपतिराय।

कोनेरीराय को पटवारी का काम नहीं रुचा। उस छोटे-से गाँव में वैदिक-पौरोहित्य वृत्ति से उपजीविका नहीं चल सकती थी। महीपतिराय का उपनयन करना भी कठिन हो गया। इसलिए वे अपने परिवार सहित बीजापुर गए जबकि वहां मुहम्मद आदिलशाह की हुकूमत थी। कोनेरीराय की जीविका शुक्लवृत्ति से चल रही थी। विद्वान् होने के कारण शीघ्र सबमें प्रसिद्ध हुए और महीपति का उपनयन भी किया गया।

महीपतिराय को कोनेरीराय ने वेद और शास्त्रों का अध्ययन कराया, औरों से नाना भाषाएँ सिखाईं तथा लौकिक विद्याएँ भी पढ़ाईं। महीपतिराय ने थोड़े ही समय में सभी विद्याओं में परिणति प्राप्त कर ली। पुराण-प्रवचन शुरू किया। यह प्रवचन कार्य नृसिंह देवालय के चबूतरे पर हो रहा था। एक दिन अचानक आदिलशाह के दीवान खवासखान की पालकी उसी मन्दिर के सामने से गुजरी। महीपतिराय की सुरीली आवाज़ में प्रवचन हो रहा था और बहुत-से भावुक स्त्री-पुरुष सुनते बैठे थे। इस ओर खवासखान का ध्यान खिंच गया और उन्होंने सारी बातें जान लीं और अपने महल में पुराण-प्रवचन शुरू करा दिया। समस्त हिन्दू पद्धति के अनुसार पुराण-कथन जब महीपतिराय ने फ़ारसी भाषा में शुरू किया तो श्रवणार्थ जमे हुए हिन्दू, मुस्लिम विद्वान् दंग रह गए और उनकी प्रतिभा एवं संगीत से प्रभावित हुए। खवासखान ने अत्यन्त प्रसन्न होकर महीपतिराय को अपना अर्थ लेखक बना लिया। इस काम में भी उन्होंने अपनी दक्षता दिखाई। महीपतिराय का विवाह भी कलबुर्गी के देशमुख की कन्या तिम्मव्वा के साथ हुआ। सुविचारी बहू के आने से महीपतिराय के माता-पिता के आनन्द का ठिकाना ही न रहा।

महीपतिराय के परिवार में आनन्द का राज्य था। कुछ वर्षों के उपरान्त उनके माता-पिता का देहान्त हुआ और कुलपुरोहित कोल्हार के प्रह्लादाचार्य जी ने और्ध्वदेहिक क्रियाएँ समाप्त कराके महीपतिराय की जन्मपत्री देखकर भविष्यवाणी की—"महीपति! तुमको शीघ्र राजवैभव प्राप्त होगा।"

इस भविष्य कथन के उपरान्त बहुत दिन बीते भी नहीं थे कि एक घटना हुई। एक आर्थिक मामला

बादशाह आदिलशाह की समझ में नहीं आया और उसको खवासखान भी सुलझा न सके। यह मामला सुलझाने का और बादशाह को समझाने का काम महीपतिराय पर पड़ा। महीपतिराय ने उसे अपनी चातुरी से सुलझा दिया और बादशाह को समझा दिया। इसका फल यह हुआ कि महीपतिराय बादशाह के निजी कार्यदर्शी बने और कुछ काल के बाद बीजापुर राज्य के दीवान भी। भविष्य-कथन सच निकला।

महीपतिराय दीवान बने, पर उनकी रीत-नीत में, चाल-चलन में और स्वभाव में कोई परिवर्तन न हुआ। अहंकार तनिक भी छू न सका। वे और भी नम्र हुए। आडंबर झाँक भी न सका। उनके परिवार में प्रतिदिन जो कार्य होते थे उनमें फ़रक न पड़ा। उनके घर जो जाता खाली हाथ न लौटता। साधु सन्तों का सत्कार होता। दैनिक धार्मिक कार्यों में बाधा नहीं पड़ी। आदिलशाह उनकी प्रामाणिकता, कर्त्तव्य-निष्ठा, प्रजापालन की नीति से इतने खुश हुए, उनकी संयमी-वृत्ति, निरहंकारिता, धार्मिक उदारता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने ज़नानखाने की स्त्रियों के लिए पुराण-प्रवचन करने की प्रार्थना भी उनसे की। महीपतिराय राजमहल के अंतःपुर में पुराण-प्रवचन भी करने लगे। दरबार एवं महल में वे लोकप्रिय हो गए। सभी के हितचिंतक, सबके रक्षक, सबके पासवां।

हरएक मनुष्य के हृदय के अन्दर एक ऊँची प्रवृत्ति का तार बंधा रहता है। सहसा एक घटना की उँगली के आघात से वह तार बज उठता है तो आत्मा क्षुद्र केंचुली से मुक्त होकर अनंत आकाश की सैर करना चाहता है। ऐसी ही एक घटना दीवान महीपतिराय के जीवन में हुई। मुहम्मदशाह ने बेगम तालाब खुदवाने का काम शुरू किया था और उसकी निगरानी का काम महीपतिराय को सौंप दिया गया था। एक दिन जब वे निरीक्षण का कार्य समाप्त करके लौट रहे थे तब दुर्ग के खंदक के किनारे पर एक पेड़ की छाया में बैठे हुए एक सूफ़ी मुसलमान फ़क़ीर ने उनको अपने पास बुलाया। महीपतिराय फ़क़ीर 'शाहनंगा' के पास गए और भक्तिभाव से प्रणाम किया। फ़क़ीर ने महीपतिराय से राजमुद्रा मांगी तो उन्होंने दे दी और उनका कथन सुनने के लिए खड़े हुए। फ़क़ीर ने 'मौत का घाण' कहकर उस राजमुद्रा को खंदक के जल में फेंक दिया। तब महीपतिराय ने अपने कर्त्तव्य की बातें सुनाईं और राजमुद्रा के बिना कर्त्तव्य निभाना कठिन है अतः राजमुद्रा लौटाने की कृपा की जाय यह निवेदन किया। शाहनंगा हँसे और अपनी बहन शाहनंगी से कहा कि उसको लाओ। वह पानी में डूबी और अनेक राज-मुद्राएँ लाई जो महीपतिराय की मुद्रा से खूब मिलती-जुलती थीं। शाहनंगा ने उनसे अपनी राजमुद्रा चुन लेने को कहा तो वे चुन न सके। तब फ़क़ीर ने ही चुन करके दे दिया। इस घटना से महीपतिराय बहुत प्रभावित हुए, परन्तु 'मौत का घाण' का अर्थ समझ न सके। पुनः एक दिन शाहनंगा से मिलकर उसका अर्थ पूछा तो कहा गया—"वही अर्थ, अधिकार छोड़ो। मारवाड़ में रहने वाले भास्कर स्वामी जी के पास जाओ। उनसे प्रार्थना करो और वे तुमको सच्चे सुख की राह बतलाएँगे।" महीपतिराय शाहनंगा से गुरूपदेश लेना चाहते थे, परन्तु शाहनंगा ने ही स्वयं कहा—"तुम ब्राह्मण हो, भास्कर स्वामी जी से ही उपदेश लो।" इतना कहकर फ़क़ीर दीवाना-सा भाग गया। बस, इस घटना ने महीपतिराय के हृदय में वैराग्य का दीप जलाया। वे खूब विचार-मग्न होकर घर लौटे।

महीपतिराय आदिलशाह के पास गए और सरकारी नौकरी से मुक्ति की प्रार्थना करते हुए बोले—"अब मैं योगाभ्यास और साधना करके प्रभु की सेवा में दिन बिताना चाहता हूं।" आदिलशाह ने कहा—आप दरबार का काम सम्भालें और योगाभ्यास तथा साधना भी करें। आपको मैं छोड़ नहीं सकता।" तब महीपतिराय ने छोटी बेगम की सहायता से नौकरी से मुक्ति पा ली और महीपतिराय से महीपतिदास बन गए।

वे अपनी आत्मा को पहचानते थे। जो अपनी आत्मा को जानते हैं, पहचानते हैं उनमे भेद-भाव नहीं रहता। इसीलिए वे जन्मतः माध्व थे, वैष्णव थे तो भी उन्होंने "शाहनंगा" की आध्यात्मिक गरिमा का गौरव किया, अवधूत संप्रदाय के भास्कर स्वामीजी को गुरु मानकर उनका अनुग्रह प्राप्त किया; हरि, हर, गुरु, दत्त में भेद नहीं माना। हिन्दू, मुसलमान, लिंगायत, ब्राह्मण आदि का भेद नहीं माना। इसी लिए उन्होंने अपने पदों में, अपने भक्ति के कीर्तनों में, विनय के पदों में कहा है—"वैष्णव वही है जो

भक्तिरस में लीन होकर हरि का ध्यान करता है और विष्णु में एकरस होता है।" "शिवशरण अर्थात् शिवभक्त वही है जो नीति सुपथ पर चलकर भक्ति-भाव से ज्योति-स्वरूप को देखकर घनब्रह्म में मिल जाता है।" "चिन्मय होकर जो अत्यन्त नादम् में विलीन हो जाता है वही हंसनाथ है।" इस अनुभूति से उनमें जो द्वैताद्वैत का द्वंद्व था वह मिट गया। इसीलिए उन्होंने अपने पदों में कहा है— "हे मानव, द्वैत अद्वैत कहकर मत झगड़ा करो। उनसे भिन्न, उनसे परे जो वस्तु है उसे देखो।"

महीपतिराय के कीर्तनों के अध्ययन से यह विदित हुए बिना नहीं रहेगा कि वे कबीर और ज्ञान्देव के समकक्ष सन्त हैं। लेकिन एक विशेषता यह है कि उनके भक्ति-ज्ञान-परक पदों में कुछ ऐसे हैं जिनमें अनेक भाषाओं का संगम हुआ है। यहाँ तीन भाषाओं के संगम का एक पद नागरी लिपि में दिया जाता है—

बाट पकड़ो सीधा (हिन्दी)
न घड़े तेथे बाधा (मराठी)
इदुवे निजगुरु बोधा (कन्नड़)
सुसुव सम्मत वादा (कन्नड़)
जान बूझ कर चलना भाई (हिन्दी)
लक्ष लाउनी गुरु पायि (मराठी)
इदु एल्लरिगे तोरुवदैया (कन्नड़)
यह समझे विरला कोई (हिन्दी)
बन्दगी करना करके झूठा (हिंदी)
तिळियदु निज घनदाटा (कन्नड़)
मर्म न कळत करणे खोटा (मराठी)
केळि श्री गुरुविन माट (कन्नड़)।
तिळिदु नोड़ि श्री-गुरु-कृपेयिंद (कन्नड़)
हुआ खुदा का बंदा (हिन्दी या उर्दू)
महीपतिरायनु बलु आनन्दा (कन्नड़)
हरी म्हणा गोविंदा (मराठी) ॥

भावार्थ—सीधा रास्ता पकड़ो। उसपर कोई विघ्न-बाधा नहीं है। यही गुरु का उपदेश है। यही सबको सम्मत है। समझ-बूझकर इस रास्ते पर चलना भाई; गुरु के चरण पर ध्यान लगा के चलना। यह सब को सच्चे सुख का मार्ग दिखा देगा। लेकिन इसे बिरला ही समझता है। प्रणाम करना है; इसलिए अनमना होके झठमूठ प्रणाम करने से प्रभु का मर्म नहीं समझ में आयगा। प्रभु की लीला समझ में नहीं आयगी; मर्म जाने बिना वैसा करना खोटा होगा। गुरु का मन्त्र सुनो। गुरु की कृपा से जान लो। महीपतिराय तो खुदा का बन्दा हुआ और उसको बड़ा आनन्द हुआ। तुम भी कहो हरि, गोविंद। तुम्हें भी आनन्द मिलेगा।

महीपतिराय के बहुत-से पद अग्निनारायण के मुँह में पड़े। पर जो अब उपलब्ध हैं उनमें ६२० कन्नड़ पद, ४३ मराठी पद, १८ हिन्दी पद, पांच बहुभाषा पद हैं। ये पद वैसे ही हैं जैसे कि महाराष्ट्र में सन्त एकनाथ जी के हैं। महीपतिराय के भक्त-मंडल में नाना सामाजिक स्तर एवं बौद्धिक स्तर के लोग थे; अतः उन्होंने तदनुरूप पदों की रचना की है। इस लिए उनके पदों में विविधता है, किन्तु उनमें भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, नीति की अमिय धारा उमड़ती है। अनुभूति प्रस्फुटित होती है। उनके पदों में नादमाधुरी है, ताल है, लय है तथा अलंकारों की व्यंजना है।

महीपतिराय ने अपने काल के लोगों के आचार-व्यवहार, रीति-नीति और उनकी संस्कृति का सुन्दर चित्रण किया है। दुर्गुण, आडम्बर, अंध-विश्वास, दुर्नीति, भेद-भाव का खण्डन करके लोगों को सच्चा उपदेश देकर उन्होंने और सन्तों की तरह स्वानन्द-साम्राज्य का पथिक बनाया है। वे अपने पदों में कहते हैं—"काम-क्रोध को होली में डाल दो, मद-मत्सर को राख बना दो, माया-मोह को फेंक दो, साधु-सज्जनों का संग करो। सत्य का पथ धरो, उसपर डर के लिए गुंजाइश नहीं है। सत्याचरण के लिए सत्यवाणी की ज़रूरत है। सत्य बोलो, झूठ न बोलो। बुरी आदतों में न फंसो। अन्न-मंगतों को अन्न-दान दो। पाखण्ड तजो; अंदर एक, बाहर एक न करो। 'मुँह में राम-राम बगल में छुरी' का-सा बर्ताव न करो। अपनी आत्मा को जानो। गुरु की कृपा से अंतरात्मा तुमको प्राप्त होगी।"

महीपतिराय की यह वाणी ऐक्य की वाणी है। भावनात्मक-एकता की वाणी है। इनके उपदेशों से हिन्दुओं और मुसलमानों में भावनात्मक-एकता आई और वह उनके निजी जीवन में उतरी। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में, उनकी शाखाओं-उपशाखाओं में एकता स्थापित हुई। जो भी उनके सम्पर्क में आए उनमें भावनात्मक एकता की ज्योति उज्ज्वल हुई। ●

डा. महीपसिंह

भावनात्मक एकता और गुरु नानक

हमारे सामाजिक जीवन में दो प्रकार की प्रवृत्तियां सदा सक्रिय रहती हैं, एक संगठन-मूलक, दूसरी विघटनवादी। गत हजारों वर्षों में मनुष्य ने अपनी जीवन-यात्रा में अपने-आपको 'स्व' के संकुचित घेरे से निकाल कर अधिक-से-अधिक विस्तृत और व्यापक बनाना चाहा है। विकास की इस दिशा में उसने परिवार, गांव, बिरादरी, प्रान्त और राष्ट्र बनाए और उनसे भी आगे बढ़कर विश्वात्मा की भी कल्पना उसने की। परन्तु आत्म-विकास और एकतामूलक इन प्रयासों के साथ ही विघटन और सिकुडन की शक्तियां भी छाया की भांति उसके साथ लगी रहीं। वे शक्तियां उसका मार्ग अवरुद्ध कर उसे खण्ड-खण्ड करती रहीं और मनुष्य उनसे जूझता हुआ अपनी अखण्ड की साधना में लीन रहा।

अपने देश में हम आज भावनात्मक एकता की दृष्टि से बहुत गम्भीर होकर विचार कर रहे हैं। जिन जातियों, भाषाओं और प्रान्तों का निर्माण हमारी एकता में सहायक होने के लिए हुआ था वही आज हमारे विघटन का कारण बन रहे हैं। पांच शताब्दियों पूर्व गुरु नानक ने भी अपने चारों ओर के समाज को इसी प्रकार विघटित होते हुए देखा था। उन्होंने देखा था किस प्रकार लोग अपनी जाति, अपने वर्ण, अपनी भाषा और प्रदेश का अभिमान लेकर और कूप-मण्डूक बन कर एक-दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे हैं। उन्हीं के शब्दों में ऐसे लोग इस संसार में विरले ही हैं, जिन्हें परख कर समाज के खजाने में रखा जा सके, जो जाति और वर्ण के अभिमान से ऊपर उठे हुए हों और जो सांसारिक मोह और लोभ से छुटकारा पा चुके हों—

> ऐसे जन विरले जग अन्दर परख खजाने पाइआ।
> जाति वरन ते भए अतीता ममता लोभ चुकाइआ॥

ऐसी अवस्था में उन्होंने लोगों को वर्ण और जाति के मिथ्याभिमान को छोड़ने के लिए कहा जो हमारी एकता के मार्ग में शूल बनकर बिखरा हुआ है। उन्होंने कहा—

> जाति का गरब न करियहु कोई।
> ब्रह्म बिंदे सो ब्राह्मण होइ।
> जाति का गरब न कर मूरख गावारा।
> इस गरब ते चलहिं बहुत विकारा।
> चारे वरन आखे सभ कोई।
> ब्रह्म बिन्दु ते सभ उपत होई।
> माटी एक सगल संसारा।
> बहु विधि भांडे घडै कुंभारा।
> पंच ततु मिल देही का आकारा
> घट वध को करै विचारा।
> कहित नानक इहु जीव करम बंध होई।
> बिन सति गुरु भेटे मुकति न होई॥

लोग जाति को पहचानते हैं, ज्योति को नहीं पहचानते जिसके सहारे मनुष्य आगे बढ़ता है। गुरु नानक ने कहा—

> जाणहु जोति न पूछहु जाती।
> आगे जाति न है॥

इसी जाति और वर्ण के अभिमान में हर व्यक्ति अपने को ऊँचा और हर किसी दूसरे को अपने से नीचा समझ कर घृणा और फूट के बीज बोता रहता है। गुरु नानक जिस जाति में पैदा हुए थे वह सामाजिक दृष्टि से उच्च और सम्मान्य समझी जाती थी, परन्तु उन्होंने ऊँच-नीच के इन भेदमूलक विचारों को सदा अपने से दूर रखा और अपने विचारों तथा व्यवहार द्वारा जन-जीवन की एकता का सदा प्रतिपादन किया।

कदाचित् उनके जीवनकाल में ही किसी व्यक्ति ने उनकी ऊँची जाति का उन्हें बोध कराने का प्रयास किया हो। जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने अपनी ये प्रसिद्ध पंक्तियां कही हैं—

नीचा अंदरि नीच जाति,
नीची हूँ अति नीच।
नानक तिनके संग साथ,
वडियां सूं क्या रीस॥

और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—जहाँ नीचों को संभाला जाता है, ईश्वर की कृपा-दृष्टि भी वहीं पड़ती है—

जित्थे नीच संभालिअनि,
तित्थै नदरि तेरी बखसीस।

गुरु नानक की ऐक्य-साधना के मार्ग में न कोई ऊँचा था न नीचा, न पुरुष का भेद था न स्त्री का, और न ही हिन्दू और मुसलमान का कोई भेद था। नारी-निन्दकों से उन्होंने कहा—भला उसे बुरा क्यों कहे, जो बड़े-बड़े राजाओं को जन्म देती है—

सो किउं मंदा आखिए, जितु जिम्मैं राजान।

समाज की भावनात्मक एकता के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यह है कि लोग अपना दृष्टि-विस्तार संकुचित कर लेते हैं। अपनी भाषा, अपनी जाति और अपने प्रांत या क्षेत्र के अतिरिक्त और किसी के न तो निकट ही जाते हैं न उनके सम्बन्ध में जानने का कुछ प्रयास ही करते हैं।

उस युग में जब देश की सीमाओं से बाहर जाना, धर्म-भ्रष्ट हो जाना था, गुरु नानक ने तीन-तीन बार विदेशों की यात्रा कर उस धर्म का सन्देश दिया जो व्यक्ति को आत्म-संकोच का नहीं आत्म-विस्तार का मार्ग दिखाता है। जिसकी प्रेरणा से सभी सीमाएँ टूट जाती हैं और वह अपने-आपको चारों ओर फैले हुए जन-जीवन में आत्मसात् कर लेता है। गुरु नानक ने जगन्नाथपुरी के मन्दिर में उस अखण्ड सत्ता की जो अद्भुत आरती की, वह उनकी व्यापक आध्यात्मिक दृष्टि का ज्वलन्त उदाहरण है। उस आरती में भौतिक थाल, धूप, दीप और मोतियों की आवश्यकता नहीं रही, वहां आकाश ही थाल बन गया, सूर्य और चन्द्रमा दीपक बन गए, तारे मोती बने, मलयानिल धूप का काम करने लगी, पवन चंवर डुलाने लगा और सम्पूर्ण वनस्पति ही पूजा के फूल बन गई है—

गगन में थाल रवि चंदु दीपक बने,
तारका मण्डल जनक मोती।
धूपु मलयानलो पवण चवरो करै,
सगल बनराइ फूलन्त जोती।
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती।
अनहता सबद बाजन्त भेरी॥

(पृष्ठ ६७ का शेष)

आत्म-संतोष, औदार्य आदि मानवता के उन्नतिकारक आन्तरिक रूप को अपनाना चाहिए, इस तथ्य का निरूपण उन्होंने बहुत ही विशद रूप में अपने ग्रन्थों में किया।

राष्ट्र की एकता को भावनात्मक दृष्टि से सुदृढ करने के लिए उनका महान् योग-दान था। 'आर्य-भाषा (=हिन्दी) को राष्ट्रभाषा के उच्च आसन पर सुशोभित करना। उनका यह ध्रुव विश्वास था कि केवल हिन्दी भाषा ही ऐसी है, जिससे राष्ट्र को संगठित किया जा सकता है। उन्होंने अपनी मातृभाषा गुजराती एवं शिक्षा-माध्यम संस्कृत को छोड़कर हिन्दी का आँचल पकड़ा। सार्वजनिक क्षेत्र में सेवा करते हुए उनके भाषणों एवं लेखों का माध्यम हिन्दी भाषा ही रही। उनके प्रायः सभी ग्रन्थ हिन्दी में, और वह भी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी में ही है।

उन्होंने आर्य-समाज के जो दस नियम बनाए उनका सार है—सत्य का अन्वेषण, सत्य का अंगीकार और सत्य का निश्छल प्रचार ही हमारे ज्ञान का सबसे बड़ा आधार होना चाहिए। धर्मान्धता कुबुद्धि है। इसे हृदय में कदापि स्थान न दें, बल्कि सत्य का प्रकाशन करते हुए पक्षपात-रहित न्याय को हाथ से न जाने दें। देश-विदेश, उच्च-नीच, अमीर-गरीब के भाव का परित्याग कर मनुष्यमात्र से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा-योग्य बर्ताव करना चाहिए। जब तक हम एक-मति, एक हानि-लाभ, एक सुख-दुःख परस्पर नहीं मानेंगे तब तक सबकी उन्नति होना अत्यन्त कठिन है। उनके शब्द हैं—"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।" भावनात्मक एकता की दृष्टि से यह सन्देश कितना भाव-भरा, हृदयग्राही एवं आचरणीय है।

डा. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

भावनात्मक-एकता और सांस्कृतिक-कार्यक्रम

भावनात्मक एकता का प्रश्न आज इतना महत्त्वपूर्ण है कि हमारे राष्ट्र की समस्त योजनाओं का लक्ष्य उसी के हल की दृष्टि से निर्धारित किया जाता है। धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र भारत की शिक्षा-व्यवस्था में भी आज विशिष्ट परिवर्तन हो रहे हैं और साहित्य में भी यह मांग प्रबल है कि उसे राष्ट्र का साधक होना चाहिए। यही कारण है कि केन्द्रीय-सरकार और प्रान्तीय-सरकारें साहित्य, सङ्गीत, नाटक और ललित-कला अकादमियों के द्वारा इस विशाल देश की बहुमुखी प्रतिभा को एक-सूत्र में पिरो कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रही हैं कि भौगोलिक-इकाई की भांति हमारे यहां भावनात्मक-इकाई भी निरन्तर बनी रही है।

तब प्रश्न यह है कि फिर आज इसको नारा बना कर क्यों बार-बार चिन्तन का विषय बनाया जाता है? क्यों इसके प्रति जागरूकता दिखाई जाती है? क्यों हम नहीं मान लेते कि यह भावनात्मक-एकता हमारे प्राणों में रमी है और हमें इससे कोई वंचित नहीं कर सकता? इन प्रश्नों का एकमात्र उत्तर यह है कि जब से हमारा देश पराधीन हुआ तब से—विशेषकर अंग्रेज़ों के आगमन से उनकी 'भेद करो और शासन करो' की नीति के फलस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य ही नहीं बढ़ा, हिन्दुओं में भी ऊंच-नीच और छोटे-बड़े की भावना घर कर गई। अंग्रेज़ों की कूट-नीति के कुफल हम भोग ही रहे थे कि स्वतन्त्र होने के बाद भाषावार प्रान्त-रचना ने हमारी भावनात्मक-एकता को और भी खण्डित कर दिया। शताब्दियों की दासता के बाद राजनैतिक शक्ति हाथ आई तो संसद और विधान-सभा की कुर्सियों ने सबसे आगे का स्थान प्राप्त किया। उसके लिए जाति और सम्प्रदाय के आधार पर मत प्राप्त करने की जो दौड़ लगी उसने द्वेष और कटुता का ऐसा बीज बो दिया कि स्वार्थपरता के पाश में स्वतन्त्रता-विहंगिनी ही तड़प कर मरने लगी। जिसकी चहक हमारे नेताओं की आत्मा का सङ्गीत थी उस विहङ्गिनी को अपनी ही पद-लोलुपता के कारण मरते देख वे काँप उठे और उन्होंने भावनात्मक-एकता का नारा लगाया। लेकिन नारा तो लगाया, पर दलगत राजनीति के कारण मताधिकार की बुराइयों को दूर नहीं किया गया। जहाँ जिस जाति का बहुमत हो वहाँ उसी जाति के बज्र मूर्ख तक को टिकिट देना आम बात हो गई। इसी प्रकार समाज-द्रोही होने पर भी कोई धनिक पैसे के बल पर विशेष प्रदेश का भाग्य-विधाता बन बैठा। जो जहाँ पहुँचा उसने वहाँ अपनी जाति या प्रान्त के आदमी भरे या भरने की चेष्टा की। परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक-एकता तो रही, पर भावनात्मक-एकता अदृश्य हो गई। दूसरे शब्दों में शरीर प्रमुख हो गया आत्मा मर गई।

इस परिस्थिति में राजनीति से कार्य चलता न देख सांस्कृतिक प्रदर्शनों के आधार पर भावनात्मक-एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया जाने लगा। कहना न होगा कि बड़े दिनों के बाद हमारी समझ में यह आया कि सांस्कृतिक कार्यक्रम हमें बाह्य-विरोध से हटाकर आंतरिक-एकता की ओर ले जाते हैं और वह भी अ-प्रयास। यही कारण है कि सभी प्रकार के सम्मेलनों, विचार-गोष्ठियों, अतिथियों के एकमात्र समारोहों आदि में सांस्कृतिक-कार्यक्रमों की धूम रहती है। भारत में तो प्रतिवर्ष युवक-समारोह आयोजित किया जाता है, जिसमें विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राएं सङ्गीत, नृत्य, नाटक आदि के प्रदर्शन कर प्रांत-विशेष की संस्कृति का परिचय देते हैं और भिन्नता में एकता की अनुभूति कराते हैं।

सांस्कृतिक-कार्यक्रमों में विशेष रूप से सङ्गीत, नृत्य और नाटक का समावेश होता है। सङ्गीत नादाधारित है और स्वर-साधना से जड़-चेतन को

मोहित करने की शक्ति रखता है। इसके कण्ठ और वाद्य दो भेद हैं, लेकिन यह भी ऊपरी है। इसके मूल में भी स्वर की सुधा-धार ही प्रमुख है। नृत्य में मुद्राओं द्वारा भाव-प्रदर्शन की महत्ता है। केवल गति और मुद्राओं से अंतर् के भावों को मूर्त करने की यह कला दर्शकों के हृदय को विभोर कर देती है। नाटक तो आत्माभिव्यक्ति का वह साधन है, जिसके विषय में यह कहा गया है कि ऐसी कोई विधा या कला नहीं; जिसका नाटक में समावेश न हो। उसे 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कह कर और भी ऊँचा उठा दिया गया है। इस प्रकार सङ्गीत, नृत्य और नाटक तो सांस्कृतिक कार्यक्रम के प्रमुख आकर्षण हैं, हमारी आत्मा के तारों को झंकृत करते हैं। कण्ठ-स्वर की भिन्नता सङ्गीत में, अङ्गों की बनावट और उनकी भङ्गिमा नर्तक में और वेशभूषा, सामाजिक परिवेश आदि प्रदेश विशेष के अभिनेताओं में अलग-अलग होते हैं; लेकिन वे जो-कुछ अभिव्यक्त करना चाहते हैं वह सबको समान रूप से प्रभावित करता है। प्रारम्भ में परिलक्षित होने वाली भिन्नता कुछ ही समय में तिरोहित हो जाती है और चाहे सङ्गीत हो, चाहे नृत्य और चाहे नाटक, प्रदर्शन के प्रारम्भ होते ही हमें किसी दूसरे लोक में पहुँचा देता है, जहाँ न वेशभूषा की भिन्नता का अस्तित्व होता है, न खान-पान की और न रहन-सहन की। वहाँ तो हृदय में भावों की मन्दाकिनी की धारा की शीतलता से अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होने लगती है। यदि ऐसा न होता तो क्यों हम बिना भाषा समझे ही इन सांस्कृतिक प्रदर्शनों में रस लेते। सांस्कृतिक-कार्यक्रमों की शक्ति का अनुमान हम तब करते हैं, जब लोक-गीतों और लोक-नृत्यों का चमत्कार देखते हैं। चाहे आदिवासियों का नृत्य हो या भीलों और संथालों का, चाहे नागाओं की टोली की भङ्गिमा हो चाहे सुदूर केरल की लोक-छटा—सब हमें आत्म-विभोर करते हैं। इसका कारण यही है कि ये कलाएँ आत्मा से उद्भूत होती हैं और उसी पर प्रभाव डालती हैं। सारांशतः भावनात्मक-एकता का सबसे बड़ा उपाय ये सांस्कृतिक कार्यक्रम ही हैं।

सांस्कृतिक-कार्यक्रमों की इस शक्ति के होते हुए भी इनमें अनधिकारी व्यक्तियों के प्रवेश से भावनात्मक-एकता को ठेस लगती है। यदि इस ओर से सतर्क रहा जाय तो उद्देश्य की सिद्धि और भी सहजता से हो सकती है। यदि हमारे भावनात्मक एकता के मस्ताने कलाकारों की टोलियाँ इधर से उधर घूमती रहें तो जो कार्य पचास राजनीतिक नेता भी मिलकर नहीं कर सकते या सैकड़ों सम्मेलनों से भी सम्भव नहीं वह अकेले सांस्कृतिक दूतों की ये टोलियाँ कर सकती हैं। हर्ष की बात है कि अब हमारा देश इन कार्यक्रमों की महत्ता अनुभव करने लगा है। यद्यपि अभी रुचि-परिष्कार की आवश्यकता बराबर बनी हुई है। ●

भारत का सन्तान उठो तुम

[श्रीमती शान्ति अग्रवाल]

भारत की सन्तान, उठो तुम।
उन्नति का पथ प्रशस्त करो,
पथ-विघ्न, व्यथाएँ ध्वस्त करो।
भारत का ऊँचा भाल करो,
भारत के प्रिय प्राण! उठो तुम।
भारत की सन्तान, उठो तुम॥

भारत की शक्ति न सोई है,
वह भारत भक्ति न सोई है—
जिसने मृतका में प्राण भरे।
भारत वीर जवान! उठो तुम।
भारत की सन्तान, उठो तुम॥

बहती है शोणित-धार प्रखर,
नस नस में है संचार प्रखर,
हो साहस, शौर्य्य स्वरूप सदा,
भारत के अभिमान, उठो तुम।
भारत की सन्तान, उठो तुम॥

जग में सुख-शांति-लहर भर दो,
कटुता-निशीथिनी-क्षय कर दो।
प्रेम-ज्योति ज्योतित कर गाओ,
शान्ति, सत्य का गान, उठो तुम।
भारत की सन्तान, उठो तुम॥

पतझर में बसन्त सरसा दो,
वनस्थली उद्यान बना लो।
चिर संतापित वसुन्धरा पर
करो स्वर्ग-निर्माण, उठो तुम।
भारत की सन्तान! उठो तुम॥

डॉ. शान्ति मलिक

भावनात्मक एकता और स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द लोकनेताओं एवं कर्मयोगी विचारकों की उस गौरवमयी परम्परा के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं जो भगवान् कृष्ण से महात्मा गाँधी तक चली आई है। एक पथ-प्रदर्शक के रूप में जब वे भारतीय जनता के सामने आए तब देश की परिस्थितियां विकराल रूप धारण कर चुकी थीं। धर्म के तीनों अङ्ग—ज्ञान, कर्म और भक्ति—दूषित हो चुके थे। इनके आन्तरिक रूप को भुला कर बाह्य कर्मकाण्ड को ही प्रमुखता दे दी गई थी। सामाजिक दृष्टि से हीनता की ओर ले जानी वाली प्रथाओं—बाल-विवाह, बहु-विवाह और वृद्ध-विवाह आदि का प्रचलन जोरों से था। जन्मगत जात-पाँत और छुआ-छूत की अनुल्लङ्घ्य दीवारें खड़ी थीं। मतान्धता के कारण धार्मिक सहिष्णुता का अभाव-सा हो चला था, अपने-अपने वर्ग के संकीर्ण क्षेत्रों में सीमित होकर देश के प्राचीन इतिहास, प्राचीन मान-बिन्दु, प्राचीन गौरव, प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को भूलते जा रहे थे और राजनीतितक दृष्टि से देश परतन्त्रता के पाशों में दिनानुदिन आबद्ध होता जा रहा था।

ऐसी विषम परिस्थिति में स्वामी दयानन्द ने देश की भावनात्मक एकता की आधारभूत 'सांस्कृतिक निष्ठा' की प्रबल उद्घोषणा की। उन्हांने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में प्राचीन धर्म, प्राचीन आचार-विचार, प्राचीन शिक्षा-पद्धति, प्राचीन पारिवारिक-सामाजिक एवं राजनीतिक आदर्श आदि विभिन्न रूपों में इसका सुन्दर और सुस्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया।

उन्होंने जातिगत बन्धन एवं अस्पृश्यता के भूत से ऊपर उठ कर यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए, जन्म-मात्र से नहीं। उनका विचार था कि मानवता को जीवित रखने तथा देश की जनता को देश के उत्थान में सहयोगी बनाने के लिए मनुष्य मनुष्य के बीच विषमता और भेद-भाव की दीवार को सदा के लिए दूर करना होगा तथा अस्पृश्यता की बेल का पूर्णतः मूलोच्छेदन।

जिस समय स्वतन्त्रता व स्वराज्य की बात करना आजीवन कारावास भुगतना अथवा भारी संकट आमन्त्रित करना होता था उस समय उन्होंने निर्भीक होकर ओजस्विनी भाषा में पूर्ण स्वराज्य का समर्थन करते हुए सत्यार्थप्रकाश में कहा—"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रह-रहित अपने और पराए का पक्षपात-शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय एवं दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं।"

स्वामी दयानन्द भारत को स्वतन्त्र और स्वाधीन देश के साथ-साथ एक अखण्ड निर्भय समृद्ध एवं वैभवशाली राज्य के रूप में देखना चाहते थे। इसकी सिद्धि के लिए उन्होंने राजनीतिक शक्ति और धार्मिक लक्ष्य की एकता के सद्भाव से तत्कालीन विभिन्न वर्गों और धर्मों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन सन् १८७७ में दिल्ली दरबार के अवसर पर बुलाया। देश के दुर्भाग्य से उनका यह भगीरथ प्रयास सफल न हुआ।

उत्कट राष्ट्रवादी होते हुए भी वे पूर्णतः प्रजातन्त्रवादी थे। उनका निश्चित मत था कि राज्य की सत्ता वंशपरम्परागत एवं एकसत्तात्मक कदापि नहीं होनी चाहिए। अपितु लोकतन्त्रात्मक ढंग से शासन होना चाहिए जिससे जीवन में उन्नति के अवसर सभी को समान रूप से प्राप्त हो सकें।

धार्मिक दृष्टि से हमारी सांस्कृतिक निष्ठा यह रही है कि हम 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' के उपासक रहे हैं। ईश्वर एक है, हम सब उसकी सन्तान हैं। हमें परस्पर मिलकर एक भाव से रहना चाहिए। धर्म के सार्वभौम और मानवमात्र के लिए हितकारी आदर्श को मानना ही उपयुक्त है। मत-मतान्तरों के विभिन्न बाह्य रूपों में न उलझ कर सत्य, प्रेम, अहिंसा, दया,

(शेष पृष्ठ ६४ पर)

प्रा. विष्णुकुमार गर्ग

अर्थशास्त्र एवं भावनात्मक एकता

अर्थशास्त्र एवं भावनात्मक एकता प्रथम दृष्टि में एक विरोधात्मक कथन प्रतीत होता है, क्योंकि अर्थशास्त्र का जो रूप आज हमारे सम्मुख है, उसे देख कर इस बात की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती, कि इन दो बातों में किसी प्रकार का सामञ्जस्य भी हो सकता है। जीवन की विविधताओं एवं भौतिकवादी वातावरण से मनुष्य का दृष्टिकोण इतना सङ्कीर्ण तथा संकुचित हो गया है कि उसको इस सम्बन्ध में विचार करने का अवसर ही नहीं मिल पाता।

अर्थशास्त्र को मानव की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित विज्ञान कहा जाता है। यह अध्ययन करता है कि मनुष्य अपनी असंख्य आवश्यकताओं की पूर्ति-हेतु किस प्रकार आर्थिक साधनों को एकत्रित करता है और किस प्रकार से विवेकपूर्ण ढङ्ग से उनका उपयोग कर अधिकतम सन्तुष्टि उपार्जित करता है। इस प्रकार की विचारधारा का प्रभाव आगे आने वाले समय में यह हुआ कि मनुष्य से भी अधिक महत्त्व धन को दिया जाने लगा। धन मनुष्य के लिए न रह कर उसका स्वामी बन बैठा।

समय-परिवर्तन तथा मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन ने इस विचार-धारा का खण्डन किया, स्वप्निल मानव को अर्धतन्द्रावस्था से जगा कर सचेष्ट किया और तभी अर्थशास्त्रियों का ध्यान अनायास ही इस ओर आकर्षित हो सका कि अर्थशास्त्र का उद्देश्य धनोपार्जन ही नहीं, अपितु मानव-कल्याण है। सर्वोपरि महत्त्व मानव को दिया जाना चाहिए। धन तो एक साधन है जो मनुष्य को अपने जीवन में सुगमता के साथ अग्रसर होने में सहायक होता है।

एक ओर तो विचारक इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि अर्थशास्त्री अपने अनुभवों, नवीन अनुसन्धानों तथा परीक्षणों के आधार पर मनुष्य का मार्ग-दर्शन करे, ताकि वह अधिकाधिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त कर सके, उसके आनन्द और सन्तोष की मात्रा में अभिवृद्धि हो सके। वह सांसारिक वातावरण में रह कर न्यायोचित ढङ्ग से जीवन निर्वाह कर, आत्मानुभूति और मानसिक शान्ति प्राप्त करने में सफल हो सके। लेकिन दूसरी ओर ऐसे भी विरोधी विचारक हैं जो अर्थशास्त्री को इस प्रकार का अधिकार भी नहीं देना चाहते कि वह किसी प्रकार के सुझाव एवं सलाह, किसी समस्या के सम्बन्ध में प्रस्तुत कर सके। ऐसी अवस्था में मनुष्य का जीवन इन समस्याओं में इस प्रकार उलझ जाता है कि उससे उन्मुक्त होने का कोई उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता।

आज सभी देश आर्थिक-प्रगति की दौड़ में एक-दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। दिन-प्रतिदिन होने वाले वैज्ञानिक अन्वेषण, औद्योगिक संस्थानों की स्थापना, तीव्रगति से बढ़ते हुए यातायात और सम्वाद-वाहन के साधन, आखिर इन सबका उद्देश्य क्या है? यही तो, मानव को समृद्ध और सुखी बनाना, उसके लिए सुविधा-जनक उत्पादन-प्रणालियों को प्रस्तुत करना। लेकिन क्या इससे मानव सुखी हो सकेगा? क्या ऐश्वर्य, वैभव और भौतिकता की भूख उसकी मानसिक और आत्मिक शांति की क्षुधा को तृप्त कर सकेगी? क्या अपने-आपको वह अधिक सभ्य और सुसंस्कृत कहने का गौरव प्राप्त कर सकेगा? इसका उत्तर मनुष्य को उस समय मिलता है, जब भोग और विलास की सामग्रियों से उसका जीवन जर्जरित हो जाता है, दुनिया के स्नेह एवं सहानुभूति, निष्कपट हृदय की कोमल भावनाओं को प्राप्त करने के लिए वह लालायित रहता है, लेकिन होती है उसके समीप मृत्यु, जिससे कि उसका भौतिकवादी वातावरण उसे उन्मुक्त कराने में सर्वथा असमर्थ रहता है।

हम, अब योजनात्मक विकास के आधार पर मनुष्य को अधिक सुखी बनाने का उपक्रम कर रहे हैं। आर्थिक-नियोजन की विधि द्वारा विभिन्न साधनों को उनकी महत्ता के अनुसार प्राथमिकता प्रदान करके, विवेकपूर्ण ढङ्ग से उनका विदोहन किया जा रहा है। हम उद्यत हैं एक समाजवादी समाज की स्थापना करने में, जहाँ सभी व्यक्तियों को आर्थोपार्जन-साधनों के उपयोग के समान अधिकार प्रदान किए जाएंगे।

लेकिन वास्तविकता इससे कोसों दूर है। अभी भी धन और वृत्ति की प्राप्ति के अवसरों में इतनी बड़ी असमानता की खाई विद्यमान है, जिसे भरना आज के मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर की बात है। धनी अधिक धनी होते जा रहे हैं तथा निर्धनों की दशा दिनोत्तर बिगड़ती हुई चली जा रही है। निर्धनता, बेकारी, निर्बलता ने उसकी सोचने-समझने की शक्ति को भी क्षीण कर दिया है। आज दीनता देवी का नग्न-नृत्य देखकर भी उन व्यक्तियों का सिर लज्जा से नहीं झुक पाता जो ऐसी देवी के आराधकों को दिन-रात लूटने में निमग्न है। उनको तभी इस अवस्था के कष्टों का आभास हो सकता है, जब कि एक दिन सपरिवार उपवास कर, शीतकालीन रात्रि के ठिठुरते वातावरण में निर्वस्त्र सोकर, प्रातः अपने अनुभवों को व्यक्त करें, तब उन्हें यह अनुभव होगा कि जिन् व्यक्तियों को नित्यप्रति ही इस अवस्था में रहना पड़ता है, उनकी क्या दशा होती होगी। लेकिन यह सब जानते हुए भी हम इसके लिए क्या व्यवस्था कर रहे हैं।

जब तक एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की भावनाओं को नहीं समझ पाता, उसकी विपत्ति, पारिवारिक कष्टों और जीवन-निर्वाह सम्बन्धी समस्याओं से अवगत नहीं हो पाता, सभी आर्थिक प्रगति अर्थ-हीन है, निरुद्देश्य है। अर्थशास्त्र जिस 'अधिकतम मानव-कल्याण' की आधारशिला पर टिका हुआ है, वह धराध्वस्त होकर अस्तित्वहीन हो जाएगा, यह एक मानव-उपयोगी विज्ञान न रहकर, उसके लिए एक कष्ट का कारण बन जाएगा। इसके लिए यह आवश्यक होगा, कि मनुष्य अपनी स्वार्थपरता की प्रवृत्ति को त्याग कर, समस्त समाज और समष्टि के दुःख और समस्याओं को स्वयं के कष्ट और समस्या के रूप में स्वीकार कर, उनके समाधनार्थ उचित प्रयत्न करें। अपने आदर्श और दृढ संकल्प के आधार पर वह समस्त मानव जाति को कष्टों के बन्धन से उन्मुक्त करा कर उसका पुनरुद्धार कर सकता है, और इसके लिए उसे मानव-हृदय की गहराइयों में बैठकर, उसकी संवेदना, सहिष्णुता और भावुकता का अवलोकन करना होगा, अपनी स्वार्थ की भावना का उत्सर्ग जन-साधारण के लिए करना होगा।

हमको अब अर्थशास्त्र के विकृत रूप को सुधार कर, उसे एक लोक-उपयोगी विज्ञान बनाना है। आर्थिक साधनों में वृद्धि के साथ-ही-साथ, मनुष्य को मानसिक और आत्मिक शान्ति प्रदान करने के लिए भी व्यवस्था करनी है। मनुष्यों के बीच जो वैमनस्य, द्वेष, कपट, ईर्ष्या और प्रतिरोध की भावना है, उसे दूर कर, उनमें सहयोग, सहानुभूति, मित्रता के भावों का संचार करना है। लेकिन यह सब किस प्रकार सम्भव हो सकता है? इसके लिए अनवरत प्रयास की आवश्यकता है, स्वहित की भावना को त्याग कर विश्व-बन्धुत्व के विचार का अनुसरण करना है। यह कोई नवीन विचार नहीं है, हमारा साहित्य और हमारी संस्कृति इसका प्रतीक है। प्रकृति ने आरम्भ से किसी को बड़ा और छोटा नहीं बनाया, यह कृत्रिम आवरण तो मनुष्यकृत है, जिसका अनावरण कर हमें बहुरूपता के बीच छिपी हुई एकरूपता का अवलोकन करना है। जब यह ऊँच-नीच, बड़े और छोटे, धनी और निर्धन का भेद दूर हो जावेगा, तो हमारी अनेक आर्थिक समस्याएँ स्वतः ही सुलझ जाएँगीं।

यदि सुबह का भूला सन्ध्या को भी घर लौट आए तो उसे भूला नहीं कहा जा सकता। यह मानते हैं, कि आज समस्त मानव-जाति का बड़ा अधःपतन हो गया है, उसका नैतिक स्तर गिर गया है, उसकी कर्मण्यवादिता उसकी अक्षमता के रूप में परिवर्तित हो गई है, और यदि यही गति रही तो संभव है, कि मानवता समूलतः नष्ट हो जाय। क्योंकि अब शोषण समाज और देश तक ही सीमित न रहकर, अन्तरराष्ट्रीय हो गया है, जो अन्त में युद्ध की विभीषिका में मानव-जाति को ही निगल जाएगा। अब भी समय है कि व्यक्ति सचेष्ट होकर, दृढ-संकल्प और सहयोग की भावना को लेकर आगे बढ़े। जिस प्रकार संगीत के विविध स्वरों से मिलकर, एक मधुर राग का सृजन होता है, उसी प्रकार मानव-हृदयों को ऐक्य भावना के सूत्र में बाँधकर सुख और आत्मिक शान्ति का प्रादुर्भाव हो सकता है।

इस समय सबसे बड़ी चीज़ जिसकी कि हमें आवश्यकता है वह है, मनुष्य जाति का गौरवान्वित चरित्र, अडिग विश्वास, विवेकशीलता, विकसित दृष्टिकोण, सहिष्णुता और इससे भी बढ़कर एक-दूसरे के प्रति आत्मिक स्नेह। यदि हम इस प्रकार के उद्देश्य और भावना को लेकर आगे बढ़ते हैं, तो अवश्य ही हमको इसमें सफलता मिलेगी। ●

श्री शम्भुनाथ बलियासे 'मुकुल'

सन्ताली गीतों में भावनात्मक एकता

आदिवासियों की संख्या हमारे देश में कम नहीं; लगभग अढाई करोड़ है, जो विभिन्न स्थानों में संताल, मुंडा, हो, उरांव, खैरिया, काले, भील, पहाडिया आदि नामों से पुकारे जाते हैं। इनकी बोलियां अलग-अलग हैं, किन्तु सभी बोलियों में हज़ारों-हज़ार लोकगीत प्रचलित हैं, जो इनके रस्मो-रिवाज़, संस्कृति, धर्म-कर्म आदि की मान्यताओं पर बड़ी खूबी के साथ प्रकाश डालते हैं। यहाँ मैं आदिवासियों की एक जाति 'सन्ताल', जो बिहार के सन्ताल परगना जिले में विशेषतः रहती है, के गीतों को प्रस्तुत कर उनकी राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के उद्गार आपके सामने रखने का प्रयास कर रहा हूं।

सन्ताली पूर्वी-भारत में रहने वाली सभी जन-जातियों में अधिक जनसंख्या वाले हैं। यों सारे देश में इनकी आबादी लगभग तीस लाख है। बिहार, बङ्गाल, उड़ीसा और असम के विभिन्न स्थानों में इस जाति के लोग रहते हैं। सन्ताल परगना में इनकी जनसंख्या और स्थानों से अधिक है। जन-गणना के आधार पर सन्ताल परगना में पूरी आबादी के ३४ प्रतिशत संताल लोग ही हैं।

इनकी प्रकृति और रुचि के सम्बन्ध में एक नृतत्त्ववेत्ता का मत है कि ये प्रकृति की रङ्गस्थली में वास करते हैं जहाँ लहरदार पृष्ठभूमि वाली घाटियों, को गोद में लिए पहाड़, विचित्र फूलों और पशु-पक्षियों से घिरे जङ्गल, चट्टानों की गोद में उछलते-कूदते निर्झर, आकाश में घिरे हुए बादल और क्षितिज को सँवारने वाले सन्ध्या-प्रभात दृष्टि के आगे एक चित्रात्मक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। ये लोग कृष्ण वर्ण, मध्यम क़द के, दीर्घ से लेकर प्रशस्त कपाल तथा मध्यम आकार की नाक वाले होते हैं। सीलोन की 'बड्डा' जन-जाति तथा आस्ट्रेलिया के मूल-निवासियों से तुलना करने पर इनमें बहुत साम्य मिलता है। कपाल, मुख के आकार तथा केश और चमड़े के रङ्ग-रूप बहुत अधिक मिलते-जुलते हैं। सम्भवतः ये कभी एक परिवार के रहे होंगे।

भारत के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय-भावनात्मक एकता की आवश्यकता अनुभव करते हुए देशवासियों को सामाजिक-सन्देश में कहा था कि—"कोई भी मुल्क, जो आज़ाद है, और आज़ाद रहना चाहता है वह अपने मुल्क की हिफ़ाज़त को सबसे आगे अमल में रखता है। इस बारे में हर हिन्दुस्तानी की एक ही राय होनी चाहिए कि उसको मिल कर चलना है, मिल कर कार्य करना है। उसके सामने यही उद्देश्य है कि मुल्क की एकता इस वक्त सब से ज़्यादा ज़रूरी है।"

श्री नेहरू की भावना को सन्ताल अपने गीतों के माध्यम से किस तरह व्यक्त करते हैं। जहाँ नेहरू जी देश के लोगों को तैयार रहने के लिए चेतावनी देते हुए आग्रह करते हैं वहाँ हमारे सन्ताल लोग कहते हैं कि—

आबो दिसाम दो भारोत दिसाम
बारो छातिक जात मेनाक बोना
आबो दिसम रे मुहिक पोडावेना मेनखान
जोतो कोतेबो तेंगोदाराम।

—भारत हम लोगों का देश है। इसमें अनेक जातियों के लोग रहते हैं। लेकिन देश पर जब किसी प्रकार की विपत्ति आती है तब हम एक हो जाते हैं। एक-साथ मिल कर विपत्ति का मुकाबला करने के लिए तैयार रहते हैं बल्कि अपने देश की रक्षा के लिए हम मर-मिटने को बराबर तैयार रहते हैं।

इस दिशा में आज सभी श्री नेहरू की ही तरह सोचने लगे हैं कि देश की राष्ट्रीय भावनात्मक एकता छिन्न-भिन्न हो गई है, जो बड़ा ही खतरनाक है। हमारे सन्ताल लोग भी ठीक ऐसा ही सोचते हैं। वे इस विषय पर सोचने के क्रम में बे-हिचक इसे स्वीकार करते हैं कि हम भिन्न-भिन्न विचारों को रखते हैं। उनका कहना है कि विचारों में भिन्नता हो, आचरण

में भी भिन्नता हो तो कोई बात नहीं, किन्तु जहाँ राष्ट्र का प्रश्न सामने आए वहाँ हम में भावनात्मक एकता आनी ही चाहिए। भावनात्मक एकता आने से भी हम लोग एक साथ शांति-पूर्वक रह सकते हैं। वे कहते हैं—

हिन्दू, मुस्लिम हो, सिख-ईसाई
जो तो कान गेया बोन चालो हो पोन
बाबोन लड़हाइया सलुफ तेबोन ताहेना—
दिसाम ताबोन हाराय ताबोन।

—इस देश में हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई अनेक धर्मों के मानने वाले लोग रहते हैं, पर सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं। अतः हम लोग आपसी लड़ाई-झगड़े को त्याग कर शांति से रहें। शांति-पूर्वक मिल-जुल कर रहने से हमारा देश भी उन्नति करेगा।

सन्ताल जाति के लोग राष्ट्रीयता के कट्टर समर्थक होते हैं। इन्हें गुलामी कभी पसन्द नहीं पड़ी। अंग्रेज़ों ने स्थानीय महाजनों के माध्यम से जब इन्हें परेशान करना आरम्भ किया—इनके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाई, तब ये क्रोध से आग-बबूला हो गए और आव देखा न ताव, बाँसुरी छोड़ हाथों में तीर-धनुष ले बन्दूकों का मुकाबला करने एक साथ दौड़ पड़े। ऐसे समय जब दुश्मनों का मुकाबला करना होता है ये बड़े ज़ोरदार शब्दों में गीतों के द्वारा अपने लोगों, अर्थात् देश के लोगों को ललकारते हुए कहने लगते हैं—

बेरेतपेसे बोहाय एभे नोक्पे
मुहिम रे मेनाक् आ आबो दिसाम
जो तो बोयहयबौ ञित् मोतोक्।—
बा बोन बोलो ओचोवाक् आ मुहिम वोरे!

—ऐ देशवासियो! उठो, जागो। देखो देश पर सङ्कट आ गया है। आलस को त्यागो और सङ्कट का मुकाबला करने के लिए कमर कसो। देश के सभी आदमी एकमत होकर सङ्कट का मुकाबला करें तथा सङ्कट को दूर करें।

इस सम्बन्ध में एक नायक, जो देश के सङ्कट को देखकर रक्षार्थ जाने को तैयार होता है वह वातावरण को अनुकूल बनाने के लिए किस प्रकार की बातें अपनी नायिका के सामने रखता है, देखिए। वह कहता है—

जोनोम जायगारे, तोवा दारे रे,
सुकदो सुरुजमुनी, सोरोस गेया
धरती पुरीखोन, सेरमा पुरी खोन
सुक दो सुरुजमुनी सोरोस गेया।

—सुरुजमुनी! अपनी मातृभूमि में, माँ की गोद में सबसे अधिक सुख मिलता है, यहां तक कि स्वर्ग से भी अधिक। तुम इसे समझो कि यह सुख सर्वश्रेष्ठ है।

सिर्फ इतना ही नहीं। समझाने के इस क्रम में आगे वह और स्पष्ट करते हुए कहता है कि—

जोनो जायगा रेयाक चेहोर बेहोर
एटाक दिसाम खोन सोरोस गेया
जोम ञूहोय मा दाक सोरोस गेया
सुक दो सुरुजमुनी सोरोस गेया

सुरुजमुनी! इसे निश्चित समझो कि मातृभूमि का हास-विलास दूसरे देश के हास-विलास से श्रेष्ठ है। यहाँ का खान, पान, हवा, पानी सब-कुछ श्रेष्ठ है। यहाँ के सुख के समान कहीं का सुख नहीं है।

वह इतना समझाने के बाद भी जब नायिका को अनुमति देते नहीं देखता है तब उसे कुछ खीझ मालूम पड़ती है और वह फिर एक बार मीठे शब्दों में तर्क उपस्थित करते हुए कहता है कि—

ञेल बुरु ञेल काराम मानाञ मेहो मैरी-
दिसाम भलई कामी रे वो आलोम मानाञा
हापडी पौर! ञूरेदो मानाञ मेहोमैरी
वौरी लागा ञिरे रेदी आलोम मानाञा

—तुम चाहो तो मेला-ठेला जाने से मुझे रोको, लेकिन देश की भलाई के कामों में मत रोको। तुम चाहो तो शराब पीने से 'हँड़िया' पीने से भी मुझे रोक सकती हो, लेकिन देश की रक्षा के लिए युद्ध में जाने से मुझे मत रोको।

यह मान लेने की बात है कि संतालों के इन गीतों में उनकी आत्मा बोलती है, जो यह बतलाती है कि उनमें राष्ट्रीय भावनात्मक एकता कूट-कूट कर भरी हुई है। देश पर आए संकट के समय सर्वसम्पन्न शत्रुओं के मुकाबले अपने को अस्त्र-शस्त्रहीन देखकर

जब एक व्यक्ति यह कहता है कि—

देशरेदो दिसामरेदो, दिसाम याकीरेपेच
चेका तेलाङ रोका रुवाड़ा
बाबुक् तालाङ खाण्डा भिरी—
चेका तेलाङ रोका रु वाड़ा

—देश में लड़ाई हो रही है लेकिन अफसोस हमारे पास शत्रुओं के मुकाबले के लिए साधन नहीं है। ढाल-तलवार भी नहीं। किस तरह शत्रुओं का मुकाबला किया जाए ?

ठीक उसी समय ऐसे कथन के उत्तर में दूसरा संताल देश-प्रेमी कह उठता है कि इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं और न उसका अब समय ही रह गया है। चलो चलें, जो भी साधन है उसी को लेकर हम युद्ध के मैदान में दौड़ चलें। हम और लड़ने वाले अपने देशवासियों के साथ तो होंगे ? साथ-साथ रहने से उनका साहस दूना हो जायगा। अस्तु, चलो अपने टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्रों को लेकर ही हम देश-रक्षा के लिए चल पड़ें।

आलो दादाम रागा से
आलो दादाम होमोरा
भेनाक् तालाङ खेरचोकापी
मेनाक् तालङ पिलचू टेंगोच्
आक् सार गोड़ो तेलाङ
रोका सपाड़ा।

—इसके लिए चिन्ता करने या रोने-धोने से कोई फायदा होने वाला नहीं है। हम लोगों के पास टूटी हुई फरसा और कुल्हाड़ी तो है। तीर और धनुष तो है। चलो हम लोग इन्हीं को लेकर शत्रु का मुकाबला करने चलें। हम जरूर विजयी होंगे।

सिर्फ इतना ही नहीं, शत्रुओं को मुकाबले के लिए ये लोग जब अपने टूटे-फूटे अस्त्रों को लेकर युद्ध-स्थल में जाते हैं तब वहां की भयंकरता देखकर दंग रह जाते हैं। मशीनों एवं बन्दूकों से दनादन गोलियां चलती हैं। तीर-धनुष, फरसा और टूटी कुल्हाड़ी से दनादन छूट रही गोलियों का मुकाबला कैसे किया जाय ? अस्तु, वे ठिठक जाते हैं। भाग जाना चाहते हैं युद्ध के मैदान से पीठ दिखाकर—देश को पराधीन होने के लिए छोड़कर।

अपने साथियों की इस मानसिक स्थिति को उसका एक साथी समझ जाता है और डांटते हुए कह बैठता है कि खबरदार, यदि तुम लोगों ने ऐसा किया तो देश पराधीन हो जायगा। देश पर, संताल जाति पर, भारतीय मानव पर कलंक लग जायगा, इसलिए जाति के सर पर की पगड़ी को नीचे मत गिरने दो। वह अपने साथी को ललकारते हुए कहता है कि—

होड़मो खाञ्चा तिसु नोक्ताम,
जिवी मिरुप उड़ा उकताम,
जोनोम दिसाम दुलाड़ तेत दो आलोक छाड़ावा
बंदूक गूली बोतोर तेदो बैरो सामाङ रे
बोहोक रेयाक् दाहड़ी भाइरे
आलोम अुरहाफतामा।

—देश-रक्षा के समय बन्दूक की गोलियों से मत डरो, क्योंकि देश-प्रेम के सामने यह नश्वर शरीर व्यर्थ है। खबरदार सर पर की पगड़ी नीचे मत गिरने दो।

इस सिलसिले में इतना ही कहकर वह चुप नहीं रह जाता है। वह उन्हें इतस्ततः करते देख पुनः कहता है कि—

जोनोम दिसाम बाञ्चाव लागित्
आलायोक् आञ जिवी हाविच्
हुविस इदाञ मानवा जोनोम्
बेर था गेया मानबे गोर।

—अपनी मातृभूमि की रक्षा नहीं कर सके उसके काम में अपने को नहीं लगा सके, तो तुम्हारा यह मानव-शरीर व्यर्थ है। तुम्हारा जीना बेकार है। क्योंकि देश की मान-मर्यादा ही अपनी मान-मर्यादा है। और तब उसके साथी लोग भाव-विभोर हो जाते हैं तथा उत्तेजित हो जान को हथेली पर लेकर जूझ जाते हैं तथा कह उठते हैं कि—

जिवी चालाक चुंपी चालाक्
बोहोक् अुरोक् मायाम आतुक्
धीन चालाक दुरीब चाबाक्
बाबोन पाचाक लड़हाइ खोनाम्।

—लड़ाई से यानी युद्ध के मैदान से हम लोग पीछे नहीं हटेंगे, चाहे लड़ते-लड़ते प्राण ही क्यों न चला जाय। लड़ने में सर कट जाय तो कट जाय, खून की नदियाँ बह जाएँ तो बह जाएँ, किन्तु हम लड़ना नहीं

छोड़ेंगे। इसके लिए जो भी बलिदान करना पड़े करेंगे, किन्तु मैदान छोड़कर नहीं हटेंगे।

दूसरे साथी उनकी ऐसी बातें सुनकर जोश में आ जाते हैं और वे कह उठते हैं हम बराबर आगे बढ़ते जाएँगे। शरीर तो नाशवान् है ही। इसका मोह करना व्यर्थ है। जब तक खून का एक कतरा शरीर में शेष रहेगा मातृभूमि की अर्चना में उसे अर्घ्य के रूप में चढ़ाते ही रहेंगे। देश के लिए बलिदान की ऐसी भावना व्यक्त करने वाले बहादुर जाति के लिए भला पिछड़े हुए या असभ्य शब्द का प्रयोग किया जाना कहाँ तक सही है? उनके उद्गार उनके शब्दों में ही सुनिए—

लाहाक् आलाङ बैरी विरुद
होड़मो मायाङ औरी चाबाक् हाविच्
बालाङ थिरुक् उनहाविच्
बैरी बालाङ भागावकोहाविच्
—हम शत्रुओं के विरुद्ध आगे बढ़ते जाएँगे। जब तक शरीर में खून का एक कतरा भी रहेगा हम लड़ते रहेंगे। चुपचाप बैठे नहीं रहेंगे जब तक शत्रुओं पर विजय नहीं पा लेंगे।

श्री डोमन साहु 'समीर' जो संताली भाषा और संस्कृति के अनन्य विद्वान् माने जाते हैं, उन्होंने रांची में आयोजित सांस्कृतिक एवं शोध-परिषद् के सेमिनार में पठित अपने एक निबन्ध में संतालों के सम्बन्ध में ठीक ही कहा—"संताल समाज की रचना वस्तुतः पारस्परिक सहयोगिता के आधार पर ही हुई है। सच पूछें तो सहयोगात्मक आदर्श इनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है। खेती करना हो या शिकार करना, मछली मारना हो या घर छाना, पूजा-पाठ करना हो या नाच-गान करना, जन्म-संस्कार हो या मृत्यु-संस्कार सभी जगह सहयोगिता के आधार पर ही काम लिया जाता है। यही कारण है कि इनके सभी त्योहार सामूहिक हैं। सभी नृत्य समवेत हैं तथा किसी एक के जन्म या मृत्यु पर सारे गाँव में छूतक (अशौच) माना जाता है।

सारा जग परिवार है

[श्री कन्हैयालाल पाराशर]

सारी धरती अपनी जननी सारा जग परिवार है।
सुख से जीवन-भर जीने का सब को सम अधिकार है॥

बड़ी-बड़ी उत्ताल तरंगें, लघु लहरें और बुलबुले।
नाम हैं न्यारे, पर हैं सारे पानी के आकार रे॥

आत्म-तत्त्व है एक ही जिसका घट-घट में विस्तार है।
सारी धरती अपनी जननी सारा जग परिवार है॥

एक विशाल वृक्ष पर आकर ज्यों अनेक पंछी रहते।
अलग-अलग हैं नीड सभी के पर सुख-दुख सब मिल सहते

इसी भांति हम सब का भी यह ठौर बना संसार है।
सारी धरती अपनी जननी सारा जग परिवार है॥

सभी धर्म अच्छे हैं सबका सदाचार ही मूल है।
फिर "हम अच्छे बुरे दूरे" कहना भारी भूल है॥

'जियो और जीने दो सबको' यही धर्म का सार है।
सारी धरती अपनी जननी सारा जग परिवार है॥

जो अपना ही उदर भरे चिन्ता न करे कुछ और की।
कैसे मनुज कहें उसको जब सभी वृत्तियां चोर की॥

भरे पेट पर संग्रह करना केवल भ्रष्टाचार है।
सारी धरती अपनी जननी सारा जग परिवार हैं॥

ईश्वर ने तो मनुज मात्र की एक ही जाति बनाई।
ऊंच-नीच के क्षुद्र भाव की मत खोदो तुम खाई॥

मानव-मानव में भेद समझना अच्छा नहीं विचार है।
सारी धरती अपनी जननी सारा जग परिवार है॥

❀ ❀ ❀

श्री उदयवीर शास्त्री

भावनात्मक एकता—दार्शनिक चिन्तन

एकता और उसका आधार—

'भाव' या 'भावना' ये पद एक ही अर्थ को कहते हैं, जिसका सम्बन्ध अन्तरात्मा से है। मोटे शब्दों में इसे 'विचार' कह दिया जाय, तो कुछ अनुपयुक्त न होगा। यह शब्द सर्वसाधारण की समझ में आता है; तो 'भावात्मक' या 'भावनात्मक' एकता का अर्थ हुआ—विचारों की एकता। विचार के क्षेत्र या आधार अनेक हैं, वह सदा किसी 'विषय' पर सवार रहता है। वही उसका क्षेत्र है। यद्यपि 'विचार' मानव की बपौती समझा जाता है, पर जहां तक साधारण अनुकूलता-प्रतिकूलता का प्रश्न है, इसका कुछ अंश प्राणिमात्र में देखा जाता है, भय का अनुभव और उसके प्रतीकार की भावना प्राणिमात्र में रहती है। व्यक्तिगत रूप से चाहे यह प्रत्येक प्राणी में भले रहे, पर आश्चर्य की बात है, कि कहीं तिर्यक् प्राणियों में यह भावना सामूहिक रूप में देखी जाती है। इसका आधार भय और उससे अपनी रक्षा करना, तथा जीवन-निर्वाह का साधन जुटाना है। इससे एक सूत्र निकलता है—संसार में जीना और अपने-आपको सुरक्षित रखना, भावनात्मक एकता का आधार है।

एकता और मानव-समाज—

मानव-समाज में यह विचार बहुमुखी होकर प्रवाहित हुआ है, जीवित वर्ग में मानव सर्वोच्च प्राणी है, अत्यन्त प्रतिभाशाली। संसार की समस्त विभूतियां इसी के लिए हैं, अपनी प्रतिभा से पार्थिव ऐश्वर्यों पर इसने आधिपत्य जमाया है। यह भावना जितना अधिक विस्तार पाती है, संघर्ष उतना ही अधिक उभर कर ज्वाला की तरह ऊपर आता है। भय और सुरक्षा की भावना के पीछे बैठा स्वार्थ इनको सुलगाया करता है। जहां स्वार्थ की समानता रहती है, वहां भावनात्मक एकता अंकुरित हो आती है। कल्पना कीजिए, दस, बीस, पचास, सौ, पांच सौ, हज़ार व्यक्तियों ने मिलकर एक व्यवसाय-कार्यक्रम चालू किया। जिन व्यक्तियों का उस व्यवसाय से सीधा सम्बन्ध है, उनकी एकमात्र भावना यही रहती है, इससे उनको लाभ हो, यदि यहां परस्पर उनका कोई क्षुद्र स्वार्थ नहीं टकराता, तो वे सब मिलकर लाभ का उपाय सोचते हैं, उस दिशा में उनका एक विचार है, एक लक्ष्य है, एक कार्यक्रम है, सब कन्धे-से-कन्धा मिलाकर लक्ष्य को पूरा करने में परिश्रम करते हैं। जिन व्यक्तियों को उस कार्यक्रम से सुविधा पहुँची है, उनकी कुछ बाधाओं का निवारण होता है, कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, वे उस कार्यक्रम के सहयोगी हैं। कार्यक्रम के संचालक-वर्ग के पीछे उनका बल है। वे चाहते हैं, उनकी सुविधा बनी रहे, उनकी आवश्यकता की पूर्ति होती रहे। वे उस कार्यक्रम में आने वाली बाधाओं को सहन नहीं करेंगे। यह 'भावनात्मक एकता' का क्षेत्र बढ़ गया, यद्यपि उनका उद्देश्य भिन्न है, एक लाभ चाहता है, दूसरा सुविधा और आवश्यकता की पूर्ति। यह एकता चलती रहेगी तब तक; जब तक इनमें कोई टकराव नहीं होता। टकराव का अवसर आता है।

एक व्यवसाय में किसी वर्ग को आकर्षक लाभ होता देख, लोभ सिर उठाता है। उससे अभिभूत होकर दूसरा समुदाय उसी व्यवसाय को पहले वर्ग की प्रतिद्वन्द्विता में खड़ा कर देता है। संघर्ष चालू हो गया, यह टकराव उस समय उग्र रूप धारण करता है, जब सहयोगी वर्ग देखता है, कि माल वैसा ही आ रहा है, पर दाम एक जगह कुछ कम हैं, वह उधर को झुक जाता है। यह टकराव यदि दोनों व्यवसाय-वर्गों का पारस्परिक सहयोग होकर समाप्त होता है, तो वह मिलकर सहयोगी वर्ग (जनता-भोक्ता) को खाता है; यदि ऐसा नहीं होगा, तो जनता दोनों में से एक को बैठा देती है। यहां आकर 'भावनात्मक एकता' का क्षेत्र बदल जाता है। यदि दोनों व्यवसाय-वर्ग एक राष्ट्र के हैं, तो पहली बात अधिक सम्भव है, यदि भिन्न राष्ट्रों के हैं, तो दूसरी बात की अधिक संभावना रहती है। यहां फिर 'भावनात्मक एकता' का क्षेत्र बदलता है। एक राष्ट्र की जनता अपने राष्ट्र के उत्पादन को

अनेक अवस्थाओं में निम्न स्तर का रहने पर भी अधिक मूल्य देकर लेने को तैयार रहती है। यहां एकता का लक्ष्य राष्ट्र है, इस भावना में अपने स्वार्थ की कुछ उपेक्षा हो जाती है, राष्ट्रीय स्वार्थ उभर आता है। स्वार्थ होते हुए भी उसका क्षेत्र विशाल है, उसमें कुछ त्याग की एवं उदारता की भावना अन्तर्निहित है, इसलिए वह प्रशस्य है, एकता की भावना का क्षेत्र जितना अधिक विशाल होगा, उतना अधिक प्रशस्य, क्योंकि उसमें त्याग विस्तृत और स्वार्थ संकुचित हो जाता है। जब स्वार्थ समस्त राष्ट्र में बदल जाता है, तो मानो वह अपना अस्तित्व ही खो बैठता है। स्वार्थ का संकोच एकता के क्षेत्र को विशाल बनाता है, इस आशय को एक नीतिकार ने इस प्रकार प्रकट किया है—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

यदि कुल की रक्षा के लिए एक व्यक्ति का परित्याग करना पड़े, तो कुल की रक्षा करना अच्छा है। यदि पूरे ग्राम की रक्षा के लिए एक कुल का त्याग करना पड़े, तो ग्राम की रक्षा करना श्रेष्ठ है। यदि समस्त जन-पद (राष्ट्र) की रक्षा के लिए कोई एक ग्राम जाता है, तो उसे जाने दे; जन-पद की रक्षा करे। इस व्यवस्था में 'बहुजनहिताय', 'बहुजनसुखाय' की भावना निहित है। श्लोक के चतुर्थ चरण में जो बात कही है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसमें कहा गया है, कि 'आत्मा' की रक्षा के लिए पृथिवी तक का त्याग कर दे। आत्मा की रक्षा क्या? आत्मा का हनन न होने देना। यह स्थिति 'भूमिगत' होने से प्राप्त नहीं होती। अपनी कान्शेन्स को न मारने देना, अन्तरात्मा के सदसद्विवेक को नष्ट न होने देना ही 'आत्मा की रक्षा' है। इस प्रकार से जब आत्मा के विनाश की स्थिति उपस्थित हो, तो इस पृथिवी को छोड़ देना, संसार से चले जाना, जीवन का विसर्जन कर देना अच्छा है। तात्पर्य यह है कि जीवन में यदि ऐसा अवसर आ जाय कि अपनी कान्शेन्स को मारे जाने के मुकाबले में जान की बाजी लगी हो, तो जान को जाने दे। अपनी अन्तरात्मा की सदसद्विवेकिता की रक्षा की जानी चाहिए। यह भावनात्मक एकता का मूल स्रोत है, यदि यही सूख गया, तो एकता का कहीं पता नहीं लगता। फलतः स्वार्थ का जितना संकोच होगा और त्याग का जितना विस्तार होगा; एकता का क्षेत्र उतना ही बढ़ता चला जायगा। कोई एक ऐसा मुद्दा हो सकता है, जिसके आश्रय से मानवमात्र का समाज एकता की दिशा में अग्रसर होने के लिए पग बढ़ाए; पर उसकी व्यवहार्य दशा का विवेचन सदा संसार में एकता का बाधक रहा है। वह मुद्दा व्यक्ति के अन्तरात्मा की आवाज़ है, जिसको पकड़ लेना हर एक के लिए आसान नहीं।

एकता के अनेक आधार—

जैसा कि पहले कहा, एकता सदा किसी एक ही आधार को लेकर उभरे, ऐसा नहीं है। इसके अनेक आधार रहते हैं, और बदलते रहते हैं। राष्ट्र, धर्म, समाज, अर्थ, भय, बाधा या विपत्ति आदि ये सब विभिन्न अवसरों पर भावनात्मक एकता के आधार बनते हैं। यह स्थिति मानव-समाज में अधिक सम्भव है। कारण यह है कि मानव-समाज के प्रखर-बुद्धि होने से इसकी प्रवृत्तियां सदा बहुमुखी रहती हैं। विचार बुद्धि का परिणाम है और विचार विषय के अनुसार सदा बदला करता है, इसलिए एकता के क्षेत्र को भी वह बदल देता है।

एकता किसी भी क्षेत्र में हो, महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय-एकता पर विचार कीजिए, किसी भी राष्ट्र का मानव-समुदाय व्यक्तिगत रूप से अनेक विभिन्नताओं को रखता हुआ भी राष्ट्र के नाम पर एक पंक्ति में आ खड़ा होता है, यद्यपि धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टियों से भले ही वह विभिन्न लघुवर्गों में बंटा हो। ऐसी भावना के उभरने का नङ्गा रूप तभी सामने आता है जब राष्ट्र पर कोई भय या विपद् उपस्थित हो। इसी प्रकार धर्म, समाज, अर्थ, राजनीति, व्यवसाय, उद्योग आदि विभिन्न लघु-क्षेत्रिक मुद्दों के आधार पर भी एकता की भावना स्पष्ट व्यवहार में देखी जाती है। धर्म एक होने पर भी अनेक राष्ट्रों में आर्थिक व राजनीतिक भेदों के कारण परस्पर घोर सङ्घर्ष की दशा उपस्थित हो जाती है, पर जब कहीं उनके धर्म पर चोट आती है तो उनका स्वर एक होता है। यदि कहीं राजनीतिक या आर्थिक दृष्टिकोण

प्रबल है तो एकता की भावना के उभार में धर्म की उपेक्षा हो जाती है।

ऐसे अनेक अवसर रहते हैं जब एकता के उभार के लिए सामाजिक दृष्टिकोण प्रबल होता है। मान लीजिए एक गाँव, नगर या मुहल्ले पर कोई आपत्ति आ गई, आग लग जाए, बहती आ जाए, रोग फैल जाए, गन्दगी रहती हो, शिक्षा या चिकित्सा आदि की सुविधा प्राप्त करनी हो तो उस गाँव, नगर या मुहल्ले में जितने निवासी हैं, इन बाधाओं के हटाने और सुविधाओं को प्राप्त करने की दिशा में एक जुट हो प्रयत्नशील देखे जाते हैं, यद्यपि वे निवासी विभिन्न धर्म, जाति, राजनीतिक विचारों एवं निम्नोन्नत आर्थिक स्थिति के होते हैं। एक ही गांव नगर या मुहाल में रहने से उनका एक समाज है, चौबीस घण्टे और दिन-रात का साथ व पास-पड़ौस है। प्रत्येक का साधारण सुख-दुःख आपस में गुंथा हुआ है। यह दृष्टिकोण सामाजिक आधार पर एकता को उभार लाता है। इसका रूप यदि विशाल और राष्ट्र-व्यापी हो जाए तो एकता का क्षेत्र विस्तृत हो जायगा, इसका विस्तार मानवमात्र के समाज तक सम्भव है। राष्ट्रों की सह-अस्तित्व की भावना का यह एक आधार है। भारतीय दर्शन के आदर्श-एकता में अनेकता और अनेकता में एकता के तथ्य का यही स्वरूप है।

वास्तविक-एकता कहां है—

राष्ट्र की कल्पना है—एक जैसे शासन-सूत्र में संचालित व शासित मानव-समाज। उसमें अनेक विचार, अनेक धर्म, विविध प्रकार के वर्ग और रहन-सहन सम्भव हैं। केवल धर्म के आधार पर राष्ट्र नहीं, राष्ट्रों के आधार पर धर्म—केवल राष्ट्र-धर्म होगा, आध्यात्मिक-धर्म नहीं। राष्ट्र ऐहलौकिक या इस वर्तमान जीवन से सम्बद्ध है, पर धर्म वर्तमान जीवन के बाद जो-कुछ है, उस सबको अपने अन्दर समेटता है। धर्म जीवन का विष नहीं, अमृत है। भ्रष्टाचार सब जगह विष है, चाहे वह धार्मिक हो या राजनैतिक, आर्थिक या व्यावसायिक; वास्तविक धर्म की भावना भ्रष्टाचार को पनपने नहीं देती, क्योंकि धर्म अध्यात्म को पवित्र करता है, रोटी, कपड़ा, रहना ही सबकुछ नहीं, जीवन इनके अतिरिक्त है, ये सब जीवन के लिए हैं, जीवन इनके लिए नहीं। धर्म से ओत-प्रोत जीवन एक दिव्य-जीवन है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य अपने परिवार; पत्नी, बच्चों और धन आदि ऐहिक साधनों के प्रति अपने कर्तव्यों का परित्याग कर कहीं एकांत स्थान में चला जाए, यह तो एक ज्वलन्त त्यागमयी सेवा एवं विश्व के साथ निष्काम अनुराग की भावना है जिसमें मानव के साथ सङ्घर्ष की छाया भी नहीं आती।

सबसे प्रेम करना, यथावश्यक सबकी सेवा करना, सुख-दुःख में सहभागी बनना, व्यक्ति के प्रति ईर्ष्या-द्वेष व घृणा का परित्याग करना, अपनी योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार आकांक्षा रखना, जिसकी प्राप्ति अपने लिये असम्भव हो उसके महत्त्वाकांक्षी न बनना; ये सब ऐसी भावनाएं हैं, जो अन्तर को पवित्र बनाती हैं एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। ईश्वर एक है, सबके लिए वही एक है, पर मानव उसके नाम की आड़ में कट मरता है; यह ईश्वरीय-एकता का दोष नहीं, यह केवल मानव की अपनी दुर्बलताओं का परिणाम है जो आन्तरिक पवित्रता और धार्मिक-भावना के अभाव में उभरती हैं। हम ईश्वर को चाहे किसी नाम से पुकारें, किसी रूप में उसका ध्यान करें; पर वह ईश्वर प्रत्येक अवस्था में एक है। सूर्य, चन्द्र, तारे सबके एक हैं। पृथ्वी पर रहते उसी हवा में सब सां स लेते हैं; पर पृथ्वी को हमने बांटा, मानव ने बांटा; यह सङ्घर्ष मानव ने खड़ा किया; इसके लिए ईश्वर को कोसना समझ में नहीं आता। प्राणिमात्र के प्रति स्नेह-भावनाओं का उभारना अपने और सबके अभ्युदय का आधार है। भावनाओं के इस स्तर को यदि पकड़ा जा सके, तो उसका परिणाम एकता के सिवाय और कुछ नहीं। इसका व्यवहार्यरूप ही मानव को चुनौती है। केवल घोषणा से इसको पाना एक सपना है, इसका बीज अन्तर में रोपना होगा। बाल्य-काल से नैतिक-शिक्षा ही उसका अनुकूल वातावरण है। दुष्टों को दण्ड स्नेह की जड़ का सींचना है। इसके लिए सबका जागृत रहना अपेक्षित है।

श्री निरंकारदेवसेवक

बाल-साहित्य और भावनात्मक-एकता

हमारे देश में इस समय एक ओर आन्तरिक विघटन के तत्त्व प्रबल हो रहे हैं दूसरी ओर पाकिस्तान और चीन के आक्रमण का भय निरन्तर उग्र रूप धारण करता आ रहा है। ऐसी दशा में बाल-साहित्य के द्वारा बच्चों में भावनात्मक एकता लाने के प्रश्न पर हमारा ध्यान जाना नितान्त स्वाभाविक है। बच्चे जन्म से किसी विशेष धार्मिक, जातीय या राष्ट्रीय-भावना को लेकर उत्पन्न नहीं होते। मनुष्यता ही उनका धर्म, जाति या राष्ट्र सब-कुछ होता है। कौतूहल और जिज्ञासा की प्रवृत्ति उनमें बहुत बलवती होती है। और उनकी कल्पना-शक्ति की गति बड़ी तीव्र होती है। ऐसी स्थिति में यदि उनकी जिज्ञासा को तृप्त न करके और उनकी कल्पना-शक्ति की गति को रोक कर उन्हें किसी पूर्व-निश्चित आदर्श का ही पाठ पढ़ाते रहना उनके विकास को कुण्ठित करने के समान है। जो साहित्य बच्चों को जन्मजात और स्वाभाविक प्रवृत्तियों और शक्तियों के विकास में सहायता नहीं कर सकता वह बाल-साहित्य नहीं हो सकता। इसलिए बच्चों में भावनात्मक एकता लाने के लिए प्रयत्नशील लोगों को सब से पहले यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि उनके किसी प्रयास से बच्चों के स्वाभाविक विकास में तो कोई बाधा नहीं पड़ती। जो बाल-साहित्य बच्चों को केवल तोते की तरह रटाने के लिए रचा जाता है वह कितना भी श्रेष्ठ और उच्च आदर्शों वाला भी क्यों न हो, कालान्तर में बच्चों के लिए घातक ही साबित होगा।

बच्चों के मन में एकता का भाव स्वाभाविक रूप से विद्यमान होता है। वह प्रायः जाति, वर्ग, धर्म या वर्ण के आधार पर किसी से पक्षपात करना या द्वेष, घृणा के भाव रखना जानते ही नहीं। यह सब भेद-भाव की बातें यदि बड़े लोग उन्हें न बताएं तो वह उन आधारों पर कभी किसी से घृणा कर ही नहीं सकते। भेदभाव की शिक्षा उन्हें सब से पहले अपने घर से ही मिलती है। किसी सम्भ्रांत उच्च वर्ण के परिवार के बालक को किसी मेहतर-चमार के बच्चे के साथ खेलने नहीं दिया जाता। धनी-मानी व्यक्ति अपने बच्चों को निर्धन बच्चों के साथ खेलते देख कर मन में सङ्कोच अनुभव करते हैं। थोड़े बड़े होकर बच्चे स्वयं समाज में भेदभाव की बातें प्रचलित देखते हैं और उन्हीं के अनुसार आचरण करने लगते हैं।

बाल-स्वभाव को इस दूषित वातावरण से बचाने और उनमें एक स्वस्थ एकता की भावना का विकास करने के लिए उनके लिए उपयुक्त सत्साहित्य की आवश्यकता है। पर वह सत्साहित्य ऊंची-ऊंची ज्ञान-सिद्धान्त और आदर्शों की बातें बताने वाला ही हो ऐसा सोचना गलत है। बच्चों के साहित्य की पहली कसौटी उनके लिए उसका मनोरंजक होना है। मनोरंजक वही साहित्य हो सकता है जो उनके अपने अनुभव ज्ञान और कल्पनादर्शों से सम्बन्धित विषयों पर लिखा गया हो। यदि बच्चों को उनका मनोरंजन करने वाला प्रिय साहित्य पढ़ने को मिलता रहे तो वह बहुत-कुछ समाज-व्यापी भेद-भाव के दुष्प्रभाव से बचे रह सकते हैं। उन्हें किसी पूर्व-निश्चित एकता के आदर्श के आधार पर लिख कर कोई साहित्य देना उस विदेशी-साहित्य के समान व्यर्थ होगा जिसके भाषा और भाव वह पूरी तरह समझने में असमर्थ होते हैं बच्चों में भावनात्मक एकता लाने के लिए उन्हें किसी विशेष प्रकार का साहित्य लिख कर देने की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को विकसित होने में सहायता देने वाले उस मनोरंजक साहित्य की है जो उनकी मनुष्यता को विकसित करने में सहायता देने वाला हो।

डा. रवीन्द्रकुमार जैन

दक्षिणी भाषाओं के साहित्य में मानवैक्य की स्वर-लहरी

मानव जाति का इतिहास अर्थ और काम का इतिहास है। इन दोनों की ही तृप्ति एवं अपूर्णता ने मानव को संघर्ष, कलह, भोगवाद एवं दूसरी ओर भाग्यवाद, निराशा, वैराग्य एवं अध्यात्म की ओर मोड़ दिया। सम्पूर्ण जगत् के साहित्य में अर्थ और काम के ही विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं। मूलतः साहित्य में अर्थ और काम का सत्य ही सार्वभौम एवं सार्वदेशिक है। यहां यह ध्यान रखना अत्यावश्यक है कि साहित्य के अर्थ और काम सामान्य होते हुए भी विशिष्ट अधिक हैं। अर्थशास्त्र, समाज-व्यवस्था एवं मानव की स्थूल कामवृत्ति में समाहित सामान्य आशय का उदात्त रूप ही साहित्य में अपेक्षित होता है। विश्व-साहित्य में, सुख और शान्ति के लिए किए गए मानव-जाति के अगणित प्रयत्न-रूपों एवं भाव-रूपों के स्पष्ट, मधुर, ओजपूर्ण एवं व्यापक चित्र मिलते हैं। साहित्य की उत्कृष्टता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें जो-कुछ भी हो वह जातिगत देशगत, व्यक्तिगत होते हुए भी विश्वजनीन एवं सार्वकालिक हो। देश और काल-विशेष का होते हुए भी वह समस्त धरातल एवं अनन्तकाल का हो, यही किसी महान् साहित्य की महत्ता की कसौटी है। महान् साहित्य में अनन्त रूपात्मक एवं भावात्मक सामान्य में से उत्कृष्ट, विशिष्ट, जीवन्त, प्रेरणामय एवं सौन्दर्य-समन्वित का ही चयन होता है। अतः यह सुस्पष्ट एवं सुविदित है कि साहित्य मूलतः एवं अन्ततः सर्वत्र एक ही (सुख-शान्ति के) लक्ष्य से परिचालित है।

इतना होते हुए भी प्रत्येक देश और जाति के साहित्य की कुछ निजी विशेषताएँ भी होती ही हैं जिनके कारण उसका विश्व-साहित्य में अपना स्वतन्त्र महत्त्व निश्चित होता है। किसी देश ने अर्थ और काम के बाह्य एवं स्थूल पक्ष को ही महत्त्व दिया तो दूसरे ने बाह्य की अपेक्षा इनके अन्तरङ्ग अथच भावनात्मक पक्ष पर बल दिया है तो कुछ ऐसे भी देश हैं जहाँ के साहित्य में उक्त आधारों को नैतिक एवं आध्यात्मिक मोड़ दिए गए हैं। अतः उक्त आधार पर प्रत्येक देश के साहित्य में कुछ नवीनत्व, निजत्व एवं चयन तथा अभिव्यक्तिपरक दृष्टियों का वैशिष्ट्य परिलक्षित होता ही है—जो अन्ततः सामान्य अतः विश्वजनीन सत्य मानवैक्य के अतल एवं व्यापक सागर में ही अपनी परिणति पाता है।

पौर्वात्य (विशेषतः भारतीय) एवं पाश्चात्य साहित्य की मूलभूत विशेषताएँ आज सुविदित हैं। महनीय जीवन के प्रति दोनों ही साहित्यों में स्वतन्त्र दृष्टि रही है। पौर्वात्य (भारतीय) साहित्य की प्रतिनिधि धाराएँ ये हैं—

१. अध्यात्म (वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं जीवनानुभवों से प्राप्त) इसमें त्याग एवं आत्मा के विस्तार को भी खोजा गया है।

२. साधना—कर्म एवं तप द्वारा।

३. अपरिग्रह एवं अहिंसा।

४. सौन्दर्य दृष्टि, अलंकारप्रियता।

५. आदर्शात्मकता।

६. सुखान्त दृष्टि।

७. हृदय पक्ष का प्राबल्य।

८. समय-समय पर राजनीतिक व्यवस्था परिवर्तित होने के कारण साहित्य के अन्तर्बाह्य में भी भारी परिवर्तन हुआ है; यह परिवर्तन सम्पूर्ण साहित्य में देखा जा सकता है।

९. रस-दृष्टि।

१०. भाग्यवाद।

पाश्चात्य साहित्य की भी अपनी विशेषताएँ हैं। उनमें से प्रतिनिधि ये हैं—

१. यथार्थपरकता।

२. भोगवादिता।

३. विचार-प्राधान्य (बुद्धितत्त्व का प्राबल्य)।

४. व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ही प्रमुख है।

५. प्रायः दुखान्त।

६. सौन्दर्य-दृष्टि।

इतना ही नहीं प्रत्येक देश के ही साहित्य के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। भारत जैसे व्यापक देश में तो यह और भी अधिक सम्भव हुआ है। इस देश की विविध जातियाँ, धर्म, आचार, विचार, संस्कृतियाँ, भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ यहां के साहित्य को अनेकरूपता प्रदान करती ही हैं। मूलतः इस देश की संस्कृति एवं साहित्य का स्वर एक है तथापि बाह्य विभिन्न परिस्थितियों ने उसमें अपना अतुल प्रभाव छोड़ा ही है।

यह प्रभाव विशेष रूप से उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के साहित्य में परिलक्षित होता है। देश के इन दोनों विशाल खण्डों की परिस्थितियाँ—भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं सामाजिक पृथक्-पृथक् रही हैं। विदेशी आक्रमणों का साम्मुख्य उत्तर भारत को ही प्रायः करना पड़ा है और सैकड़ों वर्षों तक संघर्ष एवं पराधीनता में रहना पड़ा है। फलतः वहां के साहित्य में एक मिश्र संस्कृति के स्पष्ट चिह्न देखे जा सकते हैं। दक्षिण भारत के साहित्य के पीछे भी धार्मिक एवं राजनैतिक उत्थान पतन कम नहीं रहे हैं, परन्तु फिर भी ये आन्तरिक एवं देशीय अधिक थे।

दक्षिण भारत की चारों भाषाओं (तमिल, कन्नड़, तेलुगु, एवं मलयालम) में प्रचुर साहित्य है। साहित्य-सृजन की परम्परा भी अति प्राचीन एवं बहुमुखी है। अब हम प्रत्येक भाषा के साहित्य के आलोचनात्मक संक्षिप्त परिचय के साथ यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि उनमें (साहित्य-रूपों) में मानवैक्य का महान् आदर्श कहां तक निभ सका है।

तमिल—

तमिल, द्राविड भाषा-परिवार की प्राचीनतम एवं सुसमृद्ध भाषा है। ईसा से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व ही यह भाषा सुव्यवस्थित एवं सुसंस्कृत हो चुकी थी, इस प्रकार की अनेक विद्वानों की मान्यता है। पौराणिक आधार पर तो तमिल भाषा को लगभग १०००० वर्ष ई० पू० से ही सम्पन्न बताया जाता है। 'इरैयनारकल वियलुरै' नामक तमिल ग्रन्थ में ई०पू० के १०००० वर्षों में सम्भूत तीन कवि-संघों का व्यापक उल्लेख दिया गया है। प्रथम दो संघों के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। तृतीय संघ के ही कुछ ग्रन्थ मिलते हैं। हां, द्वितीय कवि-संघ का एक ग्रन्थ (लक्षण ग्रंथ) 'तोलगाप्पियम्' ही प्राप्त होता है। इसके रचयिता तोलगाप्पियर हैं।

तमिल साहित्य का काल-विभाजन, जो उसके विविध विकास-रूपों को समझने में सहायक हो सकता है, विद्वानों ने इस प्रकार किया है—संघपूर्वकाल, संघकाल, संघोत्तरकाल, भक्तिकाल, कम्बनकाल, मध्य-काल तथा आधुनिककाल। तृतीय कवि-संघ के तीन कविता-संग्रह हैं। इनमें शृङ्गार एवं वीररस के साथ प्राकृतिक वर्णन भी भरपूर हैं। मानव-जीवन के उदात्त पक्ष को बड़ी योग्यता-प्रतिभा के साथ इन ग्रन्थों में चित्रित किया गया है। विभिन्न राजघरानों के शौर्य और त्याग का वर्णन भी इन ग्रन्थों में मिलता है। तमिल प्रसिद्धतम ग्रन्थ 'तिरुक्कुरल' इसी समय का है इसमें १३३० दोहे हैं। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ की अत्यन्त भावपूर्ण एवं विशद-विवेचना इसमें की गई है। इस ग्रन्थ का अनुवाद संसार की अनेक भाषाओं में हो चुका है।

संघोत्तरकाल अर्थात् ईस्वी समय में तमिल में अनेक महाकाव्यों का सृजन हुआ। इन काव्यों में धार्मिक प्रचार, वीरता एवं मानवीय गुणों की महत्ता दिग्दर्शित है। इस समय उत्तर भारत के बौद्ध एवं जैन भी इस प्रदेश में आ गए थे और विभिन्न ग्रंथों की रचना कर रहे थे, साथ ही अपने धर्म का प्रचार भी करते थे। इनके साथ पाली, प्राकृत एवं संस्कृत भी आई। अतः तमिल साहित्य इन भाषाओं से भी प्रभावित हुआ है। यह युग धार्मिक संघर्ष का युग भी कहा जा सकता है। प्रत्येक धर्म अपनी महानता एवं सर्वोच्चता बताने में लीन था। इस युग के प्रसिद्ध महाकाव्य—शिलप्पदिकारम्, मणिमैकलै, जीवक-चिन्तामणि बलयापदि एवं कुण्डलकोश हैं।

संघोत्तरकाल के बाद शैवों की प्रमुखता लेकर भक्तिकाल का आविर्भाव हुआ। वैष्णव गान भी पर्याप्त रचे गए। १२ भक्त आलवार प्रसिद्ध ही हैं। इन्होंने वैष्णव भक्ति का मानवैक्य के लिए देश-भर में प्रचार किया। इन सन्तों की सबसे बड़ी विशेषता थी कि ये विभिन्न जातियों के थे और शुद्ध मानवीय एवं गुण-स्तर से जीवन में प्रविष्ट हुए थे। इन्हें मानवमात्र से अनुराग था। इस युग में अनेक प्रबन्ध काव्यों का

भी सृजन हुआ। १२वीं शती में कम्बन कवि कृत 'कम्बरामायण' की भी रचना हुई। यह कृति अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह बारह हजार पद्यों में है। इसी समय 'पेदियपुराण' आदि और भी प्रबन्धात्मक कृतियां आईं पर 'कम्बरामायण' की समता कहां? वास्तव में तमिल काव्य की सरसता, मधुरता एवं भावपूर्णता तथा भाषागत प्रांजलता का चरम इसी काव्य में है। उक्त प्रबन्धों द्वारा जनता में उदात्त भावों की सृष्टि करना ही कवियों का उद्देश्य था। इसके पश्चात् तो २००-२५० वर्ष तक प्रायः मौलिक ग्रन्थों का तमिल में अभाव ही रहा। केवल पुरातन ग्रन्थों पर टीकाएँ ही लिखी गईं। १८वीं शती के पश्चात् तो अंग्रेज़ों के प्रभाव के कारण प्रायः सम्पूर्ण देश के साहित्य का स्वर एक-सा हो गया। आधुनिक तमिल साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानियां एवं नई कविता आदि विविध रूप तो आ ही गए हैं। साथ भावधारा भी बड़े वेग से नवीन जीवन की ओर बढ़ रही है।

कन्नड —

कन्नड भाषा भी पर्याप्त प्राचीन है, परन्तु तमिल की अपेक्षा साहित्य-सृजन इसमें पर्याप्त बाद में हुआ है। इस भाषा के साहित्य को विभिन्न कालों में विभाजित किया गया है। यथा—पम्पपूर्व युग, पम्प-युग, बासव युग, कुमारव्यास युग, आधुनिक युग। प्रथम युग में 'कविराजमार्ग' एवं 'बड्डाराधने' ये दो ग्रन्थ ही उपलब्ध होते हैं। इनमें राजाओं और महापुरुषों (जैन तीर्थंकरों) के महनीय जीवन-कृत्यों का अत्यन्त भावपूर्ण पद्धति से चित्रण किया गया है।

कन्नड साहित्य में द्वितीय युग (पम्पयुग) स्वर्ण युग के नाम से प्रसिद्ध है। इसे जैन-युग भी कहा जाता है। इस युग में धार्मिक एवं नैतिक काव्य ही रचे गए। मानव-जीवन किसी महान् आदर्श से परिचालित रहे, वेदना और घुटन की घड़ियों में भी उसका आदर्श उसे बल दे सके, उसकी प्रेम, अहिंसा एवं सच्चरित्रता की भावनाओं की रक्षा कर सके यही काव्यों का मर्म था। यह मर्म परोक्ष रूप से ही जनता के पास आता था। काव्य अभी सामान्य जनता तक न आ सका था। पौराणिक महापुरुष एवं राजाओं की परिधि में ही कलाकार की प्रतिभा केन्द्रित थी। परन्तु यह गर्व की बात है कि इस युग के कवि कभी भी अश्लील शृंगार एवं मानव की अन्य कुत्सित वृत्तियों को जगाने में अपनी प्रतिभा का उपयोग नहीं करते थे। "यद्यपि इस काल में बड़े-बड़े कलात्मक प्रौढ काव्यों का निर्माण हुआ, तो भी समाज के साधारण लोगों के जीवन के साथ साहित्य का सम्पर्क न हो सका। इसका मुख्य कारण यह था कि इस समय के कवि राजाओं के आश्रय में रहते थे और वे जो-कुछ लिखते थे, या तो अपने आश्रयदाता राजाओं का यशोगान करने के लिए, या दरबार के अन्य पण्डितों के बीच में वाहवाही लूटने के लिए या अपने धर्म-प्रचार के हेतु।" इसके अतिरिक्त काव्य-भाषा भी इस युग में संस्कृतनिष्ठ कन्नड थी, जन-भाषा कन्नड नहीं। छन्द भी उसके अपने प्रायः इस समय अप्रयुक्त ही रहे।

क्रान्ति-युग (बसव-युग)—१२वीं से १५वीं शताब्दी तक कन्नड-साहित्य सर्वथा नवीन अन्तर्बाह्य से साथ आता रहा। साहित्य के प्रायः सभी मानदण्डों ने नया रूप धारण किया। भाषा लोक-भाषा हो गई, छन्द भी कन्नड के अपने ही प्रयुक्त हुए और साथ अनेक धर्मानुयायी साहित्यकार अपनी-अपनी मौलिक प्रतिभाएं लेकर आए। इस युग में भक्ति-परक साहित्य की अधिक रचना हुई। नीति, सदाचार और धर्म-निष्ठा पर भी इस युग के साहित्य में अधिक बल दिया गया। यह युग प्रायः वीर शैवों का था। इस युग के अधिष्ठाता कविवर बसव थे जो हिन्दी के कबीर के समकक्ष रखे जा सकते हैं। भाषा की सादगी, अक्खड़ता, भावों और विचारों की ईमानदारी-भरी स्पष्टता तथा और शैली की स्वभावज प्रवहमानता बसव में कबीर के समान ही थी। वे मानव-मात्र की उज्ज्वलता एवं महानता के कट्टर समर्थक थे। कर्मकांड, जातिपांति, भेदभाव, रूढ़िवाद एवं मूर्तिपूजा आदि का उन्होंने विरोध किया और आत्मा तथा मन की पवित्रता पर भारी बल दिया।

पन्द्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक का समय (कुमार व्यासयुग) कन्नड-साहित्य पर वैष्णव-धर्म के आधिपत्य का समय है। इस युग में साहित्य जनता के और अधिक सम्पर्क में आया। भक्ति के माध्यम से मानव-मात्र में प्रेम और त्याग की भावना जाग्रत की गई। इस युग के सर्वश्रेष्ठ कवि नारणप्प हैं जो जनता द्वारा समादृत होकर कुमार व्यास नाम से प्रख्यात हुए थे। इस युग में चरित-काव्य, चम्पू-काव्य, अनुवाद

एवं टीकाएं भी बहुत हुईं। अठारहवीं शताब्दी में तो नाटक, उपन्यास और कहानियां भी मानव के माध्यम से मानव के लिए ही रची गयीं। अब मानव-मानव के बीच सीधा सम्बन्ध साहित्य द्वारा प्रारम्भ होने लगा। राजा और ईश्वर या अवतार साहित्य से धीरे-धीरे लुप्त होने लगा।

बीसवीं शताब्दी तो कन्नड़ में भी वही है जो हिंदी में। अर्थात् देश और समाज की ज्वलन्त समस्याएं ही साहित्य का मुख्य विषय बन गईं। प्रगतिवाद अर्थात् मानव का अपने भाग्य और उत्कर्ष के प्रति अटूट विश्वास। जनता की शक्ति ही किसी देश की सर्वस्व है। पूंजीवाद एवं सामन्तवाद के कोई भी चिह्न किसी भी देश के लिए अभिशाप हैं। मानव-मात्र की, विशेष रूप से श्रमिक एवं कृषक जीवन की बहुमुखी पीडाओं से साहित्य भर उठा। राष्ट्रीय-स्तर पर मानव-वेदना से साहित्यकार की सम्वेदन-शीलता पग-पग पर प्रभावित हुई।

मलयालम-साहित्य—

समुद्र और पर्वत-श्रेणियों के अंचल में अवस्थित केरल भूमि है। यहां की भाषा मलयालम है। इस प्रदेश की भी अपनी संस्कृति, अपनी भाषा एवं अपना मौलिक और उदात्त साहित्य है। इस प्रदेश पर एक लम्बे समय तक तमिल राजाओं का शासन रहा। अतः राज-भाषा तमिल रही। साथ ही कई काव्य भी तमिल में ही यहां के कवियों ने रचे। मलयालम भाषा का सर्वप्रथम काव्य-ग्रन्थ 'रामचरित' है। यह 'रामायण' के युद्धकाण्ड के आधार पर रचा गया है। यह ई० १२वीं शताब्दी का ग्रन्थ है। यद्यपि उक्त ग्रन्थ प्रथम है, फिर भी इसके दो-तीन सौ वर्ष पहले से ही गीतों और लोक-कथाओं का प्रारम्भ हो चुका था। चौदहवीं शताब्दी में 'कण्णिश्श रामायण' कविवर रामप्पणिक्कर ने अत्यन्त प्रौढशैली में प्रस्तुत की। 'उण्णुवीली सन्देश' भी इसी समय की रचना है। इसमें संस्कृत और मलयालम का मणिकांचन योग है। यह मलयालम का एक प्रसिद्ध सन्देश-काव्य है। इसी समय कुछ वीर रस-प्रधान गीत भी निर्मित हुए। मलयालम का साहित्य प्रमुखतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—चौदहवीं शताब्दी के पूर्व का और चौदहवीं शताब्दी के बाद का साहित्य। विशिष्ट अध्ययन के लिए परवर्ती साहित्य के दो भाग और किए जा सकते हैं—१७वीं से १९वीं शताब्दी तक का साहित्य तथा २०वीं शताब्दी का नवीन साहित्य। सत्रहवीं शताब्दी में केरली भाषा, शैली और भावों में एक नूतन लहर आ गई थी। नए द्राविड छन्दों का विकास हुआ, भाषा और भाव स्वाभाविक एवं लोक-सम्मत हुए। इस समय अनेक संस्कृत-काव्य, नाटकों के अनुवाद भी हुए। अनेक मौलिक रचनाएं भी प्रस्तुत हुईं। हास्य रस के प्रसिद्ध कवि कुंचनप्यार केरल-साहित्य में सदैव अपने उत्तम हास्य-चित्रणों के लिए अमर रहेंगे। हास्यरसात्मक रचनाएं करके आपने जनता में उल्लास एवं मैत्री के अमर भाव संचरित किए। पुरातन और नवीन का सुन्दर समन्वय इस कवि ने किया।

बीसवीं शताब्दी में तो मलयालम भाषा में भी प्रायः वे सभी नूतन प्रवृत्तियां आईं जो हिन्दी में आई हैं। स्वतन्त्रता, देश-भक्ति, समाज-सुधार, शिक्षा प्रेम, सङ्गठन और अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रान्ति आदि सभी पक्षों पर साहित्य रचा जाने लगा। प्रगतिवादी साहित्य एवं छायावादी-साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में आया। पुरातन प्रवृत्तियों का सर्वथा काया-पलट ही हो गया। कुमारनाशन् बल्लतोल, परमेश्वरय्यर आदि प्रतिभाशाली कवियों ने युगान्तर ही उपस्थित कर दिया।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मलयालम भाषा के साहित्य में धर्म, नीति, सदाचार और शृंगार के माध्यम से मानव-जीवन-आदर्शों का एक पक्ष प्रस्तुत किया गया है तो उसकी कर्मठता, महानता, सङ्गठन और उसके अन्तः-व्यक्तित्व की महान् शक्तियों का दूसरा पक्ष भी अत्यन्त प्रौढता के साथ प्रस्तुत किया गया है। उक्त साहित्य में विभिन्न रूपों में मानवैक्य की स्वर-लहरी विद्यमान है। (तेलुगु-साहित्य के परिचयार्थ "भावनात्मक एकता और आन्ध्र-साहित्य" शीर्षक लेख द्र., पृ. ५३-५६ —सं०)।

सम्पूर्ण दक्षिणी-भाषाओं का साहित्य अपनी निजी सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आचार-सम्बन्धी विशेषताओं के साथ अखिल भारतीय स्तर पर भी एक व्यापक-सार्वभौम संस्कृति, मानव-सङ्गठन, सुख एवं शान्ति का उद्घोष करता है। वस्तुतः समस्त भारतीय-साहित्य अंततः एक ही मानवैक्य-रूपी महती संस्कृति एवं सभ्यता का उद्घोषक है। ●

डॉ. विनयमोहन शर्मा

भावनात्मक एकता और हिन्दी

राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने के लिए भाषा एक प्रबल साधन है। भारतवर्ष एशिया का महान् राष्ट्र है जिसमें लगभग पांच सौ से अधिक भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं। उनमें चौदह भाषाएँ ऐसी हैं जिन्हें संविधान ने उनके बोलने वालों की संख्या और साहित्य-संवृद्धि की दृष्टि से मान्यता प्रदान की है। उनमें हिन्दी ही ऐसी भाषा घोषित की गई है जिसे राष्ट्र की सूत्रभाषा (लिंक लेंग्वेज) कहा जाता है। राष्ट्र सोलह प्रांतों या राज्यों में विभाजित है। इनमें उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, पूर्वी पंजाब और दिल्ली हिन्दी-भाषी क्षेत्र कहे जाते हैं, क्योंकि यहाँ के निवासी अपनी मातृ-भाषा के रूप में शत-प्रतिशत हिन्दी का व्यवहार भले ही न करते हों, पर हिन्दी उनकी साहित्य और शिक्षा की भाषा अवश्य है। हिन्दी से मेरा तात्पर्य खड़ी बोली से है। संविधान ने भी हिन्दी का प्रयोग उसके खड़ी बोली-रूप के लिए ही किया है। भारत के शेष प्रान्तों में हिन्दी बहुतायत से समझी जाती है। उत्तर भारत के अहिन्दी राज्य, गुजरात, बंगाल, असम, उत्कल, पंजाब आदि संस्कृत भाषा-परम्परा से उद्भूत क्रमशः गुजराती, बंगला, असमी, उड़िया, पंजाबी भाषा-भाषी हैं। चूँकि हिन्दी का उत्स भी संस्कृत भाषा है इसलिए उपर्युक्त भाषा-भाषियों को हिन्दी समझने और सीखने में विशेष कठिनाई अनुभव नहीं होती। दक्षिण में महाराष्ट्र की भाषा मराठी और हिन्दी एक ही परिवार की बहिनें ही नहीं हैं, दोनों की लिपि भी एक है। हिन्दी में जिसे नागरी या देवनागरी लिपि कहते हैं उसे मराठी में 'बाल-बोध' कहा जाता है। उसमें और नागरी में दो-चार अक्षरों में ही भिन्नता है। गुजराती की शिरोरेखाहीन लिपि भी थोड़ी भिन्नता के साथ नागरी ही का रूप है। बंगला की संस्कृत-निष्ठता साहित्यिक हिन्दी के बहुत निकट है। दक्षिण में तमिल को छोड़कर मैसूर की कन्नड, आंध्र की तेलुगु और केरल की मलयालम संस्कृत-शब्दावली से आपूर हैं। यदि हम थोड़ा प्रयत्न कर इन भाषाओं का व्याकरण समझ लें तो इन्हें समझने में हमें कठिनाई अनुभव न होगी। इसी प्रकार इन भाषा-भाषियों को भी हिन्दी-व्याकरण की मुख्य बातें जान लेने पर हिन्दी सीखने में कठिनाई अनुभव नहीं होती। कुछ तमिल भाषियों में राजनीतिक कारणों से संस्कृत के प्रति वितृष्णा का भाव जागृत हो गया है और चूंकि हिन्दी संस्कृत-परम्परा की भाषा है इसलिए हिन्दी भी उपेक्षा का कारण बन गई है। हिन्दी के प्रति विद्रोह-भावना भड़काने का कुश्रेय आज दुर्भाग्य से उन्हें मिल रहा है जिन्होंने कभी उसे बढ़ावा देने का श्रेय प्राप्त किया था। महात्मा गाँधी ने जब भारतीय राजनीति में प्रवेश किया तब उन्होंने अनुभव किया कि यदि स्वाधीनता का सन्देश राष्ट्र के घर-घर पहुँचाना है तो हमें सबसे प्रथम विदेशी भाषा के मोह से राष्ट्र को मुक्त करना होगा। और उन्होंने यह भी अनुभव किया कि भारत में हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो राष्ट्रभाषा बन सकती है। यह केवल महात्मा गाँधी ही नहीं, राजा राममोहनराय, दयानन्द सरस्वती, बंकिमचन्द्र चटर्जी, लोकमान्य तिलक, वै. सावरकर, सुभाषचन्द्र बोस, आदि अहिन्दी भाषी चिन्तक और नेता भी यही अनुभव करते थे। क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया था कि हिन्दी के ही माध्यम से हम देश के बहुजन-समाज तक पहुँच सकते है। अंग्रेजी केवल इने-गिने लोगों के विचार-विनिमय का माध्यम बन सकती है।

लोकमान्य तिलक के शब्दों में—"हिन्दी भाषा ही राष्ट्रभाषा बन सकती है।" डा. राजेन्द्रलाल मित्र ने तो खुले हृदय से हिन्दी की महत्ता भी स्वीकार की थी। उन्होंने लिखा था—"भारत की सब भाषाओं में हिन्दी सबसे अधिक मुख्य है। यह हिन्दू जाति के बहु भाग की भाषा है। इसका साहित्य-भाण्डार तैलंगी भाषा के अतिरिक्त वर्तमान सभी भाषाओं से अधिक पूर्ण और विस्तृत है।" सर टी. विजय राघवाचार्य का मत था—"चाहे व्यावहारिक सैद्धान्तिक या राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय, हिन्दी का कोई दूसरा प्रतिद्वन्द्वी सम्भव नहीं है। अतः हर स्कूल, कालेज और यूनिवर्सिटी में इसे अनिवार्य कर देना चाहिए। भारतीयों के लिए हिन्दी

उतनी ही जरूरी है जितनी यूरोपीय देशों के निवासियों के लिए अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन।" स्वर्गीय डी०वी० गोखले ने लिखा था—"केवल हिन्दी ही भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनने की आकांक्षा रख सकती है।" मद्रास की श्रीमती सेला गुरुस्वामी का कथन है—"हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो राष्ट्रभाषा कही जा सकती है। इस भाषा में संस्कृत शब्दों का बहुत मेल है और यह समस्त भारत में समझ ली जाती है।"

भाषा-विज्ञानियों में मूर्धन्य विद्वान् स्व. तारापुरवाला ने हिन्दी को देश की शिक्षा-संस्थाओं के अनिवार्य रूप में पढ़ाने पर बल देते हुए कहा था—"भिन्न-भिन्न प्रदेशों की एक सामान्य भाषा बनने का सम्मान हिन्दी को ही मिलना चाहिए।" वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भाषावैज्ञानिक डा. सुनीतिकुमार चटर्जी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय आर्य-भाषा और हिन्दी' में लिखते हैं—' हिन्दी अथवा हिन्दुस्थानी का स्थान सबसे आगे है। कुछ बातों में तो हिन्दी भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा है। हिन्दी या हिन्दुस्थानी घरेलू भाषा की दृष्टि से अवश्य केवल दक्षिणपूर्वी पंजाब, पश्चिमी उत्तरप्रदेश, उत्तरपूर्वी मध्यप्रदेश उत्तरी ग्वालियर तथा पूर्वी राजस्थान आदि कतिपय प्रदेशों में ही बोली जाती है और गुजरात में भी अधिकांश भागों में प्रादेशिक बोलिया और शहरों में हिन्दुस्थानी बोली जाती है।

हिन्दी आज के भारतीयों के लिए एक बहुत बड़ी रिक्थ है। वह हमारे भाषा-विषयक प्रकाश का एक महत्तम साधन तथा **भारतीय-एकता एवं राष्ट्रीयता का प्रतीक रूप है। वास्तव में हिन्दी ही भारत की भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर सकती है।"**

यद्यपि आज डा. चटर्जी का हिन्दी-सम्बन्धी स्वर बदल गया है पर यह बदलन उनके राजनीति के रङ्ग में रङ्ग जाने के कारण है। उनका हृदय तो उनकी उक्त पुस्तक के पृष्ठों में बोल रहा है।

इस तरह हम देखते हैं कि भारत में यदि कोई सूत्र-भाषा बन सकती है तो वह हिन्दी ही है। बहुत प्राचीन-काल से मध्यदेश की भाषा ने ही देश की धार्मिक तथा सांस्कृतिक-एकता को अक्षुण्ण रखने का कार्य किया है। पहले संस्कृत के माध्यम से उत्तर और दक्षिण एक सूत्र में बन्धे थे, उसके पश्चात् पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं ने यह कार्य किया। मध्यदेश की भाषा को यह सौभाग्य प्राप्त होने के कई कारण हैं। मुख्य कारण यह है कि उत्तर भारत धार्मिक आन्दोलनों का केन्द्र रहा है। यद्यपि दक्षिणी भारत के कई आचार्य उनके जन्मदाता हैं तो भी सगुण-भक्ति के आधार—राम और कृष्ण की जन्म तथा लीला-भूमि उत्तर भारत ही है। उनसे सम्बन्धित तीर्थ-स्थान भी उत्तर भारत में अधिक हैं। अतः श्रद्धालु दाक्षिणात्य उत्तर भारत की यात्राएँ बराबर करते रहे हैं। इनके कारण उन्हें मध्यदेश की व्यापक व्यवहार-भाषा का ज्ञान आवश्यक हो गया। स्वयं धर्माचार्यों को भी अपने मत-प्रचार के लिए मध्यदेश की भाषा अपनानी पड़ी थी। उत्तर भारत के नाथों ने अपने देश-व्यापी धार्मिक अभियान के साथ हिन्दी का प्रत्यक्ष रूप से प्रचार किया है। मध्यकाल में मुसलमानों के शासन में भी मध्यदेश की भाषा देशव्यापी बन गई थी। उनके पूर्व अशोक, चन्द्रगुप्त आदि हिन्दू राजाओं ने भी मध्यदेश की भाषाओं में राजकाज चलाया। अतः हिन्दी को जैसा कि डा. चटर्जी कहते हैं, 'सूत्र-भाषा' का अधिकार रिक्थ में ही प्राप्त हुआ है। भारतीय संविधान में हिन्दी को उचित ही अन्तर्-प्रान्तीय सम्पर्क-भाषा बनाया है, पर राजनीतिक कारणों से संविधान के आदेश को कार्यान्वित करने में अड़चनें खड़ी हो रही हैं। अंग्रेज़ी-प्रेमी हिन्दी के स्थान पर अंग्रेज़ी को आसीन करना चाहते हैं जो राष्ट्रीयता और वास्तविकता दोनों दृष्टि से अवांछनीय है। अंग्रेज़ों ने बहुत पूर्व—ईस्ट इंडिया कम्पनी के काल में—यह अनुभव कर लिया था कि जनता तक पहुँचने के लिए हिन्दी या हिंदुस्तानी ही देश की मुख्य भाषा बन सकती है। कुरुक्षेत्र-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्राध्यापक पं० स्थाणुदत्त जी शास्त्री ने मुझे सन् १८८५ का सैनिक आदेश-पत्र बतलाया है जिसकी भाषा स्वच्छ हिन्दी है और यह आदेश-पत्र समस्त सैनिक-छावनियों के लिए जारी किया गया था। क्या स्वाधीन भारत के कर्णधार अंग्रेज़ी भाषा-भाषी शासकों की नीति से भी शिक्षा ग्रहण नहीं करेंगे? अंग्रेज़ी विदेश के ज्ञान-विज्ञान की हवा की केवल 'खिड़की' बन सकती है, जनता तक पहुंचने का राष्ट्रद्वार नहीं। देश की एकता देश की भाषा से ही सम्भव है। ●

श्री पीताम्बरनारायण

अच्छा मज़ाक यदि....

पात्र

देवकी—माँ, अधेड़ उम्र।
उमा—नवयुवती बहू।
चाची अम्माँ—वृद्धा पड़ोसिन।
शंकर—युवक, उमा का पति।
शांति—युवती, शंकर की बहन।

[मध्यवित्त-परिवार का साधारण साज-सज्जा वाला बैठक का कमरा। एक ओर तकिया-बिछावन लगा पलङ्ग और दो-चार कुर्सियां। अंदर की ओर एक दरवाज़ा, जिस पर पर्दा पड़ा है। पर्दा उठने पर थोड़ी देर बाद अन्दर का पर्दा हटाकर देवकी—अधेड़ उम्र, बिखरे-रूखे खिचड़ी बालों वाला खुला सिर, दुःख-विषाद-भरी मुद्रा व तदनुसार वेष-भूषा—कराहती हुई जैसे डगमगाते पगों से पलङ्ग की ओर बढ़ती है।]

देवकी—(रुक कर दरवाज़े की ओर देखते हुए करुण स्वर में हाथ से निवारण करके) नहीं बहू, नहीं!

[बढ़कर पलंग पर बैठकर शोक-मुद्रा में इधर-उधर देखती है। पीछे पर्दा उठा कर उमा—नवयुवती, भव्य आकर्षक वर्ण व वेष-भूषा—आकर पलंग के पास खड़ी होती है।]

उमा—(अनुनय-भरे स्वर में) अम्माँ जी, इस तरह कैसे काम चलेगा। चलो, थोड़ा मुँह जूठा करके ही उठ जाना। लेकिन...

देवकी—(बीच में ही) नहीं, बहू, अधिक जिद न करो। इसी तरह मरने दो मुझे।

उमा—(कृत्रिम रोष से) आप फिर मुँह से अपशकुन निकालने लगीं। अम्माँ जी!...

देवकी—(सहसा भावावेश में) मैं अपशकुन निकाल रही हूँ मुँह से! तुम लोग मुझी को दोष दे रहे हो। मैं दुनिया की उलटी राह पर कुढ़ रही हूँ, इसीलिए न! (थोड़ा रुक कर, दोनों हाथों से आँखें ढांपे रख कर, फिर शान्त-भाव से उमा को देखते हुए) ठीक है, बहू! ठीक है। असल में दोषी मैं ही हूँ। इसमें सब मेरा ही दोष है। (भावावेश में) अच्छा होता यदि मैंने जन्मते ही अपने ही हाथों उसका गला घोंट दिया होता? एक लड़की दुनिया से चली जाती तो कौन कमी आने लगी थी, संसार में कौन अन्धेरा हो चला था? अब जी कर, बड़े हो कर, पढ़-लिख कर किसी को कौन-सा सुख दे रही है? कौन बड़े काम कर रही है? कौन-सा माँ-बाप का, कुल का, गांव-गली या देश का नाम कर रही है? कौन-से झण्डे गाड़ रही है?

उमा—(नम्र भाव से) माँ जी, मैंने कहा है और फिर भी कहती हूँ, बीबी ने ऐसा कोई अनर्थ या पाप का काम नहीं कर दिया है जिसके लिए आप इस प्रकार दुःखी हो रही हैं। आज तो...

[तभी बाहर से चाची अम्माँ—वृद्धा, तदनुसार स्वच्छ वेष-भूषा, मोटा थल-थल शरीर, पोपले मुँह को बार-बार चलाती हुई—बाएं हाथ में सहारे के लिए लाठी और दाएं हाथ में रुद्राक्ष की माला लिए हुए—बाहर से आकर थोड़ी देर दरवाजे पर खड़ी होकर इधर-उधर देखती हुई उमा की बातें सुनती है।]

उमा—(देख कर) आओ चाची अम्माँ, आओ। वहीं क्यों रुक गई?

[देवकी देख कर, सिर का पल्ला ठीक करके, और भी दुःख-मुद्रा में तकिए पर कुहनी रख कर शून्य भाव से चाची अम्माँ को देखती है।]

चाची—(आगे बढ़ते हुए) देवकी, क्या हो रहा है?

देवकी—आओ, चाची अम्माँ! (संकेत से पलंग पर बैठाकर) क्या करना है चाची अम्माँ, अपने भाग्य को रो रही हूँ। और क्या?

चाची—(इधर-उधर देखते हुए और माला जपते हुए) वह तो है ही बेटी! बाप-दादा लगाएं, बेटा-पोता खाएं और बेटा-बेटी करें और माँ-बाप

मरें। यह कोई आज ही की रीत नहीं, बहू! (माला जप कर) आज तो दुनिया सिर पर पैर रख कर चलना चाहती है। नजर धरती पर नहीं आसमान पर रखती है। (माला जप कर) हम पिछले जमाने के लोगों को तो आज गम खा कर रहने की जरूरत है। (माला जप कर) एक तेरे या मेरे ही नहीं, आज घर-घर में यही हो रहा है। बेटा-बेटी माँ-बाप के मुँह पर कालिख पोत रहे हैं। (माला जप पर) मैंने तो बेटी! (माला दिखा कर) बस अब इसका आसरा ले लिया है। मैं बहू-बेटियों के न किसी तन्ते में पड़ती हूं न मन्ते में। स्याह करें या सफेद करें, उलटा करें सीधा करें, मेरी बला से।

[उमा थोड़ी देर बात सुन कर अंदर जाती है, चाची अम्मां उमा को अंदर जाते हुए देखती है।]

चाची—(उमा के चले जाने पर देवकी की ओर झुक कर, जैसे कोई रहस्य की बात पूछ रही हो, फुस-फुसा कर) उमा क्या कर रही थी?

देवकी—(उत्सुकता से देखते हुए) क्या कर रही थी?

चाची—यही कि बीबी ने कोई अनहोनी बात नहीं की है।

देवकी—हाँ।

चाची—(आश्वस्त होकर माला जपते हुए) हाँ, क्यों न कहेगी, बहू! न अपने कुल की, न जात-बिरादरी की, न प्रान्त की। आप जाट होकर ब्राह्मण के घर आई है, बङ्गालिन होकर पंजाबी के आ पड़ी है, अनहोनी तो इसने भी कुछ नहीं की। बाप रोता रह गया, माँ कलपते-कलपते मर गई, भाई-बहिन समझाते-समझाते हार गए। अनहोनी तो कुछ भी नहीं हुई। सब होनी तो हो रही है। हुँह! (जल्दी-जल्दी माला फेरती है), थोड़ी देर बाद) बेटी, आज-कल तो माँ-बाप बनना ही पाप है। नहीं क्या?

[चाची के अन्तिम वाक्य बोलते और पूछते शङ्कर—युवक, सुन्दर, भव्यवेष—हाथ में वायलन लिए आता है।]

शंकर—(आगे बढ़ कर चाची अम्मां को नमस्कार करते हुए) चाची अम्मां, क्या बात है, आज किस की बखिया उधेड़ रही हैं? (वायलन रखकर बैठते हुए) किस की शामत आई है, जो तुम्हारा यह रेडियो इस कदर बज रहा है?

[चाची अम्माँ पहले सहसा घबड़ा जाती है फिर सम्भल कर जल्दी-जल्दी माला फेरती हुई हँसती है।]

देवकी—(आँखें दिखा कर ताडना-पूर्वक) शङ्कर, बड़ों का इस तरह इज़्ज़त-मान किया जाता है?

चाची—(गरजते हुए) नहीं बहू, बच्चा है, कहने दे। मैं कोई इसके कहे का बुरा थोड़े मानती हूँ। मैं तो कहती हूँ जैसा मेरा पवन वैसा यह।

देवकी—हाँ चाची अम्माँ, तभी तो जैसे इसके पवन चाचा ने मद्रासन किरिस्टान लड़की से व्याह किया उसी तरह यह भी बङ्गालन को घर लाया और अब इसकी बहन...

शंकर—शान्ति ने जलवा दिखा दिया। यही न! अम्माँ! (थोड़ा रुककर आगे झुककर) मैं कहता हूँ, आखिर इसमें बुराई कौन-सी है!

देवकी—(धीर स्वर में) ठीक है बेटा, तो मैं कब कह रही हूँ बुराई है। पवन ने किया, तूने किया, अब तेरी बहन ने कर लिया, सभी दुनिया आज एक है, एक-सी कर रही है, मैं कब मना करती हूँ।

शंकर—अम्माँ, उमा तुम्हारे घर आयी है। आखिर तुमने उसमें अपने घरों की लड़कियों से कौन-सी कमी पाई है, स्वभाव की, संस्कार की, प्रेम की, सम्मान व रीत-व्यवहार की?

चाची—शंकर, सुन! जो तूने कहा वह ठीक है। लड़कियों में कोई फरक नहीं होता, नहीं है। फिर भी बेटा, लड़कों की बात दूसरी है। बेटा दूसरे देश की या जात-विरादरी की लड़की अपने घर में ले आए तो कोई बात नहीं।···

शंकर—(टोक कर) लेकिन, बेटी दूसरे के घर चली जाय तो अनर्थ हो जाता है, आखिर क्यों?

चाची—क्योंकि वह लड़की है? उसे दूसरे के घर जाना होता है। इसमें अपनी इज्जत-बेइज्जती का सवाल आता है।

शंकर—वाह, यह भी कोई तर्क हुआ? कोई बुराई हो तो बताओ?

चाची—बुराई यही कि एक-दूसरे देस या जात-

बिरादरी वालों से दूसरे देस या जात-बिरादरी वालों का कोई ताल-मेल नहीं बैठता।

देवकी—वह सब बैठ जाता है, चाची!

चाची—(चौंक कर) ऐं क्या? तुम भी ऐसा कहती हो देवकी! तू भी ऐसे व्याह और रिश्ते ठीक मानती है?

शंकर—जो बात ठीक होगी उसे एक अम्माँ क्या सभी मानेंगे, चाची! रही बात ताल-मेल बैठने की? वह सब हो जाता है। सम्बन्ध होने पर, मेल-जोल से प्रेम बढ़ जाता है, और फिर अपने लिए कोई अजीब या अजनबी नहीं रह जाता।

चाची—मैं यह सब नहीं मानती। (जल्दी-जल्दी माला फेरती है।)

देवकी—आज यह मानने न मानने की बात नहीं रह गई है चाची!

चाची—तब रोती क्यों है री, अगर तेरी बेटी किसी के घर चली गई?

देवकी—इसलिए नहीं रो रही हूँ कि वह दूसरे के घर चली गई है। वह तो उसे एक दिन जाना ही था। लेकिन··· ···

चाची—लेकिन क्या?

देवकी—मैं उसके इस रिश्ते के ढंग पर रो रही हूँ। जिस तरीके से उसने अपना यह चुनाव किया है उसी का मुझे दुःख है। (थोड़ा रुककर सम्भल कर बैठते हुए) तुम्हीं कहो चाची! तुमने अपने बेटे-बेटी भी पाले हैं और अब पोते-पोती भी खिला रही हो। आखिर किसी उम्मीद पर, कोई आस लेकर ही न! क्या जन्म देते ही, गोद में लेते ही माँ अपनी संतान का कोई चाव नहीं करना चाहती? अपने बेटा-बेटी को इंच-इंच बड़ा करते क्या माँ के मन में उसके किसी कारज करने की, बड़े होकर कहे पर चलने की, इज्जत या मान पाने की क्या चाह नहीं होती? हविस नहीं रहती? वही सन्तान बड़ी होकर, पढ़-लिखकर जब अपने शादी-व्याह जैसे मामलों में माँ-बाप को दूध की मक्खी की तरह बाहर निकाल देती है, एक परदेसी की तरह या एक दुश्मन की भाँति ठुकराती है या लात मारती है तो क्या माँ-बाप का दिल नहीं टूटता? क्या इसी दिन के लिए, ऐसे ही व्यवहार के लिए मां-बाप संतान कोजन्म देते हैं, और उन्हें पाल-पोस कर बड़ा करते हैं? तुम्हीं कहो चाची, किस माँ-बाप का दिल नहीं टूटता? (थोड़ा रुक कर) बोलो तो, तुम्हारे पवन ने क्रिश्चियन कर ली, तुमने उसे अपना भी लिया, लेकिन क्या उससे तुम्हारे बेटे के व्याह करने के अरमान पूरे हो गए? जो उछाह, जो उमंग उसे दिन-दिन बड़ा करते तुमने मन में संजो रखे थे क्या वे पूरे हो गए? (थोड़ा रुककर) मैं इसी बात को रोती हूँ चाची! मुझे और कुछ दुःख नहीं, कोई शोक नहीं, किसी तरह का पछतावा नहीं?

चाची—वह सब भाग की बात है, बहू! हमने-तुमने ऐसे पुण्य नहीं किए थे, समझ लो!

शंकर—पुण्य तो तुमने और अम्माँ ने बहुत सारे किए हैं, उसी का फल तुम्हें मिला है। बस जरा समझ-भर का फेर है।

[दोनों आश्चर्य व उत्सुकता से शंकर की ओर देखते हैं।]

चाची—वह कैसे रे!

शंकर - यह तो कहो चाची तुम्हें और अम्माँ को आम-के-आम और गुठली के दाम मिले हैं।

चाची—तू बता तो कैसे?

शंकर—वह किसी-किसी भागवान् को मिलते हैं? धन्य भाग समझो अपने।

[सहसा लापरवाही से वायलन खोलकर स्वर ठीक करता है।]

चाची—तू कुछ कहेगा भी फिर··· ···

शंकर—(दो-एक बार बजा कर) मैं एक बात पूछूँ तुम से?

चाची—क्या?

शंकर—हमारे यहाँ लड़के और लड़कियों के व्याह-रिश्ते इसीलिए रुके रहते हैं कि संबन्ध के लिए हम लोग अपने छोटे-से देश और जात-बिरादरी में चक्कर काटते रहते हैं। उससे आगे नहीं निकलना चाहते। इसके लिए बड़े-बड़े दान-दहेज मांगे व दिए जाते हैं। और फिर देने-न-देने वाले दोनों तबाह होते रहते हैं। देश की और मानवता

की एकता के लिए ही नहीं; पैसे और सामाजिक सुख के लिए भी यह आवश्यक है कि हम शादी-व्याह के बारे में जाति-विरादरी और देश के घेरों से बाहर निकलें। लेकिन, इतना साहस किस में है जो ऐसा कर सके, इन दीवारों को तोड़े या तोड़ सके?

चाची—(टोक कर) तो वह माँ-बाप भाग्यवान् हैं जिनके बेटा-बेटी ऐसा करते हैं··· ···

शंकर—(टोक कर) बस यही मैं कहना चाहता था। तभी मैंने कहा आम के आम मिलते हैं गुठली के दाम। व्याह-रिश्ता भी होता है, पैसा भी बचता है। दान-ददेज की कुप्रथा दूर होती है और देश और विश्व में एकता और बन्धुत्व की भावना भी पैदा होती है।

चाची—(सहसा उठकर लाठी सम्भाल कर चलते हुए) हुँह, आम-के-आम गुठली के दाम! (दो कदम आगे बढ़कर, घूमकर रुककर) आज के तुम-जैसे लोगों के सोचने और काम करने का ढंग ही निराला हो गया है। (आगे बढ़ते हुए) हुँह, आम-के-आम गुठली के दाम! क्या मजाक है! (जल्दी-जल्दी माला फेरती हुई दो कदम चलकर फिर घूमकर रुककर) अरे हाँ, देवकी, बेटी, मैं जो बात कहने आई थी वह तो भूल ही गयी। कथा सुनने मन्दिर चलोगी?

देवकी—(उठते हुए) हाँ, तुम चलो मैं कपड़े बदलकर तुम्हारे यहाँ आती हूँ।

[चाची बाहर और देवकी अन्दर जाती है। शंकर उठकर पलंग पर बैठकर वायलन पर कोई धुन बजाता है, नेपथ्य में अन्य तबला आदि वाद्य सहयोग देते हैं।

थोड़ी देर बाद धुन समाप्त होते-होते बाहर से आवाज आती है—चिट्ठी ले जाइए बाबू जी, चिट्ठी!]

शंकर—(बाहर की ओर देखते हुए) कौन?

[बाहर से—पोस्टमैन! चिट्ठी ले जाइए। बाबू शंकरलाल वकील!

शंकर वायलन रखकर बाहर से जाकर पत्र पढ़ते हुए आता है।]

शंकर—(जल्दी-जल्दी पत्र पढ़कर समाप्त करके) अरे, उमा! उमा! कहाँ हो। सुनो तो! (उमा के आने पर) शांति के काम पर और भी मुहर लग गई।

उमा—कैसे?

शंकर—चिट्ठी आई है। लो पढ़ो।

[पत्र देता है। उमा पढ़ती है।]

शंकर—अम्माँ गई क्या?

[उमा पढ़ते हुए हाथ के संकेत से बोलने से रोकती है और सिर से 'न' करती है। अंदर से देवकी स्वच्छ वेष में आती है।]

देवकी—क्या है? किसकी चिट्ठी है।

शंकर—बाबू जी की!

देवकी—तेरे पिता जी की? क्या लिखते हैं?

(पलंग पर बैठते हुए) पढ़ तो बेटी! (हाथ से पकड़ कर उमा को समीप बैठाती है।)

उमा—लिखा है (पढ़ते हुए) शान्ति के रिश्ते के बारे में मुझे यहाँ से भी निराश होना पड़ा। यहाँ भी सम्बन्ध करना हमारे बूते के बाहर है। इस प्रकार तुम देख रहे हो यह चौथा सम्बन्ध टूट रहा है। शान्ति की बढ़ती हुई शिक्षा के साथ उसके लिए योग्य वर की कीमत पाँच हजार से बढ़ते-बढ़ते अब बीस हजार पहुँच गयी है। शान्ति मिडिल थी तो मैट्रिक पास वर की कीमत पाँच हजार मांगी गई। शान्ति मैट्रिक हुई तो ग्रेजुएट लड़के के दस हजार मांगे गए। फिर शान्ति ग्रेजुएट हुई तो एक वकील बेटे के बाप ने पन्द्रह हजार मांगे। अब शान्ति स्वयं एम. ए. पीएँच. डी. है तो इंजीनियर बेटे के इंजीनियर बाप ने बीस हजार की बोली लगाई है। यह हाल है! एक मेरे क्या हजारों का यह हाल है।··· ···लेकिन, परमात्मा बड़ा कारसाज है उसके घर देर है, अंधेर नहीं। शान्ति का अपना पति स्वयं चुनने और विवाह कर लेने के संबंध में पत्र मुझे यहीं मिला। मैं तो जैसे उबर गया हूँ। जो साहस मैं न कर सका, वह उसने कर दिखाया है। उसने यूनिवर्सिटी के अपने ही विभाग के एक जर्मन डाक्टर प्रोफेसर से अपना सम्बन्ध स्थिर कर लिया है। मैं इससे सहमत हूँ। मैं अब भटकने से बच गया हूँ। शान्ति मेरे पहुँचने से पहले ही कदाचित् वहां पहुँच गयी

होगी या पहुँच जाएगी। मैं भी दो-एक दिन में घर पहुँच रहा हूँ। तुम उसे व उसके पति को तब तक वहीं रोके रखना।

[समाप्त करके पत्र बन्द करती है।]

देवकी—लाओ चिट्ठी मुझे दे दो। (पत्र लेकर अपनी जेब में रखते हुए) चलो जो हुआ ठीक ही है। (उठते हुए) अच्छा मैं चाची अम्माँ को कह आती हूँ, फिर आऊँगी।

उमा—(साथ-साथ उठते हुए) अम्माँ जी, जल्दी आना! शान्ति बीबी शायद आती ही होंगी।

देवकी—हाँ, बस इन्कार करके अभी आती हूँ [। जाती है।]

शंकर—(जोर से) अम्माँ, जरा चाची अम्माँ को भी पिता जी का पत्र खुलासा करके सुना देना। रेडियो से फिर समाचार मुहल्ले-भर में फैल जाएगा।

उमा—(पलंग पर बैठते हुए, आँखें तरेर कर भंगिमा से) आप भी क्या हैं! बड़ों के बारे में क्या इस तरह कहना चाहिए!

शङ्कर—(भङ्गिमा से) ओह! गलती हुई। अच्छा श्रीमती जी, बड़ों की बुराई नहीं करनी चाहिए। नहीं करूँगा, अबकी कान पकड़ता हूँ।

[खड़ा हो कर, कान पकड़ कर उमा की ओर झुकता है। तभी शांति—युवती, गौर-वर्ण, स्वच्छ, सुन्दर व सादा वेष—हाथ में अटेचीकेस लिए आती है।]

शांति—(स्वर से) भाभी! भैया!!

उमा—(देख कर प्रसन्नता से चिल्ला कर) अरे शांति बीबी! (शङ्कर के कन्धे पर हाथ मार कर) पीछे देखो!

[आगे बढ़ कर शांति को गले लगाती है। शङ्कर भी आगे बढ़ कर उमा को प्यार करता है। उमा शांति को ले कर पलंग पर बैठती है, शङ्कर कुर्सी पर।]

उमा—कब आई?

शांति—बस, अभी-अभी आ रही हूँ।

शङ्कर—आने की न कोई खबर न चिट्ठी!

उमा—हम तो तुम्हारे आने की इन्तजार ही कर रहे थे।

शांति—वह क्यों? तुम्हें कैसे मालूम मैं आ रही हूँ?

शङ्कर—बाबू जी का पत्र अभी-अभी आया है।

शांति—(उत्सुकता से) बाबू जी का पत्र! क्या लिखा है? मेरे बारे में भी कुछ लिखा है?

शङ्कर—हाँ, एक तरह वह पत्र तुम्हारे ही बारे में है। बाबू जी तुम्हारे किए संबन्ध से सहमत हैं।

उमा—(पीठ थपथपाते हुए) बीबी, बाबू जी ने तुम्हारे इस चुनाव के साहस की प्रशंसा भी की है।

शांति—(लिपट कर) हाय, सच भाभी! बाबू जी मेरे चुनाव से प्रसन्न हैं। मैं तो डर रही थी।

शङ्कर—उन्होंने तो यहाँ तक लिखा है कि तुमने उन्हें उबार लिया है। दर-दर भटकने से, लज्जित होने से बचा लिया है।

शांति—(प्रसन्न होकर) हाय, सच भैया! और अम्माँ जी...

शङ्कर—पहले वे कुछ दुःखी थीं, लेकिन अब सहमत हैं।

शांति—पहले मुझे बहुत-बहुत कोसती होंगी? कलमुंही कलङ्किनी कहती होंगी?

शङ्कर—पहले-पहल जब तेरा पत्र आया था ऐसा ही था।

शांति—अच्छा! और अब?

उमा—अब तो प्रसन्न हैं। कहती हैं—जो-कुछ हुआ सब ठीक है।

शांति—(प्रसन्नता से) हाय, सच कहती हो भाभी!

उमा—(पीठ पर धौल मार कर) मर क्यों रही हो। आयेंगीं तो स्वयं देख-पूछ लेना।

शङ्कर—(उठते हुए) तुम दोनों बैठो। मैं तब तक शांति के मुँह-हाथ धोने के लिए गर्म पानी और नाश्ता तैयार करता हूँ।

[जाने लगता है।]

उमा—पर यह तो बताओ बीबी, अकेली कैसे आई? वे कहाँ हैं?

[शङ्कर जाते-जाते रुक कर उत्सुकता से सुनता है।]

शांति—वे कौन?

उमा—(धौल जमा कर) प्रोफेसर साहब, हमारे ननदोई, और कौन! अब बनती हो?

शांति—(उमा का हाथ पकड़ कर उठाते हुए शङ्कर से) भैया, तुम बैठो। मैं और भाभी अन्दर जाती हैं।

[उमा के साथ जाती है। शङ्कर बैठ कर वायलन पर यों ही धुन बजाता है। तभी देवकी और चाची अम्माँ बातें करते हुए बाहर से आती हैं।]

चाची—(आगे बढ़ते हुए) चलो अच्छा हुआ। शांति की भी चिन्ता मिटी। जो किया सब सही, सब ठीक है बहू! बड़ी खुशी की बात है! सिर का बोझ उतरा! हाँ और क्या!

देवकी—(अटैची देख कर) अटैची तो शांति की लगती है। (उत्सुकता व प्रसन्नता से) शङ्कर, क्या शांति आ गई?

शङ्कर—हाँ अम्माँ!

चाची—(पलंग पर बैठते हुए प्रसन्नता व उत्सुकता से) ऐं शान्ति आ गई!

देवकी—कहाँ है? [पलंग पर बैठती है।]

शङ्कर—अन्दर है। (पुकार कर) अरे शांति, देख अम्माँ और चाची अम्माँ आ गईं।

[नेपथ्य से—'आई भैया, अम्माँ, चाची अम्माँ, अभी आई।]

चाची—(शंकर से) अरे तो क्या अकेली आई है या ..

शङ्कर—यहाँ तो अभी अकेली आई है।

चाची और देवकी—(चौंक कर एक साथ) ऐं, अकेली!

[तभी शांति उमा के साथ आकर, देवकी-चाची के बीच बैठ कर, बारी-बारी से गले लगती है।]

चाची—और तेरे वो कहाँ?

देवकी—हाँ सच है री! तेरे बाबू जी ने तो लिखा है कि...

[शांति मुस्कराती हुई उमा की ओर देखती है।]

उमा—अम्माँ, वे-वो कुछ नहीं हैं। बीबी ने एक कहानी गढ़ी थी। हम सबों का मन लेने को यह मजाक किया था।

चाची और देवकी—(चौंक कर एक साथ) ऐं क्या?

[शङ्कर भी चौंकता है। थोड़ी देर तक सब विभिन्न मुद्राओं में मौन रहते हैं।]

चाची—वह सब एक कहानी थी? सच री!

उमा—हाँ, चाची!

शङ्कर—वह एक मज़ाक था? सच शांति!

शांति—हाँ भैया।

[चाची आश्वस्त मुद्रा में माला फेरती है। देवकी उदास-गम्भीर हो जाती है। शांति-उमा मन्द-मन्द मुस्कराती रहती हैं। शङ्कर निर्विकार सबकी ओर देखता रहता है।]

चाची——(आश्वस्त भाव से) तभी कहूँ मेरी बेटी ऐसा कैसे कर सकती है! (थोड़ा रुक कर) यह अच्छा मजाक रहा।

[प्रसन्नता से आंखें बन्द कर माला जपती है।]

देवकी—(उदास स्वर में) चाची, सच पूछो तो यह अच्छा मज़ाक था यदि पूरा हो जाता। (थोड़ा रुक कर) अब इसके बाबू जी आकर इसे मजाक ही सुनेंगे तो उनके दिल पर...

[सहसा मौन होकर शून्य में देखती रहती है। नेपथ्य में भावपूर्ण वाद्य बज उठता है। सभी गम्भीर मुद्रा में हैं। केवल चाची अम्माँ आँखें मूंदे माला जपती है।]

[पर्दा गिरता है।]

"जीवन, साहित्य अथवा ललितकला में जिन्होंने कोई बड़ी सृष्टि की है, चाहे सौन्दर्य को आकार प्रदान किया हो, चाहे किसी महत् भाव को प्रकट किया हो, वे किसी देश विशेष के नहीं हैं, उन पर किसी एक देश का अधिकार नहीं है। जिसने सत्य, शिव, सुन्दर को देखा है, वह चाहे कहीं का हो, वह सभी देशों और कालों के लिए है।"

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

श्री रामदेव

टूटे साज़—भटके गीत

हैदराबाद से लौटते समय अजन्ता की गुफाएँ देखने का मोह हो आया। एक भित्ति-चित्र के आगे मुझे टकटकी बांधे देख मेरे साथी कहने लगे—"इसी रफ्तार से देखिएगा तो महीनों लग जाएँगे।" मैंने कहा—"जो देख रहा हूँ, उसे देखने के बाद अधिक सहेज पाने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।"

बुद्ध, यशोधरा के द्वार पर भिक्षा-पात्र लेकर आए थे। यशोधरा क्या देती? उसका स्वामी, भिखारी बनकर द्वार पर उपस्थित हुआ था। एक ही लाल बेचारी के पास बचा था, वही 'राहुल' उसने अपने सर्वस्व की झोली में डाल दिया। सर्वस्व को सर्वस्व देकर मुक्त हो गई। यूं लगता है मानो किसी चितेरे ने भावना में डूब कर चित्र नहीं आंका था, एक सजीव घटना है जो हमारी आंखों के सामने घट रही है।

इतिहास के पन्ने आंखों के आगे फरफराते रहे। कितने ही राजा और शहन्शाह, राज्य-सत्ताएँ और हुकूमतें, दुर्गों और किलों के द्वारों से निकलती उनकी विजय-वाहिनियां और फौजें धूल उड़ातीं, पताकाओं को फहरातीं रक्तरंजित तलवारों और नेज़ों की चमक से आंखों को चौंधियातीं सामने से गुज़र गईं। फिर खण्डहरों में भटकती और अपनी गूंज से टकरा कर टूटती आवाजों के सिवाय कुछ भी नहीं रहा। इन सभी भटकी और टकरा कर टूटती आवाजों को दुलराती एक भावमयी करुणाभीगी आवाज़ सुनाई दी—"मोग्गलान, राहुल को सम्बुद्ध बनाओ। बुद्ध के पास इस बुद्ध के अतिरिक्त देने को है ही क्या!"

अचानक कानों में वेद-वाक्य गूँजा, "पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ···।" उसी में से भगवान् कृष्ण के स्वर गूंजे, "यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्··· ···।" उन्हीं स्वरों में भगवान् शंकराचार्य की वाणी घुल-मिल गई, "नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम अन्तर्बहि:शून्यमनन्यमात्मन:—विज्ञाय सम्यङ् निजरूपमेतत् पुमान् विपाप्मा विरजो विमृत्युः।" फिर न-जाने कैसे वेद, कृष्ण, शंकर और बुद्ध की आवाज़ें मिलकर एक हो गईं 'मानव को सम्बुद्ध बनाओ—मानव को सम्बुद्ध बनाओ।' वही आवाज़ चैतन्य, कबीर, रैदास, नानक, नामदेव और रामदास की वाणियों में मुखरित हो उठी, बहती रही, फूलती-फलती रही। आंधी-तूफानों में उसी आवाज़ को रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ ने अपनी अटूट साधना द्वारा बचाया बढ़ाया।

एक बार फिर लोहू-सनी तलवारों ने इस आवाज़ को मारना चाहा तब यह नवाखली की पगडण्डियों पर घायल तलवे लिए हुए घूमी ताकि लोक-हृदय इसे अपने नन्हें-नन्हें घरों में जगह दे सके।

यह आवाज़ भी इसलिए अमर है, क्योंकि इसे कोरे ज्ञान अथवा अहं ने नहीं, अपितु भावना और साधना ने पाला-पोसा है। बुद्धिजनित सिद्धान्त हमें अपने भीतर उनका प्रतिबिम्ब खोजने पर विवश करते हैं परन्तु भावनाजनित बोलों का सम्पर्क सीधा हमारे हृदय से होता है, वहां तर्क की अथवा प्रतिबिम्ब खोजने की गुँजाइश नहीं रहती।

यदि आज एक ओर नीरस मानव मस्तिष्क वैज्ञानिक प्रगति कर रहा है तो दूसरी ओर सरस मन के अभाव में उसी प्रगति के क्षितिज पर महाविध्वंस के काले बादल भी उमड़-घुमड़ रहे हैं। क्योंकि नीरस मस्तिष्क में कृष्ण की नीति ही समाती है सुमधुर बांसुरी के स्वर नहीं समा पाते; अतः समझ में नहीं आता कि यदि ये काले बादल मूसलाधार बरस भी गए तो गोवर्धन किन उंगलियों पर उठेगा।

बुद्धिवृत्ति और रागात्मिकावृत्ति से मिलकर जीवन-वृत्त बनता है। इस पूर्णवृत्त के अभाव में जीवन के केन्द्रबिन्दु मानव आत्मा को समझ पाना कठिन है। जब तक केन्द्रबिन्दु को न समझा जाए तब तक मानव-आस्था डगमगाती रहती है और सत्य के खण्डित रूपों पर ही व्यष्टि और समष्टि मुग्ध होते रहते हैं। जीवन प्रतिपल गतिमय है अतः सत्य निरन्तर विकसित है। इस निरन्तर विकसित सत्य को ज्ञान की, विभिन्न

दर्शनों की और वादों की समानान्तर छोटी-बड़ी रेखाएँ लगा कर शायद नापा तो जा सकता है परन्तु उसकी अथाह गहराई तक उतरा नहीं जा सकता। मानव-मन की थाह पाना कठिन है और भावना के अतिरिक्त जोकि स्वयं असीम है इस जीवन-सत्य की गहराई तक पहुंचना असम्भव है। ज्ञान, अहं के तुरंग पर सवार होकर बढ़ता है अतः ठोकर खाता है, गिरता है और फिर संभलता है; भावना अहंविसर्जन की ऊँची-नीची तरंगों पर तैरती हुई आगे बढ़ती है अतः मन की लहर से सम्पृक्त रहती है, सामञ्जस्य बना रहता है।

उपदेशक ज्ञान के माध्यम से श्रोताओं तक पहुंचता है। श्रोता उसे अपने-अपने संचित ज्ञान से ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं अतः कहने और सुनने वाले में शंका और तर्क की गुञ्जाइश बनी रहती है। कवि या गायक भावना द्वारा श्रोता तक पहुंचता है अतः तर्क और शंका की गुञ्जाइश समाप्त हो जाती है। एक ही तार गाने वाले और सुनने वाले के मन में बजता रहता है।

इस यन्त्र-युग की भागमभाग में क्योंकि यह मन का तार टूट गया है अतः मन-से-मन जोड़ने वाले गीत भटक गए हैं। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र; पूंजी और शक्ति के माध्यम से दूसरों पर काठी जमाना चाहते हैं और अपनी इस सीनाज़ोरी को छिपाने के लिए अपनी-अपनी कूटनीतिक चालों को नाना प्रकार के बहुरंगी और आकर्षक दर्शनों के झिलमिलाते आवरणों से सजा-संवार कर दुनिया को ठगना चाहते हैं। गीतों के उखड़े-उखड़े बोलों के कारण आज कबीर का ताना-बाना टूट गया है। कहीं पूंजी श्रम से उलझ रही है और कहीं श्रम पूंजी से उलझ रहा है। इस उलझे ताने-बाने को देख कबीर बेचारे सिर धुन रहे हैं।

जहाँ ज्ञान हतोत्साह होकर बैठ जाता है, वहां भावना आगे बढ़ती रहती है। सारे महाभारत में बड़े-बड़े महारथी कभी-न-कभी हतोत्साह हुए, एक कृष्ण ही ऐसे रहे जिन्हें निरुत्साहिता ने कभी नहीं घेरा। कृष्ण ने ज्ञान को भावना से अलग करके कभी भी नहीं देखा परखा। यदि ज्ञान और भावना में असामंजस्य होता तो भगवान् कृष्ण युद्धभूमि में गीता का उपदेश कभी न दे पाते।

हमारे कथा-पुराणों में भावना को ही जीवन की स्फूर्तिदायिनी शक्ति दरसाया गया है। पण्डित का थोथा ज्ञान जहाँ पहुँच न सका धन्ना जाट की भावना वहां जा पहुँची। भगवान् को हल जोतना पड़ा और खेत सींचने पड़े तभी उन्हें किसान के घर भोजन मिला। गांधी जी कहते थे कि भारत गांवों और किसानों का देश है। इसी देश में जब हम नव-निर्माण की ओर अग्रसर हो रहे हैं तब भी पूंजीपति भगवान् बने बैठे हैं। उन्हें सोचना यही चाहिए जब तक कि उनकी पूंजी खेतों में उतर कर हल की मूठ नहीं पकड़ती और खेत नहीं सींचती तब तक धन्ना की साधना निरन्तर चलती रहेगी। श्रम भी यह मत भूले कि उसे धन्ना की परम्परा को ही निभाना है, महिषासुर या भस्मासुर नहीं बनना है। ऐसी चेतना यदि जागृत हो जाए तभी सही अर्थों में अटूट और अजेय भावनात्मक एकता स्थापित हो सकेगी।

चीन के आकस्मिक और अप्रत्याशित अभ्याक्रमण से देश जिस संकट में से गुज़रा है उससे भावनात्मक एकता का वातावरण बना अवश्य है, परन्तु उस वातावरण को श्रम और पूंजी में सामंजस्य स्थापित किए बग़ैर बनाए रखना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। श्रमिक और किसान इसलिए विक्षिप्त है कि उसका श्रम देश के उत्पादन तो बढ़ाता है परन्तु उसकी भूख और बेरोज़गारी को पूर्णरूपेण नहीं मिटा पाता। पूंजीपति इसलिए उन्मादग्रस्त है कि संचय की अधिकता उसकी पाचन-शक्ति को बिगाड़ रही है और उसे कृत्रिम उपायों से बनाए रखने के लिए मदिरा-पात्र उसके होंठों से लगा रहता है। इस विक्षिप्तता और उन्माद की स्थिति में भावनात्मक एकता के गीत मानव-मन के खण्डहरों में भटक रहे हैं।

सब से बड़ी बात यह कि भारतीय नारी भावना की साक्षात् मूर्ति है। इसी नारी से हम कई शताब्दियों से, विक्षिप्तता और उन्माद में खिलौने की तरह खेलते आए हैं। इस निष्प्राण नारी में जब तक हम पुनः त्याग और साधना द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर पाते तब तक भावना के स्वरों का सजीव होना कठिन है।

इतनी गम्भीर समस्याओं और विघ्न-बाधाओं में भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। शायद इस

बार ये समस्याएं और विकट-बाधाएं मानव को अधिक समुन्नत बनाने के लिए ही समुपस्थित हुई हैं। इस देश की आत्मा अत्यन्त सशक्त और अजेय है। हमें जन्म लेते ही 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि...' और 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' की शिक्षाएं घुट्टी में मिलती हैं। जीवन सतत प्रवाहित है, आत्मा अजर है, अमर है, जिसने चोला धारण किया उसे पुराना और फटा चोला उतारना अवश्य है।

चाहिए यही कि पुराना चोला उतारने से पहले हम नया और स्वच्छ चोला तैयार कर लें। जिस प्रवाहित जीवन की हम कड़ी हैं आने वालों के लिए उससे अधिक सबल और सशक्त कड़ी बनने की प्रेरणा छोड़ जाएं। जब मृत्यु-दूत हमारा द्वार खटखटाए तो हम उसे, सुबह-सांझ, शरत् और बसन्त की रातों से, फल-फूल, दुःख-सुख और धूप छांह के अनुभवों से भरा जीवन-पात्र सहर्ष सौंप दें जो आने वालों के लिए उन्नत-भाल हो दिया जा सके। इसी मृत्युदूत की खटखटाहट को सुनकर ही तो भारत की माटी की भावना टैगोर के शब्दों में गूंजी थी, 'जा किछु मोर संचित धन एत दिनेर सब आयोजन, चरम दिने साजिये दिब उहारे मरण के दिन आसबे आमार दुआरे।"

इस देश का 'जवाहर' शायद 'मरण जे दिन आसबे आमार दुआरे' इस गीत की कड़ी को भूल नहीं पाता तभी इन विषम परिस्थितियों और विकट विघ्न-बाधाओं में भी सह-अस्तित्व, विश्व-मैत्री, सह-बन्धुत्व और विश्व-शांति की बातें करता है। लड़ता भी है तो गीता के निष्काम कर्मयोगी की तरह, विक्षिप्त और उन्माद-ग्रस्त होकर लड़ना उसकी आदत नहीं।

नवाखली के सन्त की वाणी मरी नहीं है। एक और सन्त उसे भारत के ग्राम-ग्राम में पिछले कई वर्षों से बराबर गली-गली, डगर-डगर घूम रहा है। टूटे साज के तार उसने जोड़ लिए हैं, जिन भावनाओं को जनता ने लोक-गीतों में सहेज लिया था वही गीत फिर से इस सन्त के दिल की तारों पर बज उठे हैं, वह आज भी कह रहा है 'मानव को सम्बुद्ध करो—मानव को सम्बुद्ध बनाओ' तभी प्रगति सार्थक होगी, ज्ञान और भावना में सामंजस्य होगा, मन और मन के बीच खाई मिटेगी, सौंदर्य और शिव सत्य की असीम राहों पर निरन्तर आगे बढ़ते रहेंगे।

एकता में बसती सुख-शान्ति

[श्री चन्द्रपालसिंह यादव 'मयङ्क']

एकता है उन्नति का मूल, एकता जीवन का आधार;
एकता जग-सरिता के बीच मनुज-जीवन-तरि की पतवार।
एकता मानव को उत्थान-समन्वय का देती सन्देश;
एकता में बसती सुख-शांति, मनुजता का कल्याण विशेष।

एकता का वर नियम सदैव प्रदर्शित करता सबल प्रभाव,
सृष्टि-क्रम में रवि-शशि-नक्षत्र-दिवस-रजनी का एक स्वभाव।
व्यतिक्रम का अनपेक्ष प्रवेश एकता में करता व्याघात,
तभी विग्रह-विनाश का खेल सृष्टि में रच देता उत्पात।

विविध संस्कृतियाँ-भाषा-भाव, विविध क्षेत्रज जातिगत प्रभाव।
भर रहे हैं जन-जीवन-मध्य द्वैत-भावना, विरोध, दुराव।
जहाँ है द्वैत, विरोध, दुराव—सदाशयता का कहाँ निवास?
रुदन मानवता का निःशब्द, कुण्ठित सन्देह, नहीं विश्वास।

विविध शब्दों में निःसृत हुई महापुरुषों के मुख से बात—
भावनामयी एकता मात्र मिटा कर विग्रह झंझावात
पोंछ मानवता के शोकाश्रु, विकल अधरों पर ला कर हास,
मिटा कर युग-युग का नैराश्य, भरेगी नव आशा-विश्वास।

एकता श्लाघनीय है सदा, इसी में मानव का कल्याण
इसी में उच्च लक्ष्य की प्राप्ति, निहित मानवता का उत्थान।
प्रथम शुभ चरण भावनामयी एकता का दिशि-दिशि संचार
बहेगी जिस से जन-जन बीच प्रेम-सौहार्द-सौख्य की धार।

❀ ❀ ❀

प्रा. कृष्णजी भटनागर

भावनात्मक एकता और काव्य

साहित्य जीवन की भावात्मक व्याख्या है। मानव-मन के भाव-पक्षों के सजीव चित्र श्रेष्ठ साहित्य में प्राप्त होते हैं। उसकी संवेदनाओं को—वह कब प्रेम करता है, कब क्रोध; कब घृणा से आप्लुत होता है, कब दया से आप्यायित; कब प्रतिशोध की झंझा उसे झकझोर डालती है, कब आर्द्रता की मलयानिल शीतल प्रसार पाती है; कब द्वन्द्व के दुराहे पर खड़े उस के सम्मुख अन्तर्विरोध की स्थिति होती है—साहित्य में अभिव्यक्ति मिलती है। मन के अप्रकाशित कोष्ठों को कवि अपनी प्रतिभा के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं।

और हृदय न कभी पुराना पड़ता है, न कहीं बदलता है। बाह्य-आकृति में अन्तर होने पर भी मानव की अन्तराकृति में मूलतया एकरूपता होती है। भावनाओं का एक ही तार सबकी हृत्तन्त्री को झंकृत करता है, रस का एक ही स्रोत सबकी अन्तर्-मूर्तियों में बहता है। उस पर बाह्य विभेदों का प्रभाव नहीं पड़ता। सभ्यता और स्वार्थों के स्तरों और आवरणों से घिरे रहने के कारण इस भावनात्मक-ऐक्य को हम भुलाए रहते हैं और जान कर भुलाए रखने का प्रयास करते हैं। अपने मन को धोखा देकर, उसकी सहज मूल वृत्तियों को बलात् दबा कर हम हर क्षण अभिनय करते हैं। कवि अपनी मर्म-स्पर्शिनी तीक्ष्ण दृष्टि से इन आवरणों को छिन्न-भिन्न कर मूल वृत्तियों या भावों को अनावरित रूप में प्रस्तुत कर देता है।

स्पष्टतः साहित्य में मनुष्य अकृत्रिम और 'साधारण' रूप में अपनी अभिव्यक्ति पाता है। कवि अपनी कविता द्वारा मानव-मात्र को उसके काल, स्थान एवं व्यक्तिगत क्षुद्र बन्धनों से उच्छिन्न कर उस अपूर्व लोक में ले जाता है जहां पार्थक्य नहीं रहता, अहङ्कार नहीं रहता, जहां ममत्व-परत्व के सामान्य विभेदों को वह भूल जाता है। वहां वह भावनाओं और अनुभूतियों का पिण्ड मात्र रह जाता है। वहां पहुँच कर राम अयोध्या-निवासी नहीं रह जाते, न प्रागैतिहासिक कालस्थित और न अवतार विशेष। उस लोक में न कोई हिन्दू रहता है न वैश्य, न गोरा न काला। वहाँ केवल मनुष्य रहते हैं जो दूसरों के दुःख में रो सकते हैं, प्रसन्नता में आनन्द-विभोर हो सकते हैं, अमानवीय प्रतारणाओं से उद्वेलित हो जिनकी भुजाएं फड़क सकती हैं। 'विश्व की अनुभूतियां ही हो गयीं अनुभूति मेरी' की इसी स्थिति में हमारी वृत्तियों का परिष्कार होता है, हृदय विशाल होता है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मङ्गलमयी भावना साकार होती है। भावनात्मक-एकता की इसी स्थिति को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भावयोग' की संज्ञा से अभिहित किया है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की एकात्मक अनुभूति जैसे ज्ञानयोग द्वारा साकार होती है, फल-निरपेक्ष कर्म की भावना जैसे कर्मयोग में अपनी चरम परिणति पाती है, ठीक वैसे ही मानवीय भावना-साम्य की प्रतीति भावयोग में प्रतिफलित होती है। यदि काव्य में मानव-हृदय को स्पर्श करने की यह क्षमता नहीं, यदि उसमें विश्वजनीन अनुभूतियों का सुखद आलेख नहीं तो वह कविता नहीं और चाहे जो हो।

सम्पादकीय



यह विशेषांक—

भारत की भावनात्मक एकता के विषय में 'विश्व-ज्योति' का यह वार्षिक विशेषाङ्क पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें विशेष रूप से प्रसन्नता और सन्तोष का अनुभव हो रहा है। कारण, विगत १२ वर्षों में लगातार अपनी शक्ति के अनुसार सांस्कृतिक सेवा सम्पन्न करती हुई यह पत्रिका इस अङ्क के साथ अब अपने १३वें वर्ष में पदार्पण कर रही है।

भारत में वर्तमान समय का सर्वाधिक चर्चित विषय यही है कि इस देश की भावनात्मक एकता, जिसकी आवश्यकता सर्वत्र प्रतीत हो रही है, क्योंकर सम्पन्न हो। इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए कितने ही विचार-मञ्च सज चुके हैं, परन्तु अभी तक कुछ विशेष परिणाम हुआ प्रतीत नहीं होता। गत वर्ष के चीनी-आक्रमण के फल-स्वरूप यह विशेष रूप से अनुभव किया जा रहा है कि यदि हमारी राष्ट्रीय एकता पुष्ट नहीं हो पाती, तो, हो सकता है कि हम एक सहस्र वर्ष के उपरान्त पुनः प्राप्त अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित न रख सकें। निश्चय ही एक भारतीय हृदय इस अति भयङ्कर आशङ्का और चिन्ता से मुक्त ही रहना चाहता है।

भारत की भावनात्मक एकता मुख्य रूप से एक आध्यात्मिक तत्त्व है। यह हृदय के उस गूढ़ तथा अन्तर्निहित सांस्कृतिक विकास का संकेत है, जो इस डेढ़ हज़ार मील चौड़े तथा दो हज़ार मील लम्बे भूप्रदेश के प्रत्येक मानव को प्रेरित करता है। यह भावना भारत की संस्कृति में अति प्राचीन काल से विद्यमान है तथा इसी से सञ्चालित होते हुए हम अपने इतिहास की पिछली पांच सहस्र-वर्षीय महायात्रा पूर्ण कर सके हैं।

परन्तु अपने इस दीर्घकालीन इतिहास के सैकड़ों वर्ष ऐसे निकले हैं जिनमें हम मानवोचित ढङ्ग से सिर ऊंचा कर, छाती ठोंक कर और सीधा देखते हुए नहीं चल पाए, बरन्, मानो, पशुवत् पीठ तिरछी रखे हुए, दूसरों की लाठी के आगे चलते चले आए हैं। जिन असद्भावनाओं के कारण हमें दुर्गति के ऐसे काले दिन देखने पड़े थे, वे अभी गई नहीं, वे इधर-उधर सर्वत्र सिर उठाती ही रहती हैं। वे हैं हमारी प्रान्तपरक, जातिपरक, धर्मपरक, भाषापरक तथा लिपिपरक विभिन्नताओं पर आधृत सङ्कीर्णताएं। इन्हीं के कारण हम अनेक टुकड़ों में बंटे रह जाते हैं और अपनी राष्ट्र-व्यापिनी एकता और अखण्डता की प्रबल, जीवन-प्रद ज्योति खो बैठते हैं। वर्तमान युग की मांग तथा आवश्यकता तो एक ऐसे विश्व-समाज का निर्माण करना है, जो व्यापक मानवता के सद्गुणों से पूरित हो। अपने घर में पहले सम्पूर्ण राष्ट्र की भावनात्मक एकता तथा समानता को उपलब्ध किए बिना हम इस महान् उद्देश्य की सार्वभौम निष्पत्ति के लिए कैसे अपना कन्धा आगे करके दूसरों के कन्धों के साथ जोड़ सकते हैं ?

स्वतन्त्रता के इस नवयुग में पहली आवश्यकता यह है कि हम पञ्जाबी, मराठी, मद्रासी या बङ्गाली न रह कर "भारतीय" बनें। कहने में यह जितना सरल प्रतीत होता है, व्यवहार में यह उतना ही कठिन

है। इसके लिए हमें अपने मनोभावों का, जो अब तक प्रान्तीय भावनाओं से भरे रहे हैं, आमूल शुद्धीकरण करना होगा। हमें अपने को श्रेष्ठ तथा अन्यों को हीन मानने की प्रवृत्ति का सर्वथा त्याग करना होगा। हमें अन्य भाषाओं तथा उनके साहित्य को ग्रहण करना होगा। इसी की सुविधा के लिए देवनागरी को सभी भारतीय भाषाओं की लिपि स्वीकार करने का विचार रखा जाता रहा है। हमें एक ऐसा संयुक्त राष्ट्रीय जीवन विकसित करना होगा जिसमें विविध प्रदेशों तथा समाजों की उत्तम विशेषताएं हों तथा जो उनकी हानिकर सङ्कीर्णताओं से रहित हो। यह महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य है और हमें इसे करना है।

यही इस विशेषाङ्क का मुख्य विषय है, जिस के विभिन्न पक्षों पर लेखकों ने इसके पृष्ठों में विचार किया है। उन्होंने जिस प्रेम और प्रीति के साथ सदा की भांति इसके निर्माण में सहयोग दिया है, उस के लिए हम हृदय से उनके आभारी हैं। इस बात की हमें बड़ी प्रसन्नता है कि दक्षिण भारतीय लेखकों का सहयोग इस बार विशेष रूप से प्राप्त हुआ है। इसे हम भावनात्मक एकता की ही दृष्टि से अपनी महत्त्वपूर्ण प्रगति मानते हैं। खेद है कि स्थानाभाव के कारण कुछ लेख इस अङ्क में नहीं भी जा सके। उन्हें आगामी अङ्कों में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जायगा।

—विश्वबन्धु

संस्थान-समाचार

सज्जन-समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१. श्री ऐंच. के. प्रमाणिक, कलकत्ता; २. श्री बंसीधर, होशिआरपुर; ३. प्रो. रामपाल, मलेरकोटला; ४. डा. हरिदत्त, कानपुर; ५. प्रो. शशिधर, चण्डीगढ़; ६. प्रो. प्रभुदत्त स्वामी, मेरठ; ७. श्री गोपालसिंह कौमी, जालन्धर; ८. श्री गंगाधर विभानी, उज्जैन; ९. श्री देवानन्द बेरी, सहारनपुर; १०. श्री डी. पी. सूद, फलोदी (जोधपुर); ११. श्री हरिदेव सूद, देहरादून; १२. श्री हरविलास सूद, होशिआरपुर; १३. श्री जतेन्द्रसिंह, पठानकोट; १४-१५. श्री व्यापककृष्ण, श्री कश्मीरीलाल तुल्ली, लुधियाना; १६. श्री जोगेन्द्रपाल सूद, कोँग (अमृतसर); १७. श्री के.के. कपूर, चण्डीगढ़; १८. श्री बाबूराम आर्य, यमुनानगर; १९. श्री शिवशरणदास मित्तल, (बम्बई), २०. प्रो. परमानन्द (बरद्वान), २१. श्री नकुलसेन सोधी, जालन्धर, २२. प्रो. चेतनस्वरूप पाराशर, लुधियान, २३. श्री चन्द्रभान गौड़, होशिआरपुर।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क—गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए—

१-३. दीवान जगदीशचन्द, २०), श्री अमरनाथ जैन, २०), श्री हेमराज, एडवोकेट १०), लुधियाना, ४-५. सर्वश्री भागसिंह सिद्धू एण्ड सन्ज़, १०), श्री हंसराज धवन, १०), जालन्धर, ६. श्री आर. एस. गुप्ता, नई दिल्ली, १०), ७. डा. विक्टर, सिंगापुर (मलयेशिया), १०), ८. श्री बृजलाल ज्ञानचन्द जैन, होशिआरपुर, १०), ९. श्री मोहनलाल ठाकुर, बजौरा (कुल्लू)।

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—

१. श्री सरदारचन्द, नई दिल्ली, २५०), २. डा. पी. के. किचलू, नई दिल्ली, २००), ३. आर्यसमाज, दारेस्सलाम (टांगानीका), २००), ४. प्रो. पी. एल. वैद्य, पूना, १३०), ५. श्री शिवकुमार गुप्ता, खरड़, १२३), ६. फ्लाइट लैफ्टीनेन्ट आर. के. नंदा, देहली कैंट ६०), ७. श्री जयकर्ण कोहली, नई दिल्ली, ५०), ८. श्री एस. एन. भण्डारी, कलकत्ता, ५०), ९. श्री अमरनाथ सेठ, देहली, ३६), १०. प्रो. जगन्नाथ अग्रवाल, चण्डीगढ़, ३०), ११. प्रिं. एस. सी. नन्दीमठ, बागलकोट (बीजापुर), ३०), १२. कर्नल बलदेवसिंह पठानिया, रे (कांगड़ा), २५), १३. श्री करोड़ीमल कुठियाला, शिमला, २१), १४. श्री वी. एस. गोस्वामी, बैजनाथ (काँगड़ा), २०), १५. सेठ जसवंतराय चूड़ामणी, मेरठ, २०), १६. डा. श्रीराम चौधरी, अबोहर, ११), १७. श्री गुरुदत्त चोपड़ा, नई दिल्ली, ११), १८. श्री श्यामसुन्दर हरिराम, भटिंडा, ११), १९. प्रो. जी. एच. भट्ट, बड़ौदा, १०.५०), २०. श्रीमती सीतादेवी गुप्ता, चण्डीगढ़, १०), २१-२३. पं० देवीदास शास्त्री, १०), चौ. लाजपतसिंह परमार, १०), पं० घसीटाराम, १०), होशियारपुर, २४-२५. प्रो. जे. एन. गनहार, १०), श्री रोशनलाल जसवाल, १०), नई दिल्ली, २६-२७. श्री देवव्रत धर्मेन्द्र, १०), श्री अमरसिंह पुरी, १०), देहली, २८. डा. ई. आर. श्रीकृष्ण शर्मा, तिरुपती १०), २९. श्रीमती मालती वसन्त गोखले, पूना, १०), ३०. श्री रामदयाल, कोटगढ़ (शिमला हिल्ज़), १०),

३१. श्री ए. के. हजारी, चण्डीगढ़, १०), ३२. श्री अर्जुननाथ मट्टू, अमृतसर, १०), ३३. डा. इन्द्रजीत दीवान, रोहतक, १०), ३४. मैडेम सोफिया वाडिया बम्बई, १०), ३५-३६. श्री उत्सवलाल गुप्ता, १०), जस्टिस वी. पी. त्यागी, १०) जोधपुर, ३७. प्रो. सुखदेव हंस, टांडा उड़मुड़, १०), ३८. डा. परसराम, गोबिन्दपुर खुनखुन, होशियारपुर, १०), ३९. श्री हरबंसलाल मलिक, त्रिवेन्द्रम, १०), ४०. प्रो. आर. एस. व्यथित, पलाई (केरल), १०), ४१. श्री वी. एस. चड्डा, नई दिल्ली, १०), ४२. रा. सा. सत्यपाल हांडा, जबलपुर, १०)।

विशेष दान—

१. श्री रौशनलाल कुठियाला, होशिआरपुर, २४००), २. श्री मूलचन्द खरायतीराम ट्रस्ट, नई दिल्ली, १५००), ३. श्री अमोलकराम सेठी, नई दिल्ली, १०००), ४. अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवा संघ, बिड़ला लाइन्स, देहली, २००), ५. श्री भारतभूषण सेठी, देहली १००), ६. श्री हरवंशलाल सैनी, होशियारपुर, ५१), ७. श्री बलजीतसिंह होशियारपुर, ५१), ८. रा. सा. श्री शुगनचन्द्र अग्रवाल, देहरादून, ३५), ९. श्री देवदत्त शास्त्री होशियारपुर, २५), १०. श्री लेखराज कोहली, नई दिल्ली, २५), ११. श्री एस. डी. मित्तल, बम्बई, २५), १२. श्री सुखदेवराज शर्मा, लुधियाना, २१), १३. श्री हंसराज महाजन, शहादरा (दिल्ली), २०), १४. श्री के. सी. वर्मा, सहारनपुर, ११), १५. श्री पं० रलाराम, एम. एल, ए., होशियारपुर, ११), १६. श्री जे. एस. सब्बरवाल, कलकत्ता, ११), १७. श्री अजायबसिंह, दिल्ली, ११), १८. श्री चिरंजीलाल महाजन, अमृतसर, ११), १९. श्री कुलवन्तराय सूद, लुधियाना, ११), २०. श्री धनवंतसिंह, लुधियाना, ११), २१. श्री कुलदीप चड्ढा, हैदराबाद, १०), २२. श्री रामकुमार अग्रवाल, होशियारपुर, ५), २३. श्री ईश्वरदास वैद्य, होशियारपुर, ५), २४. श्रीमती सत्यादेवी, नई दिल्ली, ५)।

संस्कृत-कविता-प्रतियोगिता— संस्थान के तत्वावधान में ८ फ़रवरी १९६४ को संस्कृत-कविता तथा तत्काल समस्या-पूर्ति प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। इसमें पंजाब के कालेजों तथा संस्कृत-संस्थाओं से अध्यापकों तथा शोध-कर्ताओं ने भाग लिया। दोनों प्रतियोगिताओं के प्रथम (रु. १००) और द्वितीय (रु. ७५) पुरस्कार संस्थान के ही श्री इन्द्रदत्त उनियाल तथा गवर्नमेंट कालेज, होश्यारपुर के श्री श्यामदेव पाराशर को मिले, तथा प्रथम प्रतियोगिता का तृतीय पुरस्कार (रु. ५०) गुरुकुल भैंसवाल के श्री विद्यानिधि शास्त्री को प्राप्त हुआ। डी. ए. वी. कालेज, कानपुर के डा. हरिदत्त शास्त्री, विल्वेश्वर संस्कृत कालेज, मेरठ के श्री प्रभुदत्त स्वामी तथा पंजाब विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के श्री शशिधर शास्त्री निर्णायक थे। संस्थान-सञ्चालक, आचार्य विश्वबन्धु ने आयोजन की अध्यक्षता की।

संस्कृत-भाषण-प्रतियोगिता— संस्थान के शिक्षण-विभाग के छात्र-परिषद् की ओर से १४ मार्च १९६४ को एक संस्कृत-भाषण-प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। इसमें पंजाब, हिमाचल तथा जम्मू-काश्मीर के कालेज तथा तथा संस्कृत विद्यालय भाग ले सकेंगे।

प्रतियोगिताएँ—डी०ए०वी० कालेज, होश्यारपुर की सैंट्रल एसोसिएशन द्वारा ३०-१-६४ को आयोजित 'अखिल-भारतीय लाला लाजपतराय गोल्ड मैडल अंतरमहाविद्यालय भाषण-प्रतियोगिता' में हमारे संस्थान के दो छात्रों ने भाग लिया जिनमे से श्री दयानन्द आर्य ने विशेष पारितोषिक प्राप्त किया।

डी०ए०वी० कालेज (महिला विभाग), होशिआरपुर द्वारा १-२-६४ को आयोजित 'अंतरमहाविद्यालय भाषण-प्रतियोगिता' में हमारे संस्थान के दो छात्रों, सर्वश्री विनय शर्मा तथा वेदप्रकाश, ने भाग लिया तथा चलविजयोपहार प्राप्त किया। श्री विनय शर्मा को प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त हुआ तथा श्री वेदप्रकाश को नकद पुरस्कार मिला।

इन्हीं छात्रों ने २३-२-६४ को पंजाब हिन्दी साहित्य संगम द्वारा आयोजित भाषण-प्रतियोगिता में पुनः चलविजयोपहार तथा श्री वेदप्रकाश ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया।

ऋषि-बोधोत्सव— १६ फरवरी को सायंकाल ऋषि-बोधोत्सव मनाया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री देवीचन्द जी ने की। इस अवसर पर सर्वश्री इन्द्रदत्त उनियाल तथा राजकुमार ने कविताएं पढ़ीं तथा मास्टर सत्यदेव, प्रो. वेदप्रकाश और आचार्य विश्वबन्धु जी के भाषण हुए।

सरस्वती-समाज—आचार्य विश्वबन्धु जी की अध्यक्षता में परिषद् के २६वें अधिवेशन(३१ जनवरी) में श्री मुनीश्वर देव शास्त्री ने 'कौटिल्य के धर्म-विषयक विचार' विषय पर अपना निबन्ध प्रस्तुत किया।

अगले अधिवेशन में प्रो. शिवप्रसाद भारद्वाज 'अभिज्ञान शाकुन्तल नाटकीय दृष्टि से असफल है' इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करेंगे।

विदाई-समारोह— संस्थान के एक प्रमुख कर्मिष्ठ, श्री के. एस. रामस्वामी शास्त्री के अवकाश प्राप्त कर बम्बई पधारने के अवसर पर सभी कर्मिष्ठों की ओर से उन्हें चाय-पार्टी और विदाई दी गई।

बधाई—संस्थान-सदस्य श्री धर्मवीर जौली (नई दिल्ली) को उनके शुभ विवाह पर, डा. गोवर्धन-लाल दत्त, उपकुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन को उनकी सुपुत्री, शीतल के शुभ विवाह पर, श्रीमती चांदरानी मल्ला (कानपुर) को उनकी सुपुत्री, शोभा के शुभ विवाह पर, श्रीमती कौशल्यारानी चड्ढा (नई दिल्ली) को उनकी सुपुत्री, बाला के शुभ विवाह पर, श्री सूरजभान, उपकुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, को उनके सुपुत्र, विजय के शुभ विवाह पर, श्री बलजीतसिंह (होशिआरपुर) को उनके अपने शुभ विवाह पर, संस्थान जीवन सदस्य व कर्मिष्ठ श्री देवदत्त शास्त्री को उनकी सुपुत्री, निर्मलकुमारी के शुभ विवाह पर, श्री योगेन्द्रराज भण्डारी (नई दिल्ली) को उनकी सुपुत्री, पमला के शुभ विवाह पर और संस्थान सदस्य व कर्मिष्ठ श्री कैलाशनाथ को उनके अनुज, श्री केदारनाथ की सगाई पर संस्थान हार्दिक बधाई देता है।

डा. के एल. विग (नई दिल्ली) को भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किए जाने पर हार्दिक बधाई।

पंखे की भेंट—श्रीमान् पं० दौलतराम जी शास्त्री (अमृतसर) ने संस्थान को एक बिजली का पंखा भेंट किया है। एतदर्थ धन्यवाद।

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान-सदस्य पं. परमानन्द (चण्डीगढ़) की धर्मपत्नी का, श्रीमती डा. वेदकुमारी (जम्मू) के पिता जी का, तथा संस्थान के जीवन-सदस्य रा.सा. गुरदासराम सेठी (नई दिल्ली) का देहान्त हो गया। दिवङ्गत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

पुस्तकालय भवन—पश्चिमोत्तर भारत का भारत-भारती (इण्डालोजी) और संस्कृत विद्या का सब से बड़ा और विख्यात पुस्तक-संग्रह, जिस में लगभग १०,००० प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ भी हैं, संस्थान के पास है। परन्तु पाठक यह जान कर संभवतः कुछ विस्मित होंगे कि हमारे हाँ अभी तक **पुस्तकालय-भवन** नहीं है।

जिन भयानक कष्ट-प्रद परिस्थितिओं में हम १९४७ में इस अमूल्य राष्ट्रीय सम्पत्ति को लाहौर से निकाल पाए थे, उन का चिन्तन-मात्र आज भी हमें रोमाञ्चित कर देता है। उन्हीं विचित्र परिस्थितिओं के परिणाम-स्वरूप ही हम शरणार्थी होकर यहाँ साधु आश्रम में किसी प्रकार पहुँच पाए थे और फिर इस आश्रम के संस्थापक, दानवीर स्वर्गीय श्री धनीराम भल्ला जी व उनके परिवार के प्रेम, उत्साह और उदारभाव का ही यह फल है कि संस्थान यहीं पर स्थिर रूप से जम कर उत्तरोत्तर प्रगति करता चला आया है। इस विकास-क्रम के साथ ही जैसे-जैसे आवश्यकताएँ बढ़ती गई हैं, नए भवन का भी विस्तार होता चला गया है। इस क्रम के अनुसार अब **पुस्तकालय भवन** का पर्याय आ पहुंचा है। इसके निर्माण-चित्र प्रायः बन चुके हैं। आशा है कि १२-१३ अप्रैल को वैशाखी के पवित्र पर्व पर इसकी आधार-शिला रखी जा सकेगी। इस पर ३,२१,००० रु. का व्यय कूता गया है, जिसमें से २,१४००० रु. **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग** द्वारा दिया जाना स्वीकृत हो चुका है और शेष १,०७,००० रु. संस्थान के प्रेमी वर्ग से प्राप्त होने योग्य है।

कर्मिष्ठ निवास—संस्थान के कर्मिष्ठ वर्ग की संख्या १५० से ऊपर है। उन सभी के लिए संस्थान-क्षेत्र में ही निवास का प्रबन्ध किया जाना उचित और आवश्यक है। इस ओर भी अब प्रथम पग रखा जा रहा है। अभी-अभी दो लाख रुपये की लागत से १० मकान बनाए जाएँगे। इस व्यय का आधा भाग **वि. अनु. आयोग** द्वारा दिया जाना स्वीकृत हो चुका है। शेष १ लाख का प्रबन्ध **संस्थान-परिवार** द्वारा किया जाना चाहिए।

छात्रावास—संस्थान में शिक्षण प्राप्त करने वाले एम०ए०, आचार्य, शास्त्री आदि श्रेणियों के छात्रों तथा प्रशिक्षण पा रहे एम०ए० परीक्षोत्तीर्ण तथा अन्य **शोध-छात्रों** के निवासार्थ छात्रावास पिछले वर्ष से बन रहा है। कुछ कमरे बन चुके हैं और कुछ अभी बन रहे हैं। इस भवन का व्यय भी २ लाख रुपया कूता गया है जिसमें से १ लाख रुपये का प्रबन्ध संस्थान को स्वयं करना है।

सहयोग-प्रकार—ये सारे निर्माण-कार्य दो वर्षों के अन्दर-अन्दर पूरे किया जाने हैं। इसके लिए संस्थान के प्रेमी-वर्ग से ३ लाख रुपया जुटाना चाहिए। आज-कल छोटे-से-छोटे कमरे की लागत १५००) रुपए, और उससे कुछ बड़े की २५००) या ३०००) रुपए बैठती है। आशा है हमारे प्रेमी सज्जनों में से प्रत्येक भाई और बहिन कम-से-कम इतनी-इतनी मात्रा और इससे अधिक जितना भी वे दे सकें, शीघ्र ही भेजकर इस पुण्य कार्य में अपना-अपना यथासंभव अधिकतम सहयोग प्रदान करेंगे। जिन सज्जनों ने अब तक इस बारे में पुण्य संकल्प किया है और अपनी-अपनी संकल्पित धन मात्रा पूरी भेज चुके हैं या पूरी कर रहे हैं, उनके शुभ नाम इस प्रकार हैं—

१. भेरावासी माता भागवन्ती जी, धर्मपत्नी स्व. श्री मदनचन्द जी आनन्द, बम्बई, एक कमरा
२. भेरा. श्री कुन्दनलाल आनन्द, बम्बई ,,
३. ,, श्री रामलाल आनन्द, देहली ,,
४. ,, ,, अमोलकराम सेठी, श्रीनगर ,,
५. ,, ,, श्रीमती लीलावन्ती, धर्मपत्नी स्व. डा. अमरदास सेठी, जयपुर एक कमरा छोटा
६. ,, स्व. प्रि. सीताराम कोहली, रोहतक ,, ,,
७. श्री राघवराम जोशी, होश्यारपुर दो कमरे छोटे
८. ,, बुधराम कुठियाला, होश्यारपुर एक कमरा
९. रा. ब. बृजमोहनलाल, नई देहली ,,
१०. गुप्त दान, बम्बई ,,

११. श्री बन्नाराम, पीलीभीत एक कमरा
१२. श्री उमादत्त, बालांवाली ,,
१३. प्रो. सीताराम गुप्त, देहली एक कमरा छोटा
१४. प्रो. चारुदेव शास्त्री, देहली ,, ,,
१५. श्री मूलराज चांद, चण्डीगढ़ ,, ,,
१६. श्री नकुलसेन सोंधी, जालन्धर ,, ,,
१७. श्री शुगनचन्द अग्रवाल, देहरादून ,, ,,
१८. श्री कृपाराम बजाज, नई देहली ,, ,,

—विश्वबन्धु

सज्जन समागम—१–२. रा. सा. मंगतराय, दीवान सत्येन्द्रकुमार, नई दिल्ली, ३. श्री साईंदास, फरीदकोट, ४. श्री रूपलाल, राजौरी, ५. श्री कुन्दनलाल, जम्मू, ६. श्री रामधन जेरथ, लुधियाना, ७. श्री वेदप्रकाश, अमृतसर, ८–९. श्रीमती तथा श्री डेविस, सरे (इंग्लैंड), १०. श्री वशिष्ठ जी एम. ए., एम. ओ. एल. (दिल्ली)।

बधाई—श्री चरणजीतलाल बाहरी (शिबपुर, कलकत्ता) को उनके सुपुत्र के शुभ विवाह पर तथा श्री लाजपतसिंह परमार (होशियारपुर) के उनकी दौहित्री के शुभ विवाह पर हार्दिक बधाई।



Name of owner :—Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri**
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur.

राष्ट्रीय

भावनात्मक एकता अङ्क

परिशिष्ट

सह-सम्पादक :

विश्वबन्धु : सन्तराम

●

अप्रैल १९६४

●

वार्षिक मूल्य—

भारत में : ८ रु.   विदेश में : १६ शिलिंग

विश्व ज्योति

राष्ट्रीय

भावनात्मक एकता अङ्क

परिशिष्ट

सह-सम्पादक :

विश्वबन्धु : सन्तराम

●

अप्रैल १९६४

●

वार्षिक मूल्य—

भारत में : ८ रु. विदेश में : १६ शिलिंग

विश्व ज्योति

सूचना—गत मास के विशेषाङ्क में यह सूचना दी गई थी कि वह अङ्क मार्च तथा अप्रैल का है। परन्तु डाकघर की कुछ एक बाधाओं के कारण यह लघु परिशिष्ट अङ्क अप्रैल ६४ का प्रकाशित किया जा रहा है।

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, चैत्र, २०२०; अप्रैल १९६४ { संख्या २

भावनात्मक एकता और भाषा-विज्ञान

[श्री हरिचन्द पाराशर]

भाषा के विकास की दो स्पष्ट क्रम-स्थितियां हैं; (१) भावों को अभिव्यक्त करना, (२) विचारों को प्रकट करना। इन दो क्रम-स्थितियों के समानान्तर इसके व्याकरणिक ढांचे की दो क्रम-स्थितियां हैं; (१) विस्मय-बोधक, (२) वाक्य। विस्मय-बोधक में एक शब्द ही किसी एक भाव का द्योतक हो सकता है। यह क्रम-स्थिति भाव-अभिव्यक्ति की है। यदि हम सभी भाषाओं के केवल विस्मय-बोधक शब्दों का लेखा-जोखा लें, तो इस निश्चय पर सहज ही पहुँच सकते हैं कि उन शब्दों में अधिकांश समानता है। यह समानता हमें इस परिणाम की ओर ले जाती है कि भावाभिव्यक्ति वाली भाषा में वैभिन्न्य कम होता है। इसके विपरीत यदि भाषा की दूसरी क्रम-स्थिति 'वाक्य' का विश्लेषण करें तो पहला परिणाम यह निकलता है कि 'वाक्य' का सम्बन्ध विचारों के साथ है, विचारों की अभिव्यक्ति नहीं होती, बल्कि उनका प्रेषण होता है। अभिव्यक्ति आत्मनिष्ठ (सब्जेक्टिव) है, और प्रेषण वस्तुनिष्ठ (आब्जेक्टिव)। दूसरा परिणाम यह निकलता है कि वाक्य की अवस्था में पहुंच कर हमने अपनी कथ्य वस्तु के विभिन्न अंगों का विश्लेषण करके प्रत्येक के लिए एक शब्द निश्चित कर लिया होता है। इस निश्चयन के समय भाषा-वैभिन्न्य का उदय होता है।

जिसे हम साधारण अर्थ में भाषा कहते हैं, वह यही 'वाक्य' होता है। 'वाक्य' का अध्ययन ही भाषा का अध्ययन है। 'वाक्य' के सभी अंगों का पूर्ण विश्लेषण करके प्रत्येक का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना ही भाषा-विज्ञान है।

भाषा स्थूल दृष्टिकोण से विचार का वाहन है, परन्तु सूक्ष्म दृष्टिकोण से भाषा का महत्त्व इससे कहीं अधिक है। भाषा की सहायता के बिना हम विचार की बारीकियों का विश्लेषण नहीं कर सकते। इस तरह भाषा आगामी विचार को प्रभावित करती है। भाषा अपनी लम्बी छाया विचार पर डालती है, और विचार कभी भी इस छाया से मुक्त नहीं हो सकता। इसी छाया से मिथक (माइथौलोजी) का जन्म होता है और मिथक तत्त्व क्रियाशील होकर धार्मिक देवताओं की उत्पत्ति करता है। भाषा की लम्बी और काली छाया का जादू अकथनीय है।

भाषा के इस रहस्य को समझने के लिए भाषा-विज्ञानियों ने कई प्रयत्न किए हैं, और फलस्वरूप भाषा-विज्ञान की कई शाखाएं अस्तित्व में आई हैं; विवरणात्मक भाषा-विज्ञान, मनो-भाषा-विज्ञान, जाति भाषा-विज्ञान, समाजिक-सांस्कृतिक-भाषा-विज्ञान इत्यादि। इन सभी शाखाओं की एक सामान्य उपलब्धि यह है कि भाषा में वक्ता का आचरण संकेतबद्ध होता

है। श्रोता उस संकेतबद्ध आचरण का संकेत-वाचन करता है। **इस संकेत-बन्धन और संकेत-वाचन में समवाय जितना अधिक होगा, वक्ता और श्रोता में भावनात्मक एकता उतनी अधिक होगी।**

अब प्रश्न यह है कि उपर्युक्त समवाय किस तरह से लाया जाए?

हमारी समझ में सर्वप्रथम भाषा के दो स्पष्ट कर्तव्यों को हृदयंगम किया जाए— (१) सूचनात्मक अर्थबोधन, (२) भावात्मक अर्थबोधन। सूचनात्मक अर्थबोधन से हम दूसरे की बात को सही और अभिप्रेत अर्थ में समझ सकने में समर्थ होते हैं; और भावात्मक अर्थबोधन से सहानुभूति जैसी श्रेयस्कर सामाजिक भावनाओं का प्रसार होता है। भाषा के इन दोनों कर्तव्यों का उद्देश्य सहकारिता है। प्रसिद्ध भाषा-विज्ञानी हयाकवा का कथन है—

> When the use of language results in conflict, there is something wrong with the listner, speaker or both.
>
> [Language in the thought and Action—S.L. Hayakawa.]

इसके पश्चात् हमें अपनी आर्थी सूझ को विस्तीर्ण करना चाहिए। मानवीय प्रतीकात्मक आचरण का बोध हो जाने से हम यह बात भलीभांति हृदयंगम कर लेते हैं कि दैनिक व्यवहार में यह प्रतीकात्मक प्रक्रिया (अर्थात् भाषा) किस ढंग से क्रियाशील रहती है। वक्ता की बात को कहां तक सहन करना है, और कहां से उसका उत्तर देना है। भाषा-विज्ञानियों का मत है कि भाषा के माध्यम से सहकारिता बनाए रखने के लिए सार्थक रूपेण निरर्थक बातों का बहुत महत्त्व है। ये हमारी भावनाओं की धारा को चालू रखती हैं। जिस तरह टेलीफोन एक्सचेंज में अधिकांश बन्द रहने वाली लाइनों को टैस्ट करने की ग़रज से कभी-कभी निष्प्रयोजन ही चालू कर दिया जाता है, उसी तरह से दो दोस्त बिना निश्चित बात के आपस में निरर्थक बातें कर लेते हैं ताकि भावना का करंट जारी रहे। दो व्यक्तियों के मध्य में सहानुभूति के संचार का माध्यम भाषा ही है। इस भावात्मक माध्यम को अधिक सफल बनाने के लिए यह बात ध्यातव्य है कि 'क्या कहा जाए' की बजाए 'कैसे कहा जाए' अधिक महत्त्वपूर्ण है। भाषण-कला और साहित्य-कला के आकर्षण का मुख्य आधार ध्वन्यात्मक है—अक्षरक्रम और शब्दक्रम का स्वरसाम्य, तुकबन्दी, ताल और लय की सूक्ष्मताएँ।

भाषा का 'आदिद्वैत' वक्ता और श्रोता है। परंतु विस्तृत रूप में वक्ता और श्रोता का रूपान्तरण विशाल-भाषा-समुदायों में घटित होता है। वक्ता और श्रोता में भाषा-वैभिन्न्य कम होता है, परन्तु दो भाषा-समुदायों में भाषा-वैभिन्न्य अधिक भी हो सकता है। जिस प्रकार प्रत्येक वक्ता की भाषा उसकी अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ठीक और सम्पन्न होती है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा-समुदाय की भाषा उसकी अपनी सांस्कृतिक और व्यावहारिक आवश्यकताओं के अनुसार ठीक और सही होती है। प्रत्येक भाषा उसके भाषी के यथेच्छ होती है, इसलिए किसी भाषा को अशुद्ध अथवा अधूरी कहना भ्रमात्मक और गलत है। केवल इतना ही कहा जाता है कि अमुक समुदाय का सांस्कृतिक स्तर अथवा व्यावहारिक लेन-देन और प्रकार का है। परन्तु चूंकि आज-कल शिक्षा, व्यापार और रेडियो तथा टैक्नालोजी के व्यापक प्रभाव के कारण विभिन्न सभ्यताओं में विषम तत्त्व लुप्त हो रहे हैं और समतत्त्व विकासमान हैं, इस से भौगोलिक निकटता वाली भाषाओं में अधिकाधिक सम तत्त्वों का प्रादुर्भाव हो रहा है। यह प्रादुर्भाव भावनात्मक एकता में सहायता हो रहा है।

यदि दो पड़ोसी भाषाओं के आज-कल के बोल-चाल के रूप का लेखा लिया जाए, तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि वे एक-दूसरे के, लिखित रूपों की अपेक्षा अधिक निकट हैं।

उपर्युक्त विचार-विवेचन से यह परिणाम निकला कि आज की लिखित भाषाओं के बोलचाल के रूप का फिर से विवेचन आवश्यक है। विवेचन के परिणामस्वरूप लिखित रूप को भले ही न बदला जाए, फिर भी इस विवेचन के परिणामों से उन दो भाषा-समुदायों के नेता लोगों के विचारों में इतना परिवर्तन अवश्य आ सकता है कि जिन दो भाषाओं का वे प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके वास्तविक रूप में बहुत

कम अन्तर है। इस प्रकार की मनोदशा भावनात्मक एकता में सहायक होगी।

लिखित भाषाओं के व्याकरणों को अद्यावधिक और अद्यतन बनाना जरूरी है। हमारी आधुनिक भाषाओं के व्याकरण एक प्रकार से विधान बने हुए हैं। कोई भाषा किस प्रकार से प्रयुक्त की जाती है, व्याकरण को इसी का विवरण देना चाहिए; कोई भाषा किस प्रकार से प्रयुक्त होनी चाहिए, इस प्रकार का विधान व्याकरण का कर्तव्य नहीं है। यदि व्याकरण विवरणात्मक बनाए जाएं, और फिर किन्हीं दो भाषाओं के 'ट्रांसफर ग्रामर' बनाए जाएँ, और तत्पश्चात् पांच-छः सजातीय भाषाओं में से अधिक विशाल भाषा को केन्द्र-भाषा मान कर 'कोर ग्रामर' लिखे जाएं, तो भाषा-समुदायों में भाषागत कड़वाहट कम हो जाएगी, और परस्परबोध होने से भावनात्मक एकता में वृद्धि होगी।

व्यवसायवार शब्दावलियों का निर्माण भी महत्त्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ जालन्धर द्वाब के कृषि-सम्बन्धी शब्दों का संग्रह करके ब्रज के कृषि-सम्बन्धी शब्दों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाए। इसी भांति अनाज, पोशाक आदि से सम्बद्ध शब्दावली का तुलनात्मक अ ययन किया जा सकता है। किसी समुदाय के सामाजिक और व्यावहारिक क्रियाकलापों को समझने के लिए शब्दावली ही प्रमुख द्वार है। शब्दावलियों के तुलनात्मक अध्ययन से लोकजीवन में 'भाषा की निरन्तरता' सिद्ध हो सकती है। लोक-शब्दावलियों के तुलनात्मक अध्ययन से बहुत-से शब्द समान मिलेंगे, केवल उच्चारणगत भेद ही होगा। उन शब्दों में स्थैर्य लाने के लिए उनके संस्कृत के तत्सम रूप अपनाए जा सकते हैं। यह मार्ग भले ही कुछ लम्बा है, परन्तु इससे प्रादेशिकवाद राष्ट्रोन्मुख हो जाएगा।

प्रादेशिकवाद को राष्ट्रोन्मुख करना आज के युग की एक बड़ी समस्या है। चूंकि प्रादेशिकवाद का पोषक उपकरण प्रादेशिक भाषा है,इसलिए प्रादेशिक भाषा का सांझी राष्ट्रभाषाके साथ ग्रन्थिबन्धन अनिवार्य है जिस तरह वैयक्तिक स्तर पर भाषा और विचार का सम्बन्ध है, उसी तरह विकसित स्तर पर भाषा-समुदाय और सांस्कृतिक समुदाय का सम्बन्ध है। यदि सांस्कृतिक एकता को भलीभांति प्रकट किया जा सके, तो सजातीय भाषा-समुदायों की कट्टरता कम हो जाती है। परिणामतः भावनात्मक एकता में वृद्धि होती है। इसलिए आवश्यक है कि विभिन्न प्रदेशों की सांस्कृतिक विविधता में प्रच्छन्न एकता को उद्घाटित किया जाए। इससे भाषा के आगामी स्वरूप में एकता के तत्त्व प्रादुर्भूत होंगे, और परिणामतः भावनात्मक एकता उत्तरोत्तर विकसित होगी। ●

[पृष्ठ ६ का शेष]

का मध्यवर्ती भाग होगा। इनके अन्तर्गत नाटकीय प्रवृत्तिया, जोकि भरत के नाट्य-शास्त्र(अध्याय १३)और काव्य-मीमांसा(अध्याय ३) में गिनाई गई हैं—आवन्ती, दाक्षिणात्या, उड्रमागधी तथा पाञ्चालमध्यमा ये चारों भी भारतीय एकता की आधायिका नहीं तो क्या हैं?

महाकवि कालिदास के रघुवंश चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु के दिग्विजय प्रसङ्ग में सारे भारत का प्राचीन मान-चित्र प्रस्तुत होता है। उसके अतिरिक्त इसी काव्य के षष्ठ सर्ग में अयोध्या का सम्बन्ध विदर्भ से कराते हुए कवि ने इन्दुमती के स्वयंवर में चारों दिशाओं से राजाओं को बुला कर सारे भारत की एकता प्रस्तुत की है।

'मुद्राराक्षस' नाटक में भी हिमालय से लेकर दक्षिण अर्णव तक के राजाओं का उल्लेख करके (३, १८) तथा चारों समुद्रों की चर्चा करके (३,२४) इसमें भारत का समाहार कर दिया गया है। अन्य स्थानों में भी विस्तार से भारत के विभिन्न प्रदेशों का उल्लेख मिलता है। जिज्ञासुओं को उसके निमित्त भरत-नाट्य-शास्त्र के १७, २१ अध्याय देखने चाहिए।

आज जिस प्रकार और जैसे शब्दों में एकता की भावना की खोज की जाती है,उस प्रकार से भले ही आप को इस का आभास न हो;क्योंकि उस समय इस रूप में आवश्यकता का अनुभव ही नहीं हुआ था किन्तु इस भावना का सर्वथा अभाव रहा हो, यह नहीं कहा जा सकता। एकच्छत्र राज्य की भावना के मूल में संपूर्ण भारत की एकता का भाव ही काम करता था। अतः स्वीकार करना होगा कि संस्कृत-भाषा तथा उसके साहित्य में भारत की भावनात्मक एकता का व्यापक भाव विद्यमान है। ●

संस्कृत भाषा और भारत की भावनात्मक एकता

[प्रा. शिवप्रसाद भारद्वाज]

इमां सागर-पर्यन्तां हिमवद्-विन्ध्य-कुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

संस्कृत वह भाषा है जिसका प्राचीनतम रूप वैदिक साहित्य में, जिसमें कि ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं, प्राप्त होता है और चरम परिवर्तित रूप बाण आदि कवियों की रचनाओं में। वस्तुतः संस्कृत नाम से व्यवहृत भाषा किसी समय में सम्पूर्ण भारत में बोली जाती थी। इस लिए उसको भाषा कहा जाता था। वह लौकिक भाषा भी कही जाती थी। उस समय तक वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत में उतना ही भेद था जितना कि आज-कल साहित्यिक रचनाओं में प्रयुक्त भाषा से बोली में। मेरे विचार में तो भाषा, विभाषा और वाणी इन तीनों शब्दों में अवश्य भारी अन्तर था। वाणी शब्द वस्तुतः उसी अर्थ में प्रयुक्त होता था जो कि आज-कल शुद्ध साहित्यिक भाषा से लिया जाता है। भाषा शब्द टकसाली या केन्द्रीय बोली के लिए और विभाषा उसके प्रादेशिक रूपों के लिए व्यवहृत होता था। पाणिनि ने अपने सूत्रों में कहीं 'भाषायाम्' और कहीं 'विभाषा' तथा 'प्राचाम्' आदि प्रयोग किये हैं, ये साभिप्राय हैं। आज-कल 'विभाषा' का अर्थ विकल्प से किया जाता है। किन्तु इस का तात्पर्य यही होना चाहिए कि किसी प्रदेश में वह प्रयोग होता था, किसी में नहीं।

इस प्रकार किसी समय यह संस्कृत सारे ही भारत में बोली जाती थी। यह अवश्य है कि पढ़े-लिखे लोगों की भाषा से अशिक्षित जनता की भाषा में कुछ अन्तर था। आज-कल भी जैसे ग्रामीण और अनपढ़ लोग बहुत से शब्दों को यथावत् बोलने में असमर्थ होते हुए उन का कुछ विकृत उच्चारण करते हैं। स्टेशन शब्द का टेसन, इसटेशन और सटेशन इन तीन रूपों में उच्चारण होता है। प्रान्तीय विशेषताओं के कारण भी उच्चारण में अन्तर पड़ा हो तो कार्य आश्चर्य नहीं।

शिक्षितों की संस्कृत में अन्तर होने का प्रबल प्रमाण वाल्मीकि रामयण का निम्न श्लोक है—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥

हनुमान् अशोकवाटिका में सीता को देख कर उस से किस प्रकार वार्तालाप करें, इस चिन्ता में पड़े हैं। अतः वे सोचते हैं कि यदि शिक्षित ब्राह्मणों की-सी शुद्ध संस्कृत में उससे बोलूंगा तो वह मुझे रावण समझेगी और डर जायगी।

इसका तात्पर्य यही है कि सभी शिक्षित जन विशेष प्रकार की संस्कृत बोलते थे। लङ्का तक उसका प्रचलन था। राजनीतिज्ञ और राजकीय अधिकारी परस्पर अपनी भाषा या बोली में बात करते रहे हों, किन्तु परदेशी लोगों के साथ शुद्ध भाषा का ही प्रयोग करते थे। तभी किष्किन्धा काण्ड के अन्त में हनूमान् के राम से मिलने पर वार्तालाप में हनूमान् ने जिस भाषा का प्रयोग किया उस पर राम की टिप्पणी विचारणीय है। रामने लक्ष्मण से कहा है—

'हे लक्ष्मण, यह वानरराज सुग्रीव का मन्त्री है, मैं जिस से मिलना चाहता था, उसी का भेजा हुआ यह हनूमान् स्वयं मेरे पास आगया है। हे लक्ष्मण, सुग्रीव के मन्त्री इस वानर से बात-चीत करो, यह संभाषण की कला में निपुण है तथा इसकी बातों में प्रेम झलकता है। जिस ढंग से यह बात करता है, इस प्रकार बिना ऋग्यजु साम तीनों वेदों को पढ़े कोई नहीं कर सकता।

"अवश्य इसने अनेक प्रकार से सम्पूर्ण व्याकरण पढ़ा है। क्योंकि बहुत-कुछ कहते हुए भी इसने कोई अशुद्ध शब्द प्रयुक्त नहीं किया है। (बोलते हुए) न इसके मुख में, न नेत्रों में, न मस्तक पर, न भौंहों में तथा शरीर के अन्य अङ्गों में भी उच्चारणसम्बन्धी कोई दोष लक्षित नहीं हुआ है।

"इस का वचन न अधिक विस्तृत है, न उसे समझने में कोई सन्देह ही होता है। स्फुट उच्चारण है। न इस ने बहुत धीरे या रुक-रुक कर और न बहुत

शीघ्रता से कहा है। यह वचन हृदय भाग में स्थित है और कण्ठगत है तथा मध्यम स्वर में बोला गया है।"

इस टिप्पणी से ज्ञात हो जाता है कि शिक्षित व्यक्ति और अशिक्षित व्यक्ति के उच्चारण में कितना अन्तर था।

अस्तु, हमारा तात्पर्य इतना ह है कि उस सुदूर अतीत काल में इस देश की भाषा यह संस्कृत थी और हिमालय से लेकर सुदूर दक्षिण ही नहीं, लङ्का तक इसी भाषा का प्रचार था। यह सर्वत्र समझी जाती थी। इसका निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि उस समय सारा भारत एक था और लङ्का तक यह सांस्कृतिक एकता थी। स्थिति में अन्तर इतना अवश्य था कि सुदूर दक्षिण का यह भाग उस समय आज की भांति आबाद नहीं था। यहां वन्य जातियां निवास करती थीं और इन घने जंगलों में कुछ मानवाहारी जातियां भी थीं, जिन्होंने कि आर्य संस्कृति को नहीं अपनाया था। भले ही उनमें कुछ ने वेद भी पढ़े थे।

ऐसे विकट समय में भी संस्कृत भाषा ने संपूर्ण देश को एकता में आबद्ध किया था। यह अवश्य है कि सभ्य जाति का निवास उस समय पहले विन्ध्य पर्वत तक रहा। इसी लिए हिमालय और विन्ध्य के मध्यभाग का नाम ही आर्यावर्त रखा गया है, पर इस का तात्पर्य यह नहीं था कि शेष भाग भारतवर्ष के अन्तर्गत ही न था। यह तो सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण विभिन्न क्षेत्रों के पृथक् नाम पड़ गये थे। तभी तो सरस्वती और दृषद्वती के मध्य का स्थान ब्रह्मावर्त कहलाया। जैसा कि मनुने कहा है—

सरस्वती-दृषद्वत्योः पुण्यक्षेत्रे यदन्तरम्।
तं देव-निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥

यद्यपि भारत के अङ्ग-वङ्ग और कलिङ्ग आदि प्रदेश आचार-भेद के कारण उत्तरापथ के लोगों की दृष्टि में पिछड़े हुए थे, इसीलिए उन को आर्यावर्त की सीमा से बाहर रखा गया। किन्तु इन सभी प्रदेशों में आर्यों के तीर्थ बिखरे हुए थे। उन तीर्थों के कारण आर्यों का परस्पर सम्बन्ध बना ही हुआ था।

प्राचीनकाल से ही आर्य लोग किसी शुभ कर्म को करने से पूर्व जब संकल्प करते हैं, उस समय अपने वर्तमान स्थान का ही नाम न लें कर उस का भारत से सम्बन्ध जोड़ते हैं—

'जम्बूद्वीपे भरतखण्डे, आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे'

इस प्रकार किसी भी पुण्यक्षेत्र में क्यों न हों, जब उसको भारत का एक देश मान लिया तो आप-से-आप भारत से उसकी एकता स्थापित हो गई।

हिमालय से केरल तक, उड़ीसा से कश्मीर तक चारों दिशाओं के आर्यजन एक ही गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हैं। एक ही संस्कृत भाषा के द्वारा अपने यज्ञादि कर्म सम्पन्न करते हैं। उस संस्कृत में आरम्भ से समुद्रपर्यन्त पृथ्वी की चर्चा होती है, जो कि भारत की सीमाओं पर स्थित सागरों की ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार चारों सागरों से उद्वेष्टित भूभाग उनकी एक पृथ्वी थी, सारा एक ही देश था, यह स्वीकार करना होगा।

इस से अधिक आगे देखना चाहें तो आर्यों के निम्न प्रातःस्मरण को देखें जो कि संस्कृत में ही है—

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

इन में अयोध्या और काशी पूर्व में हो गई तो मथुरा पश्चिमोत्तर में आ गई, माया (हरिद्वार) उत्तर में, काञ्ची सुदूर दक्षिण में हुई, अवन्तिका (उज्जयिनी) मध्य प्रदेश और द्वारावती (द्वारिका) पश्चिम में है। इस प्रकार भारत के चारों विभागों का समाहार करके उसे एक सूत्र में बांधने का श्रेय संस्कृत को ही है।

यहां आपत्ति हो सकती है कि पञ्जाब सर्वथा छूट गया है, अतः अन्य स्मरण उस से भी अधिक व्यापक है। प्रत्येक आस्तिक स्नान करता हुआ कहता है—

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।

यहाँ भारत के सप्तसिन्धु देश होने का स्वरूप उजागर रूप में उपस्थित है। उत्तर से लेकर सुदूर दक्षिण तक तथा पंजाब और मध्यदेश तक सब नदियां, जो इस प्रदेश को सरसाती हैं, इस श्लोक के द्वारा गिना दी गई हैं।

भारत की एकता के लिए सबसे बड़ा काम किया तीर्थों की भावना ने। यह भावना कहां से आई? संस्कृत से ही न? महाभारत को पढ़ा जाए और पुराणों को, उनमें भी विशेषकर स्कन्दपुराण के रेवा-खण्ड को, भारत का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसे तीर्थ का आदर न दिया हो। चार धामों की कितनी उदात्त कल्पना है? हिमाचल के उत्संग में स्थित बद्रीनाथ,

पश्चिमोत्तर में कश्मीर में अमरनाथ, पश्चिम में द्वारिका, मध्य में अवन्तिका, पूर्व में जगन्नाथपुरी और दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर। क्या ये विभिन्नता के सूचक हैं?

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग और चार कुम्भ भी क्या भारत की एकता के आवाहक नहीं? किस ने यह आदर्श उपस्थित किया सुदूर हिमालय की गोदी में स्थित केदारनाथ से गङ्गाजल लेकर दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर में जाकर रामेश्वरम् पर इस जल को चढ़ाने का? इसी प्रकार दक्षिण के सागर का जल केदारनाथ पर अर्पित करने का विधान किसने बताया? राजाओं के राज्याभिषेकों के समय चारों सागरों व तीर्थों का जल लाने तथा तीर्थों की मृत्तिका लाने की विधि क्या उन दूसरे भागों के प्रति वैदेशिकता की भावना को लेकर प्रवृत्त हुई थी?

आज संस्कृत को कहा जाता है कि यह भारत की एकता में नहीं, विभाजन में सहायक होगी। किन्तु वर्तमानकाल में जो घर-घर में 'नौ कन्नौजिये तेरह चूल्हे' वाली स्थिति उत्पन्न हो रही है, वह भी क्या संस्कृत ने की है?

भारत की कौन-सी भाषा ऐसी है जो संस्कृत का स्तन्य पी कर विकास को प्राप्त नहीं हुई? जिन्हों ने राहुल सांकृत्यायन के निबन्ध 'भारत की राष्ट्रभाषा और लिपि' को पढ़ा है, वे जानते होंगे कि उस दिवंगत महापण्डित ने किस प्रकार उड़ीसा और असम आदि भागों में भी जा कर संस्कृत-बहुल भाषा के द्वारा अपने भावों को जनता तक पहुँचाया था। हिन्दुस्तानी के वकील यह भूल जाते हैं कि उत्तर भारत का व्यक्ति दक्षिण के अहिन्दी भाषी प्रान्तों में जा कर अंग्रेज़ी न जानता हुआ भी संस्कृत के माध्यम से जनता से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। बङ्गला, उड़िया, मराठी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम तामिल, तेलुगु सभी में संस्कृत की प्रचुर शब्दावली विद्यमान है। अलबत्ता उर्दू प्रधान भाषा को ही समझने में वहां कठिनाई होती है। क्या यह संस्कृत का भारत की भावनात्मक एकता में योग सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं। पंजाब में आज संस्कृत का मूलोच्छेद हो रहा है। दीर्घकाल से मुसलमानों से सम्पर्क के कारण फारसी और उर्दू से यहां के निवासियों का अधिक सम्बन्ध रहा है। अंग्रेज़ी राज्य में अंग्रेज़ी का बोलबाला होने से जनता का झुकाव उधर हो गया। अतः आज संस्कृत-मिश्रित हिन्दी भी इन्हें कठिन लगती है। किंतु अपनी इस पञ्जाबी का ही विश्लेषण करके देखें तो उसमें संस्कृत का कितना शब्दभण्डार तत्सम और तद्भव रूप में विद्यमान मिलेगा। इसलिए यह तो मानना ही होगा कि आज के युग में भी संस्कृत का भारत की भावनात्मक एकता में योगदान किसी अन्य भाषा से कम नहीं है।

संस्कृत-साहित्य भी भारत की इस एकतात्मक भावना से शून्य नहीं। पुराणग्रन्थों को पढ़िए, भारत के प्रति क्या भक्तिभाव प्रकट किया गया है—

"(देवता कहते हैं) कल्पपर्यंत काल की आयु वाले देवों की विहार-भूमि स्वर्ग को प्राप्त करने की अपेक्षा अल्पायु मनुष्यों के स्थान (पृथ्वी-लोक) में भारत-भूमि को प्राप्त करना ही अच्छा है। वहाँ मानव सर्वस्व अर्पण कर क्षण-भर में ही भगवान् के चरणों में पहुँचने का अधिकारी बन जाता है।

"हम ने यज्ञ करके या सत्य बोल कर अथवा दूसरों की भलाई करके जो शुभ कर्म किए उनके फलस्वरूप स्वर्ग-सुख भोगने के पश्चात् भी कुछ पुण्य यदि शेष हों तो उसके प्रभाव से भारत में हमारा जन्म हो और इस जीवन की स्मृति भी बनी रहे। वहाँ भगवान् अपने भक्तों का कल्याण करते हैं!" (भागवत पुराण, ५ स्कन्ध)। देश के प्रति कितना प्रेम है?

इन्हीं पुराणों ने सात कुल पर्वतों की कल्पना के द्वारा भारत की एकता-भावना की प्रतिष्ठा की थी।

साहित्य—साहित्यिक ग्रन्थों में रामायण-महाभारत के पश्चात् भारत का नाट्य-शास्त्र प्राचीनतम ग्रन्थ है। उसमें नाट्य की जो चार वृत्तियां गिनाई गई हैं—भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी ये देश-भेद के अनुसार सारे भारत को एकताबद्ध करती हैं। इनमें सात्वती यादवों या आभीरों के प्रदेश से सम्बन्ध रखती थी जिसके अनुसार इसका प्रदेश शूरसेन (मथुरा) और द्वारिका होने चाहिएं। आरभटी का सम्बन्ध आरभट प्रदेश से या जो पश्चिमी बिलोचिस्तान में था। इस से उत्तर-पश्चिमी भाग का समाहार होता है। इसी प्रकार कैशिकी का सम्बन्ध क्रथकैशिक या विदर्भ से होना चाहिए। भारती का प्रदेश अन्तर्वेद या गंगा-यमुना

(शेष पृष्ठ ३ पर)

कर्मयोगी महात्मा हंसराज

[म. देवीचन्द]

महापुरुषों की जीवनियाँ समाज व जाति में नव-जीवन लाती हैं और देश के युवकों में नवीन रक्त का संचार करती हैं। वे हमारे लिए पथप्रदर्शक का काम करती हैं। धन्य है वह भूमि जहाँ महात्मा हंसराज जैसी पवित्र आत्मा ने जन्म लिया और धन्य थी वह माता जिसकी कोख से इस प्रकार का कर्मयोगी उत्पन्न हुआ। जीवन भी वास्तव में ऐसे ही लोगों का सफल होता है जिनके जीवन का उद्देश्य केवल अपनी उदर-पूर्ति नहीं होता, परन्तु वे मनुष्यमात्र की भलाई में अपना व अपने देश का अभ्युदय एवं विकास समझते हैं।

भारतवर्ष की अधोगति का मुख्य कारण इस देशवासियों की अविद्या ही समझनी चाहिए। इसी लिए आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने आर्यसमाज के दस नियमों में एक नियम यह रखा था कि "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।" उस नियम के अनुसार स्वामी जी के निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात् उनकी अत्युत्तम स्मृति स्थापित करने के लिए हमारे नेताओं ने शिक्षा के प्रसार को अपने हाथों में लेने का निश्चय किया। अतः सर्वप्रथम पंजाब की राजधानी लाहौर में मिशन कालेज तथा स्कूलों के मुकाबले पर आर्यसमाज ने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज का आंदोलन अपने हाथ में लिया, और उसका प्रारम्भ लाहौर के डी. ए. वी हाई स्कूल से हुआ। आवश्यकता थी कि इस महान् यज्ञ की पूर्ति के लिए कोई त्यागी वीर आहुति बनकर अपनी सेवाएं अर्पित करे। अतः नवयुवक हंसराज ने, जिन्होंने अभी पंजाब विश्वविद्यालय से बी. ए. की डिग्री प्राप्त की थी, महर्षि की इस पवित्र भावना को सम्मुख रखते हुए अपनी सेवाएं अर्पित कर दीं और यह व्रत धारण किया कि वह बिना किसी प्रकार का वेतन स्वीकार करने के आर्यसमाज और डी. ए. वी. कालेज कमेटी की सेवा करेंगे। उनके इस महान् त्याग का ही यह शुभ परिणाम आज देखने में आ रहा है कि पंजाब में कोई भी नगर ऐसा दिखाई नहीं देता जहां आर्यसमाज का कोई स्कूल अथवा कन्या-पाठशाला न हो। इन संस्थाओं में प्रातःस्मरणीय महात्मा हंसराज जी की आत्मा काम करती हुई दिखाई देती है।

महात्मा जी के पदचिह्नों पर चलते हुए अनेकों योग्य नवयुवकों ने भारत में शिक्षा और वैदिक धर्म के प्रचार को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और अपना जीवन उनके चरणों में भेंट किया। इस कर्मयोगी को मैं 'ज्योतिः-स्तम्भ" इसलिए कहता हूँ क्योंकि उन्होंने देश से अविद्या रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था। सैकड़ों नवयुवकों ने इन शिक्षा-संस्थानों से शिक्षा प्राप्त करके जहाँ शिक्षा के क्षेत्र में बहुमूल्य सेवाएँ की हैं वहाँ अनेकों नवयुवकों के हृदयों में देश-भक्ति का भाव भी उत्पन्न हुआ और वे स्वतन्त्रता रूपी अग्नि में शलभ की भांति जल मरे। महात्मा जी का जीवन आदर्श जीवन था, वह त्याग और तपस्या तथा सादगी की साक्षात् मूर्ति थे। इस 'ज्योतिः-स्तम्भ' से सहस्रों ने प्रकाश ग्रहण किया।

महात्मा जी ने न केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही हमारा पथ-प्रदर्शन किया है, अपितु समाज-सेवा के कार्य में भी वह सदैव हमारे अग्रणी बने रहे। जब कभी देश के किसी भाग में हिन्दू-जाति पर विपत्ति का समाचार उनके कानों तक पहुंचता था वह तड़प उठते थे और जाति व समाज पर आए उस संकट का निवारण करने के लिए एकदम अपनी सहायता का हाथ बढ़ाते थे।

महात्मा जी अपने जीवन में हमारे पथ-प्रदर्शक रहे। उनकी स्पिरिट हम में बनी ही रहनी चाहिए। उनका जीवन हमें जो शिक्षा प्रदान करता है उसको सम्मुख रखते हुए उत्साहपूर्वक आगे बढ़ते चले जाना चाहिए। इसमें हम सबका, देश व विश्व का कल्याण है। आशावादी कभी निराश नहीं हुआ करते। ●

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन-समागम— पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१. श्री केशवराम वैद्य, कुल्लू, २. श्रीमती शकुन्तला बत्रा, नई दिल्ली, ३-८. श्री बालकराम, श्री महेन्द्रपाल, श्री देवदत्त भल्ला, पठानकोट, ९-११. श्री सत्यप्रकाश, श्री जितेन्द्र, श्री शम्भूदास, गुरदासपुर, १२. प्रो. एस्. सी. श्रीवास्तव, बटाला, १३. श्री रमेशचन्द्र शास्त्री, अलीगढ़, १४. श्री बी. आर. शर्मा, चण्डीगढ़, १५. श्री अमरचन्द शारदा, सिंगापुर, १६. श्री. वाई. एल. डोगरा, बम्बई।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क— गतमास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए—

१-६. श्री राममूर्ति सेखरी, २५०), सर्वश्री अलफा मशीन मेकर्स १२ ५०), सर्वश्री सिगमा मशीन टूल्ज़ १२. ५०), डा. खानचन्द १०), श्री ज्ञानचन्द टक्साली १०) प्रो. श्री एस. सी. श्रीवास्तव १०), बटाला, ७. डा. रामरंग होशियारपुर १०), ८. श्री एम. आर. शास्त्री मद्रास १०), ९. श्री केशवराम बजौरा (कुल्लू) १०), १०. श्री चूनीलाल दीवान, जालन्धर १०), ११. श्री विचित्रसिंह हरदोखुन्दपुर (होशियारपुर) १०) १२. श्री सरदारीलाल दुग्गल, जालन्धर १०)

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—

१. सेठ गुज्जरमल्ल अमृतलाल, मेरठ १५०), २. कविराज हरनामदास दिल्ली ७५), ३. श्री कर्मचन्द अहूजा बहादुरपुर ५०) ४. रा. ब. पं. गंगाप्रसाद, रुड़की ५०), ५. श्री बृजलाल जाजू अमृतसर ५०), ६. श्री अनन्तराम खोसला, जालन्धर ५०), ७. श्री जी.डी. वोहरा, कलकत्ता ५०) ८. सर्वश्री मीट्रो मोटर्ज़ अम्बाला छावनी ५०), ९ श्री जयदेव चण्ढोक नई दिल्ली ३४), १०. प्रो जगन्नाथ अग्रवाल, चण्डीगढ़ २९), ११. श्री विश्वप्रिय शास्त्री, भरतपुर २८), १२. श्री किशोरीलाल गुप्ता, अलाहाबाद २५), १३. श्री बलजीतसिंह, होशियारपुर २०), १४. रा ब. ईशरदास कपूर, असन्सोल २०) १५. ब्रिगेडियर के. बी. राय, देहरादून १५), १६. श्रीमती तुलसी बाई, (मुरादाबाद) १७. डा. विश्वनाथ, जोधपुर १६), १८. श्री खरायतीराम मलहोत्रा, यमुनानगर १०-५०), १९. डा. एस. के. शर्मा, चण्डीगढ़ १०) २०. डा. श्रीमती जनक जैरथ १०), डा. बृजलाल गोस्वामी १०),२२. श्री केशवचन्द १०), लुधियाना २३. श्री कुन्दनलाल गुप्ता, जम्मू १०), २४. श्री रूपलाल राजौरी (कश्मीर) १०), २५. रा.सा. श्री परमानन्द अलाहाबाद १०),२३.डा.एस.एम. कातरे, पूना १०),२७. श्री देशराज पुरी, अमृतसर १०) २८-२९. श्री रामगोपाल कुल्लू क्लाथ, १०), श्री निहालचन्द बजाज १०), होशियारपुर ३०. श्री सत्यानन्द, मद्रास १०), ३१-३२. श्री शिवनाथ वैद्य १०) डा. श्री वैष्णवदास कश्यप १०), नईदिल्ली ३३-३४. डा. बी. के. सेन-गुप्ता १०), श्री राधाकिशन चमरिया १०), कलकत्ता ३५. श्री चिरञ्जीलाल पटियाला १०), ३६. श्री दिलबाग राज यमुनानगर १०), ३७. डा. बाबूलाल अम्बाला कैंट १०), ३८. श्री रमनलाल छोटा लाल पारिख,बम्बई १०),३९. डा. एच. चन्द्र, पानीपत १०), ४०. प्रि. आर. वी. सेठ, नईदिल्ली ५) ४१. श्री सम्भामल्ल c/o ५६ ए. पी. ओ. ५),

विशेष दान—१. श्रीमती भागवन्ती मदनचन्द आनन्द बंबई २५००) (कमरे के वास्ते, प्राप्त दिसम्बर ६३ द्वारा श्री कुन्दनलाल आनन्द) २. श्रीमती लखवती कुन्दनलाल आनन्द बंबई २५००) (कमरे के वास्ते) ३-४. रायबहादुर बृजमोहनलाल १००), डा. रामनाथ १००)नईदिल्ली ५. श्री राजेश्वर सिंह, बंगा ५१), ६. श्री सर्वदयाल अम्बाला कैंट ५१), ७. श्री आशाराम यमुनानगर ५०), ८ श्री इन्द्रदत्त उनियाल होशियापुर ३५), ६. श्री सोहनदत्त वोहरा, अमृतसर ३१) १० श्री गुरबख्शसिंह जालन्धर ३०) ११. श्री अत्तरचन्द तनेजा, होशियारपुर २१), १२. श्री जगन्नाथ कालिया बहादुरपुर १०), १३-१४. श्री चिरञ्जीलाल पर्ती ६), श्री बलवन्तराय चोपड़ा ५), होशियारपुर।

विश्व-सत्संग—फरवरी के चारों सप्ताहों और मार्च के पहले तथा तीसरे सप्ताह के सत्संग में आचार्य श्री विश्वबन्धु जो ने मनुस्मृति के आधार पर प्रवचन किए। ८ मार्च के साप्ताहिक सत्संग में श्री देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर ने बृहदारण्यकोपनिषद् के एक प्रकरण के आधार पर प्रवचन किया।

आगामी कार्य-क्रम—१६ अप्रैल रविवार को राम-जयन्ती के उपलक्ष्य में तथा महात्मा हंसराज जी के जन्म-दिन के उपलक्ष्य में विशेष समारोह किया जायगा, जिसमें विशिष्ट विद्वान् अपने प्रवचनों द्वारा श्रद्धाञ्जलि अर्पित करेंगे।

२६ अप्रैल रविवार को सत्संग मंदिर में महावीर-जयन्ती मनाई जायगी; जिस में विद्वानों द्वारा महावीर जी के जीवन और कार्य पर प्रकाश डाला जाएगा।

नए प्रकाशन—भारत-भारती-ग्रन्थमाला के अन्तर्गत स्कन्द स्वामी, वेंकट माधव, मुद्गल और उद्गीथ के भाष्यों से युक्त ऋग्वेद के प्रकाशन का कार्य हो रहा है। इसका दूसरा भाग (मण्डल १, सूक्त ८१ से १६१ तक), तीसरा भाग (मण्डल २, ३, ४) प्रकाशित हो गया है। चौथा भाग (मण्डल ५, ६) शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। मूल्य ४५ रु० प्रति भाग।

सरस्वती-समाज—आचार्य श्री विश्वबन्धु जी की अध्यक्षता में परिषद् के ३०वें अधिवेशन (२८ फरवरी) में प्रो. श्री शिवप्रसाद भारद्वाज एम. ए. साहित्याचार्य ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल नाटकीय दृष्टि से असफल है' इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए।

परिषद् की अगली (२७ मार्च की) बैठक में श्री लक्ष्मी नरसिंह भारती एम. ए. 'भारत और ईरान की पुराण-कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करेंगे।

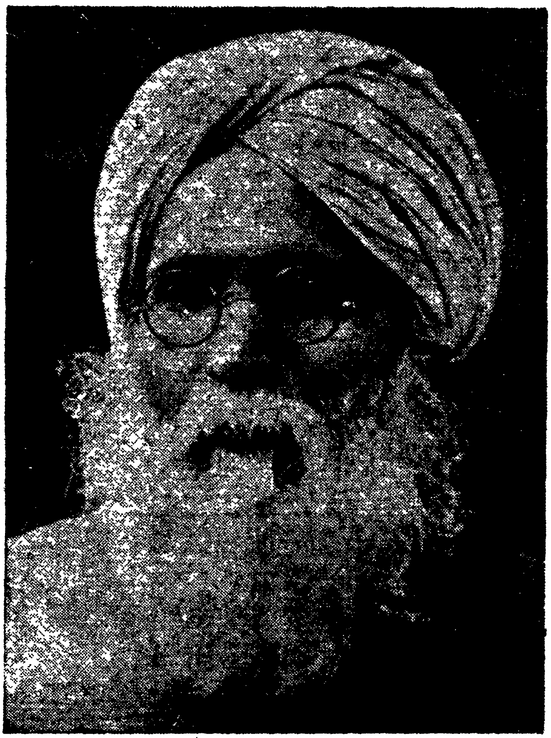
बधाई—संस्थान-सदस्य व उपसंचालक श्री कैलाशनाथ को उनके अनुज श्री केदारनाथ के शुभ विवाह पर, श्री बंसीलाल जैन (होशियारपुर) को उन के पौत्र श्री निरंजन के शुभ विवाह पर, श्री शिवराम शर्मा (ग्वालियर) को उनकी सुपुत्री अनुराधा के शुभ विवाह पर हार्दिक बधाई।

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान-सदस्य श्री देवराज चड्ढा (दिल्ली) के पिता श्री धनपतराय जी और माता श्रीमती बुधवन्ती जी का, मेजर राजा राणा दिग्विजयचन्द्र जी आफ जुब्बल (नई दिल्ली) की पत्नी जी का और संस्थान-सदस्य श्री मोतीलाल तेलंग (फिरोज़ाबाद) और श्री बिहारीलाल महाजन (होश्यारपुर) का देहान्त हो गया। दिवंगत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है

महात्मा हंसराज

[जिनकी १६ अप्रैल को जन्म-शताब्दी है]



Name of owner :— Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri**
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur.

विश्व-ज्योति

सह-सम्पादक

विश्वबन्धु : सन्तराम

●

मई १९६४

●

वार्षिक मूल्य—

भारत में : ८ रु. विदेश में : १२ शिलिग.

हमारे हिन्दी प्रकाशन

१. वेद-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.५०
२. श्रीमन्त्र पुष्पाञ्जलिसूक्त—आचार्य विश्वबन्धु	...	०.२५
३. वेद-नवाह्निक— „ „	...	०.५०
४. ईशावास्योपनिषद्-दर्पण—श्री सत्यदेव, बी. ए.	...	१.००
५. केनोपनिषद्-दर्पण— „ „	...	०.७५
६. कठोपनिषद्-दर्पण— „ „	...	१.१२
७. कठोपनिषद्—श्रीमती विद्यावती मिश्र	...	०.८१
८. उपनिषद्-दिग्दर्शन—डा. दीवानचन्द एम. ए.	...	२.७५
९. ब्रह्मविद्या— स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	६.००
१०. अध्यात्म-दर्शन— „ „ „	...	४.००
११. कर्म और योग— „ „ „	...	२.५०
१२. आनन्द-मार्ग— „ „ „	...	२.००
१३. आत्मानुभूति— „ „ „	...	२.००
१४. धर्म की आवश्यकता— „ „	...	१.००
१५. संस्कृत-शिक्षा-विधि——प्रो. गौरीशंकर एम. ए., बी. लिट.	...	३.२५
१६. सत्संग-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.३७
१७. सुखी संसार— „ „	...	०.५०
१८. पंजाबी रामायण—श्री रामलुभाया आनन्द 'दिलशाद'	...	१०.००
१९. मानस गंगा—श्री उमादत्त, बी. ए., एलएल. बी.	...	२.००
२०. स्वर्ण-पादुका—प्रो. परमानन्द शर्मा, एम. ए.	...	१.२५
२१. प्रवेस्ता—श्री राजाराम शर्मा	...	१.२५
२२. वीर बौना (सचित्र)—कान्ता डोगरा	...	१.२५
२३. फतेहनामा गुरु खालसा जी का—प्रो. सीताराम कोहली	...	३.६०
२४. ध्वस्त नीड़—श्री श्रीपाद जोशी	...	३.००
२५. हमारा समाज—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	४.००
२६. आदर्श पत्नी— „ „	...	२.५०
२७. हमारे बच्चे— „ „	...	३.७५
२८. बच्चों की देख-भाल—प्रिं. बहादुरमल्ल, एम. ए.	...	१.७५
२९. मन की अद्भुत बातें— „ „ „	...	२.००
३०. दुनिया तुम्हारी है—डॉ. रामचरण महेन्द्र, एम. ए., पीएच. डी.	...	३.३७
३१. संसार को चुनौती—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	२.६२
३२. नागरिक गीता—श्री चमनलाल	...	१.७५
३३. शिष्टाचार—श्री सन्तराम बी. ए.	...	२.००

३४. व्यवहारिक ज्ञान—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	२.७५
३५ लोक-विजय— ,, ,,	...	३ २५
३६. युवक मनोविज्ञान—प्रिं. बहादुरमल, एम. ए.	...	२.००
३७. सेवाकुञ्ज— श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.५०
३८. चमत्कारों की दुनिया— ,, ,,	...	०.७५
३९. फलाहार— ,, ,,	...	१.२५
४०. महाभारत के श्रीकृष्ण—श्री देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर	...	२.२५
४१. छत्रपति—प्रो. परमानन्द शर्मा	...	३.००
४२. वीर शिवाजी—श्री श्रीपाद जोशी	...	२.७५
४३. स्वामी नित्यानन्द : जीवन और कार्य—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	२.५०
४४. भारतीय नवोदय के अग्रदूत—	...	३.५५
४५. राजा राममोहन राय—श्री अखिल विनय, एम. ए.	...	०.७५
४६. महर्षि दयानन्द—श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'	...	०.७५
४७. विश्व के दार्शनिक—श्री रत्नचन्द्र श्री महेन्द्रकुलश्रेष्ठ	...	४.५०
४८. स्वामी रामतीर्थ—श्री रामकृष्ण	...	०.७५
४९. योगी अरविन्द—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	०.७५
५०. महाबली भीम [सचित्र]—श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर	...	१.५०
५१. भीष्म पितामह [सचित्र]— ,, ,,	...	१.५०
५२. धर्मराज युधिष्ठिर [सचित्र]—,, ,,	..	१.५०
५३. वीर अर्जुन [सचित्र]— ,, ,,	..	१.५०
५४. विद्यापति और चण्डीदास—श्री रामावतार	...	१.३१
५५. आधुनिक हिन्दी कविता के वाद—श्री विनयमोहन शर्मा	...	१.३१
५६. रस-धारा—श्री सन्तराम, बी. ए.		०.७५
५७ सूखे संतरे—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	१.३७
५८. प्रलय और सृष्टि— ,, ,,	...	२.००
५९. मिट्टी का कलश—श्री शिवनाथ दुबे	...	१.२५
६०. महाभारत की कहानियाँ (द्वितीय संस्करण)—श्री देवदत्त शास्त्री	...	१.००
६१. बड़े लोग श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.२५
६२. रसवन्ती— ,, ,,	...	२.००
६३. नए युग की कहानियां— ,, ,,	...	१.७५
६४. अच्छी अच्छी कहानियां [सचित्र],, ,,	...	०.८०
६५. बात की बात—प्रो. परमानन्द शर्मा,एम. ए.	...	१.००
६६. बालभूषण—श्री राष्ट्रबन्धु	...	१.२५
६७. तितली—श्री कुन्दनलाल 'अशोक'	...	१.५०
६८. आत्म-तत्त्व-प्रकाश—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	१.५०

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) Shāntakuṭī Vedic Series :

Volume I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa *(A Vedic Word-Concordance)*, in Sections I-V, split up into 15 parts, treated as volumes in the series, Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II (Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upaniṣads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in I pt.]. Covering 11,000 (10″×7″) pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40; Q. II, Rs. 30; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional sets (but not individual parts) entertained. 14 parts on sale, remaining 1 part due '64.

Volume XVI. A Grammatical Word-Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Grammatical Word-Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volume XVIII-XIX. A Grammatical Word-Index to the four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Grammatical Word-Index to Taittirīya Saṁhitā, Rs. 40.

Volume XXI. A Grammatical Word-Index to Upaniṣads, due '64, Rs. 30.

(B) Vishveshvaranand Indological Series :

Volume I-II. Siddha Bhāratī, *(A Rosary of Indology)*, Pts. I-II, 108 classified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā, *(A Concordance of Purāṇa Contents)*, by Prof. Y. P. Tandan, Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha, *(Texts on Courtezans in Classical Sanskrit)*, texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20.

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern Philology, by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī, *(The Homage of Indology)*, 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Aggarwal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr. U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Cultural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volume X-XI. Catalogue of VVRI Collection of Manuscripts, 2 Pts. Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L. Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII. Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-pāṭha and Sāyaṇācārya's Commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVI ready, Rs. 180.

Volume XVIII. Saṅkarṣa-Kāṇḍa-Sūtras of Jaimini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Volumes XIX-XXVI. Ṛgveda, in 8 parts, first cri. edn. of the Bhāṣyas of Skandasamin, Udgītha, Mudgala and Venkaṭa-Mādhav, Ed. Vishva Bandhu. Pts. 2 and 3 ready, Rs. 90.

Volumes XXVII-XXIX. Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, first cri. edn. by L. Sternbach, Vol. XXVII ready, Rs. 30.

Volume XXX. Dṛggaṇitam of Parameśvara, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

(C) Woolner Indological Series :

Volume I. The Foreign Policy of Warren Hastings, by Ram Prakash, Rs. 5.

Volume II. Tagore Centenary Volume, Ed. Shri Mahendra Kulasrestha, Foreword by Prof. Humayun Kabir. Rs. 16.

Volume IIA. The Genius of Tagore, P. I of the above. De-luxe Rs. 12. Standard Rs 8.

Volume II B. Aspects of Indian Culture, P. II of the above. De-luxe Rs. 18. Standard Rs. 12

Volume III. Outline of Indian History, by Sri Ram Sharma, Rs. 8.

Volume IV. The Sāṅkhya Kārikā of Iśvarakṛṣṇa, by C. Kunhan Raja, Rs. 10.

Volumes V-VIII. Rājataraṅgiṇī, cri. edn. of its texts by Kalhana, Jonarāja, Śrīvara and Śuka, Vol. V ready. Ed. Vishva Bandhu, Rs. 30.

(D) Sarvadānand Universal Series :

Volume XII. Mental Health in Theory & Practice, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 2.25.

Volume XVIII. A Story of Indian Culture, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 5.

Volume XXV. The Theory of Socialism, Ancient and Medieval, by Prof. R. M. Uppal, Rs. 1.25.

Volume XXVI. Great Thoughts of Great Men, by Prin. Sain Das, Rs. 3.50.

Volume XXVII. The Religion of Buddha and its Relation to Upaniṣadic Thought, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 4.50.

Volume XXX. Popular Talks on Psychological Topics, by Dr. Prem Nath, Rs. 2.25.

Volume XXXI. An Introduction into Lamaism, The Mystical Buddhism of Tibet, by R. P. Anuruddha, Rs. 8.

Volume XXXIV. Shri Krishna, His Philosophy and His Spiritual Path, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3.25

Volume XL. Dayanand, A Study in Hinduism, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3.25.

Can be had of :

VISHVESHVARANAND BOOK AGENCY

P. O. Sadhu Ashram, HOSHIARPUR (Pb. India)

इस अङ्क में पढ़िए


BLOCKS
M. C. HANDA BROTHERS, Khingran Gate, JULLUNDUR CITY.

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, वैशाख, २०२०; मई १९६४ { संख्या ३

वेदामृत—

प्रभु-शासन

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥

(उस) व्यापक महाराज (के आगे संसार-पट स्पष्ट खुला हुआ है)। कोई ठहरा हुआ हो या चल रहा हो। कोई बचकर चलता हो, छिप-छिपकर चलता हो या कि अकड़ अकड़ कर चलता हो (उससे कुछ भूला हुआ नहीं हो सकता)। जहां दो व्यक्ति (गुप्त) बैठकर (भी) बात करते हैं, (वहां) प्रभु तीसरा (बनकर) शामिल रहता है। (अथर्व. ४,१६,२)

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञः उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥

(प्रभु कहां नहीं है?) यह भूमि उसी की है। वह महाविस्तृत आकाश उसी का है। दोनों सागर उसकी कुक्षियों (के समान) हैं। और, इस छोटे पानी में भी वह विद्यमान है। (अथर्व. ४,१६,३)

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान् न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्रचरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥

चाहे कोई आकाश को भी पार करके परे निकल जाए, पर यह कब संभव है कि वह ईश्वरीय शासन से बाहर हो सके? (यहां तो ऐसा है कि मानो) उसके दिव्य सिपाही (सर्वत्र) फिर रहे हैं (और) हजारनेत्रिये बनकर भूमि के बीच में से भी देख रहे हैं। (अथर्व. ४,१६,४)

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥

(दिव्य) ज्योति दूर-से-दूर चमक रही है। वही भूत और भावी कामनाओं का लक्ष्य है। वही एक सब के ऊपर राज्य करती हुई जगमगाती है। (अथर्व. ६,३६,३)

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

[प्रा. राधेश्याम गोस्वामी]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने जिस हिन्दी-साहित्य को नया रूप दिया, बीजारोपण किया, उसे पुष्पित और पल्लवित करने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी को है। जो साहित्य-शिशु भारतेन्दु-युग में घुटनों के बल अभी आङ्गन में विचरता था, द्विवेदी-युग में आ कर उस ने किशोर-वय प्राप्त कर ली थी और प्रायः सर्वाङ्ग से सुपुष्ट हो गया था, पर उसे यौवन तो प्रसाद-युग में ही प्राप्त हुआ। अस्तु, किशोर-वय की भी अपनी विशेषता एवं सौंदर्य है, बल्कि यों कहिए कि जीवन का सर्वाधिक रस इसी अवस्था में है। हमारी इस बात का समर्थन सभी रीतिकालीन कवि करेंगे, जिन्हों ने वयःसन्धि के सहस्राधिक सरस छन्द लिखे हैं।

हिन्दी-साहित्य में द्विवेदी जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है, यहां तक कि हिन्दी-साहित्य में 'द्विवेदी-युग' के नाम से एक विशिष्ट काल माना जाता है। आचार्य शुक्ल जी ने द्वितीय-काल के उत्थान के नायक-रूप में ही द्विवेदी जी का उल्लेख किया है। गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में इस युग में हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हुई। गद्य का क्षेत्र बढ़ चला था—नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध और समालोचना सम्बन्धी ग्रन्थ-रत्नों की रचना हुई। संस्कृत, बँगला, अंग्रेज़ी के ग्रन्थों के अनुवाद तो हुए ही साथ ही मौलिक रचनाओं की भी कमी न रही। द्विवेदी जी सभी कवि व लेखकों को प्रेरित एवं प्रभावित करते थे।

द्विवेदी जी स्वयं भी गद्य व पद्य दोनों क्षेत्रों में समान रूप से लेखनी चलाते थे। हमारे विचार में वे लेखक अधिक थे और उसमें भी सम्पादक। हिन्दी-साहित्य का यह कैसा सौभाग्य है कि उसे प्रारम्भ में ही द्विवेदी जी जैसे सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न सम्पादक मिले। हिन्दी के प्रति आपका अनन्य प्रेम था। 'सरस्वती' इस सच्चे पुजारी को पा कर कृतार्थ हो गई।

जैसे तुलसी के प्रति किसी भावुक कवि ने जो यह कहा है कि—

'कविता कर के तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।'

हम भी इसी भाव को सीधे-सादे शब्दों में यों दोहरा सकते हैं कि "द्विवेदी जी 'सरस्वती' को पा कर शोभित नहीं हुए, अपितु 'सरस्वती' ही उन्हें पा कर शोभायमान हुई।

सरस्वती का सम्पादन-कार्य आप ने १९०३ ई० में सम्हाला था। तब से लेकर निरन्तर ये लिखते रहे, भाषा का परिष्कार और परिमार्जन करते रहे। जो लेखक व्याकरण-जन्य त्रुटियों तथा अव्यवस्थित वाक्य-रचना के शिकार थे—उन की अशुद्धियों को खोज-खोज कर निकाला और भाषा की शुद्धता की ओर अधिकाधिक ध्यान आकर्षित कराया। अवश्य ही यह बड़े साहस का कार्य था और द्विवेदी-सदृश महान् व्यक्तित्वशील काव्य-वेत्ता ही ऐसी मृदु किन्तु मर्मस्पर्शी फटकार दे सकते थे। कवि और लेखक दोनों के लिए परिष्कृत और निखरी भाषा का रूप इन्हीं हिन्दी के पितामह ने दिया था।

हिन्दी में विराम, अर्धविराम, प्रश्नचिह्न, विस्मयादि-बोधक चिह्नों के विषय में प्रायः बड़ी अनियमितता देखी जाती है और बड़े लेखक भी भाषा की इस सज्जा-भूषा की ओर उदासीन पाए जाते हैं। द्विवेदी जी ने इस विषय में सरस्वती में बड़ा सारगर्भित निबन्ध लिखा था और सोदाहरण प्रत्येक चिह्न का प्रयोग स्पष्ट किया था।

द्विवेदी जी अच्छे सम्पादक तो थे ही, पर अच्छे समीक्षक या समालोचक भी थे जो सम्पादक की महती विशेषता है। सरस्वती की १९०३ से १९२१ तक की सम्पादकीय टिप्पणियां, लेख, पुस्तक-समीक्षाएं एवं सामयिक घटनाओं की विद्वत्तापूर्ण विवेचनाएं इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। 'सरस्वती' को हिन्दी-

पत्रिकाओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कराने का श्रेय इन को ही है। नयनाभिराम नाना रङ्गीन चित्र उसकी शोभा द्विगुणित करते थे—वह परिपाटी अब भी चालू है। उन की पर्यवेक्षण-शक्ति बहुत सूक्ष्म थी।

१६२१ में आप सम्पादन-कार्य से मुक्त हुए। इसी वर्ष के जनवरी अङ्क में आप ने अपनी विदाई का बड़ा मार्मिक रूप दिया है। उन की सहृदयता तो देखिए—

"मेरे सम्पादन-समय में यदि पूर्वोक्त जनों का सरस्वती से कुछ भी मनोरञ्जन हुआ हो; यदि उन की समझ में मुझ से हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-भाषा को कुछ भी लाभ पहुंचा हो; यदि सम्पादक की हैसियत से मैं ने अपने कर्त्तव्य का निर्वाह अल्पांश में भी किया हो; और, यदि वे मुझे कल्याण-कामना के दान का पात्र समझते हों तो हृदय के अन्तस्तल से वे यह आशीर्वाद दें कि पूर्व-निर्दिष्ट (विपत्ति, दुःख की) घटनाएं मेरे भाग्याकाश से तितर-वितर हो जाएं। मेरा अवशिष्ट जीवन शांति-पूर्वक बीते। शारीरिक, मानसिक और आर्थिक कष्टों की बिभीषिका को सामने उपस्थित देख कर मेरी धैर्य-च्युति न हो; 'चना-चबैनी' को मैं मधुर-मोदक समझूँ, और सब से बड़ी बात यह हो कि दुर्धर से भी दुर्धर प्रसङ्ग आने पर सत्पथ से मेरा भ्रंश न हो। मेरा विश्वास है कि जन-समुदाय की हित-चिन्तना से मेरा भला हो सकता है और परमात्मा भी मुझे अपनी दया का पात्र बना सकता है, क्योंकि आत्मरूप में वही घट-घट में—प्रत्येक प्राणी के हृदय में विराज रहा है। बस मेरी यही अन्तिम प्रार्थना है। अच्छा तो अब मैं विदा होता हूं—

अतः परं व्यधिशतखतस्य मे।
मनो मनोहारिणि जाह्नवी-तटे॥"

उपरोक्त पंक्तियों में द्विवेदी जी की साधुता, विनम्रता और भक्त जैसी विह्वलता दीख पड़ती है। वे सच्चे मानव थे। राग-द्वेष से परे विवाद, शास्त्रार्थ और पार्टी-बन्दी से दूर। निर्लिप्त योगी और साधक की भांति इन्हों ने अपनी साधना की थी।

द्विवेदी जी ने आजन्म जो हिन्दी-साहित्य की सेवा की वह अमर है। इस वर्ष उनका पुण्य जन्म-शताब्दी समारोह है। इस समारोह की सफलता के लिए आवश्यकता इस बात की है कि पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे उनके साहित्य-रत्नों का सङ्कलन कर के पुस्तक-रूप में मुद्रण किया जाए। यह निःसंदेह हिन्दी-साहित्य के लिए अमूल्य निधि सिद्ध होगी।

तीन मुक्तक

[श्री हरीश करुण]

जीवन क्या है और क्या संसार है
इस सारी वक्रोक्ति का क्या सार है
तब युग के स्वप्न-द्रष्टा कवि ने कहा
मूलभूत बस प्रेम का उद्‌गार है।

मृत्यु ही जग-जीवन का आधार है
सतत आवागवन यही संसार है
यहाँ अन्वेषण के परिणाम-स्वरूप
सत्य सब ही, मिथ्या लेकिन प्यार है।

व्यक्ति के होने से ही संसार है
प्रवात क्या, यदि नाव का आधार है
बन जाती इस्पाती, जिजीविषा से
इस जीवन की रेत की दीवार है।

भावनात्मक एकता में रामायण का योगदान

[प्रा. रत्नचन्द्र शर्मा]

राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिए तथा आपत्कालीन परिस्थितियों में राष्ट्र के सम्यक् संरक्षण के लिए जनता में भावनात्मक एकता का होना सर्वथा अनिवार्य है। शांति के दिनों में भावनात्मक एकता के भंग होने पर गृह-कलह तथा आंतरिक अशांति की आशङ्का उत्पन्न हो जाती है और राष्ट्र को संकट का सामना करना पड़ जाता है। आपत्कालीन परिस्थितियों में और विशेषकर बाहरी आक्रमण के कारण युद्धकालीन अवस्था में भावनात्मक एकता का अभाव राष्ट्र के जीवन को सन्देह में डाल देता है। अतः कहा जा सकता है कि भावनात्मक एकता राष्ट्रीय जीवन की, राष्ट्रीय सुरक्षा की और राष्ट्रीय जागरूकता की एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। कदाचित् इसी बात को ध्यान में रखते हुए राजनीतिशास्त्रियों ने उस जन-समुदाय का 'राष्ट्र' नाम रखा है जिसमें लोगों की स्वाभाविक समानताओं के बन्धन दृढ और सच्चे हों। इन स्वाभाविक समानताओं के मुख्य बन्धन हैं देश-सम्बन्धी एकता, हानि-लाभ की एकता, धर्म की एकता, ऐतिहासिक गौरव एवं महापुरुषों की समानता आदि। इन से राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध होती है और भावनात्मक एकता उत्पन्न होती है जो संकटकालीन परिस्थितियों में संरक्षण का तथा शांतिकालीन परिस्थितियों में राष्ट्रीय अभ्युत्थान का कारण बनती है, क्योंकि भावनात्मक एकता से सङ्गठन की भावना उत्पन्न होती है जिस से समाज के विभिन्न अङ्गों एवं व्यक्तियों में और फलतः राष्ट्र-भर में एक समान मङ्गलकारी सङ्कल्प की जागृति होती है। एक हृदय, एक मन, एक शुभ सङ्कल्प और समान हित की भावना के जाग्रत होने पर न केवल एक राष्ट्र में ही, वरन् समस्त संसार में ऐश्वर्य और अभ्युदय का होना स्वाभाविक है। विभिन्न युगों में होने वाले विभिन्न महापुरुषों ने इसी प्रकार के सर्व-हितकारक अभ्युदय की ही कामना की है। भगवान् कृष्ण ने इसी को 'सात्त्विक यज्ञ' कहा है। कदाचित् इसी भावना से प्रेरित होकर ऋग्वेद (१०,१९१,२) में कहा गया है—

"सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥"

जिन महापुरुषों एवं महाग्रन्थों ने भारत में तथा विश्व में भावनात्मकता को उत्पन्न करने में तथा उसके द्वारा सार्वभौतिक निःश्रेयस एवं अभ्युत्थान में सहयोग दिया है उन में मर्यादापुरुषोत्तम राम और रामायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लाला हरदयाल ने एक स्थान पर लिखा है कि उत्तरभारत के आर्यों तथा दक्षिणभारत की आदिवासी आर्येतर जातियों में भावनात्मक एकता स्थापित करके उन्हें परस्पर मिलाने और उन मे मित्रतापूर्ण एकता उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य राम ने सम्पन्न किया था। निस्सन्देह राम ही वे प्रथम महापुरुष अथवा दिव्यपुरुष थे जिन्हों ने सबसे पहले जहां एक ओर 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' कह कर सबके सामने मातृतुल्य मातृभूमि के गौरव का आदर्श प्रस्तुत किया वहां दूसरी ओर विभिन्न जातियों एवं वर्गों में भावनात्मक समता की भावना को उत्पन्न किया। जहां एक ओर उन्हों ने अगस्त्य, अत्रि, भरद्वाज आदि ऋषियों और तपस्वियों का सम्मान बढ़ाया वहां दूसरी ओर निषादराज को अपना मित्र बनाया, शबरी के फल-मूल आदि ग्रहण कर उसे गौरवान्वित किया. जटायु को पितृवत् माना, सुग्रीव के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया, विभीषण को लंका-पति बनाया। उन का आश्रय और सहवास पाकर हनुमान् भक्तराज और दिव्य-पुरुष बन गया। वे तो आर्यों और राक्षसों में भी मित्र-भावना स्थापित करना चाहते थे, परन्तु रावण और उसके अनुचर उसमें बाधक थे। राम इस बाधा को समाप्त कर देना चाहते थे; देवों और दानवों के, आर्यों और आर्येतर जातियों के संघर्ष को मिटा देना चाहते थे। रावण द्वारा सीता के अपहरण ने उन्हें अवसर प्रदान कर दिया और उन्हों ने वानर, भल्लुक, ऋक्ष आदि

आर्येतर जातियों के सहयोग से रावण तथा उस के कुमार्ग-गामी अनुचरों का नाश कर दिया।

बालि-वध के पश्चात् किष्किन्धा के राज्य को अथवा रावण-वध के पश्चात् लंका के राज्य को राम ने अपने अयोध्या के राज्य में सम्मिलित नहीं किया। उन्हों ने किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को और लंका का राज्य विभीषण को दे दिया। ऐसा करके उन्हों ने उत्तर-भारत तथा दक्षिण-भारत के राज्यों में एवं आर्यों और आर्येतर जातियों में स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर दिया जिस का आधार विजय की भावना नहीं था, वरन् मित्रता और समता की भावना थी। राम मर्यादा-पुरुषोत्तम थे और थे दैवी-शक्तियों के प्रतीक एवं स्पृहणीय दिव्य गुणों के आगार। उनके विराट् व्यक्तित्व में उदात्त निर्माण की अजय्य शक्ति के साथ-साथ दिव्य सौंदर्य और अद्भुत शील का विलक्षण स्वर्ण-संयोग था। भारतीय साहित्य में उन्हें शील, शक्ति और सौंदर्य का दिव्य पुञ्ज कहा गया है। उन की शक्ति में विध्वंस की अहंता नहीं थी, निर्माण का बल था जिस का प्रयोग वे स्वार्थों की सिद्धि के लिए नहीं करना चाहते थे, वरन् परोपकार के लिए, परार्थ-साधन के लिए, जन-कल्याण के लिए, समता की भावना और मित्रता की भावना की स्थापना के लिए करना चाहते थे। वे समस्त भारत को मर्यादा-पालन की शिक्षा देना चाहते थे और वह भी अपने उदात्त चरित्र से। वे रावण और उस के अनुचरों के समान समाज और राष्ट्र में आतंक नहीं फैलाना चाहते थे, लोकोत्पीडन को प्रोत्साहित नहीं करना चाहते थे, अनाचार को फैलाना नहीं चाहते थे। उन की मर्यादा-पालन-भावना केवल पारिवारिक सम्बन्धों तक ही सीमित नहीं थी। वे तो समाज के प्रत्येक वर्ग में और देश के प्रत्येक भाग में आर्य-जीवन के सदादर्शों को देखना चाहते थे। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की भावना का पवित्र उद्देश्य उन के सामने था तथा आर्य-कुल और आर्य-राष्ट्र की मर्यादाओं की रक्षा के लिए वे अपनी शक्ति का उपयोग भी करते थे। वे स्वयं मर्यादाओं का पालन करते थे और दूसरों से उनके पालन की आशा रखते थे। वस्तुतः ऐसा ही महापुरुष देश में राष्ट्रीय एकता, भावनात्मक समता, सामाजिक और धार्मिक सहिष्णुता तथा चारित्रिक उच्चता को उत्पन्न कर सकता है। यही कारण है कि राम भारतीय जनता के हृदय के सम्राट् बन चुके हैं। उन का नाम भारतीय आदर्शों का और आर्य-जीवन का प्रतीक बन गया हुआ है। वह भारतीय समाज और धर्म का अविभाज्य अंग बन गया हुआ है। भक्त उन्हें साक्षात् भगवान् मानते हैं और उन के नाम की माला फेरते हैं। अवतार-वाद में विश्वास न रखने वाले उन्हें 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' के नाम से पुकारते हैं। धर्म-भावना से निरपेक्ष भारतीय भी उन्हें मानवता के परम आदर्श के रूप में स्वीकार करते हैं और उनके लौकिक जीवन से प्रभावित हैं।

राम के नाम तथा चरित्र के समान ही राम-चरित-प्रतिपादक ग्रन्थों ने भी भारतीय धर्म और समाज में भावनात्मक एकता की भावना को जाग्रत रखने; मर्यादामय जीवन के आदर्शों के आधार पर राष्ट्रीय तथा सामाजिक चरित्र का निर्माण करने; पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक सम्बन्धों को सुव्यवस्थित करने, शासकों और शासितों को अपने-अपने कर्तव्यों के पालन द्वारा देश में शाति और सुव्यवस्था को बनाये रखने; शील और शक्ति के सामूहिक बल से भीरुता के परित्याग और देश तथा धर्म की सुरक्षा के लिए संबद्धता का सन्देश देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। राम-चरित को ले कर संस्कृत, हिन्दी, बङ्गला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तेलगू, तामिल, मलयालम आदि सभी भारतीय भाषाओं में अनेक महाकाव्यों, नाटकों, धर्म-ग्रन्थों, गीति-काव्यों आदि की रचना की गई है। प्राय: सभी प्रान्तों के लोक-गीतों में राम-चरित से सम्बन्धित घटनाओं का समावेश है और उन्हें धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों पर गाए जाते हुए सुना जा सकता है। आदि-कवि वाल्मीकि से ले कर आज तक के विभिन्न युगों में होने वाले प्रायः सभी प्रमुख भारतीय महाकवियों ने राम-चरित का किसी-न-किसी रूप में गुण-गान किया है। इस दृष्टि से राम-चरित भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में रचे जाने वाले साहित्य का प्रमुख विषय रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि राम-चरित ने भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में भावनात्मक एकता को आदि-कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक स्थिर रखा है।

इस सम्बन्ध में 'वाल्मीकि रामायण' तथा तुलसीदास के 'राम-चरित-मानस' (तुलसी-रामायण) का नाम तो विशेष रूप से लिया जा सकता है। 'रामचरित-मानस' ने तो मुस्लिम-युग में अन्ध-विश्वासी सुलतानों, बादशाहों, क़ाज़ियों आदि के अत्याचारों से पीडित तथा अपने आन्तरिक मतभेदों और धार्मिक विश्वासों से परस्पर विभक्त हिन्दू-जनता और भारतीय समाज में फिर से संगठन, समता और भावनात्मक एकता की भावना को जागृत करने में अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण कार्य किया। शैवों और शाक्तों का परस्पर सङ्घर्ष चल रहा था। वैष्णवों और शैवों की परस्पर नहीं बनती थी। उन का परस्पर शत्रुता-पूर्ण व्यवहार था। वैष्णवों में भी राम-भक्त और कृष्ण-भक्त एक-दूसरे को फूटी आँख नहीं देख सकते थे। हिन्दू-समाज आंतरिक-कलह का अखाड़ा बना हुआ था। तुलसी ने राम का आदर्श प्रस्तुत करके सब में फिर से समन्वय की भावना को उत्पन्न किया, सब को भावनात्मक एकता का पाठ पढ़ाया, सब के सामने राम के शक्ति, शील और सौंदर्य के आदर्शभूत जीवनादर्श को प्रस्तुत किया और मृतप्राय हिन्दू-समाज को फिर से संजीवनी शक्ति प्रदान की। आलोचकों का कहना है कि यदि उस समय तुलसी का आविर्भाव न होता और यदि वे मानस का शंख-नाद न करते तो हिन्दू-समाज पतन के ऐसे गर्त में जा गिरता जहां से उस का निकलना असम्भव हो जाता। कदाचित् इसी कारण तुलसी को जन-नायक कहा गया है। यदि उस युग में छत्रपति शिवाजी, महाराज छत्रसाल, राणा राजसिंह और गुरु गोविन्दसिंह ने राष्ट्रीय भावनाओं को अपना कर हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज की रक्षा के लिए तथा भारतीयता और मानवता के कल्याण के लिए तलवार उठा कर शारीरिक सहयोग दिया तो तुलसीदास तथा उन जैसे कुछ और युग-पुरुष महापुरुषों ने अपनी लेखनी उठा कर मानसिक सहयोग प्रदान किया। उनमें तुलसी का स्थान सब से ऊपर है। और तुलसी-काव्य का आधार है राम-नाम तथा राम का पावन-चरित। वही राम-नाम जिस का अवलम्ब लेकर आज फिर गांधी जी ने भारतीय जनता का नेतृत्व किया है और भारत को सदियों की दासता के पश्चात् स्वतन्त्रता दिलाई है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि राम के चरित ने प्रागैतिहासिक-काल से ले कर आज तक भारतीय समाज में धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में भावनात्मक एकता की भावना को जागृत रखने में एवं मर्यादा-पूर्ण चारित्रिक जीवन के निर्माण के कार्य में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है और आगे भी देता रहेगा।

मन तुम्हें मैं दे चुका हूँ

[श्री गिरीशचन्द्र ओझा 'निर्मोही']

मन तुम्हें मैं दे चुका हूँ।
भग्न आशा तिमिर-संकुल हृदय-मन्दिर कर चुका हूँ।

मृदु भावनाएँ तोड़ कर
निज कामनाएँ छोड़ कर,
मिथ्या जगत् के बन्धनों में लीन अब मैं हो चुका हूँ।

हृदय में पीडा छिपा कर
अश्रु के मोती लुटा कर,
कौन जानेगा कि कितनी मधुर निशि मैं रो चुका हूँ।

बन्धनों से बद्ध होकर
विवश परवश भीत बनकर,
मधुर सौरभ से सनी मृदु-कान्त-कलिका खो चुका हूँ।

घरबार से भी दूर रह कर
कल्पनाओं में विचर कर,
हृदय में जलती शिखा पर देह अपनी धर चुका हूँ।

मन न अब यों शोक कर
परिणाम से भी तू न डर,
प्रेम का प्रतिदान सुन्दर बीज विष का बो चुका हूँ।

★ ★ ×

राष्ट्रीय भावनात्मक एकता और भौतिक विज्ञान

[प्रा विद्याभूषण आनन्द]

श्री उदयशङ्कर भट्ट ने अपनी कविता में, जिस का शीर्षक है 'मेरा देश महान् बने' राष्ट्रीय भावनात्मक एकता का उपयुक्त वर्णन किया है। उस में से दो पद्य निम्न हैं—

मेरा देश महान् बने।
एक ध्येय हो, एक ज्ञेय हो,
एक समान विधान बने।
एक देश हो, एक वेश हो,
प्राणवान हो सदुद्देश्य हो,
एक ध्यान हो निज गुरुता का,
एक हिमालय-सी उठान हो,
मरण एक हो, वरण एक हो, जीवन एक समान बने!
मेरा देश महान् बने।
उठें, देश के लिए उठें हम,
जिएँ, देश के लिए जिएँ हम,
गलें, देश के लिए गलें हम,
मरें, देश के लिए मरें हम,
तन में, मन में यही ध्यान हो, 'भारत महिमावान बने'!
मेरा देश महान् बने!"

यह सहोदरता का अनुभव, मानसिक अनुकूलता व समीपता, दिलों का गाँठन, परम बन्धुत्व; समान सङ्कल्पों की सृष्टि, एक आत्मीयता, उस पावनी पृथ्वी को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सजगता और अवसर आने पर हंसते-हंसते मौत मसल कर आसमान की ओर उड़ान, अपनी अतीत-सभ्यता, संस्कृति और परम्परा की गौरव-गाथा की स्मृति से प्रोत्साहित होते हुए भविष्य का निर्माण; सत्य, महत्त्वाकांक्षा, न्याय-युक्त व्यवहार, उग्रता, दीक्षा, तप ब्रह्मचर्य और बलिदान की धारणा, अपने को राष्ट्र रूपी शरीर का अवयव समझना, ऐसी भावनात्मक एकता तो हृदय-सामंजस्य पर अवलंबित है।

प्रश्न उठता है कि ऐसी भावनात्मक एकता लाने के कौन-कौन-से साधन हैं, कौन-से बन्धन ऐसी परिदृढता के स्तम्भ हैं। राष्ट्र में कौन-सी ऐसी आकर्षण-शक्ति है जिस से प्रजा अपनी स्वतन्त्रता का अंश देकर उसके बन्धनों को सहर्ष स्वीकार करती है। मानव को तो केवल आत्म-तृप्ति के लिए ही जकड़ा जाना अभीष्ट है। वह तो अपनी ही प्यास बुझाना चाहता है। उस की आकांक्षाएं और कामनाएं उस के मानसिक ढांचे के स्तर से सम्बद्ध हैं और उन्हीं में उस की स्वाभाविक अनुरक्ति है। परन्तु मानव अपने व्यक्तित्व में एक असमर्थता का अनुभव करता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं नहीं कर सकता, इसी कारण वह परमुखापेक्षी बनता है। उसकी साधारण समस्याएं जैसे उदरपूर्ति, तन का ढापना और निवास-स्थान ही उसे सङ्गठन की ओर प्रेरित करती हैं। फिर उस की ज्ञान-पिपासा और प्रजा-तन्तु के विस्तार की अभिलाषा उसे राष्ट्र-निर्माण की ओर स्वयमेव लिए जाती हैं। कोई बलात्कार नहीं। यही उस की विकास-योजना का आधार है, उस के वैभव और समृद्धि का द्वार है।

यह भावनात्मक एकता का सूत्र अदृश्य है, इंद्रिय-गोचर नहीं। यह तो एक प्रेम-पाश है जिस का सृजन वाङ्माधुर्य, छल-छद्म-रहित हृदय और परोपकारमयी वृत्ति से होता है। राष्ट्र-सेवी तो प्रत्येक राष्ट्र-वासी रूपी मनके से जप-माला पिरोता है, इस में भारी सहन-शक्ति चाहिए।

"तागाए उल्फत में जब इन को पिरो सकता था तू।
फिर ये बिखरे क्यों तेरे तसबीह के दाने रहे॥"

और निष्कपटता का महात्म्य इस सोरठे से अभिव्यक्त होता है—

"जल पय सरिस बिकाइ,
देखहु प्रीति की रीति भल।
अलग होय बिलगाइ,
कपट खटाई परत ही॥"

कपट की खटाई से दिल खट्टे हो जाते हैं। पार्थक्य की भावना उत्पन्न होने से सम्बन्वय की निकटता लुप्त हो जाती है। और जो दिल दूर सो दूरो-दूर।

ऐसी मानसिक एकता के सृजन के लिए शरीरों, मनों और व्रतों में समानता होनी चाहिए।

"सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता।
संज्ञपनं वो मनसः संज्ञपनं हृदः॥"

मिल कर उठना, बैठना, चलना, विचार-परामर्श करना, वृद्धों का मान करना—ये साधन हैं निकटता लाने के। क़दम से क़दम मिला कर चलने वाली टुकड़ियों; स्कूलों और कालिजों के खिलाड़ियों अथवा किसी प्रतियोगिता में भाग लेने वाली टीमों में सहानुभूति हो जाती है। जब यातायात इतना सुगम न था, लोग मिल कर यात्रा को जाया करते थे, मार्ग की कठिनाइयों को मिल कर झेलते थे; इस से सख्य उत्पन्न होता था और ऐसे कई तीर्थ-मित्रों में आजीवन सम्बन्ध बना रहता था। आज-कल भी तीर्थ-यात्रा के लिए संस्थाएं कभी-कभी रेलवे बोगी अथवा गाड़ी का प्रबन्ध करती हैं। लंगर में एक साथ प्रीति-भोजन से स्वाभावों की अनुकूलता आती है। इसी कारण कल्याण-वृद्धि के लिए मिल कर बलशाली धूम मचाने का आदेश है—

"कृणोत धूमं वृषणं सखायः।"

इस धूम से अरि-दल के हृदय दहल जाते हैं। जनमत की ऐसी एकता का प्रदर्शन वास्तव में राष्ट्र का भारी कवच है। यही हमारी छावनी की सजावट है, यही हमारा तृपाण है। यह हमारे हृदय रूपी दुर्गों को आयसी और अधृष्ट बनाती है। यह वाचिक एकता मानसिक और कार्मिक एकता लाती है।

यह तो नहीं हो सकता कि पूर्ण समानता लाई जावे, अभिन्नता छा जावे और न ही ऐसा अभीष्ट है। वह तो मृत्यु-समान होगी। मानव का व्यक्तित्व मिट जाएगा। वह रंग-बिरंगे फूलों की शोभा दिखलाई न देगी, समतलता में काल्पनिक उड़ान कहां! और फिर दो हाथों में भी तो समानता नहीं है:—

"समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः।"

और दो सहोदर भाई भी तो समान नहीं होते। व्यक्तित्व का आदरभाव स्थिर रहने के साथ ही, जहां समष्टि का प्रश्न उठता है वहां पर स्वार्थ का परित्याग कर निज हित को गौण समझना ही समुन्नति का सोपान है। कुल के लिए एक का परित्याग कर दे, गांव के लिये कुल का और इस प्रकार आत्म-विस्तार करता जाए। पारस्परिक वैमनस्य, द्रौपदी-चीरहरण और लाक्षा-गृह जैसे अविस्मरणीय संतापों से भी अधीर न होने वाले अजातशत्रु युधिष्ठिर ने ही तो कहा था कि पाण्डवों और कौरवों के पारस्परिक विवाद में तो हम पांच और वे सौ हैं, परन्तु जहां कोई अन्य कौरवों पर आक्रमण करने का साहस करता है उसे एक सौ पांच प्रतिद्वन्द्वियों का सामना करना होगा। ऐसे समान आशय से ही एकता होती है। ऐसी ही परिस्थिति में कोई घर का भेदी नहीं बनता और न ही स्वर्णमयी लङ्का नष्ट होती है। हमारा देश तो पार्थक्य भावना से रसातल को पहुंचा है। समाज-विधान को सबल बनाए रखने के लिये तो सख्य भाव अनिवार्य है। पृथक् पृथक् चौके न रह कर समान अग्नि का प्रज्वलन हो।

ऐसी भावनात्मक एकता में आस्था को दृढ बनाए रखने के लिए निरन्तर जागरूक रहने की परम आवश्यकता है। मानवी शरीर भी तो एक राष्ट्र है। प्रत्येक अवयव में सहानुभूति है। पांव में काँटा लगता है, सारे शरीर में बिजली की लहर दौड़ जाती है। जैसे पिता पुत्र को आदेश करता है, "अश्मा भव, परशुर्भव, हिरण्यमस्तृतं भव। आत्मा वै पुत्र नामाऽसि, स जीव शरदः शतं वर्धमानः।" यही बातें राष्ट्र पर भी लागू हैं ताकि वह जीवित रहे और वृद्धि को प्राप्त हो।

भावनात्मक एकता की टक्कर का सामंजस्य विश्व में दुर्लभ है। भौतिक विज्ञान के निरीक्षणों की तो वहां पर पहुँच ही नहीं हो सकती, क्योंकि इस विज्ञान के उपार्जन का साधन तो पांच ज्ञानेन्द्रियां ही हैं "पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः" परन्तु मन तो इन से बहुत सूक्ष्म है, और फिर वह है भी जविष्ठ, सबसे अधिक वेगवान्. अपूर्व यक्ष जिस में त्रयी विद्या रथ-नाभि में अरों के समान प्रतिष्ठित है।

विशिष्ट सापेक्षतावाद में प्रकाश के वेग अर्थात् तीन लाख किलोमीटर प्रति सैकण्ड की गति को प्राकृतिक द्रव्यों की गति की चरम सीमा माना गया है। फिर प्रकाश की गति में एक अनोखी विशेषता यह है कि प्रकाश के स्रोत के स्तम्भ की गति-विधि का उसके

वेग पर कुछ भी तो प्रभाव नहीं। परन्तु प्रकाश का वेग मानसिक वेग की तुलना किसी भांति भी नहीं कर सकता, तो स्वाभाविक ही उसकी भावनाओं के प्रसार में कौन-कौन से नियम लागू होंगे उनका हमें बोध ही नहीं। मन की बनावट की गुत्थी सुलझानी कोई सरल नहीं। यदि यह प्राकृतिक वस्तु नहीं, तो क्या विचार-धारा के कारण ही उस की ऊर्जा है। इस में भावनाएं कैसे उत्पन्न होती हैं, उनके स्वरूप और प्रसार वा प्रभाव कैसे होते हैं! जहां पर प्रकाश के वेग की परि-स्थिति में लागू नियमों में परिवर्तन विस्मय में डाल देते हैं, वहां पर शीघ्रगामिनी भावना किस काल्पनिक संसार में उद्गम पाकर किस न्यारे-से स्वरूप में फैलती हुई, किन अचिंतनीय नियमों का पालन करती हुई, किन परिस्थितियों में सम, विषम अथवा उदासीन प्रतिचार (response) जाग्रत करती है, इस का समाधान जटिल ही है। ऐसा होते हुए भी भौतिक विज्ञान के अन्दर एकता की परिदृढता और अव्यक्त बन्धनों के प्रमाण तो मिलते हैं।

भौतिक विज्ञान में भी मानव की भांति ही दो पक्ष हैं; व्यष्टि और समष्टि, वैयक्तिक और सामूहिक; अणवीक्षकीय (microscopic) और सामुदायिक (macroscopic)। जहां पर हम अणुओं, व्यूहाणुओं अथवा विद्युदणुओं, नाभिकों और अन्य मूलभूत कणों आदि के पारस्परिक व्यवहारों तक का अन्वेषण करते हैं वह अणवीक्षकीय और जहां अणुओं अथवा व्यूहाणुओं के गणों का सम्बन्ध है वे सामूहिक गण नितान्त भिन्न हैं। इन समुदायों में सख्या भी बड़ी विशाल है। इस कारण जिस सांख्यिकी विद्या के नियमों का उपयोग हम जीवन बीमा की समस्याओं में अथवा बृहत् योजनाओं में करते हैं उस की अपेक्षा भी उनका समुपयुक्त क्षेत्र इस सामूहिक गण के विज्ञान में है।

कई एक गण तो केवल समुदाय के ही हैं, जैसे तापमान, गलनाङ्क, वाति दबाव। तापमान अणुगणों अथवा व्यूहाणुगणों की गत्यात्मक ऊर्जा के मध्यमान पर निर्भर है। किसी भी अणु अथवा व्यूहाणु के विषय में तापमान का प्रयोग ही निरर्थक है। इसी प्रकार वाति दबाव भी सामुदायिक गुण है; और ये गुण नितान्त प्रगाढ (intensive) परिमा के समान हैं। वितानी (extensive) नहीं कि तोल के दुगुना होने पर ये भी दुगुने हो जावें।

भौतिक द्रव्यों में ठोस अवस्था ही ऐसी है जिस में एकता का बन्धन अपेक्षतया परिदृढ है। तरल और वाति अवस्थाओं में वैसी दृढता नहीं है। परिणाम-स्वरूप इन की कोई भी तो आकृति नहीं है। घनत्व तो सब में है, इसलिये सभी में प्रकाय-प्रत्यास्थता है। दबाव बढ़ने से सभी पदार्थ सिकुड़ते हैं और कम होने पर फैलते हैं। परन्तु आकार-प्रत्यास्थता तो केवल ठोस पदार्थों में ही हैं। उन का ही आकार प्रकार है, उन ही के अन्दर अनाभ्यता है। उनकी ही ईषाएं ऊर्जा का पारेषण करती हैं। ऐसी सान्द्रता का सम्बन्ध उन के स्फट स्वरूप से है। अणुओं के विशेष स्थानों पर आरूढ रहने से ही आत्मीय आकार की सृष्टि होती है और ऐसी परम्परा से ही स्फट का निर्माण होता है। जैसे टीम की परिदृढता के लिये हाकी वा फुटबाल के खिलाड़ियों के स्थान निश्चित किये जाते है वैसे ही यहां पर भी व्यूह रचना होती है। साधारण नमक में क्षारातु (Sodium) और नीरजी (Chlorine) के अणुओं का भी स्फट है जहां पर पारस्परिक विद्यु-दणवीय कक्ष्याओं की क्षतिपूर्ति से विषमध्रुवीय बन्ध की सृष्टि हो जाती है। इनके अतिरिक्त समध्रुवीय बन्ध भी हैं, तथा उदजन-जन्य और धात्वीय भी।

फिर अनेक प्रकार की संमितियां (symmetries) हैं। इन के प्रयोग से जितने प्रकार के गणित शास्त्र के अनुसार स्फट के आकार बन सकते हैं वे सभी प्रकृति-निर्मित हैं। ऐक्सरे व्याभंग (X-Ray Diffraction) से ली गई चित्रावलियों द्वारा उन की निराली छटाओं का साक्षात्कार होता है।

बहिनों-भाइयों ने एक से वस्त्र पहन रखे हों, वसन्तपञ्चमी का त्योहार हो, उद्यानों की सजावट, फुलकारियों अथवा कश्मीरी शाल-दुशालों की संमिति से एकाङ्गीपन-सा हो जाता है। एक उच्च प्रकार की संमिति की सृष्टि तो गोलाकार में है जहां पर केन्द्र से सब दिशाओं में समानता प्रतीत होती है। राष्ट्र का आकार उसकी सभ्यता, संस्कृति और परम्परा पर निर्भर है। ये मानवीय और वे प्राकृतिक मर्यादाएँ

हैं। इधर आत्मलज्जा से आचार-वेला का उल्लङ्घन नहीं होता, उधर प्रत्यास्था का बल है जो दूरी और कोण के अन्तर होने नहीं देता।

और जैसे विशाल जन-समूह से राष्ट्र बनते हैं, इन छोटे-से स्फटों में भी संख्या बृहत् है। लोहे के एक ग्राम में अणुओं की संख्या एक लाख शंख $१०^{२२}$ से भी अधिक है। इस प्रकार एक पीकोग्राम (माइक्रो माइक्रो अर्थात् $१०^{-१२}$ ग्राम) में अणुओं की गिनती $१०^{१०}$ अर्थात् १० अरब बनती है जो पृथ्वी की मानवी आबादी से तिगुनी तो है ही। और यदि प्रांगार कार्बन के विशुद्ध स्वरूप हीरे से तुलना करें, तो उसके एक पीकोग्राम की अणुसंख्या की तुलना में चक्रवर्ती राज्य की जनसंख्या रुपए में आना मात्र होगी। हीरा पानी से साढ़े तीन गुना भारी है। उसके घनाकार की अश्रि (edge), जिसमें पार्थिव समाज के समान अणु हों, कोई चौथाई माइक्रोमीटर होगी। और निकटतम अणुओं की दूरी इतनी कि पैंसठ करोड़ पंक्ति में खड़े होकर एक सेंटीमीटर रेखा बनाएँ। यह है अपघर्षक शिरोमणि प्रांगार, अम्लों से अविक्षत रहने वाला, आखुरण और काठिन्य में अद्वितीय, भुजायन देशना की महिमा से शुभ्र द्युतिमान् रत्न जिसका गलनाङ्क ३७००° शतिक उच्चतम है। इसके औद्योगिक उपयोग इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि इसके औद्योगिक स्वरूप की अनुपलब्धि से आधुनिक धातु कर्म अभियान्त्रिकी लुप्त हो जाए और सामूहिक उत्पादन उद्ध्वस्त हो जावे। इन अणुओं को एक तार में बांधे रखने वाले अव्यक्त बल बड़े ही दृढ हैं जो विनिमय रूप में विद्युद्घनों के अतिच्छादन से उत्पन्न होते हैं।

बन्धनों की दृढ़ता प्रत्यास्थता द्वारा आंकी जाती है। गलनाङ्क से भी उसके परिमाण की इयत्ता होती है। गलनाङ्क वह तापमान है जब बाह्य ऊष्मा से ठोस रखने वाले बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। स्फट के स्तरों में स्राव होने लगता है। जिनमें स्फटाकार की संमितियां नहीं हैं वे अन्तर्वर्ती अभिघस्यता की परिस्थिति में से गुज़र कर बह निकलते हैं। अनाम्यता नष्ट हो जाती है, क्योंकि अणु ऊष्मा की इस मात्रा से आकार-प्रत्यास्थता की मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं। नियन्त्रणा का ह्रास हो जाता है। अर्थोष्मा प्रसिद्ध ही है जो मानव के स्वभाव में भारी परिवर्तन लाती है। मानव अर्थ का दास है। जठरानल से संतप्त मानव की उदर-पूर्ति की अनोखी समस्या है जिसे रहीम ने सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया है—

रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठि।
रीते अनरीते करत, भरे बिगारत दीठि॥

कमाई नेक न रहने से अन्न और मन अपवित्र हो जाते हैं। सामंजस्य विकृत होने लगता है और देश के प्रति द्रोह होने लगता है।

बाह्य स्रोत से ऊष्मा प्राप्ति की तुलना विदेशियों द्वारा मुद्रा वितरण से की जा सकती है। फलस्वरूप यह विदेशीय स्फूर्ति देश के प्रति अनुरक्ति में कमी कर देती है। विदेशी गाथाएँ चित्त में हिलोर लाती हैं, हृत्तंत्री विदेश के गीतों से निनादित होती है, विदेशी चल-चित्र चित्त को लुभाते हैं। अपनी परम्परा विच्छिन्न हो जाती है। ऐसी निर्बलता स्फट की अपूर्णता और विस्थापनों से भी आ जाती है जिससे स्तरों में सर्पण हो जाता है।

स्तरों के दूषण और जारण के निवारण की आवश्यकता भा-विद्युतीय प्रभाव के प्रयोगों से स्पष्ट है। इसमें धातु के अन्तस्तल से विद्युदणु धातु तल पर प्रकाश के पड़ने से बाहर आ जाते हैं। वायु के स्पर्शमात्र से तल पर आवरण आ जाता है, इसलिए ये प्रयोग शून्यक में क्षारक धातुओं के क्षौर द्वारा नव-निर्मित तलों पर किए गए। तरल पदार्थों की तल आतति पर भी स्तर दूषणों का भारी प्रभाव है। सूक्ष्म विचार प्रभाव की भांति व्यूहाणुमात्रिक आवरण भी स्तर का स्वरूप बदल देता है।

फिर तरंगयांत्रिकी (Wave Mechanics) के अनुसार शक्यगिरि (potential hill) पर आरूढ होने में असमर्थ कण भी मेरु की दूसरी ओर तरंग पारेषण करते हैं, मानो कि यह एक सुरंगप्रभाव है। आश्चर्य हो उठता है कि कैसे प्राकृतिक द्रव्य में ऐसी अनूठी शक्ति। पुनश्च तरंग-गति प्रकाश के वेग का अतिक्रमण करने वाली। भावनात्मक स्वरूप से समानता प्रतीत होती है।

[शेष पृष्ठ २३ पर]

रत्न-चर्चा

[डा. नवरत्न कपूर]

परम शिष्य कपूर जी,

आप को 'पुत्र-रत्न' की प्राप्ति हुई, यह समाचार पढ़ कर अतीव हर्ष हुआ। बृहस्पति-स्मृति में नवजात शिशु के नामकरण की वांछनीयता का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म॥[1]

आप ने लिखा है कि पहली पत्नी के देहांत से पूर्व ही आप लोगों के पांचों बालक चल बसे थे। इस लिए दूसरी पत्नी के ज्येष्ठ पुत्र का प्रतीकारात्मक तथा भर्त्सना-सूचक नाम रखने का आप का विचार है। कुरुचिपूर्ण या निंदा-सूचक नामों के उदाहरण हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मिल ही जाते हैं। ऐसा ही एक नाम है शुनः शेप।

मुहल्ले या गाँव के कूड़े-कर्कट के ढेर को मालवी में 'रूड़ी' कहते हैं। उस पर बच्चे को लेटा कर 'रूड़' नाम रखने का तुम्हारा सुझाव मुझे कदापि मान्य नहीं। कमज़ोर को मालवी में 'माड़ा' कहते हैं। दुर्बल बालक का माड़ा' नाम रखने के भी मैं पक्ष में नहीं हूं। यों कहो मुझे ये भद्दे नाम कटु लगते हैं। मुलतानीमल, चमेलाराम, गेंदालाल, चूहियाराम ऐसे नामों के दिन अब लद गए हैं।

'रत्न' वस्तुतः ही स्पृहणीय वस्तु है। फिर पुत्र के रूप में 'रत्न' की प्राप्ति। 'रत्न' शब्द का अर्थ ही मूल्यवान् पदार्थ है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में यह शब्द इसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है। मन को प्रसन्न करने वाली वस्तु को भी 'रत्न' कहा जाता है। दूध, घी आदि उत्तम वस्तुओं को भी 'रत्न' की संज्ञा दी जाती है। श्रीगुरुग्रन्थसाहब में महात्माओं की वाणी (शब्द) और भगवान् के नाम को ही 'रत्न' की अभिधा प्रदान की गई है, यथा—

"रतन नामु अपारु कीमु नहु पवै अमुलऊ"

अर्थात् नाम रूपी 'रत्न' अनन्त कीमती है, इस का मूल्य नहीं आंका जा सकता।

'रत्न' समुद्र से प्राप्त होते हैं। अतः समुद्र को 'रत्नाकर' भी कहते हैं। पुराणों अनुसार मन्दराचल को मथानी और शेषनाग को रस्सी बना कर भगवान् विष्णु ने जो क्षीर-सागर का मथन किया था, उस से चौदह रत्न प्राप्त हुए थे। श्रीमद्भागवत' (स्कन्ध ८, मंगलाष्टक) में उन का उल्लेख निम्न प्रकारेण हुआ है—

लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वंतरिश्चन्द्रमाः,
गावः कामदुघाः सुरेश्वरगजो रंभादिदेवाङ्गनाः॥
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शंखोऽमृतं चांबुधेः,
रत्नानीह चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्युः सदा मंगलम्॥

इन रत्नों के अधिकारीगण का उल्लेख एक स्थान पर यों हुआ है—

कौस्तुभमणि, लक्ष्मी, पारिजात वृक्ष, पाञ्चजन्य शंख, सारंग धनुष विष्णु को; कामधेनु, रंभा नामक अप्सराएं और ऐरावत हाथी इन्द्र को; कालकूट विष और अर्धचन्द्र महादेव को; उच्चैःश्रवा घोड़ा सूर्य को; अमृत देवताओं को; सुरा दानवों को प्राप्त हुए। बुद्धि-हीन तक्षक के दंश का उपचार करने के लिए वैद्य धन्वन्तरि चौदहवां 'रत्न' कहलाया। यथा,

"खीर समुद्र विरोल के कड्ढे रतन चौदह वंड लीते।
मणि लक्खमी पारजात शख सारंग धनुर विष्णु वस कीते॥
कामधेनु ते अपच्छरा ऐरापत इद्रासन सीते।
कालकूट ते अर्धचन्द्र महादेव मस्तक धर लीते॥
घोड़ा मिलिआ सूरजे मद अमृत देव दानव पीते।
करे धनंतर वैदगी डससया तच्छक मति बिपरीते॥"

कुछ लोग समुद्र-मन्थन से प्राप्त चौदह रत्नों में से विष को निकाल कर इन की संख्या तेरह बताते हैं

---

१. नाम अखिल व्यवहार का हेतु है, वह शुभावह तथा कर्मों में भाग्य का हेतु है। नाम से ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है, अतः नामकरण (कर्म) अत्यन्त प्रशस्त है।

एशिया-भर में बौद्ध धर्म के आचार फैले हुए थे। यह बौद्ध विद्यालय दस एकड़ के क्षेत्रफल में फैला हुआ है, चारों ओर प्रहरी है।

अमरावती के बौद्ध विश्व-विद्यालय में बौद्ध धर्म के महायान तथा हीनयान दर्शनों का बराबर अध्ययन होता रहा। संस्कृत तथा हिन्दू धर्म के कुछ विशेष विषय भी पढ़ाये जाते थे। बुद्ध-पूजा के साथ शिव-पूजा भी होती थी। अमरावती का आदिभगवान् अमरेश्वर है, उसी अमरेश्वर के नाम पर इस कस्बे का नाम अमरावती पड़ा है। इस भगवान् का शिवलिंग कभी जैन-बौद्ध मूर्तियों में से एक था। जैन-बौद्ध-मूर्ति को ब्राह्मणों ने शिवलिंग में बदल दिया तथा शिवपूजा के नाम से व्याप्त किया। आज भी अमरावती के भग्नावशेषों में अमरेश्वरालय भी एक प्रस्तुत है जिसमें बुद्ध तथा शिव रूपों की एक साथ पूजा होने की प्रक्रिया यहां स्पष्ट होती है। अमरेश्वरालय हिंदू धर्म का प्रतीक है। यहा अमरेश्वर की पूजा आज भी होती है। इस प्रकार हिन्दू-बौद्ध धर्मों का समन्वय यहां पर हुआ था।

दार्शनिक विशेषताओं का समाहार होते हुए भी अमरावती विशिष्ट शिल्प-कला का निलय बना था। यहां के विशिष्ट शिल्प का 'अमरावती रीति' नाम पड़ा है। बौद्ध धर्म के साथ-साथ यहां कला का विकास होता गया। यहा का शिल्प-सौंदर्य शाश्वत कला खंड है। इसमें आंध्रों का ग्रीक-शिल्प कौशल भी प्रतिबिम्बित हुआ है। आंध्रों के शिल्प-प्रेम का यह एक उज्ज्वल नमूना है। आंध्र कभी सोत्कर्ष प्रकाशन के इच्छुक नहीं थे। अतः शिल्पकारों के अपने-अपने नाम शिल्प में उल्लिखित नहीं हुए।

बौद्ध मूर्तियों के अतिरिक्त अमरावती की शिल्प-कला में आंध्रों के आचार-विचार, वस्त्राभूषण, नाच-गान इत्यादि नाट्य-विधान तथा अभिनय की प्रधानता देने वाला जंत्रगात्र संगीत इस कला में चित्रित हैं। इसके अतिरिक्त तत्कालीन राज्य-व्यवस्था व समाज-व्यवस्था के चित्र भी संगमरमर पर अंकित हुए हैं। रथ-गज-तुरंग-पदाति समेतों के युद्ध-चित्र तथा झोंपड़ियों से लेकर राजप्रासाद तक शिल्प-कला में अंकित हुए हैं।

अमरावती का बौद्ध स्तूप शिल्प-कला में अ-समान है। स्तूप के चारों ओर एक बाड बनाई गई और ईंटों के बने स्तूप के अधोभाग को, जिसका व्यास १०७ फुट है शिलाफलकों की दोहरी पंक्ति से ढंकवाया है। यह सब संगमरमर का बना है जिन पर बढ़े रियाज के साथ असंख्य आश्चर्यजनक मूर्तियां और अलंकरण अंकित हैं। सत्य-प्रबोध के लिये यहां बोधि-वृक्ष तथा धर्मचक्रों का गठन, बौद्ध धर्म का प्रतीक बने हुए हैं।

इस स्तूप का निर्माण ई. पू. दूसरी शताब्दी में सातवाहनों ने किया था। मौर्य लिपि में उल्लिखित शासन भी मिले हैं। चार दशाओं में इसका निर्माण हुआ था। इ. पू. तथा उपरांत में भी निर्माण की दशाएँ चली थीं।

ईसा की चौथी शताब्दी से अमरावती का क्षीण-काल आरम्भ हुआ। बौद्धधर्म में तन्त्र-संप्रदाय का आगमन हो चुका और बौद्धाराम वेश्यागृह के नाम दूषित हो गये जिसके परिणाम में संघाराम शिथिल पड़ गये।

सातवाहनों के समय में आचार्य नागार्जुन का निवास भी यहीं हुआ था।

आज शिल्प-कला की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी में अमराबती के स्तूपों की खोज और उनके परिरक्षण की बात प्रकाश में आयी है। पहले-पहल सन् १७९७ में कर्नल कालिन मेकंजे ने शिल्पों की खोज आरम्भ की थी। कुछ शिल्प मद्रास भी लिवाये गये। बाद में सन् १८६७ में फर्गुसन ने विशिष्ट शिल्पों को लंदन भेज दिया था। शिल्प-कला से चकित होकर फर्गुसन ने एक उद्ग्रंथ प्रकाशित किया। आज भी वे शिल्प लंदन के म्यजियम में सुरक्षित हैं। अमरावती-शिल्प कलकत्ता के इंडियन म्यूजियम में रखे हुए हैं। आज भी अमरावती में शिल्पों के अवशेष हैं। सरकार की ओर से खोज का काम जारी हो गया है।

आज भी अमरावती यात्रियों का यात्रा-स्थल ही बना हुआ है। जो कोई यात्री बेजवाडा में उतरता है, अमरावती देखने अवश्य जाया करता है। बेजवाड़ा से गुंटूर होकर अमरावती जाते हैं। बेजवाड़ा से गुंटूर बीस मील है। अमरावती में शिवरात्रि के दिन भगवान् अमरेश्वर का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। यहां खान-पान तथा निवास के लिए सरकारी व्यवस्था की गयी है।

दक्षिण के दर्शनीय सांस्कृतिक स्थलों में अमरावती का नाम आदर के साथ लिया जाता है। ●

भावनात्मक एकता के बाधक एवं साधक तत्त्व

[डा० सियराम तिवारी]

भावनात्मक एकता पर विचार-आयोजन नया हो सकता है परन्तु भावनात्मक एकता का प्रश्न भारत के लिए नया नहीं है। भारत की जो सीमा है, अंग्रेज़ी राज्य के पूर्व इस सीमा के अंदर का भू-भाग कभी भी एक शासन के अधीन नहीं रहा। अनेक राज्यों में बंटे भारत को अंग्रेज़ी शासन के पूर्व कभी भी एक होने का अनुभव नहीं हुआ। अत्यन्त प्राचीन-काल से खण्डों में विभक्त भारत, जो अंग्रेज़ी शासन-काल में एक झण्डे के नीचे आ गया था, स्वतन्त्र होते ही अपनी पुरानी लीक पर चलने लगा—एकता की भावना को बहुत छोटी परिधि में सीमित कर लिया। भावनात्मक एकता की शिथिलता का सारा दायित्व आज की परिस्थिति पर नहीं है। यह समस्या तो भारत के लिए सनातन है। एक परिस्थिति (अंग्रेज़ी शासन) ने इस समस्या को थोड़े समय तक दबा रखा था, उस परिस्थिति के हट जाने पर यह समस्या उग्र रूप में प्रकट हुई है।

बाधक तत्व —

इस प्रश्न की सनातनता से यह स्वतः सिद्ध है कि भावनात्मक एकता को खण्डित करने वाले कुछ स्थायी कारण यहां विद्यमान हैं। ऐसे कारणों में प्रथम है इस देश की भौगोलिक बनावट। यह विशाल देश प्राकृतिक बनावट की दृष्टि से स्पष्टतः ही दो भागों में बंटा है—गङ्गा-सिंधु का मैदान और दक्षिण का प्लेटो। इन दोनों भागों की सांस्कृतिक परम्परा भी पृथक्-पृथक् रही है। इन दोनों भागों के अन्दर भी अनेक आधार पर अवांतर विभाजन हैं। प्राचीन-काल में, जब यातायात एवं अन्य आवश्यकताओं के लिए आधुनिक कालीन सुविधाएं प्राप्त नहीं थीं, इस विशाल भू-भाग को एक शासन में रखना शक्तिशाली सम्राटों के लिए भी असम्भव होता था। अतः एक शासन के अधीन न होने के कारण यहाँ के निवासियों की धारणा बड़ी संकुचित रही। दूरस्थ प्रदेशों के निवासी यहां विदेशी समझे जाते रहे हैं। एक देश के कोने-कोने के निवासियों में जो परस्पर सौहार्द होता है, उस का यहां अभाव रहा है। इस का भी एक कारण है। आत्मीयता सम्पर्क से उत्पन्न होती है और यहां के निवासियों में अनेक कारणों से सम्पर्क का सदैव अभाव रहा है।

१. इस विशाल देशके एक कोने से दूसरे कोने तक घूमने की आधुनिक युग में सुविधा भले ही हो गई हो, यह इतना व्यय-साध्य है कि देश के कम-से-कम अस्सी प्रतिशत व्यक्ति ऐसा करने की स्थिति में नहीं होते। अनेकानेक सुशिक्षित व्यक्ति देशाटन करने की प्रबल इच्छा रखते हुए भी आजीवन ऐसा कर नहीं पाते। और, प्राचीन-काल में जब आने-जाने की इतनी सुविधा नहीं थी, इतने बड़े देश में घूमने में तो सारी ज़िन्दगी ही समाप्त हो जाती। अत दूरस्थ राज्य यहां विदेश समझे जाते हैं और उन राज्यों के निवासियों की रीति-नीति, वेष-भूषा, रहन-सहन,सब अपरिचित होते हैं। ऐसी स्थिति में एकता की भावना का अभाव रहा तो यह अस्वाभाविक नहीं है। इस अभाव को दूर करने की ओर प्राचीन-काल में भी लोगों का ध्यान गया था। चार दिशाओं में चार धामों की स्थापना और चारों तीर्थों को पूर्ण कर लेने के बाद ही इस जीवन को पूर्ण बताने में यही उद्देश्य था। चारों धामों के तीर्थाटन में और जो भी उद्देश्य रहा हो, इस देश की विशालता का अनुभव कराना अवश्य ही उन में से एक रहा होगा। पुण्याभिलाषी हिन्दू-जनता अवश्य ही चारों धामों में जाने को उत्सुक रहती है, पर पचास प्रतिशत हिन्दुओं के लिए भी ऐसा करना कहाँ सम्भव होता है?

२. सम्पर्क के अभाव के कारण यहां धर्म भी स्थानीयता में जकड़ गया है। बिहार के ब्राह्मण बङ्गाल के ब्राह्मण से विवाह सम्बन्ध नहीं करते, इस को आखिर क्या कहा जाए? इस प्रवृत्ति के कारण भी दूरस्थ राज्यों के निवासियों में सम्पर्क-सूत्र टूटता गया।

३. भारत कृषि-प्रधान देश रहा है। कृषि-प्रधान देश के निवासियों की भू-सम्पत्ति के प्रति अटूट ममता होती है। इसी लिए यहां के निवासी एक स्थान पर बंध जाने की प्रवृत्ति रखते हैं। इसी कारण पितृ-भूमि को छोड़ना तो दूर, वहां से दूरस्थ स्थान पर नौकरी अथवा व्यापार करना भी नहीं चाहते।

४. भारत के लोगों में साहसिकता का अभाव होता है। जहां पर जन्म से रहते आए हैं, वहां पर कष्ट का जीवन बिताना लोग पसन्द करते हैं, किंतु दूर जाकर कोई जीविका नहीं खोजते और न कोई अन्य उद्योग करते हैं। सहकारिता के इस अभाव के कारण भी यहां दूर-दूर स्थित निवासियों में सम्पर्क न हो सका। दूर-दूर तक अपनी जीविका की खोज में जाने की प्रवृत्ति यहां होती तो भारत की अनेक समस्याओं का जन्म ही नहीं हो पाता।

५. राज्य के निवासियों में अलग-अलग रहने की प्रवृत्ति इतनी दृढ है कि एक राज्य के निवासी दूसरे राज्य में जाते भी हैं तो वहां के निवासियों में घुलते नहीं। वहाँ इस तरह रहते हैं जैसे वे विदेश में रहते हों, जहा उन के धर्म उन की जाति, उन के देश का कोई व्यक्ति नहीं जिस के साथ वे घुल-मिल सकें। वहां भी वे अपने राज्य के निवासियों को खोजेंगे और उङ्गली पर गिने जाने लायक व्यक्तियों की एक अलग दुनिया होगी। भारत के बड़े-बड़े शहरों में हालत यहां तक है कि मकान देने में भी लोग इस बात का ख्याल करते हैं कि मकान चाहने वाला व्यक्ति किस राज्य का है। कलकत्ता में पूछा जाने वाला हिन्दुस्तानी और बङ्गाली का प्रश्न तो सर्वविदित ही है। यह बात बड़ी छोटी है, परन्तु एक बहुत बड़ी घातक प्रवृत्ति की परिचायक है। यह प्रवृत्ति भारतीय भावनात्मक एकता पर एक बहुत बड़ा प्रश्न-चिह्न बन कर खड़ी है।

६. राज्यों में परस्पर सीमा का झगड़ा, एक राज्य के कुछ भागों को दूसरे में मिला कर उस राज्य का सीमा-विस्तार करने की प्रवृत्ति, भाषा एवं अन्य आधारों पर एक पृथक् राज्य बनाने का प्रयत्न, ये सब ऐसे प्रमाण हैं जिन से स्पष्ट है कि भारत में राष्ट्रीय-भावना अत्यन्त संकुचित और दुर्बल है। अतः ऐसे देश में राज्यों को इतनी स्वतन्त्रता देना अवांछनीय ही नहीं, घातक भी है।

७. भावनात्मक एकता को तोड़ने वाला सब से बड़ा तत्त्व भारत में भाषा का है। इस विशाल देश का भाषा समूह भी विशाल है। भाषा का अलगाव मानव-हृदय को विलग करने वाले तत्त्वों में सर्वप्रधान है। भाषा का यह व्यवधान भावनात्मक एकता के पिछले सारे प्रयासों को विफल करता रहा है। भाषाधार राज्य-निर्माण की नीति को अपना कर सरकार ने आग मे घी डालने का काम किया। राज्यों के निर्माण में एकमात्र दृष्टिकोण होना चाहिए प्रशासनिक सुविधा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी आधार ग्रहण करने से भावनात्मक एकता को ठेस लगेगी। बहुभाषी राज्य-निर्माण में कठिनाइया हैं, पर उन कठिनाइयों को दूर करने के अन्य उपाय भी हैं। उन कठिनाइयों से बचने के लिए भावनात्मक एकता को खतरे मे डालना बुद्धिमत्ता नहीं है।

८. अंगरेजी के प्रभुत्व से भी भावनात्मक एकता क्षीण हुई '। अहिन्दी भाषियों को आज हिन्दी का साम्राज्यवाद इसलिए मालूम पड़ता है कि सभी भाषाएँ अंगरेजी के साम्राज्यवाद से आक्रात हैं। अगर अंगरेजी इस प्रकार न लदी होती तो कभी भी यह अनुभव नहीं किया जाता कि हिन्दी दूसरी भाषाओं पर लद जायगी। अंगरेजी के वट वृक्ष के नीचे हमारी भाषाओं का बिरवा अपना रस नहीं पा सका है। अतः हमें अकारण भय होता है कि हिन्दी अन्य भाषाओं का मार्ग अवरुद्ध कर देगी। यह कितने बड़े आश्चर्य की बात है कि अंगरेजों को भगाते समय किसी को यह आशंका नहीं हुई कि अब भारत के ही कुछ लोग अंगरेजों का स्थान लेकर वैसा ही बन जाएँगे, पर भाषा के सम्बन्ध में अहिन्दी भाषी राज्यों को शंका होती है कि हिन्दी अंगरेजी के समान उनका उन्नति-पथ अवरुद्ध कर देगी? अंगरेजी हमारी एकता को खण्ड-खण्ड कर रही है, माया-मोह तोड़कर उसे अपदस्थ करना ही होगा, अन्यथा भावनात्मक एकता विखंडित रहेगी।

साधक तत्त्व—

भावनात्मक एकता के बाधक तत्त्वों पर विचार

करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे तत्त्व मुख्यतः दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के बाधक तत्त्व वे हैं जो प्राकृतिक हैं और इस देश के साथ सब दिन से लगे हुए हैं। इसके विपरीत दूसरे प्रकार के कारण वे हैं जिन्हें आज की परिस्थिति ने जन्म दिया है। प्रथम प्रकार के कारणों को तो मिटाया नहीं जा सकता, उनकी शक्ति को कम करने के लिए अवश्य ही कतिपय प्रयत्न किए जा सकते हैं।

१. भ्रमण की प्रवृत्ति को जोर-शोर से प्रोत्साहित करना चाहिए। देश के भिन्न-भिन्न भागों में फैले दर्शनीय स्थानों के विषय में प्रचार किया जाय। छात्रों के लिए ऐसी व्यवस्था की जाय कि तीन-चार दिनों और उससे अधिक की छुट्टियों में वे अवश्य देशाटन करें। केन्द्र और राज्यों में देशाटन का मंत्रालय खोला जाय जिससे यह व्यवस्था सुचारु रूप से हो सके।

२. अभी तक ऐसा किया जाता है कि किसी राज्य में स्थित कारखाने आदि में उसी राज्य के निवासियों के लिए स्थान सुरक्षित किए जाते हैं। ऐसा करना लोगों को संकुचितता की ओर बढ़ाना है। सभी राज्यों में स्थित सभी कारखानों, कार्यालयों में, चाहे वे राज्य-सरकार के हों अथवा केन्द्रीय सरकार के, सभी राज्यों के लिए जनसंख्यानुसार स्थान सुरक्षित रहें। इस व्यवस्था से अनेक प्रकार के लाभ होने की आशा है।

३. अन्तर्प्रांतीय और अन्तर्जातीय विवाह-सम्बन्ध का आरम्भ कराना चाहिए। भावनात्मक एकता को संभाले रहने के लिए यह अत्यन्त सबल सूत्र सिद्ध होगा।

४. ऊपर बताए गए उपाय तब सफल हो सकेंगे जब यातायात के तीव्रतम साधन प्रचुरता एवं सुविधा से उपलब्ध हो सकें। भावनात्मक एकता की सिद्धि का बहुत बड़ा भार सरकार के इसी विभाग पर है। अगर भावनात्मक एकता को सुदृढ करना है तो इस विभाग को सर्वप्रधानता देनी ही होगी; क्योंकि प्राकृतिक बाधक तत्त्वों को दूर करने के जितने उपाय होंगे, उनकी सफलता-विफलता इसी पर निर्भर करती है। अभी स्थिति विपरीत है। यातायात यहां दिनानुदिन महंगा होता जा रहा है। इसे सस्ता और सुलभ बना कर सारे भारत को गतिशील बना देना है। इस गतिशीलता में भावनात्मक एकता के बाधक तत्त्व चूर्ण हो जाएँगे।

५. उन भूलों को अविलम्ब सुधारना होगा, जिनसे भावनात्मक एकता को धक्का पहुंचा है। भाषाधार राज्य की नीति ऐसी भूलों में सर्वप्रथम है। इस नीति को वापस लेना होगा। राज्य प्रशासनिक सुविधा के आधार पर बनें, भाषा के आधार पर नहीं।

६. अंगरेजी का पद अति शीघ्र किसी भारतीय भाषा को दिया जाय। विदेशी भाषा के माध्यम से अपने देश की एकता को अक्षुण्ण रखने का प्रयास ऐसी बुद्धिहीनता है जिसे प्रथम बार भारत कर रहा है। जब तक अंगरेजी नहीं जाती तब तक भावनात्मक एकता का प्रयत्न स्वप्नवत् है।

७. सभी विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो, किन्तु वैकल्पिक रूप में परीक्षा का माध्यम राज-भाषा भी रहे। फिर, सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम ऐसे हों कि एक विश्वविद्यालय के छात्रों को अन्य विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने में कोई असुविधा न हो। इन व्यवस्थाओं से छात्रों की वह विवशता समाप्त हो जायगी जिसके कारण वे अपने ही राज्य में शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य रहते हैं और दूसरे राज्यों में जाने का उन्हें अवसर नहीं मिलता।

८. सभी भारतीय भाषाओं की एक लिपि हो। इससे एक भाषा-भाषी के लिए दूसरी भाषा सीखना तो सरल हो ही जायगा, एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषी से अपने को उतना दूर नहीं समझेंगे।

इन उपायों के अवलम्बन से भावनात्मक एकता की समस्या का समाधान अत्यन्त सरल हो जायगा।

कलम की कीमत

[श्री कन्हैयालाल पाराशर]

श्यामपुर गांव के प्राइमरी स्कूल की प्रातः-प्रार्थना की घण्टी बजी और नन्हे-मुन्ने बालक स्कूल के प्रांगन में पंक्तियां बांध कर खड़े हो गए। 'जन-मन-गण-अधिनायक' का अमर गीत गुञ्जार उठा। हैडमास्टर साहब ने 'सत्यं वद (सत्य बोलो), धर्मं चर (धर्म पर चलो) इत्यादि दो-चार वेद-वाक्यों का पाठ बच्चों से बुलवाया और फिर सब को अपनी-अपनी कक्षा में जाने की आज्ञा दी। वे स्वयं भी उस कक्षा में पहुँचे जहां उन्हें तीसरी कक्षा के बच्चों को पढ़ाना था। उन के कक्षा में प्रवेश करते ही बच्चे उठ खड़े हुए। उन्हें हाथ के इंगित से बैठने का आदेश दे कर हैडमास्टर साहब ने अपनी कुर्सी पर आसन जमाया।

पाठ प्रारम्भ करने से पहले उन्हों ने कक्षा की उपस्थिति भरने केलिए रजिस्टर उठाया। पैन निकालने केलिए पीछे कुर्सी पर टंगे कोट की जेब में हाथ डाला। देखा तो पैन गायब। "अरे यह पैन कहां गया? अभी प्रार्थना में जाने से पूर्व कोट यहां टाग कर गया था और तब जेब में पैन लगा हुआ था" मन ही मन मास्टर जी बुदबुदाए। बच्चों के सामने स्पष्ट कह देना उचित नहीं। यही विचार कर उन्हों ने मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से प्रश्न किया—"अच्छा बच्चो, हमें बतलाओ कि लिखने के लिए किन-किन वस्तुओं की जरूरत पड़ती है?"

"कलम, होल्डर, दवात, पैन, स्याही, कागज, हाथ" बच्चे भिन्न-भिन्न स्वरों में चिल्लाए।

मास्टर जी—"ऐसे नहीं। देखो, अब की बार हम प्रश्न करें तो जिन-जिन बच्चों को उत्तर आता हो, वे हाथ ऊपर उठाएं। अच्छा बताओ, पैन किस-किस रङ्ग के होते है?"

बच्चों ने हाथ उठाए।

"सरजू तुम बोलो"

"हरा"

दूसरा लड़का—"लाल"

तीसरा लड़का—"नीला"

दुल्ले तुम

"काला"

"नहीं, पैन काला नहीं होता। हम ने तो काला पैन आज तक देखा नहीं। तुम झूठ बोलते हो।"

"नहीं, पैन काले रङ्ग के भी होते हैं मास्टर जी" तीन बच्चों ने अपने पैन दिखाते हुए कहा। ये सब के सब काले रङ्ग के थे।

"अच्छा देखें इधर" मास्टर साहब ने पैन मागे। परन्तु यह क्या! दुल्ला अपना पैन दिखाते हुए भय से कांप उठा। मास्टर साहब ने ताड़ लिया और सब के पैन वापिस कर दिए। दुल्ले के शरीर में काटो तो खून नहीं। वह भय से रो पड़ा। वस्तुत: उस ने आवेश में अपना पैन दिखा दिया था। वह भूल गया था कि यह मैंने अभी-अभी चुराया भी है और अब आने वाले भय से उस का हृदय धक-धक कर रहा था। पिछले वर्ष उस ने अपनी आंखों से देखा था कि पुराने हैडमास्टर ने उस की कक्षा के एक लड़के को चोरी करने पर इतना पीटा था कि मारते-मारते उस की बांह तोड़ दी थी। यह घटना याद आते ही दुल्ले को ज्वर चढ़ आया।

हैडमास्टर साहब ने उसे अपने पास बुला कर पूछा, "क्यों रोते हो?"

"अ···ब···फिर क···भी नहीं उ···ठा···ऊंगा मास्टर जी" दुल्ला गिड़गिड़ाया।

'क्यों बेटा, तेरे पास लिखने को कुछ नहीं है" मास्टर जी ने प्यार से पूछा।

"नहीं जी" आंखें मलते हुए दुल्ले ने सिसकी भरी।

"अच्छा ले तो, तू अब से यही पैन रख" उन्हों ने प्यार से बच्चे की जेब में पैन लगा दिया।

बच्चों पर इस घटना का बड़ा ही प्रभाव पड़ा। अभी चार दिन हुए जब एक दूसरे मास्टर ने एक लड़के की दवात खो जाने पर कक्षा के सारे लड़कों की पिटाई कर दी थी। पर हैडमास्टर साहब के वात्सल्यमय व्यवहार से सभी बच्चों को ऐसा लगा मानो साक्षात् उन के पिता ही सामने खड़े हों।

और उस दिन से ले कर कक्षा के किसी भी बालक ने चोरी की हो इस की शिकायत नहीं आई।

× × ×

हैडमास्टर दयाराम जब से इस स्कूल में आए हैं, स्कूल की काया ही पलट गई। उनके आने से पहले बच्चे यदि प्रार्थना में जाते तो भेड़-बकरियों की तरह अव्यवस्थित रूप में खड़े हो जाते। मास्टर लोग कुर्सियों पर ऊंघते रहते। तंग आ कर गांव के प्रधान को कोई दूसरा हैडमास्टर भेजने के लिए इंस्पैक्टर साहब के यहां प्रार्थना-पत्र देना पड़ा था। इस के बाद आए मास्टर दयाराम, जिन्हों ने एक वर्ष में ही गांव वालों का दिल जीत लिया।

मास्टर जी समीप के ही अलीगढ़ नगर के रहने वाले हैं। उन की अपनी कोई सम्पत्ति है तो वह है एक टूटा-पुराना मकान और उस में रहने वाले यदि हैं तो उन के अतिरिक्त उन की दो सन्तानें। एक पुत्र चन्द्रभानु और दूसरी पुत्री इन्दुबाला। पत्नी को स्वर्ग सिधारे कई वर्ष बीत गए। इन्दु और चन्द्रभानु दोनों बच्चे स्कूल में पढ़ने जाते हैं। दोपहर का खाना दोनों होटल पर ही खाते हैं और शाम को मास्टर जी आ कर अपने हाथ से बना कर प्रेमपूर्वक बच्चों को खिलाते हैं। दोनों बच्चों का भविष्य उज्ज्वल हो—इस की उन को बड़ी लगन है। वे प्रतिमास अपने वेतन में से आधा भाग दोनों बच्चों की उच्च शिक्षा के लिए सेविंग बैंक में जमा करा देते हैं।

मास्टर दयाराम जैसे अपने घर में बच्चों का ध्यान रखते वैसे ही स्कूल में सभी बच्चों का भी। स्कूल को ऊँचा उठाने की चिन्ता उन्हें दिन-रात लगी रहती। उन के परिश्रम का ही यह परिणाम हुआ कि स्कूल का परीक्षा-परिणाम निरन्तर तीन वर्षों तक ज़िले में प्रथम आता रहा। खेल-कूद में भी उन के स्कूल की टीमें प्रशंसनीय रहीं। आस-पास के गांवों में मास्टर दयाराम के नाम की वाहवाह थी। जिला बोर्ड के चेयरमैन का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। उन्हों ने श्यामपुर में मिडिल स्कूल बनाने की योजना तैयार की। स्कूल के भवन-निर्माण के लिए आधा चन्दा गांव से ही एकत्रित किया जाए; इस का भार मास्टर जी के कन्धों पर सौंपा गया। मास्टर जी ने दिन-रात एक करके गांव वालों को घर-घर जा कर समझाया कि आप के बच्चे पांच मील दूर अलीगढ़ के स्कूल में जाते हैं। इस से उन का आधा समय तो आने-जाने में ही बेकार चला जाता है। इससे अच्छा क्या हो सकता है कि मिडिल तक की पढ़ाई की व्यवस्था गांव में ही हो जाए। प्रस्ताव सब की समझ में आ गया और देखते ही देखते गांव में मिडिल स्कूल बन गया।

× × ×

मनुष्य अपने मन में जितनी बातें सोचता है, वे सब यदि उसके अथक परिश्रम एवं झूठ और छल-कपट से दूर रहने पर भी पूरी नहीं होती तो उसे विवश होकर पूर्व जन्म के कर्मों पर विश्वास करना ही पड़ता है। मास्टर दयाराम को भी शायद पिछले जन्म के किन्हीं दुष्कर्मों का कुफल देखना था, तभी तो उनके देखते-देखते ही, जिस लड़के चन्द्रभानु को उन्होंने इतने लाड-प्यार से पाला, स्कूल से लेकर कालिज तक की उसकी पढ़ाई में जीवन भर की संचित कमाई लगा दी, किन्तु उसने उनकी इच्छा के विरुद्ध क्या-क्या नहीं किया। कालेज की एक तितली से लवमैरेज (प्रेम-विवाह) की। कमाई का आज तक कोई हिसाब-किताब नहीं। एक बार चर्चा भी की तो पत्र में लिख भेजा यह दिल्ली है, अलीगढ़ नहीं। आधी तनख्वाह तो मकान के किराए में ही चली जाती है। कभी लिखता है इस महीने मैंने आफिस जाने के लिए नई साईकिल ली तो दूसरे महीने अपनी पत्नी मधु के लिए नैकलेस (हार)। बूढ़े बाप और बहिन से तो मानो उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं।

मास्टर जी को रिटायर हुए पूरे पाँच वर्ष हो गए। अपनी पेंशन में से ही उन्होंने इतने दिन तक घर का खर्चा चलाया। प्रत्येक पूर्णिमा को दो-एक घर सत्यनारायण-कथा सुना आते; इससे भी कुछ सहारा लग जाता था। वे अपने निर्वाह के लिए तो अब

भी चन्द्रभानु से कुछ नहीं चाहते। किन्तु यौवन की अट्टालिका को छूने के लिए एक-एक सीढ़ी पार करती हुई इन्दु, क्या उसका भी ध्यान चन्द्रभानु को नहीं आता। मास्टर साहब घण्टों बैठे इस समस्या पर विचार करते और तब तक सोचते ही रहते जब तक 'पिता जी, पिता जी' की रट लगाती हुई इन्दु विचार-श्रृङ्खला को न आ तोड़ती।

हार कर एक दिन चन्द्र को पत्र लिखा और उसमें डांट-डपट से नहीं, अपितु शान्तिपूर्वक उसको बहिन के प्रति कर्त्तव्य की याद दिलाई।

पिता का ममता से भरा पत्र पाकर चन्द्र पत्नी से सलाह करने बैठा।

"आखिर इन्दु की शादी करने का दायित्व तो मुझे निभाना ही होगा।"

"फिर यह कौन-सी बड़ी बात है। आप अपने पिता जी को यहीं ले आएँ और इन्दु को भी। वहां जो मकान है उसे बेच दिया जाए। जब हमें वहां नहीं रहना है तो उसका उपयोग भी क्या है? यह कलंक तो मत्थे से हटे कि आप मेरा ही ध्यान रखते हैं और किसी का नहीं।"

"अच्छा तो कल शनिवार को शाम की गाड़ी से मैं अलीगढ़ जाऊँगा।" चन्द्र ने अपना निश्चय बतलाया।

"और रविवार को लौट भी आइएगा।" पत्नी ने कहा।

"जैसा तुम चाहो" चन्द्र मुस्कराया।

× × ×

बाप-दादा के समय से चले आते हुए मकान को छोड़ने का प्रस्ताव मास्टर जी के लिए वह विष की घूँट थी, जिसे वे पीने के लिए तैयार न थे। किन्तु करते भी क्या, पुत्र के सामने जब पहले ही न चली तो अब क्या आशा थी। हार कर चन्द्र का प्रस्ताव मानना ही पड़ा।··· ···

पिता जी इतनी सरलता से उनके प्रस्ताव को मान लेंगे, चन्द्र को इसकी आशा न थी। तांगा बुलाया गया। सामान लदा और मास्टर जी ने तांगे में बैठकर एक बार दृष्टि ऊपर उठा कर डबडबाए नेत्रों से मकान की ओर देखा। तांगा चल पड़ा।

× × ×

एक महीने तक मकान का कोई ग्राहक न आया। चन्द्र इस मामले में अधिक दिन नहीं लगाना चाहता था। आखिर मकान बिके तो इन्दु की शादी का डौल हो। फिर लड़का तलाश करने में भी समय लगेगा ही। उसने बोली छोड़ने का निश्चय किया। शहर में डौंडी पिटवाई गई।

दूसरे दिन बोली लगी, पाँच सौ से लेकर अठारह सौ तक बोली चढ़ी। तभी पुलिस की वर्दी पहने तीन जवान आगे बढ़े। इनमें दो कांस्टेबल थे तथा तीसरे इसी जिले के अकराबाद थाने के पुलिस इञ्चार्ज। दारोगा साहब ने मकान पर लगा पट्ट पढ़ा और सहसा भावों में खो गए। एक सिपाही से कहा—'खुशहालसिंह, पूछो हम मास्टर दयाराम से मिलना चाहते हैं।' एक दलाल ने लपक कर दरोगा साहब से धीरे से कहा—'जनाब मास्टर साहब तो इस मकान को छोड़कर दिल्ली रहने लगे हैं। जनाब की इच्छा हो तो मन्दे में सौदा··· ··।'

दारोगा साहब—दिल्ली में उनका क्या पता है।

दलाल—चलिए साहब, अन्दर उनके लड़के चन्द्रभानु से मिला दूँ।

दारोगा साहब अन्दर गए और आधा घण्टे में ही बोली दो हजार में थानेदार दौलत के नाम से छूटी।

लिखत-पढ़त का काम पूरा करा कर दारोगा दौलतराम ने अगले दिन बैंक से निकलवा कर रुपया चुकता कर दिया। चन्द्रभानु ने रुपए रात को लेकर चलना ठीक नहीं समझा, यही विचार कर दूसरे दिन प्रातः की गाड़ी पकड़ने का निश्चय किया।

चन्द्रभानु अलीगढ़ से निवृत्त होकर दूसरे दिन मध्याह्न में दिल्ली पहुँचा तो स्टेशन से सीधे घर के लिए टैक्सी पकड़ी। घर पहुँच कर सूट बदला। एक कमरे में पत्नी सोई थी। एक उपन्यास की पुस्तक खुली हुई उसके पार्श्वभाग में पड़ी थी। मालूम पड़ता था पढ़ते-पढ़ते ही सोई है। बहिन इन्दु रसोई में खाना

बना रही थी। पिता जी के कमरे से किसी के वार्तालाप का स्वर सुनाई पड़ा। इन्दु से पूछा—

"क्यों इन्दु क्या कोई पिता जी के पास बैठा है?"

"हां भैया, कोई अलीगढ़ के ही हैं। अभी दो घण्टे हुए आए हैं और पिता जी को कुछ ज्वर है।"

चन्द्रभानु पिता जी के कमरे की ओर चला।

जरा सुनो तो यह सोचकर चन्द्र किवाड़ की ओट में खड़ा हो गया। पिता जी गद्गद् होकर कह रहे थे—

"अब रहने भी दो, चलकर आए हो, थक गए होगे।" इन्दु को पुकार कर—'बेटी इन्दु भोजन तैयार हो तो भैया को ले जा कर खिलाओ।'

"पर पहले आप मेरी विनति स्वीकार करें।" आगन्तुक का स्वर सुनाई पड़ा।

"नहीं बेटा, मैंने जीते-जी किसी से कभी कर्जा नहीं लिया। अब बुढ़ापे में क्यों यह कलंक लगाऊँ। यही क्या तुम्हारी कम सेवा है कि तुम यहां तक आए।"

"नहीं गुरुदेव, मैं आपको कर्जा नहीं दे रहा और न ही उस विद्या का मूल्य जो आपसे मुझे प्राप्त हुई। विद्या का कोई मोल होता भी नहीं। यह तो आपकी उस कलम की तुच्छ-सी कीमत है, जो बचपन में आपने उस दिन मेरी जेब में लगा दी थी। वह कलम मैं सदैव अपने पास रखता हूं। आपकी दी हुई वही कलम झूठ-चोरी और रिश्वतखोरी के कुपथ में जाते-जाते मुझे कई बार रोक चुकी है।"

मास्टर दयाराम को एक धुंधली-सी स्मृति हो आई। श्यामपुर का प्राइमरी स्कूल। फूल से हँसते-मुस्कराते. कूदते-फांदते दूल्हे जैसे नन्हे मुन्ने ·· ··· ···। आधा घण्टे तक मास्टर जी बेहोश रहे। आंखें खुलीं तो देखा दौलतराम उनके चरण दबा रहे हैं। इन्दु चम्मच से मुख में पानी डाल रही है तथा शय्या के दाएँ-बाएँ चन्द्र और उसकी पत्नी मधु हाथ जोड़े खड़े हैं। उनके बिस्तर पर अलीगढ़ के मकान का बयनामा तथा सौ-सौ के बीसियों नोट बिखरे पड़े हैं।

× × ×

चार महीने के बाद अलीगढ़ के एक मुहल्ले में मास्टर दयाराम का कलई से पुत कर चांदी-सा धवल मकान बन्दनवारों से सजा था। इन्दु की शादी की शहनाई बज उठी। खद्दर का कुर्ता और धोती पहने दारोगा दौलतराम महमानों की आवभगत कर रहे थे।

★ ★ ★

[पृष्ठ १० का शेष]

जहां भौतिक-विज्ञान में निरीक्षणों का विश्लेषण प्रारम्भ होता है, तब तो गम्भीर सादृश्य अभिव्यक्त होता है। जैसे भावनात्मक जगत् में 'यो वै भूमा तत्सुखं नाऽल्पे सुखम्।' अर्थात् मानव छोटे राष्ट्र से उठकर विशाल अन्तर्राष्ट्रीय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को अपनाता है और फिर उस सीमा को भी चीर कर सकल सृष्टि में एकीभाव अङ्गीकार करता है; वैसे ही भौतिक-विज्ञान भी यथासभव एक संपूर्णता में निमज्जन करता है, जैसे विकिरण (radiation) के प्रचूषण (absorption) के लिए पूर्ण कृष्णकाय (perfectly black body) का चिन्तन; आदर्शवाति (perfect gas) का अभिमनन और ऊष्म यन्त्रों (Heat Engines) की भूयिष्ठ कार्य-निष्पत्ति (Maximum efficiency) की समस्या सुलझाने में प्रतिवर्त्य चक्र (reversible cycle) और भूमा स्रोत और निमज्ज (infinite source and sink); आपूर्यमाण परन्तु अचलप्रतिष्ठ और स्फटों में अनन्त स्फटःपूर्ण परिदृढता और पूर्णतः चिकनी स्तर। मन के समान विज्ञान की परितुष्टि भी भूमा में है, अल्प में नहीं। उसी विस्तार में एकता संनिहित है; उसी में तथ्य है—

"तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।"

भावनात्मक एकताः एक भौगोलिक दृष्टिकोण

[प्रा. सुन्दरलाल गुप्त]

वैसे तो समय-समय पर देश के विचारकों तथा नेताओं ने समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया है, पर पिछले कतिपय वर्षों से भावनात्मक एकता की स्थापना के निमित्त भारत में विशेष प्रयास किये जा रहे हैं और इस दिशा में अनेक कदम उठाये गये हैं। इस स्थल पर यह कह देना अनुचित न होगा कि हमारे देश में आरम्भ से ही राष्ट्रीय भावना का लोप और अभाव रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इसी अभाव की पूर्ति के लिये अकबर ने "दीन-इलाही" का आविष्कार किया था जो मेरे विचार से समस्त भारत को एक सूत्र में बांधने का धार्मिक प्रयास था, पर यह प्रयास असफल रहा।

जहां तक इतिहास के पृष्ठों पर मेरी दृष्टि जाती है, किसी काल में भी राष्ट्रीय एकता भारत में स्थापित हुई दृष्टिगोचर नहीं होती। इसका कारण चाहे यातायात के सुगम और तीव्रवाहक साधनों का अभाव था चाहे आपसी स्वार्थों का टकराव। प्रथम कारण तो अब प्रायः लुप्त हो चुका है, पर इसके स्थान पर अनेक नवीन कारण जैसे सम्प्रदायवाद, जातिवाद, भाषावाद प्रान्तवाद, चचा-भतीजावाद, आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक असमानताएं आदि उत्पन्न हो गये हैं और देश की एकता को छिन्न-भिन्न किए हुए हैं। विघटन की ये शक्तियां निरन्तर जोर पकड़ती जा रही हैं और राष्ट्र की नींव को जर्जर और दुर्बल बना रही हैं।

अब हम स्वतन्त्र हैं। हर त्याग और बलिदान के उपरान्त भी हमें अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखना है और यह तभी सम्भव है जब कि हर भारतीय समूचे भारत—इसकी नदियों, पर्वतों, झीलों, वनों आदि को अपना समझे। यदि कभी उत्तराखण्ड अथवा लद्दाख के सीने को ठेस लगती है तो केरल और मद्रास का नौजवान क्रोध और जोश से तिलमिला और, बौखला जाय, क्योंकि यह स्वयं सीने पर मारा गया मुक्का है। वह भारत के विरुद्ध उठाये गये हर कदम को अपने ऊपर उठाया गया कदम समझे।

विघटन की शक्तियों के विषय में मुझे भौगोलिक दृष्टिकोण से एक बात और कहनी है और वह यह कि भारत एक विशाल और बड़ा देश है। इसका क्षेत्रफल १२६६८४० वर्गमील और जनसंख्या ४४ करोड़ के लगभग है। अतः इतने बड़े देश में विभिन्न धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों, संस्कृतियों, प्रान्तों, व्यवसायों, राजनैतिक विचारधाराओं तथा आर्थिक और सामाजिक वर्गों का उपस्थित होना स्वाभाविक ही है। लेकिन इनसे भयभीत होने अथवा पलायनवादी होने का कारण नहीं है। यदि भारत में सभी धर्मों, सम्प्रदायों, वर्गों, जातियों और भाषाओं के साथ समान व्यवहार हुआ, सभी को ऊपर उठने का उचित और समान अवसर मिला तो ये विघटन की शक्तियां ही भारत की भावनात्मक एकता की ठोस नींव का काम दे सकती हैं।

इस समय हम बड़े नाजुक दौर से गुजर रहे हैं। हमारी सीमाओं पर चीनी और पाकिस्तानी सेनाओं का भारी जमाव हो रहा है। पाकिस्तान जन्म से ही हमारा वैरी है। चीन भी हमसे आंट रखता है। दोनों वैरियों ने भारत के विरुद्ध साठ-गांठ की हुई है। ये मिलकर किसी समय भी हमारी आजादी को खतरे में डालने का प्रयास कर सकते हैं। उधर हम चारों ओर से सेना-शासित शासनों से घिरे हुए हैं। ऐसी नाजुक परिस्थिति में यदि देश में आपसी स्वार्थ भाषावाद, प्रान्तवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद जैसी विघटन-शक्तियों ने जोर पकड़ा तो इतिहास निश्चित रूप से अपने को दोहरायेगा। अतः इस सम्बन्ध में दो रायें नहीं हो सकतीं कि जिस प्रकार भी हो हर भारतीय के दिल में वतन पर मर-मिटने का जोश और शौक होना चाहिये।

लेकिन प्रश्न यह है कि यह जोश और शौक कैसे

संस्कृति है। यह एक दर्पण के समान है जिस में नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन को स्पष्ट देखा जा सकता है। इस जीवन के पीछे होता है एक विचार-प्रवाह, एक संस्कार जो संस्कृति को बल प्रदान करता है। हमारे देश में मूलभूत विचार था प्रकृति और उस के पीछे एक आत्मतत्त्व जिसे जीवात्मा कहते हैं। उपनिषद् में कहा है कि जिस के बिना आंखें देख नहीं सकतीं, जो आंखों द्वारा देखता है, वही आत्मा है। वैदिक-धर्म की यह घोषणा है कि परम शक्ति परमात्मा के समक्ष प्रकृति और जीवात्मा के सामने शरीर तुच्छ है। प्रत्येक व्यक्ति को एक दिन यह संसार त्यागना है। संसार के भोगों में सुख अवश्य है, पर वह स्थायी नहीं। अतः धर्म कहता है कि संसार के सुख का भोग करो, मगर निर्लिप्त रह कर, क्योंकि अंतिम सत्ता शरीर नहीं, आत्मा है। निष्काम भाव से कर्त्तव्य-पालन करना ही श्रेयस्कर है। उपनिषद्, गीता, भागवत, पुराण आदि सभी ग्रन्थ इस एक ही बात को बार-बार दोहराते हैं।

इस धार्मिक विश्वास ने भारतीयों के हृदय में जीवन के प्रति एक ही दृष्टिकोण बनाए रखने पर बल दिया और वह है 'आत्म-चिन्तन'। अपनी ओर देखो, अपने अन्दर को टटोलो, यहीं से विकास सम्भव है। इस विचारधारा ने भारतीय संस्कृति को समन्वय और नवीन धाराओं को आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता प्रदान की है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डैडवेल ने लिखा है, "भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है, जिसमें अनेक नदियां आ-आकर विलीन होती रही हैं।" हिन्दू धर्म एक-विश्वास पर आधारित नहीं है, वह अनेक विश्वासों का समुदाय है। जब आर्य सभ्यता भारत में पनपी तब तक धर्म व संस्कृति के अनेक रूप प्रस्फुटित हो चुके थे। महञ्जोदारो-हड़प्पा तथा द्रविड सभ्यता अपना रूप ग्रहण कर चुके थे, और आर्यों ने इन सबको लेकर वैदिक-धर्म का संगठन किया। जो भी वस्तु जहां से अच्छी मिली, उसे अपने में स्वीकृत कर लिया। इसी कारण वैदिक-धर्म में विश्व के सभी धर्मों के असली तत्त्वों का निचोड़ मिलता है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा है कि वेदों को प्रमाण मानना, साधनों की अनेकता में विश्वास रखना तथा किसी एक ही देवता की उपासना न करना, वरन् अनेक रूपों में उसको देखना धर्म का लक्षण है। भारत में जितनी भी जातियां—शक, कुशन, हूण आदि जो भी बाहर से आईं, उनका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं मिलता, ये सब हिन्दू समाज में भली-भांति खप गईं।

यहां यह प्रश्न उठता है कि मुसलमान तथा ईसाइयों के भारत में आने पर भारत की मौलिक एकता कुछ खंडित हो गई। यह विचार भ्रमपूर्ण है। मुसलमानों की विजय राजनैतिक थी, भारतीय संस्कृति और जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। रजवाड़े भले ही नष्ट हो गए, मगर गांवों की अवस्था में कोई अन्तर नहीं पड़ा। हिन्दुओं ने मुसलमानों को अपना पड़ोसी मान लिया। धर्म की निवृत्तिमार्गी धारा ने इस्लामी सूफ़ियों को जन्म दिया जो हिन्दू और मुसलमानों को समीप खींच लाएँ। सूफ़ियों की विचारधारा से अनुप्राणित होकर हिन्दू और मुसलमान दोनों एक-दूसरे के पीर-पैगम्बर, शिव, गणेश, वृक्ष आदि की पूजा करने लगे और दोनों के बीच साधुता का सामान्य आदर्श स्थापित हो गया। हिन्दुओं ने इस्लाम के बुनियादी सिद्धान्तों को प्रसन्नतापूर्वक अपनाया और मुस्लिम जनता ने हिन्दुओं के धर्म तथा रीतियों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा प्रकट की, भले ही मुस्लिम शासक तथा कट्टरपन्थी मुल्ला अपना राग पृथक् अलापते रहे हों।

ठीक यही बात ईसाई धर्म तथा पश्चिमी संस्कृति के सम्बन्ध में लागू होती है। पश्चिमी विद्वान् भारतीय धर्म तथा साहित्य से प्रभावित हुए और उन्होंने वेद, पुराण, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थों का मनन किया और अपनी भाषाओं में अनुवाद किया। अपनी बौद्धिक जनता के समक्ष उन्होंने भारतीय आत्म-चिन्तन, योग तथा मनन का सिद्धान्त रक्खा जिससे अधिकांश यूरोप वासी प्रभावित हुए। कुछ कट्टरपन्थी पादरियों ने भारत में अपने धर्म का प्रचार अवश्य किया, जिसका प्रभाव कुछ नवयुवकों, निर्धनों आदि पर अधिक पड़ा, पर वे भारत की अधिकांश जनता को विश्वस्त नहीं कर सके। इसका कारण भी स्पष्ट है कि ईसाईयत तड़क-भड़क और भौतिकता में अधिक विश्वास करती है। उसमें जीवन की सरलता तथा तपश्चर्या का

अभाव है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि—'आत्मा की भाषा एक है, धर्म आत्मा की वाणी है।' अतएव जो धर्म आत्मा को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करता है और तप व योग का सहारा लेता है, वह अधिक प्रभावशाली होता है। ईसाइयों के सम्पर्क से हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता में परिवर्तन हुआ और उसमें नई जागृति उत्पन्न हुई। इस नवोत्थान तथा जागरण ने मनुष्य मनुष्य के प्रति एकता के भाव में वृद्धि की, पिछड़ों के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया, स्त्री जाति के गौरव को बढ़ाया तथा मानवी विचारधारा को एक वैज्ञानिक मोड़ प्रदान किया जिससे वह आँख बन्द करके केवल विश्वास पर किसी मत को ग्रहण न करे, वरन् तर्क की कसौटी पर कस कर उसे हृदयंगम करे।

साहित्य तथा भाषा की एकता—

दर्शन, काव्य, कला, भाषा, शिक्षा और शिल्प आदि संस्कृति के अंग माने गए हैं। इनका विकास मानव-सभ्यता के उत्कर्ष तथा अपकर्ष नापने का पैमाना है। जिस भाषा में भारतीय संस्कृति विकसित हुई और जो ग्रन्थ भारतीय सभ्यता के आदि ग्रन्थ माने जाते हैं, वही वेद विश्व के सम्पूर्ण मानव के प्राचीन ग्रन्थ हैं। आर्यों व द्राविडों के समन्वय से जो एक भाषा भारत में पनपी और जिसमें आदिग्रन्थ की रचना हुई, वही संस्कृत भाषा यहां की राष्ट्रभाषा हुई। उत्तर तथा दक्षिण दोनों ने योगदान दिया। संस्कृत धर्म और विचार का माध्यम बनी और सांस्कृतिक एकता इसी भाषा में साकार हुई। विज्ञान, काव्य, दर्शन-कला और नीति-शास्त्र सभी-कुछ संस्कृत भाषा में व्यक्त किया गया। यद्यपि बुद्ध-काल से आज तक जनता की बोल-चाल की भाषा संस्कृत नहीं रही, परन्तु वह सभी क्षेत्रीय भाषाओं को प्रभावित करती रही है और सबको एक कड़ी में पिरोए हुए है, क्योंकि संस्कृत ही सब भाषाओं की जननी है। भारत की मस्ती, जीवन, साहस और उत्साह के गीत इसी भाषा में गाए गए। सम्पूर्ण विश्व ने हमारे विचार, हमारे उद्‌गार इसके माध्यम से ही प्राप्त किए। मेक्समूलर ने कहा है—"वेदान्त दर्शनों में सर्वश्रेष्ठ है तथा धर्मों में सर्वाधिक सुगम।''' '''वह सबका आलिंगन करता है।" विश्व-बन्धुत्व का मार्ग हमारे साहित्य के द्वारा प्रशस्त किया गया।

भारतीय काव्य और दर्शन केवल पारलौकिक सुख और आनन्द ही पर प्रकाश नहीं डालते, ऐहिक भोगों का भी उनमें बखान किया गया है। इनमें भावुकता पूर्ण रूप से विद्यमान है और प्रेम-विरह, रूप रस आदि की व्यंजना मुसलमानों के आगमन से पूर्व संस्कृत साहित्य में प्रचुर मात्रा में की गई है। मुस्लिम तथा ईसाई सम्पर्क से इस प्रकार के साहित्य का अधिक विकास हुआ और प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा में ऐसा साहित्य लिखा गया। हिन्दी, बंगला, तामिल, उर्दू, फारसी आदि सभी भाषाओं का साहित्य मुस्लिम काल में लिखा गया जो विरह की बेचैनियों एवं मिलन के काल्पनिक आनन्द से ओत-प्रोत है। धर्म में भी भक्ति-क्षेत्र में जो प्रेम और माधुर्य का पुट पहले से विद्यमान था, वह मुस्लिम सूफ़ियों के प्रभाव से और बढ़ गया। इस प्रकार साहित्य में भी सामंजस्य की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है जो सम्पूर्ण विश्व का पथ-प्रदर्शन करता है। स्वामी विवेकानन्द ने खुले शब्दों में कहा है, 'संस्कृत भाषा सबसे प्राचीन भाषा है और हमारा साहित्य सबसे उन्नत साहित्य है। ' '' " उसने वसुधैव कुटुम्बकम् की स्थापना की और प्रेम का विस्तार किया। हमारे आदि ग्रन्थ के बल पर ही भारत का अतीत आज भी जीवित है जो आधुनिक विज्ञान से होड़ ले रहा है और अणु-युग में भी समग्र मानवता का संदेश दे रहा है।

राजनैतिक एकता—

भारत की धार्मिक व भौगोलिक एकता का प्रभाव राजनीति पर भी पड़ा। भारत के राजाओं ने एकच्छत्र राज्य स्थापन करने का समय-समय पर प्रयत्न किया है और केन्द्रीय सत्ता को दृढ बनाया। इसके लिए अश्वमेध यज्ञ किए जाते थे और पड़ोसी राजाओं से युद्ध होते थे, धन या प्रभुता प्राप्त करने के लिए नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारत को एक राज्य बनाने का उनका मुख्य उद्देश्य था। राम, युधिष्ठिर, चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य आदि सभी बड़े राजाओं ने एक दृढ साम्राज्य की स्थापना की और जन-मत का विशेष ध्यान रखा। जनता को अपने राष्ट्र पर

गर्व था और वह श्रेष्ठ राजाओं का सदा साथ देती रही है।

राजनैतिक एकता पर मुस्लिम शासन का प्रभाव भी अधिक पड़ा। राजपूत-काल में केन्द्रीय सत्ता का ह्रास हो गया था, परन्तु मुसलमानों ने समस्त छोटे-छोटे राज्यों को एक सूत्र में बांध दिया और केन्द्रीय सत्ता फिर से दृढ होने लगी। पठान शासक यद्यपि इस एकच्छत्र शासन का बीजारोपण उत्तर में ही कर सके, मगर उन्होंने दक्षिण पर भी दृष्टि रखी और अलाउद्दीन तथा मुहम्मद तुग़लक ने दक्षिण पर अपनी सत्ता बिठाने का पर्याप्त प्रयत्न किया। मुगलों ने पूरे भारत पर एक पताका फहराने का दृश्य साकार कर दिखाया और अंग्रेजी शासनकाल में सम्पूर्ण भारत एकराष्ट्र के रूप में पनपता रहा। स्वार्थपरता में पड़कर अंग्रेजों ने 'बांटो और राज करो' की नीति अपना कर भारत में साम्प्रदायिकता का बीज बो दिया जिसके परिणामस्वरूप अखण्ड भारत राजनैतिक दलदल में फंस गया। यह क्षणिक आवेगों का दुष्परिणाम है क्योंकि राष्ट्रीयता की भावना अब भी मुसलमानों के हृदय में विद्यमान है। यदि शुद्ध साधनों द्वारा सांप्रदायिक विचारधारा को दूर करके सामासिक संस्कृति और समता का पाठ विद्यालयों में पढ़ाया जाए तो आने वाली सन्तान दस वर्ष में एकता के सांचे में ढाली जा सकती है।

यह है वह भारत जो विदेशियों के बार-बार आघात सह कर भी अपनी संस्कृति से विमुख न हो सका। प्रधानमन्त्री नेहरू ने सत्य ही कहा है कि, "हमारी जाति कहीं बुद्ध, महाभारत, रामायण, गीता और उपनिषद् को भूल जाए तो उसका क्या हशर होगा? हमारी जड़ें उखड़ जाएँगी। हम अपनी उन सारी बुनियादी खूबियों को खो देंगे, जो युगों से हमारे साथ चली आ रही हैं और जिनके कारण हमारी हैसियत बनी हुई है। तब भारत भारत न रह सकेगा।" कवि दिनकर के ये शब्द अमर रहेंगे—"यह विश्वजनीनता, विभिन्न जातियों को एक महा जाति के सांचे में ढालने का यह अद्भुत प्रयास और अनेक वादों, विचारों और धर्म के बीच एकता लाने का यह निराला ढंग सभी युगों में भारतीय समाज की विशेषता रहा है।"

"सुदूर शृङ्ग से पुकार बार-बार आ रही—
विभिन्न जाति, धर्म, बोल-चाल, भिन्न वेश है,
मगर सभी की मातृभूमि एक हिन्द देश है॥"

★ ★ ★

उत्तर-दक्षिण

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि']

'उत्तर-उत्तर है, दक्षिण-दक्षिण—आप कह रहे हैं।'

मैं पूछना चाहता हूँ—'यह आप कह क्या रहे हैं कि जिस का सिर है न पैर।'

तनिक बताइये तो, वह सीमा कौन-सी है जो उत्तर-दक्षिण को इधर-उधर कर रही है?

कोरी काल्पनिक हदबन्दी की भूल-भुलैयां में भ्रम कर क्या लेंगे आप? सहज आन्तरिक एकता की ओर से निपट आंख मीच कर बाह्य विविधताओं को ही आंख गड़ा-गड़ा कर देखने-दिखाने में कौन-सी बुद्धिमानी है?

आंख खोलिये तो पता चले—उत्तर-दक्षिण दो कहां है! उनके आदर्श एक हैं। उनकी संस्कृति एक है। उनके तन-मन एक हैं। उनके हृदयों और मस्तिष्क के उफान-तूफान एक हैं। उन की आह-वाह एक है। सब से बढ़ कर बात यह कि उन में मानवता की एक ही जीती-जागती जोत है।

संक्षेप में सब एक-ही-एक है दोनों में। झाई-माई-सी दूई कोने-कचोने में पड़ी भी हो तो उसे ले कर यह वावैला क्यों? वह तो वरदान है वरदान एकता का।

तनिक अपनी यथार्थ सुजानता में रह कर दोनों की सहज आन्तरिक एकता पर सहज ही आप दृष्टिपात करें तो फिर बाह्य विविधताएं अनरस मूल न रह कर रस-स्रोत बन जाएंगी—अजस्र रस-स्रोत, छका देंगी रस ही रस से आप को वे वरदान-स्वरूपा और तब बरबस आप की जिह्वा पर आ जायगा—

उत्तर-दक्षिण एक हैं, एक ही रहेंगे।

भावनात्मक एकता या समता ?

[श्री ओम्प्रकाश आनन्द]

ब्रह्मा, नारद के मुंह से यह सुनकर कि—धरती पर 'मनुष्य' ही नहीं रहे—एकदम आश्चर्य में पड़ गए और तुरन्त इसकी सही जानकारी के लिए धर्मराज (यमराज) का द्वार जा खटखटाया ताकि पता कर सकें कि धरती पर से उनके यहां आने वालों में मनुष्य नामक जीव भी शामिल हैं या नहीं, और अगर सचमुच ही नहीं है तो फिर से नई मनुष्य-सृष्टि का सृजन किया जा सके, क्योंकि अपने पूर्ण बुढ़ापे से पहले तो वे कुछ-न-कुछ बना भी सकेंगे, और अगर कहीं बुढ़ापा पूरी तरह आ घिरा, फिर बहुत कठिनता हो जाएगी। इसी विचार से जब उन्होंने धर्मराज से प्रश्न किया कि क्या सचमुच ही नारद की बात में कुछ सार है अथवा किसी राजनीतिक नेता के यहां पी गई चाय उनमें बोल रही है ? तब धर्मराज ने बहुत ही आराम से सिर पर हाथ फिराते हुए चित्रगुप्त की ताज़ा रिपोर्ट के कुछ समाचार उन्हें सुना दिए, जिनके अनुसार विश्व-शांति के समर्थक और काले-गोरे की रंगभेद नीति के विरोधी कैनेडी की गोली मार कर हत्या, शांति-दूत महात्मा बुद्ध के अनुयायी कहलाने वाले चाऊ-माऊ द्वारा स्वयं बुद्ध की जन्मभूमि पर विश्वासघात से आक्रमण, रक्तपात और मित्रद्रोह, ईरान की रक्तिम क्रांति, अल्जीरिया का युद्ध, सिराजुद्दीन कम्पनी-घोटाला, भाषा और प्रांतों की समस्या, अनशन की धमकियां, गद्दियों-कुर्सियों को हथियाने के लिए एक-दूसरे के प्रति कीचड़ उछालने के कारनामे आदि ये सभी मनुष्यों से संभव हो सकते हैं, क्योंकि जानवरों अथवा पशुओं ने तो अभी इतनी वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक उन्नति की नहीं, इसलिए यह कैसे मान लिया जाय कि धरती पर मनुष्य नहीं रहे।

यह सुनकर ब्रह्मा के मन का भार कुछ थोड़ा-सा हल्का तो हुआ, परन्तु फिर भी उन्होंने चित्रगुप्त को धरती का एक चक्कर लगा आने का आदेश दे ही दिया कि वह सही जानकारी ले ही आएँ तो हर्ज भी क्या है। और चित्रगुप्त ने कई दिन सारी धरती की परिक्रमा करने के अनन्तर अपनी जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसमें लिखा—धरती पर सामान्य ब्राह्मण से लेकर महाब्राह्मण, धीमान, कुलीन ब्राह्मण और क्षत्रिय, राजपूत, ठाकुर, वैश्य, हरिजन, सनातनी, आर्यसमाजी, बौद्ध, जैनी, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, अंग्रेज, जर्मन आदि से लेकर लीडर, प्लीडर, एडीटर, लेखक, कवि और मन्त्री से लेकर सन्तरी आदि तक तो अवश्य मिलते हैं परन्तु मनुष्य कोई नहीं मिलता। यद्यपि उनके हाथ-पांव, आंख-कान उतने ही हैं जितने होने चाहिएँ परन्तु जब भी उनसे प्रश्न किया जाता है कि आप कौन हैं ? तो वे अपने को 'कुछ-न-कुछ' कहकर परिचय देते हैं, सीधे-सादे रूप में कोई भी यह कहते नहीं सुना जाता कि वह मनुष्य है—अब इसके आगे आप मालिक हैं और इस समस्या पर विचार कर सकते हैं।

रिपोर्ट पढ़कर ब्रह्मा महान् आश्चर्य में पड़ गए कि यह कैसी अद्भुत बात कि धरती पर मनुष्यों जैसे ही हाथ-पांव, आंख-कान रखने वाले जीव तो मिलें, परन्तु वे मनुष्य न होकर कुछ और ही हों ? अवश्य ही चित्रगुप्त से कुछ भूल न हो गई हो ! और इसके बाद उन्होंने कुछ नई-पुरानी फाइलें निकाल कर पढ़ना आरम्भ किया—"मनुष्यता की रक्षा के लिए निःशस्त्रीकरण आवश्यक है" (कैनेडी); "यदि शस्त्रास्त्रों की यही होड़ लगी रही तो एक-न-एक-दिन मनुष्य नामक जीव ऐतिहासिक प्राणी रह जाएगा" (ख्रुश्चेव); "जब तक मनुष्य भावनात्मक रूप से एक नहीं होते तब तक अनेक संकट उनके सामने आते ही रहेंगे" (नेहरू)—और ब्रह्मा जी ने कितनी ही फाइलें भी पढ़ डालीं जिनमें से प्रायः सभी में मनुष्य और मनुष्यता की रक्षा के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य कहा गया था। तो क्या सचमुच ही स्थिति इतनी गम्भीर हो चुकी है कि मनुष्य और मनुष्यता की रक्षा का प्रश्न सर्वोपरि हो गया है ?

उत्पन्न किया जाय। किस आधार पर राष्ट्र में भावनात्मक एकता की नींव रखी जाय जो सुदृढ होने के साथ-साथ चिरस्थायी भी हो। मेरे विचार से भूगोल और इसका उचित ढंग से पठन-पाठन ही देश के नवयुवकों को राष्ट्र में एकता की आवश्यकता बतलाकर तथा देश को भिन्नता में एकता के दर्शन कराकर इस महान् आवश्यकता के प्रति जागरूक कर सकता है। कैसे!

आज का बालक कल का नागरिक है। वह भावी भारत का कर्णधार है। अब देश के लगभग ७० प्रतिशत बालक-बालिकाएं स्कूलों में जाने लगे हैं। अतः यदि स्कूल-स्तर पर बालकों को देश के प्रति जागरूक बना दिया जाय, उन्हें देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत कर दिया जाय, उन्हें देश के विभिन्न भागों तथा ४४ करोड़ नर-नारियों से परिचित करा दिया जाय तथा उनमें स्पष्ट चिन्तन की क्षमता उत्पन्न कर दी जाय तो अवश्य ही हमारी समस्या पर्याप्त सीमा तक हल हो जाय और यह काम भूगोल विशेषकर भारत का भूगोल के माध्यम (पठन-पाठन) से सम्पन्न किया जा सकता है और इसमें सफलता मिलने की पूर्ण आशा है।

सर्वप्रथम तो भारत के भूगोल का सुव्यवस्थित अध्ययन भारत के विभिन्न प्रान्तों की आर्थिक अन्तर-पराधीनता तथा एक दूसरे पर निर्भरता का ज्ञान करायेगा। मद्रास का विद्यार्थी यह भलीभांति समझने लगेगा कि चीनी के लिये उसका प्रान्त उत्तर-प्रदेश तथा बिहार पर निर्भर है, जूट के लिये बंगाल पर निर्भर है और लोहे तथा इस्पात के लिये उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश पर निर्भर है। इसी प्रकार गुजरात, राजस्थान और महाराष्ट्र के बालकों को भूगोल-शास्त्र के अध्ययन के उपरान्त यह समझने में तनिक भी विलम्ब न लगेगा कि चाय के लिये वे असम और बंगाल पर, चीनी के लिये उत्तर-प्रदेश और बिहार पर तथा अन्य दैनिक आवश्यकताओं के लिये अन्य प्रान्तों पर निर्भर है। और यह निर्भरता किसी समय भी समाप्त होने वाली नहीं है, क्योंकि भूगोल-पाठन से उसे यह भलीभांति अवगत हो गया है कि उसके प्रान्त का भौगोलिक वातावरण कभी भी चीनी चाय अथवा जूट उत्पादन के लिये उपयुक्त नहीं है। अतः इनका उत्पादन नहीं किया जा सकता और उसे अन्य प्रान्तों का सहयोग और साहाय्य प्राप्त करना ही होगा। हमें उन्हें यह भी जताना है कि यह अन्तर्-पराधीनता किसी स्तर पर भी समाप्त नहीं होगी, क्योंकि देश के भिन्न भागों में भिन्न प्रकार के खनिज उपलब्ध हैं, विभिन्न उद्योग-धन्धे खड़े हैं और विभिन्न प्रकार की उपजें पैदा होती हैं जिनकी देश के हर भाग को समान रूप से आवश्यकता पड़ती है। भूगोल के पठन-पाठन मे इस दृष्टिकोण की कमी रही है। अतः भूगोल शास्त्र के पठन-पाठन में जहां विषय का पुनर्गठन होना चाहिये, वहां इसकी पाठन-विधि में भी आमूल परिवर्तन होना अपेक्षित है।

प्रत्येक देश की परम्पराएं, खान-पान, रीति-रिवाज वेष-भूषा और सामाजिक मूल्यों पर उस देश के भौगोलिक वातावरण की स्पष्ट छप होती है। मनुष्य अपने भौगोलिक वातावरण का दास है और उसी के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयास करता है। इस प्रकार जब भौगोलिक वातावरण और मनुष्य में कशमकश के पश्चात् एक समझौता हो जाता है, तो वहां एक विशेष प्रकार की संस्कृति का जन्म और विकास होता है। अतः स्पष्ट है कि किसी देश अथवा जाति के रीति-रिवाजों, खान-पान, वेष-भूषा और सामाजिक परम्पराओं के लिए स्वयं वह देश अथवा जाति उत्तरदायी नहीं है, अपितु वहां का भौगोलिक वातावरण है, जिस की जानकारी भूगोल-अध्ययन के अन्तर्गत की जाती है। यदि अन्य देशवासियों को इस तथ्य से परिचित करा दिया जाए कि अरब एक रेगिस्तान है जहां जल का नितांत अभाव है। अतः जल के अभाव में अरब-वासी जल की किफायत करता है, तो क्या बुरा करता है। खजूर के प्रयोग को धार्मिक महत्त्व देता है, क्योंकि रेगिस्तान में खजूर के अतिरिक्त और कुछ कम ही पैदा होता है। खजूर ही उन की जीविका का सहारा है। स्त्रियां पर्दा करती हैं, बुर्का पहनती हैं और असूर्यम्पश्या रहती हैं। इस का कारण भी भौगोलिक ही है। धूल और बालू के भयङ्कर बवण्डर अरब के रेगिस्तान की जलवायु का प्रमुख लक्षण हैं; जल मिलता नहीं। ऐसी हालत में स्त्रियों के सिरों में

भरी हुई धूल हमेशा के लिए वहां अपना डेरा जमा लेगी। अतः पर्दा करना नितान्त ज़रूरी है। इसी प्रकार भारतीय की संस्कृति गाय और गङ्गा पर केन्द्रित रही है, जिन का कारण भारत का भौगोलिक वातावरण है। इसी के फलस्वरूप कृषि भारत का राष्ट्रीय उद्यम है जिस में भारत की जनसंख्या का ७२ प्रतिशत भाग लगा हुआ है। कृषि के लिए गाय और गङ्गा की उपयोगिता किसी से छिपी नहीं है। यदि इस तथ्य से परिचित करा दिया जाए तो इन की महत्ता को आत्मसात् कराया जा सकता है। भूगोल का अध्यापक इस कार्य को भली प्रकार दूर कर सकता है। भूगोल-शास्त्र का अध्ययन हमें इस बात से परिचित कराता है कि विभिन्न जातियों की संस्कृतियों के जन्म और विकास के पीछे वहां का भौगोलिक वातावरण है। अतः एक-दूसरे की परम्पराओं, वेश-भूषा, खान-पान और सामाजिक मूल्यों की निन्दा करना, अपशब्द कहना अथवा कटु आलोचना करना व्यर्थ और बेमाने है।

हम भारत में एकता की दुहाई देते है। पर क्या किसी ने कभी विचारा भी है कि राष्ट्रीय अथवा भावनात्मक एकता का अर्थ है भारत के चप्पे-चप्पे से हमारा परिचय, हमारा अटूट सम्बन्ध और एक अपनेपन की भावना। भारत की नदियों, पर्वतों, जल-प्रपातों, झरनों, चश्मों, झीलों; वनों आदि से हमारी जानकारी। यह जानकारी देश के भिन्न-भिन्न भागों और स्थलों से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करेगी और हम देश के दूरस्थ भागों में भी एक अपनापन महसूस करने लगेंगे। समस्त देश से प्यार तभी हो सकता है जब समस्त देश की हमें पूर्ण जानकारी हो। यह दुःख की बात है कि भारत में छात्रों को पेरिस, न्यूयार्क, आल्प्स, डेनिपर, वाल्गा और डेनमार्क के विषय में तो बहुत-कुछ सिखाया जाता है, पर अन्नमलाई, धौलागिरि, पिंडारी हिमनद, डल झील, वेगाई, भीमा और चिल्का से प्राय: अपरिचित ही रखा जाता है। भारत को प्रेम करने का अर्थ है भारत के चौंतालीस करोड़ नर-नारियों को प्रेम करना और यह प्रेम आसमान से नहीं टपकता, यह पैदा किया जाता है और इन भावना के प्रादुर्भाव में भौगोलिक जानकारी हत्त्वपूर्ण हाथ रखती है। मैं किसी प्रान्तवासी को कैसे प्यार कर सकता हूं जब तक मुझे उसकी पोशाक, भोजन, रहन-सहन के ढङ्ग से परिचय एवं रुचि न हो। अतः स्पष्ट है कि हमारी भौगोलिक अज्ञानता भावनात्मक एकता की स्थापना में बड़ी भारी बाधा है जो भूगोल के पठन पाठन से दूर हो सकती है।

इतना ही नहीं भारत के भूगोल का अध्ययन भारत की भिन्नता में एकता के दर्शन कराने के साथ-साथ पाठकों में देश के प्रति सम्मान, श्रद्धा और महानता का भाव भरेगा। मेरे विचार से शायद ही कोई ऐसा भारतीय होगा जो यह विदित हो जाने के उपरांत कि उस का देश विश्व में चाय, चावल, अभ्रक, लाख और तेलहन का सब से बड़ा उत्पादक है, विश्व की सब से ऊंची पर्वत-श्रेणी भारत की शोभा बढाती है, अपना सर गर्व से ऊंचा न करेगा। उस में भारत माता के प्रति एक सम्मान और महानता का भाव जागृत होगा जो भावनात्मक एकता में महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य सम्पन्न करेगा।

स्वयं भारत की जलवायु का अध्ययन भिन्नता में एकता के दर्शन कराता है। विशाल देश होने के नाते भारत के विभिन्न भागों का जलवायु भिन्न-भिन्न है। परन्तु यह भिन्नता होते हुए भी भारत में एक ऐसी बात है जो समान रूप से भारत को प्रभावित करती है और वह है भारत की जलवायु का मानसूनी प्रभाव। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और कलकत्ता से लेकर खम्बात तक भारत का जलवायु मानसून पवनों से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त देश की एशिया महाद्वीप के दक्षिण में स्थिति, इसके उत्तर में हिमालय पर्वतमाला का अडिग भाव से खड़े होना तथा दक्षिण में हिन्दमहासागर की स्थिति भारत को भौगोलिक दृष्टिकोण से एक रखती है। सच तो यह है कि भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत और पाकिस्तान एक ही हैं, क्योंकि दोनों के मध्य कोई भौगोलिक सीमा नहीं है। देश के भूगोल ने भारत और पाकिस्तान को एक बनाया है। लेकिन इंसान ने इसे अलग कर के प्रकृति की अवहेलना की है।

देशाटन अथवा भौगोलिक परिभ्रमण भौगोलिक अध्ययन का एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। इसके प्रभाव में भूगोल का पठन-पाठन अधूरा और

अपूर्ण है और यदि उचित ढङ्ग से सङ्गठित किया जाए तो भौगोलिक परिभ्रमण बालकों में राष्ट्रीय एकता की भावना स्थापित करने में बड़े सहायक सिद्ध हो सकते हैं। परिभ्रमण-काल में विभिन्न धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, वर्ग और आर्थिक स्थिति के विद्यार्थी साथ-साथ यात्रा करते, घूमते-फिरते, खाते-पीते और रहते हैं। उन का एक ही उद्देश्य और लक्ष्य होता है। सचाई तो यह है कि इस दौरान में उन की एक ही भाषा, धर्म, जाति और सम्प्रदाय होता है। वे एक ही भाषा में सोचते हैं और बोलते हैं। जाति-पांति, धर्म और भाषा के बन्धन जो हमें एक-दूसरे के समीप नहीं आने देते वहां टूट जाते हैं। उस दौरान में न कोई हिन्दू है, न मुसलमान, न पञ्जाबी है और न मद्रासी, न हिन्दी-भाषी है और न तेलगू-भाषी तथा न उत्तरी है न दक्षिणी; वहां तो सभी भारत माता के सपूत हैं और यही भारत की सच्ची भावनात्मक एकता है।'

इतना ही नहीं परिभ्रमण-काल में साथ-साथ रहने, खाने-पीने, उठने-बैठने तथा घूमने-फिरने के कारण बालकों में कुछ ऐसे सामाजिक और मानवोचित गुणों जैसे त्याग, सहिष्णुता, दूसरों के प्रति सम्मान की भावना तथा सहयोग करने की अभिलाषा आदि का जन्म और विकास होता है जो सामूहिक जीवन-यापन के लिए आज के समाज में निहायत ज़रूरी हैं। ये गुण ही उसे देश का सच्चा सपूत और नागरिक बनाते हैं।

इसके अतिरिक्त भौगोलिक परिभ्रमण के माध्यम से भारत के सच्चे रूप में दर्शन होते हैं। विभिन्न प्रांतों के लोगों के खान-पान, बोल-चाल तथा सामाजिक रीति-रिवाजों की सच्ची जानकारी होती है। बालक न केवल यह जान जाते हैं कि मद्रासी इडली-ढोसा, बङ्गाली मछली-चावल और पञ्जाबी दाल-रोटी का प्रयोग करते हैं, प्रत्युत इनके साथ वे एक प्रकार से अपनापन अनुभव करने लगते हैं। मिनाक्षी मन्दिर (मदुरा), दिलवाड़ा मन्दिर, माऊँट आबू और रामेश्वरम् मन्दिर (रामेश्वरम्), पुरी का समुद्रततटीय दृश्य; फरीदाबाद और ओखला की औद्योगिक इस्टेट, चण्डीगढ़ का भव्य और नवीनतम नगर, बंगलौर के हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट फैक्ट्रियां, मैसूर का बृन्दावन गार्डन, उदयपुर की सहेलियों की बाड़ी, भोपाल का हैवी इलैक्ट्रिक प्लांट और बड़ा ताल, चित्तौड़गढ़ का किला, भिलाई और रूरकेला के इस्पात के कारखाने, ट्राम्बे की तेल-शोध-शालाएं, टाटा थर्मल प्लांट और परमाणु भट्टी, बम्बई की मिल्क कालोनी, अजन्ता, अल्फैन्टा और अलोरा की गुफाएं, बरेली की कृत्रिम रबड़ फैक्ट्री और गन्दा बरोज़ा-शोधन-शाला बल्लभगढ़ (गुड़गांव) की गुड इयर टायर फैक्ट्री तथा पञ्जाब के भाखड़ा डैम को देख कर कौन ऐसा भारतीय है जो गर्व से नाचने न लग जाए। यही गर्व और मादकता उसे देशभक्ति से लबालब कर देगी। ऐसा बालक बड़ा हो कर देश का सच्चा सपूत होगा जो उत्तर और दक्षिण के प्रश्न को कभी प्रोत्साहन नहीं देगा।

अत: केन्द्रीय और प्रांतीय शिक्षा-मन्त्रालयों को मेरा सुझाव है कि भौगोलिक परिभ्रमणों को अनिवार्य घोषित किया जाए तथा इसके लिए शिक्षा-विभाग शिक्षा-मन्त्रालय, विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विशेष अनुदान की व्यवस्था करें। रेलवे-मन्त्रालय को भी इस दिशा में विशेष पग उठाने की आवश्यकता है। यहां हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि अभी तक हम उद्योगों, कृषि और यातायात के साधनों पर पूञ्जी लगाते रहे हैं, अब हमें मानवीय विकास पर पूञ्जी लगानी है और यह पूञ्जी देश के भावी कर्णधारों पर भौगोलिक परिभ्रमण के रूप में भी व्यय होनी चाहिए।

अत: स्पष्ट है कि भूगोल का पठन-पाठन सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय एकता की आधार-शिला बन सकता है बशर्तेकि इस का पठन-पाठन उचित ढङ्ग से सम्पन्न किया जाए। प्रांतीय शिक्षा-विभागों और विश्वविद्यालय को मेरा सुझाव है कि भूगोल विषय को हायर सैकण्ड्री स्तर पर अनिवार्य बनाया जाए तथा सार्वजनिक शिक्षा के प्रोग्राम में इसे उपयुक्त स्थान दिया जाए, ताकि देश के उन प्रौढ़ों को जो स्कूल छोड़ चुके हैं देश के प्रति जागरूक किया जा सके।

★ ★ ★

भारत की मौलिक एकता

[श्री विश्वम्भरनाथ अग्रवाल]

परमात्मा की कृतियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव कहा गया है, क्योंकि उस में बुद्धि है, बल है, ओज है और है प्रतिभा। उस के पास हृदय है, भावुकता है। कवियों का काव्य, नाटककारों के नाटक, राष्ट्र-प्रेमियों के बलिदान, सत्पुरुषों के परमार्थ-कार्य हृदय और बुद्धि के सम्मिश्रण से ही पूर्ण होते हैं। विवेक-पूर्ण निर्णय नीति का निर्माण करने में सहायता देता है। नीति से नैतिक शक्तियां विकसित होती हैं जो श्रेष्ठतम जीवन का सार कही गई हैं। जीवित रहने की इच्छा तो सभी प्राणियों में होती है, परन्तु मनुष्य केवल जीवित रहना ही नहीं चाहता, वरन् वह इस लोक में उत्तम जीवन बिताने का इच्छुक और परलोक में श्रेष्ठतम गति प्राप्त करने की कामना भी करता है।

इतिहास इस बात का प्रमाण है कि सम्पूर्ण देश में उत्तर-दक्षिण, पूर्व या पश्चिम जहां जो व्यक्ति रहते हैं, उन सब की संस्कृति एक है चाहे वे किसी धर्म, जाति, वर्ण या रीति-रिवाज के पोषक रहे हों। संस्कृति क्या है, इस सम्बन्ध में एक बड़े विद्वान् का कहना है, 'संसार-भर में जो भी सर्वोत्तम बातें कही गई हैं उनसे अपने-आप को परिचित करना संस्कृति है।' दूसरे ने कहा है, 'संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृष्टिकोण विकास अथवा उस से उत्पन्न अवस्था है, यह मन आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है।' इसी आधार पर राष्ट्र अपने में कुछ विशेष प्रकार के गुणों की वृद्धि कर के निवासियों में एक ऐसे व्यक्तित्व की छाप बिठा देता है जो जन्म-जन्मान्तर उस की अपनी मौलिक विशेषता बन जाती है। इस प्रकार शुद्ध संस्कार, आचार-विचार साधना के परिष्कार का नाम संस्कृति है जो व्यक्तियों को अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त होती है। भारतीय-जीवन सदा सत्य, शांति और प्रेम का पोषक तथा आत्मिक आनन्द की प्राप्ति में सहायक रहा है।

भारत एक विशाल देश है जो भौगोलिक दृष्टि से एक महाद्वीप के आकार का है। उस में विभिन्न धर्म, जाति तथा विचारधारा के व्यक्ति बसते हैं। परन्तु इस विविधता रूपी आवरण में उस की एकता छिपी है। भारत की एकता की योजना स्वयं प्रकृति ने निर्मित की है। हिमालय पर्वत तथा समुद्र के मध्य उत्तर में आर्यों का और दक्षिण में द्राविड़ों का देश समझने की भावना या दोनों जातियों को एक-दूसरे से पृथक् होने की कल्पना कभी भी किसी भारतीय के मस्तिष्क में नहीं आई। वायु-पुराण में लिखा है कि—

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

उत्तरी हिमालय से दक्षिणी समुद्र तक संपूर्ण भू-भाग हमेशासे एक देश माना गया है। यह भौगोलिक एकता समस्त भारत की नदियों, नगरों तथा पहाड़ों के एक साथ एक श्लोक में लिए जाने से भी प्रकट होती है। स्नान, ध्यान, पूजा करते समय भारतीय हिन्दू सभी नामों का एक साथ बिना उत्तर-दक्षिण का भेद किए उच्चारण करते हैं। यही नहीं जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने उत्तर के बद्रीनाथ के मन्दिर के लिए दक्षिण-निवासी पुरोहित और रामेश्वरम् के मन्दिर के लिए उत्तर-निवासी पुरोहित नियुक्त करने को मान्यता दी थी।

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन सन्निधं कुरु॥
अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैते मोक्षदायिका॥

मोक्षदायक तीर्थ तथा नगर उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, भारत के प्रत्येक भाग में विद्यमान हैं जो उस की भौगोलिक एकता के गीत गाते हैं।

धार्मिक तथा सांस्कृतिक एकता—

धर्म और संस्कृति क्या है? इस पर अनेकों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। संस्कृति के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सद्‌गुणों के भीतर से प्रकाशित हो जाना ही

यदि ऐसा ही है तो कम-से-कम विष्णु जी को सूचित तो कर दूँ, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि वे सोते ही रह जाएँ और इधर सब काम समाप्त हो जाए। और ब्रह्मा उक्त समस्या के समाधानहेतु अभिलषित स्थान की ओर चल पड़े।

ब्रह्मा का मनुष्य और मनुष्यता की रक्षा के लिए चिंतन करना, उसके समाधान के लिए किसी दूसरी जगह जाना चाहे पूरी तरह कल्पित मान लिया जाय, परन्तु इतना सच है कि आज का मानव जिस स्थिति में, जिस ढंग से सोचता है, और कार्य करता है, उसमें भावनात्मक एकता की तो बात ही दूर केवल एकता का भी अंश दिखाई नहीं देता। सीधी-सादी बात इतनी कि भावनात्मक एकता के मुख्य सूत्रों (नियम कह लें चाहे) को ही हम भूल बैठे हैं। संसार-गुरु भारत और उसके मनीषियों के वचनों में—"अयं निजः परो वा" की गणनामात्र करने वालों को 'क्षुद्र-हृदय' अथवा 'लघुचेता' कह कर उपहास किया गया है और "वसुधैव कुटुम्बकम्" मानने वालों को 'उदार-हृदय' कहकर आदर दिया गया है। लेकिन आज के मनुष्य ने घेरा इतना तंग और इतना विशाल बना लिया है जिसे जो अच्छा लगता है उसे ही दूसरा भी आंख मूंद कर मान ले तो उसकी दृष्टि में 'उदार-हृदय' और इससे अन्यथा 'क्षुद्रहृदय' का फतवा तो उसे मिला-मिलाया ही है। क्या अद्भुत और उपहासास्पद व्याख्या कर ली गई है ऋषि-वाक्यों की ! जाति, समाज, देश और सबसे बढ़कर राष्ट्र की हित-चिन्तना और उसके लिए निभाए जाने वाले कर्त्तव्य ताक में रखकर हम अपनी ही इच्छा के अनुसार दूसरों को चलने के लिए बाध्य करते हैं और इसके लिए आड़ लेते हैं भावनात्मक एकता के नारे की !

'सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै, मा विद्विषावहै' आदि का विचार-चिन्तन किस ओर संकेत करता है ? इसका स्थूलार्थ कदापि अपेक्षित नहीं कि हम सभी एक जगह इकट्ठे होकर प्रत्येक कार्य आरम्भ करें, बल्कि इसमें अंतर्निहित वही भावनात्मक ऐक्य की भावना काम करती है जिसके अनुसार हमारा चिन्तन इतना प्रबल हो कि हम अपने से पृथक् किसी को सोचें भी नहीं; भले ही हमारे खाने-पीने की रुचि, ओढ़ने-पहनने की रुचि और बोलने-चलने की रुचि भिन्न हो। लेकिन आज विश्व का वातावरण इतना तनावपूर्ण है कि एक वर्ग, जाति, समाज, देश और राष्ट्र को एक-दूसरे का अविश्वास खाए जा रहा है। शांति के नाम पर युद्ध, सुरक्षा के नाम पर अत्याचार, श्रद्धा और विश्वास के नाम पर हत्याएँ, जन-शोषण और बन्धु-परिपोषण यह सब-कुछ खुले रूप में चल रहे हैं। दूसरी ओर से कभी-कभी (यद्यपि वह परमावश्यक है) आवाज गूंजती है भावनात्मक एकता की। और हँसी की बात (उपहास भी कह लीजिए) हम अपने देश पर आक्रमण करने वाले विश्वासघाती माओ-चाऊ को शाबास देते नहीं थकते कि धन्यवादी हैं तेरे भय्या कि तुम्हारे कारण सारा देश भावनात्मक एकता के सूत्र में बँध गया, क्या अद्भुत उदारता है हमारे स्वाभिमान की ! क्या सचमुच हमारे हृदयों में एकदम भावनात्मक एकता आ घुसी थी अथवा कोई डर था ? देखिए डर की बात तो न आप ही स्वीकार करना चाहेंगे और न मैं, बल्कि बहुत ऊँचे स्वर में कहेंगे—हां जी, हमारी जान चली जाए चाहे, परन्तु हम चीन जैसे विश्वासघाती के छक्के छुड़ा देंगे, आजमा लो चाहे—क्योंकि मैं और आप भी वैसे ही देश-भक्त हैं जैसे और हैं। हमने सोना दिया, कपड़ा दिया, सुहाग दिए, सिंदूर दिए, भारत की रक्षा के लिए त्याग किया और सच तो यह है कि उन सभी त्यागों के उदाहरण कुछ तो अमर बन गए हैं; लेकिन तस्वीर का दूसरा रुख क्या कहता है ? इससे भी आप परिचित हैं ही, न हों तो अच्छे-से-अच्छे स्तर के समाचार-पत्र उठा लीजिए और पढ़ जाइए हममें से कुछ की करतूतें और भावनात्मक एकता का नारा !

इसलिए यह कहना ठीक प्रतीत नहीं होता कि चीनी आक्रमण के कारण हम भावनात्मक रूप में एक हुए। निश्चय ही हम भावनात्मक रूप में एक थे—चाहे ऐसों की संख्या थोड़ी ही थी—और उतनी ही संख्या में इस समय और किसी भी समय एक हैं। यदि यह बात न होती तो इतनी ठण्ड में, इतनी भयंकरता में सीमित हथियारों और दूसरे साधारण साधनों से ही भारत की लाज क्रूर और सबल शत्रु

से कैसे बचा पाते ? पंजाब का निवासी दक्षिण में रामेश्वरम् या जगन्नाथपुरी की यात्रा क्यों करता और लद्दाख या नेफा की रक्षा के लिए क्यों लड़ता ?

कुछ महानुभाव अकबर और अंग्रेजों का उदाहरण देते हैं कि इनके समय भावनात्मक रूप से भारत पर्याप्त एक था। अकबर का दीनेइलाही और अंग्रेजों की भाषा-नीति इसके कारण बताए जाते हैं, लेकिन यह ठीक नहीं, क्योंकि यदि यही कारण होते तो न तो अकबर के समय ही युद्ध होते और न ही अंग्रेजों को निकालने के लिए संघर्ष होते, फांसियां लगतीं और क्रांतियां ही सिर उठातीं। मैंने कहा न, कि भावनात्मक एकता की विचारधारा के उपासक सदा ही रहे हैं (चाहे थोड़ी मात्रा में ही सही) और रहेंगे। उनके लिए नारा लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसी विचारधारा के उपासक सदा ही और प्रत्येक देश में उस अन्याय और अन्यायी के विरुद्ध रहे हैं जो मनुष्यता की प्रतिष्ठा करना नहीं जानता और मनुष्यता का शत्रु है।

हमारी आज की तथाकथित भावनात्मक एकता की विचारधारा के चित्र आपको देखने को मिलेंगे बड़े-बड़े शहरों में, जहां दिन-भर में हजारों की संख्या में लहराता अपार जनसागर इधर-से-उधर और उधर-से-इधर बस चलता ही दिखाई देगा। क्षण-भर के लिए रुकना अपने और दूसरों के लिए खतरा बन जाता है—यह हुई गाड़ी की टक्कर—वह गिरा—वह गया। और रात को पांच-छः मंजिले मकानों में चमकते प्रकाश, उल्लास-विलास भी और हाय-हाय भी—मगर सभी में एक ही विचारधारा काम करती है—"कोई मरे और कोई जिए, सुथरा घोल बताशे पिए"। नीचे वाले का बच्चा बीमार है, मां बीमार है, पत्नी मरने को है मगर ऊपर वाले को रत्ती-भर भी पता नहीं। ऊपर वाले के घर में छोटे शहर से कोई महमान आया है, लेकिन हँसी की बात कि बेचारा उसी घर में तीन चक्कर लगा गया है और लौटता रहा है, क्योंकि उस घर में रहने वाले जिससे भी अमुक नाम वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में पूछा गया उससे ही उत्तर मिला—न साहब हम नहीं जानते, और अकस्मात् ही नीचे उतरते हुए घर की ड्योढी में लौटते हुए महमान को गृहस्वामी की भेंट हो गई थी। तभी पता चल सका कि अरे हम तो यहीं रहते हैं—ऊपर तीसरी मंजिल में। और महमान अपने को सौभाग्यशाली समझता है उस कड़ाके की सर्दी में। ऊपर बंगाली बाबू रहते हैं जिनकी दृष्टि में बस सब प्रांतों से अच्छा बंगाल और सब भाषाओं से अच्छी बंगला है, और पास ही (बिल्कुल साथ सटे हुए) फ्लैट में पंजाबी महाशय रहते हैं उनकी दृष्टि अमृतसर और दिल्ली से आगे बढ़ ही नहीं पाती। उनसे पूछिए तो जो उत्तर मिलेगा वह आज की हमारी भावनात्मक एकता का अच्छा परिचायक होगा।

आज की भावनात्मक एकता के और भी अच्छे रूप में चित्र आपको मिलेंगे उन संस्थाओं, कार्यालयों और कर्मचारियों में जहां केवल एक ही होड़ लगी है—दूसरे को मार कर मैं कैसे आगे बढ़ सकता हूँ, और इस नेक काम के लिए वह अपने अफसरों की जिस-जिस रूप में मालिश करता है उससे भगवान् बचाए ? क्या महर्षि मनु से लेकर व्यास, गौतम और वसिष्ठ ने इसी विचारधारा के लिए ग्रथों की रचना की थी ? क्या कृष्ण ने—"शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः" इसीलिए कहा था ? क्या स्वामी दयानन्द, राममोहनराय, तिलक और गांधी ने इसीलिए अपने-अपने ढंग से संघर्ष किया था ? और भावनात्मक एकता का तत्त्व समझने वाले श्री नेहरू क्या यही चाहते हैं कि नीचे वाले का बच्चा या पत्नी बीमार होकर मर जाए और ऊपर वाला उससे अनभिज्ञ रहे ? निश्चय ही ये सभी ऐसा नहीं कहते, ऐसा नहीं चाहते। तो फिर क्या कारण है कि हमारी भावनात्मक विचारधारा एक सीमित दायरे में बन्द होकर रह गई है ? उत्तर स्पष्ट है कि हम केवल अपने तक ही सीमित स्वार्थों की ओर टकटकी लगाए हैं, हमारे आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ क्या हो रहा है, कुछ भी पता नहीं। शत्रु का आक्रमण है या कन्धे पर रखे किसी मित्र का हाथ, हमारे दाएँ चोरी हो रही है या खरीदारी, हमें कुछ ज्ञान नहीं—मगर मजाल है हमारी टकटकी उठ जाय टके पर से ! धन्य है हमारी ऐसी भावनात्मक एकता और धन्य हैं हम !

भावनात्मक एकता का राग बड़ा मीठा है, मोहक

है, मगर सच्ची बात इतनी है कि इसे गाने वाले ऋषि-वाक्यों के समर्थक नहीं, बल्कि राजनीतिक गायक हैं। वे लोग इसमें से सात की जगह चौदह स्वर निकालने की सामर्थ्य रखते हैं और शाम-सवेरे के समय अनुसार कोमल, मध्यम और तीव्र स्वर में जैसी रागिनी चाहें निकाल सकते हैं, यद्यपि विलम्बित और द्रुत का ध्यान रखे बिना वे सभी बेसुरी होती हैं, क्योंकि सुरों में तारतम्य नहीं, समता नहीं. मगर चूंकि उन गायकों को गाना है बस इसलिए मेघ-मल्हार का जोड़-तोड़ जाने बिना यह भावनात्मक एकता का दीपक राग गा लिया जाता है, जिससे जलन के अतिरिक्त और कुछ उपलब्धि नहीं होती। मैंने कहा न कि सुरों में समता नहीं। इसलिए भावनात्मक एकता से पहले भावनात्मक समता अत्यन्त आवश्यक है, और समता आ पाएगी यह भूल जाने से कि मैं अमुक हूं और दूसरा अमुक है, क्योंकि यदि हम इस मैं और हम तक ही सीमित रह कर सोचेंगे फिर तो चित्रगुप्त की रिपोर्ट के अनुसार और सब-कुछ मिलेगा, मगर 'मनुष्य' नहीं। इसीलिए यदि ब्रह्मा की चिन्ता कम करनी है, विष्णु को उलझन में नहीं डालना तो भावनात्मक समता लानी पड़ेगी और भावनात्मक समता आ गई तो फिर भावनात्मक एकता तो बने-बनाए गहने पर बस चमक देने वाली बात है, फिर वह कठिन नहीं।

भावनात्मक समता से निःशस्त्रीकरण से लेकर ऊपर और नीचे की मंजिलों में रहने वाले लोगों की समस्याएँ तक सभी हल हो सकती हैं। फिर टके के लिए टकटकी नहीं लगानी पड़ेगी, दाएँ-बाएँ और आगे-पीछे का ध्यान दिलाने वाले भी मिल ही जाएँगे। और इस समता के लिए हमारा आहार-व्यवहार, आकार-प्रकार कृति-प्रकृति भिन्न होते हुए भी—हम भारत के हैं और भारत हमारे लिए है—यही सूत्र पर्याप्त है मनुष्य मनुष्य की समता के लिए हम जाति, वर्ग, समाज, प्रांत, वेष, भाषा से ऊँचे उठ कर पहले अपनी देशीय समता से श्रीगणेश करें और यह निश्चय मानिए कि जिस दिन यह कार्य पूर्ण हो. गया उसी दिन मनुष्य की जयकार होगी और मनुष्यता चैन की सांस लेगी। ●

गीत

[श्री हरगोविन्द पाराशर]

मैंने ऐसी धरती पाई जिस पर कोमल चरण चले हैं
मुझ में ऐसी जोत समाई, जिसने सौ सूरज पाले हैं
मैंने कितने वनखण्डों में
सुन्दर मंजिल बनवाई है,
मैंने कितने कारागृह में
सुखद सेज बिछवाई है,
मैंने गहरे अंधियारों में
दीपक लौ उजलाई है,
मैंने कांटों-भरी राह को
फूल पाँवड़ी पहनाई है।
शायद इसीलिए धरती ने मुझको हार पिन्हाए हैं
इसीलिए सूरज ने शायद मुझमें कमल सँजोए हैं
मैंने ऐसी धरती पाई···
बात सही है मैंने दुख में
सुख की भेंट सभी को दी है,
पाँवों में ठोकर खाकर भी
खून बूंद धरती को दी है,
जब-जब रात मुझे आई है
मैंने उसको नयन दिए हैं,
जब-जब गम की आग मिली है
मैंने रस बरसात रसी है।
शायद इसीलिए दुनिया ने मुझको जल-कण खूब दिए हैं
सागर ने तो इसीलिए नम-बादल मुझको बहुत दिए हैं।
मैंने ऐसी धरती पाई···
मुझको ऐसी भेंट मिली है
जो ही मुझको जीवन देगी,
मुझको ऐसी आँख मिली है
जिनसे धारें बन्द न होंगी
मुझको ऐसी शक्ति मिली है
जो विष से भी मृत्यु न देगी
मुझको ऐसी राह मिली है
जिसकी इति जीवन में होगी।
शायद इसीलिए जीवन ने मुझ में शाश्वत रूप लिए हैं
इसीलिए मृत्यु ने शायद मुझको अपने कफन दिए हैं।
मैंने ऐसी धरती पाई···

भावनात्मक एकता और साहित्य

[डा. हरिनंदन पाण्डेय]

साहित्य की परिभाषा बतलाते हुए एक मनीषी ने एक स्थान पर लिखा है :—सहितस्य भावः साहित्यम् अर्थात् जिससे मानव का हित हो, उसे ही साहित्य कहते हैं। इसी भांति एक दूसरे साहित्यकार लिखते हैं:—'मनुष्य के मन में तरंगित होनेवाली भावनाओं और अनुभूतियों की कलापूर्ण अभिव्यक्ति जब वाणी द्वारा सम्पादित होती है तो उसे साहित्य की संज्ञा दी जाती है। कहना न होगा कि साहित्य का हमारी सभ्यता से गहरा सम्बन्ध है। क्योंकि जिस देश का साहित्य जितना ही समृद्धिशाली होगा, वहां की सभ्यता उतनी ही बढ़ी-चढ़ी होगी। दूसरे शब्दों में हम यों भी कह सकते हैं कि किसी भी राष्ट्र का उत्थान और पतन उस देश के साहित्य पर निर्भर करता है। एक पश्चिमी विचारक का कहना है कि यद्रि किसी भी राष्ट्र को सदा-सदा के लिए गुलाम बनाना हो, तो पहले उस राष्ट्र के समस्त साहित्य को जला डालो। इसी भांति साहित्य को समाज का दर्पण भी कहा गया है। क्योंकि किसी भी देश के साहित्य को पढ़कर हम निःसंकोच कह सकते हैं कि उस देश की सभ्यता तथा संस्कृति कैसी है। आप अठारहवीं शताब्दी का फ्रेंच-साहित्य उठा कर देख लीजिये, आप को पता चल जायेगा कि कि उस काल में पश्चिमी देशों में कितनी उच्छृङ्खलता व्याप्त थी। इसी भांति हमारे यहां के भक्तिकालीन साहित्य का अध्ययन कीजिए, आपको पता चल जायगा कि साहित्य के लिए यह काल 'स्वर्ण-युग' ही था। सारांश यह कि युग के प्रकार के अनुरूप साहित्य का स्वरूप बदलता रहता है। यह साहित्य ही है जो चाहे तो किसी भी देश को अकर्मण्य तथा निष्क्रिय बना सकता है, साथ ही इस में वह शक्ति भी समाहित है जिस से मानव-जीवन पूर्ण तथा समृद्ध हो सकता है। साहित्य वह प्रबल अस्त्र है, जिस के माध्यम से क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित की जा सकती है, साथ ही साहित्य सुख-शांति और स्वतंत्रता का स्रष्टा भी है। आप सच मानिये, यदि साहित्य नहीं होता तो 'मानस' की रचना संभव नहीं होती। यहां यह लिखना अत्युक्ति न होगी कि वाल्मीकि की रामायण ने देश की भौगोलिक एकता को एक सूत्र में आबद्ध करने में अद्वितीय योगदान किया है। 'राम-कथा" नामक खोजपूर्ण ग्रंथ के लेखक फादर कामिल बुल्के के अनुसार वाल्मीकि से पूर्व देश में तीन तरह की राम-कथाएं प्रचलित थीं। पहली कथा अयोध्या की थी, जिसके नायक राम थे, दूसरी कथा सुदूरदक्षिण की थी, जिस का नायक रावण था और तीसरी कथा किष्किन्धा के आस-पास की थी, जिसके नायक हनुमान् थे। निदान, आदि-कवि ने इन तीनों कथाओं को काव्य-रूप देकर अपना प्रथम राम-काव्य लिखा। प्रो० आनन्दनारायण शर्मा ने एक स्थान पर ठीक ही लिखा है कि आदि-कवि ने इन तीनों स्थानों में बिखरी लोक-कथाओं को ही नहीं मिलाया, उन्होंने सर्वप्रथम आसेतु-हिमाचल देश की एक इकाई के रूप में कल्पना की, और अयोध्या से कुमारी अन्तरीप तक के विस्तीर्ण भू-भाग को एक सद्भावना के सूत्र में गुंफित कर दिया। राम ने लंका जाने के लिए पत्थर का पुल चाहे न भी बनाया हो, परन्तु राम और विभीषण की मैत्री दिखला कर वाल्मीकि ने सौहार्द का सेतु तो तैयार कर ही दिया।

आदि-कवि ने भगवान् राम का चरित्र भी एक राष्ट्र-पुरुष के रूप में ही चित्रित किया है। यथा :—

स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानंदवर्धनः।
समुद्र इव गांभीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥
१।१।१७॥

जहां आदि-कवि ने भगवान् राम को समस्त गुणों की खान और कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले के रूप में चित्रित किया है। वहीं उसने 'समुद्र इव गांभीर्ये धैर्येण हिमवानिव' लिख कर संपूर्ण देश की अखण्डता और उसके भौगोलिक ऐश्वर्य को भी दर्शाया है। यही कारण है कि वाल्मीकि की वाणी ने भावनात्मक एकता

के प्रसार एवं प्रसार में प्रचुर योगदान दिया है। फिर क्या था, देश की समस्त भाषाओं में वाल्मीकीय रामायण की आधारशिला पर अनेकों रामायणें लिखी गईं। हमारे पड़ोसी राज्य बङ्गाल में श्री कृत्तिवास ने, तथा उड़िया में श्री बलरामदास ने रामायण लिखीं। यहीं के सिद्धेश्वर पण्डित ने जो उड़ीसा के वाल्मीकि माने जाते हैं—'विलङ्का रामायण' की रचना की। असम में श्री माधव कन्दलि ने भी रामायण लिखी, जो आज भी 'रामचरितमानस' के समान ही समादृत हो रही है। मराठी रामायण (एकनाथकृत) आज भी सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित है। इसी भांति गुजरात, कश्मीर तथा मद्रास में भी रामायण लिखी गई। सारांश यह कि भारत की समस्त भाषाओं में वाल्मीकीय-रामायण को आधार मान कर राम-कथा की रचना की गई, जिसने भावनात्मक एकता के प्रसार एवं प्रचार में पर्याप्त योगदान दिया है। प्रो० शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि 'भारत की भावनात्मक एकता को भौगोलिक तथा ऐतिहासिक धरातल पर उतारा वाल्मीकि और व्यास ने, परन्तु उसे शुद्ध भावनात्मक एवं सांस्कृतिक तल पर प्रतिष्ठित किया महाकवि कलिदास ने।' क्योंकि कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' तथा 'रघुवंशम्' में जिस जीवनादर्श' को उपस्थित किया है, वह किसी अंचल विशेष की विभूति नहीं, सम्पूर्ण देश की सम्पत्ति है। उसमें आर्यों की सभ्यता, द्राविड संस्कृति, पंचनद का पौरुष तथा बंग देश की कोमलता है।

हम ऊपर लिख आए हैं कि भक्ति-काल को साहित्य के लिए 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है। कहना न होगा कि इस काल में सूर, तुलसी, मीरा, रसखान, जायसी आदि भक्त तथा प्रकाण्ड पण्डित कवियों ने अपनी वाणियों द्वारा जन-जन तक में भावनात्मक एकता का सन्देश पहुँचाया, जिस के लिए ये सब अभिनन्दनीय हैं। परन्तु इस काल में जो काव्य-रसायन निर्मित हुआ, उसके निर्माण में पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के संत कवियों का योगदान कम नहीं है। भक्ति-काल को स्वर्णयुग कहलाने का श्रेय मात्र उत्तर भारत के सन्त कवियों को ही नहीं है, बल्कि इसका मूल स्रोत दक्षिण-भारत को ही है। रामानुज, वल्लभाचार्य, तथा अन्य वैष्णव कवियों द्वारा भावनात्मक रागमयी उपासना का प्रचार उत्तर भारत में किया गया। हम लिख आए हैं कि भक्ति-काल को सर्वश्रेष्ठ काल बनाने में उत्तर-दक्षिण के साथ-साथ पूर्व और पश्चिम का भी योगदान है। जहां पश्चिम से सूफियों की 'प्रेम को पीर' की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी, वहीं पूर्व से जयदेव का काकली छन्द भी कर्णगोचर हुआ। उसी भांति सतारा के नामदेव, काशी के कबीर, अहमदाबाद के आखो और आंध्र के वेमन्ना की वाणियों में भी भाव-साम्य है। महाकवि सूर के पदों में जो लालित्य है, तन्मयता है, प्रेम-विह्वलता है, वही भाव बङ्गाल के चण्डीदास, असम के माधवदेव, गुजरात के भालण तथा मलयालम के चेमुशेरी नंबूतिरी में भी है। ठीक इसी तरह का भाव-साम्य उत्तर और दक्षिण के सन्त-कवियों में भी है। भाव में ही नहीं, बल्कि शैलियों, छन्दों आदि में भी पर्याप्त समानता पाई जाती है।

इस भांति हम देखते हैं कि भावनात्मक एकता के प्रसार-प्रचार में साहित्य की शक्ति अपरम्पार है। जो ऐक्य तलवार के द्वारा नहीं लाया जा सकता है, वह ऐक्य साहित्य के माध्यम से आसानी से फैलाया जा सकता है। आवश्यकता है, लग्न की; उत्साह की। हम तो यहां तक चाहते हैं कि भावनात्मक-एकता के लिए देश की समस्त भाषाओं की अनुपम कृतियों का अनुवाद दूसरी-दूसरी भाषाओं में किया जाए। जिस से कि बङ्गाल के रवि बाबू और नजरूल इस्लाम गुजराती भाइयों के घर में पहुँच जाएं, भारती और वल्लतोल उत्तर भारत के घरों में पूजे जाएं। इसी तरह 'गुप्त' को केरल की जनता समझ सके, प्रेमचन्द को असम में सम्मान प्राप्त हो। तभी प्रांतवाद की दीवारें टूट सकेंगी, और पारस्परिक सौहार्द, स्नेह तथा सद्भाव का प्रचलन हो सकेगा। इसका तात्कालिक फल यह होगा कि भावनात्मक एकता दृढ तो होगी ही, इसके साथ ही भाषाओं की भङ्गिमाओं और शिल्प में भी चार चाँद लग जाएँगे। क्योंकि इन रचनाओं को अधिक-से-अधिक पाठक पढ़ेंगे और हमारे साहित्य-स्रष्टाओं में भी आत्म-विश्वास और दायित्व का बोध

[शेष पृष्ठ ४० पर]

जाग्रत होगा, जिस के प्रभाव में आज महत् साहित्य का सृजन अवरुद्ध है ।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भावनात्मक एकता के प्रसार एवं प्रचार में साहित्य की शक्ति अपरिमेय है। क्योंकि साहित्यकार की आत्मा का सच्चा भाव उस की कला में निहित हो कर अधिकाधिक मानव-समाज का पथ-प्रदर्शन करता है। प्रेमचन्द ने एक स्थान पर लिखा है—'साहित्य सामाजिक आदर्शों का स्रष्टा होता है। क्योंकि जब कोई सच्चा साहित्यकार मानव-युग की पुकार को सुनता है तो वह उस काल की परिस्थितियों एवं विचारों को साहित्य में चित्रित कर डालता है।' यही कारण है कि विश्व-कवि रवि बाबू ने अपनी एक कविता में इस देश का वर्णन एक 'महामानव-सागर' के रूप में किया है,जिसमें भावनात्मक एकता का मूल मंत्र सन्निहित है। रवि बाबू की कविता की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

हेयाय आर्य, हेयाय अनार्य
हेयाय द्राविड़, चीना
शक-हूण दल, पाठान-मोगल
एक देहे हलो लीन ।

अर्थात् आर्य, अनार्य, द्राविड, चीन, शक, हूण, पठान और मुगल सभी इस देश रूपी शरीर में घुस कर एकाकार हो गए हैं। यह निर्विवाद है कि एकीकरण की स्थापना में साहित्य का प्रमुख हाथ रहता है।

★ ★ ★

अनुभूति के दो फूल

[श्री कृष्णकुमार खन्ना]

[१]

कार्नस से गिरी जो घड़ी
औंधी ज़मीन पर पड़ी
सहमी, घबराई—घायल !
फिर भी—
लौटती ज़िन्दगी को बुलाती रही
टिक्—टिक्—टिक् !
इसी तरह—
ज़िन्दगी की घड़ी
टूट कर कब से बेकार पड़ी
पर कुछ और जी लेने की लालसा में
सिसक रही—सुबक रही
टिक्—टिक्—टिक् !
सच, यह जीने का मोह ही तो है ज़िन्दगी !

[२]

मैं—अकेला मैं
और दूर तक फैला हुआ आकाश !
तैरती, उफनती
विचारों की चंचल मछलियां !
नीलमी—सागर
—और उसकी गहराइयों में
बह रही किसी की याद !
दर्द का यह चाँद
आवारा, बदनाम
कर रहा अठखेलियां सरे आम !
मैं—अकेला मैं
और दूर तक फैला हुआ आकाश !
एक छोटे मेघ का कंकड़
—किसी ने फेंक कर
छितरा दिया
कल्पना के भवन का आधार !
अशान्त—अथाह सागर
अशान्त—अथाह मानस
आज दोनों—
विरह में उद्भ्रान्त !
सब चुपचाप
सांस की बस सरसराहट
—यों कि जैसे
निठुर-विधना से सताई
नवयौवना—विधवा की—
कपड़े सी रही
—मशीन की आवाज़ !
मैं—अकेला मैं
और दूर तक फैला हुआ आकाश !

भावनात्मक एकता और भारत

[श्री चन्द्रपालसिंह यादव]

एकता में शक्ति है और विग्रह में निर्बलता। एकता के द्वारा कठिन-से-कठिन कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते हैं, किन्तु एकता के अभाव में उन्हीं कार्यों का सम्पादन असम्भव-सा प्रतीत होने लगता है। निष्कर्ष स्पष्ट है—एकता में उन्नति तथा विजय है और एकता के अभाव में अवनति तथा पराभव। यह एकता मनुष्यों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के लिए तो आवश्यक है ही, परन्तु किसी भी राष्ट्र अथवा देश के निवासियों में एकता का होना तो नितान्त आवश्यक है। आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य है। किसी भी राष्ट्र के निवासियों में एकता की भावना का अभाव उस राष्ट्र की स्थिति ही संदिग्ध बना देता है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। विश्व के इतिहास में इस तथ्य के उदाहरणों की कमी नहीं है कि जहां किसी राष्ट्र के निवासियों में एकता की भावना का अभाव हुआ और विग्रह के अंकुर वहां के निवासियों के बीच पनपे, कि किसी अन्य सबल राष्ट्र ने विग्रह से जर्जर राष्ट्र की दुर्बलता का लाभ उठा कर, उसे परास्त करके, वहां अपनी प्रभुता स्थापित कर ली।

राष्ट्रीय एकता के द्वारा बड़े-से-बड़े संकट का सफलतापूर्वक सामना भी किया जा सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हम भारत वाले अभी हाल में देख ही चुके हैं। बिना किसी पूर्व सूचना के सेनाओं द्वारा देश की सीमा का अतिक्रमण करके—और प्रतिरोध करने पर युद्ध प्रारम्भ करके—पड़ोसी राष्ट्र "चीन" ने हमारे देश की स्वतंत्रता के लिए भीषण खतरा उत्पन्न कर दिया था; परन्तु उस समय हमारे देश के सभी निवासियों ने भाषा, प्रान्त, सीमा-सम्बन्धी तथा अन्य सभी प्रकार के भेद-भावों को भूल कर, एकता के जिस बलशाली सूत्र में बंध कर आक्रमणकारी का सफल प्रतिरोध किया था; वह सम्पूर्ण विश्व को चकित कर देने वाला था। उसी का यह फल था, कि आक्रमणकारी को पीछे लौटने के लिए विवश होना पड़ा था। राष्ट्र की उक्त एकता के अभाव में हम सबकी क्या दशा हुई होती, यह सोचने में भी कंपकंपी होने लगती है। अतः एकता आज के युग में किसी भी राष्ट्र अथवा जन-समुदाय के लिए कितनी आवश्यक है और कितनी श्लाघ्य एवम् ग्राह्य—यह सभी पर भलीभांति प्रकट हो चुका है, इस तथ्य से सभी सुपरिचित हो चुके हैं।

अतएव यह एकमत से कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता का होना हमारे अपने देश "भारत" के लिए भी अत्यावश्यक है, तभी हम भारतवासी सुख-शान्ति-पूर्वक जीवन-यापन कर सकते हैं। हमारे देश के विद्वान् संविधान-निर्माताओं की दृष्टि से यह तथ्य ओझल नहीं था, तभी तो "भारतीय गणतंत्र के संविधान में" भारत-वालों के "संकल्प" में स्पष्ट शब्दों में "राष्ट्र की एकता" का उल्लेख किया गया है :—

"हम, भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राज-नैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित कराने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए, दृढसंकल्प होकर अपनी इस संविधान-सभा में एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या एकता की भावना किसी बड़े राष्ट्र अथवा जन-समुदाय में सरलता से लाई जा सकती है? उत्तर स्पष्टरूप से नकारात्मक होगा। कारण यह—कि भौगोलिक प्रभावों के कारण स्थलीय विभाजन और भाषा, लोक-व्यवहार तथा परम्पराएं आदि—लोगों को छोटे-छोटे समुदायों अथवा प्रान्तों में विभाजित करके उनमें पृथक्ता की भावना उत्पन्न

कर देते हैं। यही कुछ स्थिति सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से—अपने देश "भारत" में भी है।

यहां भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो भारत की एकता के लिए अस्वास्थ्यकर प्रभाव डालते हैं जैसे-भाषा की समस्या, प्रान्तों के सीमा-निर्धारण की समस्या, भाषा अथवा सम्प्रदाय के आधार पर प्रान्तों के निर्माण की समस्या आदि-आदि। ये वे तत्त्व हैं, जो राष्ट्र की एकता के मार्ग में बाधा उपस्थित करते हैं और ये सभी तत्त्व अत्यन्त प्रभावशाली भी हैं, इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

हमारे देश में कुछ वर्ष पूर्व घटित भाषा-विवाद सम्बन्धी अप्रिय घटनाएं किस तथ्य की ओर इङ्गित करती हैं? यही न, कि देश की एकता में बाधा डालने वाले ये तत्त्व तुच्छ नहीं हैं; वरन् ये लोगों की मनोवृत्ति को पर्य्याप्त सीमा तक प्रभावित करते हैं। यही नहीं, हम प्रायः जीवन के सभी क्षेत्रों में यह देखते हैं कि एक भाषा-भाषी होने तथा एक प्रान्त के होने के कारण लोग एक-दूसरे का बहुत ख्याल रखते हैं, आड़े समय में उनकी काफी सहायता करते हैं और प्रायः अनुचित पक्षपात भी करते रहते हैं। बंगाली बंगाली के प्रति सहानुभूति रखता है, पंजाबी-पंजाबी के प्रति। मद्रासी के हृदय में अपने मद्रासी भाई के प्रति कोमल भावना रहती ही है। यह तो अनुचित बात नहीं है। किन्तु इसके साथ ही उनके हृदयों में देश के अन्य प्रान्तों के लोगों के प्रति कुछ-कुछ विरोधी भाव भी जाग्रत हो जाते हैं, अन्य प्रान्तवालों के प्रति कुछ-कुछ द्वेष-भाव-से पनपने लगते हैं, यही इसमें बुराई है। यद्यपि सच्चाई तो यह है कि ऐसी मनोवृत्ति हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यन्त घातक है, परन्तु जो सत्य है उसे आप रगड़ कर मिटा तो नहीं सकते। यह अवश्य है कि हमको यथासम्भव ऐसी मनोवृत्ति का उन्मूलन करना चाहिए। ऐसी संकीर्णहृदयता राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से श्रेयस्कर नहीं। पर प्रश्न यह है कि राष्ट्रीय एकता के लक्ष्य की की प्राप्ति का उपाय क्या है?

उत्तर यह है कि हम सब प्रान्तीयता की भावना वाली संकीर्ण दृष्टि को त्याग कर विस्तृत राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपनाएँ। हम सभी अपने प्यारे "भारत" देश की निवासी हैं, भारतवासी हैं, भारतवासी हैं। सारे भारतवासी—चाहे वे बंगाली हों अथवा पंजाबी; केरल के निवासी हों अथवा हिमालय के अञ्चल में निवास करने वाले पर्वतीय—परस्पर भाई-भाई हैं। हम को एक-दूसरे से भाई-भाई के समान प्रेम करना चाहिए, कन्धे-से-कन्धा मिला कर खड़े होना चाहिए। चाहे किसी की कोई भी भाषा क्यों न हो, भारत का प्रत्येक भाषा-भाषी हमारा भाई है। जब हम इस प्रकार की अपनी भावना बनाएंगे, इस प्रकार के अपने विचार बनाएंगे, कि पृथक्-पृथक् भाषा-भाषी होने पर भी हम अपने को—भावनाओं के द्वारा—विलग न समझ कर एक समझने की चेष्टा करें, तो इस प्रकार सहानुभूतिपूर्ण भावनात्मक एकता का दृष्टिकोण ही हमारे प्यारे "भारत" देश को एक सूत्र में बाँध सकने में समर्थ हो सकेगा, तभी राष्ट्रीय एकता के लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है।

अतः हम निम्न कविता की पंक्तियों को स्वर में मिला कर गावें और तदनुकूल आचरण करें, इसी में हमारा और हमारा और हमारे राष्ट्र का कल्याण है :—

हम मतवाले भारतवाले 'भारत देश हमारा है।'
इस भारत का कण-कण हमको प्राणों से भी प्यारा है।।

चाहे कोई बगाली हो,
या पंजाबी-मदरासी।
चाहे हो केरल प्रदेश का,
अथवा हिम-गिरि का वासी।

भारत को पावन धरती पर सबने ही तन धारा है।
इस भारत का कण-कण हमको प्राणों से भी प्यारा है।।

कोई भी हो प्रान्त किसी का
या कोई भी हो भाषा;
सच तो यह है—बच्चा-बच्चा
है भारत-माँ की आशा।

"भारतवासी भाई-भाई"—यही हमारा नारा है।
इस भारत का कण-कण हमको प्राणों से भी प्यारा है।।

भगवान् सूर्य का आत्म-परिचय

★

और दूतिकाओं ने बतलाया कि (१२)

[श्री कुलदीप चड्ढा]

आओ वत्स, आज कुछ विलम्ब के बाद मिले हो।

आओ, ज़रा निकट आओ। अपनी कहानी फिर चालू करें। अरे नहीं, इतना निकट नहीं—ज़रा बच के ही रहना! जानते हो मैं आग का गोला हूँ…! लेकिन ऐसा आग का गोला, जो रङ्ग-बिरङ्गे प्रकाश को जन्म देता है। इसी रंग-बिरंगे प्रकाश की किरणें तुम्हें मेरी बनावट के बारे में मेरे स्वभाव और मेरी गतिविधियों का परिचय देती हैं। मेरे परिचय की इन दूतिकाओं की संख्या २५,००० के लगभग है।

मैंने पिछली बार तुम्हें बतलाया था कि गर्म होने पर प्रत्येक पदार्थ विशेष रङ्ग की किरणें पैदा करता है। तुम्हारे वैज्ञानिक, अपनी प्रयोग-शालाओं में, भिन्न-भिन्न पदार्थों को कम-अधिक गर्म करके, उन से निकलने वाली किरणों की नाप-तोल कर लेते हैं। बाद में किसी अज्ञात पदार्थ का स्वभाव जानने के लिए, वे इस पदार्थ से निकलने वाली किरणों का, पहले से मापी गई किरणों से मिलान करते हैं। इस प्रकार वे मेरे शरीर से निकलने वाली २५,००० प्रकार की प्रकाश-किरणों में से कोई १२-१३००० की खोज कर चुके हैं कि वे किन-किन तत्त्वों से निकली हैं, और इन तत्त्वों की अवस्था क्या है। इस प्रणाली से मेरे शरीर के लगभग ६६ तत्त्वों की पहचान हो चुकी है—तुलना में तुम्हारी पृथ्वी पर मिलने वाले तत्त्वों की संख्या लगभग ९२ है।

दृश्य प्रकाश की २५,००० किरणों के अतिरिक्त, मेरे शरीर से लगभग ७,००० ऐसी भी किरणें निकलती अनुभव की गई हैं, जिन की लम्बाई लाल रङ्ग की किरणों से अधिक है। इसी प्रकार आकाशनी रङ्ग के प्रकाश से भी छोटी हज़ारों तरंगें प्रकट हुई हैं। इन दोनों प्रकार की तरङ्गों का, इंसान की आंखों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन वैज्ञानिकों के यन्त्र, न केवल उन की विद्यमानता जान लेते हैं, बल्कि उनका फ़ोटो भी ले सकते हैं। इन अधोलाल (इन्फ्रा रैड) और पराकाशनी (अल्ट्रा वायलेट) किरणों की खोज ने, मेरे कलेवर के उक्त ६६ पदार्थों की पहिचान और उन की अवस्था की जानकारी में निश्चित योग दिया है।

मेरे कलेवर में जिन ६६ तत्त्वों का तुम्हारे वैज्ञानिकों को पता लगा है, वे सभी-के-सभी धरती में भी मौजूद हैं। पर उन का अनुपात बिल्कुल वही नहीं, जो धरती में है। इन ६६ तत्त्वों में से, मेरे शरीर की बनावट का कोई ९९ प्रतिशत भाग, केवल दो तत्त्वों से बना है—उदजन (हाइड्रोजन) और हेलिकम् (हीलियम) नामक वायवों से। ये दोनों गैसें सृष्टि के दो सब से हल्के तत्त्व हैं। तुम्हारी दुनिया में इन दोनों गैसों का प्रयोग, उन गुब्बारों में भरने के लिये किया जाता है, जो बच्चे मनोरञ्जन के लिए अथवा वैज्ञानिक तुम्हारी धरती के वायुमण्डल की पड़ताल के लिए आकाश में छोड़ते हैं।

उदजन और हेलिकम् का मेरे शरीर में अनुपात लगभग १० : १ है (कुछ वैज्ञानिक इसे ५ : १ का मानते हैं)। इन दो के अतिरिक्त, मेरी बनावट में देखे गए तत्त्वों में ओषजन (आक्सीजन), कार्बन, नाइट्रोजन, सोडियम, लोहा, तांबा, एलूमीनियम आदि भी हैं। जहां मेरे शरीर में तुम्हारी धरती के अनुपात से उदजन और हेलिकम् कहीं अधिक हैं, वहां इन अन्य तत्त्वों और धातुओं के अनुपात में कोई खास फ़र्क नहीं। मैंने तुम्हें बतलाया था न कि करोड़ों वर्ष पूर्व तुम्हारी पृथ्वी माँ, मेरे ही शरीर से पैदा हुई थी ? ऐसी अवस्था में, हमारी रासायनिक बनावट में भेद क्योंकर हो सकता है ?

अब शायद तुम पूछो कि फिर यही बात उदजन और हेलिकम् पर भी लागू क्यों नहीं होती ?

इस का एक विशेष कारण है। क्योंकि ये वायव हल्के हैं, इसलिए वे ही पिण्ड इन्हें अपने साथ सटाए रख सकते हैं, जिनमें गुरुत्वाकर्षण अधिक हो। जानते हो न,मेरा वज़न तुम्हारी पृथ्वी की तुलना में ३३०,००० गुणा है ? अतः मुझ में पदार्थों को अपने साथ लिपटाए रखने की क्षमता, पृथ्वी की तुलना में बहुत अधिक है—कोई २७-२८ गुणा अधिक ! इस लिए, जब तुम्हारी पृथ्वी मुझ से छिटक कर अलग हो गई थी, तो वह इन हल्की गैसों को पूरी तरह अपने साथ बांधे न रख सकी। अतएव धीरे-धीरे ये वायव उड़ कर, अन्तरिक्ष में लीन हो गए।

ऐसे ही कारण से, तुम्हारे चांद पर तो वायुमण्डल लगभग नहीं के बराबर है, क्योंकि वह तो पृथ्वी से भी अनेक गुणा छोटा है। मेरे परिवार के दूसरे ग्रह भी इस सिद्धांत की पुष्टि करते हैं। बुध (मर्करी) भी छोटा होने के कारण वायुमण्डल से प्रायः विहीन है। दूसरी ओर बृहस्पति (ज्यूपिटर), शनि (सैचर्न); वारुणि (यूरेनस), और वरुण (नैपचून) पृथ्वी से बहुत बड़े हैं। अतः उन में वायुमण्डल अपेक्षतया घना है और उस में उदजन की भी प्रचुर मात्रा है।

खैर, तो बात मेरी रसायनिक बनावट की चल रही थी। कुछ और बताने से पहले, यह प्रकट कर देना उचित प्रतीत होता है कि मेरी बनावट, मेरे सभी अङ्गों-प्रत्यङ्गों में एक-सी नहीं। कुछ पदार्थ यदि सूर्य-कलङ्कों में स्पष्टतः दिखाई देते हैं, तो कुछ अन्य किरीट (कोरोना) में। कुछ प्रभामण्डल में अधिक हैं तो कुछ वर्णमण्डल में। लेकिन इन अङ्गों-प्रत्यङ्गों से निकलने वाला प्रकाश, इस बनावट के प्रभेद से भी कहीं बढ़ कर भिन्न है। यदि इन की रासायनिक बनावट एक-सी होती, तो केवल इस भेद के कारण भी प्रकाश का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता !

इस रासायनिक बनावट का ज्ञान मुख्यतया मेरे वायुमण्डल से ही सम्बद्ध है। इस वायुमण्डल का निचला भाग इतना घना है कि मेरे अभ्यन्तर में पैदा होने वाले प्रकाश का तुम्हारे वैज्ञानिक परिचय ही नहीं पा सकते। पर सम्भव है कि मेरे अभ्यन्तर की बनावट और वायुमण्डल में विद्यमान तत्त्वों में कोई फर्क ही न हो !

अब आओ, वर्णपट्ट विश्लेषण के एक और रोचक तथ्य से तुम्हारा परिचय कराऊं। जहां तप्त पदार्थ भिन्न-भिन्न रङ्गों का प्रकाश उत्पन्न करते हैं, वहां यदि उन पर सफेद प्रकाश पड़े तो वे उस में से इन्हीं रंगों के प्रकाश का शोषण भी कर लेंगे। यह तथ्य गैसों में अधिक स्पष्टता से प्रकट होता है।

प्रभामण्डल आदि में प्रकट होने वाला प्रकाश, जब मेरे वायुमण्डल में से गुज़रता है, तो उस में विद्यमान वायव, इस में से प्रकाश की कुछ किरणों को सोख लेते हैं। परिणामस्वरूप, मेरे वर्णपट्ट (स्पैक्ट्रम) में इन सोखी गई रेखाओं के स्थान पर, काली लकीरें दिखाई देंगी। इन 'शोषण-रेखाओं' (एब्ज़ार्पशन लाइन्ज़) का आविष्कार, मेरे वर्णपट्ट में खोज करने वाले एक जर्मन वैज्ञानिक फ्रान हॉफर ने किया था। अतः इन्हें फ्रान हॉफर रेखाएँ भी कहते हैं।

मेरे वायुमण्डल की जानकारी का काफी अधिक भाग, इन काली रेखाओं के अध्ययन से ही मिला। अकेले लोह तत्त्व की कोई ४०,००० रेखाएं मेरे वर्णपठ पर देखी गई हैं। इन के अतिरिक्त ऐसी सैकड़ों रेखाएँ अन्य तत्त्वों और धातुओं से भी सम्बद्ध हैं। कुछ वर्ष पूर्व स्वर्ण की भी क्षीण काली रेखाएँ देखी गई थीं।

अब यदि तुम एक अटपटा-सा प्रश्न पूछ बैठो—कि क्या मेरे कलेवर में ऐसे भी तत्त्व हैं जो धरती में नहीं पाए जाते—तो मैं दुविधा में पड़ जाऊंगा। मेरी इच्छा तो यही होगी कि मैं अपने बारे में कोई

अनोखापन अवश्य प्रकट करूं। पर मैं शुरू में ही सौगन्ध खा चुका हूं कि तुम्हारे सामने वे ही तथ्य रखूंगा, जो तुम्हारे वैज्ञानिकों के प्रयोग के दूध से धुल चुके होंगे। तुम्हारे इन वैज्ञानिकों ने, मेरे शरीर से ऐसी हज़ारों किरणें निकलती अवश्य देखी हैं, जिन का मिलान वे किसी पार्थिव पदार्थ से निकलने वाली किरणों से नहीं कर सके। एक बार ऐसी किरणों के बारे में निष्कर्ष निकाला गया कि उन्होंने मेरे शरीर में एक नये पदार्थ को खोज निकाला है। और, क्योंकि यह पदार्थ केवल मुझ में ही देखा गया था, अतएव उस का नाम भी रखा गया—हीलियम (हीलियो=सूर्य)। संस्कृत में मेरा एक नाम है हेलि—अतएव तुम इसे हेलिकम् भी कह सकते हो। इस वाक्य का मैंने प्रारंभ में ही ज़िक्र किया था।

बाद की खोज़ों में, तुम्हारे पूर्वजों को, धरती पर भी इस तत्त्व के निशान मिले—लेकिन मेरे शरीर में देखे जाने के कोई २५ वर्ष बाद।

इसी प्रकार, मेरे किरीट भाग में से एक भव्य-सा, हरे रंग का प्रकाश निकल कर, तुम्हारे ज्योतिर्विदों को वर्षों तक प्रभावित करता रहा। इस प्रकाश के भी उन्हें अपनी प्रयोगशाला में दर्शन कभी न हुए थे। इसलिए उन्होंने कल्पना की, कि मेरे किरीट में एक ऐसा पदार्थ है, जो धरती पर मिलने वाले ९२ तत्त्वों से भिन्न है। इस पदार्थ को उन्होने मेरे किरीट के नाम पर कोरोनियम का नाम दिया (कोरोना=किरीट)।

—निस्सन्देह कोरोनियम धरती पर मिलने वाले ९२ तत्त्वों से भिन्न था। लेकिन यह भिन्नता एक और ही प्रकार की थी। तुम्हें याद होगा परमाणुओं की बनावट का किस्सा जो मैं एक से अधिक बार तुम्हें सुना चुका हूँ। याद है न, प्रत्येक परमाणु के केन्द्र में एक नाभिक होता है और इसके गिर्द छोटे-छोटे ऋणानु (इलैक्ट्रान) कण चक्कर काटते रहते हैं। ये कण अधिक शक्ति पाकर, अधिक तीव्रता से कम्पन करते हैं। इसलिए, यदि किसी पदार्थ का तापमान बहुत बढ़ जाए तो इस कम्पन का वेग सीमा को फांद जाता है और इस अवस्था में कोई ऋणानु, पदार्थ के परमाणु से छिटक कर अलग हो जाता है। ऋणात्मक (नैगेटिव) विद्युत् वाले इस कण के अलग हो जाने का अर्थ है कि शेष परमाणु, धनात्मक (पाज़िटिव) विद्युत् स्वभाव का प्रतीत होगा—उसी प्रकार जैसे साधारण आर्थिक अवस्था के किसी वर्ग में से, दो-चार धन वाले आदमी चले जाएँ तो बाकी बचे समूह की आर्थिक दशा क्षीण हो जाएगी।

इसी प्रकार, अवशिष्ट परमाणु, अब सामान्य स्वभाव का न रहकर, विद्युन्मय हो जाता है। इस अवस्था में, यदि कोई अन्य विद्युत् स्वभाव का कण इस परमाणु के निकट हो तो परमाणु सरक कर या तो उसके निकट चला जाएगा, अथवा उससे दूर हट जाएगा। किसी दूसरे विद्युन्मय पदार्थ के निकट होने पर—अथवा किसी विद्युतीय क्षेत्र में होने पर—परमाणु में 'सरकने' की इस क्षमता के कारण, इसे याणु (या=जाना) कहते हैं।

तुम्हारी पृथ्वी के वायुमण्डल में कुछ याणु हैं अवश्य, पर वे ऐसे हैं, जिनमें से एक या दो ऋणाणु निकले होंगे। पर मेरे तो कलेवर में ऐसे-ऐसे याणु हैं, जो आठ-आठ, दस-दस ऋणाणुओं से वंचित होंगे। मेरे किरीट में लक्षित 'कोरोनियम' इसी भाव से पृथ्वी के तत्त्वों से भिन्न था—वह दिव्य हरा प्रकाश इसी प्रकार के ऋणाणु-वंचित याणुओं में पैदा होता है, जो तुम्हारी पृथ्वी में विद्यमान नहीं।

तुम्हारे वैज्ञानिकों की अब तक की खोजें मुझे केवल इतनी ही विलक्षणता दे पाई हैं—अभी मेरी किन्हीं किरणों को वे निश्चितता से, किसी नए पदार्थ से जोड़ नहीं पाए।

और इस प्रकार की अवारा किरणें, जिनका सम्बन्ध वैज्ञानिक किसी भी पदार्थ से जोड़ नहीं पाए, अब भी हज़ारों की संख्या में हैं। जानते हो क्यों?

वास्तव में मेरे शरीर में पदार्थ जिस ऊँचे तापमान पर विद्यमान हैं, उसको अपनी प्रयोगशाला में पैदा कर सकना, तुम्हारे वैज्ञानिकों के लिए चिरकाल तक असम्भव रहा। और अब भी अत्यन्त कठिन अवश्य है—कम-से-कम इन ऊँचे तापमानों पर पदार्थों से निकलने वाले प्रकाश की जांच कर पाना, नितान्त टेढ़ी खीर है। इसीलिए मेरे शरीर से निकलने वाली हज़ारों किरणों की वह अभी पहिचान नहीं कर पाया। हां, वर्षों के श्रम और चिन्तन से वह बिना प्रयोग किए भी, अब कुछ-कुछ जानने लगा है कि किसी पदार्थ से विशेष अवस्था में कैसे प्रकाश की किरणें

निकलनी चाहिएँ—सभी प्रकार के पदार्थों से या उनसे सभी अवस्थाओं में निकलने वाले प्रकाश का तो वह अनुमान नहीं लगा सकता, तो भी ऐसी गणनाओं के आधार पर वह अनेक प्रकाश-किरणों का विशेष पदार्थों से सम्बन्ध जोड़ चुका है।

मैंने ऊपर स्वीकार किया था कि तुम्हारी धरती के लगभग ९२ तत्त्वों की तुलना में मेरे शरीर में केवल ६६ तत्त्व हैं। पर कौन कह सकता है कि वास्तव में मेरे शरीर में भी, तत्त्वों की संख्या ९२ के ही करीब नहीं!

तुम पूछोगे इस सन्देह का कारण? तो सुनो।

प्रथम तो, शेष २५ तत्त्वों का अनुपात धरती की बनावट में भी बहुत कम है। अतः सवा नौ करोड़ मील की दूरी से मेरे कलेवर में उनके होने का प्रमाण न मिल पाना, कोई अनहोनी बात नहीं। दूसरे, मेरे शरीर से निकलने वाली सभी किरणें, तुम्हारी धरती पर पहुँच भी नहीं पातीं। तुम्हारा वायुमण्डल इनके काफी बड़े भाग को सोख लेता है। वैज्ञानिक साहित्य में, तुम्हारे वायुमण्डल को इस सम्बन्ध में, पृथ्वी और मेरे बीच में एक दीवार की संज्ञा दी जाती है। इस दीवार में दो खिड़कियां हैं। बस उन्हीं में से मेरे प्रकाश की कुछ किरणों के पुंज गुजर पाते हैं।

एक दृष्टि से मेरी इन किरणों का शोषण तुम्हारे लिए हितकर ही है। क्योंकि यदि मेरी सभी किरणें—विशेष तौर पर सारी पराकाशनी किरणें—धरती पर अवतरण कर पातीं, तो तुम्हारा शरीर जलन और फोफलों से भर जाता—शायद मनुष्य धरती पर जीवित ही न रह पाता।

भले ही तुम्हारे वैज्ञानिक इस तथ्य से अवगत थे, तो भी वे धरती के वायुमण्डल की इस 'दीवार' को भेद कर मेरी किरणों के उस रूप से पूरा परिचय पाना चाहते थे, जो मूलतः मेरे कलेवर से निकलता है। तुम्हें राह चलते बतला दूँ कि वायुमंडल के प्रभाव को कम करने के लिए, ज्योतिर्विद् पहले से ही अपनी वेधशालाएँ ऊँची पहाड़ियों पर बनाते हैं। क्योंकि, न केवल तुम्हारा वायुमण्डल मेरी किरणों के एक बहुत बड़े भाग को सोख लेता है, प्रत्युत मेरे दृश्य रूप में, अथवा फोटो में भी कुछ धुंधलापन जोड़ देता है।

ऊँचाई पर वेधशालाएँ बनाने के परिणामस्वरूप मेरे चित्र का धुन्धलापन तो काफी कम हो गया, लेकिन शोषित हो जाने वाली किरणों का स्वरूप प्रकट न हो सका। इसके लिए तुम्हारे वैज्ञानिकों ने ऊपरी वायु में, यन्त्रों से लैस गुब्बारे भेजने शुरू किए। निकटातीत में १२" व्यास के दूरदर्शकों से लैस गुब्बारों की सहायता से, मेरे धरातल के बड़े स्पष्ट चित्र लिए गए हैं। तो भी शोषित होने वाली सभी किरणों का परिचय पाने में वे भी सफल न हो सके।

शोषित होने वाले प्रकाशपुञ्ज में सबसे अधिक महत्त्व का भाग है, मेरी पराकाशनी किरणें। वर्षों पूर्व यह अनुमान लगा लिया गया था कि इन किरणों का शोषण, तुम्हारी धरती के ऊपरी वायुमण्डल में विद्यमान ओज़ोन नामक वायव की परतों मे होता है। इन परतों में ओज़ोन गैस की मात्रा तो अधिक नहीं, लेकिन इस गैस में ऐसी किरणों को शोषित करने की विलक्षण क्षमता है। ये परते लगभग ४० किलोमीटर अथवा २५ मील की ऊँचाई पर अवस्थित हैं। जब तुम्हारे वैज्ञानिकों ने ओज़ोन के प्रभाव से मुक्त, मेरी किरणों के नाप-तोल के लिए, गुब्बारे भेजे तो वे विचारे अधिक-से-अधिक साढ़े इक्कीस मील की ऊँचाई तक ही जा पाए!

इस प्रयास में भी असफल होकर तुम्हारे वैज्ञानिकों ने साहस न छोड़ा और पिछले महायुद्ध के बाद अपनी जिज्ञासा-पूर्ति के लिए, ओज़ोन की परतों की ओर, समुचित यन्त्रों से लैस रॉकेट छोड़ा। पहले ही प्रयोग में ये रॉकेट १०० किलोमीटर अथवा लगभग ६२ मील की ऊँचाई तक जा पाए—अर्थात् ओज़ोन की परतों को चीर कर वे मेरी किरणों के नग्नरूप का परिचय पाने में सफल हो गए।

रॉकेटों के इन प्रयोगों द्वारा मेरे वर्णमण्डल में पैदा होने वाले प्रकाश का पूरा परिचय पहली ही बार मिला। लेकिन नए प्रकाश के परिचय के बाद भी मेरे शरीर में किसी नए तत्त्व के होने की सूचना न मिल सकी केवल पहले से जाने गए तत्त्वों में उपजी कुछ नई रेखाएँ ही देखने को मिलीं।

तो वत्स, अपने पितामह सूर्य के शरीर से निकलने वाली दृश्य प्रकाश, अधोलाल और पराकाशनी किरणों की तो तुमने कहानी सुन ली। अब सुनो ये रेडियो-तरंगें क्या सन्देश देती हैं? (क्रमशः)

बाल-भारती

सीखो

[श्री बालकृष्ण वसिष्ठ]

सुख में तो सब पलते ही हैं,
दुःखों में पलना तुम सीखो।
बिखेरे मुख पर स्मित की किरणें,
दुःख को दुःख से मलना सीखो।

नहीं मार्ग वह वीरों का है,
जिस पर कंटक-शूल नहीं हैं।
साहस है यदि गति में अपनी,
समझो तब वे शूल नहीं हैं।

सम पर चलती दुनिया देखी,
विषम पर चलना तुम सीखो।
चाहते हो यदि समता लाना,
विषमता से तुम लड़ना सीखो।

सम विषम में अन्तर शब्दों का है,
उससे वीर भला कब डरते हैं।
पड़ जाएँ उनके चरण जहाँ,
उस पर आने वाले चलते हैं।

मत जलो निराशा की अग्नि में,
दीपक बन कर जलना सीखो।
निर्माण जहां हो मिटने से,
उस ढंग से मिटना तुम सीखो।

यों मिटना अन्त नहीं जीवन का,
समझो इसे तुम शाश्वत-गौरव।
औरों के हेतु श्वास लिए जो,
देते हैं फैला वे जग में सौरभ॥

ईमानदारी का पुरस्कार

[श्रीमती स्वतन्त्रबाला शर्मा]

श्याम बाबू समस्त वैभवों से सम्पन्न थे, पर, फिर भी हृदय की पीडा का हरण करने वाली दो नन्हीं कोमल बाहों के आलिंगन का अभाव उन्हें बहुत खटकता था। दिन-भर का काम समाप्त कर जब वे थके-हारे शाम को घर लौटते तो मौन दीवारों की उदासी उनके अन्दर में टीस उत्पन्न करती। एक ठण्डी आह भर कर वे चुप रह जाते।

श्याम बाबू का यह नियम-सा बन गया था कि भोजनोपरान्त टहलने के लिए घर से निकल पड़ते। रास्ते में कहीं कोई कुतिया अपने नन्हे-से पिल्ले को दूध पिलाती हुई दिखाई देती तो वे ठिठक जाते, किसी गाय के अपने बछड़े के मस्तक को जीभ से दुलारते देख उनकी आंखें सजल हो जातीं और वे मन-ही-मन सोचते, काश! उनके भी एक नन्हा सुकुमार बालक होता तो उसे अङ्क में भर कर वे संसार की किसी भी वस्तु की आकांक्षा न करते, आंगन में उसकी किलकारियों की गूंज सुन कर आत्म-विभोर हो उठते।

अपने नियमानुसार वे एक सांझ घूमने जा रहे थे कि एक छुटा बच्चा तेज़ी से सड़क पार करता हुआ उनसे टकरा गया, और सम्भलने से पूर्व मुंह के बल गिर पड़ा। चोट की पीडा से अधिक सहम जाने के कारण वह रोने लगा। श्याम बाबू ने उसे उठा लिया। उसकी सहमी-सहमी-सी आंखों को देख कर उस पर उनका प्यार उमड़ पड़ा और वे उसे पुचकारते हुए

पूछने लगे—'तुम्हारा क्या नाम है बच्चे ?' 'रामकिशन', संक्षेप-सा उत्तर दिया उसने। अपनी जेब में से चवन्नी निकाल कर उसे देते हुए वे बोले—'लो, मिठाई लेकर खा लेनी।' बच्चे ने एक दृष्टि चवन्नी पर डाल कर उनकी ओर देखा और कहा—'मुझे पैसे नहीं चाहिएँ।' आश्चर्यचकित होकर श्याम बाबू ने पूछा—'क्यों ?' भोलेपन से उसने उत्तर दिया—'मेरी अम्मा कहती है कि किसी से भी पैसे नहीं लेने चाहिएँ।' श्याम बाबू की आश्चर्य-मिश्रित उत्सुकता बढ़ती गयी। उन्होंने फिर पूछा—'तुम्हारी अम्मा क्या करती है ?' 'मेरी अम्मा कपड़े की मिल में काम करने जाती है।' 'और तुम्हारे बापू ?' 'बापू तो भगवान् के घर चले गए हैं।' उसके भोलेपन को देख श्याम बाबू के अन्तर में वात्सल्य की लहरें उठने लगीं। प्यार से बोले—"अच्छा रामकिशन, अब तुम घर जाओ। कल शाम को इस गली के मोड़ पर जो पीली कोठी दिखाई देती है न, वहां जरूर आना।" बालक प्रसन्न होकर चला गया। श्याम बाबू जब घर लौटे तो उनका मन उल्लास से पूर्ण हो रहा था।

अगले दिन सांझ के समय वे अपनी लॉन में बैठे रामकिशन की प्रतीक्षा करने लगे। जब झुटपुटा-सा होने लगा और अंधियारा गहराने लगा तो वे निराश मन से उठे और घर के भीतर जाने लगे। तभी मुख्य द्वार पर उन्हें एक बाल आकृति दिखाई दी। वे लपक कर द्वार की ओर बढ़े और यह देखकर कि रामकिशन अपने वायदे के अनुसार अपनी मां के साथ आया है, वे प्रसन्न हुए। श्याम बाबू ने बच्चे को दुलारा और उसकी भरपूर प्रशंसा की। उन्होंने उसकी मां को इस बात के लिए राजी कर लिया कि रामकिशन उनके यहां काम करेगा और उस दिन से रामकिशन श्याम बाबू के घर का एक सदस्य बन कर रहने लगा।

सन्तान का जो अभाव श्याम बाबू को हर घड़ी खटकता रहता था, वह रामकिशन के आ जाने पर पूरा हो गया। उनके मन में संचित स्नेह का अपार स्रोत विभिन्न रूपों में फूट-फूट कर बहने लगा। वे उसके लिए अच्छे-अच्छे कपड़े लाते, उसे अच्छा भोजन देते और रोज शाम को कभी फल, कभी मिठाई और कभी कोई खिलौना लाकर देते। रामकिशन भी तन-मन से उनकी सेवा में रत रहता और उन्हें सदा प्रसन्न रखने की चेष्टा करता। समय के बीतने के साथ-साथ उनका उस पर विश्वास जमता गया। कभी वे उसकी नीयत परखने के उद्देश्य से थोड़ी-बहुत रेजगारी मेज पर छोड़ जाते, पर रामकिशन उसे सहेज कर रख देता। रेजगारी के बाद नम्बर आया नोटों का। श्याम बाबू जान-बूझकर दो-चार रुपए के नोट कभी मेज पर कभी गुसलखाने में छोड़ जाते, पर वे नोट भी इधर-से-उधर न हुए। इसके बाद दो-चार बार वे अपना बटुआ घर पर भूल गए, पर उन्हें कभी धोखा नहीं हुआ। बटुए के बाद उन्होंने तिजोरी की चाबी घर पर छोड़नी आरंभ की, पर क्या मजाल कि एक भी पैसा घट जाए। उसकी ईमानदारी और नेकनियती पर श्याम बाबू का विश्वास अटल हो गया। उसकी प्रखर बुद्धि को परख कर उन्होंने यह उचित समझा कि उसे अपने कारोबार में लगा दिया जाए। बहुत कम समय में ही रामकिशन दुकान का कारोबार सम्हालने लगा। वह परिश्रम और ईमानदारी से हर काम करता। उस होनहार बालक के प्रति उनकी ममता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गयी। रामकिशन भी उनसे निश्छल स्नेह करता और उन्हें यथोचित सम्मान प्रदान करता। सन्तान का अभाव इस ईमानदार बालक ने पूरा कर दिया। उनको यह विश्वास हो गया कि उनकी अपनी सन्तान भी सम्भवतः उनसे इतना प्यार न करती जितना रामकिशन करता था। बिना किसी से सलाह लिए एक दिन उन्होंने उसे गोद ले लिया और अपनी समस्त चल-अचल सम्पत्ति का उसे उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। ●

कुसंग का फल

[श्रीमती विमला श्रीवास्तव]

एक राजा के शयन-कक्ष में
बिछी हुई शय्या पर,
मन्थर गति से चलने वाली
जू रहती थी छिप कर।

एक समय की बात,
अग्निमुख नामक खटमल भाई,
आए उस की मेहमानी में
साथ मुसीबत आई।

पहले तो जूँ ने खटमल का
स्वागत और सत्कार किया,
कुशल-क्षेम पूछी अतिथि की,
कोमल सद्-व्यवहार किया।

किंतु सुना जब वह राजा का
रक्तपान करने आया है,
कहा, "न ऐसा करना, क्या तू
आज यहीं मरने आया है?"

खटमल था चालाक बहुत
हंस बोला, "अरे भवानी,
तिरस्कार कर मुझ अतिथि का
करो नहीं नादानी।

जीवन में मैं ने अब तक
कटु-तिक्त अम्ल रस पान किया
आज खून मैं मीठा पीऊं,
यदि कहदो, 'हां मान लिया'।"

सीधी.सादी जूं बेचारी
मान गई उस की बातें
बोली, "पर जब सो जाएं सब
तभी दिखाना घातें।"

बैठ गए खटमल भाई छिप
चुपके से चादर में
राजा जी जब आ कर लेटे
लालच आया मन में।

राजा के सोने से पहले
उसे नहीं जब सबर हुआ,
जूं की बातें भूल खून को
बढ़ कर पीना शुरू किया।

जिस का जो स्वभाव होता है
कभी नहीं मिट सकता,
कितना दो उपदेश अग्नि
निज जलन नहीं तज सकता।

दांत लगे पैने राजा को,
उस ने दीपक जलवाया
बुलवा कर नौकर को उस ने
सारा विस्तर ढुंढवाया।

पर खटमल छिप गया दौड़ कर
किसी एक कोने में
मारी गई बिचारी जूं वह
चुप बैठी थी कोने में।

देखा बच्चो, फल कुसंग का
सदा बुरा है होता,
जो जैसा करता वैसा ही
अन्त सदा है होता।

—(पंचतंत्र से)

मां पैसा बस एक मुझे दो

[श्री गणेशकुमार बड़गैयाँ 'पर्जन्य']

मुन्ना बोला—बड़े प्यार से,
मेरी अम्मा, बात सुनो तो।
आज बहुत दिन में मांगा है,
मां पैसा बस एक मुझे दो॥

मां बोली, क्यों मांगे पैसा?
मेरे मुन्ना राजा भैया॥
तुम को काम कौन है ऐसा—
पैसे से बतलाओ भैया?

बोला मुन्ना—बैठा करता,
एक चाट वाला नित ही।
पैसा एक-एक ले कर वह,
फुलके देता है नित ही॥

मैं भी फुलके खाऊंगा
मां अति सुख पा जाऊंगा॥
कहना मानूंगा फिर तेरा
कभी न दुःख पहुँचाऊंगा॥

मां बोली—सुन लल्ला मेरे,
जो बालक फुलके खाते हैं।
सुख तो कभी न मिलता उनको
बस रोग ही घेरे रहते हैं॥

पेट-दर्द नित उनका करता,
पड़े कराहा करते।
बीमारी का दुःख भोगते,
औ' न सराहे जाते॥

तुम ले सकते बड़ी खुशी से,
एक के बदले पैसे दो॥
किन्तु नहीं खाओगे फुलके,
पहले इतनी बात कहो॥

बोला मुन्ना—समझ गया मैं,
न फुलकों को खाऊंगा।
गोली टॉफी बिस्कुट लूंगा,
उन को गप कर जाऊंगा॥

खून बढ़ेगा इससे मेरा,
ताकतवर बन जाऊंगा।
शत्रु-सैन्य में जो भी आए,
मार खदेड़ भगाऊंगा॥

बेटा : पर मां पैसा एक मुझे दो।
बस मां, पैसा एक मुझे दो॥
मां : खुशी से लेलो, खुशी से लेलो
एक के बदले पैसे दो॥

—०—

भारत मेरा विकसित कर दे

[श्री पाराशर]

जागृत कर दे उद्यत कर दे
निर्भय नायक कर दे,
भारत मेरा विकसित कर दे।

वीर बना सैनिक शक्ति दे
शस्त्रों से भर दे
भारत मेरा विकसित कर दे।

जग के बन्धन तोड़ प्रभु तू
एक हमें कर दे,
भारत मेरा विकसित कर दे।

मेरा देश शत्रु से घिरता
इसको विजयी कर दे
भारत मेरा विकसित कर दे॥

शक्ति की जय

[श्री हरिचन्द पाराशर]

बहुत प्राचीन-काल की बात है कि इस धरातल पर देवताओं और दानवों का संग्राम हुआ था। गन्धर्व, यक्ष और किन्नर लोग देवताओं के पक्ष में थे। असुर, दैत्य और राक्षस दानवों के पक्ष में थे। देवता और दानव आदि ये भिन्न-भिन्न जातियां थीं।

देवताओं के महाराजा का नाम इन्द्र था और दानवों के महाराजा का नाम महिषासुर था।

महिषासुर ने कठोर साधना की, घोर तपस्या की, बहुत परिश्रम किया। उस ने दानव-जाति का दृढ सङ्गठन किया, सभी दैत्यों को युद्ध-विद्या में प्रवीण बनाया, तरह-तरह के अस्त्रों-शस्त्रों का आविष्कार किया। उस ने धीरे-धीरे अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। होते-होते बहुत सारी भूमि पर उस ने अधिकार जमा लिया और देवताओं के राजा इन्द्र को सन्देश भेजा कि मेरी अधीनता स्वीकार कर लो नहीं तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

यह सन्देश सुन कर देवताओं के राजा बहुत चिंतित हुए। उन्हों ने देवताओं के गुरु बृहस्पति के साथ परामर्श किया। बृहस्पति ने शिक्षा देते हुए कहा कि जिस तरह संन्यासियों का भूषण त्याग है, ब्राह्मणों का आभूषण सन्तोष है, उसी तरह राजाओं का आभूषण उद्यम है। होनहार तो हो कर रहती है, परन्तु फिर भी व्यक्ति को उद्यम करते रहना चाहिए। राजा के लिए तो परमावश्यक है कि वह सदा उद्यमशील रहे, कभी आलसी न बने। बलवान् राजा का यह भी कर्त्तव्य है कि वह छोटे-से-छोटे शत्रु को भी तुच्छ न समझे, उस से सदा सावधान रहे। वह अपने गुप्तचर भेज कर अपने शत्रु की शक्ति और दुर्बलता का पता लगाता रहे। राजा का धर्म है कि वह कार्य आरम्भ करने से पहले कार्य करने का ढङ्ग निश्चित कर ले और उस ढङ्ग के अनुसार ही कार्य करे। वह सदा इस बात को याद रखे कि निरुद्यम हो जाने पर राज्य, सुख और यश का मिलना असम्भव है। बृहस्पति की इस शिक्षा के आधार पर देवताओं के राजा इन्द्र ने युद्ध की तैयारियां आरम्भ कर दीं।

उधर महिषासुर ने दानवों के गुरु शुक्राचार्य के साथ परामर्श किया। शुक्राचार्य ने शिक्षा दी कि सभी दैत्यों को युद्ध के लिए एकत्र करो और उन को अपने साथ रखो। महिषासुर ने अपने द्रुतगामी दूत भेजे कि पाताल अथवा पर्वत पर जहां कहीं कोई दैत्य है, उसे बुला लाओ। इस तरह महिषासुर ने दानवों की एक विराट् सभा की। उस सभा में महिषासुर ने प्रभावशाली भाषण करते हुए कहा कि देवताओं के साथ संग्राम करने के लिए सब दानवों को इकट्ठे हो जाना चाहिए। देवताओं को हरा कर नन्दनवन में हमारा अधिकार हो जाएगा। अमृत पी कर हम लोग आनन्द का उपभोग करेंगे। गन्धर्व नाच-गा कर हमारे चित्त को प्रसन्न करेंगे। मेनका, रम्भा, उर्वशी और तिलोत्तमा आदि अप्सराएं हमारा मन बहलाया करेंगी। इन प्रलोभनों से प्रेरित हो कर संग्राम में अपनी जान की बाज़ी लगाने के लिए सब दानव तैयार हो गए। महिषासुर के पास दानवों की अनगिनत सेना जमा हो गई।

देवताओं और दानवों का भयङ्कर संग्राम शुरु हो गया। यह संग्राम कई वर्ष चलता रहा। देवताओं ने बहुत पराक्रम दिखाया। उन्हों ने महिषासुर के कई सेनानियों को घायल कर दिया, चिक्षुर और ताम्र जैसे शूरवीर दानवों को भी मूर्छित कर दिया। यह देख कर महिषासुर को बहुत क्रोध आया। वह स्वयं रणक्षेत्र में आया उसे देख कर दानवों का साहस बढ़ा। सब दानव फिर युद्ध में जुट गए। दानवों ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया। महिषासुर ने कितने ही नए-नए अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया

परिणाम यह हुआ कि दानवों की जीत हुई, देवताओं की हार हो गई। स्वर्ग पर दानवों का अधिकार हो गया।

हार हो जाने के बाद देवताओं ने फिर एक सभा की। उन्होंने निर्णय किया कि विष्णु के पास जा कर कोई युक्ति पूछी जाए। प्रतिनिधि देवता मिल कर विष्णु के पास गए। विष्णु ने उन को शिक्षा दी कि सभी देवता अपनी व्यष्टि को समष्टि में ढालें, अर्थात् अपने निजी स्वार्थ को छोड़ कर अपनी जाति के हित में सोचें। इससे एक समष्टि-मन अर्थात् सामूहिक भावना का विकास होगा। उन्होंने कहा कि सभी देवता अपने-अपने सभी साधनों को एकत्र करें। वे अपने-अपने दिव्य अस्त्रों को एक स्थान पर जमा करें। अस्त्रों के सामूहिक तेज से 'सर्वग्रासिनी शक्ति' का जन्म होगा। यह शक्ति ही महिषासुर का अन्त करेगी।

विष्णु की शिक्षा के अनुकूल ही सब देवताओं ने अपनी-अपनी निज शक्तियों को एक स्थान पर इकट्ठा किया, और इस तरह एक महाशक्ति का जन्म हुआ। देवताओं ने अपने संकुचित निजी स्वार्थों को त्याग दिया और इसी 'महाशक्ति' को अपना अगुआ बनाया तथा दानवों को युद्ध के लिए ललकारा। इस महाशक्ति की अपार कृपा से इस बार संग्राम में देवताओं की जीत हुई। दानवों को स्वर्ग-भूमि से बाहर निकाल दिया।

तब महाशक्ति ने देवताओं को उपदेश दिया कि हे देवताओ, आलस्य छोड़ो, अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उद्यमशील रहो। जब कभी फिर ज़रूरत पड़े, मेरा आह्वान कर लेना। इतना कह कर महाशक्ति अन्तर्धान हो गई।

नव-निर्माण

[श्री मदनमोहन लाल शर्मा]

आज है निर्माण-काल,
उठ कर निर्माण कर दो।
अन्धकार में हैं ज्ञान-ग्रन्थ,
दूर सब अज्ञान कर दो।
स्वयं का बलिदान देकर,
संसार का कल्याण कर दो।
कह रहा है भारत-बाल,
आज है निर्माण-काल॥

सुपथ जो तुम्हारे सामने हैं,
वे भला क्यों छूट जाएं।
कुपथ भी तुम्हारे सामने हैं,
आत्मा पर विश्वास कर—
नव-यज्ञ का विधान कर दो
कह रहा है भारत-बाल,
आज है निर्माण-काल॥

सामने है निर्माण-काल,
छोड़ दो कल की बात।
समाप्त हो अन्धकार-रात,
ज्ञान-सूर्य हो प्रकाश।
ऐसा कुछ विचार कर लो,
कह रहा है भारत-बाल।
सामने है निर्माण-काल॥

पवित्र पावन प्रेम करके,
शांतिमय देश कर दो।
विष-लता को दूर करके,
भारत का कल्याण कर दो।
कह रहा है 'मोहनलाल',
सामने है निर्माण-काल।
छोड़ दो कल की बात,
पूरा मेरा अरमान कर दो।

हमारा अपना है कश्मीर

[श्री 'मयंक']

हमारा अपना है कश्मीर,
यहाँ की शोभा की क्या बात।
यहाँ मन हरने वाले दृश्य,
लुटाते रहते सुख दिन-रात।

यहाँ फल देने वाले वृक्ष,
मधुर फल का देते हैं दान।
यहाँ के सीधे-सादे लोग,
सरल-सुन्दर जिनकी मुस्कान।

यहाँ की धरती ललित-ललाम,
यहाँ का अति प्यारा आकाश।
यहाँ के मनहर सूरज-चाँद,
दिया करते हैं दिव्य-प्रकाश।

यहाँ 'श्रीनगर' शहर रमणीय,
जहाँ की 'झेलम' नदी बहार।
आह, मत पूछो उसकी शान,
'शिकारों' की उसमें भरमार।

'शिकारे' हैं वे छोटी नाव—
कि जिनसे शरमाती है मीन।
फिसलती सरिता पर दिन-रात
छटा छिटकातीं नित्य नवीन।

यहाँ की ऐसी है जलवायु—
प्राण में भरती जो नव-प्राण।
कि मुरझाये—उदास जो फूल,
उन्हें भी देती है मुस्कान।

विश्व के भ्रमणशील जन नित्य
यहाँ पर आते हैं प्रति वर्ष।
निरख कर प्रकृति-छटा अनमोल
मुदित होते, पाते हैं हर्ष।

सत्य ही—है 'भारत का मुकुट'
पर्वतों का यह शिशु-कश्मीर।
बगीचों—बागों की यह भूमि,
जहाँ अमृत-रस-सना समीर।

हमारा प्यारा यह 'कश्मीर',
'हमारे भारत' का है अंग।
लगा कर रक्खा इसको गले,
सदा से हमने अपने संग।

—o—

निरन्तर चलता जा जवान

गति न हो अवरुद्ध हमारी,
निरन्तर चलता जा जवान।
बढ़ने में है उन्नति हमारी,
मंजिल सिद्ध कर होगा मान॥

सीखो प्रवाहमयी तटिनी से,
जीवन चलने का है नाम।
चलता रहे जो शाश्वत,
सफलता उसकी है अभिराम॥

जिस देश में गंगा बहती है

[श्री महाराज कृष्णलाल]

जहां से जाह्नवी बहती है,
वह धरा पुनीत कहलाती है।
उस देश का पानी अमृत है,
जिस देश में गंगा बहती है॥

गंगा जब कलरव करती है,
मन को तब वह भाती है।
यह हिंद-वसुन्धरा हमारी है,
जिसपर वह कलोलें करती है॥

उछले तो आनन्द से भरती है,
फसलें हरी उपजाती है।
उस देश की उन्नति जारी है,
जिस देश में गंगा बहती है॥

—o—

अजेय आत्मा

[श्री विजय निर्बाध]

अन्धकूप की तरह अन्धेरी जिस रजनी ने मुझको
ढक रखा है एक छोर से अन्य छोर तक भाई !
सभी देवताओं को अपने जैसे कुछ भी हैं वे
धन्यवाद देता हूं मैं ने अजेय आत्मा पाई !!
पड़ा परिस्थिति के पंजे में लेकिन फिर भी किंचित्
झिझका मैं न ज़ोर-ज़ोर से मैं ने शोर मचाया !
अवसर के सोटे की चोटें खा-खा कर भी मैं ने
भले रक्त से शीश रंगा हो लेकिन नहीं झुकाया !!
अश्रु और आक्रोश भाव के इस प्रदेश से आगे
अन्धकार की क्रूर कंपकंपी मात्र नज़र आएगी !
फिर भी तो वर्षों की धमकी मुझे सत्य कहता हूं
निर्भय पाती रही आज तक निर्भय ही पाएगी !!
क्या होता है लाख संकुचित हुआ करे दर्वाजा
और दण्ड का भी हो चाहे लम्बा-चौड़ा खाता !
स्वयं आत्मा का मैं अपनी करता मार्ग प्रशस्त
और स्वयं ही तो हूं जग में अपना भाग्य-विधाता !!

—o—

सन्देश

[श्री हरीश दीक्षित]

यह मातृ-भू हमारी,
यह पितृ-भू हमारी,
यह धर्म-भू, कर्म-वीर-भू महान्,
हिन्द के ओ नौजवान।
लो ! माँ का चीर खिंच रहा,
है कृष्ण फिर भी चुप रहा,
लो उठा गाण्डीव और पाञ्चजन्य को बजा,
हिन्द के ओ नौजवान।
यह देश की आवाज है,
वक्त की पुकार है,
माँ तुम्हें बुला रही, जागो ओ जवान,
हिन्द के ओ नौजवान।
हिन्द की हो शान तुम,
माँ का स्वाभिमान तुम,
युद्ध में हो वीर धीर साहसी महान्,
हिन्द के ओ नौजवान।
यह राणा की ललकार है,
शिवा की हुँकार है,
गुरुओं का आशीर्वाद विश्व में महान्,
हिन्द के ओ नौजवान।
बोस के स्वप्न हो तुम,
गान्धी के सत्य हो तुम,
नेहरु के शब्द की गूंजती हो तान,
हिन्द के ओ नौजवान।
प्राण तव अमर हैं,
कीर्ति तव अजर है,
कर दो अब देह को इस देश-हित बलिदान,
हिन्द के ओ नौजवानो।

एकलिपि विस्तार



कलमु कुंचे कदलाडेनु (तेलुगु)

[श्री कालोजी नारायणराव]

तंजावूरी राजुल
तरहा लालस मानि
समयोचित वीरावे
शमुनु बूनि पूनिपग
कलमु कुंचे कदलाडेनु
गळमु तोडुगा पाडेनु ॥कलमु॥

सुख लालस कनिपेंचिन
'नखरा' लनु मानि जनमु
जाति रक्षणार्थमु तगु
रीतिगानु सायपडग ॥कलमु॥

कोंडचाळ्ळ मंचुमीद
कोंकर्लु पोवु चलिलो
कंडबलमुनकु तोडुग
गुंडे बलमु चेकूर्चग ॥कलमु॥

नेलकाळ्लु नेरयदलि
निंगिमुट्ट तल निगुड्चि
अस्ताद्रिनि उदयाद्रिनि
अंटग बारलु साचग ॥कलमु॥

अन्नलमनि आप्तुलमनि
तिलग सरिहद्दु दाटु
आततायि समूहाल
नापि हडलगोट्टुटकनि ॥कलमु॥

आन्ध्रावळि अंडदंड
आसामुकु अंदिंपग
नय्यर्लकु तोड्तोडुग
नायर्लनु निलिपिवुंच ॥कलमु॥

कलम और कूँची चल पड़ीं (हिन्दी)

[प्रा. भीमसेन 'निर्मल']

तज रीतिक,लीन रीतियों को,
तज विलास की प्रवृत्तियों को,
समय के अनुकूल, वीरावेश से
उत्तेजना भरने जन-जन में
चल पड़ीं कलम और कूँची
सुर में सुर मिलाया गीत ने भी ॥

सुख और विलास-भोग के
नखरों को तज कर,
जन सजग हो राष्ट्र-सेवा में
तन-मन वारे राष्ट्र-सेवा में ॥

ऊँची तराइयों में हिम के
ठिठुरा देने वाले शीत में,
शरीर के बल को साथ देने
मानसिक बल को संजोने ॥

ज़मीन से टिका कर पैर
सिर उठा आसमान तक
हाथ पसारने अपने
अस्तगिरि से उदयगिरि तक ॥

भाई बन-बन कर यार-दोस्त,
सरहदों को पार करने वाले
आततायी समूहों को
रोक, हहरा देने ॥

आन्ध्रावलि अपना आसरा
असाम को प्रदान करने,
'नैयर' को साथ देने
'नायरों' को खड़ा करने ॥

बदरीनाथुनि रक्षकु
मधुरनु कंचिनि कदुपग
काश्मीरमुनकु जंटग
कन्यकुमारिनि निलुपग ॥कलमु॥

बिहारील रणभेरिग
महाराष्ट्रमु हुंकरिंयग
गुरुगोविंदुनि गर्जन
घूर्जरुलनु कदलिंपग ॥कलमु॥

कर्नाटक चामुंडिये
कलकत्ता काळि काग
कैलासमु पिलुपुनु विनि
काकति चिंदुलु त्रोक्कग ॥कलमु॥

बाराहुटि रक्षणकै
भद्रकाळि तलयेत्तग
रेंटचिंतमटलेगसि
मिंटि मंचु मंडिंपग ॥कलमु॥

उत्कळीय उत्साहमु
उत्तराग्नि प्रोत्साहिंप
एडुकोंडलेलुगेत्तुचु
हिमवंतुनि पुरिकोल्पग ॥कलमु॥

गंगोत्री पावित्र्यमु
वंगीयुलु कापाडग
ब्रह्मपुत्र रक्षणकै
पंजाबी परुगुलेत्त ॥कलमु॥

श्रीनगरमु चेयूतकु
श्रीरंगमु एगिरि दुमुक
श्रीशैलमु गंतुलिडुचु
शीतनगमु नादुकोनग ॥कलमु॥

बोमडिला परिसराल
बोब्बिलि पेडबोब्बलिडग
लद्दाखुनु चेरिकाय
पुदुच्चेरि कदंत्रोक्क ॥कलमु॥

बदरीनाथ की रक्षा में
'मदुरा' और 'कंची' को जगाने,
कश्मीर के साथ, कतार में
'कन्याकुमारी' को खड़ा करने ॥

बिहारियों की रणभेरी से
महाराष्ट्र गरज उठे,
गुरुगोविंद की हुंकार
गुर्जरों को जाग्रत करे ॥

कर्नाटक चामुंडी ही
बने कलकत्ता की काली,
सुन कैलास की पुकार
'काकती' ताँडव करे ॥

बाराहुती की रक्षा के लिए
'भद्रकाली' सिर उठाए,
'रेंटचिंतला' की लपटें
हिमालय की बरफ़ पिघला दें ॥

उत्कल का उत्साह
उत्तरी जन को प्रोत्साहित करे,
'सप्तनगाधिराज'[1] ललकार भर
हिमवान को उकसाए ॥

गंगोत्री की पवित्रता को
बचाने बंगवासी,
ब्रह्मपुत्र की रक्षा के लिए
पंजाबी दौड़ पड़े ॥

श्रीनगर को सहारा देने
श्रीरंगम झपट पड़े,
श्रीशैल कूद उठे
शीतनग को सहारा देने ॥

बोमडीला के आसपास
'बोब्बिलि'[2] गरज उठे
लद्दाख की रक्षा को
'पुदुच्चेरी'[3] क़दम उठाए ॥

---

१. श्री तिरुपति के बाला जी। २. आन्ध्र का एक छोटा देशी राज्य, जो स्वतन्त्रता के समर में न्योछावर हो गया। ३. पांडिचेरी।

पुस्तक परिचय



भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा—लेखक—पं० बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक—बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना—पृष्ठ ५२३—मूल्य—१०'५० न. पै.।

मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य की सारी मधुरिमा तथा सन्तों की श्रद्धाभक्ति की समस्त सुषमा को यदि एक शब्द में व्यक्त करना चाहें तो वह शब्द होगा—'श्री-राधा'। रसराज शृङ्गार की इष्टदेवी, माधुर्य की मञ्जुल मूर्ति, प्रेम की साकार प्रतिमा, भक्ति की भी उपास्या, श्रीकृष्ण की आराध्या श्रीराधा का अपना इतिहास बड़ा ही विवादास्पद है। भावुक सहृदय भक्तों को गोलो-केश्वरी, रासेश्वरी, भानुनन्दिनी श्रीराधा के इतिहास आदि के शुष्क तर्कजाल में फंसने का अवकाश ही नहीं, पर इस राकेट युग में हर बात को तर्क और विज्ञान की कसौटी पर कसने का व्यवहार-सा चल पड़ा है, अतः कुछ विद्वानों ने श्रीराधा के विषय में शोधपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है और इसी शृङ्खला में उपाध्याय जी का यह ग्रन्थ बड़ा महत्त्वपूर्ण एवं सर्वाङ्गीण है।

श्रीराधा की भक्ति एवं गौरव से परिपूर्ण साहित्य अनेक भारतीय भाषाओं में बिखरा हुआ है। यों संस्कृत और व्रजभाषा में तो उसका कोष अक्षय ही है। पं० बलदेव उपाध्याय ने प्रथम बार ऐसा प्रयत्न किया है और अन्य भाषाओं की एतत्सम्बन्धिनी माधुरी को भी एक ही ग्रन्थ में निबद्ध किया है। उपाध्याय जी समीक्षक होने के साथ-साथ भक्त का भावुक हृदय भी रखते हैं। भारतीय पुराण-इतिहास विषय पर उनका बहुत अधि-कार है। उन्होंने इस ग्रन्थ में बड़ी विद्वत्ता के साथ श्रीराधा के इतिहास, माहात्म्य तथा गौरव पर प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ की महती विशेषता इस कारण भी है कि विद्वान् लेखक ने तर्क और श्रद्धा दोनों के आलोक में 'श्रीराधातत्त्व' का विवेचन किया है—ऐसा दुष्कर कार्य उपाध्याय जी के सदृश भावुक विद्वान् ही कर सकते हैं। ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है। तीनों में क्रमशः ऐतिहासिक, धार्मिक और साहित्यिक रूप से विषय-प्रतिपादन किया है, अर्थात् इतिहासकार, भक्त और साहित्यकार तीनों एक ही नाव पर यात्रा कर सकते हैं। यद्यपि आज के यथार्थवादी युग में तीनों के मध्य गहरी खाई खुद गई है, पर यह भी तो उस 'परम आह्लादिनी शक्ति' की ही शक्ति है कि उसके यथार्थतत्त्व को पाने के लिए सभी लालायित रहते हैं।

श्रीराधा की ऐतिहासिकता संदिग्ध मानी जाती है। भण्डारकर के अनुसार यह सीरिया से आई आभीर जाति की प्रेमदेवी है, पर राधा के मनोहर चरित व स्वरूप को देखते हुए यह दिव्य झांकी विदेशी नहीं लगती। द्विवेदी जी ने इन्हें इसी देश की प्रेमदेवी माना है जो कालान्तर में गोपालकृष्ण की प्रणयिनी बनीं। कुछ ने वेदों में भी श्रीराधा के ढूंढ़ निकाला। पर वहां 'राधा' शब्द धन व अन्न-वाची प्रतीत होता है। अन्वेषण के इस युग में ज्योतिष के नक्षत्रमण्डल पर सारी राधाकृष्ण-लीला घटा दी है। ईसवी पूर्व के शिलालेखों में राधा के दर्शन नहीं होते। हां, पुराण साहित्य में राधा के नाम, रूप, गौरव और माहात्म्य का यथेष्ट वर्णन मिलता है। राधा के विकास का स्वर्ण-युग तो मध्यकालीन भक्तिकाल है। तत्कालीन आचार्य, भक्त एवं गायकों ने श्रीकृष्ण के साथ राधा को इस तरह नीरक्षीर की भांति मिला दिया कि आज सभी

'राधाकृष्ण' ही कहते हैं, 'रुक्मिणीकृष्ण' कोई नहीं कहता। सचमुच 'राधा' इन दो अक्षरों के भीतर कितनी श्रद्धा, कितनी भक्ति, कितना प्रेम और कितना विश्वास भरा हुआ है। सभी मन्दिरों में कृष्ण के वामाङ्ग में राधा को ही स्थान दिया जाता है।

कृष्णभक्ति के सभी सम्प्रदायों में श्रीराधा को किसी-न-किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया गया है। किसी में स्वकीया और किसी में परकीया। श्रीराधा को सर्वाधिक महत्त्व देने वाले राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हितहरिवंश माने जाते हैं जिन्होंने राधा को कृष्ण की भी आराध्य बना दिया है। रासलीला का अभिनय भी इन्होंने ही सर्वप्रथम चलाया। इस सम्प्रदाय का उत्तरवर्ती सम्प्रदायों तथा साहित्य पर इतना प्रभाव पड़ा कि राधा के बिना वे अधूरे समझे जाते थे। निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, गौडीय, सखी सहजिया--इन सभी सम्प्रदायों ने श्रीराधा के पावन प्रेमिका रूप को बड़ी श्रद्धा व भक्ति के साथ अपनाया है।

व्रजभूमि इस दिव्य प्रेमीयुगल की क्रीडा-भूमि थी, अतः स्थानीय व्रजभाषा में तो इनकी ललित लीलाओं का भावुक भक्तों ने गायन किया ही है, साथ ही गुजराती, मराठी, बंगाली, उत्कल, मैथिली, असमिया, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम—इन सभी प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं में राधा सौरभ की भांति व्याप्त हो गई है। आर्य-अनार्य, देशी-विदेशी सभी विद्वानों के हृदयमन्दिर में प्रतिष्ठित होकर इस देवी ने शत-शत कल्पनाओं के द्वार खोल दिए हैं। मियां रसखान को कृष्ण मिले भी तो कहां—कुञ्ज-कुटीर राधा के पैर दबाते हुए—'देख्यौ-दुरयौ तो वह कुञ्ज-कुटीर में बैठ्यौ पलोटत राधिका-पायन'। पर हरिऔध ने उन्हें नए रूप में देखा था, सर्वथा नए रूप में जिसकी कल्पना सूर व हित जी कर भी न सकते थे। वह रूप था समाज-सेविका का। भक्त कवियों की श्रद्धा व मञ्जुलता की पावनमूर्ति राधा को रीतिकालीन कवियों ने जिस प्रकार कलुषित किया, वह किस सहृदय से छिपा है? आज श्रीराधा को स्वस्थ रूप देने की आवश्यकता है।

अस्तु, जिसके तन की झाईं पड़ने मात्र से 'श्याम' भी 'हरित दुति' हो जाते हैं, उन पुण्यमयी श्रीराधा के वास्तविक तत्त्व-ज्ञान तक पहुंचने के लिए उपाध्यायजी का यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है। उन्होंने बड़ी विद्वत्ता के साथ अपने विषय का निर्वाह किया है। भारत की समस्त भाषाओं में श्रीराधा-सम्बन्धी जिस काव्य-माधुरी को उन्होंने अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है, वह एक स्तुत्य प्रयास है। श्रीराधा की मधुरिमा, जो समस्त भाषाओं में शुभ्र शारदीय ज्योत्स्नावत् छिटक रही है, उसका पान किंवा ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह एक ग्रन्थ ही पर्याप्त है।

मध्यकालीन जिन अनेकों आचार्यों ने श्रीराधातत्त्व का विवेचन किया है, प्रस्तुत ग्रन्थ में न केवल उनके सुस्पष्ट सिद्धान्त ही दिए हैं, अपितु साथ-साथ बढ़िया आर्ट पेपर पर उनके चित्र भी हैं। इसके अतिरिक्त श्रीराधाकृष्ण के बहुरंगे दो अतीव कलात्मक भव्य और नयनाभिराम चित्र भी हैं। ग्रन्थ हर दृष्टि से बहुत सुन्दर व संग्रहणीय बन पड़ा है। पं० बलदेव उपाध्याय बधाई के पात्र हैं, साथ ही बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना, भी, जो इतनी कलात्मक साज-सज्जा के साथ उच्चकोटि के ग्रन्थों का प्रकाशन कर राष्ट्रभाषा के भण्डार को समृद्ध कर रही है। आशा है, इस ग्रन्थ-रत्न का हिन्दी जगत् में यथेष्ट सम्मान होगा।

—प्रो० राधेश्याम गोस्वामी

वैदिक व्याकरण भास्कर—लेखक— श्री गोविन्दलाल बंसीलाल व आचार्य रुद्रमित्र शास्त्री विद्यावारिधि। प्रकाशक–गोविन्दलाल बंसीलाल ३२ सी. सी. चेम्बर्स, दिनशा वाच्छा रोड, बम्बई—१। प्रथमावृत्ति। मूल्य ६) सजिल्द, ५) अजिल्द।

आर्य साहित्य के मूर्धन्य ग्रन्थ वेदों की भाषा लौकिक संस्कृत की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है, उसकी रूप सम्पत्ति अधिक समृद्ध है। यही कारण है कि लौकिक संस्कृत जान लेने पर भी वेद की भाषा दुरूह बनी रहती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने अपने व्याकरण में लौकिक संस्कृत के नियमों के साथ-साथ वैदिक भाषा के नियमों का भी समावेश किया है। उन्हीं वैदिक नियमों की एक सरल और संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या इस ग्रन्थ में की गई है।

यह देख व जानकर एक सुखद आश्चर्य होता

है कि प्रस्तुत पुस्तक के मूलस्रोत एवं अन्यतर लेखक, श्रीयुत राजा गोविन्दलाल जी, बम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति होते हुए भी वैदिक साहित्य में क्रियात्मक रुचि रखते हैं। पुस्तक उनकी वेदनिष्ठा, जिज्ञासा, अध्ययनशीलता एवं अध्यवसाय का ही परिणाम है।

इस पुस्तक के व्याकरण-प्रकरण के दस अध्यायों में पाणिनीय व्याकरण के सभी व्याकरण-सूत्रों और उपयोगी वार्तिकों का व्याख्यान किया गया है। जो लोग पाणिनि के लौकिक संस्कृत के व्याकरण से सुपरिचित हैं, उन्हें वैदिक व्याकरण जानने में इस ग्रन्थ से सहायता अवश्य प्राप्त होगी। लेखकों ने वेद के छन्दोज्ञान और मन्त्रपाठ की आठ विकृतियों से परिचय के लिए पीछे से दो अध्याय और जोड़ दिए हैं, जिससे पुस्तक अधिक उपयोगी हो गई है।

इतना होते हुए भी पुस्तक में छापे की अशुद्धियों के अतिरिक्त व्याख्या की त्रुटियाँ भी विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ, पृ. ७ पर संख्या १७ की व्याख्या में **ओ३आ३वय और आ३आ३वय** उदाहरणों के स्थान पर **ओ३म् आ३वय** उदाहरण की शुद्धता पर आग्रह प्रकट किया गया है जबकि यथार्थ में पहले दो उदाहरण ही ठीक हैं। **ओ३आ३वय** का **ओ३ ओ३म्** के स्थान पर नहीं है प्रत्युत यहां **आ** उपसर्ग के साथ 'उ' निपात की सन्धि है जबकि **आ३आ३वय** में 'उ' निपात का प्रयोग नहीं है (देखिए शतपथ ब्राह्मण १, ४, २, १६, आश्वलायन श्रौत १,३,२३, महाभाष्य ४, ४, १४०)। अतः यहां **ओ३म्** समझना ठीक नहीं।

पृ. ८ पर संख्या २३ के व्याख्यान में 'भद्रं करोषि गौः' में प्लुत का प्रतिषेध समझना ठीक नहीं। यहाँ 'अभिपूजित' अर्थ में प्लुत तो अवश्य होगा, वार्तिक द्वारा केवल **'एचोऽप्रगृह्यस्य०'** से प्राप्त प्लुत विकार का ही प्रतिषेध है (तु. इसी सूत्र का महाभाष्य)। अतः **'गौ३:'** ऐसा निर्देश करना उचित है।

इसी प्रकार इसी पृष्ठ की संख्या २४ पर वार्तिक व्याख्यान में 'स्वरित' की अनुवृत्ति करना ठीक नहीं, स्वरित की अनुवृत्ति 'प्लुतावैच इदुतौ' सूत्र से पहले ही समाप्त हो जाती है। वस्तुतः यह प्लुत उदात्त ही होता है जैसा कि तैत्तिरीयसंहिता १, ४, २७, १ के **अग्ना३इ पत्नीवा३ः** पाठ से स्पष्ट है। पृष्ठ १० पर द्विवचनान्त प्रगृह्यों में 'ओकारान्त' को भी गिनाया है जोकि असंभव है। आचार्य पाणिनि ने भी यहाँ 'ओ' नहीं गिनाया।

पृ. ११ पर **स्वरितेनाधिकारः** की व्याख्या अशुद्ध है। इस व्याख्यान की प्रथम पंक्ति को छोड़ शेष सारा लेख असम्बद्ध है। भला कन्या, क आदि के स्वरित से इस सूत्र का क्या सम्बन्ध? 'सूत्र के स्वरितयुक्त अंश का अगले सूत्रों में अधिकार होगा', यही इस सूत्र का तात्पर्य है।

वैदिक उदाहरण देते समय उनके मूलग्रन्थों से उनके पाठ मिला कर उन के पते भी साथ में अवश्य देने चाहिए थे। इस से एक ओर जहां उदाहरणों में पाठ की अशुद्धियों से बचा जा सकता था, वहां व्याख्या में भी अधिक यथार्थता आ सकती थी। आज जबकि ब्लूमफील्ड की **वैदिक मन्त्रसूची** और विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान से प्रकाशित **वैदिक-पदानुक्रम कोश** की सहायता से वैदिक साहित्य के लगभग ५०० उपलब्ध ग्रन्थों के एक-एक पद का पता और पाठ ढूँढा जा सकता है और पठन पाठन में अधिक यथार्थता लाई जा सकती है, तब इस ओर बिलकुल ध्यान न देना खेद की बात है।

आशा है, अगले संस्करण में इस प्रकार की समस्त त्रुटियों को दूर कर ग्रन्थ को अधिक लाभप्रद बना दिया जायगा। अन्त में हम पुस्तक का स्वागत करते हुए दोनों लेखकों की उनके सदुत्साह और लगन के लिए वर्धापना करते हैं।

—वीरेन्द्र शास्त्री

मन-प्रबोध—लेखक, महाकवि सन्तरेण—सम्पादक तथा लिप्यन्तरकार, सूतदेव हंस—प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मलेरकोटला, मूल्य रु. १.५०।

पंजाब के सिख गुरुओं की परम्परा में जो धार्मिक साहित्य रचा गया, वह गुरुमुखी लिपि में होते हुए भी भाषा की दृष्टि से व्रज भाषा में है, यद्यपि उसमें पंजाबी, फारसी आदि के विपुल शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अतः यह मूलतः हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत आता है और प्रसन्नता की बात है कि इस पर अब विद्वानों

ने शोध-कार्य आरम्भ कर दिया है। प्रस्तुत प्रकाशन उदासी साधु सन्तरेण की रचना है, जिसे राजकीय कालेज, टांडा उरमुर के हिन्दी प्राध्यापक, प्रो. सुखदेव हंस ने परिश्रमपूर्वक सम्पादित कर प्रकाशित कराया है।

सन्तरेण नामक कवि अनेक हुए बताए जाते हैं, परन्तु जिनकी यह रचना है, वे अठारहवीं शताब्दी के मध्य में श्रीनगर में उत्पन्न हुए थे। आप गौड़ ब्राह्मण थे और अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थे। आपके बचपन की बातों का पता नहीं चलता, परन्तु अनुमान है कि आपने श्रीनगर के उदासी मठों से प्रभावित होकर इसे अपना लिया होगा। यह भी संभव है कि आप इन साधुओं की पारिवारिक परम्परा में ही हों। जो हो, साधु होकर आप पंजाब तथा भारत के अनेक स्थानों का भ्रमण करते रहे और अकोला में बालापुर पीठ की स्थापना की। फिर आप अपने गुरु बाबा साहिबदास के भूदनस्थित डेरे (मलेरकोटला) में आ गए और वहीं रहने लगे। आप सौ वर्ष से ऊपर जिए और ५ पुस्तकें लिखीं। 'मन-प्रबोध' आपकी पहली रचना है, जिसमें कुल १६८ छन्द हैं। आपकी दूसरी रचना, 'गुरु नानक विजय', बहुत बड़ी है और इसमें ३२४ अध्याय तथा २४३८२ छन्द हैं। आपकी तीसरी रचना 'गुरु नानक बोध', चौथी 'अनभै अमृतसागर' तथा पांचवीं 'उदासी बोध' है। इनमें वेदान्त तथा सिख सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है। आपका वेदान्त ज्ञानमार्गी न होकर गुरु-मत का भक्तिमार्गी सहज वैराग्य है। नाम-स्मरण की इसमें अपार महिमा बताई गई है।

'मन-प्रबोध' का मुख्य उद्देश्य मानव-मन को विषय-वासनाओं से दूर रख कर सन्मार्ग पर चलाना है। इसलिए इसमें उपदेशात्मकता अधिक है। परन्तु भाषा प्रवाहमयी और लेखन शक्तिशाली है। एक उदाहरण देखिए—

तरनी सुख भोग-विलास जिते,
सुतिते नरकागनि रे मन हेरे।
नरकागनि में सुख रंच नहीं,
दिन रैन बहै दु:ख का हहु फेरे।
करिकै मन देख विचार भले,
तरणी दु:ख सागर घूमन घेरे।
इस संतरिरेण कहै मन रे,
इनकी बलि ते अपना चित फेरे॥

पुस्तक के आरम्भ में विस्तृत विद्वत्तापूर्ण भूमिका है, फिर मुख्य ग्रन्थ है और अन्त में कठिन शब्दों की सूची तथा अर्थ है। सन्तरेण को पंजाब के पाठ्य-ग्रन्थों में स्थान दिया जाना चाहिए। इस प्रकाशन के लिए हम सम्पादक तथा प्रकाशक को बधाई देते हैं।

डेल कारनेगी की दो पुस्तकें—

लोक-व्यवहार—अनुवादक, सन्तराम, बी. ए., तथा

चिन्ता छोड़ो सुख से जियो—अनुवादक, रायसिंह राव, एम. ए.—प्रकाशक—डी. बी. तारापोरवाला सन्स एण्ड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, २१०, दादाभाई नौरोजी मार्ग, फोर्ट, बम्बई—मूल्य रु. ६.०० प्रत्येक।

मनोविज्ञान को मनुष्य के वास्तविक जीवन के लिए उपयोगी बनाने की दृष्टि से डेल कारनेगी ने प्रशंसनीय कार्य किया है। उसकी सभी पुस्तकें संसार-भर में अत्यन्त लोकप्रिय हुईं और आज भी हैं। लोगों ने अपने दैनिक व्यवहार में उनका विपुल उपयोग किया है और लाभ भी उठाया है। प्रस्तुत दोनों अनुवाद उसकी सबसे प्रख्यात दो पुस्तकों के हैं—'हाऊ टु विन फ्रैंड्स एंड इन्फ्लुएंस पीपुल' तथा 'हाऊ टु स्टाप वरींग एंड स्टार्ट लिविंग'। पहली पुस्तक में लोगों से काम लेने के उपाय, लोगों का प्यारा बनने की रीतियाँ, लोगों को अपने विचार का बनाने की रीतियाँ, खिझाए बिना लोगों को बदलने की रीतियाँ, अद्भुत परिणामकारी चिट्ठियाँ तथा गृहस्थी को सुखी बनाने की रीतियाँ बड़े मनोरंजक और अनेकानेक दृष्टान्तों से पूर्ण ढंग से दी गई हैं। दूसरी पुस्तक में मानव-जीवन की विविध चिन्ताओं को दूर करने तथा उनके स्थान पर सुखपूर्ण उपयोगी जीवन का आरम्भ करने की रीतियाँ दी गई हैं। इस सबके समर्थन में विविध व्यक्तियों के अपने जीवन से संबंधित लेख भी हैं, जो बड़े बोधक तथा प्रेरक हैं।

इन दोनों पुस्तकों की प्रशंसा में इससे अधिक

कुछ नहीं कहा जा सकता कि प्रस्तुत समीक्षक ने भी अनेक बार इनसे मार्गदर्शन लेकर लाभ उठाया है। इस समय समीक्षा के लिए उन्हें दुबारा पढ़ते हुए भी उसे लग रहा है कि कुछ सूत्रों का व्यवहार फिर आरम्भ कर देना चाहिए। दोनों ही पुस्तकों के अनुवाद सफल हैं। तारापोरवाला ने उन्हें सुरुचिपूर्वक प्रकाशित करके हिन्दी जगत् का अत्यन्त उपकार किया है।

ऑटोबायग्राफ़ी आव ए योगी (अंग्रेजी)—परमहंस योगानन्द—जैको पब्लिशिंग हाऊस, १२५, महात्मा गान्धी रोड, बम्बई-१—रु. ५.००।

स्वामी विवेकानन्द के पश्चात् जिन कुछ साधुओं ने अमेरिका में भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रचार किया और इसमें अच्छी सफलता प्राप्त की, उनमें परमहंस योगानन्द का स्थान अन्यतम है। आप सन् १९२० में अमेरिका गए थे, और तब से सन् १९५२ में अपनी मृत्यु तक वहीं रहे। आपने लास एंजिल्स में 'सेल्फ रियलाइज़ेशन फेलोशिप' की स्थापना की, तथा इस संस्था के माध्यम से सहस्रों अमेरिकी बुद्धि-जीवियों तथा सामान्य नर-नारियों को प्रभावित किया। भारत में आपकी जो संस्था कार्य कर रही है, उसका नाम योगोदा सत्संग सोसाइटी है तथा इसका केन्द्र राँची (बिहार) है। इस समय आपकी पुरानी शिष्या, श्री दया माता, इन दोनों संस्थाओं की अध्यक्ष हैं तथा बड़ी कुशलता से कार्य संचालित कर रही हैं।

परमहंस योगानन्द जी ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ आप की विस्तृत आत्मकथा है जिस में जन्म से लेकर मृत्यु के कुछ समय पूर्व तक आपके जीवन का विस्तृत वर्णन है। आप बङ्गाली थे तथा गोरखपुर में श्री भगवतीशरण घोष के घर में आप का जन्म हुआ था। आपका जन्म-नाम था मुकुन्दलाल घोष। बचपन से ही आप में रहस्यवादी प्रवृत्तियां पनपने लगीं और आपने भ्रमण तथा तपस्या आरम्भ कर दी। श्री युक्तेश्वर नामक साधु आपके गुरु थे। शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् आप विधिवत् संन्यासी हो गए। फिर आपको अमेरिका जाने की प्रेरणा जगी। आप बोस्टन आए और भाषण आदि देते रहे। धीरे-धीरे आप का शिष्य-मण्डल बहुत बढ़ गया। आप की संस्था कई पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती है। कहते हैं, देहान्त के पश्चात् बीस दिन तक आपका शरीर ज्यों का त्यों रहा। आप के जीवन में अनेक चमत्कार भी हुए बताए जाते हैं, जो पता नहीं कहां तक सत्य हैं।

आप की आत्मकथा को पाकेट संस्करण में संपूर्ण प्रकाशित करके जैको ने प्रशंसनीय कार्य किया है। ५०० पृष्ठों की इस पुस्तक में अनेक चित्र भी हैं जिनसे उसकी शोभा बढ़ गई है।

ए टाइम टु बी हैपी—(अंग्रेज़ी उपन्यास) नयनतारा सहगल—जैको पब्लिशिंग हाऊस, १२५, महात्मा गांधी मार्ग, बंबई-१, रु. ३.००।

नयनतारा सहगल ने सन् १९५४ में 'प्रिज़न एंड चाकलेट केक' लिख कर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। चार साल बाद आपका प्रस्तुत उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसे अब जैको ने पाकेट संस्करण में प्रकाशित कर दिया है। गत वर्ष आप का तीसरा उपन्यास 'फ्राम फ़ियर सेट फ्री' प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त आप ने अनेक फुटकर कहानियां भी लिखी हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति की भूमिका पर लिखा गया यह सामाजिक उपन्यास है। इसमें उच्च मध्यवर्गीय तथा धनी परिवारों की तत्कालीन मनःस्थिति और परिवर्तित परिस्थितियों में उनके सदस्यों के पुनर्स्थापन का मनोरंजक विशद विवरण है। इनसे लेखिका की अन्तर्-दृष्टि का पता तो चलता ही है, सङ्कटमय स्थितियों को सम्भाल लेने की उस की कुशलता पर भी प्रकाश पड़ता है। सभी दृष्टियों से यह उपन्यास उत्कृष्ट है। परन्तु अमेरिकी पाठकों के लिए लिखा होने के कारण अनेक वर्णन बहुत बढ़ा दिए हैं। भारतीय संस्करण का इस दृष्टि से सम्पादन कर दिया जाता तो अच्छा होता। इसमें से वह शब्द-सूची भी निकाल दी जानी चाहिए थी, जो अंत में दी गई है और जिस में भैया, चरखा, धोबी आदि शब्दों के अर्थ बताये गये हैं।

जो हो, उपन्यास अत्यन्त रोचक है और एक बार आरम्भ कर देने पर उसे खत्म किये बिना नहीं रहा जा सकता। इसी में लेखिका की सफलता है।

—चिरंतन

★ ★ ★

सम्पादकीय



भाषा का प्रश्न—

देश में भाषा का प्रश्न अत्यधिक जटिल होता जा रहा है। इस संबंध में सरकारी नीति का पूरी तरह से पता नहीं चल रहा। परन्तु वस्तुतः यही समय है जब हमें इस बारे में अपनी नीति स्थिर करके योजनापूर्वक आगे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

भारत के संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लिया है। आवश्यकता इस बात की है कि इसे शीघ्र-से-शीघ्र क्रियान्वित किया जाय तथा सभी स्तरों पर इस का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ उपयोग किया जाय। इस दिशा में अबतक जो प्रयत्न हुए हैं, वे सराहनीय होते हुए भी, अपर्याप्त हैं।

देवनागरी को राष्ट्र की सभी भाषाओं की लिपि स्वीकार करने की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। कारण, इससे भारत की सभी भाषाएं अत्यन्त समीप आ जाती हैं और देश की एकता पुष्ट होती है। यह निर्विवाद है कि देवनागरी में ही राष्ट्र भर की लिपि बनने की क्षमता पाई जाती है। जम्मू, हिमाचल, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र, इन आठ राज्यों में संस्कृत, डोगरी, पहाड़ी, हिन्दी तथा मराठी की लिपि तो यही है। शेष प्रदेशों में भी संस्कृत और हिन्दी की लिपि होने के नाते इसका प्रचार है। गुरुमुखी तथा गुजराती लिपियां भी इससे बहुत मिलती-जुलती हैं। उनका स्थानापन्न हो जाने में इसके मार्ग में कोई अड़चन नहीं रहनी चाहिए। इसी प्रकार, दक्षिण की चारों तथा पूर्व की तीनों प्रादेशिक भाषाओं की एकमात्र, समान लिपि नागरी ही हो जानी चाहिए। साम्प्रदायिक समन्वय को दृष्टि में रखते हुए उर्दू को भी नागरी में लिखा जाय, तो देश की एक भारी समस्या सुलझ सकेगी।

भाषा संबंधी सभी नीतियों का निर्धारण राष्ट्र की एकता और अखंडता की दृष्टि से ही होना चाहिए। यह मूल बात है। अतः हमारे विभिन्न राज्य अपने-अपने क्षेत्र में अपनी-अपनी भाषा का प्रयोग और वर्धन भले ही करते रहें, परन्तु अखिल भारतीय स्तर की सभी संस्थाओं, यथा उच्च न्यायालयों तथा विश्वविद्यालयों में, व्यवहार और शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही होना चाहिए। ऐसा होने से ही आपस में अध्यापकों, परीक्षकों, छात्रों तथा पाठ्यपुस्तकों का खुला आदान-प्रदान तथा देश व्यापक सर्वसाधारण समान न्याय-स्तर स्थापित हो हो सकेगा। जो लोग प्रादेशिक भाषाओं को विश्वविद्यालय-शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते हैं, वे अनजाने, मानो, देश की एकता के मार्ग में एक महती बाधा खड़ी कर रहे हैं।

माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर त्रिभाषा सूत्र के स्थान पर हमारी दृष्टि से, चतुर्भाषा सूत्र अधिक लाभकर है। इस सूत्र के अनुसार हिन्दी, अंग्रेजी तथा प्रादेशिक भाषा के साथ में चौथी भाषा के रूप में संस्कृत होनी चाहिए, जो सारे भारत की समान सांस्कृतिक भाषा है। इस का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए आवश्यक होना चाहिए, जिसे वह अपनी माध्यमिक शिक्षाग्रहण की अवस्था में सरलतापूर्वक सीख सकता है। नागरी को राष्ट्रलिपि मान लेने पर तो इसमें

कोई कठिनाई रहती ही नहीं, क्योंकि तब इसी एक लिपि द्वारा तीन भाषाएं (हिन्दी, संस्कृत तथा प्रादेशिक) सीखी जा सकती हैं। इस प्रकार दो लिपियों द्वारा चार भाषाएं सीखना तीन लिपियों द्वारा तीन भाषाएं सीखने की अपेक्षा यदि सरलतर नहीं, तो भी बराबर तो अवश्य होगा और राष्ट्रीय एकता घाते में प्राप्त होगी। तब, जैसी कुछ लोगों की मांग है और जिस पर गत वर्ष नवंबर और दिसम्बर में लोक सभा में विचार भी हुआ, संस्कृत को देश की एक अधिक राजभाषा के रूप में भी स्वीकार किया जा सकेगा।

पटियाला में भाषा-शिक्षणालय—

पिछले दिनों पंजाब सरकार के शिक्षा विभाग ने पटियाला-स्थित संस्कृत विद्यालय तथा गुरुमुखी विद्यालय को संयुक्त करके संस्कृत, हिन्दी एवं पंजाबी भाषाओं के एक शिक्षणालय की स्थापना की है। हम इस निर्णय का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि शीघ्र ही यह संस्था पुष्पित-पल्लवित होकर उक्त तीनों भाषाओं के उत्तम ज्ञाता उत्पन्न करने लगेगी। समय पाकर अन्य प्राचीन तथा नवीन भाषाओं की शिक्षा भी इस संस्था द्वारा दी जा सकेगी, ऐसी आशा की जाती है।

वास्तव में इस संस्था की जड़ें बहुत पुरानी हैं। पहले-पहल यह पटियाला के महाराज महेन्द्रसिंह द्वारा सन् १८७५ में स्थापित महेन्द्र कालेज के दो विभागों के रूप में कार्य करती थी। संस्कृत विभाग द्वारा शास्त्री, विशारद और प्राज्ञ की उपाधिओं के लिए तथा पंजाबी विभाग द्वारा ज्ञानी, विद्वान् और बुधिमान् की उपाधिओं की परीक्षाओं के लिए छात्रों को तैयार किया जाता था। महाराज महेन्द्रसिंह स्वय सफल विद्यार्थिओं को पुरस्कृत और प्रोत्साहित करते थे।

सन् १९०७ में दोनों विभाग कालेज से पृथक् होकर स्वतंत्र विद्यालयों के रूप में कार्य करने लगे। धीरे-धीरे इन का क्षेत्र-विकास होता रहा। संस्कृत विद्यालय में हिन्दी की भी शिक्षा दी जाने लगी। तत्पश्चात् मैट्रिक की परीक्षा आरम्भ हुई। सन् १९५२ में इन विद्यालयों में कन्याओं को भी प्रवेश दिया गया और, साथ-ही-साथ, दोनो विद्यालयों को पंजाब विश्वविद्यालय से सम्बद्ध करा दिया गया। अब इन दोनों को मिला कर एक ही बड़ा संस्थान बना दिया गया है। इसका विशाल भवन है तथा ४५० विद्यार्थी इस समय इसमें शिक्षा पा रहे हैं। पुस्तकालय को बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। संस्कृत विभाग में आचार्य-परीक्षाओं के लिए कक्षाएं चालू करने की तैयारी भी हो रही है।

प्राचीन काल से भारत अनेक भाषाओं वाला महादेश रहा है। परन्तु इन सब भाषाओं के भीतर संस्कृत ने अन्य सभी भाषाओं का, मानो आत्मा बनते हुए, इन के बीच एकता का सूत्र पिरोए रखा है। आज भी उसी के सहारे सभी भारतीय भाषाओं तथा उनके माध्यम से विभिन्न प्रदेशीय भारत के सभी नर-नारियों के अन्दर भावनात्मक सांस्कृतिक एकता की प्रतिष्ठापना की जा सकती है। सभी भाषाओं में हमारी समान सांस्कृतिक व साहित्यिक निधिआं संगृहीत हैं। परन्तु उनको न जानने के कारण हम उन से वंचित हैं और आपस की मिथ्या भेद-भावना एवं अनुचित प्रतिस्पर्धा से दूषित हो रहे हैं। देश की सभी भाषाओं की शिक्षा इसीलिए आवश्यक प्रतीत होती है। देश में ऐसा कोई भी केन्द्र अभी तक नहीं है, जहां हमारी सभी भाषाओं की शिक्षा दी जाती हो। हमें प्रसन्नता होगी यदि यह महाविद्यालय इस महती कमी की पूर्ति कर सकेगा।

श्री जेरथ का देहान्त—

भारत सरकार के सुयोग्य कर्मिष्ठ, प्रसिद्ध समाजसेवी तथा संस्थान-परिवार के सम्मानित सदस्य, श्री हरबंसलाल जेरथ का ६५ वर्ष की सामान्य अवस्था में गत जनवरी मास में स्वर्गवास हो जाना निस्सन्देह अत्यन्त दुःखपूर्ण घटना है। आप आदर्शवादी जीवन, अनुशासनपूर्ण सेवा तथा निरन्तर प्रगतिशीलता के ज्वलन्त उदाहरण थे। इसीलिए आप अपने विभाग के डायरेक्टर जनरल के सर्वोच्च पद पर पहुंच सके और सात वर्ष तक उसके कार्य को बड़ी योग्यता के साथ निभाया।

श्री जेरथ का जन्म बजवाड़ा (होशियारपुर) के एक प्रसिद्ध आर्यसमाजी परिवार में हुआ था। आपके

पिता, श्री रूपचन्द जी, विख्यात वकील थे। आपकी माता जी भी, पिता जी के समान ही, आर्य-समाज के प्रचार तथा सेवा-कार्यों में सोत्साह भाग लेती थीं। स्थानीय डी. ए. वी. हाई स्कूल की शिक्षा पूर्ण करके श्री जेरथ ने लाहौर के डी ए. वी. कालेज में दो वर्ष शिक्षा पाने के उपरान्त गवर्नमेंट कालेज से बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। आप अच्छे खिलाड़ी भी थे।



श्री हरबंसलाल जेरथ

इसी समय श्रीमती ज्ञानदेवी सभरवाल से आपका विवाह हुआ। आपके पिता आपको वकालत पढ़ाना चाहते थे, परन्तु आपने डाक विभाग में नौकरी कर ली। कुछ समय के प्रशिक्षण के पश्चात् सूरत में आपकी नियुक्ति हुई। आप बड़ी लगन तथा योग्यता से कार्य करके निरंतर उन्नति ही करते रहे। आपकी लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि आपके अधीन कार्य करने वाले कर्मचारी हड़ताल आदि द्वारा अनुशासन-भंग करने को कभी तैयार नहीं हुए। जब सन् १९४६ में सारे देश के डाक विभाग ने काम बंद कर दिया था, तो उस समय भी आप के कार्यालय में बराबर कार्य चालू रहा। संभवतः, इसी के परिणामस्वरूप आप संपूर्ण डाक तार विभाग के डिपुटी डायरेक्टर जनरल बनाकर दिल्ली बुला लिए गए, और फिर शीघ्र ही डायरेक्टर जनरल भी बना दिए गए। सन् १९५४ में सेवा-निवृत्त होने तक आप इस पद पर रहे। आपने सन् १९५३ में विभाग की शताब्दी का समारोह आयोजित किया तथा १९५४ में डाक टिकट की शताब्दी का विशाल समारोह मनवाया। इस अवसर पर देश-विदेश के डाक टिकटों की महत्त्व-पूर्ण प्रदर्शनी हुई। इसमें ब्रिटेन की महारानी एलिज़-बिथ के निजी संग्रह भी प्रदर्शित किए गए थे।

सरकारी सेवा से निवृत्ति प्राप्त करने पश्चात् आप देश के आर्थिक तथा औद्योगिक विकास के क्षेत्र मे अपनी रुचि को बढ़ावा देते हुए अनेक कंपनियो के साथ विविध रूपों में कार्य करते रहे। आर्यसमाज तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के कार्य में भी आप अपना समय और आर्थिक सहयोग देते रहे। डी. ए. वी. कालेज प्रबन्धक सभा, नई दिल्ली, के आप उपप्रधान भी रहे। इसी पवित्र भावना के फलस्वरूप आपने गत वर्ष हमारे संस्थान के लिए होशिआरपुर नगर वाला अपना मकान तथा बजवाड़ा वाली अपनी १० कनाल भूमि का दान किया जिस के आधार पर संस्थान ने उनकी इच्छा का आदर करते हुए आप के माता-पिता के नाम पर २५ रु. मासिक की एक छात्रवृत्ति चालू की है।

शोक के इस दारुण अवसर पर हम उनके परिवार के साथ हार्दिक संवेदना प्रकट करते हैं। हमें आशा है कि उनके सुपुत्र उन की सद्भावनाओं की परम्परा को आगे भी उनकी तरह ही जारी रख सकेंगे।

—विश्वबन्धु

★ ★ ★

संस्थान-समाचार

सज्जन-समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१. श्री गुरुशरणदास कपूर, बम्बई। २. प्रो. पुरुषोत्तमचन्द्र जैन, रोहतक। ३. श्री ओ. एन. जैन, कलकत्ता। ४. श्री धर्मवीर अग्रवाल, चण्डीगढ़। ५-६. श्री वेदप्रकाश, श्री रणवीर शास्त्री, लुधियाना। ७. श्री साईंदास भोला, यमुनानगर। ८. श्री दुर्गादास कपिल, होश्यारपुर। ९. श्री परशुराम, गिदड़बाहा। १०. श्री शिवप्रकाश सेठ, टांडा। ११. प्रो. ठाकुरदास, लुधियाना।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क—गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए—

१. सुश्री जगतावली सूद, होशियारपुर, १००), २. श्री धर्मवीर अग्रवाल, चण्डीगढ़, २५), ३. श्रीमती कुसुम गुप्ता, जम्मू, १०), ४. श्री एस. सी. दास-गुप्ता, नई दिल्ली, १०)।

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—

१. दीवान हरिकृष्णदास दाढ़ीवाला, नई दिल्ली, ५००), २. श्री गुरुशरणदास कपूर, बम्बई, १५०), ३. श्री शम्भूलाल पुरी, चण्डीगढ़, १०१), ४. श्री चरणदास कोछड़, नई दिल्ली, १००), ५. सर्वश्री गोकुलचन्द रत्नचन्द, अमृतसर, ५०), ६. श्री योगेन्द्रकृष्ण नन्दा, हिसार, ५०), ७. रा. सा. चौ. प्रतापसिंह, करनाल, ५०), ८. श्री चरणदास पुरी, अजमेर, ३०), ९. श्री चूनीभाई आर्य, सावली (बड़ौदा), ३०), १०. श्री मदनगोपाल महता, गुरदासपुर, ३०), ११. श्री आर. एन. गुप्ता, दिल्ली, २५), १२. डा. जे. एन. खोसला, नई दिल्ली, २५), १३. डा. के. सी. खन्ना, नई दिल्ली, १५), १४. श्री बख्शी शेरसिंह, जालन्धर, ११), १५. श्रीमती सुरजीत कौर, होशियारपुर, ११), १६. डा. एस. आर. मोहन, चण्डीगढ़, ११), १७. श्री सत्यपाल बख्शी, कानपुर, ११), १८-२०. डा. के. के. डेवट, १०), श्रीमती सुमित्रा मरवाहा, १०), श्री पी. एल. सोंधी, नई दिल्ली, १०), २१-२४. सर्वश्री रामदास मूलराज, १०), श्री देवराज चड्ढा, १०), प्रो. सन्तराम स्याल, १०), श्री प्रीतमलाल चड्ढा, १०), दिल्ली, २५. श्री बालूराम बंथ, लुधियाना, १०), २६. डा. देवराज अग्रवाल, मोगा, १०), २७. श्री वैद्य रूपलाल, दातारपुर, १०), २८. श्री श्रवणकुमार, देसरी (बिहार), १०), २९. श्री डी. सी. आहूजा, जमशेदपुर, १०), ३०. बाबा बलवन्तसिंह, श्रीनगर, १०), ३१-३२. प्रो. रघुनाथ साहनी, १०), डा. आर. के. काऊ, जम्मू, १०), ३३-३४. श्री बालकराम कमल, १०); प्रो. एस. एस. ब्यतनाल, बम्बई, १०), ३५. प्रो. रत्नचन्द शर्मा, करनाल, १०), ३६. प्रो. गुरचरणसिंह, गुरदासपुर, १०), ३७. श्री रमेशचन्द्र सेठी, खेमूआना (भटिंडा), १०), ३८. श्री रामचन्द्र मूर्ति, कोव्वूर (वैस्ट गोदावरी), १०), ३९-४०. डा. एस डी. मनोत, १०), श्री मदनमोहन शर्मा, १०), चण्डीगढ़, ४१-४४. श्री ज्ञानचन्द नन्दा, १०); श्री मोहनलाल भण्डारी १०); श्री सत्यपाल सूद, १०); श्रीमती शीला पटयाल, १०), होशियारपुर, ४५. डा. वेदव्यास बेदी, आनन्दपुर, १०), ४६. श्री खुशीराम सूद, हरदोखानपुर, १०), ४७. श्री मेजर बी. आर. दीवान c/o ५६ ए. पी. ओ. १०), ४८. श्री सी. पी. आनन्द, चन्दौसी, १०), ४९.

श्री बाबूराम वर्मा, देहरादून, १०), ५०. श्री शिव-प्रकाश सेठ, टांडा, १०), ५१. श्री एम. आर. सेठ, डालमिया नगर (बिहार), १०), ५२. श्री हरिप्रवेश आनन्द, भिलाई, १०), ५३. श्री सेठ शिवकुमार गुप्ता, ए रड़, ४)।

विशेष दान—

१. सर्वश्री मूलचन्द खरायतीराम ट्रस्ट, नई दिल्ली, १०००), २. सर्वश्री गंगा शूगर कारपोरेशन, देव बन्द, ५००), ३. प्रो. आर. साहनी, श्री रामकृष्ण सेवाश्रम, जम्मू, ७५), ४. श्री देवदत्त शास्त्री, होशियारपुर, २५), ५. प्रो. गोपालकृष्ण, होशियारपुर, १७), ६-७. श्री मुन्शीराम बजाज, ११); श्री मदनजीत आर्य, फिरोजपुर, १०), ८. श्री प्यारेलाल, दिल्ली, ५)।

सरस्वती-समाज—आचार्य श्री विश्वबन्धु जी की अध्यक्षता में परिषद् के ३१वें अधिवेशन (२७ मार्च) में श्री लक्ष्मी नरसिंह भारती एम. ए. ने 'पुराणकथाशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर अपना निबन्ध प्रस्तुत किया।

परिषद् की ३२वीं बैठक (२४ अप्रैल) में श्री परमानन्द जी शास्त्री, एम. ए. ने 'विदेशी आक्रान्ताओं पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए।

निरीक्षण-समिति— ३१ मार्च को पंजाब विश्वविद्यालय की ओर से संस्थान का निरीक्षण करने के लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय तथा डा. संसारचन्द्र, रीडर, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय केन्द्र, जालन्धर पधारे और उन्होंने संस्थान के विभिन्न विभागों के कार्यालयों का निरीक्षण किया। अन्त में संस्थान के कार्यकर्ताओं की एक सभा हुई जिस में आचार्य विश्वबन्धु जी ने आचार्य द्विवेदी जी की साहित्य-सेवाओं का वर्णन किया और स्वागत करते हुए उन्हें पुष्प-माला भेंट की। तत्पश्चात् डा. हजारीप्रसाद जी ने अपने भाषण में संस्थान के प्रति अपने भाव प्रकट किए और इस की उत्तरोत्तर उन्नति के लिए शुभ कामनाएं व्यक्त कीं। इस अवसर पर डा. ससारचन्द्र जी का भी भाषण हुआ।

श्री राम और हंसराज जयंती—१६ अप्रैल को आचार्य विश्वबन्धु जी की अध्यक्षता में ये दोनों जयंती सम्मिलित रूप से मनाई गई। प्रो. वेदप्रकाश वेदालङ्कार का भाषण हुआ तथा सर्वश्री इन्द्रदत्त उनियाल और ब्रह्मदेव ने कविताएँ पढ़ीं।

महावीर जयन्ती—२६ अप्रैल को प्रिंसिपल रलाराम जी के सभापतित्व मे भगवान् महावीर की जयन्ती मनाई गई। इस अवसर पर प्रो. शिवप्रसाद भारद्वाज, श्री ब्रजनन्दन तथा आचार्य विश्वबन्धु के भी भाषण हुए।

इस मास के कार्य-क्रम—इस मास ३१ मई को बुद्ध-जयंती का समारोह मनाया जायगा।

बधाई—संस्थान-सदस्य श्री हरिप्रवेश आनन्द (भिलाई) तथा संस्थान-कर्मिष्ठ प्रा. राधेश्याम गोस्वामी को उनके पुत्र-जन्म पर, संस्थान-सदस्य व कर्मिष्ठ श्री राजहरि मदान को उनके शुभ विवाह पर, संस्थान-उपसंचालक श्री देवदत्त शास्त्री को उनकी सुपुत्री, आदर्श के शुभ विवाह पर और दीवान रघुनाथ सहाय (सुपुत्र दीवान हरिकृष्णदास दाढीवाला, नई दिल्ली) को दिल्ली के आदरी मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किए जाने पर हार्दिक बधाई।

शोक-समाचार

संस्थान-सदस्य श्री रोशनलाल सेठी (चण्डीगढ़) के जामाता श्री राजेन्द्रकुमार मल्होत्रा, सुपुत्र श्री बोधराज मल्होत्रा, डिप्टी रजिस्ट्रार, पञ्जाब विश्वविद्यालय तथा श्री रघुनाथ सहाय (शिमला), का देहान्त हो गया। दिवंगत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

Name of owner :— Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri**
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur.

विश्व-ज्योति

सह-सम्पादक

विश्वबन्धु : सन्तराम

जून १९६४

वार्षिक मूल्य—

भारत में ८ रु. विदेश में १२ शिलिंग


डाकघर
POST OFFICE

सस्ता साहित्य

पढ़िये, विचारिये और अनुकरण कीजिये

१.	पूर्व जन्म-स्मृति	... ०.५०
२.	सदाचार शिक्षा	... ०.२५
३.	प्राकृतिक जीवन की ओर	... ०.४०
४.	सुखी गृहस्थ	... ०.१०
५.	खण्डन कौन नहीं करता ?	... ०.३०
६.	पोप-लीला	... ०.०३
७.	निराकार तथा साकार पूजा	... ०.४०
८.	चमत्कारों की दुनियां	... ०.७५
९.	विष्णु पुराण की आलोचना	... ०.४०
१०.	सेवा धर्म	... ०.५०
११.	पूजा क्या ? क्यों ? और कैसे ?	... ०.३७
१२.	वैदिक सत्यनारायण व्रत कथा	... ०.६२
१३.	प्राचीन धर्म वाटिका	... ०.७५
१४.	मित्रों की बातें	... १.२५
१५.	बहनों की बातें	... १.२५
१६.	दादी पोती की बातें	... ०.२०
१७.	नवयुवकों से दो बातें	... ०.५०
१८.	राधास्वामी मतदर्पण	... ०.२५
१९.	ब्रह्माकुमारी मतदर्पण	... ०.३७
२०.	हरिनाम सङ्कीर्तन	... ०.०४
२१.	आरोग्य प्रकाश	... १.२५
२२.	हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ?	... ०.३७
२३.	मरने के बाद हमारा क्या होता है ?	... ०.३७
२४.	स्वस्थ और सुन्दर बनने की विद्या	... ०.३७
२५.	हमारे बलिदान	... १.००
२६.	क्रान्तिकारी बालक	... ०.५०
२७.	बड़ों का बचपन	... १.००
२८.	देखो और सीखो	... ०.५०
२९.	काम की बात	... ०.५०
३०.	जीवन के निर्मोही	... ०.५०
३१.	हिन्दू की राम कहानी	... ०.५०
३२.	न्याय के देवता	... ०.५०
३३.	हमारे मार्ग-दर्शक	... ०.५०
३४.	हमारे बालक	... १.००
३५.	सुमार्ग	... ०.४४
३६.	सत्य का पुजारी	... ०.७५
३८.	भोजन स्वास्थ्य और दीर्घायु	... १.००
३९.	राजयोग महाविद्या	... ०.५०
४०.	बुराई कैसे मिटे	... १.००
४१.	धर्म-शिक्षा (प्रथम भाग)	... ०.२५
४२.	मृत्यु-लोक	... १.००
४३.	प्रेम शब्दावली	... ०.२५
४४.	विश्व-परिचय	... १ ००
४५.	मानवी-जीवन	... ०.१६
४६.	जीवन-ज्योति	... ०.६२
४७.	प्रार्थना मन्त्र	... १.००
४८.	जीवन दर्शन	... १.५०
४९.	बाल-शिक्षा	... ०.१२
५०.	रामायण-दर्पण	... १.२५
५१.	मांस-मदिरा-निषेध	... ०.१९

मिलने का पता :—

वि. पुस्तक भण्डार, साधु आश्रम, होश्यारपुर ।

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) Shāntakuṭī Vedic Series :

Volume I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa (*A Vedic Word-Concordance*), in Sections I-V, split up into 15 parts, treated as volumes in the series, Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II [Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upaniṣads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in I pt.]. Covering 11,000 (10″×7″) pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40 ; Q. II, Rs. 30 ; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional set (but not individual parts) entertained. 14 parts on sale, remaining 1 part due '64.

Volume XVI. A Grammatical Word-Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Grammatical Word-Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volume XVIII-XIX. A Grammatical Word-Index to the four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Grammatical Word-Index to Taittirīya Saṁhitā, Rs. 40.

Volume XXI. A Grammatical Word-Index to Upaniṣads, due '64, Rs. 30.

(B) Vishveshvaranand Indological Series :

Volume I-II. Siddha Bhāratī, (*A Rosary of Indology*), Pts. I-II, 108 classified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā, (*A Concordance of Purāṇa Contents*), by Prof. Y. P. Tandan, Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha, (*Texts on Courtezans in Classical Sanskrit*), texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20.

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern Philology, by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī, (*The Homage of Indology*), 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Aggarwal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr. U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Cultural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volume X-XI. Catalogue of VVRI Collection of Manuscripts, 2 Pts. Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L. Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII. Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-pāṭha and Sayaṇācārya's Commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVI ready, Rs. 180.

Volume XVIII. Saṅkarṣa Kāṇḍa Sutras of Jaimini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

कथा कहानियां क्यों पढ़ें ?

इनसे मनोरञ्जन होता है, मन की एकाग्रता बढ़ती है, बुद्धि पैनी होती है, शिक्षा मिलती है तथा पाठक चतुर बनता है। यदि आप ऐसा चाहते हैं तो निम्न पुस्तकें आज ही मंगवाएं :—

१. अच्छी-अच्छी कहानियां	...	०.८७
२. बच्चों की कहानियां	...	१.६६
३. नये युग की कहानियां	...	१.७५
४. बात की बात	...	१.००
५. चमत्कारों की दुनिया	...	०.७५
६. महाभारत की कहानियां	...	१.००
७. कबरों का विलाप	...	०.३७
८. वीर बौना	...	१.२५
९. मिट्टी का कलश	...	१.२५
१०. सिनेमा की कहानियां	...	०.४०
११. अमावस का चांद	...	२.००
१२. समुद्र की कहानियां	...	२.००
१३. उपयोगी कहानियां	...	०.३१
१४. सात कहानियां	...	०.७०
१५. गुड़गुड़ी	...	०.५०
१६. बुलबुल	...	०.५०
१७. फूलों की डाली	...	०.८७
१८. जंगल की कहानियां	...	०.७५
१९. चुने हुए फूल	...	१.००
२०. सिंधी की श्रेष्ठ कहानियां	...	२.५०
२१. बिलाड़ और चूहा	...	०.२५
२२. वायुयान की कहानी	...	०.४०
२३. जलयान की कहानी	...	०.४०
२४. मोटरकार की कहानी	...	०.४०
२५. पाव भर आटा	...	०.३७
२६. गर्मी की कहानी	...	१.५०
२७. निराला जानवर	...	०.७५
२८. सूझबूझ की कहानियां	...	०.७५
२९. मोपासाँ की चुनी हुई कहानियां		१.००
३०. शिक्षाप्रद कथाएं	...	१.२५
३१. भारतीय कथाएँ	...	१.२५
३२. महापुरुषों की कथाएँ	...	१.२५
३३. अञ्जलिका	...	१.६२
३४. सदाचार की कथाए	...	१.२५
३५. एक स्वप्न एक सत्य	...	१.००
३६. ज्वार भाटा	...	१.००
३७. आभा	...	१.००
३८. आरती	...	१.००
३९. सागर और मनुष्य	...	१.००
४०. मुक्ता	...	१.००
४१. संस्कार संसद	...	१.००
४२. आदमी एक चेहरे अनेक	...	०.९०
४३. आपका शरीर	...	१.००
४४. प्यार की जिंदगी	..	१.००
४५. संघर्ष	...	१.००
४६. बर्फ का दर्द	...	१.००
४७. बीती बात	...	१.००
४८. पंकज और पानी	...	१.००
४९. एक गधे की आत्मकथा	...	१.००
५०. एक सवाल	...	१.००
५१. कलाकार का प्रेम	...	१.००
५२. भाग्य रेखा	...	१.००
५३. सभ्यता की ओर	...	१.००
५४. छोटी सी बात	...	१.००
५५. इन्सान या शैतान	...	१.००
५६. अधूरा सपना	...	१.००
५७. डूबा क्षितिज	...	०.९०
५८. अनन्त पथ पर	...	२.२५

मिलने का पता :— **विश्वेश्वरानन्द पुस्तक भण्डार**, साधुआश्रम, होशियारपुर।

इस अङ्क में पढ़िए

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, ज्येष्ठ, २०२१; जून १९६४ { संख्या ४

वेदामृत—

आराधना

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥

हे प्रकाश-स्वरूप, हम नित्यप्रति रात-दिन आप की शरण में आते हैं। हम आप को ही ध्याते और प्रणाम करते हैं। —ऋग् (१, १, ७)

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥

हे परम अग्नि-स्वरूप, आओ, हमें दर्शन दो ताकि हमारा कल्याण हो। आप हमारे पिता हो और हम आप के पुत्र हैं। —(ऋग् १, १, ९)

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥

हे प्रभो, आप अमृत हो और मैं मौत का ग्रास बना हुआ हूं। कृपा करो, मेरे हार्दिक कराहने को सुनो। तुम्हारे यहां किसी बात की कमी नहीं है। हमें यश प्रदान करो। हमें उत्तम सन्तान दो। हमें अमृत-पद की प्राप्ति कराओ। —(ऋग् ५, ४, १०)

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा ।
तं घेदग्निर्वृधावति ॥

जिस के नम्र स्वभाव और उत्तम यज्ञमय जीवन को हे प्रभो, तुम स्वीकार करते हो वही फूलता और फलता है। —(ऋग् ८, ७५, १४)

विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥

हे प्रकाशस्वरूप प्रभो, आप हमारी सदा ऐसे रक्षा करते रहे हो जैसे पिता सन्तान की रक्षा करता है। प्रभो, आगे भी कल्याण ही करते रहें। —(ऋग् ८, ७५, १६)

—'वेदसार' से

विश्व-सत्संग*

ईशावास्योपनिषद् के पहले छः मन्त्र

[आचार्य विश्वबन्धु]

सामान्य दिग्दर्शन

उपनिषद् का प्रथम मंत्र है :—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

इसका अर्थ यह है कि इस विशाल ब्रह्मांड के अन्दर जितने भी स्थान हैं, जितने भी ग्रह, नक्षत्र तथा आकाश हैं, उन सबमें ईश्वर विराजमान है। ईश्वर सर्वत्र समाया हुआ है और सबका मालिक है। यह सारा संसार उसी का है। इसलिए इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का अपने भीतर अनुभव करके ही हमें अपना सब आचरण बनाना चाहिए।

आचरण का मुख्य विषय क्या है! यह जो सब धन या वस्तुएं हैं, उनका हम उपभोग करें परन्तु यह समझ कर कि वह हमारी नहीं अपितु किसी और की हैं। यह सब सम्पत्ति केवल उपयोग करने के लिए ही है। इसलिए उसका उपयोग त्याग-भाव के साथ ही होना चाहिए। संपत्ति हमेशा हमारी नहीं रहेगी, कभी-न-कभी वह अवश्य छूट जायगी। इसलिए दान-भाव से उसका उपयोग करना चाहिए।

'कस्य स्विद्धनम्।' 'क' का अर्थ है ईश्वर। अर्थात् धन ईश्वर का है, हमारा नहीं है। कितने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की गई है। इसमें कोई संशय नहीं होना चाहिए। यह वाक्य प्रश्नात्मक नहीं है, अर्थात् मनके भीतर धन का त्याग करके उसका उपयोग किया जाय। यह समझा जाय कि मैं ईश्वर का बन्दा उसके धन का भोग करने वाला हूँ। मैं इस संसार में कुछ समय के लिए आया हूँ और यहाँ जो खेती, दुकान, नौकरी आदि मेरे जिम्मे है, उसका काम कुछ समय तक ही मुझे चलाना है।

'म गृधः।' लालच मत कर। ऐसा कौन हो सकता है जो लालच न करे? वही जो त्याग-पूर्वक उसका भोग करने में समर्थ है। जो यह मानकर चलता है कि धन मेरा नहीं है, किसी और का है, और मुझे थोड़े समय के लिए ही उसका भोग करना है।

दूसरा मन्त्र है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

इसका अर्थ है कि मनुष्य सभी कर्त्तव्य-कर्मों को भली प्रकार करता हुआ सौ वर्ष जीने का प्रोग्राम बनाए। ऐसा करने से ही कर्म उससे लिपटेगा नहीं। कर्त्तव्य-कर्म यानी यज्ञमय कर्म। भगवदर्पित कर्म। फ़ारसी में इसे ही 'करम' कहा है। ऐसा कर्म करने वाला फ़य्याज़ होता है, उदार होता है। पूर्ण आयु जीवित रहकर उसे ऐसे उदार कर्म करते रहना चाहिए। कर्म को पवित्र समझना चाहिए। जो प्राप्त है, उसकी रक्षा करना, तथा जो प्राप्त करना है, उसकी कामना करना तथा उसके लिए उपाय करना सब भान्ति उचित है। मनुष्य सदा नई-नई वस्तु प्राप्त करता रहे, नई-नई उन्नति करता रहे, आगे बढ़ता रहे। उस सबकी रक्षा भी करता

* संस्थान में प्रति रविवार सायम् समय "विश्व-सत्संग" लगा करता है। इस में विश्व-मानवता के व्यापक दृष्टिकोण से शास्त्रीय प्रवचन होते हैं। इस स्तम्भ में उन्हीं का सार दिया जाता है। पाठकों से हमारा सप्रेम अनुरोध है कि अपनी सुविधा के अनुसार संस्थान में भी दर्शन देते रहें। —विश्वबन्धु

रहे। इसीलिए सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। वह संकल्प-शक्ति को इस दिशा में लगाए। महात्मा गाँधी १२५ वर्ष जीवित रहना चाहते थे। यदि उनका जीवन स्वाभाविक रीति से चलता रहता, तो शायद वे इसमें सफल हो जाते।

जीवन का यह सारा समय अच्छे काम में ही लगना चाहिए। बुराई ही करनी हो, तो कल के बजाय आज मर जाना ठीक है। उस बौद्ध भिक्षु की कथा सबको मालूम होगी, जिसे स्वर्ग ले जाने पर उसने कहा कि जब तक एक भी व्यक्ति दुःखी और पीडित है, तब तक मुझे स्वर्ग जाना स्वीकार नहीं है।

अन्य कोई उपाय नहीं है। यही एकमात्र उपाय है। कोई और मार्ग श्रेष्ठ जीवन-यापन का नहीं है। सबके कल्याण में ही मेरा भी कल्याण है, यह संसार-भर के सन्त-महात्माओं ने कहा है।

'न कर्म लिप्यते नरे'। यहाँ 'नर' शब्द का एक अर्थ यह भी है कि यह कार्य बड़े शूरवीर के लिए ही संभव है। दूसरा अर्थ है अनासक्त। अनासक्त व्यक्ति, जिसका सब सांसारिक भाव उससे निकल गया है, 'नर' कहलाता है। ऐसा ही व्यक्ति मुक्त हो सकता है और भली-भान्ति अपने कर्त्तव्य-कर्म पूर्ण कर सकता है।

तीसरा मन्त्र है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

उपर्युक्त प्रकार से कर्त्तव्य-कर्म न करने वाला व्यक्ति इस संसार में तो अंधकार में डूबा ही रहता है, इसके आगे भी उसी में डूबा रहेगा। केवल अपने स्वार्थ का ध्यान रखने वाला व्यक्ति डूबता ही है। वह अपना नाश स्वयं करता है। जो स्वयं ही पका कर स्वयं ही खा लेता है, दूसरों को पूछता भी नहीं, वह असुर है।

चौथा और पाँचवा मन्त्र इस प्रकार है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

इन दोनों मन्त्रों में ईश्वर की व्यापकता का भाव ही विविध रूप से व्यक्त किया गया है। वह स्थिर है, गतिशील है। यहां भी है, वहां भी है, उसके परे भी है। वह दूर है, वह निकट है। वह बाहर है, अन्दर भी है। तात्पर्य यह कि वह सर्वत्र व्यापक है।

इसके बाद छठे मन्त्र में भी यही बात दुहराई गई है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

जो भूतों को ईश्वर में और ईश्वर को सब भूतमात्र में देखता है, वही उसे जानता है।

एक कथा है कि एक बार सभी देवताओं में बहस हुई कि कौन सबसे बड़ा है। इसका निर्णय कैसे हो? निश्चय हुआ कि सभी दौड़ लगाएँ। अग्नि, वायु, इन्द्र, रुद्र आदि सभी देवता एक लाइन में खड़े होकर एक-साथ दौड़ें। पर एक देवता खड़ा ही रहा। वह एक इंच भी नहीं हिला। पर देखा यह गया कि अन्य देवताओं के लक्ष्य पर पहुंचने से पहले ही वह वहाँ जा पहुँचा था। फिर पता लगा कि वह तो सर्वत्र विद्यमान है, उसे तो कहीं आने-जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। ईश्वर-रूपी यह रस्सी सर्वत्र मौजूद है। उसे हाथ से पकड़ कर हमें उसके समीप पहुंच जाना चाहिए। उस रस्सी में ही सारा संसार बसा है। जब वह मेरे अन्दर आ गई, तो उसके साथ सब प्राणी भी मेरे अन्दर आ गए। फिर मैं अकेला नहीं रहा। तब, फिर, यदि मैं किसी के लिए कुछ करता हूं, तो भावना यही होगी कि मैं अपने ही लिए कर रहा हूं। सबसे बड़ा स्वार्थ परोपकार होता है।

वीर-सतसई की वीर वनिताएँ

[डॉ० रामस्वरूप]

जब किसी स्वतन्त्र राष्ट्र पर कोई अन्य बलशाली देश आक्रमण करता है तब वहां के वीर नागरिक अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। कोई तन देता है, कोई मन देता है और कोई धन देता है। तात्पर्य यह कि ऐसे विकट काल में कोई भी सच्चा स्वदेश-प्रेमी ऐसा नहीं रहता जो एक व दूसरे प्रकार के उत्सर्ग के लिए सन्नद्ध न हो जाए। ऐसे समय में पुरुष तो अपने पौरुष के जौहर दिखाने के लिए और मातृ-भूमि का ऋण चुकाने के लिए हँसते-खेलते और उछलते-कूदते हुए रण-क्षेत्र की ओर अग्रसर होते हैं, परन्तु प्रायः उनके परिवारों में चिंता-सी छा जाती है। कौन जाने माताएँ अपने पुत्रों से, पत्नियां अपने पतियों से और संतान अपने पिता से पुनः मिल सकेगी या नहीं। ऐसे समय में इस देश की नारियों की मनोवृत्ति कैसी होती थी—इस की झलक बून्दी (राजस्थान)के कवि-शिरोमणि सूर्यमल्ल (१८१५-६८ ई.) की वीर सतसई में सहज ही देखी जा सकती है।

इस वीर-भूमि की नारियां अपने गर्भस्थ बच्चों पर ऐसी वीरता के संस्कार डालती थीं कि युवकों को युद्ध-भूमि में प्राण देते और उन की पत्नियों को उनके साथ सती होते समय तनिक भी त्रास न सताता था। उस शिक्षा का प्रभाव बच्चों के जन्म लेते ही प्रकट होने लगता था। सूर्यमल्ल कहते हैं—

हूँ बलिहारी राणियाँ, भ्रूण सिखावण भाव।
नालौं बाढण री छुरी, झपटै जणियै साव॥
हूँ बलिहारी राणियां, साँचां गरभ सिखाय।
जाचा हंदै तापणै, हरखै धी दग लाय॥ (६४-६५)

—मैं उन वीर वनिताओं पर बलिहार जाता हूँ जो अपने भ्रूणों में ऐसे भाव भर देती हैं कि बच्चा तो जन्म लेते ही नाल काटने की छुरी की ओर लपकता है तथा बच्ची प्रसूति-गृह में जच्चा को आग तापने के लिए रखी हुई अङ्गीठी के अङ्गारों को एक टक देख कर हर्षित होती है।

कोई यह न समझे कि स्त्रियां सन्तान को ही सूरमा और सती बनाती थीं और स्वयं समय पड़ने पर प्राण-त्राण के लिए लुक-छिप जाती थीं। इस लिए कवि कहता है—

गोठ गया सब गेहरा, बणी अचाणक आय।
सीहण जाई सीहणी, लीधी तेग उठाय॥ (६०)

—जब कुटुम्ब के सब लोग किसी प्रीतिभोज में सम्मिलित होने को गए थे तब अचानक आ बनी—वैरियों ने घर को घेर लिया। उस समय सिंहनी मां की सिंहनी बेटी ने तुरन्त तलवार उठा ली और डट कर मुकाबला किया।

यह तो थी तब की बात जब वह वीरांगना अकेली थी। यदि घर में ननद के साथ भाभी भी हुई तब तो 'एक-एक और दो ग्यारह' की लोकोक्ति चरितार्थ हो गई। शत्रुओं का ऐसा अतिथि-सत्कार किया गया कि जीवन-भर स्मरण रहा होगा—

भाभी हूं डौढ़ी खड़ी, लीधाँ खेटक रूक।
थे मनुहारौ पाहुणाँ, मेड़ी झाल बंदूक॥ (६१)

ननद बोली—अरी भाभी, मैं खड्ग और ढाल लेकर ड्योढी पर खड़ी होती हूं। तुम बन्दूक लेकर ऊपर के कमरे में जा पहुँचो और इन पाहुनों की खूब पहुनाई करो।

न पाँचों उंगलियाँ बराबर होती हैं, न सभी पुरुष पराक्रमी होते हैं। फिर कहीं किसी कान्त ने कायरता दिखा भी दी तो कान्ता ने उस की कमी पूरी कर दी। कमी ही पूरी नहीं की, पति के पौरुष पर भी आंच नहीं आने दी—

भागै कन्त लुकाय धन, ले खग आतौं धाड़।
पहर धणी रा पूंगरण, जीती खोल किंवाड़॥ (१०६)

—भाग कर आए हुए पति को पत्नी ने छिपा लिया; उसके वस्त्र इसने स्वयं पहन लिए; हाथ में तलवार उठा ली और घर का द्वार खोलकर आक्रमण-

कारियों को पराजित कर दिया। इस प्रकार शत्रु भी परास्त हो गए तथा पति की प्रतिष्ठा भी बच गई।

युद्ध छिड़ने पर वीरांगनाएँ व्याकुल न हो उठती थीं, बल्कि अपने पतियों को संग्राम में जौहर दिखाने की सहर्ष प्रेरणा करती थीं। ऐसी ही एक नारी अपने स्वामी से इस प्रकार कहती है—

घण आखै जागो धणी, हूँकल कलल हजार।
बिण नूँतारा पाहुणा, मिलण बुलावै बार॥(५२)

—हे पतिदेव, निद्रा का परित्याग कीजिए। सहस्रों लोग बाहर युद्ध का शोर मचा रहे हैं। ये बिना बुलाए मेहमान आप को मिलने के लिए बाहर बुला रहे हैं। अतिथि को निराश लौटाना भारतीय संस्कृति में निंद्य माना जाता है; इसलिए चलिए और इन की खूब खातिर कीजिए।

युद्धार्थ प्रेरणा ही पर्याप्त नहीं मानी जाती थी। रण-भूमि में या तो पति को विजयी होना होता था या वहीं वीरगति प्राप्त करना। संग्राम से या तो वह विजेता के रूप में घर लौट सकता था या शव के रूप में। पराजित पति को घर में आया देख कर जहां वीर क्षत्रानी का कलेजा टूक-टूक हो जाता था, वहां वह अपने सुहाग चूड़े के टुकड़े-टुकड़े कर डालती थी—

बिण मरियां बिण जीतियाँ, धणी आवियाँ धाम।
पग पग चूड़ी पाछटूं, जे रावत री जाम॥ (१७६)

वीर क्षत्राणी कहती है—हे प्राणनाथ, यदि आप बिना मरे या बिना जीते घर में आए तो याद रखिए, यदि मैं वीर की पुत्री हूँ तो अपनी चूड़ियों को चूर-चूर कर इधर-उधर फेंक दूंगी।

सूर्यमल्ल ने वीर वनिताओं का वर्णन अनेक रूपों में किया है और खूब किया है; परन्तु जो चित्रण उन्होंने वीर-पत्नी का किया है, वह वस्तुतः अनुपम है। जितना उल्लास उसे अपने पति की वीरता को देख कर और उस का वर्णन करके प्राप्त होता है, उतना किसी अन्य वस्तु से नहीं। विवाह-संस्कार में पति ने पत्नी का पाणि-ग्रहण किया। वर की हथेली पर खड्ग की मूठ के निशान के स्पर्श से ही वधू यह अनुमान करके धन्य हो गई कि लाखों से घिर जाने पर भी ये मेरी चूड़ियों को लज्जित न होने देंगे। परन्तु अनुमान तो अनुमान ही होता है, उस की पुष्टि तो प्रत्यक्ष द्वारा ही होती है। प्रथम-मिलन में वधू ने पूछ ही तो लिया—

पहल मिले घण पूछियौ, किण कौधा किण हत्थ।
बीजड़ साहे बोलियौ, इण डाकण भू-अत्थ॥ (१५३)

—हे प्राणेश्वर, आप की हथेली पर ये कठोर चिह्न किस से हुए हैं? वीरवर ने हाथ में तलवार उठा कर उत्तर दिया— प्रियतमे, जब मातृभूमि की रक्षा के लिए शत्रुओं से लड़ा, तब इस शत्रु-भक्षिणी डाकिनी से हुए हैं।

विवाह के अवसर पर बजने वाला ढोल मांगलिक और शृङ्गारिक होता है, सांग्रामिक नहीं; परन्तु उस की भी ध्वनि का वीर वर-वधू पर क्या प्रभाव पड़ा उसे सूर्यमल्ल यों वर्णन करते हैं—

ढोल सुणंता मंगली, मूंछाँ भूंह चढन्त।
चँवरी ही पहिचाणियौ, कँवरी मरणौ कन्त॥(१५५)

—उस वैवाहिक शुभ ढोल को सुनते ही सूरमा वर की मूँछें भौंहों पर जा चढ़ीं। इस अप्रत्याशित दृश्य को देख कर वधू को वेदी पर ही विदित हो गया कि मेरा पति वीर है और शीघ्र ही वीरोचित गति का भागी बनेगा।

साहित्यिक जगत् में प्रसिद्ध ही है कि चकवा-चकवी रात्रि में वियुक्त रहते हैं और दिन में संयुक्त। वियोग के समय मिलनार्थ व्याकुलता सहज ही होती है। एक रात ऐसा हुआ कि वीर थोड़ी देर के लिए निद्रा-मग्न हुआ तो एकाएक विरहिणी चकवी ने चिल्लाना आरम्भ कर दिया। इस पर वीर-पत्नी बोली—

पीरपियाँ सूतौ धणी, कुरलै चकवी काय।
देखीजैं मुख दीहरै, सुख दो जाम सिवाय॥(१०६)

—अरी, चकवी, तू इतना क्यों चिल्ला रही है? दिन-रात युद्ध-निरत पति सोते ही न थे; बहुत धैर्य दिलाने पर तनिक, आँख लगी है। इस समय ज़रा चुप कर जा। दिन चढ़ने पर चकवे से मिलने का सुख दो पहर अधिक प्राप्त कर लेना। जब मेरे स्वामी दिन को अद्भुत युद्ध करेंगे तो उसे देखने के लिए सूर्य भी दो पहर तक अपना रथ रोक लेंगे। इस समय की कसर उस समय पूरी हो जायगी। अब तो चुप कर ही जा।

कई लोग ऐसे होते हैं जो अपनी भूमि को शत्रु से खाली करा लेने पर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु वीर सतसई की वीर-पत्नी का पति वैसा नहीं है। वह अपने पति के स्वभाव का परिचय अपनी सखी को इस प्रकार देती है—

नाह न छोडै बीच ही, दड़ियां जिम दोटाय।
घर घाते रण हूँसियां, आसी अरर जुड़ाय ॥(१७१)

—मेरा पति शत्रुओं को बीच में ही छोड़ आने वाला नहीं है। जैसे पोलो को खिलाड़ी गेंद को मारते-मारते गोल के अन्दर धकेल देता है, वैसे ही यह भी उन्हें उनके घर के अन्दर घुसेड़ आयगा और तब लौटेगा जब वह अन्दर से द्वार को अर्गला लगा देंगे।

सिनेमा-सरकस, नाच-गान आदि खेल-तमाशे जन-साधारण के मनोविनोद के कारण होते हैं। युद्ध-वीरों के मन इन से प्रसन्न नहीं होते। वीर-पत्नी अपने पति के प्रिय तमाशे का वर्णन इस प्रकार करती है—

और तमासा कायरां, बेखै नह धव वाण।
घाव हबक्कै, भड़ बकै, जिके तमासौ जाण ॥(१७३)

—अरि सखी, अन्य तमाशे तो कायरों को ही अच्छे लगते हैं। प्रियतम को उन्हें देखने की आदत नहीं है। उन्हें तो वह तमाशा अच्छा लगता है, जिस में शत्रुओं के घावों से रुधिर के फ़ुहारे चलते हों और वे पीडार्त्त हो कर प्रलाप करते हों।

सच्चे वीरों में एक प्रकार की दयालुता भी विद्यमान रहती है। यह सत्य है कि परिस्थितियों से विवश हो कर उन्हें शत्रु-संहार करना पड़ता है, परन्तु उस संहार में भी क्रूरता का यथाशक्ति परिहार किया जाता है। वीर-पत्नी को इस बात का सन्तोष है कि रोष में भी उसके पति नृशंसता रूपी दोष से दूषित नहीं होते। वह कहती है—

निरदय दीठा आन भड़, कूकावै पर सैन।
वाहै कन्त दयाल है, अरियां हाय सुणै न ॥ (१८४)

—हे सखी, मुझे अन्य भट तो निर्दय ही दिखाई देते हैं। वे इस प्रकार से युद्ध करते हैं कि घायल शत्रु-सैनिक दर्द से आकाश सिर पर उठा लेते हैं। परन्तु मेरे पति ऐसे दयापूर्ण प्रहार करते हैं कि कोई वैरी आह-ऊह नहीं करता, सभी क्षण-भर में प्रेत-पुरी में पहुँच जाते हैं। ध्वनि से यह अर्थ भी प्रतीत होता है कि अन्य योद्धा अनाड़ियों के समान घायल ही कर पाते हैं, परन्तु वीरपत्नी का युद्ध-निपुण पति एक ही वार से वैरी का काम तमाम कर डालता है।

कुशल योद्धा को यह चिन्ता नहीं होती कि प्रति-द्वन्द्वी योद्धा कितने हैं। उसे अपनी रण चातुरी और गोला-बारूद का भरोसा होता है। उसे तो एक अन्य प्रकार की चिन्ता ही सताती है जिसे वीर-पत्नी यों व्यक्त करती है—

पैला सुणिया पांच सै, घर में तीर हजार।
आधा किण सिर ओरसी, जे खिज सी जोधार ॥ (२२४)

—सुना है शत्रु केवल पांच सौ ही हैं और घर में बाण रखे हैं एक सहस्र। मेरा वीर पति यदि क्रुद्ध हो गया तो शेष आधों से किन के सिर छेदेगा? ध्वनित यह होता है कि उसका पति इतना कुशल योद्धा और अचूक लक्ष्यवेधक है कि अकेला ही सहस्रों का संहार कर देता है और उसका एक भी वार खाली नहीं जाता।

कई वार ऐसा होता है कि पुरुष प्रवास में होते हैं तो पीछे स्वदेश पर आक्रमण हो जाता है। ऐसी अवस्था में वीर-पत्नी यह जान कर प्रसन्न नहीं होती कि न मेरा पति युद्ध में जायगा और न मेरे सुहाग पर आंच आने की आशंका होगी। उसे अपने पति के स्वदेश-प्रेम और वीरता पर पूर्ण विश्वास होता है जिस से प्रेरित हो कर वह कहती है—

सखी भरोसो नाह री, सूनौ सदन न जाण।
फूल सुगन्धी फौज में, आसी भंवर उडाण ॥ (२३२)

—हे सखी, तू मेरे सदन को सूना मत समझ। मत समझ कि इस घर से कोई भी व्यक्ति सेना में भर्ती न होगा। मुझे अपने भर्ता का पूरा भरोसा है। ज्यों ही वह सुनेगा कि देश की रक्षा के लिए सेना सज्जित की जा रही है, वह ऐसे उड़ कर आ पहुँचेगा जैसे सुगन्धित सुमन पर भ्रमर।

और जब उसका पति एक वार सेना में भर्ती हो गया तब किस का सामर्थ्य है कि उसके देश की चप्पा-भर भूमि भी दबा सके अथवा उसकी धन-सम्पदा का अपहरण कर सके। भूमि वा द्रव्य तो दूर, वह अपनी मातृभूमि का एक तिनका तक भी शत्रु को नहीं ले जाने देता—

अरियाँ जे त्रण आपणा, मुख मुख सीधा माय।
जाण न धव दीधाजिके, लीधा फेर पड़ाय ॥ (२५६)

—हे माता, शत्रु ने परास्त हो कर प्राण-त्राण के लिए हमारे देश का तिनका दांतों में दबा कर अपनी दीनता प्रकट की और अपने अपराध के लिए क्षमा-याचना की। तब मेरे पति ने उसे क्षमा तो कर दिया, परन्तु वह दांतों वाला तिनका यहीं रखवा लिया, स्वेच्छा के विरुद्ध विदेश न जाने दिया।

इसी प्रकार की पति की वीरता की व्यंजक उक्तियाँ वह सास, देवरानी, जेठानी, ननद आदि से कहती है जिन्हें पढ़ कर पाठक रोमाञ्चित हो उठता है। अन्त में नौबत यहाँ तक पहुँचती है कि हमारे देश की वीर-पत्नियों के नाम शत्रु-देश की स्त्रियों के क्षमा-याचना के सन्देश आने लगते हैं—

कह पंथी जिण गाम धण फाटक घर न जुड़ाय।
अब तो चूड़ौ ऊबरै, सूर धणी समुझाय ॥ (१३८)

शत्रु-पत्नी कहती है—अरे यात्री, जिस देश की स्त्रियां अपने घर का द्वार बन्द न करती हों, उस देश की नारियों को कहते जाना कि अपने वीर पतियों को कृपया ऐसे समझा दें कि जैसे-तैसे हमारे चूड़े बच जायँ।

किसी को यह भ्रम न हो कि वीरपत्नी पति की वीरता पर ही उल्लसित होती रहती थी। वह उत्कण्ठा-पूर्वक उस दिन की प्रतीक्षा करती थी जिस दिन उस का विजयी प्राणाधार हँसता-मुस्कराता उसे आ मिलेगा और वह प्रसन्नता से फूली न समाती हुई उसकी तथा उसके अश्व की आरती उतारेगी। परन्तु यदि दैव वह दिन दिखाए जब उस का प्राणनाथ मातृभूमि के काम आए तो वह चील से यों बिनती करती थी—

समली और निसंक भख, अंबक रहम जाह।
पण धण रो किम पेख ही, नयण बिणट्ठा नाह। (१७)

—अरी चील, मेरे पति के शव के और अंगों को निःसंकोच खा जा, परन्तु उनके नेत्रों पर चोंच न चलाना। कारण, यदि वे नयन-विहीन हो गये तो कैसे देखेंगे कि अपनी सहगामिनी होने की प्रतिज्ञा का पालन कैसे कर रही हूं।

उस के दुर्भाग्य का दिन तो वह होता था जब उसका पति प्राणों के मोह या परिवार के प्रेम के कारण अपने कर्तव्य से च्युत हो कर घर भाग आता था। उस अभागे दिन वह सधवा होती हुई भी निज को विधवा समझती थी और समग्र बनाव-सिंगार का परित्याग कर विधवाओं के सदृश जीवन-यापन आरम्भ कर देती थी। यदि दर्जिन उसके घर में सुन्दर वसन सीने के लिए आती तो वह उससे कहती—अरि दर्जिन, आज से तू मेरे लिए लम्बा, विधवाओं का-सा, चोला सी कर लाया कर। फैशनदार कपड़े अब मुझ से पहने न जा सकेंगे। माना कि कुर्तों की सिलाई कम होती है, परन्तु तू इस की चिन्ता न कर, सिलाई मैं तुझे पूरी ही दे दिया करूंगी। और जब कोई मनिहारिन सिंगार का सामान ले कर उस के घर में आ जाती तब वह उसे कहती—

मनिहारी जा री सखी, अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया, विधवां कसा वणाव ॥ (८४)

—अरी मनिहारिन, तू चली जा, आज से हमारी हवेली में मत आया कर। मेरा मुआ पति युद्ध से भाग कर जीता घर लौट आया है। क्या विधवाओं को शृंगार शोभा देता है?

कायर के भाग आने पर पत्नी पर ही विपत्ति नहीं पड़ी, रंगरेजिन, गंधिन और सुनारिन भी कायर को कोसने और अपने भाग्य को धिक्कारने लगीं। रंगरेजिन इस लिए कि सती होने वाली वीरपत्नी के लिए उसने जो विशेष वस्त्र रंगे थे, अब उन्हें कौन लेगा। गंधिन इस लिए कि उसी अवसर के लिए वीरपत्नी ने जो अत्यन्त महंगा अतर निकलवाया था उसका ग्राहक कौन होगा। और सुनारिन तो उस कायर को, रोती हुई, यों शाप देती है—

सोनारी झूरै कहै, रे ठाकुर कुल-खोय।
मूझ घड़ाई खोवणा, तूझ भड़ाई होय ॥ (८७)

अरे ठाकुर, तू ने तो अपने कुल का नाम ही नष्ट कर दिया। अरे मेरी मज़दूरी को मिटाने वाले कायर, तेरा सत्यानाश हो जाए बेड़ा गर्क हो जाय।

जैसे पत्नी अपने वीर पति की प्रशंसा करती है और कायर की कुत्सा, वैसे ही वीर-माता भी सूरमा सुत की स्तुति करती है और भीरु की भर्त्सना। वह तो पालने में झूलते पुत्र को ही ऐसी शिक्षा देती है जिस से

वह वयस्क होने पर प्राणों से हाथ भले ही धो दे धरती से नहीं—

इला न देणी आपणी, हालरियां हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाइ माय॥ (२३४)

सचमुच वह अपने लोरी के गीतों द्वारा ही पुत्र को मातृभूमि के लिए रणांगन में मर मिटने का महत्त्व सिखा देती है। 'इला न देणी आपणी' (अपनी भूमि किसी को नहीं देनी) यह पद्यांश राजस्थान में लोकोक्ति बन कर प्रत्येक राजपूत की जिह्वा पर नर्तन करता है और भूमि-रक्षा के लिए मर-मिटने की सतत प्रेरणा करता रहता है। क्या ही अच्छा हो यदि उक्त दोहांश प्रत्येक भारतीय की रसना का सतत सिंगार बन जाय और हमारे हृदयों में शौर्य का संचार करता रहे।

जो जननी पुत्र को ऐसा पराक्रमी बनाती है वह उसके कायरता दिखाने पर उसे खा जाने में भी संकोच नहीं करती—

डाकी ठाकर सहण कर, डाकण दीठ चलाय।
मायड़ खाय दिखाय थण पण वलय बताय॥ (१३)

—स्वामी अपने सेवक की कायरता पर उसे दण्ड न दे कर अपने मौन से ही उसे खा जाता है। डाकिनी अपने शिकार को निगल नहीं जाती, अपने दृष्टि-पात से ही हड़प कर खा जाती है। इसी प्रकार कायर की मां अपने स्तन की ओर संकेत करके, यह जतला कर कि तुम ने मेरे दूध को लाज लगा दी, अपने पुत्र को खा जाती है, और पत्नी अपने भगौड़े पति को अपना चूड़ा दिखा कर निगल जाती है। भाव यह कि कायर व्यक्ति प्रत्येक की आंखों से गिर जाता है और जीवन के शेष दिन मृतकवत् ही व्यतीत करता है।

युद्ध में प्राणत्याग मात्र का कोई महत्त्व नहीं। मज़ा तो तब है जब योद्धा अनेक वैरियों को यमपुर पहुंचा कर धराशायी हो। जो पर-प्राण लिये विना स्व-प्राण दे देता है उसकी मृत्यु पर न माता मुदित होती न पत्नी प्रसन्न—

सुण मरियौ सुत एकलौ, सासू प्रभणै धार।
मो जणियौ कायर थियौ, बेटी बलण निवार॥ (२७५)

सास बहू से कह रही है—सुना है मेरा बेटा अकेला मरा है, शत्रुओं को मार कर नहीं मरा। स्पष्ट है कि वह भीरु सिद्ध हुआ है। बहू, ऐसे कायर पति के संग सती होने का विचार छोड़ दे। सती तो वीर पतियों के साथ हुआ जाता है।

राष्ट्रीय संकट के समय ऐसा नहीं होता कि सैनिक तो रणक्षेत्र की ओर अग्रसर हों और नागरिक चैन की बंसरी बजाते रहें। प्रत्येक नागरिक हर सम्भव उपाय से देश को विजयी बनाने में सहयोग देता है—

ढोलण ढोली सूँ कहै, पलां उतावल मांह।
भीड़ै वाह दुवाह चर, भीड़ै नाह सनाह॥ (४५)

युद्ध आरम्भ होने को था। साईस घोड़े को कस रहा था और सैनिक कवच को। ढोलिन ने यह बात देखी तो तुरन्त पति से बोली—तुम भी चलने को उद्यत हो जाओ।

ऐसे राष्ट्रीय रण-यज्ञ में सामान्य जन ही आहुति नहीं डालते, बड़े-से-बड़े लोग भी अपने पद का अभिमान छोड़ कर कार्य करते हैं—

पर दल पाड़ै घूमता, नाह जुहारै आय।
राणी इसड़ा रावतां, हाथां नीम बटाय॥ (२५२)

—जो घायल हो कर भी शत्रु संहार करना नहीं छोड़ते और विजयी हो कर अपने स्वामी को प्रणाम करते हैं, हे रानी, उन के इलाज के लिए तो अपने हाथों से नीम पीसनी चाहिए। सच है जहां रानियां अपने देश के घायल योद्धाओं के लिए अपने हाथों से नीम पीसने में, स्वेटर बुनने में या अन्य सेवा-शुश्रूषा में कोई संकोच न करेंगी, वहां के वीर भट स्वदेश के लिए अपने प्राणों को तृणवत् क्यों न त्याग देंगे!

सचमुच सूर्यमल्ल की वीर-सतसई की वीर-वनिताओं का वर्णन पढ़ कर प्रत्येक प्रकार का अवसाद उत्साह में, कायरता शूरता में और निराशा आशा में परिवर्तित हो जाती है। आज आवश्यकता है कि इस प्रकार की कृतियों का घर-घर में पाठ हो जिस से हम आक्रान्ताओं को भारत से निकाल कर सुख की साँस लें।

सच्चा सुख

[श्रीमती लता बन्सल]

दो अक्षरों का यह छोटा-सा शब्द 'सुख' देखने में कितना लघु प्रतीत होता है किन्तु संसार में इसकी बहुत अधिक महत्ता है। प्रत्येक जीव क्या पशु, क्या मानव सभी सुख से रहना चाहते हैं, कोई यह नहीं चाहता कि हम दुःखी जीवन व्यतीत करें, किन्तु, फिर भी पग-पग पर हमें दुःख दृष्टिगोचर होता है। इस दुःख का मुख्य कारण है कि हम अस्थायी सुख के पीछे भागते हैं, हम प्राकृतिक वस्तुओं में ही सुख मानते हैं और भोग-विलास तथा ऐशो-आराम की ज़िन्दगी को ही सुखी जीवन समझते हैं। किन्तु यदि व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाए तो ऐसा नहीं है। क्योंकि यह प्राकृतिक पदार्थ अस्थायी हैं, इसलिए उनमें निहित सुख भी अस्थायी ही होगा। उदाहरणार्थ आज हम धनी हैं और इसी कारण समाज में हमारा आदर-सम्मान है, हम जिधर भी जाते हैं लोग हमें बड़े व्यक्ति मानते हैं, हमें किसी वस्तु का अभाव नहीं। इस अवस्था में हम दूसरों पर इतना अधिक निर्भर हो जाते हैं कि यदि अचानक ही किसी दुर्घटनावश हम इस सुख से वंचित हो जाते हैं तो एक छोटा-सा-छोटा कार्य करने में भी हम हीनता का अनुभव करते हैं।

इन सांसारिक सुखों के पीछे मनुष्य इतना पागल हो जाता है कि उसमें स्वावलम्बन, सहनशक्ति बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है और उसी का परिणाम होता है कि दुःख पड़ते ही मनुष्य निराश हो जाता है। यदि थोड़ी भी कठिनाइयों को सहने की हम में शक्ति नहीं है केवल भोग-विलास का ही जीवन हम बिताना चाहते हैं तो फिर हमारे व इन तुच्छ कीट-पतंगों के जीवन में क्या अन्तर हुआ। हम भी इन्हीं चीज़ों के लिए दिन-रात भागते हैं व कीड़े-मकौड़े भी उसी क्षुधा-तृप्ति के लिये अपना सम्पूर्ण दिन व्यतीत कर देते हैं। किन्तु परमात्मा ने मानव को जो सोचने के लिए बुद्धि दी है उसका भी तो कुछ उपयोग करना चाहिए।

अब प्रश्न उठता है कि वास्तविक सुख कौन-सा है। वह सुख है 'आत्मिक सुख'। अर्थात् आत्मा का सुख, जिस सुख को हम अन्दर से अनुभव करें और जो स्थायी हो इस सुख को प्राप्त करने पर हम में हीनता की भावना नहीं रहती। हम स्वावलम्बी हो जाते हैं तथा संकटकाल में भी हताश होकर नहीं बैठते, बल्कि उसके लिए पुरुषार्थ करते हैं और हर वस्तु को अच्छे दृष्टिकोण से देखते हैं।

शास्त्रों ने सच्चे तथा स्थायी सुख की प्राप्ति के लिये परा व अपरा दो विद्याएँ बताई हैं। अपरा विद्या में समस्त प्राकृतिक विद्याएँ आती हैं और परा विद्या है आत्मिक ज्ञान। विद्वानों का कहना है कि हमें इन दोनों विद्याओं का अध्ययन साथ-साथ ही करना होगा, तभी हमें सच्चा सुख मिलेगा। भोजन, वस्त्र, रहने के लिये स्थान आदि सब आवश्यक वस्तुएं हैं। इन प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करके न हमें ज्ञान मिलेगा और न ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकेगी। यदि हमारा पेट भूखा है, हम ठंड से सिकुड़ रहे हैं तो क्या ईश्वर-भक्ति में हमारा मन लगेगा। प्राकृतिक पदार्थ हमारे शरीर को उचित अवस्था में रखने के लिये आवश्यक हैं, किन्तु यदि हम प्राकृतिक वस्तुओं में ही सुख ढूढें तथा सुखी जीवन व्यतीत करने के लिए ही जीवित रहें तो दुःख निश्चित रूप से आयेगा।

शास्त्रों ने कहा है कि जो मनुष्य प्राकृतिक पदार्थों में ही सुख ढूंढता है वह मूर्ख है अज्ञानी है, किन्तु जो इसकी अवहेलना कर केवल आत्मा की ओर दौड़ता है वह उस से भी बढ़कर मूर्ख है। भारतवर्ष में एक समय ऐसा भी आया था जबकि समस्त संसार को झूठा बताकर प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करते हुए लोगों ने केवल जंगलों में जाकर तपस्या करने में ही सुख प्राप्त करना चाहा। उन्होंने कहा, दुनिया झूठी है उसे त्याग दो, केवल गेरुए वस्त्र धारण कर कठिन तपस्या करने से ईश्वर मिलेगा, और उसी का भयंकर परिणाम निकला एक हज़ार वर्ष की दासता। हमने

उन कठिन तपों द्वारा अपना शारीरिक बल नष्ट करके केवल रस्मी-धर्म व आडम्बरों में अपना समय बर्बाद किया, जिसके फलस्वरूप मुट्ठी-भर यवनों ने हमें इस निर्दयता से रौंद डाला और हम कुछ भी न कर सके। 'सोने की चिड़िया' कहलाने वाला भारतवर्ष यवनों द्वारा तहस-नहस कर दिया गया किन्तु हमें अपने रस्मी धर्म से फुर्सत ही नहीं मिली कि अपने देश की रक्षा करते।

इसके विपरीत पाश्चात्य देशों ने केवल अपरा विद्या का सहारा लिया है। उन्होंने अपने पुरुषार्थ से अपनी जनता को रहने-सहने का स्तर बहुत ऊंचा कर दिया है। सांसारिक वस्तुओं की उन्हें कमी नहीं। लेकिन यह सब होते हुए भी वे लोग चिन्तित हैं। विश्वयुद्ध का निरन्तर डर लगा हुआ है। बड़े-से-बड़े ध्वंसात्मक हथियारों का आविष्कार किया जा रहा है। उन्होंने औषध विज्ञान की उन्नति से शारीरिक रोगों पर बहुत हद तक काबू पा लिया है लेकिन उन देशों में मानसिक रोग बढ़ रहे हैं। प्रतिदिन हज़ारों मन नींद लाने वाली गोलियों का प्रयोग होता है। इन सब का कारण है, केवल प्राकृतिक विद्याओं की उन्नति, उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान की अवहेलना की है।

इसलिये शास्त्रमत-अनुसार हमें प्राकृतिक नियमों का पालन करना होगा, किन्तु एक निश्चित सीमा तक। जितना आवश्यक है उतना ही हम इन चीज़ों के पीछे भागें। हमारी इस जीवन-यात्रा में एक समय ऐसा भी आता है जबकि यह प्राकृतिक सुख समाप्त हो जाते हैं। जैसा कि 'अवकाश-प्राप्ति' के पश्चात् हमारा पद छिन जाता है। हमारी बंधी-बंधाई रोजी खतम हो जाती है केवल थोड़े से धन (जो कि पैन्शन के रूप में हम प्राप्त करते हैं) में हमें गुज़ारा करना पड़ता है। आरम्भ से हमें कोई सामाजिक रुचि पैदा करने की फुर्सत नहीं मिली। इसलिये चहुँओर हमें खालीपन-सा अनुभव होता है और हम इस हद तक दुःखी हो जाते हैं कि जीवन का एक-एक दिन बीतना कठिन हो जाता है। जब हमारे जीवन का सन्ध्याकाल ही दुःखी हो गया तो जीवन में दुःख-ही-दुःख रह गया। २० वर्ष जो सुख हम भोग चुके हैं वह भी इस दुःख के नीचे दब जाता है। यह जीवन-यात्रा हमने सुख से व्यतीत करने लिये आरम्भ की थी।

सो हमें यदि सुख चाहिये तो उस वास्तविक सुख को प्राप्त करना है जो स्थायी हो। हर स्थिति में हम सुखी रहें और प्रतिकूल वातावरण में भी दुःख न महसूस करें। हम सुखी रहने के लिये न जिएँ, बल्कि जीवन को सुखी बनायें। हम जीवन के अन्तिम क्षण तक यह कह सकें कि हमारी इस यात्रा का एक-एक दिन सुखद था और यह बड़े आनन्द से पूरी हुई। हमें मृत्यु से भय न लगे, बल्कि हँसते-हँसते हम उसका आलिंगन करें, यही है वास्तविक सुख अथवा सच्चे आनन्द की परिभाषा। जो मनुष्य इस सुख को पा लेता है उसका जीवन सफल हो जाता है और ऐसा ही व्यक्ति दूसरों के लिये भी मार्गदर्शन कर सकता है।

दो मुक्तक

[श्री ओम्प्रकाश भारद्वाज 'प्रभात']

(१)

फूल कागज के कभी क्या गंध भी बिखरा सकेंगे?
धूल के बादल कभी क्या नीर भी बरसा सकेंगे?
जो असत् का ले सहारा सत्य को ठुकरा रहे हैं?
वे अ-सित घन सत्य के रवि को कभी न छिपा सकेंगे!

(२)

बढ़ते पग की बाधाएँ असमानी करती हैं
दुर्बलता के साथ बहुत मनमानी करती हैं,
जिन चरणों में बढ़ने का दृढ़ निश्चय होता है
उनके आगे वे बाधाएँ पानी भरती हैं।

एक अनुकरणीय जीवन—

जन-सेवक तथा निर्भीक कार्यकर्त्ता मा. बिहारीलाल जी

[प्रा. सीताराम गुप्त]

प्रकाण्ड विद्वानों, महान् साहित्य-स्रष्टाओं और देश व समाज में प्रतिष्ठा-प्राप्त नेताओं का परिचय तो समय-समय पर पाठकों को मिलता रहता है, किन्तु प्रसिद्धि के प्रकाश से दूर रह कर जनसेवा में संलग्न रहने वाले सात्त्विक साधकों का पता बहुत कम लगता है। अतः प्रस्तुत लेख में ऐसे ही एक जन-सेवक तथा निर्भीक कार्यकर्त्ता मास्टर बिहारीलाल जी के आदर्श-स्वरूप अनुकरणीय जीवन की संक्षिप्त झांकी दी जा रही है।

मास्टर जी का जन्म सन् १८८३ में, दिल्ली से १२ मील दूर, कुतुब की लाट के कारण विख्यात गांव महरौली में, एक बहुत सामान्य घर में हुआ था। लगभग ८० वर्ष की आयु में १८ जनवरी १९६३ को उन का स्वर्गवास हो गया।

प्राथमिक जीवन—

महरौली में उन्होंने उर्दू के माध्यम से मिडिल तक की शिक्षा पाई। उन दिनों

था और यातायात की सुवि[illegible]ा भी न थी। अंगरेजी की शिक्षा के लिए जूनियर त[illegible]था सीनियर कक्षाओं का प्रबन्ध दिल्ली में था जिस के लिए बालक बिहारीलाल को नित्य प्रति दिल्ली जाने और गांव वापिस आने में २३-२४ मील पैदल चलना पड़ता था; किन्तु अध्ययन की रुचि के आगे यह कष्ट उन के लिए कोई बाधा न था।

सन् १९०५ में टीचर्स [illegible]निंग की परीक्षा देते ही वे गुरुकुल कांगड़ी चले गए। [illegible]हां वे महात्मा मुन्शीराम जी (= पूजनीय स्वामी श्रद्धानन्द जी) के निरीक्षण में गुरुकुल कांगड़ी के विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे। स्व. इन्द्र विद्यावाचस्पति तथा उन की कक्षा के अन्य विद्यार्थी उस समय के उनके शिष्य थे। उस समय उन का स्व. डॉ. चिरंजीव भारद्वाज जी [illegible]था आचार्य रामदेव जी से समीप का सम्पर्क रहा। मास्टर जी गुरुकुल के इतने भक्त थे कि जब इन की युवा अवस्था में इन की पत्नी का देहान्त हुआ तो यही नहीं कि जीवन-भर विवाह नहीं किया, अपितु अपनी स्त्री के सारे आभूषण गुरुकुल को दान में दे दिए। अपनी आय बहुत थोड़ी होते हुए भी उन्होंने कुछ भी अपने पास नहीं रखा।

गुरुकुल से ये जब लाहौर चले गए तब अपने गांव के कई आवारा बच्चों को समझा-बुझा कर लाहौर शिक्षा-ग्रहण के लिए ले जाते रहे। उन में एक तो इतना निर्धन था कि उस को अपने घर पर ही भोजन कराते रहे और डी. ए. वी. हाई स्कूल के मुख्याध्यापक स्व. बख्शी रामरतन जी से कह कर उसकी निःशुल्क शिक्षा की भी व्यवस्था करा दी। ये सब विद्यार्थी जीवन में इस तरह अच्छी पदवी प्राप्त कर सकें और अपने परिवार की अवस्था सुधार सकें।

मास्टर जी की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू माध्यम से हुई

की प्रेरणा से इन्होंने न केवल-स्वयं हिन्दी सीखी, अपितु अपने छोटे भाइयों को, पुत्र को और अपने गांव के अन्य बच्चों को जो भी उन के संपर्क में आए हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दिलाई।

अध्यापकों के अध्यापक—

लाहौर में तथा अन्य स्थानों में ये प्रायः जूनियर अथवा सीनियर टीचर्स ट्रेनिंग स्कूलों में अध्यापक रहे। कुछ वर्षों के अनुभव के पश्चात् इन की प्रतिभा और योग्यता का सिक्का लाहौर के शिक्षा-विभाग पर जम गया। बच्चों के मनोविज्ञान को भली प्रकार समझते हुए उन्होंने बच्चों के लिए सरल, शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक पुस्तकें लिखीं। इन में इन के लिखे "हिसाब का खेल-खिलौना" के कई भाग भी हैं। हिन्दी एवं उर्दू में इन की लिखी पुस्तकों की संख्या

६० के लगभग है। अध्यापकों के लिए इन्होंने एक पुस्तक "असूले हिसाब" लिखी। सभी पुस्तकों को पाठकों ने बहुत पसन्द किया और इन के अनेकानेक संस्करण प्रकाशित हुए। इस के अतिरिक्त समाचार-पत्रों में सामयिक विषयों पर तथा "रहनुमाए तालीम" मासिक पत्र में शिक्षा-सम्बन्धी इन के बहुत-से लेख प्रकाशित होते रहे। एक समय शिक्षा-विभाग के निरीक्षक महोदय ने इन को बुला कर जब यह कहा कि आप पत्र-पत्रिकाओं में लेख न लिखा करें तो इन्हों ने निर्भीक भाव से उत्तर दिया कि मैं सोचूंगा कि लेख लिखना छोड़ूं या सरकारी नौकरी छोड़ूं।

शिक्षा-विभाग में होने वाले भ्रष्टाचार और पक्षपात को यह कभी सहन न करते और समीपवर्ती अधिकारियों से संघर्ष करने तक में संकोच न करते। इनकी सदा यही भावना रहती थी कि जहां न्याय और सत्य है और साथ में योग्यता भी है, वहां भय किस बात का!

लाहौर में रहते हुए एक बार वे "जात-पाँत तोड़क-मण्डल" के प्रधान भी चुने गए। इस कार्य को करते हुए उन का आचार्य विश्वबन्धु जी और श्री सन्तराम जी के साथ घनिष्ठ तथा आजीवन मेल-जोल बना रहा।

मास्टर जी करनाल के ट्रेनिंग कालेज में जिन दिनों पढ़ाते थे तब की एक घटना है। इन का एक विद्यार्थी इन के बिना कहे ही इन के लिए अपने गांव से २-३ सेर घी ले आया। उन दिनों घी सुगमता से मिलता था और डाल्डा आदि का अथवा मिलावट का तो कोई नाम भी न जानता था। इन्होंने उस विद्यार्थी को पहले तो उस के घी के दाम दिए फिर पूछने पर जब ज्ञात हुआ कि उस घी का महसूल नहीं दिया गया है तो स्वयं चुँगीखाने जाकर महसूल दे आए।

रोहतक में जब प्लेग का आक्रमण हुआ उन दिनों ये वहीं थे। इन्होंने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए रोगियों के घरों में जा कर उनकी सेवा की। एक दिन उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि शायद वे स्वयं प्लेग की लपेट में आ जाएं। और, उनका कार्य रुक न जाए केवल इस विचार से वे अपने भाई के पास दिल्ली में चले गए। दो-एक दिन में ही स्वस्थ होने पर भाई के रोकने पर भी न रुके और रोहतक वापिस जा कर फिर प्लेग के रोगियों की सेवा का काम संभाल लिया।

ईसाई पादरियों ने भी इनके इस सेवा-कार्य की भूरि-भूरि सराहना की और इनको एक घड़ी तथा कुछ अन्य वस्तुएं पारितोषक के रूप में सम्मानार्थ भेंट कीं।

दिल्ली के प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री अमीर चन्द जी (जिन को फांसी का दण्ड मिला था) के साथी, "आकाश" पत्र के सम्पादक पं. गणेशीलाल 'खस्ता' पर जब गवर्नमैंट की ओर से लाहौर में अभियोग चला, तब उनके लिए लाहौर में निवास की समस्या अति विकट थी। कारण, उन दिनों पुलिस न केवल क्रांतिकारियों पर ही, अपितु उनके साथ किसी भी प्रकार का सम्पर्क रखने वालों पर भी कड़ी निगरानी रखती थी तथा उन्हें तंग करती थी। इस पर भी मास्टर जी ने उन्हें बिना किसी संकोच और भय के अपने घर में ठहराया। जब पुलिस ने इनसे पूछा तो इन्होंने स्पष्ट कह दिया कि ये तो मेरे गाँव के भाई हैं, इन्हें ठहराना मेरा कर्तव्य है।"

जन-सेवा की प्रबल भावना से ही वे समय से पहले ही सरकारी सेवा से निवृत्त हो गये।

रामताल गांधी आश्रम की स्थापना तथा कांग्रेस-कार्य—निवृत्त होने के बाद दो-तीन वर्ष तो वे रामजस स्कूलों में "आदरी अध्यापक" के रूप में अध्यापनकार्य करते रहे। इस के बाद महरौली से २-३ मील दूर रामताल के एकान्त वातावरण में, समीपवर्ती ग्रामों के बच्चों को शिक्षित करने और ग्रामवासियों की सेवा करने के सद्भाव से उन्होंने "गाँधी आश्रम" की स्थापना की। वे और उनके पुत्र श्री ज्योति प्रकाश रात-दिन परिश्रम करके उस काम में लगे रहे। अपने पास से व्यय करके भवन बनवाए। दिल्ली में पहला आधारिक (बेसिक) विद्यालय इस आश्रम में मास्टर जी के प्रयत्नों से स्थापित हुआ, जिसमें पढ़ने वाले बच्चों को आजीविका की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिए दस्तकारी शिक्षा का प्रबन्ध भी किया गया।

मास्टर जी की कर्मठता और अपूर्व जन-सेवा के

प्रभाव से यह गांधी आश्रम राष्ट्रीय आन्दोलन के समय सामाजिक एवं राजनीतिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गया। यहां की प्रगतिशील प्रवृत्तियों ने म. गांधी तथा सेठ जमनालाल आदि नेताओं को भी आकृष्ट किया था। आश्रम के वार्षिक उत्सव तथा अन्य राष्ट्रीय पर्व बड़े समारोह से सम्पन्न कराने में मास्टर जी की विशेष लगन थी। इन अवसरों पर, २–३ मील दूर महरौली से बांस-बल्ली आदि आवश्यक सामग्री मास्टर जी स्वयं अपने कन्धों पर उठाकर लाते और पहुँचाते रहे।

आश्रम की प्रगति और उसके परिणामस्वरूप आस-पास के देहातों में बढ़ते हुए जन-जागरण को अंगरेजी सरकार सहन न कर सकी और द्वितीय विश्व-युद्ध के दिनों में उसने आश्रम को अपने अधीन कर लिया। इन्होंने अ.ने रहने के लिए जो निजी मकान बनवाया था वह भी ले लिया गया। यह खेद और आश्चर्य की बात है कि आज १७ वर्ष बाद भी जब कि देश स्वाधीन हो गया है, यह उनका मकान सरकार के ही हाथ में है और उनकी मृत्यु के उपरान्त भी, उनके इकलौते जन-सेवक पुत्र श्री ज्योतिप्रकाश को नहीं मिला है।

मास्टर जी की सामाजिक एवं राष्ट्रीय सेवाओं के बारे में श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार जी ने अपने एक लेख में (द्र॰'दैनिक हिन्दुस्तान' दि॰ १९–४–६२) ठीक ही लिखा—

'उन दिनों दिल्ली के राष्ट्रीय नेता श्री आसफअली, प्रो॰ इन्द्र आदि गांवों के राष्ट्रीय आन्दोलन को मास्टर बिहारीलाल पर छोड़ कर निश्चिन्त हो जाते थे। कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्त्ता बन कर भी वह किसी गुट में शामिल नहीं हुए। महरौली से निर्विरोध चुने जाते रहे। बहुत वर्ष तक कांग्रेसियों के आपसी झगड़े मिटाने के लिए उन्हें ही सौंप दिए जाते थे। बाढ़-पीड़ित, शरणार्थी तथा अन्य सब विपत्तिग्रस्तों की उन्होंने सेवा की है। आर्यसमाज में उन दिनों गोरक्षा, समाज-सुधार, शुद्धि और जात-पाँत विरोधी आन्दोलन चलते रहते थे। उन में वह उत्साह से भाग लेते थे।

'महरौली की कोई सार्वजनिक प्रवृत्ति ऐसी न थी, जिस का नेतृत्व बिहारीलाल जी न करते। सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक सभी कार्यों में उन्हों ने पथ-प्रदर्शन किया। अस्पृश्यता-निवारण, हरिजनोद्धार, गोसेवा तथ कांग्रेस की राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में, आगे रहने के कारण उन्हें कट्टर पंथियों तथा सरकारी अधिकारियों का सदा कोप-भाजन रहना पड़ता था। परन्तु दृढ-संकल्प, सेवाव्रती और निर्भीक बिहारीलाल अपने मार्ग से विचलित न हुए। उन्हों ने अपने घर एक हरिजन नौकर रखा। उसे कुएँ पर चढ़ाने के प्रश्न पर रूढिपन्थियों से लोहा भी लेना पड़ा।'

यह है मास्टर बिहारीलाल जी के जीवन की संक्षिप्त झाँकी। लेखक के जीवन के तो वे निर्माता थे। वह जितना उनका धन्यवाद करे उतना ही थोड़ा है। उन्हीं के पुण्य प्रभाव और प्रेरणा का यह प्रताप है कि उनका पुत्र तथा उनके भतीजे जीवन की समस्याओं में निजी अनेकविध क्षतियां उठा कर भी सत्य के पथ पर चलते रहने का प्रयत्न करते रहते हैं।

(पृष्ठ १८ का शेष)

रहे, तत्पश्चात् एक गहरी उदास दृष्टि डालकर चुपचाप चले गए। कक्ष में उनकी पादुका की ध्वनि-प्रतिध्वनि काफी देर तक गूँजती रही।

"दुर्गा···दुर्गा···दुर्गा···दुर्गा···। मैंने गुरुदेव से स्पष्ट कह दिया है···कि······।"

परन्तु यह क्या? कक्ष तो सूना पड़ा है। उसके सर्वांग में तो जैसे उजड़े निकुंज की-सी अवसन्नता छा गई और वातावरण में अंधकार की हृत्-कम्प विवर्णता भर गई है। प्रतीत होता है जैसे किसी ने निर्ममता-पूर्वक उसकी श्री का अपहरण कर लिया है···

चन्द्रगुप्त के शब्द कण्ठ में फंस कर रह गये हैं। उनकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गई है। वे विकल स्वर में चिल्लाये—"दुर्गा··· ।"

प्रत्युत्तर न मिला। बस, उनकी ही आवाज उन कठोर दिवारों से टकरा-टकरा कर लौट रही है······ ★ ★ ★

पलकों की छाया में

[श्री सुमेरसिंह दइया]

"ऐसा कदापि नहीं होगा।"

"गुरुदेव!"

"मैं ठीक कह रहा हूँ, चन्द्र!"—महापंडित चाणक्य धीर-गम्भीर स्वर में बोले।

"गु···रु···दे···व ··!"—चन्द्रगुप्त दंग रह गए।

"हाँ, चन्द्र! एक नवयुवक की भावनाओं में बह कर नवोदित राष्ट्र के भविष्य को मैं अंधकार में धकेल नहीं सकता।"

"मैं आपका अभिप्राय नहीं समझा।"—अर्थपूर्ण दृष्टि डाल कर चन्द्रगुप्त ने पूछा।

आचार्य चाणक्य के होठों पर विद्रूप-भरी हँसी की रेखाएं फैल गईं।

"समझे नहीं अथवा समझना नहीं चाहते?"—चन्द्रगुप्त की आँखों में वज्र-सी कठोर दृष्टि गड़ा कर वे कहने लगे—"जिसके कंधों पर इतने बड़े राष्ट्र का दायित्व हो, भला वह इतनी-सी भी बात न समझे, आश्चर्य है।"

"मैं सच कह रहा हूँ, गुरुदेव!"—चन्द्रगुप्त ने घबराकर कहा।

अब अविश्वास करने का कोई कारण ही नहीं रह गया है। आज तरुण रक्त में इतना उबाल आ गया है, जो बरसाती नदी की भाँति कूल-किनारों की मर्यादा का उल्लंघन कर रहा है। उद्दाम लहरें तो जैसे आकाश की नीलिमा को छूने के लिए आतुर हो उठी हैं। यह उन्माद यदि वास्तविकता पर आवरण डाल कर व्यक्ति को वर्तमान से विमुख न कर दे तो इसमें अचरज कैसा! उसके आदर्श तथा सिद्धांतों को भूल-भुलैया के भ्रम-जाल में उलझा कर यदि उसे अपने लक्ष्य से च्युत न कर दे तो विस्मय कैसा? कर्तव्य-पथ की ओर बढ़ने वाले पैरों को डिगा कर यदि उनके जाग्रत विवेक को स्वप्नों के पालने में लोरियाँ देकर न सुला दे तो अचम्भा कैसा!

आज प्रथम बार आचार्य ने चन्द्रगुप्त की आंखों में वह झलकी देखी, जो उनके संकल्प को नष्ट कर सकती है।

संकल्प!

राष्ट्र के पुनर्गठन का संकल्प!

देश के नव-निर्माण का संकल्प!

उनके स्वप्नों का मूर्त रूप—एक ऐसा शक्तिशाली देश—जिसकी ओर देखने वाले की ललचाई आंखें बाहर निकाल दें। अखण्ड भारत—अजेय भारत!

"चन्द्र! मैं भली-भाँति जानता हूँ कि व्यक्ति के जीवन में भावनाओं का क्या मूल्य है और वे उसके उत्कर्ष में कितनी सहायक सिद्ध होती हैं। परन्तु जब वे उसके कर्तव्य-पथ में बाधा बन कर खड़ी हो जाएँ तो उन्हें कुचल देना ही उचित है।

"आप का कथन युक्ति-संगत है। मैं इससे सहमत हूं।"

आचार्य ने नवयुवक सम्राट् के मन की थाह पाने के अभिप्राय से आपाद-मस्तक निहारा। उन्हें लगा कि चन्द्रगुप्त कुछ कहना चाहते हैं; मगर······।

"गुरुदेव!"—चन्द्रगुप्त तनिक झिझके; तत्पश्चात् कण्ठ-स्वर को साध कर पुनः कहने लगे—"मेरे इस कार्य से कैसी बाधा पड़ने वाली है?"

"बाधा!"—आचार्य का ओजस्वी स्वर सहसा उस कक्ष में गूंज उठा—"तुम्हारी यह नादानी मेरी समस्त योजनाओं को धूल में मिला सकती है।"

अब नवयुवक सम्राट् भी आवेश में आ गए। यद्यपि उन्होंने अपनी विह्वलता पर शांति का आवरण चढ़ा कर कहा—"आप मेरी भावनाओं का निरादर करके व्यक्तिगत जीवन की समस्त अभिलाषाओं को छीन लेना चाहते हैं।"

अब चाणक्य जैसे चौंक पड़े। इस बदले हुए तेवर ने उन्हें चौकन्ना कर दिया। जिसने उनके मुँह

से निकलने वाले प्रत्येक आदेश को देव-आज्ञा समझ कर सदैव शिरोधार्य किया है—वही आज प्रत्यक्ष अवहेलना कर रहा है। वह अपनी भावुकता से आकुल है; अतः आज की यह भिन्न परिस्थिति यदि इसी प्रकार वर्तमान रही तो उनकी सारी साधना और और तपस्या निष्फल हो जाएगी। इसमें कोई संशय की बात नहीं है।

"चन्द्र, एक सम्राट् का जीवन व्यक्तिगत घेरे से बाहर निकल कर सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। उसकी इच्छा-अनिच्छा, आशा-दुराशा और विचार-अविचार का प्रश्न ही नहीं उठता। वह जनता के लिए जीता है और…।"

"नहीं, गुरुदेव! मैं अपनी भावनाओं का गला नहीं घुटने दूँगा।"

और आचार्य तो सन्नाटे में आ गए। उन्हें एक दम अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। अपने ही अंग के दोनों हाथ उद्दंड बन कर यदि प्रतिकूल दिशा में कार्य करने लगें तो इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है? परन्तु उनकी कर्तव्य-परायण बुद्धि सजग है—समर्थ है। मार्ग में आने वाली सारी बाधाओं को समाप्त करने में पूर्णतया सचेष्ट है।

"तो चन्द्र, मेरा भी स्पष्ट उत्तर सुन लो।"—चाणक्य की कण्ठ-ध्वनि अत्यन्त निर्मम और कठोर होगई—"एक साधारण लड़की भारत की साम्राज्ञी नहीं बन सकती।"

"गुरुदेव!"

चन्द्रगुप्त को ऐसी प्रत्याशा स्वप्न में भी नहीं थी। यद्यपि वे अपने कण्ठ-स्वर को संयत करके बोले—"मैं वचनबद्ध हूँ।"

"शैशव और किशोर वय में दिए गए वचन का कोई व्यावहारिक आधार नहीं होता है; अतः उसके पालन करने का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता।"

"गुरुदेव, आप क्या कह रहे हैं?"—विस्मय से चन्द्रगुप्त के होंठ खुले रह गए।

"चन्द्र, मैं वही बात कह रहा हूँ, जो शास्त्र-सम्मत है। नीति और पुराण जिसकी पुष्टि करते हैं। स्वधर्म के व्रतधारी सदैव उसी पर चलते हैं।

आचार्य की यह कूट भाषा एवं शब्दावली इतनी भ्रामक है कि एक बार इसके जाल में फंस जाने के बाद सहज ही में मुक्ति पाना कठिन है। असाधारण बुद्धि भी चक्कर में पड़ जाती है; फिर…।

चन्द्रगुप्त भी कुछ देर के लिए इस उलझन से उबर न सके।

"चन्द्र, यवन सेनापति ने राजकुमारी हैलन के साथ विवाह सम्बन्ध करने का प्रस्ताव पुनः भेजा है।"—आचार्य ने सोच कर कहा।

"नहीं गुरुदेव, यह असम्भव है।"

चन्द्रगुप्त अचानक असहिष्णु बनकर भड़क उठे। उनका अवरुद्ध क्रोध उफनते ज्वार के समान गर्ज पड़ा। आचार्य कुछ कहें इससे पहले ही वे कक्ष के बाहर निकल गए।

आचार्य गम्भीर मुद्रा धारण करके उन्हें अपलक देखते रहे। × × ×

थके-थके चाँद की मलिन चाँदनी में लिपटे कक्ष की सघन नीरवता में नवयुवक सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने पर्यंक पर चुप-चाप लेटे हैं। इस तिमिराच्छिन्न निशीथ में उनके हृदय की व्यग्रता इतनी अधिक बढ़ गई है कि उसे बलात् रोका नहीं जा सकता। आज प्रथम बार गुरुदेव चाणक्य ने उनकी भावनाओं पर निष्ठुर प्रहार किया है, जिसे कोई भी स्वाभिमानी मौन रहकर सहन नहीं कर सकता।

वे इस बात को अस्वीकार नहीं करते कि उन्हें जो विशाल और धन-धान्य से परिपूर्ण साम्राज्य का अधिष्ठाता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है—वह सब आचार्य जी की असीम कृपा का फल है। उनकी कूट नीति ने अचूक लक्ष्यवेध का कार्य किया, जो तलवार के जौहर से भी कदापि सम्भव नहीं हो सकता था। उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता, सैन्य-संगठन की नवीन पद्धति तथा युद्ध-संचालन की अपूर्व कुशलता ने शीघ्र ही उनके गले में विजय की वरमाला पहना दी है और देखते-देखते नंद वंश का मुकुट उनके सिर पर आ गया है।

वे इस समय भी आचार्य का नेतृत्व स्वीकार करते हैं। उनकी विलक्षण बुद्धि तथा अद्भुत प्रतिभा का सम्मान करते हैं।

परन्तु इसका तो यह अर्थ नहीं कि वे उनके

व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करे। मिथ्या आडम्बरों और निरर्थक बन्धनों से जकड़ कर उनको बन्दी-जीवन यापन करने के लिए विवश करें। यह कहाँ तक न्याय-संगत है?

आवेश में चन्द्रगुप्त उठ खड़े हुए और कक्ष में बेचैनी से घूमने लगे। आज उनके अंतस् में व्यापक असंतोष सुलग रहा है।

वे टहलते-टहलते रुक गए। उनकी दृष्टि शून्य में जाकर अटक गई। धीरे-धीरे अतीत की घटनाएँ उनके दृष्टि-पथ में तैर गईं।

कंधार, कुरु और पांचाल जैसे सीमावर्ती राज्यों को पलक झपकते ही भूमिसात करके यवन सम्राट् की रण-वाहिनी काली-पीली आँधी बनकर पंचनद के छोटे-छोटे गण राज्यों पर छा गई है। ये शांतिप्रिय देश युद्ध-पिपासु सिकंदर के खड्ग के समक्ष टिक न सके।

यह साक्षात् मौत की-सी घटा आज कठ-गण-राज्य पर बरस रही है। देश का प्रत्येक नागरिक प्रतिरोध के लिए प्रयत्नशील है। वह शत्रु के उन खूनी दाँतों को तोड़ देना चाहता है, जो इस धरा पर मानवता की निर्दयता-पूर्वक हत्या कर रहा है।

घमासान युद्ध तो रहा है। कठ-गणराज्य के मुट्ठी-भर वीर बाज की भांति यवनों पर झपट रहे हैं। वे इस्पात की सुदृढ दीवार बनकर सिकन्दर के उन कुत्सित इरादों के सम्मुख खड़े हो गए हैं, जहाँ उनके भाले और नेज़े भी टकरा-टकरा कर कुंठित हो रहे हैं। लाशों के ढेर लग गए हैं। निर्दोष तथा असहाय मानव कण्ठों की हृदय-विदारक चीखों से आकाश का कलेजा फट गया है।

युद्ध की गति प्रतिकूल दिशा की ओर मुड़ती देखकर शत्रु ने अपनी शेष सारी सेनाएँ भी झोंक दीं।

प्रबल प्रलयंकारी लहरों के साथ जैसे महाउदधि उमड़ पड़ा। यह लोमहर्षक तथा क्रूर अभियान मानव-रक्त से होली खेलने लगा। छद्म वेश में नवयुवक चन्द्र भी इस युद्ध में सम्मिलित है। जब शत्रु ने भारत पर अकारण ही आक्रमण कर दिया तो उनका शौर्य-पूर्ण रक्त खौल उठा और वे प्रांत, जाति तथा वर्ण का भेद-भाव भूलकर प्रतिकार करने के लिए सन्नद्ध हो गए हैं।

अंत में, उनके कंधे में भाले की भरपूर चोट लगी। एक चीख के साथ उनके हाथ की तलवार दूर जा पड़ी। शत्रु सैनिक उन पर दूसरा वार करने के लिए तैयार हुआ, इससे पहले ही किसी अज्ञात सैनिक ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। फिर उनकी आँखों के आगे अंधेरा-सा छा गया और वे अचेत होकर गिर पड़े।

× × ×

"मैं कहाँ?"

धीरे से आंखें खोलकर चन्द्रगुप्त ने क्षीण स्वर में कहा।

फूस की छोटी कुटिया, कोने में रखा पानी का घड़ा; घास का बिछौना;—बस यही इस कुटिया का वैभव है। यहाँ की शांति में एक प्रकार की पवित्रता है, जो शीघ्र ही हृदय की अतल गहराइयों में उतर जाती है।

"सम्भवत. यह मेरे प्राण-रक्षक का घर है···।"

बस वे कृतज्ञ भाव से दब गए।

"···यदि समय पर वे पहुँच नहीं पाते तो उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती। आह···।"

उनके मुँह से अचानक एक हल्की-सी कराह फूट निकली। इधर करवट बदलना हुआ और जैसे सैकड़ों बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारे हों मर्मांतक पीडा सन-सना उठी। कुछ देर तक सांस रोक कर वे आँखें बन्द किये चुपचाप पड़े रहे। तभी किसी ने प्रवेश किया नवागुन्तक ने सर्वप्रथम उनकी ओर दृष्टि-निक्षेप किया और उन्हें शान्तिपूर्वक सोते देखकर शीघ्र ही मुंह घुमा लिया।

और चन्द्र ने तो अपनी अर्ध-निमीलित आंखों से एक महान् आश्चर्य देखा: धोती और अंगरखा पहने इस कठ-सैनिक के सिर के केश लम्बे हैं।

उनकी पुतलियें घड़ी-भर के लिए अविश्वास-पूर्वक झपकीं, तत्पश्चात् सब-कुछ स्पष्ट हो गया। उस के चेहरे पर छाई स्त्री-सुलभ-स्निग्ध कोमलता तथा स्त्री और पुरुष के स्वाभाविक भेद ने अनिश्चय की भावना को पूर्ण रूप से खत्म कर दिया, परन्तु अब अनेक

विचार-तरंगों एवं भाव-कणों से उन का अंतःकरण परिवेष्टित हो गया।

कुछ देर के लिये मौन सन्नाटा।

जब सिर के केस समेट कर पगड़ी बांधी जाने लगी तो चन्द्र से रहा नहीं गया और बोले—"अपने-आप को अधिक छिपाने का प्रयत्न व्यर्थ है।"

साथ ही मधुर हास्य की लहर स्वतः फूट पड़ी। युवती हठात् चौंकी। सहसा विस्मित रह कर वह सिमट-सिकुड़ गई। सहज-स्वाभाविक लज्जा ने उसे अपने आंचल में समेट लिया। वह फुर्ती से कुटिया के बाहर निकल गई।

× × ×

इसके बाद वह छाया की भांति चन्द्र के साथ रही। कठ राज्य की समाप्ति के साथ-साथ उसका सब-कुछ लुट गया। माता-पिता, भाई बहिन आदि परिवार के सारे व्यक्ति राष्ट्र की पवित्र वेदी पर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके हैं। अब तो यवनों से इस अपमान का बदला लेना ही उसका एक मात्र उद्देश्य रह गया है।

इसके लिये उसने शत्रु-शिविर में जाकर भेदिये का काम किया। घात लगाई बैठी आखों में धूल झोंक कर उसने कुछ ऐसे भेद लाकर दिये कि वे चन्द्र के विजय-अभियान में बड़े सहायक सिद्ध हुए। चन्द्र का विशेष दूत बन कर इसने अपनी बुद्धि का पूर्ण परिचय दिया। वाक् चातुर्य एवं नीति-कौशल से विरोधियों को भी अपने पक्ष में करने में आशातीत सफलता प्राप्त की। जहां जीवन और मरण की भयानक लड़ाई लड़ी जा रही थी—वहां वह कंधे-से-कंधा भिड़ा कर आगे रहे।

और अब वे एक साथी न रहकर कुछ और बन गए हैं। उनके हृदय की वंशी में प्रेम की मधुर रागिनी फूट पड़ी है। अंतःसलिला की अविच्छिन्न धारा में वे आकंठ डूब चुके हैं···।

"दुर्गा!"

"हुम्!"

"यदि मैं सम्राट् बना तो तुम मेरी रानी होगी।"

"ऊँहूँ! मुझे किसी राज्य की रानी बनने की चाह नहीं है। बस, आपके चरणों की दासी बनकर शेष जीवन बिता दूँ तो अपने-आप को धन्य समझूँ।"

"दासी नहीं, रानी।"—चन्द्रगुप्त किंचित् मुस्कराये—"मैं अपना वचन पूरा करूँगा।"

—और सम्राट् चन्द्रगुप्त को सब-कुछ स्मरण हो आया। प्राणों का मोह त्याग कर अपने दिये गए वचन का पालन करने वाले क्षत्रिय वंश का पवित्र रक्त अभी तक उनकी धमनियों में बह रहा है।··· फिर हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित प्रेम-देवता की मूर्ति को वे अपने ही हाथों से खण्डित करें—ऐसे निष्ठुर वे बन नहीं सकते।

और हैलन!

यवन सेनापति सैल्यूकस की लाडली बेटी!

संयोग की बात।

यवन-सेना के शिविर में एक हाथी पागल हो गया। चीखते-चिल्लाते वह चारों ओर तबाही मचाने लगा। उसका यह विकराल रौद्र रूप देखकर बड़े-बड़े शूरमा तक भयभीत हो उठे। सारे शिविर में भगदड़ से अराजकता फैल गई।

सामने से, अपनी सहेलियों व दासियों के साथ यवन राजकुमारी हैलन भी आ रही थी। बस, हाथी चिंघाड़ कर झपटा और देखते-देखते हैलन को अपनी सूंड में उठा लिया।

तभी एक वीर हाथ में भाला लिए मैदान में आया और हाथी की आँख को लक्ष्य करके उसे फेंका। निशाना अचूक था। एक दर्दनाक चीत्कार के साथ वह गिर पड़ा सदा के लिए।

हैलन के प्राण बच गये।

यह वीर दूसरा कोई नहीं, चन्द्रगुप्त ही था, जिसके गौरवशाली शौर्य ने भारत की धाक विदेशियों के दिल पर एक बार फिर जमा दी थी।

साथ ही उसने हैलन के हृदय को भी जीत लिया है। अब वह उनकी पूजा करती है। मधुर स्वप्नों के झूले में झूल कर वह दिन-रात किसी अज्ञात भाव-लोक में विचरण करती रहती है। उसके प्रेमातुर लोचन जैसे किसी के दर्शनाभिलाषी हैं और टकटकी लगाकर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

यही वह आधार है, जिसके बल पर बार-बार हैलन से विवाह सम्बन्ध करने के संदेश आ रहे हैं। परन्तु

वे दुर्गा को अपने से अलग नहीं कर सकते—नहीं कर सकते। यह उनका दृढ निश्चय है।

ज्योंही पलट कर दुर्गा ने देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा : स्वयं आचार्य चाणक्य उसके कक्ष के द्वार पर खड़े हैं।

"प्रणाम गुरुदेव !"

'चिरंजीव रहो··· ।'

आचार्य अन्दर आ गये और शांत भाव से खड़े हो गये।

उन्होंने कहा—"बेटी, मैं तुमसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ।"

"पूछिए।"—आशंकित होकर दुर्गा बोली।

"नारी-जीवन की सार्थकता किसमें है ?"

दुर्गा ने सोचकर उत्तर दिया—"गुरुदेव, मातृत्व में है।"

"ठीक है।"—गर्दन हिल-कर आचार्य ने पुन: पूछा—"परन्तु उसका आधार क्या है ?"

"प्रेम।"

'उसकी सार्थकता भोग में है अथवा त्याग में ?

प्रश्न में भी प्रश्न ! इन प्रश्नों के अन्तराल में एक ऐसा रहस्य छिपा पड़ा है, जो उसके भविष्य से सम्बन्धित है। वह अज्ञात घबराहट के अतिरेक से काँप उठी। यद्यपि उसने कहा—"त्याग में है गुरुदेव !"

"तुम्हारे सारे उत्तर सही हैं—प्रशंसापूर्ण दृष्टि डालकर आचार्य बोले—"मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी।"

घड़ी-भर के लिए कक्ष में निस्तब्धता छा गई। आचार्य जैसे किसी गहरे विचार में डूब गए। रही दुर्गा ! उसकी बुद्धि अभी तक भँवर में फंसे काठ के टुकड़े के सदृश चक्कर खा रही है···

"बेटी, तुम्हारा प्रेम यदि तुमसे त्याग की मांग करे तो··· ?"—आचार्य ने सीधा और स्पष्ट प्रश्न पूछ कर दुर्गा की आंखों में झांका।

"तो · तो···तो··· ।"—अवसन्न-सी रह गई दुर्गा। केवल उसके व्याकुल अधर फड़के—बस उद्वेग-ग्रस्त मुख एक ओर लटक गया।

"हाँ, बेटी !"—आचार्य कहने लगे—"तुम्हारे सामने जहां एक ओर भावनापूर्ण प्रेम है, जो भौतिक सुखों तथा सांसारिक भोगों से परिपूर्ण प्रेम है—वहाँ दूसरी ओर राष्ट्र-प्रेम है, जो केवल कर्तव्य, त्याग और बलिदान पर आधारित है। इसमें से एक को चुनना होगा······ ।"

"मैं···आप···का · तात्पर्य नहीं समझी···गुरु-देव !"—दुर्गा के स्वर में कम्प था।

"तात्पर्य स्पष्ट है।"—वे पुन: कहने लगे—"सम्राट् तुमसे विवाह करना चाहते हैं और राष्ट्र-हित को दृष्टिगत रखते हुए यह सर्वथा अनुचित है।··· वस्तुत: राष्ट्र के प्रधान को अपने समान स्तर वाले के साथ ही सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए—यही नीति कहती है और शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हैं। इसका अर्थ यह है कि दो पड़ोसी देश स्वाभाविक रूप से घनिष्ठ मैत्री के बन्धन में बंध कर समीप आ जाएं, इससे राष्ट्र का जीवन सुरक्षित होकर शासन-तंत्र में स्थिरता आ जाती है। यह एक विकासशील देश के लिये अति उत्तम है और आवश्यक भी है।

"गुरुदेव !"—दुर्गा तो जैसे आर्त स्वर में चीख-सी पड़ी।

परन्तु आचार्य तो निर्विकार भाव से कहते चले जा रहे थे—"···हाँ बेटी, इससे अधिक लाभ तो यह होगा कि अनावश्यक चलने वाले युद्ध से मुक्ति मिल जाएगी। पारस्परिक शत्रुता का नाश हो जाएगा और राष्ट्र-कल्याण के लिये अधिक लगन श्रम तथा निष्ठा से काम किया जाएगा।"

दुर्गा पर अकस्मात् ही तुषार-पात हो गया।

'·······मैं तुम्हारे स्थान पर यवन राजकुमारी हैलन को ही उपयुक्त समझता हूँ।···अब सारी स्थिति तुम्हारे सम्मुख स्पष्ट हो गई है—निर्णय करना तुम्हारा काम है।"

दुर्गा का हृदय अचानक धड़का—जैसे उसमें भयानक विस्फोट हुआ हो। तत्क्षण ही आंखों में बिजलियां-सी चमकीं और वह मूर्छित होकर गिर पड़ी उसकी चेतना प्राय: लुप्त-सी हो गई।

आचार्य अचल प्रतिमा के समान स्तब्ध खड़े

(शेष पृष्ठ १३ पर)

भावनात्मक एकता में भाषा का महत्त्व

[श्री शमी शर्मा]

समाज में एकता के लिए भाषा का माध्यम अनिवार्य अङ्ग है। जिस देश में राष्ट्रीय सहानुभूति के लिए भाषा का आविर्भाव नहीं होता वहां जातीय जीवन के लक्षण परिलक्षित नहीं होते। जहां विचार-विनिमय की एकता का साधन भाषा एक नहीं, अपितु अनेक रूपों में उपलब्ध हो वहां एकता उत्पन्न हो ही नहीं सकती। एक विचारशैली, एक विचारधारा, एक भाषा से ही उद्भूत हैं। इस की अनेकता समाज की अनवरत अनवति का कारण है।

संसार के सभी राष्ट्रों में उन्नत भाषा की दो शैलियाँ परिलक्षित होती हैं। इन में एक साहित्यिक भाषा है और दूसरी व्यावहारिक। यदि हम अपने देश के प्राचीन इतिहास को लें तो उस समय भी दो शैलियाँ प्रचलित रही हैं। एक उनकी साहित्यिक भाषा 'संस्कृत' थी और व्यावहारिक भाषाएँ नाना प्रकार की प्राकृत उपभाषाएँ थीं। कालक्रम से वे प्राकृत उपभाषाएँ वर्तमान जन-भाषाओं में परिवर्तित हो कर महत्त्व प्राप्त करने लगीं और 'संस्कृत' गौण हो गई। मानों परिजन राजा बन बैठे और राजा का नामोनिशान तक नहीं रहा। अब तनिक पश्चिम की ओर देखिये। हमारे उस वैदिक काल के समय वहां पर न तो कोई साहित्यिक भाषा थी और न सभ्यता। किन्तु कालक्रम की गति से आज समस्त पश्चिमी देशों की एक लिपि रोमन है। जिस से उन देशों व्यावहारिक तथा राष्ट्रीय भावनाओं पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। यहां अपने इस राष्ट्र में विभिन्न लिपियों की बिना दूल्हों की बारात लिये कितने लोगों ने बवंडर खड़े कर दिये हैं, इसका वर्णन तक भी राष्ट्र के लिए आघात पहुँचा सकता है। राष्ट्रीय एकता के लिए एक भाषा और एक लिपि का होना निर्विवाद सिद्ध हो चुका है।

एक लिपि, एक भाषा, राजनैतिक और सामाजिक एकता और राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के विभिन्न उपकरण हैं। इन तत्त्वों के ग्रहण से ही राष्ट्र का संगठन संभव है। वह देश दिन-प्रतिदिन अभ्युत्थान की ओर बढ़ता है जहाँ जातीय जीवन के लक्षण दिखाई देते हैं, जो कि एक भाषा और एक लिपि पर आधारित है। दूसरी ओर वैयक्तिक स्वार्थों का प्रादुर्भाव तथा अनैक्य से देश अधोगति को पहुँचता है। देश की महानता और राष्ट्रीय गठन के लिए एक भाषा और एक लिपि मानो सजीवनी है। भावनाओं का साम्य इस के द्वारा ही संभव है और एक क्षेत्रीय समाज दूसरे क्षेत्रीय समाज का परिवार-सा बन जाता है, बहुत निकट हो जाता है। एक लिपि के रहते हुए भी यदि वहाँ भाषा की भिन्नता है तो भी राष्ट्र की गठन में बहुत रुकावट उत्पन्न हो जाती है।

यदि देश में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं और उस देश के निवासी अपनी-अपनी पृथक् भाषाओं का गौरव रखते हों तो वह उन्नति वरदान की अपेक्षा अभिशाप सिद्ध होगी। वे लोग अपने वर्ग, क्षेत्र, प्रान्त समुदाय को ही, अपनी निधि, अपना राष्ट्र समझते हैं। परिणामस्वरूप देश व्यापकता के स्थान पर संकीर्णता की ओर अग्रसर होता है। यदि हम अपने देश की विभिन्न भाषाओं को उन्नत करना चाहते हैं, तो वह केवल सर्वमान्य एक लिपि और एक भाषा के सर्वव्यापक और सार्वभौतिक सिद्धान्त द्वारा ही सम्भव है। इस सर्वमान्य भाषा के अवलम्ब से ही प्रान्तीय विभाषाएं भी पनप सकती है। यद्यपि हमारे भारती साहित्य के विश्वव्यापी प्रभाव के जागरूक प्रमाण हमारे पास उपलब्ध हैं किन्तु फिर भी हम अपनी एक लिपि फैलाने में असमर्थ रहे हैं। इस का कारण हमारे देश में मतैक्य का अभाव है जिस से हम अपने भारतीय साहित्य को अपनी भाषा और लिपि में फैलाने से असमर्थ रहे हैं। इतना ही नहीं हम अपनी देव-नागरी लिपि को भी उन देशों में प्रचलित करने से वंचित रह गये।

इस कार्य में देश के भाषागत मतों में पृथकता एवं विभिन्नता, व्यापकता के सिद्धान्तों को तिरोभाव की ओर ले गई।

वैदिक साहित्य के विश्वव्यापी प्रभाव आज भी उपस्थित हैं। पारसियों की धार्मिक पुस्तक "जन्दावस्ता" है जिस के सभी मन्त्रों को यदि भाषाविज्ञान के नियमानुसार बदला जावे तो वेद और जन्द के मन्त्रों में बहुत कम भेद मिलता है। दृष्टान्त में वैदिक मित्र को अवस्था में 'मिथ्र' गन्धर्व को 'गन्दर्व' सोम को 'होम' होतर को 'जोतर' यज्ञ को 'यस्न' इत्यादि अनेक रूप मिलते हैं। इस से पता चलता है कि वैदिक साहित्य का सारे भूमण्डल पर विशेष प्रभाव पड़ा है। लौकिक साहित्य की ओर देखें तो पञ्चतन्त्र का जितना प्रभाव पड़ा है उतना शायद ही किसी पुस्तक का पड़ा हो। भूमण्डल की सभी जातियों ने इसे अपनाया है। सीरियन और अरबी भाषा में इस के अनुवाद हो चुके हैं। अरबी पञ्चतन्त्र से समस्त यूरोप और एशिया की प्रायः सभी भाषाओं में इस का अनुवाद हुआ। इतना ही नहीं यूनानी, लेटिन, जर्मन स्लेव और हिब्रू भाषाओं में भी पञ्चतन्त्र का अनुवाद हुआ। अपनी भाषा और साहित्य के जगद्-व्यापी प्रभाव अक्षुण्ण रूप से चले आ रहे हैं।

ईसा की तीसरी शताब्दी में एक भारतीय ने १२६ पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। विघ्न नाम के पण्डित ने धम्मपद का अनुवाद किया। चीन की राजधानी 'लोयंग' भारतीय पण्डितों और संस्कृत का केन्द्र रहा। बुद्धभद्र नामक पण्डित ने अनेक बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया। श्री मित्र, गौतम संघदेव, धर्मप्रिय, विमलाक्ष आदि पण्डितों ने अनेक बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया। प्रसिद्ध यात्री फाह्यान हमारे विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करके स्वदेश लौटा। वर्तमान काल में स्वनामधन्य स्वर्गीय महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने महान् कार्य करके दिखाया। जिस भाषा की प्राचीनता और गरिमा इतनी अधिक हो उस का अवलम्ब भारत की भावनात्मक एकता के लिए नितान्त आवश्यक है।

भगवान महावीर का सन्देश

[श्री सुरेशचन्द्र जैन]

(१) किसी को मत सताओ, प्राणिमात्र की रक्षा करो। (२) सदैव सत्य बोलो। (३) किसी की भी चोरी मत करो। (४) व्यभिचार से बचो तथा ब्रह्मचर्य से ही जीवन निर्वाह करो। (५) व्यर्थ ही वस्तुओं का संग्रह मत करो। (६) सबको अपने समान समझो। (७) तुम जैसा करोगे, वैसा ही फल पाओगे। (८) गुणवानों के गुणों को प्रेम से ग्रहण करो। (९) दीन-दुःखियों पर दया करो। (१०) अपने शत्रु की भी बुराई मत करो। (११) अपनी बात को ही प्रधान तथा सत्य मत समझो, पहले दूसरों की दो सुनो तथा बाद में अपनी एक कहो। (१२) जो भी उचित समझो, न्यायपूर्वक करो, अपने न्याय की तुला पर शत्रु और मित्र दोनों को बराबर समझो। (१३) संसार में सब-कुछ सहज और सुलभ है, किन्तु वास्तविक आत्मिक ज्ञान नहीं। जिसने उसे प्राप्त कर लिया, उसे संसार में फिर कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहा। अतएव ज्ञान को प्राप्त करने के लिये जीवन-भर जी-भर कर प्रयत्न करो। (१४) सही दृष्टि, सही ज्ञान, और सही चरित्र इन तीनों के बल पर ही मनुष्य संसार के सुख-दुःख से छूटता है और असीम सुखद मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है। (१५) चूंकि संसार के लोग अनादि काल से बुरी रागद्वेषमयी भावनाओं को लिये हुए हैं, अतएव संसार में भटक रहे हैं। जब वे दोनों प्रकार की भावनाओं से परे होंगे तभी मुक्ति भी पा सकेंगे। (१६) जब शरीर ही अपना नहीं तब प्रत्यक्ष ही बाहर और अलग दिखने वाले परिवार के जन और वैभवसूचक वस्तुएँ भला क्या अपनी हो सकती हैं? सत्य तो यह है कि आत्मा ही अपनी है। उसके साथ न कोई आता है न कोई जाता है। ●

भारतीय बुभूषा के मनीषी—आचार्य रघुवीर

[डा० लोकेशचन्द्र,]

प्रथम स्वातन्त्र्य-समर में अंग्रेज़ों से टक्कर लिए हुए पचास वर्ष भी न हुए थे—उसकी स्मृतियां अभी अभिनव थीं। अंग्रेज़ी सम्राट् के प्रतिनिधि से हाथ मिलाकर भारतीय नरेश गंगाजल से हाथ धोना अथवा स्नान करना अभी न भूले थे—यह भारतीय अन्तर्मूर्ति का ऐतिहासिक प्रतीक था। शनैः-शनैः, पर सुनिश्चित रूप से, अंग्रेज़ी शिक्षा के द्वारा ही शिक्षित वर्ग में क्रान्ति के बीज पनपने लगे और भारत नवोन्मेष के लिए लालायित था। ऐसे युग में पिता जी का बाल्य-काल बीता और स्वतन्त्रता की सुलगती हुई चिंगारियों से वे अछूते न थे। जहां भारतीय पाश्चात्य राजनैतिक विचारों और संस्थाओं के द्वारा परतन्त्रता को खदेड़ना चाहते थे, वहां उन्हें अपने ही देश की अन्तरात्मा से प्रेरणा की भी उत्कट कामना थी। भारतीयों के हृदयों में जगद्गुरुत्व अभी अंकित था—चाहे कितने ही धूमिल रूप में क्यों न हो। यह सांस्कृतिक स्वतन्त्रता भी पिताजी के हृदय में घर कर चुकी थी। पाठशाला-काल में ही इस की खोज की चुनौती पिताजी ने स्वीकार कर ली। एक स्नेहमय पुस्तकविक्रेता के यहां जाते और संस्कृत के काव्य, रामायण, महाभारत, निरुक्त, गणरत्नमहोदधि आदि पढ़ डाले। गणरत्नमहोदधि इंग्लण्ड में छपा था—पाठशुद्धता और मुद्रण-सौन्दर्य का अप्रतिम मिश्रण था। बालक रघुवीर आश्चर्यस्तब्ध था कि अंग्रेज़ जो भारतीयता को रौंद रहा है क्या वही इतना संस्कृतानुरागी बन गया? क्या हमारी अनास्था का स्रोत ही हमें आस्था प्रत्यर्पण कर रहा है? पाठशाला के अध्ययन-काल में संस्कृत साहित्य का, विशेषतः व्याकरण का, अधिकांश भाग पढ़ डाला। कॉलिज की पढ़ाई के लिए लाहौर में डी० ए० वी० कालिज में प्रविष्ट हुए। लाला लजपतराय की ज्वलन्त वाग्मिता ने और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने इस महा-विद्यालय को आन्दोलित किया हुआ था। यहां पिताजी विद्यार्थि-संगठनों में भाग लेते और कोई ऐसी सभा न थी जिसमें अपनी ऊर्जस्विनी वाणी से उत्साह का विकिरण न करते हों। महाविद्यालय के पुस्तकालय में ही अधिकांश समय बीतता। पुस्तकालय संस्कृत ग्रन्थों और पाश्चात्त्य विवेचनों, समीक्षाओं, ऐतिहासिक निर्वचनों से परिप्लुत था। भारत की अक्षर-बद्ध सहस्राब्दियों का दिग्दर्शन करते-करते पिताजी के विश्वविद्यालयीन वर्ष बीत गए। प्राचीन हस्तलिपियों का अनुराग और अप्रकाशित दर्शनांचलों की आविर्भूति का आह्वान लिए पिताजी अपने जीवन-पथ पर अग्रसर हुए। कुछ वर्ष अजमेर बिताए, परन्तु अनुभव किया कि यूरोप के दिग्गज विद्यापुरुषों के दर्शन भी किए जाएं जिन्होंने अपने समस्त जीवन भारतीय संस्कृति को अर्पण किए हैं। अनेक आर्थिक कष्टों का सामना करते हुए यूरोप के लिए चल दिए। फ्रांस में मार्सेय समुद्र-पत्तन पर उतरे। चारों ओर मांस का बीभत्स दृश्य था—कुछ खाने को नहीं था। रेल से लन्दन पहुंचे—भूख से बाधित, वैभव और समृद्धि के देशों में, लन्दन में कोष्ठ ढूंढा और सेवा की खोज में निकल पड़े जो उन्हें जीवनचर्या देवे और ज्ञानोपार्जन प्रारम्भ हो सके। दो-एक दिन के उपरान्त जीविका की समस्या न रही और गवेषणा में जुट गए। यहां अनेक आश्चर्य घटे। तुलनात्मक भाषाविज्ञान पढ़ने गए तो प्राध्यापक ने अवेस्ता प्रारम्भ की। यह पारसी धर्मग्रन्थों की प्राचीन भाषा है। क्या देखते हैं—वैदिक संस्कृत से अनोखा साम्य। उदाहरणार्थ, अवेस्ता का यश्त १०. ६—

तम् अमवन्तं यज़तम् दामोहु
सविश्तम् मिथ्रम् यज़ाइ ज़ओथ्राब्यो। अवेस्ता
तम् अमवन्तं यजतम् शूरं धामसु
शविष्ठं मित्रं यजै होत्राभ्यः॥ संस्कृत

आधुनिक यूरोपीय भाषाएं पढ़नी प्रारम्भ कीं। यहां भी विस्मयकारी आविष्कार हुआ—आधुनिक बोली हुई लिथुएनियन भाषा में संस्कृत की सातों

विभक्तियां सुरक्षित। अनेकों पूर्वीय और पश्चिमीय भाषाएं सीखीं और देववाणी संस्कृत की व्याप्ति के स्वर्णिम युगों की झांकियां निकलती गईं।

भाषा-सम्बन्धों की विशालता का दिग्दर्शन करते-करते भारत माता की ऐतिहासिक मूर्ति निहारने की दिदृक्षा हुई। अतर्कित, अप्रत्याशित दर्शन हुए—प्रत्येक शती हमारी संस्कृति के उल्लासों से किशोर रघुवीर को उद्वेल्लित कर उठी। तीसरी शती ईसापूर्व में भारत अपना संदेश वर्मा को प्रदान कर रहा था। ईसापूर्व दूसरी शती में लंका ने भारत के उपदेश को शाश्वत रूप से आत्मसात् किया। पहली शती में मलयद्वीप संस्कृत-शिलालेखों को अपनी धरा में धारण किए हुए था, इण्डोनीसिया के···द्वीपों में भारत की अजस्रता पदार्पण कर रही थी, और मध्य एशिया के मरुस्थलों में मैजिस्ट्रेट अपने अभिलेख प्राकृत भाषा में रख रहे थे। चीनी भित्ति के अन्तिम छोर के निकट तुनह्वाङ् में ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण शिलालेख भारत की दूरगम सीमाओं के साक्षी थे। प्रथम शती के मध्य में भारत के आचार्य काश्यप और मातंग चीन में संस्कृत के ग्रन्थ लेकर दुर्लभ श्वेताश्वों पर लोयाङ् पहुँच रहे थे। तीसरी शती में वीतनाम में भारत की धारा बह रही थी। सन् ३७२ में कोरिया में भारतीय मठ की स्थापना हो रही थी। चौथी शती में कम्बुजदेश संस्कृतमय था। सन् ४०२ में संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् कुमारजीव चीन के सम्राट् की राजसभा में संस्कृत ग्रन्थों को चीनी में अनुवाद करने की बृहत्तम योजना को क्रियान्वित कर रहे थे। पांचवीं शती में चीन की युनकाङ् गुहाओं में शिल्पी भारत के संदेश को शिलाओं में अमर कर रहे थे। सन् ५२० में बोधिधर्म ध्यान की योगाभ्यास-परम्पराएं लिए चीन की ओर प्रस्थान कर रहे थे। छठी शती में जापान के राजकुमार अपने देश में भारतधर्म के संवर्धन के लिए प्रयत्नों में सफलतामण्डित हो रहे थे। जापान की नगरी नारा में मृगवन उसे आश्रम की पावनता प्रदान कर रहा था। छठी शती में चीन के कोने-कोने में मन्दिर थे—राजवंशावलियों के अनुसार यह देश तीस हज़ार मन्दिरों से सुशोभित था। सातवीं शती में तिब्बत की बिखरी जातियों का समन्वय कर सम्राट् स्रोङ्चन्गम्पो एक राष्ट्र का अभ्युदय कर रहे थे जिसकी सैनिक शक्ति चीन जैसे विशाल राष्ट्र के लिए बिभीषिका थी और तिब्बत को राष्ट्रमूर्ति प्रदान करने के लिए सभ्यता की नींव लिपि, कला और साहित्य का सर्जन करने के हेतु इस दूरदर्शी सम्राट् के मन्त्री संभोट हिमगिरि को चीर भारत की ओर अग्रसर हो रहे थे। मलाया में चीन के यात्री इत्सिङ् संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे, और १३ अप्रैल ६८३ सन् में श्रीविजय की विजयिनी सेनाओं की महिमा का गान संस्कृत में शिलालेखों में मलाया की भूमि पर अंकित हो रहा था। आठवीं में तिब्बत के सम्राट् ठिस्रोङ्देत्सेन् सभा बुला निश्चय कर रहे थे कि तिब्बत सदा ही अपना धर्म भारत से ग्रहण करेगा और संस्कृत की साहित्य-विभूति को आत्मसात् करने के प्रयोजन से दर्शन, तन्त्र, आयुर्वेद आदि की पारिभाषिक शब्दावली स्थिर कर साम्ये के विशाल मन्दिर स्थापित कर रहे थे, जिसमें मानव दिक्काल के जगत् को पार कर कैवल्यमय विश्वचैतन्य की दिदृक्षा को साधना में परिणत कर सके। इन्हीं सम्राट् के राजवैद्य युथोक भारत आकर आयुर्वेद के ग्रन्थों, चित्रों, सारणियों और यन्त्रोपकरणों को ले जा रहे थे जो पिताजी ने अपनी यात्राओं में देखे और एकत्र किए। नवीं शती का अभ्युदय होते ही जापान के महाचार्य कोबोदाइशि तन्त्रों के अध्ययन का अपने देश में प्रवर्तन कर रहे थे। यही आचार्यवर जापानी वर्णमाला को संस्कृत के क्रम में पिरो रहे थे—आ, ई, ऊ, ए, ओ, का, की, कू, के, को···आदि। आज तक प्रत्येक जापानी शिशु अपनी साक्षरता इससे प्रारम्भ करता है। महाचार्य कोबोदाइशि का शिंगोन संप्रदाय संस्कृत मन्त्रोच्चारण के लिए विख्यात है। आज भी जापान के कोने-कोने में बारह हजार शिंगोन मन्दिर विकीर्ण हैं जहां नित्य-प्रति की अर्चना संस्कृत मन्त्रघोष से "उदयवर्ष" को प्रतिक्षण पुनीतता अर्पण करती है। नवीं शती में कम्बुज देश में आंकोर के मीलों में विस्तीर्ण मन्दिरों के शिखर गगन स्पर्श कर रहे थे। लम्बे-लम्बे पाषाणमय नागों से परिवृत मार्गों से निकल राजरमणियां भगवान् विष्णु की अर्चना करने जातीं। दसवीं, ग्यारहवीं शतियों में योगिराज मार्पा और मिलारेपा

योगसाधना तिब्बत में पल्लवित कर रहे थे। बारहवीं शताब्दी में कोरिया के महान् योगाचार्य योजो कुक्सा "ध्यान" के केन्द्र खोलते जा रहे थे। तेरहवीं शती में विश्वविजयी मंगोलों की सेनाओं के लाखों घोड़ों की टाप का तुमुल नाद गीर्वाणी स्तोत्रों के सामने नीरव हो जाता। रक्तपिपासु मंगोल सैनिक आतंकित वेषों में, पर सौम्य मुद्रा में मन्द्र संस्कृत स्तोत्रों से राजधानी काराकोरम में देवघोष से गगन गुंजित कर रहे थे। चौदहवीं शती में थाइलैण्ड में राजधानी "अयोध्या" की स्थापना हो रही थी। भारतीय संस्कृति के वरेण्य प्रतीक रामायण की ही यह अयोध्या थी और यहां पर ही थाईभाषा में "रामकीर्ति" के शीर्षक से रामायण का रूपान्तर हो रहा था। और कितना लिखूं। प्रत्येक शती का प्रत्येक वर्ष हमारी सांस्कृतिक विजयवैजयन्ती को लहरा रहा था। एशिया का भूमि के खण्ड खण्ड से मन्दिर मुखरित हो उठे, प्रतिमाएं प्राणवन्त हो उठीं, ताडलिपियां पुकार पड़ीं, खण्डहर सहस्रों मनीषियों की साधनाओं से प्रतिध्वनित हो उठे। पिताजी का भारत कुषाणों, शकों, हूणों, विदेशी मुसलमानों और अंग्रेजों के आक्रमणों का भार ही लादे हुए नहीं था जिसे अंग्रेजी ऐतिहासिकों ने प्राधान्य दिया था कि हमारी स्वतन्त्रता उन्मेष न पा जाए। उसका क्षण-क्षण ऊर्जस्विनी प्रेरणा से ओत-प्रोत था। मन्दिर-मन्दिर का, प्रतिमा-प्रतिमा का, शिलालिपियों और ताडलिपियों का आह्वान पिताजी के मन में शिंजित हो उठा और पिता जी जीवनपर्यन्त मरुस्थलों, हिमावर्तों और सागरांचलों के अथक पथिक बन गए विराट् भारत की बुभूषा के अनन्य मनीषी। इसका वृत्त उनकी ही लेखनी से "एशिया के हृदयांचलों में भारत-भारती" नाम से प्रस्तुत करने में व्यस्त हूँ। पिताजी के भगीरथ प्रयासों के उच्छ्वास-निःश्वास उनके आकुल पुत्र के विश्वासों में, संकल्पों में आविर्भूति के लिए विह्वल हैं। भारतमाता की अखण्ड ज्ञानज्योति सत्त्वमयी विद्युति में आकार-कांक्षिणी है—मेरे प्रणवीर सखा कहां हैं।

एक दिन आधी रात के समय प्रबल खड़क हुआ। हम सब जगे और ऊपर के तले से नीचे उतर देखने आये। सब शान्त और मंगल था। रात सोई हुई थी। ऊपर लौटे और हम सो गए अगले दिन एक लामाजी से कहा कि वे रात्रि को नीचे सो जाया करें। उन्होंने सोना आरम्भ कर दिया। प्रतिदिन माताजी सबसे पहले उठकर सरस्वती-विहार के द्वार खोलती हैं। प्रातः होने ही लगता है कि एक मुद्रलेखक (टाइपिस्ट) आ जाता है जो पिताजी के ग्रन्थों का मुद्रलेखन करता है। यह परम्परा पिताजी के ही काल की है और इसमें मेरे लिए भावना का सागर समाया हुआ है। द्वार खुलने पर लामाजी उठ चले जाते हैं। २८ नवम्बर १९६३ की प्रात: मैं ही माताजी से पहले उठकर नीचे उतर आया—पौ फटने ही वाली थी, यद्यपि अंधियारी छाई हुई थी और ओस हमारी बगिया की घासमयी हरितिमा पर व्याप्त थी। उतरते ही क्या देखता हूँ—खटिया पर लामाजी सोए हुए, पास में दण्ड, सिरहाने के समीप पोथी और देवी का कवच। क्या हम भी मंगलग्रन्थ और देवीकवच रखते हैं—नहीं। भावों की उमड़न में सनातन आस्था का साक्षात्कार हुआ और शब्द निकल पड़े—मेरा इतिहास मेरे घर में सो रहा है। विचारों के तांते में शतियां सरपट झलक गईं। शीतश्यान हिमालय के दर्रों और घाटियों को पार करते हुए, तिब्बत के सम्राटों के भव्य दूतों से परिवृत, अस्थिवेधी शीत को चीरते हुए आचार्यों की यात्राओं के दृश्य उपस्थित होते गये। कैसी श्रद्धा और भक्ति से भारत के मनीषी यहां की धर्मभेरी लिए जा रहे थे—कहीं ताडपत्र थे, कहीं जपमालाएं थीं, और कहीं हिमगिरि की विकरालता से रक्षा-हेतु देवीकवच थे। शतियां बींधता हुआ उनसों सह देवी-कवचों का प्रतीक मेरे समक्ष ही पड़ा था। अपनी अनुभूति की उमंग बताने बाहर ओस से परिप्लुत घास पर वृक्षों के पास आया। किसे बताने—पिताजी को। यही पुराना अभ्यास था, वर्षों से चलता आया था। वे वृक्ष जिनकी छाया में हमने पिताजी के साथ कई विचार-विमर्श किए थे आज मौन से घिरे थे। पिताजी भी नहीं थे—उनकी उमंगें मेरी तरंगों में समाई थीं। रात्रि की रोदनमयी ओस में पुत्र के अश्रु अविरत मिल रहे थे। यह नियति है, नियति। अन्त्येष्टि क्रिया-कल्पों में पुत्र ने ही तो कहा था—निरालम्बोऽसि वायुभूतोऽसि, पर उनकी भव्य कृति मेरे सामने आ खड़ी हुई। पिताजी की कृति भारत

की शाश्वती की पुकार है—अजर और अमर है। पिताजी भी उसी में लीन हैं और मुझे ही नहीं आपको भी चुनौती है—अभिव्यक्ति के लिए विह्वल, शतियों की संचित प्रेरणा सृजनमय भविष्य की ओर अग्रसर होने की चुनौती है। भारतीय इतिहास का प्रणय मेरा एकाकी दायित्व ही नहीं, यह आप सबका है। भारतीय बुभूषा में मेरे पिताजी समाए हैं। बन्धु, भारत की मनीषा के आह्वान को अंगीकार करो, प्रबुद्ध शुद्ध भारती की पुकार को साकार करो, साकार करो।

★ ★ ★

बुद्ध-वाणी

"अ-क्रोध से क्रोध को जीते, अ-साधु को साधुता से जीते, कृपण को मान से जीते, झूठ बोलने को सत्य से जीते। सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा रहने पर भी माँगने पर दे, इन तीन बातों से पुरुष देवताओं के पास जाता है।"

'जो मुनिजन अहिंसक, सदा काया में संयम करने वाले हैं वे अ-च्युत स्थान को प्राप्त कर लेते हैं वहां जा कर फिर शोक नहीं करना पड़ता।"

"हे अतुल, यह पुरानी बात है, आज की नहीं। लोग चुप बैठे हुए की निन्दा करते हैं और बहुत बोलने वाले की भी, मितभाषी की भी निन्दा करते हैं। संसार में अ-निन्दित कोई नहीं है। सर्वथा ही निन्दित या सर्वथा ही प्रशंसित पुरुष न था, न होगा, न आज-कल है।" (धम्मपद, क्रोधवग्ग)

"धर्म धर्मचारी की रक्षा करता है। धर्म का पालन सुख लाता है। धर्म के पालन में यह गुण है कि धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है। धर्म धर्मचारी की वर्षाकाल में बहुत बड़े छाते की भांति रक्षा करता है।" (जातक)

"कोई मनुष्य जलाशय के पास खजाना गाड़ कर रख छोड़ता है कि कभी आवश्यकता पड़ने पर काम आयेगा। राजा के कुपित होने पर, चोर के द्वारा सताए जाने पर, ऋण से छुटकारा पाने के लिए, दुर्भिक्ष में अथवा और कोई विपत्ति पड़ने पर काम पड़ेगा—उसी निमित्त संसार में लोग खजाना इकट्ठा करते हैं। इस प्रकार जलाशय के पास गड़ा धन सुरक्षित रहने पर भी सदा काम नहीं आता, या वह निधि गायब हो जाती है, या उस का ख्याल उतर जाता है, या नाग उसे हटा ले जाते हैं, या यक्ष चुरा लेते हैं या विरोधी उत्तराधिकारी उसे आँख बचा कर उठा ले जाते हैं और जिस समय पुण्य का क्षय हो जाता है उस समय यह सब नष्ट हो जाती है। दान, शील, संयम तथा दम से युक्त स्त्री या पुरुष चैत्य, संघ, व्यक्ति अतिथि, माता-पिता या ज्येष्ठ भ्राता की सेवा करके जो निधि इकट्ठा करता है वही सुरक्षित निधि है, वह अ-जेय है, साथ जाने वाली है और सब को छोड़ कर जाते समय मनुष्य उसी को ले कर जाता है। लोग उस के हिस्सेदार नहीं बन सकते। वह चुराई भी नहीं जा सकती। इस लिए बुद्धिमान् को चाहिए कि साथ जाने वाली पुण्य रूपी निधि का संचय करे। यह निधि मनुष्यों को सब-कुछ देने वाली है। सभी इच्छित वस्तुएँ इस निधि से प्राप्त हो जाती है।" (निधिकण्ड-सुत्त, खुद्दकपाठ)

"सभी देवता, पितर, पशु तथा प्राणी जिसकी मैत्री भावना द्वारा नित्य पूजित होते हैं, वह प्राणियों के प्रति मैत्री-भावना वाला मंगल है। जो सारे लोक के प्रति नम्र है, जो स्त्री, पुरुष और बच्चों के दुष्ट वचनों को सह लेता है, जो किसी से झगड़ा नहीं करता, उस की यह सहनशीलता उस का मंगल है। जो विद्या, कुल, धन या जन्म के अभिमान से मित्रों का अनादर नहीं करता, जो प्रज्ञावान् है, जो समय पड़ने पर स्मृतिमान् है उस का यह मित्रों का अनादर न करना मंगल है। जिस अनिन्दित पुरुष के मित्र शान्त होते हैं, विश्वासी होते हैं, जो मित्र-द्रोही नहीं होता और धन को बराबर बाँटने वाला होता है उस का मित्रों के प्रति यही भाव मंगल है। श्रद्धावान्, प्रसन्नचित्त, सन्तुष्ट मन से अन्न, पान, माला, गन्ध तथा लेप दान करता है, यह स्वर्ग सम्बन्धी उस का मंगल है। वृद्ध, सम्यक् चर्या से पूजित, सत्पुरुष, बहुश्रुत, शीलवान् ऋषिगण जिस आर्य धर्म से पवित्र होते हैं वह अर्हतों में मंगल है। यही लोक में वास्तविक मंगल हैं, इन से सुख प्राप्त होता है।" (महामंगल जातक ४५३)

विकास और प्रतिरक्षा का १९६४-६५ का बजट

[श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार]

नए वित्तीय वर्ष १९६४-६५ के बजट को आर्थिक विकास और प्रतिरक्षा दृढ करने का वित्तमन्त्री ने बताया है। स्पष्ट है कि यह सोद्देश्य है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वित्तमन्त्री ने शासन-व्यय घटाने के एक उपाय को छोड़ कर और अन्य उपायों का आश्रय लिया है। महंगाई पर अंकुश रखने और उसको बढ़ने से रोकने के लिए वे प्रयत्नशील हैं। औद्योगिक उत्पादन बढ़ा कर बचत बढ़ाने और बढ़ी बचत को उद्योगों में लगाने की प्रेरणा देने को वे उत्सुक हैं। देश भारी सङ्कट में है, भीषण अकाल मुंह बाये खड़ा है, विदेशी मदद अपेक्षित आशा के अनुरूप नहीं मिल रही है, और साल-भर से राजस्थान और बिहार में अकाल होने पर भी, वित्तमन्त्री ने शासन-व्यय में और १० करोड़ रुपए की वृद्धि करना उचित समझा है।

बजट के जैसे दो भाग होते हैं, उसी प्रकार वित्त-मन्त्री के भी दो रूप हैं। एक ओर वित्तमन्त्री ने प्रचार किया है कि वैयक्तिक अंचल को निजी औद्योगिक कम्पनियों के कार्य करने के योग्य वातावरण और परिस्थिति उत्पन्न करनी चाहिये, जिस से औद्योगिक उत्पादन बढ़े, और वे अपने बढ़े मुनाफे का उपयोग पूँजी-निर्माण करने और उस पूंजी को नये उद्योगों की स्थापना में लगाएं। कर-व्यवस्था भी इस ढंग से निर्मित की है, जिससे भास हो कि वित्तमन्त्री की यह हार्दिक इच्छा है। करों में देने के बदले वे पूंजी-निर्माण करें और उसको उद्योगों में विनियोग करें। यही नहीं विदेशी पूंजी इस देश में बड़ी मात्रा में आये, इसके वास्ते उसको विशेष रियायतें दी गई हैं। राजनीतिक और आर्थिक स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे इस देश के वास्ते विदेशी पूंजी के लिए अपने द्वार खोलना कहां तक उचित है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। विचार राष्ट्र का निर्माण करते हैं, इस बात को रूस और चीन ने जैसे भुला दिया है, उसी प्रकार वित्तमन्त्री ने भी भुला दिया है, अन्यथा वे विदेशी पूंजी वैयक्तिक विदेशी-पूँजी के स्वागत में यह न कहते कि भारत में विदेशी पूंजी आने का विरोध भारतीय पूंजीपति करते हैं, भारत सरकार नहीं। इस दृष्टि से १९६४-६५ का बजट भारत की आर्थिक और वित्तीय नीति में एक नये मोड़ का सूचक है।

उपार्जन में बचत करने से औद्योगिक विकास की आवश्यकता सीमित रूप में ही पूरी हो सकती है। तीव्र वेग से यदि औद्योगिक प्रगति अभीष्ट हो; तो अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होगी। कम्पनियो के उपार्जन पर वित्तमन्त्री ने कुछ कर-भार इस उद्देश्य से घटाया है, कुछ अवस्थाओं में सुपर टैक्स (उच्च प्रभार) भी हटा दिया है। लेकिन इतने से ही देश मे एक साथ सौ-सवा-सौ नये उद्योगों की स्थापना न होगी, और न बेकारी कम होगी, जोकि हर नियोजन के अन्त मे बढ़ती जाती है। इसके लिये नवीन पूञ्जी निक्षेप आवश्यक है। यह देश के बहुसंख्यक लोगो की वैयक्तिक बचत से ही सम्भव है। यहां वैयक्तिक बचत की बजट में कोई प्रेरणा नहीं है। यदि आयकर से ५००० आय तक का वर्ग मुक्त कर दिया जाता, तो नये उद्योगो के लिए पूञ्जी अनायास प्राप्त हो जाती और निम्न मध्यवर्ग औद्योगिक प्रगति मे सोत्साह भाग लेता। किन्तु एक ओर जहा १९६३-६४ में लगाए गये उत्पाद-शुल्कों में कोई कमी नहीं की गई, अनाज का भाव चढ़ा रहने दिया गया है, वहां इस वर्ग को कोई राहत नहीं दी गई, जिस से यह बचाये और देश की औद्योगिक प्रगति में भाग ले।

सम्भव है वित्तमन्त्री की यह इच्छा न हो कि वैयक्तिक बचत उद्योगों व शेयर-स्टाक मार्केट में लगे, क्योंकि उसके कारण सरकार की अनेक बचत-योजनाओं के निष्फल होने का भय हो सकता था। परन्तु सरकार सूद की दर बढ़ा कर अपनी बचत-योजनाओं में भाग

लेने के वास्ते व्यक्तियों को उत्साहित कर सकती थी। उद्योगों का स्वामित्व कुछ घरानों व स्कूलों में केन्द्रित न रहे, इस दृष्टि से भी यह आवश्यक था कि वैयक्तिक बचत को सरकार प्रोत्साहन दे और उस को शेयर-स्टाक मार्केट में विनियोग की प्रेरणा दे। परन्तु औद्योगिक स्वामित्व के विकेन्द्रीकरण का यह मार्ग वित्तमन्त्री ने नहीं अपनाया है और निम्न मध्यवर्ग को इतनी राहत दी है कि बाधित बचत योजना से उस को मुक्त कर दिया है। किन्तु यह उन्मुक्ति १९६४-६५ से है, यह न भूलना चाहिये।

व्यय-कर पुनः केन्द्रीय करों में स्थान पा गया है। श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने ही पहले इस का सूत्रपात किया था। किन्तु इसको क्रियान्वित करना सरल नहीं पाया गया और इस स्रोत से उत्पन्न आय भी आकर्षक नहीं थी। अतः चीनी आक्रमण के सङ्कट के समय में भी, जब एक-एक नये पैसे की वित्तमन्त्री को ज़रूरत थी, श्री देसाई ने इस को कर-सूची से अलग कर दिया था। अब इसने पुनः सम्मानपूर्वक स्थान पा लिया है। क्योंकि इस कर के उपयुक्त भारत में सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां हैं। धनी और सम्पन्न लोग खर्च करने से विरत रहें, यह इस उद्देश्य से पूरा नहीं होगा। क्योंकि उनके खर्च को रोकने के लिए अन्य वित्तीय प्रतिबन्ध कम नहीं हैं। यदि लक्ष्य यह हो कि सम्पन्न वर्ग खर्च न करे, बचाये, तो बचत करने और पूंजी विनियोग की अवस्थाएं और अधिक आकर्षक बनानी चाहिएं थीं। भुवनेश्वर-छाप का लोकतांत्रिक समाजवाद इस रीति से स्थापित न होगा। क्योंकि कर की मात्रा इतनी अल्प है कि वह सम्पन्न व्यक्ति को खर्च करने से रोकने में असमर्थ है।

इस्टेट ड्यूटी या विरासत-कर और उपहार-कर की दरों में वृद्धि भी भुवनेश्वर-भक्तों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से की गई है। सम्पत्ति का केन्द्रीकरण न हो, यह उद्देश्य शायद ही पूरा हो। दो-एक पीढ़ी के अन्दर कुल-वैभव समाप्त हो जाय, ८५ प्रतिशत तक विरासत-कर का वास्तविक लक्ष्य है। यह लक्ष्य तो पूरा होगा नहीं, भ्रष्टाचार फैलेगा। इसके कारण अनेक उद्योगों का संचालन संकट में पड़ जायगा। क्योंकि उद्योगों के मालिकों की सन्तान विरासत-कर चुकाने के लिए अपना "हिस्सा" बेचने को बाध्य होगी। इस प्रकार औद्योगिक पूंजी विनियोग को एक नए संकट का सामना करना पड़ेगा। इससे किसी उद्योगपति के लिए अपनी संचित पूँजी के बल पर नए उद्योगों की स्थापना करना सम्भव न रहेगा। नवीन उद्योगों की स्थापना सरकारी कर्ज से ही हो सकेगी। सम्भवतः यही वित्तमंत्री का लक्ष्य है। भुवनेश्वर में सम्पत्ति के केन्द्रीकरण पर चिन्ता प्रकट की गई थी। वित्तमन्त्री ने वहां की गई प्रतिज्ञा को को ही पूरा किया है। यह एक वैचारिक और सैद्धान्तिक युद्ध का एक भाग है। सरकार की आय बढ़ाना इन करों का उद्देश्य नहीं है। इन स्रोतों से सरकार को १५ लाख रु. से भी कम वार्षिक आय है। यथाः—

विरासत व उपहार कर की आय
(लाख रु० में)

	१९६३–६४ (बजट)	१९६३–६४ (अनुवीक्षित)	१९६४–६५ (बजट)
विरासत-कर	१२	१३	१३
उपहार-कर	९५	११०	११०

स्पष्ट है कि ये दोनों केन्द्रीय सरकार के खजाने में कोई विशेष वृद्धि नहीं करते। यदि इनका अन्त कर दिया जाए, तो सरकार को भारी घाटा रहेगा, यह भी नहीं कहा जा सकता। एक कर की जगह अनेक रूपों में अनेक कर लगाने से कर-संग्रह-व्यय ही बढ़ता है, पर तिजौरी में रुपया नहीं बढ़ता। यदि वित्तमन्त्री ब्रिटिश विशेषज्ञ कोल्डार की सलाह ही मानते, तो वे इन दो करों का सूत्रपात ही नहीं करते। व्यय-कर के समान ये दोनों कर भी शोभामात्र हैं और "अजागलस्तन" के समान है। यह वित्तमन्त्री के अपने प्रतिपादित सिद्धान्त से भी विपरीत है। ग्रामोफोन के रिकार्डों पर से उत्पादशुल्क इस वास्ते हटाया गया है, क्योंकि उससे आयकी रकम अत्यल्प है।

सुपर टैक्स की जगह "सर टैक्स" लगाया गया है। लेकिन यह परिवर्तन "नागनाथ" "साँपनाथ" सदृश ही है। बजट का उद्देश्य घोषित किया गया है कि पूंजी-बाजार में विश्वास उत्पन्न हो। यह उद्देश्य सुपर टैक्स की जगह सर टैक्स लगाने से सिद्ध नहीं

होता। व्यावसायिक क्षेत्र में इस परिवर्तन के कारण कोई मानसिक क्रान्ति न होगी। क्योंकि तन्त्र-मन्त्र ज्ञान, व्यावसायिक कौशल एवं सुव्यवस्था पर पहले के समान कर बना रहेगा। कम्पनी-कर का ढांचा पहले के समान लाने के लिए राजनीतिक साहस की आवश्यकता है।

निःसन्देह कर लगाने का पूंजी का आधार विस्तृत कर दिया गया है। सुपर टैक्स ६ प्रतिशत लाभ होने पर ही लग जाता था। सर-टैक्स १० प्रतिशत लाभ होने पर ही लागू होगा। एक अन्तर यह है कि सुपर-टैक्स दो मंजिला था, ५० प्रतिशत और ६० प्रतिशत। यह कर-योग्य लाभ पर ४० प्रतिशत है। इससे कम्पनियों पर से भार अवश्य कम होगा। किन्तु वित्तमंत्री की यह आशा, कि इसके कारण व्यावसायिक और औद्योगिक क्रिया-कलाप में वृद्धि होगी, शायद ही पूरी हो। क्योंकि इस कर के विषय में भारी आपत्ति यह है कि यह कर कार्य-क्षमता, सुव्यवस्था और उत्तम संगठन पर है। यह कर-सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है। इसके कारण औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने को प्रेरणा नहीं मिलती। फिर जब वित्तमन्त्री मानते हैं कि कम्पनी-अंचल को दृढ करने की आवश्यकता है, तब उनको अपने ही विश्वास के विरुद्ध काम करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

वितरित लाभांश (डिविडेंड) पर साढ़े सात प्रतिशत कर भी 'पूंजी' बाजार में विश्वास उत्पन्न न करेगा। आय-कर और सुपर टैक्स देने वाली कम्पनियों पर यह अतिरिक्त ढ़ाई प्रतिशत कर होगा। यदि राजस्व अधिक मात्रा में अभीष्ट था, तो वित्तमन्त्री निगम-कर ५२½ प्रतिशत कर के अपनी मनोकामना पूरी कर सकते थे। इससे कम्पनी-अंचल पर अतिरिक्त बोझ न पड़ता। यह लाभांश-वितरण कर वित्तमन्त्री के इस दावे के विपरीत है कि उन्होंने मितव्ययिता का पूरा-पूरा ख्याल कर के बजट बनाया है। कम्पनियां अपने उपार्जन का संचय करें और उसको नए उद्योगों की स्थापना या विद्यमान उद्योगों के विस्तार में लगावें, इस उद्देश्य से लाभांश-कर लगाया गया है, यह बात युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती। क्योंकि सुपर टैक्स की जगह सर टैक्स को कायम रखा गया है। कम्पनियां अपना संचित लाभ उद्योगों की स्थापना में लगाएँ, यह प्रेरणा ही उनको इन करों के कारण न होगी। मध्यमवर्ग ऊंचा लाभांश पाने की आशा से कम्पनियों के शेयर लेता है। यदि कम्पनियों में संचित पूँजी लगाने से वह १० प्रतिशत भी लाभांश (डिविडेंड) नहीं पा सकता, जो कि सरकार भी न्यायोचित मानती है, तो यह पठितवर्ग कम्पनियों के शेयर लेने को क्यों प्रेरित होगा? अर्थशास्त्र का साधारण विद्यार्थी भी यह बात जानता है कि लाभांश-आय पूँजी-विनियोग को प्रोत्साहन देती है। वित्तमन्त्री ने लाभांश-कर लगा कर उसकी जड़ ही काट दी है।

वित्तमंत्री श्री कृष्णमाचारी के जीवन का दूसरा बजट और एक कारण से भी बचत करने और पूञ्जी-विनियोग को प्रोत्साहन देने में असमर्थ है। बोनस-शेयर लगाना वित्तमंत्री ने उचित समझा है। इस बात को भुला दिया गया कि पहले ही बोनस शेयर पर १२½ प्रतिशत कर है। ठीक है, यह कर कम्पनिया देती हैं, किन्तु यह भी तो हिस्सेदारो की जेब से ही आता है। हिस्सेदारों पर यह दुहरा कर है। पूँजी-लाभ-कर उन पर पहले ही विद्यमान है। इस रीति से यह कर भी पूँजी की वृद्धि करने में सहायक न होगा। वित्तमंत्री की कर-योजना बचत करने को प्रेरणा नहीं देती, शेयर-स्टाक बाजार में विश्वास उत्पन्न नहीं करती, औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने को प्रोत्साहन नहीं देती और न किसान को खेतों में अधिक कठोर श्रम करने को प्रोत्साहन देती है। इस दृष्टि से यह निराशाजनक है।

वित्तमंत्री ने अपने बजट में सामान्य जन के कल्याण के प्रति अभिरुचि प्रकट की है। बूढ़ों को पैंशन देने की योजना इस दिशा में एक उचित कदम है। परन्तु इसका क्षेत्र सीमित है। सामान्य जन का कल्याण करने का मार्ग है कि मंहगाई दूर की जाय, अन्न-वस्त्र सस्ता किया जाय। क्या वित्तमंत्री का यह नया बजट बढ़ती कीमतों पर अर्गला सिद्ध होगा। अब तक का अनुभव बताता है कि वित्तीय उपाय और वित्तीय नीति कीमतों को बढ़ने से रोकने मे असमर्थ हैं। इसके विपरीत प्रतीत ऐसा होता है कि वित्तमंत्री की नीति कीमतों को चढ़ने देना है। क्योंकि कीमतों के चढ़ने से सरकार को बिक्री-कर (राज्यों की आय का यह एक

बड़ा स्रोत है) और उत्पाद-शुल्कों से आशा और अपेक्षा से भी अधिक आय होगी। यह अप्रत्यक्ष कर-प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है। युद्ध-काल में यह प्रणाली अपनाई जाती है। इसके अपनाने में एक लाभ है। जनता को सन्तोष रहता है कि कर-वृद्धि नहीं की गई, और सरकार भी कीमतों को बढ़ाकर, बढ़ी कीमतों के कारण आवश्यक धन प्राप्त कर लेती है। वित्तमन्त्री ने भी इस कार्य-नीति का अवलम्बन किया है। अतः कीमतों को बढ़ने से रोकने पर उन्होंने कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया है।

यह धारणा मिथ्या है कि प्रतिरक्षा-व्यय बढ़ने से कीमतें बढी हैं। भारत जब पराधीन था, तब भी केन्द्रीय सरकार की आय का ५० प्रतिशत सेना पर व्यय होता था। आज तो कुल आय का एक तिहाई से कुछ अधिक ही सेना पर व्यय होता है। अतः कीमतों के बढ़ने के वास्ते बढ़े सैनिक व्यय को जिम्मेदार बनाना गलत है। कीमतें बढ़ने का मूल कारण है, चलन में कागजी नोटों की अप्रतिहत वृद्धि। निस्सन्देह उत्पादन की कमी भी इसका एक कारण है। परन्तु मुख्य कारण है, घाटे की वित्तीय व्यवस्था का अधिकाधिक मात्रा में आश्रय लेना। १९६३-६४ के अनुवीक्षित बजट में १३५ करोड़ रु० तक घाटे की वित्तीय व्यवस्था का आश्रय लिया जायगा। १९६४-६५ के बजट में ८६ करोड़ रु० तक की वित्तीय व्यवस्था का आश्रय लिया जायगा। यह उत्पन्न राशि यदि आर्थिक विकास में वस्तुतः लगती, और अभाव को दूर करने में सहायक होती, तो यह घाटे की वित्तीय व्यवस्था देश के लिए वरदान सिद्ध होती। परन्तु यह युद्ध-काल के समान सामान्य जन के जीवन को अधिकाधिक संकटपूर्ण बना रही है।

वित्तमन्त्री उपभोग को वित्तीय-नीति द्वारा सीमित करके कीमतों को बढ़ने से रोकने में विश्वास करते हैं। क्योंकि अल्प-बचत का निर्धारित लक्ष्य ११५ करोड़ रु० से बढ़ाकर १३५ करोड़ रु० कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त १५,००० रु. से ऊपर की वार्षिक आय के वर्ग पर एन्नयूटी टैक्स लगाया है। यह ऐच्छिक नहीं है जो नहीं देगा, उससे आय-कर में अधिक लेगा। इस से ५० करोड़ रु० वार्षिक मिलने की आशा है। इस से संगृहीत कर का एक भाग लौटाया भी जायगा। यह उपभोग को सीमित करने के उद्देश्य से लगाया गया है। उपभोग को सीमित करने से मुद्रास्फीति न बढ़ेगी।

अप्रत्यक्ष कर घटाने सम्भव थे। अनेक उत्पाद-शुल्कों का अन्त करना सम्भव था। परन्तु सामान्य जन का कर-भार न घटाकर वित्तमन्त्री ने अप्रत्यक्ष करों में कुछ परिवर्तन करके और २६ करोड़ रु० पाने का प्रयास किया है। इस सीमा तक अप्रत्यक्ष करों में और अधिक वृद्धि हुई है। इस समयोजन से सरकार को २६ करोड़ रु० पिछले साल से भी अधिक मिलेगा, किन्तु इसके कारण मंहगाई घटेगी और सामान्य जन का जीवन-भार कम होगा, यह आशा सम्भवतः मिथ्या ही सिद्ध होगी।

१९५०-५१ से १९६४-६५ के मध्य विकास के नाम पर करों का भार जनता पर जितना बढ़ा है, उस की कल्पना इस एक बात से की जा सकती है कि केन्द्रीय सरकार की राजस्व आय २० अरब की सीमा को पार करके २१ : ३५ : ३९ करोड़ रु० पर पहुंच गई है। १९५०-५१ का साल प्रथम नियोजन का पहला वर्ष था। इन १४ वर्षों में सरकार की आय पांच गुणी बढ़ गई है। १९५०-५१ में सरकार की आय थी ४०५,८६ करोड़ रु०। राज्यांश को निकालने पर ज्ञात होगा कि १९६०-६१ में, दस साल बाद यह ८७७ ४० करोड़ रु० हो गई। पिछले दो वर्षों में आय बहुत बढ़ गई है बढ़ी आय ही इस बात का द्योतक है कि जनता का कर-भार इस सीमा में बढ़ गया है। आर्थिक विकास के नाम पर जनता की जेब से यह लिया गया। सूर्य पृथिवी से जल लेकर पृथिवी को पुनः वापस कर देता है। क्या सरकार की आर्थिक विकास की योजनाओं से जन-जीवन का कुछ प्रतिमान ऊंचा हुआ? इस प्रश्न का उत्तर निम्न तालिका दे रही है :—

शालिधान्यों और दालों की विशुद्ध उपलब्धि

प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्ध

(औंसों में)

वर्ष	शालीधान्य	दालें	कुल
१९५७	१२.८	२.४	१५.२
१९५८	१२.०	१.९	१३.९
१९५९	१३.५	२.६	१६.१
१९६०	१३.५	२.३	१५.८
१९६१	१३.८	२.४	१६.२
१९६२	१३.८	२.२	१६.०

कर-भार का अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि सरकारी जांच के अनुसार १९५८–५९ में प्रति गृहस्थ पर अप्रत्यक्ष करों का अनुपात ५.७ प्रतिशत था। शहरों में उपभोग व्यय में अप्रत्यक्ष करों का भाग ९.३ प्रतिशत था। गांवों में यह भार ६.९ प्रतिशत था। इस अध्ययन के अनुसार १९६४-६५ में यह भार शत-प्रतिशत बढ़ा होगा। आय-कर देने वाले वर्ग पर अप्रत्यक्ष कर का भार पहले १३.८ प्रतिशत था। अब वह ३० प्रतिशत होगा।

राष्ट्रीय आय के साथ कुल राजस्व आय की तुलना करने का स्वभाव प्रायः वित्तमन्त्रियों का होता है। इन दोनों के मध्य अनुपात दिखाकर वे बताते हैं कि कर-भार अधिक नहीं है। साथ ही वे यह दिखाना चाहते हैं कि अभी और कर लगाने की गुँजाइश है। श्री मुरारजी देसाई का मत था कि ११ प्रतिशत ही सरकार राष्ट्रीय आय की लेती है। ११६४–६५ में राष्ट्रीय आय सम्भवतः १७'००० करोड़ रु. होगी। इसका अर्थ है कि केन्द्रीय कर १७०५–६३ करोड़ रु. तक के हैं, अतः यह दस प्रतिशत ही है। पर यह गणना का प्रकार गलत है। क्योंकि आज पंचायतों से लेकर केन्द्रीय सरकार तक कर लगाने के अधिकारी हैं। एक मात्र केन्द्रीय सरकार ही कर नहीं लगाती। अतः राष्ट्रीय आय और करों से होने वाली आय के मध्य अनुपात निकालते समय सब करों को गिनना चाहिए।

१९६३–६४ में भारी मात्रा में कर लगाए थे। अत: १९६४–६५ में कुछ राहत पाने की आशा की जाती थी। लेकिन इस वर्ष भी ४६–६१ करोड़ रु. के कर लग ही गए हैं। उत्पाद-शुल्कों में परिवर्तन करने से १९.४५ करोड़ रु. की अधिक आय होगी। केन्द्रीय सरकार आय-वृद्धि के लिए अब जकात पर नहीं उत्पाद-शुल्क पर अधिक भरोसा करती है।

संघ सरकार के मुख्य करों का विकास

(१९५०–५१—१९६४–६५)

(करोड़ रु. में)

	जकात	उत्पाद-शुल्क	निगम-कर	आय-कर	विरासत-कर-सम्पत्ति-कर व व्यय-कर
१९५०–५१	१६१.४३	६७.५४	४०.४९	१३२.३७	....
	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००	
१९५५–५६	१६६.७०	१४५.२५	३७ ०४	१३१.३६	१.८१
	(१०३.२६)	(२१५.०६)	९१.४८	९९.२४	(१००.००)
१९६०–६१	१७०.०३	४१६.३५	१११.०५	१६७.३८	१३.०३
	(१०५.३२)	६१६.४५	(२७४.२७)	(१२६.४५)	(७१९.९)
१९६३–६४	३२०.००	७०३.४७	२७५.००	२३५.००	१५.६२
(अनुवीक्षित)	(१९८ २३)	(१०४१.५६)	(६७९.१८)	(१७७.५३)	(८६२.९८)
१९६४–६५	३३६.३७	७६९.५४	३०६.००	२५०.००	२२.२५
(बजट)	(२०८.३७	११३९.३८	७५५.८४	१८८.९६	(२२९.३)

नोटः—कोष्ठक में दिए गए अंक प्रतिशत के सूचक हैं।

इससे ज्ञात होगा कि जकात से १९५०–५१ में आय १६१.४३ करोड़ रु. थी और यह सरकार की आय का ४०.१७ प्रतिशत था। परन्तु १९६४–६५ में इस स्रोत से आय ३३६.३७ करोड़ रु. होगी, पर यह कुल आय का केवल १९.९७ प्रतिशत है। इस का अर्थ है कि आय-उपार्जन में जकात का स्थान बहुत पीछे पड़ गया है। इसके विपरीत उत्पाद-शुल्क का स्थान बहुत ऊंचा हो गया है। १९५०–५१ में इससे आय थी ६७.५४ करोड़ रु० और यह कुल राजस्व आय का १६.८१ प्रतिशत थी। लेकिन १९६४–६५ में इस स्रोत से आय का अनुमान है ७६९.५४ करोड़ रु० अर्थात् यह कर-राजस्व आय का ४५.६९ प्रतिशत है। उत्पाद-शुल्क से आय बढ़ने के तीन कारण दिए जाते हैं। (१) औद्योगिक प्रगति हुई है और औद्योगिक उत्पादन बढ़ा है। (२) अनेक उत्पन्न वस्तुओं पर कर का प्रमाण बढ़ाया गया है।

(३) उत्पाद-शुल्क योग्य वस्तुओं की सूची लम्बी की गई है। १९५२-५३ में जैसे नकली रेशम, सीमेंट, जूता, ऊनी वस्त्र, बिजली के पंखे आदि पर उत्पाद-शुल्क नहीं लिया जाता था।

करों से और अन्य स्रोतों से भारत सरकार की आय का परिमाण नीचे की तालिका देखने से स्पष्ट हो जायगा। (करोड़ रु० में)

	कर-राजस्व आय (राज्यांश छोड़कर)	अकरगत राजस्व आय	कुल आय
१९५०–५१	३७५.००	४८.८६	४०५.८६
१९५५–५६	४११.४७	६९.७२	४८१.१९
१९६०–६१	७३०.१४	१४७.३२	४७७.४६
१९६१–६२	८७५.३७	१६१.४२	१०३६.७९
१९६२–६३	१०६०.९८	३७१.९०	१४३२.८८
१९६३–६४ (अनुवीक्षित)	१३१०.०५	४५३.५१	१७६३.५६
१९६४–६५ (बजट)	१४४९.०८	५३०.९३	१९८०.०१

ब्याज, वन, अफीम, टकसाल और मुद्रा से हुई आय को करों से प्राप्त आय से अलग रखा गया है।

पिछले १५ वर्षों में आय-कर से आय अधिक नहीं बढ़ी। १९५०–५१ में इस से सरकार को आय १३२.३७ करोड़ रु. थी और १९६४–६५ में इससे २५० करोड़ रु. होगी। यह वृद्धि केवल ८९ प्रतिशत है आय-कर देने वाले वर्ग की आमदनी और उनकी संख्या मे वृद्धि की गति मन्द है। यह मध्यम वर्ग की सुस्थिति का द्योतक नहीं माना जा सकता।

नियोजनों और आर्थिक विकास योजनाओं का लाभ किस वर्ग को मिला, इसकी जाच की जा रही है। पर निम्न तालिका से ज्ञात होगा कि देश में आय-कर देने वालों की संख्या कितनी है और आय का वितरण किस रूप में होता है।

आय का वितरण

(आय देने वालों की संख्या केवल)

प्रतिशत

आयकर देने वालों का अनुपात	कर से पहले		कर के बाद	
	१९५३–५४	१९६१–६२	१९५३–५४	१९६१–६२
१. व्यक्ति मात्र				
निम्न ७० प्रति०	३७.०	४१.०	४४.०	४६.०
मध्यम २० प्रति०	२३.५	२४.५	२६.०	२८.०
उच्चतर १० प्रति०	३९.५	३४.५	३०.०	२६.०
२. वेतन भोगी				
निम्न ७० प्रति०	४१.६	४२.०	४६.६	४७.१
मध्यम २० प्रति०	२४.२	२४.३	२५.९	२६.१
उच्चतर १० प्रति०	३४.२	३३.७	२७.५	२६.८
३. अवेतन भोगी उपार्जक				
निम्न ७० प्रति०	३४.५	४०.०	४२.०	४६.०
मध्यम २० प्रति०	२३.५	२५.०	२७.५	२७.०
उच्चतर १० प्रति०	४२.०	३५.०	३०.५	२७.०

१९५३-५४ में आय-कर देने वालों की कुल संख्या २९२.३५७ थी। १९६१-६२ में इन की संख्या बढ़ कर ५७३.१३२ हो गई। वेतन-भोगी वर्ग की तुलना में अवेतन-भोगी उपार्जकों की संख्या अधिक तेजी से बढ़ी, यह अवश्य कुछ विस्मय-जनक है। इनकी संख्या १४६६६३ से बढ़ कर ३१६३९० हो गई। इसके मुकाबले इसी अवधि में वेतन-भोगी आय-कर देने वालों की संख्या १४५.६९४ से बढ़ कर २६०७४२ तक ही पहुंची। कर-पूर्व आय व्यक्तियों की ४१०.९४ करोड़ रुपये से बढ़ कर ७४०.९२ करोड़ रुपए हो गई।

आय-कर दाता की औसतन आय बढ़ी नहीं है, प्रत्युत घट गई है। १४.०५६ रुपये से घट कर १२.९२८ रुपए ही रह गई। ५,००० रुपये से १०,००० रुपए तक वार्षिक आय वाला वर्ग दुगना हो गया है। इस की संख्या १७७'६७५ से बढ़ कर ३४९००३ हो गई। एक लाख रुपए से अधिक आय वाले वर्ग की संख्या २२२४ से बढकर २६४९ ही पहुँची है। यह वस्तुतः विस्मयजनक है। चोर-बाज़ारी का पैसा कहां छिपा है, सरकार उसका पता नहीं लगा सकी है। जब देश में विधायकों और नगरपालिका के सदस्यों की कुल संख्या और उनकी उपार्जक शक्ति पर ध्यान दिया जायगा, तब ज्ञात होगा कि चोर-बाज़ारी का पैसा कहां है, और सरकार और उसका कर-संग्राहक विभाग उसकी जेब पर क्यों नहीं हाथ लगाता। शहरों में बनते मकान क्या यही सूचित करते हैं कि लखपतियों की संख्या दस सालों में देश-भर में केवल ४२१ की ही वृद्धि हुई। कर-अपवचन कहां पर सरकारी सहायता से हो रहा है, यह देखा जा सकता है।

अप्रत्यक्ष कर कीमतों को बढ़ाने में भी सहायक होते हैं। क्योंकि उत्पादन-व्यय इसके कारण बढ़ जाता है। मेवा, खोपरा, कास्टिक सोडा, हाई कार्बन या स्प्रिंग स्टील वायर पर आयात-शुल्क या जकात बढ़ाया गया है। साबुन बनाने वालों पर से तो उत्पादक-शुल्क घटाया गया, पर साबुन बनाने वाली चीज़ों (खोपरा-कास्टिक सोडा) का दाम बढ़ गया है। अतः साबुन महंगा हो गया है। कपड़े धोने का साबुन भी महंगा हो गया है। जकात और उत्पादक-शुल्क के कारण वित्तमन्त्री ने १५ करोड़ रुपए अधिक आय पाने की आशा की है। इसका समर्थन यह कर के किया गया है कि यह मुद्रा-स्फीति को बढ़ने से रोकेगा। लेकिन नियोजन-व्यय में ३३३ करोड़ रुपये की वृद्धि के कारण मुद्रा-स्फीति में वृद्धि होगी। उसके प्रभाव को रोकने में यह असमर्थ है। अतः कीमतें तो बढ़ेंगी ही। प्रतिरक्षा-व्यय में ४६ करोड़ रुपए की वृद्धि हुई है, और नागरिक प्रशासन के व्यय में १६१ करोड़ रु० की वृद्धि हुई है।

तैयार कपड़े की जगह पर सूत पर उत्पादक-शुल्क लगाने की नीति भ्रष्टाचार को जन्म देगी। इनकी दरों को देखने से यह सत्य स्वतः उद्भूत हो जायगा।

श्रेणी	वर्तमान दर	प्रस्तावित दर
	न० पै०	न० पै०
सुपर फाइन	२.६७	८.४
फाइन	२.६७	७.२
हाई मीडियम	२.१६	५.५
लोअर मीडियम	२.१६	४.४
मोटा	१.३४	२.२

इसके कारण कपड़े का दाम बढ़ेगा, घटेगा नहीं। अन्त में वस्त्र के महंगा होने पर क्या महंगाई के घटने की आशा की जा सकती है?

१९६४-६५ में केन्द्रीय सरकार बाज़ार से २९५ करोड़ रुपए का कर्ज़ लेगी। राज्य इसके अतिरिक्त ऋण लेंगे। १९६३-६४ में ऋण-प्रोग्राम सरकार का सन्तोषजनक नहीं रहा। ३९३ करोड़ रुपये (१०० करोड़ रुपए राज्यों के लिए) कर्ज़ लेने का प्रोग्राम था। अनुमोदित अनुपात अब ४४१.७० करोड़ रुपये का है। किन्तु बाज़ार से जो वस्तुतः मिला वह है ३६६'७० करोड़ रुपए। जीवन बीमा निगम और प्रावीडेंट फण्ड, कर्ज़ लेने वाले दो मुख्य घटक हैं। तीसरे घटक बैंक हैं। इस वर्ष शायद ही ये सरकारी ऋण पत्र अधिक मात्रा में खरीद सकें। क्योंकि इनके पास जमा राशि और कर्ज़ में अनुपात ७४ से बढ़ कर (फरवरी १९६३) ७७ (फरवरी १९६४) हो गया।

अल्प बचत भी सरकार को सङ्कट के समय सहायता करती है। यह रक़म साधारण नहीं है।

(करोड़ रु० में)	अल्प बचत	अल्प बचत का निर्धारित लक्ष्य
प्रथम नियोजन	२४१	२२५
द्वितीय नियोजन	४००	५००
तृतीय नियोजन		६००

१९६३-६४ में ११५ करोड़ रुपये अल्प बचत में जमा हुआ। १९६४-६५ के वास्ते १२५ करोड़ रुपये की आशा की गई है। तृतीय नियोजन के पहले दो सालों में औसतन प्रति वर्ष ८५ करोड़ रुपये जमा हुआ। इस का अर्थ है कि तृतीय नियोजन के अन्तिम

वर्ष सरकार अल्प बचत से अन्यून ६० करोड़ रुपए अवश्य पाना चाहेगी, अन्यथा निर्धारित लक्ष्य पूरा न होगा।

तृतीय नियोजन को पूरा करने के लिए आवश्यक धन-राशि में सरकारी उद्योगों से ४५० करोड़ रु० पाने की आशा की गई थी। लेकिन नाहन फांउड्री लि०, नेशनल बिल्डिंग कंस्ट्रक्सन लि० ने घाटा दिखाया है। प्राग टूल्स लि० और हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्टरी लि० नेशनल इंस्ट्रूमेंट्स लि०, हिन्दुस्तान साल्ट लि०, मझगांव डाक लि० आदि का लाभ नाम मात्र को है। इन उद्योगों में सरकार या राष्ट्र की १९९·०१ करोड़ रु० पूँजी लगी हुई है। इनसे १४·७७ करोड़ रु० का लाभ होने का अर्थ है कि मुनाफा केवल ७·५ प्रतिशत रहा। चल रहे ३० संस्थानों का लाभांश केवल २.२२ करोड़ रु० है और यह १·२ प्रतिशत ही होता है। सरकारी इस्पात उद्योग को भी २३·९१ करोड़ रु० का घाटा रहा है। घाटे का विवरण इस प्रकार है—

(घाटा करोड़ रु० में)

रूरकेला	१०·७
दुर्गापुर	८·४
भिलाई	४·५

स्पष्ट है कि इस्पात उद्योग का संचालन सुव्यवस्थित रीति से नहीं हो रहा है।

१९५६–५७ से १९६३–६४ के आठ वर्षों में प्रति वर्ष लगभग ६३० करोड़ रु० के अतिरिक्त कर लगाए गए हैं। नियोजनों के प्रारम्भ के पहले प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों से सरकार की आय ५०५ करोड़ रु० थी। अब यह, १९६३–६४ के अनुमोदित बजट के अनुसार १५५० करोड़ रु० है। १९५१–५२ की तुलना में हम अब तीन गुणा दे रहे हैं। राज्यों ने १९६३–६४ में ५९७ करोड़ रु. के कर लगाए। फलतः, १९६३–६४ में भारत ने प्रत्यक्ष करों और अप्रत्यक्ष करों द्वारा २१४७ करोड़ रुपये दिया। यह प्रति व्यक्ति ५० रु० होता है। क्या यह सब भार आर्थिक विकास के लिए उठाया जा रहा है! यह एक मिथ्या भ्रम है कि आर्थिक विकास के लिए नए-नए कर लगाए जाते हैं या उनकी दरें बढ़ाई जाती हैं। जरा इधर ध्यान दीजिए।

करोड़ रु० में

	करों से प्राप्त	राष्ट्रीय अंचल में व्यय	कुल आय का प्रतिशत
प्रथम नियोजन	५७५	१९६०	२९
कर राजस्व आय का नियोजन में व्यय	१००२	४६००	२२

तृतीय नियोजन की योजनाओं और परियोजनाओं के वास्ते ११०० करोड़ रु० केन्द्र द्वारा और राज्यों द्वारा ५५० करोड़ रु० संग्रह किया जायगा। केन्द्रीय सरकार अब तक तीन वर्षों में १३०० करोड़ रु० करों से जमा कर चुकी है। जब कि निर्धारित लक्ष्य ११०० करोड़ रु० ही था। यह रकम पांच साल में जमा होनी थी। रिजर्व बैंक ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि केन्द्रीय सरकार के पांच साल के निर्धारित लक्ष्य को भी पार कर लिया गया है। लगाए अतिरिक्त करों से तृतीय नियोजन के पहले तीन वर्षों में सरकार को १९०० करोड़ रु० की आय होगी। केन्द्र और राज्यों के १९६३–६४ के अतिरिक्त कर-योजना के के फलस्वरूप कर राजस्व आय और राष्ट्रीय आय के मध्य अनुपात ९–६ प्रतिशत हो जायगा और दूसरे नियोजन के अन्त के मुकाबले १३ प्रतिशत अधिक होगा।

१०६३-६४ में लगाए गए करों से आशा से अधिक १०० करोड़ रु. आय हुई। १९६४–६५ में भी नए कर लगाए गए हैं। १९६५-६६ तृतीय नियोजन का अन्तिम वर्ष है, और उस वर्ष भी और कर लगेंगे ही। इसका अर्थ है कि केन्द्रीय सरकार अतिरिक्त करों द्वारा ३००० करोड रु० तब तक प्राप्त करेगी जब कि उसका मूल निर्धारित लक्ष्य ११०० करोड़ रु० ही था। अतः प्रश्न उठता है कि दीन-हीन जनता पर यह अनावश्यक कर-भार क्यों बढ़ाया गया। आर्थिक विकास की योजनाओं के अतिरिक्त अविकास के कार्यों का अनावश्यक खर्च बढ़ाया गया है।

आय का न्यून-से-न्यून अनुमान करने की परि–

पाटी जारी है। इसके कारण घाटा दिखाकर नए कर बराबर लगाए जाते रहे। ३१ मार्च, १९६३ को अन्त होने वाले तीन वर्षों के बजट आय और वास्तविक आय के मध्य क्रमश: १११, करोड़, १२४ करोड़ रु० और ११४ करोड़ रु० की अधिकता है। इसके कारण पूँजी-निर्माण में भारी बाधा पहुँच रही है।

बजट पेश करने के बाद के तीन सप्ताहों में बाजार पर जो असर हुआ है, वह उत्साहवर्द्धक नहीं हैं। पंजीनिक्षेप और अर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलने की आशा तो मिथ्या सिद्ध हुई। पूंजी-विनियोगक निराश और हताश हैं। बाजार भी निराशा की मनोवृत्ति का है। शेयरों की कीमत चढ़ने के बदले गिरी हैं। उसका रुझान अब भी गिरने की ओर है। श्रीकृष्णमाचारी के बजट ने केवल श्रीमन्तों के वर्ग पर ही आघात नहीं किया है, बल्कि स्टाक शेयर बाजार में रुपया लगाने वाले मध्यम वर्ग पर भी प्रहार किया है। इनका अपराध यही है कि ये अपनी बचत सरकारी बचत योजनाओं में न लगाकर उत्पादक भागों में लगाते हैं। इस रीति से ये औद्योगिक विकास की प्रगति को वेग देने में सहायक होते हैं। बोनस शेयर पर पूंजी-कर लगाकर और लाभांश पर ७½ प्रतिशत कर लगा कर वित्तमन्त्री ने इस वर्ग के उत्साह पर पानी डाल दिया है। इन और अन्य कारणों से यदि वित्तमन्त्री की आशा पूरी न हो, तो उसके लिए उनके सिवाय और दूसरा कोई उत्तरदायी न होगा। देश के अवरुद्ध आर्थिक विकास को यह बजट प्रवाह देने में विफल रहा है। इसके साथ यह मंहगाई बढ़ाने में तथा रुपये की क्रय-शक्ति और अधिक घटाने में सहायक होगा। इस पर विदेशी पूँजी का हमला होगा। फलत: अंग्रेजी रानी का राज्य बना रहेगा। यह बजट अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी को नई दिल्ली पहुंचने देने से रोकने में सहायक होगा। ★ ★ ★

भावात्मक एकता एवं सांस्कृतिक निष्ठाएँ

श्री लल्लनप्रसाद व्यास

किसी देश में वहां की राष्ट्रीयता का विकास और राष्ट्रीय एकता की स्थापना तभी सम्भव है जब सभी देशवासी चाहे वे किसी भी धर्म, सम्प्रदाय अथवा म.. के हों—वहां की सांस्कृतिक धरोहर को अपनी धरोहर समझें। इस एक भाव के अभाव में ही पृथक् निष्ठाओं का जन्म होता है और पृथक् निष्ठाएं राष्ट्रीय एकता के मूल पर ही चोट करती हैं। आज कहने की आवश्यकता नहीं कि पृथक् निष्ठाओं के कारण ही देश खंडित हुआ। भारत का इतिहास बताता है कि समय-समय पर यहां कई विदेशी जातियां आई. लेकिन यहां के राष्ट्रीय जीवन के साथ समरस हो गईं। आज उन की और भारत के शेष निवासियों की न तो संस्कृति अलग है और न सांस्कृतिक धरोहर ही, और इसी लिये उनके कारण भारत की अखंडता पर कोई आंच भी न आई।

अतएव स्पष्ट है कि देश में विद्यमान सभी जातियों, वर्गों और सम्प्रदायों की सांस्कृतिक निष्ठाएँ एक हों तथा उनकी सांस्कृतिक धरोहर एक हो, तभी राष्ट्र की जीवनधारा एक होकर प्रवाहित हो सकती है।

सांस्कृतिक निष्ठा की एकता का यह अर्थ नहीं कि उसमें धर्म अथवा उपासना गत एकता भी अनिवार्य हो। धर्म अथवा उपासना गत भिन्नता किसी प्रकार भी भावनात्मक एकता को हानि नहीं पहुँचाती और यह भिन्नता तो इस देश में प्रारम्भ से रही और रहेगी ही।

अतएव यदि देश में वास्तविक एवं स्थायी राष्ट्रीय एकता और भावनात्मक एकता का निर्माण करना है तो सभी देशवासियों द्वारा सांस्कृतिक एकता की अनुभूति एक अनिवार्य तत्त्व है। इसके लिये यह आवश्यक है कि इस देश का रहने वाला प्रत्येक निवासी चाहे वह जिस जाति या धर्म का हो—यहां के प्राचीन गौरव-केन्द्रों, मान-बिन्दुओं अथवा सांस्कृतिक धरोहर को पूर्णत: अपनी समझे, उनके प्रति गौरव का अनुभव करे तथा उन से प्रेरणा ग्रहण करे। इस भावनात्मक एकता के लिये धर्म के आधार पर तथाकथित अल्पसंख्यकों का पृथक् रूप से विचार आवश्यक नहीं। वस्तुत: अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक एक राजनीतिक विचार है, जिसको जितनी जल्दी दूर किया जा सके, उतना ही भावनात्मक अथवा राष्ट्रीय एकता के लिये श्रेयस्कर होगा। धर्म तो एकता की कड़ी बनना चाहिये, न कि विभेद का कारण। धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक की कल्पना अनजाने में ही विभेद को जन्म देती है और जब तक यह विभेद विद्यमान है तब तक देश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बारे में निष्ठाओं की समानता भला कैसे सम्भव हो सकेगी? ●

बलिदान का महान् आदर्श

[प्रा. एच. आर. नावरे]

बाणभट्ट कवि का आश्रय-दाता राजा श्रीहर्ष स्थानेश्वर का नरेश था। उस का साम्राज्य हिमालय से नर्मदा नदी तक फैला था। सातवीं शताब्दी में उस जैसा शूर राजा उत्तर भारत में कोई नहीं हुआ और उसको सातवीं शताब्दी का 'अकबर' कहा जाय तो शायद अनुचित न होगा।

श्रीहर्ष पहले हिन्दू तत्त्वज्ञान का अनुयायी था, लेकिन जीवन-उत्तरार्ध में उसने बौद्ध-धर्म स्वीकार किया। तथापि वह विद्वान् था, रसिक था, पण्डितों का आश्रयदाता था। बाणभट्ट ने 'हर्ष-चरित' में उस का पूरा इतिहास एवं चरित्र लिखा है और वह ग्रन्थ आज भी संस्कृत-साहित्य का एक अमूल्य निधि है। संस्कृत भाषा में भी उसकी गति अच्छी थी। उस ने संस्कृत में तीन नाटक भी लिखे हैं— प्रियदर्शिका, रत्नावली, और नागानन्द। इन नाटकों में से एक नाटक में श्रीहर्ष ने हमारे सामने बलिदान का एक महान् आदर्श रखा है और वह नाटक है नागानन्द।

नागानन्द नाटक की कथावस्तु इस प्रकार है —

विद्याधर राजपुत्र जीमूतवाहन राज्य का कारोबार प्रधानमन्त्री को सौंप कर अरण्य में अपने माता-पिता की सेवा करने के लिए चला जाता है। वह यह सोचता है, समझता है कि माता-पिता की सेवा करना राज्यसुख का उपभोग करने की अपेक्षा अधिक अच्छा है। वह युवक था, यौवन का सब सुख त्याग कर माता-पिता की सेवा के लिये वन गया और उनकी सेवा मे सुख पाने लगा। किन्तु उसके विदूषक मित्र को यह अच्छा न लगा और उसने कहा—"अरण्यवास में कुछ भी सुख नहीं। राजा जी, आपको राजधानी लौट जाना चाहिये। राज्य-सुख और यौवन-सुख का उपभोग करना चाहिये। राजा का कर्तव्य भी है, राज्य में सुव्यवस्था कायम करना, दूसरे राजाओं के आक्रमण से राज्य को बचाना। पास-पड़ोस का राजा मतङ्ग कई दिनों से जीमूतवाहन का राज्य हड़पने की ताक में बैठा हुआ है।" तब जीमूतवाहन ने कहा— "भाई, जब मैं अपना शरीर ही दूसरों को देने के लिए तैयार हूँ तो राज्य की चिन्ता ही क्या!" राजपुत्र के अटल निश्चय के सामने विदूषक की एक न चली। आदर्श पुरुषों का सङ्कल्प ऐसा ही पक्का होता है।

जीमूतवाहन और विदूषक जङ्गल में घूमते हुए भगवती गौरी के मन्दिर के पास पहुँचे और वहां मंदिर में मलयवती वीणा बजाती मधुरभाव-प्रधान काकली गीत गा रही थी। गीत में उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट झलकती थी। तभी दोनों मन्दिर में दाखिल हुए तो मलयवती और जीमूतवाहन की आँखें चार हुईं। दोनो में आकर्षण बढ़ा। शृङ्गार-रस का द्वार खुला और प्रेम का अंकुर फूल गया।

मदन से पीडित मलयवती चन्दन-लता-गृह में निवास कर रही थी। उसकी दासी अपनी स्वामिनी की भावना को ताड़ गई और बोली—"अपने हृदयस्थ वर के लिए आप इतनी पीडित हो गई हैं! अजी, आप के चित-चोर भी आप के कारण बेचैन हैं।" इस प्रकार दोनों में बातचीत हो रही थी कि उसी स्थान की ओर जीमूतवाहन और विदूषक बातचीत करते आ रहे थे। उनकी आवाज़ सुन कर मलयवती और चतुरिका दोनों एक अशोक-वृक्ष के पीछे छिप गई और उन दोनों की बातें सुनने लगीं। जीमूतवाहन मणि-शिला पर बैठ कर सुनाने लगा—"रात-भर नींद नहीं आई। स्वप्न में वह आई थी, उसका प्रणय-कोप मन को झकझोर रहा था।" यों कहते-कहते वह उस शिला पर एक युवती का चित्र भी अंकित करने जा रहा था जिस से वह प्रेम करता था। इससे मलयवती सन्देह करने लगी कि वह किसी दूसरी युवती से प्रेम करता है। ऐसी ही बेला में मलयवती का भाई मित्रावसु आया और उसने जीमूतवाहन से प्रार्थना की कि मेरी बहन का पाणिग्रहण करें। यह प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ, इसलिए कि जीमूतवाहन को इस बात

का पता नहीं था कि जिस से वह प्रेम करता है वह मित्रावसु की बहिन ही है। किन्तु मित्रावसु अपना सन्देश ले कर जीमूतवाहन के पास गया ; इस घटना से मलयवती को पूरा विश्वास हो गया कि अपना प्रियतम किसी और से प्रेम करता है। वह निराश हो कर अपने जीवन का अन्त करने में प्रवृत्त हुई। तभी जीमूतवाहन और विदूषक ने घटनास्थल पर जा कर उसको आत्महत्या से परावृत्त किया और खींचा हुआ चित्र दिखाया तो मलयवती का सन्देह दूर हुआ। इतने में उसके वधू के रूप में स्वीकार करने का समाचार, जो जीमूतवाहन के पिता जी के द्वारा भेजा गया था, मिल गया। धूमधाम मे विवाह का काम सम्पन्न हुआ। सर्वत्र खुशियां मनाई जाने लगीं। विद्याधर और सिद्ध लोग मद्य पी कर नाच रहे थे। और गा रहे थे। ऐसे ही समय में रङ्ग में भङ्ग करने वाली खबर मित्रावसु ने जीमूतवाहन को दी—"राजा मतग ने राज्य पर आक्रमण किया है। यदि आज्ञा दें तो मै उनसे जाकर लड़ूं।" तब जीमूतवाहन ने कहा—बेचारा मतंग! उसने जो कुछ किया है वह पापी मन से किया है। उसका द्वेष करना अच्छा नहीं है। पाप के सिवा दूसरा कोई मेरा दुश्मन नहीं है। मैं अपनी जान बिना किसी कारण के भी देने के लिए तैयार हूँ तो राज्य की बात ही क्या!" मित्रावसु यह सुनकर लौट गया।

कुछ समय के उपरान्त जीमूतवाहन और मित्रावसु समुद्र के किनारे घूमने गये। समुद्र के पास ही मलयपर्वत था। किनारे पर गरुड़ से मारे गए सांपों की अस्थियों की राशि पर्वत के समान दिखाई दे रही थी। उसके बारे में जीमूतवाहन ने पूछा तो मित्रावसु ने कहा कि सर्पों के राजा वासुकि ने गरुड़ से समझौता कर लिया था कि प्रतिदिन एक सर्प उसको खाने के लिए दिया जायगा। बहुत वर्षों से समझौते का पालन किया जाता आया है। हर रोज एक सर्प मर जाता है, बाकी सर्पों की रक्षा होती है। किन्तु जीमूतवाहन की समझ में नहीं आया कि वासुकि ने अपना बलिदान क्यों नहीं दिया? थोड़े समय के बाद मित्रावसु घर गया और जीमूतवाहन वहां अकेला रह गया।

कुछ समय के बाद वहां शंखचूड नामक सर्प अपनी माता के साथ पहुँचा। उसको आज गरुड का खाद्य बनना था। वह अपनी माता का इकलौता पुत्र था। अतः माँ विलाप कर रही थी। शंखचूड उसकी ओर ध्यान नहीं दे रहा था। तब जीमूतवाहन के मन में विचार उठे "मेरे बलिदान से इन दोनों की रक्षा होगी। यदि न दूं तो शंखचूड की मृत्यु से उसकी माता भी मर जायगी। एक के बजाय दो की मृत्यु होगी।" शंखचूड को ये विचार पसंद नहीं आये। बलिदान देने के पूर्व शंखचूड माता के साथ गोकर्ण क्षेत्र गया महादेव को प्रणाम करके लौटने के लिए। जीमूतवाहन को अपना बलिदान देने का मौका मिला। लेकिन बलि जाने के लिए रक्तवस्त्रों की आवश्यकता थी। शंखचूड तो अपने रक्तवस्त्र अपने साथ ले गया था। क्या किया जाय? संयोगवश कंचुकी विश्वावसु के दिए हुए वैवाहिक रक्तवस्त्र लेकर वहाँ पहुँचा। उनको देखकर जीमूतवाहन ने कहा, अब मेरा विवाह सार्थक हुआ कि समय पर ये दो रक्तवस्त्र मुझे मिले।" उन वस्त्रों को पहनकर जीमूतवाहन गरुड की प्रतीक्षा करने लगा।

गरुड आकर उसको उठा ले गया। मलयपर्वत पर बैठने के बाद उसको अपनी गलती मालूम हुई। जीमूतवाहन जख्मी हुआ था, तो भी वह आनन्दित था। समय बीत रहा था, इतने में शंखचूड आया और देखा कि खून की धारा पड़ी है। गरुड ने गलती की है। वह रक्त की धारा के चिह्न का अनुसरण करके मलयपर्वत की ओर बढ़ा। रास्ते में जीमूतवाहन के माता-पिता से भेंट हुई। उसकी पत्नी भी उन्हीं के साथ थी। गरुड के ले जाते समय जीमूतवाहन का रक्तरंजित चूडामणि उसके पिता की गोद में गिर गया था। अपने पुत्र के जीवित रहने के सम्बन्ध में संदेह हो गया था, शंखचूड को भी ऐसा ही लग रहा था। सभी मिलकर मलयपर्वत की ओर रवाना हुए। किन्तु जीमूतवाहन के माता-पिता और पत्नी ने यही उचित समझा कि अब हमारा जीना बेकार है। वे चिता जलाकर उसमें गिरकर जीवन का अन्त कर लेने की तैयारी करने लगे।

जीमूतवाहन घायल होकर गरुड के सामने पड़ा

अंतिम साँसें ले रहा था इतने में भगवती गौरी वहाँ पहुंची। जीमूतवाहन के आदर्श बलिदान से प्रसन्न हुई और उसको जिलाया। गरुड़ ने भी अहिंसा धर्म पालने की प्रतिज्ञा की। जीमूतवाहन गौरी के प्रसाद से केवल बचा ही नहीं, अपितु विद्याधरों का सम्राट् भी हुआ। सभी प्रसन्नता से आनन्द मनाने लगे। जीमूतवाहन को अपने स्वाभाविक बलिदान का फल मिल गया।

यह है नाटक की कथावस्तु। नाट्यशास्त्र के नियमानुसार नाटक आनन्द-पर्यवसायी है। किन्तु नायक का बलिदान स्वयं प्रेरित है और आदर्शपूर्ण है। जीमूतवाहन माता-पिता की सेवा को महत्त्व देता है, उनके दुःख को दूर करने के लिए उनकी सेवा करता है और पुत्र का कर्त्तव्य निभाता है। मलयवती से प्रेम करते रहने पर भी अपने ध्येय को भूलता नहीं। अपने सुख की अवहेलना करके, अपने राज्यसुख को उपेक्षित करके, अपने शत्रु से भी शत्रुता भूल करके, शंखचूड को जीवदान देकर सभी नागजाति की रक्षा और साथ ही उसकी माता को जीव-दान दे करके जीमूतवाहन ने जो बलिदान दिया वह सत्य, शिव, सुन्दर था, अतः वह आनन्द-पर्यवसायी हुआ। भारत की आज की परिस्थिति में जीमूतवाहन का स्वयं प्रेरित बलिदान नवयुवकों के सामने बलिदान का आदर्श उपस्थित करता है। ★ ★ ★

भावनात्मक ऐक्य

डॉ रवीन्द्रकुमार जैन

जड़ सड़ रही है,
उसे कौन देखता है?
मानवैक्य के नाम पर,
भावना-ऐक्य के नाम पर;
भाषा-ऐक्य,
सांस्कृतिक आदान-प्रदान,
शिक्षा माध्यमैक्य,
सिद्धान्तैक्य,
उच्च कर्मचारियों—
के ट्रांसफर,
उत्तर की भाषाएँ दक्षिण में .
और दक्षिण की उत्तर में
सिखाई जाएँ।
तुम हम पर लिखो
हम तुम पर लिखें
आदि बातें सोची जा रही हैं—
की जा रही हैं। और,
करोड़ों का धन बहाया जा रहा है
पानी की तरह।
आदर्शों के प्रकाश में नहीं;
गहन अन्धकार में घुड़दौड़ हो रही है
चोटी के दावेदारों की,
कर्णधारों की।
बात यह है कि,
ये सब बातें बहुत पीछे की हैं
चोटी की हैं,
मूल की नहीं,
जड़ की नहीं।
असम्भव है—
भावनात्मक ऐक्य
जब तक कि
देश के किसी भी भाग में—
आर्थिक विषमता है,
शोषण है,
निर्धनता है,
हीन जीवन-स्तर है
छोटे बड़े का भाव है
जातिवाद, वर्गवाद,
आफिसर शाही,
पूँजीवाद,
राष्ट्रीय चरित्र का अभाव
आदि दिग्व्यापिनी
विभीषिकाएँ हैं।
गरज यह, कि,
जब तक
हीनता-ग्रन्थियों के जनक
मूलकारण
इस देश में हैं
असम्भव ही रहेगा
भावनात्मक ऐक्य।

एकता के प्रसार में संस्कृत का योगदान

[डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल]

कदाचित् विश्व-भर में अब भी ऐसा कोई साहित्य नहीं सृजित हो पाया जोकि समस्त संसार को एकता के सूत्र में निबद्ध कर सकने की क्षमता रखने वाले संस्कृत भाषा के साहित्य की कोटि में आ सके। जगत् के प्रत्येक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय और रंग-रूप के व्यक्ति को सुदृढ ऐक्य के मनोज्ञ तन्तु से सुग्रथित कर सकना उसकी अनेकानेक विशेषताओं में से एक अन्यतम मूर्धन्य विशेषता है। यही वह साहित्य है जिस ने सृष्टि-निर्माण के उषःकाल में मानव-जाति को एकता से रहने का सदुपदेश किया। और आज भी जितने सुनिश्चित शब्दों में जितने सरल और साधु-हृदय से जितनी स्निग्ध और बन्धुर-बन्धुता पूर्वक प्रवीण पद्धति में यह संस्कृत-साहित्य जगती-तल की जनता को एकता से व्यवहार करने का माता की भांति उपदेश कर रहा है उतने सौष्ठव के साथ अन्य किसी भाषा का साहित्य निश्चित ही वह सत् कार्य नहीं सम्पन्न कर पा रहा।

संस्कृत-भाषा की श्रुति माता सहस्रों शताब्दियों से लोक में सुख-समृद्धि सहित जीवन-यापन करने के लिए जन-वृन्द को सवात्सल्य कहती आ रही है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ (ऋग्)

हे मानवो, तुम सब मिल कर चलो; सब सौहृद सहित एक-दूसरे के साथ बोलो; ऐसा प्रयास करो जिस से सब के मन मोद पाते रहें। जिस प्रकार तुम्हारे पूर्व-जन्मा मित्रता-पूर्वक रहते थे उसी प्रकार तुम भी रहो।

संस्कृत-भाषा का निखिल वाङ्मय संसार में एकता की भव्य भावना का प्रसार करने, उस का पोषण करने एवं उसके संवर्द्धन करने के लिए ही भूमण्डल पर अवतीर्ण हुआ है। जबकि संसार की अन्यान्य भाषाओं के दर्शन-शास्त्र किंवा साहित्य मानव के मानस को विनोदित करने और उस की प्रज्ञा को आप्यायित करने मात्र का कार्य कर रहा है तब संस्कृत-भाषा का साहित्य, उसके सकल दर्शन-शास्त्र न केवल मानव के मनोरंजन का, उसके धी-तत्व को परितोषित करने का कार्य कर रहे हैं, अपितु वे उसके त्रिविध दुःखों के दलन करने और ऐकान्तिक तथा आत्यंतिक सुख का मार्ग-दर्शन करने का सर्वोत्कृष्ट श्लाघनीयतम अतितराम् अभिनन्दनीय कार्य कर रहे हैं। ऐसा स्तुत्य कार्य वही भाषा कर सकती है जो सबको परमार्थतः सुखी देखना चाहती है और जिसके हृदय में यह शुचि सुन्दर भावना-भागीरथी प्रवाहित हो रही है कि सब लोग संगठित हो कर, एक हो कर, मिल-जुल कर रहें।

संस्कृत-भाषा का वेदान्त-दर्शन समस्त दर्शनों का तिलक है। वह वेदों का अन्तिम छोर है। उस में वेदों के वाक्य जा कर पर्यवसान पाते हैं। वह एकता का अनुरागी और एकता का पक्षपाती दर्शन विश्व में एकता की जड़ सुदृढता पूर्वक जमाने के लिए उसको पनपाने के लिए ही रणक्षेत्र के अप्रतिद्वन्द्वी उद्भट भट के सदृश सावधान एवं वन के मृगराज केशरी के सम निर्भय हो कर गर्जना कर रहा है। जबसे उसने जन्म लिया है तभी से वह एकता का प्रसार करने के लिये, एकता की रक्षा करने के लिये एकता के परिपंथियों के साथ वीरता-पूर्वक सोत्साह संघर्ष करता चला आ रहा है। वस्तुतः संसार में ऐसा कोई साहित्य नहीं जो संस्कृत-भाषा के वेदान्त-साहित्य की एकता की रक्षा करने के लिये निहित की गई सामग्री के समान अपने पास भी सामग्री रखता हो। उसके पास एकता के परिपोषण के लिये अतुल बल है। भला उसके समान दूसरा कौन एकता का इतना हामी होगा जो सम्पूर्ण विश्व को एक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ देख ही नहीं पा रहा। उसकी दृष्टि में तो जो-कुछ भी है—भले ही वह स्थावर हो व जङ्गम—सब-का-सब ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य भी कुछ है यह कहना तो

उसके महान् विचार से अज्ञान का विजृम्भण है। अखिल जगती को—सारे ब्रह्मांड और पिण्डाण्ड को जो कि वह ब्रह्म कहता है उस कथन का यह तात्पर्य है कि समग्र संसृति के प्राणी एक ही हैं। वे भिन्न-भिन्न नहीं। उन सब में एक ही आत्मा का वास है। कर्मों और संस्कारों के कारण उनको पृथक्-पृथक् शरीर और भोग मिले हुए हैं, पर जहां तक उनका अपना अस्तित्व और स्वत्व है उससे वे एक-दूसरे से सर्वथा अभिन्न हैं। आत्मा के एक होने के नाते वे सभी एक ही हैं। वे सब में हैं और सब उनमें हैं।

हमारे शरीर में जो चेतन तत्त्व विद्यमान है वही चेतनतत्त्व जगत् के समग्र प्राणियों में राजमान है। प्राणियों में ही क्या वह तो सृष्टि के कण-कण में अभिव्याप्त हो रहा है। वह तृणों में हरितता, रत्नों में भास्वरता, चन्द्र में आह्लादकता, भानु में प्रकाशन-शीलता, जल में जीवनप्रदता, वायु में सतत गति-शीलता, पृथिवी में नानापदार्थोत्पादनक्षमता, आकाश में शब्दगुणक विशालता एवम् सभी अन्यान्य वस्तु-समुदाय में तत् तद् उपादेयता और गुणों के रूप में परिस्पन्दित हो रहा है।

जब कि सभी जीव केवल देह की उपाधि से भिन्न हैं, पर परमार्थतः सब एक ही है; सभी एक ही शक्ति से प्राणवान्, क्रियावान् और मेधावान् हो रहे हैं तो फिर किस से राग और किस से द्वेष। सभी तो अपनी ही दूसरी आकृति हैं। फिर भला ऐसा कौन है जो अपने से ही द्वेष रखता हो! अपने को ही अन्य मानना क्या बुद्धिमत्ता है? यह तो सरासर अज्ञान है, भूल है। इस अज्ञान को निराकृत करने के लिए वेदान्त उपनिषद् आदि बड़ी तत्परता के साथ जुटे हुए हैं।

'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते'॥ (ईश०)
अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
(कठ०)

इस सद्भावनामयी पदावली का अर्थ क्या होता है। यही न, कि भू-भुवन में सर्वत्र प्राणी—मानव—एकता के साथ रहें, मिल-जुल कर रहें, प्रेमपूर्वक रहते हुए सुख और शान्ति का उपभोग करते हुए दिनानुदिन उन्नति की ओर अग्रसर हों।

"अहं ब्रह्मास्मि"; "तत् त्वमसि" इत्यादि वेदांतिक महावाक्य कोई किसी से भिन्न नहीं, क्योंकि सभी में एक ही चेतन—आत्मा—प्रतिष्ठा पा रही है; सभी आत्मा के अतिरिक्त देहादि कुछ नहीं। अर्थात् सभी मानव अपने आप में आत्मा हैं देहादि नहीं हैं—इस अर्थ में पर्यवसित होते हुए वे महावाक्य मानव मात्र को यह सन्देश दे रहे हैं कि सभी मानव एकता के साथ रहते हुए ऐहिक और आमुष्मिक अभ्युदय का अर्जन करते हुए सानन्द जीवन व्यतीत किया करें।

शुकानुप्रश्न में व्यास ने कहा है कि उसी पुरुष को मोक्ष मिलता है जो यह जानता है कि हमारे शरीर में जितना और जो आत्मा है उतना और वही आत्मा दूसरे के शरीर में भी है—

"यावानात्मनि वेदात्मा तावानात्मा परात्मनि।
य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते॥"

उसी व्यक्ति से परमात्मा दूर नहीं है जो सब में परमात्मा को देखता है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥"
—(गीता)

वे ही जन उदार-चरित कहे जाते हैं जो सारी वसुधा को अपना ही कुटुम्ब समझते हैं—

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥"
—(हितोपदेश)

इस भांति सब में ईश्वर का वास अभिहित कर, सब-के-सब मानव आत्म-स्वरूप ही हैं—यह प्रतिपादित कर विश्व-भर में संस्कृत-भाषा एकता के फैलाने का अनुष्ठान निरन्तर मङ्गलमय यत्न कर रही है।

★ ★ ★

आंसुओं का रहस्य

[श्री डॉ. न. चि. जोगलेकर]

आंसुओं के रहस्य को मानव ने जानना चाहा
तब उसके उद्धार की गाथा सुनाई अश्रु-बिन्दुओं ने
हमारा घर है स्त्री की आंखें
हम करते रहते वहीं नित्य विहार
हम हैं उन्हीं के अमोघ अस्त्र
अनिवार्य-अपरिहार्य और विशेष भी
इनके आगे पराजित होकर झुक जाते हैं
देवता-मानव, स्वर्ग-मृत्यु-पाताल भी
पश्चाताप एवं ग्लानि से द्रवीभूत होने वाली
करुणा-वेदना-सहानुभूति की जलधारा
स्रवित होने लगती हैं हमीं से उद्गम रूप
पर हमारी जल कणिकाएं हैं ब्रह्ममय, विष्णुमय-शिवमय
हमारा रहस्यमय मायावी-स्वरूप जान लो-बूझ लो
बहुत प्राचीन समय में एक बार
शेषशय्या पर लेटे सोच रहे थे
ससीम मानवों की दुर्दशा कैसे हटेगी ?
अनेक विषमताओं ने इनको ग्रस लिया था
उनकी वे यातनाएँ और आपदाएँ
देखकर सच्चिदानन्द द्रवीभूत हो गए
और करुणा से उन्होंने अपने चरण नखों से
बहा दी विष्णुपदी गंगा त्रिविक्रम बन कर
वामनी विनम्रता की आर्द्रभावनामय उस गंगा में
हमारी जलकणिकाएँ भी मिल गयीं।
पश्चाताप के कारण हम उमड़ पड़ी आंखों से
इन्हीं बिन्दु बिन्दुओं से झर जाता मानव-अहंकार
पश्चाताप-दग्ध अन्तःकरण में हम बन जाते
मानव को इस भट्टी में तपा-तपा कर इन्धन
हम पावन बनाते हैं—कुंदन और शुद्ध बनाते हैं।
एक बार चतुरानन भी क्लान्त होकर बेचैन थे।
इसी थकान को मिटाने अपनी सारी बुद्धि से
निर्माण किया अपनी आत्मजा का
जो है चौंसठ विद्या एवं कलाओं की अधिष्ठात्री
चारुगात्री वीणा-वादिनी देवी शारदा।
विधाता उस अनिंद्य अनाघ्रात सौन्दर्यमयी पर
स्वयं ही रीझ गए। मोह का वह भयानक क्षण
बन गया उनके अधःपतन का एक मात्र कारण
उनके निर्मित सारे विश्व के गले लग गयी फांसी।
मानव को विरासत में विधाता ने दे दिये सारे वैषम्य
जिससे जर्जर है आजकी बर्बर मानवता
अपने अधोगमन से उन्नयन करने के लिए
विधाता रोने लगे पश्चाताप से
आंसू उमड़ पड़े झर-झर
दयाघन मधुसूदन ने करुणा से उन आंसुओं में
मिला दी विष्णुपदी-मंदाकिनी की जलकणिकाएं
और भर दिया उनको ब्रह्म कमण्डल में
विधाता का तो उद्धार हो गया
पर मानव का अभी बचा हुआ है।
भगीरथ प्रयत्न करने जुट गया सूर्यकुल का
एक मानव वीर करने लगा उग्र साधना
अपनी अव्यभिचारी निष्ठा से प्रसन्न कर लिया
उस महामानव भगीरथ ने धूर्जटी को
उस गंगा का भी गर्व परिहार हो गया
और वह भी बन गयी पावनी शिवमय
इस तरह ब्रह्ममय-विष्णुमय और शिवमय
गंगा ने किया सगर-पुत्रों का उद्धार
क्षण-भंगुर नश्वर मानव को अपना उद्धार
स्वयं ही करना पड़ता है भावनात्मक एकता से
मानव के हृदय की करुणा—दया सारी कोमलता
साकार बन कर बन गई विधाता की श्रेष्ठ कृति—नारी
उनके नेत्रों में ही रहते हैं। हम विधाता के बनाए हैं।
दुर्दिन में कवि के हृदय से बह कर हम ही कविता
बन जाते हैं।

राधा के नेत्रों ने कृष्ण के सौंदर्य को आँज लिया था।
मीरा के मतवाले प्रेम ने इसी मधुरिमा का पान किया था।
करुणा—एकता सांस्कृतिक और भावनात्मक
तभी प्रादुर्भूत होती है जब उसमें सत्य विराजता है
अन्यथा अनुभूति और अभिव्यक्ति नीरस बन जाती है
बापू ने यही तो कहा था कि सबल बनो और रोओ।
इस तरह आंसुओं का मंगलमय आख्यान है महान्
आज का मानव बन गया है दानव भस्मासुर-सा
अपनी वैषम्य—अहिल्या शिला का उद्धार कैसे होगा!

कर्मयोगी करुणाव्रती राम इहजीवन से उबारेंगे
पर तब तक इसी एकता को पाने हमें निरन्तर—
पश्चाताप और ग्लानि से बहना होगा—रोना होगा।
हृदय की द्रवणशीलता से निःसृत होगी वह सशक्त
शक्ति जिसे कहते हैं "राष्ट्रीय भावनात्मक एकता"
हमारा रहस्य बताने पुनः वाल्मीकि—तुलसी बनेंगे
महामानव राम का मंगल आख्यान रचेंगे
उनमें भी हम अश्रु-बिन्दु रहेंगे यही हमारा सन्देश है।

★ ★ ★

गीत

[क्षमा त्रिवेदी]

सब पाकर भी लगता है।
सब है, पर कुछ भी नहीं कहीं॥

अम्बर पर तारे हँसते हैं
तुम हो, मैं हूँ, यह ज्योत्स्ना है
हाथों में हाथ तुम्हारा है
यह रात स्वयं में सपना है।

मन फिर भी सहमा-सहमा-सा
यह हास व्यथा से भारी है,
जाने क्यों ऐसा लग उठता
सब है, पर कुछ भी नहीं कहीं॥

तेरी उन सुरभित सांसों से
अब तक मन मँहका-मँहका है,
सुधि की मोहक मदहोशी में
पग मेरा बहका-बहका है।

तेरी छाया में रहती हूँ-
तेरे ही बल पर चलती हूँ।
सार्थक हूँ, फिर भी लग उठता
सब है, पर कुछ भी नहीं कहीं।

तूली में चित्र तुम्हारा है।
कविता में ध्यान तुम्हारा है।
मेरी इस कोमल काया में
प्रिय केवल मान तुम्हारा है।

धड़कन में पीर तुम्हारी है।
मुस्कानों की मादकता तुम।
फिर भी अनजाने लग उठता
सब है, पर कुछ भी नहीं कहीं॥

आँचल में सिमट समाया जो
वह सुख लगता है बिखरा दूँ
जो भाव हृदय में गोपन है
सम्पूर्ण विश्व पर लहरा दूँ।

पुष्पों से अंजलि भरी हुई
सौरभ से बोझिल वायु बही
इस विस्मृति में भी चेतन हूँ
सब है, पर कुछ भी नहीं कहीं॥

★ ★ ★

भगवान् सूर्य का आत्म-परिचय

★

यह सूर्यलोक की आवाज है (१३)

[श्री कुलदीप चड्ढा]

क्या कहूँ बेटा, आज-कल प्रचार का युग है, प्रापोगैन्डे का युग, आत्म-ज्ञापन का युग। इश्तहारों और समाचार-पत्रों के प्रयोग के बाद आज हर कोई रेडियो को अपने गुण-गान के लिए इस्तेमाल कर रहा है। ज्यों ही तुम अपने रेडियो सैट को चालू करते हो, त्यों ही तरह-तरह की आवाजें सुनाई देने लगती हैं—यह रेडियो मास्को है, यह अमेरिकी नभोवाणी है।...यह बी० बी० सी० लन्दन है,...यह रेडियो जकार्ता है,...यह ब्रह्मदेश की आवाज है,...यह चन्द्र लोक की आवाज है...यह शुक्र बोल रहा है...यह सूर्यलोक की आवाज है...।

क्यों, चौंक क्यों गए मेरी बात सुनकर? तुम शायद सोचने लगे हो कि यह बूढ़ा बाबा सूर्य, वास्तव में ही सठिया गया है और बहकी-बहकी बातें करने लगा है, भला चांद-सितारों में रेडियो स्टेशन का क्या काम?

पर नहीं, वत्स, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि अभी तक तो मेरे होशो-हवास बिल्कुल दुरुस्त हैं और मैं जो-कुछ भी कह रहा हूं, बिल्कुल ठीक कह रहा हूं, चान्द में भी रेडियो स्टेशन है और तुम्हारे इस सूर्य-लोक में भी। तुम्हारी धरती के तो रेडियो स्टेशन कुछ ही वर्ष पुराने हैं, पर मेरा रेडियो स्टेशन तो हजारों-लाखों वर्ष पुराना है—शायद उतना ही पुराना जितना पुराना मैं स्वयं हूं, तथा च, तुम्हारी धरती के रेडियो स्टेशनों की आवाज तो केवल हज़ार मील तक सुनाई देती है, पर मेरे रेडियो संकेत हज़ारों मीलों की दूरी पर भी सुनाई देते हैं। निस्सन्देह मेरे धरातल पर ऊंचे-ऊंचे खम्भे नहीं गड़े हुए, रेडियो प्रसारणों के लिए—तुम्हारी धरती की तरह। पर मेरे शरीर की हलचलें ही ऐसी हैं कि वे शक्तिशाली रेडियो तरंगों को पैदा करती हैं।

लेकिन शायद कुछ विस्तार से बात करूं, तभी तुम ठीक से समझ पाओगे मेरी बात। तो सुनो।

आज से कोई ७० वर्ष पूर्व की बात है। उस समय तक मनुष्य बिजली पैदा करना सीख चुका था, बिजली के लट्टुओं से प्रकाश पैदा करने का रिवाज़ भी चल चुका था और छोटे-मोटे यन्त्र भी बिजली से चलने लगे थे। उस समय आयरलैंड में जेम्ज़ क्लार्क मैक्सवैल नाम का एक गणितज्ञ रहता था। उसने बिजली-विज्ञान की, अपने गणित की रीति-नीति की सहायता से, खोज-पड़ताल की। अन्त में उसने एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त खोज निकाला। उसका कहना था कि जिस तरह पानी के तालाब में कंकर—पत्थर फेंक कर गड़बड़ पैदा करने से लहरें उपजती हैं, उसी तरह यदि बिजली के किसी क्षेत्र में किसी प्रकार की गड़बड़ अथवा हलचल हो तो बिजली की लहरें पैदा होंगी—ऐसी लहरें, जो भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रचलन भी कर सकती हैं। बिना किसी माध्यम के, कुछ दूरी पर यदि धातु का कोई तार हो तो उसमें ये तरंगें क्षीण-सी बिजली का संचार करेंगी।

कुछ समय बाद, जर्मनी के एक वैज्ञानिक हर्ज़ ने इस विचार का, प्रयोग द्वारा परीक्षण किया। भारत के श्री जगदीश बसु ने भी इन प्रयोगों को दोहराया। इन दोनों के प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप मैक्सवैल के सिद्धान्त को मान्यता मिली। तत्पश्चात् इटली देश के एक साहसिक मारकोनी ने, बिजली की इन तरंगों को संदेश भेजने के निमित्त प्रयोग करने की प्रणाली का आविष्कार किया। बाद में, एक स्थान से दूसरे स्थान अथवा एक देश से दूसरे देश को समाचार, संगीत और विचार आदि पहुंचाने के निमित्त इनको प्रसारण के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा। बिजली की इन्हीं तरंगों को तुम आज-कल रेडियो तरंगें कहते हो—या फिर कभी-कभी बेतार (वायरलैस) तरंगें, अथवा विद्युच्चुम्बकीय (इलैक्ट्रोमैग्नेटिक) तरंगें।

और आज-कल तो तुम्हारी धरती इन रेडियो तरंगों से, मानों गूंज रही है, सैकड़ों हजारों रेडियो स्टेशन तुम्हारे मनोरंजन को तैनात हैं—यहां तक कि कभी-कभी तुम्हारे कानों तक पहुंचने की आतुरता में वे एक-दूसरे से जा भिड़ते हैं। एक ही समय में तुम्हें दो कार्यक्रम एक साथ सुनाई देते हैं, पर प्रायः समझ में एक भी नहीं आता। कई-कई बार तो जान-बूझ कर एक देश दूसरे देश के प्रसारणों में गड़बड़ पैदा करता है······।

खैर, मुझे क्या पड़ी है तुम धरती वालों के आपसी मामलों की चर्चा करूं, मैं तो समझा रहा था कि किस प्रकार बिजली के किसी क्षेत्र में गड़बड़ होने से, रेडियो तरंगें पैदा होती हैं।

बिजली के क्षेत्र में गड़बड़ पैदा होने से रेडियो-तरंगों के उद्भव का बहुत सामान्य-सा उदाहरण है। कभी-कभी जब तुम्हारे आकाश पर बादल छा जाते हैं। और बिजली चमकती है तो तुम्हारे रेडियो सैट में भी गरर्-गरर् की कर्कश आवाज सुनाई देती है। निस्सन्देह सुन्दर संगीत की पृष्ठभूमि पर तुम इस गड़बड़ को बिल्कुल पसन्द नहीं करते। पर वास्तव में यह इन्द्र देवता का रेडियो सन्देश है, बादलों की बिजली में उथल-पुथल होने से विशेष प्रकार की रेडियो-तरंगें पैदा होती हैं, जो अनचाहे ही तुम्हारे रेडियो सैट में प्रवेश पा लेती हैं।

आशा है तुम भूले न होगे उस भेंट की बातें, जब मैंने अपने शरीर में विद्यमान बिजली और चुम्बकत्व के विशाल क्षेत्रों की चर्चा की थी। क्या यह स्वाभाविक नहीं कि इन विशाल क्षेत्रों में हलचल होने पर भी रेडियो-तरंगें पैदा हों?

—यही तो कहा था न तुम्हारे मैक्सवैल ने?

और चिरकाल से—लगभग अपने जन्म-काल से ही—मेरे शरीर से ये रेडियो-तरंगें प्रसारित हो रही हैं। हां, तुम धरती-पुत्रों को इनकी खबर कुछ दशक पूर्व ही हुई। निश्चित तिथि बतलाना तो संभव नहीं, क्योंकि धुंधले-उजले यह आभास तुम्हें धीरे-धीरे मिला। लगभग सन् १८९३ में, अर्थात् जिस वर्ष हीनरिश हर्ज़ ने अपने प्रयोग किए थे, उससे कुछ ही वर्ष बाद, प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर ऑलिवर लॉज ने विचार प्रकट किया था कि मेरे शरीर में रेडियो-तरंगें पैदा होनी चाहिएं। इस परामर्श के उपरान्त कोशिश भी की गयी प्रयोग द्वारा इस की जांच करने की। लेकिन उस समय, इस प्रयोग के निमित्त उचित उपकरणों का विकास न हुआ था। फिर कोई ४० वर्ष बाद अर्थात् सन् १९३१ में अमेरिका के एक वैज्ञानिक जैन्स्की ने, मेरे शरीर से निकलने वाली रेडियो तरंगों को ग्रहण करने का दावा किया। पर उसके दावे की पुष्टि न हो सकी।

तत्पश्चात् तुम्हारी धरती पर लड़े गए पिछले महायुद्ध के दिनों की बात है। सन् १९४२ में इंगलैंड देश के सुरक्षा वैज्ञानिक अपने रडार यन्त्रों की सहायता से, जर्मनी के वायुयानों का पीछा कर रहे थे।

—जानते हो न, रडार की प्रणाली भी रेडियो विज्ञान का ही एक भाग है?

हां, तो वे इस रडार की सहायता से शत्रु के हवाई जहाजों का पीछा कर रहे थे। अकस्मात् उनके यन्त्रों के शीशे पर एक अजीब-सी धुँधलाहट छा गयी। निस्सन्देह इसका कारण यन्त्रों की खराबी न थी—क्या जर्मन वालों की शरारत हो सकती है?

तुरन्त एक आयोग (कमीशन) बिठाया गया तहक़ीकात हुई। कमीशन ने रिपोर्ट दी—नहीं, जर्मनी की कोई शरारत प्रतीत नहीं होती, हां, अलबत्ता यह काम सूर्य भगवान् का हो सकता है।

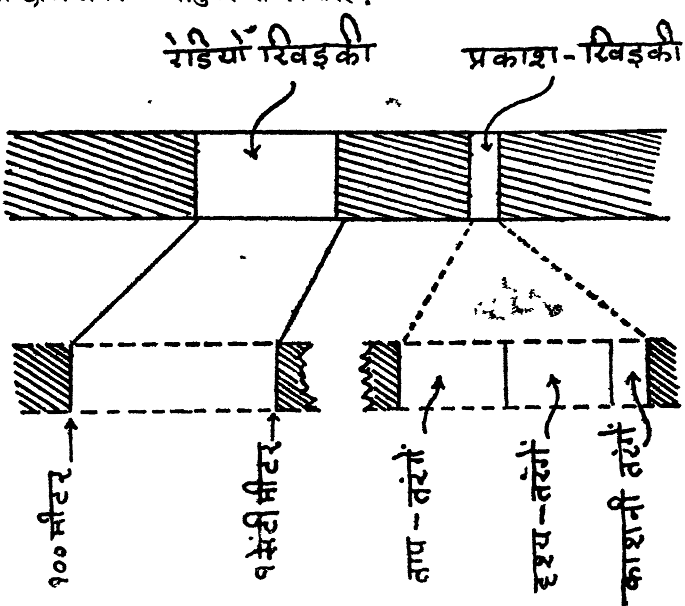
उसी साल साउथवर्थ नाम के एक अमेरिकी वैज्ञानिक ने भी, निश्चयात्मक ढंग से मेरे रेडियो प्रसारणों को ग्रहण किया। जब महायुद्ध समाप्त हो गया, तो दूसरे-तीसरे अनेक विज्ञ उत्सुकतावश, इस क्षेत्र में आ डटे और मेरे रेडियो-प्रसारणों के बारे में रही-सही शंका भी निर्मूल हो गई। यही नहीं, बल्कि मेरे रेडियो-प्रसारणों के स्वभाव की बारीकी से खोज-बीन की जाने लगी। परिणाम-स्वरूप, बहुत-सी महत्त्वपूर्ण जानकारी एकत्र हो चुकी है। सारा चिट्ठा तो बहुत लम्बा होगा, अतएव तुम्हें थोड़ी-सी मनोरंजक बातें सुना कर ही सन्तोष कर लूंगा।

अब तुम्हें यह तो बतलाना नहीं पड़ेगा कि रेडियो-तरंगें अलग-अलग लम्बाई की होती हैं। तुम अपने रेडियो सैट से दुनिया-भर के स्टेशनों को ट्यून करते हो—किसी को ३१ मीटर पर तो किसी को १६ मीटर पर। कोई ४८ मीटर पर आता है तो कोई मीडियम वेव ३०३·०३ मीटर पर इत्यादि। एक रेडियो संप्रेषक (ट्रांसमीटर), एक निश्चित समय पर, एक ही लम्बाई की तरंगों को प्रसारित करता है।

लेकिन, इसके विपरीत मेरे शरीर से, एक निश्चित लम्बाई की ही तरंगें नहीं निकलतीं—लम्बी-छोटी अनेक तरह की तरंगें निकलती हैं, एक-साथ ही। इनकी मात्रा भी स्थिर नहीं रहती। तुम्हारे वैज्ञानिक मेरी तरंगों की, १५ मीटर और १ सेंटीमीटर के बीच की लम्बाइयों को ग्रहण कर चुके हैं। लेकिन ये परिमाण मेरे शरीर से निकलने वाली तरंगों की लम्बाई की सीमाएं नहीं। होता यह है कि तुम्हारा वायुमण्डल, मेरी बहुत-सी तरंगों को सोख लेता है पिछली भेंट में मैंने तुम्हें बतलाया था कि तुम्हारे वायु-मण्डल में दो खिड़कियां हैं। एक में से प्रकाश की कुछ प्रकार की तरंगें गुज़र सकती हैं, दूसरी में से १५ मीटर से १ सेंटी-मीटर तक की रेडियो-तरंगें। शेष सब प्रकार की तरंगों को वायुमण्डल सोख लेता है। इसलिए वे तुम्हारी पृथ्वी के धरातल तक नहीं पहुँच पातीं। मेरे शरीर से निकलने वाली तरंगों का मूल रूप जानने के लिए, अब तुम्हारे वैज्ञानिक राकेट और गुब्बारों द्वारा वायुमण्डल को चीर कर, पैमायशें लेने में तल्लीन हैं। क्योंकि पूरा नक्शा तो अभी कुछ देर बाद तैयार होगा, इसलिए आओ, आज हम अपनी चर्चा उन्हीं तरंगों तक सीमित रखें, जो तुम्हारी पृथ्वी पर अवतरण कर पाती हैं।

मेरे शरीर से प्रसारित होने वाली सबसे छोटी लम्बाई की रेडियो-तरंगें, मेरे प्रभा-मण्डल में पैदा होती हैं। ज्यों-ज्यों इन तरंगों के उत्पादन-क्षेत्र की दूरी प्रभा-मण्डल से बढ़ती जाती है, तरंगों की लम्बाई भी बढ़ती जाती है। प्रभा-मण्डल से १०-१५ हज़ार मील ऊपर जहां वर्ण-मण्डल लगभग समाप्त हो जाता है और किरीट शुरु हो जाता है, ५ सेंटीमीटर से १ मीटर तक की लम्बाई की तरंगें पैदा होती हैं। इससे भी ऊपरी किरीट में १ से १५ मीटर तक की तरंगें पैदा होती हैं।

शायद निचले भागों में भी अधिक लंबाई की कुछ तरंगें पैदा होती हों। पर मेरे वायुमण्डल को भी तरंगें सोख लेने की बीमारी है—कुछ-कुछ तुम्हारी धरती के वायुमण्डल की तरह!



धरती के वायुमण्डल की दो खिड़कियाँ। रेखांकित पट्ट में का सौर-प्रकाश अथवा रेडियो तरंगों को वायुमण्डल सोख लेता है।

मेरे ११ वर्षीय चक्र की चर्चा अब तक तुम कई बार सुन चुके हो, जिसके दौरान मेरी हरकतें क्रम से बदलती रहती हैं। लेकिन मेरे दृश्य-प्रकाश में, इस बीच, जो अन्तर पड़ता है, वह नहीं के बराबर है। जहां तक मेरे रेडियो-प्रसारण का सम्बन्ध है, स्थिति इतनी सरल नहीं। छोटी लम्बाई की तरंगें तो मेरे कलंकों की संख्या के साथ बढ़ती-घटती रहती हैं। विशेष तौर पर १० सेंटी मीटर की तरंगों में तो यह परिवर्तन इतना नियम-पूर्वक होता है कि जब-कभी किसी कारण से, कलंकों की गिनती न की गई हो इन तरंगों की मात्रा से ही कलंकों की संख्या का अनुमान लगा लिया जाता है।

मेरे कलंकों की संख्या के साथ इस परिवर्तन के अतिरिक्त, कभी-कभी मेरे प्रसारणों में "तूफ़ान" और "बौछार" भी घटित होते हैं। तूफ़ान तो कुछ दिन अथवा कुछ घण्टों तक बने रहते हैं—और इनका अर्थ होता है, मेरी रेडियो तरंगों की माला में वृद्धि। प्रायः ही यह वृद्धि १०० गुणा से भी बढ़ जाती है, पर एक बार तो १० हज़ार गुणा बढ़ोतरी की पैमायश की गई थी।

तूफानों की तुलना में 'बौछारें' अल्पजीवी होती हैं। इनका जीवन प्रायः कुछेक मिनटों का ही होता है। अतएव बौछारों के दौरान, सैकेंडों की अवधि में, रेडियो-तरंगों की मात्रा सैकड़ों हजारों गुणा बढ़ जाती है। कई बार ये अल्पजीवी बौछारें एक के बाद एक प्रकट होती जाती हैं और प्रायः प्रत्येक नई बौछार में रेडियो-तरंगों की लम्बाई बढ़ती जाती है। एक ऐसी घटना ८ मार्च १९४७ को घटी जब लगभग डेढ़ मीटर (=५ फुट) की रेडियो-तरंगों की घनी बौछार को धरती पर लक्षित किया गया। दो मिनट बाद लगभग ३ मीटर और चार मिनट बाद ५ मीटर की बौछारें घटित हुईं। अनुमान लगाया गया है कि इस प्रकार की बौछारों की शृङ्खला में अलग-अलग लम्बाई की रेडियो-तरंगें, मेरे धरातल से भिन्न-भिन्न ऊंचाइयों पर पैदा होती हैं। उपर्युक्त घटना में ये तीन प्रकार की तरंगें क्रम से लगभग ३० हजार, ५० हजार और ७० हजार मील की ऊँचाइयों पर पैदा हुईं। वास्तव में तुम्हारे वैज्ञानिकों का विचार है कि इन बौछारों का कारण एक विशाल हलचल है, जो मेरे किरीट में नीचे से ऊपर की ओर, ३०--४० लाख मील प्रति घण्टे की रफ्तार से प्रधावन करती हैं।

ये तूफान और बौछारें, प्रायः मेरे कलंकों, वह्नियों उज्ज्वालाओं आदि से सम्बद्ध हैं—इनके प्रकट होने अथवा इनमें विकट परिवर्तन होने पर ही वे पैदा होती हैं।

पिछली बार मैंने तुम्हें बतलाया था कि गर्म हो कर सभी पदार्थ प्रकाश की तरंगें पैदा करते हैं और कि उनसे निकलने वाले प्रकाश का विश्लेषण करके, पदार्थ का तापमान जाना जा सकता है। मेरे शरीर से निकली भिन्न-भिन्न लम्बाई की रेडियो तरंगें भी ऐसी पैमायश में सहायक सिद्ध होती हैं। उदाहरण के तौर पर मेरे किरीट से निकलने वाली ५ मीटर लम्बाई की तरंगों की पैमायश से किरीट के उक्त भाग के तापमान का अनुमान लगाया गया, एक अर्ब अंश (१०००००००००)।

तुम्हारी धरती के वायुमण्डल में तो दो खिड़कियां हैं—एक में से कुछ प्रकाश झांक लेता है और दूसरी से कुछ रेडियो प्रसारण। लेकिन तुम्हारे बादलों में एक ही बड़ा-सा झरोखा है। प्रकाश की किरणें तो बादलों को चीर पाने में बिल्कुल असमर्थ हैं। पर, बादल रेडियो तरंगों को बांधे नहीं रख सकते। अतएव जब मेरी प्रकाश की किरणें रूठ कर बादलों की ओट में छिप जाती हैं और मेरी गति-विधि को प्रकट करने से इन्कार कर देती हैं तो तुम्हारे वैज्ञानिकों की परेशानी दूर करने में, रेडियो-तरंगें उनकी मदद करती हैं। अतएव ये वैज्ञानिक भी रेडियो तरंगों के स्वागत को सदा लालायित रहते हैं। लाखों-करोड़ों रुपयों के व्यय से वे संसार के विभिन्न देशों में अनेक आकार-प्रकार के रेडियो दूरदर्शक स्थापित कर रहे हैं। आज-कल का सब से बड़ा रेडियो दूरदर्शक इंग्लैंड में और उसका व्यास २५० फुट का है—तुलना में सबसे बड़े प्रकाश दूरदर्शक का व्यास २०० इंच मात्र है। पर अमेरिका में तो ६५० फुट व्यास का रेडियो दूरदर्शक तैनात करके उनसे बड़े दूरदर्शकों का काम लिया जा रहा है।

—अरे तुम्हारे वे वैज्ञानिक किस जादूगर से कम हैं!

(क्रमशः)

बाल-भारती

हमारा भारत

[कु० विधु भटनागर]

यह भारत वह भारत है,
जिसमें शास्त्र-विचार हुआ।
देश-विदेशों में इसने ही,
वेदों का प्रचार किया॥
इसमें ही तो जन्म लिया था,
भीम सदृश बलवान् ने।
और अहिंसा को अपनाया,
गौतम बुद्ध महान् ने॥
धीर वीर अभिमन्यु जैसे,
जाये थे इस धरती पर।
राणा और शिवाजी जैसे,
वीर हुए इस भूमि पर॥
इसी देश के लिए भगतसिंह,
फांसी के तख्ते पर झूले।
और इसी की रक्षा के हित,
सेनानी सब-कुछ भूले॥

धीर साहसी नेताओं ने,
मुक्त कराया भारत को।
वीरों ने भी निज बलि देकर,
सुखी बनाया भारत को॥
इस भारत के वासी हैं हम,
इसका मान बढ़ाएँ सब।
इसके कण-कण रक्षा के हित,
शीश चढ़ा देंगे हम सब॥
नहीं शत्रु से कभी डरेंगे,
पक्के भारत लाल कहायेंगे।
भारत माता की रक्षा हित,
हँस-हँस शीश चढ़ायेंगे॥
भारत माता की जय बोलो,
बोलो वीरों का जयनाद।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
वालों का भी हो जयनाद॥

❀ ❀ ❀

सीखो

[श्री विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद']

सदा परिश्रम करना सीखो।
मातृ-भूमि पर मरना सीखो॥
कभी न दुःख में डरना सीखो।
दुखियों का दुःख हरना सीखो॥

मीठी बातें कहना सीखो।
हँसकर दुःख-सुख सहना सीखो॥
स्नेह-सिन्धु में बहना सीखो।
मेल-जोल से रहना सीखो॥

अपने पथ पर बढ़ना सीखो।
गौरव-गिरि पर चढ़ना सीखो॥
पाठ प्रेम का पढ़ना सीखो।
चरित समुज्ज्वल गढ़ना सीखो॥

जननी की जय गाना सीखो।
जग को राह दिखाना सीखो॥
सच्चाई अपनाना सीखो।
प्रभु को शीश झुकाना सीखो॥

❀ ❀ ❀

दीपक के प्रति

[श्री शाम्भवीदत्त शास्त्री]

जड दीपक! तू क्या जाने,
अरे! शलभ का प्यार।
स्नेह भरा तेरे अन्तर में जान बेचारा आया।
पर पल भर भी पास न अपने तूने उसे बैठाया।
तेरी निष्ठुरता क्या जाने,
आया था वह पंख पसार।।
जलना ही अस्तित्व तेरा है यह सारा जग जाने।
तुझे लगा कर गले वह था आया ताप मिटाने।
सच्चे प्रेमी का तूने भी
खूब किया सत्कार।।
तन बेचारे का तूने सहसा अरे! जलाया।
स्नेह तेरा है तेरे लिए ही उस के काम न आया।।

यह भी साथ न देगा तेरा,
रहेगा निष्ठुरता का भार।।
जीवन का है मोल जानता जग में जीवन वाला।
अगणित अरमानों को जिसने अपने उर में पाला।।
हृदयहीन तू क्या जानेगा
उस तन का उपहार।।
बाहर से तू चमक रहा पर अन्दर कालख तेरे।
अन्धकार में आने वाले, आओ कभी सवेरे।
दुनिया वाले मुंह फेरेंगे,
कौन करेगा तुझ से प्यार।।
है प्रकाश तो निरा बहाना तूने चिता जलाई।
जिसमें जली हज़ारों ही परवानों की तरुणाई।
मिली अमरता उन्हें जगत् में
चूम तेरे अङ्गार।।

❀ ❀ ❀

हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम

[श्री राष्ट्रबन्धु]

मेरा बचपन ऐसा बीता, जैसा भगवान् करे किसी का न बीते। जन्म के कुछ ही दिनों बाद मां की ममता-भरी गोद छिन गई। इसे लोगों ने मेरे जन्म के घड़ी-मुहूर्त का अपशकुन ठहराया। अभुक्त मूल में जो पैदा हुआ था— इस जन्म के समय में मेरा क्या वश था, हो सकता है इसका सम्बन्ध मेरी पिछली योनि से हो, जिसे मैं जानता नहीं। अनजानी यह विवशता मेरे दुर्भाग्य का श्रीगणेश रचाने के बाद अपनी सहेलियों कठिनाइयों के साथ मेरे जीवन से खिलवाड़ करने लगी। पिता जी, श्री आत्माराम दुबे ने समाज की घोर प्रताडना, लाञ्छना न सहने की स्थिति में मुझे चुनिया को सौंप दिया।

मैं ऐसा संत था कि बस जहां मेरे चरण पड़े बंटाढार हो गया। पिता जी नहीं रहे, परिचारिका चुनिया भी इस संसार से चल बसी। मैं दाने-दाने के लिए, मुँहताज हो गया, अनाथ, हो गया। भगवान् राम की भजनावली गाकर दूसरों की कृपा के लिए अटकने-भटकने लगा। और सामर्थ्य बिना बस यही मैं कर सकता था। बाबा नरहरिदास मेरे ऊपर कृपालु हो गये। मैं उनकी संगति में इधर-उधर भटका। राम-राम बोलने से मेरा नाम 'रामबोला' पड़ा और 'तुलसीदास' कहलाया। सूकरक्षेत्र में मुझे अपने गुरुदेव की विशेष कृपा मिली; रामशक्ति उन्होंने बताई और राम-कथा सुनाई।

आयु के साथ ही मेरी परेशानियां बढ़ीं। राम-कथा कहते, रत्ना रीझी और उससे मेरा विवाह हो गया। मुझ सर्वहारा को तिनके जैसा सहारा मिला। किसी अपने के प्यार से वंचित मेरे को तब क्या मिला था, मेरी दुनिया बदल गई। चांद तारे बदले। इस जीने में

सार आ गया, जीवन सरस हो गया लेकिन कितने दिनों यह रहा—बहुत थोड़े दिन—मेरा दुर्भाग्य मेरे पीछे पड़ा था। चाँद तारे बदले, ग्रह बदले, एक दिन रत्ना ने जीवन की सार्थकता समझाई। मेरे पुराने सोये संस्कार जाग पड़े—ऐसा लगा जैसे शराबी आत्मसम्मान से नशीली बदनामी से ऊबकर, उन्नति करने के लिए उतावला हो उठा है। मैं रामभक्ति करने काशी आ गया।

संवत् १६३१ में राम-कथा लिखनी शुरू की, इस अच्छे काम में अड़चनें आईं। मैं घबड़ाया, स्वाभाविक है लेकिन घबड़ाने से क्या हुआ। कुछ भी तो नही। आलोचनाए की गई। 'ग्राम-गिरा' में अपनी बात कहने पर भी विद्वानों को अखरी, उनसे जिसका कोई मतलब नही था, फिर भी बिना मतलब वे मेरे पीछे तूफान खड़ा करने लगे। नयी बात शुरू करने की सजाएं देने लगे। क्या यह सचमुच अपराध है? मुझे मारा गया, पीटा गया, लेकिन मैं राम के अटल सहारे सहता रहा।

राम को भी कठिन परीक्षा मेरी सहनशीलता की लेनी थी। बाहुपीडा, प्लेग, जैसी बीमारियों से व्यथित रहा। निराधार के आधार भगवान् राम ने सवत् १६८० में मुझे जीवन-मुक्त कर दिया। संवत १५५६ से लेकर मतभेदों और परेशानियों की रस्सा-कसी मे मेरा कचमर निकल गया लेकिन 'हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम जाही विधि राखे राम वाही विधि रहिये' बताने के लिए गाँव-गाँव गली-गली न जाने कहाँ-कहाँ भटक रहा हूं। मेरे ग्रथों को निरर्थक पूजने वाले, मेरे जीवन से, मेरे कृतित्व से मेरी आत्मा, साधना को समझे बस यही उद्देश्य लिए मैं अपनी बात सुनाता रहूंगा।

❀ ❀ ❀

तारे से

[श्री 'हरि']

तारे प्यारे, तारे प्यारे!
बैठे तुम अम्बर-चौबारे,
चमक-चमक कर, दमक-दमक कर,
करते रहते कौन इशारे?

मेरी मानो नीचे आओ,
हँस हँस, खिल-खिल बात बनाओ;
मौन-मौन में क्या रखा है?
बोलो-चालो मन बहलाओ।

खिल-खिल खिलता, परम दुलारा!
तुम तारे तो मैं भी तारा।
किस का? किस का? क्या पूछ रहे?
निज माँ की आँखों का प्यारा!

तारे-तारे प्यारे-प्यारे
सपने ही बस रहते न्यारे;
सचमुच जो पड़ जाता रहना,
तो रहते मन मारे-मारे।

मैं-तू तो साथ रहें, तारे!
मिलजुल खेलें खाएं प्यारे;
रसमय जगत् समूचा कर दें
रस के अनगिन छोड़ फुहारे।

❀ ❀ ❀

चूल्हा के मुँह से

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त]

मैं चूल्हा हूं। घर-घर में मेरा निवास है। वह घर घर नहीं, भूतों का डेरा है जहां मेरा डेरा न पड़ा हुआ हो। वह भी चार दिन के लिए नहीं, स्थायी। सच मानिए किसी घर में ठाकुर जी पीछे प्रतिष्ठित होते है, मैं पहले। अधिक क्या, घर को घर संज्ञा ही मैं देता हूं।

मेरा कलेवर माटी का है। यों तो मैं लोहे और पीतल आदि के कलेवरों में भी सज जाता हूं। विशिष्ट आकृतियों में भी ढल जाता हूँ। नये-नये नाम-रूप धर कर नई दुनियां को मोह लेता हूं। उसे चकाचौंध कर डालता हूं। पर आप से अपने मन की बात कहता हूं। पसन्द मुझे अपना सहज रंग-रूप और माटी का चोला ही है। माटी से मेरा निर्माण हुआ है, इस कारण आप मुझे माटी मोल का न समझ लेना। न ही मुझे मिट्टी का माधव समझने की भूल कर बैठना मेरी कीमत कम नहीं है। कमेदड भी मैं बहुत हूं। कीमत तो मेरी इतनी है कि मेरे बिना किसी का काम ही नहीं चलता और कमेदड़पन का मेरे यह हाल है कि मैं सतत काम में जुटा-जुटा ही रहता हूं, कभी काम से दूर नहीं भागता। तब भी तो नहीं, जब मुझ से काम लेने वाले धुंएं आदि का बहाना बना, आंखें मल-मल कर उन में पानी ला, मुझ से भाग कर दूर जा बैठते हैं।

मेरे काम का तो आप को पता ही होगा। मुझ में आग जलाई जाती है। उस आग को मैं अपने में पालता हूं—पाले चला जाता हूं जब तक कि आप के पेट की आग न बुझ जाय, उस में वह सब न पड़ जाय जो आप मुझ पर पका कर उस में डालना चाहते हैं। मेरे इस काम का जो महत्त्व है, वह गज आदि से नापने-तोलने की चीज नहीं, उसको यथार्थता का तो आप एक दिन मुझे छुट्टी देकर और मेरे बड़े भाई सूर्य देव द्वारा पकाई किसी वस्तु को पेट में आग में न झोंक कर ही ठीक-ठीक अनुभव कर सकते हैं। उस समय चूहे आप के पेट में कबड्डी खेल-खेल कर आप को कुछ भी करने योग्य न रक्खेंगे, आप की नींद को भी आप की ओर से उस के कान भर, उसका मन आपकी ओर से फेर कर आप से कोसों दूर बैठा देंगे, तब आप समझ जायेंगे कि मैं भी कुछ चीज हूं······कुछ नहीं, बड़ी चीज हूँ।

कभी सोचा आपने कि मुझे अपना काम करने में कितना कष्ट-कसाला झेलना पड़ता है। आग को अपने में पालना खाला जी का घर नहीं। नानी दादी याद आ जाती हैं। जलन की जो पीडा बिना ऊह-आह किए मैं सहन करता हूं, उस का अन्दाजा आप में से कुछ चुलबुले बन्धु तो क्या ही कर सकते हैं। कभी-न-कभी उन्हों ने उंगली आग में दी होगी और क्षण-भर में ही आग की जलन का मजा चख लिया होगा। फिर भी मैं यह पीडा हर्ष और गौरव के साथ सहन करता हूं। क्यों न करूँ? मुझे पता जो रहता है कि मैं किसी के काम आ रहा हूं। किसी के काम आने से बढ़ कर जीवन में और है ही क्या।

और इसी लिए मैं इस बात की भी पर्वाह नहीं करता कि आप मेरे साथ कैसा व्यवहार करते हैं। मैं तो अपने काम से काम रखता हूं। कितनी ही बार समय पर मुझे लीपा-पोता नहीं जाता, राख मुझ में से बाहर नहीं निकाली जाती। कभी-कभी तो व्यर्थ ही जब मुझ पर कुछ पकाना भी नहीं होता, मुझे जलते रहने दिया जाता है। इस से बढ़कर निर्दयता और क्या होगी? पर मैं कोई शिकायत नहीं करता। क्यों करूँ? यह सब तो आप के अपने सोचने-समझने की बात है। खैर छोड़िये सब बात। अब तन्त बात पर आया जाय। उस बात पर जिस के कारण मैं आप से बोलने पर बाध्य हुआ

हूं। वैसे मैं स्वभाव से बाचाल नहीं हूं। बात यह है कि आप हैं विद्यार्थी। कुछ सीखना ही आप का मुख्य कार्य है। कुछ सीख आप के लिए मेरे पास भी है। उसे ले लीजिए और मुझे छुट्टी दीजिए। मेरा विनम्र निवेदन इतना ही है कि जिस तरह मैं आप के पेट की आग बुझाने के लिए अपने में आग जलने-पलने देता हूं आप भी उसी तरह अपने हृदयों में सब की सेवा और भलाई की आग बालें, उस की जलन सहर्ष झेल-झेल कर उसे प्रेम से पालें और फिर उस के द्वारा दुनिया को झुलसाये-फूके घरते दुःख और बुराई के दावानल का शान्त कर दें, उस में सुख-शान्ति का समुद्र लहरा दें। आग बालते-पालते ही रहें अपने हृदयों में, रुकें नहीं, डिगें नहीं जब तक कि यह काम पूरा न हो। यह करके आप क्या पायेंगे—यह प्रश्न छोड़ दीजिए। यह कहने की चीज है भी नहीं। पाने के विचार से करने पर करने में बट्टा लग जाता और पाने में भी चमक नहीं रहती, फिर भी इतना जान लीजिए कि यश तो खैर आप को मिलेगा ही, उस का तो कहना क्या, पर उसी पर बस नहीं। असल चीज तो जो मिलनी है, वह है रस। और रस अनुभव की चीज है जो कि वर्णन का विषय नहीं। इतना भर—सो भी कहने भर को, कह सकते हैं कि रस रस है बस।

बस अब मेरी बात भी समाप्त होती है। कहने का सब कह चुका, अब चलता हूं। एक बार और मुझ से मिल-भेंट लीजिए। हाँ मैं चूल्हा हूं घर-घर में मेरा निवास है। वह घर घर नही, भूतों का डेरा है जहां मेरा डेरा—स्थायी डेरा न पड़ा हुआ हो। 'घर को घर' संज्ञा मैं ही देता हूं।

निर्झर

[श्री हरगोबिन्द पराशर]

नग की गोदी में इठलाता
शैशव का अंकित किये प्रेम,
दुर्गम अत्युच्च शिखर से गिर
पाताल भेदता नीचैः तम
इस गर्वभाव से बन ठन कर
बहता जाता निर्झर झर-झर।

प्रस्तर खंडों से आलोडित
चट्टानों का घर्षण करता,
चंचल लहरों से मुस्कराता
वन पुष्पों में मधुकम्पन कर,
आलाप भरे भैरव का स्वर
बहता जाता निर्झर झर झर।

समतल में धीरज शान्ति मौन
आवरण लिए चुपके चुपके
गम्भीर गहन गहराई में
लेता समाधि अबिचल निश्चल,
फिर बढ़ जाता कुछ घबड़ा कर
बहता जाता निर्झर झर झर।

वट वृक्ष तली में गहरा हो
चुप्पी साधे ढूंढ़ा करता
उस अमल अनन्त मूल से ही
कुछ शिक्षा पा चलता फिरता,
बढ़ता है भावमग्न होकर
बहता जाता निर्झर झर झर।

कल का गर्वोन्नत यह निर्झर
जो नभ-पाताल एक करता,
अपनी शक्ति से गहराता
भीषणतम राज्य किया करता।
वह आज मूकभाव से भर
बहना जाता निर्झर झर झर।

ओ मानव! तू भी निर्झर बन
मत भूल क्षणिक नश्वर धन में,
ऐश्वर्य पतनशाली ही है
तू शोभित हो सबके मन में,
प्रेमप्लुत हो निर्झर-सा झर
बहता जाता निर्झर झर झर।

❋ ❋ ❋

देशद्रोही का मुँह काला

[श्रीमती स्वतन्त्रलता शर्मा]

किसी समय उल्लू की गणना बुद्धिमान् जीवों में की जाती थी। उसकी बुद्धिमत्ता पर रीझ कर ही देवी लक्ष्मी ने उसे अपना वाहन बनाया था। कैसी ही कठिन समस्या क्यों न हो, कितनी ही विकट ग्रंथि क्यों न हो, उल्लू महाशय के सामने पेश करते ही वह पल-भर में सुलझ जाती थी। सब पर उसने अपनी धाक जमा रक्खी थी और उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उल्लू महाराज केवल बुद्धिमान् ही नहीं था, महाज्ञानी भी था। वेद-पुराण उसे कंठस्थ थे और मंत्रों को तो वह धड़ल्ले के साथ बोल लेता था। कहीं यज्ञ हो तो महापंडित उल्लू को बुलाया जाता, कहीं किसी प्रकार का अनुष्ठान हो तो उल्लू महाराज की पुकार मचती, कहीं किसी जटिल समस्या का समाधान ढूंढ निकालना हो तो उल्लू को याद किया जाता। सारांश यह कि उल्लू के ज्ञान का ही बोलबाला था।

एक बार जंगल में एक यज्ञ रचाया गया। एक पंडित ने किसी मंत्र का अशुद्ध उच्चारण कर दिया। फिर क्या था। उल्लू महाराज के दिमाग का पारा सातवें आसमान पर जा चढ़ा। उसने यज्ञ बीच में ही रुकवा दिया। पंडित सकपका गया। उल्लू ने जब उसे उसकी गल्ती बतायी तो वह उसे स्वीकार करने को तैय्यार ही नहीं हुआ। उल्लू ने उसे चुनौती दी और देखते-देखते यज्ञशाला शास्त्रार्थ का अखाड़ा बन गया। दोनों अपने-अपने मत की पुष्टि करने के लिए मंत्र पर मंत्र उच्चारित करने लगे। पूरा दिन इसी वाक् युद्ध में बीत गया। सन्ध्या समय पंडित को अपनी पराज्य स्वीकार करनी ही पड़ी। उपस्थित मण्डली उल्लू की ज्ञान-गरिमा से स्तब्ध रह गयी। विजय का नशा उल्लू के दिमाग पर धीरे-धीरे छाने लगा और उस दिन से वह सब जीवों को हेय दृष्टि से देखने लगा।

उल्लू महाराज के ज्ञान का पराग जंगल की सीमा के पार कर गाँवों, नगरों में फैलने लगा और उड़ते-उड़ते यह समाचार राजा वीरसिंह तक जा पहुंचा। राजा स्वयं विद्वान् थे और पंडितों का आदर किया करते थे। उन्होंने अपने मंत्री को आज्ञा दी कि वह उल्लू महाराज को सम्मानपूर्वक रथ पर बिठा कर राजदरबार में ले आए। मंत्री ने जब राजा का संदेश उल्लू को सुनाया तो वे फूले न समाये और राजदरबार की शोभा बढ़ाने के लिए मन्त्री के संग राजमहल पहुंचे। राजा वीरसिंह ने सिंहासन से उठकर उसका स्वागत किया। उल्लू महाराज इस सम्मान से फूल कर कुप्पा हो गया।

एक दिन राजा वीरसिंह उसे एकान्त में ले गये। बात यह थी कि निकटवर्ती प्रदेश के राजा विक्रमसिंह उन पर चढ़ाई करने आ रहे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि उस विशाल सेना का वे अपनी छोटी-सी सेना से कैसे सामना करेंगे। उन्होंने इस गम्भीर विषय पर उससे सलाह मांगी। उल्लू महाराज कुछ समय तक विचारमग्न बैठा रहा, फिर बोला, "राजन्, मैं ऐसी योजना बनाऊंगा कि शत्रु के दांत खट्टे हो जायेंगे, पर उसके लिए मुझे एक सप्ताह का समय चाहिए। इस काल तक मैं एकान्त वास करूंगा। इस बात का ध्यान रखिए कि कोई भी मेरे महल में आने न पावे।" राजा के निराश मन में आशा का संचार हुआ और उन्होंने अपने सेवकों को यह आज्ञा दी कि उल्लू महाराज के एकान्तवास की अवधि में कोई भी किसी प्रकार का विघ्न न डाले।

उल्लू वहां से विदा हो कर अपने महल में

आया और आधी रात के समय जब पूरा नगर नींद में बेसुध पड़ा था, वह भवन के पिछले द्वार से निकल कर पड़ोसी राज्य की ओर चल दिया। उसकी यशोगाथा राजा विक्रमसिंह ने पहले ही सुन रक्खी थी। अतः जब उनके गुप्तचरों ने आकर उन्हें यह सूचना दी कि उल्लू महाराज ने उनकी भूमि पर अपने पावन कदम रक्खे हैं तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने उसका यथोचित सत्कार किया और उसके रहने का प्रबन्ध एक शानदार भवन में कर दिया। दो दिनों में ही उल्लू ने राजा की सैनिक शक्ति का पूरा-पूरा पता लगा लिया। राजा की युद्ध की तैय्यारी देख कर वह प्रभावित हुए बिना न रह सका। बहुत सोच-विचार के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि युद्ध में राजा विक्रमसिंह की विजय निश्चित है। विजयी राजा के दरबार में उसकी प्रतिभा दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ेगी अतः उसने शक्तिशाली का पक्ष लेना ही उचित समझा। उसने राजा को यह सलाह दी कि भोर होने से पहले ही वह अपनी सेना को लेकर कूच कर जाए।

राजा विक्रमसिंह ने अगले दिन ही धावा बोल दिया। खूब डट कर युद्ध हुआ। दोनों पक्ष के असंख्य सैनिक मारे गये। राजा वीरसिंह को जब उसके गुप्तचरों ने यह सूचना दी कि उनके दरबार के प्रतिष्ठित और विश्वासी विद्वान् ने उनके साथ विश्वासघात किया है तो वे बहुत क्रुद्ध हुए। अपने गुप्तचरों को उन्होंने पुरस्कार का लालच देकर उल्लू महाराज को किसी भी तरह ले आने का आदेश दिया। अपनी जान पर खेल कर दो दिन बाद गुप्तचरों ने उल्लू महाराज को राजा वीरसिंह के सामने ला खड़ा किया। राजा ने क्षुब्ध होकर कहा, "उल्लू महाराज! तुम से हमें यह आशा नहीं थी कि तुम जिस थाली में खाओगे उसी में छेद करोगे। तुमने हमें बहुत बड़ा धोखा दिया है, हमारे साथ विश्वासघात किया है। तुम देशद्रोही हो उल्लू महाराज! देशद्रोही की सजा मौत होती है। पर हम तुम्हें ऐसी सजा नहीं देंगे जिससे तुम सदा के लिए यातनाओं से मुक्त हो जाओ। हम तुम्हारा मुँह काला करेंगे, इस काली और मनहूस सूरत को शर्म के कारण तुम किसी को भी दिखाने योग्य नहीं रहोगे। अपनी शर्म को छिपाने के लिए तुम दिन को प्रकाश में बाहर नहीं निकल पाओगे। जाओ, उल्लू महाराज, अपनी इस मनहूस सूरत को हमारी आंखों से दूर हटा लो।" और राजा के सेवकों ने उल्लू का मुँह काला करके अपने देश से निकाल दिया, उल्लू अपने काले कृत्यों पर इतना शर्मिन्दा हुआ कि उस दिन के बाद उसने दिन के उजाले में किसी को भी अपनी सूरत नहीं दिखाई।

❀ ❀ ❀

पंछी का सन्देश

[श्री सन्तोषकुमार सचदेव]

प्यारे बच्चो! मुझ से सीखो,
ऊँची नीची सरल उड़ान;
नकली पंख लगाते क्यों हो?
ज़रा लगा कर देखो ध्यान,
मुझको अपना मित्र बना लो,
मीठा गीत सुनाऊँगा;
जब-जब मुझ को याद करोगे;
चुपके-चुपके आऊँगा,

नन्हे मुन्ने प्यारे बच्चो!
ज़रा लगा कर सुन लो कान;
मैं हूं अपने मात-पिता का;
करता उनके यश का गान,
तुम भी अपने मात-पिता की,
आज्ञा को स्वीकार करो।
कड़वे बोल न बोलो किसी से,
[illegible] श से प्यार करो।।

❀ ❀ ❀

दादी की सीख

[श्री कन्हैयालाल पाराशर]

दादी—
जो अच्छे बच्चे होते हैं,
करते हैं सब प्यार उन्हें।
तुम भी अच्छे बनो यही
कहती हूं मैं हर बार तुम्हें ।।

राजू—
अच्छापन किस को कहते हैं
दादी बतलाओ इस बार।

दादी—
तो लो सुन लो आज से मेरी
मानो ये बातें दो-चार ।।
पहले सब देखा करते हैं
बाहर के रंग-रूप को।
स्वच्छ शरीर वसन हों उजले
ज्यों सूरज की धूप हो ।।
मीठे वचन सभी को भाते
ज्यों डाली के फूल हों।
कटु बोल हृदय में यों चुभ जाते,
ज्यों झाड़ी के शूल हों ।।
बात तीसरी बड़ी है गहरी
सुन ले बेटा ध्यान से।
सत्य बोलने वाला जीता,
जीवन-भर सम्मान से ।।
चौथी बात बड़ों की सेवा
करने का कुछ चाव हो।
सबके दुःख में हाथ बटाना
रंक हो या कोई राव हो ।।
अच्छा अब सो जाओ राजू
रात बहुत है बीती।

राजू—
दो-चार बात बतलाने की
तुमने बात कही थी ।।
दो और चार जोड़ कर
दादी छः संख्या बन जाती।
चार बात बतलाई तुमने
किन्तु अभी दो बाकी ।।

दादी—
तुम हो चतुर सयाने बेटे
लो सुन लो वे दो भी।
कभी न झुकना गलत बात पर
चाहे संकट हो भी ।।
ठीक समय पर सोना-उठना
बात है लाख टके की।
अच्छा अब सो जाओ राजू
रात बहुत है बीती ।।

❀ ❀ ❀

राही से सन्देश

[श्री प्रकाशचन्द यशहोत्रा]

हिम्मत के राही चलता जा।
जब चलना है तो रुकना क्या,
बाधाओं से फिर डरना क्या,
राह कांटे को फूल समझ,
कदम को आगे ही रखता जा।
हिम्मत के राही चलता जा ।।
पहाड़ भी सामने आ कर,
गति-हीन तुझे करना चाहें,
माग से तुझे हटाना चाहें,
निर्मल झरना बन कर तू,
आप अपना राह बनाता जा।
हिम्मत के राही चलता जा ।।
कफन बांध अपने सिर पर,
घर से तू निकल पड़ा है,
तेरे सामने लम्बा रास्ता पड़ा है,
बन कर नमूना सब के लिए,
अपने राह पर तू बढ़ता जा।
हिम्मत के राही चलता जा ।।

❀ ❀ ❀

एकलिपि विस्तार

[श्री विद्यासागर शर्मा]

जागृति-गान (मराठी)

स्वदेश हेतु आज हे !
जवान वीर हो चला ।
स्वदेश, जाति आपुली
म्हणून मित्र हो चला ॥ध्रुवपद॥
अणु हाँक मारते हिमालयाच्या डोकिवर ।
वीरो ! तुम्हीं मिळाजुळा आज त्याच्या हाकिवर ॥
स्वदेश रक्षेला चला बन्दूक हाती ध्या चला ।
स्वदेश हेतु आज हे !
जवान वीर हो चला ॥
विशाल शत्रु-सैन्य ही सामने उभे असो ।
भीऊँ नका सरी वीरो !
खड्ग सूर्य सा लसो ॥
हेतु जन्म-भूमि च्या आज वीर हो चला ।
स्वदेश हेतु आज हे !
जवान वीर हो चला ॥
तुम्हाँ शपथ आज ही कुचक्र-व्यूह तोळ जा ।
दल-युद्ध-नीति हो शत्रुला न सोळजा ॥
शत्रु-झुण्ड मारते स्वशानी ने पुढे चला ।
स्वदेश हेतु आज हे !
जवान वीर हो चला ॥
स्वभूमि इंच इंच ध्या करा व मुक्त मातेला ।
उद्धार मातृ-भूमि चा स्वहाताने करा चला ॥
युयुत्सु वीर आज हे !
पुढे तिरंगी ध्या चला ।
स्वदेश हेतु आज हे !
जवान वीर हो चला ॥

जागृति–गान (हिन्दी)

स्वदेश हेतु आज हे !
जवान सूरमा चलो ।
स्वदेश, जाति के लिए
अभिन्न मित्र हे ! चलो ॥ध्रुवपद॥
अणु अणु पुकारता हिन्द देश भाल पर ।
वीरो ! सभी मिलो जुलो हिन्द की पुकार पर ॥
स्वदेश-रक्षा के लिए दुनाली हाथ ले चलो ।
स्वदेश-हेतु आज हे !
जवान सूरमा चलो ॥
अराति सामने रहे कालरूप में डटा ।
डरो नहीं बढ़ो किए
खड्ग हाथ की छटा ॥
हेतु जन्म-भूमि के आज वीर हे ! चलो ।
स्वदेश हेतु आज हे !
जवान सूरमा चलो ॥
तुम्हें शपथ आज है कुचक्र-व्यूह तोड़ना ।
दल-युद्ध-नीति हो शत्रु को न छोड़ना ॥
अराति-झुण्ड मारते स्व शान से बढ़े चलो ।
स्वदेश-हेतु आज हे !
जवान सूरमा चलो ॥
करो विमुक्त मात को स्वभूमि इञ्च-इञ्च लो ।
उद्धार मातृ-भूमि का स्वहस्त से किए चलो ॥
युयुत्सु वीर आज हे !
ध्वजा लिए बढ़े चलो ।
स्वदेश-हेतु आज हे !
जवान सूरमा चलो ॥

गीत (हिन्दी)

[श्रीमती महादेवी वर्मा]

तुम मुझमें प्रिय, फिर परिचय क्या,
तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संस्कृति,
भर लाई हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या !

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय,
यह जाग्रत वह नींद स्वप्नमय,
खेल खेल थक थक सोने दो
मैं समझूंगी सृष्टि प्रलय क्या है।

तेरा अधर विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मितमिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूछूँ क्यों मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषमय क्या ?

रोम रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत-शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय,
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या।

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूं तेरा ही बन्धन,
भर लाऊँ सीपी में सागर
प्रिय, मेरी अब हार विजय क्या

चित्रित तू मैं हूं रेखामय,
मधुर राग तू मैं स्वरसंगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय,
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या।

(नीरजा से)

गीतमु (तेलुगु)

[श्री गार्लपाटि राघव रेड्डी]

प्रिय, नालो नीवुंड, परिचयमननिकेमोयि।
द्युति कनीनिकललो नीरवपदगति,
निमेषमुललो पुलकांकुरतति,
अलंति येदलो जीवनमुन
स्मृतिनि निंपुकोनि तेच्चितिनि।
इक एमि वेदुकुदुन ई क्षितिनि।

नी चिरुनगुमोमु अरुणोदयमगु,
नी निषादनिशि नीलच्छाययु,
आडियु पाडियु, अलसियु सोलसियु पंडुकोनगनी
पदपडि नाकिक इदि मेलकुव यनि यदि निद्दुरयनि
सृष्टि प्रलयंबुल जोलि नाकेटिकि वानि विरालि ?

नी अधरमु चुंबिंचिन चषकम्मु,
नी एलनव्वुलु निंडिन मद्यमु,
नी एडंद मधुशाल काग
मधुदायि, इच्चुनदि विषमयमो
एल अडुगुदु अदि मधुमयमो ?

नंदनमु पुलकिंचु न रोमरोममुन,
ऊरुपूरुपुनंदु ओनरु जीवनकोटि,
कलकलनपूर्वलोकम्मुलु अज्ञातमुलु,
दिनमु नी पगिदि पुट्टुनु गिट्टुनु हृदयेश,
नाकमे यदियु कानिम्मु लेक नरकम्मुनैन कानिम्मु।

ओड्डुना विडनाडि यहंकृति
कूडुदु प्रियतमु जोडु,
जयिंचिन नीकु बंधमै निलुतु
शुक्तिक नेडु समुद्रमुल देत्तु
ओडुट गेल्वुटोक येत्तु।

नीवु चित्रमौ ने रेखातति
नीवु रागमगु ने स्वरसंगति
नीवु निरवधिवि नेनु परिमितिनि
मेनि नीडलकु मेलगुने भेदमु ? रहस्यमय !
इक नी प्रोल प्रियुल यभिनयमुलवि येला ?

पुस्तक परिचय



भाषा, शांति रक्षा अङ्क— संपादक, तारा तिक्कू—प्रकाशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली-६।

गत जनवरी में प्रकाशित सुप्रसिद्ध हिन्दी त्रैमासिक, भाषा, का यह विशेषाङ्क सभी दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है। चीनी आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में देश की रक्षा करने के उद्देश्य से प्रायः सभी पत्रिकाओं ने विशेषाङ्क तथा ऐसी ही अन्य विपुल सामग्री प्रकाशित कर अपना योगदान दिया है और इस परम्परा में बहुत देर से प्रकाशित होने पर भी प्रस्तुत अंक स्थायी महत्त्व का प्रतीत होता है। लगभग १५० पृष्ठों में विविध विभागों के अन्तर्गत जो सामग्री दी गई है, वह भारत की सभी भाषाओं के मूर्धन्य साहित्यकारों द्वारा रचित है। चुनाव भी उत्तम है। कविताएं और कहानियां हैं ही, लेखक और कलाकार के युद्धकालीन दायित्व पर भी चर्चाएं हैं और इसी से सम्बन्धित दो-तीन इंटर्व्यू भी हैं।

यहां यह कहना अनुचित न होगा कि भारत के लेखक कलाकारों की परम्परा सामान्यतः रोमांटिक और रहस्यवादी ही रही है और विदेशी लेखक-कलाकारों की तुलना में देखने पर उनकी युद्ध तथा वीरता संबंधी रचनाएं काफी कुछ फीकी लगती हैं। शायद इसका कारण यह हो कि इस प्रकार के लेखन की उनकी प्रेरणा गहरी और वास्तविक नहीं है, तथा अनुभव तो उन्हें है ही नहीं। युद्ध सम्बन्धी उपन्यास जहां अंग्रेज़ी में पचासों मिलते हैं, हिन्दी में एक भी नहीं। स्पेनी गृह युद्ध के समय यूरोप के लेखकों ने अपना अलग मोर्चा बनाया था और बाकायदा लड़े थे। अन्य युद्धों में भी विदेशी लेखक जब-तब भाग लिया करते हैं। परंतु चीनी आक्रमण के समय भारतीय लेखकों की ओर से ऐसा कोई प्रयास नहीं हुआ, विचार भी नहीं उठा। दिनकर ने भी कविताएं लिखने के अलावा कुछ नहीं किया। वे यदि एक छोटी-सी भी ब्रिगेड खड़ी कर देते या कोई और ही यह करता—तो बड़ा उपकार हुआ होता।

जो हो, हमें यह परंपरा गहराई में जा कर जमानी चाहिए, अन्यथा कोई स्थायी लाभ नहीं होगा।

—म. कु.

आर्योदय, सत्यार्थप्रकाश विशेषांक— इन सुमुद्रित विशेषांक में आर्यसमाज के केन्द्रीय ग्रन्थ, सत्यार्थप्रकाश, पर पच्चीस के लगभग लेख दिए गए हैं जिनमें विविध विषयों को लेकर विचार किया गया है। लेखक सभी जाने-माने हैं। यह प्रयास उपयोगी और सुन्दर है।

'कल्याण', श्रीकृष्णवचनामृत विशेषाङ्क— सम्पादक, सर्वश्री हनुमानप्रसाद पोद्दार तथा चिम्मनलाल गोस्वामी—गीताप्रेस, गोरखपुर।

हिन्दी-साहित्य-जगत् में 'कल्याण' ने अपनी अनेक विशेषताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। इसके विशेषांकों की परम्परा गौरव का विषय है। कोटि-कोटि धर्मप्राण भारतीय जन-समुदाय का यह हृदयहार है। आज के इस भौतिकवादी युग में भी भारतीय धर्म और संस्कृति की ज्योति जगाने का भगीरथ प्रयत्न गीताप्रेस गोरखपुर के प्रकाशक करते रहे हैं। प्रस्तुत

विशेषांक में भगवान् श्रीकृष्ण के वचनामृतों का संग्रह किया गया है। श्रीमद्भागवतमहापुराण, महाभारत तथा पुराणों से कण्ठस्थ करने योग्य वचनामृतों का यह उपादेय संग्रह है। नयनाभिराम चित्रण एवं सुस्पष्ट मुद्रण ने विशेषाङ्क की छटा द्विगुणित कर दी है। मूल्य भी अति स्वल्प है। निःसन्देह जगद्गुरु श्रीकृष्ण के भक्तों को तो यह संग्रह आह्लादित करेगा ही, इसके साथ ही भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रेमी देशी-विदेशी विद्वानों को भी लाभान्वित करेगा। इसके संपादक हमारी बधाई के पात्र हैं, जिनके पुरुषार्थ एवं परिश्रम से एक अमूल्य रत्न हिन्दी-भारती के कोष में आया।

—राधेश्याम गोस्वामी

जैनतत्त्वदर्शन—२ भाग—ले० आत्मा राम जी महाराज—प्रकाशक, श्री आत्माराम जैन सभा, ४१, धनजी स्ट्रीट, बम्बई ३—मूल्य ६ रु० ।

जैन दर्शन सम्बन्धी यह ग्रन्थ आज से ७० साल पहले हिन्दी में लिखा गया था। इसके लेखक नए युग में जैन धर्म के आरम्भिक उन्नायकों में से थे और पंजाब में उत्पन्न होकर भी उन्होंने सारे देश में प्रसार और प्रचार कार्य किया। आज जैन धर्म और दर्शन की जो शोध और प्रकाशन आदि हो रहे हैं, उस सब की नींव आपने ही डाली। आपने स्वयं अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जिनमें प्रस्तुत रचना अन्यतम है और जिसका यह पाँचवाँ संस्करण है। इस में बहुत सरल और स्पष्ट रीति से जैन धर्म, इतिहास तथा दर्शन के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। इस में उस समय की हिन्दी भाषा की भी झलक प्राप्त होती है—जो भाषाशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

हजार से ऊपर पृष्ठों के इस ग्रन्थ का मूल्य प्रचारार्थ केवल ६ रु० रखा गया है। छपाई, सफाई अच्छी है।

मन के मोती-(कविता)—श्री भगवती-प्रसाद सोनी 'गुंजन—प्रकाशक, हिन्दी परिषद्, १२, गोइनगंज, लखनऊ—मूल्य ५० न० पै०

यह उदीयदान कवि गुंजन की लगभग ३० कवि-ताओं का संग्रह है। इसमें सभी प्रकार की रचनाएँ हैं, कुछ गीत हैं, कुछ देश सेवा सम्बन्धी और कुछ विचार-प्रधान। भाषा और भाव पुष्ट हैं तथा कवि का उनपर अधिकार प्रतीत होता है। छपाई-सफाई भी साफ और सुन्दर है।

ज्योतिष फल ज्ञान प्रवेश—ले० अजीत मेहता—सामुद्रिक ज्योतिष कार्यालय, १०६ बी० रोड, सरदारपुरा, जोधपुर—मूल्य ३. २५ रु० ।

फलित ज्योतिष का प्रस्तुत ग्रंथ सरल हिन्दी में विषय के विविध पक्ष प्रस्तुत करता है। लेखक का विश्वास है कि यदि जन्म का समय सही लिया हुआ है तो फलादेश शुद्ध ही निकलेगा। विषय में रुचि रखने वालों के लिए पुस्तक उपयोगी प्रतीत होती है। मूल्य अधिक है, क्योंकि पृष्ठ संख्या केवल सौ है और जिल्द भी साधारण ही है।

मरु-मन्थन—संपादक, मगराज जैन—प्रकाशक, जिला भारत सेवक समाज, बाड़मेर, राजस्थान।

यह त्रैमासिक पत्रिका राजस्थान प्रदेश के भारत युवक समाज द्वारा आरंभ की गई है तथा यह उसका पहला अंक है। इसमें सभी विषयों पर रोचक लेख, कविताएँ, कहानियाँ तथा अन्य स्तंभ हैं। कई लेख स्थायी महत्त्व के हैं, जैसे 'राजस्थान में १८५७,' 'आधुनिक राजस्थानी कविता,' 'भीलों का गवरी नृत्य' आदि। बहुत-सी सामग्री युवकों तथा विद्यार्थियों का ज्ञान बढ़ाने की दृष्टि से भी लिखी गई है। हम इस पत्रिका की सफलता की कामना करते हैं।

विट एण्ड विज़डम आव स्वामी दयानंद (अंग्रेजी)—सम्पादक, श्री एन. बी. सेन—प्रकाशक, न्यू बुक सोसाइटी आव इण्डिया, पो. बा. २५०, नई दिल्ली—मूल्य रु. २५।

भारतीय नवोदय के नेताओं में स्वामी दयानन्द सरस्वती का विशेष स्थान है। उन्हों ने भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम आधारों पर एक रूढिमुक्त प्रगतिशील समाज के निर्माण का प्रयत्न किया। उन्होंने मानव-जीवन के प्रत्येक विभाग पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया और चालू प्रथाओं और धारणाओं की कड़ी

आलोचना करते हुए अनेक संशोधनों और सुधारों का प्रचार किया। इस महान् कार्य में उन्होंने अपने प्राणों की भी बाज़ी लगा दी और मृतप्राय हिन्दू समाज में एक नई चेतना, एक नई लहर उत्पन्न करने में सफल हुए।

इस रचना में सम्पादक ने उनके भाषणों तथा लेखों में से उत्तम विचारों का संग्रह करके उन्हें विषय के अनुसार प्रस्तुत किया है। विषयों की संख्या २५० के लगभग है और उनमें जन्म तथा मृत्यु से लेकर शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन, ईश्वर, ज्योतिष, राजनीति, जनता आदि सभी बातें आ जाती हैं। इस प्रकार की अन्य भी अनेक पुस्तकें सम्पादक ने प्रकाशित की हैं, जिनमें वेद, रामायण, महाभारत से लेकर गांधी, नेहरू, टैगोर, बेकन, नेपोलियन, शेक्सपियर आदि तक महापुरुषों के विचारों का संग्रह है। उक्त महाग्रन्थों एवं महापुरुषों में से किसी भी एक के एक स्थान पर समूचे वैभव का परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से ये सभी विचार-ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में लाला लाजपतराय द्वारा लिखित स्वामी जी के जीवन तथा कार्य पर विस्तृत लेख भी है, जो निस्सन्देह एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है। हाँ, मूल्य अवश्य अधिक प्रतीत होता है।

—चिरंतन

फारसी-कवि-चर्चा—लेखक, चौधरी रामसिंह, भूतपूर्व सदस्य, पंजाब विधान सभा। प्रकाशक, विजय प्रकाशन, घण्डरां, जिला कांगड़ा। पृष्ठ संख्या २०७। मूल्य ४ रुपये।

इस पुस्तक में श्री रामसिंह जी ने ईरान और भारत में जन्म लेने वाले ५५ फारसी कवियों की चर्चा की है। प्रत्येक कवि के संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त के साथ-साथ उस की कविता का भी रसास्वादन कराया गया है। मूल फारसी पद्य देकर साथ हिन्दी में उस का भाव भी दे दिया गया है। पुस्तक लेखक के फारसी भाषा के विस्तृत ज्ञान की द्योतक है। इस विषय की पुस्तक अभी तक हिन्दी में कदाचित् दूसरी नहीं। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य को लेखक की यह एक बहुमूल्य देन है। पुस्तक अच्छी, रोचक और ज्ञानवर्धक है। बढ़िया सजधज, कागज और छपाई सुन्दर है। इस पुस्तक के प्रकाशन में पंजाब सरकार के भाषा विभाग ने आर्थिक सहायता प्रदान कर अपनी गुणग्राहिता का प्रमाण दिया है।

—सन्तराम

भारतीय संस्कृति और साधना (प्रथम खंड)—लेखक, महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज, पृष्ठ संख्या ६४९—मूल्य सजिल्द ११ रुपए, ५० नए पैसे—प्रकाशक, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना।

भारत की अपनी सांस्कृतिक परम्परा और साधना, जो उसे साक्षात्कृतधर्मा तपःपूत ऋषियों से मिली थी, बहुत पुरानी है। सहस्राब्दियों पूर्व जबकि अपनी संस्कृति की डींग हाँकने वाले यूरोप के पूर्व-निवासी गुहा-कन्दराओं में वन-मानुषों की तरह आहार-विहार करते थे, तब भी हमारे देश में ज्ञान की दिव्य-ज्योति जगमगा रही थी। अनेकानेक देशों से छात्रगण आ-आ कर यहाँ पर ज्ञान अर्जित करके गौरवान्वित होते थे। तभी तो मनु ने भी अपना यह सत्य-गौरव उद्घोषित किया था—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

—(मनुस्मृति)

सदियों की दासता में भी वह ज्योति बुझी नहीं, धूमिल पड़ गई यह दूसरी बात है। संस्कृति की इन कोमल विचार-लतिकाओं को इस्लाम की तीक्ष्ण तलवार भी न काट सकी थी। अवश्य ही हमारी संस्कृति में कुछ ऐसे अजर अमर तत्त्व हैं, जो उस का अस्तित्व कभी भी विलीन नहीं होने देंगे।

सहिष्णुता भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' हमारा मूलमन्त्र रहा है। अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय यहाँ सुख से फूले-फले, धर्म के नाम पर यहाँ कभी उत्पीडन या रक्तपात नहीं हुआ। यूरोप के मध्य-युग को देखें तो वहाँ धर्म का ऐसा आतंक छाया मिलता है जिस में सैकड़ों निर्दोष व्यक्ति जीवित ही आग में भून दिए जाते थे? अपने यहाँ वैदिक, बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त, आस्तिक, नास्तिक, परस्पर विरोधी मत-मतान्तर शान्ति से अपने

प्रचार में लगे रहे। ऋषियों ने भेद की दीवार ढहाकर 'समानं नो मनः' का मन्त्र फूंका था। 'शं द्विपदे, शं चतुष्पदे' का गायन करने वाली यह पावन, कृपा और औदार्य-पूर्ण भारत-भूमि आरम्भ से ही सात्त्विक प्रकृति की रही है। भोगवादी दृष्टिकोण से दूर रह कर सदैव तपोमय जीवन-यापन करने वाले, यहाँ के विद्या-व्यसनी जन कितने निरीह और विनीत थे, यह तथ्य इस उक्ति से सामने आता है, जब वे कहते हैं—'विद्या विनय देती है, विनय से योग्यता आती है। योग्यता से मानव धन पाता है, धन से धर्म और धर्म से सुख उपलब्ध होता है'—

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मस्ततः सुखम्॥

भारतीय संस्कृति और साधना की इन्हीं कतिपय विशेषताओं को लेकर महामहोपाध्याय डाक्टर गोपीनाथ कविराज ने अपने आलोच्य ग्रन्थ में एतद्विषयक चालीस निबन्ध दिए हैं जो उनकी योग्यता और व्यक्तित्व के अनुसार बड़े प्रौढ और गम्भीर हैं।

भारतीय साधना-पद्धति बहुत व्यापक है, उसके अनन्त रूप और प्रकार हैं। जिसे जो रूप रुचि के अनुकूल लगता है, वही ग्रहण करके लोक और परलोक को साधता है। यहाँ मुँह पर पट्टी बाँध कर चींटी को भी बचा कर चलने वाले जैन भिक्षु हैं, तो पंच-मकारों का सेवन करने वाले कापालिक साधक भी मिल जाएंगे। यह सत्य है कि प्रत्येक साधना अपने मूल में अवश्य कुछ ग्राह्य तत्त्व रखती है, पर कालांतर में कुपात्रों के हाथ पड़ कर अन्ध-श्रद्धा, अंधविश्वास और दूषित प्रवृत्तियों का शिकार होती भी देखी गई है।

महामहोपाध्याय डाक्टर गोपीनाथ कविराज ने गम्भीरता-पूर्वक प्रत्येक साधना-पद्धति का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया है और भारतीय संस्कृति के पक्षों पर भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार व्यक्त किए हैं। विद्वान् लेखक ने अन्ध-श्रद्धा को आड़े नहीं आने दिया है, जो तथ्य हैं उन्हें सामने रख दिया है। काश्मीरीय शैव-दर्शन, अद्वैत-प्रस्थान, कुण्डलिनी-तत्त्व, ओंकार-साधन, सूर्य-विज्ञान, लिङ्ग-रहस्य, तान्त्रिक-बौद्ध-साधना, जैन-दर्शन—इत्यादि चालीस निबन्ध। दर्शन की गूढ ग्रन्थि एवं तत्त्व-विवेचन में रमने वाले जिज्ञासु स्वस्थ पाठकों के लिए यह ग्रन्थ बड़ा उपादेय और संग्रहणीय है। यद्यपि इस ग्रन्थ का नाम 'भारतीय संस्कृति और साधना' है, पर अधिकांश निबन्ध साधना-सम्बद्ध ही हैं, जिन पर दार्शनिक-चिन्तन और मनन की चासनी चढ़ी हुई है। अवश्य ही, दर्शन में गति न रखने वाले पाठकों के लिए यह प्रौढ ग्रन्थ अन्धे के हाथ में दर्पण की भांति सिद्ध होगा। लेखक की भाषा भी विषयानुकूल बड़ी प्रौढ, गम्भीर एवं सशक्त है। यों भारतीय संस्कृति और साधना के सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है. तथापि अभी हमारी मध्यकालीन साधनाओं के बहुत-से पक्ष अन्धकार में ही पड़े हैं। हमारे पुण्यकर्मा तपोनिष्ठ ऋषियों ने जिस दिव्य-ज्ञान का देव-भाषा संस्कृत में उपदेश किया उसको जन-भाषा में प्रकाशित करना निःसन्देह बहुत पुण्य का कार्य होगा। अब भी वह दिव्य-ज्ञान सहस्रों हस्तलिखित पोथियों में बन्द पड़ा है. आवश्यकता उसे प्रकाश में लाने की है। डाक्टर साहब ने इस विषय में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। यह तो ग्रन्थ का पहला भाग है दूसरा भी यथाशीघ्र प्रकाशित हो जाएगा।

ग्रन्थ के मुद्रण में यत्र-तत्र बहुत अधिक अशुद्धियां रह गई हैं, जिनका विज्ञ पाठक के अन्तःकरण में खटकना स्वाभाविक है, पर इन त्रुटियों का परिमार्जन पीछे लगे शुद्धि-पत्र में कर दिया है।

विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना के प्रकाशक-बन्धु बधाई के पात्र हैं, जो इस प्रकार के गम्भीर प्रौढ ग्रन्थ-रत्नों को प्रकाशित करके भगवती भारती के भण्डार की विभूति में योगदान दे रहे हैं। आशा है, आगे भी वे एतद्विषयक प्रौढ, गम्भीर ग्रन्थों के प्रकाशन की परम्परा को चलाते रहेंगे।

—राधेश्याम गोस्वामी

सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानन्द के लेख तथा उपदेश—संपादक, श्री शंकरानन्द,—प्रकाशक, कल्कि प्रकाशन, हंसराज वाड़ी, टैगोर रोड, सान्ता क्रूज, बम्बई—५४—मूल्य रु. ३. ५०

वेद-मंदिर अहमदाबाद के स्वामी गंगेश्वरानन्द जी

भारत के प्रसिद्ध विद्वान् और संत हैं। आप उदासीन संप्रदाय से संबन्धित हैं तथा चक्षुहीन होने पर भी अपने ज्ञान तथा व्यवहार के कारण सर्वत्र समादृत हैं। आपने अनेक पुस्तकों की रचना की है तथा अपने संप्रदाय के विस्तार के लिए बहुत उद्योग किया है। आप उत्कट देशभक्त भी हैं तथा अनेक अवसरों पर आपने जनसेवा के महान् आयोजन भी किए हैं। जूनागढ़ के भारत में सम्मिलित कराने के लिए आपने स्वामी सर्वानन्द जी द्वारा आन्दोलन चलवाया। भारत विभाजन के समय आपने शरणार्थियों की सभी प्रकार से विपुल सहायता की। आप सदा खादी पहनते हैं और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देते हैं।

प्रस्तुत संग्रह में विविध अवसरों पर लिखे गए आपके ३० लेख तथा भाषण हैं। उदासीन मत ज्ञान तथा भक्ति के समुच्चय से मुक्ति मानता है। इसलिए जहाँ इनमें वेद और गीता तथा आत्मा और परमात्मा पर लेख हैं, वहाँ श्रीकृष्ण, गोपियाँ, रास-लीला और हरिकथा पर भी अनेक लेख हैं। परन्तु श्रीकृष्ण को आपने भोगी न मानकर योगी माना है। आपकी लेखन-शैली प्रांजल तथा प्रौढ है। स्थान-स्थान पर उदाहरणों से उन्हें पुष्ट किया गया है।

पुस्तक की छपाई-सफाई अच्छी तथा मूल्य उचित है। हमें आशा है, धर्म-प्रेमी जनता इसका आदर करेगी।

सद्गुरु गंगेश्वर जयंती अङ्क (अंग्रेजी)— प्रकाशक उपर्युक्त।

यह ग्रंथ स्वामी गंगेश्वरानन्द जी की ८६वीं जयंती पर प्रकाशित किया गया है। इसमें उनके जीवन तथा कार्य के सम्बन्ध में छोटे-छोटे लेख तथा एक लम्बी चित्रमाला है जिसमे स्वामी जी के विभिन्न अवसरों पर लिए गए फोटो हैं। मुद्रण सुन्दर है।

रामायणी कथा—लेखक, दिनेशचन्द सेन —अनुवादक, भगवानदास हालना—प्रकाशक, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग--मूल्य रु. ५.००

यह पुस्तक आज से ६० साल पहले बंगला में लिखी गई थी और अत्यन्त लोकप्रिय हुई थी। इसके अनेक संस्करण हुए और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसकी भूमिका लिखी। इसे विश्वविद्यालय के पाठ्य-क्रम में रखा गया और संभवतः आज भी है। इसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर श्री पद्मकान्त मालवीय ने इसे हिन्दी में अनूदित कराया और सन् १९१५ में प्रकाशित किया। हिन्दी में भी यह बहुत लोकप्रिय हुई और इसके कई संस्करण हुए। महामना मालवीय जी को तो यह बहुत पसंद थी और उनके हिन्दू विश्व-विद्यालय में यह आरम्भ से ही बी. ए. की पाठ्य-पुस्तक रही। परन्तु अब बहुत दिनों से यह अप्राप्त थी। अतः अब इसका चौथा संस्करण प्रकाशित कराया गया है।

ग्रन्थ में रामायण के मुख्य चरित्रों के माध्यम से उसकी कथा कही गयी है। ये चरित्र हैं दशरथ, राम भरत, लक्ष्मण, कौशल्या, कैकेयी, सीता, हनुमान और बाली। स्वभावतः सबसे अधिक स्थान राम को दिया गया है। श्रीसेन की वर्णन-शैली तथा भाषा बड़ी ललित और सरल है। स्थान-स्थान पर वाल्मीकि रामायण के उद्धरण हैं, जो उसकी शोभा को द्विगुणित कर देते हैं। अंत में "रामायण और समाज" नाम से एक लेख भी है जिसमे तत्कालीन समाज का सुन्दर विवेचन किया गया है।

ऐतिहासिक महत्त्व की इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए इसके प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

वीर गीतिका (कविता)—श्री विद्यारत्न 'वीर'—राजकृष्ण प्रकाशन, ९०० बी।२८ कल्याणी देवी, इलाहाबाद—मूल्य ५० न. पै.

प्रस्तुत सुमुद्रित पुस्तिका में होश्यारपुर-निवासी कवि के वीरतापरक सवैयों का संग्रह है। आज भी यह शैली जीवित है इसका यह प्रमाण है। रचना सुन्दर और छन्द निर्दोष है। एक उदाहरण देखिए—

याद रहे तूने क्षत्राणी का पिया है क्षीर
पूर्वजों के साँचे में ही अपने को ढालना।
शस्त्रों को सँभाल महामाता राष्ट्रमेदिनी के
छाले पड़े तलवों से कांटों का निकालना।
'वीर' विघ्न के निकट दौड़ जाना चटपट
संकट का विकट कटक काट डालना।
प्रण और प्राण की समस्या आने पर लाल
ज्वाल-सा कराल लाल हो के प्रण पालना॥ ●

सम्पादकीय



कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा—

गत मास कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़, का रजत जयन्ती महोत्सव सम्पन्न हुआ। मैसूर राज्य के मुख्य-मन्त्री श्री निजलिंगप्पा ने इसका उद्‌घाटन किया। यह संस्था गत २५ वर्ष से कर्नाटक प्रदेश में हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है।

अन्य सामान्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त इस सम्मेलन में दो-तीन विशेष कार्यक्रम भी हुए। एक था अखिल भारतीय देवनागरी प्रचार सम्मेलन, जिसका उद्‌घाटन केरल के पूर्व-राज्यपाल, डा. बी. रामकृष्ण राव ने तथा अध्यक्षता पूना विश्वविद्यालय के उपकुलति, महामहोपाध्याय प्रो. दत्तो वामन पोतदार ने की। इन्होंने तथा अन्य सभी वक्ताओं ने देवनागरी को भारतीय भाषाओं की सामान्य लिपि बनाने पर बल दिया। प्रसन्नता की बात है कि नागरी को यह स्थान दिलाने का आन्दोलन अब आगे बढ़ रहा है और अनेकानेक मञ्चों से यह बात कही जा रही है। निस्सन्देह यह भारत की बड़ी सेवा है और उसकी एकता की पुष्टि का सबसे बड़ा व्यावहारिक पग है। अब यह बात भी कही जानी चाहिए कि नागरी को राष्ट्र-लिपि बनाने का विधेयक संसद् में प्रस्तुत किया जाए। हमें विश्वास है कि यह विधेयक प्रतिनिधियों का बहुमत प्राप्त करेगा और अवश्य स्वीकृत होगा।

दूसरा महत्त्वपूर्ण सम्मेलन था राष्ट्रीय भाषा-सम्मेलन, जिसका उद्‌घाटन पूर्व-शिक्षामन्त्री, डा० श्रीमाली ने तथा अध्यक्षता आगरा के केन्द्रीय इन्स्टीट्यूट के चेयरमैन, श्री बालकृष्ण राव ने की। इस सम्मेलन में सभी भारतीय भाषाओं तथा उनके साहित्य को राष्ट्रीय मानने और उनका समुचित आदर करने पर बल दिया गया। उन सबका अध्ययन किया जाना चाहिए तथा विविध भाषाओं में अनुवाद भी होने चाहिए। सभी भाषाओं की सभी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें अन्य सब भाषाओं में अनूदित होकर उपलब्ध होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों में इन सबके अध्ययन की सुविधा होनी चाहिए। शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा आयोजित शिक्षा-अधिकारियों की एक बैठक में कहा गया कि उत्तर भारत के विश्वविद्यालय इस ओर समुचित ध्यान नहीं दे रहे हैं। गत वर्ष भी संसद् में यह बात कही गई थी। खेद की बात है कि सम्पूर्ण भारत में हिन्दी का प्रचार चाहने वाले हिन्दी-भाषी नेता अपने प्रदेशों में अन्य भारतीय भाषाओं को उतना महत्त्व नहीं देना चाहते। सम्भवतः इसी कारण दक्षिण में हिन्दी का विरोध होता है और हिन्दी वालों की प्रवृत्तिका को साम्राज्यवादी प्रवृत्ति कहा जाता है।

—विश्वबन्धु

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन-समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—१. डा. कपिलदेव, कुरुक्षेत्र, २. श्री शि. शं. आपटे, पूना, ३. श्री यज्ञदत्त शर्मा, जालन्धर नगर, ४. श्री साहबराम, होशिआरपुर, ५. ज्योतिषाचार्य श्री सीताराम झा, वाराणसी, ६. श्री शिवदत्त शास्त्री, होशिआरपुर, ७. श्री जगमोहनलाल सेठी, चंडीगढ़, ८–९. श्री देवदत्त अहूजा व श्री श्रीधर, देहली, १०–१२. श्री चन्द्रभाल त्रिपाठी, असिस्टेंट कमिश्नर, हरिजन-कल्याण विभाग, गृह मन्त्रालय, भारत-सरकार अपने पूज्य पिताजी पं. चन्द्रबली त्रिपाठी, एडवोकेट और माता जी, जो हिन्दी के दिग्गज विद्वान् स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की विदुषी सुपुत्री हैं, के साथ।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क—गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए—

१. श्रीमती शकुन्तला सेठी, नई दिल्ली, १००), २–८. श्री शम्भूनाथ, १०), श्री हरनामदास शास्त्री, १०), श्री सेवाराम, १०), श्री जवाहरलाल, १०), श्री मनोहरलाल, १०), प्रो. राधेश्याम गोस्वामी, १०), डा. रामप्रताप, १०), होशिआरपुर।

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—

१–३. श्री देवदत्त भारद्वाज, ५०), श्री ईश्वरदास, २०), श्री प्रेमनाथ चड्ढा, १०), दिल्ली, ४. श्री इन्द्रसिंह, बरेली, १०), ५. चौ. हरिश्चन्द्र, श्रीगंगानगर, १०), ६–७. श्री एम. आर. जम्बूनाथन, १०), श्री कृष्णदयाल वलेचा, १०), बम्बई, ८. प्रो. जी. एच. शॉकर, लीडन, (हालेण्ड), १०), ९–१४. श्री पी. एल. सोंधी, १०), श्रीमती उपला देवी महता, १०), श्री ओमप्रकाश चोपड़ा, १०), श्रीमती सत्यप्रिया, १०), दीवान रघुनाथसहाय, १०), डा. सद्गोपाल, १०), नई दिल्ली, १५. प्रो. ओमप्रकाश, जालन्धर, १०), १६–२२. श्री सम्भूराम शर्मा, १०), श्री पीताम्बर नारायण, १०), श्री केदारनाथ कालिया, १०), श्री कैलाशनाथ कालिया, १०), प्रो. शिवप्रसाद भारद्वाज, १०), प्रिं. रलाराम, १०), मास्टर सत्यदेव वर्मा, १०), होशिआरपुर।

विशेष दान—१–३. सर्वश्री रामकोला शूगर मिल्ज़ लि., ६००), सर्वश्री मूलचन्द खरायतीराम ट्रस्ट, ५००), सर्वश्री अपर इण्डिया शूगर मिल्ज़ लि., ४००), नई दिल्ली, ४. श्री गज्जनमल कुठियाला ट्रस्ट, यमुनानगर, २००), ५. श्री जे. एस. तड़ागी, कलकत्ता, ५०), ६. श्री नत्थूराम जी शास्त्री, होशिआरपुर, ११), ७. श्री विद्याप्रकाश पुरी, बटाला, ११), ८–९. श्री कुलदीप कुमार तलवाड़, ५), श्री अनन्तराम खुल्लर, ५), होशिआरपुर।

विश्व-सत्संग—विश्व-सत्संग के साप्ताहिक ३, १०, १७ और २४ मई के अधिवेशनों में श्री आचार्य विश्वबन्धु जी ने मनुस्मृति के तीसरे अध्याय में वर्णित नारी-महिमा, पञ्च महायज्ञ और चतुर्थ अध्याय के अहिंसा धर्म पर विवेचनात्मक प्रवचन किए।

सरस्वती-समाज—१४. ४. ६४ को आचार्य श्री विश्वबन्धु जी की अध्यक्षता में श्री परमानन्द शास्त्री, एम. ए. ने 'विदेशी आक्रान्ताओं पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव' विषय पर अपना योग्यतापूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किया। कुछ एक विद्वानों ने निबन्ध के बारे में चर्चा चलाई। अन्त में अध्यक्ष महोदय ने उसी विषय पर और अधिक प्रकाश डालते हुए अधिवेशन की कार्यवाही समाप्त की। सरस्वती समाज की ३३वीं बैठक २९. ५. ६४ में श्री पीताम्बरदत्त शास्त्री 'प्राचीन वाङ्मय की शोध चर्चा' विषय पर विचार प्रस्तुत करेंगे।

नए प्रकाशन—१. ऋग्वेद, पदपाठ व चार प्राचीन भाष्यों सहित ये भाष्य…हैं—स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव, उद्गीथाचार्य तथा मुद्गलाचार्य कृत

४थ भाग। २य और ३य भाग पहले प्रकाशित हो चुके हैं। मूल्य ४५ रु. प्रति भाग।

२. वैदिक-पदानुक्रम कोष, १५वाँ खण्ड, इसमें संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और वेदाङ्ग-सूत्रों के पूर्व प्रकाशित १४ खण्डों की समाकलित आद्यक्षर सूची दी गई है। इस महाकोष का अन्तिम (१६वाँ) खण्ड भी प्रेस में छप रहा है। प्रति खण्ड मूल्य, (कागज के भेद से) प्रथम कोटि ४० रु., द्वितीय कोटि ३० रु., तृतीय कोटि २० रु.।

३. गीता-तत्त्ववाद, प्रि० श्रीराम शर्मा द्वारा सम्पादित, विषयानुसार वर्गीकृत गीता के चुने हुए श्लोक, हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित, मूल्य—७५ न. पै.।

४. पंजाब के पर्वतीय प्रदेश, ले. शमी शर्मा। बालकों के लिए सचित्र पुस्तक, मूल्य १.३१ रु.।

शान्ति-सदन— आश्रम में यह सदन इसलिए बनाया गया है कि बड़ी आयु वाले विद्वान् और अनुभवी सज्जन आकर निवास करें और एकान्तवास, वैराग्यसाधन, स्वाध्याय, नियत दिनचर्या तथा निःस्वार्थ सेवा द्वारा शान्ति, संतोष एवं नया स्वास्थ्य लाभ करते हुए जीवन सफल करें।

प्रसन्नता की बात है कि इसी सद्-भावना से प्रेरित होकर गत कुछ मास से ७२वर्षीय श्रीगुरुसरनदास कपूर स्थाई रूप से आकर शान्ति-सदन में रहने लगे हैं। आपका अब तक का जीवन मुख्यतः लाहौर, कानपुर और बम्बई में बीता है। अपने काम-काज के नाते आप प्रसिद्ध विद्वान् तथा उद्योगपति, डा. गोकुलचन्द नारंग के भी पर्याप्त समय पर्यन्त समीपवर्ती रहे हैं।

अब आप कुछ समय संस्थान के प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्य को देते हैं तथा शेष सारा समय आत्मोन्नति में लगाते हैं। आपका स्वास्थ्य उत्तम है तथा स्वभाव सरल और प्रसन्न है।

जीवन के अन्तिम पड़ाव पर पहुंच कर इस प्रकार का आश्रम-वास वास्तव में व्यक्तिगत विकास तथा समाज-सेवा की दृष्टियों से अत्यन्त लाभदायक हो सकना चाहिए। क्या अच्छा हो यदि इस उदाहरण से कुछ अन्य सज्जन भी इसी प्रकार अपना शेष जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

इस प्रदेश का जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक है और आश्रम में निवास तथा भोजन आदि के प्रबन्ध के बारे में सभी साधारण सुविधाएँ सुलभ हैं।

बधाई— श्री जयकर्ण कोहली (नई दिल्ली) को उन की सुपुत्री निर्मल के शुभ विवाह पर, रायज़ादा आशानन्द (सम्भल) को उनकी सुपुत्री सन्तोष के शुभ विवाह पर, श्री हरकिशनलाल भल्ला (जालन्धर) को उनकी सुपुत्री गीता के शुभ विवाह पर, डा० रघुवीरदत्त शर्मा (फर्रुखाबाद) को उनके सुपुत्र डा० भानुदत्त के शुभ विवाह पर, डा. गणेशीलाल (नई दिल्ली) को उनके सुपुत्र ललित के शुभ विवाह पर, संस्थान—कार्यकारिणी समिति के प्रधान डा. मेहरचन्द महाजन (नई दिल्ली) को उनके सुपुत्र जितेन्द्र के शुभ विवाह पर तथा श्री नत्थूराम शास्त्री (होशिआरपुर) को उनके भतीजे के मुंडन-संस्कार पर हार्दिक बधाई।

शोक-समाचार

संस्थान-सदस्य राजा बोधराज आनन्द (जम्मू) का, श्री सर्वमित्र (अमृतसर) तथा डा. संतराम दत्त (चण्डीगढ) की माता जी का देहांत हो गया। दिवङ्गत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

विविध समाचार

उज्जैन में कुछ ऐसे प्रस्तर-लेख प्राप्त हुए हैं, जिन से १२-१३ वीं शताब्दी में मालवा के परमार राजाओं के सम्बन्ध में पता चलता है। इसमें द्रोण-वंश का भी उल्लेख है, जिसके विषय में अभी तक इतिहासकारों को कुछ भी ज्ञान नहीं है। ये लेख एक दुकानदार की सीढ़ी पर लगे पत्थर से प्राप्त हुए हैं।

× × ×

चिकित्सा-शास्त्र सम्बन्धी तकनीकी शब्दों के हिन्दीकरण पर विचार करने के लिए बंगलौर में १ जून से १७ जून तक एक सेमिनार किया जा रहा है। इसमें सभी राज्यों के विद्वान् भाग लेंगे। अभी तक १४ हज़ार से ऊपर शब्दों के हिन्दी-पर्याय बनाए जा चुके हैं। अन्य भारतीय भाषाओं में भी शब्द बनाने की समस्या पर विचार होगा।

× × ×

पञ्जाब के साहित्य, कला तथा सङ्गीत की अलग-अलग अकादेमियाँ स्थापित करने की योजना की जा रही है। चण्डीगढ में लेखकों तथा कलाकारों की एक कालोनी भी बसाने की योजना है, जिसे डाक्टर मुल्कराज आनन्द क्रियान्वित करेंगे।

× × ×

स्वीडेन के नोबुल पुरस्कार की तरह अमेरिका में भी 'एस्पेन-पुरस्कार' की स्थापना की जा रही है। लगभग डेढ़ लाख रुपए का यह पुरस्कार संसार के उस किसी भी व्यक्ति को दिया जाएगा जिसने मानवी प्रकृति, रुचि और आदर्शों के अध्ययन अथवा क्रियात्मक विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण योग दिया हो। कोलोरैडो के एस्पेन नामक नगर में स्थापित एस्पेन इन्स्टीट्यूट आफ ह्यूमेनिस्टिक स्टडीज़ की ओर से यह पुरस्कार प्रतिवर्ष दिया जाएगा।

× × ×

राष्ट्र-सङ्घ द्वारा प्रकाशित संसार की जनसंख्या सम्बन्धी एक पुस्तक के अनुसार सन् १९६१ में संसार की कुल जनसंख्या ३ अरब ७ करोड़ थी। गत दस वर्षों में इसमें ५६ करोड़ की वृद्धि हुई और इस वृद्धि का ६० प्रतिशत योगदान एशिया ने किया। टोकियो सबसे अधिक जनसंख्या वाला नगर है। इसके बाद न्यूयार्क का स्थान आता है। लन्दन का स्थान ११वाँ है। बम्बई की जनसंख्या ४३ लाख थी।

× × ×

इस वर्ष अक्टूबर मास में अखिल विश्व हिन्दू-धर्म सम्मेलन की योजना की जा रही है। इसमें बर्मा, लङ्का, हिन्देशिया, मारीशस, ब्रिटिश ग्याना, ट्रिनिडाड, जापान आदि से हिन्दू-धर्मों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। इस अवसर पर दो पुस्तकें भी प्रकाशित की जाएंगी जिनमें से एक में विविध देशों में रहने वाले हिन्दुओं की संख्या तथा स्थिति पर प्रकाश डाला जायगा तथा इसमें भारत के तीर्थ-स्थानों का वर्णन होगा। इसमें जैन, बौद्ध, सनातनी आदि सभी भाग लेंगे।

× × ×

इगोर सेरेब्रियाकोव नामक सोवियत विद्वान् ने पञ्जाब के प्राचीन और नवीन साहित्य पर एक ग्रन्थ तैयार किया है जो मास्को के ओरियन्टल लिटरेचर पब्लिशिंग हाऊस द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसमें कुछ विद्वानों की इस मान्यता का खण्डन किया गया है कि पञ्जाबी-साहित्य १९वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ।

आठवीं और दसवीं शताब्दी के नाथ-सम्प्रदाय तथा गुरुओं के साहित्य की इसमें विशद विवेचना की गई है।

× × ×

केन्द्रीय सांस्कृतिक कार्य मन्त्रालय ने श्रीरंगपट्टन में टीपू सुलतान से सम्बन्धित वस्तुओं का एक संग्रहालय बनाने का निश्चय किया है। इसके लिए तीन लाख रुपए का एक भवन भी बनाया जायगा।

× × ×

पेरू के लीमा विश्वविद्यालय में एक भारतीय संस्कृति संस्थान आरम्भ किया जा रहा है। इसमें भारतीय दर्शन, धर्म, कला, इतिहास आदि का अध्ययन किया जायगा।

× × ×

सुप्रसिद्ध शान्ति-आन्दोलक, लार्ड रसेल ने घोषणा की है कि आणविक युद्ध की आशंका के विरोध में तथा शान्ति बनाए रखने के पक्ष में कार्य करने के लिए दो शान्ति फाउंडेशनों की स्थापना की जा रही है। एक का नाम होगा "बर्ट्रेन्ड रसेल पीस फाउंडेशन" तथा दूसरी का होगा "एटलांटिक पीस फाउंडेशन"। ऊ थांट तथा श्री नेहरू इनके संयोजकों में हैं।

× × ×

रूस में "हिन्दी शब्द रचना" नामक एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसके लेखक हैं अलेक्सेई बरखुदोरोव। इसमें हिन्दी भाषा के आरम्भ से आज तक हुए शब्द प्रयोगों पर विचार किया गया है। इसमें कहा गया है कि स्वातन्त्र्योत्तर युग में हिन्दी शब्दावली का जितना विकास हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ।

× × ×

बम्बई के इण्डियन टैक्नोलाजिकल इंस्टीट्यूट को रूस सरकार ने तकनीकी विषयों की साढ़े तीन हजार पुस्तकें भेंट की हैं। इस संस्था के निर्माण में रूस सरकार अब तक ३५ लाख रु. की सहायता दे चुकी है। यह सहायता यूनेस्को के माध्यम से आती है। आगामी ६ वर्षों में ऐसी ही दस और संस्थाएँ खोलने में रूस सहायता देगा।

× × ×

हिन्दू विश्वविद्यालय के कालेज आफ इंडोलॉजी ने इस साल से आठ एशियाई भाषाएँ सिखाने की योजना बनाई है। ये भाषाएँ हैं—बर्मी, सिंहली, थाई, ख्मेर (कम्बोडियाई), हिंदेशियाई, प्राचीन जावानी, मंगोलियाई, और तिब्बती।

× × ×

हिंदेशियाई भाषा को, जिसे 'भासा' कहते हैं और भी समृद्ध करने के लिए संस्कृत से नए शब्द चुनने की योजना की जा रही है। पहले से भी इसमें संस्कृत तथा हिन्दी से लिए गए विपुल शब्द हैं। यह योजना डा. सुकर्ण की आज्ञा पर बनाई गई है।

× × ×

चौदह वर्ष के परिश्रम के बाद तमिल के विकास कार्य में लगी अकादेमी ने अब तमिल विश्वकोष पूरा कर लिया है। इसकी कुल नौ जिल्दें हैं, भविष्य में पूरक प्रतियां प्रकाशित होती रहेंगी। कुल १५,००० विषयों पर लगभग १,००० लेखकों द्वारा छोटे-छोटे तथ्यपूर्ण निबन्धों से इसकी ज्ञान-गरिमा सम्पन्न हुई है।

× × ×

पी० ई० एन० के फिलीपाइन्स केन्द्र से एशिया के लेखकों की रचनाओं का एक संकलन तैयार हो रहा है। संकलन में संकलित होने वाली कविताओं में से सर्वश्रेष्ठ कविता पर 'टाइम्स आव इण्डिया' ने ढाई हजार रुपयों का पुरस्कार देने की घोषणा की है। 'एशिया मैगजीन' ने सर्वश्रेष्ठ कहानी को पुरस्कृत करने की व्यवस्था की है।

× × ×

Name of owner :— Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri** on 28th May, 1964
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur.

विश्व-ज्योति

सह-सम्पादक

विश्वबन्धु : सन्तराम

●

जुलाई १९६४

●

वार्षिक मूल्य—

भारत में : ८ रु.   विदेश में : १२ शिलिंग

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) **Shāntakuṭī Vedic Series :**

Volume I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa (*A Vedic Word-Concordance*), in Sections I-V, split up into 15 parts, treated as volumes in the series, Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II (Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upaniṣads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in I pt.]. Covering 11,000 (10″×7″) pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40; Q. II, Rs. 30; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional sets (but not individual parts) entertained. 14 parts on sale, remaining 1 part due '64.

Volume XVI. A Grammatical Word-Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Grammatical Word-Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volume XVIII-XIX. A Grammatical Word-Index to the four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Grammatical Word-Index to Taittirīya Saṁhitā, Rs. 40.

Volume XXI. A Grammatical Word-Index to Upaniṣads, due '64, Rs. 30.

(B) **Vishveshvaranand Indological Series :**

Volume I-II. Siddha Bhāratī, (*A Rosary of Indology*), Pts. I-II, 108 classified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā, (*A Concordance of Purāṇa Contents*), by Prof. Y. P. Tandan, Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha, (*Texts on Courtezans in Classical Sanskrit*), texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20.

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern Philology, by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī, (*The Homage of Indology*), 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Aggarwal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr. U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Cultural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volume X-XI. Catalogue of VVRI Collection of Manuscripts, 2 Pts. Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L. Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII. Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-pāṭha and Sayaṇācārya's Commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVI ready, Rs. 180.

Volume XVIII. Saṅkarṣa Kāṇḍa Sutras of Jaimini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Volumes XIX-XXVI. Ṛgveda, in 8 parts, first cri. edn. of the Bhāṣyas of Skandasāmin, Udgītha, Mudgala and Venkaṭa-Mādhav, Ed. Vishva Bandhu. Pts. 2 and 3 ready, Rs. 90.

Volumes XXVII-XXIX. Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, first cri. edn. by L. Sternbach, Vol. XXVII ready, Rs. 30.

Volume XXX. Dṛggaṇitam of Parameśvara, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

(C) Woolner Indological Series :

Volume I. The Foreign Policy of Warren Hastings, by Ram Prakash, Rs. 5.

Volume II. Tagore Centenary Volume, Ed. Shri Mahendra Kulasrestha, Foreword by Prof. Humayun Kabir. Rs. 16.

Volume IIA. The Genius of Tagore, P. I of the above. De-luxe Rs. 12. Standard Rs. 8.

Volume II B. Aspects of Indian Culture, P. II of the above. De-luxe Rs. 18. Standard Rs. 12

Volume III. Outline of Indian History, by Sri Ram Sharma, Rs. 8.

Volume IV. The Sāṅkhya Kārikā of Iśvarakṛṣṇa, by C. Kunhan Raja, Rs. 10.

Volumes V-VIII. Rājataraṅgiṇī, cri. edn. of its texts by Kalhaṇa, Jonarāja, Śrīvara and Śuka, Vol. V ready. Ed. Vishva Bandhu, Rs. 30.

(D) Sarvadānand Universal Series :

Volume XII. Mental Health in Theory & Practice, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 2·25.

Volume XVIII. A Story of Indian Culture, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 5.

Volume XXV. The Theory of Socialism, Ancient and Medieval, by Prof. R. M. Uppal, Rs. 1·25.

Volume XXVI. Great Thoughts of Great Men, by Prin. Sain Das, Rs. 3·50.

Volume XXVII. The Religion of Buddha and its Relation to Upaniṣadic Thought, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 4·50.

Volume XXX. Popular Talks on Psychological Topics, by Dr. Prem Nath, Rs. 2·25.

Volume XXXI. An Introduction into Lamaism, The Mystical Buddhism of Tibet, by R. P. Anuruddha, Rs. 8.

Volume XXXIV. Shri Krishna, His Philosophy and His Spiritual Path, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25

Volume XL. Dayanand, A Study in Hinduism, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Can be had of :

VISHVESHVARANAND BOOK AGENCY

P. O. Sadhu Ashram, HOSHIARPUR (Pb. India)

हमारे हिन्दी प्रकाशन

१.	वेद-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.५०
२.	श्रीमन्त्र पुष्पाञ्जलिसूक्त—आचार्य विश्वबन्धु	...	०.२५
३.	वेद-नवाह्निक— „ „	...	०.५०
४.	ईशावास्योपनिषद्-दर्पण—श्री सत्यदेव, बी. ए.	...	१.००
५.	केनोपनिषद्-दर्पण— „ „	...	०.७५
६.	कठोपनिषद्-दर्पण— „ „	...	१.३१
७.	कठोपनिषद्—श्रीमती विद्यावती मिश्र	...	०.८१
८.	उपनिषद्-दिग्दर्शन—डा. दीवानचन्द एम. ए.	...	२.७५
९.	ब्रह्मविद्या— स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	६.००
१०.	अध्यात्म-दर्शन— „ „ „	...	४.००
११.	कर्म और योग— „ „ „	...	२.५०
१२.	आनन्द-मार्ग— „ „ „	...	२.००
१३.	आत्मानुभूति— „ „ „	...	२.००
१४.	धर्म की आवश्यकता— „ „	...	१.००
१५.	संस्कृत-शिक्षा-विधि——प्रो. गौरीशंकर एम. ए., बी. लिट.	...	३.२५
१६.	सत्संग-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.३७
१७.	सुखी संसार— „ „	...	०.५०
१८.	पंजाबी रामायण—श्री रामलुभाया आनन्द 'दिलशाद'	...	१०.००
१९.	मानस गंगा—श्री उमादत्त, बी. ए., एलएल. बी.	...	२.००
२०.	स्वर्ण-पादुका—प्रो. परमानन्द शर्मा, एम. ए.	...	१.२५
२१.	अवेस्ता—श्री राजाराम शर्मा	...	१.२५
२२.	वीर बौना (सचित्र)—कान्ता डोगरा	...	१.२५
२३.	फतेहनामा गुरु खालसा जी का—प्रो. सीताराम कोहली	...	३.६०
२४.	ध्वस्त नीड़—श्री श्रीपाद जोशी	...	३.००
२५.	हमारा समाज—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	४.००
२६.	आदर्श पत्नी— „ „	...	२.५०
२७.	हमारे बच्चे— „ „	...	३.७५
२८.	बच्चों की देख-भाल—प्रिं. बहादुरमल्ल, एम. ए.	...	१.७५
२९.	मन की अद्भुत बातें—„ „ „	...	२.००
३०.	दुनिया तुम्हारी है—डॉ. रामचरण महेन्द्र, एम. ए., पीएच. डी.	...	३.३७
३१.	संसार को चुनौती—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	२.६२
३२.	नागरिक गीता—श्री चमनलाल	...	१.७५
३३.	शिष्टाचार—श्री सन्तराम बी. ए.	...	२.००

३४. व्यवहारिक ज्ञान—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	२.७५
३५ लोक-विजय— ,, ,,	...	३ २५
३६. युवक मनोविज्ञान—प्रिं. बहादुरमल, एम. ए.	...	२.००
३७. सेवाकुञ्ज— श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.५०
३८. चमत्कारों की दुनिया— ,, ,,	...	०.७५
३९. फलाहार— ,, ,,	...	१.२५
४०. महाभारत के श्रीकृष्ण—श्री देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर	...	२.२५
४१. छत्रपति—प्रो. परमानन्द शर्मा	...	३.००
४२. वीर शिवाजी—श्री श्रीपाद जोशी	...	२.७५
४३. स्वामी नित्यानन्द : जीवन और कार्य—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	२.५०
४४. भारतीय नवोदय के अग्रदूत—	...	३.५५
४५. राजा राममोहन राय—श्री अखिल विनय, एम. ए.	...	०.७५
४६. महर्षि दयानन्द—श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'	...	०.७५
४७. विश्व के दार्शनिक—श्री रत्नचन्द्र श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	४.५०
४८. स्वामी रामतीर्थ—श्री रामकृष्ण	...	०.७५
४९. योगी अरविन्द—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	०.७५
५०. महाबली भीम [सचित्र]—श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर	...	१.५०
५१. भीष्म पितामह [सचित्र]— ,, ,,	...	१.५०
५२. धर्मराज युधिष्ठिर [सचित्र]—,, ,,	...	१.५०
५३. वीर अर्जुन [सचित्र]— ,, ,,	..	१.५०
५४. विद्यापति और चण्डीदास—श्री रामावतार	...	१.२१
५५. आधुनिक हिन्दी कविता के वाद—श्री विनयमोहन शर्मा	...	१.३१
५६. रस-धारा—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	०.७५
५७. सूखे संतरे—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	१.३७
५८. प्रलय और सृष्टि— ,, ,,	...	२.००
५९. मिट्टी का कलश—श्री शिवनाथ दुबे	...	१.२५
६०. महाभारत की कहानियाँ (द्वितीय संस्करण)—श्री देवदत्त शास्त्री	...	१.००
६१. बड़े लोग श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.२५
६२. रसवन्ती— ,, ,,	...	२.००
६३. नए युग की कहानियां— ,, ,,	...	१.७५
६४. अच्छी अच्छी कहानियां [सचित्र],, ,,	...	०.८७
६५. बात की बात—प्रो. परमानन्द शर्मा, एम. ए.	...	१.००
६६. बालभूषण—श्री राष्ट्रबन्धु	...	१.२५
६७. तितली—श्री सुन्दरलाल 'अशोक'	...	१.५०
६८. आत्म-तत्त्व-प्रकाश—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	१.५०

इस अङ्क में पढ़िए

भारत-भाग्यविधाता !



स्वतन्त्रता का वीर सिपाही, पञ्चशील का दाता ।
विश्व-शान्ति का अग्रदूत, औ *'भारत-भाग्यविधाता'* ॥
आज विश्व में जिसकी चर्चा, अर्चा जिसके गुण गण की ।
उस **नेहरु** के चरणकमल में, श्रद्धाञ्जलि हम सब की ॥

इन्द्रदत्त 'उनियाल'

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, आषाढ़, २०२१; जुलाई १९६४ { संख्या ५

वेदामृत—

आराधना

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

एक ही वृक्ष पर दो मिल कर रहने वाले सुन्दर पंखों वाले; सखा निवास करते हैं। उनमें एक तो (उस वृक्ष के) फलों का आनन्द के साथ भोग करता है। पर, दूसरा कुछ न सेवन करता हुआ सब ओर से खूब चमकता है। (ऋग्वेद १,१६४,२०)

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

(यह शरीर) देवता-पुरी है। इसके आठ चक्र और नौ द्वार हैं। इसको नीचा दिखाना बहुत कठिन है। इसके बीच में सुवर्ण-कोश है। वह प्रकाश से घिरा हुआ स्वर्ग है।
(अथर्ववेद १०,२,३१)

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥

वह सुवर्ण-कोश तीन सहारों पर तिगुना प्रतिष्ठित हो रहा है। उसके अन्दर वह शुद्ध चेतन साक्षात् चमकता है। उसे ही ब्रह्मवेत्ता जानते हैं। (अथर्ववेद १०,२,३२)

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥

उस (हृदय) कमल के नौ द्वार हैं। वह तीन गुणों से घिर रहा है। उसके अन्दर वह शुद्ध चेतन साक्षात् चमकता है। उसे ही ब्रह्मवेत्ता जानते हैं। (अथर्व वेद १०,८,४३) —वेदसार

विश्व-सत्संग*

आस्था से सच्चे सुख की प्राप्ति

[आचार्य विश्वबन्धु]

मानव-जीवन में माता-पिता और गुरु का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। माता-पिता और गुरु ये तीनों पूज्य और सम्मान-योग्य हैं। वैदिक-युग में जितना भी पूजा का प्रचार था, वह यज्ञ शब्द से व्यवहृत होता था और उस यज्ञ के करने के लिए अग्नि देवता को ही माध्यम के रूप में प्रदीप्त किया जाता था। आज-कल जैसे सर्वत्र बड़े विशाल और सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं, जिनके निर्माण पर लाखों रुपया लगा है और जिनके अन्दर भिन्न-भिन्न आराध्य देवों की मूर्तियां स्थापित की गई हैं, वैदिककाल में एक भी ऐसा मन्दिर नहीं था, और न ही मूर्ति-पूजा का प्रचलन था।

पूजा का भाव तो मानव-हृदय की स्वाभाविक प्रेरणा है। वैदिक-युग के मानव को यह पूर्ण विश्वास था कि यह समस्त जगत् एक दिव्य शक्ति से प्रज्वलित हो रहा है, अणु-अणु, परमाणु-परमाणु के अन्दर उस अलौकिक शक्ति का निवास है। उसी का वहां पर प्रकाश है और उसी दिव्य-शक्ति के दिव्य निवास के कारण समस्त विश्व का विकास है। उसको इस बात का पूर्ण विश्वास था कि बाह्य-रूपेण विभूतिमय पदार्थों द्वारा वह शक्ति प्रकट होती है, बड़े शक्तिशाली, आभा-विभायुक्त उज्ज्वल पदार्थों में उसका प्रकाश देखने में आता है। सूर्य भगवान् है, उषा है, जल है, वायु है, अर्थात् इनमें शक्ति का दर्शन करने से मनुष्य क्या आस्तिक बन जाता है? मेरे विचार में तो आस्तिक एक अन्य ही नैरुक्त प्रकार से बना है। मुझे तो ऐसा जंचता है कि 'आस्थिक' से आस्तिक बना है। जिसमें आस्था है, वह है आस्तिक और जिसकी किसी भी पदार्थ में निष्ठा नहीं वह है नास्तिक। 'अस्ति' से यह शब्द नहीं बना, जैसा कि वैयाकरण पाणिनि ने कहा है। यह तो बना है आस्था से। आस्था अर्थात् भावना भक्ति, पूजा का भाव, सम्मान और आदर का भाव। जिसको अपने इस पंच-भूतों से निर्मित शरीर और इसमें विचरने वाले, मनन करने वाले मन और आकांक्षा-केन्द्र हृदय के अतिरिक्त अपने से बड़ा कोई दिखाई देता है, जिसके सामने वह झुकना चाहता है, जिससे वह शक्ति ग्रहण करना चाहता है। जिसके प्रति उसके हृदय में आस्था है कि यह है स्रोत जहाँ से मैं शक्ति ग्रहण कर सकता हूँ। वह शक्ति का पुंज है और मेरे अन्दर शक्ति का संचार कर सकता है। शनैः-शनैः उसके अन्दर

---

* संस्थान में प्रति रविवार सायम् समय 'विश्व-सत्संग" लगा करता है। इस में विश्व-मानवता के व्यापक दृष्टिकोण से शास्त्रीय प्रवचन होते हैं। इस स्तम्भ में उन्हीं का सार दिया जाता है। पाठकों से हमारा सप्रेम अनुरोध है कि अपनी सुविधा के अनुसार संस्थान में भी दर्शन देते रहें।

—विश्वबन्धु

इतनी आस्था उत्पन्न हो जाती है वह समझने लगता है कि मेरी इसके समक्ष कुछ भी सत्ता नहीं। वह कह सकता है—

भयाद् अग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयाद् इन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥
(कठोपनिषद्)

यस्यच्छायाऽमृतं मृत्युः ··· ·· ।

जीवन क्या है, मरण क्या है? यह सब विधि के हाथ में है। वह विधि भगवान् है, वही सर्व-विधाता, सर्वान्तिर्यामी, सर्व-निर्माता, पालक और संहारक है। वही त्रिमूर्ति देव है, उसे विष्णु कहो, ब्रह्मा कहो, महादेव कहो। नाम भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु शक्ति एक है।

यह वैदिकयुगीन भावना स्पष्टीकरण करती है कि वे किस प्रकार से भिन्न-भिन्न देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी एक ही दिव्य-शक्ति का दिग्दर्शन करते थे, उनकी उसमें आस्था थो। यह जो वृत्ति उत्पन्न होती है इसका नाम है आस्था। उसमें 'अस्ति इति मन्तव्यम्' यह एक भाव है। आस्था का यह एक अवयव है कि उसकी सत्ता को स्वीकार करना। जिसके अन्दर मेरी श्रद्धा है, उसकी सत्ता तो पहले से ही है। परन्तु क्यों कर है, इसके आधार पर आस्था समाप्त नहीं हो जाती, जैसे मैं कहता हूँ चन्द्रमा है, आपका भी मन कहता है कि चन्द्रमा है परन्तु उसके समक्ष सिर झुकाने को तैयार नहीं। आधुनिक मनुष्य कहता है कि सूर्य है, अग्नि है, लेकिन वह आज उसकी पूजा करने को तैयार नहीं। क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति ने उसके मन के प्राचीन मूल्यों के अङ्कन में परिवर्तन ला दिया है। इसके परिणामस्वरूप उस शक्ति की सत्ता को तो वह स्वीकार करता है, लेकिन उसके मध्य में कोई और देवता है, उस विषय में आधुनिक मानव ने सोचना-विचारना, मनन करना बन्द कर दिया है। तो आधुनिक मनुष्य सूर्य को देखता है—सूर्य को 'अस्ति' भी कहता है परन्तु इतने मात्र से आस्तिक नहीं बन जाता। वैदिक मनुष्य सूर्य को देखता था, अस्ति कहता था, परन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ और मानता था कि सूर्य के मध्य में असली सूर्य और है, यह जो बाहर प्रकट हो रहा है, यह उसका प्रकाश है, उसमें उसकी आस्था थी। जिसमें जिसकी आस्था होती है वह है उसका देवता और आस्था रखने वाला व्यक्ति कहलाता है आस्तिक, उपासक या भक्त।

युग-युगान्तर में देश-देशान्तर में यही अवस्था चली आई है। समय-समय के अनुसार विद्या और विज्ञान के तारतम्य के आधार पर देवता का स्वरूप बदलता आया है। इसी कारण कहा है—God created man in his own image जैसा-जैसा मनुष्य विकसित होता है, बदलता है, वैसा-वैसा पदार्थों का देवता कभी पाषाण, कभी पीपल का वृक्ष, कभी जल आदि अपने समक्ष रखता है। तो फिर मनुष्य पहले हुआ या ईश्वर। इस विधान से मनुष्य पहले आया है, ईश्वर पीछे आया है।

सोचने-विचारने, मनन करने वाला मनुष्य मानो मन-ही-मन छलांग लगाकर पहुँचता है और भक्ति में लग जाता है कि वास्तविक शक्ति तो वहाँ है, मेरे अन्दर नहीं है, और इस प्रकार स्वयं को गौण कर देता है और उसमें लीन हो जाता है, भूल जाता है स्वयं को, और उससे एक हो जाता है।

वेद का ऋषि कहता है कि—

हे ईश्वर मेरी सब मुरादें पूरी हो जाएँगी। या तो तू मेरे स्वरूप में आ जा या अपने स्वरूप में मुझको ले जा। जहाँ द्वयी न रहे—

तू तू न रहे मैं मैं न रहूँ, दोनों इक दूजे में खो जाएँ।

या तो तू राम कृष्ण या अन्य किसी महापुरुष के रूप में आ जा, या मुझे समाप्त कर दे या मेरे अन्दर में तू समाप्त हो जा। यह है एकता का दर्शन, जो पुराकाल से अपनी कौतुक-क्रीडा खेलता चला आ रहा है। कभी किसी रूप में, कभी किसी रूप में। यद्यपि उस समय मन्दिरादि की प्रथा नहीं थी, तदपि आस्था का

भाव तो उसी समय से प्रचलित है जब मनुष्य ने मनन करना प्रारम्भ कर दिया, मानसिक तत्त्व भाषा और सोचना-विचारना प्रादुर्भूत हुआ। वह अपनी पद्धति को, अपनी सीमा व मर्यादा को देखकर रोया है कि केवल इतना ही हूँ मैं, बस यही कुछ है, और कुछ नहीं है मेरे पास। जब उसको दर्शन हुआ है कि अनन्त स्रोत कहीं और है—इस मत से वह बना है आस्तिक। वह दिखलाई कहां दिया—यह समय-समय में परिवर्तन होने के कारण हुआ है। मेरा तो दिल यही चाहता है कि मैं उसके साथ मिल जाऊँ। हर मनुष्य की यह अवस्था आती है। यही है असली अवस्था चाहे वह शब्दों में किसी भी प्रकार वर्णित की गई हो, चाहे किसी भी भाषा में हो, किसी से भी उपमा दी जाए, कोई भी अलंकार लगाएँ। उसकी मानसिक वृत्ति जब यह हो जाती है कि वह अपनी हदबन्दी को देख पाता है, वह अपनी मर्यादाओं को, अपने तुच्छपन को, अपने छोटेपन को देखता है, ईश्वर भी उसके इस तुच्छपन को देखता है, बस, छोटापन उसे कब दिखलाई देता है? किसी ने कहा कि यह लकीर है, इसको छोटी कर दो। तो उसने उसकी लकीर को मिटाना आरम्भ कर दिया। अरे, मिटाने की क्या आवश्यकता है? तुम अपनी लकीर बड़ी खींच दो, जब दोनों लकीरें एक-दूसरे के समक्ष आएँगी तो छोटी लकीर चाहे कितनी भी बड़ी हो उससे छोटी ही नज़र आएगी।

जब मनुष्य को दूसरे पशुओं के समान केवल दो ही पदार्थों का दर्शन हुआ, तीसरे के नहीं, यह अपना भोजन, यह उसका भोजन, यह पदार्थ मुझे खाएगा या मैं इसको खा जाऊँगा—बस ये दो दर्शन हुए, तब तक प्राणी भी पशु ही रहा है, चाहे वह शेर हो, चाहे वह हाथी हो, चाहे वह कोई हो। जब उसे अनुभव होता है कि तीसरा और बैठा है जो कि हम दोनों से भी ऊपर है। मेरे भी जो ऊपर है, और जो मेरा भोजन है और जो मेरा भोजक है, उसके भी ऊपर है। अर्थात् वास्तविक शक्ति उसी के पास है जो इस भौतिक सीमा से भी ऊपर है। जब ऐसी दृष्टि ऊपर जाने लगती है तब एक ऐसी आस्था का भाव उत्पन्न होता है और वहां से ही दर्शन-शास्त्र का प्रादुर्भाव होता है।

मनुष्य को त्रिमूर्ति (माता-पिता-गुरु) की आराधना करनी चाहिए, क्योंकि इन्हीं के प्रसन्न होने से मनुष्य को फल मिलता है और वह फल है—मातृमान्, पितृमान्, आचार्य्यवान् पुरुषो वेद। इसी के फल-स्वरूप ज्ञान-प्राप्ति होती है। जिस मनुष्य पर माता-पिता और आचार्य प्रसन्न रहते हैं, वह विलक्षण विद्वान् हो जाता है। वह विद्यावान् हो जाता है। "वेद", अन्य अर्थ का भी द्योतक है, अर्थात् जो प्राप्तव्य है, उसको वह शीघ्र प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी बन कर ज्ञान द्वारा प्राप्तव्य वस्तु को भी उपलब्ध कर लेता है। उसी का जीवन सर्वप्रकोरण सफल है जिसको यह त्रिदेव सिद्ध हो जाता है।

सिद्धि कैसे हो? मनुष्य उनकी आराधना करे, उनकी आवश्यकताओं को देखे, उनको उन के दुःख से मुक्त करे और वे उसको आशीर्वाद देते रहें! यदि वह इसके विपरीत आचरण करेगा, तो उनके मुख से दुआ क्या निकलेगी, उनका आशीर्वाद कैसे लगेगा! अतः वही गृहस्थ सफल गृहस्थ है जिसके अन्दर यह मर्यादा निहित है। जिन शिक्षण संस्थाओं में आचार्य्य, विद्वान् और विद्या-दान देने वाले हैं और वे अपने शिष्य-वर्ग से प्रसन्न रहते हैं, संतृप्त रहते हैं, उन्हीं के मुख से आशीर्वाद फलीभूत होता है। छात्र एवं छात्राओं का सुखवर्द्धन व संतोष-वर्द्धन होता है। उन्हीं के अन्दर सन्तोष का भाव उत्पन्न होता है, संसार में सफलता विजयश्री उन्हीं के चरणों को चूमती है। वे ही मनुष्य वास्तव में मनुष्य हैं और उन्होंने ही सर्व-धर्म-पालन कर लिया।

यस्यैते त्रय आदृताः (मनु २, २३४)

जिन्होंने इन तीनों की आराधना की, उन्हीं

में धर्म की परिसमाप्ति हो जाती है और जिन्होंने इनकी सेवा, आराधना व आज्ञापालन नहीं की, इन्हें सुखी न किया—

सर्वा स्तस्याफलाः क्रियाः। (मनु० २,२३४)

उसकी सब क्रियाएँ असफल हो गईं। इनके अप्रसन्न रहने पर वह नेता बने, शक्तिशाली हो, धनवान् हो, फिर भी मानसिक सन्तोष का अभाव उसके जीवन में खिन्नता उत्पन्न कर देगा। जो वास्तविक निर्वृत्ति की अवस्था है ब्रह्म-निर्वाण, वह तो है निर्वाणावस्था। शान्ति की अवस्था वह है जो निर्वाण करके शान्ति प्राप्त हो! मनुष्य का हृदय द्वन्द्व-रहित हो जाए, मस्तिष्क में उष्णता का भाव समाप्त हो जाए, वह अवस्था उसको प्राप्त नहीं होती। उसकी नाडियां हर समय कसी रहती हैं, दौड़-धूप में चिन्ता-रत रहती हैं। चौबीस घण्टों में एक पल भी उसे आनन्द-दायक अनुभव नहीं होता। यह अवस्था तो प्रतिदिन, प्रतिपल आनी चाहिए। आगे मत देखो, प्रतीक्षा में मत बैठे रहो कि जब चिता में जल जाएँगे, आगे विमान आएँगे, हमें वे अमृतपद में ले जाएँगे। यह नितान्त मिथ्या कल्पना है। अरे आनन्द तो यहीं है यहीं, यहीं शहद टपक रहा है, यहीं दुग्ध की नदियाँ अनवरत बह रही हैं, यहीं सब-कुछ हो रहा है। जिसको इस जीवन में आनन्द नहीं मिलता, उसको आगे क्या मिलेगा। इस आनन्द की प्राप्ति तभी होती है जब सच्ची आस्था उत्पन्न हो।

अनुभव के स्पर्श

[श्री बालकृष्ण बलदुवा]

क्यों ऐसे घर के बन्धन में मुझ को जकड़ दिया,
जिस ने तन को सुखी किन्तु मन को विषण्ण किया?

वाह रे मालिक! वाह रे मालिक! ऐसी तेरी माया!
जब-जब चाहा बचना, तब-तब और अधिक उलझाया॥

शव-सी जीवन की विकृतियों को आदर्शों के धवल कफ़न दें।
आस्था के ताबूतों में रख अलख कब्र में उन्हें दफन दें॥

सन्ध्या में भी टिक न सकी काली अँधियारी।
लाली तिमिराच्छन्न एक क्षण, फिर उजियारी॥

लगे तुम सोचने जब—आ गई विश्राम की बेला,
उखड़ती हाट फिर से लग गई, फिर भर गया मेला॥

जवाहर-वाणी

"स्वतन्त्रता से कीमती वस्तु और कोई नहीं है, किस ने आँकी है उस की कीमत ! सदियों से जिसे बलिदान से धोया जाता रहा है, उस स्वातन्त्र्य से बड़ा भी कोई उपार्जन हो सकता है ?"

"मिट्टी का तकाजा अमरता की स्फूर्ति है, जिस कलाकार ने उस तकाजे को सुना, वह मिट्टी के द्वारा अमरत्व से विभूषित हो गया।"

"निरन्तर ऊँचे जाने से परिश्रम ज्यादा होता है। कभी-कभी हम खो भी जाते हैं। किन्तु तो भी ऊँची चढ़ाइयां चढ़ना अभीष्ट है, श्रेयस्कर ही है, क्योंकि चढ़ने का अपना निजी आनन्द है, निजी तृप्ति है। मेरा तो ऐसा ख्याल है कि सङ्घर्ष ही जीवन का मूल्य देता है, नतीजा उतना नहीं।"

"जीवन एक समस्या है, खेल है, जोखिम है। हम जीवन की समस्याओं को प्रायः हल नहीं कर पाते। जब हम समझते हैं कि हमने कोई एक समस्या हल कर ली है तो उसके स्थान पर नई समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इस प्रकार जीवन की समस्याओं का कोई समाधान नहीं। क्योंकि जीवन गतिशील और परिवर्तनशील है। आने वाला कल सदा नवीन होता है। इसलिए हम जीवन की समस्याएं निपटा नहीं सकते, इसे एक खेल समझ कर खेल सकते हैं और जोखिम मान कर उठा सकते हैं। जीवन में यदि दुःख और बुराइयां हैं तो उसके साथ ही सौन्दर्य, कला, सत्य तथा प्रकृति का लालित्य भी है। इसलिए हमें जीवन को उसके सम्पूर्ण रूप में ग्रहण करना चाहिए।"

"मेरी पीढ़ी अब समाप्त होने वाली है। हम शीघ्र ही नई पीढ़ी के लिए स्थान रिक्त कर देंगे। मैं नहीं कह सकता कि हमने अपनी भूमिका कैसी निभाई है। हमारी सफलता या असफलता का मापदण्ड भी दूसरे ही निर्धारित करेंगे। हम यह शिकायत नहीं कर सकते कि हमें जीवन-भर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है; क्योंकि कठिनाइयों का मार्ग हमने स्वयं चुना था। जीवन का वास्तविक अर्थ वही लोग समझ सकते हैं जो वास्तविक अर्थों में जिएँ, जिन्हें हर समय मृत्यु का भय न रहे। हमसे और जो भी भूलें हुई हों हम कायरता-पूर्वक नहीं जिए। जीवन मनुष्य को सबसे अधिक प्यारा होता है और एक ही बार मिलता है। इस लिए मनुष्य को उस ढंग से जीना चाहिए जिस से उसके मन में कोई आत्मग्लानि पैदा न हो।"

"प्राचीन चीन देश की बात है। एक लुहार भाले और ढालें बनाया करता था। बड़ी मजबूत ढालें वह बनाता था—'दुनिया का कोई भी भाला मेरी ढालों को नहीं छेद सकता।' भाले भी वह ऐसे ही मजबूत बनाता था। बड़ा गर्व था उसे अपने तेज भालों पर। कहता था—'ऐसी कोई भी ढाल नहीं, जिसे मेरे भाले नहीं छेद सकते हों।'

एक दिन एक आदमी आया और उस लुहार से पूछने लगा—'अगर कोई-तुम्हारे ही भालों से तुम्हारी ढालों को छेदना चाहे तो क्या होगा ?'

यही हालत हमारी आज की इस दुनिया की है, उसके सोचने के तरीके की है। आदमी अक्सर अपने से ही जूझना चाहता है—जूझता है। वह एक बात को जितना सच मानने लगता है, उसके विरोध की बात को भी उतना ही सच कहता है—जैसे सचाई एक नहीं, दो हो या दो से ज्यादा सैकड़ों-हजारों हों। हमारे मुल्क में यह सबसे ज्यादा है। हम दूसरों की हर सच्चाई को स्वीकार कर लेते हैं और उन सैकड़ों सचाइयों में उलझे रहते है—बहस करते रहते हैं, अपनी ताकत ज़ाया करते रहते हैं। और, धीरे-धीरे वह आदत हमें मीठी भी लगने लगती है। मगर यह है बहुत बुरी। हमारे पास अपनी सचाई होनी चाहिए—अपना आजाद-ख्याल होना चाहिए और वही कसौटी होनी चाहिए दूसरी सचाइयों को परखने की। मगर हम आजादी से डरते हैं, कदम उठाने से ख़ौफ खाते हैं। यह गलत है—हमें अगर सही मानी में इंसान रहना है तो हमारी अपनी सचाई होनी चाहिए—मैं ऐसी ही आजादी को इन्सानियत की रूह मानता हूं।"

हमारे स्वर्गीय पण्डित जी

[प्रा० शिवप्रसाद भारद्वाज]

१९४७ से पूर्व भारत की जनता ने स्वाधीनता-संग्राम में जो असाधारण जौहर दिखाया था, स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् वह सहसा लुप्त हो गया था भले ही वह इस भूखे-नगे और विकलाङ्ग देश के पुनर्निर्माण के लिए उस की पहले से भी अधिक आवश्यकता थी। यह इस अभागे देश के लिए बड़े दुर्भाग्य की बात थी। साधनहीन, अन्न के लिए तरसता भारत उस कैदी की भान्ति चौराहे पर खड़ा था जिसे लम्बी कैद के बाद सहसा कारागार की दीवारों से निकाल कर बाहर धकेल दिया हो और उसके लिए गन्तव्य रूप में कोई निश्चित दिशा न हो।

परन्तु आशा और भरोसे की बात इतनी थी कि इस देश की जनता के पास, उस भूखे हाल में छुटे कैदी के पास एक अनमोल जवाहर था जिस की अनोखी चमक घोर निराशा में भी आशा का प्रकाश दिखा रही थी। लगभग १७ वर्ष तक उसने अपना पूरा प्रकाश दिखाया इस देश को ही नहीं, सारे विश्व को। इस पृथ्वी की भूखी, पद-दलित व दासता से पीडित सारी मानवता आशा-भरी आँखों से उस अनोखे जवाहर की ओर देखने लगी थी। युद्धों से विक्षत मानवता को वह अपूर्व धैर्य और शांति देता प्रतीत हुआ; दलितों को उससे बल मिलने लगा; राह-भूलों के लिए वह मार्ग-दीपक बन गया था। कोई न चाहता था कि वह अनोखा जवाहर, यह अनमोल लाल कभी भी हम से अलग हो किन्तु दुर्भाग्य ने किसी की न सुनी; २७ मई, १९६४ को उसे बलात् छीन ही लिया विवश मानवता असहाय बिलखती रह गई।

जीवन-झांकी—

१४ नवम्बर, १८८९ को प्रयाग के धनी नेहरू-परिवार में स्वर्गीय स्वरूपरानी नेहरू की रत्न-प्रसविनी कोख से यह 'जवाहर' जन्मा था। कौन जानता था, यह नाम एक दिन यथार्थ होगा। जवाहर और लाल दोनों ही इस की महत्ता को सूचित करते थे।

महान् पिता मोतीलाल नेहरु के, जोकि अपने समय के भारतीय वकीलों में अत्यन्त प्रतिभाशाली, प्रतिष्ठित और समृद्ध व्यक्ति थे, महान् पुत्र जवाहर ने बाल्यकाल आनन्द से बिताया। मि. ब्रुक्स से इनमें अच्छे संस्कार पड़े, पिता के मुंशी मुबारक अली से १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम की कहानियाँ सुन-सुन कर इस बालक के हृदय में देश-प्रेम के अंकुर उत्पन्न हुए। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वह अपने माता-पिता और शिशु बहन विजयलक्ष्मी के साथ अध्ययन के लिए इङ्गलैंड गया। वहाँ रहते हुए ही देश की स्वतन्त्रता के लिए कुछ करने की भावना जागी। उस देश के वातावरण से उसे दासता और स्वाधीनता के अन्तर का अनुभव हुआ।

इङ्गलैण्ड से बैरिस्टर बन कर जवाहरलाल भारत लौटे, पर वकालत में उन्हें रस न मिला। उन्हें तो वस्तुतः जवाहर बनना था। स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले की सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी में सम्मिलित हो कर जवाहरलाल ने अपनी कर्म-शक्ति का परिचय देना आरम्भ किया। १९१६ में कौल-परिवार की १७वर्षीय कमला से इनका विवाह हुआ। कुछ समय ही इनका शांतिपूर्ण दाम्पत्य बीता। गांधी जी का चुम्बक इस वीर के लिए इतना आकर्षक हुआ कि वह स्वयं तो उनका अनुगामी हो ही गया, साथ ही उसके विलासी पिता भी सारा सुख छोड़ कर स्वाधीनत-आन्दोलन के सिपाही बन गए और सम्पूर्ण नेहरु-परिवार का भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन से अभिन्न सम्बन्ध हो गया। इस संग्राम में ही लड़ते-लड़ते पिता का स्वर्गवास हुआ, पत्नी कमला सन् १९३६ में स्विट्ज़रलैण्ड में दिवङ्गत हुई, किन्तु इस वीर सिपाही का धैर्य भङ्ग न हुआ।

लाहौर में सन् १९३० की जनवरी में कांग्रेस के सभापति पद से इसी वीर ने भारत का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति घोषित किया था। १९३७ में इस के असाधारण श्रम का ही परिणाम था कि कांग्रेस सात प्रान्तों में अपने मन्त्रिमण्डल बना सकें।

१९४७ में देश के स्वाधीन होने के पश्चात् से लेकर अपने मृत्यु-समय तक यह वीर स्वतन्त्र भारत का प्रधानमन्त्री रहा। ३० जनवरी १९४८ को महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात् वही मार्ग-दर्शक और वही सेनानी रहा। आज का भारत वस्तुतः स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरु के सपनों का अधूरा भारत है। इस से अनुमान लग सकता है कि उनके सपनों के भारत का पूरा माडल कैसा रहा होगा। भारत का इतिहास जवाहरलाल नेहरु का इतिहास बन गया है।

देश के लिए प्रेम—

इस महान् नेता के हृदय में अपने देश और उस के करोड़ों निवासियों के लिए बड़ी सहानुभूति थी, उस का मन सदा उन निर्धनों के बीच रहता था। वह अपने जीवन-काल में इस राष्ट्र को विश्व के अग्रगण्य राष्ट्रों की पंक्ति में ला कर खड़ा कर देना चाहते थे। योजना-आयोग के अध्यक्ष स्वयं रहने का यही उद्देश्य था कि उन्हें भारत के निर्माण में स्वयं गहरी रुचि थी। भले ही वे यह जानते थे कि उनके पास कोई अलादीन का चिराग न था। उद्योग-धन्धों में आज भारत जापान के पश्चात् एशिया में सर्वप्रथम है। इस का श्रेय हमारे स्वर्गीय प्रधानमन्त्री को ही है। उन्हों ने ही भारत में वैज्ञानिक-युग का नवीन श्रीगणेश किया।

विश्व-नागरिक—

जवाहरलाल भारत के ही सर्वस्व नहीं थे, ये संपूर्ण विश्व की आशाओं के केन्द्र थे। इन्हों ने पृथ्वी के किसी कोने में ही सही, सुदूरस्थ देशों की स्वाधीनता का समर्थन किया था। अफ्रीका एवं एशिया के अनेक राष्ट्रों को अपने स्वाधीनता-संग्राम के लिए इन से बहुत बड़ा नैतिक समर्थन मिला था। स्वेज़ के प्रसङ्ग में मिस्र पर फ्रांस और ब्रिटेन के बर्बर आक्रमण की एवं हंगरी में रूसी सैनिक दमन की उन्हों ने निर्भीक शब्दों में निन्दा की थी।

शांति के मसीहा—

स्वर्गीय जवाहरलाल आधुनिकयुग के शांति के मसीहा थे। उन्हों ने दो गुटों में बंटे हुए विश्व को अनेक बार युद्ध के कगार से पीछे खींचा। अपनी दृढ तटस्थ नीति रखते हुए सभी राष्ट्रों के साथ मैत्री-संबन्ध स्थापित रखे। पंचशील के सिद्धान्त सामने रखकर उन्हों ने ही राष्ट्रों के विवादों को परस्पर बातचीत के द्वारा सुलझाने का परामर्श दिया था। इस शांति केलिए उन्हों ने चीन और पाकिस्तान के साथ हानि उठा कर भी समझौते के लिए प्रयत्न किए और इस कारण उन्हें अपने देश में भी कटु आलोचनाएं सुननी पड़ीं, पर यह शङ्कर इस सम्पूर्ण हलाहल को चुपचाप पी गए। विश्व-संस्था संयुक्त राष्ट्र सङ्घ पर उनका अगाध विश्वास था और वे कहते थे कि संसार में शांति-स्थापना यही संस्था कर सकती है। विश्व-संघ की स्थापना के वे सबसे बड़े समर्थक थे।

अथक कर्मयोगी—

जवाहरलाल की कर्मशक्ति विस्मय-जनक थी; उनके जीवन का आदर्श-वाक्य 'आराम हराम है' उनके लिए क्रियात्मक था। इतना व्यस्त कार्यक्रम सम्भवतः हमारे नेताओं में किसी का नहीं रहा होगा। अपनी इस कर्मशक्ति के कारण ही वे वृद्धावस्था में भी युवकों के हृदय-सम्राट् कहलाते थे। उनका जीवन स्वयं स्फूर्ति-दायक था। उनकी कर्तव्यपरायणता का इससे अधिक प्रमाण क्या होगा कि जीवन के अन्त से पूर्व वे अपने पास आई विभागीय सम्पूर्ण फाइलें देख कर निबटा चुके थे और आवश्यक आदेश दे चुके थे। यह थी उनकी कर्तव्य-भावना।

भावुक राजनीतिज्ञ—

स्वर्गीय जवाहरलाल आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञों में से एक थे। उनकी राजनीति यथार्थ के राज-मार्ग पर न चल कर आदर्श की कटीली वन्य-वीथी पर चलती थी। क्योंकि एक ओर उनके महान् स्वप्न थे, दूसरे वे महान् साहित्यकार भी थे। उनकी कृतियां 'मेरी कहानी', डिस्कवरी आफ इण्डिया' और 'विश्व-इतिहास की एक झलक' उन्हें विश्व के सर्वमान्य साहित्यकारों में स्थान दिलाती हैं। वे अपने युग के अत्यन्त प्रभावशाली और उत्कृष्ट वक्ता थे। लाखों की संख्या में जनता उनका भाषण सुनने जाती थी। उनके कई मुद्रित व्याख्यान विश्व-साहित्य की विभूति बन चुके हैं। उनसे ज्ञात होता है कि इस

महान् राजनीतिज्ञ का हृदय भीतर से कितना कोमल था। प्रकृति के रम्य वातावरण, फूलों, विशेषकर गुलाब जोकि उनके वक्षःस्थल पर सदा विराजमान रहता था, और बच्चों से वे एक-सा प्रेम रखते थे। वे जिस उत्साह के साथ राजनीतिज्ञों की सभा में भाग लेते, उसी उत्साह से कभी बच्चों के मेले में उन की गाड़ी में साथ-साथ बैठते, कभी पर्वतीय प्रदेशों में ग्रामीणों के साथ उन्हीं की वेषभूषा में नाचते, होली के अवसर पर उत्साह से नागरिकों से होली खेलते, सभाओं में गांवों के बड़े बूढ़ों से प्यार से बातचीत करते। रूस, अमेरिका आदि अनेक देशों के बच्चों के लिए उनके भेजे उपहार आज उन देश-वासियों को भी बरबस विकल बना देते हैं। इन गुणों ने जवाहर को अन्य राजनीतिज्ञों से सर्वथा विलक्षण सिद्ध कर दिया था।

सच्चा मानव—

जवाहरलाल राजनीतिज्ञ थे, कांग्रेस के सर्वस्व थे, लोक-नायक थे, इस विशाल राष्ट्र के प्रधानमन्त्री थे, इन सब से बढ़ कर वे मानव थे। राजनीतिज्ञ की दृष्टि से उन से भारी भूलें भी हुईं जिन के मूल कारण उनके कुछ विशिष्ट आदर्श थे और थे महान् उद्देश्य। इसी कारण भारत की जनता से उन्हें खुले हाथों प्यार मिला था। विश्व के कोने-कोने की उन्होंने यात्रा की थी और जो सम्मान उन्हें वहां मिला उस का सौभाग्य दूसरे किसी विरले ही राजनीतिज्ञ को मिला होगा। महात्मा जी को जनता ने आदर दिया था किन्तु जवाहर को असीमित प्यार।

आज विश्व इस विभूति से वञ्चित हो गया है, अंतरिक्ष में एक उज्ज्वल नक्षत्र की वृद्धि हुई है परन्तु पृथ्वी और विशेषकर भारत इस अमोल जवाहर को खो कर खाली हो गया है। संसार-भर के लोग इस महान् आत्मा के असामयिक परलोक-गमन से स्तब्ध रह गए हैं। इस विषाद की घड़ी में इस भावुक-हृदय से कुछ उद्गार कविता की भाषा में फूट पड़े हैं जो कि उस महामानव के लिए श्रद्धांजलि रूप में प्रस्तुत हैं—

छिना जवाहर भारत का क्या,
हाय देश श्री-हीन हुआ।
आज शान्ति-ध्रुवतारा जग का
असमय ही अवलीन हुआ॥

आशाएँ धरणी की जिस पर
रहीं आज तक टिकी हुई,
आँखें पीडित मानवता की
जिस पर थीं ये टिकी हुई,

वही आज हा शांतिदूत तज
इस भू को परलोक गया।
अंधकारमय विश्व हुआ है,
अब प्रकाश दे कौन नया?

विश्व-बन्धुता औ' समता का
व्रत जिस ने नित पाला था,
देश-हेतु सर्वस्व, आत्म-सुख
जिस ने हँस दे डाला था॥

सकल जगत् की आज़ादी का
रहा समर्थक जीवन-भर,
कर्मठ जीवन सदा विश्व के
लिए रहा प्रेरक बन कर॥

वह अदम्य पौरुष-प्रतीक,
स्वातन्त्र्य-युद्ध का सेनानी।
नव भारत का निर्माण-सूत्र,
प्रेमामृत का औढरदानी॥

वह निर्भीक शांति का प्रेमी
भारत का नायक अनुपम।
शून्य कर गया जगती को
हाय! जवाहर है निरुपम॥

विलख रही मानवता सारी,
कौन धैर्य दे उसे भला?
त्रस्त जगत् का प्रेम-दूत जब
सहसा उस को छोड़ चला॥

'पञ्चशील' का घोष आज हा!
मन्द हो गया आशामय।
वह प्रकाश का स्तम्भ गिर गया
छोड़ तिमिर में जग असमय॥

जाओ जन-नायक निष्ठुर हो
पर गुलाब वह खिला रहे।
जन-जन-मन में स्नेह बहाता
जिस का परिमल सदा बहे॥

संस्कृति का व्याकरण

[डा० रामानन्द तिवारी]

सामान्यतः संस्कृति' शब्द अंग्रेज़ी के 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है। संस्कृति और कल्चर के पदों से जीवन के जिन क्षेत्रों तथा जीवन की जिन क्रियाओं को लक्षित किया जाता है, उनमें बहुत-कुछ समानता है। अतः इन दोनों पदों का पर्यायभाव पूर्णतः अनुचित नहीं है। संस्कृति का विकास मनुष्य-समाज के आरम्भिक काल से ही होता आया है। किन्तु संस्कृति के सम्बन्ध में विचार और विश्लेषण आधुनिक युग में ही आरम्भ हुआ है। भिन्न देशों में विकसित होने वाले संस्कृति के रूपों में बहुत-कुछ समानता होते हुए भी उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण भिन्नताएं भी हैं। इन भिन्नताओं का कुछ सूत्र 'संस्कृति और कल्चर' की व्याकरणगत भिन्नता में मिलता है। किन्तु पूर्व और पश्चिम के विषम सम्पर्क के आधुनिक युग में अध्ययन और अनुवाद की सुविधा की दृष्टि से इन दोनों पदों का पर्यायभाव पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया गया है। पश्चिमी परिभाषाओं, सिद्धान्तों आदि का अविचारित स्वीकरण आधुनिक पूर्वीय मनीषा की शोचनीय विडम्बना है। अध्ययन और अनुवाद की सुविधा के लिए 'संस्कृति' और 'कल्चर' के पदों को 'धर्म' और 'रिलीजन' की भांति पर्याय मानने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के अध्ययनों में भारतीय संस्कृति के विशेष लक्षणों और रूपों को ध्यान न देकर संस्कृति के लक्षणों और रूपों का विवरण भी प्रायः संस्कृति की पश्चिमी धारणा के अनुसार दिया जाता है। अतः इन विवरणों में संस्कृति के आधुनिक महत्त्वपूर्ण भारतीय लक्षण और रूप छूट जाते हैं। भारतीय संस्कृति के अध्ययनों का यह एक प्रधान दोष है।

संस्कृति के ये आधुनिक विवरण संस्कृति की पश्चिमी धारा से प्रभावित रहते हैं। संस्कृति की यह धारणा संस्कृति के पश्चिमी पर्याय कल्चर पर आधारित है। पश्चिमी परम्परा में पश्चिम के सांस्कृतिक विकास और उसकी सांस्कृतिक धारणा के अनुरूप ही 'कल्चर' पद का ग्रहण और व्यवहार हुआ है। 'संस्कृति' का भारतीय पद उसके बहुत-कुछ समान है। किन्तु जिस प्रकार संस्कृति की भारत और पश्चिमी परम्पराओं में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर हैं उसी प्रकार व्युत्पत्ति और अर्थ की दृष्टि से 'संस्कृति और 'कल्चर' के पदों में भी महत्त्वपूर्ण अन्तर है। 'संस्कृति' पद के व्याकरण और उसकी वर्ण-व्युत्पत्ति के आधार पर संस्कृति की भारतीय धारणा और संस्कृति की भारतीय परम्परा की विशेषताओं को समझा जा सकता है तथा संस्कृति की पश्चिमी धारणा एवं पश्चिमी परम्परा की तुलना में दोनों का अन्तर भी प्रकट हो सकता है। विवेचन के इसी क्रम में 'संस्कृति' और 'कल्चर' के पर्यायों के मौलिक भेद भी स्पष्ट हो सकते हैं।

'संस्कृति' का अंग्रेज़ी पर्याय 'कल्चर' का मूल लैटिन भाषा की 'कल्ट्स' क्रिया और लैटिन भाषा के 'कल्तुरा' शब्दों में खोजा जाता है। लैटिन भाषा में 'कल्ट्स' क्रिया का अर्थ 'खेती के लिए भूमि को जोतना है'। संस्कृति के पश्चिमी अध्ययनों में 'कल्चर' शब्द का प्रयोग एक अत्यन्त व्यापक अर्थ में किया जाता है। मनुष्य के समाज और जीवन के सभी रूपों, मनुष्यों की सभी क्रियाओं और उनके सभी फलों को 'कल्चर' की व्यापक परिधि में समेट लिया जाता है। शिकार के औजारों का निर्माण, नागरिक सुविधाओं का विकास, युद्ध-व्यापार, उद्योग, साहित्य, कला, दर्शन आदि 'कल्चर' की व्यापक परिधि में समाहित हो जाते हैं। इस व्यापक प्रयोग में कल्चर का भाव मनुष्य के सामाजिक जीवन का पर्याय बन जाता है। समाज के इतिहास में मनुष्य ने जो-कुछ भी किया है वह सब अंग्रेज़ी के 'कल्चर' के अन्तर्गत है। 'कल्चर' की व्यापक परिधि में समाहित होने वाले जीवन के इन अनेक रूपों में कई प्रकार की भिन्नताएं मिल सकती हैं। किन्तु इन सब में एक मौलिक समानता दिखाई देती है कि वे सब मनुष्य की कृति हैं अर्थात् वे सब

मनुष्य की क्रिया तथा उसके प्रयत्न एवं उद्योग के फल हैं। भाषा के ऐसे प्रयोग में एवं संस्कृति की ऐसी धारणा में 'कल्चर' मनुष्य की इसी 'कृति' का पर्याय है। उसकी सभी कृतियां तथा उसकी कृति के सभी रूप 'कल्चर' के अन्तर्गत आ जाते हैं। 'कृति'की दृष्टिसे इन रूपों के विभिन्न लक्षणों की विशेषता का भी कोई महत्त्व नहीं रहता। तथा जीवन के प्रयोजन की दृष्टि से इन रूपों के महत्त्व का विवेचन भी आवश्यक नहीं होता।

संस्कृति की इस पश्चिमी धारणा का मूल 'कल्चर' शब्द के विधायक मूल लैटिन शब्दों में मिलता है। लैटिन की जिस 'कल्टस' क्रिया से 'कल्चर' शब्द का निर्माण हुआ है उस का अर्थ 'खेती के लिए भूमि को जोतना' है। सभ्य-समाज की क्रिया अथवा कृति का कदाचित् यह सबसे आदिम रूप है। खेती से पहले मनुष्य आखेट से अपना जीवन निर्वाह करता था। यह आखेट भी मनुष्य की क्रिया अथवा उसकी कृति का ही रूप है और तुलना की दृष्टि से कृषि की अपेक्षा अधिक आदिम है। शारीरिक कर्म के अतिरिक्त आखेट के लिए आदिम मनुष्य ने कुछ अस्त्रों का भी निर्माण किया था। इन अस्त्रों को मनुष्य की कृति का विशेष और महत्त्वपूर्ण रूप माना जा सकता है। इस दृष्टि से कल्चर के व्यापक अर्थ में ये भी मनुष्य की कृति अथवा संस्कृति माने जा सकते हैं। फिर भी इतना अवश्य है कि कृषि में मनुष्य का कृतित्व आखेट की अपेक्षा अधिक स्फुट और सम्पन्न रूप में प्रकट होता है। कृषि के लिए भी मनुष्य ने कुछ औजारों का निर्माण किया था। इन औजारों के निर्माण में भी आखेट के औजारों की अपेक्षा अधिक कृतित्व दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त कृषि के कर्म में कृति का फल अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली दिखाई देता है। कृति की सफलता रचना अथवा निर्माण में ही है। इस निर्माण का सबसे प्रभावशाली रूप वह होता है जिसमें अभाव को भाव का रूप मिलता है। जिस रूप अथवा वस्तु की सत्ता नहीं होती है उसे सत्ता प्रदान करना कृति का प्रभावशाली रूप है। कृषि में यही होता है। बीज से वृक्ष का बढ़ना और उस पर अनेक अन्नों के दानों का खिलना कृषि के कर्म को सफल, सुन्दर और प्रभावशाली रूप देता है। अन्न के इन दानों का पहले अस्तित्व नहीं होता। इसीलिए कृषि का कर्तृत्व प्रभावशाली बनता है। क्रिया का फल 'कृति' के क्रिया-भाव में संज्ञा भाव का योग देता है। 'कृति' का संज्ञा-भाव उसके क्रियाभाव की सफलता का साकार रूप है। साहित्य की रचनाओं में क्रिया के फल के लिए 'कृति' का प्रयोग होता है।

अस्तु, सभ्यता के क्रम में कृषि का कर्म और कृतित्व मनुष्य की क्रिया का आदिम स्पष्ट और प्रभावशाली रूप है। प्रतिवर्ष के कृषिकर्म और प्रतिवर्ष की सफलता से कृषि का कृतित्व अधिक प्रभावशाली बनता रहा होगा। कृषि की तुलना में आखेट के कर्म में अधिक साहस और क्रिया की अपेक्षा होती है। किन्तु आखेट के फल में मनुष्य का कृतित्व दिखाई नहीं देता। मारा हुआ पशु मनुष्य की 'कृति' नहीं है। वह केवल उसकी खोज तथा उपलब्धि है। इसीलिए संस्कृत भाषा में आखेट के लिए मृगया (पशु की खोज) और वैदिक व्यवहार में पशु को मारने अथवा प्राप्त करने के अर्थ में आलम्भन का प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत कृषि की कृति में मनुष्य का कृतित्व अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली दिखाई देता है। अतः पश्चिमी परम्परा में कृषि की वाचक कल्टस क्रिया से संस्कृति के वाचक 'कल्चर' शब्द का उदय उचित ही है। संस्कृत भाषा में भी संस्कृति के अर्थ में कृष्टि शब्द का प्रयोग होता था जो अब व्यवहार में नहीं है। 'कृष्टि' का सम्बन्ध सम्भवतः कृषि से ही है और कदाचित् वह कृषि की वाचक 'कर्ष' धातु से बना है। कृषि केवल एक प्रकार का कर्म है, यद्यपि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, मौलिक और प्राचीन है। अर्थ-विस्तार के द्वारा वह कृतिमात्र का पर्याय बन सकता है, जैसा कि अंग्रेजी का कल्चर बन गया है। किन्तु सांस्कृतिक कृतित्व की विपुल सक्रियता तथा उसके अन्य भावों का सूत्र कृषि अथवा कृष्टि में मिलना सम्भव नहीं है। अतः कृषि को सांस्कृतिक कर्तृत्व का बीज मानना अधिक उचित नहीं है। कृषि में आरम्भ और अन्त में ही कुछ क्रिया दिखाई देती है। अन्तराल के समय में तो केवल उसकी रक्षा ही मुख्य कर्म है। वह रक्षा भी बाह्य उपायों से हो सकती है। उसमें मनुष्य का कर्तृत्व अपेक्षित नहीं है। बीज बो देने

के बाद खेती अपने-आप बढ़ती है। भारतवर्ष के उपजाऊ मैदान में तो वह बहुत सरलता से होती है। पूर्वी भागों में तो बहुत से स्थानों पर चावल आदि का बीज का बीज गीली भूमि में बिखेर दिया जाता है। सम्भव है पश्चिम के देशों में कृषि का कर्म भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक कठिन रहा हो और उसमें पश्चिम के लोगों का महत्त्वपूर्ण कृतित्व दिखाई दिया हो। यह भी सम्भव हो सकता है कि पश्चिमी देशों में कृषि के योग्य भूमि कम होने के कारण कृषि का महत्त्व भी अधिक रहा हो और इस महत्त्व ने कृषि के कृतित्व के भाव विस्तार में योग दिया हो। अर्थ के इसी विस्तार के द्वारा मूलतः खेती का वाचक 'कल्चर' शब्द 'संस्कृति' का पर्याय बना। कृषि एक प्राकृतिक कर्म है अत: मनुष्य के प्रकृतिक कर्म भी संस्कृति की परिधि और परिभाषा में समाहित हो गये तथा 'कल्चर' शब्द 'कृति-मात्र' का पर्याय बन गया। कर्तृत्व की दृष्टि से संस्कृति के अनेक रूप और भाव कृषि अथवा अन्य किसी प्राकृतिक कर्म से अनेक प्रकार से भिन्न है। इन रूपों और भावों का पश्चिमी परम्परा में अधिक विकास न होने के कारण संस्कृति की धारणा में इन्हें विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान न मिल सका तथा अर्थ-विस्तार के द्वारा मनुष्य 'कृति मात्र' का पर्याय बन कर संस्कृति के व्यापक अर्थ में 'कल्चर' शब्द का व्यवहार सर्वमान्य हो गया।

किन्तु भारतीय परम्परा में मनुष्य के विशेष कृतित्व से प्रसूत तथा आध्यात्मिक भावों से अनुप्राणित सांस्कृतिक रूपों की विपुलता है। अत: कृषि का प्राकृतिक कर्म अथवा कृतिमात्र में उसका विस्तार संस्कृति की धारणा का मूल सूत्र न बन सका। इसी कारण कृषि के वाचक 'कृष्टि' पद के स्थान पर 'संस्कृति' पद का प्रयोग अधिक प्रचलित हुआ। संस्कृति की भारतीय धारणा और संस्कृति के भारतीय रूपों की विशेषता का सूत्र इसी 'संस्कृति' पद के व्याकरण और उसकी वर्ण-व्युत्पत्ति में मिल सकता है। संस्कृत भाषा के 'संस्कृति' पद का प्रयोग अंग्रेजी के 'कल्चर' के समानार्थक शब्द के रूप में होता है। मनुष्य के कर्तृत्व के जिन क्षेत्रों को अंग्रेजी के प्रयोग के अनुसार कल्चर की धारणा के अन्तर्गत माना जाता है उन्हीं क्षेत्रों का निर्देश आधुनिक भारतीय प्रयोग में 'संस्कृति' पद के द्वारा किया जाता है। भारतीय संस्कृति का परिचय देने वाले आधुनिक भारतीय ग्रन्थ भाषा के प्रयोग की इस समानता को प्रमाणित करते हैं। किन्तु भाषा की दृष्टि से दोनों पद एक-दूसरे के पर्याय नहीं हैं। इसके साथ-साथ संस्कृति की पश्चिमी और भारतीय धारणाओं में भी कुछ मौलिक अन्तर हैं। इनका आधार संस्कृति और कल्चर के पदों के व्याकरण की भिन्नता में भी मिलता है, यद्यपि इन अन्तरों का मूल स्रोत पूर्वीय देशों और भारतवर्ष की संस्कृति संबन्धी धारणाओं की भिन्नता में ही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि पश्चिम की कल्चर सम्बन्धी धारणा बहुत व्यापक है। उसमें मनुष्य की सभी कृतियां सम्मिलित हो जाती हैं। कृषि का वाचक 'कल्चर' शब्द 'कृति मात्र' का पर्याय बन कर सस्कृति की इस धारणा के अनुरूप बन जाता है। किन्तु भारतीय परम्परा में संस्कृति की धारणा इतनी व्यापक नहीं है। मनुष्य की कृतियां अनेक प्रकार की होती हैं। इनमें अनेक कृतियाँ प्राकृतिक प्रवृत्तियों से प्रेरित, स्वार्थमय तथा विषमतापूर्ण होती है। इन कृतियों को भारतीय धारणा के अनुसार 'संस्कृति' नहीं कहा जा सकता। इनमें मनुष्य का कृतित्व तो हो सकता है। किन्तु इनमें संस्कार और साम्य नहीं है। अतः इनको 'संस्कृति' के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता। 'संस्कृति' शब्द का 'सम्' उपसर्ग संस्कृति और कृति के भेद की रेखा अंकित करता है। सामान्य रूप से 'सम्' संस्कार और साम्य का वाचक है। संस्कार और साम्य से युक्त कृतिया ही संस्कृति कही जा सकती हैं। संस्कृति का 'सम्' प्रत्यय 'संस्कृति' की भारतीय धारणा की विशेषता और पश्चिमी धारणा से उसकी भिन्नता को लक्षित करती है। 'सम्' का उपसर्ग सम्यक् भाव, संस्कार साम्य आदि का वाचक है। सम्यक् भाव एक अत्यन्त व्यापक भाव है। उसमें साम्य के अतिरिक्त कृति के अन्य अनेक गुण समाहित हैं। कृति के रूप की श्रेष्ठता के अतिरिक्त इनमें संकल्प की स्वतन्त्रता और सामाजिक मंगल की भावना अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनके बिना कोई कृति सम्यक्

भाव की अधिकारी नहीं हो सकती। सामाजिक मंगल की भावना का प्रसंग आते ही मनुष्य की अनेक ऐतिहासिक कृतियां संस्कृति के क्षेत्र से बहिष्कृत हो जाती हैं। अपने स्वरूप में सौन्दर्य, कौशल आदि से युक्त होने के साथ-साथ जो कृति सामाजिक मंगल की विधायक होती है वहीं संस्कृति की परिभाषा के अन्तर्गत आ सकती है। साम्य इस मंगल का मूल-सूत्र है। साम्य से युक्त भाव ही सम्यक् भाव बनता है। सम्यक् भाव का निर्माण भी सम्यक् भाव है। अतः संस्कृति का मूल भाव साम्य ही है।

यह साम्य सामान्य रूप से समानता, सामञ्जस्य आदि का वाचक है। समानता का अर्थ बराबरी है। दो व्यक्तियों अथवा वस्तुओं में ऊंच-नीच अथवा बड़े-छोटे का भेद नहीं होता तो हम उन्हें समान मानते हैं। विषमता के विपरीत होने के कारण यह समानता सामञ्जस्य भी उत्पन्न करती है। सामञ्जस्य का निषेधात्मक रूप अविरोध है जो विषमता के अभाव से उत्पन्न होता है। विषमता ही विरोध का मूलकारण है। सामञ्जस्य का भावात्मक रूप अधिक सक्रिय और सार-पूर्ण होता है। वह प्रीति, प्रसन्नता, सद्भाव, आनन्द, सृजनात्मक उत्कर्ष आदि में व्यक्त होता है। एक आन्तरिक एकत्व सामञ्जस्य का मूल-सूत्र और उक्त भावों की प्रेरणा बनता है। उसी प्रकार ऊंच-नीच और छोटे-बड़े के भेद का अभाव भी समानता का निषेधात्मक रूप है। यह अभाव विषमता का बाधक है और समता के भावात्मक रूप को सम्भव बनाता है। समता का भावात्मक रूप भी एक आन्तरिक एकता में अन्वित रहता है जिसे हमने सामञ्जस्य का मूल-सूत्र कहा है। व्यवहार के शील में वह परस्पर सम्भावन के रूप में फलित होता है। यह परस्पर सम्भावन ही साम्य का व्यावहारिक सूत्र है। भारतीय संस्कृति के प्राचीन शिष्टाचार में यह सर्वत्र चरितार्थ होता है। आतिथ्य, आदर, संस्कारों की विधियां आदि के परस्पर सम्भावन में साम्य का व्यवहार भारतीय शिष्टाचार को अलंकृत करता रहा है। दशरथ के प्रति जनक का वचन इसका एक उदाहरण है। कृष्णभक्ति की परम्परा का 'दोऊ परें पैंया' इसका एक भावपूर्ण उदाहरण हैं। शिव के मस्तक की चन्द्रकला इसी साम्य और सम्भावन की प्रतीक है। शक्ति की प्रतीक कला को शिव शीर्ष पर आदर देते हैं जो एक-दूसरे के गौरव और सौन्दर्य का सम्बर्द्धन करते हैं। उन्हीं के शील और व्यवहार में साम्य का वास्तविक रूप सफल होता है। अध्यात्म, धर्म आदि के अतिरिक्त संस्कृति, कला, साहित्य आदि के क्षेत्र में भी सौन्दर्य के उत्कर्ष का रहस्य परस्पर सम्भावन के इस साम्य में ही मिल सकेगा।

समानता, सामञ्जस्य, सम्भावन आदि से युक्त साम्य एक उदासीन भाव मात्र नहीं है। वह केवल भाव का ही साम्य नहीं है। वरन् इसके साथ-साथ वह सक्रिय और सृजनात्मक भी है। साम्य की सक्रियता और सृजनात्मकता का सूत्र 'सम्' के वर्ण-विज्ञान और उसके तांत्रिक रहस्य में मिल सकेगा। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'सकार' विसर्ग का पर्याय है। इसके अतिरिक्त श, ष, र भी विसर्ग के पर्याय हैं। श, ष, र में भी विसर्ग की सृजनात्मकता के साथ-साथ विभाजन और विच्छेद का भी अन्तर्भाव रहता है। इसके विपरीत सकार में विसर्ग के साथ-साथ साहित्य (सहित भाव) का भी भाव रहता है। संस्कृत भाषा के शब्दों में सहितभाव के अर्थ में 'स' के उपसर्ग का प्रयोग होता है। सबल का अर्थ बल-सहित है। अस्तु, 'सम्' का 'स' सहित भाव से युक्त विसर्ग-भाव का द्योतक है। शैव तन्त्रों में विसर्ग का अर्थ शक्ति का विमर्श है। सामान्य भाषा में हम उसे सृजन का पर्याय कह सकते हैं। शिव की यह शक्ति सृजनात्मिका है। 'सम्' का 'म्' बिन्दु का वाचक है। संस्कृत व्याकरण में 'म्' अनुस्वार अथवा बिन्दु का पर्याय है (मोऽनुस्वारः) शैव तन्त्रों के अनुसार बिन्दु शिव का वाचक है। 'वेत्ति इति बिन्दुः' के अनुसार चिन्मय आत्मा को 'शिव' कहते है। 'बिदिरवयवे' के अनुसार बिन्दु का अर्थ विसर्ग अथवा सृजन से उत्पन्न होने वाले बिन्दु है। बहुत्व में ये बिन्दु साकार होते हैं। इन्हें हम व्यक्तियों का वाचक मान सकते हैं। इन व्यक्तियों के 'बिन्दु' भाव में भी बिन्दु का उदार भाव विभासित होता है। एक ओर यह बिन्दु शिव और शक्ति के संगम का केन्द्र है तथा दूसरी ओर शक्ति की सृजनात्मक परम्परा का सम्वाहक है।

इस प्रकार 'सम्' के उपसर्ग के 'स' और 'म्' क्रमशः सहित भाव से युक्त विसर्ग तथा शिव-शक्ति के साम्य से युक्त बिन्दुभाव के वाचक हैं। चिन्मय होने के कारण शिव को प्रकाश कहते हैं। 'सम्' का उपसर्ग शिव और शक्ति, बिन्दु और विसर्ग, प्रकाश और विमर्श के साम्य का सूचक है। इसी सृजनात्मक साम्य के विशेषण से युक्त होने पर मनुष्य की कृतियां 'संस्कृति' की संज्ञा की अधिकारी बनती हैं। साधारण भाषा में हम संस्कृति को सृजन की वह परम्परा मान सकते हैं जिसमें परस्पर सम्भावन का साम्य चरितार्थ होता है। एक ओर सम्भावन इसका लक्षण है दूसरी ओर सृजनात्मकता उसका स्वरूप है। 'सम्' के स और म् अथवा विसर्ग और बिन्दु के क्रम से यह प्रकट होता है कि संस्कृति के कृतित्व और साम्य में विसर्ग अथवा सृजन का भाव ही मुख्य है। यह सृजन का भाव स्रष्टाओं के क्रम में सफल होता है। बिन्दु का वाचक 'म्' ऐसे ही स्रष्टाओं का प्रतीक है। जीवन और कला के रूपों के साथ-साथ इन स्रष्टाओं के सृजन में संस्कृति कृतार्थ होती है। स्रष्टाओं के सृजन में साम्य और सम्भावन का भाव अपेक्षित होता है। इसी भाव के द्वारा संस्कृति की सृजनात्मक और उत्कर्षशील परम्परा बनती है। इन भावों से युक्त कृतियों को ही 'संस्कृति' कहा जा सकता है। भारतीय पर्व, संस्कार आदि इसके उत्तम उदाहरण हैं। इनमें सृजनात्मक साम्य के सुन्दर रूप साकार होते हैं। कल्चर की पश्चिमी धारणा और परिभाषा में जीवन के ऐसे अनेक रूप सम्मिलित हो जाते हैं जो इन भावों को खंडित कर देते हैं। साम्य और सृजन के भावों को स्वार्थ, अहंकार आदि तथा उनसे उत्पन्न होने वाले प्राकृतिक भाव खंडित करते हैं। ये भाव विषमता और विरोध उत्पन्न करते हैं। अतः संस्कृति के साम्य और सृजन का मूल प्रकृति से भिन्न अध्यात्म में ही मिल सकेगा। अनेक विचारक प्रकृति की विवश प्रेरणा से प्रसूत कार्यों में भी मनुष्य का कृतित्व देखते हैं। तथाकथित संस्कृति के अनेक रूपों में ऐसा ही कृतित्व मिलता है। किन्तु इस कृतित्व के पीछे मनुष्य के स्वतन्त्र संकल्प का गौरव नहीं है। वरन् उनके स्थान पर प्राकृतिक प्रलोभनों की विवश प्रेरणा है। इन प्रेरणाओं से भिन्न आत्मा के स्वतन्त्र संकल्प की कृतियां ही संस्कृति का वास्तविक अलंकार है। भारतीय संस्कृति की जीवन्त परम्परा में यही स्वतन्त्र कृतित्व साकार होता है। शैव तंत्रों के अभीष्ट शिव और शक्ति के साम्य में भी इस आत्मिक संकल्प का अत्यन्त महत्त्व है। शिव की शक्ति को इच्छा-शक्ति कहते हैं। 'इच्छा' संकल्प का ही दूसरा नाम है। शैव-तन्त्र और भारतीय संस्कृति के अनुसार आत्मिक संकल्प की स्वतन्त्रता और परस्पर सम्भावन के साम्य से युक्त कृतियों को ही 'संस्कृति' की संज्ञा का अधिकारी माना जा सकता है। संस्कृति की पश्चिमी धारणा की व्यापक परिधि में समाहित मनुष्य की अन्य अनेक कृतियाँ प्रकृति अथवा विकृति कही जा सकती है। प्राकृतिक प्रेरणा से प्रसूत होने पर भी जो विषमता और विरोध उत्पन्न नहीं करती वे कृतियाँ प्रकृति के अन्तर्गत हैं तथा जो वैषम्य और विरोध उत्पन्न करती हैं उनको विकृति के लांछन से विभूषित करना होगा।

● ● ●

तीन मुक्तक

[श्री हरीश करुण]

तन-मन में झरता पुलकों का सावन
भोली आकांक्षाओं ने जब पावन
पार की बचपन की लक्ष्मण रेखा
सुख-सिया हर गया दुर्दिन का रावण।

किन अतीत-गह्वरों से बिन बुलाये
धूमिल आकृतियाँ, रेखाएँ, साये
अधूरी कल्पना, कुछ टूटे सपने
संध्या के धुंधलकों से घिर आये।

खो बैठूँगा कभी मैं भी चेतना
पड़ेगा दिल यौवन में यों भेटना
परिणाम प्रणय का किसे मालूम था
हा! वह बिजली थी या प्रथम देखना।

कालिदास के 'अष्टमूर्ति' प्रत्यक्ष-शिव

[श्री सूर्यनारायण व्यास]

महाकवि कालिदास शैव थे, यह तो उनके निर्मित काव्य-नाटकों से स्पष्ट है। रघुवंश के आरम्भ ही में—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

'वागर्थ-प्रतिपत्ति' के लिए कवि ने पार्वती-परमेश्वर की वन्दना की है। रघुवंश में और स्थानों पर भी उसका शैवानुराग प्रकट हुआ है। प्रसिद्ध नाटक शाकुन्तल के प्रथम पद्य के अन्तिम चरण में—

'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः'

भी शिव की ही स्तुति की है। किन्तु इस स्तुति में 'अष्टाभिः' शब्द द्वारा शिव की विशेष प्रकार से 'अष्टमूर्ति' के रूप में अर्चना की है। शाकुन्तल का यह मंगलाचरण महत्त्वपूर्ण है। इस की व्याख्या में कवि ने सृष्टि क्रम की वैदिक एवं पौराणिक व्याख्या को संक्षेप में समेट कर सुन्दरता से शिव रूप में प्रस्तुत किया है। शाकुन्तल का आरम्भिक श्लोक इस प्रकार है—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधि-
हुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषय-
गुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति
यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु
वस्ताभिरष्टाभिरीशः।

अर्थात्—जिसे ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में निर्मित किया—(स्मृति के अनुसार अप एव ससर्जादौ तासु वीर्य-मथाऽसृजत् आदि में जल की सृष्टि हुई) और जो विधिपूर्वक दिए हुए हव्य को ग्रहण करता है—(भारत के अनुसार अग्निदेवाश्च पितरोऽश्नन्ति जुह्वते मयि सर्वदा—अर्थात् जल के पश्चात् अग्नि और जिन दोनों से समय का विधान किया जाता है अर्थात् सूर्य, चन्द्र और जिस का विश्वव्यापी गुण श्रवण करना है—अर्थात् आकाश, तथा जो संपूर्ण बीजों का प्रथम कारण है अर्थात् पृथ्वी, एवं प्राणियों का प्रमुख आधार वायु। वह प्रत्यक्ष अष्टमूर्ति-शिव सभी की रक्षा करे।

इस श्लोक में प्रत्यक्ष शिव-मूर्ति का ही स्मरण किया है।

स्मृति में बतलाया है कि—

भूमिरापोऽनलो वायुरात्मा व्योम रवि-शशी।
इत्यष्टौ सर्वलोकानां प्रत्यक्षा हरमूर्तयः।

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि ये प्रत्यक्ष 'हर-मूर्तयः' शिव-मूर्ति हैं। समस्त विश्व में व्याप्त और जिस पर समस्त सृष्टि आधारित है, वही प्रत्यक्ष वस्तुएँ कवि के शिव हैं।

कुमार-सम्भव-काव्य ही शिव से सम्बन्धित है। परन्तु वहां भी कवि का अभीष्ट अष्ट-मूर्ति है। इसी काव्य में लिखा है—

विदितं वो यथा स्वार्थं न मे काश्चित्प्रवृत्तयः।
ननु मूर्तिभिरष्टाभिरित्थं भूतोस्मि सूचितः।

इसी प्रकार—

"अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि
तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः॥"

कालिदास की तरह भरत मुनि ने भी अपने नाट्य-शास्त्र में—एकादशरुद्र, प्रमथादि अष्टगण तथा अष्टमूर्ति शिव की चर्चा की है—

"पृथ्वीसलिलाऽनलपवनयज्ञाधिपतिसूर्यचन्द्र-व्योमाख्या अष्टौ मुनेर्यस्य सुतास्त्रैलोक्यगुरुं तमचिन्त्यमजम्। (३१-२०७)

कवि ने किसी अभिनव-अष्टमूर्ति की कल्पना नहीं की है। शास्त्र, स्मृति पुराणों में इस प्रकार की पूर्व कल्पनाएं उपलब्ध हैं। कालिका-पुराण, शिव-पुराण, लिंग-पुराण आदि में इस अष्टमूर्ति की पर्याप्त चर्चा हुई है। रघुवंश में—

अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः
कुंभोदरं नाम निकुंभमित्रम्।

कुमार-संभव (१) में—

तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं
स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।

जिस अष्टमूर्ति का कालिदास ने वर्णन किया है पुराणों में उन अष्ट-मूर्तियों का परिचय इस प्रकार मिलता है—

अवनिमय-सर्व, पवनमय-उग्र, जलमय-भव, आकाशमय-भीम, अग्निमय-रुद्र, सूर्यमय-ईशान, चन्द्रमय-महादेव, यजमानमय-पशुपति।

मेरे मित्र श्री रे. प्र. द्विवेदी ने रघुवंश की दर्पण व्याख्या की चर्चा में शतपथ ब्राह्मण द्वारा अष्ट-मूर्ति पर भी प्रकाश डाला है। षष्ट काण्ड के कुमारोत्पत्ति प्रकरण में अष्टमूर्ति के नामों का उल्लेख किया गया है। वह अंश मूल रूप में हम यहां प्रस्तुत करते हैं। जैसे—

"भूतानां पतिः संवत्सर उषसि रेतोऽसिञ्चत्, स संवत्सरे कुमारोऽजायत, सोऽरोदीत्, तं प्रजापतिरब्रवीत्, कुमार! कि रोदिषि, सोऽब्रवीत्, नाम मे धेहि। तमब्रवीत्—रुद्रोऽसीति। अग्निर्वै रुद्रः यदरोदीत्तस्मात् रुद्रः।

सोऽब्रवीत्—घेह्येव मे नामेति,—तमब्रवीत्—सर्वोसीति। आपो वै सर्वः, अद्भ्यो हीदं सर्वं।

सोऽब्रवीत् घेह्येव मे नामेति, तमब्रवीत्—पशुपतिरसीति। ओषधयो वै पशुपतिः। तस्मात् यदा पशव ओषधीर्लभन्तेऽथ पतीयन्ति।

सोब्रवीत्—घेह्येव मे नामेति। तमब्रवीत् उग्रोसीति, वायुर्वा उग्रः तस्मात् यदा बलवद् वाति—उग्रो वातीत्याहुः।

सोऽब्रवीत् घेह्येव मे नामेति—तमब्रवीत्—अशनिरसीति। विद्युद् वा अशनिः यं विद्युद् हन्त्यशनिरवधीदित्याहुः।

सोब्रवीद्—घेह्येव मे नामेति,तमब्रवीत्—भवोऽसीति,पर्जन्यो वै भवः। पर्जन्याद्धीदं सर्वं भवति।

सोऽब्रवीद्—घेह्येव मे नामेति—तमब्रवीत्—महान् देवोऽसीति। प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः प्रजापतिर्वै महान् देवः।

सोऽब्रवीत् घेह्येव मे नामेति—तमब्रवीत् ईशानोऽसि। आदित्यो वा ईशानः आदित्यो ह्यस्य सर्वस्येष्टे।

सोब्रवीत्—एतावान् वा अस्मि,मा मा इतः परं नाम धा इति। तान्येतान्यष्टावग्निरूपाणि। कुमारो नवमः। (शतपथ ब्राह्मण ६,१,३,८–१८ संक्षेपः)।

इसका आशय यह है कि जब भगवान् भूतपति के यहां कुमार का जन्म हुआ, वह रुदन करने लगा। प्रजापति ने उस कुमार से पूछा कि किस लिए रोते हो? तब उसने कहा—मेरा नाम बतलाओ। प्रजापति ने यथाक्रम उसे आठ नाम बतलाए और वह संतुष्ट हो गया। ये आठ नाम—रुद्र (अग्नि), सर्व (जल), पशुपति (ओषधि) उग्र (वायु), अशनि (विद्युत्) भव (पर्जन्य), प्रजापति (चन्द्र) ईशान (सूर्य)—अर्थात् यह नवम स्वयं कुमार। उसी में स्पष्ट निर्देश है कि 'तान्येतान्यष्टावग्नि रुपाणि', कुमारो नवमः (श. प. ब्रा. ६. १. ३. ८.–१८) आदि।

इसी प्रकार लिंग पुराण के उत्तरार्ध १२वें अध्याय में अष्टमूर्ति का वर्णन हुआ है—

भूरापोऽग्निमरुद् व्योम भास्करो दीक्षितः शशी,
भवस्य मूर्तयः प्रोक्ताः प्रियस्य परमेष्ठिनः।
खात्मेन्दुर्वह्निसूर्याम्भोधरा. पवन इत्यादि,
तस्याष्ट मूर्तयः प्रोक्ता देवदेवस्य धीमतः।
पंच भूतानि चन्द्रार्कावात्मेति मुनि-पुंगवाः,
मूर्तयोऽष्टौ शिवस्याहुर्देवदेवस्य धीमतः।
आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिर्यजमानाह्वयापरा
दीक्षितं ब्राह्मणं प्राहुरात्मानं च मुनीश्वराः।

तेरहवें अध्याय में शिव की अष्ट मूर्ति के संज्ञा स्थान-आदि का विस्तृत निरूपण किया है।

१. चराचाराणां भूतानां धाता विश्वम्भरात्मकः। शर्व इत्युच्यते देवः······?

२.वह्न्यात्मा भगवान् देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः।

३. पवनात्मा बुधैर्देव ईशान इति कीर्त्यते,
व्योमात्मा भगवान् देवो भीम इत्युच्यते बुधैः।

४.सूर्यात्मा भगवान् देवो रुद्र इत्युच्यते तथा।

६. सोमात्मको बुधैर्देवो महादेव इति स्मृतः।

७. यजमानात्मको देवो महादेवो बुधैः प्रभुः

८. 'उग्र' इत्युच्यते सद्भिरीशानश्चेति चापरैः।
आत्मा यो यजमानाख्यः सर्वभूतशरीरगः।
मूर्तिरुग्रस्य सा ज्ञेया परमात्मबुभुत्सुभिः।

उसी तरह अष्टमूर्ति की अष्ट पत्नियों के नाम भी दिए हैं—विकेशी, उमा, स्वाहा, शिवा, दिशः, सुवर्चला, रोहिणी, दीक्षा। और इनके आठ पुत्रों के नाम भी इस प्रकार हैं—

अंगारक, शुक्र, षण्मुख, मनोजव, सर्ग, शनैश्चर, बुध, सन्तान।

लिग पुराण में जिस तरह अष्टमूर्ति का विस्तृत

वर्णन किया है। शिव पुराण के द्वितीय अध्याय में अष्टमूर्ति का उल्लेख किया है—

'तस्य शंभोः परेशस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत्
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः।
भूम्यम्भोऽस्ति मरुद्व्योम क्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः।
अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यैरष्टरूपैः शिवस्य हि।

लिंग पुराण और शिव पुराण की तरह ब्राह्माण्ड-पुराण मेंप र्याप्त विस्तार से वर्णन है जिस अष्ट-शरीर में अष्टमूर्ति का स्थान है—उसका वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से ही किया है—

सूर्यो जलं मही वायुर्वह्निराकाशमेव च,
दीक्षिता ब्राह्मणाश्चन्द्र इत्येवं तेऽष्टधा तनुः।

महाकवि कालिदास ने शिव को अष्टमूर्ति और शतपथ ब्राह्मण एवं पौराणिक व्याख्या का कई स्थानों पर उपयोग किया है। शाकुन्तल मे तो आरम्भ में ही स्तुति रूप में है। किन्तु मालविकाग्निमित्र में—

'अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि,
तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः।'

बहुत स्पष्ट रूपों में शतपथकार का का समावेश किया गया है।

आगम के भावों ो दर्पणकार ने अधिक स्पष्ट किया है—अष्टमूर्ति का अपनी-अपनी मूर्तिभेद से—नाम-विभाग किया है जैसे—

सूर्य में रुद्र, जल में भव, भूमि में शर्व, वायु में ईशान, अग्नि में पशुपति, आकाश में भीम, दीक्षित में उग्र, चन्द्र में महादेव। अभिनवगुप्त ने नाट्य-शाला की अभिनव भारती व्याख्या में शिव की अष्ट-मूर्ति को आधार मान कर प्रत्येक अध्याय का आरम्भ किया है, कुछ विद्वानों का मत है कि नाट्य-शास्त्र के ३३ अध्याय है। और प्रत्यभिज्ञा के नियमानुरूप शिव के ३६ तत्त्वों को आधार बनाकर प्रत्येक अध्याय का आरम्भ किया है। किन्तु नाट्य-शास्त्र में शिव की अष्टमूर्ति को प्राधान्य दिया गया है इसलिए अभिनवगुप्त भी उसी का अनुसरण करे यही स्वाभाविक प्रतीत होता है। अष्टमूर्ति शिव का विग्रह उपलब्ध होता है। अभी तक ३६ तत्त्वों वाली शिव मूर्ति कहीं उपलब्ध नहीं है।

कालिदास के पश्चात् ७वीं शती में बाण ने अपने हर्षचरित में भी अष्टमूर्ति का उल्लेख किया है प्रसंग यह है कि दुर्वासा के रोष से शापित होकर सरस्वती स्वर्ग से चल कर सावित्री के साथ पृथ्वी पर आ गई और उसने शोण नदी के पश्चिम तट पर आश्रम स्थापित किया। वहां प्रति-दिन स्नान और पुष्प-संचय कर पूजा करती थी, वहां अष्टमूर्ति शिव का जिस वाक्य में उल्लेख किया गया है—वह यह है—

पुलिनपृष्ठप्रतिष्ठितसैकतशिवलिंगा च भक्त्या परमया पंचब्रह्मपुरःसरां सम्यग्-मुद्राबन्ध विहित-परिकरां ध्रुवागीतिगर्भामवनिपवन-गगन-दहन-तपन-तुहिनकिरण-यजमानमयीर्मूत्तीरष्टावपि ध्यायन्ती सुचिरमष्टपुष्पिकामदात्।'

अर्थात् सरस्वती ने नदी की रेत पर बालुका का शिवलिग स्थापित कर, परम भक्तिपूर्वक पृथ्वी पवन, जल, आकाश, अग्नि सूर्य-चन्द्र एवं यजमान मयी शिव मूर्ति के अष्ट रूप का ध्यान कर पुष्पों की आठ अंजलि अर्पित की।

इस वाक्य में भी शतपथ और पुराण सूचित शिव के आठ रूपों का वर्णन किया है,बाण कवि ने भी कालिदास वर्णित अष्टमूर्ति को अपनाया है। जब कि कालिदास ने शतपथ ब्राह्मण आदि से सृष्टि में व्याप्त और आधारभूत आठ वस्तुओ को शिव की अष्टमूर्ति के रूप में स्वीकार किया है। यह प्रत्यक्ष शिव रूप का वर्णन है। कवि ने शिव के किसी विशेष विग्रह का अर्चन नहीं किया है। जब कवि के अष्टमूर्ति पृथ्वी, जल, वायु, आकाश अग्नि आदि सृष्टि के प्रत्यक्ष-व्यापक तत्त्व और सृष्टि के आधार ही हैं तो कुमार संभव में कवि ने जो शृङ्गार वर्णन किया है वह सृष्टि की स्वाभाविक-प्रक्रिया का ही द्योतक है, उसे प्रचलित धारणा और परम्परा के अनुरूप किस विशिष्ट-देव-शिव पार्वती न मान कर, सृजन के आधार भूत-तत्त्व ही समझना चाहिए, उन तत्त्वों का साधारण प्रकृति-पुरुष के रूप में समन्वय, और स्वाभाविक-व्यवहार होता है, वही कवि को अभिप्रेत है। महाकवि-कालिदास वर्णित शिव की 'अष्टमूर्ति' का एक विग्रह भी कुछ समय पूर्व ही मंदसोर (दशपुर) में प्राप्त हुआ है, कालिदास की यह 'अष्टमूर्ति' बहुत ही महत्त्वपूर्ण, आर्ष-कल्पना का अनुकरण है। विभिन्न प्रकार की शिव-मूर्तियों से सर्वथा स्वतन्त्र एव प्रत्यक्ष, प्रकृति-तत्त्वमयी है। ●

कन्नड़ कहानी—

आहुति

[सौ. सरस्वतीदेवी गौडर]

आज महाजन के यहाँ विवाह का सम्भ्रम है। कल उन की पुत्री सरोजिनी का विवाह है। घर में यही पहला मंगल-कार्य है। महाजन के कुल, मर्यादा और गौरव के अनुरूप ही सम्बन्ध मिला है। सब बड़ी उत्सुकता से काम कर रहे हैं। सारा गाँव कार्य-मग्न हुआ है। आप्तेष्ट-मित्र-मण्डली से घर भरा है। आँगन में विशाल मण्डप तथा बाहर गली में सुशोभित कल्याण-मण्डप महाजन की कलाभिरुचि को दर्शा रहे हैं। विविध रंगों की विद्युद्दीप की मालिकाएँ जगमगा रही हैं। सभी अभ्यागतों के लिए राज्योपचार की व्यवस्था की गई है। स्वयं महाजन प्रत्येक विषय की देखभाल कर रहे हैं। उन की पत्नी तो कभी एक क्षण कहीं ठहरती है और न बैठती हैं। बारात आने के समय के साथ ही उनकी अधीरता भी बढ़ रही है। उन की इच्छा है कि किसी बात की कमी न हो, सब ठीक तरह से चले। गड़बड़ी में कुछ-का-कुछ न होने पाए। उन का कहना है कि विवाह-मण्डप की उलझन जल्दी नहीं सुलझती। इसी लिए वे इधर-उधर के सभी कामों का निरीक्षण कर रही हैं। काम की थकावट को महसूस न होने देने वाली स्फूर्ति उनको चेतना दे रही है। चेहरे पर एक नया आनन्द उमड़ आया है। "कन्या दूसरों की सम्पत्ति होती है। उस के मालिक को सौंप देने पर ही अपना भार कम हो जाता है। हृदय के टुकड़े को पराए हाथ में सौंप देने में मातृ-हृदय तड़पता है। लेकिन उस कारण कन्या को घर में भी नहीं रख लिया जा सकता। क्या मैं अपने मैके से नहीं आई ? अब वह घर दूर हो कर यही घर अपना बन गया है। यह परम्परा इसी तरह चलती रहेगी। यह विवाह हुए अब तक सालों पुराना हो जाता। पगली लड़की व्यर्थ ही 'न' कह कर दो-तीन वर्ष तक जिद करती रही। अब भी तो कहाँ राजी हुई है; 'न' की धुन लगी ही है। एक बार गले में माला पड़ जाए तो वह स्वत: रास्ते पर आ जाएगी" यही विचार उन के मस्तिष्क में मण्डरा रहे हैं।

हाँ ! सरोजिनी की प्रकृति प्रारम्भ से ही गम्भीर है। बचपन का उस का गुडियों का खेल किसी ने नहीं देखा। उस की सहेलियां जब चूल्हा बना कर अपने छोटे-से संसार का खेल खेलती, तब यह कहीं कोने में बैठी ध्यान-मग्न रहती थ।। उसके सोचने का उसी को पता नहीं चलता था। अनन्त आकाश, विशाल सागर, विविध प्राकृतिक सौन्दर्य तथा रुद्र गांभीर्य—इन सब को देखती हुई वह मुग्ध हो जाती थी। कुछ बड़ी हो जाने पर शिवशरणी अक्कमहादेवी और कृष्णप्रेमी मीराबाई की कहानियां सुन कर सोचा करती कि मैं भी क्यों न उन की तरह हो जाऊं ? 'सावधान" के साथ विवाह-वेदी को छोड़ कर भागे हुए रामदास की कहानी सुन कर उसने 'वही ठीक' कह कर सिर हिलाया था। धीरे-धीरे उस की यह सुप्त-भावना प्रस्फुटित होने लगी। विवाह की बात किसी ने छेड़ी तो वह उन पर ऊब उठती। उस के क्रोध के साथ चिढ़ाने वालों को फिर से प्रेरणा मिलती। लेकिन उस की इस प्रवृत्ति के पीछे छिपी हुई मनोवृत्ति का किसी ने विश्लेषण करने का प्रयत्न नहीं किया। मानस-शास्त्र के विषय में जितनी अज्ञानता हम में है उतनी और कहीं नहीं पाई जाती।

दिन बीतते गए। बालिका किशोरी बन कर आगे युवती भी बनी। महाजन वर की खोज में लगे। कन्यार्थियों के समक्ष सरोजिनी को उपस्थित होने से इनकार करते देख कर उसके पिता क्रोध और विस्मय से स्तम्भित हो गए। जीवन में किसी को अपना सामना करते न देखने वाले महाजन अब अपनी ही पुत्री की इस उद्दंडता से लाल हो गए। पिता के उस रौद्रावतार का विश्लेषण न कर सकने वाली सरोजिनी कुण्ठित हुई। उसकी समझ में नहीं आ सका कि बचपन से फूल के सदृश संरक्षण करने वाले पिता अपनी इस एक बात के लिए क्यों इतना क्रुद्ध

होते हैं ! आए हुओं के सामने जा कर आने का शास्त्र समाप्त किया। लेकिन बेटी का वह निस्तेज और निर्जीव मुखमण्डल देख कर उसके पिता फिर से उस झंझट में नहीं पड़े। अप्रत्यक्षता में ही वरान्वेषण हुआ। वरान्वेषण में कुछ विलम्ब होने पर भी महाजन का वैभव तथा गौरव और सरोजिनी के रूप, बुद्धि, चरित्र आदि के कारण कोई कठिनाई नहीं हुई। भाव-चित्र पर ही कन्या-परीक्षा का काम चल गया। आक्षेपों को महाजन ने एक-न-एक बहाना बता कर उन का समाधान किया।

सरोजिनी, कन्या-परीक्षा की बारी फिर नहीं आई, इस विचार से निश्चिन्त हो कर अपने व्यासंग में व्यस्त हुई थी, सहसा घर में चली हुई तैयारियों को देख कर स्तम्भित हो गई। लेकिन उसने स्वयं किसी से पूछने की चेष्टा नहीं की और स्वतः भी किसी ने उसे कुछ नहीं बताया। मुक्ति का मार्ग वह अपने-आप ही खोज रही थी। तिथि निश्चित हुई, विवाह-मण्डप तैयार हुआ, निमन्त्रण-पत्रिकाएं वितरित होने लगीं।

आँखों के सामने एक-एक कर सब तैयारियाँ होने लगीं। ढेरों कपड़े-गहने उसके कमरे में रखे जाने लगे। सरोजिनी के अन्तरंग में एक बड़ा ही विप्लव मचने लगा। भगवान् क्यों अपने को इस सत्त्व परीक्षा के लिए प्रस्तुत कर रहा है ? विवाह की बातों से नाच उठने वाली अपनी सहेलियों को उसने देखा था। अपने माँ-बाप जो-कुछ कर रहे हैं उस से अपने को आपत्ति पहुंचे इस दृष्टि से नहीं; और लोक-रूढि के विरुद्ध है ही नहीं। सब की तरह वे भी सम्प्रदाय-शरण ही ठहरे। सदियों से चलती आई परम्परा को ठुकराने का साहस न-मालूम उनमें है या नहीं; लेकिन उस बात की कल्पना करना ही उन के लिए प्रिय नहीं। भगवान् ने ऐसी मनोवृत्ति अपने ही को क्यों दी ? औरों की तरह मैं भी एक होती तो ? विवाह के लिए दूसरे कितने उत्सुक होते हैं। लेकिन वही मुझे भयंकर-सा लगता है। किसी तरह विचार करने पर भी मन अटल है। विचार ! विचार ! दिन-रात विचार ही भरे हैं मन में। सरोजिनी इन विचारों के प्रवाह में दिग्भ्रान्त हो कर बह रही है। जन्म से ही गम्भीर-मूर्ति सरोजिनी का चेहरा निर्विकार-सा बना है। किन्हीं भावनाओं का भी यहाँ आभास नहीं हो पाता। इसी लिए विवाह के प्रति किसी प्रकार का विश्वास, आस्था या आसक्ति न रखने वाली सरोजिनी के व्यवहार से सब को कुछ सरस में विरस का आभास होने पर भी उसके हृदयान्तराल के कोलाहल को कोई भी नहीं समझ सका। जन्म-दात्री माँ नहीं समझ सकी तो औरों की क्या हस्ती ? वे इतना ही समझे कि 'मौनं सम्मतिलक्षणम्'। प्रायः पर्व-त्योहारों में भी उसकी रुचि कम ही रहती थी। इसलिए अब उसे किसी कार्य के लिए भी विवश नहीं किया जाता। कल सूर्योदय को ही विवाह का मुहूर्त्त है। मेहमान आज ही आने वाले हैं। सारा घर गड़बड़ी में है। दुलहन अपने कमरे से बाहर ही नहीं आई, और अब उसके आगमन की अपेक्षा किसी को भी नहीं। चुप है यही काफी था। इसी लिए किसी ने उसे चिढ़ाने की चेष्टा नहीं की।

आने वाले मेहमान अब क्या आ ही गए। बाजों के साथ उन्हें ले आने की हलचल शुरु हुई। अपना काम यथास्थिति छोड़ कर सब उस ओर जाने की तैयारियाँ करने लगे। कितनी ही तपस्या करने पर भी न मिलने वाला एकान्त आज सरोजिनी को मिला। छत से सभी लोगों की नीचे जाने की आहट पा कर वह धीरे से अपने पिता के कमरे में प्रविष्ट हुई। चारों ओर देखा—कोई नहीं था। नीचे स्वागत की तैयारी में लगे महाजन की उच्च ध्वनि अस्पष्टता से सुनाई पड़ रही थी। सरोजिनी दवाइयों की अलमारी के पास गई—तभी किसी की ऊपर आने की आहट सुनाई पड़ी। दिल धड़कने लगा। 'यदि पिता जी ही आकर पूछें कि यहाँ क्या कर रही है ? तो ??' घबरा गई। लेकिन आने वाले उसके भैया थे। सजधज कर जीजा जी के स्वागत के लिए निकला तो पिता जी के अनुरोध से बन्दूक लेने आया था। समधी-परिवार को सलामी देनी थी न ! महिलाओं से घिरा हुआ वह अपनी जीजी को नहीं देख पाया था। अब उस का निस्तेज चेहरा देख कर चौंक पड़ा। 'क्या हाल है ?' कह कर उस के माथे को हाथ लगाया। वह हमेशा से भी कुछ ठण्डा ही था। तब उसे कुछ विनोद-सा लगा और 'ओ हो ! जीजा जी की सवारी आ रही है, इस लिए इतनी अधीरता ?' कहते हुए कोने में से दोनाली

बन्दूक ली। मुस्कराहट के साथ अपने जीजी को एक सिपाही-सलामी दी और चलता बना। सरोजिनी का दिल धड़क ही रहा था। बिजली की तरह एक नया विचार उसके मस्तिष्क में आया। अलमारी छोड़ कर वह अपने पिता जी के पलंग की ओर मुड़ी। महाजन के तकिए के नीचे एक रिवाल्वर बारहों महीने छिपा रहता था। काँपते हुए हाथों से सरोजिनी ने उसे धीरे से उठाया और अपने आँचल में छिपा कर वहाँ से कदम बढ़ाया। वह धीरे से अपने कमरे में दाखिल हुई और आँचल का रिवाल्वर बिछौने के नीचे छिपा कर रख—मन शांत हुआ, हृदय की धड़कन कम हुई। अब वहाँ किसी प्रकार के विकार को आस्पद नहीं रहा। अपनी राह की आहट पा कर उस क्षण सरोजिनी निश्चिन्त हुई। सन्तृप्ति से मुख खिल उठा, आँखों में अपार शांति का उदय हुआ।

कुछ समय के बाद समधी-परिवार का आगमन हुआ। भोजन का समय टल न जाए, यह महाजन का सिद्धान्त था। इसी लिए उन की आज्ञा थी कि पहले मेहमानों का भोजन हो जाए। रसोई तो तैयार ही थी। मण्डप में पुरुषों के लिए और दालान में स्त्रियों के लिए व्यवस्था की गई। पहली पंगत को ही सरोजिनी के लिए बुलावा गया। आए हुए मेहमानों की इच्छा थी कि दुलहन भी साथ बैठे। मेहमानों की व्यवस्था में लगी हुई माँ को कहाँ की फुर्सत? उस ने पास वाली से सरोजिनी को बुलाने के लिए कहा। हँसमुखी हो कर ही सरोजिनी नीचे उतर आई और अंकित स्थान पर जा बैठी। 'हाँ' 'न' कुछ न कहते हुए धीरे-धीरे उसने भोजन समाप्त किया।

उस की लाल कोर की सफेद रेशमी साड़ी और गुलाबी रंग का ब्लाउज शरीर से चिपक गया था। हाथों में मोतियों की दो-दो चूड़ियाँ, कण्ठ में मोतियों की माला, नीम्बू जैसी अंग-कांति, सघन सुदीर्घ केश-कलाप, जुल्फों से सुशोभित भाल, बड़ी-बड़ी आँखें, नोकदार नाक, मध्यम ऊंचाई और सुन्दर शरीर गठन से सुशोभित थी—सरोजिनी। दुलहन को देख कर समधी-परिवार सन्तोषित हुआ। भोजन के बाद ताम्बूल सेवन करके सरोजिनी बड़ों का आदर-पूर्वक चरण छू कर अपने कमरे की ओर चल दी। जाते-जाते अपनी माँ से कहती गई कि मुझे कुछ विश्रान्ति की आवश्यकता है, किसी को भी कमरे की ओर न भेजें।

एक के बाद एक पंगत उठी। परोसने वाले एक-एक खाद्य चार-चार बार आग्रह से परोसते गए। ग्रीष्मकालीन रात्रि का भोजन और रात-भर का जागरण इस की परवाह किसी को नहीं थी। अन्तिम पंगत मध्य-रात्रि के समय उठी।

दोनों पक्षों वाले कुछ सम्प्रदाय-प्रिय थे। विवाह पुरानी पद्धति के अनुसार ही सम्पन्न होने वाला था। भोजन के पश्चात् कुछ पुरुष गप-शप में लगे रहे और कुछ सो गए। स्त्रियाँ हरिद्रालेपन की गड़बड़ में व्यस्त थीं। प्रातः प्रथम प्रहर में ही विवाह का मुहूर्त था। अभी से एक-एक कार्य समाप्त कर देने का उन का विचार था।

वर के लिए बुलावा गया। आसन की तैयारी होने लगी। सरोजिनी को बुलाने के लिए उस की माँ ने अपनी बहन को भेजा। वह जा कर लौट आई और कहा कि बार-बार आवाज देने पर भी दरवाजा नहीं खोल रही। तब माँ ने यह सोच कर कि शायद उसे नींद लगी हो, स्वयं जा कर आवाज दी, दरवाजा खटखटाया। कोई जवाब नहीं। उस की आवाज सुन कर महाजन ऊपर गए। इधर वर के साथ आया हुआ उस का भैया 'मैं बुला लाऊंगा' कह कर निकल पड़ा। उसके जाने के पश्चात् कुछ पाँच मिनट के बाद उस ओर से एक आर्तनाद सुनाई पड़ा। 'जीजी' की चीख के साथ वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। सब लोग उस ओर दौड़ पड़े। वहाँ के भयंकर दृश्य से सब 'हाय-हाय' कह कर छाती पीटने लगे। सरोजिनी का मृत शरीर रक्त से ओत-प्रोत होकर गिरा था। आप्त सम्बन्धी की भांति आपत्ति से छुटकारा दिलवाया हुआ रिवाल्वर बगल में ही पड़ा था। घर में तहलका मच गया। एक क्षण पूर्व हँसी-खुशी से नाचने वाले घर में अब श्मशान-शांति की छाया घिर गई। मृत्यु आत्म-हत्या होने के कारण रोना भी चोरी हो गई।

रात-भर सरोजिनी के माँ-बाप और भाई को वश में रखना बहुत कठिन हो गया। आए हुए अनेक मेहमान बिन-बोले खिसक गए। सभी महाजन के परिचित होने के कारण बिना किसी विशेष कठिनाई के

के पंचनामा हुआ। रिपोर्ट में दर्ज किया गया कि हिस्टीरिया के कारण उन्मत्त हो कर आत्म-हत्या कर ली है। सुबह ठीक विवाह के मुहूर्त के समय उस की श्मशान-यात्रा निकली। विवाह का पीताम्बर ही उसे पहनाया गया था। हाथों में हरी चूड़ियाँ, नीम्बू जैसी अंग-कांति अब भी अम्लान थी। विकार-रहित प्रशान्त चेहरा, सुगठित देह और रग-रग में उमड़ता हुआ तारुण्य उठ कर दीख पड़ते थे।

उस की माँ और भाई तो शव को छोड़ कर नहीं उठते। इधर महाजन के चीत्कार 'मैंने ही अपने हाथों से अपनी बेटी की हत्या की है। उस की इच्छा समझ कर भी अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। अविवाहित बेटी को घर के लिए कलंक-प्राय समझा। लेकिन लगने वाला दाग लग ही गया—और पहले से भी गहरा। उसके साथ मेरी भी अस्थि उठाइए।' तीन-चार लोग उन्हें कमरे में ले गए। शव पर गिरे हुए माँ और भाई को अलग किया गया।

अब अरथी उठने वाली ही थी कि सहसा उसी समय एक मोटर-कार तीव्र गति से आ कर रुक गई। बिखरे बाल और लाल आँखों वाला एक युवक नीचे उतर आया। पहचानने में कुछ देर लगी कि वह युवक और कोई न हो कर पिछली रात विवाह के लिए आया हुआ वर ही था। वह शव के सामने साष्टांग नमस्कार करके ठहर गया। पीछे हटे हुए लोगों ने आगे बढ़ कर अरथी को उठाया। गाँव में सब के मुंह से यही चर्चा होने लगी। शादी के लिए आए हुए मेहमान शव-यात्रा के लिए निकले। न मालूम भविष्य में सरोजिनी का जीवन किस तरह निरूपित होना था। पर सनातनी-समाज ने अपने सीमोल्लंघन की भूल के कारण उस की प्राणाहुति ले ली। इस से बढ़ कर भी क्या दूसरा कोई अधःपतन हो सकता है!

—अनुवादक, श्री भालचन्द्र जयशट्टी

* * *

निरभ्र वज्रपात

['मयंक']

यह निरभ्र वज्रपात!
कर गया प्रकम्पित गात!
कांपते हैं जो तरु के पात,
चले जब भीषण झंझावात।
आज सबका आहत विश्वास—
कि है बुझ गया प्रकाश
हमें जो पथ इंगित करता था।
नहीं-नहीं।
यह व्याकुल मन की
व्याकुलता है,
जो प्रकाश की अनुपस्थिति का
भ्रम कर देती।
वह जो जैसे
उज्ज्वलतर होकर
चम-चम-चम
चमक रहा है!
हुई चतुर्दिक् उसकी ज्योति
प्रखरतर जग में।
आभा शत-शत ज्योतिमयी
हो गई धरा पर!!
उस की तेजस्विता
कभी जो धूमिल-सी दिख जाती
किसी-किसी क्षण!
(शायद भ्रमवश!)
वह अब
नयी ज्योति से होकर युक्त
हो उठी तीव्र,
प्रखर अति।
हमें करेगी मार्ग प्रदर्शित
युग-युग तक वह!!

औपनिषदिक भारत का प्राकृतिक भूगोल

[प्रा. व्रजदेवप्रसाद राय]

उपनिषद्-ग्रन्थ अध्यात्म-विद्या के ग्रन्थ हैं, फिर भी ये भारतीयों के जीवन के विभिन्न भागों पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण सूचनाएं देते हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है, इस लिए कोई भी साहित्य अपने युग का प्रतिनिधि होता है। उपनिषदों का विषय भारत के भौगोलिक विवरण को उपस्थित करना नहीं है, फिर भी भी प्रसंगवश ऐसे कई नामों के उल्लेख हैं जिन के अध्ययन से हम यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि उपनिषदों के समय में भारतीयों को इस विशाल देश के विभिन्न भागों की जानकारी कहाँ तक थी। कुछ नाम तो भौगोलिक रूप में प्रत्यक्षतः उल्लिखित हैं जिन के विवरण हमें पूर्ववर्ती एवं परवर्ती दोनों प्रकार की साहित्यिक परम्पराओं में मिलते हैं। भारत के प्राकृतिक भूगोल का प्रारूप उपनिषदों में बहुत अच्छी तरह खींचा गया है। विभिन्न पर्वत, नदी, समुद्र, मरुस्थल, जनपद नगर—ये सब उपनिषदों में वर्णित हैं। तुलनात्मक अध्ययन के लिए हम आरम्भिक बौद्ध एवं जैन-साहित्यों का भी सहारा ले सकते हैं, क्योंकि वे भी उपनिषद्-युग के थोड़े दिनों बाद ही लिखे गए।

प्रस्तुत निबन्ध में उपनिषदों में वर्णित भारत के प्राकृतिक भूगोल पर विचार किया गया है। किसी दूसरे निबन्ध में प्रादेशिक भूगोल पर विचार किया जाएगा। प्राकृतिक भूगोल के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तर में भारत की सीमा हिमालय पर्वत तक थी। दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिम के समुद्रों की जानकारी लोगों को थी, इसके अतिरिक्त विभिन्न नदियों एवं पर्वतों के बारे में भी लोगों को सूचनाएं थीं एवं लोग उन्हें जानते थे।

सप्तद्वीपा पृथिवी—

इस का उल्लेख आरम्भिक उपनिषदों में न हो कर बाद के एक उपनिषद् नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद् में हुआ है[1]। ज्ञात होता है कि जिस सप्तद्वीपा पृथ्वी का उल्लेख पुराणों, महाकाव्यों एवं नाटकों में बार-बार हुआ है उस का आधार पूर्ववर्ती भौगोलिक ज्ञान था, जिस की झाँकी हमें सप्तद्वीपा पृथ्वी के रूप में उक्त उपनिषद् में मिलती है। उक्त उपनिषद् में इसकी व्याख्या नहीं मिलती है, पर बाद के ग्रन्थों में एवं विशेषकर पुराणों में सप्तद्वीपवती पृथ्वी की व्याख्या मिलती है। पुराणों में इस की व्याख्या अधिक रूप से काल्पनिक लगती है, फिर भी उस कल्पना का आधार था। आधुनिक ढङ्ग की ऐतिहासिक विचार-धारा पर विश्वास करें तो मानना पड़ेगा कि आर्यों के भारत आगमन से पूर्व भी यहाँ के लोग जो विशेषकर सिन्धु-घाटी में रहते थे, विस्तृत भौगोलिक ज्ञान रखते थे। उन्हें हिमालय, मिश्र, दक्षिणी यूरोप एवं दक्षिण भारत की जानकारी थी। वैदिक साहित्य में भी चारों समुद्रों का उल्लेख आता है एवं वैदिक पणि तो कुशल सामुद्रिक व्यापारी थे। भौगोलिक ज्ञान की वह परम्परा बाद में भी चालू रही एवं नए-नए अनुमान भी पृथ्वी के सम्बन्ध में लगाए गए। पुराणों में सप्तद्वीपा पृथ्वी के नामों की पहचान आधुनिक देशोंसे करने में कठिनाइयां हैं। नारदपुराण, पूर्वभाग प्रथमपाद[2] में पृथ्वी के सातों द्वीपों के नाम ये बतलाए गए हैं—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर जो सात समुद्रों से घिरे है। वे सातों समुद्र हैं—क्षीरोद इक्षुरसोद सुरोद, घृत, दधि, दुग्ध तथा सुस्वादु जल से भरे वे समुद्र उन्हीं नामों से विख्यात हैं। इनके विस्तार के बारे में बताया गया है कि इन द्वीपों एवं समुद्रों को क्रमशः पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर दूने विस्तार वाले जानना चाहिए।

---

१. १, १, २। २. गीता प्रेस से प्रकाशित 'नारद-विष्णु-पुराणांक।

यही चीज विष्णुपुराण[3] के द्वितीय अंश में बतलाई गई है। इस पुराण के अंश में भूगोल के विवरण वाले भाग में सप्तद्वीपा पृथ्वी का विस्तृत विवरण है जिस में बतलाया गया है कि सातों द्वीपों में केन्द्रीय स्थान जम्बूद्वीप का है। भारतवर्ष जम्बूद्वीप का एक भाग है। जम्बूद्वीप की नदियों, उस के पर्वतों एवं प्रदेशों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

प्लक्षद्वीप में भी सात वर्ष माने गए हैं एवं शाल्मलद्वीप में भी। जम्बू एवं प्लक्ष द्वीपों के नाम जामुन एवं पाकड़ के पेड़ों के आधिक्य के कारण पड़े। कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाक एवं पुष्कर द्वीपों के पर्वतों, निवासियों, नदियों एवं अन्य विषयों के विशद विवरण मिलते हैं। आलोचनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि जम्बूद्वीप के भारतवर्ष के अतिरिक्त जिन द्वीपों का उल्लेख किया है वे काल्पनिक हैं, एवं, अगर वास्तव में वे थे तो उन को आज पहचाना नहीं जा सकता है। वस्तुस्थिति कुछ भी हो इतना तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि भौगोलिक विषय की ओर औपनिषदिक भारत के लोगों को भी काफी रुचि थी।

समुद्र—

उपनिषदों में समुद्रों का भी उल्लेख आता है। पूर्व-समुद्र एवं अपर-समुद्र के उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलते हैं[4]। पूर्व-सागर का मतलब हमें उस सागर से लेना चाहिए जिसका विस्तार वर्मा एवं भारत के पूर्व-दक्षिणी भागों के बीच में है एवं जो हिन्द-महासागर का उत्तरी हिस्सा है। अपर-समुद्र की पहचान आजकल के पश्चिमी समुद्र से की जाती है जिसे हम अरब सागर कहते हैं। आजकल के महाराष्ट्र के उत्तरी-पश्चिमी हिस्से के समुद्री भाग को प्राचीन-काल में अपरान्त कहा जाता था। हमें बौद्ध परम्पराओं से ज्ञात होता है कि इसी अपर समुद्र के किनारे भरुकच्छ एवं सुपीरक[5] जैसे अंतरराष्ट्रीय बन्दरगाह थे जिन के द्वारा पश्चिमी एशिया से समुद्री भाग द्वारा व्यापार होता था। सिन्धु-घाटी की सभ्यता के समय (३०००—१००० ई० पू०) भी अपर समुद्र व्यापार का प्रधान मार्ग था। इसके किनारे भी विकसित पोतस्थल उन दिनों भी थे जिन में से एक पोतस्थल लोथल का पता हाल ही में लगा है। पूर्वापर समुद्रों का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है। पणि लोग अपर समुद्र से हो कर पश्चिमी एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका के देशों के साथ व्यापार करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि औपनिषदिक काल के पूर्व से ही भारतीय समुद्र से परिचित थे। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी कहा गया है कि समुद्र जल का आगार है[6]। इसी उपनिषद् से मालूम होता है कि लोगों को इस बात की जानकारी थी कि पृथ्वी जल से घिरी है, समुद्र का उल्लेख प्रश्नोपनिषद्[8] में भी हुआ है। साधारणतया सिन्धु का अर्थ लोग नदी एवं समुद्र दोनों लगाते हैं लेकिन मुण्डकोपनिषद्[9] में स्पष्टतया समुद्र एवं सिन्धु को समुद्र एवं नदी के अर्थ में लिया गया है। इन विवरणों से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि लोगों को समुद्रों की जानकारी थी जिस की पुष्टि पुरातात्त्विक तथा पूर्ववर्त्ती एवं परवर्ती साहित्यिक साधनों से भी होती है।

नदी—

उपनिषदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नदी वाले प्रदेशों की जानकारी लोगों को काफी थी। मुण्डकोपनिषद् में समुद्र एवं पर्वत के साथ नदियों की भी गणना की गई है। यह देख कर आश्चर्य होता है कि किसी भी उपनिषद् में किसी भी नदी का नाम नहीं मिलता है यद्यपि सामान्यतया नदी के उल्लेख कई बार मिलते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में वैसी नदियों के उल्लेख है जो पूर्व एवं पश्चिम की ओर समुद्रों में गिरती थीं। इस संबन्ध में यद्यपि किसी खास नदी का नाम नहीं लिया गया है, फिर भी यह स्पष्ट है कि ये सिन्धु उस की सहायक नदियाँ, तथा गङ्गा एवं ब्रह्मपुत्र नदियाँ थीं। हमें बृहदारण्यकोपनिषद्[11] में पूर्व-वाहिनी एवं पश्चिम-वाहिनी नदियों के उल्लेख मिलते हैं, जो श्वेत पर्वत से उद्गमित होती थीं। यहाँ श्वेत

---

२. गीता प्रेस से प्रकाशित 'नारद-विष्णु-पुराणांक' पृष्ठ ६६१। ४. बृहद् २, १, १। ५. जातक ४६३। ६. बृह० १,२, ४, ११। २,४, ५, ११। ७. वही ३, ३, २। ८. प्रश्न, ५, ५। ९. मुण्डक १, ९। १०. छान्दो० ६, १०, १,२। ११. बृहद् ३. ८, ९,१०।

पर्वत का अर्थ स्पष्टतः हिमालय से है, इस से निकलने वाली पूर्व-वाहिनी नदियाँ गङ्गा, यमुना, सदानीरा, कोशी एवं ब्रह्मपुत्र प्रधान हैं। उसी प्रकार पश्चिम-वाहिनी नदियों में सिन्धु तथा उस की समस्त सहायक नदियों की गणना की जा सकती है जो पंजाब एवं सिन्ध में प्रवाहित होती हैं। इस प्रकार हमें नदियों के भी विवरण मिलते हैं। यद्यपि उन के नामों का सर्वथा अभाव ही है। इस का कारण यह था कि दार्शनिक ग्रन्थों में अन्य चीजों का उल्लेख प्रसंगवश ही होता है। ऐसा कोई प्रसंग नहीं आया जिस में किसी नदी विशेष का नाम बताने की आवश्यकता हो। जहाँ आवश्यकता भी पड़ी वहाँ 'नदी' नाम से सम्बोधनमात्र कर दिया गया। बृहदारण्यक[१२] उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने नदी का उल्लेख किया है जिसमें मछलियाँ रहती हैं। इन विवरणों से स्पष्ट है कि नदियों के बारे में लोग जानते थे कि कौन नदी कहाँ से निकलती है एवं कहाँ गिरती है।

पर्वत—

भारतीय जीवन में पर्वतों का विशेष महत्त्व है। भारत की जीवन-दायिनी सरिताएँ पर्वतों से निकलती हैं एवं इस देश को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध करती हैं। वैदिक साहित्य में पर्वतों के कई बार उल्लेख आते हैं जो अधिकतर पश्चिम भारत में थे, पर उपनिषदों के सारे भारत के प्रमुख पर्वतों के नामों के उल्लेख हैं। सबसे पहले कठोपनिषद्[१३] में पर्वत का उल्लेख सामान्य रूप से हुआ है जिसमें कहा गया है कि पर्वत की शृङ्खलाओं पर बरसने वाला पानी नीचे की ओर चला जाता है, पर पर्वत विशेष का नाम नहीं दिया गया है। कुछ विद्वानों के विचार हैं कि कठोपनिषद् की रचना कठ जाति के दार्शनिकों द्वारा हुई। ये कठ लोग पंजाब के निवासी थे एवं अभी चौथी सदी ईस्वी पूर्व तक ये सबल जनतन्त्र के रूप में विद्यमान थे। सम्भवतः इस पर्वत से मतलब कांगड़े की पहाड़ियों से रहा होगा जहाँ ऋषि ने स्वयं वैसे दृश्यों को देखा था। नामों के द्वारा भी कई पर्वतों का उल्लेख हुआ है। सुमेरु पर्वत का उल्लेख महोपनिषद्[१४] में मिलता है। सुमेरु का वर्णन लौकिक संस्कृत-साहित्य में बहुत ही अधिक मिलता है। पुराणों एवं महाकाव्यों में इसे पृथ्वी का मानदण्ड कहा गया है। इस की स्थिति पृथ्वी के मध्य में बतलाई गई है। विष्णुपुराण[१४] में इसे पृथ्वी रूपी कमल की कर्णिका कहा गया है एवं इसके दक्षिण में हिमवान् हेमकूट तथा निषध, तथा उत्तर में नील, श्वेत एवं शृङ्गी पर्वतों की स्थिति बतलाई गई है। बृहदारण्यक[१५] में हिमालय का उल्लेख श्वेत पर्वत के नाम से आता है एवं उससे निकल कर पूर्व एवं पश्चिम की ओर प्रवाहित होने वाली नदियों का उल्लेख है। स्पष्टतः यह हिमालय की ओर संकेत है। हिमवन्त की जानकारी लोगों को वैदिक काल में भी थी। उपनिषदों के जमाने में लोगों ने इस पर्वत के बारे में और अधिक जानकारी हासिल की एवं पता लगाया कि नदियाँ इसी से उद्गमित होती हैं। परवर्ती भारतीय-साहित्य में हिमालय के सम्बन्ध में काफी जानकारी मिलती है एवं इसे हिमवान्, हिमाचल, हिमवन्त, हिमाद्रि, नगराज आदि नामों से अभिहित किया गया है। अंगुत्तर-निकाय में इसे पर्वतराज कहा गया है। जातक की कहानियों में हिमालय-पर्वत का उल्लेख भी बहुधा आता है। हिमालय भारत में पश्चिमी छोर से पूर्वी छोर तक उत्तर दिशा से होकर, धनुष की प्रत्यञ्चा की तरह फैला है। एवं पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रों को स्पर्श करता है। कैलाश-पर्वत हिमालय का ही एक अंग है। प्राचीन भूगोल-वेत्ताओं के अनुसार हिमालय पर्वत पश्चिम में सुलेमान पहाड़ियों से लेकर पूरब में आराकान तक फैला है। तिब्बती साहित्य में भी हिमालय को देवता माना गया है एवं कैलाश को कांग्रिनवोये कहा जाता है। आरम्भिक बौद्ध-साहित्य में हिमालय काफी वर्णित है एवं अंगुत्तर निकाय में कई झीलों का उल्लेख है जो हिमालय पर स्थित थीं जैसे अनोतत, कन्नमुन्द, रथकार, चंदन्त, कुणाल एवं मन्दाकिनी। उपनिषदों में श्वेत पर्वत से निकलने वाली पूर्व-वाहिनी जिन नदियों का उल्लेख है, उनकी गणना ई० पू० दूसरी सदी के एक बौद्ध-ग्रन्थ

१२. बृहद् ४, ३, १८। १३. कठ. २. १, १४। १४. वि० पु०, द्वितीय अंश, भूगोल विवरण। १५. बृहद० ३. २, ९-१०।

मिलिन्द प्रश्न में की गई है जो संख्या में १६ हैं, यथा गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती, कुहू, गोमती, धूतपापा, वाहुदा, दृषद्वती, विपाशा, देविका एवं कौशिकी। उपनिषदों का विषय भूगोल नहीं था इसलिए अधिक विवरण हिमालय के बारे में नहीं मिलता है।

दूसरे पर्वतों में मंदराचल का उल्लेख महोपनिषद्[१६] में मिलता है। मंदराचल बहुत ही विख्यात पर्वत है एवं पुराणों में इसका विस्तृत विवरण मिलता है। समुद्र-मन्थन के समय यह पर्वत मथनी बना था। यह पर्वत बिहार के भागलपुर जिले में स्थित है। इस पर्वत पर उत्तरकालीन गुप्त राजा आदित्य वर्मा का एक लेख मिलता है। महेन्द्र पर्वत का भी उल्लेख इसी उपनिषद्[१७] में मिलता है। महेन्द्राचल का संकेत महेन्द्र पर्वत से है। यह पर्वत वह शृङ्खला है जो उत्कल प्रदेश में पूर्वी समुद्री किनारे पर स्थित है। जिसका मुख्य भाग गंजाम जिले में है। इसकी स्थिति गंगासागर से लेकर सप्त गोदावरी के मुहाने तक है, पर विशेष रूप से इस पर्वत की स्थिति महानदी एवं गोदावरी नदियों के बीच मानी जाती है। वा० रा० में इसे परशुराम का निवासस्थान माना गया है एवं महाभारत के अनुसार यहाँ परशुराम के आश्रम में कर्ण ने उनसे शस्त्रास्त्र की शिक्षा पाई थी। रघुवंश में इसकी स्थिति कलिंग में ही बतलायी गई है। श्रीपर्वत, पुष्पागार, वेङ्कटाद्रि, अरुणाचल एवं ऋषभ—ये महेन्द्र पर्वत की ही पहाड़ियां हैं। सह्य पर्वत का उल्लेख भी महोपनिषद्[१८] में आता है जो विन्ध्य ही की एक शाखा है। मलय पर्वत[१९] का उल्लेख भी हमें मिलता है। हमें पुराणों की सहायता से मालूम पड़ता है कि मलय पर्वत पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम था। ये वैदिक ऋषि थे एवं दक्षिण भारत में आर्य-सभ्यता के ये प्रथम प्रवर्त्तक माने जाते हैं। परवर्त्ती भारतीय साहित्य में इसे श्रीखण्डाद्रि या चन्द्राद्रि कहा गया है। इस पर्वत की स्थिति प्राचीन भारतीय ज्योतिषी एवं भूगोल-वेत्ताओं ने पश्चिमी समुद्री घाटी में बतलायी है, यह पर्वत नीलगिरि से कन्याकुमारी तक फैला है, एवं मैसूर तथा केरल इसके क्षेत्र हैं। इस पर्वत का उल्लेख दूसरी सदी ईस्वी के नासिक के गौतम पुत्र शातकर्णी के लेख में हुआ है। भारतीय साहित्य में मलय-समीर अत्यन्त विख्यात है, क्योंकि यह चन्दन की सुगन्धि से युक्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदों में यत्र-तत्र पर्वतों के भी उल्लेख हैं। इनके बारे में विस्तृत जानकारी उनमें नहीं दी गयी है, क्योंकि वे ग्रन्थ न तो भूगोल के हैं एवं न तो काव्य के। उनका विषय धर्म एवं दर्शन तक सीमित है। इसलिये जो भी विवरण आए हैं वे प्रसंगवश ही आए हैं।

मरुस्थल—

उपनिषदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि किसी बड़े मरुस्थल की जानकारी लोगों को थी। पर मरुस्थल की स्थिति के सम्बन्ध में हमे कोई सूचना नहीं मिलती है। महोपनिषद्[२०] में मरुस्थल का उल्लेख आता है। निदाघ नाम का एक व्यक्ति भौतिक साधनों में उसी प्रकार प्रवृत्त नहीं होता था. जिस प्रकार कोई यात्री मरुस्थल में कुछ दूर जाकर यात्रा करने के लिए आगे बढ़ना नहीं चाहता है। पीछे वह लौट आता है। इस विवरण से इतना संकेत अवश्य मिलता है कि किसी रेगिस्तान की स्थिति भारत में थी एवं सम्भवतः वह थार का रेगिस्तान रहा होगा जो राजस्थान में है। यह कोई निश्चित मत नहीं है, एक अनुमान मात्र है।

उपनिषदों से इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण भौगोलिक जानकारी हमें मिलती है। आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखकर उपनिषदों का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करें। प्राचीन भारतीय भूगोल के सम्बन्ध में बहुत ही सारगर्भित बातें हमें उपनिषदों में मिलती हैं। भारत की प्राकृतिक सीमा सदैव एक रही है, भले ही विभिन्न राजनीतिक सत्ताएँ यहाँ स्थापित हुईं, पर प्राचीन भारतीय भारत से मतलब उस भूमि से समझते थे जिसका विस्तार उत्तर में हिमवान् से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक, तथा पश्चिम में गन्धार (दक्षिणी-पूर्वी अफगानिस्तान) से लेकर पूर्व में प्राग्ज्योतिष (असम) तक फैली है। इसी भारत का पूर्व रूप हमें उपनिषदों में मिलता है। ●

१६. महो० ४,२६-३१। १७. महो० ३,३८। १८. महो० ५, १३६-१४०। १९. महो० ५, १३६-१४०। २०. महो० ३,५।

मेरे कुछ बिखरे विचार

[श्रीमती रामेश्वरी नेहरू]

कुरुक्षेत्र के मैदान में, हाथ में धनुष लिए, श्वेत रथ पर बैठे, युद्ध के लिए तैयार, अपने मित्रों, सम्बन्धियों, गुरु-जनों को लड़ने के लिए सम्मुख खड़े देखकर विषादमय दुःखित हृदय से विह्वल अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि अपने सम्मुख उन सब प्यारे सम्बन्धी कुटुम्बियों को मरने-मारने के लिए खड़ा देखकर मेरा दिल घबराता है। सिर चकराता है और मुझे ऐसा लगता है कि युद्ध का इरादा करके, लड़ने के लिए यहां जमा होकर हमने महापाप किया है। मैं अपने तीर से अपने उपास्य गुरु-जनों को और प्रिय कुटुम्बियों को नहीं मार सकता, जिनके बिना राज्य का सुख-भोग तो क्या मैं जीवित रहना भी नहीं चाहता। यह कहकर अर्जुन ने हाथ से धनुष फेंक दिया और निश्चित रूप से कह दिया कि मैं नहीं लडूंगा।

यहीं से भगवद्गीता का आरम्भ होता है। अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करने के लिए ही भगवान् ने ७०० श्लोकों की सारगर्भित यह गाथा कह सुनाई। जगद्-विख्यात इस अद्भुत धर्म-ग्रन्थ में जीवन बिताने का सर्वोत्तम और आध्यात्मिक ढंग सिखाया गया है। कर्म की महिमा, उसके भेद अनेक युक्तियों और प्रमाणों के साथ बताकर यह समझा कर कि कैसे कर्म करने से उसका पातक नहीं लगेगा; अर्जुन को युद्ध के समान घोर कर्म करने को तैयार किया।

गीता में अनेक मार्मिक रहस्य खोलकर रख दिए हैं जिनके भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं। श्री शंकराचार्य और उनके अन्य साथियों ने इसे ज्ञानमार्गी-संन्यासप्रधान ग्रन्थ माना है। दूसरे बहुत लोग इसे कर्मप्रधान मानते हैं। स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक ने भी इसे कर्म-प्रधान ही माना है। और मेरा विश्वास भी ऐसा ही है। इसी जटिल प्रश्न को लेकर अपने मन में उठते हुए कुछ उद्गारों को लिखने की धृष्टता कर रही हूँ। विद्वान् पाठकगण यदि इस सम्बन्ध में अपने विचार लिखने की कृपा करेंगे तो शायद इस गुह्य विषय को मैं ठीक से समझ सकूं।

सांख्यमार्गी बौद्धिक तत्त्वों की महानता की बात सुनकर तीसरे अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने भगवान् से कहा—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥

हे जनार्दन, यदि कर्म से बुद्धि अर्थात् ज्ञान को श्रेय समझते हो तो मुझे इस घोर कर्म में क्यों फंसा रहे हो?

उसके उत्तर में भगवान् ने कहा—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

यह दो मार्ग हैं अवश्य जो चिरकाल से परमार्थियों के लिए बताए गए हैं, परन्तु ज्ञान और कर्म की यदि तुलना की जावे तो कर्म ही को श्रेयस्कर मानना चाहिए। यथा—

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥

इस पर भगवान् ने अपना उदाहरण देकर कहा—

उत्सीदेयुरिमे लोका: न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

इसका अर्थ मैं यह समझती हूँ कि संसार जिसे भगवान् ने अपनी माया से रचा है और जिसमें जीव ने जन्म लिया है, उसके काम को बढ़ाने और आगे चलाने का उत्तरदायित्व सब जीवों पर है। इसलिए उन सबको कर्म करना चाहिए। परन्तु कर्म क्या है और अकर्म क्या है यह एक गूढ विषय है और कर्म करने से पहले इसको समझने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। भगवान् ने कहा—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि, यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

सांसारिक जीव को कर्म तो करते ही रहना चाहिए। यह तो केवल गीता में ही नहीं कहा है, दूसरे धर्मग्रन्थों में भी यही शिक्षा दी गई है। ईशोपनिषद् का दूसरा मन्त्र है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

इस सबसे मैं यह मानती हूँ कि कर्म तो करना ही चाहिए परन्तु कर्म, अकर्म और विकर्म का भेद भी अच्छी तरह से समझ लेने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। इस भेद को समझना कुछ सुगम नहीं है। भगवान् ने स्वयं ही कहा है कि विद्वान् और कवि भी इस भेद को नहीं समझ सकते। इसके लिए भारी चिन्तन और आत्मशुद्धि की आवश्यकता है। इसी सन्दर्भ में, भगवान् ने अर्जुन से कहा—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः॥
(४,१९)

इसी श्लोक से निष्काम कर्म का भाव सम्पादित होता है। ज्ञानी बिना कामना किए कर्म करते हैं, और वही श्रेष्ठ पुरुष को करना चाहिए। दूसरी बात यह है कि फल की आशा किए बिना काम करे और फल ईश्वरेच्छा पर छोड़ दे, उसकी कामना न करे। यथा—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥
(२,४७)

परन्तु चञ्चल मन को कामना-रहित कैसे बनावें। इस को संकुचित ममत्व से कैसे छुड़ावें यह बुनियादी सवाल है। मातृ-प्रेम का विस्तार कैसे करें, यह ढूंढ निकालना है। इसके लिए सत्संग ज़रूरी है। मनुष्य के भाव और विचार संगत से बनते और दृढ होते हैं। संगत महाजनों की, सन्त-साधुओं की, धर्म-शास्त्रों की अथवा उच्च साहित्य की चाहिए जिस से ज्ञानोपार्जन कर सकें। भगवान् ने कहा कि ज्ञान के सदृश पवित्र करने वाली कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इसी लिए अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करने को भगवान् ने पहले उस को ज्ञान दिया और यह बताया कि धर्म-संगत स्वधर्म करने में कोई पाप नहीं लगता। इस लिए इस धर्म-युद्ध में यदि तुम्हारे हाथ से श्रेष्ठ गुरुजनों का वध भी हो तो उसके लिए तुम्हें पश्चात्ताप नहीं करना चाहिए। अतः परशुराम से उसके पिता ने माता का वध कराया था।

अर्जुन के जीवन में महाभारत के प्रारम्भ में जैसा धर्म-सङ्कट का समय आया था ऐसा ही साधारण मनुष्यों के हृदय में भी सहस्रों बार आता है। ऐसे अवसर पर क्या करें क्या न करें ऐसा धर्म-सङ्कट सबके जीवन में समय-समय पर आ ही जाता है। इसके लिए भी भगवान् ने कहा है कि शास्त्रों के कथनानुसार कर्म करना चाहिए, परन्तु शास्त्र अनेकों हैं। गुरु, साधु और पण्डित भी अनेकों हैं और उन सब का मत भिन्न है; इसलिए कहा है—

वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः,
नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पंथाः॥

यहां एक दूसरा प्रश्न उठ खड़ा होता है कि महाजन किस को माना जाए। संसार में महाजन भी तो अनेकों हो गए हैं। इसके उत्तर में यही कहूँगी कि पहले तो मूल तत्त्वों को सब ही महाजन एक समान मानते हैं। भिन्न-भिन्न शब्दों में बात सब एक ही कहते हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—इन पांच यमों को कौन महापुरुष नहीं मानता अथवा पतंजलि के शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान पर भी सब ही धर्मनेता सहमत होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि कोई किसी, कोई किसी अङ्ग पर ज़ोर देता है। फिर स्वभाव और प्रकृति भी सब की एक समान नहीं होती। अपनी प्रकृति के अनुसार हर मनुष्य को अपना मार्ग चुन लेना चाहिए और उस मार्ग पर चलने वाले महापुरुष का अनुगामी बनना चाहिए।

जब एकबार यह निश्चित हो गया कि साधारण जन के लिए कर्म-मार्ग सर्वश्रेष्ठ है तब उसी में स्वार्थ त्याग कर लोक-संग्रह के लिए लग जाना चाहिए। पर-पीडा को अपनी पीडा मान कर, अपने से जितना हो सके उसको दूर करने का प्रयत्न करो। इसमें भक्ति और ज्ञान का समन्वय रहने से सन्तोष और शांति मिलेगी। संशय छोड़ कर अपना मार्ग निश्चय करके, भगवान् में विश्वास रख कर कर्म के द्वारा हम आत्म-शुद्धि करते जाएं तो इस दुःख-सागर-संसार को पार करने का सुगम रास्ता मिलेगा।

★ ★ ★

आधुनिक हिन्दी कविता में शोषित वर्ग

[श्री रवीन्द्रप्रकाश कुलश्रेष्ठ]

करुणा मानव हृदय की एक शाश्वत वृत्ति है। सम्भवतः देश और काल की सीमाओं को भी लांघ कर विभिन्न हृदयों की धड़कनों को एक सूत्र में गूंथने की सर्वाधिक क्षमता इसी वृत्ति में अन्तर्निहित है। तभी तो भवभूति ने करुण रस को ही एकमात्र प्रमुख रस के रूप में स्वीकार किया है—

'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद् ।'

आदिकवि का प्रथम उच्छ्वास भी तो इसी करुणा की शक्ति से व्यक्त होकर प्रथम अनुष्टुप् श्लोक में बँध गया था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

इसी करुणा की शाश्वत मानव-वृत्ति ने कवियों को शोषित पीडित मानवता को स्वर देने के लिए बाध्य किया है। हिन्दी साहित्य भी इस भाव-धारा से अछूता नहीं है। हिन्दी साहित्य ने युग की जन्म लेती हुई प्रवृत्तियों को अंगीकार किया है और जीवन की घुटन को स्वीकार न कर सदैव स्वच्छन्द समीर की सुरभि से अपना आँचल भिगोया है। गोस्वामी तुलसीदास से लेकर आधुनिक काल के नए कवि तक ने शोषित पीडित मानवता के प्रति अपनी सहानुभूति के भावसुमन अर्पित किए हैं। समाज के इस प्रबल उपेक्षित वर्ग की पीडा से पीडित, हिन्दी काव्य गगन के सूर्य श्री तुलसीदास की ये पंक्तियां प्रमाण का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती हैं—

'खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिज को बनिज न न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन सब सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाय का करी ॥

इस प्रकार पीडित मानवता के प्रति सजग एवं संवेदनशील कवियों में गोस्वामी जी का प्रथम स्थान है। भक्ति-गाथा-काल के इस अमर गायक से लेकर आज तक समाज से उपेक्षित इस वर्ग की साहित्य में पूर्ण उपेक्षा नहीं की गई। रीतिकाल में अवश्य, सुरा और सुन्दरी का चहेता कवि कांचन और कामिनी के मायाजाल में फंस कर समाज के इस महत्त्वपूर्ण वर्ग की ओर से आंखें मूंदे रहा, किन्तु आधुनिक काल में हिन्दी को नया रूप मिला, नए मान मिले। नारी के नखशिख-वर्णन से हट कर उसने अपने चारों ओर फैले वातावरण को देखा। देश और समाज के प्रति उसके हृदय में तूफान उठा। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के उद्घोष, 'हाहा भारत दुर्दशा न देखी जाई' से लोगों की आँख खुली और श्री प्रतापनारायण मिश्र ने अभाव की समूची अनुभूति इन पंक्तियों के एक-एक शब्द में अभिव्यक्त कर दी—

बहुतेरे जन द्वार-द्वार मंगन बन डोलहिं।
तनिक नाज हित दीन बचन जेहि तेहि ते बोलहिं ॥

द्विवेदी युग के मूर्धन्य कवि सुधारवादी प्रवृत्ति से प्रेरित हुए और अछूतोद्धार व दीन-दुःखियों में फैली सामाजिक हीनता से उनका हृदय द्रवित हो उठा। श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' तथा 'हिन्दू' में जहाँ प्राचीन संस्कृति एवं नैतिकता के प्रति आग्रह था, वहाँ इनमें वर्णित सामाजिक अभावों की ओर पैनी दृष्टि भी थी और शस्यश्यामल के वरद किन्तु पीडित पुत्र के प्रति पूर्ण सहानुभूति भी, जो 'किसान' काव्य के रूप में प्रस्फुटित हुई।

हिन्दी साहित्य का छायावाद काल अछूते भावों, स्वर्णिम कल्पनाओं और अनुभूतियों के मानवीकरण का युग रहा है। इस युग में कवि ने जहाँ रहस्य और कल्पना के असीम गगन में विहार किया, वहाँ वह धरातल पर भी उतरा और पीडित, उपेक्षित वर्ग के बिखरे-छितरे सौन्दर्य के प्रति भी आकर्षित हुआ। श्री सुमित्रानन्दन पन्त की 'ग्राम्या' इसका उज्ज्वल प्रमाण है।

गोस्वामी तुलसीदास से लेकर छायावादी युग के कवि तक ने किसान तथा अन्य शोषित वर्ग के प्रति अपनी निष्ठा के सुमन अर्पित किए हैं, किन्तु उनमें केवल सहानुभूति की ही गन्ध स्पष्ट होती है, उनकी

समस्याओं के लिए संघर्ष की भावना का चित्र नहीं उभरता। 'ग्राम्या' के कवि ने स्वयं अपने शब्दों में स्वीकार किया है—

'इनमें पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है।'

राजनीति में जागृति के साथ ही समाज, धर्म और आर्थिक व्यवस्था में भी क्रान्ति परिलक्षित हुई। साहित्य में नवीन चेतना आई और नई मान्यताएँ अपनाई गईं। भारतेन्दु और द्विवेदी युग के सुधारवादी काव्य में जहाँ विदेशी के प्रति आक्रोश और स्वदेशी के प्रति ममत्व की भावना को बल मिला, छायावादी काव्य में उपेक्षित को सहानुभूति का पात्र बनाया गया, वहाँ क्रान्ति के पश्चात् समाज के ढांचे में पूर्ण परिवर्तन की आवाज़ उठी और आर्थिक समानता के उद्घोष ने हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद को जन्म दिया। प्रगतिवाद ही वह काव्य धारा है, जिसमें पीडित व शोषित को पूर्ण समर्थन मिला उसके प्रति सहानुभूति से हट कर उसके लिए कुछ करने और मरने की आवाज़ ने बल पाया, और युग-युग से उपेक्षित यह शोषित वर्ग काव्याभिव्यक्ति का प्रधान माध्यम बन गया। आज भी वह आवाज़ मंज़िल तक पहुँचने के लिए मचल रही है, और दूने वेग से पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था को झकझोर रही है—

'इस दुनिया में दो दुनिया हैं,
जिनके नाम गरीब अमीर।
पर सोने के महल उठे हैं,
मिट्टी का ही सीना चीर॥'

—नरेन्द्र

१. पृष्ठभूमि—१९३६ से पूर्व की कविता—

विगत तीस वर्षों का समय ही संत्रस्त मानवता के प्रति सद्भावना एवं समर्थन का युग रहा है। उससे पूर्व की हिन्दी कविता भगवान्वाद, छायावाद एवं रहस्यवाद के भावों, अनुभावों से बोझिल थी। द्विवेदी युग के देदीप्यमान श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने गरीबी को निजता का बाना पहना कर शोषित को सन्तोष का भुलावा दिया है—

हों किसी के महल बड़े ऊँचे,
वह उन्हें देख ही नहीं पाती।
क्यों न होवे गिरी पड़ी टूटी,
झोंपड़ी है उसे बहुत भाती॥

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने उनकी परवशता का चित्र खींचा है और मां भारती के उपासकों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया है—

कड़ी धूप से तीक्ष्ण ताप से तनु है जलता,
पानी बन कर नित्य हमारा रुधिर निकलता।
यदपि हमारे यहाँ सदा शुभफल है फलता,
रहता सदा अभाव, नहीं कुछ भी वश चलता॥

—किसान

राष्ट्रकवि की इन कविताओं ने भले ही बग़ावत की आवाज़ न उठाई हो, किन्तु नई पीढ़ी के कवियों को अद्भुत प्रेरणा अवश्य दी। उन्होंने जो भावधारा बहायी, वही झरना बन आज पूंजीवादी शिलाओं से टकरा-टकरा कर नई आवाज पैदा कर रही है।

भगवान्, भाग्य और परवशता से छाए इस युग की कविता हृदयोच्छ्वास के रूप में कोमलता एवं मधुरता से मंडित छायावाद के काल्पनिक जगत् की स्वर्ण वीथिका में ही विचरण करती रही—

सुदिन मणि वलय विभूषित,
उषा सुन्दरी के कर का संकेत।
कर रही हो तुम किसको मधुर,
किसे दिखलाती प्रेम निकेत॥

—प्रसाद—किरण

और छायावाद अपनी अगली सीढ़ी रहस्यवाद में निराकार के प्रति प्रणय की याचना में आत्म-निवेदन के झकोरों में उलझ गया—'मैं नीर-भरी दुःख की बदली'—(महादेवी वर्मा—सांध्यगीत) किन्तु जीवन की यथार्थताओं ने इस उलझन को अधिक टिकने नहीं दिया। जन-मानस की उर्वरा में जो बीज तुलसी से लेकर गुप्त जी ने बोए थे, उन्हें अपने विद्रोही स्वर से सर्वप्रथम सींचा महाप्राण निराला ने। कोमलता के सरल चितेरे सुमित्रानन्दन पन्त और राष्ट्रीयता के गायक माखनलाल चतुर्वेदी ने भी इस स्वर को अपने गीत दिए, अपनी लय दी और एक बार हिन्दी काव्य, कल्पना की कंचन किरणों के रथ से उतर कर जनता-जनार्दन के बीच आ गया और पीड़ित दलित मानवता को एक बार फिर गले लगा लिया।

२. नए युग का प्रवेश—

मशीनी सभ्यता का प्रादुर्भाव—यह युग हिन्दी कविता का नया युग था। नई भोर की नई किरणें अपने मृदुल और उष्ण स्पर्श से जन-मानस की सांसें गर्म कर उठीं। इसके पीछे औद्योगिक क्रान्ति का एक इतिहास है। १९३१ से १९३९ तक भारत एक कल्पनातीत औद्योगिक दौर से गुजरा और मशीनी युग अपने पंजे आगे बढ़ाने लगा। इससे जहाँ पूंजीवाद को बल मिला, वहाँ उसका विरोधी तत्त्व भी प्रकाश में आया और शनैः-शनैः यह दो बड़ी शक्तियों में बँट गया, पूंजीपति और सर्वहारा वर्ग अर्थात् शोषक और शोषित।

समाजवादी विचारधारा का जन्म—उसी समय शोषक और शोषित का एक और व्यापक क्षेत्र भारत में अपनी जड़ें जमा रहा था। भूमि से सोने जैसी फसल उगाने में अपना खून और पसीना एक कर देने वाला किसान उसका मालिक न था। वह जमींदार का गुलाम था। अतः जमींदार और किसान भी शोषक और शोषित के पर्याय बन गए। इस प्रकार मजदूर और किसानों में वर्गचेतना का ज्वालामुखी गर्म होता रहा। वर्गसंघर्ष की इस तीव्रता ने समाजवाद को जन्म दिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन—१९३६ में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम ने बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया और १९३६ में स्वायत्त-शासन के अधिकार कांग्रेस को मिल गए। किन्तु इससे दीनहीन जनता स्वतन्त्रता की सांस न ले सकी और आन्दोलन ने भयंकर रूप ग्रहण कर लिया और फलस्वरूप १९४२ के विध्वंसकारी असहयोग के दर्शन हुए। इसमें भी दबी-पिसी जनता और शासकों के बीच सीधा टकराव था। चारों ओर सुनाई पड़ता था, 'नहीं रखनी सरकार, जालिम नहीं रखनी।'

पीड़ित जनता के लिए कविता— ये परिस्थितियाँ भारतीय जन-समाज में समाजवादी विचारधारा विकसित करने के लिए पर्याप्त थीं। भारत में साम्यवादी पार्टी के जन्म और उस के फैलाव के साथ-साथ कांग्रेस भी इसी विचारधारा को अपना केन्द्रबिन्दु मान कर अपने सिद्धान्तों में समाजवादी समाज-रचना का स्वप्न साकार करने को उत्सुक हो उठी। इन बातों का सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा कि पीड़ित-शोषित-वर्ग, समाज के चित्र में सबसे अधिक उभरा और उसने युग के साहित्यकार और कवि को सबसे अधिक आलोडित किया।

इस प्रकार Poetry for Masses का नारा बुलन्द हुआ और पुराने परम्परावादी मूल्यों के स्थान पर नए मूल्यों का प्रतिष्ठापन हुआ। नए युग को सबसे अधिक प्रभावित किया इसी सर्वहारा वर्ग ने। कलाकार की आस्था भगवान् और देवी-देवताओं की वन्दना से हटकर स्वदेश, राष्ट्र और मानवमात्र के कल्याणकारी उदय की ओर उन्मुख हुई। सर्वहारा वर्ग इस नई कल्पना की सबसे बड़ी इकाई थी, इसी लिए यही काव्याभक्ति का प्रमुख प्रेरणास्रोत बन गया।

नई चेतना-धर्म की जीर्ण केंचुल फाड़ कर आगे बढ़ी। उस का स्थान देश, राष्ट्र और मानवता ने ग्रहण किया। सर्वहारा-वर्ग ने मानव को न केवल पुराने कला सम्बन्धी दृष्टिकोण को बदला है, वरन् उस की कला सम्बन्धी चेतना की गति में भी परिवर्तन उत्पन्न कर दिया।

प्रगतिवादी काव्यधारा का धरातल— काव्यधारा के इस अपेक्षित मोड़ को नया नाम मिला प्रगतिवाद अर्थात् परम्परावाद से विद्रोह कर नवीन और अपेक्षित यथार्थवाद को जीवन का अनिवार्य विचारणीय विषय बना दिया।

यथार्थवाद— हिन्दी-कविता अपनी कमनीयता का मोह त्याग कर किसान मजदूरों के खेतों, मिलों और उन की झोंपड़ियों के दर्शन करने लगी और नई भाव-भूमि पर नए प्रयोग होने लगे। देश में हुई आर्थिक क्रान्ति के फलस्वरूप ही इस यथार्थवाद के दर्शन हुए। इस यथार्थवाद ने हिन्दी कविता को अनेक विप्लवकारी स्वर दिए, जिस से समाज का खोखलापन हिल उठा।

'समाज की अर्थनीति ही सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आदि के स्वरूप की रचना करती है। ...हम साहित्य को व्यक्ति से या समाज के यथार्थ से अलग रख कर नहीं परख सकते, इस लिए आज की कविता, पिछले सभी युगों की भान्ति ही सामाजिक यथार्थ की उपज व रचना है, जिसे वर्तमान अर्थनीति ने ही रूप प्रदान किया है।' (आज के कवि-ललितमोहन अवस्थी)

यह नई कविता जीवन के बिल्कुल निकट थी, कोरी कल्पनाओं से सर्वथा दूर। वीरेन्द्रमिश्र के शब्दों में 'दूर होती जा रही है कल्पना, पास आती जा रही है जिन्दगी'। पुरानी कल्पनाओं को परित्याग कर नई कल्पनाएं ग्रहण करने की आवाज उठी। गोपालसिंह नेपाली के शब्दों में—

'कल्पना करो, नवीन कल्पना करो।'

शोषित वर्ग— प्रगतिवादी काव्य-धारा का मुख्य धरातल यही यथार्थवाद की नई कल्पना थी, जिस का मुख्य पात्र था शोषित-वर्ग। शोषित-वर्ग किसी एक सीमित समुदाय से सीमित न था।

(१) किसान— पीडित मानवता के अनेक रूपों ने हिन्दी की इस नई कविता को प्रभावित किया, किन्तु सबसे अधिक यदि किसी वर्ग विशेष ने युग की मान्यताओ को झकझोरा, तो वह था भारतीय किसान, क्योंकि राष्ट्रकवि के शब्दो में—

सौ में पचासी जन यहाँ निर्वाह कृषि पर कर रहे।
पाकर करोड़ों अर्ध-भोजन सर्द आहें भर रहे॥
—(भारत भारती)

किसान देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य स्रोत है। अतः गोस्वामी तुलसीदास से लेकर आज तक इस अकेले मानव रूप ने हिन्दी कविता को सबसे अधिक प्रभावित किया है। 'सामान्य मानवता पर प्रथम महत्त्वपूर्ण कविता महावीरप्रसाद द्विवेदी की कल्लू अल्हैत की जीवनी' थी।[1]

किसान देश का जीवन, उसके नव-निर्माण का प्रमुख आधार स्तम्भ है। धरा के इस कर्मठ सेवक के बल पर राज्यों और देशो का भविष्य निर्भर है।

श्री सोहनलाल द्विवेदी के शब्दो में—

इन राज्यों की ईंटें महान,
इन राज्यों की नींवें महान।
इन की दीवारों की उड़ान,
इन की प्राचीरों की उडान॥
वह तेरी हड्डी पर किसान,
वह तेरी पसली पर किसान।
वह तेरी आंतों पर किसान,
नस की तांतों पर किसान॥

बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था के फलस्वरूप किसान और उसके परिवार के जीवन में जो नई आशा का संचार हुआ है उस का जीवन्त चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

जो सृष्टि के निर्माण-हित
बोए तुम्हारी साधना ने बीज थे
वे पल्लवित
सपने पलक की छांह में
पा चाह
शीतल ज्योत्स्ना की गोद में खेले!
अरी इन डालियों को बांह में ले ले!
उठो!
कन्याकुमारी से अखिल कैलास कि वासी
सुनो, गूंजी नई झंकार!
हर्षित हो
उठो परिवार सारे गांव के देखो
कि चित्रित हो रहे अरमान!
काटो धान, काटो धान,
काटो धान! —महेन्द्र भटनागर

(२) मज़दूर—देश की आर्थिक क्रान्ति में औद्योगिक सभ्यता का प्रमुख हाथ रहा है। अतः किसान के बाद यदि किसी ने भारतीय-समाज, जन-मानस और साहित्यकार को आलोडित किया तो मशीनी युग के सर्वाधिक पीडित मज़दूर ने। कवि पन्त के शब्दों में—

'वह पवित्र है: वह जग के कर्दम से पोषित।
वह निर्माता: श्रेणी, वर्ग, धन. बल से शोषित॥

यह छायावादी कवि की सहानुभूति है। प्रगतिवादी कवियों की बुलन्द आवाजों में सुनिए—

(१) नङ्गी ही धरती पर सोते हैं
खांसते-हांफते
रोज की बदबू में सड़ते हैं दुनिया की।
—केदारनाथ अग्रवाल

(२) मैले-मैले
कपड़े पहने
वे क्या जाने
कैसे गहने?

---

१. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास—डॉ० श्रीकृष्णलाल।

कपड़ों के निर्माता
पर अधनङ्गे
और अचानक
एक दिवस फिर
आहें भर कर
हो कर जर्जर
भूखे नङ्गे
चल देते हैं
स्वर्गपुरी को ! —महेन्द्र भटनागर

३. कर्मचारी— किसान और मजदूर, शोषित पीडित मानवता के प्रत्यक्ष रूप से किन्तु परोक्ष रूप से एक मानव-वर्ग कार्यालयों की चारदीवारी में पिस रहा था। लालफीताशाही का सबसे बड़ा शिकार था कर्मचारी-वर्ग अथवा मध्यवित्त परिवार का दुर्बल संचालक, जिसे आफिस के अनुकूल अपना स्तर बनाए रख कर अपने परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता। न उसके पास कोई खेती और न अन्य कोई आय का साधन। राई सरीखा वेतन और ऊंट का मुंह फाड़ती-सी महंगाई। दस बजे से पांच बजे तक फायलों से सर मार कर शाम को चाय के दो घूंट पी कर सो जाने वाला वह व्यक्ति बहुत दिनों तक सहानुभूति की दृष्टि से ओझल रहा। राष्ट्रकवि के शब्दों में—

सिर झुका लिखते रहो, सुन अफसरों की गालियां।
तो रात को भी दे सकें दो रोटियां घर वालियां॥

शासकों के मन-माने व्यवहार से पीडित यह शासित, किसी शोषित से कम नहीं। धीरे-धीरे इनमें चेतना आई, यूनियनें बनीं और आवाज उठी। उस वर्ग ने हिन्दी-काव्य के मर्मस्थल को स्पर्श किया। 'आधुनिक गतिशील हिन्दी-कविता के विविध रूप, रंग तथा रेखाओं से अलंकृत करने में भी प्रमुखतः इसी वर्ग का क्रान्तिकारी योगदान रहा है।'[1]

४. नारी— समाज का सबसे कोमल और मर्म-स्पर्शशील पात्र है नारी। नारी को चक्की, चूल्हे और घर की चारदीवारी में बन्द कर दासी से भी निम्न समझा गया तो राष्ट्रकवि की वाणी आर्तनाद कर उठी—

अबला-जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी॥

नारी के अनेक रूपों ने समाज के शोषण को स्वीकार किया है। उनमें प्रमुख हैं परित्यक्ता, विधवा भटकी हुई नारी। विधवा की असहाय अवस्था से महाप्राण निराला का हृदय रो उठा—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी।
वह दीपशिखा-सी शान्त, भाव में लीन॥
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति की रेखा-सी।
वह टूटे तट की छुटी लता-सी दीन॥

५. अछूत— सब हीन कर्मों का उत्तरदायित्व ढोने वाले और सम्पूर्ण समाज द्वारा हेय दृष्टि से देखे जाने वाला 'अछूत' युग-युग से सम्प्रदाय और पण्डितवाद के थपेड़े खा-खा कर सबसे अधिक शोषित रहा है। दैनिक जीविका के सम-सामाजिक कार्य पाने और अपनी वेदना को भी कहने का अनधिकारी यह वर्ग अपनी भूख, प्यास और तमाम अवस्थाओं का गला घोंटता रहा। कविवर सियारामशरण गुप्त की 'एक फूल की चाह' कविता इसी वर्ग की करुणा की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है—

यहीं चिता पर धर दूंगा मैं,
कोई अरे सुनो वर दो।
मुझ को देवी के प्रसाद का,
एक फूल ही ला कर दो॥'

यही उपेक्षित, अपमानित-वर्ग हमारे समाज का सबसे सशक्त अंग रहा है। सहनशीलता की साकार मूर्ति अछूत, महात्मा गांधी की सहानुभूति का पात्र बन कर, उन की वाणी का स्पर्श पाकर हरिजन बन गया और किसी भी सवर्ण से शुचिता और शालीनता में कम न रहा। श्री आरसीप्रसादसिंह उसे सबसे अधिक पवित्र मानते हैं—

रे कौन तुम्हें कहता अछूत,
तुम तो हरिजन, पावन उदार।
शुचि सुरसरि से धो बहा रहे,
युग-युग से जग का कलुष भार॥'

और आज भी यह वर्ग देश के प्रबुद्ध विधायकों का आशीर्वाद पा कर भी समाज में अपना स्थान पा लेने में पूर्ण समर्थ नहीं हुआ है। (शेष आगामी अंक में)

---

१. आधुनिक प्रगतिशील हिन्दी-कविता—शोधप्रबन्ध—दुर्गाप्रसाद झाला।

कांगड़ा का सांस्कृतिक अध्ययन

गद्दी लोक-जीवन और लोक-गीत

[श्री अमरनाथ शर्मा]

कांगड़ा प्रदेश प्राकृतिक सौंदर्य में अपनी बराबरी नहीं रखता । इसके चारों ओर की गगनचुम्बी पहाड़ियां इसके सौन्दर्य में चार चांद लगा देती है। यहां की धौलाधार, जहां सारे साल बर्फ जमी रहती है एक अद्भुत दृश्य उपस्थित करती है। इस सौन्दर्य का निकटता से और सही अर्थों में यदि किसी ने लाभ उठाया है तो वह चम्बा, पालमपुर, धर्मशाला के ऊपर की पहाड़ियों में रहने वाले गद्दी लोगों ने। ये लोग हमारी भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। सरकारें बदल गईं, हमारी धारणाएँ बदल गईं, परन्तु क्या मजाल जो उनकी निजी धारणाओं में तनिक भी अन्तर आया हो। अपने पूर्वजों की धारणाओं का दृढता और कट्टरता से पालन करते चले आ रहे हैं। कहा जाता है कि विदेशी आक्रमणों के कारण कई सौ वर्ष पहले ये लोग पहाड़ों में जाकर ठहरे थे और अब यहां से निकलने का नाम नहीं लेते।

पहाड़ों में रहते हुए भी ये लोग काफी अमीर हैं। इनकी प्रमुख आजीविका भेड़-बकरियां पालना है, और जिसके पास जितनी अधिक भेड़-बकरियां हों उतना ही वह अधिक अमीर माना जाता है। ऊन का व्यापार और भेड़-बकरियों का व्यापार भी ये करते हैं। 'गद्दी' शब्द किसी जाति के लिए प्रयुक्त नहीं होता। इसे हम एक कबीला कह सकते हैं। गद्दी लोग ब्राह्मण, राजपूत, खत्री आदि जातियों के होते हैं। उच्च और निम्न दोनों प्रकार की श्रेणियाँ इनमें होती हैं। इनके विवाह भी आपस में ही होते हैं। विवाह की प्रथाएँ भी लगभग कांगड़ा निवासियों से मिलती ही हैं। ये लोग सर्दियों के दिनों में मकानों को ताला लगाकर अपनी भेड़-बकरियों सहित कांगड़ा के गांवों में आ जाते हैं और सर्दी के छः महीने यहां व्यतीत करके जाते हैं। अपनी जाति के इलावा जब किसी अन्य व्यक्ति से बातचीत करेंगे तो इनका 'मित्र' शब्द सम्बोधन होता है। गांव वाले लोग इनकी स्त्रियों को 'मित्रनी' कहकर पुकारते हैं।

गद्दी लोगों का पहरावा भी एक विशेष प्रकार का होता है। पुरुष एक ऊन का लम्बा-सा चोला पहनते हैं और कमर में एक काली ऊन का काता हुआ एक डोरा-सा लपेटे रहते हैं। इनकी गद्दनें भी एक लम्बी-सी फराक की किस्म का चोला और काला डोरा पहने होती हैं। गद्दियों का चोला इतना खुला होता है कि उसमें एक-दो भेड़ या बकरी के बच्चे रखे जा सकते हैं।

पंजाबी जीवन खुलेपन के लिए प्रसिद्ध है, परन्तु मेरा विचार है कि गद्दी जीवन में जितना खुलापन है वह शायद ही कहीं हो। इनकी इच्छाएँ बहुत सीमित, इसलिए इनकी विपत्तियाँ भी उतनी सीमित। भोले-भाले ये लोग सारा दिन जंगलों में घूमते फिरते हैं और रात आग के पास बैठकर ही बिता देते हैं। वर्षा हो या आंधी, तूफान हो या झखड़ परन्तु इनके नित्य कार्य में कोई परिवर्तन नहीं। पुरुष-स्त्रियाँ, लड़के-लड़कियाँ बिना किसी भय के स्वतन्त्रता से जंगलों में भेड़ें चराते फिरते हैं। इतना महान् चरित्र शायद ही किसी अन्य जाति में हो। गद्दी पुरुष जंगलों की सर्दी में घूमकर भी हृष्ट-पुष्ट और इनकी गद्दनें विकट परिस्थितियों में सौन्दर्य की प्रतिमाएँ हैं। इनके सौंदर्य का प्रमाण तो इस बात से मिल जाता है कि यहां के पहाड़ी राजाओं ने बहुत-सी गद्दनों से विवाह किया हुआ था और इनके सौन्दर्य पर मुग्ध थे।

सर्दी समाप्त होने के बाद ये लोग अपने घरों में वापिस आ जाते हैं। चम्बे और पालमपुर की पहाड़ियों में जहाँ ये रहते हैं उस इलाके को 'गदेरन' कहा जाता है। इस व्यस्त जीवन में वे अपनी खुशी और गमी भी लोक-गीतों द्वारा प्रकट करते हैं। अपनी लोक-भाषा में अनेकों ही गीत विभिन्न अवसरों पर गाते हैं। ये लोग मण्डलाकार रूप में गीत गाते हैं वैसे भी यहां के 'गभरू' और 'मुटियारें' जंगलों में गीत गा-गाकर अपने जीवन का विकास करते हैं। साहित्यिक दृष्टि से इन गीतों का चाहे महत्त्व न हो परन्तु इन

गीतों में भक्ति-भाव और प्रेम-भाव बहुत है। पंजाबियों में जिस प्रकार 'हीर-रांझा' आदि के किस्से प्रचलित हैं वैसे ही यहाँ भी गद्दियों में 'कूंजू' और 'चंचलो' के टप्पे प्रसिद्ध हैं और इनकी तरज ही बन गई है। यहां के विभिन्न लोक-गीतों में इन लोगों का लोकाचार और जीवन झलकता है। पहाड़ों को श्रेष्ठ बताती हुई एक युवती अपने प्रेमी से कहती है—

पहाड़ां दा रहणा, खरा ओ गद्दिया
पहाड़ां दा रहना खरा वो।... ...

शहरां शहरां विच नालू जे वगदे
पहाड़ां विच वगदी गंगा ओ।... ...

शहरां शहरां विच अफसर रहन्दे
पहाड़ां कोई नहीं आंदा ओ।

शहरां विच हुन्दीआं बडीआं धोखेबाजीयां
पहाड़ां दा धर्म ही खरा ओ।

पहाड़ां दा रहणा खरा ओ गद्दिया
पहाड़ां दा रहणा खरा ओ।

चम्बे की पहाड़ी से यहां की युवतियों को कितना अनुराग है। यह भाव भी एक लोक-गीत में प्रकट किया गया है—

गोरीया दा चित्त लगदा चम्बे दीया धारा
लाडो दा चित्त लगदा चम्बे दीया धारा।

चम्बे दीया धारा पौण फुहारां
ओढणू तां मिजी गया सारा।

घर घर चकरू घर घर बकरू,
घर घर मौज बहारां

गोरीया दा चित्त... ...

घर घर बिन्दलु, घर घर टिकलू
घर घर बांकियां नारां

गोरीया दा चित्त... ...

घर घर चरखे, घर घर पूणीयां
घर घर नारां कतारां

गोरीया दा चित्त... ...

यहां की गद्दनों के अनुपम सौन्दर्य ने पहाड़ी राजाओं को भी आकर्षित किया, परन्तु यह सौंदर्य ऐसा नहीं था कि जिसे केवल मात्र देखकर ही तृप्ति हो जाती। यह ऐसा सौंदर्य था जिससे मन कभी भी नहीं अघाता था। नीचे के गीत में शिकार के लिए आया एक पहाड़ी राजा एक गद्दन युवती के अनूठे सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता है और उससे विवाह करना चाहता है। अन्त में वह गद्दन से विवाह कर लेता है।

नगारे चुकी राजा हेड़े जो चढ़िया,
बांकी अही गद्दन नजरी आई।
ओ मेरीए बांकिए गद्दने

चार सपाही राजें दड़ दड़ भेजे,
बाहां ते चुकी डोलिए पाई,
ओ मेरीए बांकीए गद्दने।

छड़ी सां देना पहाड़ां दा रहणा,
पधरे मदानां जो आ,
ओ मेरीए बांकीए गद्दने।

छडी तां देना गद्दनी भुंजां दा सौना,
नुआरी दे पलंघे जो आ,
ओ मेरीए बांकीए गद्दने।

छडी तां देना गद्दनी तसलीयां दा खाना,
सुन्ने दीयां थालां जो ओ,
ओ मेरीए बांकीए गद्दने।

छीली छीली राजा गद्दनी जो पुछदा,
कुहदी कुहदी लगदी बुरी,
ओ मेरीए बांकीए गद्दने।

थोड़ी-थोड़ी बुरी राजा छेलुए दी लगदी,
भेडुए दी लगदी,
गद्दीए दे ताईं वगदी छुरी,
ओ मेरे हरीसिंहा गद्दिया।

राजा तो गद्दी को उसकी गद्दन के लिए एक लाख, दो लाख भी देने को तैयार है—

महलां दे नेडें गद्दी बकरियां चारदा
इन्हां पैरां दरशन दे ओ
मेरे हरीसिंहा गद्दिया
इक लख भंगे गद्दी दी लख देणा
पलमां दी देणी बजीर ओ
ओ मेरीए बांकीए गद्दने।

गद्दियों के लोक-गीतों में प्रेम भी बहुत प्रबल है। कूंजू और चंचलो यहां के प्रेमी और प्रेमिका प्रसिद्ध हैं।

राती बराती जांदा कूंजुआ
बैरीयां यारीयां बन्दूकां ओ
ओ मेरे जानी बैरियां मारीं बन्दूकां ओ
जे तू चलिया परदेश कूंजुआ,
मिजो देई जा निशानी ओ
पंज ओ रुपइए तेरे नाम चंचलो,

अंगूठी दिगा निशानी ओ
ओ मेरिए जिन्दे
लोक तो कहन्दे तिजो चुड़ैल चंचलो,
तू तो नगर बेल ओ
ओ मेरीए जिन्दे तू ता नगर बेल ओ—
कपड़े धोमां नाले रोमां चंचलों,
मुखें बोल जवानी ओ
ओ मेरिए जिन्दे बोल जवानी ओ
गोरी-गोरी बाहां तेरा चूड़ा चंचलो,
विच गजरा निशानी ओ
मेरिए जिन्दे, विच गजरा निशानी ओ

पहाड़ों में रह कर भी कभी-कभी मन ऊब जाता है, मन मैदानों में रहने को करता है। नीचे के गीत में एक गद्दन मुटियार मैदानों में बँगला डालने को कहती है—

पधरे मदाने बँगला पुआई दे
कन्नें बगीचड़ी लाणी ओ,
कन्नें बगीचड़ी लाणी ओ
घड़ीए.दुघे आली गागो जे लैणी
छड छड फिरदी नदानी ओ]

गद्दियों के गीत काव्यमय है और भक्ति-भाव से ओतप्रोत हैं। इनके गीत इनके अपने जीवन की तरह ही स्वच्छ है और इन गीतों में इनके जीवन का सही चित्र है। इनके जीवन में निर्धनता चाहे हो परन्तु इनके आगे महलों का जीवन भी तुच्छ-सा प्रतीत होता है। यहां के एक लोकगीत में ऐसा कहा गया है कि जो लोग अन्धेरे से डरते हैं वह प्रीत नहीं कर सकते। यहा के अनेकों ही लोक-गीतों में यहां के निवासियों की सभ्यता, मनोभाव और रहन-सहन की ओर संकेत मिलता है। भक्तिभाव से ओतप्रोत यहां की युवतियां अपने पति को कान्ह और कृष्ण कह कर पुकारती हैं। नीचे के गीत में एक गद्दन अपने प्रेमी या पति को यह प्रार्थना करती है कि वह समय पर घर आया करे—

राती दे हुंडणे जो छडी दे कान्हा
हुण होया घर बारी राम।
अगें तां तू था कान्हा गवालू
हुण होया घर बारी राम
महरीयां दा संग छडी दे तू कान्हा
हुण होया घर बारी राम।

गद्दी लोगों के पास इतने लम्बे-चौड़े मकान नहीं होते कि प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी अपना दुःख-सुख अकेले होकर सुना सकें। यदि सास और ससुर कहीं घर से बाहर गए हों तो युवतियों को अपने पति और प्रेमी से दिल खोल कर बात करने का अवसर मिल जाता है। नीचे के गीत में एक युवती अपने पति से उस रात ठहरने का अनुरोध करती है क्योंकि उसका सास और ससुर घर नहीं है इसलिए खुल कर बातें हो सकती हैं—

अज दीया राती रह मेरे गद्दिया
अज दीया राती रह ओ
अज दीया राती रह मेरे मित्रा
सौहरा भी घर नो, सस भी घर नी,
काल्हिया जो लगदा डर वो
अज दीया राती रह मेरे गद्दिया,
रह मेरे मित्रा
तेल भी दिंगी साबन भी दिंगी,
ठडियां वाउ डीयां नहाऊ
अज दीया राती
चौल भी दिंगी, दाल भी दिंगी,
तुड़के जो दिंगी घिउ
अज दीया राती
मंजा भी दिंगी, खिंद भी दिंगी,
तू ठंडियां बंग्गां विच सौ
अज दीया राती

इन गीतों के अतिरिक्त विभिन्न धार्मिक अवसरों पर इनके लोकगीत अपना ही महत्त्व रखते हैं। विवाहों में ये लोग इकट्ठे होकर नाचते भी हैं और गाते भी हैं। स्त्री और पुरुष दोनों ही इन अवसरों पर गाते हैं। कई अवसरों पर समूहगान भी होता है। जिस वातावरण में गद्दी लोग रहते हैं वहां पर इन गीतों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इनके गीत इतने रमणीय होते हैं कि जब सर्दी के दिनों में ये लोग कांगड़ा के विभिन्न गांवों में घूमते-फिरते हैं तो रात के समय इन गीतों के श्रद्धालु इनके पास आकर आधी-आधी रात तक इनसे गीत सुनते हैं। इनके गीतों में एक प्रकार का रस होता है जिसका आस्वादन करके साधारण बुद्धि वाला मानव भी एक तरंग में बह उठता है। ●

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण

[श्री सन्तराम आनन्द]

प्राचीन ज्योतिषियों के मतानुसार पृथिवी की परिक्रमा करने वाले नौ ग्रह हैं, जिनमें सूर्य, चांद, पांच तारा-ग्रह (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि) के अतिरिक्त दो और काल्पनिक पिंड भी शामिल हैं। इन काल्पनिक ग्रहों को राहु और केतु कहते हैं। पौराणिक गाथा के अनुसार राहु और केतु एक सैंहिकेय राक्षस के दो भाग हैं, जिसका सिर तो राहु है, और कबंध या धड़ केतु। यह दो भिन्न-भिन्न भागों का बना हुआ राक्षस जब सूर्य को अपना ग्रास बना लेता है, तो इसे सूर्य-ग्रहण कहते हैं, और जब यह चन्द्रमा पर प्रहार करता है, तो चन्द्र-ग्रहण की घटना हो जाती है।

सूर्य का प्रकाश हमारे जीवन का आधार है। चन्द्रमा भी सौंदर्य का प्रतीक है। जब किसी वस्तु की सुन्दरता से हम प्रभावित हो जाते हैं, तो इसकी उपमा चन्द्रमा से ही करते हैं। इसलिए ऐसे दो देवताओं का प्रकाश (अंतरिक्ष में) एकाएकी कुछ समय के लिए ही सही, छिन्न-भिन्न हो जाना साधारण मनुष्य के लिए एक बड़ी भयानक घटना जान पड़ती है। अभी-अभी इस तीक्ष्णांशु की तीक्ष्ण किरणें हमें परेशान कर रही थीं, कि एकाएकी इसकी रोशनी मद्धम होने लगी। सूर्य के तल को काले शीशे द्वारा देखने से किसी गोलाकार की छाया बढ़ती हुई दिखाई देती है। परन्तु आंकाश में कोई वस्तु के न देखे जाने पर प्राचीन समय के बुद्धिजीवियों ने एक काल्पनिक ग्रह (राहु-केतु) को जन्म दिया, किन्तु यह है क्या ? जो इतनी तीव्रता से इस तीव्र ज्योति को निगल सकता है। इसका कोई अस्तित्व होना चाहिए जो इस भयानक दुर्घटना को उत्पन्न कर सकता है। मनुष्य स्वभावतः अन्वेषक है। हर घटना का कारण जानना चाहता है। नन्हे-मुन्ने के रूप में भी यह वस्तुओं की जानकारी में प्रसन्नता का अनुभव करता है। अगर हो सके, तो इनको तोड़-फोड़ कर भी इनके भीतर का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यात्री दूर-दूर देशों की यात्रा क्यों करता है ? किसी ज्ञान की खोज के लिए; जिस ज्ञान को पाकर वह अपनी अल्पबुद्धि का विकास करता है, और संसार की महत्ता और इसके कर्त्ता का भी कुछ अधिक अनुभावक हो जाता है। इसी अंतःकरण से प्रेरित हुआ मनुष्य हर प्रकार की खोज के लिए तत्पर रहता है। ऐसे ही आवेग से आवेश में आकर इस ने इस भयानक दृश्य को एक कथा का रूप दिया, और ग्रहण की समाप्ति पर स्नान और पुण्य-दान की प्रथा चलाई। राहु-केतु को राक्षस का रूप देकर और फिर सूर्य और चांद को इसके आक्रमण से बचाने के लिए साधारण धर्म के अनुसार दान-पुण्य की रीति को प्रचलित किया।

अर्थात् इन दो देवताओं को ऐसे संकट से छुड़ाने के लिए अपने धन को योग्य व्यक्तियों में बखेरने को अनिवार्य ठहराया। क्योंकि सामान्य धर्म अनुसार धन का परिग्रह पाप माना गया है। धन के परिग्रह से देवताओं का परिग्रह होता है। और इसके अपरिग्रह से उनका भी अपरिग्रह होता है। इसलिए मनुष्य के लिए यह एक परमधर्म माना गया है। वेद में भी ऐसा ही निर्देश है कि—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर

सौ हाथों से धन का संग्रह करो अर्थात् खूब कमाओ, परन्तु हज़ार हाथों से इसे बखेर दो। क्योंकि यश, शान्ति, उत्कृष्टता आदि के लिए यह कर्म अनिवार्य है।

ग्रहण के सम्बन्ध में उपरोक्त विचार धर्म-व्यवस्था के अतिरिक्त एक दन्तकथा ही समझनी चाहिए, क्योंकि इसमें कोई ऐतिहासिक अथवा दार्शनिक विचार नहीं। और दूसरे यह भी है, कि ग्रहण को एक दुर्घटना का संकेत मानना अन्य देशों से आया हुआ विचार जान पड़ता है। उदाहरणार्थ यूनान देश के प्राचीन इतिहास में एक वर्णित कथा है। ईसा के जन्म से ४१३ वर्ष पहले की घटना है कि एथन्स और

स्पार्टा के देशों में परस्पर युद्ध छिड़ गया। एथन की सेना ने एकाएकी दूसरे देश पर आक्रमण कर दिया। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अभियान असफल रहा, और जब आक्रमण करने वाली सेना वापस लौटना चाहती थी, तो इसी समय चन्द्रग्रहण की घटना हो गई।

उस देश के ज्योतिषियों ने इसे एक बड़ी दुर्घटना बता कर किसी भी कार्य के करने को निंदित ठहराया। सेना का आगे-पीछे हटना केवल अशुभ ही नहीं, किन्तु ऐसे कार्य चन्द्रमा को ग्रसने वाले राक्षस के कोप को उत्तेजित करना है। जिससे एक बड़े भारी कष्ट को अपने समक्ष खड़ा हुआ देखना पड़ता है। उस समय के लोग पाप-भीरु तो थे ही, इस प्राकृतिक घटना का ठीक-ठीक कारण न जान कर इन बताए हुए परिणामों मे पूर्णतः अंध-श्रद्धा रखते थे। इसी कारण से इन्होने कुछ समय के लिए पीछे लौटने के विचार को हटा दिया। ऐसी अवस्था देखकर स्पार्टा वालो ने उलटा अभियान कर दिया, और आराम में पड़ी हुई सेना को घेर कर इसका सफाया कर दिया। प्राचीन इतिहास ऐसी ऐसी बहुत-सी घटनाओं का साक्षी है कि ईश्वर के खेलों का अस्तित्व न जानने से मनुष्यों को कैसे-कैसे संकटो का सामना करना पड़ता है, और बिना किसी अपराध के दुःख का पहाड़ सिर पर उठाना पड़ता है।

अतः उपर्युक्त बातों से आपको ज्ञात हो गया होगा कि दन्त-कथाओ को बिना किसी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रमाण के मान कर और फिर श्रद्धा के नाम पर इनकी प्रक्रिया में जुट जाना विपद्ग्रस्त ही होना है। इसलिए यह श्रद्धा नहीं, वरन् यह केवल अश्रद्धा है। क्योकि श्रद्धा संकट निवारक है, और इसका आधार सम्यग्ज्ञान है, न कि किंवदन्ती अथवा जन-श्रुति। इसी भाव को समक्ष रखते हुए अब हम आधुनिक ज्योतिष-शास्त्र के विशेषज्ञों के मतानुसार ग्रहण का ठीक-ठीक कारण और इसके सम्बन्ध में कुछ और बातें वर्णन करेंगे, जिनसे आप आगे होने वाले ग्रहण का समय पहले से ही जान सकेंगे। और इससे आपको यह भी प्रत्यक्ष हो जाएगा कि यह एक आकस्मिक घटना नहीं, किन्तु नियमबद्ध है। इसलिए और प्राकृतिक घटनाओं के समान यह कोई दुर्घटना नहीं, बल्कि सुघटित और सुयोजित है, जो मनुष्य जाति की उन्नति तथा उत्कृष्टता के लिए ही हो सकती है।

आधुनिक ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है, इसलिए यह भी एक ग्रह है। प्राचीन काल का पृथिवी का उच्च स्थान अब सूर्य ने ले लिया है। इसी कारण अब यह पृथिवी मण्डल नहीं रहा, सूर्य-मण्डल हो गया है। सूर्य की परिक्रमा करने वाले और मण्डल के सदस्य अब भी नौ ही हैं। इनके नाम सूर्य की दूरी के अनुसार क्रमशः इस प्रकार हैं—बुध, शुक्र, पृथिवी, मंगल, गुरु, शनि, यूरेनस, नैपचून और प्लेटो। ग्रहों के गिर्द घूमने वाले छोटे ग्रहों को उपग्रह कहते हैं, जैसे हमारी पृथिवी का उपग्रह हमारा चांद है।

आजकल यह सर्वज्ञात है कि जब सूर्य चंद्रमा की ओट में आ जाता है, तो यह सूर्य-ग्रहण और जब पृथ्वी की परछाई से चांद का गुज़र होता है, तो चन्द्र-ग्रहण पड़ता है। सूर्य-ग्रहण के लिए चन्द्रमा का पृथ्वी और सूर्य के बीच आना और फिर इनका एक सीध में होना आवश्यक है, जो अमावस्या अथवा नव-चन्द्र के दिन हो सकता है। इसी प्रकार चन्द्र-ग्रहण केवल पूर्णिमा को ही पड़ सकता है। इस दिन आप देखेंगे कि जब पश्चिम में सूर्य अस्त हो रहा हो, तो ठीक उस समय पूर्ण चांद पूर्व दिशा से निकलता दिखाई देता है। पृथ्वी दोनों के बीच होती है। और इनके सीध में होने की सम्भावना भी हो सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि हर मास में एक-बार नव-चांद के दिन सूर्य का और एकबार पूर्णमासी की रात को चांद का ग्रसन हो सकता है। क्या ऐसा हर मास होता है? उत्तर स्पष्ट है कि नहीं। कारण यह कि इन तिथियों पर ग्रहों का योग तो ठीक हो सकता है, परन्तु इनका एक सीध में होना ज़रूरी नहीं। ऐसा क्यों नहीं होता और कब होता है? इन प्रश्नों को समझने के लिए हमें पृथ्वी और चांद के कक्षों और उनके आवृत्ति-काल के ज्ञान के अतिरिक्त कुछ छाया-गणित से भी परिचित होना चाहिए। परन्तु इन सबको समझने या समझाने से यह एक लम्बी बात बन जाती है। और यह भी है कि यह [फिर] केवल विशेषज्ञों का क्षेत्र

बन जाता है, इस कारण हम केवल एक संक्षिप्त और सरल विचारधारा के अनुसार इस कठिन विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। और इसी भाव को अपने समक्ष रखते हुए और यह मान कर भी कि सूर्य का स्थान सौर-मण्डल में स्थित है। फिर भी हम इस लेख में सूर्य और चांद के भासमान रास्तों का ही प्रयोग करेंगे। क्योंकि ऐसा करने से यह कठिन विषय आसान और सरल हो जाता है।

सूर्य चांद से बहुत बड़ा है। सूर्य का व्यास चांद के व्यास से कोई चार सौ गुणा है। फिर भी दोनों देखने में एक समान हैं। इसका कारण यह है कि सूर्य की दूरी चांद की अपेक्षा लगभग इसी अनुपात में है। साधारणतया आकाश में इनके मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। इस तथ्य को आप इस प्रकार जान सकते हैं कि पूर्णिमा की रात को आप एक सोटी को इस प्रकार रखो कि इसका एक सिरा छत पर और दूसरा चन्द्रमा की सीध में हो। इसको अब ऐसे ही रहने दें और फिर दिन के समय जब सूर्य आकाश के इसी स्थान से गुज़र रहा हो तो इसी सोटी की सीध में देखने से पता चलेगा कि सूर्य इस की सीध में नहीं है। अर्थात् आकाश में इस का मार्ग भिन्न है। परन्तु अगर ग्रहण की पूर्णमासी को देखा जाए तो दोनों आकाश में एक ही स्थान से गुज़रते दिखाई देंगे। ऐसे पर्यवेक्षणों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि सूर्य और चांद के कक्षाओं में लगभग ५ डिग्री का कोण है और ये दोनों भासमान कक्षाएं दो बिन्दुओं पर परस्पर काटती हुई जान पड़ती हैं। इनको 'नोड' कहते हैं। इनमें एक पृथ्वी के एक ओर और दूसरा इसके दूसरी ओर होता है। अर्थात् पृथ्वी दोनों नोडों के बीच हुआ करती है। सुविधा के लिए हम चन्द्रमा के उस नोड को जहां से सूर्य गुज़र रहा है राहु और दूसरे को केतु के नामों से संबोधन करेंगे। परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि दोनों नाम लेखक के हैं। इन का किसी कथा पर आधार नहीं। केवल नोडों को भिन्न-भिन्न नाम देने का अभिप्राय है।

अब आप ऐसी कल्पना करें कि अपनी दौड़-धूप में लगे हुए सूर्य और चांद का मेल राहु पर हो गया हो। इस समय पृथ्वी इन की सीध में होने से सूर्य चांद की ओट में आ जायगा और चन्द्रमा की परछाईं जो शंकुरूप में होती है, ज़मीन पर पड़ने से छाया और उपच्छाया के रूप में दिखाई देती है। छाया वह स्थान है जहां पूर्णतः अंधेरा है। इसे पूर्णच्छाया भी कह सकते हैं। उपच्छाया में इतना अंधेरा नहीं होता। यहां कुछ प्रकाश सूर्य के किसी भाग से आ जाता है। छाया और उपच्छाया को जानने के लिए रात के समय एक पैंसिल को दीवार के पास पकड़ रखो और इसपर किसी दीपक का प्रकाश पड़ने दो और देखो कि दीवार पर पैंसिल की परछाईं के कारण बीच का भाग पूर्णच्छाया वाला है, और इस के इर्द-गिर्द उपच्छाया है। यदि कोई च्यूंटी दीवार पर चल रही हो तो वह उपच्छाया में दीपक का कुछ भाग देख सकेगी। परन्तु छाया में इसका कोई भाग दृष्टिगोचर नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार पृथ्वी पर छाया के क्षेत्र में पूर्ण अथवा सर्वग्रास और उपच्छाया में खण्ड-ग्रास होता है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि पृथ्वी की दूरी सूर्य से बढ़ती-घटती रहती है। शीत-ऋतु के पौष मास में इसका अन्तर और ऋतुओं की अपेक्षा थोड़ा न्यून होता है। इस मास में होने वाले ग्रहण में परछाईं का कोण कुछ छोटा हो जाता है। इस कारण इसका सिरा पृथ्वी-तल से थोड़ा ऊपर रहने के कारण ठीक शीर्ष के स्थान पर देखने से सूर्य का बीच का भाग चांद से ढका जाता है, परन्तु इसकी परिधि से प्रकाश आते रहने से सूर्य एक छल्ले के रूप में दिखाई देता है। अंग्रेज़ी में ऐसे ग्रहण को 'ऐन्युलर इक्लिप्स' कहते हैं। (शेष अगले अङ्क में)

मीठी वाणी [प्रा. जयदेव बन्धु]

अर्थवती मीठी वाणी से,
बुद्धिमती जन कल्याणी से।
अमृतपान करा मधु अग्ने!
आमन्त्रित कर याज्ञिक वर को॥ (ऋ. ३,५७,५)

सच्चा मार्ग-दर्शक

[एम. महालक्ष्मी]

शिशु अपनी सुन्दर हँसी द्वारा, अपने मां-बाप को, साथ-साथ देखने वालों को भी मोह लेता है। उस समय, अर्थात् शैशव में वह बालक कपटहीन है, भोला-भाला है। उसकी दुनिया गुड्डे-गुड्डियों तक ही सीमित रहती है। मगर कुछ बड़ा होने पर वह बाहरी दुनिया के अच्छे-बुरे व्यवहारों को, आदतों को सीखने के लिए बाध्य किया जाता है। तब उसके मानस-पटल पर, एक और नया पृष्ठ फैलाया जाता है। उसमें प्रवेश करते समय, वह जिस आदत का आदी पहले-पहल हो जाता है, जिन आचार-व्यवहारों को पहले-पहल देखने लगता है, उसी का वह पक्का अनुयायी बन जाता है। वह आदत चाहे अच्छी हो, चाहे बुरी। बचपन में ही वह एक ऐसी उत्तम शक्ति 'अनुकरण करने की प्रवृत्ति' पा लेता है। अच्छे-बुरे व्यवहारों को आँककर, सिर्फ अच्छी आदतों को लेने की शक्ति तब तक उसमें नहीं आती, जब तक उसे सुमार्ग पर ले चलने के लिए एक सच्चा मार्ग-दर्शक न मिले।

सच्चा मार्ग-दर्शक कौन बने?—मार्ग-दर्शक का पद उतना सस्ता नहीं है जितना हम आम तौर पर सोचते आ रहे हैं! उस पदाधिकारी की कई योग्यताएँ होती हैं। पहले-पहल बालक के मार्ग-दर्शक का पद उसी को मिलता है, जिसने उसको जन्म दिया है। स्कूली-क्षेत्र में तो वह पद बालक के अध्यापक को मिलता है बाहरी क्षेत्र में तो उस पद के अधिकारी होने का श्रेय उसके दोस्तों को ही मिलता है। अतः हमें इसी निष्कर्ष पर आना पड़ता है कि बालकों का शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक विकास करने का बहुत बड़ा भार इन तीनों पर ही निर्भर है।

सच्चे मार्ग-दर्शक का क्षेत्र—मार्ग-दर्शक के पद का निर्वहण करना उतना आसान नहीं है, जितना हम आज-कल सोचते आ रहे हैं। मार्ग-दर्शक के काम करने का स्थल बहुत व्यापक है। उस स्थल को मुख्यतः हम तीन भागों में बांट सकते हैं। वे हैं—१. घरेलू-क्षेत्र, २. स्कूली-क्षेत्र, ३. बाहरी-क्षेत्र। इन तीनों क्षेत्रों में जो कोई भी मार्ग-दर्शक का पद स्वीकार करते हैं उनमें कई योग्यताओं का होना जरूरी है। उनमें बहुमुख्य योग्यता है उनका 'व्यक्तित्व'। व्यक्तित्व से ही बाकी सभी योग्यताएँ विकसित होती हैं। व्यक्तित्व को हम दो भागों में बांटते हैं—१. शारीरिक व्यक्तित्व, २. मानसिक व्यक्तित्व।

शारीरिक व्यक्तित्व—इसे पढ़ते ही हम एक ऐसी झूठी कल्पना में डूब जाते हैं कि हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले या दाढ़ी-मूंछ वाले जो हैं उनमें ही शारीरिक व्यक्तित्व है। नहीं, ऐसी शारीरिक बनावट द्वारा कोई भी बच्चों पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता, अपनी शक्ति या अधिकार जमा नहीं सकता। मगर हमारे कहने का यह उद्देश्य नहीं कि बालकों के मार्ग-दर्शक को एकदम दुबले-पतले रहना चाहिए या तो सूखे पत्तों के जैसे आकृति वाला होना चाहिए। इन सभी बातों की इतनी बड़ी-सी व्याख्या देने का उद्देश्य यही है कि पहले-पहल बालकों के मन में अपने प्रति एक ऊँचे खयाल को पैदा करने वाला रूप-रंग उस मार्गदर्शक में जरूर होना ही चाहिए। मार्गदर्शक अपनी गम्भीर आकृति से, अपनी सीधे-साधे रहन-सहन से, अपनी तीखी व प्यारी नजरों से, अपनी मीठी बातों से, बालकों के अन्तःस्थल में, अपने लिए एक विशेष जगह पा सकते हैं। ऐसी सभी योग्यता वाले 'अध्यापक' जो-कुछ भी कहें, उसे बिना सोचे-समझे, आंख मूंदकर अनुकरण करने लगते हैं बालक।

मानसिक व्यक्तित्व—बालकों की मानसिक उन्नति वही कर सकते हैं जिनमें मानसिक व्यक्तित्व की कमी न हो। शारीरिक व्यक्तित्व से बढ़कर हमें मानसिक व्यक्तित्व पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए।

चाहे वह जितना भी सुन्दर रूप-रंग वाला क्यों न हो, फिर भी जब तक उसकी आदतें, उसकी बोल-चाल, उसका आचार-व्यवहार आदि ठीक ढंग से नहीं रहती, तब तक वह मार्गदर्शक, बालक को क्या उन्नत कर सकता है? सुमार्ग पर उनको चलाने की हिम्मत भी उसमें न रहेगी। जब उस मार्गदर्शक की मानसिक व्यक्तित्व-रूपी नींव सुदृढ बनती है तभी उसमें उपर्युक्त ऊँचे गुण व आचार-व्यवहार विकसित होंगे।

मार्गदर्शक–१. (घरेलू क्षेत्र में)—माता के पेट से जब बालक बाहर आकर बाहरी दुनिया को झाँकने लगता है, तब उसका परिचय पहले-पहल उसकी अपनी माता से ही होता है। तब से उसका सम्बन्ध मरते दम तक माता से ही रहता है, बिना टूटे-फूटे। वह उसे नहलाती है, पिलाती है, दुलारती है, खिलाती है, सुलाती है। उस वक्त माता जो है वही उसका साथी है, माता भी है, साथ-साथ मार्गदर्शक भी। बालक के जीवन-रूपी महल का निर्माता, शिल्पी यही है, उस महल की सुदृढ नींव भी वही डालती है। बालक का जीवन भविष्य में कैसा रहेगा? इस जटिल समस्या का हल उसके मां-बाप के आचार-व्यवहारों पर ही निर्भर है। वे घर में जैसा बर्ताव करते हैं, बाहर वालों से उनका सम्बन्ध कैसा है, उनका रहन-सहन कैसा है आदि सभी मुख्य विषयों को बालक बहुत ध्यान से देखता है। उसका गहरा छाप बालक के अध-खिले मन पर खूब पड़ जाती है। इसीलिए कहते हैं कि बालक की असली शिक्षा, घरेलू-क्षेत्र में ही प्रारम्भ होती है। ऐसी अवस्था में मां-बाप को अपने अन्दर जमी हुई स्वाभाविक व साधारण कमियों को भी दूर करना जरूरी हो जाता है। अगर पिता सिगरेट पीने का आदी हो, पान या तम्बाकू खाने का आदी हो, मां आस-पास के घरों में जाकर गप-शप करने की आदी हो, अपने को साफ-सुथरा रखना सीखा न हो, तो इनको अपने बालक की भलाई का ख्याल करके इन सभी बुरी आदतों को छोड़ना जरूरी है। क्योंकि घरेलू-शिक्षण पर ही निर्भर रहती है स्कूली-शिक्षा। माता-पिता बालक के जीवन-रूपी महल की नींव जितना सुदृढ डालते हैं, उतना ही सुदृढ व प्रशंसनीय निकलेगा उसका जीवन-रूपी महल। ऐसी एक अमूल्य योग्यता पाने के लिए माता-पिता को अपने व्यक्तित्व के विकास पर ध्यान देना जरूरी है।

मार्गदर्शक–२. (स्कूली-क्षेत्र में)—बचपन पार करके वह जब लड़कपन में आता है, तब से उसका सम्बन्ध घर से आधा कट जाता है। अपने दिन के अधिकतर समय को वह घर की उपेक्षा स्कूल में ही बिताता है। अतः स्कूली-क्षेत्र में उसके मार्ग-दर्शक के पद में बड़े गौरव से, गम्भीरता से विराजमान हैं उसके पूजनीय **'अध्यापक महोदय'**। यहां तो इनका कर्त्तव्य माता के कर्त्तव्य से भी अधिक बढ़ जाता है। क्योंकि बालक का **'सर्वतोमुखी विकास'** करने का भारी बोझ अपने ऊपर लेकर उसे बड़ी तत्परता के साथ ढोते हैं गुरु!

स्कूल में प्रवेश करते समय बालक ऐसा ख्याल लेकर आता है कि, 'हमारे अध्यापक से हमें माता का-सा प्रेम मिले, कोई हमें न पीटे, न कोसे। उसके इस ख्याल का सच्चा अर्थ देकर उसी के अनुसार कार्य करके अपने काम में सफलता प्राप्त करनी चाहिए अध्यापक को। अगर उस बालक के मनोभाव के विरुद्ध कोई एक घटना अध्यापक द्वारा घटायी जाय, तो अपने गुरु के प्रति उसका अभिप्राय जो है वह एक सीढी नीचे गिर जाता है। उसकी ममता भी कम हो जाती है। इसके कारण वह अध्यापक के आदेशों को, आज्ञाओं को सुनने के लिए तैयार नहीं रहता है। इसीलिए हमें ऐसा कहना पड़ता है कि बालक का मन एक 'गिलास' के समान है। उसे बहुत हिफाजत से बड़ी चेतावनी से काम में लाना चाहिए। उपर्युक्त छोटे-छोटे विषयों पर जो अध्यापक ध्यान देते हैं, वे बहुत आसानी से बालकों को अपने रास्ते पर ले चलने में सफलता पाते हैं। जो इन बहुमुख्य बातों से अनभिज्ञ हैं, उनको इस क्षेत्र में सफलता मिलने की संभावना भी नहीं।

बालकों के समक्ष अध्यापकों का रहन-सहन, बोल-चाल, हाव-भाव, आचार-व्यवहार आदि ऊँचे दर्जे का होना चाहिए, बालकों के द्वारा अनु-करणीय होना चाहिए। उनके सभी व्यवहार साधारणतः बालक अपने घर में जाकर माता से कहते

हैं— 'मां! हमारे अध्यापक आज टेरिलिन शर्ट पहन कर आए थे। वह बहुत अच्छा था मां। मुझे भी उसी तरह का एक शर्ट ले दो मां।' ऐसा कह कर वह अपनी मां से हठ करने लगता है। यदि वह स्त्री गरीब हो तो बेचारी क्या करेगी? अपना भाग्य कोस कर चुप रह जाती है। या तो अपने बच्चे को दो-चार घूंसे मारती है। ऐसी अवस्था का विचार करके अध्यापक को समझ लेना चाहिए कि उनका रहन-सहन बिलकुल सीधे-सादे ढंग का हो, आडम्बरपूर्ण न हो। मुख्यतः बच्चों की दिलचस्पी बढ़ाने वाला कभी न हो।

आजकल कई स्कूलों के अध्यापक स्कूलों में बालकों की आँखों के सामने तम्बाकू-पान करते हैं, सिगरेट पीते हैं। मगर दर्जे में तो कहते हैं कि तम्बाकू-पान खाना बुरा है, सिगरेट कभी न पीना चाहिए। तब हम जरा सोच कर देखें कि इन उपदेशों को कक्षा में सुनने के बाद, अपने अध्यापक को ऐसी एक अवांछनीय स्थिति में बालक देखें तो उनके मन में गुरु के प्रति, गुरु की आज्ञाओं के प्रति, गुरु के उपदेशों के प्रति किस प्रकार का विचार बैठेगा? वे सोचने लगेंगे कि हमारे अध्यापक तो केवल कक्षा में रह कर ऐसा-ऐसा लम्बा-चौड़ा भाषण देते हैं परन्तु स्वयं उसके विरुद्ध आचरण करते हैं। तब तो हम भी क्यों न ऐसा करें? इसका फल क्या होगा, यह प्रकट ही है।

ऐसा कहने जाएं तो अनगिनत बातें इसके अंतर्गत आ जाएंगी। यदि बालक का सच्चा मार्ग-दर्शक बनना हो, तो अध्यापकों में निम्नलिखित लक्षण अवश्य होने ही चाहिएं। वे हैं— १. माता जैसा स्नेह, २. हंसमुख, ३. तीक्ष्ण बुद्धि, ४ सादगी और ५. सन्तोष आदि। सोने की महिमा को प्रकट करने के लिए जिस प्रकार अग्नि की आवश्यकता होती है उसी प्रकार अध्यापक रूपी अग्नि पर तपने के पश्चात् ही बालक शत-प्रतिशत पवित्र निकलता है। अध्यापक रूपी कसौटी पर कस कर ही हम उस बालक का मूल्यांकन कर सकते हैं कि वह सच्चा नागरिक बनने की योग्यता रखता है कि नहीं?

मार्गदर्शक–३. (बाहरी क्षेत्र में)—बालक की बाहरी परिस्थिति में उसके मित्र प्रभाव डालते हैं। उन मित्रों से बालक का सम्बन्ध घर में भी हो सकता है, स्कूल में भी या तो अन्य जगहों में भी। बाहरी दुनिया में तो बालक घर व स्कूल की तरह स्वतन्त्रता-हीन नहीं रहता है, वहाँ उसको पूरी स्वतन्त्रता दी जाती है। तब वह इच्छानुसार कार्य करने लगता है। मन में जो कुछ भावनाएं पैदा हो जाती हैं, तुरन्त उन्हें कर डालने में बड़ा उत्साह दिखलाता है। क्योंकि उस वातावरण में तो उसे रोकने वाला कोई नहीं रहता। मगर प्रोत्साहन व धीरज पैदा करने वाले अनेक रहते है, चाहे उसका कार्य अच्छा हो या बुरा। अतः हम साफ-साफ यही कह सकते हैं कि उसके आचरण व अनुशासन की उन्नति केवल उसकी परिस्थिति पर ही निर्भर है। बालक स्वभावतः चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, फिर भी वह बिगड़ जाता है परिस्थिति-वश हो कर। चाहे वह बालक कितने भी बुरे गुण वाला क्यों न हो फिर भी सुसंगति के कारण उसके सुधरने की भी सम्भावना रहती है। इसमें शक नहीं। क्योंकि बालक अच्छे विषयों से भी बढ़कर बुरी बातों को बहुत जल्दी ग्रहण करते हैं। अर्थात् चोरी करना, झूठ बोलना, सिगरेट पीना आदि। अवांछनीय कार्यों को जल्दी करने लग जाते हैं। उसमें भी छोटी उम्र में सीखी जाने वाली बातें उनके मन में खूब जम जाती हैं, मन से मिटाने का यत्न करने पर भी नहीं मिटतीं। इसलिए कहते हैं कि बालक की परिस्थिति पर, उसके माता-पिता और गुरुजनों को प्रचुर ध्यान देना चाहिए।

हम ने दिए को रूप दिया है

[प्रा. बलजीत सज्जाद]

जल कर हम माटी बन जाते
माटी से ही दिए बन जाते
माटी से रूई उग आती—
रूई से बन जाती बाती
माटी सरसों बन-बन फूटे
बीज से तेल की धारा छूटे

जोत के जलते जीवित होते—
दोनों रूप माटी के होते
दीप जले और हम जल जाएँ
जल कर दीप का रूप बढ़ाएँ
हमको दिए ने मान दिया है।

भगवान् सूर्य का आत्म-परिचय

★

कलंकों की छाया धरती पर· · ·(१४)

[श्री कुलदीप चड्ढा]

"····अब आप समाचार सुनिए !"

—ज्यों ही तुम यह घोषणा सुनते हो, तुम्हारे कान अपने रेडियो की ओर तन जाते हैं, यह जानने को कि संसार में क्या-क्या घटनाएं घटीं और कहां-कहां ! भले ही तुम विश्व-कल्याण में विश्वास रखते होवो, तो भी तुम्हारी इच्छा तो यही होगी, कुछ फड़कती—नुकीली-सी खबरें ही सुनने को—कुछ लड़ाई-भिड़ाई की, राज्यों की उलट-फेर की, आदि ।

पर यदि यही बात है तो कान अपने रेडियो से हटा कर, मेरे रेडियो-प्रसारणों को ध्यान से सुनो । शायद तुम इनकी भाषा नहीं समझ सकोगे । लेकिन तुम्हें ऐसा समझने की ज़रूरत भी नहीं । केवल मेरे प्रसारणों की सरसराहट सुनते रहो । यदि इस सरसराहट में कुछ वृद्धि सुनाई दे तो समझ लेना तुम्हारी दुनिया में वाकई कोई सुनने लायक घटना घटी है !

तुम पूछोगे, सो क्यों ?

क्योंकि, मैंने पिछली भेंट में बतलाया था न कि मेरे रेडियो प्रसारणों में तीव्रता आती है, जब भी नए कलङ्क पैदा हों अथवा उनका विस्तार अचानक बढ़ जाए !

और जब भी कलङ्कों की दुनियां में कोई ऐसी हलचल हो, उसकी छाया तुम्हारी धरती पर पड़ने से न रहेगी—वहां कोई-न-कोई महत्त्वपूर्ण बात ज़रूर घट के रहेगी ।

इसका कारण तो मैं भी पूरी तरह नहीं जानता । पर इतना ज़रूर पता लग सका है कि इस रोचक कहानी का उद्घाटन सन् १८०१ ई० में हुआ, जब हर्शल नामक वैज्ञानिक ने प्रस्ताव रखा था कि सूर्य कलङ्कों का धरती के जलवायु पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है—उसने तो इससे भी आगे बढ़ कर दावा किया कि गेहूँ का भाव भी कलङ्कों की संख्या के साथ घटता-बढ़ता रहता है ! खैर, गेहूं का सौदा तो बाद में करेंगे, अभी तो आओ, जलवायु की चर्चा थोड़ी-सी और कर लें ।

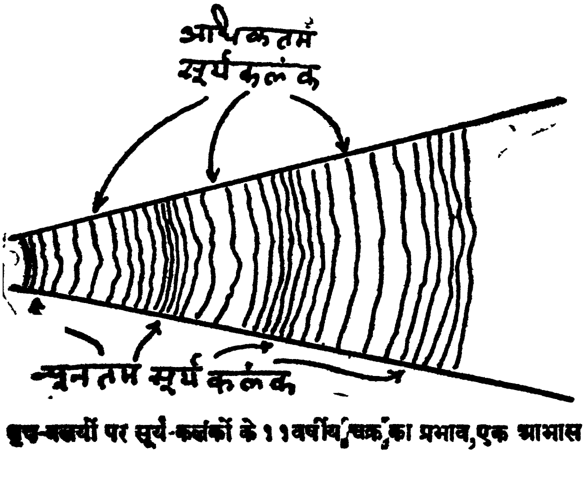
मैंने तुम्हें पहले से बतला रखा है कि सूर्य-कलङ्कों की संख्या का, मेरे सामान्य प्रकाश पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता । लेकिन रेडियो तरङ्गों के प्रसारण में परिवर्तन अवश्य होता है । रेडियो-तरङ्गों और प्रकाश-तरङ्गों के बीच में सेतु का काम करती हैं, अधोलाल (इन्फ्रा रैड) कहलाने वाली ताप-तरंगें । अब, चाहे तो उनमें वृद्धि के कारण हो अथवा अन्यथा, तुम्हारे वैज्ञानिकों ने इतना अवश्य अनुभव किया है कि जब मेरे कलङ्कों की संख्या अधिक हो तो प्रायः समुद्रों का पानी अधिकाधिक भाप बनता है । इससे बादल अधिक बनते हैं और वर्षा भी अधिकाधिक होती है । शायद गर्मी की अधिकता के ही कारण तुम्हारी धरती के ध्रुव प्रदेशों की बर्फ अधिक पिघलती है और उसके बड़े-बड़े तोदे बह कर समुद्रों में चले जाते हैं । इससे तटवर्ती स्थानों के तापमान पर असर पड़ता है । इसी प्रकार के कुछ और उतार-चढ़ाव भी

जलवायु के कुछ अन्य पक्षों में देखे गए हैं, जो मेरे कलङ्कों के अनुकूल तो नहीं चलते, पर उनमें ११वर्षीय चक्र अवश्य देखा गया है। उदाहरण के तौर पर सन् १६३६-४० में तुम्हारी धरती के अनेक प्रदेशों में भयानक कोहरा पड़ा। इसके कारण अनेक स्थानों का तापमान बर्फ जमने से भी ३०-४० अंश फार्नहाइट कम हो गया। तुम्हारे जलवायु-विशारद कहते हैं कि सन् १८६५ के बाद इतना भयानक कोहरा कभी नहीं पड़ा था। पर हाँ, बीच-बीच में कुछ कम भयानक कोहरे अवश्य घटते रहते हैं। सन् १६४० से ११ वर्ष पूर्व १६२६ में और १६२६ से ११-१२ वर्ष पूर्व १६१७ में पड़ने वाले कोहरे भी काफ़ी ज़बरदस्त थे। १६१७से २२ वर्ष पूर्व (२२=११×२) अर्थात् १८६५ में उपर्युक्त घोर कोहरा पड़ा।

—देखा तुमने यह ११ वर्षों का चक्कर ? याद आया कुछ ? अरे वही मेरे कलङ्कों का ११ वर्षीय चक्र !

अब ज़रा सोचो, जलवायु में इस उतार-चढ़ाव का, क्या वनस्पति पर प्रभाव न पड़ेगा ?

इसका एक अत्यन्त रोचक उदाहरण बताता हूँ। भला बतलाओ तो कभी तुमने किसी वृक्ष के कटे हुए तने को ध्यान से देखा है ? यदि हाँ, तो तुम्हें याद होगा कि उसमें उजली-काली धारियां-सी दिखाई देती हैं। वास्तव में दो काली धारियों के बीच की मोटाई, वृक्ष की एक साल की वृद्धि को प्रकट करती हैं। अमेरिका के एरिज़ोना प्रदेश के डॉ० डगलस ने इन वृक्ष-वलयों का बहुत बारीकी से अध्ययन किया। और जानते हो उसका निष्कर्ष ?



वृक्ष-वलयों पर सूर्य-कलंकों के ११वर्षीय 'चक्र' का प्रभाव, एक आभास

उसने विचार प्रकट किया कि इन वृक्ष-वलयों की मोटाई भी, मेरे कलङ्कों की संख्या के साथ, ११-वर्षीय चक्कर में बढ़ती-घटती रहती है। डॉ० डगलस को इस विषय में इतनी रुचि अनुभव हुई कि उसने अनेकों वर्ष पुराने वृक्षों के तने एकत्र किए और उनके कटावों का अध्ययन करके, मेरे कलङ्कों की संख्या का, गत तीन हज़ार साल की अवधि में अनुमान लगाया !

यदि मेरे कलंकों की संख्या, तुम्हारी पृथ्वी के वृक्षों की वृद्धि का नियंत्रण कर सकती है, तो साधारण वनस्पति के उत्पादन का क्यों न करेगी? यदि वनस्पति के उत्पादन का करेगी तो अनाज का उत्पादन क्योंकर प्रभावित न होगा ? और यदि अनाज के उत्पादन पर प्रभाव पड़ेगा तो अर्थ-व्यवस्था पर क्यों न पड़ेगा ? फिर अर्थ-व्यवस्था का तो राजनीति से भी सीधा सम्बन्ध है। इसलिए...

पर नहीं, इतनी तेज़ गाड़ी छोड़ी तो प्रत्येक विस्तार अधूरा रह जायेगा। इसलिए ज़रा धीरे-धीरे उल्लेख करूंगा।

हाँ, तो बात जलवायु से चलकर वनस्पति और अनाज के उत्पादन तक पहुंची थी। जलवायु की ही चर्चा के दौरान तो हर्शल ने भी कहा था, कि सूर्य-कलङ्कों का प्रभाव गेहूं के भाव पर भी पड़ता है। खैर, हर्शल तो वैज्ञानिक था, प्रत्युत जेवन्स नामक एक अर्थशास्त्री ने भी सन् १८७८ में निष्कर्ष निकाला था कि समूची अर्थ-व्यवस्था में भी सूर्य-कलङ्कों के अनुरूप एक ११-वर्षीय चक्र देखा गया है। माटा और शेफ़नर नामक अर्थ-शास्त्रियों ने भी कलङ्कों की संख्या और मानवी-व्यवहार के बीच सम्बन्ध को स्थापित कर दिखाया। कुछ इसी प्रकार की बात एक रूसी विद्वान्-ट्चेविस्की ने भी की थी लगभग १६३० के नज़दीक। वैज्ञानिक होने के नाते वह मेरे कलङ्कों में उतार-चढाव की पड़ताल में था—बात प्रथम-महायुद्ध के दिनों की है। उसने अनुभव किया कि ज्यों ही सूर्य पर कलङ्कों की संख्या अकस्मात् बढती, युद्ध के मोर्चों में भी गर्मी आ जाती। अपने इस अनुभव को जब उसने कुछ अधिक विस्तृत पृष्ठभूमि पर परखा तो उसे स्वयं आश्चर्य हुआ। क्योंकि संसार की प्रायः सभी महान्

घटनाओं का संयोग मेरे कलङ्कों की अधिक संख्या से था। उदाहरण के तौर पर सन् १९३७ में अमेरिका में भीषण हड़तालें हुईं, जिससे लगभग सारी अर्थ-व्यवस्था ठप्प हो गई। इसके बाद १९४७ में फिर मेरे कलङ्कों की सीमा अधिकतम थी—और इस वर्ष तुम्हारे देश भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना घटी—देश को स्वराज्य मिला।

यह तो थीं वर्तमान शताब्दी की बातें। अब ज़रा पिछली शताब्दी की सोचें। आयर्लैण्ड देश में १८४६-४७ में हज़ारों आदमी भूख से मारे गए। १८७७-७८ में चीन में विकट दुर्भिक्ष पड़ा, जिस से ९० लाख लोग मारे गए। तुम्हारे भारत में भी १८९९ से १९०१ तक ऐसा ही दुर्भिक्ष पड़ा, जिससे १० लाख व्यक्ति मरे और कोई ३०० करोड़ रुपए की हानि हुई। इन सभी वर्षों में सूर्य-कलङ्कों की संख्या अधिकतम थी।

लो, और भी सुनो। तुम्हारे देश के महान् नेता श्री जवहारलाल नेहरू ने अपने ग्रन्थ 'विश्व-इतिहास की एक झलक' में सन् १८४८ को यूरोप के इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ष माना है। इस वर्ष पोलैण्ड ने प्रशिया के विरुद्ध और बोहेमिया, हङ्गरी तथा उत्तरी इटली में आस्ट्रिया के विरुद्ध सङ्घर्ष का सूत्रपात किया। फ्रांस में भी इसी वर्ष दूसरे प्रजातन्त्र की स्थापना हुई और जर्मनी में छोटे-मोटे उपद्रव हुए। और जानते हो इसका कारण? मेरे कलङ्क चरम सीमा पर थे। इसके अतिरिक्त अमेरिका का स्वातन्त्र्य-युद्ध, इटली की स्वतन्त्रता, फ्रांस की दूसरी क्रांति आदि सभी घटनाएं उक्त सिद्धान्त का समर्थन करती हैं।

इस प्रकार के अनेक प्रभावों की ओर, इतिहासज्ञों, अर्थशास्त्रियों आदि ने तुम्हारी मानवता का ध्यान आकर्षित किया है। पर तुम्हारे वैज्ञानिक इस सारी जानकारी पर सतर्कता से नज़र डालते हैं, क्योंकि ये विषय विज्ञान के क्षेत्र से बाहर हैं। उनकी सूची में तो मेरे कलंकों का सम्बन्ध, धरती पर घटने वाली कुछ वैज्ञानिक रीति-नीतियों और प्रणालियों से है। कलङ्कों के जलवायु पर प्रभाव की तो मैं पहले ही चर्चा कर चुका हूँ। अब आओ कुछेक अन्य प्रभावों की बात छेड़ें।

मैंने कहा था न वत्स, कि जिस समय मेरे शरीर पर कलङ्क उत्पन्न होते हैं, उसी समय मेरे धरातल पर उज्ज्वालाएं भी प्रकट होती हैं।

किसी उज्ज्वाला के प्रकट होने के कुछेक मिनिट बाद तुम्हारी धरती पर, दूर-देशों के रेडियो-प्रसारण सुनने में कठिनाई होने लगती है। कोई दो दिन बाद इस कठिनाई में अकस्मात् और विकट उभार आता है, यहाँ तक कि कई बार किसी भी दूर देश के रेडियो-प्रोग्राम को घण्टों तक सुन पाना असम्भव हो जाता है। उसी समय, ध्रुवी प्रदेशों के आकाश में रङ्ग-बिरङ्गी प्रकाश की क्षीण यवनिकाएं-सी झूमती नज़र आती हैं। तुम्हारे वैज्ञानिक इन्हें मेरु-ज्योतियाँ (औरोरल लाइट्स) कहते हैं।

तुम्हें बतलाया था एक रोज कि तुम्हारी पृथ्वी एक विशाल चुम्बक के तुल्य है। जिस समय उक्त ज्योतियाँ छितरा रही होती हैं और रेडियो-प्रसारणों को सुनने में कठिनाई अनुभव होती है, तुम्हारी पृथ्वी की चुम्बक-शक्ति में अकस्मात् तीव्र कम्पन शुरू हो जाता है। एक बार ऐसे ही मौके पर, इङ्गलैण्ड और अमेरिका के बीच समुद्री तार भी जल गई थी। इसी प्रकार ब्रह्मांड-किरणों के नाम से तुम्हारी पृथ्वी पर बाहर से, अत्यन्त तीव्र गति से सूक्ष्म कण अवतरण करते हैं। सूर्य-कलङ्कों अथवा उज्ज्वालाओं के प्रकट होने पर उनमें भी उतार-चढ़ाव लक्षित किया गया है।

सो, तो देखा वत्स! केवल मेरे कलंकों के उदय-अस्त होने मात्र से ही तुम्हारी पृथ्वी के काम-काज पर कितना प्रभाव पड़ता है! यह तो मानो मेरा भ्रू-विक्षेप है—एक छोटा-सा इशारा, जिस पर तुम्हारी धरती को और उस पर बसने वाले अरबों इन्सानों को मैं मनमाने नाच नचाता हूँ।

इसलिए तुम मानोगे कि मेरी शक्ति अपार है, क्योंकि उसके स्वल्प-से अंश से ही मैं तुम्हारी किस्मतों में फेर-बदल कर सकता हूँ।

पर··· क्या तुम मेरी समूची शक्ति का हाल-चाल सुनना चाहते हो?

अहः हः हः······।

अच्छा कुछ दिन रुको, वह भी अवश्य बतलाऊंगा! (क्रमशः)

बाल-भारती

जिनका मेरे जीवन पर प्रभाव पड़ा

भारतरत्न जवाहरलाल नेहरु

बचपन से लेकर आज़ादी तक मेरे जीवन में बहुत व्यक्ति आए। कुछ व्यक्ति तो मेरे हृदय पर स्थायी प्रभाव छोड़ गए। बचपन में माता-पिता के अलावा मुन्शी मुबारक अली का मेरे हृदय में बड़ा स्थान है। वे मुझे अच्छी-अच्छी कहानियां सुनाते थे। मुझे बहुत चाहते थे। माता-पिता के बाद सबसे अधिक चाहने वालों में वे सर्वप्रथम थे।

विद्यार्थी-जीवन में सबसे पहले मेरे हृदय पर मेरे अंग्रेज़ी-शिक्षक एफ. टी. ब्रुक्स का प्रभाव पड़ा। उन्हीं के सम्पर्क से मैं मिसेज एनीबेसेंट के नजदीक आया। उन्होंने मुझे प्रायमरी तक पढ़ाया। उनकी विचारधारा से मैं काफी प्रभावित हुआ और १३ वर्ष की आयु में ही थियोसाफिकल सोसाइटी का मेंबर बन गया।

मेरी घर की पढ़ाई १४ साल तक ही हुई। १५वें वर्ष की उम्र में मैं इङ्गलैण्ड हैरो और कैम्ब्रिज में भेज दिया गया, जहाँ मैं ७ साल से ज्यादा पढ़ा। वहाँ मैं कई व्यक्तियों के संपर्क में आया जिनमें मुख्य थे विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय और गोपालकृष्ण गोखले। ये सभी सच्चे भारतीय और आज़ादी के लिए कामगार नेता थे। इंग्लैण्ड के जीवन में मैं वहाँ की सभ्यता और संस्कृति से भी काफी प्रभावित हुआ जोकि स्वाभाविक भी था। वहाँ जिन पुस्तकों ने मेरे दिल पर गहरा असर डाला उनमें एक थी जी. एम. ट्रेवेलियन की 'गैराबाल्डी' तथा आस्कर वाइल्ड और वाल्टर पेटर की पुस्तकें। वहां मुझे एडविन मांटेग्यू ने काफी चाहा और मेरी प्रशंसा की। बाद में वे भारत के मन्त्री भी हुए।

सन् १९१२ में मेरा नागरिक-जीवन शुरू हुआ। शुरुआत में मैं लोकमान्य और गांधी जी से प्रभावित हुआ। ये दोनों आज़ादी के लिए जी-जान से अंग्रेज़ों के विरुद्ध सङ्घर्ष कर रहे थे। गांधी जी का देश में बहुत बोल बाला था। मैं धीरे-धीरे उनके नज़दीक आता गया। मेरे नागरिक जीवन को सरोजिनी नायडू, सर रासबिहारी घोष, पण्डित मदनमोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द, अब्दुल गफ्फार खाँ, मौलाना मुहम्मद अली, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, चार्ली एंड्रयूज, देशबन्धुदास, सर ग्रिमवुड, राजा महेंद्रप्रताप, मौलवी बरकत अली, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, मानवेन्द्रनाथराय, फ्रेंक बुकमेन, जार्ज लेन्सबरी, डाक्टर अंसारी, गोबिन्दवल्लभपन्त, बल्लभभाई पटेल, अब्दुलकलाम आजाद, चन्द्रशेखर आज़ाद, गणेशशङ्कर विद्यार्थी और बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने बहुत प्रभावित किया। सही मानों में ये सब आज़ादी पाने के लिए देशभर में विभिन्न स्थानों के जनप्रिय नेता थे।

मेरे भावात्मक हृदय को सबसे अधिक प्रभावित किया था मेरी पत्नी ने। वह अपने आपको तब धन्य मानती थी जब वह मेरे आज़ादी के रास्ते को अख्तियार करती थी। १९३२ की गिरफ्तारी के वक्त उसने प्रेस-प्रतिनिधियों से कहा था "आज मुझे असीम प्रसन्नता है और इस बात का गर्व है कि मैं अपने पति के पदचिह्नों पर चल सकी हूँ।"

—'मेरी कहानी' से

जवाहरलाल नेहरु की जय बोलो !

[कु. विधु भटनागर]

जब थे गए बापू तज हम को,
छोड़ गए चाचा नेहरु को।
देख-रेख बच्चों की करना,
कहे शब्द थे चाचा को ।।

वाक्य शोकयुत भारत-भू में
घिरे, गए जब बापू थे
पर, देख-देख चाचा को बच्चे,
शोक न उर में लाते थे ।।

हरदम चाचा नेहरु मन में,
ध्यान सभी का थे रखते।
औ बच्चों के सहित देश की,
सेवा सुख से थे करते ।।

रत रहते थे देश-कार्य में,
बच्चों-सा सब को लखते।
राजनीति के कुशल खिलाड़ी,
खेल किया सब से करते ।।

लाल जननी के औ, निज कुल के,
भारत के भी कहलाए।
और शांति-प्रिय होने से ही,
शांति-दूत तुम कहलाए ।।

लख तव तेजपुंज आनन को,
जन-मन-सरसिज थे खिलते।
जाते जिधर, उधर ही सब थे,
हृदयों पर तुम को लिखते ।।

नेता थे तुम भारत के पर,
लखकर विश्व तुम्हें कहता—
नहीं जवाहर भारत ही का,
वह तो हम सब में रहता ।।

हहा ! आज वह चाचा नेहरू,
भी तो छोड़ गया हम को।
चला नाव का कर्णधार बन,
गया बीच में तज उसको ।।

रुष्ट हुआ है आज विधाता,
क्रूर कर्म करने वाला।
और क्रूर वह काल, प्राण सम
सब का प्रिय हरने वाला ।।

कीर्ति देश ने जिन से पाई,
पाया यश था औ, सम्मान।
उन से रत्नों के कारण ही
भारत को था अति अभिमान ।।

जलते जग को छोड़ गये वे,
छोड़ गये हैं यश जग में।
याद करेगा विश्व उन्हें औ,
स्मरण करेगा पग-पग में ।।

यही एक कर्त्तव्य हमारा,
उनको सुख पहुँचाएँ हम।
विश्व-शांति और पञ्चशील का,
मार्ग सदा अपनाएँ हम ।।

बोलो भारत माँ की जय हो,
जय हो भारत बीरों की।
बापू और जवाहर जैसे,
अनुपम भारत हीरों की ।।

लो मैं भी उर भावों की,
श्रद्धांजलि लेकर आई।
क्यों न हृदय से जय बोलूँ
जिस से आज़ादी पाई ।।

★ ★ ★

नेहरू—एक विश्वव्यक्ति

[श्री हरगोविन्द पाराशर]

श्री जवाहरलाल नेहरु एक विश्ववादी व्यक्ति थे उनका जीवन और हृदय विश्व के लिए प्रस्तुत था। सबसे पहले उन्हों ने भारत-राष्ट्र को राष्ट्रीयता दी जिसे वे विश्व-एकता-मंज़िल की सीढ़ी मात्र समझते थे। वे कहते थे—हमारे इस सफर में हमारी राष्ट्रीय लड़ाई एक

पड़ाव मात्र है। वे एक ऐसे विश्व-समाज की स्थापना करना चाहते थे जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा आ तक न सकें।

नेहरु विश्व-शांति के उद्देश्य से प्रेरित थे। वे युद्ध या हिंसा इसलिए नहीं चाहते थे क्योंकि हिंसात्मक बल-प्रयोग का प्रभाव मनुष्य के केवल शरीर पर पड़ता है, वह आत्मा को गिरा देता है जबकि अहिंसा का दबाव शरीर और आत्मा दोनों को मजबूत बनाता है। उनके हृदय में विश्व के प्रति करुणा सद्भावना हमेशा मौजूद रहते थे। उन्हों ने विश्व के अधिकतम देशों में विश्व-शांति का सन्देश प्रसारित किया था। वे निश्चिन ही महायुद्ध और घोर आपत्ति से विश्व को बचाना चानते थे। उन्हों ने भारत को विश्व-देश बनाने का यत्न किया था और इसीलिए वे भारत के अन्तरराष्ट्रीय संबन्धों पर बल देते थे। उन्हों ने सह-अस्तित्व और पञ्चशील दोनों हाथों से राष्ट्रसघ और दुनिया को गले लगाया था। उन्हों ने भारत को दिश्व-शांति का अगुआ बनाया था।

नेहरु संसार के प्रति आशावादी थे। मन-मुटाव और आपसी स्वार्थों के लिए झगड़ते हुए संसार के लिए हिम्मत और आशा-दीप को हाथों में लिए वे दुनिया के अन्धकार को दूर करना चाहते थे। उनका नारा था 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अन्धकार से प्रकाश को ओर जाओ। वे वर्तमान विश्व के सब से बड़े अस्तित्व-वादी थे। उन्हों ने देश-विदेशों के घोरतम संकटों में भी आशा और उमंग के साथ हिस्सा लिया था। वे सबसे बड़े मानव-वादी व्यक्ति थे। वे क्रमिक उन्नति और मानव-मात्र की उन्नति पर विश्वास करते थे। उन्हों ने देश-विदेश में कई बार दुहराया था कि हमारे सामने महायुद्ध और घोर आपत्ति के बड़े-बड़े खतरे उपस्थित हैं, लेकिन हर दशा में हम आगे ही बढ़ रहे हैं।

नेहरु विश्व की अभिव्यक्ति थे। उनके जीवन की प्रत्येक क्रिया संसार का व्यवहार सिखाती थी। उनकी विचारधारा में विश्व की एकता घूमती थी। वे पूरे तन-मन-धन से विश्व को एक करने में लगे थे। उनके मस्तिष्क में विश्व-समाज की योजना विद्यमान रहती थी। भारत की सर्वश्रेष्ठ विशेषता विश्ववादिता की तो वे जलती मशाल थे। उन्होंने सारे संसार को विश्व-मैत्री का सन्देश सुनाया था। सब देशों के मनुष्यों को उन्हों ने मैत्री के हाथों दुलराया था। अपने मोहक व्यक्तित्व से संसार को सम्मोहित कर लिया था।

आज जबकि नेहरु जी केवल अपनी याद और आदर्श छोड़ गए हैं आकाश से भी विशाल, सूर्य से भी अधिक चमकदार और चाँद से भी अधिक शीतल हैं। वे ससार में अपनी विशाल आत्मा छोड़ गए हैं। ★ ★ ★

स्वतन्त्रता का वीर सिपाही प्यारा नेहरु कहां गया है?

[प्रा. इन्द्रदत्त उनियाल]

आज देश का बच्चा-बच्चा
दिल्ली तुझ से पूछ रहा है,
भारत मां का पुत्र, देश का
रक्षक चाचा कहां गया है?

दिल्ली के वे भवन रुदन कर
निर्धन कुटिया सहम-सहम कर,
हाय! हाय! औ, विलख विलख कर
दिल्ली तुझ को पूछ रहे कि,
हम सब की जो शान, देश का
स्वाभिमान वह कहाँ गया है!

आज प्रकृति के मृदुल अङ्ग से
जीव मात्र की उर उमङ्ग से
करुण-भाव की मृदु-तरङ्ग से
एक यही आवाज कि देहली
बतला नेहरू कहाँ छिपा है?

बहुत दूर उस भारत-भू से
मरु-प्रदेश के उष्ण रेत से
हिम-आच्छादित कठिन देश औ'
दिशि-दिशि से आवाज कि दिल्ली
देश का प्यारा कहां गया है?

दिल्ली सुन ले सभी नगर में
सप्त-सिंधु की विकल लहर में
निर्झर के भी झर-झर रव में
विहगावलि के उस कलरव में
यही एक अवसाद कि देहली
प्यारा नेहरु कहाँ गया है?
अखिल विश्व विश्वास-रहित हो
दिल्ली तुझ से पूछ रहा कि,
पञ्चशील का मूल फूल-सा
नेता नेहरु कहाँ गया है?

लख अशांति को भौतिकता में
भौतिकवादी पूछ रहे कि,
विश्व-शांति का दूत जवाहर,
बतला दिल्ली कहाँ गया है?
देख शोक में डूबे जग को
और भयानक शून्य गगन को
सदियों से वीरान देश यह
सिसक-सिसक कर पूछ रहा है,
स्वतन्त्रता का वीर सिपाही
प्यारा नेहरु कहाँ गया है?

★ ★ ★

चाचा की कहानी

[श्री पाराशर]

भारत की बगिया के कोमल-कुसुम-से सुकुमार प्यारे बच्चो!

तुम देख ही रहे हो कि आज सारे देश में शोक की लहर छाई है। क्या बच्चे, क्या बूढे और क्या जवान सभी के मुख पर एक गहरी उदासी है। सबका कुछ खो गया है और विकल हो सब उसे ढूंढ रहे हैं, पर क्या अब पा सकेंगे? नही कभी नहीं। खोया हुआ रत्न फिर से मिल सकता है, किन्तु गत मास की २७ तारीख को हमने जो-कुछ खोया वह अब दुष्प्राप्य है। कहां चले गए जवाहर चाचा हमें छोड़कर। नेहरू केवल नेहरू न थे वह बच्चों के चाचा, युवकों के पथ-प्रदर्शक और बुढापे की लकड़ी भी थे। भारत मां अपने सच्चे लाल को खोकर बेहाल हो गई है। आज दुःख-भरी इन घड़ियों में यही ठीक है कि हम उनके जीवन का स्मरण करें ताकि उन बातों को जान सकें जिन पर चलकर नेहरू चाचा महान् बने।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू का जन्म आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व १४ नवम्बर सन् १८८९ को इलाहाबाद के एक कश्मीरी परिवार में हुआ था। उनके विषय में लोग कहा करते हैं कि 'नेहरू जी, मुंह में चांदी की चम्मच लेकर पैदा हुए थे।" जिसका अर्थ है कि वह धनी मां-बाप के पुत्र थे। उनके पिता पण्डित मोतीलाल नेहरू एक सुप्रतिष्ठित वकील थे। न्याय के मामलों में वह बड़े सख्त आदमी थे। एक बार पैन चुरा लेने पर ही उन्होंने नन्हे जवाहर की इतनी मरम्मत की थी कि फिर आजीवन नेहरू जी ने कोई चोरी नहीं की।

नेहरू जी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही वह इंग्लैंड पढ़ने के लिए चले गए थे। वहां पर अपनी प्रतिभा और परिश्रम से उन्होंने अपने अध्यापकों और सहपाठियों को अत्यन्त प्रभावित किया।

सन् १९१८ में बैरिस्टरी पास करने के बाद वे भारत आकर देश के कार्य में जुट गए। उन दिनों गोपालकृष्ण गोखले, बालगंगाधर तिलक आदि नेता भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए अंग्रेजों से जूझ रहे थे। बात-बात में ही भारतीयों को जेलों में बन्द कर दिया जाता था। उन्हीं दिनों में एक दिल को दहलाने वाली घटना घटी। अमृतसर के जलियाँवाला बाग में देश-भक्त लोगों की एक भारी सभा हो रही थी, कि अचानक ही डायर नाम के एक अंग्रेज अफसर ने जनता पर गोली चलाने का

हुक्म दिया। हजारों निर्दोष नर-नारी मौत के घाट उतार दिए गए। कितना हृदय-विदारक दृश्य रहा होगा वह। आज भी उसकी कल्पना करते-करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस घटना से भारतीयों के मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा पैदा हुई। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देश के युवकों ने जिनमें चाचा नेहरू मुख्य थे अंग्रेजों को देश से निकालने की प्रतिज्ञा की।

उन दिनों केवल अंग्रेज सरकार ही हमारे देश पर अत्याचार करती हो, इतनी ही बात नहीं थी स्वयं भारतीय समाज में भी कई प्रकार के बुरे रीति-रिवाज तथा अन्य कमियां थीं। जमींदार छोटे किसानों पर, मिल-मालिक मजदूरों पर अत्याचार करते थे। बड़ी जाति के लोग छोटी जाति वालों को अछूत समझते थे। नेहरू जी ने इलाहाबाद और अवध के गांवों में पैदल घूम-घूम कर किसानों की मदद की तथा उन्हें आजादी का महत्त्व समझाया। गांधी जी के साथ मिलकर उन्होंने हरिजनों का उद्धार किया।

इस प्रकार देश की नाना प्रकार से सेवाएँ करते हुए चाचा कई बार वर्षों तक जेल में रहे। अंग्रेज जब चाहते उन्हें पकड़ कर जेल में बन्द कर देते थे। परन्तु हमारे चाचा थे लौहपुरुष। वे जेल के कष्टों को सहन करते हुए भी अपने समय का पूरा सदुपयोग करते रहे। अपनी जीवनी उन्होंने जेल में ही लिखी। जेल में मनुष्य साथी भले ही न मिलें पर चाचा पशु-पक्षियों तथा कीड़े-मकोड़ों से ही मित्रता गांठ लेते थे। नैनी जेल में एक मैना प्रतिदिन उनसे दाना मांगने आती, कभी हाथ पर आ बैठती और दाना उठा कर फुर्र से उड़ जाती। कबूतरों से तो उन्हें खूब प्यार था। खुशी के अवसरों पर वे शांति के प्रतीक के रूप में सफेद कबूतरों को उड़ाया करते थे। नेहरू जी जब भी जेल से सजा काट कर बाहर आते लोग उन्हें फूल-मालाएँ पहनाते और 'पण्डित जवाहरलाल नेहरू की जय', 'महात्मा गांधी की जय' के नारों से आकाश गूंज उठता। चाचा का उत्साह इससे दुगुना बढ़ जाता था। उनके पूज्य माता-पिता तथा प्रिय पत्नी कमला तीनों स्वर्ग सिधार गए, परन्तु वे अपने उद्देश्य से तनिक भी विचलित नहीं हुए। और तन-मन-धन से देश की सेवा करते रहे।

१५ अगस्त सन् १९४७ ई० को देश स्वतंत्र हुआ। गांधी जी के बाद देश-सेवा में नेहरू जी का स्थान दूसरा था। अतः गांधी जी को देशवासियों ने 'बापू' तथा नेहरू जी को 'चाचा' कहकर पुकारा। प्यारे बच्चो, आजादी तो मिली परन्तु देश की स्थिति उस समय बड़ी डावां-डोल थी। चलते-फिरते अंग्रेजों ने हिन्दु-मुसलमानों में फूट डाल दी थी। परिणामस्वरूप देश हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो भागों में बँट गया। चाचा नेहरू अपने देश के प्रधानमंत्री चुने गए। तब से लेकर आज तक उन्होंने देश की उन्नति के लिए दिन-रात परिश्रम किया। भाखड़ा नंगल, हीराकुंड तथा दामोदर सरीखे विशाल बांध और भिलाई एवं चितरंजन जैसे कारखाने देश में उनके रहते हुए बने। इतना ही नहीं देश के कोने-कोने में सड़कों का जाल बिछा दिया गया। खेती की उपज बढ़ायी गई। चाचा किसान और मजदूरों से मिलकर बड़े खुश होते थे।

उनके प्रयत्नों से दुनिया में कई बार महा-युद्ध होते-होते बचा। जब भी कहीं लड़ाई होती वे तुरन्त अपना शांति-सन्देश भेजते और लड़ाई रुक जाती थी। चाचा जहाँ बुद्ध और अशोक की भाँति शांत थे वहां राणा और शिवा के समान वीर भी। अभी पिछले वर्ष चीनी हमले के समय उन्होंने वीरता से उसका सामना किया। उनके कहने पर सारा देश आपसी झगड़ों को भुला कर शत्रु का सामना करने के लिए एक हो गया था। चीन को उनके साहस के सामने पीछे हटना ही पड़ा।

अब जबकि पाकिस्तान से भी कश्मीर के

विषय में बातें चल रही थीं। चाचा को भगवान् ने बुला लिया। चीन ने मित्रता करके भी विश्वासघात किया। इस बात से उनके हृदय को बड़ी चोट पहुँची। और तभी से उन्हें बड़ा दुःख हुआ, उनके प्राण लेकर ही टला। वे हमें रोते-बिलखते छोड़कर ही चले गए। बच्चो, आज हमें धैर्य रखना है। चाचा के पद-चिह्नों पर चलकर देश को आगे बढ़ाना, शत्रु से बचाना है। तुम में ही भावी भारत के गांधी और नेहरू छिपे हैं। इस समय तो हम सबका कर्त्तव्य है कि चाचा नेहरू के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करें और साथ ही प्रतिज्ञा करें कि हम भी उन्हीं के समान मातृभूमि के सच्चे 'लाल' बनेंगे। देश-भक्ति से कभी भी पीछे नहीं हटेंगे।

★ ★ ★

तज चला जवाहर प्यारा

[श्री कन्हैयालाल]

गङ्गा रोई यमुना रोई
औ' सतलुज की धारा।
सिसक उठे आबाल वृद्ध
तज चला जवाहर प्यारा ॥

सहसा इन्द्रप्रस्थ के नभ
पर काली बदली छाई।
झुका तिरङ्गा देख गगन
को भी आ गई रुलाई ॥

बरस पड़ीं अम्बर की आँखें,
बही अश्रु-जल-धारा ॥

शोक-भरी धुन सुन कर
पक्षीगण भी हा चिल्लाए।
तुझ बिन नेहरु कौन यहाँ
अब शान्ति-कपोत उड़ाए ॥

तेरे रहते दहक न पाया
एटम का अंगारा ॥

गोविन्द और भाखड़ा रोए,
हीराकुण्ड, भिलाई।
दामोदर कोसी के ऊपर
घनी उदासी छाई ॥

यह सब थे जिसके पूजा-गृह
वह अब स्वर्ग सिधारा ॥

राजघाट पर संजय ने
जिस क्षण तव चिता जगाई।
बोल उठी थी मानवता
मत जा मम वीर सिपाही ॥

हे अशोक ! तू शोक दे चला
है अब कौन हमारा ॥

खेतों में सब काम रुके
हो गए नगर सब सूने।
सबकी खुशी छीन ओ निर्दय!
काल किया क्या तूने ॥

अथवा पञ्चभूत तेरे थे
'नेहरु' नाम हमारा ॥

जो हम सबके मन में है
वह जन क्या कभी मरेगा।
आने वाले युग का
बच्चा-बच्चा याद करेगा ॥

हँसता हुआ गुलाब एक बस
होगा चिह्न तुम्हारा ॥

★ ★ ★

श्रद्धा के दो प्रसून

[कु. इन्दिरा]

हे भारत ! आज तेरा एक अनुपम रत्न खो गया है। दुनिया ने अपनी महान् हस्ती खो दी है। एक सितारा अस्त हो गया है। जगमगाता हुआ दीपक जिससे सारा विश्व प्रकाशमान था आज उस दीपक की ज्योति न मालूम कहां लुप्त हो गई ? दीपक के बुझ जाने

से सर्वत्र अन्धकार की गहन कालिमा छा रही है। कुछ भी तो दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है?

आज वही प्यारा जवाहर जिसने तेरे ही लिए आनन्द भवन के आनन्दमय जीवन को छोड़ दिया था, तुझे छोड़कर क्यों चल दिया है? मौत के बीभत्स पंजे ने चुपचाप आकर बरबस ही हमारे प्यारे जवाहर को अमूल्य हीरे को हम से छीन लिया है। और हम असहाय निरुपाय हाथ मलते ही रह गए, कुछ भी तो कर नहीं पाए। अपने-आपको लुटता देखते रह गए। और हमारा जवाहर हमें इस अन्धेरे संसार में छोड़कर हमसे रूठ कर स्वयं न जाने कहां चला गया है? लेकिन नहीं, भारत! नहीं, वह तुझे नहीं छोड़ सकता। मर मर कर भी उस महान् तपस्वी की आत्मा तुझसे लिपटी रहेगी। और तेरे नन्हे-नन्हे टिमटिमाते हुए दीपक उसके रास्ते पर चल कर उसके शुभ आशीर्वादो से एक दिन फिर तुझे ज्योतित कर देंगे। उसकी स्मृति हमेशा के लिए ताजी रहेगी। उसका नाम अमर है और अमर रहेगा। हे भारतवासियो, आओ आज हम सब एकत्र होकर उस सर्वशक्तिमान् से प्रार्थना करे कि—हे प्रभु, हम सब उनके चरण-चिह्नों पर चलकर उनके अनेकों स्वप्नों को जिन्हें आज वह अपनी बन्द पलकों में संजोए हुए हमसे दूर बहुत दूर चले गए हैं, साकार कर सकें। हमारा प्यारा भारत और भारत मां जिसकी लाज की रक्षा हेतु अनेकों महापुरुषों ने अपने सुख-चैन को त्याग कर जी-जान से रक्षा की। हम भी तन-मन-धन से अपने देश और भारत मां की रक्षा के लिए वक्त पड़ने पर अपने प्राण न्योछावर कर दें।

मेरे देशवासियो! अपने नेत्रों से अविरल बहती हुई अश्रुधारा को तनिक रोकने का प्रयास करो। अपने कराहते हुए दिलों को जरा धैर्य दो। लेकिन नहीं, ऐसा होना असंभव है। यह मैं जानती हूँ आंसू कभी रुक नहीं सकते; जिन्दगी-भर अपने मार्गदर्शक की याद में रोती ही रहेंगी ये आँखें! दिल का गहरा घाव कभी भर नहीं सकता!—फिर भी उठो और अपने प्यारे जवाहर को श्रद्धा से अन्तिम विदाई दो। अन्तिम विदा ही तो माँग रहा है वह आज हमसे। जाओ हृदयसम्राट् जवाहर! जाओ तुम्हारी लम्बी जीवन-यात्रा सफल हो। देश के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर तुम्हारा नाम होगा और जवाहर कहते ही हम भारतवासियों का सीना गर्व से दूना हो जाएगा। हमें अभिमान है तुम पर और तुम जैसे अनेकों महापुरुषों पर और भारत-वसुन्धरा पर जिसकी रज ने तुम जैसे सपूतों को जन्म दिया और देती रहेगी।

जवाहर! तुम अमर हो! अमर हो! अमर हो! जब तक नभ में रवि और शशि रहेंगे, तब तक तुम भी हमारे हृदयों में सूरज और चन्दा की भान्ति चमकते रहोगे।

ऐ युग के निर्माता! भारत के कर्णधार! प्यारे जवाहर! तुम्हें कोटिशः जनता का कोटिशः प्रणाम है। ★ ★ ★

हम भारत के पहरेदार

[श्री पुरुषोत्तम उपाध्याय 'भानु']

हम भारत की आन-बान हैं
मीठे सच्चे हैं बलवान्
कदम मिला कर आगे बढ़ना
है भारत माता की शान।

मत समझो हम छोटे हैं
हम में ताकत है भारी,
आज हमीं तो बने हुए हैं
इस धरती के प्रहरी।

हम नन्हे-मुन्ने इस भू के
नई किरण चमका देंगे,
हिम्मत रख कर सीना ताने
नया सवेरा ला देंगे।

वीर जवाहर के जैसे
हम भारत माता के लाल,
नौनिहाल-सुकुमार हम
भारत के पहरेदार।

जवाहरलाल नेहरू के प्रति श्रद्धांजलि

[श्री लोकनाथ]

मौत दे पिच्छें जानयां
किन्ना बडा सैं तू जवाहर।
वडी खुशी एह सी तू
जेहा अन्दरों तेहा बाहर ।।
तेरे वडे रैहंदे नहर दे कन्डे
तदे कहलावें नेहरू ।
नेहरू कहवां मैं उस नूं
जेहड़ा कदे वी न हरू ।।
जनम वेले तू रोया, होरां दी
खुशियां दा न अन्त।
मरन वेले तू हस्सया
ते साडा दुःख अनन्त ।।
सारे धरमां दे मोती चुग्गे
फिर वी तैनू नास्तक कैंहदे ।
रिशी मुनयां दा कम है एही
कि सब दियां गल्लां सैंहदे ।।
कोई कहे मौत वडी
ते कोई कहे खुदा।
असली दुःख तां एह है कि
तू क्यों होया जुदा ।।
एह वी गल गलत कि
मरदे नाल कोई न मोया।
तेरी मौत दी खबर ही सुनदयां
कइयां दा हार्ट फेल होया ।।
पंजी सौ साल पहले इक
राजा अशोक आया सी।
ओह वी तेरी तरह
सारे जग नूं भाया सी ।।
गान्धी तां गान्धी पर
तू केहड़ा गान्धी तों घट।
दुखियां दा दुःख सुणन नूं
तूं तयार रैंहदा झटपट ।।
असीं रिशवतां खाधियां बलैक
कीते ते जिम्मेवार तैनूं ठहराया।
कड़े कानून बना के वी
तू प्रेम नाल समझाया ।।
दशरथ दा केहा मन के राम
लिया चौदह साल दा बनवास।
तू गान्धी दा केहा मनिया
ते मिलया जेल निवास ।।
जित्थे तूं रैंहदां सैं इनूं
तिनमूरती क्यों कैंहदे।
किया इसे वासते कि इक जवाहर,
दूजा नेहरू, तीजा चाचा इत्थे रैंहदे ? ।।
संजय, राजीव ते इन्दिरा दा
दुःख है सब तों भारी।
पर मौत अगे चारा नहीं
चलदा कहे खुदाई सारी ।।
गुण तेरे विच सारे
मैनूं औगण नज़र न आवे।
देश दी एकता बनी रहे
तेरी आत्मा शान्ती पावे ।।

मद-मधुमास

[श्री हरिश्चन्द्र गुप्त]

नव भावों को अंकुरित कर दे
हृदय-वीणा को झंकृत कर दे !
मन-उद्यान को कुसुमित कर दे
दृग प्रेमाश्रुओं से पुलकित कर दे !
भाव-विटपों को फलान्वित कर दे
निराशा को आशा में परिणत कर दे !
इस निस्सार जीवन में उल्लास भर दे
यह मद-मधुमास मेरे अर्पण कर दे !
हृदय में प्रेमाग्नि प्रज्वलित कर दे
मुरझायी कलि को पल्लवित कर दे !
निशक्त शरीर में नव शोणित भर दे
मद-मादकता को विकसित कर दे,
रोदन में स्मित भर दे
तिमिर में चन्द्र ज्योत्सना प्लावित कर दे,
सघनो में परिहास भर दे
यह मद-मधुमास मेरे अर्पण कर दे !

एकलिपि विस्तार



मुळा सकट विष झाले गोड (मराठी)

[बा. भ. बोरकर]

हृदयच जेव्हां होते कोकिळ
जरठ वनांतहि फुले वसंत
हृदयच होते भजन जेधवां
तृणांतही भेटे भगवंत
हृदयच जेव्हां घनीं बहरतें
जिवीं नाचतें बनुनी मोर
हृदयच जेव्हां भरूनि वाहतें
गंगेहुनि तें होतें थोर
आज अचानक असें जाहले
सांजहि भासे मला सकाळ
प्राजक्ताच्या आसवांत सखि
सर्वें मौक्तिकें आणि प्रवाळ
सर सोन्याची होउन आलिस
गाढ काळाची झाली ओढ
आज लाभल्यामुळें हृदय तव
मुळा सकट विष झाले गोड ।

समूल मीठा हुआ गरल (हिन्द

[प्रा. देवेन्द्र 'कमल']

हृदय स्वयं जब होता कोकिल
जरठ वनों में खिले वसंत
हो जाता जब भजन स्वयं उर
तृण तृण में दीखे भगवंत
बादल बनता हृदय स्वयं जब
नाचा करता प्राण-मयूर
हृदय वेग से बहता है तब
गंगा से भी बहता दूर
आज अचानक भासमान हो रही
सांझ ही मुझे सकाल
हरसिंगार के आँसू में भी
दीख रहे हैं मणि प्रवाल
कल का प्रेम प्रगाढ़ बना, जब
तुम बन आई स्वर्ण-सलिल
हृदय तुम्हारा पाकर ही तो
समूल मीठा हुआ गरल ।

★ ★ ★

हे जवाहर ! (तेलुगु)

[डा. सुप्रसन्न]

प्रासुखुल नवसुधाधारनडुम ए
वंडो विसमु पोय्यविनाडु,
निश्चलमुगनुन्न नीरधिलो बड-
बाग्नि मंटलिपुडे आक्रमिंचे।

अम्मगरानि वार्त विनिनंतने मृत्युवुमीद बिट्टु को
पम्मुग, नम्मि भारतविपत्तुनु भावनचेसि दीर्घ शा
पम्मुग, मृत्युवेव्वरिकि पायगरानिदेओट तीव्र शो
कम्मुग, भारतप्रजल कन्नुलशोकमे मूर्ति कट्टेहुन्।
ई विपदब्धि दाटुटकुनेव्वडु चालुनु दीप्त भावना
रूपित धीविशारदुडु, रूचमतीरितशान्तिभावनुं
डी पृथ्वीतलंबोकटियेयनि, सर्वजगत्कुटुंबसं-
स्थापनसेयवूनिन प्रजारवि जह्वरलालु लेनिचो—

ईवुलेनि भारतमु नूहिंचुट्टेलु
जलमुलिंकिन ओक महासागरम्मो !
वायुवुपसंहरिंचिन व्योवरणमो !
ऊहसेयुटेयय्मे भयावहम्मु।
ए विपद्दश वच्चियु निंदमंदि
भारतीयुलु नीपैनि प्रश्रयमुग
एदल भीति पोंदरु मरि यिंकतिप्पुडु
ई प्रजल नडिपिंचेडिदेव्वडिपुडु।

अनुकोक यज्ञमै चनिन पंडित जह्वरु जीवितम्मु भा-
रत जनताहृदंतरमुलंदुन मायनि स्वर्ण चित्रमै—
अतलयि पंडुकीर्तुलु दिशावलयम्मुल मौक्तिक स्रगा
यतमुलु चांदनील् परचिरायन मिन्नुल दिव्यकामिनुल्।
ओक महाव्यक्ति जीविंचि युन्नपुडु
जीवितुंडगुटे सुकृतावरणमु
गांधियुनु नीवु अतिकिन कालमंदु
अतिकिनामु मा अनुकूल भाग्यमेमो !
नीवु वेसिन बाटलो निलचिनट्टि
मेमु पुनरंकितुलमयिनामु नेडु
नी मधुरस्वप्नमुलु यथान्वितमुलगुनु
शान्त्यहिंसापथम्मुन सागगलमु।

हे जवाहर ! (हिन्दी)

[प्रा. भीमसेन 'निर्मल']

चल रहे थे नव सुधा की धाराएँ
हाय ! किसी ने विष उँडेल दिया।
प्रशान्त था जो सागर महान्
बाडव की ज्वालाएँ उठीं पल-भर में।

मान न सके सुन समाचार यह, मृत्यु पर क्रोध सविशेष
भारत की विपद्दशा की कर कल्पना, घोर शाप होंठों पर
पर मृत्यु है ऐसी जिससे कोई बच नहीं सकता
सोच यह शोक साकार बना भारत के जन-दृगों में।
विपत्ति-सागर को तर सकें कैसे ? न हों जवाहर कर्णधार
जो हैं प्रदीप्त भावनारूपित धीविशारद
प्रखर मतीरित शान्ति भाव युक्त
हो पृथ्वीतल पर भेदभाव न कोई
समस्त जगत् को एक परिवार की रूपकल्पना
देने वाले वे प्रजारवि।

तुम बिन भारत की कल्पना करें कैसे ?
जल सूखे हों एक महासागर !
पवन स्तब्ध बना हो आकाश मंडल !
न न ! कल्पना ही भयावह बने ऐसी।
तुम पर डाल सब भार
इतने जन निश्चिन्त बने रहे
भयभीत बने न कभी
पर अब प्रजा को मार्ग जतलाए कौन ?

जीवन ही सवन बना पंडित जवाहर का
कथा वह बने जनता के मानस पट अमिट स्वर्णचित्र—
कीर्ति जो प्रकाशित दशदिशाओं में बन मुक्ताहार
मानो दिव्य नारियों ने बिछाई व्योम में चाँदनी।
महाव्यक्तियों के जीवनकाल में
जीवित रहें, यह एक सुकृत अपूर्व
महात्मा और तुम महान् के संग
जीवित रहे हम पुराकृत पुण्यवश।
तुम्हारे बतलाए मार्ग में आज फिर
दीक्षारत हुए हम लोग
कमनीय सपने तुम्हारे यथार्थ हो रहेंगे
शान्ति औ' अहिंसा के पथ में बढ़ते रहेंगे।

★ ★

पुस्तक परिचय



जीवन-संघर्ष—श्री सत्यदेव विद्यालंकार—राजपाल ऐंड सन्स, दिल्ली ६—रु. ५

यह महत्त्वपूर्ण प्रकाशन पंजाब के सुप्रसिद्ध स्वर्गीय नेता, महाशय कृष्ण का जीवनेतिहास है। डिमाई आकार के ३०० सुमुद्रित पृष्ठों में इसे सुलेखन के धनी श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने प्रस्तुत किया है। इसमें न केवल महाशय कृष्ण के कार्यकलाप का वर्णन है, अपितु तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक इतिहास का भी लेखा-जोखा है। इसलिए इस ग्रन्थ की रोचकता और उपादेयता भी निःस्संदेह कई गुनी बढ़ गई है।

धनी परिवार में जन्म लेने पर भी महाशय कृष्ण में बचपन से ही समाज-सेवा की प्रखर भावनाएं उत्पन्न हो गई थीं। उन दिनों पंजाब में आर्य-समाज का आन्दोलन बड़ी तेजी से उठ रहा था और सभी कर्मठ व्यक्ति इसकी ओर आकृष्ट हो रहे थे। महाशय जी ने भी स्वतः को इसकी अग्नि में झोंक दिया और पत्रकार के नाते अपना योगदान करने लगे। पहले उन्होंने "आर्य-पत्रिका" का सम्पादन किया, फिर 'प्रकाश' निकाला। शीघ्र ही 'प्रकाश' आर्य-समाज की कार्रवाइयों का प्रकाशक और यंत्र बन गया। साथ ही महाशय जी आर्य-समाज के विविध कार्यों, यथा वेद-प्रचार, सेवा-सदन, गुरुकुल, आर्य प्रतिनिधि सभा आदि में भाग लेते रहे और शीघ्र ही इन सबके एक प्रमुख नेता के रूप में गिने जाने लगे। सुप्रसिद्ध हैदराबाद सत्याग्रह में आपने हजार से ऊपर सत्याग्रहियों के साथ भाग लिया। आगे चलकर आपने हिन्दी-रक्षा आन्दोलन में भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

'प्रकाश' के बाद आपने दैनिक 'प्रताप' निकाला, जो अपनी तेजस्विता के कारण सरकार की कोपदृष्टि का प्रायः शिकार होता रहा। परन्तु इन्हीं अग्नि-परीक्षाओं में पड़कर वह अधिकाधिक जाज्वल्यमान होता गया और शीघ्र ही पंजाब का साम्प्रदायिक दैनिक पत्र बन गया। 'प्रताप' सभी राष्ट्रीय प्रश्नों पर आगे बढ़कर नेतृत्व करता था और क्रमशः महाशय जी भी आर्य नेता से राष्ट्र नेता बन गए। विभाजन के समय इसे उठाकर दिल्ली लाया गया और अत्यन्त कठिनाई से पुनः आरम्भ किया गया।

महाशय जी की लेखनी बड़ी प्रखर और उग्र थी। मौलाना आजाद ने एक बार कहा था कि यह कलम से नहीं, तेशे से लिखता है। जिस समस्या को भी वे लेते थे, उसका पूरी तरह विश्लेषण किए बिना पीछे नहीं हटते थे। इस कारण वे और उनका 'प्रताप' पंजाब की एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बन गया। यह शक्ति उनके जीवन के अन्त तक प्रभावी रही।

श्री सत्यदेव जी ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक इस ग्रन्थ का प्रणयन करके देश तथा विशेषतः पंजाब का विशेष उपकार किया है। नेत्रहीन हो जाने के कारण दूसरों की सहायता पर निर्भर रहने पर भी ग्रन्थ सर्वांग-पूर्ण और उपयोगी बन पड़ा है। उनकी भाषा प्रांजल है तथा तथ्यों का प्रस्तुतीकरण सुगठित है। उनमें इतिहास की दृष्टि है, इसलिए वे एक व्यक्ति पर लिखते हुए भी उसकी सामाजिक समग्रता को साथ लिए चलते हैं।

पुस्तक का मूल्य प्रचार की दृष्टि से कम रखा गया है। छपाई-सफाई प्रथम श्रेणी की है।

साहित्य-सिद्धान्त—डा० रामअवध द्विवेदी—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना—रु० ५·००।

साहित्य के दार्शनिक पक्ष पर सरलता तथा

स्पष्टता से लिखना सदा ही कठिन कार्य माना जाता रहा है। इस पर वही विद्वान् सफलतापूर्वक लिख सकता है जिसने विषय के विविध पक्षों को भली-भांति पढ़ और समझ ही न लिया हो, अपितु उसे अपने मस्तिष्क का रक्त बनाकर पचा भी लिया हो। डा. रामअवध द्विवेदी ऐसे ही विद्वान् हैं। आपने न केवल भारतीय अपितु पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्तों का विधिपूर्वक अध्ययन किया है, उन्हें तुलनात्मक दृष्टि से देखा है और उनके बीच की समान सार्वभौमता को भी अनुभव किया है। उन्होंने माना है कि साहित्य चाहे भारत में रचा जाय, अथवा इंग्लैंड, अमेरिका या अफ्रीका में, उसकी मूलभूत प्रवृत्तियाँ एक और अखंड हैं, क्योंकि मनुष्य स्वयं मूलतः एक और समान है। इसलिए विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही नहीं किया जा सकता, सभी सिद्धान्त एक ही वस्तु के विविध पक्ष हैं, एक दूसरे के पूरक हैं।

इसी मूल धारणा से प्रेरित प्रस्तुत ग्रन्थ में चौदह अध्याय हैं, जिनमें साहित्य-दर्शन के सभी पक्षों का विवेचन किया गया है। इसमें भारतीय तथा पाश्चात्य सिद्धांतों को अलग-अलग प्रस्तुत नहीं किया है, अपितु एक साथ ही उनकी चर्चा और आलोचना की गई है। आरम्भ काव्य की प्रेरणा की खोज से होता है। इसके बाद अनुकरण, रेचन और रस सिद्धांतों का पृथक् अध्यायों में विवेचन है। फिर शब्द, अर्थ, शक्ति, औदात्य, आह्लाद, भ्रान्ति, अन्विति आदि विषयों का विवेचन है। इसके बाद नाट्यमीमांसा है और सर्जनात्मक कल्पना, साहित्य और यथार्थ, स्वप्न, बिम्ब, प्रतीक आदि आधुनिक कल्पनाओं को लिया गया है। इसके बाद क्रोचे, इलियट और रिचर्ड्स के विचारों का वर्णन है। अन्त में साहित्यिक अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों की मीमांसा की गई है।

डा. द्विवेदी की भाषा और शैली के संबंध में तो कहना ही क्या! वह अत्यन्त प्रांजल और विषयोपयोगी है। वैचारिक निबन्धों की यह आदर्श भाषा कही जा सकती है। परन्तु कहीं भी जटिलता नहीं है, बड़े स्पष्ट और चुटीले ढंग से विषयों को व्यक्त किया गया है। व्यर्थ की भूमिकाएं तथा विवाद भी नहीं हैं, जो ऐसे ग्रन्थों में प्रायः हुआ करते हैं।

संक्षेप में, यह सर्वांग-सुन्दर ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद ने अल्प मूल्य पर प्रकाशित कर सबका बड़ा उपकार किया है। छपाई और सज्जा प्रथम श्रेणी की है।

रहस्यवाद—लेखक, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—प्रकाशक, बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना—मूल्य रु. ५·००

प्रसिद्ध हिन्दी-सेवी संस्था, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, प्रतिवर्ष दो या तीन विशिष्ट हिन्दी विद्वानों के शोधपूर्ण भाषणों का आयोजन करती है। इन व्याख्यानों को फिर पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता है। समालोच्य ग्रंथ १९६२ के एक भाषण का प्रकाशित रूप है।

परिशिष्ट तथा अनुक्रमणिका के अतिरिक्त इस ग्रंथ में पाँच अध्याय हैं। परिशिष्ट का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व है कि इसके रहस्यवाद से सम्बन्धित उद्धरण भारतीय साहित्य, बौद्ध साहित्य, ईरानी, शामी तथा ईसाई साहित्य से प्रस्तुत किए गए हैं। सुयोग्य लेखक ने इस ग्रन्थ में अपने को रहस्यवाद के स्वरूप, अनुभूति तथा अभिव्यक्ति तक ही सीमित नहीं रखा अपितु रहस्यवाद के सम्बन्ध में मौलिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टि विशेष मनन के अनन्तर प्रस्तुत की है।

'रहस्यवाद' शब्द चाहे अत्यधिक पुराना नहीं (इस शब्द का प्रयोग हिन्दी में सर्वप्रथम काव्य-शैली के प्रसंग में सन् १९२७ में हुआ) परन्तु रहस्य की भावना बहुत पुरानी है। इस भावना का मूल-अस्तित्व सृष्टि के प्रारम्भ से ही विद्यमान है। रहस्यवाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। धर्म, दर्शन, साहित्य ही नहीं, मानव-जीवन में भी इसके विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं तथापि चिरकाल तक इस गहन विषय का अध्ययन एक "धार्मिक अनुभव" या शैली के रूप में ही हुआ। सही मूल्यांकन इसलिए नहीं हो पाया कि विचारकों ने वैज्ञानिक दृष्टि से इस विषय का मनोवैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया। इस ग्रन्थ में रहस्यवाद को जीवन-दर्शन विशेष के रूप में ही लिया गया है। रहस्यवाद की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की गई है—"रहस्यवाद एक ऐसा जीवन-दर्शन है जिसका मूल

आधार किसी व्यक्ति के लिए उसकी विश्वात्मक सत्ता की अनिर्दिष्ट वा निर्विशेष एकता वा परमात्म-तत्त्व की प्रत्यक्ष एवं अनिर्वचनीय अनुभूति में निहित रहा करता है और जिसके अनुसार किए जाने वाले उसके व्यवहार का स्वरूप स्वभावतः विश्वजनीन एवं विकासोन्मुख भी हो जा सकता है।" जिस रहस्यवाद को लेखक ने जीवन-दर्शन का नाम दिया है, वह किसी काल अथवा युग विशेष की बात नहीं। इसका उपयोग किसी भी देश विशेष या समाज विशेष में हो सकने योग्य है।

रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति कोई सरल कार्य नहीं, अभिव्यक्ति का रूप केवल एक भाव न होकर विविध रंग धारण कर सकता है। ग्रन्थ में अभिव्यक्ति की विभिन्न पद्धतियों में काव्यकला के अतिरिक्त संगीत, चित्रकला, स्थापत्यकला आदि माध्यमों पर भी विचार किया गया है। अब तक काव्यकला को ही सर्वाधिक प्रधानता देने की परम्परा रही है, संगीत आदि विविध कलाओं की माध्यम के रूप में उपयुक्तता के प्रति उपेक्षा का भाव ही दृष्टिगोचर हुआ है।

पंचम अध्याय में ग्रीस, बौद्ध धर्म, ताओ धर्म, यहूदी, ईसाई तथा अन्य अनेकों धर्मों में रहस्यवादी भावना का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन-कालीन तथा मध्यकालीन रहस्यवाद के साथ-साथ आधुनिक रहस्यवाद का भी विशद विवेचन है। रहस्यवाद के भविष्य के सम्बन्ध में लेखक का मौलिक दृष्टिकोण इस प्रकार है—"रहस्यवाद के भविष्य को अन्धकारपूर्ण ठहराना कभी उचित नहीं कहला सकता। हम तो यहां तक भी कहेंगे कि जिस प्रकार हमने उसे यहां पर किसी जीवन-दर्शन के रूप में देखा है, उसी प्रकार उसका उपयोग किसी दिन उस रूप में भी किया जा सकेगा जिसे 'जीवन में सत्य का प्रयोग" कहा जा सकता है।"

ग्रन्थ के विषय में श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र "माधव" के ये शब्द उपयुक्त ही हैं—"रहस्यवाद" विदेशी तथा भारतीय भाषाओं में वर्षों के अध्ययन, मनन एवं चिंतन के आधार पर की गई एक मौलिक कृति है, जिसमें इसके उद्भव, विकास और भावी संभावनाओं का विस्तृत विवेचन प्रतिपादित हुआ है।

श्री चतुर्वेदी जी के गम्भीर अध्ययन, उनकी वैज्ञानिक दृष्टि, तर्कपूर्ण मौलिक शैली ने समालोच्य ग्रंथ को परमोपयोगी बना दिया है।

—मोहन मैत्रेय

दि ह्वाइट अम्ब्रैला तथा दि नेशनलिस्ट मूवमेंट (अंग्रेज़ी)—डी. मैकेंज़ी ब्राउन—जैको पब्लिशिंग हाउस, १२५, महात्मा गांधी रोड, बम्बई १—रु. ३ प्रत्येक।

प्रस्तुत दोनों पुस्तकें भारत के राजनीतिक दर्शन तथा क्रियाकलाप से संबंधित हैं। पहली पुस्तक में मनु से गाँधी तक प्राचीन और नवीन विचारधाराओं का वर्णन और विश्लेषण किया गया है तथा दूसरी में महादेव गोविंद रानाडे से विनोबा भावे तक प्रमुख विचारकों के राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान पर प्रकाश डाला गया है। ये पुस्तकें मुख्यतः अमेरिकी पाठकों के लिए लिखी गई हैं तथा इनमें न तो भारत की राजनीतिक परंपरा का सम्पूर्ण इतिहास है, न उसका विवेचन—एक संक्षिप्त दर्शन मात्र है।

पहली पुस्तक में दो विभाग हैं और प्रथम विभाग में भारत की राजनीतिक विचारधारा का सामान्य वर्णन देने के पश्चात् मनुस्मृति, शांतिपर्व (महाभारत), अर्थशास्त्र तथा शुक्रनीति के तत्संबंधी मुख्य-मुख्य अंशों के उद्धरण दिए गए हैं। इसी प्रकार दूसरे विभाग में आधुनिक भारतीय नवोदय का सामान्य वर्णन देने के बाद विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री अरविंद तथा महात्मा गाँधी के राजनीतिक विचारों के उद्धरण दिए गए हैं। इस प्रकार विचारकों के मुख से स्वयं ही अपनी बात कहलाकर लेखक ने उनकी अधिकृतता और महत्ता बढ़ा दी है, इसमें सन्देह नहीं।

दूसरी पुस्तक में भी मुख्यतः व्यक्तियों को केन्द्र बनाकर भारत की आधुनिक राजनीतिक विचारधारा को प्रस्तुत किया गया है। इसका एक उद्देश्य यह भी दिखाना है कि नए युग में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों के समक्ष प्राचीन विचारधारा ने किस प्रकार अपने को

व्यक्त और सफल सिद्ध किया। आरम्भ में इस संघर्ष की रूपरेखा दी गई है और कांग्रेस के स्वाधीनता आन्दोलन पर प्रकाश डाला गया है। फिर रानाडे, गोखले, तिलक, लाजपतराय, गाँधी जी, नेहरू, राधाकृष्णन, जयप्रकाशनारायण तथा विनोबा भावे के विचारों के उद्धरण दिए गए हैं। प्रत्येक के साथ परिचयात्मक टिप्पणियाँ भी हैं।

इन पुस्तकों की मुख्य विशेषता उनकी सरलता तथा स्पष्टता है। गहराई में जाते हुए भी इस तरह विषय को प्रस्तुत किया गया है कि वह परिचित प्रतीत होता है और आसानी से समझ में आ जाता है। जैको ने इनके जेबी संस्करण निकालकर उपयोगी कार्य किया है।

श्री अरविंद केम टु मी (अंग्रेज़ी)—
दिलीपकुमार राय— जैको पब्लिशिंग हाउस, बम्बई-१—रु. २'५०।

विख्यात पिता श्री द्विजेन्द्रलाल राय के विख्यात पुत्र श्री दिलीपकुमार राय भारत के प्रसिद्ध संगीतज्ञ, भक्त, योगी तथा लेखक हैं। "एमंग दि ग्रेट" नामक आपकी पुस्तक, जिसमें गाँधी, टैगोर, अरविंद, रोमा रोलां तथा बर्ट्रेन्ड रसेल के संस्मरण है, लेखन-कला का एक अनुपम उदाहरण है। इसके अतिरिक्त भी आपने अंग्रेजी तथा बंगला में अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। स्वतन्त्र विचारक होते हुए भी आपमें धार्मिकता आरम्भ से ही रही है और आत्मोपलब्धि की दिशा में आगे बढ़ते हुए आपने अपने यौवन काल में ही श्री अरविन्द के पांडिचेरी-स्थित आश्रम की सदस्यता स्वीकार कर ली थी। यहाँ आप २० से अधिक वर्षों तक रहे। इस अवधि में आपने योगाभ्यास के द्वारा अतिमानव के अवतरण की विचारधारा का अभ्यास किया। सन् १९५० में श्री अरविन्द के आकस्मिक देहावसान के पश्चात् आप पूना आ गए जहाँ अपनी एक शिष्या, इंदिरा देवी, के साथ आप धर्म-प्रचार में संलग्न हैं।

आपका जीवन मुख्यतः श्री अरविन्द की विचारधारा का अध्ययन और अभ्यास करने में बीता है। आप श्री अरविन्द के अत्यधिक निकट आए और उनको निकट से देख पाने तथा समझने में समर्थ हुए। उनपर आपकी अगाध निष्ठा थी। अतः उनके संबंध में आपका लिखना स्वाभाविक ही है। एमंग दि ग्रेट' में भी जितने विस्तार से आपने श्री अरविंद पर लिखा है, उतना किसी अन्य पर नहीं। घनिष्ट चर्चाएं तथा पत्र-व्यवहार भी बहुत से हैं। प्रस्तुत ग्रंथ को एक प्रकार के उसी का विस्तार कहा जा सकता है। इसमें बिल्कुल आरम्भ से श्री अरविन्द के साथ आपके संबंध, आश्रम में जाने के पश्चात् उनसे विचार वार्ताएं—जिनमें अनेक बड़े खुले तथा आलोचनात्मक ढंग से की गई हैं—तथा देहांत के समय तक की योग-साधना संबंधी मुख्य-मुख्य बातों का विवरण है। इसमें श्री अरविंद के दार्शनिक पक्ष पर बड़े ही विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है। अनेक स्थानों पर यह भी संकेत दिया गया है कि अतिमानव की कल्पना पर सन्देह किया जाता था। अन्य व्यवहारवादी दार्शनिकों से अरविन्द की तुलना की जाती थी। परन्तु यह कहीं नहीं बताया गया है फिर श्री अरविन्द के देहांत के पश्चात् अतिमानव दर्शन का क्या हुआ? व्यवहार से इस दर्शन की सत्यता सिद्ध हुई या नहीं? इस सम्बन्ध में श्री राय ने कहीं अपना व्यक्तिगत विचार भी प्रकट नहीं किया है।

हाँ, इससे यह अवश्य अनुमान होता है कि निष्ठावान आश्रम-वासियों के बीच आप अपने संदेही विचारों तथा कलात्मक अभिरुचियों के कारण अलग से ही रहते थे। संभवतः, इसीलिए आपने बाद में आश्रम छोड़ दिया हो। हाँ, श्री अरविद ने कभी भी आपकी आलोचनाओं और स्पष्टोक्तियों का बुरा नहीं माना और बड़े प्यार से आपको समझाते-बुझाते रहे। श्री अरविंद स्वयं भी कुशल और विनोदी लेखक थे, इसीलिए आप दोनों के मध्य हुआ पत्र-व्यवहार अत्यंत रोचक और पढ़ने योग्य है। श्री अरविंद के इसी गुण के कारण कि वे किसी भी आलोचना का बुरा नहीं मानते थे और शिष्य पर निरंतर अपना प्रेम बरसाते ही रहते थे, श्रीराय ने इस तथा अन्य ग्रन्थों में उनके प्रति अपनी अगाध श्रद्धा को व्यक्त किया है।

चेमीन—तकषि शिवशंकर पिल्ले—जैको पब्लिशिंग हाउस, बंबई-१—रु. २ ५०

मलयालम के सुप्रसिद्ध कथाकार तकषि शिवशंकर पिल्ले की वह सुप्रसिद्ध रचना है जिसे भारत में राष्ट्रपति का विशेष पुरस्कार मिल चुका है। प्रतिनिधि साहित्य के अनुवाद की यूनेस्को योजना के अंतर्गत इसका अंग्रेजी अनुवाद लंदन के विक्टर गोलैंज ने प्रकाशित किया था, जिसका जेबी संस्करण जैको ने निकाला है। श्री नारायण मेनन कृत अनुवाद सरल और सुन्दर है।

"चेमीन" केरल समुद्रतट के मछुआरों की कथा है, जिसमें उनका सरल परन्तु रूढ़िग्रस्त जीवन दर्शाया गया है। इनके जीवन का वर्णन बड़ा ही सजीव है। ये समुद्र की देवी के पूजक होते हैं और उनके कठोर नियमों से बंधे रहते हैं। वह सज्जनों की रक्षा करती है और दुर्जनों को दण्ड देती है। एक नियम है स्त्रियों का पवित्र रहना तथा समय आते ही विवाह कर लेना। करुथम्मा एक किशोरी कन्या है जो एक मुस्लिम युवक के प्रेम में पड़ जाती है। उसका दरिद्र पिता अपनी ही एक नाव खरीद लेकर अपना व्यापार अलग शुरू करना चाहता है। वह इसमें करुथम्मा के प्रेमी से आर्थिक सहायता लेता है और इस प्रकार अपनी कन्या से उसके प्रेम का उपयोग कर लेता है। परन्तु अन्य मछुआरे न तो उसका नाव लेना स्वीकार करते हैं न यह प्रेम सम्बन्ध। वे मुखिया से शिकायत करते हैं, जिसकी अनुमति के बिना नाव खरीदी ही नहीं जा सकती। यह विरोध तीव्र होता है और इसका परिणाम करुथम्मा को भुगतना पड़ता है।

लेखक ने इस कारुणिक कहानी को अत्यन्त कुशलता से प्रस्तुत किया है। प्रतीत होता है कि इस जीवन से उसका घनिष्ट परिचय है। साथ ही उसमें एक अंतर्निहित मानवता है, जो सभी चरित्र-चित्रणों को एक अभूतपूर्व गहराई से भर देती है।

पिल्ले के अन्य उपन्यासों का भी अंग्रेजी अनुवाद हो रहा है। महत्त्वपूर्ण भारतीय साहित्य को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक कार्य है और इसे योग्यतापूर्वक संपन्न किया जाना चाहिए।

संस्कृति, भारत विद्या विशेषांक— संपादक, राजेन्द्र द्विवेदी—शिक्षा मंत्रालय, १ ई. ३, कर्जन रोड ए बैरक्स, नई दिल्ली—रु. १'००

गत जनवरी मास में पहली बार भारत में प्राच्य-विद्या विश्व सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, जो सभी दृष्टियों से अत्यन्त सफल रहा। इसमें संसार भर के हजार से ऊपर विद्वानों ने भाग लिया और विविध विषयों की चर्चा की। तत्कालीन सांस्कृतिक कार्य मंत्री, प्रो. हुमायूं कबीर के संचालन में गठित स्वागत समिति का प्रबध और आतिथ्य इतना पूर्ण और उत्तम रहा कि उसकी सर्वत्र प्रशंसा की गई। इस अवसर पर जो विपुल साहित्य प्रकाशित कर प्रतिनिधियों को वितरित किया गया, वह अत्यंत मूल्यवान तथा उपयोगी था। इसी समय मंत्रालय की त्रैमासिक अंग्रेजी पत्रिका ने अपना सर्वांगसुन्दर विशेषांक भी निकाला, जिसका हिन्दी रूप प्रस्तुत पत्रिका ने प्रस्तुत किया है। समय से कुछ बाद प्रकाशित होने पर भी इसका महत्त्व किसी भी भांति कम नहीं होता—यद्यपि इसमें भी संदेह नहीं कि इसे भी उसी समय प्रकाशित कर देना सभी प्रकार उचित और उपयोगी होता।

इसमें अंग्रेजी पत्रिका के चुने हुए लेख हिन्दी अनुवाद में प्रकाशित किए गए हैं। आरम्भ में प्रो. कबीर का अतिथि सम्पादकीय है जिसमें उन्होंने विश्व की एकता में प्राच्यविद्या के महत्त्व और योगदान पर प्रकाश डाला है। फिर भारतविद्या के विविध पक्षों पर एक संगोष्ठी है जिसमें स्व. पणिक्कर, ज्यां फिलियोज़ा, डा. राघवन, डा.मजुमदार, श्री रमाप्रसन्न नायक आदि विद्वानों ने भाग लिया है। इसके बाद भारत विद्या के विविध पक्षों, यथा नाटक, नृत्य, संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य, साहित्य आदि विषयों पर विद्वानों के लेख हैं। संक्षेप में, यह भारत विद्या का एक स्थल पर उपलब्ध लघु अध्ययन है, जो अत्यन्त उपयोगी है। पत्रिका का मुद्रण और सज्जा बहुत आकर्षक है।

सेक्स इन मैरिज (अंग्रेजी)—डा. डोरोथी वाल्टर बरुक तथा डा. हाइमन मिलर—जैको पब्लिशिंग हाउस, बम्बई—रु. ३.००

विवाह मानव-जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसकी सफलता से न केवल व्यक्ति के अपने जीवन की सफलता है, अपितु समाज और राष्ट्र की सफलता भी है। इस विषय पर प्राचीन भारत में "काम सूत्र", "रतिरहस्य", "अनंग रंग" जैसी अनेक पुस्तकें लिखी जाती रही हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी नई शोधों पर आधारित पुस्तकें लिखकर इस विषय के ज्ञान की वृद्धि की है। प्रस्तुत पुस्तक भी ऐसी ही एक उत्तम रचना है जो एक डाक्टर दंपती ने अपने जीवन-व्यापी अनुभवों से लिखी है। इसमें विवाह की आवश्यकता से लेकर विवाह के आधारभूत तत्त्वों, यौन समस्याओं, प्रथम रात्रि, प्रेम और सहयोग, गर्भाधान और शिशु-जन्म, बच्चों के विकास, जीवन की परिपूर्णता, तलाक की कठिनाइयों तक सभी पक्षों पर विद्वतापूर्वक प्रकाश डाला गया है। विविध व्यक्तियों की समस्याओं के उदाहरण देकर विषयों को समझाया गया है। प्रेम, विवाह, काम और परिवार की इस समस्त चर्चा में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थितियों तथा उनके अच्छे-बुरे प्रभावों का विशेष ध्यान रखा गया है।

इस विषय में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए यह पुस्तक उपादेय और नवीनतम जानकारी से भरपूर है। जेबी संस्करण में इसका मूल्य भी कम है।

—चिरंतन

सम्पादकीय



विश्व-मानव नेहरू को विदा—

महात्मा गाँधी, सरदार पटेल, मौलाना आज़ाद तथा डा० राजेन्द्रप्रसाद के पश्चात् अब श्री नेहरू भी हमारे बीच नहीं रहे। नवोदय तथा स्वाधीनता की प्राप्ति के इतिहास का प्रथम युग इन महापुरुषों के उठ जाने से समाप्त हुआ। अब हमारा शक्ति-सञ्चय तथा तेजस्वी नव-निर्माण का दूसरा युग आरम्भ हो रहा है। इस नवयुग के प्रवेश-द्वार पर खड़े आज हम उन सभी उक्त एवं अनुक्त नेताओं की स्मृति में सिर झुकाते हैं, जिन्होंने अपने तप, त्याग तथा योग्यता द्वारा इसे लाने का श्रेयस्कर कार्य किया।

श्री नेहरू अपने त्यागमय, समर्पणमय और साधना-मय जीवन-योग के बल से विगत १८ वर्ष पर्यन्त बराबर भारत-प्रशासन की नौका के अचूक खिवैया बने रहे। भले ही समान रूप से भारत की सेवा में निरत अन्य अनेक नेताओं को श्री नेहरू के विचारों से विमति रही हो, परन्तु उन सभी का सदैव उन की भाव-शुद्धि पर विश्वास बना रहा। इसीलिए सभी प्रकार के व्यावहारिक मतभेदों के होते हुए भी, वे ही एक अकेली ऐसी विभूति बने रहे, जिन के प्रति सभी के हृदयों में एक जैसा प्रेम तथा आदर का भाव लहरें मारा करता था।

श्री नेहरू कोरे राजनीतिक नेता नहीं थे। वे मानव एवं मानवता के विकास के मर्मज्ञ ऐतिहासिक विद्वान् भी थे। उनके हृदय में भारत तो बसा हुआ था ही, परन्तु विश्व-भर के मानवों के प्रति अगाध प्रेम भी बराबर उमड़ता रहता था। उन्हें इस बात का स्पष्ट भान हो चुका था कि मानव-विश्व का उज्ज्वल भविष्य और शाश्वत कल्याण सङ्कीर्ण राष्ट्रवाद के सीमित घेरे से निकल कर विश्व-मानवता की आदर्श-भावना एवं मानवमात्र की भावनात्मक एकता की स्थापना द्वारा ही विकसित होता हुआ उत्तम रीति से पनप सकेगा। इसीलिए उनकी यही हार्दिक कामना और तदनुसार साधना-प्रवृत्ति बनी रहती थी कि एशिया, अफ्रीका तथा अन्य सब स्थानों के सभी पिछड़े हुए मानव राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति करते हुए विश्व-मानवता की उदात्त भावनाओं से रंगे जाएं और सभी आपस में मिल कर सर्वहित की सांझी साधना में लग जाएं।

इन्हीं अपनी हार्दिक सद्भावनाओं के अनुरूप श्री नेहरू की अपनी लिखी वसीयत के ठीक अनुरूप उनके मृत देह की राख का कण-कण भारत की ही नहीं, नदियों और सागरों के माध्यम से मानव-मात्र की आश्रय-दायिनी समग्र पृथ्वी की मिट्टी के कण-कण के साथ घुला-मिला कर एक-जान कर दिया गया है। इस धरती पर श्री नेहरू से पहले विश्व-मानव के और भी अनेक सच्चे उपासक और प्रचारक हो चुके हैं। उनकी देन-स्वरूप उनके सद्भाव और सद्-विचार मानव-मात्र की शाश्वत सम्पत्ति बन रही है। परन्तु श्री नेहरू के मृत देह की राख की उक्त लीला वस्तुतः सबसे अधिक अद्भुत और न्यारी रही है। श्री नेहरू के आदेश के अनुसार ही उनकी भस्मी का एक कण मात्र भी कहीं उस पर समाधि, चैत्य आदि किसी प्रकार का भी विशेष स्मारक खड़ा करने के लिए सुरक्षित नहीं रखा गया। परन्तु ऐसा होते हुए भी विशेषतः भारत-भूमि का और सामान्यतः पृथ्वीभर का कोई भी कोना उस पवित्र भस्मी से अछूता नहीं रह पाया।

इस प्रकार यथार्थ में न केवल अपने महान् जीवन की सर्वहितकारी साधनाओं और प्रवृत्तियों की प्रेरणा-दायिनी स्मृतियों द्वारा, वरन् अपने भौतिक शरीर के

कण-कण द्वारा भी श्री नेहरू अपने मस्तक की प्रतिमा-रूपिणी और अपने हृदय की इष्ट-देवता-स्वरूपिणी विश्व-व्यापिनी सत्ता में अब सदा के लिए नत-मस्तक और लीन होते हुए अमर हो चुके हैं। इसलिए हम भी नत-मस्तक हो कर उस सच्चे विश्व-मानव को विदा कहते हुए भी वस्तुतः ऐसा प्रतीत कर रहे हैं कि हम उन्हें किसी प्रकार भी विदा कहने में समर्थ नहीं हैं और न कहना ही चाहते हैं। कारण, भौतिक शरीर छूट जाने के पश्चात् अब तो वे अपने विश्व-व्यापक यश काय द्वारा हम सभी के अंदर-बाहिर ओत-प्रोत हो रहे हैं और हमारी आगे आने वाली अगणित पीढ़ियों के अंदर-बाहिर भी इसी प्रकार बने रहेंगे। वे अब हम सब के शाश्वत जीवन के अभिन्न अङ्ग बन चुके हैं। नमस्कार, नमस्कार, उस सच्चे विश्व-मानव को शतशः नमस्कार !

स्वागत, श्रीशास्त्री !

महादेश भारत के सर्वोपरि शासकीय पद पर हम श्री लाल बहादुर शास्त्री का स्वागत करते हैं। इस पद पर आपकी उपयुक्तता इसी से प्रमाणित है कि आप के सर्वसम्मत निर्वाचन का पहले से ही सभी को अनुमान था और इसमें कोई बाधा नहीं पड़ी। लोकतन्त्र के इस युग में सभी की श्रद्धा का समान रूप से भाजन होना निस्संदेह गौरव की बात है। स्वयं श्रीनेहरू का अपने कई-एक विशिष्ट कार्यों का श्री शास्त्री को सौंप देना भी इस बात का ज्ञापक कहा जा सकता है कि उन की दृष्टि में वे ही उन के उत्तराधिकारी बन सकेंगे।

श्री नेहरू भारत के प्रधान मन्त्री केवल इसी कारण नहीं बने थे कि राष्ट्र-पिता महात्मा गाधी ऐसा चाहते थे, वरन् उस से भी अधिक कारण यह था कि उन्होंने महात्मा जी की भांति ही जनता के हृदयों में अन्य सभी सामयिक नेताओं की अपेक्षा अपनी सर्वप्रियता प्रतिष्ठित कर ली थी। यह प्रसन्नता की बात है कि श्री नेहरू के पश्चात् भी प्रधान मन्त्री की नियुक्ति उक्त प्रशासनिक स्वास्थ्य-प्रद आधार पर ही हुई है। कारण, श्री शास्त्री भी पर्याप्त समय से देश भर के स्त्री-पुरुषों के विशेष सम्मान के पात्र बन चुके हैं। विदेशों में भी उनके इस चुनाव पर जो संतोष व्यक्त किया गया है, वह भी इस चुनाव की यथार्थता का उत्तम लक्षण कहा जा सकता है।

श्री शास्त्री सभी भांति भारतीयता की प्रतिमूर्ति हैं। उनकी सज्जनता तथा सच्चरित्रता उनकी आकृति पर अंकित है। वे एक ओर जहां सादगी और सरलता में महात्मा गांधी और डा. राजेन्द्रप्रसाद को स्मरण कराते हैं, वहां दूसरी ओर वे दृढ़ता और गंभीरता में सरदार पटेल और श्री नेहरू की छाप लिए हुए हैं। उनमें प्रशासनिक सर्वोच्च अधिकारी के सभी आवश्यक गुणों का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है, और यह समय-समय पर प्रमाणित भी होता रहा है। वे झगड़ों को निबटाने तथा सबको साथ लेकर चलने, परन्तु उचित बात मनवा भी लेने, में सिद्धहस्त हैं। आज वस्तुतः इस गुण की सर्वाधिक आवश्यकता है।

परन्तु श्री नेहरू के विपरीत उनका जन्म बहुत सामान्य परिवार में हुआ। उन्हें स्नातकोत्तरीय उच्च शिक्षा प्राप्त करने का भी अवसर नहीं मिला। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों से भी वे एकदम अछूते ही रहे। भारत से बाहिर भी वे नेपाल के अतिरिक्त कहीं नहीं गए। कांग्रेस के नेतृत्व की परम्परा में भी वे बहुत पीछे आ कर ही गिने जाने लगे हैं। परन्तु फिर भी वे अपने-आप को अपने वर्तमान दायित्व के उपयुक्त बनाने में समर्थ हुए हैं। संभवतः अपनी सामान्य स्थिति के कारण वे भारत की समस्याओं और उसकी जनता के दुःखों को अधिक गहराई एवं समीपता से समझ सकेंगे।

हमें विश्वास है कि आप के स्थिर नेतृत्व में देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होते हुए विश्व मे अपने वर्तमान उच्च स्थान को और अधिक ऊंचा कर सकेगा।

आप की शिक्षा-दीक्षा की गुरु-परम्परा के मूल पुरुष रहे हैं पं. मदनमोहन मालवीय, ला. लाजपतराय, आचार्य नरेन्द्रदेव और बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, जिन के चरण-चिह्नों पर चलते हुए आप श्री लालाजी के "लोकसेवा मंडल" के जीवन-सदस्य बन कर और उस के अनुरूप तप और त्याग का व्रत धारण करके जनता की सेवा एवं स्वतन्त्रता-प्राप्ति के संग्राम में जुटे रहे हैं। अपने वर्तमान महान् कार्य-भार को सफलतापूर्वक वहन करने में साधना की यह ठोस पृष्ठभूमि आप को अवश्य ही विशेष संबल देगी। —विश्वबन्धु

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन-समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१–५. श्री आत्मप्रकाश महाजन, डा. सत्यपाल कोहली, श्री सुमेरमुनि जी, डा. गंगाराम द्विवेदी, श्री चमनलाल, होशिआरपुर। ६–८. श्री संसारचन्द, डा. हरजीतसिंह, श्रीमती निर्मल गर्ग, चण्डीगढ, ९. डा. दीनानाथ कोहली, लुधियाना, १०–११. श्रीमती व श्री दीवानचन्द साहनी, बम्बई, १२. श्री कर्मचन्द गौड़, कपूरथला, १३. श्री कान्तिचन्द्र एडवोकेट, मण्डी, १४. श्री बन्नाराम, पीलीभीत।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क—गत मास ये महानुभाव संस्थान–परिवार में सम्मिलित हुए—

१०. श्री गोवर्धनलाल बजाज, प्रभातपुर (आसाम) ५०), २. श्री देवराज, लखनऊ, १०), ३–४. श्री इन्द्रदत्त उनियाल, १०), श्री लाहौरीराम शर्मा, १०), होशिआरपुर।

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—

१. प्रो० जी० एच० भट्ट, बड़ोदा, १४०), २. प्रिं भगवानदास, शोलापुर, १३६), ३. श्री जयदेव, मद्रास, १२०), ४. जस्टिस दयाकृष्ण महाजन, चण्डीगढ, १२०), ५. रा. सा. श्री शुगनचन्द्र अग्रवाल, देहरादून, ११५), ६. श्री पृथ्वीनाथ बहल, होशिआरपुर, ११४), ७. डा. वेदमित्र, नई दिल्ली, ११०), ८. डा. एच. चन्द्र, पानीपत, १००), ९. रा. ब. बद्रीदास, जालन्धर शहर, १००), १०. डा. के. सी. खन्ना, शिमला, ८५), ११. डा. जे. एन. खोसला, नई दिल्ली, ६०), १२. श्री हरबंसलाल भाटिया, जालन्धर शहर, ५०), १३. श्रीमती सुहागवंती, होशियारपुर, ४६), १४. श्री प्रभदयाल सूद, ऊधमपुर, ३०), १५. श्री दीनानाथ, यमुनानगर, २५), १६. मेजर शम्भूनाथ छिब्बड़, नई दिल्ली, २५), १७. रायजादा आशानन्द, सम्भल, २१), १८. डा. बनारसीदास, अमृतसर, २१), १९. डा. कुलभूषण, बंगलौर, २१), २०. श्री सरदारीलाल थापर, जालन्धर शहर, २०), २१–२२. डा. गणेशीलाल अग्रवाल, २०), श्री केदारनाथ, २०), नई दिल्ली, २३. श्री शिवचरणदास सब्बरवाल, देहरादून, १३), १४. डा. मिलखीराम शर्मा, नंगल टाऊनशिप, १०), २५. श्री टी. आर. अग्रवाल, पूर्णिया (बिहार), १०), २६–२९. रा. सा. डा. बेलीराम, १०), श्री जगदेवसिंह शास्त्री 'सिद्धान्ती', १०), श्री राजकुमार, १०), महात्मा आनन्द भिक्षु, १०), दिल्ली, ३०–३२. श्री मूलराज चाँद, १०), श्री के. जे. खोसला, १०), डा. इन्द्रनाथ मदान, १०), चण्डीगढ, ३३. श्री अमीचन्द मल्ला, मजीठा (अमृतसर), १०), ३४. श्री रामचन्द्र, शिमला १०), ३५–३७. श्री पं० लालजी राम शास्त्री, १०), श्री गुरदासराम, १०), श्री दुर्गादास कहोल, १०), होशिआरपुर, ३८–४०. श्री शान्तिस्वरूप, १०), श्री पी. एल. सोंधी, १०), रा. सा. दीवान शान्तिलाल आहूजा, १०), नई दिल्ली, ४१. श्री नरेन्द्रनाथ

मोहन, सोलन, १०), ४२. डा. रामनारायण गुलाटी, जीरा (फिरोजपुर), १०), ४३. डा. फकीरचन्द सब्बरवाल, करनाल, १०), ४४. श्री बाबू देवनीति प्रसाद सिंह, मुंगेर (बिहार), १०), ४५. श्री दलबीरचन्द चोपड़ा, बम्बई, १०)।

अन्य दान—१. सर्वश्री मूलचन्द खरायती-राम ट्रस्ट, नई दिल्ली, ५००), २. श्री लालचन्द बाहरी, चैरिटेबिल एण्ड रिलीजस ट्रस्ट, शिवपुर (हावड़ा), ५००), ३–४. श्रीमती कमला कपूर, १००), सर्वश्री कल्याण टैक्सटाईल मिल्ज, ५०), अमृतसर, ५. श्री सूर्यप्रकाश साहनी, वाराणसी २५)।

सरस्वती-समाज—सरस्वती समाज की ३३वीं बैठक २६ मई १९६४ को हुई जिसमें श्री पीताम्बरदत्त शास्त्री ने 'प्राचीन वाङ्मय की शोध चर्चा' विषय पर अपना विद्वत्तापूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किया। कई श्रोताओं ने निबन्ध के कुछ पक्षों पर प्रश्न किए। अन्त में अध्यक्ष आचार्य विश्वबन्धु जी ने उसी विषय पर और अधिक प्रकाश डालते हुए कार्यवाही समाप्त की। सरस्वती-समाज की अग्रिम बैठक ३१ जुलाई को होगी, जिसमें श्री देवदत्त जी शास्त्री 'महाभारतकालीन राजनीति' विषय पर बोलेंगे।

शोक-सभा—२७ मई को अपराह्न में प्रधान मन्त्री श्री नेहरू के निधन का समाचार पाते ही संस्थान के समग्र कर्मिष्ठों ने शोक-सभा की। संचालक आचार्य विश्वबन्धु जी ने कहा कि उनके इस आकस्मिक देहान्त से हम सभी को गहरा आघात पहुंचा है। सभी ने दो मिनट शांत खड़े रहकर श्री नेहरू को श्रद्धांजलि अर्पित की। उस दिन शेष समय के लिए तथा २८ मई एवं ८ जून को संस्थान बन्द रखा गया।

बुद्ध-जयंती व नेहरू-दिवस—३१ मई, रविवार को विश्व-सत्संग के तत्त्वावधान में महात्मा बुद्ध की जयंती तथा नेहरू-दिवस मनाए गए। आचार्य विश्वबन्धु जी ने अपने भाषण में दिवंगत श्री नेहरू के जीवन तथा भारत और विश्व को उनके योगदान का स्मरण किया। फिर आपने महात्मा गौतम बुद्ध के सिद्धांतों तथा आदर्श जीवन पर प्रकाश डाला।

वार्षिक-बैठक—रविवार, ता. २ अगस्त १९६४ को ५ बजे सायं संस्थान के सदस्यों की वार्षिक बैठक होगी जिसमें गत वर्ष की रिपोर्ट तथा आगामी वर्ष के आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत किया जाएगा। सभी सदस्यों से निवेदन है कि वे इसमें उपस्थित रहकर कार्यवाही को सफल बनाएं।

आगे के कार्यक्रम—२६ जुलाई रविवार को विश्व-सत्संग के अंतर्गत गुरु पूजा का पर्व मनाया जायगा।

बधाई—संस्थान-सदस्य चौ. अनन्तराम आनन्द (पूना) को उनके सुपुत्र स्वदेश व सुपुत्री प्रेम के शुभ विवाहों पर, श्री रामकिशोर शास्त्री (अमेठी) को उनकी सुपुत्री के शुभ विवाह पर, श्री रामगोपाल ठकुराल (होशिआरपुर) को उनके सुपुत्र बलदेव के शुभ विवाह पर, संस्थान-सदस्य व कर्मिष्ठ श्री छज्जूराम को उनके सुपुत्र हुसनलाल के शुभ विवाह पर तथा श्री जसवन्तलाल कुठियाला को उनके सुपुत्र सुमन्त-कुमार के मुण्डन-संस्कार पर हार्दिक बधाई।

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान कार्यकारिणी के सदस्य डा. बालकृष्ण, एम. एल. ए. (होशिआरपुर) की माता जी का, संस्थान सदस्य व कर्मिष्ठ श्री जगदीशपाल भल्ला (बजवाड़ा) के बड़े भाई का, कुमारी जगतावली सूद (बहादुरपुर) के बहनोई का, श्री सन्तराम (विश्व-ज्योति के सह-सम्पादक) के छोटे भाई श्री तुलसीराम जी का तथा आर्य-समाज के निष्काम सेवक, श्रीमान् निरंजन नाथ जी (देहली) का देहान्त हो गया। दिवंगत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

Name of owner :— Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri** on 28th June, 1964
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur.

विश्व-ज्योति

सह-सम्पादक

विश्वबन्धु : सन्तराम

●

अगस्त १९६४

●

वार्षिक मूल्य—

भारत में : ८ रु. विदेश में : १२ शिलिंग

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का निम्नलिखित अनमोल साहित्य राष्ट्र-भाषा हिन्दी में अवश्य पढ़िये

१. बहुरानी की हाट ।
२. कहानी-संग्रह (नौ अद्भुत शिक्षाप्रद कहानियाँ) ।
३. शेष वाणी—
४. जीवन-स्मृति ।
५. कहानी-संग्रह (सात कहानयाँ तथा एक निबन्ध) ।
६. कहानी संग्रह (दस कहानियाँ तथा दो निबन्ध ।
७. प्रकृति का प्रतिशोध (मुक्तधारा नाटक) ।
८. वह (उपन्यास) ।
९. चित्राङ्गादा (दो नाटक तथा तीन कवितायें ।
१०. साहित्य के पथ पर—
११. फुलवाड़ी (उपन्यास, कहानियाँ और निबन्ध) ।
१२. ग्यारह कहानियाँ—

हर पुस्तक का मूल्य २.२५ न.पै. डाक व्यय १.१९ न.पै ।

मिलने का पता—

वि. पुस्तक भण्डार, साधु आश्रम, होश्यारपुर ।

सद् ग्रन्थ इस लोक के चिन्तामणि हैं । उनके अध्ययन से सब चिन्ताएँ मिट जाती हैं । संशय पिशाच भाग जाते हैं और मन में सद्भाव जाग्रत होकर परम शान्ति प्राप्त होती है । ऐसे ग्रन्थों की सूची नीचे दी जाती है । आज ही मंगवाइये :—

१.	अमृत-वाणी	... ०.५०	१२.	हिन्दुस्थान जाकर कहना	... २.५०
२.	अमृत-वाणी	... ०.२५	१३.	हिन्दू-एशिया	... २.००
३.	आनन्द गायत्री कथा	०.७०	१४.	अन्त्याक्षरी मंजूषा	... ०.७५
४.	आसन चित्रपट	... ०.२५	१६.	गीता-सार	... १.५०
५.	आनन्दमय जीवन	... ०.८१	१७.	चरित्र-निर्माण	... २.५०
६.	आत्मज्ञान	... ०.१५	१८.	चार साधन	... ०.५०
७.	जीवन-ज्योत	... ०.६२	१९.	सुमार्ग	... ०.३७
८.	प्राणायाम-विधि	... ०.१९	२०.	सन्ध्या-संगीत	... ०.२०
९.	भजन-संग्रह	... ०.२५	२१.	सरल सहगान	... ०.३०
१०.	विद्यार्थी-जीवन रहस्य	... ०.६२	२२.	सीख की बातें	... ०.६२
११.	स्वध्याय-संग्रह	... ०.५०	२३.	विचार-दर्शन	... ०.५०
१२.	हम संस्कृत भाषा क्यों पढ़ें ?	... ०.५०	२४.	मनप्रबोध	... १.५०

मिलने का पता :—

वि. पुस्तक भण्डार, साधु आश्रम होश्यारपुर ।

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) Shāntakuṭī Vedic Series :

Volume I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa *(A Vedic Word-Concordance)*, in Sections I-V, split up into 15 parts, treated as volumes in the series, Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II (Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upaniṣads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in I pt.], Covering 11,000 (10″×7″) pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40 ; Q. II, Rs. 30 ; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional sets (but not individual parts) entertained. **14 parts on sale, remaining 1 part due '64.**

Volume XVI. A Grammatical Word-Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Grammatical Word-Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volume XVIII-XIX. A Grammatical Word-Index to the four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Grammatical Word-Index to Taittirīya Saṁhitā, Rs. 40.

Volume XXI. A Grammatical Word-Index to Upaniṣads, due '64, Rs. 30.

(B) Vishveshvaranand Indological Series :

Volume I-II. Siddha Bhāratī, *(A Rosary of Indology)*, Pts. I-II, 108 classified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā, *(A Concordance of Purāṇa Contents)*, by Prof. Y. P. Tandan, Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha, *(Texts on Courtezans in Classical Sanskrit)*, texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20.

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern Philology, by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī, *(The Homage of Indology)*, 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Aggarwal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr. U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Cultural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volume X-XI. Catalogue of VVRI Collection of Manuscripts, 2 Pts. Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L. Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII. Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-pāṭha and Sayaṇācārya's Commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVI ready, Rs. 180.

Volume XVIII. Saṅkarṣa Kāṇḍa Sūtras of Jaimini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Volumes XIX-XXVI. Ṛgveda, in 8 parts, first cri. edn. of the Bhāṣyas of Skandasamin, Udgītha, Mudgala and Veṅkaṭa-Mādhav, Ed. Vishva Bandhu. Pts. 2 and 3 ready, Rs. 90.

Volumes XXVII-XXIX. Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, first cri. edn. by L. Sternbach, Vol. XXVII ready, Rs. 30.

Volume XXX. Dṛggaṇitam of Parameśvara, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

(C) Woolner Indological Series :

Volume I. The Foreign Policy of Warren Hastings, by Ram Prakash, **Rs. 5.**

Volume II. Tagore Centenary Volume, Ed. Shri Mahendra Kulasrestha, Foreword by Prof. Humayun Kabir. Rs. 16.

Volume IIA. The Genius of Tagore, P. I of the above. De-luxe Rs. 12. Standard Rs. 8.

Volume II B. Aspects of Indian Culture, P. II of the above. De-luxe Rs. 18. Standard Rs. 12

Volume III. Outline of Indian History, by Sri Ram Sharma, **Rs. 8.**

Volume IV. The Sāṅkhya Kārikā of Iśvarakṛṣṇa, by C. Kunhan Raja, **Rs. 10.**

Volumes V-VIII. Rājataraṅgiṇī, cri. edn. of its texts by Kalhaṇa, Jonarāja, Śrīvara and Śuka, Vol. V ready. Ed. Vishva Bandhu, Rs. 30.

(D) Sarvadānand Universal Series :

Volume XII. Mental Health in Theory & Practice, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 2·25.

Volume XVIII. A Story of Indian Culture, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 5.

Volume XXV. The Theory of Socialism, Ancient and Medieval, by Prof. R. M. Uppal, Rs. 1·25.

Volume XXVI. Great Thoughts of Great Men, by Prin. Sain Das, Rs. 3·50.

Volume XXVII. The Religion of Buddha and its Relation to Upaniṣadic Thought, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 4·50.

Volume XXX. Popular Talks on Psychological Topics, by Dr. Prem Nath, Rs. 2·25.

Volume XXXI. An Introduction into Lamaism, The Mystical Buddhism of Tibet, by R. P. Anuruddha, Rs. 8.

Volume XXXIV. Shri Krishna, His Philosophy and His Spiritual Path, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25

Volume XL. Dayanand, A Study in Hinduism, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Can be had of :

VISHVESHVARANAND BOOK AGENCY

P. O. Sadhu Ashram, HOSHIARPUR (Pb. India)

हमारे हिन्दी प्रकाशन

१.	वेद-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.५०
२.	श्रीमन्त्र पुष्पाञ्जलिसूक्त—आचार्य विश्वबन्धु	...	०.२५
३.	वेद-नवाह्लिक— ,, ,,	...	०.५०
४.	ईशावास्योपनिषद्-दर्पण—श्री सत्यदेव, बी. ए.	...	१.००
५.	केनोपनिषद्-दर्पण— ,, ,,	...	०.७५
६.	कठोपनिषद्-दर्पण— ,, ,,	...	१.३१
७.	कठोपनिषद्—श्रीमती विद्यावती मिश्र	...	०.८१
८.	उपनिषद्-दिग्दर्शन—डा. दीवानचन्द एम. ए.	...	२.७५
९.	ब्रह्मविद्या— स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	६.००
१०.	अध्यात्म-दर्शन— ,, ,, ,,	...	४.००
११.	कर्म और योग— ,, ,, ,,	...	२.५०
१२.	आनन्द-मार्ग— ,, ,, ,,	...	२.००
१३.	आत्मानुभूति— ,, ,, ,,	...	२.००
१४.	धर्म की आवश्यकता— ,, ,,	...	१.००
१५.	संस्कृत-शिक्षा-विधि——प्रो. गौरीशंकर एम. ए., बी. लिट.	...	३.२५
१६.	सत्संग-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.३७
१७.	सुखी संसार— ,, ,,	...	०.५०
१८.	पंजाबी रामायण—श्री रामलुभाया आनन्द 'दिलशाद'	...	१०.००
१९.	मानस गंगा—श्री उमादत्त, बी. ए., एलएल. बी.	...	२.००
२०.	स्वर्ण-पादुका—प्रो. परमानन्द शर्मा, एम. ए.	...	१.२५
२१.	अवेस्ता—श्री राजाराम शर्मा	...	१.२५
२२.	वीर बौना (सचित्र)—कान्ता डोगरा	...	१.२५
२३.	फतेहनामा गुरु खालसा जी का—प्रो. सीताराम कोहली	...	३.६०
२४.	ध्वस्त नीड़—श्री श्रीपाद जोशी	...	३.००
२५.	हमारा समाज—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	४.००
२६.	आदर्श पत्नी— ,, ,,	...	२.५०
२७.	हमारे बच्चे— ,, ,,	...	३.७५
२८.	बच्चों की देख-भाल—प्रि. बहादुरमल्ल, एम. ए.	...	१.७५
२९.	मन की अद्‌भुत बातें—,, ,, ,,	...	२.००
३०.	दुनिया तुम्हारी है—डॉ. रामचरण महेन्द्र, एम. ए., पीएच. डी.	...	३.३७
३१.	संसार को चुनौती—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	२.६२
३२.	नागरिक गीता—श्री चमनलाल	...	१.७५
३३.	शिष्टाचार—श्री सन्तराम बी. ए.	...	२.००

३४. व्यवहारिक ज्ञान—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	२.७५
३५ लोक-विजय – „ „	...	३.२५
३६. युवक मनोविज्ञान—प्रिं. बहादुरमल, एम. ए.	...	२.००
३७. सेवाकुञ्ज— श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.५०
३८. चमत्कारों की दुनिया— „ „	...	०.७५
३९. फलाहार— „ „	...	१.२५
४०. महाभारत के श्रीकृष्ण—श्री देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर	...	२.२५
४१. छत्रपति—प्रो. परमानन्द शर्मा	...	३.००
४२. वीर शिवाजी—श्री श्रीपाद जोशी	...	२.७५
४३. स्वामी नित्यानन्द : जीवन और कार्य—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	२.५०
४४. भारतीय नवोदय के अग्रदूत—	...	३.५५
४५. राजा राममोहन राय—श्री अखिल विनय, एम. ए.	...	०.७५
४६. महर्षि दयानन्द—श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'	...	०.७५
४७. विश्व के दार्शनिक—श्री रत्नचन्द्र श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	४.५०
४८. स्वामी रामतीर्थ—श्री रामकृष्ण	...	०.७५
४९. योगी अरविन्द—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	०.७५
५०. महाबली भीम [सचित्र]—श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर	...	१.५०
५१. भीष्म पितामह [सचित्र]— „ „	...	१.५०
५२. धर्मराज युधिष्ठिर [सचित्र]—„ „	...	१.५०
५३. वीर अर्जुन [सचित्र]— „ „	..	१.५०
४४. विद्यापति और चण्डीदास—श्री रामावतार	...	१.३१
५५. आधुनिक हिन्दी कविता के वाद—श्री विनयमोहन शर्मा	...	१.३१
५६. रस-धारा—श्री सन्तराम, बी. ए.		०.७५
५७. सूखे संतरे—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	१.३७
५८. प्रलय और सृष्टि— „ „	...	२ ००
५९. मिट्टी का कलश—श्री शिवनाथ दुबे	...	१.२५
६०. महाभारत की कहानियाँ (द्वितीय संस्करण)—श्री देवदत्त शास्त्री	...	१.००
६१. बड़े लोग श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.२५
६२. रसवन्ती— „ „	...	२.००
६३. नए युग की कहानियां— „ „	...	१.७५
६४. अच्छी अच्छी कहानियां [सचित्र],, „	...	०.८७
६५. बात की बात—प्रो. परमानन्द शर्मा,एम. ए.	...	१.००
६६. बालभूषण—श्री राष्ट्रबन्धु	...	१.२५
६७. तितली—श्री सुन्दरलाल 'अशोक'	...	१.५०
६८. आत्म-तत्त्व-प्रकाश—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	१.५०

इस अङ्क में पढ़िए

———

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, श्रावण, २०२१; अगस्त १९६४ { संख्या ६

वेदामृत—

सत्संग

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥

हम सूर्य और चन्द्र की तरह कल्याण-मार्ग पर चलें । हम उदार स्वभाव, हिंसारहित, ज्ञानवानों की संगति किया करें। (ऋग् ५, ५१, १५)

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥

हे दिव्य अखण्ड ज्योतियो तुम उत्तम ज्ञान तथा विचार के स्रोत हो। तुम चल, अचल, सकल ब्रह्माण्ड के मालिक हो। (अपनी प्रेरणा से) अब हमें भूत तथा भावी पाप (के संसर्ग) से मुक्त करो ताकि जीवन सफल हो। (ऋग् १०,६३,८)

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥

(आओ) दिव्य नौका पर सवार हो जाएँ ताकि जीवन सफल हो सके। (यह) उत्तम रक्षा करने वाली है। (यह) विस्तृत और विशाल है। (यह) प्रकाशयुक्त और सुकल्याण-युक्त है। (यह) दुःख-रहित, छिद्र-रहित तथा अपराध-रहित है। (इस की) उत्तम गति है और (इस के) उत्तम चप्पू हैं। (ऋग् १०,६३,१०) —वेदसार

विश्व-सत्संग*

आस्था से सच्चे सुख की प्राप्ति (२)

[आचार्य विश्वबन्धु]

बहुत-से लोगों का विचार है कि दर्शन ईश्वर को नहीं मानता, ऐसी बात नहीं। हम जिसको ईश्वर मानते हैं वह कुछ और है, और दर्शन का ईश्वर कुछ और है। परन्तु ईश्वर के लिए आस्था मानता है। बिना आस्था के तो मनुष्य प्रसन्न भी रह नहीं सकता! मनुष्य को आनन्दावस्था तभी प्राप्त होती है जब वह प्रत्येक में सन्तोष का भाव देखे, परोपकार का भाव देखे, प्रीति-प्रेम-आदर के भाव को देखे, हर-एक पड़ोसी के सुख-दुःख में शामिल हो तथा भ्रम में कभी न पड़े। भ्रम में ही पड़ने से मानव नास्तिक बनता है।

सच्ची आस्तिकता—नास्तिक और आस्तिक क्या है? ईश्वर जिसका नाम है, वह एक अलौकिक शक्ति है। वही शक्ति अहर्निश क्रीडा-कौतुक दिखाती रहती है। क्या हाथ में माला लेने से, राम-नाम की चादर ओढ़ लेने से, गङ्गा-रेती में बैठ राम-राम रटने से मनुष्य आस्तिक बन जाता है? ऐसी बात नहीं। वह इससे परिचित है कि मैंने जो धन कमाया है वह छल-छद्म से अर्जित है, क्योंकि बिना पाप किए धन-प्राप्ति सुलभ नहीं। अतः कभी उसमें से तीर्थों पर व्यय कर दिया, कभी पूजा आदि में, कभी ब्रह्म-भोज कर दिया, कभी किसी धार्मिक संस्था में कुछ दान दे आया, कभी किसी देवता पर कुछ चढ़ा आया। तो क्या यह कोई आस्तिक-भाव है? क्या यह कोई जीवन का आनन्द है? जीवन का आनन्द उसी में है कि स्वयं में से प्रेरणा प्रादुर्भूत हो, स्वयं वृत्ति पैदा हो। यदि व्यक्ति को पता भी चल जाए कि मेरे पास कोई भूखा बैठा है, कोई आवश्यकता के कारण दुःखी है, वह स्वयं को धिक्कारता है, दुत्कारता है कि इतना बुभुक्षा-ग्रस्त तथा पीडित-वर्ग मेरे समक्ष है और मैं मजे से रोटी खा रहा हूँ।

पीडितों की सेवा ही ईश्वराराधना है। एक बार जब दक्षिण भारत में मोपला विद्रोह हुआ तो महात्मा हंसराज जी को सूचना आई। सूचना मात्र से वे इतने चिन्तित हो गए, मानो उनकी सुख-शान्ति सब छिन गई हो। व्यक्तिगत रूपेण कोई उनकी निजी इच्छा नहीं थी, लेकिन यह कि देश के एक भाग में हमारे जातीय-वर्ग पीडित हैं, दुःखी हैं, उसी से ही वे स्वयं को दुःखी मानने लगे। अतः सभी को ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि परदुःख से मानो मैं ही दुःखी हूँ।

इसी प्रकार अमेरिका का एक प्रधान घोड़े पर चढ़ कर अपने कार्यालय जा रहा था। मार्ग में एक पशु कीचड़ में फंसा हुआ कराह रहा था। वह बड़े दुःख में था। उसको इस अवस्था में देख प्रधान नीचे उतरा और उसको कीचड़ से निकाल कर दुःख-मुक्त कर दिया। इस सारी क्रिया में कार्यालय का समय हो गया। यह भी उसका नियम था कि समय पर कार्यालय पहुँचना है। उन कीचड़ से ही लथपथ कपड़ों में

---

* संस्थान में प्रति रविवार सायम् समय 'विश्व-सत्संग" लगा करता है। इस में विश्व-मानवता के व्यापक दृष्टिकोण से शास्त्रीय प्रवचन होते हैं। इस स्तम्भ में उन्हीं का सार दिया जाता है। पाठकों से हमारा सप्रेम अनुरोध है कि अपनी सुविधा के अनुसार संस्थान में भी दर्शन देते रहें।

—विश्वबन्धु

वह कार्यालय पहुँचा तो उसके सहयोगियों ने पूछा। पहले तो वह टालता रहा अन्ततः उसने समस्त कथा कह सुनाई। सहयोगी प्रशंसा करने लगे कि अहा! आप तो देवता हैं? उसने कहा—"मैं देवता आदि कुछ नहीं, मेरी तो यह अवस्था थी कि मैं एक क्षण भी आगे नहीं चल सकता था। मुझे कुछ नहीं पता कि कब मैं कीचड़ में उतरा, कब पशु को दुःख से मुक्त किया, मुझे तो चेतना उस समय आई जब मैंने घड़ी की ओर देखा।" यह अवस्था है।

जिस समय मनुष्य अपने-आप को भूल जाता है, उसे स्वयं का पता नहीं रहता, तो फिर ऐसे के हाथ से विश्वकल्याण हो जाए, तो समझो कुछ हुआ है। क्या यह आस्तिकता है कि माईक्रोफ़ोन लगवा कर यज्ञ-निमित्त पढ़े जाने वाले मन्त्र ज़ोर-ज़ोर से बोले जाएँ ताकि सारे शहर में कोलाहल हो? यह तो मार्ग के किनारे मैस्मरेज़िम है जो कि मानसिक विद्या का चमत्कार है।

आस्था की व्याख्या यही है कि मनुष्य तो भगवान् की बाँसुरी है, मुरली मनोहर बजा रहा है, हम तो कुछ भी नहीं। उसके हाथ से यदि भला हो जाए—मैं का भाव ही न रहे, तो यह अवस्था है आस्था।

आचार्य, तथा माता-माता—प्राचीन-काल में आचार्यों को भोजन की चिन्ता न थी। उसकी उचित व्यवस्था थी, विदेशों के आर्थिक-स्तर के साथ तुलना का भाव नहीं था। इसी प्रकार माता-पिता की भी कोई इच्छा नहीं थी, संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था थी, लेकिन आज सब व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। शिष्य-आचार्य का सम्बन्ध विकृत हो गया है, माता-पिता के भी प्रति भावना परिवर्तित होती जा रही है। शिशु को माता का वात्सल्य ही नहीं मिल पाता। माँ नौकरी करती है, दाई शिशु का पालन-पोषण करती है, कोई तारतम्य नहीं। कई-कई परिवारों में तो भोजन ही नहीं बनता, होटलों में ही खा लिया जाता है।

हमारा यह भाव नहीं है कि आधुनिकता दूषित है। यह परिवर्तन सम्भवतः किसी ध्येय पर पहुँच सन्तुलित हो जाए। संतुलन, जो पुराकाल में था, नष्ट-प्राय है। हमारे ही देश में नहीं, अपितु विदेशों में भी ऐसी ही अवस्था है।

एक श्लोक में कहा है—

विषादप्यमृतं ग्राह्यं, बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तम् अमेध्यादपि कांचनम्॥

वही मनुष्य उन्नति के शिखर को छू सकता है जो गुणग्राही होगा, जो अपने अवगुणों को देखकर अन्य के गुणों को ढूंढेगा और गुणी बनने का यत्न करेगा। जो यह समझता है कि मैं पूर्ण हूँ, उसने क्या तो माता-पिता से और क्या आचार्य से सीखना है। ऐसे शिष्यों का वर्णन आता है जो विद्या के लिए अनधिकारी होते हैं, जिनमें जिज्ञासा का भाव नहीं होता, जो गुरु की भी परीक्षा लेना चाहते हैं। वे ऐसे प्रश्न करेंगे, वितण्डावाद करेंगे जिससे देख सकें कि गुरु को कुछ आता भी है या नहीं। उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता, वे परीक्षाओं में भी उत्तीर्ण नहीं हो सकते।

यह श्लोक इन सब तथ्यों का सार है। विश्व में कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं जिसमें पूर्णतः विष ही विष हो। अमृत भाव भी है, विष-भाव भी है। अच्छा भाव भी है, बुरा भी है। तो शुभ भाव ग्रहण करो, बुरा भाव छोड़ दो। दूषित से दूषित पदार्थ में से भी अच्छा भाव ग्रहण करने का यत्न करो। और व्यवहार के अन्दर "बालादपि सुभाषितम्" अर्थात् बालक से भी शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न करो।

एक बार स्वामी दयानन्द जी भाषण कर रहे थे। शास्त्रार्थ में कोई शब्द सुउच्चारण-हीन हो गया, तो एक नवयुवक, जो संस्कृत का विद्यार्थी था, बोल पड़ा—"स्वामी जी, अपशब्दितम्।" "हां भई!" स्वामी जी ने कहा कि, "संस्कार-च्युति हो गई।" यह नहीं कि अपनी अशुद्धता को सिद्ध करने के लिए अनुभूति-श्रुताचार्य्य की तरह कोई व्याकरण ही बना

डाला, क्योंकि दाँत टूटने के कारण उसने पुंसु के बजाए पुंत्सु कह दिया था। स्वामी जी ने ऐसा नहीं किया।

जब अध्यापक को शिष्य ऐसा प्रश्न पूछे जो उसे पहले कभी न सूझा हो और न ही उस समय सूझ रहा हो, तो कोई मानहानि की बात नहीं, कह दे कि पाठ आगे चलाओ, मैं सोच कर उत्तर दूंगा। वह प्रश्न गुरु को सोचने के लिए बाधित करता है और उसकी विद्या-वृद्धि में सहायक होता है। सद्वृत्तयुक्त, सुव्यवहारपूर्ण विद्यार्थी अध्यापक का सहायक है। लाला हंसराज जी साहनी के लड़के आक्सफोर्ड में पढ़ते थे। एक बार उन्होंने अपने आचार्य से प्रश्न किया। उत्तर मिला कि सोचकर बताऊँगा। रात को एक बजे कमरे को खटखटाया और कहा कि बोधराज, जो प्रश्न तुमने पूछा था उसका उत्तर यह है। तो यह है "बालादपि सुभाषितम्।"

अमित्रादपि सद्वृत्तम्—चाहे कोई कितना ही शत्रु हो, यदि उसमें भी कोई अच्छा भाव है तो ग्रहण कर लेना चाहिए। जैसे अपवित्र वस्तु से भी काञ्चन को ले लिया जाता है। सोना कितने ही मैल में, कितनी गन्दी वस्तुओं में लिपटा होता है लेकिन समस्त प्रक्रिया में से निकाल कर वह पत्थर में लिपटा सोना शुद्ध और पवित्र बन जाता है। इसी प्रकार यह संसार है। यहां कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो उपदेशात्मक न हो। इसी कारण पुराणों में गुरु दत्तात्रेय जी का महत्त्व है। मार्ग में यदि किसी पत्थर से ठोकर लग जाए वे उससे भी उपदेश ग्रहण करते थे। प्रत्येक वस्तु में गुरु-भाव धारण करना चाहिए। अतः कहा है—"विद्या ददाति विनयम्।" विद्या का फल यही है कि मनुष्य में विनीत-भाव उत्पन्न हो और प्रत्येक से शिक्षा लेने का भाव मन में जगे।

यह है, वह भारतीय संस्कृति, जिस पर समस्त समाज की प्राचीर खड़ी है, परन्तु आज हमारे मूल्यों के अङ्कन में भेद आ गया है। मनुष्यों में उपर्युक्त भाव कम हो गया है।

★ ★ ★

यह जगत् उबारो

जग का यह अनाचार खूनी है,
हम क्यों बनें खून के प्यासे?
यदि जग रोता जाए तो क्या
हम भी होंगे यहां रुआंसे?

अरे हमें तो शान्ति-सौख्य का,
देना है वरदान नरों को;
ध्वस्त नहीं, निर्मित करना है
हमको गांवों को, नगरों को;

आज खून का नहीं, अमिय का
वर्षण करने यहां पधारो,
आओ इस झण्डे के नीचे
अहो, वीर, यह जगत् उबारो।

—श्री नवीन

देशीय एकता के अग्रदूत महाकवि भारती

[डॉ. एस. एन. गणेशन]

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शती के प्रारंभिक दशकों में भारत की विविध भाषाओं के साहित्यों युग-धर्म के रूप में जो प्रवृत्ति उभर आयी वह देशीयता की थी। पराधीनता के अभिशापों से अवगत होकर स्वाधीनता की अभिलाषा करती हुई जनता के अन्तर्निहित भावों को वाणी देकर और आवश्यकता पड़ने पर अपनी ओज-भरी वाणी से जनता को उद्‌बुद्ध करते हुए हमारे भाषा कवियों ने जो सृजनात्मक कार्य किया वह स्वतंत्रता आन्दोलन का एक मुख्य अंश था। बंकिमचन्द्र चटर्जी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर सुब्रह्मण्य भारती, मैथिलीशरण गुप्त. गुरजाड़ा अप्पाराव आदि कवियों के नाम भारतीय वाङ्मय के इतिहास में जैसे चिरस्मणीय रहेंगे, उसी प्रकार हमारे देशीय आन्दोलन के इतिहास में भी रहेंगे।

वातावरण—

हमारा स्वतन्त्रता-आन्दोलन विदेशी शासन-सत्ता को दूर करके राजनैतिक स्वातन्त्र्य प्राप्त करने का प्रयत्न-मात्र नहीं था, देश की ही विच्छित्तिकारक शक्तियों तथा समाज को दुर्बल बनाने वाली रूढमूल परम्पराओं से भी मुक्ति पाने का आन्दोलन था। एक ओर विदेशी शासन के कारण राजनैतिक पराधीनता थी, तो दूसरी ओर शत-शत सामाजिक एवं धार्मिक रूढियों के कारण संजात मानसिक परतन्त्रता थी। हमारा अन्दोलन वस्तुतः इन दोनों के विरुद्ध एक द्वि-मुखी समर था। राजनैतिक स्वतन्त्रता का समर जितना महत्त्वपूर्ण था उतना ही महत्त्वपूर्ण समाज को शिथिल बनाने वाली आन्तरिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध सामाजिक आन्दोलन भी था।

समाज को शिथिल बनाने वाली शक्तियाँ अनेक थीं। इनमें सबसे प्रबल वर्ण-व्यवस्था थी। सुसंगठित एवं क्रमीकृत सामाजिक जीवन के लिए उद्दिष्ट वर्णाश्रम-व्यवस्था शताब्दियों के ऐतिहासिक विकास-क्रम में अत्यन्त विकृत होकर हमारा सबसे बड़ा अभिशाप बन गयी। जाति-पाँति पर आधारित उच्च-नीचता और छूत-छात ने तथाकथित निम्न-वर्गों की ही हानि नहीं की, सम्पूर्ण समाज को ही दुर्बल बना दिया। धर्म और और जाति का नाम लेकर भाई भाई का गला काटने वाले और जाति-पाँति को मान्यता देकर पारस्परिक वैमनस्य बढ़ाने वाले धर्म के हिमायतियों की देश-विरोधी और देशीयता-विनाशक प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक सशक्त समर-मुख तैयार करना भारत की सब से बड़ी आवश्यकता थी।

और एक प्रकार की उच्चनीचता नौकरशाही के स्वाभाविक परिणाम के रूप में विकसित हुई थी। कुछ उन्नत पदाधिकारियों और उनके उपग्रहों पर पर शासनाधिकार के निक्षिप्त हो जाने से उच्च-नीचता का एक नया आधार दृढ हो गया। एक ऐसी अल्पसंख्यक श्रेणी का निर्माण हो गया, जो अंग्रेजी शिक्षा तथा उच्च सरकारी पद प्राप्त कर अपने-आप को सामान्य जनता से भिन्न और उत्कृष्ट समझने लगी। सब से बड़ा अभिशाप यह था कि इस तरह की पराधीनता का वरण करने वाले देश के उच्चवर्गीय बुद्धिजीवी थे।

इन दोनों प्रकार के श्रेणी-विभाजन ने समाज की आर्थिक दशा में भी उच्चता और निम्नता को दृढ किया। तथाकथित उच्चवर्ग और सरकारी अधिकार-प्राप्त वर्ग जो वस्तुतः अल्पसंख्यक थे आर्थिक दृष्टि से अच्छी दशा में थे। पर देश की श्रम-शक्ति के आधार-भूत कृषक, श्रमजीवी आदि की आर्थिक दशा बहुत गिर गयी। देश की सामान्य श्रम-क्षमता और बुद्धि-क्षमता भी निम्न-स्तरीय हो गयीं।

देशीय समर की विजय के लिए इन सब विघटक शक्तियों को नष्ट करना अत्यन्तापेक्षित था। उन्नीसवीं शती के समाज-सुधारकों और राजनैतिक नेताओं ने इसी कार्य को सम्पन्न करके सक्रिय आन्दोलन के लिए वातावरण सज्जित किया। इस सामाजिक संगठन के

समय में और प्रत्यक्ष आन्दोलन के काल में हमारी विविध भाषाओं के कवियों ने भी तत्कालीन आवश्यकताओं को जान कर जो सहयोग दिया, वह संग्राम को विशेष बल देने वाला था। अपनी उज्जवल वाणी से जनता को जागृत करते हुए इन कवियों में तमिल के महाकवि सुब्रह्मण्य भारती का एक विशिष्ट स्थान है।

भारती का जन्म सन् १८८२ ई० में मद्रास प्रान्त के तिरुनेलवली जिले के एट्टय्यापुरम गांव में हुआ। उनका सम्पूर्ण जीवन घोर दरिद्रता में बीता। बाल्यकाल में ही माता-पिता के स्वर्ग सिधारने के कारण भारती को निरन्तर परिस्थिति से संघर्ष करना पड़ा। प्राथमिक शिक्षा के बाद चार-पाँच वर्ष तक उन्हें काशी में रहना पड़ा। इस काल में उन्हें संस्कृत और हिन्दी सीखने की सुविधा मिली और विराट् भारत की वैविध्यपूर्ण संस्कृति में एक मूलभूत एकता के दर्शन करने की दृष्टि प्राप्त हुई। काशी से लौट कर वे कुछ समय तक वे एट्टय्यापुरम के राजा के यहाँ नौकरी करते रहे, पर शीघ्र ही उसे तज कर एक हाई स्कूल में अध्यापक हो गये। कुछ वर्षों के बाद स्वदेशी आन्दो-में सजीव रूप में यहयोग देते हुए 'स्वदेश-मित्रन्' नामक दैनिक के सह-सम्पादक होने पर उन्हें अपने आग्रहों की पूर्ति का माध्यम मिला। इस समय तक वे एक श्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। आठ साल की अवस्था में ही एट्टय्यापुरम के विद्वानों की सभा उन्हें 'भारती' की उपाधि देकर सम्मानित कर चुकी थी। 'स्वदेशमित्रन्' के द्वारा कुछ वर्ष तक देशीय विचारों का प्रचार करने के बाद भारती 'इंडिया' नामक एक पत्रिका निकालने लगे और इसके द्वारा सरकार पर अग्निवर्षा करते रहे। मद्रास नगर के सभा-सम्मेलनों में उनके गीत लाखों जनों को आवेश देते थे। उनके बढ़ते हुए प्रभाव को देख कर सरकार ने उनकी गिरफ्तारी का वारंट निकाला। पर भारती मद्रास से बच निकले और फ्रेंच शासन के अधीन पुदुच्चेरी में जाकर पूर्वाधिक तीक्ष्णता से काम करने लगे। सन् १९०८ से १९१८ तक दस वर्ष पुदुच्चेरी में रहने के बाद उस कारावास के-से जीवन से ऊब कर बाहर आये। तुरन्त ही वे कैद किये गये, पर अपराध प्रमाणित न होने के कारण कुछ दिन बाद छोड़ दिये गये। अत्यन्त दुर्बल होने पर भी वे घूम-घूम कर भाषण देते रहे और पत्रिकाओं में लिखते रहे।

एक दुर्घटना के कारण १२ सितम्बर १९२१ के प्रातः १·३० बजे भारती का देहान्त हुआ। इस के कुछ दिन पूर्व मद्रास के तिरुवल्लीकेणी मुहल्ले के पार्थसारथी मन्दिर के हाथी ने उन्हें गिरा दिया था, और वे घायल हो गये थे। वैसे ही अत्यन्त क्षीण शरीर इस आघात को सहन नहीं कर सका, और ये महाकवि अपनी ३९ वर्ष की अवस्था में ही दिवंगत हुए।

इस अल्पकालीन जीवन में भारती ने तमिल कविता के क्षेत्र में और तमिल प्रदेश की राजनीति में जो कार्य किया वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। तत्कालीन राजनीति और साहित्य में वे अपरिमेय शक्ति-स्रोत के रूप में थे। देशीय गीतों के अतिरिक्त उन्होंने जो रचनाएँ की, वे एक अनुभूतिशील कवि के अन्तर्लोक के अनेक रंग विरंगे चित्र हमारे सामने रखती हैं। हृदय के प्रशान्त सरोवर में आनन्द और उल्लास की अगणित ऊर्मियां उत्पन्न करते हुए 'कण्णन पाट्टु' (कान्ह गीत) मौलिक चिन्तन द्वारा जीवन की विषमताओं का विश्लेषण करने के साथ-साथ काव्यानुभूति का उत्कृष्ट उदाहरण भी प्रस्तुत करने वाला 'कुयिल पाट्टु' (कोकिल गीत) और एक पौराणिक विषय को नयी व्याख्या और नयी अनुभूति के साथ उपस्थित करने वाला 'पांचाली-शपथम' (पांचाली-शपथ) भारती की सर्वोत्कृष्ट कृतियां हैं।

★ ★ ★

"यदि मानव सत्-रूप को है मिश्रित अवतार,
तो वह निहचै जायगौ पुनः सत्य के द्वार।
अपनौ दीप बुझाय कै फेरि बारिबौ नित्य,
इन्हीं प्रयत्नन तैं मथित है मानव-साहित्य।" —श्री नवीन

राष्ट्रीय भावनात्मक एकता और राम-कथा

[प्रा. रामेश्वरनाथ भार्गव]

समस्त भारत के साहित्य, संस्कृति एवं धर्मों में 'राम-कथा' की अद्वितीय व्यापकता उसके इतिहास में भावनात्मक एकता की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। महर्षि वाल्मीकि की लेखनी से संजात 'राम-कथा' भारतीय भावना एवं संस्कृति की अमर देन है। भारतीय संस्कृति का इतिहास अनादिकाल तक फैला हुआ है, 'श्रीराम की गाथा' को उसका मेरुदण्ड कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। मानव-हृदय को आकर्षित करने की जो शक्ति सम्पूर्ण भारतीय भावना की प्रतीक—'राम-कथा' में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। बाल्मीकि से पूर्व महर्षि भृगु के पुत्र च्यवन ने सर्वप्रथम उस युग के जन-जीवन में व्याप्त 'राम की कहानी' को शृंखलाबद्ध करके भारतीय जनता के समक्ष रखा था। उसी मौखिक गाथा को महर्षि वाल्मीकि ने काव्य का अत्युत्तम रूप दिया, जो कालान्तर मे सम्पूर्ण भारतीय भावना एवं संस्कृति की प्रतीक बन गई। 'रामायण' की कला एवं आदर्श भावना ने सदा ही भारतीय जन-जीवन को अनुप्राणित किया है क्योंकि वाल्मीकि के मानवता के आदर्श एवं भारतीय संस्कृति एक ही है। उन्होंने समग्र भारत की पूंजीभूत भावना की प्रतिध्वनि वीर-श्रेष्ठ, नर-पुंगव, पुरुषोत्तम राम में दिखलाई है। 'श्रीराम' का शारीरिक सौन्दर्य एवं मानसिक उत्कर्ष तथा मानवोचित भावनाएँ, हिन्द-महासागर और पर्वत-राज हिमालय के बीच की भूमि पर विचरण करने वाले समग्र भारतीयों का आदर्श शरीर, मानसिक उत्कर्ष एवं भावनाएं हैं। 'राम' शरीरधारी भारतीय भावनाएं है और हैं समग्र भारतीय धर्म एवं संस्कृति।

महर्षि वाल्मीकि ने अपनी भावनाओं में जिस आदर्श महामानव की कल्पना की थी वह धर्म की प्रकट मूर्त्ति था। 'राम' ने कर्त्तव्य पालन कर हिमालय सदृश उन्नत आदर्शों की स्थापना की और मर्यादा पालन करते हुए अपने चरित्र को सम्पूर्ण भारतीयों के लिए अनुकरणीय बना दिया। 'श्रीराम' में समूची भारतीय भावनाएं संहित हैं। 'राम' केवल अवध की सम्पत्ति नहीं, अपितु समस्त भारत का कोना-कोना उन्हें अपना ही समझता है। समस्त भारत में जहां-जहां भी इस महामानव के चरण गए वह सब स्थान सारे भारत के लिए पूजनीय बन गए। उनकी गाथा के प्रथम गायक वाल्मीकि समस्त देश में विग्रहवान् धर्म की स्थापना करने के कारण हमारी भावनात्मक एकता के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। वाल्मीकीय रामायण में हमारे समूचे राष्ट्रीय आदर्श संहित है, अतः हमारी राष्ट्रीय भावनाओं एवं आदर्शों के विधाता आदिकवि वाल्मीकि हैं जिनके द्वारा प्रतिपादित भावनाओं के सम्मुख आज सारा विश्व नत है। सारे एशिया महाद्वीप की भावना पर किस ने विजय प्राप्त की तो उत्तर मिलेगा वाल्मीकि की 'राम-कथा' ने। 'वाल्मीकि' और 'राम' दोनों ही भारतीय भावना के प्रतीक हैं।

रामायण साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। वास्तव में महान् तो वह है जो अपने पीछे एक परम्परा को जन्म दे दे। 'रामायण' हमारे देश की सहस्रों काव्यों और धार्मिक ग्रन्थों की आधारशिला है। धर्म और सत्य के जो शाश्वत और अव्यक्त बीज वाल्मीकि ने अपनी 'राम-कथा' के द्वारा बोये थे वे अब तक फल-फूल रहे हैं। और भविष्य में भी फलते-फूलते रहेंगे। समय के प्रवाह में भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं के कवियों की वैयक्तिक भावना, रुचि और सांस्कृतिक आदर्शों के साथ, युगधर्मानुसार, 'राम-कथा' प्रत्येक युग में नये रूप में ढलती गई परन्तु उसकी भावनात्मक एकता में कभी कमी न आई, वरन् समूचे भारत के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों को एक ही भावनात्मक सूत्र में बांधने में सफल रही है, और अर्वाचीन काल में भी असफल नहीं हो सकती। 'राम-कथा' के लोक-संग्रह के रूप

को सभी कवियों ने समान रूप से अपनाया है। अति प्राचीन काल तक फैली हुई 'राम-चर्चा' में युग-धर्मानुसार बहुत परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुए, परन्तु 'राम-कथा' में संहित भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों—पितृ-आज्ञा-पालन, भ्रातृ-स्नेह, पतिव्रत, गुरुभक्ति, सत्यसंधता, एक-पत्निव्रत, अनाचार का विरोध, मर्यादा-पालन आदि ने सदा ही भारतीय जीवन में चेतना और नव जागरण को प्रस्फुटित किया है। वाल्मीकि रामायण के द्वारा मिला राम का अपूर्व व्यक्तित्व जो विश्व इतिहास, साहित्य एवं अध्यात्म में अपना सानी नहीं रखता। राम के चरित्र की गरिमा और विशालता, उनके जीवनव्यापी संघर्ष और काठिन्यपूर्ण परिस्थितियों का परिणाम है। उनका महान् कर्त्तव्य-पालन उनके हृदय की उदारता, कोमलता, स्वच्छता, शीलरक्षा तथा आत्म-त्याग—यही तो हैं मानव की आदर्श भावनाएं और यही हैं भारतीय संस्कृति जो आज भी प्रत्येक भारतवासी को मान्य है, एवं जिसका उत्स है देशव्यापी 'राम-कथा'।

साहित्यिक काव्य और नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत की धार्मिक और आध्यात्मिक रचनाओं में भी राम-कथा' को बहुत आदर प्राप्त हुआ है। सभी पुराणों और उपपुराणों में 'राम-कथा' बहुत कम परिवर्तन से स्वीकृत हुई है। कालिदास के 'रघुवंश' की रचना मध्य भारत (मालवा) में हुई। 'सेतुबन्धु' रचा गया कश्मीर में। अभिनन्द ने अपने 'राम-चरित' को रचा गौड प्रदेश (बंगाल) में। 'जानकी-हरण' सिंहल के कुमारदास की रचना है। इसी प्रकार से अन्य बहुत-सी 'राम-कथा' सम्बन्धी काव्य रचनाएं लिखी हुई मिलती हैं। 'राम-कथा' 'प्रसन्न-राघव', 'अनर्घराघव', 'प्रतिमा नाटक', 'महावीर-चरित', 'मैथिलीकल्याण', 'आदर्शचूडामणि', 'उत्तररामचरित' आदि नाटकों की भी आधार है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थ जैसे—'अध्यात्म रामायण', 'अद्भुत रामायण', 'आनन्द रामायण', 'काल-निर्णय रामायण' आदि की भी आधारशिला 'राम-कथा' है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'राम-कथा' पर आधारित पौराणिक, ललित साहित्य एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों में सहस्राब्दियों से होती रही है।

'राम-कथा' जिस व्यापक रूप से संस्कृत वाङ्मय में व्याप्त है, उसी प्रकार भारत की प्रत्येक अनार्य एवं आर्य भाषा ने उसे अङ्गीकृत किया है। 'राम' 'राम-कथा' एवं 'रामतीर्थों' के प्रति पूज्य भावनाएं भारत के प्रत्येक राज्य एवं भाषा में समान रूप से मिलती हैं। दक्षिण के मलाबार क्षेत्र में 'कंबन' की रामायण का, नाटक रूप के प्रदर्शन का प्रचलन सदियों से है। मलयालम में 'इराम चरित', 'कन्नास रामायण' तथा 'केराल वर्मा रामायण', वाल्मीकि की 'राम कथा' पर आश्रित हैं। तेलगु की 'द्विपाद रामायण' के रचयिता बुद्धराज है, जिन्होंने अपनी 'राम-कथा' को भगवान् रंगनाथ को अर्पित कर दिया था, अतः 'रंगनाथ रामायण' के नाम से अधिक विख्यात है। इसके अतिरिक्त 'गोपीनाथ रामायण', 'निर्वचनोत्तर रामायण', 'भास्कर रामायण' भी तेलगु क्षेत्र में बहुत प्रचलित है। कन्नड़ भाषा में 'तोरावे रामायण' उस क्षेत्र की जनता को बहुत प्रिय है। मध्य भारत एवं उड़ीसा के आदि-वासियों में भी वहां की दंत कथाओं में 'राम' और 'राम-कथा' का बहुत वर्णन मिलता है।

अनार्य भाषाओं की भांति आधुनिक आर्य भाषाओं में भी 'रामायण' को जनता ने समान रूप से अपनाया है। बंगाल में 'कृतिवासी रामायण', उड़ीसा में बलरामदास की 'रामायण', मराठी में एकनाथ-कृत 'भावार्थ रामायण', गुजराती में मालण-कृत 'राम-विवाह' और कर्मण-कृत 'सीता-हरण' आदि अपने-अपने क्षेत्र में बहुत प्रचलित हैं। इसी प्रकार असम में दुर्गावर की 'गीति रामायण' का प्रभाव वहां की जनता पर बहुत पाया जाता है। कश्मीर, नेपाल, पंजाब, बिहार, राजस्थान एवं सिन्ध में भी 'रामकथा' पर आश्रित ग्रन्थों का निर्माण, वहां की जन-भाषा में हुआ। स्थानाभाव के कारण सबका परिचय देना संभव नहीं है।

हिन्दी साहित्य में 'रामकथा' अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखती है, क्योंकि समस्त भारत की 'रामकथा' आश्रित रचनाओं में गोस्वामी तुलसीदास का 'राम-

चरितमानस' सबसे अधिक लोक-प्रिय प्रमाणित हुआ। तुलसी ने रामकथा सम्बन्धी लगभग तेरह पुस्तकें लिखीं। 'राम-कथा' के विकास में 'रामचरितमानस' का अधिक महत्त्व भले ही न हो, परन्तु इतना सत्य है सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विचारों के कारण वह आदर्श एवं महान् ग्रन्थ बन गया है। हिन्दी में 'राम-कथा' साहित्य पर तुलसी का एकाधिकार-सा है, क्योंकि अन्य 'रामकथाएँ' उतनी लोकप्रिय न हो सकीं। तुलसी की काव्य-प्रतिमा और कला इतनी उत्कृष्ट है कि हिन्दी तो क्या भारत और विश्व की अन्य भाषाओं में उनकी समानता करने वाले कवि, कम ही हैं। हिन्दी में उनके अतिरिक्त सूरदास ने 'सूर-सागर' में 'रामचरित' की कुछ घटनाओं पर क्रमानुसार स्फुट पदों की रचना की है। मुनिलाल का 'रामप्रकाश' अभी अप्राप्य है। केशव की 'रामचन्द्रिका' भी एक महत्त्वपूर्ण काव्य है। महात्मा 'बनादास' का 'रामचरित' एक उच्चकोटि की रचना है। आधुनिक काल में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत', 'पंचवटी', हरिऔध जी का 'वैदेही बनवास', बलदेवप्रसादमिश्र-कृत 'कौशल किशोर' एवं 'साकेत संत' तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन कृत 'ऊर्मिला' प्रख्यात रचनाएँ हैं। हिन्दी में तो राम-साहित्य की अक्षुण्ण परम्परा मिलती है। काव्यों के अतिरिक्त नाटकों में भी प्रचुर मात्रा में 'राम-कथा' को अपनाया है। मध्यकाल में 'कबीर', 'रहीम' आदि भी 'राम-कथा' से प्रभावित थे। उर्दू के कवि भी 'राम-कथा' के प्रति आकर्षित प्रतीत होते हैं, क्योंकि उर्दू साहित्य में भी 'राम-साहित्य' का निर्माण हुआ है। अतः समग्र भारत की भावनात्मक एकता का प्रत्यक्ष ज्ञान राम-कथा की व्यापकता से किया जा सकता है।

भारत के भिन्न-भिन्न साहित्यों ही में नहीं, वरन् भिन्न धर्मों में भी 'राम-कथा' का गौरवपूर्ण स्थान है। भारत में तीन महान् धर्मों का उदय हुआ। हिन्दू, बौद्ध और जैन। तीनों के विकास में 'राम' और 'राम-कथा' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दुओं ने जिस आदर्श राम को भगवान् के अवतार के रूप में पूजा, बौद्धों ने बोधिसत्व एवं जैनों ने आठवें बलदेव के रूप में अपनाया। देश के तीनों मुख्य धर्मों में राम समान रूप से समादृत हुए इससे प्रतीत होता है कि भारतीय जनता का सबसे अधिक रागात्मक सम्बन्ध राम से है।

जब देश पर नवोदित मजहब इस्लाम के आक्रमण हुए तो, 'राम के आदर्शों एवं 'राम-कथा' को अपनाना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है, क्योंकि 'राम-कथा' में वह अपूर्व शक्ति है, कि समग्र भारत की भावनाओं को प्रभावित कर जनता को एक सूत्र में संगठित कर सकती है। विक्रम की ११वीं सदी के उपरान्त, आचार्यों ने नए आक्रमण के समक्ष जनता को संगठित करने तथा राष्ट्रीयता को शक्तिशाली बनाने के निमित्त, अपने गौरवपूर्ण अतीत के प्रति प्रेम और प्राचीन चिन्तन-क्रम जारी किया। उन्होंने प्राचीन भारतीय गरिमा और अभिमान को जगाया। हमारे प्राचीन इष्टदेव फिर नवीन रूप में आने लगे। सगुण भक्ति का प्रचार और विकास होने लगा। निःस्पन्द संस्कृति में पुनः स्पन्दन हुआ। हमारी भावनात्मक एकता की प्रतिनिधि पुस्तकें—रामायण और श्रीमद्‌भागवत में पुनः श्रद्धा बढ़ी। पुराणों द्वारा प्रतिपादित, शिव, शक्ति, विष्णु, राम, कृष्ण का पुनः प्राधान्य हो गया। राम और कृष्ण हमारे देश की अप्रतिम विभूति हैं जो विश्व-भर को अपनी ओर आकर्षित कर सकने में समर्थ हैं। उनकी सर्वमान्यता बढ़ी क्योंकि वे हमारे पूज्य दृश्य देव थे। समर्थ भक्तों ने उनके गुण गाए। नगर और ग्राम, साहित्य और लोक-रचनाओं में उन्हीं के गीत गाए गए। पग-पग पर मन्दिर बने। हमारी रग-रग में उनका शक्ति, शील और सौन्दर्य व्याप्त हो उठा। उनके पावन चरित्रों के प्रभाव से सम्पूर्ण देश की भावना आलोकित हो उठी और भारतीय संस्कृति को उज्ज्वलतम रूप प्राप्त हुआ।

उत्तरा-पथ की इन महान् विभूतियों को लेकर दक्षिणात्य सन्तों एवं आचार्यों ने भक्ति की 'ऐसी पावन गंगा प्रवाहित की जिसमें समस्त भारत आप्लावित हो गया। दक्षिण के इन आचार्यों (रामानुज, निम्बार्क, मध्व एवं विष्णु) के साथ उत्तर भारत के तीन महापुरुषों ने योग दिया। इन तीनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ थीं। गुरु गोरखनाथ

बौद्ध संस्कृति के प्रभाव को लिए हुए थे। चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन एवं माधुर्य भाव से युक्त कृष्ण-भक्ति की धारा को वेग से प्रवाहित किया। श्री रामानन्दाचार्य ने रामानुज के 'श्रीसम्प्रदाय' में सुधार किए और राम-भक्ति की ऐसी पुनीत मन्दाकिनी बहाई कि जिसमें भारतीय संस्कृति को नवीन रूप मिला। वास्तव में इन्हीं आचार्यों की सतरंगिनी विचार-जाह्नवी ने भारतीय हृदय में एकता की भावनाओं का पुनः स्थापन किया जिसके परिणामस्वरूप मुसलमानों के अत्याचारों के सम्मुख हम 'भक्ति', विशेषकर 'राम-भक्ति' का अपराजेय शस्त्र लेकर खड़े हुए। उत्तरा-पथ के हृदय-देव राम की भक्ति-भावना के विकास और प्रचार का श्रेय दक्षिण के अलवार भक्तों को हैं। महाराष्ट्र के एकनाथ, नामदेव, ज्ञानदेव आदि सन्तों ने राम-भक्ति का बहुत प्रचार किया। 'राम-भक्ति' रूपी चिन्तामणि से हमारी संस्कृति की रक्षा हुई। असुर संस्कृति के विरोध में वाल्मीकि की रामायण ने हमें शक्तिमान् बनाया, हूणों के विरोध में रघुवंश तथा मुसलमानों के विरोध में 'मानस' ने। पाश्चात्य संस्कृति से हमारी रक्षा की साकेत, साकेत संत, वैदेही-वनवास, मेघनाद-वध ने। साकेत से हमें निःस्पृही लक्ष्मण, ऊर्मिला, त्याग के कारण स्पृहणीय हैं। जब-जब देश को अन्य संस्कृतियों से संघर्ष करना पड़ा है तब 'राम-कथा' एवं राम-आदर्शों ने हमारी संस्कृति की रक्षा की है और हमारे सांस्कृतिक आदर्शों को नवीन रूप देकर, जनता में एकता और नवचेतना का प्रसार किया है। आज भी जब हमें पुनः भावनात्मक एकता की सबसे अधिक आवश्यकता है तो हमारा पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है कि 'राम-कथा' सुर-सरिता में अवगाहन करें और वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, कंबन, अभिनन्द, तुलसी आदि महाकवियों से प्रेरणा ग्रहण करें। राम-कथा' में चित्रित राम का आदर्श चरित्र ही समस्त भारत को पुनः उतना ही सामर्थ्यवान् बना सकता है जितना कि वह सदा बनाता रहा है।

★ ★ ★

शक्ति दो.... ....

[अनु.—कृष्णलाल शिक्षार्थी]

भगवन् ! मुझमें शक्ति भर दो
सही राह पर चलने की।

शक्ति दो ईमान से मैं पेट भर सकूँ,
शक्ति दो कि दूसरों का हित मैं कर सकूँ,
शक्ति दो कि न्याय के लिए मैं लड़ सकूँ,
शक्ति दो कि सत्य के लिए मैं अड़ सकूँ।

शक्ति दो जवानी में अच्छाई पर चलूँ,
शक्ति दो गलती को मैं अपनी सुधार लूँ,

शक्ति दो गाते हुए मैं दिन बिता सकूँ,
शक्ति दो साकार मैं विचार कर सकूँ,
शक्ति दो कि बात का धनी मैं बन सकूँ,
शक्ति दो हँसते हुए हर दुःख को सह सकूँ।

जवानी में चुनूँ सत्-पथ
यही बस शक्ति दो भगवन्॥

❀ ❀ ❀

अतिमानस-साधना और श्री अरविन्द

[श्री जगत्प्रिय]

प्राचीन आर्य ऋषि-परम्परा में श्री अरविन्द का अपना एक विशिष्ट स्थान बन गया है। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के शब्दों में 'मानव-मन के गठन एवं विश्व के अन्तर्विधान का जिस सूक्ष्मता व मर्म-स्पर्शिता के साथ विश्लेषण तथा संश्लेषण श्रीअरविन्द ने किया और उसे एक महान् दार्शनिक की रहस्य-भेदी दृष्टि एवं कुशल कवि की अद्भुत कला व चमत्कारपूर्ण वाणी दी, वह उनकी अलौकिक प्रतिभा का परिचायक है'।

अपने-आपको सर्वांगीण रूप से रूपान्तरित करने की चेष्टा को जीवन का एकमात्र उद्देश्य समझना ही श्री अरविन्द के समन्वयात्मक-योग की चरम उपलब्धि कही जा सकती है। इसे साधित करना मनुष्य का परम सौभाग्य है। इस लक्ष्य-साधना में श्री अरविन्द इस धरती पर एक अपूर्व ज्योति-वाहक के रूप में अवतरित हुए। उन्होंने मानव-जीवन तथा विश्व-मन की गहनतम घाटियों को भी अपने अद्भुत स्पर्श से आलोकित करके उसमें एक अभूतपूर्व प्रफुल्लता का संचार किया। विश्व-भर के लिए उनका आत्म-मधुर एवं मर्म-भेदी दिव्य-सन्देश था, कि मानव चेतना अपने विकास-पथ में निरन्तर अग्रेसर है। मनुष्य ने मन की समस्त परिस्थितियों को पार करके आत्मा के उस दिव्य-लोक में स्वयं को प्रतिष्ठित करना है, जो युग-युगों से उसकी जीवन-साधना का केन्द्र-बिन्दु रहा है। पर अभी तक समष्टि रूप में अधिगत नहीं हो पाया है, व्यष्टि रूप में यद्यपि उसके विरले दृष्टान्त प्रत्येक काल और युग में कहीं-न-कहीं सदैव ही दृष्टिगोचर होते रहे हैं।

'मन का बोध ही सम्पूर्ण व अन्तिम बोध नहीं'। इस सिद्धान्त का सबल प्रतिपादन करके मानव-आत्मा के लिए अतिमानसिक दिव्य-जीवन के रूप में एक सर्वथा नवीन परिधान की रचना उन्होंने की। सचमुच भारतीय वैदिक क्रान्तदर्शी मनीषियों की विराट् गरिमा एवं विश्वगत-भावना उनके भीतर से मुखरित हुई। अतिमानस लोक के स्वर्गीय स्वप्नों के वे महान् स्वप्नद्रष्टा थे।

भारतीय इतिहास में १५ अगस्त १८७२ का ही वह शुभ दिन था, जब श्री अरविन्द ने अपने जन्म से भारतमाता की गोद को सार्थक एवं पवित्र किया। उनके जीवन की विकास-धारा बहुत ही तीव्रता के साथ आगे बढ़ी। सन् १८६३ में अपनी शिक्षा पूरी करके स्वदेश लौटने पर लगभग १३ वर्ष तक बड़ौदा राज्य को अपनी सेवाओं से वे लाभान्वित करते रहे। पश्चात् 'बंगाल नेशनल कालेज' के आचार्य पद को अलंकृत किया। बंग-भंग के समय तक शिक्षा-क्षेत्र में कार्य करने के साथ-साथ आप भारतीय राजनीति के सूत्रधार भी बने रहे। सन् १६०८ और १६०६ के मध्य अलीपुर जेल के एकान्त कारावास में आध्यात्मिक चिन्तन-मनन करते हुए श्री अरविन्द को आत्मानुभूति के साथ पहली बार भगवान् का वह साक्षात्कार हुआ, जिसके सम्बन्ध में 'ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो' ऐसा कहा गया है।

इस आत्म-साक्षात्कार से प्रेरणा पाकर श्री अरविंद ने अपने जीवन-सूत्र को सर्वात्म भाव से परम सनातन गुरु भगवान् के हाथों समर्पित कर दिया, और सन् १६१० में पांडीचेरी जा पहुंचे। जहां योग-साधना द्वारा अपनी पूरी शक्ति के साथ आत्मानुसन्धान में जुट गए, ताकि आध्यात्मिक अनुभूतियों के दिव्य-प्रकाश को वे पूर्णतया अधिगत कर सकें। सन् १६१४ में श्रीमाता जी भी उनके दर्शनों से प्रभावित एवं कृतार्थ हुईं, और उनके महान् कार्य में सहयोगिनी बनना उन्होंने अपना परमसौभाग्य समझा। २४ नवम्बर सन् १६२६ को श्री अरविन्द की साधना फलीभूत हुई और उन्होंने अतिमानस को सिद्ध करके ब्राह्मी स्थिति प्राप्त की। यह उनकी अतिमानससिद्धि

का पवित्रतम दिन कहलाया। इसी दिन वे यथार्थ में सच्चे आत्मयाजी बने।

आन्तर चेतना का विकास साधित करते हुए आत्मा को शरीर का सही अर्थों में राजा बना देना ही श्री अरविन्द की योग-पद्धति का मुख्य विषय है। योग का 'प्राचीन स्वराट् का आदर्श' भी यही कहा जाता है—'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च'। इसी आदर्श को समष्टि-जीवन में चरितार्थ करने के लिए श्री अरविन्द ने अपना पथ चुना, पूर्णयोग अर्थात् मनुष्य की अपनी समग्र सत्ता शरीर, मन, प्राण तथा स्थूल चेतना को साथ ले भगवान् से सांगोपांग-योग स्थापना की साधना।

अतिमानस साधना के लिए दो बातें अत्यावश्यक हैं। एक आरोहण-क्रिया और दूसरी अवरोहण या अवतरण-क्रिया। आरोहण में मनुष्य भगवान् की ओर ऊपर को उठता है, और अवतरण में भगवान् की शक्ति मनुष्य में उतरती है। यह द्विविध दुरूह कार्य पूर्ण होगा भगवदनुकम्पा से। एक साथ पूर्ण ज्योति, शक्ति और आनन्द वाली, समस्त द्वन्द्वों एवं द्वैतों से परे स्थित जो भगवान् की अतिमानसिक शक्ति है, उसी का अवतरण हमें साधित करना है। इसी से मानव-समाज का कायाकल्प होगा, और आविर्भूत होगी एक आदर्शरूपा अतिमानस दिव्य जाति। जिसके जीवन सम्बन्धी सर्वविध जीवन-मान, मानव-जाति के जीवन-मूल्यों से सर्वथा भिन्न होंगे।

भगवान् की शक्ति के अवतरण की अनुभूति को, एक प्रसंग में श्री अरविन्द ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—'मानव-जीवन में ऐसी घड़ियां आती हैं, जब देव मनुष्यों के बीच विचरण करते हैं और हमारे जीवन सलिल पर भगवान् का श्वास फैल जाता है। इस अवस्था में थोड़ा-सा भी प्रयत्न करने पर बड़े परिणाम पैदा होते हैं और भाग्य बदल जाता है, ...। अभागा है वह मनुष्य और राष्ट्र, जो भागवत मुहूर्त के आने पर सोया पड़ा रहे, या उसके उपयोग के लिए तैयार न हो, जो इसके स्वागत के लिए दिया संजोकर न रखे; और उसकी पुकार की ओर से कान बन्द कर ले। पर कहीं अधिक अभागे हैं वे जो सशक्त और तय्यार होते हुए भी उस शक्ति का अपव्यय करते, एवं उस मुहूर्त का दुरुपयोग करते हैं। अतः हे भारत सन्तान उठ, वह घड़ी अब आ पहुंची है। इस भागवत मुहूर्त में अपनी अन्तरात्मा से अपने-आप को धोखा देने की वृत्ति, ढोंगबाजी एवं झूठी आत्म-प्रशंसा को धो डालो, ताकि तुम सीधे अन्तःपुरुष को देख सको और उसकी पुकार सुन सको। देखना कहीं सांसारिक बुद्धिमत्ता तुम से अधिक कानाफूसी न करने पाए, यह अप्रत्याशित की घड़ी है। 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत'।

हे वीर मार्गप्रदर्शिनी मातः दुर्गे, आ, अब हम तेरा विसर्जन नहीं करेंगे। हमारा सारा जीवन ही, अविच्छिन्न रूप से तेरी पूजा हो, हमारे समस्त कार्य अविरत, पवित्र, प्रेममय, शक्तिमय व मातृसेवा व्रत से युक्त हों। स्वार्थ, भय एवं क्षुद्राशयता से म्रियमाण हो रही भारत-सन्तान को हे मातः, तू महत् बना, महत्प्रयासी बना, उदारचेता बना और सत्य-संकल्पी बना। ऐसा कर कि जिससे हम अब अल्पाशी, निश्चेष्ट, अलस और भयभीत न हों। हे मातः, तू भारत में आविर्भूत हो, प्रकाशमान हो।'

सत्यं च तत् ते महतां विनुत्यम्,
कालेन यन्न व्ययमेति मातः।

औपनिषदिक भारत के पश्चिमी प्रदेश

[प्रा. व्रजदेवप्रसाद राय]

उपनिषदों के ऐतिहासिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि पश्चिम भारत के विभिन्न प्रदेशों के लोगों ने भारतीय दार्शनिक ज्ञान की अभिवृद्धि में काफी योगदान किए थे। इन ग्रन्थों में कई प्रदेशों के नामों के उल्लेख प्रसङ्गवश हुए हैं एवं उक्त देशों के निवासियों के आचार-विचार के बारे में भी जानकारी मिलती है। प्रस्तुत निबन्ध में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि उपनिषदों में पश्चिम भारत के किन-किन प्रदेशों का उल्लेख है, साथ-साथ उन स्थानों के परवर्तिकालीन उल्लेखों का भी विवरण है। उपनिषदों एवं बौद्ध जातकों के काल का अन्तर पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार लगभग २०० या ३०० साल का है। जातक ग्रन्थों में औपनिषदिक भारत के पश्चिमी प्रदेशों के बार-बार उल्लेख आते हैं, फलतः दो साधनों से इस विषय पर हमें जानकारी मिलती है।

गंधार – गंधार प्रदेश का उल्लेख उपनिषदों[1] में केवल एक बार हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि यातायात के रास्ते लोगों को मालूम थे एवं गंधार प्रदेश यातायात का केंद्र था। परन्तु पूर्ववर्ती एवं परवर्ती ग्रन्थों से इस प्रदेश के बारे में कुछ जानकारी मिलती है। इस प्रदेश के दो भाग थे। पूर्वी गंधार की राजधानी तक्षशिला में थी एवं पश्चिमी गंधार की राजधानी पुष्कलावती में थी। टॉलेमी का कहना है कि गंधार प्रदेश सिन्धु नदी के पश्चिम में था और इसकी राजधानी प्रोक्ल्यास में थी, जो पुष्कलावती का ग्रीक अपभ्रंश है। आजकल की दृष्टि से हम विचार करें तो पाकिस्तान के पेशावर एवं रावलपिण्डी जिले तथा दक्षिणी-पूर्वी अफगानिस्तान के जिले गंधार में शामिल थे। इस प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व है एवं प्राचीन काल में भी इसका महत्त्व और बढ़ा-चढ़ा था। जातक ग्रन्थों में व्यापार एवं व्यापारिक सामग्रियों के सम्बन्ध में गंधार का उल्लेख विस्तृत रूप में मिलता है। बुद्ध के समय यहां का राजा पक्कुसाति था जो मगध के राजा बिम्बिसार का मित्र था। पक्कुसाति बुद्ध का शिष्य बन गया था। कुछ दिनों तक गंधार ईरानी राजाओं के अधिकार में भी रहा, परन्तु बाद में इस प्रदेश पर ग्रीकों के द्वारा मौर्यों का अधिकार रहा। मौर्यों के उपरान्त ग्रीको-बैक्ट्रियन लोगों ने इस पर शासन किया। भौगोलिक विशेष स्थिति के कारण यह प्रदेश बराबर विदेशियों के आक्रमणों का केन्द्र रहा; फलतः यहां मिश्रित संस्कृति पनपी। कुषाणों के राज्य में गंधार आया तो मूर्त्तिकला का यह बड़ा केन्द्र बन गया। यह प्रदेश शिक्षा का भी बड़ा केन्द्र था एवं सातवीं शती ई० पू० में भी तक्षशिला में विद्या का भारत-विख्यात केन्द्र था जैसा कि जातकों से ज्ञात होता है। पर उपनिषदों से इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती है। यह भूभाग जो कभी आर्यसंस्कृति का केन्द्र था, आज भारत की मुख्य भूमि से अलग है और संग्रहालयों में रखी कुछ वस्तुएँ ही इसको प्राचीन गरिमा की कहानी कह रही हैं।

मद्र—मद्र देश का उल्लेख बृहदारण्यकोपनिषद्[2] में मिलता है जिसमें कहा गया है कि लाह्यायनी भुज्यु एवं आरुण उद्दालक मद्र देश में यज्ञ-शास्त्र का अध्ययन करने गए थे एवं एक ब्राह्मण के घर रहकर उन्होंने उक्त शास्त्र का अध्ययन किया। इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि उपनिषदों के समय में मद्र देश वैदिक कर्मकाण्ड का केन्द्र था एवं सुदूर प्रान्तों से छात्रगण वहां अध्ययनार्थ जाते थे। परवर्ती ग्रन्थों से हमें मद्र देश की भौगोलिक स्थिति के बारे में जानकारी मिलती है। पश्चिमी पंजाब एवं स्यालकोट के क्षेत्र को प्राचीन काल में मद्र देश कहते थे। मद्र जाति

---

१. छान्दोग्य. ६,१४,१-२. २. ३,८,२.

के नाम पर उस प्रदेश का नाम मद्र देश पड़ा जिसकी राजधानी शाकल में थी, जिसे आजकल स्यालकोट कहते हैं। शाकल नगर की स्थिति उपनिषदों के काल में थी। शाकल्य विदग्ध[3] जिन्होंने जनक के यज्ञ में याज्ञवल्क्य से दार्शनिक विषयों पर शास्त्रार्थ किया था, ज्ञात होता है शाकल के ही निवासी थे। मद्र देश की ख्याति सर्वदा बनी रही। इस देश के दो भाग थे—उत्तर मद्र एवं दक्षिण मद्र, पहला भाग स्यालकोट का क्षेत्र था एवं दूसरा पंजाब में ही कहीं था। पाण्डु की रानी माद्री इसी प्रदेश की थी। यूनानी लेखकों ने भी मद्र देश का उल्लेख किया है। मद्रों के साथ सिकन्दर का युद्ध हुआ था एवं शाकल के किले में भी घमासान युद्ध हुआ था। मिलिन्दपञ्हो में शाकल का उल्लेख जगद्विख्यात नगर के रूप में किया गया है एवं इससे ज्ञात होता है कि दूसरी शती ई० पू० में मद्र देश ग्रीकों के अधीन था। चौथी शती में मद्रों के जनतंत्र का उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति से मिलता है। आज मद्रों का अस्तित्व नहीं है और न मद्र देश का आज अपना स्वतंत्र रूप रहा है।

केकय—छान्दोग्योपनिषद् में केकय का नाम आता है[4] जिससे ज्ञात होता है कि केकयकुमार अश्वपति बहुत बड़े दार्शनिक थे जिनके पास बड़े-बड़े ब्राह्मण भी ज्ञान प्राप्त करने जाते थे। इस उपनिषद् में केकय देश की स्थिति बहुत अच्छी बतलाई गई है जहां चोर नहीं थे, सभा उदार थे, शराब पीने वाले लोग नहीं थे, व्यभिचारी एवं अशिक्षित नहीं थे। केकय देश की स्थिति पंजाब में थी। वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि दशरथ की रानी कैकेयी केकय देश की राजपुत्री थी। भास के प्रतिमानाटकम् से ज्ञात होता है कि केकय देश की बोली एवं पोशाक, कोसल देश की बोली एवं पोशाक से भिन्न थीं तथा वहां के कुत्ते बड़े प्रसिद्ध थे।

सिन्धु देश—बृहदारण्यकोपनिषद्[5] में सिन्धु-देशीय घोड़ों का उल्लेख है तथा उनकी शक्ति की सराहना की गई है। उस देश के घोड़े इतने विख्यात हुए कि "सैंधव" शब्द ही घोड़े का एक पर्याय बन गया। आजकल के पश्चिमी पाकिस्तान के सिन्ध को मोटे तौर पर सिन्धु देश कहा जाता था। सिन्धु नदी की सबसे निचली घाटी को सिन्ध कहते हैं एवं नदी के नाम पर ही देश का नाम भी सिन्धु या सिन्ध पड़ा। भारतीय साहित्य में सिन्ध का नामोल्लेख अकेले कम आता है पर सिन्धु-सौवीर का उल्लेख ही अधिकतर आता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में एवं जातकों में तो कई बार इस देश का उल्लेख हुआ है। महाभारत के काल में सिन्ध देश के राजा जयद्रथ ने कौरवों का पक्ष लिया था। यवनों एवं शक क्षत्रियों का शासन भी सिन्ध पर बहुत दिनों तक रहा और अन्त में आठवीं शती के मध्य में यह प्रान्त अरबों के हाथों में चला गया जिस ने भारत के दुर्भाग्य का द्वार खोल दिया जिसकी चरम परिणति देश-विभाजन के रूप में हुई। सिन्धु देश की प्राचीनता कम-से-कम ३००० ई० पू० जाती है, उस काल में सिन्ध में बड़े-बड़े विकसित नगर थे एवं पश्चिमी एशिया के देशों के साथ उनका व्यापारिक सम्बन्ध था, सम्भव है वही परम्परा उपनिषदों के युग तक चलती रही।

शिवि देश—इस देश का नामोल्लेख प्रत्यक्ष रूप से नहीं हुआ है। प्रश्नोपनिषद्[6] में शैव्य सत्यकाम नाम के एक श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण का उल्लेख है। प्रतीत होता है कि सत्यकाम शिवि देश के निवासी थे इसलिए उन्हें शैव्य कहा गया है। शिवि प्रदेश सिन्ध में था। आज भी सिन्ध में शिवि नामक जिला है एवं वहां शिवि जाति भी निवास करती है, जो मुसलमान हो गई है। जातक ग्रन्थों में शिवि देश का उल्लेख बार-बार आता है। शिवि जातक बहुत प्रसिद्ध है जिसके कथानक का चित्रण भारतीय बौद्धकला में दूसरी शती ई० पू० से ५वीं शती तक होता रहा। जातक का युग उपनिषदों के थोड़े दिनों बाद का है अतः इनमें वर्णित बातें औपनिषदिक शिवि देश का ही चित्र प्रस्तुत करती हैं। ज्ञात होता है कि शिवि देश में प्रजातांत्रिक

---

[3] बृहदारण्यक ३,९,१-२६. [4] ५,११,१-७; [5] ६,१,१३. [6] १,१,५,१.

प्रणाली प्रचलित थी एवं राजा को जनता पदच्युत भी कर सकती थी। महाभारत में भी बार-बार शिवि देश का उल्लेख हुआ है। हरिश्चन्द्र की पत्नी शैव्या उसी प्रदेश की निवासिनी थीं। इस देश के कम्बल बहुत प्रसिद्ध थे एवं देश-विदेश में उनकी काफी खपत थी। सिकन्दर से भी इनकी मुठभेड़ हुई थी एवं वे पराजित हुए।

मत्स्य देश—इस देश का उल्लेख कौषीतकि-उपनिषद्[७] में हुआ है। प्राचीन काल में राजस्थान के जयपुर एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों को मत्स्य देश कहा जाता था। उपनिषदों में इसके बारे में विवरण नहीं मिलता है, पर बौद्ध-साहित्य से ज्ञात होता है कि बुद्ध के समय के उत्तर भारत के सोलह महाजनपदों में मत्स्य की भी गणना होती थी। जैन ग्रन्थों में इसे मच्छ कहा गया है। महाभारत में इस देश के राजा विराट् का उल्लेख आता है, जिनकी पुत्री उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से हुआ था। इस देश की राजधानी विराट्-नगर में थी जिसे आजकल वैराट कहा जाता है जहां अशोक का एक लेख भी मिलता है। इस देश का उल्लेख बंगाल के पाल वंश के राजा धर्मपाल के खलिमपुर दानपत्र में हुआ है।

कुरु देश—छान्दोग्योपनिषद्[८] में कुरु देश का उल्लेख है जो दुर्भिक्षपीडित था। बृहदारण्यकोपनिषद्[९] में भी इस देश का विवरण है। इसी उपनिषद्[१०] से ज्ञात होता है कि कुरुदेशीय ब्राह्मणों ने जनक के बहुदक्षिण यज्ञ में भाग लिया था। कौषीतकि-उपनिषद् में भी इस देश का नामोल्लेख है। इस देश का नाम कुरु नामक लोगों के नाम पर पड़ा जिनका उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है। आजकल के मेरठ एवं दिल्ली के क्षेत्र को प्राचीन काल में कुरु देश कहा जाता था। इस देश के दो विभाग थे। गङ्गा इस देश को दो भागों में विभक्त करती थी। उत्तर कुरु देश हिमालयवर्ती क्षेत्र में था एवं दक्षिण कुरु, दिल्ली मेरठ का क्षेत्र माना जाता था। उत्तर कुरु देश में कोई राजा नहीं था एवं वहां वैराज्य शासन-प्रणाली थी। जातक ग्रन्थों में कुरु देश के राजा, वहाँ की जनता एवं आचार-विचार के विवरण मिलते हैं। सोलह महाजनपदों में कुरु देश की भी गणना होती थी। महाभारत नामक महाकाव्य तो कुरु देश पर ही आधृत है। पुराणों में कुरु देश का विवरण विस्तृत रूप से मिलता है। नन्दों एवं मौर्यों का शासन इस देश पर रहा। तीसरी शती तक इस पर कुषाणों का अधिकार रहा। कुरु देश व्यापारिक सामग्रियों के लिए विख्यात था, एवं व्यापार का केन्द्र भी। कुरु देश की सुन्दरियों का विशेष स्थान साहित्य में मिलता है। धर्मपाल के एक लेख में इस देश का उल्लेख मिलता है। चौहानों की पराजय के बाद यह देश मुसलमानों के अधीन चला गया और १२०६-१८५७ ई० तक उन्हीं के अधीन रहा।

पञ्चाल देश—छान्दोग्योपनिषद्[११] में इस देश का उल्लेख हुआ है। इसी उपनिषद् से ज्ञात होता है कि इस देश के राजा जीवल के पुत्र प्रवाहण एक बहुत बड़े दार्शनिक थे, एवं नाना देशों के ब्राह्मण उनसे दार्शनिक ज्ञान पाने आते थे। श्वेतकेतु जैसे दार्शनिक को भी इनके प्रश्नों के उत्तर न दे सकने के कारण लज्जित होकर लौट जाना पड़ा था। बृहदारण्यकोपनिषद्[१२] में पंचाल देश के विद्वान् ब्राह्मणों के सम्बन्ध में लिखा मिलता है कि उन लोगों ने जनक के यज्ञ में भाग लिया था। कौषीतकि[१३] उपनिषद् में भी इस देश का नामोल्लेख हुआ है। उत्तर-प्रदेश के आजकल के फरुखाबाद एवं बरेली के जिलों को प्राचीन काल में पंचाल देश कहा जाता था। प्राचीन साहित्यिक विवरणों से ज्ञात होता है कि कुरु देश की भाँति पंचाल देश भी दो भागों में विभक्त था। उत्तर पंचाल की राजधानी आज के रामनगर में थी जिसे प्राचीन काल में अहिच्छत्रा कहा जाता था, जिसकी स्थिति उत्तरप्रदेश के रायबरेली जिले में है। महाभारत के अनुसार काम्पिल्य में दक्षिण पंचाल की राजधानी थी, जिसका आधुनिक नाम कम्पिला है और यह फरुखाबाद जिले में स्थित है। वैदिक-साहित्य में पूर्वी एवं पश्चिमी

---

७. ४,१. ८. १,१०,१-४. ९. ३,१,१. १०. ३,९,१८. ११. ५,३,१,६,२,१. १२. ३,१,१. १३. ३,६,८.

पंचाल का भी उल्लेख आता है। कुम्भकार जातक में पंचाल देश की राजधानी काम्पिल्य का उल्लेख है। यह देश सोलह महाजनपदों में एक था। इस देश का उल्लेख अधिकतर कुरु देश के साथ हुआ है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में पंचाल देश का उल्लेख किया है एवं पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इस देश का विवरण दिया है। महाभारत में इस देश का सर्वाधिक विवरण प्राप्त होता है। द्रौपदी यहां के राजा द्रुपद की पुत्री थी। ऐसा प्रतीत होता है कि नन्दों के समय में यहां के प्राचीन राजवंश का विनाश हो गया एवं मौर्यों तथा शुङ्गों की अधिकार-सत्ता भी वहां स्थापित हुई। पभोसा लेख में बृहस्पति-मित्र का उल्लेख आता है जिसके सिक्के भी अहिच्छत्रा में मिले हैं। बाद में गुप्तों की सत्ता यहां स्थापित हुई। ह्वेनसांग ने भी अहिच्छत्रा का उल्लेख किया है। १४३० ई० तक अहिच्छत्रा एक प्रख्यात नगरी थी, जिसका उल्लेख टॉलमी के भूगोल में अदिसद्रा के नाम से मिलता है। प्राचीन परम्पराओं के अनुसार इसका नाम संख्यावती था। जैनों के तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने यहां निवास किया था, एवं एक सर्प ने अपना छत्र फैलाकर उनकी रक्षा की थी। फलतः वह नगरी बाद में अहिच्छत्रा के नाम से अभिहित होने लगी। भारतीय मुद्राशास्त्र में पंचाल देश के सिक्कों का विशेष स्थान है।

इस प्रकार हमने देखा कि उपनिषद् ग्रन्थ केवल ब्रह्म-ज्ञान के विषय पर केन्द्रित नहीं हैं, उनमें पश्चिम भारत के विभिन्न प्रदेशों एवं यथाशक्य उनके संबंध में विवरणों के उल्लेख भी हम पाते हैं। परवर्त्ती साहित्य के सहारे हमने उनके बारे में विवरण देने का प्रयत्न किया है, और इस प्रकार एक पूरा चित्र उभर आता है, एवं हमारे समक्ष गंधार, मद्र, केकय, सिन्ध, शिवि, मत्स्य, कुरु एवं पंचाल प्रत्यक्ष हो उठते हैं जो आर्य संस्कृति के केन्द्र थे। पर कालचक्र प्रत्यावर्त्तित हुआ, वर्बर यवनों एवं म्लेच्छों की विध्वंसकारी नीति एवं आर्यों की संकुचित मनोवृत्ति तथा राजनीतिक अदूरदर्शिता के कारण आज गंधार, मद्र, सिन्ध, एवं शिवि देश भारतभूमि से अलग हैं जहां आर्य संस्कृति के अवशेष केवल संग्रहालयों में ही दीख पड़ते हैं।

गीत

[श्री कृष्ण भटनागर]

स्वप्न आये।
कौन वेला अप्रतिम जब सूर्य हतप्रभ हो चुके हैं।
चन्द्र की सत्कीर्त्ति के वाहन सभी जब सो चुके हैं।
है दिवस निशि सान्ध्य का अद्भुत समन्वय, या कि क्या है?
फिर अचानक कौन ये परिचित तनिक-से मेघ छाये।
स्वप्न आये।
कौन-सा यह लोक, कैसे रास्ते, कैसी विषमता।
ध्वान्त कोलाहल सजग चेतन सुरति की कौन समता?
फिर यहाँ गति औ' अगति में भेद कुछ है, कौन जाने,
रति यहाँ रति औ' स्वरति का रूप अनुपम राग छाये॥
स्वप्न आये।
कौन-सी मधुधार बहती आत्म-तत्त्व सजग बनाती,
कौन-सी आलोक-विह्वल ज्योति रश्मिरथी तपाती।
कौन सर्वसमर्थ निज आकार गढ़ने से भयातुर,
कौन स्वर्णोदय नया शोणित बहाता, शान्ति पाये॥

नई किरण अनजाने देश में

[श्री बनवारी ऋषीश्वर]

पात्र

सोनकली—(घर की मालकिन, आयु ४४ वर्ष)
कटोरी —(सोनकली की पुत्री, आयु १६ वर्ष)
द्रोपदी —(कटोरी की समवयस्का सखी)
गोदावरी—(सोनकली की पड़ोसिन, आयु ४० वर्ष)
नन्दो —(गोदावरी की पुत्र-वधू, आयु १६ वर्ष)
स्थान—चम्बल तथा क्वारी नदी के मध्य में स्थित गांव सोनकली के घर का आंगन।
समय—मध्याह्न।

(सोनकली के घर का आंगन। सोनकली चरखा कातती हुई गीत गा रही है। चर्खे की घर-घर आवाज के साथ धीमे गीत की आवाज सुनाई दे रही है। "सखि मोर पिया। अजहुँ न आओल कुलिश··· ···" इसी समय द्रोपदी प्रवेश करती है।)

द्रोपदी—(इधर-उधर देखती हुई सोनकली के पास जाकर खड़ी हो जाती है धीरे से) चाची।··· ···ओ चाची।

सोनकली—(चौंककर देखती है तार टूट जाता है) क्या है री ?

द्रोपदी—कटोरी कहां है ? चाची !

सोनकली—मैं तो समझती थी कोई बड़ी भारी बात लेकर आई है (तार जोड़ती हुई) बस इतनी-सी बात और इतना हंगामा।

द्रोपदी—चाची, बात तो बड़ी भारी ही लेकर आई थी, पर बताने आई थी कटोरी को। चलो खैर थोड़ी देर में आऊँगी (द्वार की ओर जाती है।)

सोनकली—अरी, सुनो तो। बैठ कटोरी आती ही होगी। खेत तक गई है पानी देने। (द्रोपदी दूर पड़ी दरी पर बैठ जाती है।) अरी यहां बैठ यहां (पास पड़े पीढ़े की ओर संकेत करती है। द्रोपदी सोनकली के पास आकर पीढ़े पर बैठ जाती है।)

द्रोपदी—चाची, तुम कातती बड़ा अच्छा हो।

सोनकली—अरी उड़े मत। बता कौन-सी बात लेकर आई थी ?

द्रोपदी—ना चाची मैंने तो वैसे ही कह दिया था। मेरे पास कोई बात नहीं है। (मुस्कराने लगती है।)

सोनकली—(उसके चेहरे पर भेद-भरी निगाह से देखती है) तू बिना बात आ ही नहीं सकती। सच बोल क्या बात है ? (धीरे से कहती है) मैं किसी से कहूँगी थोड़े ही।

द्रोपदी—ना चाची वो तुमसे कहने की बात थोड़े ही है। (मुस्कराने लगती है)

सोनकली—नखरे मत छान। बता··· ···(उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखती है)

द्रोपदी—(मुंह में आंचल देकर हंसती है) क्या बताऊँ चाची। बात ही कुछ ऐसी है। याद आते ही हंसी आने लगती है। (खिलखिलाकर हंसने लगती है।) वो है ना चाची··· ···(भेद-भरी निगाह से सोनकली की ओर देखकर हँसती है।)

सोनकली—(उत्सुकतापूर्वक) हँसती ही रहेगी या कुछ कहेगी भी।

द्रोपदी—कहती हूँ चाची। वो है ना··· ···(जोर से हँसने लगती है उसी समय आंगन में गोदावरी को प्रवेश करते हुए देखकर, गोदावरी की ओर संकेत करती हुई कहती है।) वो लो रेडियो

माई आ गई। फिर बताऊँगी। अब मैं कहूँगी तो रेडियो माई सब जगह फैला देगी। (हँसते हुए बाहर चली जाती है)

गोदावरी—(पास आकर) आज तो बड़ी हँसाई हो रही है जीजी। (पीढ़े पर बैठती है)

सोनकली—क्या कहूँ बहन। जब से आई थी हँसे ही जा रही थी। शायद कुछ कहना चाह रही थी, लेकिन हँसी के मारे कह नहीं पाई। (मुस्कराती है)

गोदावरी—उसे कुछ नहीं कहना था। यूँ ही मस्ता रही थी। दिन-भर यों ही मस्ताती रहती है। तुम देख लेना जीजी एक दिन… …(अचानक चुप हो जाती है।)

सोनकली—चुप क्यों रह गई बहिन? कहो… … कहो… … (गोदावरी की ओर देखती है।)

गोदावरी—क्या कहूँ? सब-कुछ तो साफ है। मुझे तो इसके लच्छन… …(रुक जाती है फिर कहती है) मुझे क्या करना जीजी किसी से? जो जैसा है वैसे रहेगा ही। (ओठ दाबती है।)

सोनकली—मैं किसी से कहने थोड़े ही जाऊँगी। बोलो बहिन क्या कहना चाहती थीं?

गोदावरी—मुझे किसी से डर थोड़े ही है। मैंने तो वैसे ही नहीं कहना चाहा था। मैं कोई झूठ थोड़े ही कह रही थी। सांच को आंच कहां।

सोनकली—कौन-सा सच कह रहीं थीं (आग्रहपूर्वक) उसे अब कह भी डालो।

गोदावरी—तुमसे न कहूँगी जीजी, तो किससे कहूँगी? सच पूछो तो बात ही कहने आई थी।

सोनकली—वो तो मैं तुम्हें देखकर ही समझ गई थी बहिन तुम आज-कल अकारण घर से निकलती थोड़े ही हो। लेकिन हां जरा जल्दी कहो, मैं सुनने को बहुत लालायित हो रही हूँ।

गोदावरी—(भेद-भरी निगाह से आंगन में चारों ओर देखती है, उसकी आंखें किसी को खोजती-सी लगती हैं। सोनकली की ओर मुड़कर) जीजी। कटोरी नहीं दिख रही, कहीं बाहर गई है क्या?

सोनकली—बहलाओ मत। मतलब की बात कहो। कटोरी भी आती ही होगी।

गोदावरी—कब की गई है?

सोनकली—बस यही कहने आई थी? (निराश-सी कातना शुरू कर देती है।)

गोदावरी—सुनो तो कहूँ, पर तुम तो कातने में लग गई। सुनो जीजी? (पीढ़ी उसके और निकट खिसकाती है) तुम्हें कुछ पता भी है जीजी? (अपने मुंह को सोनकली के कान के निकट ले जाती है)

सोनकली—(उत्सुकता के कारण सोनकली की आंखें फैल जाती हैं। कातना अनायास रुक जाता है। उसके मुंह से आश्चर्य के कारण आवाज निकलती है।) क्या?

गोदावरी—वह है ना… … (साड़ी मुंह में दाबकर हँसती है।)

सोनकली—(धीमें स्वर में पूछती है) अरे कौन?

गोदावरी—ठहरो बताती हूँ। उसकी याद आते ही हँसे बिना नहीं रहा जा सकता।

सोनकली—आखिर कौन है वह? जिसके बारे में बताना सब चाहते है, पर बताता कोई नहीं।

गोदावरी—(फुसफुसाते हुए) हरिज्ञान की बहू।

सोनकली—वही ना जो शहर की रहने वाली है?

गोदावरी—(स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए) हां वही।

सोनकली—आखिर क्या बात है, उसमें जो सबको हँसाती है?

गोदावरी—बस कुछ न पूछो (हँसने लगती है)

सोनकली—सच तो यह है कि तुम्हें भी बात का बतंगड़ बनाने में मजा आता है। शहर की है। पढ़ी-लिखी है। मेरे विचार में उसमें कोई कमी नहीं होगी। क्या वह सुन्दर नहीं है?

गोदावरी—(सकपकाते हुए) क्यों नहीं? बहुत सुन्दर है, पर मैं उसके फूहड़पन की बात कहना चाहती थी। आहा जब वह … …(बलपूर्वक हँसी रोकना चाहती है, परन्तु खिलखिलाकर हँसने लगती है।)

सोनकली—बुरा न मानो तो एक बात कहूँ?

गोदावरी—कहो, उसमें बुरा मानने की क्या बात है?

सोनकली—क्या वह तुम्हारी बहू से भी फूहड़ है ?

गोदावरी—(उत्तेजित होकर) मेरी बहू का तुमने क्या देखा है ? गांव की कोई बहू उसके मुकाबले में तो आके देख ले। उस जितना कोई काम भी तो कर ले।

सोनकली—ठीक कहती हो।

गोदावरी—तुमने मेरी बहू को गाली दी ठीक है। तुम्हारे अपने तो बहू है नहीं, जो उसका मर्म समझो (क्रोधपूर्वक) मुंह झोंस दूंगी उसका, जो मेरी बहू को फूहड़ कहेगा।

सोनकली—तुम तो हवा से लड़ती हो।

गोदावरी—(क्रोध-भरे स्वर में) हवा से लड़ती ही हूँ। बहू की बदनामी कराऊँ तो बहुत ठाक हूँ, नहीं तो··· ···

कटोरी—(गोदावरी के वाक्य को पूरा करते हुए प्रवेश करती है)··· ··· ···रोटी ही पचनी मुश्किल है।

गोदावरी—जैसी मां तैसी बेटी। खूब रोशन करेगी मां-बाप के नाम को। (क्रोध में पैर पटकती हुई बाहर चली जाती है)

कटोरी—काहे को बड़बड़ा रही थी मां ?

सोनकली—बेटी, वो है ना हरिज्ञान की बहू। उसकी बुराई कर रही थी, मैंने कह दिया—तुम्हारी बहू से तो अच्छी ही होगी। बस बरस पड़ी।

कटोरी—हरिज्ञान की बहू (हँसने लगती है)

सोनकली—क्या है बेटी उसमें, जो तुम सब उस पर हँसती हो ?

कटोरी—(हँसते हुए) मां, बहुत भली है बेचारी पर (जोर से हँसती है) मैंने आज उसे पहली बार देखा—बड़ी भली है। मुझसे बोली—'बीबी जी'। बीबी जी सुनते ही मैं तो लोट-पोट हो गई। मां, वो ऐसे सकपका गई, जैसे कोई बड़ी भारी गल्ती कर डाली हो।

सोनकली—तो बेटी, उस पर सब हँसते क्यों हैं ?

कटोरी—अपनी मूर्खता··· ···(वाक्य पूरा नहीं हो पाता है उसके पूर्व ही नन्दो बड़ी तेजी से प्रवेश करता है। नन्दो मूर्खता के स्थान पर मूर्खा सुनती है तथा अनुभव करती है कि कटोरी ने उसे ही मूर्खा कहा है।)

नन्दो—(उत्तेजित होकर) तुमने मुझे मूर्खा कहा ?

कटोरी—क्या कह रही हो भाभी ? मैं भला ऐसी सच बात काहे को कहूंगी।

नन्दो—(क्रोध में हाथ फटकारती हुई) चुड़ैल ? तू मुझे मूर्खा कहेगी।

सोनकली—खबरदार जो मेरी बेटी को चुड़ैल कहा। चुड़ैल तू होगी जन्मजली।

(चिल्लाहट सुनकर द्रोपदी आ जाती है)

द्रोपदी—क्या हुआ चाची ?

सोनकली—(संयत स्वर में) कुछ नहीं कटोरी हरिज्ञान की बहू के बारे में बात कर रही थी कि नन्दो आंधी पर सवार चली आई और जो चाहा सो बकने लगी।

नन्दो—कटोरी ने मुझे मूर्खा नहीं कहा था ?

कटोरी—मैं तो हरिज्ञान की बहू के बारे में बात कर रही थी और भाभी तुमने कुछ पूछा ना पाछा, लड़ने लग गईं।

नन्दो—(झेंपती हुई) मैं तो अपने लच्छे दिखाने आई थी कि कैसे बने हैं।

कटोरी—(व्यंग्यपूर्वक)······और दिखाने लग गईं अपने लच्छन।

(सब हँसने लगते हैं, नन्दो शर्मा जाती है। उसी समय गोदावरी प्रवेश करती है।)

गोदावरी—कब से ढूंढ रही हूँ बहू।

नन्दो—कटोरी के साथ हरिज्ञान की बहू को देखने चली गई थी।

सोनकली—(गोदावरी से) तो तभी तुम्हारी आँखें कटोरी को ढूंढ रही थीं ?

गोदावरी—(सोनकली की बात न सुनते हुए नन्दो से) तो तू मुझसे पूछे बिना वहां गई कैसे ? (नन्दो चुप रहती है) देख आई उस कुलच्छनी को। सीख ले उसी के लच्छन। (नन्दो पूर्ववत् चुप रहती है।)

कटोरी—चाची वो बड़ी अच्छी है। तुम तो उस पर बेकार नाराज हो गई हो।

गोदावरी—तो बन जा उसी जैसी। तुझे रोकता कौन है ? मैं तो अपनी बहू से कह रही हूँ।

द्रोपदी—चाची तुम तो एक काम करो। बहू को गाँठ में बांध लो कहीं नजर न लग जाय।

गोदावरी—देख द्रोपदी मुझ से छेड़ की तो सारी मस्ती निकाल दूंगी तेरी। जा उससे बात कर जो तेरे लच्छन नहीं जानता हो।

द्रोपदी—वाह रे मिजाज। सर पै ही चढ़ी जा रही हो, मैं हूँ कि चाची-चाची चिल्लाती चली जा रही हूँ। वाह रे नखरे। नौ-सौ चूहे खाय बिल्ली हज को चली।

गोदावरी—अब की से कहो, तो निकाल दूंगी सारी मस्ता (क्रोध में खड़ी हो जाती है।)

कटोरी—(गोदावरी का हाथ पकड़ते हुए) जाने भी दो चाची ?

गोदावरी—(कटोरी के शब्दों को दुहराती हुई) जाने भी दो की बच्ची (नन्दो से) चल……अपने घर चल। फिर कभी आई इधर तो पैर तोड़ के रख दूंगी (नन्दो चुपचाप खड़ी रहती है।)

सोनकली—(नन्दो से) अरी बहू, तूने अपने लच्छे तो बताए ही नहीं। ला दे तो देखूं कैसे हैं ?

गोदावरी—(लच्छों का नाम सुनकर प्रसन्न हो जाती है।) हां बता तो बहू, चाची को अपने लच्छे। देखें जीजी को प्रसन्द आते हैं कि नहीं।

(नन्दो लच्छे उतारकर सोनकली को देती है। सोनकली के हाथ से दो लच्छे लेकर द्रोपदी देखने लगती है। कटोरी भी सतृष्ण नेत्रों से लच्छों की ओर देखने लगती है।)

गोदावरी—बहू, तू चल, घर सूना पड़ा होगा। मैं अभी आती हूँ लच्छे भी लेती आऊँगी। (कुछ सोचती है तथा कहती है) अच्छा बहू, तुम ठहरो, लच्छे लेकर ही आना। मैं जरा एक जगह हो आऊँ (जाती है। सोनकली भी गोदावरी के साथ बाहर जाती है।)

द्रोपदी—अरे मामी, तुमने हरिज्ञान की बहू की साड़ी की बेल देखी है। कितनी सुन्दर है ? वो उसने खुद बुनी है। कह रही थी, हमें भी सिखा देगी। बोलती भी कितने प्यार से है, जी चाहता है वहीं बैठी रहूँ।

कटोरी—बड़ी सलोनी है। लोग उससे हँसते हैं तो मुस्करा के टाल जाती है। कल चलोगी, हम तीनों चुपचाप चलकर सीखेंगे।

सोनकली—(प्रवेश करते हुए) अरी बहू, कल दोपहर तुम भी हमारे घर आना। मैं हरिज्ञान की बहू को नौत आई हूँ। वो कल हमारे घर आएगी। बड़ी भली है पर……(मुस्कराने लगती है। उसी समय पर्दा गिरता है।)

★ ★ ★

(पृष्ठ २२ का शेष)

काव्यधारा वाले सब बन्धनों को तोड़कर आगे बढ़ना चाहते हैं; वे संख्या में परिमित हैं।

इस प्रकार आधुनिक मलयालम कविता में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। रूढ़िवादी तथा प्राचीन परम्परा का अनुसरण करने वाले 'नई कविता' को कविता नहीं मानते। उनके अनुसार वह शब्दों का खेल है उसमें न कोई अनुभूति है न अभिव्यक्ति का सशक्तता। वास्तविक बात यह है बँधी-बँधायी न होने के कारण जीवन की धारा के समान मलयालम की 'नई कविता' भी स्वच्छन्द-चारिणी बन गई हैं, परन्तु इस पर आंख फाड़ने की कोई जरूरत नहीं। मलयालम की नई कविता के विलास की संभावना अधिक है। 'कविता-समिति' मलयालम की नई कविता को प्रोत्साहन दे रही है। नए प्रयोगों को जारी रखने के लिए 'कविता समिति' प्रत्येक वर्ष की 'नई कविताओं, का संकलन करती जा रही है। यह नई कविता के विकास का वाग्दान है।

मलयालम कविता की नई प्रवृत्तियां

[प्रा. शाहजहां]

आधुनिक भारतीय भाषाएँ भारत की सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता तथा उसकी अखण्डता को उद्घोषित करने वाली अभिव्यंजना की विविध प्रणालियां हैं। उनमें भारतीय संस्कृति की आत्मा का स्पन्दन सुनाई पड़ता है और उनकी शब्द-मधुरिमा में एक ही सन्देश मुखरित हो उठता है जो समय और स्थान के भौतिक बन्धनों को तोड़कर समस्त मानवता की मानसिक एवं आत्मिक उन्नति की ओर इंगित करता है। युग की नव चेतना के अनुरूप आधुनिक भारतीय साहित्य में एक नई भाव-धारा का समावेश होता जा रहा है जिसकी प्रतिध्वनि केरल के जनहृदयों से निकलने वाली शब्द-तरंगों में सुनाई पड़ती है। मलयालम साहित्य की नई परम्परा प्रगतिशील भावधारा की अभिव्यंजना नई शैली में कर रही है। विशेष रूप में मलयालम कविता में नये प्रयोगों की भीड़ लगी है। यह निर्विवाद है कि मलयालम साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा है। परन्तु मलयालम काव्य की आत्मा बिल्कुल भारतीय है। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशैलियों से प्रेरणा प्राप्त कर एक नये पथ की सृष्टि करती हुई वह आगे बढ़ रही है।

आधुनिक मलयालम कविता का आरम्भ कुमारनाशान् वल्लत्तोल् उल्लूर जैसे महाकवियों के समय से मानना चाहिए। इन कवियों ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर मलयालम कविता में नई विधाओं को अवतरित किया। खण्डकाव्य, विलाप-काव्य, गीत-काव्य आदि काव्यांगों का प्रयोग मलयालम में सब से पहले इन लोगों ने किया था। ये कवि किसी वाद-विषय को लेकर नहीं चले। उनका क्षेत्र व्यापक था, मानव-हृदय की गहनतम अनुभूतियों की अभिव्यंजना करना उनका लक्ष्य था। अतः इस समय की रचनाएँ उच्चकोटि की बनीं। इसके उपरान्त मलयालम कविता में कुछ नये कवियों का आविर्भाव हुआ। कल्पना के अलौकिक जगत् में बैठकर जीवन और प्रेम की रंगीनियों की मनोमुग्ध-कारिणी अभिव्यंजना प्रस्तुत करना इसका उद्देश्य था। यहां से स्वच्छन्दतावाद का आरम्भ हुआ। इन स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रमुख चंगुबुल कृष्णपिल्लै, इड़प्पल्लि राघवनपिल्लै आदि थे। चंगुबुल प्रमुख रूप में प्रेम और प्रकृति के गायक थे। उनके भाव प्रधान थे। उनके भावप्रधान गीतों में एक ऐसी ऐन्द्रजनित शक्ति है जो मन को भाव-विभोर कर देती है। स्वच्छन्दतावाद के उपरान्त मलयालम में प्रतीकवादी कविताओं का प्रचलन हुआ। प्रतीकवाद के प्रणेता श्री शंकर कुरुप थे। इनकी कविताओं में रवीन्द्र की गीतांजलि का प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रतीकवादी कविताओं में रहस्यवादी छाया भी देखने को मिलती है। इसी समय कुछ ऐसे कवि हुए जिन्होंने भारतीय संस्कृति का जी भर कर गान किया। इनमें प्रमुख थे वेलिक्कुलम गोपाल कुरुप।

स्वच्छन्दतावादी तथा प्रतीकत्ववादी कविता के परिसमाप्त हो जाने पर प्रगतिवादी कविता का उदय हुआ। मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा से कवि-गण प्रभावित हुए। ठीक इसी समय स्वातंत्र्य तृष्णा भी मलयालम कविता में जागने लगी। पुरातन रूढिवादी सभ्यता के ध्वंसावशेषों को अतीत के अगाध गर्त में दफनाकर नई सभ्यता एवं नये समाज की सृष्टि की सुनहरी अभिलाषा कवि के हृदय में फूट पड़ी। कवि ऐसी तान सुनाने लगे जिससे उथल-पुथल मचने लगी। मलयालम कविता का यह प्रगतिवादी युग का विप्लवकारी दृष्टिकोण हिन्दी के प्रगतिवादी युग की भावधारा से साम्य रखता है। इन प्रगतिवादी कवियों में वयलार राम वर्मा,

ओ० एन० वी० कुरुप, तिरुनल्लूर करुणाकरन् आदि प्रमुख हैं। प्रगतिवादी युग की भौतिकवादी कविता का बहुत शीघ्र अन्त हो गया। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् जनता नये राष्ट्र-निर्माण की प्रवृत्ति में संलग्न हुई थी। अब कवियों के पास समय था अतः उन्होंने फिर से मनुष्य की मौलिक भावनाओं का चित्रण करना आरम्भ किया। इन कवियों में पाला-नारायणन नायर, वेल्लायणि अर्जुनन्, पी० कुंजिरामन नायर, वैलोप्पिल्लि नाल चाट्टु बालामणियम्मा, एम० पी० अप्पन, अयिरूर माधवन पिल्लै आदि आते हैं। इनकी कविताओं में जीवन का स्पन्दन है, अनुभूतियों की गहनता और मानवता का सन्देश है।

अब मलयालम कविता की आधुनिकतम प्रवृत्तियों पर विचार करना है। आज की मलयालम कविता "इसरा पोण्ड" डी० एस० इलियट, स्टीफन स्पेन्डर आदि अंग्रेजी कवियों से अधिक प्रभावित है। आज की कविता हृदय की अपेक्षा बुद्धि की वस्तु बनती जा रही है। हृदय से बुद्धि की ओर बढ़ने की कविता की यह प्रवृत्ति मलयालम में भी दर्शित होती है।

आजकल मलयालम की नई कविता में प्रभाववाद की प्रतिष्ठा होती जा रही है। इलियट के 'पी० कोरुस टेयिल' वेस्ट लांड और स्पेंडर की 'एक्सप्रेस' जैसी कविताओं का स्पष्ट प्रभाव मलयालम कविता में दृष्टिगत होता है। प्रभाववादी कविताओं में विच्छिन्न भावधारा की अभिव्यंजना होती है, कवि के अन्तर्तम में जो भी असम्बद्ध भावनाएँ जन्म लेती है, उन्हीं की अभिव्यक्ति की जाती है। मलयालम में सन् १९५९ से प्रभाववादी कविता का आरम्भ हो चुका था। श्री वेल्लायणि अर्जुनन् की 'ऐन्द्रजालिलनुम माडप्रातुम्' (ऐन्द्रजालिक और कपोत) नाम की कविता में प्रभाववाद की छाया प्राप्त होती है। परन्तु काव्य क्षेत्र की एक विधा के रूप में इसका आविष्कार करने का श्रेय श्री एन० वी० कृष्णवारियर को प्राप्त है। कृष्णवारियर के 'नींडक वितकल्' (लम्बी कविताएँ) 'कुरे कूडे नीड कवितकल' (और अधिक लम्बी कविताएँ) आदि काव्य-संकलन में जो कविताएं उपलब्ध होती हैं, वह इस प्रकार की हैं। वास्तव में यह एक 'प्रयोग' मात्र था। वारियर की 'मद्रास की एक सन्ध्या' शीर्षक कविता में विच्छिन्न भावों की सशक्त अभिव्यंजना हुई है। एक प्रभावोत्पादक वातावरण की सृष्टि कर कुछ वास्तविक चित्रों का अंकन कर हृदय पर गहरे प्रभाव की सृष्टि करना कवि का लक्ष्य है। प्रभाववादी कविता करने वाले अन्य कवियों में अय्यप्प पणिक्कर, अप्पन तच्चेत, अविकत्तम, चेरियान के चेरियान, उलप्पमण्ण आदि प्रमुख हैं।

मलयालम कविता में एक दूसरी प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। अतियथार्थवाद के नाम से यह जानी जाती है। अय्यप्प पणिकर की 'कुरुक्षेत्रम्' नामक कविता इसका उदाहरण है। जीवन के विभिन्न पक्षों का बढ़ाया-चढ़ाया हुआ रूप ही इन कविताओं का प्रतिपादन विषय है। यह केवल प्रयोग के रूप में हो रहा है। इसकी लोकप्रियता के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। वैसे तो आलोचकों ने इन 'नयी कविताओं' की कटु आलोचना की है। फिर भी हिन्दी के 'प्रयोगवादियों' के समान मलयालम के नए कवि भी दिल थाम कर आगे बढ़ रहे हैं।

मलयालम नई कविता की एक तीसरी प्रवृत्ति के रूप में 'अतिमानवतावाद' बताया जा सकता है। अतिमानवतावादी कविताओं में मानव-संवेदनाओं की गहरी एवं मार्मिक अभिव्यंजना प्रस्तुत की जाती है। श्रीमती सुगतकुमारी की 'मुत्तु च्चिप्पि' (मोती की सीपी) इसका उत्तम उदाहरण है। अतिमानवतावाद भौतिकता के प्रति संघर्षमयी भावना को लेकर चलता है। यह मलयालम की नई काव्यधारा के विकास का प्रतीक है। इतनी प्रगति होने पर भी मलयालम में स्वच्छन्द छन्द में रचना करने की प्रथा अधिक प्रचलित नहीं हो पाई। अब भी अधिकतर कवि छन्दों के बन्धनों में जकड़े हुए हैं। परन्तु नई

(शेष पृष्ठ २० पर)

आधुनिक हिन्दी कविता में शोषित-वर्ग (२)

[प्रा. रवीन्द्रप्रकाश कुलश्रेष्ठ]

६. भिक्षुक—भिक्षुक समाज की आर्थिक परवशता का प्रतीक है। सड़कों, गलियों, नगरों और देव-स्थानों में इन दरिद्रनारायण के दर्शन सहज ही में किए जा सकते हैं। भूख से उत्पीडित यह वर्ग दाने-दाने, पैसे-पैसे को दूसरों की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के लिए दर-दर हाथ फैलाता है, वस्त्रों के अभाव में नंगा ही शीत-ताप-वर्षा को सहन करता है और आवास के नाम पर सड़कों पर सो जाता है। समाज की आर्थिक विषमता ने इन्हें कभी पनपने नहीं दिया। तपती धूप में सड़कों पर भटकते भिक्षुक को देखकर महाप्राण निराला के हृदय से एक चीत्कार उठी—

वह आता
दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता
पेट पीठ मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक।

७. अनाथ—इसी वर्ग से मिलता-जुलता एक और वर्ग है 'अनाथ'। संरक्षण के अभाव में पले ये बालक-बालिकाएँ, समाज के शोषण को कालकूट के समान पी जाते हैं और माँ-बाप, प्रियजन, घर-बार को स्वप्न ही समझ रौरव-नरक का जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी दशा देखकर आज की प्रगतिवादी कविता का शंखनाद फूंकने वाले यशस्वी कवि शिवमंगलसिंह 'सुमन' की अभिव्यक्ति का विस्फोट देखिए—

'फटता है क्यों आकाश नहीं,
सुनकर उनकी कर्कश कराह।
कुत्ते से बदतर मौत मिली,
यह स्वदेश की गर्व छाह ॥

इस प्रकार शोषितवर्ग के अनेक रूपों में प्रकट दलित मानव ने समय-समय पर संवेदनशील कवि की सहानुभूति और वाणी का मुखर वरदान पाया है और यह स्वर बार-बार समाज के ठेकेदारों को चेतावनी दे रहा है कि शीघ्र ही यदि इनको गले लगाकर इनकी आर्थिक और सामाजिक उत्पीडनाओं को दूर न किया गया तो विद्रोह का तूफान समाज की अर्थव्यवस्था का तख्ता पलट देगा। शंकर शैलेन्द्र के गर्जन में—

हम मौत के जबड़े तोड़ेंगे, एका हथियार हमारा है।
हर जोर जुल्म की टक्कर में, हड़ताल हमारा नारा है ॥

और नागार्जुन के शब्दों में—

खेत-मजूरों और किसानों में जमीन बँट जाएगी।
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेमारी मंडराएगी ॥

इन दलित, पीडित, उपेक्षित और शोषित मानवों की आवाज के साथ-साथ नए युग के नए कवि की सशक्त वाणी होगी और केदारनाथ अग्रवाल के शब्दों में उसकी लेखनी क्रान्ति के गीत लिखेगी—

काव्य में रतिराग की इति हो गई।
लेखनी अब क्रान्ति की असि हो गई ॥

यह युग शोषित को अपनी आवाज उठाने और सहानुभूति पा लेने का युग है। युग-युग से पीडित मानवता का यह उपेक्षित पुत्र आज समाज से, समाज के ठेकेदारों से अपने प्रश्न का उत्तर मांग रहा है और उसकी सहानुभूति में इस युग का नया कवि अपनी पूरी आवाज में शोषित-वर्ग के प्रत्येक पक्ष को उघाड़-उघाड़ कर समाज के सामने रख रहा है और उसकी अभिव्यक्ति अनेक रंग और रूपों में व्यक्त हुई है।

४. शोषित-वर्ग—

पिछली तीन दशाब्दियों में हिन्दी साहित्य में नई कविता के नए प्रभात में जितने काव्य-सुमन विकसित हुए, उन सब में प्रधानता शोषितवर्ग-केन्द्रित कविताओं की रही है। किसी ने उनकी जीवनचर्या को देखा, परखा, किसी ने उनके अभावों को, परवशताओं को। कुछ ने पूंजीवाद को चुनौती दी है तो कुछ आशावादी हैं कि एक दिन मेहनतकश

का भी राज आएगा। ये सब कविताएँ एक वर्ग में आती हैं, जिसे वर्ग-साहित्य नाम दिया गया है।

"शोषित वर्ग के जीवन-सत्य हैं—भूख, उत्पीडन, गुलामी, दोहन जिससे मुक्ति पाना उसके लिए अनिवार्य होता है, तभी वह क्रान्ति का सहारा लेता है। यही वर्ग-साहित्य का आधार और वास्तविकता है, जो युग की परिस्थितियों के अनुसार प्रत्येक वर्ग-समाज के युग में साहित्य में प्रकट हुआ है। वर्ग-साहित्य की प्रयोजनशीलता भी यही रही है और है[1]।

शोषितवर्ग-केन्द्रित कविताएँ मुख्य रूप से निम्न विषयों पर लिखी गई हैं। उनका वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है—

१. जीवनचर्या, २. अभाव, ३. संघर्ष की उत्प्रेरणा, ४. नई भोर की आशाएँ।

(१) जीवनचर्या—इस वर्ग साहित्य के प्रधान पात्र श्रमिक की वन्दना में कवियों ने पद्य प्रसून अर्पित किए हैं। चिर आदर के पात्र देवताओं से हट कर कवियों की वाणी में एक साधारण मानव मूर्त्त हो उठा। यह साधारण मानव, यह दलित, शोषित किसान-मजूर अपनी रूढियों और परम्पराओं से अपना नाता जोड़े हुए है। कविवर पन्त को किसान के इसी प्रतिक्रियावादी रूप के दर्शन हुए हैं—

युग-युग का वह भारवाह, आकटि नतमस्तक।
निखिल सभ्य संसार पीठ का, उसके स्फोटक॥
वज्र मूढ, जडभूत, हठी, वृष बांधव कर्षक।
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढियों का चिर रक्षक॥
—पन्त (कृषक युगवाणी)

इस नए युग का यह आदरणीय मानव कितना विशाल, कितना पवित्र है। यह सभी प्रकार से शोषित होकर भी अपनी संस्कृति का प्रतीक है—

वह पवित्र है, वह जग के कर्दम से पोषित।
वह निर्माता, श्रेणि, वर्ग धन, बल से शोषित॥
—पन्त (श्रमजीवी युगवाणी)

इतना समर्थ एवं पवित्र मानव भी समाज के शोषण से पीडित है। उसका जीवन एक पहेली है। उसका शरीर, उसका आवास, उसकी गृह-सामग्री कितनी दयनीय है? प्रकृति ही उसका संरक्षण करती है—

जराजीर्ण, वैभव विहीन है उसकी पर्ण कुटीर।
किन्तु निरत उसकी सेवा में रहता नित्य समीर॥
जब मध्याह्न काल में, रवि का होता उग्र प्रताप।
तब उसका श्रम हर लेती तरु छाया निष्पाप॥
—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

इस सशक्त किन्तु मजबूर मानव का मांसल शरीर किसी भी कठिन परिश्रम के लिए तैयार है। उसकी भुजाएँ भौतिक जगत् की कठोरताओं को झेलने में सक्षम हैं। उसकी भुजाएँ ही नए निर्माण करती हैं, धरती से सोना उगाती हैं—

कंकड़ पत्थर से लड़ करके खुरपी से और कुदाली से।
इस बंजर को उर्वर कर चलता ही चाल निराली से॥
मजदूर! भुजाएँ वे तेरी, मजदूर! शक्ति तेरी महान्।
घूमा करता तू महादेव, सिर पर लेकर आसमान॥
घूमा करती नंगी दुनिया मिलता न अन्न भूखों मरती।
मजदूर! भुजाएँ जो तेरी मिट्टी से युद्ध नहीं करतीं॥
—सोहनलाल द्विवेदी

दैन्य और पीडा की इस मूर्त्ति को देखकर किस पाषाण का हृदय न द्रवित हो जाएगा? भावुक कवि तो राह चलते ही उसे अपनी अनुभूति का विषय बना लेता है। तपती दुपहरी में इलाहाबाद की सड़कों पर पत्थर तोड़ती हुई मजदूरनी की पीडा का चित्रण इन पंक्तियों में साकार हो उठा है—

'वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, बंधा यौवन
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार।' —निराला

इस शोषित श्रमिकवर्ग का जीवन स्वयं पीडाओं

१. आज के कवि—ललितमोहन अवस्थी।

की एक कहानी है। प्रातः सूर्योदय से बीती रात तक वे जीवन की विषमता में दो पैसे कमाने के लिए कितना कठोर परिश्रम करते हैं और कितना घृणित जीवन बिताते हैं, यह प्रत्यक्ष देखने की वस्तु है। वे सारे दिन कड़ी मेहनत में अपना शरीर तोड़कर दो रोटी खा या अध-भूखे ही सड़ी-गली गलियों में ही सो जाते हैं। यह दृश्य भी आज के नए और प्रगतिवादी कवि की दृष्टि से ओझल नहीं है—

'हम सब मजदूर
बड़ी कड़ी मेहनत करते हैं!
भोंपू के बजते ही
भिसारे ही फाटक मे घुसते हैं
काम कर आधा दिन
चूर हो, हड्डी से, पसली से, मुरदा हो
फिर सांस भर छाती में
सूरज के डूबे तक
पंजों को, पांवों को, पीठ को, पेट को
कुत्ते से बदतर हम, घिसते हैं रोटी के दीवाने
पाते हैं छः आने—दस आने

—केदारनाथ अग्रवाल

जली अध-जली रोटियों को पेट में डाल नंगी धरती पर सोने वाला धरा का पुत्र जब श्रम पर उतरता है तो शक्ति साकार हो उठती है। उसकी, कार्य में ईमानदारी, लगन और आस्था है। उसके हाथ यन्त्र बन जाते हैं और भौतिक विषमताओं पर करारी चोट करते हैं। कार्य में रत एक श्रमिक का सजीव चित्रण देखिए—

हाथ हैं दोनों सधे से, गीत प्राणों के रुँधे से।
और उसकी मूठ में विश्वास, जीवन के बंधे से॥
धधकती धरणि धर-धर, उगलता अंगार अम्बर।
भुन रहे तलुवे तपस्वी-सा, खड़ा वह आज तन कर॥
शून्य-सा मन, चूर है तन,
पर न जाता वार खाली।
चल रही उसकी कुदाली॥

—शिवमंगलसिंह 'सुमन'

(२) अभाव—इन दीन-दुःखी पीड़ित मानवों का जीवन, अभावों का एक पूरा अध्याय है। अभाव जैसे इनमें रम गया है। न खाने को रोटी, न पहनने को वस्त्र, न रहने को सन्तोषजनक घर। नाटकीय जीवन बिताने वाले ये मानव सभ्यता के विकास पर कलंक हैं। एक ओर उठती हुई मिलें और मीनारें, दूसरी ओर ये असहाय, निरुपाय। भाड़े की कोठरी को अपना घर कहने में भी आज का शोषित मानव कांप उठता है—

क्या कहा कि यह घर मेरा है
मत घर की याद दिलाओ तुम
अपना तो काला डेरा है
कलरव, बरसात, हवा ठण्डी
मीठे दाने, खारे मोती
सब कुछ ले, लौटाया न कभी
घर वाला महज लुटेरा है।

—माखनलाल चतुर्वेदी

अपना सर्वस्व निछावर करने पर भी भौतिक और आत्मिक सुख का अभाव ही उसके पल्ले पड़ता है। उसका जीवन कटुताओं का शिकार है जाताएँ और कुण्ठाएँ उसकी आकांक्षाओं का गला घोंट देती हैं। मशीनों के धुएँ में घुट रहे एक श्रमिक की आत्माभिव्यक्ति सुनिए—

कुछ रूखे सूखे टुकड़ों पर,
बच्चों का गला हलाक किया।
बीबी की आशा कुचल मसल,
जीवन यों ही बेबाक किया॥
क्या किया सुनहला-सा जीवन,
सूखे टुकड़ों पर दे डाला।
कुछ पैसों पर आशाएँ दीं,
मशीनों की पी-पी ज्वाला॥
वे आज स्वर्ग के स्वाद चाख,
वैभव गिरि चढ़ छूते तारे।
मैं फांक रहा हूँ अभी धूल,
और चाट रहा आंसू खारे॥ —उदयशंकर भट्ट

अभावों के अभिशाप से त्रस्त इनका जीवन, पशुओं के जीवन से भी हीनतर है। इनके जीवन का कोई अस्तित्व नहीं, मानो वे नगण्य प्राणी हैं। उन्हें जीना अपराध है। जन्म लेकर सांस लेने में भी

अभाव ही इनके भाग्य में लिखा है। शोषित की दयनीय दशा इन पंक्तियों में मूर्त हो उठी है—

पशु बन कर नर पिस रहे,
जहाँ नारियाँ जन रहीं गुलाम।
पैदा होना फिर मर जाना,
बस यह लोगों का एक काम॥
बच्चे क्षुधाग्रस्त बिलबिला रहे,
मानो वे मोरी के कीड़े।
वे निपट घिनोने महापतित,
बोने कुरूप, टेढ़े मेढ़े॥

—भगवतीचरण वर्मा

इनके जीवन की जर्जर-गाड़ी, उसी प्रकार झटके खाती आगे बढ़ती है। विवशता ही उनके सन्तोष का साधन है। उनकी सारी भावनाएँ कुण्ठित हो जाती हैं, जब स्नेह से पोष्य पत्नी और बच्चे भूखे और नंगे जीवन की विषमताओं को गले लगाते हैं। इसी प्रकार का एक अन्य चित्र देखिए—

पर इस प्रदेश में जहाँ नहीं
उच्छ्वास, भावनाएँ, आहें
ये भूखे, अधखाए किसान
भर रहे जहाँ सूखी आहें
नंगे बच्चे चिथड़े पहने
माताएँ जर्जर डोल रहीं
है जहाँ विवशता नृत्य कर रही
धूल उड़ाती हैं राहें॥

—भगवतीचरण वर्मा (भैंसा गाड़ी)

(३) संघर्ष की उत्प्रेरणा—शोषित-वर्ग की दशा तब और दयनीय हो जाती है जब एक ओर वैभव-विलास में अनपेक्षित दुरुपयोग होता है और दूसरी ओर एक-एक दाने के लिए मानव-पुत्र तरसता है। एक व्यक्ति की पीडा दूसरे के हास-विलास का विषय बन जाती है तो विप्लव और क्रान्ति का समर्थक कवि गरज उठता है—

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं॥
युवती की लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं।
मालिक जब तेल फुलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर'

तुलना की तुला को तौला जाय तो लगेगा कि मानवों का एक वर्ग संसार के सब वरदानों का उपभोग करते हैं, जबकि दूसरे को जीवन की अनिवार्य वस्तुएँ भी स्वप्न बन जाती हैं। समानता के इस युग में यह विषमता क्यों, यह असमता क्यों? दोनों वर्गों की तुलना देखिए—

एक ओर समृद्धि थिरकती, पास सिसकती है कंगाली।
एक देह पर एक न चिथड़ा, एक स्वर्ग के गहनों वाली॥
उधर खड़े हैं रम्य महल वे, आसमान को छूने वाले।
और बगल में खड़ी झोंपड़ी, जिसके छप्पर चूने वाले॥

—डा० सुधीन्द्र

जब यह विषमता कवि के कोमल हृदय को छूती है तो वह रो उठता है। आज के प्रगतिशील कवि ने इनको बहुत निकट से देखा है और अपनी अभिव्यक्ति से सामाजिक अर्थव्यवस्था को चुनौती दी है—

इस ओर खानाबदोश मेहनतकश मानव की पांतें।
फुटपाथों की चट्टानों पर जो काट रही अपनी रातें॥

—सुमन (बेघरबार)

और उसी परम्परा के एक और सशक्त कवि की वाणी का विस्फोट देखिए—

भूखे शिशुओं की चीत्कार सोख रहीं नयनों का पानी।
सूखी निचुड़ी चुसी हड्डियाँ करतीं विप्लव की अगवानी॥
मुट्ठी भर दानों की तृष्णा महाक्रान्ति की आग लगाती।
आज क्षुधा इन कंगालों की, सोए ज्वालामुखी जगाती॥

—अंचल (किरण बेला)

एक मानव का मूल्य ही क्या जब वह चन्द पैसों के लिए बिक जाता है, और यह उसकी विवशता ही है। यह इन शब्दों से सिद्ध होता है—

अनभिज्ञ बाँह के बल से
अनजान संगठन-बल से
ये मूक मूढ़ न निर्धन
दुनिया के बाजारों में
कौड़ी कौड़ी को बिकते॥

—शंकर शैलेन्द्र

इस प्रकार के अभावों ने नई कविता को एक दृष्टि दी, एक आवाज दी। संवेदनशील कवि इन अभावों की यथार्थता से अछूता न रह सका। वह एक ओर इस नग्न सत्य को समाज के सामने रखने को

तैयार हुआ, दूसरी ओर इस उपेक्षित वर्ग को गरीबी, भूख और नंगेपन से मुक्ति दिलाने के लिए संघर्ष की आवाज उठाने में भी पीछे नहीं रहा। आज की नई कविता इस आस्था से पोषित है और संघर्ष की उत्प्रेरणाओं से प्रेरित भी।

"साहित्य के वस्तु-संगठन में यथार्थवादी दृष्टिकोण ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया। नया सूत्र आशावाद का पिरोया। इस दृढ़ आस्था ने आत्मविश्वास, कर्मशक्ति और संघर्ष की भावना उत्पन्न की है[1]।"

यह संघर्ष की आवाज प्रगतिशील कवि की अभिव्यक्ति का प्रधान माध्यम बन गई। वह उन जर्जर परम्पराओं को उखाड़ फेंकना चाहता है। कवि चिर उपेक्षित मानव को उसकी अपार शक्ति के दर्शन कराता है और उसे संघर्ष के लिए उसके हृदय में तूफान उठा देता है। वह क्रान्ति का मन्त्र फूक कर शोषित को बगावत के लिए आह्वान करता है—

ओ भिखमंगे, ओ पतित,
तू ओ मजलूम, अरे चिर दोहित।
तू अखण्ड भण्डार शक्ति का,
जाग अरे निद्रा सम्मोहित॥
प्राणों को तड़पाने वाली
हुंकारों से जल थल भर दे।
अनाचार के अम्बारों में अपना
ज्वलित फलीता धर दे॥

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (जूठे पत्ते)

कवि उसकी शक्ति पर आश्वस्त है। पीड़ित मानव अपने महत्त्व को जान गया है और अपने शोषण का रहस्य भी। तभी तो कवि कह उठता है—

शक्ति पर सोचो जरा तो
खोदता सारी धरा जो
बाहुबल से कर रहा है
इस धरणि को उर्वरा जो
क्या गया वह जान,
शोषक वर्ग की करतूत काली
चल रही उसकी कुदाली॥

—शिवमंगलसिंह 'सुमन'

कवि इस शोषित प्राणी से पूरी शक्ति के साथ संघर्ष के लिए कहता है। वह चाहता है कि इस पीड़ित मानव को इस दशा तक पहुँचाने वाली स्वार्थी पूंजीवादी दुनिया से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर ले, क्योंकि वह स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है, अब अधिक दिन शोषक के बन्धन स्वीकार नहीं करेगा, इसीलिए उसका समर्थक कवि यह कहकर उसके पक्ष की पुष्टि करता है—

यह धरती उस किसान की
जो बैलों के कन्धों पर
बरसात घाम में
जुआ भाग्य का रख देता है
खून चाटती हुई वायु में

और इसीलिए वह कह उठता है—

मार हथौड़ा
कर कर चोट
लोहू और पसीने से ही
बन्धन और गुलामी तोड़
दुनिया की जित्ती ताकत हो
जल्दी सब से नाता तोड़।

—केदारनाथ अग्रवाल

वेदनाओं, अभावों, परवशताओं का शिकार यह शोषित-वर्ग आज इतना सक्षम हो गया है कि पीड़ाएँ स्वयं उससे दूर भागती हैं। समाज उसका महत्त्व स्वीकार करने लगा है। उसकी सृजनशीलता और महानता के आगे दुःख और विवशता माथा टेक देते हैं—

श्रमिकों के पीछे
दुनियाँ चलती है;
जैसे पृथ्वी के पीछे चाँद
गगन में मण्डराया करता है।
श्रमिकों से आँसू, पीडा, क्रन्दन
दुःख अभावों का जीवन
घबराया करता है
श्रमिकों से
बेचैनी और बरबादी का अजगर
आँख बचाया करता है। —महेन्द्र भटनागर

---

१. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य। —रामेश्वर शर्मा

आज का श्रमिक वर्ग उठ खड़ा हुआ है। यह शोषित जाग गया है और अपने भाग्य का निपटारा स्वयं करने के लिए मचल उठा है—

उठे मजदूर ले करके हथौड़ा हाथ में अपने
कि जिससे काल को अपने मुताबिक ढाल वे पाएँ।
उठे हैं सब कृषक हँसिया, कुदाली फावड़ा लेकर,
कि अपने खेत की मिट्टी से फिर सोना उगा पाएँ॥
—दुर्गाप्रसाद झाला

(४) नई भोर की आशाएँ—कवि का जीवन उसकी आस्था है। शोषित-वर्ग का समर्थक प्रगतिशील कवि भी निराशावादी नहीं है। उसे निश्चय है यह संघर्ष अवश्य तूफान लाएगा। काली घटाओं से घिरी अमा का कभी अन्त होगा और फिर स्वर्णिम किरणें लिए मुस्कराता प्रभात आएगा। तब सर्वहारा श्रमिक अर्थ का गुलाम न रहेगा। वह अपनी मिल का मालिक होगा, अपने खेत का भूमिधर होगा। यही आशा उसे बलवती बनाती है। शैलेन्द्र के शब्दों से 'वह सुबह कभी तो आएगी'। उस सुबह को पाने के लिए श्रमिक संघर्ष कर रहा है और विजयश्री उसी को वरण करेगी, यह दृढ निश्चय है। क्योंकि—

लड़ रहा मज़दूर बाजी हाथ है।
ज़िन्दगी मरती नहीं विश्वास है॥

इस सर्वहारा शोषित की शक्ति जनता की शक्ति है। कवि इस शक्ति को संघर्ष की वीणा का स्वर देकर उभार रहा है और निश्चय है कि एक दिन इस भौतिक जगत् में इनका अपना संसार होगा, सुख होगा, समृद्धि होगी। इसीलिए कवि गा उठता है—

हे जन-शक्ति महान् जागो और जगाओ।
हम पृथ्वी स्वर्ग बनाएँगे हम दुनिया नई बसाएँगे।
हम महाजागरण गर्जन कर अविराम चेतना लाएँगे।
हे मजदूर किसान
जागो और जगाओ। —रांगेय राघव

कवि की आशा बहुत बलवती है। उसके स्वप्नों में स्वर्णिम कल्पनाओं का समावेश है। वह चाहता है कि मजदूर और किसान तथा अन्य शोषित अब अधिक अभावों के शाप में न फंस जाए, इसीलिए वह प्रार्थना कर उठता है—

अंकुर फूटे रेत माँ
सोना बरसे रेत माँ
बैल पियासा, भूखी है गैया
फुदके ना आंगन में सोन चिरैया
फसल बुवैया की उठे मड़ैया
मिट्टी को चूनर धानी दो
ओ मेरे भैया पानी दो। —नीरज

५. स्वातन्त्र्योत्तर कविता में प्रगति—

इस प्रकार आधुनिक कविता, शोषित-वर्ग पर आधारित भावों, अनुभावों की क्रमबद्ध माला है, जिसमें रंग-रंग के मोती पिरोए गए हैं। यह भाव-धारा मुख्यतः १९३५ से आरम्भ हुई और आज भी निरन्तर प्रगति की ओर उन्मुख है। विगत तीन दशाब्दियों के इस युग को दो बड़े भागों में सहज ही बाँटा जा सकता है। एक तो स्वतन्त्रता पूर्व की वर्गकेन्द्रित कविता और दूसरी स्वातन्त्र्योतर वर्गाधारित कविता। स्वतन्त्रता से पूर्व इस कविता की विषयवस्तु गुलामी से उत्पन्न, मूक दमन और शासन के प्रति संघर्ष की भावना थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् निश्चय ही इसमें मोड़ आना स्वाभाविक था। क्योंकि स्वतन्त्रता के पश्चात् कई समस्याएँ स्वयं ही समाप्त हो गई। प्राचीन का अवसान नवीन को जन्म देता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् नई वर्ग की नई समस्याएँ। अब वर्ग-संघर्ष और सम्प्रदायवाद से पीडित मानव की नई कल्पना उभरी। गरीब और अमीर के भेद-भाव की खाई जो पहले बहुत गहरी और चौड़ी थी, वह संकरी और ऊँची हो रही है, यद्यपि अभी वह पट नहीं पाई। इस प्रकार समाजवाद की रूप-रेखा स्पष्ट होती जा रही है। आज का कवि उस युग की कल्पना कर रहा है, जब सबके समान अधिकार होंगे और आर्थिक समता का उपभोग होगा।

★ ★ ★

हरयाणवी लोक-गीतों में कन्या-विदाई

[श्री सोमदत्त बंसल]

हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्र का सीमान्त प्रदेश 'हरियाणा' प्राचीन समय में आर्य सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र रहा है। यह प्रदेश मनुस्मृति में वर्णित मध्यदेश के प्रचुर भाग को अपने में समेटे हुए है। इसी प्रदेश को पाण्डवों ने कौरवों से प्राप्त किया था और इसी प्रदेश में इन्द्रप्रस्थ नामक नगरी बसाई थी। इसी प्रदेश के कुरुक्षेत्र नामक स्थान पर महाभारत का युद्ध हुआ तथा भगवान् कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया। इसी प्रदेश का थानेसर नगर अन्तिम हिन्दू सम्राट् हर्षवर्धन की राजधानी रहा। इसी प्रदेश में पानीपत का इतिहासप्रसिद्ध नगर है। प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की गरिमा से सम्पन्न इस प्रदेश के लोक-गीतों में कन्या-विदाई के मार्मिक प्रसंग की एक झलक प्रस्तुत की जाती है।

हरियाणा प्रदेश की कन्या के विवाह का उल्लास-पूर्ण वातावरण उसकी विदाई की बेला में एक ऐसे करुणापूर्ण दृश्य में परिवर्तित हो जाता है जिसके प्रभाववश संसार से विरक्त कण्व जैसे मुनियों की आंखों में भी आंसू आ जाते हैं। कन्या के माता-पिता और सगे-सम्बन्धियों की तो बात ही क्या घर के पशु-पक्षी भी निस्तब्ध से रह जाते हैं। इस अवसर पर कोमलहृदय स्त्रियों के हृदय की करुणा आंसुओं के माध्यम से बाहर निकल सकने में अपने-आपको असफल पाकर बरबस गीतों के रूप में फूटती हुई वातावरण को और भी करुण बना देती है।

यह ठीक है कि विवाह के उपरान्त कन्या का अपने पिता के घर पर कोई अधिकार नहीं रहता, परन्तु पिता के घर से विदा होने से पहले सभी यथा-शक्ति लाडो को प्रेमोपहार देते हैं। उसे भोजन, वस्त्रादि सभी प्रकार की सामग्री से विभूषित किया जाता है। 'लाडो' की सहेलियां लाडो से कहती हैं—

"अपणी बहाण का करूँ
चूरमा करदयूं मकर कसार।
अपणी बहाण का दाम्मण
सिमायदूँ लादयूं घोट्यां की लार।"

'लाडो' का मामा अपनी गोद में उठाकर लाडो को रथ में बिठाता है। लाडो की परी जैसी सखी-सहेलियाँ परवश अवस्था में अपनी मन्द गम्भीर विरहव्याकुल ध्वनि से लाडो को विदा होते देखकर उससे पूछती हैं—

"परियण की लाडो परियण छोड कहां चली।"

इस सीधे-सादे प्रश्न में लाडो की साथणों की कितनी कातरता और परवशता छिपी है। लाडो तो रथ में बैठी सिसकियां भर रही है। उसे प्रश्न का उत्तर देने की फुरसत ही कहाँ है। लाडो की साथणों के गाए गीत में ही लाडो की ओर से उत्तर मिलता है—

"मेरे दादा ने दीने थे बोल, साजन घर मैं चली।"

लाडो का दादा द्वारा वाग्दान किया गया था। अपने दादा के प्रण को पूरा करने के लिए ही वह पराई हो रही है। लाडो पराई तो हो गई परन्तु माता-पिता, बहन-भाइयों, सगे-सम्बन्धियों तथा सखी-सहेलियों का मोह छोड़ना उसके बस की बात नहीं। रथ में बिठाए जाने पर भी वह उन सबको छोड़कर जाना नहीं चाहती। वह चाहती है कि उसका पिता उसे अपने ही घर रहने दे। इसलिए वह अपनी उपयोगिता बताती हुई अपने बाबल से कहती है—

'तेरा गोबर सूखे हो बाबल तेरे ठाणां में।
तेरा पनघट सूना हो बाबल तेरी धीये बिना।"

बाबल विवश है। वह अपनी लाडो को पाल-पोस

कर अपने हाथों से पराये हाथों में सौंप चुका है। अब अपनी लाडो पर उस का कुछ अधिकार नहीं। वह उसे अपने घर में नहीं रख सकता। वह अपने हृदय पर पत्थर रख कर लाडो को विदा करने के लिए कहता है—

"म्हारै चूहड़ी भतेरी हे धीअड़ घर जा आपणे।
म्हारी बहुअड़ भरैंगी पानी हे धीअड़ घर जा आपणे।"

बाबल ने गोबर सूखने और पनघट सूना रहने का समाधान कर दिया। परन्तु लाडो का दिल तो जाने को करता ही नहीं। वह बहाना करती है—

"मेरा डोला अटक्या बाबल तेरे बागां मे।"

बाबल को उत्तर देना पड़ता है—

"दो पेड़ कटादयां हे धीअड़ घर जा आपणे।"

लाडो के बाबल के इस उत्तर में लाडो को विदा करने की इच्छा नहीं, बल्कि उसकी परवशता छिपी है। जब लाडो के लिए कोई चारा नहीं रहता तब वह अपने जन्मदाता को कहती है—

"यो घर ले मेरे जामी छोड़डी तेरी देहली।"

विवश होकर लाडो को देहली छोड़ने की मर्मांतक बात कहनी पड़ती है। साथ ही वह अपने दादा, ताऊ आदि सम्बन्धियों को कहती है—

"ठाडा मेरा दादा ठाडा रहिए
आज की रैन पहर दोए।
अपणा कटक जे उतरूँगी
पार थारा नगर सुबल बसो।
ठाडा मेरा ताऊ ठाडा रहिए
आज की रैन पहर दोए।"

लाडो ने अपनी बरात वाहिनी के साथ विदा होने की बात कही। विदा होने वाली लाडो के हाथ में अब दो वंशों की लाज है। उसे दोनों वंशों की लाज रखने के लिए संक्षिप्त उपदेश दिया जाता है—

"मैं समझाऊं समझ मेरी लाडो
अपना धर्म निभाणा है।
लोहड़ बिराणा, कुआं बिराणा
नीची नजर लखाणा है।
वारी सोणा बखतै उठना,
यो हे परण निभाणा है।

लाडो तथा जमाई की यात्रा मंगलकारी और सुखद हो तथा उन्हें मार्ग में थकावट न हो। इस लिए शुभ शकुनों और अच्छे मौसम की आकांक्षा सभी के हृदय में है—

तीतर रे तूं बामै दाहने बोल,
चढ़ते जमाई का सुण मणाइये जी।
सुरज हे तू बादल में बड़ जा,
चढ़दे जमाई नै लागै घामड़ा जी।
बादल रे तूँ झीणा झीणा बरस,
चढ़दी लाडो की भीगै नौरंग चूंदड़ी जी।
आंधी हे तूँ झीणी झीणी चाल,
चढ़ते जमाई का गरद भरै कापड़े जी।"

आकाश पर बादल छा जाते हैं। नन्हीं-नन्हीं बून्दें पड़ने लगती हैं। लाडो का रथ चलता है। पीछे साथणों की टोली आंखों से आंसू की बूंदें टपकाती चलती हैं। करुणतान सुनाई पड़ती है :—

'म्हारे री घेर में आये री बटेऊ, साथण के लणयार।
साथण चाल पड़ी री, मेरे डब डब भर आए नैण।"

'डब-डब भर आए नैण' उक्ति मात्र न होकर वास्तविक स्थिति का चित्रण है। दूसरी ओर 'परियण की लाडो' की सिसकियां जारी हैं। उसकी मनोवैज्ञानिक ढंग से तसल्ली करने के लिए यही उपाय है—

"अपणी बहाण नै ताबली
बुलाल्यूं घालकै छोटला बीर।"

लाडो यह प्रण लेकर विदा होती है कि उसे उस का छोटा भाई भेज कर शीघ्र बुला लिया जाएगा। उसके सभी सम्बन्धी तथा साथणे उसे गाँव की सीमा तक छोड़ कर 'डब-डब भर आए नैणों' के साथ वापिस आते हैं।

★ ★ ★

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण (२)

[श्री सन्तराम आनन्द]

आप को ज्ञात होगा कि सूर्य अपनी आसमान दौड़ का चक्र ३६५ दिन में पूर्ण कर लेता है और चांद कोई २८ दिन में। इसी कारण जब १४ दिन में चांद अपनी यात्रा का आधा चक्र काट लेता है, तो यह केतु पर आ जाता है। सूर्य लगभग राहु के पास ही अभी होने के कारण अब यह दोनों फिर पृथिवी की सीध में आ जाते हैं। पूर्णिमा का दिन होता है। चांद को पृथिवी की परछाईं में से गुज़रने पर इसका पूर्णच्छाया में सर्वग्रास और उपच्छाया में खंड-ग्रास दिखाई देगा।

इससे स्पष्ट है कि सूर्य-ग्रहण के १४ दिन के पश्चात् चन्द्र-ग्रहण होना चाहिये। और फिर छः मास के पश्चात् जब सूर्य अपने कक्ष का आधा पथ चल लेता है तो ये दूसरे नोड पर आ जाता है यहां पर भी चन्द्र, सूर्य का समागम हो जाने पर सूर्य-ग्रास और १४ दिन के पश्चात् चन्द्र-ग्रास हो सकता है। इस प्रकार अगर यह समागम केवल इन दो बिन्दुओं पर ही हो तो हर छः मास के पश्चात् सूर्य-ग्रहण और फिर १४ दिन बाद चन्द्र-ग्रहण होगा। परन्तु यह घटना इन बिन्दुओं पर ही नहीं होती, इन के इधर-उधर भी हो सकती है। छाया-गणित से जाना गया है कि सूर्य-ग्रहण १८ दिन राहु पर पहुंचने से पहले और इतने ही दिन इससे पीछे तक हो सकता है और चन्द्र-ग्रहण ११½ दिन केतु से पहले और इतने ही दिन इस के पीछे तक। इसी कारण हर नोड पर सूर्य-चन्द्रमा का समागम एक से अधिक बार हो सकता है। अधिक से अधिक सात बार। अगर पांच हों, तो तीन सूरज के और दो चन्द्रमा के ग्रहण होते हैं। इसकी स्पष्टता नीचे दिये उदाहरण से हो सकती है। यह घटना १९०२ की है।

चन्द्रमा का स्थान	ग्रहण नाम	दिनाङ्क
राहु में	सूर्य-ग्रहण	८ अप्रैल
केतु में	चन्द्र ,,	२२ अप्रैल
राहु में	सूर्य ,,	७ मई

घटनाओं का औसत दिनाङ्क
२२ अप्रैल, सन् १९०२

छः मास पश्चात्—

चन्द्रमा का स्थान	ग्रहण नाम	दिनाङ्क
केतु में	चन्द्र-ग्रहण	१७ अक्टूबर
राहु में	सूर्य ,,	३१ अक्टूबर

घटनाओं का औसत दिनाङ्क
२४ अक्टूबर सन् १९०२

ऊपर की सूची से यह स्पष्ट है, कि जब सूर्य एक नोड में था, तो तीन ग्रहण हर चौदह दिन के बाद हुए। और फिर छः महीने के पश्चात् दो, और यह भी चौदह दिन के अंतर में।

एक और बात भी ध्यान के योग्य है, कि राहु-केतु अक्ष आकाश में स्थित नहीं। यह घूमता है और लगभग अठारह वर्ष में एक चक्र पूरा कर लेता है। इस कारण हर वर्ष होने वाली तिथियों में कोई बीस दिन का अन्तर पड़ जाता है। अतः अगले साल की घटनाओं की तिथि निकालने के लिए २० दिन घटाने पड़ते हैं, और पिछले साल की तिथियों के लिए २० दिन जोड़ने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ अगर हम सन् १९०२ की तिथियों से १९०१ में हुई घटनाओं को जानना चाहें तो ऊपर दी हुई तिथियों में २० दिन जोड़ने होंगे। जैसा नीचे की सूची से स्पष्ट है।

चांद का स्थान	नाम ग्रहण	दिनाङ्क
केतु	चन्द्र ग्रहण	३ मई
राहु	सूर्य ,,	१८ मई

औसत दिनाङ्क
११ मई १९०१ = २२ अप्रैल + २० दिन

छः मास पश्चात्—

चांद का स्थान	नाम ग्रहण	दिनाङ्क
केतु	चन्द्र ग्रहण	२७ अक्टूबर
राहु	सूर्य ,,	११ नवम्बर

औसत दिनाङ्क
३ नवम्बर सन् १९०१ = २४ अक्टूबर + २० दिन

प्रति वर्ष ग्रहण की घटना नहीं होती। सूर्य और चांद जब अपनी-अपनी दौड़ में राहु-केतु के पकड़ से दूर निकल जाते हैं, तो फिर ये दोनों पृथिवी की सीध में नहीं आते। हां, अठारह वर्ष के पश्चात् राहु-केतु अक्ष अपना चक्र पूर्ण करके फिर वापस अपने स्थान पर लौट आता है और इस लिए पीछे अठारह वर्ष में हुई घटनाएँ अगले अठारह वर्ष में दोहराई जाती हैं। इस अठारह वर्ष की अवधि को 'सरोस' कहते हैं। एक सरोस में जो ग्रहण हुए हों, वह क्रमशः अगले सरोस में ठीक तिथि पर होने से इन के आगे होने वाले दिनाङ्कों की जानकारी हो जाती है।

सरोस की अवधि—ऊपर वर्णन किया गया है, कि राहु-केतु अक्ष का एक स्थान से चल कर और फिर घूम कर उसी स्थान में आ जाने पर जितना समय लगता है, उसे सरोस की अवधि कहते हैं। ग्रहण की तिथि पहले से जानने के लिए इसका ठीक-ठीक ज्ञान जरूरी है। इस को थोड़ा और स्पष्टता से समझने के लिए, मान लो कि दो आदमी राम और श्याम एक बड़े घेरे के गिर्द घूम रहे हैं। राम इस चक्र को एक घंटे और श्याम सवा ($1\frac{1}{4}$) घण्टे में पूरा कर लेते हैं। एक घण्टे में जब राम एक चक्र पूरा कर लेता है, तो श्याम चक्र का पांचवा भाग पीछे रह जाता है। परन्तु पांच घन्टे के पश्चात् जब श्याम के चार चक्र पूर्ण हो जाते हैं, तो राम अपना पांचवा फेरा पूरा करके श्याम के साथ ठीक उसी स्थान पर आकर मिल जाता है जहां से उन्होंने अपनी यात्रा का आरम्भ किया था। इसी तरह हर पांच घण्टे के पश्चात् इनका मेल होता रहेगा।

सूर्य, चांद अथवा पृथिवी का एक बार समागम हो कर फिर ऐसी ही व्यवस्था में होना तब ही हो सकता है, जब एक निश्चित समय में चांद राहु से राहु तक और केतु से केतु तक और सूर्य राहु से राहु तक पूर्ण चक्र काट लेते हैं, जिस से कि इन तीनों का फिर से मेल हो सकता है।

अतः चांद का राहु से राहु में लौटने का समय २७.२ दिन और केतु से केतु का २९.५ दिन और सूर्य का राहु से राहु तक ३४६.६ दिन चाहिए।

इसलिए चांद का पहली अवस्था में २४२ चक्र के लिए=२७.२×२४२=६५८५.३६ दिन।

चांद की दूसरी अवस्था में २२३ चक्र के लिए =२९.५३×२२३=६५८५.३२।

और सूर्य के १९ चक्रों के लिए=१९×३४६.६ =६५८५.४ होते हैं।

इस प्रकार ऊपर की गिनती से स्पष्ट है, कि चांद के २४२ अथवा २२३ और सूर्य के १९ पूरे चक्रों की अवधि लगभग ६५८५·३६ दिन या १८ वर्ष, १० दिन और ८½ घण्टे है। इसलिए यह अवधि एक सरोस कहलाती है। अब अगर एक सरोस के ग्रहणों का अभिलेख या लिखित विवरण हमारे पास हो, तो हम अगले किसी सरोस में भावी ग्रहण की तिथि को जान सकते हैं। क्योंकि यह क्रमशः अगले सरोस में इन्हीं तिथियों पर दोहराए जाते हैं, अर्थात् इनकी क्रमशः पुनरावृत्ति होती रहती है। परन्तु ऊपर की विधि से घड़ी-पल ठीक नहीं बैठते। कोई ग्यारह घण्टे का अन्तर हो जाता है। कारण यह कि उपरोक्त सूर्य अथवा चांद के पूर्ण चक्रों का समय समान नहीं, कुछ अन्तर है। ग्रहण का समय घड़ी-पल तक ठीक निकालने के लिए चांद के ४८ सरोसों अर्थात् ८६५ वर्षों का और सूर्य के सम्बन्ध में ७० सरोसों या १२६० वर्षों का ज्ञान आवश्यक है। इसलिए अगर आपके पास इतने ग्रहणों की सूची हो, तो आप किसी ग्रहण की भविष्य-वाणी कर सकते हैं।

ग्रहण की आयु—उपरिवर्णित विधि के अनुसार हर ग्रहण अठारह वर्ष दस दिन सात घण्टे और कोई बयालीस मिनिट (यह औसत अंक है) के पश्चात् पुनरावृत्ति करता है। प्रश्न हो सकता है, कि क्या अनन्त काल से ऐसा होता चला आया है, और होता रहेगा? देखने से जान पड़ा है, कि हर बार जब कोई ग्रहण दोहराया जाता है तो इसका स्थान कुछ बदल जाता है। हर ग्रहण उत्तरीय ध्रुव से उत्पन्न होकर हर बार दक्षिण की तरफ बढ़ता हुआ अन्त में दक्षिणी ध्रुव पर पहुंच कर अस्त हो जाता है। यही इसकी आयु है, जो सूर्य के सम्बन्ध में १२०० वर्ष के लगभग है।

सूर्य-ग्रहण का इस प्रकार स्थान बदलने के कारण इसका एक परिणाम यह भी हो सकता है कि यद्यपि किसी निश्चित समय में होने वाली घटनाओं में पहले कथनानुसार चन्द्र-ग्रहणों की अपेक्षा सूर्य-ग्रहण अधिक होते हैं, एक स्थान या चौकी पर ही पर्यवेक्षणों में सूर्य, चन्द्र-ग्रहणों में अनुपात उलटा भी हो सकता है, अर्थात् पांच घटनाओं में से तीन चन्द्रमा के और दो सूर्य सम्बन्धी ग्रहण हो सकते हैं।

उपर्युक्त ग्रहण की आयु को थोड़ा और स्पष्ट करने के लिए उदाहरणार्थ—

हम जिस सूर्य-ग्रहण की आयु का जिक्र करने लगे हैं, इसका जन्म उत्तरी ध्रुव पर सन् १२९५ ई० के जून मास में हुआ था। फिर इसके दर्शन क्रमशः इस प्रकार हुए—

पहला दृष्ट जून १२९५ उत्तरी ध्रुव पर।
पांचवां ,, २७ अगस्त १३६७ उत्तरी यूरोप पर।
नौवां दृष्ट सन् १४३९ यूरोप के कुछ दक्षिण दिशा की ओर
अठारवां दृष्ट सन् १६०१ छल्लाकार ग्रहण इंग्लैंड में
तीसवां ,, ५ मई १८१८ लन्दन में।

फिर इसका दृष्ट हर सरोस के पश्चात् अर्थात् १५ मई १८३६, २६ मई १८५४, ६ जून १८७२, १७ जून १८९० में क्रमशः दृष्टिगोचर होता हुआ १० अगस्त १९८० में पृथिवी की मध्यरेखा पर देखा जा सकेगा। फिर ३० सितम्बर २६६५ में दक्षिणी ध्रुव पर पहुंच कर समाप्त हो जाएगा। इसका यह अन्तिम दृष्ट गिनती में ७७वां होगा।

उपर्युक्त विवरण से आपको स्पष्ट हो गया कि यदि हमारे पास अठारह वर्ष के ग्रहणों की सूची हो तो हम आसानी से किसी समय के ग्रहण की तिथि जान सकते हैं। इसलिए यह घटना नियम-बद्ध है, और दूसरी प्राकृतिक घटनाओं की तरह प्राणि-जगत् की उत्कृष्टता के लिए ही हो सकती है। ●

आज विदा की वेला में

[श्री कन्हैयालाल पाराशर]

आज विदा की वेला में तुम तरुवर! क्यों थर्राए।
कर खाली उड़ चले पखेरू, कल जो नीड बनाए॥
दूर गगन में छिपता सूरज कहता रामकहानी।
नहीं आज की और न कल की, है यह रीत पुरानी॥
काल चक्र चलता है नियति का जिसको जहाँ ले जाए।
कर खाली उड़ चले पखेरू कल जो नीड बनाए॥
धीर समीरण के झोंके भी तेरी धीर बन्धाते।
ले तव मंद सुगन्ध नित्य दिशि-दिशि में जा फैलाते॥
जाये जहाँ वहीं यह कुल भी तेरा ही यश गाए।
आज विदा की वेला में तुम तरुवर! क्यों थर्राए॥
इस जग की दुर्गम राहों पर चलना कठिन अकेले।
बड़े भाग्य से ही मिल पाते ये सत्संग के मेले॥
ऐसे कुछ संयोग न जाते भूले कभी भुलाए।
कर खाली उड़ चले पखेरू, कल जो नीड बनाए॥
पास रहें या दूर न भूलेंगे तव शीतल छाया।
रह कर जिसके तले कि हमने जीवन दीप जलाया॥
'सदा रहें' ही ऐसे क्षण यहाँ, जो आए कुछ पाए।
आज विदा की वेला में तुम तरुवर! क्यों थर्राए॥

सफल जीवन

[श्री भद्रसेन]

संसार का प्रत्येक व्यक्ति वह बच्चा हो या प्रौढ़, नर हो या नारी, काला हो गोरा, वह चाहे किसी भी देश, धर्म, जाति व समाज से सम्बन्ध क्यों न रखता हो, और वह किसी भी क्षेत्र में कार्य क्यों न करता हो, प्रत्येक की हार्दिक अभिलाषा यही होती है, कि मैं प्रत्येक क्षेत्र और हर अवस्था में सफलता प्राप्त करूँ। वह अपनी शक्ति और बुद्धि अनुसार अहर्निश उसी के लिए ही प्रयत्नशील रहता है एवं चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय वह सफलता-प्राप्ति के साधनों की खोज में तत्पर रहता है, कि कोई ऐसा रास्ता प्राप्त हो, जिसका अवलम्बन लेकर शीघ्र ही प्रत्येक क्षेत्र एवं हर अवस्था में सफलकाम हो जाऊँ। वस्तुतः सफलता, उन्नति, विकास ही जीव के जीवनत्व की पहचान है। अतएव मिट्टी में खेलने वाला शिशु, स्कूल-कालिज में पढ़ने वाला विद्यार्थी, कार्यालय की कुर्सी पर विराजमान क्लर्क व अधिकारी एवं अध्यापक, प्राध्यापक, वकील, व्यापारी इत्यादि प्रत्येक इसी धुन में अपने-अपने ढंग के अनुसार संलग्न दिखाई देता है। इसी लक्ष्य को लेकर वह अनेक पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों को पलटता है, विविध पुस्तकों का पारायण करता है तथा साधु, सज्जनों और मित्रों की गोष्ठियों की शोभा बढ़ाता है।

जीवन में सफलता-प्राप्ति के अनेक साधनों में से सफल व्यक्तियों के जीवन-चरित का अध्ययन एक बहुत ही सरल और सुन्दर साधन है। जहाँ उनके जीवन-चरित से जीवन-पथ के यात्री को प्रेरणा, उत्साह एवं प्रकाश प्राप्त होता है, वहाँ इसके साथ-साथ जीवन-यात्रा के टेढ़े-मेढ़े, ऊँचे-नीचे, सुन्दर-कुरूप, मधु-कटु, तरल-खुश्क, आकर्षक-अनाकर्षक आदि विभिन्न मार्गों का ज्ञान होता है तथा ऐसी परिस्थितियों में उन्होंने किस प्रकार से उन समस्याओं का समाधान किया। अतएव किसी कवि ने इस सम्बन्ध में अपने भावों को व्यक्त करते हुए कहा है—

मानवों की जीवनी यह हमें बतला रही,
अनुकरण कर मार्ग उनका उच्च बन सकते सभी।
कालरूपी रेत पर चिह्न जो तज जायेंगे,
आदर्श उनको मानकर, आगन्तुक ख्याति पायेंगे॥

इसी दृष्टि-बिन्दु को ले पाठकों के समक्ष अमेरिका के एक महान् व्यक्ति के जीवन के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत करने की धृष्टता कर रहा हूँ, यतो हि उनका जीवन समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए बहुत ही प्रेरणादायक और उत्साहवर्धक है। अमेरिका के इतिहास का अवलोकन करने से अवगत होता है कि अमेरिका के राष्ट्र-निर्माताओं में बेंजामिन फ्रैंकलिन का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में विशेष स्थान प्राप्त किया। आपने अपना जीवन बहुत ही साधारण परिस्थितियों से प्रारम्भ किया था, आपकी आरम्भिक आर्थिक स्थिति बहुत ही शोचनीय थी, शिक्षा भी सामान्य थी तथा अपने ही बलबूते पर अपने जीवन की यात्रा प्रारम्भ की और एक प्रख्यात पत्रकार के रूप में ख्याति प्राप्त की। राष्ट्र-रक्षा, राज्य-प्रबन्ध एवं सामाजिक क्षेत्र में आपने विशेष रूप से कार्य किया, आपके जीवन की गतिविधियों का मुख्य रूप से क्षेत्र 'फिलाडेलफिया' रहा। आपकी आत्म-कथा पढ़ने से अवगत होता है कि आपकी समुन्नति के मूल कारणभूत निम्न सिद्धान्त थे, जिनके कारण आप जीवन के चरमोत्कर्ष को प्राप्त करने में सफल हो सके। जिनके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं अपनी आत्म-कथा में संकेत किया है।

"मुझे विश्वास हो गया कि जीवन को भली प्रकार चलाने के लिए सत्यता, ईमानदारी और गम्भीरता अत्यन्त आवश्यक हैं। मैंने लिखित प्रतिज्ञाएँ कीं जो आज भी मेरी कापी में मौजूद हैं, कि मैं जीवन-भर इन तीनों का पालन करूँगा।"

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, बिना समाज के किसी भी क्षेत्र में प्रगति करने की तो बात ही क्या, जीना भी दूभर है। वह समाज के सहयोग से शिशु अवस्था से स्वावलम्बीपन को प्राप्त करता है। सामाजिक क्षेत्र में पारस्परिक व्यवहार का सबसे

बड़ा साधन वाणी ही है। सबसे पहले इसी के द्वारा ही दूसरों से सम्पर्क प्रारम्भ होता है. इसका सम्यक् उपयोग सामजिक क्षेत्र में प्रगति का एक प्रबलतम साधन है। इतिहास के अनेक पृष्ठ तथा प्रतिदिन के जीवन के अनुभव वाणी के सदुपयोग और दुरुपयोग के जीते-जागते उदाहरण हैं। अतएव इसके सम्बन्ध में बेंजामिन फ्रेंकलिन ने बहुत ही मार्मिक ढंग से लिखा है, उन्होंने अपनी आत्म-कथा में संकेत किया कि मेरी पहले विवाद करने की बड़ी प्रवृत्ति थी, मैं प्रायः प्रत्येक से ही विवाद करने लग जाता था। जिसके कारण अनेक मित्रों तथा समुन्नति के अवसरों से हाथ धोना पड़ा। इस परिणाम का अनुभव करते हुए मैंने शीघ्र ही स्व-स्वभाव को परिवर्तित करने का प्रयास किया और पश्चात् मैंने अपना यह विचार बनाया, कि "जब भी मैं कोई विवादास्पद बात कहता था तो उसके साथ 'निश्चिततः', निःसंदेह' और किसी सम्मति को निश्चयता का आवरण पहनाने वाला कोई भी शब्द कभी इस्तेमाल नहीं करता था, इसके बदले मैं 'मेरा विचार है', 'मेरा ख्याल है', 'मैं सोचता हूँ' या 'अमुक कारणों से मुझे ऐसा लगता है कि वह इस तरह होना चाहिए' या 'अगर मैं गलती नहीं कर रहा हूँ तो यह इस प्रकार होना चाहिए' इत्यादि मुहावरों या वाक्यों का प्रयोग करने लगा। मुझे विश्वास है कि बाद में अपने विचारों का प्रचार करने और समय-समय पर अपने कार्यों में दूसरे व्यक्तियों को सम्मिलित करने में यह आदत मेरी बड़ी सहायक हुई है और, चूंकि वार्तालाप का मुख्य उद्देश्य ज्ञान देना या प्राप्त करना, खुश करना या अपनी राय मनवाना है। इसलिए मैं चाहता हूँ समझदार और विचारवान् व्यक्ति एक निश्चित स्थिर ढंग से बातचीत करके भलाई करने की अपनी शक्ति का नाश न करें, क्योंकि यह तरीका निश्चित रूप से लोगों को उबाता है (अर्थात् समीप लाने की अपेक्षा दूर कर देता है, प्रेम, सौहार्द के स्थान पर घृणा की भावनाओं को जन्म देता है) और विरोध खड़ा करता है और सबसे बढ़कर तो वह लक्ष्य ही प्राप्त नहीं करने देता, जिसके लिए बात कही गई है। इसका सार-रूप है अलैक्जेण्डर पोप के शब्दों में—"लोगों को शिक्षा ऐसी देनी चाहिए, मानो शिक्षा दी ही नहीं और अनजानी बातों को ऐसे रखा जाए मानो वे भूली बातें हैं, दृढतापूर्वक अवश्य बोलिए, लेकिन यथोचित नम्रता के साथ।"

आपने प्रसंगवश एक स्थल पर पारस्परिक व्यवहार एवं साझेदारी के सम्बन्ध में रहस्यमयी बात की ओर निर्देश करते हुए लिखा है—"आरम्भ में ही प्रत्येक बात पर ध्यान देना चाहिए, साधारण समझकर या प्रेमवश उपेक्षा करना हानिप्रद होगा।" सामूहिक कार्यों की सफलता के लिए यह एक अत्युत्तम मन्त्र है। अन्यथा अन्त में क्लेश और विवाद के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता।

आपके जीवन में अपूर्व ईश्वर विश्वास था। आप प्रतिदिन ईश-प्रार्थना करते थे, जिसके शब्दों से ईश्वर विश्वास और भक्ति की अलौकिक भावनाएँ झलकती हैं। बड़ी दृढता के साथ आप अपनी आत्म-कथा में लिखते हैं—"मुझे विश्वास था कि ईश्वर ही विवेक का स्रोत है, इसलिए मैंने यह उचित और आवश्यक समझा कि विवेक प्राप्त करने के लिए मैं ईश्वर से सहायता मांगूं।"

इसी निमित्त के लिए ही उन्होने दो छोटी-छोटी मार्मिक शब्दों में प्रार्थनाएँ बनाई हुई थीं, जिनका आपकी दिनचर्या में विशिष्ट स्थान था। उनका भाव इस प्रकार है—"हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर, समृद्धि-शाली पिता, करुणामय पथप्रदर्शक, मुझे वह विवेक दो जिससे मैं अपने वास्तविक हितों को पहचान सकूं। मुझे शक्ति दो कि मैं उस विवेक के बताए पथ पर दृढता से चल सकूं। तुम मुझे हमेशा प्यार करते हो इसलिए तुम्हारी दूसरी सन्तानों के प्रति थोड़ी-बहुत भलाई जो मै कर सकता हूँ, उसे मेरी श्रद्धा समझकर स्वीकार करो।"

"प्रकाश और जिन्दगी के पिता, हे सर्वगुण-सम्पन्न-सर्वोच्च, मुझे सिखाइए कि अच्छाई क्या है ? आप स्वयं मुझे सिखाइए, मुझे बचाइए गलतियों, अभिमान और बुराइयों से और हर नीचे काम से और भर दीजिए, मेरी आत्मा को ज्ञान से, सचेत शान्ति और विशुद्ध सच्चरित्रता से, पवित्र निस्सीम शाश्वत प्रसन्नता से।"

बेंजामिन फ्रेंकलिन ने अपनी आत्मकथा में एक बहुत ही विचारणीय वृत्त की ओर संकेत किया है, जिसके सम्बन्ध में धार्मिक व्यक्तियों को अवश्य ही विचार करना चाहिए। उन दिनों अमेरिका में एक नए धार्मिक विचारों का श्रीगणेश हुआ था। उसके एक सुयोग्य प्रचारक फिलाडेल्फिया में आए और कुछ दिनों तक उनके विचारों की विचारमाला चलती रही, जनता ने उनके भाषणों को पसन्द किया। एक दिन बेंजामिन फ्रेंकलिन का उनके साथ वार्तालाप हुआ, आपने कहा—"आप अपने विचारों को ग्रन्थ-रूप में प्रकाशित क्यों नहीं करा देते?" प्रचारक महोदय ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया—"जब हम लोगों ने मिलकर इस मत को जन्म दिया, तो हमारे मस्तिष्कों में यह विचार ईश्वर ने उत्पन्न किया, कि जिन सिद्धान्तों को पहले हम सत्य समझते थे वे गलत निकले और जिन्हें गलत समझते थे वे सत्य साबित हुए। समय-समय पर ईश्वर प्रसन्नतापूर्वक हमें मार्ग दिखाता ही जाता है और हमारे सिद्धान्तों का बराबर विकास होता जा रहा है और हमारे दोष घटते जा रहे हैं। हमें यह विश्वास नहीं कि हम इस प्रगति की परम सीमा पर आ पहुँचे हैं और हमारा धार्मिक ज्ञान पूर्णता को प्राप्त कर चुका है और हमें भय है कि यदि हम एक बार अपने विश्वासों और सिद्धान्तों को प्रकाशित कर देंगे तो आगे अपना सुधार करने के इच्छुक नहीं रह जाएँगे। हमारे बाद आने वाली पीढियों के लोग तो सुधार बिल्कुल पसन्द ही नहीं करेंगे, क्योंकि उनका विचार यह होगा कि उनके पूर्वज और संस्थापक जो-कुछ लिख गए हैं वह पवित्र है, उससे अलग नहीं हटना चाहिए।"

बेंजामिन फ्रेंकलिन ने अपनी आत्मकथा में एक चार्ट दिया है, जिसको जीवन की प्रगति के लिए स्वर्णिम सूत्र कह सकते हैं। जिसके सम्बन्ध में आपने लिखा है, कि मैंने इस चार्ट को बनाने के पश्चात् एक-एक नियम का क्रमशः अभ्यास किया तथा पिछले नियमों का साथ-साथ पालन करते हुए आगे-आगे बढ़ता रहा। इससे मेरे जीवन में अद्भुत विकास हुआ। वस्तुतः आपके जीवन की सफलता का रहस्य ये स्वर्णिम सूत्र ही थे। आपने स्वयं इन सूत्रों की सामान्य व्याख्या भी की है, जो इस प्रकार है।

१. उचित भोजन—इतना मत खाओ कि आलस्य आने लगे और इतना मत पियो कि होश गवा बैठो।

२. मौन—उतना ही बोलो जिससे तुम्हारा अथवा या दूसरों का लाभ हो। व्यर्थ बातचीत न करो।

३. व्यवस्था—अपनी हर चीज के लिए उचित स्थान नियत करो। अपने हर काम के लिए उचित समय दो।

४. दृढ़ प्रतिज्ञा—जो काम तुम्हें करना हो उसे पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करो और एक बार प्रतिज्ञा करने के बाद किसी भी अवस्था में उसे अधूरा मत छोड़ो।

५. मितव्ययिता—उतना ही खर्च करो जिससे तुम्हारा अपना या दूसरों का लाभ हो अर्थात् धन नष्ट मत करो।

६. अध्यवसाय—समय व्यर्थ मत जाने दो, हमेशा किसी-न-किसी उपयोगी कार्य में लगे रहो। सारे अनावश्यक कार्यों को दूर रखो।

७. ईमानदारी—किसी को धोखा मत दो, अपने विचारों में न्यायप्रियता और निष्कपटता पैदा करो और बातचीत में भी इनका ध्यान रखो।

८. धर्मनीति—किसी को चोट मत पहुँचाओ और अगर तुमसे किसी को लाभ हो सकता हो तो उसे लाभ से वंचित मत करो।

९. समभाव—अति से बचो, लेकिन जितने दण्ड के भागी दूसरे हों उतना दण्ड उन्हें जरूर दो।

१०. स्वच्छता—अपने शरीर, वस्त्र अथवा निवास-स्थान में तनिक भी गन्दगी न रहने दो।

११. धैर्य—छोटी-छोटी बातों पर या साधारण और अवश्यंभावी घटनाओं पर अपने मस्तिष्क का संतुलन न बिगड़ने दो।

१२. आत्म-संयम—स्वास्थ्य और सन्तानोत्पत्ति के लिए ही स्त्री से सम्पर्क करो। वासना में इतना मत बहो कि स्वास्थ्य खो जाए या तुम्हारी अथवा किसी और की इज्जत या शक्ति खतरे में पड़ जाए।

१३. विनम्रता—आदर्शों (सुकरात जैसे महानुभावों की शिक्षा) का सदा पालन करो। ●

परख

[श्री रामकुमार दीक्षित]

आसन्दिका की पीठ-से-पीठ लगाए विचारों में खोई, कुछ सोच रही थी, अपने भविष्य के बारे में। तभी 'बहिन जी, आपको साहब ने याद किया है' की आवाज ने उसके विचारों को तितर-बितर कर कर दिया। आफिस का चपरासी था यह। तमतमा उठी, क्यों ? इस समय बुलाया है, ऐसा क्या आवश्यक कार्य आ पड़ा। बेचारी क्या करती, सीधे चल दी चपरासी के साथ उसके बंगले को। और फिर इसके सिवाय चारा ही क्या था उसके पास।

'आ गई तुम' साहब के शब्दों में मिठास और चेहरे पर पिशाचता का साम्राज्य छाया हुआ था। अरे, खड़ी क्यों हो बैठो न इस कुर्सी पर। तुम्हें किस लिए इस समय बुलाया न समझी हो। मेरा तुम्हीं से एक काम है और तुम उसको··· ···। उसके बदले में लाभ ही होगा नुकसान नहीं, तुम्हारी दुगुनी उन्नति हो जाएगी और फिर··· ···।

वह नादान बच्ची न थी जो कुछ न समझ सके। उसके चेहरे पर आए हुए भावों को अच्छी तरह पढ़ लिया था उसने। चापलूसी से काम निकालना ही उचित समझा, नम्र स्वर होकर बोली, आज्ञा कीजिए। आज्ञा नहीं, प्रार्थना कहता हुआ विपिन उठा और आलमारी से एक बन्द लिफाफा उठा पकड़ा दिया उसके हाथ में। उसने उत्सुकतावश लिफाफा खोला, और पढ़ने लगी।

पढ़ते ही उसकी आंखें अंगारे बरसाने लगीं, वह अपने को न सम्भाल सकी तुरन्त कड़क कर बोली—

"नीच, निर्लज्ज, बेहया, शर्म नहीं आती तुझको, एक नारी और असहाय अबला पर··· ···। मुझे क्या मालूम था तू इतना कमीना हो सकता है। आज मुझे मालूम ही नहीं विश्वास हो गया कि··· ···। हम गरीब हैं, असहाय हैं, मगर याद रख यदि अब के जुबान खोली तो नोंच डालूंगी" कहते हुए दरवाजे की ओर भाग उठी, भागती गई जब तक कि वह थक कर गिर न पड़ी।

जब उसे होश आया तो उसने दो सैनिकों को अपनी ओर आते देखा। समाज की सुरक्षा के ठेकेदार, दूसरे क्षण उसके सामने थे।

"एक बोला कौन हो तुम ? कहां से आई हो इस समय ?"

झट दूसरे ने उत्तर दिया··· ···

"आयी होगी किसी के पास से"।

वह कांप उठी, अपने को सम्भालती हुई बोली, नीचो, क्यों·· ···वह इतना ही कह पायी थी उन दोनों ने मिलकर उसको दबोच दिया, और दूसरे क्षण··· ··· ··। उसे समाज के कर्णधारों के काले कारनामों का पता उस समय चला जब वे उस पर गिद्ध की तरह मंडरा रहे थे।

वह सोचती-सोचती जा रही थी। उसकी विचार-धारा तब टूटी, उसकी आंखों ने जब विस्तृत नदी की लहरों को देखा। उसे ऐसा आभास हुआ मानो, नदी की एक-एक लहर कह रही हो, "आओ तुम भी हमारे में खो जाओ, तुम भी हमारे साथ खेलो, अब यहीं तुम्हें शान्ति मिल सकती है, अन्यत्र कहीं नहीं।" कदम आगे बढ़े फिर रुक गए। उसके अन्तस्थल में किसी की वाणी सुनायी दी उसे। कोई कह रहा था—अरे पगली, तू बड़ी कायर है, अभी घबड़ा गई, अभी कदम लड़खड़ा गए, अभी तो जीवन-सफर बहुत लम्बा है, और फिर भी अब इस पर केवल तेरा ही अधिकार नहीं, उनका भी है, जिनका तूने जुम्मा लिया है, भार लिया है; क्या तू उस अमानत की कुछ भी चिन्ता न करेगी ? उन्हें तो तुझे पालना ही होगा चाहे भीख ही क्यों न मांग··· ···।

'बाबू जी' ! 'क्या है ?' 'एक पैसा दे दीजिए।' 'क्या करेगी ?' बड़ी भूख लगी है··· ···। आज दो दिन से कुछ भी नहीं खायी हूं।

अनमना-सा आगे बढ़ता हुआ युवक क्षण-भर को रुका। उसने युवती पर एक गहरी नजर डाली। आश्चर्यचकित हो गया क्षण-भर को, उसकी आंखों में

विचित्र भाव तैर गए, और साथ ही युवक की तरफ दीन-भाव से देखती हुई पास खड़ी युवती ने अपनी कोमल आंखों की पांखों को जमीन में गढ़ा दिया। वह धीरे-धीरे अपनी साड़ी के फटे हुए आंचल से अपने शरीर के नग्न भाग को ढकने का असफल प्रयत्न करने लगी, परन्तु साड़ी जीर्ण-शीर्ण थी, असंख्य छिद्रों से परिपूर्ण कि युवती केवल अपने लज्जा को ही ढंक पायी थी बड़ी मुशिकल से।

बाबू जी, एक पैसा दे दीजिए।"

युवक की तन्द्रा भंग हुई, वह आगे बढ़ता हुआ बोला, पैसा तो दे दूं, लेकिन मुझे उससे क्या मिलेगा?"

बाबू जी! ··· ···आप मुझे दुःखिया, असहाय, अबला का भला करोगे, तो भगवान् आपका भला करेगा। सहमते स्वर में युवती ने कहा।

देखो··· ···मैं तुम्हारे भगवान् को नहीं जानता, कहां रहता है वह? मैं तो तुमसे पूछ रहा हूँ, बताओ तुम क्या कहती हो?

"मैं आपका मतलब नहीं समझी··· ···" खिन्न मन से युवती ने कहा।

मतलब नहीं समझीं या समझना नहीं चाहतीं, युवक एक व्यंग-भरी और पिशाचता-युक्त मुस्कान के साथ बोला।

बाबू जी··· ···।" युवती के स्वर में व्याकुलता थी··· ···। आप जैसे पढ़े-लिखे युवकों को ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं··· ···। युवती को आवेश में देख युवक कुछ सहम गया, उसे गन्दे, फटे-पुराने वस्त्रों में छिपी युवती में एक विचित्र नारीत्व झलकता प्रतीत हुआ। युवती को परखने की दृष्टि से बोल पड़ा ··। इसमें शर्म की क्या बात है··· यह तो अपना-अपना सौदा है··· ···यदि तुम्हें सौदा पसन्द नहीं, मंजूर नहीं, तो कोई दबाब नहीं, कोई जोर नहीं···।

भगवान् के लिए आप यहाँ से चले जाइए··· ··· जाओ बाबू··· ···चले जाओ। युवती चीख उठी।

मैं तो चला जाता हूँ, पर याद रखना··· ···कभी भी मेरी जरूरत जान पड़े तो सामने पीपल के वृक्ष के बगल वाली कोठरी में चली आना··· ···समझीं। मेरे घर का दरवाजा सर्वदा तुम्हारे जैसों को खुला रहता है और खुला रहेगा··· ··· । इतना कहने के साथ ही युवक तेजी से आगे बढ़ गया। किन्तु रह-रहकर उसके मानस पटल पर युवती की आकृति छाया की तरह छायी हुई थी। वह सोचती··· ··· क्या अभी भारत में 'पद्मावती, और किरण है?'

सहमी युवती जाते हुए युवक को देखती रही। हठात् अपनी बेबसी पर आंखों में मोती छल-छला उठे। पर उसमें उसका क्या दोष? उसने स्वयं ही से प्रश्न किया। क्या इस दुनिया में गरीब के घर जन्म लेना या गरीब होना ही बहुत बड़ा पाप है, गुनाह है। अगर उसके माता-पिता गरीब न होते तो क्या यह दशा होती। गरीबी के ही कारण उसके मां-बाप उसकी शादी न कर सके। क्योंकि वर पक्ष वालों की मांगों को पूरी करने में असमर्थ थे। इसकी ग्लानि तथा दुःख के कारण मौत को अपना साथी बना लिया। बेचारी शीला को दो और नन्हें भाई-बहिनों का भार छोड़ बेसहारा कर दिया। किन्तु परिस्थिति का सामना करना ही था, अपने लिए नहीं, पर दूसरों के लिए।

जीविकोपार्जन के हर साधनों की आजमाइश की। आफिस में काम किया, स्कूल में पढ़ाया जो उमसे सम्भव हो सका किया। परन्तु इस मायावी और चार सौ बीस संसार में हर आफिस पर, हर स्कूल पर ऐसा कोई भी स्थान नहीं जहां उसे वासना और स्वार्थ तांडव करते दिखाई न पड़े। प्रत्येक स्थान पर इसी का साम्राज्य यहां तक कि समाज के ठेकेदारों पर भी इसी का भूत सवार है।

संसार से सतायी शीला ने अन्त में भिक्षाटन का सहारा लिया, और अपने दोनों भाई-बहिनों को साथ ले इस विशाल नगरी में भटकती हुई आ पहुंची। भिक्षाटन ही अब उसका व्यापार था। यहां पर भी उपेक्षा और वासना घूरती-सी लगी। उसकी आत्मा कराह उठी, व्याकुल हो उठी, अचानक ठोकर लगते ही उसकी तन्द्रा भंग हो गई। सामने ही गरीबों की बस्ती अपनी मलीन पुरानी चादर फैलाए हुए थी। यहीं पर उसका वास था। अपनी झोंपड़ी में घुसते ही नन्हें मुन्ना-मुन्नी अपनी बहिन से लिपट गए। उन्हें हृदय से लगा सारा दुःख भूल चुकी थी वह।

बड़े जोर की भूख लगी है दीदी··· ···।

मैं जानती हूँ मुन्ने··· ···। सुबह मैं जरूर तेरे लिए रोटी-दूध लाऊँगी··· ···अभी सो जा। सुबह जल्दी उठेंगे।··· ···तू तो बड़ा राजा भैया है··· ···।

शीला मुन्ने को समझाते हुए बोली—

हाँ··· ···मुन्ना··· ··· ···सो··· ···जा ·· ···। सुबह जितनी ही जल्दी उठेंगे उतनी ही जल्दी खाना मिलेगा··· ··। दीदी सुबह जरूर जाएँगी··· ···।··· ···पास ही ठंडक से छुयी-मुयी-सी बैठी नन्हीं-मुन्नी सान्त्वना के स्वर में बोल पड़ी।

नहीं ·· ···सुबह नहीं··· ··· ···मैं अभी खाना खाऊँगा··· ···दीदी ·· मुझे भूख लगी है··· ··· मुझे अभी खाना दे दो दीदी !··· ···बदले में सुबह नहीं खाऊँगा।··· ···मुन्ना चीख उठा।

मेरा मुन्ना भैया तो बडा राजा है··· ···जिद नहीं करते भैया··· ···तू सो जा······मैं तुम्हें कहानी सुनाती हूँ··· ··· ···। शीला मुन्ने को थपकी दे-दे सुलाने लगी।

मुन्ना भूख से तड़पता, सिसकता सोने का प्रयत्न करने लगा।

मुन्ने का सिसकना रह-रहकर शीला के कोमल हृदय में तूफान उठाने लगा। उसका प्यारा मुन्ना भूख से तड़प रहा है, और वह उसे रोटी का एक टुकड़ा भी नहीं दे सकती। वह मुन्ना जो आज तक कभी भूखा नहीं सोया। पिता जी दूध स्वयं न पीकर उसे पहले पिलाते थे। वही मुन्ना आज एक रोटी के टुकड़े को तड़प रहा है, उसे दूध क्या रोटी का टुकड़ा भी नसीब न हो रहा है। नहीं ·· ···। युवती चीख उठी ·· ···। वह मुन्ना को भूखे नहीं सोने देगी। वह अपने मां-बाप की अमानत मुन्ना को कष्ट नहीं होने देगी··· । इतना ही न होगा कि इनकी क्षुधा-पूर्ति में उसे अपने अस्मत का बलिदान करना होगा। वह इनके लिए इस दुर्गम मार्ग पर भी चलेगी ·· ···। वह हँसते-हँसते वासना की बलिवेदी पर अपनी अस्मत का अपने सतीत्व का बलिदान कर देगी। पर मुन्ना को यूं भूख से तड़पता न देख सकेगी।

क्या हुआ दीदी··· ··· ···? अपनी दीदी को अचानक बड़बड़ाते देख नन्हीं-मुन्नी डर-सी गई।

कुछ नहीं मुन्नी··· ···। तू सो जा··· ···। इतना कहने के साथ ही वह झटके से उठी और पलक मारते झोंपड़ों की सीमा पार कर उसी परिचित सड़क पर दौड़ पड़ी। अचानक उसके कदम उस अपरिचित युवक के बताए गन्तव्य स्थान की ओर मुड़ गए··· ।

पीपल के वृक्ष के बगल वाली कोठरी पर दस्तक पड़ने के साथ ही दरवाजा खुल गया। सामने वही सायंकाल वाला युवक खड़ा था।

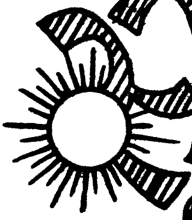
युवक पर दृष्टि पड़ते ही युवती एक स्वर से बड़बड़ा उठी··· ···। बाबू जी··· ···!··· ···मेरा भगवान् गहरी नींद में सो गया है··· ···मैंने अपने को पतन के रास्ते पर जाने से रोकने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किए।··· ···वासना और स्वार्थ के पुतलों से टक्कर ली··· ···पग-पग पर असहनीय कष्टों का सामना किया··· ··· ···इसके बावजूद मैं इन पर विजय न पा सकी··· ··· ···। आवश्यकता और परिस्थितियों ने मुझे इस जालिम जमाने के सामने झुकने को मजबूर कर दिया।··· ···बाबू··· ···मैं अब अधिक अपने भाई-बहिनों की बिलबिलाहट नहीं सुन सकती··· ·· । उनकी भूख में डुबी हुई सिसकन मुझे खाए जा रही है··· ···। परेशान होकर अपने को मैं तुम्हें समर्पण करने आई हूँ। युवती की सांस फूलने लगी। वह झुंझला उठी—चुप क्यों हो बाबू ·· ···?··· ···आखिर कब तक इस निर्दयी जमाने का सामना करूँगी··· ···? युवती का गला अवरुद्ध हो गया। अन्तिम सांस तक मेरी बहिन··· ···। युवक की संयत वाणी फूट पड़ी, तुम्हारा भगवान् सोया नहीं, अपितु आँखें खोले तुम्हें परख रहा था और तुम्हारे इस अनजान भाई को मरते दम तक तुम्हारे कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलने की प्रेरणा दी है··· ···।

अवाक् युवती ने हर्षविह्वल दृष्टि युवक के चेहरे की तरफ उठाई। उसकी आंखों से आंसुओं की गंगा-यमुना फूट पड़ी।

भैया··· ··· ···! और वह युवक के पैरों से लिपट गई।

★ ★ ★

भगवान् सूर्य का आत्म-परिचय



★

सूर्य की भट्टी (१५)

[श्री कुलदीप चड्ढा]

हां, तो वत्स ! तुम्हारे पड़ोस में वे लाला धनीराम रहते हैं न ? कितनी बड़ी हवेली है उनकी और कितने हैं नौकर-चाकर ? जब भी कहीं जाते हैं, चाहे दो कदम तक जाना हो, तो मोटर में ही जाते हैं। उनके बच्चे हैं कि रोज नए कपड़ों में दिखाई देते हैं। खाते-पीते खूब हैं······और तुम ने भी तो सोचा होगा कि आखिर इन सब नखरों के लिए कहां से इनके पास इतना पैसा आता है ?

अब जरा मेरी ओर देखो ! जानते हो तुम्हारी पृथ्वी के सभी व्यापारों की जिम्मेवारी मेरी ही है ? क्या कभी तुमने सोचा है कि आखिर इन सब के लिए शक्ति आती कहां से है ?

यदि नहीं तो आओ मैं स्वयं तुम्हें बतला दूं।

पर यह बतलाने से पूर्व, आओ जरा इस शक्ति की मात्रा का तो तुम्हें हिसाब बतलाऊँ।

डेढ़-दो सौ वर्गफुट के क्षेत्रफल के तुम्हारे कमरे को, रात के समय प्रकाश से जगमगा देने वाला बिजली का लट्टू, शायद १०० वाट शक्ति का होगा। इतनी मात्रा की शक्ति से तो मेरी किरणें तुम्हारी धरती के प्रति वर्गफुट को निरन्तर स्नात करती रहती हैं।

तुम्हारी पृथ्वी का व्यास लगभग ८००० मील है और इस हिसाब से तुम्हारी धरती का क्षेत्रफल है ५०००,०००,०००,०००,००० वर्गफुट—अर्थात् इतने लट्टुओं के तुल्य शक्ति तुम्हारी धरती पर अवतरित होती है। इस हिसाब से वर्ष-भर में मैं तुम्हारी धरती को लगभग ७५०,०००,०००,०००,०००,००० किलोवाट आॅवर शक्ति अर्पित करता हूँ।

क्या तुम कल्पना कर सकते हो शक्ति की इस मात्रा की ? जिस दर से मैं तुम्हारी पृथ्वी पर शक्ति न्यौछावर करता हूँ यदि उसी दर पर तुम्हें स्वयं शक्ति उपजानी पड़े, तो तुम्हें अपनी धरती में छिपे हुए कोयला, पैट्रोल, मिट्टी का तेल आदि सभी साधन एक बारगी प्रयोग करने पड़ेंगे। तिस पर भी ये सभी साधन केवल तीन दिन में ही 'फुस' हो जाएँगे।

लेकिन मुझे खेद है कि कुछ प्राकृतिक कारणों से तुम इस समूची शक्ति का प्रयोग नहीं कर पाते। लगभग आधी शक्ति तो तुम्हारे वायुमण्डल की बाहरी सतहों से प्रतिफलित होकर अन्तरिक्ष में वापिस चली जाती है। शेष का कुछ भाग वायुमण्डल सोख लेता है।

आओ जरा हिसाब लगाएँ कि धरातल पर पहुँचने वाली शक्ति, स्थूल रूप से किस प्रकार प्रयोग की जाती है। प्रतिवर्ष लगभग ५०००००००००००० किलोवाट शक्ति पृथ्वी की वनस्पति पर पड़ती है। इसका थोड़ा-सा भाग तो पेड़-पौधों के पोषण के काम आता है और शेष वायुमण्डल को लौटा दिया जाता है।

शायद तुम्हें मालूम ही हो कि तुम्हारे समुद्र की सतह पर भी अनेक प्रकार की वनस्पति उपजती और पनपती है। लेकिन क्या तुम्हें इसकी मात्रा का भी कुछ ज्ञान है ? यदि नहीं तो सुनो—मेरी जितनी शक्ति तुम्हारी धरती की वनस्पति के पोषण के निमित्त आवश्यक है, समुद्री वनस्पति को इससे आठ-नौ गुनी अधिक शक्ति चाहिए। इन आंकड़ों के आधार पर अब तुम समुद्र में पैदा होने वाली वनस्पति का हिसाब लगा सकते हो।

मेरी शक्ति का बहुत बड़ा भाग तुम्हारे समुद्रों तथा अन्य जलाशयों के पानी को गर्म करने और उसे वाष्प के रूप में परिणत करने और फिर वाष्प के बादलों को आसमान तक उठाने में प्रयोग होता है। जिस अन्तिम व्यापार का मैंने जिक्र किया है, वह एक रोमांचक तत्त्व है—भला जानते हो कैसे ? बादलों के रूप में ऊँचाई पर मंडराने वाला जलवाष्प अन्त में पहाड़ी स्थानों पर, जलाशयों के रूप में एकत्र हो जाता है। इन्हीं जलाशयों से निकलने वाली नदियों पर बांध डालकर और उनके पानी को ऊँचाई से गिरा कर तुम आज-कल संसार के सैकड़ों स्थानों पर जलविद्युत् पैदा कर रहे हो। तुम्हारे वैज्ञानिकों ने गणना की है कि मेरी जितनी शक्ति तुम्हारी धरती पर पड़ती है उसका एक लाखवां भाग इस व्यापार में व्यय होता है। लेकिन १९५७ तक तुम उसके केवल दसवें भाग से ही लाभ उठा सके।

इन विभिन्न व्यापारों में इस्तेमाल होने वाली विपुल शक्ति, मेरी समूची शक्ति का एक नगण्य भाग है। भले ही तुम्हारी धरती मेरी चहेती पुत्री है, पर मेरी शक्ति की धरोहर के हकदार और भी तो हैं। उन सब तक पहुँचने के लिए अन्तरिक्ष में मेरे कलेवर से चारों ओर किरणें प्रसारित होती रहती हैं। ज्यों-ज्यों शक्ति की किरणों की मुझ से दूरी बढ़ती है, इस शक्ति के वृत्त का फैलाव भी बढ़ता जाता है। जब यह वृत्त फैल कर सवा नौ करोड़ मील व्यासार्ध का हो जाता है तो यह धरती को छूता है। पर धरती का ८००० मील का व्यास इस शक्ति के दो अरब भागों में से केवल एक को ही रोक पाता है—शेष शक्ति अन्तरिक्ष में क्षीण हो जाती है।

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो एक उदार व्यक्ति की भांति दोनों हाथों अपनी शक्ति लुटाता ही रहता हूँ। वह कहां जाती है और उसका अन्त क्या होता है, इसकी मैंने कभी चिन्ता नहीं की। यह तो तुम्हारे वैज्ञानिक ही हैं, जो कागज-पेंसिल लेकर इसका लेखा-जोखा लगाते नहीं थकते। अंकों के योग, घटा, गुणा और भाग से न-जाने वह किस प्रकार के रोमांचक तत्त्व ढूंढते रहते हैं। आओ, तुम्हारे मनोरंजन के लिए इनमें से कुछ और तथ्य पेश करूँ।

तुम्हारी धरती पर विभिन्न साधनों से जितनी विद्युत् शक्ति पैदा की जाती है, वह पृथ्वी पर अवतरित होने वाली मेरी समूची शक्ति का केवल दस लाखवां भाग है।

तुम शायद अपने घर में इस्तेमाल होने वाली बिजली पर कम-से-कम २०-२५ न. पैसे प्रति यूनिट के हिसाब से बिल अदा करते होगे। पर मेरी शक्ति का बिल केवल ५ न. पैसे प्रति यूनिट के हिसाब से भी एक दिन के लिए एक नील (१००००००००००००००) रुपये होगा।

मेरे समूचे शरीर से निकलने वाली शक्ति के परिमाण का एक और विवरण सुनो—यदि इस समूची शक्ति को मेरे और पृथ्वी के बीच सटाए गए, सवा-दो मील व्यास के बर्फ़ के स्तंभ पर केन्द्रित कर दिया जाए तो यह स्तंभ केवल ८ सैकिंड में पिघल जाता।

इस शक्ति के निकलते समय मेरे कलेवर की जो द्युति होती है, आओ उसका भी एक आभास दूं। तुम्हारी धरती की प्रयोगशालाओं में किसी ज्वलन्त पदार्थ की उत्कृष्टता एक मोमबत्ती के प्रकाश की तुलना में मापी जाती है। मेरे धरातल के एक वर्गइंच क्षेत्र की द्युति ५० हजार मोमबत्तियों के तुल्य है।

और मेरे समूचे धरातल का प्रकाश···? लो, जरा गणना करो—

३,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००

लेकिन यह तो है दृश्य शक्ति। इसके अतिरिक्त मेरे शरीर से पराकाशनी किरणें, रेडियो तरंगें, सूक्ष्म कण आदि भी तो निकलते रहते हैं। कुल मिला कर मेरे शरीर से निकलने वाली शक्ति का अनुमान है ३७०,०००,०००,०००,०००,०००,००० मेगावाट।

कुछ लोगों ने हिसाब लगाया है कि तुम्हारी पृथ्वी पर सन् १९३९ और ४४ के बीच जब महायुद्ध छिड़ा था, उस पर कुल खर्च पचास खर्ब रुपए हुआ था। मेरे समूचे शरीर से एक सैकेंड में जितनी शक्ति निकलती है उसकी लागत केवल ५ न. पैसे प्रति यूनिट के हिसाब से इस प्रकार के दस करोड़ युद्धों के बराबर होगी।

अच्छा, शक्ति की मात्रा का कुछ आभास तो तुम्हें मिल ही गया—अब आओ इसके स्रोत पर भी एक नजर डालें।

मेरी शक्ति की प्रचुरता से तुम्हारे प्राचीन वैज्ञानिक भी बहुत प्रभावित थे, पर वे कल्पना करते-करते थक गए कि इतनी अधिक मात्रा में शक्ति पैदा हो कैसे सकती है?

धरती पर तुम्हारी बड़ी-बड़ी भट्ठियों में पत्थर का कोयला जलता है। कल्पना करो मुझ में भी शक्ति इसी तरीके से पैदा होती है। जिस दर से शक्ति का चारों ओर में प्रसारण करता हूँ, उस गणना से तो प्रति घण्टे में मेरे सारे धरातल पर १६ फुट गहरी कोयले की तह जल जाती। और, यदि मेरा समूचा शरीर सबसे उम्दा किस्म के कोयले से बना होता तो भी यह ६-७ हजार वर्षों में समाप्त हो जाता।

क्या तुम कभी कल्पना भी कर सकते हो कि मेरा शक्ति का भाण्डार इतना सीमित—अथवा कि मेरा अन्त इतनी जल्दी हो जाएगा?

नहीं, कदापि नहीं।

स्वयं तुम्हारी अपनी धरती के लोगों ने भी इस कल्पना में विश्वास करने से इन्कार कर दिया। अतः मेरी भट्टी में शक्ति उत्पादन के लिए किसी अन्य तरीके की खोज की जाने लगी।

कोई सौ साल पूर्व, हेल्म होल्ट्ज नामक जर्मन और लार्ड केल्विन नामक अंग्रेज वैज्ञानिकों ने एक रीति की प्रस्तावना की। यदि कोई पदार्थ सिकुड़े तो उसमें गर्मी पैदा होती है। उक्त वैज्ञानिकों का विचार था कि मैं भी सिकुड़ रहा हूँ—निरन्तर सिकुड़ रहा हूँ। उनकी गणना के अनुसार, वर्ष-भर में मेरा व्यास २५० फुट कम हो जाता है—अर्थात् कोई २१ वर्षों में मेरा व्यास एक मील कम हो जाएगा।

मेरा वर्तमान व्यास ८६४००० मील का है। इस हिसाब से तो मैं कोई दो करोड़ वर्ष में निश्शेष हो जाऊँगा। पर नहीं, मेरा जीवन इतना छोटा भी नहीं हो सकता। स्वयं तुम्हारे वैज्ञानिकों को भी यह गणना जंची नहीं। अतः यह प्रस्तावना भी रद्द हो गई।

इसी बीच तुम्हारी धरती पर इन अणुओं और परमाणुओं की बारीकियों की छानबीन शुरू हुई। एक समय ऐसा था जब इस बात का आभास मिलने लगा कि पदार्थ की मात्रा अथवा संहति को शक्ति में बदला जा सकता है। इस विचार के प्रकाश में आने के बाद सन् १९२५ ई. में इंगलैण्ड देश के वैज्ञानिक सर आर्थर एडिन्गटन ने परामर्श रखा कि सम्भव है, सूर्य में भी शक्ति इसी रीति से पैदा होती हो। इस विचार पर सोचते और गणनाओं का नाप-तोल करते हुए अन्त में सन् १९३८ ई. में वीसजाकर और बेथे नामक दो जर्मन वैज्ञानिकों ने इस रीति-नीति की विस्तृत रूपरेखा खींची और आज तुम्हारा समूचा वैज्ञानिक संसार मानता है कि मेरे अन्तर में शक्ति उदजन बमों के विस्फोट से पैदा होती है।

पर मैंने ये उदजन बम अमेरिका अथवा रूस से उधार में नहीं लिए, क्योंकि मेरा इनमें से किसी गुट से कोई सरोकार नहीं (तुम्हारे भारत की तरह)।

—बल्कि सच कहूँ तो असल में मेरे कलेवर में शक्ति उदजन बमों के विस्फोट से पैदा नहीं होती, बल्कि शक्ति उत्पादन का कारण वही है जो उदजन बमों में प्रयुक्त होता है। उदजन बम की भांति, मेरे शरीर में भी उदजन के प्रत्येक दो अणुओं के मेल से हेलिम (हीलियम) तत्त्व का एक अणु (एटम) बनता रहता है। इस क्रिया के दौरान पदार्थ की एक प्रतिशत से भी कम मात्रा शक्ति में बदल जाती है। एक ग्राम (एक माशा) उदजन से लगभग दो लाख किलोवाट-ऑवर शक्ति पैदा होती है।

—अर्थात् उदजन की केवल एक ग्राम मात्रा से १०० वॉट का बिजली का लट्टू लगभग २३ लाख तक निरन्तर जलता रहेगा।

अब शायद तुम पूछ उठो कि शक्ति-उत्पादन की

यह रीति वैज्ञानिकों ने क्यों कर मानी ? इसके लिए तुम्हें याद दिलाता हूँ कि अन्य रीतियों का वैज्ञानिकों द्वारा न माने जाने का कारण यह था, उनके अनुसार मेरे जीवित रहने की अवधि अत्यन्त सीमित रहती। तुलना में यदि तुम गणना करो कि प्रारम्भ में मेरा शरीर समूचे तौर पर उदजन का बना होता और उक्त क्रिया के द्वारा इस सारे उदजन को मैं धीरे-धीरे हेलिम (हीलियम) में बदलता, तो अब तक केवल १½ प्रतिशत उदजन हेलिम में बदली होगी।

हालाँकि इस रीति से, एक सैकेंड में १० करोड़ मन वजन का पदार्थ शक्ति में परिणत हो जाता है, तो भी समूचे परिवर्तन में १३००० करोड़ वर्ष लग जाएंगे। अर्थात् इतने वर्षों तक शक्ति फैलाने की क्षमता हो सकती है मेरी।

इस लम्बी अवधि की गणना पर मुझे कोई एतराज नहीं—तुम्हारे वैज्ञानिक भी सन्तुष्ट प्रतीत होते हैं। इससे इसी तौर-तरीके को प्रामाणिकता मिली है।

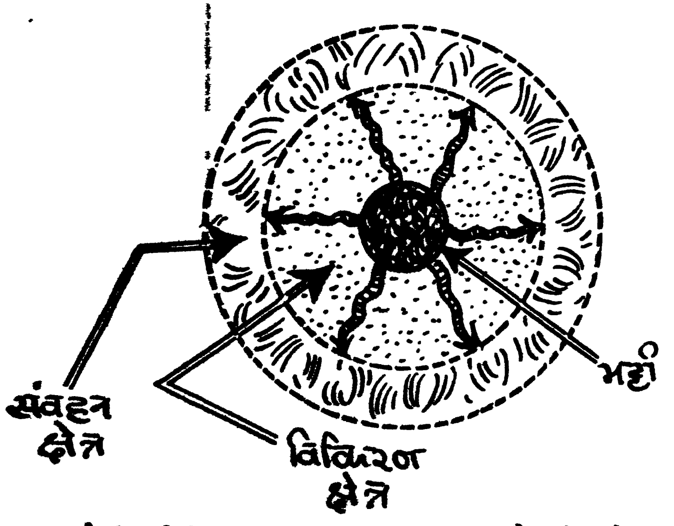
यह शक्ति मेरे केन्द्र की भट्टी में पैदा होती है। तत्पश्चात् यह X (एक्स) और गैमा नामक किरणों के वाहन से, मेरे व्यास का कोई ७० प्रतिशत अंश पार करती हैं। शक्ति के इस संचलन को विकिरण-पद्धति कहते हैं। धरातल तक शक्ति का संचार, संवहन क्रिया (कन्वैक्शन) द्वारा होता है, अर्थात् गर्म पदार्थ हल्का होकर धरातल की ओर आता रहता है और धरातल का अपेक्षातः शीतल (?) पदार्थ······

······जी हाँ, अभ्यन्तर के लाखों अंश की तुलना में मेरे धरातल के ६००० सेंटीग्रेड पर तप रहे पदार्थ को भी शीतल कहा जा सकता है······

······धरातल पर आता रहता है। इस कारण मेरे इस भाग को संवहन क्षेत्र कहते हैं।

इस प्रकार, मेरे गर्भ की भट्टी से पैदा होकर, एक्स और गैमा किरणों के वाहन द्वारा अभ्यन्तर में पहुँच कर और वहाँ से संवहन क्षेत्र में से होती हुई धरातल पर आने वाली शक्ति का मेरे सारे परिवार—ग्रह-उपग्रहों—में प्रदान होता है।

अपने प्रथम परिचय में ही—अर्थात् अपनी पहली भेंट में ही—मैंने तुम्हें बतलाया था कि तुम्हारी धरती पर जिस-किसी भी रीति से शक्ति पैदा की जाती है—वह मूल रूप से मेरे द्वारा ही धरती को दी गयी थी। ईंधन, तेल, पैट्रोल, जलप्रपात आदि सभी साधनों के आधार में मेरी ही किरणें हैं। पर आज का तुम्हारा सभ्य संसार करोड़ों वर्ष पूर्व संचित इस शक्ति के भाण्डारों का तेजी से सफाया कर रहा है और अब उसका प्रयास यह है कि मेरी किरणों को सीधा ही प्रयोग में लाएँ।



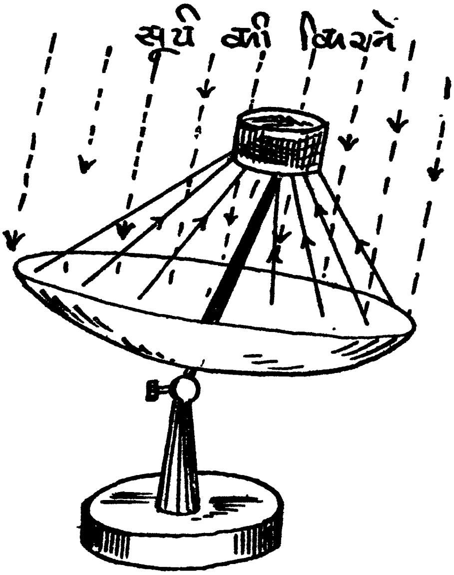
सूर्य की शक्ति का ६०% भाग केन्द्र की भट्टी में पैदा होता है। इसके गिर्द सूर्य के व्यास के ७० प्रतिशत व्यास का विकिरण-क्षेत्र है। इसमें से हो कर, धरातल पर शक्ति संवहन-क्रिया द्वारा पहुँचती है।

तुम धरती वाले शक्ति को अनेक प्रकार से और अनेक कामों में प्रयोग करते हो। तुम चाहते हो कि अब ये सभी काम सीधे मेरी किरणों से ही सम्पन्न हो जाएँ। इसी ध्येय से तुम्हारे हजारों वैज्ञानिक अनुसंधान में जुटे हुए हैं और उन्होंने कुछ रोचक परिणाम भी उपलब्ध कर लिए हैं।

जानते हो सन् १९६० में एक व्यक्ति ने लंदन शहर में एक ऐसी

मोटरगाड़ी का प्रदर्शन किया था, जो अपनी छत पर पड़ने वाली धूप की शक्ति से ही चलती है? इस मोटर की २६ वर्गफुट क्षेत्रफल की छत पर, मेरी किरणों को बिजली में बदलने के निमित्त १०००० सिलिकन कोशिकाएं (सैल) लगीं थी।

उधर तुम्हारे देश भारत की राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला में एक ऐसे चूल्हे का निर्माण किया गया है जो मेरी किरणों की गर्मी से भोजन पकाता है। यह चूल्हा है भी विचित्र, धातु की एक चमकीली तश्तरी पर जो धूप पड़ती है वह इसके फोकस पर



भारत की राष्ट्रिय भौतिकीय प्रयोगशाला में बने सौरचूल्हे का एक आभास।

केन्द्रित हो जाती है। केन्द्र पर एक बर्तन रखने की व्यवस्था है। मेरी धूप की शक्ति, इस साधन द्वारा उस बर्तन पर केन्द्रित होकर, उसे ठीक उसी प्रकार गर्म करती रहती है जैसे चूल्हे की आंच।

और आज-कल तो अमेरिका और रूस के वैज्ञानिकों ने, सौर बैटरी का भी आविष्कार कर लिया है—ऐसी बैटरी जो मेरी धूप से बिजली पैदा करती है। इस प्रकार की बैटरी विशेष प्रकार के ट्रांजिस्टर रेडियो पर लगाई जाती है, जिससे धूप में वह बिना किसी और शक्ति के काम कर सकता है।

ये तो मेरी शक्ति के सीधे प्रयोग के छोटे परिमाण के प्रयास हैं। इसी प्रकार के साधन, अनेक देशों में बड़े पैमाने पर भी तैनात हैं—विशेष तौर पर मरु-प्रदेशों में। दक्षिणी रूस में फलों को पकाने और पानी को डिस्टिल करने के अनेक यन्त्र सीधे मेरी किरणों से शक्ति लेकर काम करते हैं।

और एक विरोधाभास की बात बताऊं? इसी दक्षिणी रूस में ऐसे यन्त्र हैं, जो मेरी किरणों के सीधे प्रयोग से दिन-भर में कोई एक हजार मन बर्फ पैदा करते हैं।

अनेक देशों में विशेष आकार प्रकार के दर्पणों के प्रयोग से ऐसे यन्त्र बनाए गए हैं, जो धातुओं को पिघला सकते हैं। इन धातुओं को पिघलाने के लिए, हजारों अंश का तापमान चाहिए। यह तापमान कोयले की भट्टियों या बिजली के प्रयोग से भी पैदा किया जा सकता है। पर ऐसी भट्टियों में धातु शुद्ध नहीं रहती। मेरी किरणों के सीधे प्रयोग की प्रणाली में धातुओं में अशुद्धि की संभावना नहीं रहती।

इस प्रकार का सबसे बड़ा आयोजन पिरानीस पर्वत पर स्थापित है। इस आयोजन का आधार १००० वर्गफुट क्षेत्रफल का एक आतपी शीशा है, जिसकी सहायता से घण्टे-भर में डेढ़ मन से भी अधिक लोहा पिघलाया जाता है।

इस प्रकार आज-कल मेरी शक्ति का प्रत्यक्ष प्रयोग काफी बढ़ गया है। पर अतीत में मेरी शक्ति का अप्रत्यक्ष प्रयोग ही अधिक था—सिवाय इसके कि सर्दियों में लोग धूप सेका करते थे, अथवा किसी बहुत ठण्डे पदार्थ, जैसे पानी को, धूप में रखकर थोड़ी गर्माइश देते थे।

—और यह अप्रत्यक्ष शक्ति? अरे इसका तो कहना ही क्या। तुम्हारी धरती पर, लकड़ी, कोयला, पैट्रोल, बिजली, अणुशक्ति··· ···जितने भी साधनों से किसी प्रकार की शक्ति पैदा होती है, उन सबका आधार मैं ही तो हूं।

(क्रमशः)

बाल-भारती

मेरा देश

[श्रीमती शान्ति अग्रवाल]

यह वह देश है, यह वह देश है—
जिसकी माटी से सेनानी पैदा होता है।

उत्तर में उत्तुंग हिमालय शीश-मुकुट इसका—
दक्षिण में सागर बन बहता चरणामृत जिसका।
गंगा-यमुना की माला से शोभित वक्षस्थल।
सतलुज, ब्रह्मपुत्र में लहराता उज्ज्वल अंचल।
इसकी सघन बनाली में वेदों का हुआ सृजन,
इसकी गोदी में खेले विज्ञान, ज्ञान, दर्शन।

यह वह देश है, यह वह देश है—
जिसकी घाटी में भी ज्ञानी पैदा होता है।
जिसकी माटी से सेनानी पैदा होता है।।

नहीं शत्रु के सम्मुख अपना शीश झुकाते हम,
आगे बढ़ते हैं पीछे कब पैर हटाते हम?
तुम यदि हमको निर्बल समझो, भूल तुम्हारी है,
हर मानव को बन्धु समझना नीति हमारी है।
हमने सबके अँधियारों को दीप दिखाया है,
पंचशील का प्रिय पावनतम गीत सुनाया है।

यह वह देश है, यह वह देश है—
जिसके पानी से बरदानी पैदा होता है।
जिसकी माटी से सेनानी पैदा होता है।।

अब यमुना में फिर अजगर का बास नहीं होगा,
झूठी बातों का जग को विश्वास नहीं होगा।
हमको अपनी धरती प्राणों से भी प्यारी है,
इस धरती की धूल हमारी, गन्ध हमारी है।
इस पर आँख उठाएगा जो, शीश उतारेंगे,
इसकी रक्षा में तन, मन, धन, जीवन वारेंगे।

यह वह देश है, यह वह देश है—
जिसके आँचल में बलिदानी पैदा होता है।
जिसकी माटी से सेनानी पैदा होता है।।

★ ★ ★

दीप बुझ गया !

[श्री रामकृष्ण 'भारती']

बुझ गया दीप,
छा गया तम,
भीतर और बाहर,
सर्वत्र उदासी,
मूक सब मानव,
स्तब्ध हुआ भूतल,
लगता सब शून्य,
रोता है जग-जग।
मानव की बात क्या—
मूक हैं विहंगम,
मूक है पशु जगत्।
बाजार शून्य हैं
बस-ट्राम खाली हैं,
सब-कुछ क्यों मूक है ?
शान्ति है विराज रही,
लगता है प्राण रुद्ध,
मूकवत् स्तब्ध सभी,
हुआ है वज्रपात।
डगर-डगर, गाँव-गाँव,
नगर-नगर, देश-देश,
फैल गया समाचार—
जवाहर नहीं रहे।

कल ही तो लौटे थे,
देहरादून से वे।
रात को सोए वे,
पूर्ववत् जागने पर—
बेचैनी हुई उन्हें,
डाक्टर बुलवाए गए,
बेहोशी छा गई,
प्रयत्न सब व्यर्थ हुए,
विकल हमें छोड़ गए।

× × ×

भारत अनाथ हुआ,
विश्व में उदासी छाई,
मानवता कराह उठी,
शान्ति-दूत चला गया।
राष्ट्रपिता चले गए,
उनके अभाव को—
सहन किया देश ने,
एक-एक करके,
नेता सब चले गए
तो भी एकाकी
ढोते रहे कार्य-भार॥

★ ★ ★

मत निराशा का पथ बनने दो

[श्री बालकृष्ण वाशिष्ठ]

सींच कर अपने रक्त से भी,
दीप में आशाएँ पलने दो,
लो रोक निराशा को बल से,
मत निज को उसमें बहने दो। मत··· ···

प्रज्वलित करके श्रम की अग्नि,
निराशाएँ उसमें जलने दो,
जले निराशा जिसमें जग की,
उस आस को मन में पलने दो। मत··· ···

चलो तुम जिस श्रेयस्पथ पर,
वहाँ हँसते दीपक खिलने दो,
जो जले लेकर उर में आशा,
उस लौ को लौ से मिलने दो। मत··· ···

कण-कण में तुम दीप जगा कर,
तिमिराङ्कित नभ को हँसने दो,
निज मुस्कानों की वृष्टि कर दो,
और जग को उसमें पलने दो। मत··· ···

लो रोक निराशा के रथ को,
पथ पर अपना रथ बढ़ने दो,
चलो उस पथ पर जो सुगम नहीं,
रथ की रेखा, पथ बनने दो। मत··· ···

छिपता सूरज कहता जग से,
मत जीवन में आशा छिपने दो,
चमकूंगा नभ में पुनः सवेरे,
इस आस से जीवन चलने दो। मत ·· ···

हारो, पर यत्नों से मत हारो,
नहीं हृदय पराजित बनने दो,
गिर कर उठो—कह रही उन्नति,
यत्नों को कभी मत गिरने दो। मत··· ···

नदिया गिरकर नाचे-कूदे,
उस गति में निज को बहने दो,
नहीं रोष-क्रोध हो गिरने पर,
गिरने को हँसी में गलने दो। मत··· ···

★ ★ ★

दीपक के प्रति

[श्री महेशचन्द्र]

दीपक, नव-जीवन के प्रतीक

मेरे इस जीवन-पथ पर
खींचो वह स्वर्णलीक,
जिससे मेरा पथ हो
जाए अति सुश्रीक।
उस पथ पर चल कर
मैं पहुंचूं निज लक्ष्यस्थल,
हे दीप, जगा दो ज्योति नई
जिससे बन जाऊँ मैं अभीत।

दे ज्योति दान तुम करते
रहते जग आलोकित,
जन-जन का तन पुलकित
मन अतिशय पुलकित।
जो पड़े हुए घन अन्धकार
के बीच निराश्रित,
देकर अपना सुस्नेह जगा दो
एक बार फिर ज्योति-दीप।

जल-जलकर निज कर्त्तव्य
निभाना ध्येय तुम्हारा,
सर्वस्व निछावर कर मर-
मिटना ही उपदेश तुम्हारा।
दुर्दिन में जब सब-कुछ
मेरा हो गया क्लिव,
स्नेह वर्तिकाहीन जलूं मैं
कैसे तुम्हीं बताओ दीप।

दीपक, तुम इस जग
को चमका देना,
मेरे इस कलुषित जीवन
को स्वच्छ बना देना।
निरालम्ब हो खड़ा हुआ हूं
घन अन्धकार में,
बनकर तुम्हारी ज्योति, दीप,
तुम मुझे प्रकाशित कर देना।

★ ★ ★

विश्वासघात

[श्री गोपालकृष्ण वशिष्ठ]

बहुत समय पहले की बात है। जंगल में एक लकड़हारा लकड़ियाँ काटने जाया करता था। नित्य का उसका यही धन्धा था। वह प्रातः शौच आदि से निपट कर सीधा जंगला में चला जाता और शाम को लकड़ियों का एक पुलिन्दा नगर में लाकर बेच देता। इस प्रकार उसका और उसके कुटुम्ब का निर्वाह होता था।

एक दिन, जब वह लकड़ियां काटने जंगल में जा रहा था तो राह में उसे एक विशालकाय जंगी नाग बैठा मिला। अब तो लकड़हारे का शरीर पसीने से लथपथ हो गया। वह डर के मारे थर-थर काँपने लगा और मूर्छा खा कर जमीन पर गिर पड़ा।

जब उस विशालकाय काले नाग ने यह सब देखा तो जंगल से जड़ी-बूटी लाकर उसे सुंघाई और सचेत कर दिया। पर जब लकड़हारे ने नाग को अपने पास बैठे फिर देखा तो वह भागने लगा।

उसको भागता देख कर नाग ने उसे विश्वास दिलाते हुए कहा—"डरो नहीं मेरे भाई, मैं तुम्हें कोई नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अरे भाई, मैं तो तुम्हें अपना मित्र बनाना चाहता हूँ। विश्वास रखो, जीवन-भर मैं तुम्हारे साथ सच्ची दोस्ती निभाता रहूंगा। बढ़ाओ मेरी ओर दोस्ती का हाथ।"

पहले तो वह लकड़हारा डरा, लेकिन तुरन्त

ही उसे अपना मित्र बना कर अपने घर ले गया।

इसी प्रकार दिन बीतते गए। वे दोनों मित्र आपस में हिलमिल कर रहने लगे। एक दिन नाग ने लकड़हारे से पूछा—"क्यों मित्र, तुम मुझे नित्य दूध पिलाते हो, खाना देते हो। क्या तुम मुझे कभी कष्ट तो नहीं दोगे। क्या मैं तुम से ऐसी आशा रखूं?"

"मित्र, यह भी कोई पूछने की बात है, सच मानो तो मैं तुम्हें अपने भाई के समान रखता हूं। विश्वास करो, मेरे दोस्त, मैं तुम्हें कोई कष्ट नहीं पहुँचाउँगा।" लकड़हारे ने कहा।

एक दिन आधी रात के समय जब चन्दा मामा अपने तारागण से, बादलों में छिप-छिप कर आँख-मिचौनी खेल रहे थे, तब ऐसे समय में कुछ चोर उस लकड़हारे के घर में सेंध लगा कर घुस गए। वे सीधे लकड़हारे के बिस्तरे के पास आए और उसे जगा कर कोठे की चाबी देने को कहा और साथ में यह भी धमकी दी कि यदि वह उन्हें चाबी नहीं देगा, तो वे उसको गोली मार कर यमपुरी पहुँचा देंगे।

लकड़हारा चोरों के सामने रोया गिड़-गिड़ाया। पर उसकी सुनने वाला वहाँ कौन था। एक ओर तो पिस्तोल उसे अपना निशाना बनाए हुए थी और दूसरी ओर नकाब से बाहर चमकती आंखें थी चोरों की।

अब तो लकड़हारा बेचारा बड़ी दुविधा में पड़ा। इधर कुंआ है तो उधर खाई। यदि वह धन नहीं देता है तो गोली का शिकार बनता है और यदि वर्षों की जोड़ी हुई सम्पत्ति दे देता है तो रोटी के लिए मोहताज हो जाता है। आखिर वह क्या करे?

इसी असमंजस में पड़ा हुआ था, कि अचानक उसके कानों में किसी के चिल्लाने की आवाज आई। उसने देखा कि उनमें से एक चोर जमीन पर पड़ा तड़फ रहा है और इसी प्रकार देखते ही देखते सभी चोर जमीन पर तड़फने लगे। पर जब उसने उस काले नाग को उन पर खेलते देखा तो सारी बात समझ गया। उस समय वह नाग से बहुत प्रसन्न था।

इसी प्रकार हाबड़-तौड़ में सारी रात बीत गई। जब सुबह उसके घर में लोग इकटठे हुए, तो पूछने पर उसने उनको सारी घटना ज्यों की त्यों सुना दी।

उसकी इस बात को सुन कर उनमें से एक आदमी ने उससे कहा—"अरे भाई, पहले तो इस काले नाग को मारो। क्या भरोसा, एक दिन तुम्हें भी डस ले।" लकड़हारे ने यह सुन कर अपना कुल्हाड़ा उठाया और चला मारने उस हितैषी नाग को। पर नाग ने सारी बातें सुन ली थीं। अतः वह पहले ही तैयार हो गया था। लकड़हारे ने उसे अपनी पौली में पड़ा पाया और ज्यों ही उसे मारने के लिए कुल्हाड़ा उठाया, त्यों ही नाग ने उछड़ कर उसे काट खाया और क्रोधित होकर बोला—"विश्वासघाती, मैंने तेरी रक्षा इसी हेतु की थी कि तू मुझे इसके बदले में मार दे। इसके बाद उसने वहां खड़े सभी लोगों को डस लिया और वहां से फिर जंगल में लोप हो गया। इस प्रकार उस दिन से उसने और उसकी जाति ने मनुष्य पर विश्वास करना छोड़ दिया। ●

शिखर की ओर

[श्री रामप्रकाश]

हम चोटी की ओर चले हैं
हम को रोक सकेगा कौन?
जो चिल्लाते हैं पीछे से
हो जाएँगे वे सब मौन।
आँखें हैं उद्देश्य के ऊपर
कदम कदम में टहल

कांटे राह परिस्थितियां ये
उड़ जाएँगी पौन।
हमने प्रण कीना है मन से
स्वयं चुनी है अपनी राह
निश्चित है साफल्य हमारा
रोकेगा, देखेंगे, कौन?

सावन में आम

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि']

लगा महीना यह सावन का,
उछल-कूद खूब मचावन का।
घिर-घिर कर बादल हैं आते,
बरस-बरस कर मन लहराते;
भिगो रहीं कैसी बौछारें!
रहे गगन से छूट हजारे।
आमों का भी मौसम आया;
पानी मुंह में भी भर आया।
पेड़ आम का झूम रहा है;
लदा-लदा भू चूम रहा है।
पके-पके जी, पीले-पीले—
कैसे हैं ये आम रसीले!
टपका पड़ता है बस टपका;
देख-देख मन जाता लपका।
तोते कुतर-कुतर गुण गाते;
साथी भी मुझ को लहकाते;
चले हवा भी हवा लगाती;
मन मेरे में भी है आती—
टप-टप टपका लूं यह टपका!
भला नहीं है पर यह लपका।
चोरी कर के चोरी-चोरी—
अच्छे हैं जो छोरे-छोरी,
नहीं कभी कुछ भी हैं खाते;
खा लें, तो फिर बुरे कहाते।
मार-मार मन मुझ को मरना;
नहीं बुरा पर हरगिज बनना।
दौड़ा-दौड़ा मैं घर जाऊँ;
फैल-पसर कर स्वाँग मचाऊँ;
नोट पिता जी का भुनवाऊँ;
ढीली माँ की गाँठ कराऊँ;
घने-घने फिर लाऊँ पैसे;
नये-नये, कब ऐसे-वैसे!
धना सेठ बन पैसे ला कर,
मकडू खूब अकड़ में आकर;
मन की कर लूं शान रखा कर;
झाबा आमों का पूरा भर,
नकद मोल मैं माली से लूं;
अच्छा कहला, खाऊँ-खेलूं।
नहीं अकेले खेलूं-खाऊँ
संगी-साथी सभी बुलाऊँ;
छका-छका कर आम चुसाऊँ;
उछल-उछल फिर नभ पर छाऊँ।
लगा महीना यह सावन का,
उछल-कूद खूब मचावन का।

★ ★ ★

अनुरूप

श्री शिवकुमार 'पिपासु']

माँ तू मुझे कहती थी,
पढ़ लिख विद्वान् बनेगा।
जवाहर-सा तेजस्वी अरु,
धीर नीतिमान् बनेगा॥
समय आयेगा जब तू
भारत की शान बनेगा।
कारागारों में जा कर,
गगन का चांद बनेगा॥
स्मरण कर बातें तेरी,
हृदय गद्-गद् हो उठता है
मोह ममता त्याग तेरी,
माँ का प्रिय लाल बनूंगा॥
सन्मार्ग पर चल कर,
जवाहर जौहरी हो रहा।
सर्व जग में इसका नाम,
सूर्य भांति चमक रहा॥
यद्यपि साहस रख मैं भी;
इसका अनुकरण करूँगा।
निस्सन्देह एक दिवस मैं,
उसी समान अवश्य बनूंगा॥

भारत की कहानी (८)

[श्री चन्द्रपालसिंह 'मयङ्क']

भारत के खनिज-पदार्थ—

धरती से जो जाएँ निकाले,
खनिज-पदार्थ कहाते वे।
अधिक खनिज जिस जगह निकलते,
देश धनी बन जाते वे।
कोयला, लोहा, सोना, गन्धक,
पेट्रोल, मिट्टी का तेल—
बनतीं औ' चलती हैं जिनसे
सभी मशीनें, मोटर, रेल।
इस भारत की भू में बच्चो!
खनिज-पदार्थ निकलते सब।
आओ, भारत के खनिजों का
तुम को हाल बताऊँ अब—
'कोयला' मिलता है पश्चिम
बंगाल, उड़ीसा और बिहार।
जहाँ निकलता है खानों से
कोयले का विशाल भण्डार।
रानीगंज और झरिया में
बड़ी-बड़ी खानें सरनाम;
है दिन-रात निकाला जाता
जहाँ कोयला आठों याम।
'लोहा'-धातु बड़ी उपयोगी,
हैं इससे बनते हथियार।
इंजन और मशीनें भी हैं
इससे की जातीं तैयार।
सिंहभूमि, सुन्दरगढ़, चाँदा,
द्रुग—में खानें बड़ी-बड़ी।
लोहा वहाँ निकाला जाता
आठ पहर साठ घड़ी।
'सोने' के बनते आभूषण,
पहने जाते घर-घर में।
है 'कोलार' खान सोने की
सुप्रसिद्ध दुनिया-भर में।
है मैसूर राज्य में बच्चो!
यह 'कोलार' नाम का स्थान।
निकट हैदराबाद राज्य में
सोने की 'हट्टी' की खान।
है आसाम प्रान्त में मिलता
'पेट्रोल', 'मिट्टी का तेल'—
डिग्बोई, नोनामाटी में
इसे निकालें दिक्कत झेल।
सिंहभूमि में मिलता 'ताँबा,
'जस्ता' जोधपूर के बीच।
जल नमकीन 'झील साँभर' का,
'नमक' वहाँ से लेते खींच।
हैं इनके अतिरिक्त अन्य कुछ
खनिज-पदार्थ यहाँ मिलते।
हैं लाखों नर-नारी इन से
पलते, बढ़ते औ' खिलते।

❀ ❀ ❀

यमुना रानी

[श्रीमती उर्मिलाकुमारी]

बहुत पुराने समय की बात है, रामपुर नामक ग्राम में दो बहिनें रहती थीं। बड़ी का नाम सोना था और छोटी को यमुना कहते थे। सोना का स्वभाव अच्छा नहीं था। किन्तु, अपने गुणों के कारण यमुना सब को प्रिय थी। इससे सोना को बड़ा बुरा लगता था। माता-पिता के सामने तो वह चुप रहती थी, किन्तु बाद में यमुना को सताने से वह नहीं चूकती थी।

सोना और यमुना के मामा दूर के गाँव में रहते थे। एक बार उन्होंने यमुना को कुछ दिन अपने घर रहने के लिए बुला भेजा। सोना को इस पर बहुत क्रोध आया। वह बड़ी थी, अतः

पहले उसी को बुलाना चाहिए था। यमुना उसके मन की बात को समझती थी, अतः बोली—"बहिन, मेरा तो मन नहीं कर रहा। तुम चली जाओ।"

सोना को यमुना की यह बात भी अच्छी न लगी। मानो आग में घी पड़ गया। मामा-पर जो क्रोध था, उसे यमुना पर उतारती हुई बोली – "चल हट, बड़ी आई मुझे भेजने वाली, तू ही जा उनके घर। मुझे उनके दर्शनों की भी इच्छा नहीं।"

यमुना को उसकी यह बात अच्छी न लगी, पर चुप रही। अगले दिन वह अपने मामा के गाँव की ओर चल पड़ी। उसके हाथ में एक छड़ी थी। उसने अपने बटुए में कुछ बिस्कुट रख लिए थे। मार्ग में एक जंगल पड़ता था। वहां पहुँचते-पहुँचते यमुना थक गई। एक जगह कुछ भेड़ें चर रही थीं। एक कुत्ता उनकी रखवाली कर रहा था। यमुना को वह स्थान बहुत पसन्द आया। वह एक पेड़ के नीचे सो गई।

जब यमुना उठी तब दोपहर हो गई थी। उसने कुछ बिस्कुट खाकर पानी पिया और आगे चल पड़ी। कुछ दूर जाने पर उसने देखा कि एक शेर सामने से आ रहा था। शेर उसके पास आकर ठहर गया और और करुण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा! इससे यमुना का सारा भय दूर हो गया। उसने ध्यान से शेर की ओर देखा। उसका अगला पंजा पृथ्वी पर नहीं टिक पा रहा था। यमुना सब-कुछ समझ गई। उसने शेर के पंजे का कांटा निकाल दिया। शेर ने इसकी ओर प्रेम से देखा और आगे बढ़ गया।

आगे जाने पर यमुना ने देखा कि एक बुढ़िया लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनता से चल रही है। सामने ही एक कुटिया थी। यमुना बुढ़िया के पास गई और बोली—"आओ मां, मैं तुम्हें पहुंचा दूं।"

बुढ़िया ने यमुना की ओर देख कर कहा—"बेटी, भगवान् तुम्हारा भला करे।"

यमुना उसे सहारा देकर कुटिया की ओर चल पड़ी। वहां पहुंच कर उसने वृद्धा का हाथ पकड़ कर उसे चारपाई पर बैठा दिया। इसके बाद उसने उसका सिर दबाया। यमुना ने उसे खाने के लिए बिस्कुट दिए और पानी देकर उसकी प्यास बुझाई। बुढ़िया ने उसे आशीर्वाद दिया। उसने कहा—

"यमुना, जब तुम मामी के घर से लौटो तब मुझसे मिल कर जाना।"

जब यमुना मामा मामी के घर पहुंची तब रात हो चुकी थी। दोनों ने उसका स्वागत किया। यमुना ने उन्हें प्रणाम किया। वह एक महीने तक मामा के घर रही। इस बीच मामा और मामी को उसने अपने अच्छे व्यवहार से मुग्ध कर लिया। पास-पड़ोस की स्त्रियां भी यमुना की प्रशंसा करती थीं। जब उसके जाने का समय आया तब मामा-मामी का मन उसे भेजने को ही न करता था। उन्होंने विदाई के समय उसे बहुत-से कपड़े और मिठाई दी और गांव की नाइन को उसके साथ भेज दिया। जब यमुना जंगल में पहुंची तब वह शीघ्रता से बुढ़िया की कुटिया में गई। वहां का दृश्य देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वहां बुढ़िया के स्थान पर एक सुन्दर स्त्री खड़ी थी। यमुना को देखते ही वह मुस्कराकर बोली—"आओ ··आओ, तुम्हारा नाम यमुना है न?

यमुना ने आश्चर्य से कहा—"आप को मेरा नाम कैसे मालूम हो गया? यहां रहने वाली माता जी कहां गईं?"

उस स्त्री ने हंसकर कहा—"घबराओ नहीं। उन्हीं माता जी ने मुझे तुम्हारा नाम बताया था। वे एक देवी थीं। उन्होंने तुम्हारी दयालुता पर प्रसन्न होकर तुम्हें ये उपहार देने के लिए कहा है। तुम इन्हें अपने साथ ले जाओ।"

चतुर यमुना को समझते देर न लगी कि यही स्त्री वह देवी है। उसने उन्हें प्रणाम किया। जब उसने सिर उठाया तब देवी जा चुकी थीं। उन्होंने उसे उपहार में हीरे-जवाहरात

और सुन्दर वस्त्र दिये थे। वह उन सबको लेकर नाइन के साथ अपने घर आ गई। जब यमुना के माता-पिता ने इन सब चीजों को देखा तब वे फूले न समाये। उसके पिता ने एक बहुत सुन्दर भवन बनवाया और वे सब सुख से रहने लगे।

❀ ❀ ❀

सरिता

[श्री प्रकाशचन्द्र मलहोत्रा]

कल-कल करती बहती सरिता।
अमन्द वेग से बहती सरिता॥
भूमिधरों से निकल निकल कर।
प्रखर स्वर से विकल विकल कर॥
उछल-उछल भंवर बना कर।
निज कूलों को सजा कर॥
कल-कल…………
मानव पर करती है उपकार।
और प्रकृति का है श्रृङ्गार॥
मानव ने कूलों पर बसाए धाम।
लगती है सरिता ललाम॥

अपनी लम्बी दौड़ दौड़ कर।
अपने प्रति मोड़ मोड़ पर॥
कल-कल…………
सरिता है देश को सुखमय।
सागर में होती है जलमय॥
वरुण-देव को लगती सुन्दर।
जब गिरती है बीच समुन्दर॥
सब-कुछ लुटाना इस से सीखो।
गति से चलना इससे सीखो॥
कल-कल…………

❀ ❀ ❀

जीवन के कंटकमय पथ पर, पथिक न हिम्मत हारना !

[श्री भगवतीप्रसाद सोनी 'गुंजन']

रोष-पूर्ण बातों से मन की,
सदा भड़कती आग है।
विनयशीलता के वचनों से,
बढ़ता नव अनुराग है।
वह जीवन तेजस्वी होता,
जिस में हँसता त्याग है।
शक्ति, बुद्धि, कर्मठता जिसमें,
वह तो पुण्य प्रयाग है।
ऐसे मानव की संगति में,
तन-मन सदा सुधारना।
जीवन के कंटकमय पथ पर
पथिक न हिम्मत हारना॥
दुःख-सुख का तो इस जगती में
होता जब तब मेल है।
घटनाओं पर बढ़ती रुकती,
मानव जीवन रेल है।

आलस उष्मा सदा सुखाती,
सुख आशा की बेल है,
उन्नतिशील व्यक्ति नित करता,
संघर्षों से खेल है।
सतत प्रयासों का संबल ले,
बिगड़े कार्य संवारना।
जीवन के कंटकमय पथ पर,
पथिक न हिम्मत हारना॥
सर-सर-सर सरिता कहती है,
सीखो मेरी चाल से,
तरु में फल लगकर सुख देते
हम को ऊँची डाल से,
नभ पर शशि की चंचल किरणें,
रखतीं पांव उछाल के।
ये रख देती हैं मनुष्य हित,
काली रात उजाल के,

(शेष पृष्ठ ५४ पर

एकलिपि विस्तार



युगान्तर (हिन्दी)

[डा. महेन्द्र भटनागर]

आँधी उठी है समुन्दर किनारे।
बढ़ती सतत कुछ न सोचे-विचारे।
लहरें उमड़तीं बिना शक्ति हारे।
रफ्तार यह तो समय की॥

मानव निकलते चले आ रहे हैं।
उन्मत्त हो गीत नव गा रहे हैं।
रंगीन बादल बिखर छा रहे हैं।
झंकार यह तो समय की॥

जर्जर इमारत गिरी डगमगाकर।
आमूल विष-वृक्ष गिरता धरा पर।
बहता पिघल पूर्ण प्राचीन पत्थर।
है भार यह तो समय की॥

रोड़े बिछे थे हजारों डगर में।
नौका कभी भी न डोली भँवर में।
बढ़ती गयी व्यक्ति-झंझा समर में।
पतवार यह तो समय की॥

इंसान लेता नई आज करवट।
सम्मुख नयन के उठा है नया पट।
गूंजी जगत् में युगान्तर की आहट।
ललकार यह तो समय की॥

❀ ❀ ❀

युगान्तर (कन्नड़)

[अनु. श्री नाणी]

कडलंचिनल्लि सुळि गाळि येद्दिहुदु।
हिंदु मुंदरियदेल्लँ हॆच्चुत्तलिहुदु।
शक्ति गुंददे तेरेय बेन्नट्टुतिहुदु।
कालपुरुषन पयण मुंदुवरिदिहुदु॥

मानवरु मैदुंबि होर बरुतलिहरु।
हुरुपिद होस हाडु हाडुत्तलिहरु।
बण्ण बण्णद मुगिलु एद्दु कुणियुतिदे।
काल पुरुषन रुद्र वीणे नुडियुतिदे॥

हळेय गोपुर कळचि उरुळि बीळुतिदे।
विषवृक्ष बुडसहित मुरिदु मलगुतिदे।
हळेय शिले हुडियागि करगि हरियुतिदे।
काल पुरुषन कोप हल्लु कडियुतिदे॥

अड्डि सासिर बरलि हेज्जे मुंदिरलि।
सुळिगाळि येद्दिरलि दोणि सागिरलि।
व्यक्ति बिरु गाळिगळ युद्ध नडेदिरलि।
काल पुरुषनु हुट्टु हिडिदु सागिसलि॥

निद्दे तिळिदेद्दिहनु नवयुगद नरनु।
काणुतिहनेळुतिह होसतु तेरेयन्नु।
युग युगान्तर बायितॆरॆदु कूगुवनु।
काल पुरुषनु कहळे मूदि करेयुवनु॥

चला पुढ़े (मराठी)

[श्री अज्ञात]

धुरीण वीर हो चला चमूतया जुळा मिळा ।
असे स्वतन्त्र जाहला स्वदेश हिन्द कापुला ॥

उठा तवीय रक्षणी समस्त एक झणी ।
सुसज्ज व्हा रहा खड़े चला पुढ़े चला पुढ़े ॥

समस्त एक व्हा पुढ़े तिरंगी बाहुटा पुढ़े ।
सपङ्क सिंग बाजते सताल ढोल गाजते ॥

गड़ी तुम्ही चमूतले बड़े उदण्ड आगळे ।
जवान मर्द फाकडे चला पुढ़े चला पुढ़े ॥

चला जुगे टिपेवरी समेवरी बरोबरी ।
सवेग क्षिप्र उँचला स्वकीय धीर पाँउला ॥

नलेश ही ढ़ळा चळा नमागती वळा चळा ।
नियोजिल्या स्थलाकड़े चला पुढ़े चला पुढ़े ॥

न ध्येय-मार्ग हा सुधा असंख्य यांत आपदा ।
पदोपदी धकामुकी अनेक घात-पात की ॥

समोर मृत्यु नेहमी तदीय कोण घेहमी ।
जिणे इथे सड़े सड़े चला पुढ़े चला पुढ़े ॥

उदग्र बाहुटा असो सदैव सूर्यसा लसो ।
म्हणून सर्वसंघटा तदीय रक्षणी झटा ॥

जगी बसोत बन्धुता समानता स्वतन्त्रता ।
म्हणून व्हा पुढ़े पुढ़े चला पुढ़े चला पुढ़े ॥

आगे बढ़ो (हिन्दी)

[अनु०—श्री विद्यासागर शर्मा]

धुरीण वीर हो चलो चमू चमू मिलो जुलो ।
विमुक्त हुआ आज है स्वदेश हिन्द देश है ॥

तदीय रक्ष को उठो समस्त वीर एक हो ।
तैयार हो खड़े रहो आगे बढ़ो आगे बढ़ो ॥

समस्त एक हो बढ़ो ध्वजा तिरंगी अग्र हो ।
सिंगा नाद बज रहा सताल ढोल बज रहा ॥

वीरो, तुम्हीं तो मित्र हो विचित्र शूर धीर हो ।
जवान मर्द हो बढ़ो आगे बढ़ो आगे बढ़ो ॥

चलो एक राह पर समान एक साथ स्वर ।
सवेग क्षिप्र चाल से स्वकीय धैर्य-पाँव से ॥

न लेशमात्र भी ढलो न पीछे भी कभी मुड़ो ।
नियुक्त ध्येय पर बढ़ो आगे बढ़ो आगे बढ़ो ॥

सरल न ध्येय-मार्ग है असंख्य कष्ट-क्लिष्ट है ।
पदे पदे असह्य औं अनेक घात-पात है ॥

सदैव मृत्यु सामने कौन जाय थामने ।
रक्ताभ-मार्ग पर बढ़ो आगे बढ़ो आगे बढ़ो ॥

ध्वजा उदग्र ही रहे सदैव सूर्य-सी लसे ।
इसी लिए सुसन्ध हो तदीय रक्ष में डटो ॥

बसे जगत् में बन्धुता समानता स्वतन्त्रता ।
इसी लिए आगे बढ़ो आगे बढ़ो आगे बढ़ो ॥

(पृष्ठ ५२ का शेष)

पंच तत्त्व के प्यारे पुतले,
पर-हित तुम न विसारना ।
जीवन के कंटकमय पथ पर,
पथिक न हिम्मत हारना ॥
सुख की आशा जीवित रखो,
दुःख-पलनों में पाल के ।
सुन्दर सपना टूट न जाये,
बोलो बात सम्हाल के ।
नैनों का खारा जल सोखो,
साहस के रूमाल से ।
मानव डरना जग में छोड़ो,
भीषण दुख के व्याल से ।
तुम प्रधान हो इस भूतल पर,
उर में तुम्हें विचारना ।
जीवन के कंटकमय पथ पर,
पथिक न हिम्मत हारना ॥

पुस्तक परिचय

मेरे जीवन के अनुभव—लेखक, श्री सन्तराम बी. ए.—प्रकाशक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी १—पक्की जिल्द, पृष्ठ संख्या २८६—मूल्य रु० ४.५० ।

हिन्दी में प्रेरक जीवनी साहित्य की न्यूनता है। पाश्चात्य देशों में लेखकों, राजनीतिज्ञों, वैज्ञानिकों की जीवनियाँ बड़े उत्साह से पढ़ी जाती है, क्योंकि उनसे नई पीढ़ी को आगे बढ़ने की प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन प्राप्त होता है। अंग्रेजी में जीवनी-साहित्य प्रचुरता से है। हर्ष है कि हिन्दी के प्रकाशक भी अब उत्साह से इस दिशा में प्रयत्नशील है। पंजाब के वयोवृद्ध अनुभवी लेखक तथा समाज-सुधारक श्री सन्तराम की यह जीवनी कई दृष्टियों से महत्त्व-पूर्ण बन पड़ी है।

श्री सन्तराम का जीवन एक उग्र समाज-सुधारक का संघर्षमय जीवन रहा है। पर लेखक और समाज-सुधारक से ऊपर वे एक मानव रहे है, जिनके पास एक मौलिक दृष्टिकोण, पृथक् मिशन, परिपक्व अन्तर्दृष्टि और जीवन-दर्शन रहा है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के जीवन-दर्शन, साहित्यिक जीवन, जात-पाँत तोड़क मण्डल तथा गार्हस्थ्य जीवन शीर्षक प्रकरण विशेष मनोरंजक और उपयोगी बन पड़े हैं। किसी भी नई आयु शुरू करने वाले नवयुवक को समाज-सुधार और साहित्यिक जीवन में प्रवेश करने में जीवन-विद्या का यह निचोड़ उपयोगी सिद्ध होगा।

समाज-सुधार का कार्य निश्चय ही बड़ा कठिन है, क्योंकि स्वयं हमारे पिछड़े हुए बन्धु-बान्धव अड़चन और विरोध उत्पन्न करते हैं, तिरस्कार होता है, आयु भर अपनी सन्तान के भावी जीवन के लिए चिन्तित रहना पड़ता है। जात-पाँत तोड़क मण्डल के मिशन की सफलता का पूरा श्रेय इस पुस्तक के लेखक की साधना, तपस्या और अटूट लगन को है। उनके कड़वे अनुभवों से बड़ा लाभ उठाया जा सकता है।

साहित्यिक जीवन के अन्तर्गत लेखक ने गत ५० वर्षों में हिन्दी की स्थिति, आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पत्रकारिता की उन्नति, नए लेखकों के लाभ की अनेक उपयोगी बातें, तथा उपयोगी अनुभवों का निचोड़ प्रस्तुत कर दिया है। यह हिन्दी के नए लेखकों, पाठकों और प्रेमियों के लिए उपयोगी है।

जीवन-दर्शन के अन्तर्गत छोटी-छोटी घटनाएँ दी गई हैं। इनमें लेखक की रोचक आपबीती घटनाएँ हैं जो बहुत ही उपयोगी शैली में लिखी गई हैं। संक्षेप में उनका जीवन दर्शन यह है कि मनुष्य एक-दूसरे के काम आये और नई मानवता का विकास होता चले।

पुस्तक कहानी जैसी रोचक और धर्मपुस्तकों जैसी ज्ञानवर्द्धक है। लेखक ने बड़ी सचाई से अपने विषय में बुरी-अच्छी सभी बातें स्पष्टता से कह डाली हैं। दीपक की तरह यह मार्गदर्शक है और प्रेरक भी। यह एक सफल जीवनी है।

लेखक ने अपनी पुस्तकों की एक सूची मात्र दे दी है। अच्छा होता यदि संक्षेप में उसका विषय और मिलने का स्थान भी निर्दिष्ट होता। क्या ही अच्छा हो यदि पंजाब का भाषा विभाग "सन्तराम ग्रन्थावली" के रूप में उनके समूचे उपयोगी साहित्य को प्रकाशित करे। हम ऐसा अनुभव करते हैं कि इस अमूल्य ज्ञानराशि का उतना प्रचार-प्रसार नहीं हुआ जितना वास्तव में होना चाहिए। सस्ते संस्करण निकलने बड़े जरूरी हैं। —डा० रामचरण महेन्द्र

हिन्दी-साहित्य और बिहार (द्वितीय खण्ड)— सम्पादक : आचार्य शिवपूजन सहाय, सहायक संपादक : श्री बजरंग वर्मा—प्रकाशक : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना —पृष्ठ संख्या : ४१२, मूल्य : आठ रुपए।

बिहार-वासी हिन्दी-साहित्य-सेवियों का विवरणात्मक परिचय पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत करने का बहुत कुछ श्रेय आचार्य शिवपूजन सहाय को है। यह योजना उन्हीं की देख-रेख में क्रियान्वित होनी प्रारंभ हुई थी। इस योजना का प्रथम पुष्प १९६० ई० में सम्मुख आया। इस में सातवीं शताब्दी से अठाहरवीं शताब्दी तक के बिहार-वासी हिन्दी-सेवियों का परिचयात्मक अध्ययन था। प्रस्तुत ग्रंथ इसी का द्वितीय खण्ड है जिस में उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्वार्द्ध के साहित्य-सेवियों का परिचय है।

ग्रंथ की प्रस्तावना में सहायक सम्पादक ने स्वयं स्वीकार किया है कि प्रथम खण्ड में बिहार के बारह सौ वर्षों का इतिहास है। वह एक प्रकार से अन्धकार-युग का इतिहास है क्योंकि अधिकांश साहित्यकारों का जन्म तथा निधन-काल ही अनिश्चित रहा है, परन्तु समालोच्य-खण्ड में यह बात नहीं। ग्रंथ में तीन अध्याय तथा छः परिशिष्ट हैं। प्रथम अध्याय में उन ४३ साहित्यकारों को रखा गया है जिनका जन्म-काल ज्ञात है। इनमें आठ की रचनाओं के उदाहरण उपलब्ध नहीं। द्वितीय अध्याय में वे ७१ साहित्य-सेवी सम्मिलित हैं जिन का जन्म-काल अनुमित है। इनमें से ३७ की कृतियों के उदाहरण उपलब्ध नहीं। तृतीय अध्याय में वे ६९ साहित्यकार हैं जिनका जन्म-काल उक्त काल-खण्ड में ही अनिश्चित है। यहां भी ३५ की रचनाओं के उदाहरण प्राप्य नहीं। परिशिष्ट १ में स्थान पाने वाले ६८ साहित्यकारों का जीवन अज्ञात है, कुछ उदाहरण ही प्राप्य हैं। परिशिष्ट २ में १४ साहित्यकारों का परिचय तथा रचनाओं के उदाहरण हैं। ये साहित्यकार अन्य प्रान्तों के हैं परन्तु इन का कार्यक्षेत्र बिहार रहा है। तीसरे परिशिष्ट में केवल २० नवीन परिचय हैं, शेष ५२ साहित्यकार प्रथम अध्याय से सम्बद्ध हैं। इनके विषय में नवीन जानकारी यहां दी गई है। ग्रंथ में सम्मिलित साहित्यकारों में से अधिकांश ने चम्पारन तथा सारन को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। अधिकांश साहित्यकारों ने व्रजभाषा में रचना की है। अवधी, खड़ी बोली, मैथिली तथा भोजपुरी में भी साहित्य उपलब्ध है। अधिकांश कृतियों का सम्बन्ध भक्ति तथा रीति परम्परा से है। भक्ति, शृंगार, वीर रस का इनमें प्राधान्य है। जिन साहित्यकारों को इस ग्रंथ में स्थान दिया गया है, कविता के अतिरिक्त गद्य, नाटक, भाषा-विज्ञान आदि के क्षेत्र में भी उनकी सेवाओं का उल्लेख हैं।

परिषद् द्वारा प्रकाशित यह संग्रह निश्चय ही गौरव तथा उल्लास का विषय है। अधिक अच्छा होता कि केवल उन साहित्यकारों और उन की कृतियों को ही ग्रंथ में स्थान दिया जाता जिन की प्रामाणिकता असंदिग्ध थी। तथापि अन्य प्रान्तों के साहित्य-सेवियों को इस से विशेष प्रेरणा प्राप्त होगी और इस से उनके ज्ञान में वृद्धि होगी।

कलाम-ए-बेनियाम (उर्दू)— लेखक : एन. बी. सेन 'नाशाद'—प्रकाशक : न्यू बुक सोसायटी आफ इंडिया, करोल बाग, दिल्ली—पृष्ठ संख्या : २७२, मूल्य : पांच रुपए।

'कलाम-ए-बेनियाम' हज़रत नाशाद का दूसरा काव्य-संग्रह है। प्रथम काव्य-संग्रह 'कलामे-बेलगाम' १९६० ई० में प्रकाशित हुआ। व्यक्ति अथवा समाज अथवा परिस्थिति में जो वस्तु भी कवि को अच्छी न लगी, उसने तीखी चोट की। कुछ व्यक्ति क्रुद्ध अवश्य हुए होंगे। श्री नाशाद ने प्रथम संग्रह के प्रकाशन पर घोषणा की थी कि मैं और कविता न लिखूंगा, परंतु शायर की भावनाओं पर रोक कैसी? यह तो नदी का बहाव होता है। द्वितीय संग्रह इसी का फल है।

इस संग्रह में आत्म-परिचय, 'कलामे-बेलगाम' की कहानी के अतिरिक्त साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक आदि विषयों पर कविताएँ हैं। इन कविताओं में कवि का मस्त-मौला, फक्कड़ाना व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित है। वह अपनी बात बिना किसी लाग-लपेट के तीखे स्वर में कहता है। कवि

जो ठहरा, जिसे न झिझक है, न डर और न प्रलोभन। वह कहता है—

हम शायर खुददार हैं इज़्ज़त नहीं खोते।
महफिल में कभी दाद की खातिर नहीं रोते।
हां आलमे-आकिल का काफी है इशारा।
जाहिल से कभी दाद के तालिब नहीं होते।

'नाशाद' दिल्ली का कहीं गवर्नर बन जाए तो क्या होगा—

तो शहर की हालत को बदल डालूंगा यक्सर।
भट्ठी ही शराबों की लगा दूंगा मैं घर-घर।
जमुना के करीं विसकी की गङ्गा ही बहा दूँ।
मोरार देसाई को भी कुछ जाम पिला दूँ।
खाने की हर चीज़ के मैं रेट बढ़ा दूं।
हर शायर बेकार को सूली पै चढ़ा दूं।

इक आब के कतरे से तो यह बन गया इन्सां।
मिल जाए हुकूमत तो यह बन सकता है शैतां।

कहीं-कहीं सीध-सादे अनुप्रास में पते की बात कही है—

हसरत तो नाम है मेरी बेगम अमीर का।
मुझको चिढ़ाने के लिए मैके को जब चली।
हसरत को देखा मैंने तो हसरत से यह कहा।
फिर पास क्या रहेगा जो हसरत निकल गई।

आशिक से प्रेमिका डरती है, क्यों? कैसी कल्पना है—

खुदा से तो डरती नहीं दिलरुबा।
मगर मुझसे डर—क्या है यह माजरा।
सबब मैंने पूछा तो कहने लगी—
है आशिक का रुतबा खुदा से सवा।

व्यंग्य कवि का विशेष गुण है। 'खादिमे कौम' आज कैसे हैं:

तू इकबाल गाँधी सुनाता चला जा।
एनर्जी के बिस्कुट भी खाता चला जा।
कि दोनों से होगी जो शक्ति मुयस्सर।
उसी से ही बिल्डिंग बनाता चला जा।

यह गाँधी की टोपी वो नेहरू की अचकन
बना देंगी तुझ को तो ये शेर अफगन
तू ताकत शजाअत दिखाता चला जा
कयामत की दुनियां बुलाता चला जा

शिकन के लिए आबरू अपनी खो दे
तू गङ्गा में जा कर हया को डुबो दे
असूलों को अपने मिटाता चला जा
कदम लीडरों से मिलाता चला जा

हजरत नाशाद की कविताओं में यथार्थ-दर्शन, कल्पना की उड़ान, विचारों की सादगी तथा उच्चता, सुधारवादी भावना और भाषा की सरलता है। उर्दू की विशेष जानकारी न भी हो तो भी इन कविताओं का रसास्वादन हो सकता है। साहित्यिक जगत को कवि से इसी प्रकार के संग्रह की अपेक्षा है।

—मोहन मैत्रेय

कौण्डिन्यस्मृति—धर्मसुधाख्यहिन्दी व्याख्या सहित; संपादक तथा प्रकाशक—विद्याभूषण पं० जगद्राम शास्त्री कौण्डिन्य (कविरत्न); सनातनधर्म संस्कृत कालेज, होशियारपुर; मूल्य १.००।

प्राचीन स्मृतिकारों की शैली पर रचित कौण्डिन्य स्मृति प्राचीन और नवीन धार्मिक भावनाओं का संमिश्रण है। इसमें सूत्र रूप से पुराने धर्म के साथ नए युग के अनुरूप लोक-कल्याणकारी धर्म का सात अध्यायों के १५८ श्लोकों में गम्भीरता, विद्वत्ता एवं तीखे अनुभव के साथ उपदेश है। धर्म को साधारण, विशेष और कालिक (सामयिक) भागों में बांटा है। इस स्मृति में विशेष-धर्म के प्राचीन नियमों में, जो आज के युग की परिस्थिति में समाज-व्यवस्था के घातक सिद्ध हो गए हैं, उनके स्थान पर नए नियमों या सुधारों का उपदेश दिया गया है। वर्ण-धर्म के अनुसार युद्धकार्य केवल क्षत्रियों का धर्म होने से सेना में क्षत्रियों के अतिरिक्त कोई और वर्ग भरती नहीं हो सकता। इसी प्रकार शासन के अन्य कार्यों में भी अन्य वर्गों का अधिकार नहीं है। एक वर्ग दूसरे वर्ग के कार्यों में सहायक नहीं हो सकता। परन्तु आज सबके कार्यों में सबकी आवश्यकता है और सबके कार्य कर भी रहे हैं। अतः स्मृतिकार का वचन है—

भृत्यादौ योग्यतैवैको मानदण्डो विघुष्यताम्।
जातिवर्ग विभेदस्तु सर्वथा परिहीयताम्॥

नौकरी का मानदण्ड केवल योग्यता ही होना चाहिए, उसमें जाति या वर्ग विशेष का ध्यान नहीं रखना चाहिए। वर्तमान में प्रचलित संन्यासियों द्वारा चेलों और मठ निर्माण का शासन द्वारा निषेध का विधान किया है। लड़कियों के पैतृक सम्पत्ति के अधिकार के विषय में प्राचीनकाल के सर्वथा निषेध में जिन लड़कियों के भाई न हों उन्हें अधिकार की विशेषता दी है (३,७)। प्राचीन काल की चार, तीन या एक व्यक्ति की परिषद् को स्वीकार करते हुए भी वर्तमान शासन व्यवस्था में जन-संख्या के अनुपात से अनेक सदस्यों की एक केन्द्रीय सभा को महत्त्व दिया है। प्रान्तीय विधान सभाओं की वृथा व्यय के कारण अनावश्यकता समझाते हुए प्रान्तों में राज्यपाल के शासन पर बल दिया है। केन्द्रीय शासन की नीति और निर्णयों का समस्त देश में समान रूप से प्रचलन होना चाहिए—

केन्द्रनिर्णीत एवार्थः सर्वदेशे प्रचार्यताम्।
करव्यवस्थाप्येकैव विषमा विनिवार्यताम्॥

राष्ट्रभाषा, प्रान्तभाषा और विदेशीभाषा के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है। देशद्रोही, छल से व्यवहार करने वाले और घूंसखोरों को मृत्यु दण्ड की व्यवस्था दी है। बलाद् धर्मपरिवर्तन में साधारण शुद्धि का विधान बताया है। भावुक शासक की निन्दा की है। वास्तव में इस स्मृति में समय-धर्म को ही प्रधानता दी गई है और इस पर चलने का आग्रह किया गया है (७,१९)। इसके आचरण से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में लोक-कल्याण की भावना सहज में जागृत हो सकती है। अतः राष्ट्रीय भावों (समय-धर्मों) से ओत-प्रोत यह स्मृति प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपादेय है। संस्कृत के अर्थ को समझने के लिए हिन्दी अनुवाद साथ देने से असंस्कृतज्ञों के लिए भी यह सुबोध हो गई है। इस भयङ्कर नैतिक पतन के युग में राष्ट्रीय जीवन में पावनता लाने के लिए इस प्रकार के साहित्य की उत्कट आवश्यकता है। प्रस्तुत रचना ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की है जिसके लिए समाज कौण्डिन्यमहोदय का कृतज्ञ रहेगा। आशा ही नहीं, विश्वास है कि लोक और शासन दोनों में इस आधुनिक स्मृति को पूर्ण आदर मिलेगा। —पीताम्बरदत्त शास्त्री

बाल उपन्यास

बर्फ की गुडिया—ले० जयप्रकाश भारती।
सुबह के पंछी—ले० मनहर चौहान।
चाँद से आगे—ले० ओमप्रकाश।
मां का आंचल—ले० शान्ति भटनागर।
एक था छोटा सिपाही—ले० विमला शर्मा।

प्रकाशक, शकुन प्रकाशन, ११, दरियागंज, दिल्ली ६—मूल्य प्रथम तीन का १ रु., अन्तिम दो का १.२५ रु. प्रत्येक।

विदेशों में बाल साहित्य के प्रकाशन पर जितना ध्यान दिया जाता है, उतना अभी भारत में नहीं दिया जाता। यहां तो मोटे टाइप में किताबें छाप देना ही बाल साहित्य के लिए पर्याप्त समझा जाता है। वस्तुतः न केवल विषय अपितु भाषा, प्रस्तुतीकरण, मुद्रण और सजावट सभी दृष्टियों से विशेष होने पर ही कोई पुस्तक अच्छा बाल साहित्य बन सकती है। इसलिए प्रकाशन व्यवसाय में यह एक 'स्पेशलाइज्ड' अंग है और इसी भांति इसका विकास भी किया जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि इसके लिए बाजार भी विपुल है और बाल साहित्य का कोई भी निर्माता समझदारी से काम करने पर कभी घाटे में नहीं रह सकता।

दिल्ली के शकुन प्रकाशन द्वारा प्रस्तुत ५ बाल उपन्यास निस्संदेह अपने प्रकार के अनोखे प्रकाशन हैं। ये केवल बाल साहित्य का ही निर्माण करते हैं और अब तक ५० के लगभग उत्तम पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं। वस्तुतः छोटे बच्चों के लिए उपन्यास की कल्पना ही हिन्दी प्रकाशन में नई है। जिस प्रकार बड़ी उम्र के पाठक कहानियों की अपेक्षा उपन्यासों में अधिक रुचि लेते हैं, उसी प्रकार बच्चे भी लम्बे कथानक अधिक पसंद करते हैं, क्योंकि इसमें उनकी कल्पना को विस्तार मिलता है। परन्तु इस ओर अभी उचित ध्यान नहीं दिया गया है।

पहला उपन्यास 'बर्फ की गुडिया' पहाड़ों में बसे एक निस्सन्तान दम्पति की कहानी है जो अपने लिए

एक बर्फ की गुड़िया बना लेते हैं, परन्तु मानवाकार ग्रहण करते ही उसमें जान आ जाती है और वह सामान्य बच्चों की तरह खेलने-कूदने लगती है। पर वह गर्मी और आग से बीमार पड़ जाती है या नष्ट हो जाती है और परी लोक को चली जाती है। तब वह स्वप्न में अपने माता-पिता के पास आती है।

'सुबह के पंछी' एक जासूसी ढंग की कहानी है और चूंकि बचपन में जासूसी उपन्यास पढ़ने का सभी को शौक होता है, इसलिए यह कथानक बहुत मनोवैज्ञानिक है। स्कूल में नाटक होने वाला है और दो बच्चे उसमें नायक का रोल करना चाहते हैं। नरेश जासूसी उपन्यासों का शौकीन है और अपने विरोधी को हटाने के लिए उसे नकाबपोश लड़कों से पिटवा देता है। दीपक मुंह पर घाव हो जाने के कारण नाटक में भाग नहीं ले सकता और वह अब नरेश को मिल जाता है। परन्तु दीपक का मित्र अमर, जो नाटक में डाकू का रोल कर रहा है, इस बदमाशी के लिए नरेश से बदला लेना चाहता है और नाटक के समय असली डाकू की तरह उसकी ठुकाई करता है। अन्त में तीनों मित्र बन जाते हैं और संगठित होकर काम करने की शपथ लेते हैं।

'चांद से आगे' एक वैज्ञानिक ढंग का उपन्यास है जिसमें एक रहस्यमयी मूर्ति के बहाने मंगल लोक की यात्रा कराई जाती है और इस यात्रा में आकाश तथा ग्रह नक्षत्रों के भेद बता दिए जाते हैं। यह उपन्यास बहुत ही रोचक और ज्ञानवर्धक है।

'मां का आंचल' में दुनिया की सैर के लिए घर छोड़कर भाग जाने वाले बच्चों की कहानी है जो सब कुछ देखने-भालने के बाद अपनी मांओं के पास वापस लौट आते हैं। यात्रा बच्चों की रुचि का विषय है और साहसिक कार्य करना भी, इसलिए वे इसे बड़े चाव से पढ़ेंगे।

'एक था छोटा सिपाही' बच्चों में वीरता के भाव भरने और उन्हें सैनिक कार्यों में प्रवृत्त करने की दृष्टि से उपयोगी है। इसमें लद्दाख के एक गांव में रहने वाले एक बालक की कहानी है जो फौज में अफसर बनने की महत्त्वाकांक्षा मन में छिपाये है। इसलिए वह एक सिपाही से दोस्ती कर लेता है। पर उसका सिपाही मित्र एक दिन अचानक कहीं गुम हो जाता है। तब वह बाकायदा सिपाही बनकर उसकी खोज के लिए निकलता है और अनेक खतरों को पार करता तथा मार्ग में हिम मानव आदि से भेंट करता चीनियों के कैम्प में पहुंच जाता है। यहां उसका मित्र उसे मिल जाता है परन्तु भाग चलने के बजाय वह उसे एक ऐसा काम करने को बता देता है जिससे देश का हित होगा और चीनियों की बहुत सी वह गोला बारूद नष्ट हो जाएगी जिससे वह शीघ्र ही फिर हमला करना चाहते हैं। बालक अपनी जान जोखिम में डालकर यह कार्य करता है, फिर खुद भी मर जाता है।

सभी उपन्यास बड़े अच्छे हैं और बढ़िया कागज पर छपे हैं। कवर तथा भीतर के चित्र अत्यन्त सुन्दर हैं। हम इनकी सफलता की कामना करते हैं।

पत्रिकाएं

ग्राम-भावना—जवाहर-स्मृति-अङ्क—सम्पादक, ओमप्रकाश त्रिखा, जगदीशचन्द जौहर—प्रकाशक, पंजाब स्टेट गांधी स्मारक निधि, पट्टी कल्याणा(करनाल)—मूल्य १ रुपया।

गांधी-स्मारक-निधि, पंजाब, की पत्रिका का प्रस्तुत 'जवाहर-स्मृति-अङ्क' बड़ी योग्यता से संपादित तथा सुरुचि-पूर्वक प्रकाशित किया गया है। इस में नेहरू जी के सम्बन्ध में विनोबाजी, श्री दिवाकर, काका कालेलकर, वियोगी हरि तथा यशपाल जैन जैसे गांधीवादी विचारकों के लेख है और विविध विषयों पर दिए गए नेहरू जी के भाषणों तथा रचनाओं से चुने हुए अंश हैं। इसके अतिरिक्त बीस के लगभग चित्र हैं जो विभिन्न स्थितियों में श्री नेहरू तथा उनके परिवार का दिग्दर्शन कराते हैं। पत्रिका की छपाई-सफ़ाई उत्तम है। ऐसा सुन्दर अङ्क निकालने के लिए हम सम्पादक को बधाई देते हैं।

—चिरंतन

सम्पादकीय



एक राष्ट्रलिपि की ओर—

यह जानकर संतोष हुआ है कि शिक्षा मंत्रालय ने सभी भारतीय भाषाओं को लिखने की एक लिपि स्वीकार करने के संबंध में विचार करना आरम्भ कर दिया है। शिक्षा मंत्री श्री छागला ने विभिन्न मुख्य मंत्रियों से इस सम्बन्ध में परामर्श किया है। बहु-संख्यक मुख्य मंत्रियों ने नागरी को राष्ट्रलिपि बनाने का प्रबल समर्थन किया है। हां, कुछ ने विरोध भी किया है और एक-आध ने रोमन को एक राष्ट्रलिपि बनाने का परामर्श दिया है।

अब शिक्षा मंत्रालय केन्द्रीय शिक्षा परामर्शक मण्डल के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करेगा। मण्डल की बैठक आगामी अक्टूबर में बंगलौर में हो रही है, जहां इस सम्बन्ध में आगे और विचार चलेगा।

एक लिपि की आवश्यकता के सम्बन्ध में इन स्तम्भों में अनेक बार लिखा जा चुका है। हमारी मान्यता है कि भारत राष्ट्र की एकता सुदृढ़ करने की दृष्टि से सभी भाषाओं की एक लिपि होना अत्यन्त आवश्यक है और शीघ्र से शीघ्र यह कार्य संपन्न किया जाना चाहिए। एक लिपि के प्रचार द्वारा न केवल सभी भारतीय भाषाओं का परस्पर सीधा सम्बन्ध स्पष्ट देखने में आने लग जाएगा, अपितु उनके साहित्यों में आपस के आदान-प्रदान को भी विशेष बढ़ावा मिलेगा। मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाएं सीख लेना भी बहुत सुगम हो जाएगा। कम-से-कम, साधारण काम-चलाऊ ज्ञान तो बड़ी सरलता से प्राप्त किया जा सकेगा।

अगस्त १९६१ में भी ऐसे ही मुख्य मंत्रियों की एक बैठक हुई थी जिसमें इस विषय पर विचार किया गया था। उसमें भी यही कहा गया कि सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि वांछनीय ही नहीं, आवश्यक भी है। इससे उनके मध्य एक घना सम्बन्ध स्थापित होगा, जिससे देश का एकीकरण बढ़ेगा। साथ ही, यह भी अंकित किया गया था कि देश की वर्तमान परिस्थिति में केवल देवनागरी ही एक राष्ट्र-लिपि हो सकती है।

उस समय, सम्भवतः, बीच में चीनियों के आक्रमण से उपजी संकट दशा के हो जाने के कारण इस निर्णय को क्रियात्मक रूप में परिणत करने की ओर ध्यान नहीं दिया जा सका होगा। परन्तु जो हो, अब तो इसे निश्चित रूप से पग रखने में देर नहीं होनी चाहिए। प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री के अधीन निर्मित नया मंत्रिमण्डल सभी दिशाओं में बड़े वेग के साथ आगे बढ़ रहा है। हमें आशा करनी चाहिए कि प्रस्तुत विषय पर भी उचित ध्यान दिया जाएगा और इसकी पूर्ति के निमित्त सभी आवश्यक कार्यवाही अविलम्ब की जाएगी।

हमारा "एकलिपि-विस्तार" स्तम्भ गत तेरह बरसों से लगातार निदर्शन के रूप में उपर्युक्त सुझाव को क्रियान्वित करता रहा है। इस स्तम्भ को देश के कोने-कोने से सराहा जा चुका है और बराबर पुष्ट किया जाता रहा है। भारत की सभी भाषाएँ देवनागरी द्वारा थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ बड़ी सरलता-पूर्वक लिखी जा सकती हैं, हमारे इस स्तम्भ द्वारा इस बात का भली-भांति प्रदर्शन किया जा चुका है।

अनुकरणीय—

हर्ष का विषय है कि तमिलनाड की राजनीतिक संस्था, "द्रविड़ मुन्नेट्र कजगम" ने स्वतन्त्र द्रविड़िस्तान की मांग को अपने दल के कार्यक्रम से निकाल दिया है। कुछ ही दिन पहले संस्था की एक विशेष बैठक में इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया, जिसका स्वभावतः चारों ओर स्वागत हुआ है।

बहुत समय से भारत जात-पांत, भाषा, सम्प्रदाय और प्रांत सम्बन्धी भेदों के आधार पर उठ पड़ने वाले झगड़ों से त्रस्त रहा है। वास्तव में ये यहाँ की मौलिक समस्याएं हैं, जिनके कारण देश कभी भी एकात्म-भाव से संगठित होकर संसार में खड़ा नहीं हो पाता। इसी कारण यह लगभग हजार वर्ष तक पराधीन रहा और आज मुक्त हो जाने पर भी बड़ी कठिनाई से अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर पा रहा है।

स्वतन्त्र भारत में भी आरम्भ से ही अनेक भाषा और प्रांतपरक आन्दोलन होते रहे हैं। पहले आंध्र को लेकर आन्दोलन हुआ, फिर महाराष्ट्र और गुजरात को लेकर। इधर सिख अपना अलग सूबा चाहते हैं, उधर द्रविड़िस्तान की मांग की जा रही है और हिन्दी के साइनबोर्ड लीपे-पोते जा रहे हैं। इसीलिए भारत सरकार को संवैधानिक रूप से यह स्वीकार करना पड़ा कि भारत से अलग होने की मांग करना अवैधानिक और अपराध माना जाय। यह निश्चय ही बहुत आवश्यक और उचित पग था।

"द्रविड़ मुन्नेट्र कजगम" ने स्वेच्छापूर्वक यह निर्णय करके अनुकरणीय कार्य किया है। अब उनकी मूल संस्था, अर्थात् "द्रविड़ कजगम" को भी ऐसा ही निश्चय करके उसे घोषित कर देना चाहिए। देश की अन्य संस्थाओं को भी चाहिए कि वे अपने कार्यक्रमों की अच्छे प्रकार जांच-पड़ताल करके उनमें से अराष्ट्रीय लगने वाले सब अंश निकाल दें और देश की अखण्डता की दृढ़ भावना द्वारा अपने हृदय शुद्ध और पवित्र कर लें।

साम्प्रदायिकता भारतीय राजनीति का दूसरा महान् अभिशाप है। भारत सरकार की गत दिनों हुई विचार-चर्चाओं से प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में भी कुछ कड़े पग उठाए जाएंगे। विभिन्न राजनीतिक दलों के साम्प्रदायिक भेद-भावना बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को किस प्रकार रोका जाए, इस पर विधि-अनुसार विचार होने लगा है। सर्वोच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त अध्यक्षों का इसमें सहायता ली जाने की सम्भावना है। क्या ही अच्छा हो यदि समय रहते सब राष्ट्रीय दल व्यर्थ की फूट पैदा करने वाली सब प्रकार की साम्प्रदायिकता के पचड़े से अपने-आप को सर्वथा अलग रखते हुए और विशुद्ध राजनीतिक दृष्टि को ही अपनाते हुए राष्ट्र के सर्व-विध विकास में अग्रसर रहें।

—विश्वबन्धु

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन-समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१. श्री रघुवीरसिंह, चण्डीगढ़, २. डा. रघुवीर-दत्त, फरूखाबाद, ३–५. प्रो. दीवानचन्द शर्मा, संसत्-सदस्य, डा. ज्वालाप्रसाद सिंहल, प्रो. डा. रामस्वरूप, नई दिल्ली, ६. कर्नल इकबालचन्द, देहली छावनी, ७. श्री विप्रबन्धु, अमृतसर, ८. श्री आर. एल. मौद्गिल कुरुक्षेत्र, ९. डा. नरेन्द्रचंद्रनाथ, त्रिपुरा।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क—गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में संमिलित हुए—

१. श्री महेन्द्रपाल शर्मा, बरमिंघम (इंगलैंड), २०), २. राजा वारसिंह आनन्द, रणवीरसिंहपुरा (जम्मू), १०), ३. श्री आर. एन. रत्न, मैसूर, १०)।

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—१. दीवान रघुनाथ सहाय, नई दिल्ली, १२८), २. प्रो. रघुनन्दन शास्त्री, चण्डीगढ़, १२५), ३. रा. सा. श्रीकृष्ण, लुधियाना, ११९), ४. डा. ए. सी. जोशी, चण्डीगढ़, ११०), ५. श्री गणपतराय, नई दिल्ली, ५३), ६. श्री कृष्णलाल, चण्डीगढ़, ३५), ७. श्री जी. सी. कटोच, नई दिल्ली, २५), ८. श्री कृष्णलाल आनन्द, दिल्ली, २५), ९. डा. दीवानचन्द अग्रवाल, नई दिल्ली, २१), १०. चौ. रामचन्द भाटिया, करनाल, २०), ११. सेठ भागीरथ मल कनोड़िया, कलकत्ता, २०), १२. प्रो. सन्तराम आनन्द, नई दिल्ली, १५), १३. श्री राजपाल मल्होत्रा, दिल्ली, ११), १४. प्रो. विजयचन्द्र शर्मा, हिसार, १०), १५–१६. श्री एच. लाल, १०), श्रीमती माधवी मल्ला, १०), नई दिल्ली, १७-१८. श्री सीताराम सेकसरिया, १०), श्री डी. एन. जालान, १०), कलकत्ता, १९. श्री हरिचन्द लाला बरेली, १०), २०. प्रो. ईशकुमार, चण्डीगढ़, १०), २१. श्री सदाराम, होशिआरपुर, १०), २२. श्री प्रो. ठाकुरदास शर्मा, लुधियाना, १०), २३. श्री लालचन्द बहल, मेरठ छावनी, १०), २४. डा. मोहनलाल पाठक, अमृतसर, १०)।

विशेष दान—१. सर्वश्री लालचन्द बाहरी ट्रस्ट, हावड़ा, ५००), २. सर्वश्री मलचन्द खरायतीराम ट्रस्ट, नई दिल्ली, ५००), ३. अखिल भारतीय हिन्दू सेवा संघ, दिल्ली, ४००), ४. डा. रघुवीरदत्त शर्मा, फर्रुखाबाद, १०१), ५—७. श्री एस. पी. भाटिया, १०), मास्टर अमरनाथ, ७), श्री रामगोपाल ठकराल, ५), होशिआरपुर, ८. श्र हरिचन्द आढ़ती, जालन्धर ५)।

विशेष वार्ता—१३ जुलाई को संस्था के कुछ चुने हुए कर्मिष्ठों के समक्ष डा. ज्वालाप्रसाद सिंहल ने आर्यों के काल-निर्णय के सम्बन्ध में अपनी मान्यता प्रस्तुत की। "दि स्फिक्स स्पीक्स" नामक आपकी पुस्तक में इस विषय पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। आपने कहा कि नृतत्व और भूगर्भ विज्ञान के प्रमाणों के साथ वेद के कुछ मंत्रों का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि आर्य लगभग ५ लाख वर्ष पूर्व कश्मीर में निवास करते थे। यह प्रदेश तब सपाट था और यहां एक बड़ी झील थी। कालान्तर में भूमि की हलचलों के कारण वहाँ ऊँचे-नीचे पर्वत उठ खड़े हुए और सात नदियां निकल कर नीचे की ओर बहने लगीं। यह घटना ऋषियों ने देखी तथा वेदों में इसका वर्णन मिलता है।

व्यास पूजा—२६ जुलाई को विश्व-सत्संग की ओर से व्यास पूजा मनाई गई। आचार्य विश्वबंधु जी ने भारतीय संस्कृति मे गुरु की महत्ता पर प्रकाश डाला। श्री इन्द्रदत्त उनियाल ने कविता-पाठ भी किया।

परीक्षाफल—एम. ए. (संस्कृत) प्रथम भाग में इस वर्ष संस्थान से १३ विद्यार्थी सम्मिलित हुए और सभी उत्तीर्ण रहे—८ प्रथम श्रेणी में, ३ द्वितीय श्रेणी में तथा २ तृतीय श्रेणी में।

सरस्वती-समाज—सरस्वती समाज के अधिवेशन में ता० २६. ६. ६४. को श्री राधेश्याम जी ने "भारतीय वाङ्मय में राधातत्व का उद्भव तथा विकास" तथा श्री के. वी. शर्मा ने 'काल्पनिक नामधेयैर्विज्ञाता कवि सूरयः' विषयों पर भाषण किए।

आगामी अधिवेशन ३१.७.६४. में श्री देवदत्त जी शास्त्री अपना भाषण करेंगे तथा २८. ८. ६४. को श्री पीताम्बरनारायण जी "जायसी पद्मावत की कथा—एक विवेचन" पर भाषण देंगे।

व्याख्यान—त्रिपुरा के डा. नरेन्द्रचन्द्रनाथ ने २३ जुलाई को संस्थान के कर्मिष्ठों के समक्ष "संस्कृत तथा अंग्रेजी में शाब्दिक सन्तुलन" विषय पर व्याख्यान दिया।

अगस्त के कार्यक्रम—रविवार, २ अगस्त को सायं ५ बजे वि. वै. संस्थान सभा की साधारण व विशेष वार्षिक बैठक होगी जिस में उपस्थित रहने के लिए संस्थान के सब सदस्य निमंत्रित हैं। १५ अगस्त को प्रातः-काल स्वतन्त्रता दिवस, २३ अगस्त को रक्षाबन्धन तथा ३० अगस्त को कृष्णजन्माष्टमी के पर्व मनाए जाएंगे।

बधाई—संस्थान सदस्य श्री हरिलाल बहल (होशियारपुर) को उनके पौत्र कुलदीप की सगाई पर, संस्थान सदस्य व कर्मिष्ठ श्री रामप्यारा जी को उनकी भानजी के शुभ विवाह पर, श्री दिलोपकुमार (नई दिल्ली) को उनकी बहिन शन्नो के शुभ विवाह पर, डा. रघुवीरदत्त (फर्रुखाबाद) के उनके सुपुत्र डा. भानुदत्त के शुभ विवाह पर तथा संस्थान कर्मिष्ठ श्री के. वी. शर्मा को दौहित्र जन्म पर हार्दिक बधाई।

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान-सदस्य व सस्कृत के अवसर-प्राप्त प्राध्यापक पं. अर्जुननाथ जी मट्टू (अमृतसर) का देहान्त हो गया। दिवंगत आत्मा के वियोग से दुःखी परिवार एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

विविध समाचार

अर्जेन्टाइना की राजधानी ब्यूनस आयरिस में प्राच्य कला के एक सग्रहालय की स्थापना की गई है। इसकी ओर से गश्ती प्रदर्शनियां भी आयोजित की जायेंगीं। यह संग्रहालय प्राच्य सभ्यताओं के अध्ययन की व्यवस्था करेगा और इन विषयों पर सम्मेलन आदि भी आयोजित करेगा। इसका अपना पुस्तकालय भी होगा। संग्रहालय एक सचित्र पत्रिका प्रकाशित करेगा, जिसमें लेख, अनुवाद, समाचार इत्यादि होंगे। यह पुस्तकें भी प्रकाशित करेगा। अध्ययन के कोर्स ५ वर्षों के होंगे जिनमें प्राच्य साहित्य, धर्म, दर्शन, कला, संगीत, नाटक, नृत्य आदि सभी विषयों पर शिक्षा दो जाएगी और इसमें ग्रेजुएट ही भाग ले सकेंगे।

× × ×

बेल्जियम के ब्रुसेल्स नामक नगर में प्राच्य भाषाओं के अध्ययन के लिए एक स्कूल की स्थापना की गई है। यहाँ हिन्दी और उर्दू के अतिरिक्त अरबी, चीनी, वीतनामी, स्वाहिली, तुर्की, फारसी, जापानी और हिन्देशियाई भाषाओं की शिक्षा दी जाएगी। भाषाएँ सीखने के साथ अनुवाद कला भी सिखाई जाएगी। शीघ्र अनुवाद करने के लिए एक नई पद्धति का प्रयोग सिखाया जाएगा। सम्पूर्ण कोर्स तीन वर्ष का होगा जिसे पूरा करने के बाद छात्रों को प्रमाणपत्र दिया जायगा।

× × ×

पिछले दिनों ब्रुसेल्स में भारतीय संगीत का एक सम्मेलन हुआ जिसमें रविशकर, अल्ला रखा, सिद्धार्थ मुखर्जी आदि ने भाग लिया। यह वहाँ के शिक्षा-संस्कृति मंत्रालय द्वारा आयोजित किया गया और इसमें फ्री विश्वविद्यालय तथा अन्य संस्थाओं ने सहयोग दिया।

× × ×

इटली में वहां के एशिया और अफ्रीकाविदों की एक परिचय पुस्तक प्रकाशित की गई है। ऐसी ही एक पुस्तक कनाडा में भी तैयार की जा रही है जिसमें वहां के विश्वविद्यालयों में काम करने वाले तथा अन्य एशिया और अफ्रीकाविदों के नाम, परिचय तथा कार्यक्षेत्रों का विवरण दिया जाएगा। प्रो. डब्लू. डॉबसन इस कार्य को सम्पन्न कर रहे हैं।

× × ×

क्यूबा में यूनेस्को के अधीन आयोजित प्राच्य-पाश्चात्त्य समिति ने वहाँ की जनता को पूर्वी देशों की संस्कृतियों से परिचित कराने के लिए अनेक कार्यक्रम आयोजित किए हैं। भारतीय कला पर भी एक विशेष कार्यक्रम दिया गया जिसमें लोक-गीत सुनाए गए, भारत की कलाओं पर भाषण दिए गए, रवीन्द्रनाथ टैगोर के गीत प्रस्तुत किए गए, भारत के ग्रन्थों तथा लोक-नृत्यों पर डाकुमेन्टरी फिल्में दिखाई गईं और भारतीय वस्त्रों की प्रदर्शनी की गई। इसी तरह मिस्र, जापान और इसराइल की कलाओं पर भी कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए।

× × ×

विश्व-ज्योति

सह-सम्पादक

विश्वबन्धु : सन्तराम

●

सितम्बर १९६४

●

वार्षिक मूल्य—

भारत में : ८ रु.   विदेश में : १२ शिलिंग

पढ़ने योग्य उत्तम पुस्तकें

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) **Shāntakuṭī Vedic Series :**

Volume I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa (*A Vedic Word-Concordance*), in Sections I-V, split up into 15 parts, treated as volumes in the series, Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II (Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upaniṣads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in I pt.]. Covering 11,000 (10″×7″) pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40 ; Q. II, Rs. 30 ; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional sets (but not individual parts) entertained. 14 parts on sale, remaining 1 part due '64

Volume XVI. A Grammatical Word-Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Grammatical Word Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volume XVIII-XIX. A Grammatical Word-Index to the four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Grammatical Word-Index to Taittirīya Saṁhitā, Rs. 40.

Volume XXI. A Grammatical Word-Index to Upaniṣads, due '64, Rs. 30.

(B) **Vishveshvaranand Indological Series :**

Volume I-II. Siddha Bhāratī, (*A Rosary of Indology*), Pts. I-II, 108 classified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā, (*A Concordance of Purāṇa Contents*), by Prof. Y. P. Tandan, Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha, (*Texts on Courtezans in Classical Sanskrit*), texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern Philology, by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī, (*The Homage of Indology*), 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Aggarwal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Cultural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volune X-XI Catalogue of VVRI Collection of Manuscripts, 2 Pts Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII. Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-pāṭha and Sayaṇācārya's Commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVI ready, Rs. 180.

Volume XVIII. Saṅkarṣa Kāṇḍa Sutras of Jaimini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Volumes XIX-XXVI Ṛgveda, in 8 parts, first cri. edn. of the Bhāṣyas of Skandasāmin, Udgītha, Mudgala and Venkaṭa-Mādhav, Ed. Vishva Bandhu. Pts. 2 and 3 ready, Rs. 90.

Volumes XXVII-XXIX. Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, first cri. edn. by L. Sternbach, Vol. XXVII ready, Rs. 30.

Volume XXX. Dṛgganitam of Parameśvara, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

(C) Woolner Indological Series :

Volnme I. The Foreign Policy of Warren Hastings, by Ram Prakash, Rs. 5.

Volume II. Tagore Centenary Volume, Ed. Shri Mahendra Kulasrestha, Foreword by Prof. Humayun Kabir. Rs. 16.

Volume IIA. The Genius of Tagore, P. I of the above. De-luxe Rs. 12. Standard Rs 8.

Volume II B. Aspects of Indian Culture, P. II of the above. De-luxe Rs. 18. Standard Rs. 12

Volume III. Outline of Indian History, by Srı Ram Sharma, Rs. 8.

Volume IV. The Sāṅkhya Kārikā of Iśvarakṛṣṇa, by C. Kunhan Raja, Rs. 10.

Volumes V-VIII. Rājataranginī, cri. edn. of its texts by Kalhana, Jonarāja, Śrīvara and Śuka, Vol. V ready. Ed. Vishva Bandhu, Rs. 30.

(D) Sarvadānand Universal Series :

Volume XII. Mental Health in Theory & Practice, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 2·25.

Volume XVIII. A Story of Indian Culture, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 5.

Volume XXV. The Theory of Socialism, Ancient and Medieval, by Prof. R. M. Uppal, Rs. 1·25.

Volume XXVI. Great Thoughts of Great Men, by Prin. Sain Das, Rs. 3·50.

Volume XXVII. The Religion of Buddha and its Relation to Upaniṣadic Thought, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 4·50.

Volume XXX. Popular Talks on Psychological Topics, by Dr. Prem Nath, Rs. 2·25.

Volume XXXI. An Introduction into Lamaism, The Mystical Buddhism of Tibet, by R. P. Anuruddha, Rs. 8

Volume XXXIV. Shri Krishna, His Philosophy and His Spiritual Path, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25

Volume XL. Dayanand, A Study in Hinduism, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Can be had of :

VISHVESHVARANAND BOOK AGENCY

P. O. Sadhu Ashram, HOSHIARPUR (Pb. India)

हमारे हिन्दी प्रकाशन

१. वेद-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.५०
२. श्रीमन्त्र पुष्पाञ्जलिसूक्त—आचार्य विश्वबन्धु	...	०.२५
३. वेद-नवाह्निक— ,, ,,	..	०.५०
४. ईशावास्योपनिषद्-दर्पण—श्री सत्यदेव, बी. ए.	..	१.००
५. केनोपनिषद्-दर्पण— ,, ,,	...	०.७५
६. कठोपनिषद्-दर्पण— ,, ,,	...	१.३१
७. कठोपनिषद्—श्रीमती विद्यावती मिश्र	...	०.८१
८. उपनिषद्-दिग्दर्शन—डा. दीवानचन्द एम. ए.	...	२.७५
९. ब्रह्मविद्या— स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	६.००
१०. अध्यात्म-दर्शन— ,, ,, ,,	...	४.००
११. कर्म और योग— ,, ,, ,,	...	२.५०
१२. आनन्द-मार्ग— ,, ,, ,,	...	२.००
१३. आत्मानुभूति— ,, ,, ,,	...	२.००
१४. धर्म की आवश्यकता— ,, ,,	...	१.००
१५. संस्कृत-शिक्षा-विधि——प्रो. गौरीशंकर, एम. ए., बी. लिट.	...	३.२५
१६. सत्संग-सार—आचार्य विश्वबन्धु	...	१.३७
१७. सुखी संसार— ,, ,,	...	०.५०
१८. पंजाबी रामायण—श्री रामलुभाया आनन्द 'दिलशाद'	...	१०.००
१९. मानस गंगा—श्री उमादत्त, बी. ए., एलएल. बी.	...	२.००
२०. स्वर्ण पादुका—प्रो. परमानन्द शर्मा, एम. ए.	...	१.२५
२१. अवेस्ता—श्री राजाराम शर्मा	...	१.२५
२२. वीर बौना (सचित्र)—कान्ता डोगरा	...	१.२५
२३. फतेहनामा गुरु खालसा जी का—प्रो. सीताराम कोहली	...	३.६०
२४. ध्वस्त नीड़—श्री श्रीपाद जोशी	...	३.००
२५. हमारा समाज—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	४.००
२६. आदर्श पत्नी— ,, ,,	...	२.५०
२७. हमारे बच्चे— ,, ,,	...	३.७५
२८. बच्चों की देख-भाल—प्रि. बहादुरमल्ल, एम. ए.	...	१.७५
२९. मन की अद्‌भुत बातें— ,, ,, ,,	...	२.००
३०. दुनिया तुम्हारी है—डॉ. रामचरण महेन्द्र, एम. ए., पीएच. डी.	...	३.३७
३१. संसार को चुनौती—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	२.६२
३२. नागरिक गीता—श्री चमनलाल	...	१.७५
३३. शिष्टाचार—श्री सन्तराम बी. ए.	...	२.००

३४.	व्यवहारिक ज्ञान—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	२.७५
३५	लोक-विजय — ,, ,,	...	३.२५
३६.	युवक मनोविज्ञा ।—प्रि. बहादुरमल, एम. ए.	...	२.००
३७.	सेवाकुञ्ज— श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.५०
३८.	चमत्कारों की दुनिया— ,, ,,	...	०.७५
३९.	फलाहार— ,, ,,	...	१.२५
४०.	महाभारत के श्रीकृष्ण—श्री देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर	...	२.२५
४१.	छत्रपति—प्रो. परमानन्द शर्मा	...	३.००
४२.	वीर शिवाजी—श्री श्रीपाद जोशी	...	२.७५
४३.	स्वामी नित्यानन्द : जीवन और कार्य—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	२.५०
४४.	भारतीय नवोदय के अग्रदूत—	...	३.५५
४५.	राजा राममोहन राय—श्री अखिल विनय, एम. ए.	...	०.७५
४६.	महर्षि दयानन्द—श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'	...	०.७५
४७.	विश्व के दार्शनिक—श्री रत्नचन्द्र श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	४.५०
४८.	स्वामी रामतीर्थ—श्री रामकृष्ण	...	०.७५
४९.	योगी अरविन्द—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	...	०.७५
५०.	महाबली भीम [सचित्र]—श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर	...	१.५०
५१.	भीष्म पितामह [सचित्र]— ,, ,,	...	१.५०
५२.	धर्मराज युधिष्ठिर [सचित्र]—,, ,,	..	१.५०
५३.	वीर अर्जुन [सचित्र]— ,, ,,	..	१.५०
५४.	विद्यापति और चण्डीदास—श्री रामावतार	...	१.२१
५५.	आधुनिक हिन्दी कविता के वाद—श्री विनयमोहन शर्मा	...	१.३१
५६.	रस-धारा—श्री सन्तराम, बी. ए.	...	०.७५
५७	सूखे संतरे—डॉ. रामचरण महेन्द्र	...	१.३७
५८.	प्रलय और सृष्टि— ,, ,,	...	२.००
५९.	मिट्टी का कलश—श्री शिवनाथ दुबे	...	१.२५
६०.	महाभारत की कहानियाँ (द्वितीय संस्करण)—श्री देवदत्त शास्त्री	...	१.००
६१.	बड़े लोग श्री सन्तराम, बी. ए.	...	१.२५
६२.	रसवन्ती— ,, ,,	...	२.००
६३.	नए युग की कहानियां— ,, ,,	...	१.७५
६४.	अच्छी अच्छी कहानियां [सचित्र],, ,,	...	०.८७
६५.	बात की बात—प्रो. परमानन्द शर्मा, एम. ए.	...	१.००
६६.	बालभूषण—श्री राष्ट्रबन्धु	...	१.२५
६७.	तितली—श्री सुन्दरलाल 'अशोक'	...	१.५०
६८.	आत्म-तत्त्व-प्रकाश—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	...	१.५०

इस अङ्क में पढ़िए

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, भाद्रपद, २०२१; सितम्बर १९६४ { संख्या ७

वेदामृत—

विद्या-वृद्धि

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद् दधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥

हे सकल विद्याओं के मूल, जगदीश्वर, आप की कृपा से मेरी दर्शन-शक्ति, अनुभव शक्ति, तथा विचार-शक्ति त्रुटि-रहित होती हुई बढ़ती रहें। हे सकल संसार के स्वामिन्, कल्याण-भावना बनाए रखो।

(यजु० ३६,२)

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः ।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥

हे सरस्वती मातः, हमारे मुँह में अपना भरा हुआ, सुखकारी, धन-सम्पत्ति को खूब बढ़ाने वाला स्तन डाल दे। इस का मीठा दूध सब कामनाओं को पूरा कर देता है। तेरी कृपा से मैं अन्तरिक्ष की विशालता को धारण करूँ। (यजु० ३८,५)

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदापृणद् घृतेन ॥

हे सरस्वती मातः, मैं मूर्खतावश तेरी उपेक्षा करता हुआ इधर-उधर लोगों के सामने हाथ फैलाता रहा हूँ। मैंने अनेक प्रकार से घबराहट और मान-हानि द्वारा अपना-आप खोया है। तू अब अपने स्नेह से मुझे फिर पूर्ण बना दे। (अथर्व ७,५७,१) —वेदसार

विश्व-सत्संग

श्रीकृष्ण-जयन्ती*

भगवद्गीता का उपदेश

[आचार्य विश्वबन्धु]

प्रायः सारी हिन्दु जनता भगवान् कृष्णचन्द्र जी के जन्म-दिन को सम्मानपूर्वक मनाती है। सारे देश में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक लोगों के मस्तक भगवान् कृष्ण के चरणों में झुकते हैं। वैसे तो सारा वर्ष लोग मन्दिरों में तथा घरों में कीर्तन करते हैं। इसमें विशेष महत्त्व किस चीज़ का है? वह है भगवद्गीता। वर्तमान समय में 'भगवद्गीता' हिन्दु-धर्म का सबसे मुख्य ग्रन्थ है। यद्यपि भगवद्गीता के अन्दर वेदों की स्तुति की गई है और इस समय तक लोग अपना आदिधर्मग्रन्थ वेदों को ही समझते हैं। परन्तु व्यवहार की दृष्टि से देखा जाए, तो इस समय वेदों का नाम आदरपूर्वक लेते हुए भी 'भगवद्गीता' का ही विशेष रूप से प्रचार है।

संसार की जितनी भी सुसंस्कृत जातियां तथा राष्ट्र हैं उनकी जितनी भाषाएँ हैं उनमें प्रायः 'भगवद्गीता' के अनुवाद हो चुके हैं। 'भगवद्गीता' क्यों इतना प्रिय ग्रन्थ हुआ? उसके अन्दर क्या विशेषता है? वैदिक विचार के अनुसार उस समय यज्ञ कर्मों के अन्दर विशेष आस्था चली आती थी। यज्ञ किस लिए किया जाए, इसकी एक पृष्ठभूमि में यह विश्वास था कि यज्ञ करने से स्वर्ग प्राप्त होता है। स्वर्ग नाम है, सुख का। यज्ञ नाम है—पूजा-पाठ का, जप, तप, दान और दक्षिणा का। इन कर्मों के करने से पुण्य होता है। ये पवित्र कर्म हमारे कर्त्तव्य हैं। इनका जो मनुष्य पालन करता है, उपकार के कार्यों में अपना पैसा लगाता है और अग्नि प्रज्वलित करके उसके अन्दर श्रद्धापूर्वक आहुतियां डालता है, तो वह इष्ट और पूर्त दोनों प्रकार के कर्म करता है। इष्ट कर्म वह है, जैसा कि मैंने अभी कहा कि यज्ञ-वेदी के अन्दर अग्नि को प्रज्वलित करके भगवान् का नाम लेकर आहुतियां डालना और प्रत्येक आहुति के साथ कहना है कि यह आहुति भगवान् के अर्पित है। पूर्त कर्म वह है, जो खुले दान के रूप में जनता के लिए पैसा दिया जाता है। अपना धन व्यय करके लोगों के सुख-साधनों को जुटाया जाता है। जैसे कुँआ लगा देना, धर्मशाला बनवा देना, मन्दिर, नहाने के लिए तालाब, बौड़ियाँ बना देना, मार्गों को ठीक प्रकार से कर देना। इस तरह इष्ट अर्थात् यज्ञ के अन्दर पूजा और दान मुख्य हैं। परन्तु वह दान देवता के प्रति है। वह भेंट, जो कि मस्तक झुका करके श्रद्धापूर्वक उनके आगे रखने को है कि आप स्वीकार करें। पूर्त कर्म में पूजा विशेष रूप से नहीं होती। जनता के सुख के लिए, कल्याण के लिए धन लगाया जाता है। पंजाबी में शब्द है 'पूर्त' पूर्त करना। जैसे कोई धनाढ्य हो और उसके विवाह के अवसर पर रोटी खाने के लिए बारात जा रही है। रास्ते में पैसे-पतासे फेंकते जा रहे हैं। इसको कहते हैं पूर्त-बांटना। अपने धन-दौलत का खुले बांटना, ताकि लोग उससे लाभ उठा सकें। 'सर्ववेदस्' यज्ञ में अपने

---

*साधु-आश्रम के साप्ताहिक सत्संग में सभी पर्व मनाए जाते हैं। १९६२ की 'श्रीकृष्ण जयन्ती' के अवसर पर आचार्य श्री विश्वबन्धु जी का प्रवचन टेप रिकार्ड किया गया था। वह 'विश्वज्योति' के पाठकों के लाभ के लिए दिया जाता है। —सम्पादक

लिए कुछ भी रखना नहीं होता। सर्वस्व लोगों में बांट कर स्वयं निस्स्व हो जाना होता है।

इष्टकर्म और पूर्तकर्म—ये दोनों मिलकर वैदिक कर्मकाण्ड का रूप बने। लोगों का विश्वास था और शास्त्रों में लिखा था कि इसके करने से मनुष्य का आत्मा पवित्र होता है तथा विशेष पुण्य का उदय होता है। क्रेडिट पैदा हो जाता है, नया बैंक एकाऊंट खुल जाता है कि यह स्वर्ग का अधिकारी हो गया है। इस वास्ते कहा है—"**स्वर्गकामो यजेत।**" जो स्वर्ग चाहता है उसे चाहिए कि यज्ञ करे। दोनों प्रकार का यज्ञ पहले कह चुके हैं—पूजा-पाठ का जीवन, दान-पुण्य का जीवन, अग्निहोत्रादि का जीवन, सत्संग का जीवन। तो यज्ञ करने वाले को स्वर्ग प्राप्त होगा। स्वर्ग तो सभी को प्राप्त होता है। यहां किसी को थोड़ा बैठे रहना है, परन्तु वह स्वर्ग है—शाश्वत जीवन की प्राप्ति। जैसा मैकाले ने कहा—

"Why not die for the ashes of our fathers and the temples of our Gods. Death comes sooner or later to every man upon."

अर्थात् क्यों न हम अपने-आप को महान् पुरखों और देवताओं के चरणों में समर्पित करें। मौत तो सब को ही आती है, चार दिन आगे या चार दिन पीछे। यह तो एक कुदरती बात है।

महाभारत में एक जगह कहा है कि जो मनुष्य कर्मवीर है, अपनी ड्यूटी-कर्त्तव्य का पालन करता है, वह कभी किसी बात की चिन्ता नहीं करता कि दुःख आएगा या सुख आएगा। बहुत कष्ट की अवस्था में भी उसके हृदय के अन्दर प्रसाद गुण रहता है, जिसको स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में कहा है—

प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु, बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में 'प्रसाद' का क्या अर्थ है? प्रसाद के दो अर्थ हैं, एक सफाई और एक खुशी। यहां पर खुशी वाला अर्थ मुख्य नहीं है, यहां सफाई वाला अर्थ ठीक है। साफ-सुथरा, जिसके अन्दर कोई मैल नहीं। मन का विक्षेप और आवरण, जो-कुछ भी है, वह धोया जाता है, मैल नहीं रहता। प्रसाद का यह अर्थ कैसे है? 'प्रसन्नमम्भः' यह जल बड़ा शुद्ध है, इसमें 'प्रसन्न' का अर्थ शुद्ध, साफ-सुथरा है। जिस समय प्रसाद की अवस्था प्राप्त हो जाती है, बुद्धि टिक जाती है कोई संशय, मोह और विक्षेप नहीं रहता। "**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**" (**योगदर्शन १,१,३**) इधर-उधर सब तरफ से वृत्तियों को उसने खींच लिया है। चित्त-वृत्ति का जो विक्षेप था, मन की निरर्थक दौड़ हो रही थी, उसने अपने-आप को रोक लिया है।

अपना कर्त्तव्य पूरा कीजिए और शांत अवस्था में रहने का प्रयत्न कीजिए। हर समय की तड़प, हर समय की घबराहट क्यों? इतना संसर्ग क्यों बना रखा है? अंग्रेज कवि ने ठीक कहा है—

The world is too much with us.

अर्थात् दुनिया के अन्दर हम बहुत ज्यादा लिप्त हुए हैं। जहां पर संसर्ग हटाकर गुज़ारा हो सकता है वहां पर भी दखल देते हैं। इसलिए संसर्ग को कम करना चाहिए। शांति का रास्ता संसर्ग को कम करने में है, बढ़ाने में नहीं। संसर्ग से ही सुख और दुःख होता है। जितने ज्यादा पाँव फैलाओगे, उतनी ही व्याकुलता होगी।

जहां राग-द्वेष की उथल-पुथल है वहां चित्त अप्रसन्न है। उसमें सफाई नहीं। साफ चित्त साफ दर्पण के समान है। उसके ऊपर मल और आवरण नहीं होता। अतः शुद्ध होने का तरीका यही बतलाया है कि राग-द्वेष से ऊपर उठकर जो कर्त्तव्य बनता है, उसे करना चाहिए। वह प्रसन्नचित्त दुनिया के साथ उतना संसर्ग, उतना सम्बन्ध पैदा करता है, जितना कर्त्तव्य के रूप में जरूरी है। बस जब

कोई सज्जन उसके पास आता है, तो जो बात-चीत उससे सम्बन्धित है, उसमें वह रुचि रखता है, उसके अतिरिक्त नहीं। वह टाइम गुज़ारने के लिए बैठ जाना उचित नहीं समझता।

यह उपर्युक्त योगाभ्यास का मार्ग है, जिस के लिए गीता में कहा—"**यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।**" यह योगेश्वर कृष्ण का उपदेश है। उन्होंने इसको अपने जीवन में धारण किए रखा होगा। गीता में तो यही वर्णन पाया जाता है और यही क्रियात्मक चीज़ है। परन्तु आज-कल का हिन्दुधर्म इससे न्यारा है। जो हिन्दुधर्म की आम जनता है, वह इससे अछूती रहती है जैसे वेदों का नाम लिया जाता है, अब गीता की भी वैसी स्थिति हो गई है कि उसका नाम लिया जाता है, अच्छी-अच्छी जिल्दों में मढाया जाता है। माहात्म्य लिखे जाते हैं। यह माहात्म्य की गीता है, यह देवियों की गीता। अर्थात् किसी चीज़ को तमाशा बना देना। अर्थात् गीता को आगे रखकर "**नमो भगवत्यै गीतायै नमः**" गीता को नमस्कार करते रहना। यदि गीता के एक श्लोक को भी मनुष्य अपने जीवन में घटाये, तो अमर हो जाए।

भगवद्गीता सबसे बड़ा समन्वय का ग्रन्थ है। जो उपदेश बौद्धों ने माना, जैनियों ने माना, आचार्यों ने माना, वह भी सब इसी में है। भगवद्गीता में कहा कि कर्म कोई बन्धन का हेतु नहीं, कर्म का जो फल है, उसमें आसक्ति बन्धन का हेतु है। यदि आप यज्ञादि कर्मों में निष्ठा रखते है, तो उन्हीं को कीजिए, परन्तु उनसे कोई फल प्राप्त होगा, कोई स्वर्ग-लाभ होगा, यह होगा या वह होगा, इससे मन हटा लो। कर्त्तव्य है इसलिए करते चले जाओ। और फिर अधिक ज़ोर इस बात पर दिया कि संसार के अन्दर व्यवहार का जो लोक है, उसमें रह कर के जो अपने कर्त्तव्य हैं, उनका पालन करो। कर्त्तव्य दोनों रूप में आएंगे, मीठे रूप में और कड़ुवे रूप में भी, अधिकतर कड़ुवे रूप में। तो जो कड़ुवी चीज़ है, उसे भी साथ खाओ, मन को इधर-उधर मत होने दो। वह भी चीज़ जरूरी है। संसार में प्रकाश और तम दोनों मिलकर के ही दिन-रात पूरा बनता है। यदि आप कहें कि दिन का चांदना ही बना रहे, रात का अन्धेरा न हो, तो आप समय का चक्कर रोकना चाहते हैं। यदि समय का चक्कर रुकेगा, तभी तो ऐसी बात होगी।

शाम का समय था। भँवरे इधर-उधर फूलों के ऊपर गुंजार कर रहे थे। किसी एक फूल पर एक बेचारा भँवरा बैठा था। रात हुई कमल बन्द हो गया। वह सोचने लगा—

रात्रिर्गमिष्यति, भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति, हसिष्यति पंकजश्रीः।

अर्थात् रात बीत जाएगी, प्रभात होगा, सूर्य भगवान् उदय होंगे और ये कमल फिर खिल उठेंगे। दरवाजा खुलेगा और मैं भी बाहर हो जाऊँगा—

इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा हन्त, हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार।

भँवरा यह सोच ही रहा था कि कोई हाथी आया। उसने उस कमल को उखाड़ कर खा लिया। अब वह उसका दिन नहीं चढ़ा। तो क्या हम सब ऐसे भँवरे तो नहीं बने हुए। आशा ही आशा लेकर सभी व्यक्ति कहते चले जाते हैं, अब कल करेंगे, कल चढ़ेगा। भँवरे के समान शायद वह कल हमारा कभी न चढ़े। तो इसलिए तत्काल जो-कुछ सूझना हो, उसे करना ही चाहिए, स्थगित मत कीजिए। किसी कार्य को जो आगे करना है, आज करना चाहिए। जो आज करना वह अब करना चाहिए।

जिस समय अर्जुन ने कहा कि महाराज, मैं तो नहीं लड़ता। मेरे तो ये सभी सगे-सम्बन्धी सामने खड़े हैं। मैं इन्हें कैसे अपने हाथ से मारूँ। मैं तो नहीं लड़ूंगा। यह मैं हथियार फेंक कर बैठ गया हूँ।

भगवान् मुस्कराए कि यह क्या कह रहा है। उन्होंने कहा—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥

अरे अर्जुन, तू बड़ा दिलेर आदमी था। यह मलिनता तुम्हारे ऊपर कैसे छा गई। क्या हो गया तुम को? यह तो दुःख का मार्ग है। नरकगामी हो जाओगे। यह आर्यों का मार्ग नहीं है। इससे तुम्हारी कीर्ति को भी बट्टा लगेगा।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ, नैतत्त्वय्युपपद्यते।

तुम्हारा दिल बड़ा दुर्बल प्रतीत होता है। तुम्हें यह शोभा नहीं देता। तो हृदय की दुर्बलता को छोड़ो।

अर्जुन अपने हेतु देता है--यह है, वह है। उसके बाद भगवान् कृष्ण उपदेश करते हैं— "तुम कहते हो, ये मेरे सम्बन्धी मर जाएंगे। कौन मरता है यहां?" अब उसको कर्मयोग के मार्ग पर लाने के लिए दर्शन से आरम्भ करते हैं। वे कहते हैं, "यह तुम जिनका शोक कर रहे हो, वे शोक के पात्र नहीं हैं। तुम अनुचित कार्य करते हो। मरता कौन है? यहां कोई नहीं मरता—"**न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।**" कहने को तो हम सब मर जाते हैं, परन्तु यहां कोई नहीं मरता। यह जन्म-मरण का चक्र ऐसे ही चलता आया है। कोई ऐसा भी समय था, हे अर्जुन, जब तुम नहीं थे, मैं नहीं था। हम सब के बार-बार जन्म होते रहे हैं, आगे भी ऐसा ही होगा।

महाभारत में एक जगह लिखा है, जो पुरुष कर्मयोगी हैं, धर्मात्मा हैं, वे तो मौत की ऐसे प्रतीक्षा करते हैं—"**कृतकृत्याः प्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रियमिवातिथिम्**" जैसे किसी की चिट्ठी आई हुई हो कि मैं अमुक दिन आ रहा हूँ, अमुक गाड़ी पर आ रहा हूँ, तो आदमी बड़ी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करता है। इसी प्रकार कर्मयोगी ऐसी अवस्था में है कि उसका बही-खाता हर दम पूरा है। संसार के साथ सर्दी है, गर्मी है, सुख है, दुःख है। यह बना हुआ है, सो होगा ही। इसलिए—

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं, सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

जिसके जीवन में सुख और दुःख आते हैं और वह तमाशा देखता है। कहते हैं, वह वहीं अमृत हो गया। उसे आगे जाकर क्या अमृत होना है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

जो पदार्थ यहां है वह मर नहीं सकता। उसका नाश नहीं हो सकता। जिसका अभाव है, वह आ नहीं सकता कहीं से। इन दोनों बातों का अन्त, भेद, रहस्य तत्त्वदर्शन करने वालों ने पा लिया है। इसके बाद बतलाया है कि आत्मा नित्य है। नाश शरीर का होता है, आत्मा का नहीं—

य एनं वेत्ति हन्तारं, यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो, नायं हन्ति न हन्यते॥

जो कोई यह समझता है कि आत्मा मर जाता है, या कोई यह समझता है कि मैं इसे मार सकता हूँ। दोनों कुछ नहीं समझते। न आत्मा मरने वाला है, न उसको कोई मारने वाला है।

तो अब उपसंहार के रूप से जैसा पहले कहा है कि प्रसाद में सब दुःखों का नाश हो जाता है। अपने अन्दर की जो मैल है उसे धो देने पर रोशनी ही रोशनी दिखाई देने लग जाएगी। इस प्रकार से हम सब को व्यवहार के अन्दर, बर्ताव के अन्दर ऐसा जीवन व्यतीत करना है। गीता का उपदेश यही है कि जिधर आप की श्रद्धा है, जिन पूजा-पाठ के तरीकों में विश्वास है, वह करते रहो, परन्तु उनको नम्बर दो रखो। नम्बर एक व्यवहार की शुद्धि है।

★ ★ ★

नाट्यशास्त्र-निर्माता भरत और कालिदास

[श्री सूर्यनारायण व्यास]

नाट्यशास्त्र-निर्माता भरत, संशोधकों की संमति में ई. स. पूर्व या पश्चात् की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में हुआ है। नाट्यशास्त्र संस्कृत-साहित्य में नाटकों के विषय में आधारभूत प्रामाणिक ग्रन्थ है। यदि कालिदास के नाटक के निर्माण के पहले इसका निर्माण हो गया हो तो स्वाभाविक है कि उसकी रीति-नीति का प्रभाव कालिदास की रचना पर पड़ना चाहिए। अवश्य ही महाकवि भास के नाटकों के निर्माण के प्रथम इस ग्रन्थ का निर्माण नहीं हुआ है। इसलिए स्पष्ट है कि भास की कृतियों पर इसके नियमों का कोई प्रभाव होने का कारण नहीं। इसके विपरीत कालिदास के नाटकों पर भास का कितना गहरा प्रभाव है यह तो उनके तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है। कालिदास के नाटकों की शैली, पात्रों की योजना, विदूषकों पर प्रभाव, उनके व्यवहार, पात्रालेखन, कला-प्रवृत्ति, चित्रालेखन, वन-विहार, उपवन, प्रणय-प्रपंच आदि पर भास के नाटकों की प्रतिच्छाया कालिदास पर स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है। यही नहीं उसी प्रकार का संविधान, और श्लोकों की छन्द-योजना में भी भास की भाव-शैली का दर्शन किया जा सकता है। स्वयम् कालिदास ने भी यह तो स्वीकार किया है कि भास का प्रभाव रहते हुए उसके जैसे नवीन नाटककार का प्रयोग कहां तक प्रभावकारी माना जाएगा। फिर भी पुराना ही सब उत्तम होता है, और नवीन निकृष्ट समझा जाए यह सम्भव नहीं। इस कथन से यह प्रतीत होता है कि भास की रचना के समक्ष रहते हुए कालिदास को अपनी अभिनव कृति प्रस्तुत करते हुए अवश्य सकोच अनुभव हो रहा था। फिर भी कालिदास ने अपनी अभिनव कृति "मालविकाग्निमित्र" को लेकर प्रथम बार रंगमंच पर प्रवेश किया था। मालविका साधारण नवीनता को लिए भास के आधार पर प्रकाश में आई थी, और वह इस रूप में भी नवीन थी कि तत्कालीन ऐतिहासिक घटना-विदिशा के अग्निमित्र की स्थिति को अंकित कर अवतरित हुई थी। भास की वासवदत्ता भी अपने समय से कुछ पूर्व की घटना ही थी, जो उज्जैन-नरेश प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता की अपहरण-कथा पर आधारित थी। जिसे कालिदास के समय के ग्राम-वृद्ध भी एकत्रित होकर कथारूप में रुचि के साथ सुनाया करते थे। इसी प्रकार कालिदास को अपने समय के अग्निमित्र की घटना भास की तरह ही प्रेरक सिद्ध हुई होगी तो विस्मय का विषय नहीं। जिस प्रकार भास की वासवदत्ता में उदयन की वीणा का अपहरण होता है, शाकुंतल में भी अंगूठी का अपहरण हो जाता है, और अविमारक में जिस तरह चंड भार्गव का शाप होता है शकुंतला में भी दुर्वासा का शाप होता है। अन्य कथा-गाथा में भी अधिकांश समानता देखी जा सकती है, परन्तु कालिदास ने भास के प्रभाव को उल्लेख कर स्वीकार किया है, और अपनी कृति में प्रतिबिम्बित किया है। यदि नाट्यशास्त्रकार भरत उसका समकालीन या पूर्ववर्ती होता तो वह उसकी शैली अथवा नियमादि के लिए स्मरण न करता यह नहीं हो सकता था, किन्तु उसने कहीं भी कोई संकेत तक नहीं किया है। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि कालिदास के नाटकों का निर्माण भरत के नाटकशास्त्रीय रीति-नीति और नियमों पर अवलम्बित हुआ है। क्योंकि शास्त्र के अधिकांश नियमों परम्पराओं का उसकी कृति में प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। जैसे पात्रों का विधान, प्रयोग, संविधान, पद्धति, नृत्य, शैली आदि।

उदाहरणार्थ कुमारसम्भव के (७,९१) के शिव-पार्वती-परिणय प्रसंग पर अप्सराओ द्वारा अभिनय का आयोजन, संधि, वृत्ति, रस, अंगहार आदि नाटक-शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग, और रघुवंश (१९,३६) में सात्त्विक, आंगिक, और वाचिक, तीन प्रकार के अभिनय का संकेत, तथा मालविकाग्निमित्र

में (१,४ तथा २,८) "देवानामिदमामनन्ति मुनयः" और "अङ्गैरन्तर्निहितवचनैः" आदि श्लोकों का उल्लेख, और मालविका द्वारा नृत्य के प्रयोग में यह प्रतीत होता है कि कवि को इस शास्त्र के नियमों का, पद्धतियों का पर्याप्त परिचय था। इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय में अप्सराओं के सहयोग से भरत ने स्वर्ग में एक नाटक प्रयुक्त किया था। उसी तरह भरत ने भी एक प्रयोग ब्रह्मदेव के समक्ष, और एक शिव के समक्ष किया है। स्वर्ग की रंभा उर्वशी आदि ने उनमें कार्य किया है। इससे यह अनुमान किया जाना अस्वाभाविक तो नहीं कि इनकी प्रतिक्रिया कालिदास पर न हुई हो।

किन्तु यह नियम है कि विषय का विधान पहले होता है, और नियमों का निर्माण उसके बाद होता है। यह कहा जा सकता है, और सुसंगत भी है कि भास तथा कालिदास के सफल नाटक-निर्माण, और प्रयोग से प्रभावित होकर ही नवीनता के साथ भरत को नियम-निर्माण की प्रेरणा हुई होगी। क्षण-भर यह भी विचार करें कि जब भास ने सफल नाट्य-निर्माण किए, तब भरत के नियमों का अस्तित्व ही नहीं था, तो भास के नाट्य-प्रयोग-प्रवणता में कौन-सी बाधा प्रस्तुत हुई थी? इसके अतिरिक्त साहित्य में सर्वप्रथम नाट्य-शास्त्र-निर्माता भरत ही नहीं हुआ है। इसके पूर्व भी इस विषय के दक्ष विद्वान् रहे हैं। स्वयम् भरत ने भी अपने ग्रन्थ में अपने पूर्ववर्ती की परम्परा से आनुवंशिक प्रचलित श्लोक उद्धृत किए है, तथा अपने से पहले के आचार्य तंडु और कोहल का उल्लेख भी किया है, और उन्हें नाटक शास्त्र के आचार्य माना है। तब भास और कालिदास को इन पुरान आचार्यों एवं उनके नियमों का अवश्य पता रहना चाहिए। यदि कालिदास के नाटकों में और नाट्य-नियमों में समानता लक्षित होती है तो उसका एक कारण यह भी है कि वह भरत पूर्व के नियमों से परिचित रहे हैं। तथापि सफल नाट्यकर्ताओं के अनुकरण में निर्मित किसी शास्त्र की यह विशेषता नहीं, नाटक-निर्माता की विशिष्टता ही है, जिनको आधार मान कर नियमों का निर्माण आवश्यक बन गया।

जिस महाकवि कालिदास की स्वतंत्र मौलिक प्रज्ञा ने व्याकरण के किन्हीं नियमों से अपने को आबद्ध नहीं बनाया। इसके विपरीत पाणिनि के नियमों के प्रतिकूल प्रयोग किए, वह शकुन्तला जैसी अप्रतिम नाट्य कृति का निर्माता किसी नाट्य-नियम से आबद्ध बनकर अनुकरणशील बन सकेगा?

कालिदास के नाटकों में जहां नाट्यशास्त्रीय नियमों की समता प्रतीत होती है, वहां उसके तीनों नाटकों में उन नियमों के विपरीत स्वतंत्रता का भी अनेक स्थलों पर स्पष्ट दर्शन होता है।

नाट्यशास्त्र का नियम है कि विदूषकों द्वारा प्राच्या भाषा का प्रयोग आवश्यक है, किन्तु कालिदास के विदूषक शौरसेनी का ही प्रयोग करते हैं। शास्त्र में जिस प्रकार नायक के लिए विदूषक की आवश्यकता है, उस प्रकार नायिका के लिए सखी आवश्यक नहीं। यह नियम भी नहीं है। तब कालिदास की प्रियम्वदा, अनुसूया, चित्रलेखा, बकुलावलिका का जो महत्त्व उन कृतियों में है, वह किस नियम के अनुसार रहेगा? स्पष्ट है कि भरत का शास्त्र नाट्य-नियम की परम्परा का कोई आदिम ग्रन्थ ही नहीं है। हां, अनेक सफल कृतियों के बाद का अंतिम ग्रन्थ कहा जा सकता है, जो कि आनुवंशिक परम्पराओं को लेकर प्रणीत हुआ है, और यह स्वयम् भरत ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यो के उल्लेख से स्वीकार भी किया है। अवश्य ही कालिदास की कृति में भरत के विधानों से जो अन्तर विदित होता है वह अधिक मात्रा में नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि कालिदास ने जिन परम्पराओं को समक्ष रखा है, वे आधार-विधान भी भरत के विधानों से मिलते-जुलते ही हैं। इस कारण जो समता विदित है उसका अवलम्बन भरत नहीं, किन्तु पहली आचार्य-परम्परा ही है, और जो विषमता विदित होती है वह कालिदास के भरत से पूर्ववर्ती होने के कारण ही है।

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक में भरत का एक स्थल पर उल्लेख किया है, वह इस प्रकार है—

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो
भवतीष्वष्टरसाश्रयो नियुक्तः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता
मरुतां द्रष्टुमनाः स लोकपालः॥

(२,१८)

नाटक के प्रयोग को लेकर ही इस पद्य में भरत का नाम आया है। इसमें नाटक को अष्टरसाश्रित सूचित किया है, और अप्सराओं से प्रयोग करवाने की सूचना भी है, ठीक इसी तरह का वर्णन भरत ने भी किया है। भरत के शास्त्र के छठे अध्याय में आठ रसों और अप्सराओं द्वारा प्रयोग का उल्लेख है, परन्तु कालिदास ने जिस भरत का संकेत किया है वह न तो उससे पूर्ववर्ती नाट्यशास्त्रीय है, न वह सामयिक है। वह उस स्वर्गीय भरत का उल्लेख करता है जो वहां अप्सराओं का नाट्य-शिक्षक है। विक्रमोर्वशीय के अन्य उल्लेख से भी यह स्पष्ट होता है। कालिदास यदि नियम-निर्माता भरत को जानता होता तो जिस प्रकार भास सौमिल्ल कविपुत्र का वह उल्लेख कर सकता है वह भरत को स्वर्गीय बतलाने का क्यों न साहस करता ? उसे संकोच का कारण नहीं था, न वह नियमों की अवहेलना ही करता, अवश्य ही पश्चात्-वर्ती शास्त्रकार भरत ने अष्टरसात्मक-नाट्य-प्रयोग, और अप्सराओं से नाटक करवाने की सूचना का अपने ग्रन्थ में पीछे से समावेश कर लिया होगा, यह भी सम्भव है कि पहले नाट्य-नियमों के विधाता के रूप में भरत का नाम प्रसिद्ध रहा होगा। चाहे वह स्वर्गीय हो या भौतिक, उसी परम्परा के कारण पीछे से शास्त्र निर्मित करने वाले व्यक्ति का नाम भी भरत ही प्रचलित बन गया होगा।

कालिदास ने जिस प्रकार नाटक को चाक्षुष यज्ञ कहा है, भरत ने भी उसी तरह बतलाया है। कालिदास ने **"देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं"** कहा है और भरत ने **"सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं नाट्यवेदं ततश्चक्रे सर्वशिल्पप्रदर्शनम्"** बतलाया है। कालिदास ने जिस तरह शाकुन्तल और विक्रमोर्वशीय में दुःखान्त परिणत होने वाली घटना को निर्वहण सन्धि में सुखान्त बना दिया है: भरत ने भी यही नियम अपनाया है।

कुमारसम्भव में शिव-पार्वती के विवाह हो जाने पर उन के मनोरंजन के लिए जो अप्सराओं से नाटक का प्रयोग करवाया गया है, उस प्रथम प्रयोग में भी नाट्य-सन्धि का अनुसरण कर, वृत्ति-भेद, विविध रसानुकूल रागों की योजना, पात्रों का हाव-भाव **"मावाविव शरीरिणौ"** अंग-विक्षेप आदि से यह प्रकट होता है कि कालिदास नाट्य-शास्त्र-नियमों की परिभाषा का भी प्रवीण पण्डित रहा है।

तौ सन्धिषु व्यंजितवृत्तिभेदं रसान्तरेषु प्रतिबद्धरागम् ।
अपश्यतामप्सरसां मुहूर्तंप्रयोगमाद्यं ललिताङ्गहारम् ॥

—कुमार०

नाटकों की सन्धियों के ६४ भेद हैं। यदि भरत के इन भेदों से कालिदास के नाटकों की तुलना की जाए तो कई स्थानों पर वह स्वतन्त्र विदित होता है। इसी प्रकार भरत ने अपने शास्त्र के १४।१५ अध्याय में छन्द-शास्त्र का विस्तार-सहित विवरण किया है। यदि कालिदास यह जानता था तो उस के प्रयुक्त वृत्तों के नाम और गुण समान मिलते, किन्तु कालिदास के छन्द-प्रयोग भी भरत के नियमों से स्वतन्त्र दिखाई देते हैं। रतिविलाप के वैतालीय को वियोगिनी बतलाया गया है। इसी तरह रथोद्धता को भी स्वगता कहा गया है, जिसे वैतालीय कहा गया है जब कि वह अक्षर-गणात्मक है, और छन्दःशास्त्र में उसे वियोगिनी माना है, और कुमारसम्भव में वैतालीय ही कहा है (४,२४)।

भरत ने नाटक के मुख्य और गौण भेद किए हैं, और उन की पांच प्रकृति बतलाई है। ये पांच बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य हैं। इन में बीज, बिन्दु और कार्य का प्रमुख कथा-भाग से सम्बन्ध रहता है, तथा पताका और प्रकरी का कथा की उपकथा के विकास से सम्बन्ध रहता है। पताका से विस्तार और प्रकरी से छोटी घटना सम्बन्धित होती है, परन्तु भरत के मतानुसार प्रमुख-कथा के परिपोष के लिए प्रयोग होता है, किन्तु कालिदास ने इस भरत-नियम के विपरीत अपने नाटकों में पताका के प्रयोग की उपेक्षा ही की है। इस पर भी उस के नाटक विशेष रूप से मनोरम और सफल ही हुए हैं।

भरत ने किसी प्रयास की परिणति के लिए पांच अवस्थाओं का निर्देश किया है। मालविका में अवश्य ही इन पांचों अवस्थाओं का परिपोष मिलता है, पर विक्रमोर्वशीय और शाकुन्तल में यह नियम नहीं माना है। भरत के विधानों से इन दोनों नाटकों में अभिनवता है, अनुकरण नहीं है। और इस के विपरीत भरत के नियम के अनुकूल ही सन्धि,

संविधानिक, एक-एक अङ्क का विधान, उसकी पूर्ति, प्रवेशक के नियम, एक अङ्क से दूसरे अङ्क तक की समय-मर्यादा, अङ्कों के लिए निषिद्ध विधान, भृत्यों के भाषण, प्राकृत का प्रयोग, प्रवेशक का "प्राकृतभाषाचारः" और विष्कम्भक का "संस्कृतवचनानुगतः" आदि का प्रयोग कालिदास ने ठीक उसी तरह किया है। आगे भरत ने नान्दी के विषय में जो निर्देश किया है वह "वेदान्तेषु" इत्यादि श्लोक से सुसंगत नही है। अवश्य ही यह नान्दी नहीं है। यह लेखक का मंगलाचरण ही है। भरत का नियम है कि नाटक के नायक का चरित्र राजा का होना चाहिए कालिदास ने यह माना है, परन्तु नाटककार को समकालीन राजा का चरित्र नहीं लेना चाहिए। भरत के इस नियम का समकालीन अग्निमित्र को पात्र बनाकर मालविकाग्निमित्रकार ने अनुकरण नहीं किया है। भरत के नियमानुकूल तो अग्निमित्र कालिदास का समकालीन नही रह सकता और जहां तक भरत के नियम का सम्बन्ध है व्यवहार-दृष्टि से समकालीन राजा के वर्णन के लिए एक औचित्य रखता है। परन्तु कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में नायक के जिस रूप की स्थिति का वर्णन किया है, वह समकालीन होते हुए भी अव्यवहारिक नहीं, बल्कि समकालीन राजा के दरबार में उस के प्रथम प्रवेश और प्रतिष्ठा के लिए सहायक बन जाता है। नवीन युवक कवि का भास की प्रतिद्वंद्विता में यह साहस स्वाभाविक प्रतीत होता है, फिर कवि भरत के नियमों से आबद्ध भी तो नहीं है। कदाचित् भरत के मतानुरूप कालिदास ने समकालीन नरेश का चरित्र अङ्कन न भी किया हो, तो भी वह अग्निमित्र के पश्चात् के निकटवर्ती काल का ही रहता है। भरत से पूर्ववर्ती होने में यह नियम भी बाधक नहीं होता। भरत के नियमों की अवहेलना से यह स्पष्ट है। वैसे भी परम्परा या रूढिवाद का कालिदास पोषक नहीं है। नियम उस के विधानों से भले ही निर्मित या प्रेरित हुए हों, वह नियमों से बँध कर परम्परा-प्रणेता नहीं है। यह तो उस के नाटक के नियमों के विपरीत प्रयोगों और व्याकरण के विरुद्ध विधानों से स्पष्ट है।

राजा के अन्तःपुर की नारी के आदर्श के विषय में भरत ने विचार किया है। तदनुसार अग्निमित्र की महादेवी पट्टाभिषिक्ता से मेल नहीं खाता। वह शराबी और क्रोधामर्षयुक्त है, दुष्यन्त की पट्टाभिषिक्ता तो नाटक में समाज के समक्ष कहीं आती ही नहीं, और उर्वशी केवल एक दिव्या नारी की परिधि में आती है। भरत के नियम का यहां भी कोई महत्त्व नहीं माना है। अपने पात्रों की कवि ने स्वतन्त्र ही रचना की है।

यदि महाभारत की शकुन्तला और वैदिक उर्वशी को भरत की कसौटी पर लगा कर परखा जाए तो वह कदापि मेल नहीं खा सकेगी। नाटक के पात्र कवि के अपने निर्मित हैं। कालिदास ने उन्हें रसानुकूल पात्रता देकर अधिक मनोरम बना दिया है। विदूषक भी कालिदास का सर्वथा स्वतन्त्र पात्र है। कालिदास के विदूषको का स्वभाव यद्यपि एक ही-सा लगता है, पर उनके कार्य विभिन्नता लिए हुए है। मालविका का विदूषक विशिष्ट प्रकार का है। वह गणदास आदि से प्रमुख है। राजा, देवी, इरावती, मालविका और कौशिकी की कक्षा का पात्र है। वह राजा का नम्रसचिव है (४,१६४)। भरत के शास्त्रीय पीठमर्द, विदूषक या विट की व्याख्या में उस का समावेश नहीं हो सकता। इस का यहां स्वतन्त्र महत्त्व है। शकुन्तला और विक्रमोर्वशीय में वह विशेषता नहीं मिलती जो मालविका में विदूषक को है।

भावों के सांग-प्रदर्शन के लिए रसों की निष्पत्ति आवश्यक है। इसी तरह भरत का मत है कि निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग आवश्यक है। कालिदास ने अपने नाटकों में इस का निर्वाह किया है। किन्तु इस से कवि ने भरत का अनुसरण किया है, यह नहीं कहा जा सकेगा। उस के पूर्व भी यह परम्परा भास आदि में मिलती ही है।

भरत ने अपने नियमों में संगीत और नृत्य का पर्याप्त विवेचन किया है। नाटकों में इन का स्थान प्रमुख माना है। इस दृष्टि से भी कालिदास ने भरत का अनुकरण नहीं किया है। उसकी शकुन्तला में केवल दो गीतों का ही मात्र प्रयोग है, और मालविका में एक गीत और एक नृत्य ही है।

यह तो स्पष्ट है कि कालिदास को नाटकशास्त्रीय नियमों और विधानों का पर्याप्त परिचय था। फिर

(शेष पृष्ठ ११ पर)

अफ़ग़ानिस्तान

[श्री सत्यम]

राष्ट्रसंघ की वर्णानुक्रमिक सदस्य-सूची में प्रारम्भ से आज तक पहला ही नाम है अफ़ग़ानिस्तान। अफ़ग़ानिस्तान मध्य एशिया का एक दरिद्र और अल्प-विकसित देश है, परन्तु उसके निवासी असाधारण स्वातंत्र्य-प्रेमी और स्वाभिमानी हैं। अफ़ग़ान राष्ट्र किसी भी सैनिक संधि में सम्मिलित नहीं है। वैदेशिक मामलों में वह तटस्थता (नॉन-एलाइण्ड) नीति का प्रबल समर्थक और सदा से निरपेक्ष रहा है। परन्तु उसकी राजनैतिक स्थिति भौगोलिक अवस्थान के कारण बड़ी विचित्र और दिलचस्प बन गई है। वह चारों ओर से परस्पर-विरोधी फौजी गुटबंदी से बुरी तरह घिरा हुआ है। उत्तरी सीमास्थित सोवियत संघ तथा पूर्वी-सीमावर्ती लालचीन ये दो प्रबल साम्यवादी शक्ति अफ़ग़ानिस्तान में अपना-अपना 'पड़ोसी-धर्म' का असर जमाने के लिए जब कोई कसर नहीं छोड़ते, तब दूसरी ओर दक्षिण में पाकिस्तान और पश्चिम में ईरान इन दो सेंटो सैनिक-संघ वालों का मुखिया पूंजीवादी शक्ति अमेरिका अफगानों के 'विकास' के लिए हमेशा तत्पर रहता है। इनके अतिरिक्त सहधर्मी दोनों इस्लामी पड़ोसियों से अफ़ग़ानिस्तान को सदा सशंकित रहना पड़ता है, क्योंकि पाकिस्तान और ईरान आरम्भ से ही पख्तूनिस्तान और सीस्तान विवादों के कारण अन्दर से 'असद्भाव' बरतते आ रहे हैं। अत: अफगान राष्ट्रनायक अत्यन्त सतर्क और सावधान रहकर लगातार कूटनैतिक कुशलता से पेश आते हैं, जिससे पूर्वी और पश्चिमी दोनों शक्तिगोष्ठियों से अफ़ग़ानिस्तान को विशाल धनराशि सहायता के तौर पर मिलती रहती है। इस तरह अफ़ग़ानिस्तान एक सही नमूने का मध्यवर्ती राष्ट्र (बफर स्टेट) है और पिछले डेढ़ सौ साल से खूबी के साथ अपने इस पार्ट को वह अदा करता आ रहा है। इसलिए अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के विद्यार्थी बहुत दिलचस्पी के साथ अफ़ग़ान-घटनाचक्र का निरीक्षण करते रहते हैं।

जब हम अपनी दृष्टि अद्यतन परिस्थिति से हटाकर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की ओर डालते हैं, तो अफ़ग़ानिस्तान को एकदम विश्व के प्राचीनतम सभ्यता क्षेत्र में ही पाते हैं। प्राग्-ऐतिहासिक युग में इस भूभाग से ही मोहेञ्जोदड़ो सभ्यता को वैदूर्यमणि (लापिस-लाजुली) आदि मिलते रहे हैं, और उस सभ्यता के समकालीन उपनिवेशों के कई अवशेष अफ़ग़ानिस्तान में इन दिनों निकल रहे हैं। फ्रांस, इताली आदि कई देशों के पुरातत्त्वज्ञ वहां वर्षों से खुदाई कार्य में जुटे हुए हैं।

इतिहास के उदयकाल में अफ़ग़ान-भूमि आर्यावर्त के अन्तर्गत उत्तरापथ विभाग में अवस्थित था। वैदिक साहित्य के नदी-स्तुति, दाशराज्ञयुद्ध आदि प्रकरण इस बात का प्रमाण हैं कि इन्दो-इरानीय आर्य-जाति के पूर्वज वहां बसते थे और ज़ेन्द आवेस्ता के अनुसार वह भूभाग आर्याना-भेजो के नाम से परिचित था। सर्वप्रथम आर्य-उपनिवेश अफगान भूभाग में स्थापित हुआ था। वंक्षु नदी के दक्षिण-तटवर्ती बाह्लिक (आधुनिक बल्ख) में, जिसका वर्णन 'नगरियों के माता' के रूप में विश्व के प्रथम इतिहासकार ग्रीक-पण्डित हेरोदोतस ने किया है, विवस्वान्-पुत्र यम वहां प्रथम धर्मराज बने। यहीं से अफगान इतिहास का प्रारम्भ होता है। इसके आगे कालक्रम में गंधार, सप्तसिंधु, कंबोज, कपिशा आदि जनपद इर्द-गिर्द बनते गए और पारद, पहलव, यवन, शक आदि जातियां आकर वहां बसती रहीं। पुरातत्त्व के विद्वान् इन जातियों और उनकी भाषाओं के अध्ययन में गहरी रुचि लेते हैं।

अफ़ग़ानों को यह विशेष सद्भाग्य प्राप्त है कि विश्व के महान् धर्म का उदय उनकी भूमि पर ही हुआ, एक हिन्दु-धर्म और दूसरा पारसी-धर्म। कुरुक्षेत्र-युद्धोत्तर काल में पारसी-धर्म के प्रतिष्ठाता जरथुस्त्र का आविर्भाव हुआ जो बल्ख के रहने वाले थे। समग्र ईरानीय मालभूमि उनकी जेन्द आवेस्ता की गाथाओं से गूंज उठी और अगली कुछ-एक शताब्दियों के लिए

अफ़ग़ानिस्तान भारतीय प्रभावक्षेत्र के बाहर चला गया। इस अवधि में उसे क्रमश: ईरानीय हरवामनीष साम्राज्य में, तथा सिकन्दर व सेलुकस के ग्रीक साम्राज्य के अधीन रहना पड़ा। अन्त में चन्द्रगुप्त मौर्य के पुरुषार्थ से भारतीय साम्राज्य में वह फिर से सम्मिलित हो गया। दो हजार साल के लम्बे इतिहास में यद्यपि कई बार ऐसा हस्तांतर हुआ है, फिर भी अफ़ग़ान भूमि सदा से ही भारतवर्ष का अभिन्न अंग थी और उसके निवासी भारतीय माने जाते थे। संस्कृत-निष्ठ पश्तोभाषा आज इसका एक अकाट्य प्रमाण है।

मौर्य सम्राट् अशोक और कुषाण-सम्राट् कनिष्क के शासनकाल में अफ़ग़ानिस्तान में बौद्ध-धर्म का विशेष विस्तार हुआ। असंख्य स्तूप, चैत्य, विहार, मूर्तियों के निर्माण और प्रतिष्ठा हुई। वहां भिक्षुओं और तीर्थ-यात्रियों का तांता-सा लग गया। दुनिया की विशाल-तम एकाधिक बुद्ध-प्रतिमाएँ उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान के बामियान में आज भी विद्यमान हैं। इधर, कंधार में, अशोक-शिलालेख का सम्प्रति आविष्कार हुआ है।

अफ़ग़ानिस्तान के वीर निवासी कई पीढ़ियों से अपना खून-पसीना एक कर भारत-आक्रमणकारी विदेशियों का सामना करते आए हैं और इन प्रयत्नों में उन्हें बार-बार अपना सर्वस्व स्वाहा कर देना पड़ा है। पाश्चात्य इतिहासकारों को बहुत अचम्भा होता है कि हजरत पैगम्बर के बाद जब तीव्रगति से तीनों महादेशों में फैलने में इस्लाम समर्थ हुआ, तब अफ़ग़ानि-स्तान के द्वार पर पहुंच कर उसे बरबस शतियों तक रुका रहना पड़ा; और, जिस साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता था उस प्रबल ब्रिटिश शक्ति को अफ़ग़ानों के मुकाबले में कई बार सामरिक पराजय स्वीकार करना पड़ा। १७४७ से भले ही वह स्वतंत्र राष्ट्र बन गया है, फिर भी अफ़ग़ानों के मन और मस्तिष्क भारतीयों के साथ हैं। यही कारण है कि प्रतिकूल परिस्थिति के होते हुए भी भारत-अफगान मैत्री आज सुदृढ और अटूट है।

★ ★ ★

(पृष्ठ ९ का शेष)

भी उसने अपनी रचना में स्वतन्त्रता और मौलिकता को महत्त्व दिया है, अथवा उसने उन विधानों को समक्ष रखा है जो भरत के पहले प्रचलित रहे हों, और जिनके नियम सम्भवत: भरत से मिलते-जुलते होकर भी स्वतन्त्र रहे हों, जो आज उपलब्ध नहीं हैं। भरत के नियमों के विपरीत विधानों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वह भरत से पूर्ववर्ती है। वह उस के नियम-निर्माण-काल से पहले ही रहा है। भरत ने भास और इस प्रतिभा-पुत्र के सफल प्रयोगों से प्रभावित होकर ही अपने अधिकांश नियमों का निर्माण किया होगा। भरत के समक्ष भास,सौमिल्ल, कालिदास आदि की सफल रचनाएँ अवश्य रही होंगी। आगे के नाटक फिर भरत के विधानों बंध कर हुए हैं। यह उन की शैली और नियमबद्धता से प्रकट होता है। कुमारसम्भव और रघुवंश में दिए गए नाटकीय नियमों के संकेत से भी यही विदित होता है कि भरत के पूर्वकालीन नियम-निर्माताओं के विधि-विधानों से कवि परिचित रहा है। कालिदास शुंगकालीन कवि है, और नाट्य-शास्त्र का प्रणेता भरत ई० सन् की पहली शती का है, अथवा बाद का है। वह कालिदास के प्रथम नहीं रहता। कामसूत्रकार वात्स्यायन, और भरत दोनों ही मालव-निवासी हैं, और दोनों ही पश्चात्कालीन हैं। कवि दोनों से स्वतन्त्र और मौलिक मार्ग का निर्माता है। अनुकरणशील नहीं। उस का अपना स्वतन्त्र महत्त्व है।

★ ★ ★

भावनात्मक एकता के प्रतीक—कबीर

[डा० नजीर मुहम्मद]

भारतवर्ष विभिन्न प्रान्तों, धर्मों, भाषाओं और प्रथाओं का देश है। इस में अनेक जातियों और वर्णों के लोग निवास करते हैं। कश्मीर से कन्याकुमारी और सिन्धु प्रान्त से असम तक फैले हुए इस देश में अनेक विभिन्नताओं का सागर हिलोरें लेता रहता है। कश्मीर की भाषा, रीति-रिवाज और प्रथाओं का सम्बन्ध केरल की भाषा और रीति-रिवाजों से तथा पंजाब प्रान्त की भाषा और रीति-रिवाजों का सम्बन्ध असम की भाषा और रीति-रिवाजों से जुड़ पाना कठिन है। इन ऊपरी विभिन्नताओं के होते हुए भी आन्तरिक अभिन्नता की एक अन्तर्धारा सदैव से यहां प्रवाहित होती रही है। भारत की प्राचीन परम्परा और संस्कृति इस अभिन्नता की संचालक और संरक्षक हैं। भारतीय संस्कृति ने शताब्दियों से अपनी उज्ज्वल परम्परा की रक्षा कर के विश्व में आदर्श का निर्माण किया है। उस के इस गौरव का वास्तविक श्रेय उन महान् व्यक्तियों को है जिन्हों ने भारतीय-संस्कृति के बीच मानवता की रक्षा करने वाले अपने अमर-सन्देश दे कर समय-समय पर जनता को जगाने के प्रयत्न किए। मानव सत्-असत् प्रवृत्तियों का भाण्डार है। मनुष्य की असत् प्रवृत्तियों के समाज पर छा जाने पर ही समाज में धार्मिक द्वेष, जातीय भेद, प्रान्तीय अभिमान इत्यादि की बुरी भावनाओं का प्राधान्य हो जाता है। इन को समाप्त कर ऐक्य की स्थापना करने का महत्त्वपूर्ण कार्य कुछ महान् पुरुषों को करना पड़ता है। भारत में इस प्रकार के प्रयत्नों की अखण्ड परम्परा रही है। एकता की स्थापना का प्रयत्न करने वाले इस प्रकार के मनीषियों में कबीर का स्थान प्रमुख है।

कबीर के काल में हिन्दू-मुस्लिम विरोध, जातिवाद, ऊँच-नीच की भावना, दिखावटी धार्मिक क्रिया-कलापों तथा पाखण्डों का ज़ोर था। कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों की धार्मिक प्रक्रियाओं को ध्यान से देख कर दोनों जातियों को समझाया कि किन्हीं दो धर्मों को मानने वाले व्यक्तियों के भगवान् अलग-अलग दो नहीं हो सकते। केवल धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में भिन्नता होने के कारण आपस में लड़ना-झगड़ना ठीक नहीं, क्योंकि यह क्रिया-कलाप न तो मौलिक हैं और न किन्हीं व्यापक सिद्धान्तों पर ही आधारित हैं। हरि-कीर्त्तन और अजां, मन्दिर-मस्जिद, तथा पूर्व और पश्चिम का भेद उस एक शक्ति, एक सत्य को दो में नही बाँट सकता। बाह्य धर्माचार तथा अनेक नाम उस सर्वव्यापक सत्य को मन्दिर या मस्जिद में सीमित नहीं कर सकते। राम को मन्दिर में और खुदा को मस्जिद में बताने वाले व्यक्ति भूल में हैं, क्योंकि—

तुरक मसीति देहुरै हिन्दू, दहूँठां राम खुदाई।
जहाँ मसीति देहुरा नांही, तहां काकी ठकुराई॥

व्यक्तियों द्वारा माने गए धार्मिक सभी चिह्न और वेष-भूषा कृत्रिम हैं। जनेऊ और सुन्नत मनुष्य की मौलिक एकता को विभक्त नहीं कर सकते—

कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिन्दू तुरक न जानै भेऊ।

हिन्दू-मुसलमानों के आपसी विरोध को मिटाने और दोनों में प्रेम पैदा करने के लिए कबीर ने कहा कि हिन्दू-मुसलमान दोनों एक ही पिता की सन्तान हैं, एक ही कर्त्ता ने उन्हें बनाया है। राम, रहीम, केशव, करीम आदि नाम एक ही सत्य के है—

हिन्दू तुरक का करता एकै,
ता गति लखी न जाई।

× × ×

हमारे राम रहीम करीम केसो,
अलह राम सति सोई॥

हिन्दू मुसलमानों के बीच वैमनस्य और भेद-भाव की खाई को पाटने के प्रयत्न के साथ ही कबीर ने हिन्दुओं में फैले हुए छुआछूत के विचारों का डटकर विरोध किया। उस समय ब्राह्मणों की शक्ति और महिमा की वृद्धि के साथ ही शूद्रों का स्थान समाज में अत्यन्त नीचा हो गया था। ब्राह्मण शूद्रों की छाया तक से घृणा करते थे। नीच-से-नीच आचरण वाला

भी ब्राह्मण केवल जाति के बल पर ऊँचा माना जाता था और अच्छे-से-अच्छे आचरण वाला होते हुए भी शूद्र समाज में नीचा समझा जाता था। ब्राह्मणों के प्रपंच से पिसते हुए शूद्रों को मुक्त करने का प्रयत्न कबीर ने किया। उन्होंने ब्राह्मणों से खुलकर पूछा कि उनमें शूद्रों से कौन-सी श्रेष्ठता है—

काहे को कीजे पांडे छोति विचारा,
छोतहि ते उपना संसारा।
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध,
तुम कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।
छोति छोति करत तुम्हही जाए,
तो ग्रभवास काहे को आए॥

कबीर ने समाज में सात्विकता और आचरण-प्रवणता का प्रचार किया। भयंकर रूप में फैली हुई वासना का उन्होंने डटकर विरोध किया। इसके लिए उन्हें स्त्रियों की निन्दा करनी पड़ी तथा ब्रह्मचर्य का उपदेश देना पड़ा। उन्होंने समाज में सात्विक वृत्तियों के प्रचार के लिए बड़ा तप किया था।

कबीर समाज में आर्थिक समानता की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने धनी और सत्ताधारी लोगों से समाज के निर्धन व्यक्तियों के साथ सद्भावनापूर्ण व्यवहार करने की बात कही। उन्होंने राजाओं और अमीरों के विलासी जीवन को धिक्कारा। वे हरि-भजन के माध्यम से मानव-सेवा को प्रोत्साहन देते थे। उन्होंने राजा और प्रजा के भेद को अनुचित बताया। वे राजा, प्रजा सब का उद्गम एक ही महान् शक्ति को मानते थे—

ऊंकार आदि है मूला,
राजा परजा एकहि सूला।

यों तो मध्ययुग का भक्ति-आन्दोलन सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता को अभिव्यक्त करने वाला महान् राष्ट्रीय आन्दोलन ही था, किन्तु कबीर का काव्य तो पूर्णरूपेण भावनात्मक एकता के आधार पर ही रचा गया है। कबीर में गौतम बुद्ध की दया और अहिंसा, ईसामसीह का परोपकार और मुहम्मद साहब का विश्वबन्धुत्व का भाव एकाकार हो उठा है। कबीर ने ऐसे महान् आदर्शों की स्थापना की है कि वे अनेक शताब्दियों के बीत जाने पर भी अपना महत्त्व स्थायी बनाए हुए हैं। उन्होंने लगभग पाँच-सौ वर्ष पहले ही उन कार्यों की नींव डाली जिन पर महात्मा गांधी ने वर्तमान स्वतन्त्र भारत का भव्य-भवन बनाया। छूतछात-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, और सत्य-अहिंसा की स्थापना पर कबीर ने बल दिया था। गांधी जी ने इन्हीं को अपने आन्दोलन का मुख्य ध्येय बनाया। कबीर के आर्थिक समानता के विचार को फलीभूत करने का कार्य सर्वोदय नेता बिनोवा भावे कर रहे हैं। महात्मा गांधी के स्वप्न 'रामराज्य' को साकार करने के लिए हमें कबीर के आदर्शों को ग्रहण करना होगा। आज भारत में भावनात्मक एकता की अत्यन्त आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों में आपस की एकता ही स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकती है। कबीर की वाणियाँ जनता को सच्चे मार्ग पर चलाने में सफल होंगी।

★ ★ ★

गुरु कौन ?

[प्रा. इन्द्रदत्त उनियाल]

जिन्होंने जगत् को विगतराग होकर, सदा ध्येय औ' गेय है अन्य माना।
सिखाया जिन्होंने कि है कर्ममय सब, जगत् ! कर्म से तुम कभी मत लजाना॥
जिन्होंने मनुज को दनुज-भाव से भी सदा ज्ञान देकर जगत् में बचाया।
नहीं भेद जीवों में, भावों में यह सब, जिन्होंने मनुज को सदा ही बताया॥
अरे भाग्य का भोग का भार मिथ्या, तजो तुम इसे है, जिन्होंने जताया।
करो कर्म कर्तव्य औ' धर्म अपना, जिन्होंने यही मर्म सर्वत्र गाया॥
तमस्तोम अज्ञों के उर का जिन्होंने, जला ज्ञान-दीपक मुदित हो भगाया।
जगाया जिन्होंने स्वगर्जन से उनको, प्रबल मोहनिद्रा ने जिनको सुलाया॥
उन्हीं की है पूजा, नहीं और दूजा, वही हैं गुरु और शिक्षक मनुज के।
उन्हीं के चरण में गुरु-पूर्णिमा पर, विनय से ही मस्तक झुकेंगे मनुज के॥

एक सुख—चार दुःख

[श्री सुशीलकुमार 'फुल्ल']

वह पाँव से लेकर सिर तक सिहर उठी। "परिस्थितियों को अनुकूल भी तो बनाया जा सकता है।" अपने ही कहे हुए वाक्य पर उसे आज विश्वास नहीं हो पा रहा था। सम्भवतः उस समय उसने केवल सैद्धान्तिक पक्ष को लेकर तर्क प्रस्तुत किया था और आज व्यावहारिक पक्ष उसकी परीक्षा के लिए ही स्यात् आ खड़ा हुआ।

तब शीला एफ. ए. में पढ़ती थी। उसका मध्यम कोटि का कद और खंजन-पक्षी जैसी आँखें बड़ी मोहक थीं। जितनी वह चंचल थी, उतनी ही पढ़ाई में कुशाग्र-बुद्धि। जिस काम को करने की ठान लेती उसे पूरा करके ही छोड़ती। यह संस्कार उसने अपने पिता से ग्रहण किया था। उसके पिता गणपतिचन्द्र एक स्कूल में अध्यापन का कार्य करते थे। उमर यही पच्चास-एक के लगभग। व्यक्तित्व पूरा रौबदार। कहते हैं, एक बार उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं एम. ए. पास करके ही छोड़ूंगा। उस समय वह केवल मिडल पास थे। और वह अपनी बात के पक्के ही तो निकले। सारी परीक्षाएँ पास करते चले गए। लेकिन एम. ए. के लिए तो उन्हें बहुत वर्ष लग गए। हताश होकर उन्होंने एम. ए. का ध्यान छोड़ा। पता नहीं फिर उनके मन में क्या आया—५० वर्ष की अवस्था में उन्होंने एम. ए. कर ही तो डाली। शीला उन्हीं की पुत्री है।

सर्वेश शीला का सहपाठी था और था मित्र। इन की मित्रता इस बात से और भी घनिष्ठ हो गई कि गणपतिचन्द्र सर्वेश के पिता दीनदयाल के बचपन में सहपाठी रह चुके थे। उनका एक-दूसरे के घर आना-जाना है। शीला के पिता ने तो अध्यापन का काम पकड़ा था, परन्तु सर्वेश के पिता जी जीवन-बीमा कम्पनी में काम करते थे। शीला और सर्वेश बिना रोक-टोक से एक-दूसरे के घर आते-जाते थे। कालेज में भी दोनों खूब पढ़ते और एक-दूसरे से आगे बढ़ने की चेष्टा करते।

एक बार कालेज में डिबेट थी। सर्वेश ने कहा था, "जीवन की घटनाएँ उपन्यास की घटनाओं की तरह होती हैं। जो हो चुका है, उसके बारे में हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं। जो अभी घटा नहीं उसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।"

शीला के तन-बदन में आग लग गई। उसे सर्वेश का 'निराशावादी' दृष्टिकोण कदाचित् पसन्द न आया। खड़ी होकर बोली, "कुछ कहा क्यों नहीं जा सकता। हर प्राणी को अपने भावी जीवन के प्रोग्राम पहले ही निश्चित कर छोड़ने चाहिएँ, और फिर ऐसी कौन-सी कठिनाई है, जिसे मानव पार नहीं कर सकता।" कुछ रुक कर वह फिर बोली, "तुम्हारा यह दृष्टिकोण पलायनवादी लगता है।"

और सब उपस्थित लोग हँस पड़े। परन्तु सर्वेश ने साहसपूर्वक कहा, "देखो शीला, जहां तक कठिनाई वाली बात है, मैं तुम्हारे से शत-प्रतिशत सहमत हूँ। प्रयत्न से बहुत-कुछ हो सकता है। परन्तु जिस प्रकार उपन्यास के पाठक का पूर्व-निश्चित-धारणाएँ विपरीत निकलती हैं, उसी प्रकार प्राणी कई बार परिस्थितियों तथा कर्त्तव्य की दलदल में फँस जाता है।"

"परिस्थितियों को अनुकूल बनाना हमारे अपने हाथ में है।" सर्वेश इस तर्क के आगे चुप हो गया था। शीला का मन बेचैन हो उठा था। माथे पर भावों का आरोहण-अवरोहण स्पष्ट-परिलक्षित होता था। अपने-आप को भुलाने के लिए उसने पुस्तक उठाई। परन्तु पढ़ न सकी। मन में एक विचारधारा का सागर लहरें मार रहा था। उसने सर्वेश का पत्र अटैची में से फिर निकाला और उसे तीसरी बार पढ़ने लगी—

मेरी शीला,

मैं एम. बी. बी. एस. में से पास हो गया हूँ। पिता जी चिरकाल से जोर डाल रहे हैं, इसलिए

यह पत्र लिख रहा हूँ। और फिर तुम्हारे पिता जी भी तो गत वर्ष बड़ा जोर डाल रहे थे। सो अब मां-बाप की प्रसन्नता के साथ-साथ अपने जीवनरूपी रथ को भी सार्थक बनाएँ। पिता जी से परामर्श करके तिथि लिख भेजो। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी शीला परिस्थितियों को अनुकूल बना लेगी। पिता जी को नमस्कार। छोटों को प्यार।

सर्वेश।

शीला असमंजस में पड़ गई। उसके पिता ने एक वर्ष पूर्व सर्वेश के पिता से उनकी शादी की बातचीत तय कर ली थी। शीला ने कोई प्रतिवाद न किया था क्योंकि सर्वेश में सभी गुण थे।

शीला के तीन छोटे भाई हैं। उनमें से एक मॉडल स्कूल में पढ़ता है और दो दूसरे स्कूल में। बच्चे बहुत ही गम्भीर प्रकृति के हैं, क्योंकि उन्हें बचपन से ही मातृ-स्नेह से वंचित रहना पड़ा है। फिर भी शीला तथा उसके पिता ने उन्हें किसी वस्तु का अभाव खटकने नहीं दिया। वह शीघ्र पढ़-लिखकर स्वावलम्बी बन जाएँगे। तो भी आठ-दस वर्ष तो लगेंगे ही। शीला अपने कर्त्तव्य को पूरा कर रही है।

कुछ ही दिन हुए उसका बी. टी. का परिणाम घोषित हो गया है। पास होते ही उसे एक स्थानीय स्कूल में नौकरी भी मिल गई है। परन्तु परमात्मा को शायद कुछ और ही स्वीकार है। अत्यधिक परिश्रम करने के कारण उसके पिता की आँखें जाती रहीं। आपरेशन भी करवाया परन्तु व्यर्थ। गणपति जी स्कूल के लिए सब-कुछ कर लेते थे। स्कूल के लिए तो वह चन्दा माँग कर भी ला देते। न दिन देखते न रात स्कूल के काम में लगे रहते।

भाग्य की गति बड़ी विचित्र होती है। उन्हें स्कूल से जवाब मिल गया। जो लेई-पूंजी थी वह शीला की बी. टी. पर खर्च हो गई। उन्हें इतना ही दुःख हुआ जितना किसी बाप को होता है, जब उस का पुत्र सब-कुछ प्राप्त करके कृतघ्न की तरह इस भव-सागर में ठेल दे। किसी संस्था की तीस वर्ष सेवा का फल उन्हें यह मिला था। इतना ही नहीं उन्हें पुरस्कृत करने की अपेक्षा स्कूल ने उनके प्राविडेंट-फण्ड में से भी दो-सौ रु० दान ले लिया था, क्योंकि ऐसा उस स्कूल में रिवाज था। गणपतिचन्द्र फिर भी सन्तुष्ट थे।

शीला पर पहाड़ गिर पड़ा था। स्कूल से आते ही शीला लेट गई थी। अपने पिता को अपने कमरे में आते देख एकदम उठ बैठी।

"तबीयत तो ठीक है न ?"

"हां, पिता जी !"

"तो......!"

"वैसे ही लेट गई थी ! स्कूल में पीरियड सारे लगे हुए थे आज। इस लिए जरा थकावट-सी हो गई थी !"

"सारे ! तो क्या अँग्रेजी के अतिरिक्त और भी विषय मिला है क्या तुम्हें ?"

"हां, पिता जी ! दसवीं की अँग्रेजी, नवीं की हिन्दी, आठवीं का सामाजिक-अध्ययन तथा सातवीं की पंजाबी।"

"अच्छा ! प्राइवेट संस्थाओं वाले तो रक्तशोषण करते हैं, रक्तशोषण।"

कुछ रुक कर वह बोले—"न मैं अन्धा होता और न तुम्हें......!" और वह रोप ड़े। बेटी से भी रहा न गया। उसकी आँखें भी सजल हो गई, परन्तु उन्हें उसके पिता न देख सके। हिम्मत से उस ने कहा—"पिता जी, आप की आँखों में आँसू क्यों ? मैं जो हूँ।"

"बेटी, लड़कियां तो पराया धन होती हैं। चाहता हूँ तुम्हारे हाथ पीले कर दूं ! मैं तो गुरुद्वारे या धर्मशाला में भी समय काट सकता हूँ, परन्तु तुम्हारे भाइयों का क्या होगा ? मुझे उन्हीं की चिन्ता लगी रहती है।" और निःश्वास ले कर चुप हो गए।

"आप तो ऐसी बाते करते हैं, जैसे मैं पराई हूँ।" दोनों अपने-अपने विचारों में खो गए।

एक ओर रात थी, दूसरी ओर प्रातः, एक ओर परिश्रम, दूसरी ओर वह एक डाक्टर की बीवी। मानव प्रायः आराम-प्रिय है। परन्तु जहां कर्त्तव्य का प्रश्न उपस्थित होता है, वहां मानव दुविधा में फँस जाता है। निष्कर्ष पर पहुँच पाना बड़ा मुश्किल होता है। शीला भी इन्हीं भुल-भुलैयों में पड़ी थी। उस के अभी खाने-पीने के दिन थे। फिर वह मजदूरी या रात को क्यों चुने ? क्यों न वह प्रातः को चुने। ताकि

रस-लोभी भ्रमर बीन बजा कर उसे विवाह ले जाए। फिर कितना मज़ा होगा। और फिर सर्वेश से वह प्रतिज्ञा भी तो किए है। क्या वह अपने ही तर्कों को आप ही झुठला दे। क्या वह अपने ही सर्वेश को धोखा दे दे। एक बार तो उस के मन में आया, वह अवश्य ही सर्वेश को 'हाँ' लिख दे। तत्क्षण मन:स्थिति ने पलटा खाया। अन्तरतम से आवाज़ आई—तुम्हें अपना ही सुख प्रिय लगता है। एक सुख के लिए चार को ठोकर मार सकती हो? और फिर क्या तुम सुखी भी रह सकोगी। एक ओर तुम्हारे तीनों भाई मां-बाप की दुहाई देते फिरेंगे दूसरी ओर तुम्हारा बाप ठोकरें खाता फिरेगा! ठोकर खाता फिरेगा!! और फिर अपने बच्चों को भूखा मरता देख क्या तुम्हारा बाप तुम्हारे दर पर आएगा? नही! कदापि नहीं! वह रेल के नीचे··· ···। वह आगे न सोच सकी। पत्थरवत् बैठी अपने बाप को देखने लगी। उसे लगा वह पागल हो गई है। परन्तु तभी वह सम्भल गई और मानसिक-संभारता को रखती हुई उठी और लिखने वाली मेज़ पर जा बैठी। हाथों में गति आ गई। और वह लिखने लगी।

सर्वेश जी!

पत्र आप का प्राप्त हुआ, धन्यवाद। जीवन की घटनाएँ सचमुच एक उपन्यास की घटनाओं की भान्ति हैं, जिन के विषय में पहले ही कुछ नहीं कहा जा सकता। तुम्हारे ही वाक्य की आवृत्ति की है—आशा है बुरा न मनाओगे। मैं ने तुम्हारा साथ भावी जीवन व्यतीत करने का वचन दिया था। परन्तु परिस्थिति जो आज है, वह इस बात की आज्ञा नहीं देती कि मैं अभी विवाह करूँ। मेरे भाइयों को अभी स्वावलम्बी बनाना है। मेरा निश्चय अटल है! मुझे मेरे पुराने वचन याद दिलाने की कदापि न सोचना। मैं कर्त्तव्य की ओर अग्रसर हुई हूँ। एक सुख के लिए चार दु:ख मोल नहीं लेना चाहती, क्षमा।

शीला।

जब शीला ने पैन रखा तो उस के पिता की विचार-तन्द्रा टूटी। पूछा—"बेटी, अभी तुम क्या लिख रही थी?"

"मैं तो पाठ-संकेत लिख रही थी पिता जी। पाठ-संकेत लिख लेने से पढ़ाने में ज़रा सुविधा जो रहती है।"

"शीला तू कितना परिश्रम करती है?" बूढ़ा प्रसन्न हो अपने कमरे में चला गया—वास्तविकता से पूर्णत: अनभिज्ञ।

★ ★ ★

पंछी, अब न करो यह प्रीत

[श्रीमती शान्ति अग्रवाल]

पंछी, अब न करो यह प्रीत।

तुम तो हो तरुवर के वासी, भव-बन्धन से दूर,
मैं पंछी हूँ जाल पराये बन्धन में मजबूर।
तुम विचरो उन्मुक्त गगन में गाओ सुख के गान,
क्या जाने मेरे जीवन का हो कैसा अवसान।
हम-तुम दोनों ही पंछी हैं, पर कितने विपरीत?

पंछी, अब न करो यह प्रीत।

तुम से कितनी दूर न जाने होगा मेरा वास,
मीत आज की प्रीत बनेगी तब कल का उपहास।
देखो, रूठ न जाओ पंछी, सोचो क्षण दो-चार,
सुख में दु:ख की याद न आती, कहता है संसार।
मेरी-तेरी बात नहीं रे, यह तो जग की रीत,

पंछी, अब न करो यह प्रीत।

सोच यही है—"आज सुना दूं, क्या अंतिम संदेश,
कहने को तो है जीवन की, सारी गाथा शेष।
और कहीं पर स्वर खोए हैं, शब्द हो गए मौन,
दूर क्षितिज से ढूंढ स्वरों को, ला सकता है कौन?
आज यही अच्छा है, अपना मौन रहे संगीत।

पंछी, अब न करो यह प्रीत॥

औपनिषदिक भारत के पूर्वी एवं दक्षिणी प्रदेश

[प्रा० व्रजदेवप्रसाद राय]

औपनिषदिक भारत के भौगोलिक विवरणों के क्रम में यह लेख विशेष महत्त्व का है, क्योंकि इस में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि आर्यों को यद्यपि भारत के पश्चिमी भागों की विशेष जानकारी थी एवं आर्य-संस्कृति के अधिकतर केन्द्र पश्चिम भारत में ही थे तथापि पूर्वी एवं दक्षिणी-भारत के विभिन्न भागों से वे सुपरिचित थे। एवं वे इस प्रकार सारे भारत में अपनी संस्कृति के प्रसार में सफल हो चुके थे। इन प्रदेशों में काशी, कोशल, विदेह, विदर्भ एवं लङ्का आदि काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

काशी—प्राचीन एवं अवान्तरकालीन उपनिषदों में काशी का बार-बार उल्लेख हुआ है। बृहदारण्यकोपनिषद्[१] में काशी के कुशल धनुर्धरों के विवरण मिलते हैं जिन के समक्ष शत्रुओं के पाँव उखड़ जाते थे। इस की पुष्टि इस बात से भी होती है कि सातवीं सदी ई० पूर्व में काशी एक सबल राज्य था तथा यहाँ के ब्रह्मदत्त आदि राजाओं ने पड़ोसी राज्यों पर आतङ्क फैला दिया था। जैसा कि जातक की कथाओं से जाना जाता है, जिन में काशी का प्राचीन इतिहास सुरक्षित है एवं उन की रचना का काल छठी सदी ई. पूर्व माना जाता है। इसी उपनिषद् में काशी के महान् दार्शनिक एवं जन-सेवी राजा अजातशत्रु[२] के नाम का उल्लेख हुआ है जिन के पास देश के बड़े-बड़े ब्राह्मण दार्शनिक भी आते थे एवं ज्ञान-पिपासा शांत करते थे तथा शङ्काओं के समाधान भी करते थे। कौषीतकि उपनिषद्[३] में काशी का भी उल्लेख आता है। बहुत बाद के एक उपनिषद् ग्रन्थ श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद्[४] में इसे अविमुक्त तीर्थ एवं पृथ्वी पर पवित्रतम स्थान माना गया है। इसी प्रकार गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्[५] में सप्तपुरी का उल्लेख आता है जिस में काशी की भी गणना होती है। जाबालदर्शनोपनिषद्[६] में भी काशी का विवरण मिलता है। काशी बहुत ही प्राचीन प्रदेश है एवं उपनिषदों में उसके धार्मिक पक्ष का भी उल्लेख है। औपनिषदिक ज्ञान के विकास एवं सम्पोषण में काशी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। पञ्चाल के प्रवारण एवं विदेह के जनक के समान ही तत्कालीन काशी के अजातशत्रु दर्शन की सूक्ष्म गुत्थियों को सुलझाते, विद्वानों का पोषण करते एवं साथ-साथ क्षात्र-धर्म की मर्यादाओं का पालन भी समुचित रीति से करते थे। काशी के राज्य, उस की जनता, उस के राजा एवं उस की समृद्धि के बारे में पता जातकों से लगता है जिन में इस प्रदेश का पुरातन इतिहास सुरक्षित है।

औपनिषदिक काशी की पहचान आज-कल के उत्तर-प्रदेश के वाराणसी जिले से की जाती है, जिस की राजधानी वाराणसी में थी। जातकों से ज्ञात होता है कि काशी नामक एक गाँव भी था जिस की वार्षिक आय एक लाख कार्षापण थी। कोशल के राजा कंस ने ई० पूर्व सातवीं सदी के अन्त में काशी को अपने अधिकार में कर लिया था था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा किए गए उत्खननों से काशी के ई० पू० १००० सालों के इतिहास पर प्रकाश मिला है एवं यह काल उपनिषदों के काल के बहुत नजदीक है। समय-समय पर बाढ़ के कारण नगर ध्वस्त होता रहा एवं वर्तमान वाराणसी मूलस्थान से तीन मील दूर हो चुकी है। काशी कुछ दिनों तक मगध के अधीन भी रही जो वहां के राजा बिम्बिसार की पत्नी कोशलादेवी को पूर्ण शुल्क के रूप में मिली थी। बुद्ध के समय में काशी राज्य काफी समृद्ध था एवं वाराणसी काफी विकसित थी। इस स्थान की ख्याति एवं पवित्रता से आकृष्ट होकर बुद्ध ने अपना सर्वप्रथम प्रवचन यहीं किया था। जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ काशी के ही राजकुमार थे। इनका समय ९०० ई० पू० माना जाता है। यही समय उपनिषदों का भी है। अपनी दार्शनिकता की उसी परम्परा में काशी ने पार्श्वनाथ को पैदा किया।

---

१. ३,८,२। २. बृहद २,१,१,२०। ३. ४,१। ४. १,१। ५. १८। ६. ४,४८।

अवान्तर काल में काशी अन्तरराष्ट्रीय-ख्याति की थी। धर्म, दर्शन, शिक्षा, कला-कौशल एवं व्यापार के क्षेत्रों में इसे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त था।

कोशल—यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से उपनिषदों में कोशल के नाम का उल्लेख नहीं आता है फिर भी किसी-न-किसी रूप में इसका विवरण मिलता है। प्रश्नोपनिषद्[1] में कौशल्य आश्वलायन का उल्लेख आता है। आश्वलायन एक बहुत बड़े दार्शनिक थे एवं इनके नाम का विशेषण 'कौशल्य' स्पष्ट रूप से बतलाता है कि ये कोशल देश के निवासी थे, नहीं तो कौशल्य इन्हें कहने का कोई दूसरा तात्पर्य नहीं है। पञ्चाल, काशी एवं विदेह की भांति ही कोशल भी शक्तिशाली राज्य था, पर इसके किसी दार्शनिक राजा का उल्लेख उपनिषदों में नहीं मिलता है। हो सकता है कि वहां के राजा शास्त्र की अपेक्षा शस्त्र में अधिक रुचि रखते हों। फिर भी वहां की जनता दार्शनिक ज्ञान की पिपासु थी जिसका प्रतिनिधित्व आश्वलायन करते हैं। उन्हें श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण कहा गया है। कोशल की पहचान आज-कल के अवध से की जा सकती है जिसमें उत्तरप्रदेश के फैजावाद, लखनऊ एवं जौनपुर जिले आते हैं। साकेत एवं श्रावस्ती इसके दो प्रधान नगर थे एवं बुद्ध के समय में कोशल की राजधानी श्रावस्ती काफी समृद्धिशालिनी थी। जातकों से ज्ञात होता है कि कोशल एक सशक्त राष्ट्र था तथा तत्कालीन चार बड़ी शक्तियों में कोशल भी एक था। अनाथपिण्डक यहीं का व्यापारी था जिसने बुद्ध को जेतवन दान किया था। अवान्तर काल में कोशल की सीमा घटती-बढ़ती रही। पाँचवीं सदी ई० पू० के अंत में इसका विस्तार नेपाल की तराई तक था। कोशल देश के नगर बड़े समृद्ध थे एवं वे व्यापार के केन्द्र थे। पाणिनि ने भी कोशल का उल्लेख किया है। कुरु देश से पूरब एवं विदेह से पश्चिम यह देश बहुत ही शक्तिशाली था।

विदेह—उपनिषदों में जितने भी प्रदेशों एवं राजाओं के उल्लेख हुए हैं उनमें विदेह प्रदेश एवं उसके राजा जनक का उल्लेख सर्वाधिक हुआ है। बृहदारण्यकोपनिषद्[2] में इसका विवरण मिलता है। विदेह के वीरों की प्रशंसा इसी उपनिषद् में की गई है[3]। इसी में विदेह देश का उल्लेख सैकड़ों बार हुआ[4] है। कौषीतकिउपनिषद्[5] में इसका नाम मिथिला मिलता है। एक बाद के उपनिषद् ग्रन्थ श्रीरामतापनीयोपनिषद्[6] में सीता को मिथिलेशकुमारी कहा गया है। विदेह या मिथिला की पहिचान आज-कल के उत्तर बिहार के दरभंगा एवं नेपाल के जनकपुर जिलों से की जाती है। इस देश के राजाओं की उपाधि जनक थी। शतपथ ब्राह्मण में विदेघ माधव का उल्लेख आता है जिन्होंने सदानीरा नदी के क्षेत्र में, जिसे आज-कल गण्डक नदी कहते हैं, पूर्वी भारत में वैदिक संस्कृति के प्रसार का पथ प्रशस्त किया था। उन्हीं के नाम पर इस प्रदेश का नाम विदेह पड़ा। मिथि नामक राजा के नाम पर इसका नाम मिथिला हो गया। बृहदारण्यकोपनिषद् में विदेह देश का जो वर्णन है उससे ज्ञात होता है कि यहाँ वैदिक-धर्म का काफी प्रसार था एवं वहां के तत्कालीन राजा जनक यज्ञ करते थे जिनमें कुरु-पाञ्चाल एवं अन्य दूरस्थ ब्राह्मण भी निमंत्रित होते थे। ये यज्ञ दार्शनिक वाद-विवादों के लिए काफी उपादेय थे। जातकों में भी विदेह देश एवं मिथिला नगरी के उल्लेख आते हैं। वाल्मीकि रामायण में मिथिला के सम्बन्ध में काफी जानकारी मिलती है। बुद्ध के समय में यहां जनतंत्र था एवं जनक लोगों की सत्ता समाप्त हो गई थी। भारतीय दर्शन के विकास में मिथिला का योगदान श्लाघ्य रहा है। आज भी, जब कि कर्मकाण्डप्रधान वैदिक-धर्म का ह्रास हो गया है तो भी, मिथिला में अभी अपरिवर्तित रूप से यह सुरक्षित एवं प्रसरित है।

विदर्भ—विदर्भ प्रदेश के नाम का प्रत्यक्ष उल्लेख भूखण्ड के रूप में उपनिषदों में नहीं मिलता है, पर कुछ अप्रत्यक्ष विवरण बतलाते हैं कि देश के विभिन्न भागों की तरह विदर्भ में भी वैदिक संस्कृति जड़ जमा चुकी थी एवं वहां भी बड़े-बड़े दार्शनिक उत्पन्न हुए। मधुविद्या के आचार्यों के नामों की गणना के क्रम में

---

१. १,१; ३,१. २. ३,१,१-२. ३. ३,८,२. ४. ४,१,१-४ ब्राह्मण. ५. ४,१. ६. ६,१.

बृहदारण्यकोपनिषद्[1] में विदर्भी कौण्डिन्य का नाम आता है। विदर्भी शब्द से ज्ञात होता है कि ये विदर्भ देश के निवासी थे। पुन: प्रश्नोपनिषद्[2] में वैदर्भी भार्गव का नाम आता है जो श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। वैदर्भी विशेषण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये विदर्भ देश के निवासी थे। इसके अतिरिक्त अन्य किसी चीज की जानकारी हमें उपनिषदों से विदर्भ के सम्बन्ध में नहीं होती है, पर इन दो विद्वानों के उल्लेख से मालूम पड़ता है कि देश के समग्र भागों की तरह भारतीय ज्ञान की समृद्धि में विदर्भ का योगदान भी कथनीय था। विदर्भ की पहचान आज-कल के बरार से की जाती है। आज यह भूभाग महाराष्ट्र का अङ्ग है एवं विदर्भ राज्य के लिए आन्दोलन भी होते रहते हैं। नागपुर के आस-पास के इलाके को विदर्भ कहा जाता है। साहित्य में वैदर्भी-शैली मानी जाती है जो ओजपूर्ण एवं गाम्भीर्य के लिए विख्यात है। मत्स्य एवं मार्कण्डेय पुराणों में विदर्भ के लोगों की गणना पुलिन्द लोगों के साथ की गई है। महाभारत में विदर्भ का उल्लेख मिलता है। नल की पत्नी दमयन्ती विदर्भ देश की राजकुमारी थीं। विदर्भ का अवान्तरकालीन इतिहास भी काफी महत्त्वपूर्ण रहा है।

लङ्का—लङ्का यद्यपि आज भारत से अलग है, पर अत्यन्त प्राचीन काल से यह भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अङ्ग रहा है। इस भूभाग का उल्लेख प्राचीन उपनिषदों में नहीं मिलता है। श्रीरामतापनीयोपनिषद्[3] में लङ्का का उल्लेख कई बार आया है। पर स्वयं जातक कथाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि ईसापूर्व ६ठी सदी में लिखित जातक ग्रन्थ के समय तक लोग लङ्का से काफी परिचित हो चुके थे। सिंहल जातक में विजय नामक राजकुमार के द्वारा लङ्का में राज्य-स्थापना का उल्लेख है। यह कहानी परम्परा से जातकों में आई, अत: बहुत सम्भव है सातवीं-आठवीं सदी ई० पू० विजय वहां गया हो। उपनिषदों का यही काल माना जाता है।

पौराणिक परम्पराओं एवं काल-गणना को हम स्वीकार करें तो यह प्राचीनता और पीछे जाती है। बाल्मीकि रामायण में रामकथा की जिस परम्परा को लिपिबद्ध किया गया है वह अत्यन्त प्राचीन है एवं लङ्का की जानकारी भी प्राचीन मालूम होती है। पर इसकी पहचान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ इसकी स्थिति मध्यप्रदेश में मानते हैं जहां के गौड अपने को रावण का वंशज मानते हैं, पर यह मान्य नहीं है। कुछ लोग इसे लंकदीप मानते हैं, पर यह भी उचित नहीं मालूम पड़ता है। साधारणतया आधुनिक श्रीलङ्का को ही लङ्का माना जाता है। उपनिषद् से नाम के अलावा और किसी चीज की जानकारी नहीं होती है, पर कौटल्य के अर्थशास्त्र से जाना जाता है कि लङ्का (ताम्रपर्णी) के मोती काफी विख्यात थे। बौद्ध ग्रन्थों से जाना जाता है कि अशोक ने धर्मप्रचारार्थ अपने पुत्र एवं पुत्री महेन्द्र तथा संघमित्रा को भेजा था तब से भारत का सांस्कृतिक अङ्ग अब तक लङ्का बना रहा एवं समय-समय पर राजनीतिक अङ्ग भी।

पहले के निबन्धों में मैंने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि उपनिषदों में भारत का प्राकृतिक भूगोल अच्छी तरह वर्णित है, साथ-ही-साथ पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर, सिन्ध से कुरु-पञ्चाल देश तक की जानकारी आर्यों को कम-से-कम आठवीं सदी ई० पू० अवश्य थी। साथ-ही-साथ हिमालय से लङ्का तक के भूभाग से वे परिचित थे जिसके पूर्वी एवं दक्षिणी प्रदेशों की चर्चा इस लेख में है। सर्वाङ्गीण दृष्टि से हम कह सकते हैं कि अफगानिस्तान (गंधार) से लेकर बिहार (विदेह) तक एवं हिमालय (हिमवन्त) से लेकर लङ्का तक तथा पूर्वी एवं पश्चिमी समुद्रों से वेष्टित भारत के कोने-कोने में आर्य संस्कृति फैली थी। आज जब राष्ट्रीय एकता की दुहाई दी जाती है तब अनायास यह सोचना पड़ता है कि धर्मग्रन्थों में इसकी जड़ मजबूत है, जहां प्रान्तीयता और जातीयता की दुर्गन्ध नहीं है, बल्कि समादर से विभिन्न भूभागों एवं वहां के मनीषियों के विवरण हैं जो हमें इस बात की प्रेरणा देते हैं कि समग्र भारत एक है एवं उसकी एकता की रक्षा होनी चाहिए। गंधार का निवासी भारतीय है एवं कुरु देश का विद्वान् विदेह में समादृत हो सकता है।

---

१. २,६,२.,४,६,१-३. २. १,१. ३. ६,२-४.

वीर-रस-प्रधान नाटक : वेणीसंहार

[श्रीमती कमलादेवी शर्मा]

संस्कृत-साहित्य के विकास में योगदान देने वाले नाटकों में 'वेणी-संहार' नाटक का भी विशेष महत्त्व है। इसमें श्री भट्टनारायण ने महाभारत के 'उद्योगपर्व' से लेकर 'शान्तिपर्व' तक की समस्त कथा को कल्पना का पुट देकर रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

श्री भट्ट-नारायण ने भी संस्कृत के अन्य साहित्य-कारों के समान आत्म-श्लाघा के दूषित वातावरण से अपने उज्ज्वल यश को कलुषित न करना चाहते हुए अपनी रचना में अपने जीवन के विषय में कोई विशेष परिचय नहीं दिया। इसलिए उनके जीवन-काल के विषय में बाह्य-साक्ष्य पर अनुमान लगाना पड़ता है।

बंगाल के राजाओं के 'क्षितीशवंशावलिचरित', 'वंगराजघटक', और 'राजावलि' आदि कुछ ऐतिहासिक वर्णन-ग्रन्थों में उपलब्ध संकेतों के आधार पर श्री भट्टनारायण को कन्नौज-निवासी, शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न, अद्वैतमतावलम्बी, वैष्णवधर्मानुयायी, वैदिक तथा याज्ञिक विद्वान् माना जाता है। इनके समय का अनुमान वामन, आनन्दवर्धन और धनंजय आदि विद्वानों के समय के आधार पर लगाया जाता है, क्योंकि इन विद्वानों ने गुण, दोष तथा अलंकार आदि के उदाहरण देने के लिए अपने से पूर्ववर्ती कवियों के ग्रन्थों से श्लोक उद्धृत किए हैं। इसलिए कहा जाता है कि 'वेणी-संहार' इन विद्वानों में प्राचीनतम आचार्य वामन (७५०-८०० ए : डी) से कुछ समय पूर्व लिखा गया होगा। परन्तु महाराज हर्षवर्धन के राजकवि 'बाण' ने 'हर्षचरित' की भूमिका मे अन्य कवियों और लेखकों का उल्लेख करते समय भट्टनारायण तथा उनके नाटक का उल्लेख नहीं किया। अत: अनुमान लगाया जाता है कि 'बाण' के समय उसका अस्तित्व नहीं होगा। इस प्रकार भट्टनारायण का समय ६५० से ७५० (ए, डी) तक के किसी समय में माना जा सकता है।

श्री भट्टनारायण ने छ: अंक और २०७ पद्यों वाले 'वेणी-संहार' नाटक में अपनी मौलिक उद्भावनाओं की सहायता से महाभारत के विस्तृत और विशृंखल कथानक को सुग्रथित और सुव्यवस्थित रूप में रखा है।

प्रथम अंक में पाण्डवों की ओर से सन्धि-प्रस्ताव लेकर भगवान् कृष्ण के दुर्योधन के पास जाने, सहदेव और भीमसेन के पारस्परिक सम्भाषण, द्रौपदी तथा चेटी के संक्षिप्त वार्तालाप और क्रोधाविष्ट भीमसेन द्वारा भानुमती के आक्षेप से द्रोपदी को दु:खित जानकर अत्यधिक आवेश में आकर कौरव-कुल-विनाश की प्रतिज्ञा करने आदि का वर्णन करते समय श्री भट्टनारायण ने कल्पना-शक्ति का अत्यधिक आश्रय लिया है।

द्वितीय अंक में कौरव-पक्षपाती महारथी भीष्म-पितामह और पाण्डव-पुत्र वीर अभिमन्यु के वीरगति को प्राप्त करने की सूचना मिलती है और दुर्योधन भीष्म जैसे महारथी के निधन पर इतना दु:खी नहीं होता, जितना एक नन्हे बालक अभिमन्यु के बध पर प्रसन्न होता है।

इसके पश्चात् अर्जुन की 'जयद्रथ-प्रतिज्ञा' से भयभीत होकर दुर्योधन की बहिन दु:शला और उसकी सास आती हैं और दुर्योधन उन्हें आश्वासन देकर युद्ध के लिए उद्यत हो जाता है।

तृतीय अंक में द्रोणाचार्य के देहावसान से व्याकुल अश्वत्थामा को कृपाचार्य दुर्योधन के निकट ले जाता है। परन्तु वहां अश्वत्थामा और कर्ण में परस्पर विवाद होने के कारण अश्वत्थामा 'कर्ण की मृत्यु तक शस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा' करता है।

चतुर्थ अंक में कौरव-सेना के पलायन करने और सूत द्वारा प्रहार-मूर्च्छित महाराज दुर्योधन को सरो-वर के निकट वट-वृक्ष की छाया में ले जाने की सूचना मिलती है। इसके पश्चात् सुन्दरक कर्ण के पुत्र वृषसेन की मृत्यु होने पर कर्ण की दयनीय-दशा का समाचार

सुनाता है, जिससे दुर्योधन बहुत ही हृदय-द्रावक प्रलाप करता है।

पञ्चम अंक में दुर्योधन, उसके माता-पिता और सञ्जय के बीच बड़ा रोचक, शिक्षाप्रद तथा मनोहर वार्तालाप होता है। इसमें माता-पिता की वात्सल्य-भावना का बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। कर्ण की मृत्यु का समाचार प्राप्त होने पर कर्ण के प्रात दुर्योधन के प्रेम की सच्ची झलक दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि वह अपने दिवंगत मित्र कर्ण के विषय में अशुभ-कामना करने वाले अश्वत्थामा का स्वागत नहीं करता।

छठे अंक में चार दृश्य प्रस्तुत किए गए हैं। प्रथम दृश्य में युधिष्ठिर सहदेव को दुर्योधन को पता लगाने के लिए विभिन्न साधन बतलाता है और इसी समय पाञ्चालक आकर दुर्योधन की खोज का समस्त वृत्तान्त सुनाता है। द्वितीय दृश्य में चार्वाक भीम की मृत्यु और अर्जुन तथा दुर्योधन के गदा-युद्ध में व्यस्त होने की सूचना देता है। तृतीय—दृश्य में युधिष्ठिर द्वारा सहदेव तथा अर्जुन को अन्तिम सन्देश देकर अपने पूर्वजों तथा भीम को तिलोदक समर्पित करके मृत्यु की तैयारी करने का वर्णन किया गया है। चतुर्थ-दृश्य में भीमसेन द्वारा अचानक प्रविष्ट होकर युधिष्ठिर और द्रौपदी के भ्रम को दूर करके द्रौपदी की वेणी बांधे जाने का बड़ी रोचकता के साथ वर्णन किया गया है।

किसी भी नाटक की सफलता और असफलता सिद्ध करने के लिए उसे पात्र, कथावस्तु और रसाभिव्यक्ति आदि नाटकीय तत्त्वों की कसौटी पर कसना पड़ता है।

जहां तक 'वेणी-संहार' के पात्रों का सम्बन्ध है, श्री भट्टनारायण ने उनके चरित्र-चित्रण में उत्कृष्ट-नाट्य-कला का परिचय दिया है। उनके पात्र सजीव और स्फूर्तिमय हैं। उनमें परिस्थिति के अनुसार कठोरता, कोमलता, प्रेम-सहानुभूति और सहनशीलता आदि सभी गुण उपलब्ध हैं, जो उन्हें मानव बनाते हैं, देवता की कोटि में नहीं पहुंचाते। अजातशत्रु और धर्मावतार कहलाने वाला युधिष्ठिर भी मानव की दुर्बलताओं से मुक्त नहीं रहता। मुनिवेषधारी चार्वाक राक्षस से भीम के निधन और दुर्योधन-अर्जुन के गदायुद्ध में व्यस्त होने के असत्य समाचार को सुनकर वह इतने व्याकुल होते हैं कि अपने पूर्वजों को तिलांजलि देकर चिता पर आरूढ़ होने का दृढ विचार कर लेते हैं। इतना ही नहीं दुर्योधन के खून से लथपथ भीम को दुर्योधन समझकर युद्ध करने के लिए उद्यत होकर सच्चे क्षत्रियत्व और पुरुषत्व का परिचय देते हैं।

वीर-भीम के चरित्र में भी आदर्श क्षत्रियत्व की स्पष्ट झलक दीख पड़ती है। वह जीवन में आत्म-सम्मान की बलि देकर किसी शर्त पर भी शत्रु से सन्धि करने के लिए तत्पर नहीं होता और द्रौपदी के उन्मुक्त केशपाश तथा उसके नेत्रों में छलकते हुए अश्रु-वेग को देखकर उसकी क्रोध-ज्वाला इतनी उद्दीप्त होती है कि उसे दुःशासन का रक्त-पान किए और दुर्योधन को यमपुर पहुंचाए बिना क्षण भर के लिए भी शान्ति नहीं मिलती।

दुर्योधन के चरित्र में प्रेम, स्वाभिमान, सख्यभाव तथा संघर्ष आदि मानवीय भावनाओं का बड़ा सुन्दर सम्मिश्रण उपलब्ध है। वह भीम द्वारा पाण्डवों में से किसी एक को युद्ध के लिए चुनने की चुनौती दिए जाने पर भी गदायुद्ध के लिए नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर तथा अर्जुन में से किसी को भी नहीं चुनता, बल्कि गदायुद्ध में निपुण भीम पर ही उसकी दृष्टि जाती है।

वेणी-संहार के पुरुष-पात्रों के समान स्त्री-पात्र भी उत्कृष्ट कोटि के हैं। द्रौपदी के चरित्र में जहां एक ओर सच्ची आदर्श-क्षत्रिय-वीराङ्गना का चरित्र झलकता है, वहां स्त्री-स्वभाव-सुलभ कोमलता की भी उसमें कमी नहीं है। चार्वाक-द्वारा अपने प्रियतम भीम के निधन की असत्य सूचना मिलते ही वह एक प्राचीन आदर्शनारी की भांति प्राण-त्याग करने के लिए तत्पर हो जाती है।

भानुमती के चरित्र में भी स्त्री-सुलभ कोमल-भावनाओं की बड़ी सुन्दर झलक दीख पड़ती है। वह दुःस्वप्न दीखने पर अपने पति के लिए इतनी चिन्तित हो उठती है कि उसका प्रतीकार करने के लिए तुरन्त देवताराधन में लीन हो जाती है। चिन्तित अवस्था

में भी उसमें क्रियाशीलता है। वह निराश नहीं होती।

इस प्रकार प्रत्येक पात्र के चरित्र-चित्रण से प्रतीत होता है कि श्री भट्टनारायण ने चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सिद्धहस्तता तथा कला का परिचय दिया है। उनके प्रत्येक पात्र के जीवन से संघर्ष और गतिशीलता का सन्देश मिलता है। इसके अतिरिक्त वह सांस्कृतिक आदर्श की प्रेरणा भी देते हैं।

नाटक की सफलता के लिए जहां सुन्दर चरित्र-चित्रण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, वहां सफल कथावस्तु भी नाट्य-कला का प्रधान तथा आवश्यक पहलू होता है। इसीलिए नाटककार को नाटक के बिभिन्न दृश्यों को इस प्रकार चित्रित करना चाहिए कि वे परस्पर सम्बद्ध हों। उनमें किसी प्रकार की शिथिलता या विश्रृङ्खलता नहीं होनी चाहिए। परन्तु वेणी-संहार में वर्णित दृश्य यद्यपि अपने-आप में पर्याप्त रोचक, स्वाभाविक और प्रभावशाली हैं, तथापि उनमें कई स्थानों पर परस्पर सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। दुर्योधन और भानुमती के प्रेम का दृश्य, अश्वत्थामा का अपने पिता की मृत्यु पर विलाप और कर्ण तथा अश्वत्थामा का परस्पर विवाद आदि ऐसे दृश्य हैं, जो परस्पर असम्बद्ध-से प्रतीत होते हैं। चतुर्थ अंक में सुन्दरक के लम्बे-लम्बे वर्णन नाटकीय क्रिया-कलाप के प्रवाह में बाधक प्रतीत होते हैं।

रङ्गमञ्च-निर्देशन की दृष्टि से श्रीभट्टनारायण का वेणी-संहार पूर्णतया सफल प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें रङ्ग-मञ्च पर विभिन्न दृश्यों के प्रदर्शन तथा पात्रों के आगमन और निर्गमन की व्यवस्था बड़े सुन्दर ढंग से की गई है। यदि रङ्ग-मञ्च पर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई हो कि वहां पहले से ही शान्त-भाव में लीन दो-एक पात्र खड़े हों और इसी बीच दो-एक पात्र और आ गए हों, तो भट्टनारायण ने पहले पात्रों को भावावेश की स्थिति में आकाश की ओर मुंह करके खड़ा किया है और फिर अन्य पात्रों का प्रवेश करवाया है, ताकि पहले से ही खड़े पात्रों की दृष्टि आने वाले पात्रों पर न पड़े, जिससे अभिनय में अस्वाभाविकता न आ सके प्रथम अंक में सहदेव के साथ भीम जब कोपाविष्ट दशा में रङ्ग-मञ्च पर खड़ा होता है, तो द्रौपदी और चेटी आकर चुप-चाप खड़ी हो जाती हैं। वहां भट्टनारायण ने उपरोक्त प्रकार की अस्वाभाविकता को दूर करने के लिए भीम को उनके आगमन से अपरिचित ही रखा है।

चरित्र-चित्रण और कथावस्तु की भान्ति रसाभिव्यक्ति भी नाटक की सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण होती है। 'वेणी-संहार' में भट्टनारायण ने रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से उच्च कोटि की नाट्य-कला का परिचय दिया है। इसमें ध्यान से देखने पर प्रतीत होता है कि इसमें एक नहीं, प्रत्युत वीर, शृङ्गार, करुण और बीभत्स आदि कई रसों की सुन्दर छटा देखने को मिलती है। परन्तु स्थान-स्थान पर प्रत्येक पात्र के स्वाभिमान के लिए उत्तेजना में आकर युद्ध के लिए उद्यत हो जाने के कारण इस नाटक में 'वीर' रस की प्रधानता लक्षित होती है। इसके अतिरिक्त श्री भट्ट ने वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली तथा लाटी रीतियों में से 'वीर' रस के अनुकूल ओज:प्रकाशक वर्णों वाली, समासों के आधिक्य तथा आडम्बर वाली 'गौडी' रीति का प्रयोग किया है। भीमसेन दुर्योधन-वध की प्रतिज्ञा के वीरता-पूर्ण भावों को इसी रीति में व्यक्त करता है :—

> चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
> संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
> स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
> रुत्तंसयिष्यति कचाँस्तव देवि भीमः॥

इसके अतिरिक्त प्रथम अंक में सूत्रधार के मुख से "स्वस्था: भवन्तु कुरुराजसुता: सभृत्या:" इन शब्दों को सुनते ही क्रोध में आकर भीमसेन वीरता-पूर्णता प्रभावशाली शब्दों में "स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्रा: ?" झटपट घोषणा करता है।

वीर भीमसेन में तो वीर रस का संचार होता ही रहता है। उसके अतिरिक्त अर्जुन, अश्वत्थामा, कर्ण और दुर्योधन आदि पात्रों में भी समयानुसार वीर रस आ जाता है।

कर्ण जब अश्वत्थामा को "मूढ, दु:खितस्याऽश्रुपात:, कुपितस्य चाऽऽयुधद्वितीयस्य सङ्ग्रामाऽवतरणमुचितं:,

(शेष पृष्ठ २५ पर)

एक हास्य रूपक—

नहले पर दहला

[श्री लखपतराय प्रभाकर]

(ठसाठस मुसाफिरों से भरी गाड़ी चलने की आवाज़ फिर एक मुसाफिर का स्वर)

एक मुसाफिर—(लम्बा सांस लेकर) हे मेरे परमात्मा, बला की गर्मी। कपड़े भी पसीने से तर-बतर हो रहे हैं। इस थर्ड क्लास के डिब्बे के पंखे भी मानो आग बरसा रहे हैं। (फिर दूसरे मुसाफिर से सम्बोधन) क्यों, ठीक है न जनाब ?

दूसरा मुसाफिर—हां साहिब, गर्मी की कुछ न पूछिये। हमारी सरकार ने तो मुसाफिरों की सुविधा के लिए पंखे लगा रक्खे हैं, पर भीड़ ही बहुत है।

पहला—आप ठीक कहते हैं जनाब, लगता है आज के इन्सान के पांव में पहिये लगे हैं। वह चलता ही रहता है। बस में जाओ, गाड़ी में जाओ, हवाई जहाज़ में जाओ, भीड़ ही भीड़। सच पूछिए जीना कठिन हो रहा है।

दूसरा—वाह साहिब, आप ने तो मेरे मुंह की बात छीन ली। मैं भी तो यही कहना चाहता था कि सब जगह ही क्यों ? लगता है आज के इन्सान के पांव में ही नहीं बल्कि दिमाग में भी पहिये लगे हैं। वह बस चक्र में पड़ा रहता है।

पहला—(हँसकर) हां, हां, जनाब, आज के इन्सान को दो ही तो काम रह गए हैं, फैशन करना या सफर करना।

दूसरा—(हँसकर) हां साहिब, मैं तो समझता हूँ कि इन्सान को तब ही सफर करना चाहिए जब कि बहुत ही ज़रूरी हो। पैसे की बचत और जोखिम से भी छुटकारा। आम के आम और गुठलियों के दाम। अभी देखो न······

पहला—कहिए, कहिए। रुक क्यों गए ?

दूसरा—तोबा, तोबा। इस बला की गर्मी से दम घुटने लगा था। हां, तो मुझे कहना था कि अभी पिछले दिनों मेरी सास मरी। मैंने बस अफसोस का केवल एक पत्र ही लिख दिया।

पहला—(आश्चर्य से) अफसोस का पत्र लिख दिया ?

दूसरा—(कहकहा लगा कर) इसमें आश्चर्य की क्या बात ? मेरे सुसराल जाकर अफसोस करने से मेरी सास तो वापस आ नहीं सकती थी।

पहला—(हँसकर) पर आपकी श्रीमती जी······?

दूसरा—(हँसकर) श्रीमती जी की भली कही। वह बिगड़ी तो जरूर, नाक-भौं सिकोड़े, मुंह फुलाए रहीं। पर फिर फिर······मैंने उन्हें एक नये सैंडल की जोड़ी ला दी। यानी जो सुसराल जाने पर खर्च होना था उसे बचाकर घर की एक चीज बना ली।

पहला—फिर ?

दूसरा—(हँसकर) फिर क्या। यही कि श्रीमती जी का पारा १०४ डिग्री से एकदम ९७ डिग्री पर।

पहला—(हँसकर) कमाल है आप की सूझ पर।

दूसरा—(हँसकर) यानी आप मेरे दिमाग की दाद देते हैं। (रुककर) हां, हां, साहिब, आप ठीक ही कहते हैं। आज के ज़माने में इन्सान की तरक्की का राज, उसका बढ़िया दिमाग, उसकी बौद्धिक शक्ति।

पहला—(हँसकर) यानी भेजे की शक्ति। (हँसकर) पर जनाब, शारीरिक बल के बिना दिमागी बल कौड़ी का भी नहीं।

दूसरा—(हँसकर) अमां, वे दिन लद गए जब इन्सान की शक्ति उसके शारीरिक बल से आंकी जाती थी। देशों की हार-जीत के फैसले मल्ल-युद्धों से होते थे। (आवेश से) अब तो तोपों, बन्दूकों से ही नहीं बल्कि मशीनगनों, राकेटों एवं ऐटम बमों से युद्ध लड़े जाते हैं।

पहला—वाह, वाह जनाब, आपने बात तो पते की कही, पर यह सब हुआ क्यों ? यही न आज के इन्सान का शारीरिक बल लगातार घट रहा है, और अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए उसने इन हथियारों की शरण ली।

दूसरा—आप कुछ भी कहें, पर आप इस बात से

इन्कार नहीं कर सकते कि आज जीवन की दौड़ में शारीरिक नहीं बल्कि बौद्धिक बल का बोलबाला है।

पहला—वाह, आप कैसी अटपटी बातें कर रहे हैं?

दूसरा—नहीं साहिब, मैं खरी-खरी बातें कहता हूँ। (आवेश में) आज के जमाने में भेजे की भेजे से टक्कर, दिमाग का दिमाग से मुकाबिला। जिस भेजे ने दूसरे को पछाड़ा, वही जीता।

पहला—वाह जनाब, आप कैसी बेतुकी बात कर रहे हैं? इस भेजे की यही करामात है न कि धोखे, छल-कपट, ऊपर से मीठे, झूठी मित्रता का दम भरना और मौका मिलते ही विरोधी की पीठ पर छुरा घोंप देना, जैसे कि चीन ने हमारे साथ किया।

दूसरा—अजी चीन में बुद्धि-बल नहीं पशु-बल था, मक्कारी थी, विश्वासघात था।

पहला—(हँसकर) बस यही तो मैं कहना चाहता था। आप ने महाभारत का युद्ध तो सुना ही होगा?

दूसरा—हाँ, सुना है।

पहला—जानते हो वह कैसे लड़ा गया?

दूसरा—नहीं तो।

पहला—(हँसकर) यही तो बस बात है। जनाब, क्या ही धर्म का युद्ध था वह। शत्रु को खुले तौर पर ललकारना, आमने-सामने लड़ना, रात्रि होते युद्ध बन्द। रात्रि को आपस में भाइयों की तरह मिलना। इस नीचता से बिना चिनौती हमला न करना जैसा कि चीन ने हमारे पर २० अक्तूबर १९६२ को किया।

दूसरा—(हँसकर) पर जनाब, आप भूलते हैं। पाण्डवों की जीत का कारण श्रीकृष्ण जी का बुद्धि-कौशल था, पाण्डवों का बाहु-बल नहीं। दुनिया की कोई भी लड़ाई केवल शारीरिक बल से नहीं जीती गई।

पहला—यही पर आप पटरी से फिसल गए। श्रीकृष्ण का बुद्धि-बल नकारा था अगर पाण्डवों में शारीरिक बल न होता। असल में भेजे की शारीरिक बल के बिना कोई कीमत नहीं, कोई महत्त्व नहीं।

दूसरा—वह कैसे?

पहला—दूर क्या जाना। आज-कल के नौजवानों को ही देख लो। इन्हें कागजी पहलवान कहना ही ज्यादा ठीक होगा।

दूसरा—(हँसकर) साथ ही यह क्यों नहीं कहते कि ये आज-कल की नवयुवतियां भी तो······।

पहला—(हँसकर) वाह साहिब, आपने मेरे दिल की बात कह दी, और इस पर भी आप दिमागी बल पर इतनी डींगें हांकते हैं। यही देखो न, हम में इस गर्मी को सहने की ताकत नहीं और हम हाय-तोबा मचाते हैं।

दूसरा—पर साहिब, आप भूलते हैं। यही नौजवान एवं नवयुवतियाँ प्रयोगशालाओं में नई-नई खोजें निकालते हैं ताकि मानव की सुख-शान्ति में वृद्धि हो। लेखन, समाज-सेवा एवं राष्ट्र-उन्नति के ढेरों से कामों में वे जुटे रहते हैं और—

पहला—अहा आप का तो सांस फूल गया। कहिए··· कहिए।

दूसरा—हाँ तो जैसे बादाम की गिरी में ही उसका सारा तत्त्व होता है इसी प्रकार ये लोग तत्त्व की खोज एवं तत्त्व की चीजों का ही सेवन करते है ताकि भेजे का बल्ब फ्यूज न हो जाए।

पहला—हाँ अब आए कुछ ठिकाने पर। पर जनाब, आज के जमाने में भेजे का सम्भालना, इसका ठीक इस्तेमाल करना भी तो खाला जी का घर नहीं।

दूसरा—मैं आप का मतलब नहीं समझा।

पहला—हाँ साहिब, जरा मामले की तह तक पहुँचने की कोशिश कीजिए। आज आप जानते ही है हर कदम पर इन्सान का दिमाग खराब करने के लिए अनेक साधन हैं। धन का लगातार फैलाव। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से निरन्तर बढ़ती तड़क-भड़क। सिनेमा, जिन्दगी की अनेक उलझनें। मेरे कहने का मतलब है स्वस्थ चिन्तन के लिए स्वास्थ्य भी तो चाहिए। यानी (हँसकर) हैल्दी माइंड इन ए हैल्दी बॉडी।

दूसरा—यहां तक तो आप की बात ठीक है पर स्वास्थ्य के सम्बन्ध में लोगों के मापदण्ड में भी अन्तर हो सकता है।

पहला—वह कैसे महाशय?

दूसरा—वह यों कि कुछ लोग कोरे हट्टे-कट्टे होने में ही स्वास्थ्य समझते हैं जब कि दूसरों के लिए,

जैसा कि मैंने अभी कहा, दिमाग के भेजे के बल्ब को निरन्तर चमकता रखना ही स्वास्थ्य की निशानी है। मैं समझता हूँ कि दूसरी श्रेणी के लोगों की ही आज हमारे देश को ज्यादा जरूरत है, बड़ी मांग है।

पहला—(व्यंग्य से) यानी वे कोरे कागजी शेर हों। अन्दर से खोखले, एकदम खोखले।

दूसरा—नहीं तो। मेरा मतलब यह कि उनके दिमाग का भेजा बहुत मजबूत हो।

पहला—दिमागी भेजा (हँसकर) वाह......आज हमारे देश को चाहिए खिलते, मुस्कराते, आशावादी चेहरे, लौह कर्मठ शक्तिशाली वज्र शरीर ताकि वे मक्कार, धोखेबाज आक्रान्ता शत्रुओं के दाँत खट्टे कर सकें, उन्हें उनकी दगाबाजी का मजा चखा सकें। इन्हें अपनी पवित्र धरती से खदेड़ कर ही दम लें।

दूसरा—बस · बस...यही तो मैं भी कहता हूँ कि उन में बल तो हो पर साथ ही भेजा भी कमजोर न हो जाए ताकि वे शत्रुओं के कुचक्र में पड़ कर उनके हाथों बिक न जाएँ।

पहला—यानी अब आप मानते है कि शारीरिक बल इन्सान के लिए जरूरी है।

दूसरा—यानी आप भी मानते हैं कि शारीरिक बल ही नहीं भेजे का भी पूर्ण स्वस्थ होना जरूरी है।

पहला—चलो ऐसे ही सही। पर क्या आप जानते हैं कि शारीरिक बल के ठीक रखने और बढ़ाने का क्या राज़ है?

दूसरा—(हँसकर) आप ही बता दीजिए जनाब।

पहला—राज़ यही कि हर रोज सुबह और रात्रि को सोने से पहले बढ़िया दाँत के मंजन का इस्तेमाल किया जाए।

दूसरा—इससे क्या होगा जनाब?

पहला—इससे खाने की सड़ान, जो दाँतों में हो जाती है, दूर होगी, नही तो दाँतों में कीड़ा लग जाएगा, पायोरिया होगा, पाचन-शक्ति कमजोर होगी, पेट में गड़बड़ और फिर शारीरिक बल चौपट।

दूसरा—और क्या आप जानते हैं कि भेजे की शक्ति को बढ़ाने का क्या राज़ है?

पहला—नहीं तो।

दूसरा—यह देखिए, ब्राह्मी तेल। इसको प्रतिदिन खोपड़ी पर मलने से भेजा मजबूत और दिमाग की नाडियों को बल मिलता है।

पहला—(हँसकर) ओहो, आपके झोले में तो ऐसी कई शीशियाँ हैं।

दूसरा—हाँ तो क्या आप एक शीशी खरीदेंगे?

पहला—(हँसकर) शायद खरीद लूँ यदि आप भी मेरी यह दाँत के मंजन की शीशी खरीदें।

दूसरा—(हँसकर) यानी आप इस दाँत के मंजन के सेल्समेन हैं?

पहला—(हँसकर) यानी आप भी इस ब्रह्मी तेल के सेल्समेन हैं।

दूसरा—(कहका मारकर) हाँ साहिब, खूब मिले दीवाने दो।

पहला—(हँसकर) यानी नहले पर दहला......

(दोनों का मिल कर हँसना......अट्टहास। मुसाफिरों के भी अट्टहास की ध्वनि।) ●

(पृष्ठ २२ का शेष)

नैवंविधा: प्रलापा: ।" इस प्रकार अपमान वाले शब्द कहता है, तो अश्वत्थामा उन्हे सहन नहीं कर सकता और उसमें वीरता का इतना संचार होता है कि वह यज्ञोपवीत को तोड़ कर युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाता है।

द्वितीय अंक में दुर्योधन जब शृंगार रस में विभोर हुआ बैठा होता है, तो अपनी बहिन और उसकी सास के आने पर जयद्रथ की रक्षा के लिए एकदम युद्धभूमि की ओर चल पड़ता है। इसके अतिरिक्त भीम द्वारा गदायुद्ध के लिए चुनौती देने पर वीर भीम को अपने साथ युद्ध करने के लिए चुनता है। धर्मावतार युधिष्ठिर भी जब भीम को दुर्योधन समझता है, उससे युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाता है।

इस प्रकार नाटक में 'वीर' रस आरम्भ से लेकर अन्त तक दिखलाई पड़ता है। ●

पंजाब में स्लेट उद्योग की चमत्कारी प्रगति

[प्रा. सुन्दरलाल गुप्त]

स्लेट का उपयोग न केवल भारत प्रत्युत विश्व के अनेक भागों में भवनों की छतें और फर्श निर्माण में चिरकाल से किया जा रहा है क्योंकि स्लेट पर्याप्त टिकाऊ, मजबूत और अग्नि के प्रभाव से मुक्त होने के साथ-साथ सरलता और सुगमता से पतली-पतली परतों में विभक्त भी की जा सकती है। इतना ही नहीं प्रकृति के गर्भ में स्लेट विभिन्न प्रकार के आकर्षक और मनलुभावने रंगों में भी उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त उत्तम और बढ़िया प्रकार की स्लेट का प्रयोग उचित काटछांट, घिसाई और चौखटा-चढ़ाई के पश्चात् स्कूल-स्लेट के रूप में भी किया जाता है। अब स्लेट के नवीन-नवीन उपयोग खोज लिये गये हैं और श्याम-पट्ट, टेबिल-टाप्स, स्विचबोर्ड, बेसबोर्ड आदि के लिए स्लेट का प्रचुरता से प्रयोग किया जाने लगा है।

भारत के विभिन्न राज्यों जैसे आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मैसूर, मद्रास, राजस्थान और पंजाब में स्लेट खानों से प्रप्त की जाती है। लेकिन जहां तक स्लेट उद्योग का प्रश्न है, पंजाब स्लेट उद्योग में समस्त भारत में अपना द्वितीय स्थान रखता है।

यह ठीक है कि स्कूल-स्लेट तैयार करने वाली प्रथम फैक्टरी सबसे पहले आन्ध्र प्रदेश में मारकापुर नामक स्थान पर सन् १९१८ ई० में स्थापित की गई, लेकिन वर्तमान युग में कुण्ड नामक स्थान स्लेट उद्योग में न केवल पंजाब, प्रत्युत समूचे भारत में इसी प्रकार विख्यात है जैसे कि मकराना राजस्थान में संगमरमर उद्योग और जमशेदपुर लोहे और इस्पात उद्योग के लिये प्रसिद्ध हैं। इस तथ्य की भलिभांति पुष्टि इस बात से प्रकट होती है कि सन् १९४४ ई० में स्लेट का कुल उत्पादन ६३४६ टन हुआ था और इसमें अकेले पंजाब ने ५९६१ टन स्लेट का उत्पादन किया था। सन् १९४९ ई० में भारत का कुल उत्पादन बढ़कर २०३२३ टन हो गया, और इस समस्त उत्पादन का ६०·४ प्रतिशत अकेले पंजाब से प्राप्त हुआ था। अब पंजाब ने इस उद्योग में और भी मार्के की प्रगति की है और अकेले कुण्ड में ही २ लाख स्कूल-स्लेट और एक लाख वर्ग फुट रूफिंग स्लेट प्रतिमास तैयार होती हैं।

स्लेट का पत्थर पंजाब के महेन्द्रगढ़, गुड़गावां और कांगड़ा ज़िलों में उपलब्ध है। इसी कारण महेन्द्रगढ़ में अटेली ओर गुड़गावां में कुण्ड नामक स्थानों पर स्लेट-उद्योग विकसित हुआ है। कांगड़े में कुछ घटिया किस्म का स्लेट का पत्थर मिलता है जिसका उपयोग स्कूल-स्लेट के रूप में नहीं किया जा सकता। अत: कांगड़ा में केवल फर्श और छतें डालने योग्य स्लेट की चादरें तैयार की जाती हैं। कुण्ड और अटेली की भांति स्लेट-उद्योग इस ज़िले में नहीं पनपा है।

कुण्ड का स्लेट-उद्योग

कुण्ड दिल्ली-फुलैरा रेलवे लाइन पर दिल्ली से लगभग ६६ मील दक्षिण में स्थित एक छोटा-सा रेलवे स्टेशन है। जोकि स्लेट-उद्योग के लिये सन् १९३४ ई० से भारत-भर में विख्यात है। सन् १९३४ मे यहां ठीक स्टेशन के सामने सेठी स्लेट फैक्टरी अस्तित्व में आई और सन् १९४४ तक सुचारु रूप सफलतापूर्वक काम करती रही। इस फैक्टरी का उत्पादन एक लाख स्कूल-स्लेट प्रतिमास था। इसके उपरान्त किन्ही कारणों वश फैक्टरी बन्द हो गई और अभी तक इसमें उत्पादन आरम्भ नही हुआ है। इसके बन्द हो जाने के कारण अनेक छोटे-बड़े उत्पादक सामने आये और आज कुण्ड में लगभग २० यूनिट स्कूल-स्लेट-उत्पादन में संलग्न हैं। इनमें से पांच यूनिट खासे बड़े हैं जिनका ब्यौरा उत्तरोक्त है :—

यूनिट का नाम	प्रतिमास उत्पादन	श्रमिकों की संख्या	यूनिट पर व्यय
१. अशोक स्लेट वर्क्स, कुण्ड	२००००	लगभग २५	१०००० रु०
२. हरियाना स्लेट वर्क्स, कुण्ड	,,	,,	,,
३. कुन्दन लाल, राधेश्याम स्लेट वर्क्स, कुण्ड	,,	,,	,,
४. महेश्वरी एण्ड कम्पनी, कुण्ड	,,	,,	,,
५. मातादीन यादव एण्ड ब्रादर्स, कुण्ड	,,	,,	,,

कुल उत्पादन १०००० स्लेट

और इतनी ही स्लेट व्यक्तिगत उत्पादकों द्वारा जिनके यूनिट उपर्युक्त युनिटों से पर्याप्त छोटे हैं, उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार कुण्ड का कुल स्लेट-उत्पादन दो लाख स्कूल-स्लेट प्रतिमास है जो भारत-भर में सर्वाधिक है।

कुण्ड के समस्त स्लेट यूनिटों को स्लेट का पत्थर पतली-पतली चादरों के रूप में दो स्रोतों से प्राप्त होता है :—

१. कांगड़ा वैली स्लेट कम्पनी लिमिटेड, मनेथी (गुड़गांव) और

२. पं० कैलाशराम एण्ड ब्रादर्स, माहतावास (अलवर)

कांगड़ा वैली स्लेट कम्पनी ने कुण्ड से आध मील दूर पश्चिम में मनेथी गांव में स्लेट की पर्याप्त विस्तृत खान, जिसकी इस समय गहराई १२० फुट के लगभग है, विकसित की है और इस पर लाखों रुपये की पूंजी-व्यय की है। इस कम्पनी ने इस खान को ९९ वर्षों के लिये १८६७ ई० में गांव वालों से ठेके पर लिया था। तब से खान निरन्तर स्लेट का पत्थर प्रदान कर रही है। यद्यपि इसके सुरक्षित भाण्डार के विषय में कोई अधिकारपूर्ण और सुनिश्चित मत व्यक्त नहीं किया जा सकता, लेकिन यह निश्चित है कि यह खान सैकड़ों वर्षों तक अनेक स्लेट की फैक्टरियों को कच्चा माल प्रदान कर सकती है। प्रमुख समस्या खान से मलबे और ऊपरस्थित भार को हटाने की है। यह खान प्रतिमास ५००० स्लेट का उत्पादन करती हैं और लगभग इतनी ही संख्या में स्लेट का उत्पादन पं० कैलाशराम एण्ड ब्रादर्स द्वारा माहतावास गांव में, जो कुण्ड से लगभग एक मील पूर्व में स्थित है और राजस्थान के अलवर ज़िले में है, किया जाता है। यहां का स्लेट भी घिसाई और चौखटा चढ़ाने के लिये कुण्ड के कारखानों में ही आता है। अनेक किसानों ने अपने-अपने खेतों में स्लेट की खान बना ली है और वे भी कुछ-न-कुछ स्कूल-स्लेट का भी उत्पादन करते हैं। इसके अतिरिक्त कायसा से, जो कुण्ड से १०-१२ मील दक्षिण-पूर्व में अलवर ज़िले में स्थित है, लगभग ३०००० स्लेट प्रतिमास घिसाई और चौखटा चढ़ाई के लिये कुण्ड आती हैं। बिहाली, बजाड़ और णनयार नामक गांवों से, जो महेन्द्रगढ़ ज़िले में अटेली के समीप स्थित है, लगभग ५०००० स्लेट प्रतिमास कुण्ड के कारखानों में आती हैं। इस प्रकार कुण्ड में स्कूल-स्लेट का कुल उत्पादन दो लाख स्लेट प्रतिमास हो जाता है।

फैक्टरियों में स्लेट की घिसाई मोटी रेत और पानी से की जाती है ताकि उसका धरातल चिकना हो जाय। फिर घटिया स्लेटों पर पालिश किया जाता है और तत्पश्चात् उन पर चौखटे चढ़ाये जाते हैं। चौखटे चढ़ाने के लिये पड़तल अथवा चीड़ की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है जो कि पठानकोट या जगाधरी से स्लीपर के रूप में आयात की जाती है। कुण्ड की फैक्टरियों में सभी काम मानवीय श्रम द्वारा सम्पन्न किया जाता है और प्रत्येक बड़ी फैक्टरी में लगभग २५-३० व्यक्ति काम करते हुए देखे जा सकते हैं।

इस उद्योग में विशिष्टीकरण को भली भांति देखा जा सकता है, क्योंकि अनेक यूनिट केवल स्लेट की घिसाई में व्यस्त है जबकि अनेक यूनिट चौखटा चढ़ाई के कार्य ही में दक्षता प्राप्त किये है। उदाहरण के लिये घीसाराम के यूनिट में केवल स्लेट की घिसाई ही होती हैं और इसमें लगभग ३२ व्यक्ति स्लेट की घिसाई के काम में लगे हुए हैं।

कुण्ड से स्लेट पेटियों में बन्द करके पंजाब, दिल्ली, यू. पी. और राजस्थान के विभिन्न नगरों में भेजी जाती हैं।

अटेली का स्लेट-उद्योग

अटेली भी दिल्ली-फुलेरा रेलवे लाइन पर कुण्ड से दक्षिण की ओर ९ मील की दूरी पर अन्य रेलवे स्टेशन है। अटेली में रेलवे स्टेशन के ठीक सामने "प्रताप स्लेट फैक्टरी" सन् १९४४ ई० में स्थापित की गई थी। यह फैक्टरी भी निजी क्षेत्र में उसी फर्म ने स्थापित की है, जिसने कुण्ड में भी ऐसी ही फैक्टरी सन् १९३४ ई० में स्थापित की थी।

यह फैक्टरी आधुनिक प्रकार की साज-सज्जा से लैस है और इसकी उत्पादनक्षमता ३००० स्लेट प्रतिदिन की है। लेकिन अनेक कारणों से, जिसमें कच्चे माल की कमी और मालिक का पूरी तरह से ध्यान न देना, प्रमुख हैं, यह पूर्ण क्षमता के साथ कार्य नहीं कर रही है और इस समय इसका कुल उत्पादन केवल ८००-९०० स्लेट प्रतिदिन है। फैक्टरी में लगभग २५ व्यक्तियों को काम मिलता है, लेकिन जब यह पूर्ण क्षमता से काम करे तो ५० व्यक्तियों की आवश्यकता पड़े। फैक्टरी पर अचल पूंजी की लागत ३ लाख रुपए अनुमानित की गई है।

फैक्टरी में स्कूल-स्लेट के अतिरिक्त आर्डर पर ब्लेक-बोर्ड टेबिल-टाप्स भी तैयार किए जाते हैं। स्लेट ब्लेक-बोर्ड, टेबिल-टाप्स और स्वानेज इत्यादि वस्तुओ का कुण्ड में कांगड़ा वैली स्लेट कम्पनी भी उत्पादन करती है। यहां के स्लेट ब्लेक-बोर्डस का प्रयोग हिन्दू कालिज, हंसराज कालिज, दिल्ली तथा अन्य ऐसी ही शिक्षा संस्थाओं में किया गया है। स्वानेज स्लेट की $\frac{1}{2}$ इंच मोटी चादर होती है जिसका धरातल बहुत चिकना और समतल होता है। इनका आकार $1\frac{1}{2}$ फुट × १ फुट होता है और इनका प्रयोग जौहरी और सर्राफ लोग अपनी तराजू के नीचे करते हैं जिस पर तराजू के दोनों पलड़े ठीक प्रकार से टिक जाएँ।

अटेली की फैक्टरी को स्लेट का पत्थर बिहाली गाँव की स्लेट की पहाड़ी से प्राप्त होता है। पहाड़ी उत्तर-दक्षिण दिशा में बिहाली के समीप से होती हुई लगभग दो मील की लम्बाई में फैली हुई है। इसे ठेके पर उसी फ़र्म ने लिया है जिसने अटेली में स्लेट फैक्टरी स्थापित की है। सन् १९४४ ई० से स्लेट की खुदाई का काम आरम्भ हुआ था। अब पहाड़ी के पश्चिमी ढाल पर ६ खानें विकसित की गई हैं। खान की खुदाई का ढंग पुराना और बेढंगा है। खान पर लगभग ५० व्यक्ति काम करते हैं। यहां से स्लेट को कांट-छांट के पश्चात् अटेली लाया जाता है। बिहाली अटेली से केवल चार मील दूर पूर्व में स्थित है और दोनों के मध्य पक्की सड़क है। फैक्टरी में स्लेट की घिसाई की जाती है और अन्त में चौखटे चढ़ाए जाते हैं। चौखटा चढ़ाई का काम मशीनों की सहायता से किया जाता है।

उद्योग का भविष्य—स्लेट का प्राइमरी शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त अधिक महत्त्व है, क्योंकि इनका प्रयोग स्कूल जाने वाले बालकों द्वारा किया जाता है। प्राइमरी शिक्षा को अनिवार्य बनाया गया है और इस पर तेजी से अमल किया जा रहा है। अत: स्कूल-स्लेट की मांग बराबर बढ़ रही है और भविष्य में बढ़ेगी। यह ठीक है कि स्लेट की समस्त मांग और आवश्यकता का अभी तक कोई सही-सही अनुमान नहीं किया गया है और कोई अधिकारपूर्ण अनुमान अभी नहीं लगाया गया है। यह भी मालूम नहीं है कि हमारी स्कूल-स्लेट को विदेशी बाजार किस सीमा तक प्राप्त हो सकेगा। लेकिन मेरा ऐसा विचार है कि हम अपनी स्लेट को लका, बर्मा, पाकिस्तान और मध्य पूर्व के देशों तथा इंडोनेशिया में लोकप्रिय बना सकते हैं और इस स्कीम को सफल बनाने के लिए इन देशों की राजधानियों में प्रदर्शनियों और प्रदर्शन-कक्ष का आयोजन किया जाना चाहिए। हमारे इस प्रकार के प्रयासों के फलस्वरूप हमारी स्कूल-स्लेट की मांग विदेशों में बढ़ेगी। पंजाब में स्लेट का बहुत उत्तम प्रकार का पत्थर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है और उपयुक्त स्लेट का निर्माण किसी भी संख्या में किया जा सकता है। पंजाब-उद्योग-विभाग को मेरा सुझाव है कि इस समस्त मांग का पता लगाए और फिर इस

(शेष पृष्ठ २९ पर)

ओणम

[श्री अनवर [illegible]]

पश्चिमी जलधि अपनी तरंगों से उठने वाले शीतल सीकर-कणों से आठों पहर जिसका चरण-प्रक्षालन करता रहता है, जिसके निलय कुन्दलता-परिसेवित है, जो केतकी, चंदन, नील-कमल, बेल आदि के कारण अति मनोहर और आकर्षक बना हुआ है, उस केरल का क्षेत्रीय त्यौहार है 'ओणम'।

श्रावण महीने के हस्त नक्षत्र में मनाये जाने वाला यह उत्सव दस दिन तक चलता है। इस अवसर पर सारे केरल में बड़ी खुशियां मनायी जाती हैं। दस दिन पहले हस्त नक्षत्र से इस महोत्सव का स्वागत शुरू हो जाता है। 'ओणत्तप्पन' के स्वागत-गीतों से वातावरण गूंज उठता है। घर के आंगन पुष्पों से अलंकृत किये जाने लगते हैं। धान के पीले और पके बाल भी 'ओणम' आगमन से झूम उठते हैं और शस्यश्यामल केरल के बालक चिल्लाते नाच उठते हैं—अच्छण्टम्म, अच्छण्टम्म, ओणम वरन्तु, तिरु ओणम वरन्तु—दादी, दादी, ओणम आ गया, तिरु ओणम आ गया।

चेरवंश का प्रथम पुरुष महाबलि इस पर्व का प्रवर्तक माना जाता है। एक पौराणिक कथा के अनुसार महाबलि ने वामन-अवतार को तीन डग भूमि दान की थी। वामन के दो पगों में सारा ब्रह्मांड व्याप्त हो गया। तब तीसरा पग रखने के लिए महाबलि ने अपना सिर वामन के आगे किया। भगवान् वामन ने महाबलि को पाताल लोक में ढकेल दिया। उक्त अवसर पर महाबलि ने उनसे वर्ष में एक बार अपनी प्रजा के दर्शन के अवसर का वरदान मांगा। 'तथास्तु'—कहकर वामन भगवान् ने महाबलि की इच्छा मान ली। इसके अनुसार मलयालम वर्ष के प्रथम मास 'चिंगम' की पूर्णिमा को राजा बलि का अपनी प्रिय प्रजा को देखने के लिये केरल में आगमन होता है और महाबलि के स्वागत में 'ओणम' का आयोजन किया जाता है।

सावन का महीना असल में शस्यभूमि केरल के लिये पुष्प की बहार का मौसम है। दो महीने लगातार वर्षा के पश्चात् प्रकृति का आंचल—रंग-बिरंगे सुन्दर फूलों से भर जाता है, मानो महाबलि के लिये केरल की शस्यश्यामला प्रकृति सुन्दरी स्वयं शृंगारों से सुसज्जित खड़ी हो। छाया-शीतल दिन, चन्द्रिका से विहँसती सुन्दर रातें, रंगीन फूलों से लदे पौधे और खेतों में लहलहाती फसलें—मानो मनलुभावनी इस मौसम में सर्वत्र उल्लास और उत्साह का समा बंध जाता है। इससे अधिक आकर्षक और आनंदमयी पृष्ठभूमि उत्सव मनाने के लिये और क्या हो सकती है।

(पृष्ठ २८ का शेष)

उद्योग के विकास और विस्तार की ओर सशक्त कदम उठाए।

स्कूल-स्लेट की छटाई में पर्याप्त स्लेट बरबाद हो जाती है और विखण्डित टुकड़ों का अभी तक कोई उपयोग नहीं है। इन्हें महीन पीसकर स्लेट-चूर्ण में परिणत किया जा सकता है जिसका उपयोग पेन्ट उद्योग में फिलर के रूप में संयुक्त राज्य में किया जाता है। हमारे देश में भी इस प्रकार के प्रयोग को बढ़ावा मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्लेट-चूर्ण का उपयोग आयल-क्लाथ और लिनोलियम बनाने में भी किया जा सकता है। अतः यह निर्विवाद है कि पंजाब के स्लेट-उद्योग का भविष्य बहुत उज्ज्वल है और पंजाब में कुण्ड, अटेली, बजार आदि स्थानों पर स्लेट की फैक्टिरियां स्थापित करने के लिए पर्याप्त क्षेत्र उपलब्ध हैं जिसकी ओर पंजाब सरकार का ध्यान आकर्षित किया जाना नितान्त आवश्यक है।

★ ★ ★

ओणम के इस उल्लासमय अवसर पर केरल में महिलाओं के सामूहिक नृत्य 'कैकोतिकली', संगीत और अन्य खेलों की धूम रहती है। साथ ही नौका-विहार का भी विशेष रूप से आयोजन किया जाता है हाथियों के जलूस और आतशबाजी भी ओणम के अनोखे आकर्षण हैं।

ईर्ष्या-द्वेष, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, जाति-धर्म आदि सभी—संकुचित भावनाओं को भुलाकर केरल-वासी सामूहिक रूप से 'ओणम' का आनन्द उठाते है।

इन दिनों कोई भीख नहीं मांगता, न ही दूसरे के घर भोजन किया जाता है। कोई भूखा न रहने पाये इसलिए लोग दिल खोल कर दान करते हैं, यहां तक कि चूहे और चीटियों के लिए भी भूमि पर भोजन की सामग्री बिखेर दी जाती है। केरल में केला बहुतायत से मिलता है। कदाचित् इसीलिए ओणम की दावतों में केलों के कई प्रकार के व्यंजन बनाने की प्रथा है।

'ओणम' में केरल के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में अपूर्व उल्लास और घर-घर में सत्य, शिव, सुन्दर के दर्शन होते हैं, कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा।

पूर्णिमा के आठ-दस दिन पहले से ही ओणम की चहल-पहल आरम्भ हो जाती है। लड़के-लड़कियां 'पूव-पोली पूव' की रट लगाते, गीत गाते हुए जंगल में फूल तोड़ने जाती हैं। और स्वच्छ लिपे-पुते आंगनों में इन फूलों से बहुत ही सुन्दर और कलापूर्ण 'रांगोली' सजाती हैं।

कहते हैं कि, महाबलि के शासन में प्रजा बहुत सुखी, सन्तुष्ट और समृद्ध थी, किसी प्रकार का मतभेद नहीं था। एक लोकगीत है—

मावेली नाडु वाणीडुं कालम्,
मानुषरेल्लाक्मोन्नु पोले।

जब मावेली (महाबलि) राज्य कर रहा था, मानव-मानव में कोई भेद-भाव नहीं था। अर्थात् सर्वत्र सुख, शांति और समता व्याप्त थी। वैसी सुख-समृद्धि और समता की कामना से ओणम पर त्रिकाक्करा अप्पन (भगवन वामन) और मावेली (महाबलि) की मिट्टी की मूर्तियों की बड़ी धूम-धाम और श्रद्धा से पूजा की जाती है। अत: राजा बलि को यह संतोष दिलाने के लिए कि उसकी प्रजा उसी प्रकार आज भी सुखी-सम्पन्न है।

ओणम की समाप्ति पर मूर्तियो का विसर्जन कर दिया जाता है।

ओणम का धार्मिक महत्त्व जो भी हो, समाज में एकता, सहयोग और सद्भावना प्रसार करने में यह अपना सानी नही रखता। समस्त केरल-निवासी, जाति और धर्म-संप्रदाय के भेद-भाव को त्याग कर समान श्रद्धा, आनन्द और उत्साह से ओणम पर्व मनाते है।

★ ★ ★

संश्लेषित मैं

[श्री रंगनाथ राकेश]

मैं परम्परा के रिक्थ का न्यग्रोध हूं।
वैरूप्य-कुंठा औ' क्रकस के बीच—
जिजीविषा का युग-बोध हूं।
पल-पूतना के स्तन्य-विष को
चूसता हूं कृष्ण के ओष्ठाधरों-सा,
प्रस्तर-खण्ड पर क्यों लेप दूं—
मैं आस्था अपनी, विश्वास अपना ?
लोह पर जो मैल थी, वह झड़ गई है,
ग्लानि का जो अंग था—
वह पिट चुका है, गिर चुका है,
इस्पात मेरा कट गया ! मैं जी गया !!
मैं 'स्वयं' को चीन्हता हूँ।
विश्वास, जिस पर जी रहा हूँ,
विश्वास, जिस पर बढ़ रहा प्रतिपल—
अनवरत मृत्यु-पथ को बांह खोले,
बस वही विश्वास मेरा—
ईश है, प्रभु है।

चन्द वरदाई

[डॉ. वेणीप्रसाद कौशिक]

किंवदंतियों के आधार पर महाकवि चन्द वरदाई के विषय में साधारणतया यही धारणा चली आ रही है कि इन का जन्म लाहौर में हुआ था और ये हिन्दु सम्राट् पृथ्वीराज के दरबारी कवि थे। परन्तु निश्चित तथा प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में इस कथन की सत्यता में संदेह है। कुछ समय पूर्व डा० व्यूहलेर तथा डा० ओझा जी ने अपनी ऐतिहासिक खोजों के आधार पर इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया था कि चन्द वरदाई पृथ्वीराज के दरबारी कवि नहीं थे, अपितु १६वीं शताब्दी में इनका अस्तित्व माना जा सकता है। परन्तु रासो के प्रति एक विशेष मोह के कारण कुछ विद्वानों ने इस मत का अनुमोदन नहीं किया। वस्तुत: मेरी दृष्टि में चन्दवरदाई न तो पृथ्वीराज का समकालीन अथवा उस का दरबारी कवि था और न ही लाहौर में इन का जन्म हुआ!

रासो के लघु संस्करण का सम्पादन करते समय मुझे इस बात का निश्चय-सा हो गया है कि चन्दवरदाई हिसार का रहने वाला था और उसने पृथ्वीराज के जीवनवृत्त से प्रभावित हो कर परम्परागत प्रचलित दन्तकथाओं तथा किंवदन्तियों के आधार पर वि. सं. १६वीं शताब्दी में (भारत पर बाबर के आक्रमण के कुछ समय पश्चात्) पृथ्वीराज रासो (लघुसंस्करण) की रचना की। एक साधारण भाट होने के नाते कवि को इतिहास का पूर्ण ज्ञान नहीं था। ऐतिहासिक तथ्यों के लिए उसे कल्पना तथा अनुमान का सहारा लेना पड़ा। परिणामतः रासो में वर्णित समस्त ऐतिहासिक तिथिएं, आधे से अधिक व्यक्ति तथा कुछ घटनाएं इतिहास[1] की कसौटी पर पूरी नहीं उतरतीं। भला यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि जो व्यक्ति स्वयं को स्वरचित इतिहासप्रसिद्ध काव्य-नायक का जन्म-मरण का साथी घोषित करता हो, वही उसके जीवनसंबंधी वृत्तों में क्योंकर उथल-पुथल कर सकता है?

इस मत की पुष्टि के लिए सबसे प्रबल प्रमाण रासो की भाषा है। भाषा-विकास की दृष्टि से रासो की भाषा[2] न अपभ्रंश है और न ही १६वीं शताब्दी की विकृत अपभ्रंश। इस का अपना ही अनोखा चारणी रूप है। ऐसी चारणी[3] रूपात्मक भाषा की परिपाटी का पालन चारण लोग जीविका-निर्वाहार्थ १८वीं शताब्दी तक दृढता से करते रहे हैं। रासो (लघुसंस्करण) की ऐसी ही भाषा में १६वीं शताब्दी में रचना हुई! प्रक्षेपादि अंशों द्वारा प्रवृद्ध होकर लघुसंस्करण से ही क्रमश: १७, १८ वीं शताब्दियों में मध्यम तथा वृहत् संस्करण रूप हुए।

दूसरी बात के लिए—रासो में एक कवि-कल्पित घटना है—जैतखम्भ-भेदन-समारोह। यह समारोह सम्राट् पृथ्वीराज ने अपने सामंतों की बल-परीक्षार्थ किया है। इस खम्भ का छेदन अन्य प्रबल योद्धाओं के होते हुए एक धीर पुंडीर नामक युवक से करवाया गया है। यह युवक देवी का अनन्य भक्त है (कवि भी देवी का अनन्य भक्त है) इस युवक ने देवी की विधि[4] पूर्वक पूजा द्वारा शक्ति प्राप्त करके उक्त खम्भ का

---

१. देखो—लेखक द्वारा सम्पादित "पृथ्वीराज रासो—"लघुसंस्करण" भूमिका-अध्याय "ऐतिहासिकता"।

२. देखो—वही, भूमिका-अध्याय-रासो की भाषा तथा उसकी व्याकरणिक रचना।

३. देखो—"डिंगल भाषा ले. गजराज ओझा का. ना. प्र. प. (नवीन संस्करण)" भाग १४ संवत् १९९० ।

४. दिन अट्ठहं पूजिय सकति, नवल विधि तथास्थिय। (१३-४०)

छेदन किया। सम्राट् पृथ्वीराज ने प्रसन्न होकर इस युवक को "हिसार[५] कोट", पांच हजार गांव तथा मुलतान प्रदेश का कुछ भाग इनाम में दिया। इस के अतिरिक्त इस युवक को सौं सामंतों पर अधिनायक भी नियुक्त कर दिया गया। यह युवक चन्द पुंडीर नामक सांमत का एक मात्र पुत्र है। परन्तु रासो में इस युवक को सर्वत्र (दो-एक स्थानों को छोड़ कर) चन्द[६]पुत्र लिखा है। धीर पुंडीर भी अपने-आप को चन्द का पुत्र घोषित करता है :—

"हौं सुत चन्दह तनौ" (१३-५०)।

यह चन्द पुंडीर स्वयं कवि चन्दवरदाई है जिस ने अपने नाम के साथ "वरदाई" उपाधि लगा कर इस ग्रंथ की रचना की। यद्यपि चन्द वरदाई ने एक भाट होने के नाते परम्परागत चारणी भाषा में रासो की रचना की, परन्तु फिर भी वह अपनी जन्मभूमि "हिसार" की स्थानीय बोलचाल की भाषा के प्रभाव को दबा नहीं सका। चारणी भाषा तक संयत रहते हुए भी रासो में हिसारी बोली का प्रभाव स्थान-स्थान पर पाया जाता है। जैसे :—

१. तवल्लंत = (१०—१२) तब तक।

२. पांच हजार घाटि सौ (११—११२)

३. तेह रज्जे रपट्टे निमिल्ले चंपिए पानि ते मेरु ठिल्ले (१०-१९) एवं—रज्जे=रज गए (१२-६), भल्ली=भली-सुन्दर (१०-१२), मल्ली=पगली (१०-२०) घणी=अधिक (१०-५३)

तदिन-तदिन आदि शब्द ठेठ हिसारप्रांतीय बोल-चाल भाषा[७] के हैं। इस के अतिरिक्त हिसारी बोली में प्रयुक्त होने वाले संज्ञा तथा सर्वनामों का प्रयोग भी रासो में मिलता है, जैसे "पौंड़ी गुड मिट्ठो", "छग्गल" पौंड़ी=गन्ना, छग्गल=पानी भरने के लिए भारी बर्तन। ये दोनों शब्द हांसी; हिसार के ठेठ प्रादेशिक शब्द हैं। "तैंभूठ जु कुन्नो" तैं=तू के अर्थ में हिसार तथा बांगर प्रदेश का प्रादेशिक सर्वनाम संज्ञा है।

चारण लोग पर्यटक तो थे ही अथवा कवि के कुछ यजमान मुलतान में भी होंगे और उस को प्रायः वहां जाना पड़ता होगा। अतः मुलतानप्रदेशीय ठेठ बोल-चाल के शब्द जैसे "कप्पिउ" "नप्पौ" आदि पंजाबी[८] शब्द भी कहीं-कहीं रासो में पाये गए हैं। १६वीं शताब्दी में भारत में उर्दू-फारसी का पर्याप्त प्रचलन था। 'मालूम' 'सहर' आदि उर्दू, फारसी के साधारण बोल-चाल के शब्दों की भी रासो में पर्याप्त संख्या है।

अतः मेरा यह विश्वास है कि चन्द पुंडीर नामक व्यक्ति ने 'वरदाई' उपाधि द्वारा यशःप्राप्ति तथा अपने वंश की ख्याति के लिए १६ वीं शताब्दी में पृथ्वी-राज रासो (लघुसंस्करण) की रचना की तथा १७वीं, १८वीं शताब्दियों में प्रक्षेपादि अंशों द्वारा प्रवृद्ध हो कर रासो के क्रमशः मध्यम तथा वृहत् संस्करण हुए।

★ ★ ★

---

५. (क) मुहम्मं मुकामं सु हिसार कोटं (१३-४३)

— (ख) पंच हजार ग्रामं सु सथानं झंडा माहं वैरख पीलं निसानं। ततसं ददसं तुरंतं उचायो, यत्यौ सस्स सामंत पुंडीर आयो। (१३-४४)

(ग) दिये चारि देसंजु पुंडीर राजं। (१३-७५)

(घ) मो धीर घर गौविनि मुलितानं (१३-८८)

६. हिसार कोट चन्दह तनौ (१३-५६)
महाचन्द पुत्तं चवीरं महीनं (१३-७३)

७. विशेष देखो—वही भूमिका-अध्याय—"रासो की भाषा"

८. विशेष देखो—वही भूमिका—रासो की भाषा तथा उस की व्याकरणिक रचना।

पंजाबी और प्राचीन संस्कृत

[डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री]

आर्य सर्वप्रथम पंजाब में आये और चिरकाल तक यहां बसे रहे। वेदों में पंजाब की पांचों नदियों का वर्णन है। मनुस्मृति में सरस्वती और दृषद्वती को देवनदियां कहा गया है और उनके बीच वाले प्रदेश को ब्रह्मावर्त। यहीं पर वेदों की रचना हुई। सरस्वती का प्रवाह फीरोजपुर से प्रारम्भ होकर बीकानेर के हनुमानगढ, सूरतगढ आदि प्रदेशों को सींचता हुआ पंजाब के हिसार जिले में पहुंचता था। उसी के तट पर सरसा नाम का नगर बसा हुआ है जो अब भी उस नाम को सूचित करता है। दूसरी ओर दृषद्वती शिमला की पहाड़ियों से निकल कर चण्डीगढ के पास प्रकट होती है और अम्बाला जिले के अनेक स्थानों को सींचती हुई यमुना में जा मिलती है। वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति के अतिरिक्त प्राचीन संस्कृत का निर्माण भी पंजाब में ही हुआ। यही कारण है कि पाणिनिकालीन संस्कृत के अनेक शब्द जो उत्तरकालीन संस्कृत एवं अन्य भाषाओं में लुप्त हो गए किन्तु पंजाबी में अब भी उपलब्ध हैं। पाणिनि स्वयं पंजाबी थे। रावलपिण्डी के पास तक्षशिक्षा विश्वविद्यालय संस्कृत भाषा एवं साहित्य का चिरकाल तक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। पाणिनि, वररुचि, कात्यायन आदि विद्वानों ने वहीं पर विद्या प्राप्त की और संस्कृत भाषा की नींव डाली। नीचे पंजाबी के कुछ ऐसे शब्द दिए जायेंगे जो संस्कृत के प्राचीन रूप को प्रकट करते हैं।

१. **मुण्डा**—वर्तमान पंजाबी में इसका अर्थ है 'लड़का'। यह शब्द मुण्डक से बिगड़ कर बना है। इसका प्राकृत रूप मुण्डअ क्रमशः मुण्डा बन गया। उत्तरवैदिककाल में इस शब्द का अर्थ था गुरुकुल में अध्ययन के लिए दीक्षित विद्यार्थी। गुरुकुल-वास का प्रारम्भ करने के लिए सिर मुंडाया जाता था और दीक्षित शिष्य को मुण्डक कहा जाता था। उसी के नाम पर मुण्डकोपनिषद् है। पंजाबी के संबोधन में मुंड्या" का व्यवहार होता है जो मुंडित का अपभ्रंश है।

२. **बुकल**—वर्तमान पंजाबी में यह शब्द ओढ़ी हुई चादर के लिए आता है। इसका संस्कृत रूप वल्कल है, जिसे अरण्यवासी ऋषि-मुनि पहना करते थे। यह शब्द भी उस युग का सूचक है जब साधारण जनता सूत या ऊन के बने हुए वस्त्र नहीं पहनती थी।

३. **थूना**—पंजाबी में यह शब्द अब भी खूंटे के लिए आता है जो कि स्थूण का विकृत रूप है। वैदिक काल में स्थूण पशु बांधने के खूंटे को कहा जाता था।

४. **जन्न**—पंजाबी में इसका अर्थ है बरात। इसका संस्कृत रूप जन्य है जिसका अर्थ है युद्ध। पंजाब में विवाह का जो रूप है वह युद्ध के अवशेषों को सूचित करता है। वर का अपने साथियों के साथ सुसज्जित होकर कन्या-पक्ष के द्वार पर आना। तलवार से तोरण को ठुकराना, भाभा द्वारा कन्या को उठा कर लाना और वर को सौंपना, कन्या को ले जाते समय पैसे उछालना आदि सारी बातें युद्ध की द्योतक हैं। जन्य शब्द का अर्थ होता था दो जनों अर्थात् विभिन्न ग्राम के निवासियों का परस्पर मिलना, जो युद्ध के ही रूप में होता था।

५. **ढुकाव**—विवाह के अवसर पर बरात के पहुंचने को ढुकाव कहते हैं। यह सँस्कृत की ढौकृ धातु से बना है जिसका अर्थ है पहुंचना या प्राप्त करना।

६. **वन्ना**—इसका अर्थ है विवाह से पहले वर और वधू को मला जाने वाला उबटन। दोनों परिवारों के गुरुजन अपनी-अपनी ओर से शृंगारसामग्री भेजते हैं और परिवार की स्त्रियां उनका नाम लेती हुई वर या वधू के शरीर पर मलती हैं। संस्कृत में यह शब्द वर्णक के रूप में मिलता है। प्राचीन नाटकों में भी इसका प्रयोग किया गया है।

७. **बंडना**—इसका अर्थ है बांटना। पाणिनीय धातुपाठ में 'बडि विभाजने' धातु है। उसके रूप चलते हैं बंडति (बांटता है) इत्यादि।

८. **भंडना**—इसका अर्थ है फटकारना। यह 'भडि परिभाषणे' से बना है। इसके रूप चलते हैं भंडति (फटकारता है) इत्यादि।

९. **जिन्दरा**—पंजाबी में इसका अर्थ है ताला। यह 'यन्त्र' से बिगड़ कर बना है। प्राकृत में शब्द के प्रारम्भ में आने वाले य का ज हो जाता है और भाषाविज्ञान के अनुसार तालव्य व्यंजन के साथ आने वाले अ का उच्चारण इ के रूप में होता है। इसी प्रकार मध्यवर्ती त मृदु होकर द बन जाता है।

१०. **सत्थ**—इसका अर्थ है पंचायत या सभा-भवन। यह 'संस्थ' से विगड़ कर बना है अर्थात् जहां लोग मिलकर बैठते हैं। बौद्ध साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में मिलता है।

११. **कंजरी**—पंजाबी में इसका अर्थ है वेश्या। वास्तव में कंजरी और कंजर दोनों शब्दों का सम्बन्ध देश विशेष से है जो आमोदप्रिय था। प्रादेशिक घृणा के कारण उसका व्यवहार अनैतिक अर्थ में होने लगा।

१२. **पलेथन**—इसका अर्थ है 'रोटी बनाते समय गीले आटे की लोई पर लगाये जाने वाला सूखा आटा। यह शब्द पर्यस्तन से बना है जिसमें असु क्षेपणे धातु है। पूरे शब्द का अर्थ है चारों ओर फेंका या बुरकाया जाना।

१३. **सोहना**—इसका अर्थ है सुन्दर जो शोभन से बिगड कर बना है।

१४. **खाल**—पंजाबी में यह शब्द खेतों में पानी सींचने के लिए बनाए गए छोटे नाले के लिए आता है। यह 'स्खल' धातु से बिगड़ कर बना है जिसका अर्थ है फिसलना।

१५. **सकुनि**—पंजाबी में यह शब्द पुरुषों के नाम में आता है। महाभारत में दुर्योधन के मामा का नाम शकुनि था। पञ्जाब के अतिरिक्त अन्य किसी प्रांत में यह नाम नहीं मिलता। संस्कृत में इसके दो रूप हो सकते हैं। १. शकुनि—अर्थात् पक्षी, २. शकुनि अर्थात् शकुनशास्त्र को जानने वाला या उसके द्वारा आजीविका चलाने वाला।

१६. **हस्स**—यह गले में पहने जाने वाले एक आभूषण का वाचक है जो कण्ठ के साथ चिपका रहता है। यह ह्रस्व से बिगड़ कर बना है। गले में लटकने वाले लम्बे हार की अपेक्षा छोटा होने के कारण उसे यह नाम दिया गया होगा। राजस्थान तथा हरियाने में इसे हसली कहा जाता है जो लम्बे हार के लिए प्रयुक्त दीर्घावली की तुलना में ह्रस्वावली का विकृत रूप है।

१७. **दात**—पंजाब में इस शब्द के दो अर्थ हैं। विवाह के समय कन्या को दिया जाने वाला दहेज और शाक आदि काटने के लिए प्राचीन ढंग का चाकू। संस्कृत में दा धातु के देना और काटना दोनों अर्थ हैं। दोनों में दात्र शब्द बनता है। उसी में र् उड़ गया और दात रह गया।

१८. **लीक**—पंजाबी में इसका अर्थ होता है लांछन। विवाह के समय वर-पक्ष को गालियां देती हुई कन्या-पक्ष की स्त्रियां किसी को लक्ष्य करके कहती हैं—'तेरे माप्यां नु लाइयां लीक' अर्थात् मैं ऐसा करके तुम्हारे माता-पिता पर लांछन लगा दूंगी। संस्कृत नाटकों में इसी अर्थ के लिए अलीक शब्द का प्रयोग होता है। साधारण पात्र आपस में कानाफूसी करते हुए कहते है—अमुक स्त्री या पुरुष के सम्बन्ध में अलीक सुना जाता है।

१९. **पीलु**—यह एक प्रकार का फल है जो बेर से कुछ छोटा होता है और राजस्थान से मिले हुए दक्षिण-पूर्वीय पंजाब में पाया जाता है। वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी में इसका निर्देश है—पीलुर्वृक्षस्तत्फलम् पीलु तस्मै पीलुने।

२०. **भाण्डे**—पंजाबी में इसका अर्थ है बर्तन। संस्कृत में भाण्ड शब्द का अर्थ है घर का सामान जिस में बर्तन भी सम्मिलित हैं। महाभारत में आया है—

> **प्रकीर्णभाण्डामनपेक्षकारिणीं,**
> **सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम्।**
> **परस्य वेश्माभिरतामलज्जा-**
> **मेवंविधां स्त्रीं परिवर्जयामि॥**

लक्ष्मी कहती है—

'जिस स्त्री के घर का सामान बिखरा रहता है, जो बिना सोचे काम करती है, सदा विपरीत बोलती है, दूसरे के घर में अधिक उठती-बैठती है तथा लज्जा-हीन है, उसे मैं छोड़ देती हूँ।

२१. **मंजा**—पंजाबी में इसका अर्थ है चारपाई। यह मंचक से बना है।

२२. **चिरंजी**—यह पुरुषों के नाम में आता है जो जो चिरंजीव का संक्षेप है।

२३. **बुआ**—इसका अर्थ है दरवाजा। इसमें बु के पश्चात् अस्पष्ट ह् का उच्चारण होता है और यह संस्कृत 'द्वा:' का प्राकृत रूप है।

२४. **कुड़ी**—इसका अर्थ होता है—बालिका। यह संस्कृत की 'कुड' धातु से बना है। वैदिक-काल में भी लड़की को चिन्ता का कारण माना जाता था, क्योंकि उसके कारण परस्पर शत्रुता बंध जाती थी और पिता को नीचा देखना पड़ता था।

२५. **कुण्डा**—इस शब्द के दो अर्थ होते हैं। पहला किवाड़ों के पीछे लगाया जाने वाला कुण्डा, जिस से बाहर का व्यक्ति उन्हें न खोल सके। इसके लिए संस्कृत में 'कुडि रक्षणे' धातु है। जिसके रूप कुंडयति इत्यादि होते हैं। दूसरा अर्थ है गड्ढा या पात्र विशेष, जिसमें रख कर किसी वस्तु को जलाया जाता है। इसके लिए संस्कृत में 'कुडि दाहे' धातु है जिसके रूप कुंडति इत्यादि होते हैं। पंजाबी में यह शब्द पत्थर के बने हुए उस बर्तन के लिए भी आता है जिसमें रख कर कसी वस्तु को कूटा या रगड़ा जाता है। इसके लिए संस्कृत में 'कुडि वैकल्ये' धातु है, जिस का अर्थ है रगड़ना या कूट-कूट कर अलग करना।

२६. **मिस्सा**—यह मिश्र शब्द से बना है और प्राय: गेहूं और चने के मिले हुए आटे के अर्थ में आता है।

२७. **लिस्सा**—इसका अर्थ है दुबला-पतला। यह 'लिश अल्पीभावे' से बना है।

२८. **बहूटी**—यह वधूटी से बना है जिसका प्रयोग केवल पंजाबी में होता है। अन्य प्रान्तों में केवल बहू शब्द का प्रयोग होता है।

२९. **बट्टा**—इसका अर्थ है तोलने का बाट। सम्भवतया यह वृत (वर्तयति) धातु से बना है जिस का अर्थ है वर्ताना या बांटना। वट्टा का दूसरा अर्थ है विनिमय या लेन-देन जोकि परिवर्तन के अर्थ को प्रकट करता है।

३०. **पत्तन**—इसका अर्थ है नदी या तालाब आदि का किनारा। संस्कृत में भी यह शब्द इसी रूप में पाया जाता है।

३१. **पट्ट**—पंजाबी में यह रेशम के लिए आता है। संस्कृत में भी इसका प्रयोग उसी अर्थ में होता है।

३२. **अंज**—इसका अर्थ है दूसरा जोकि अन्य का रूपान्तर है।

३३. **छन्द**—इसका अर्थ है पद्य। संस्कृत में पद्यों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है।

३४. **खीर**—इसका अर्थ है दूध। यह क्षीर का रूपान्तर है। यहां एक बात उल्लेखनीय है। दूध के लिए दो शब्दों का प्रयोग मिलता है १—दुग्ध और २—क्षीर। दुग्ध वह वस्तु है जिसे दोहने वाला अपनी क्रिया द्वारा प्राप्त करता है। क्षीर वह वस्तु है जो अपने-आप झरती है अर्थात् स्नेहार्थ माता या गाय के स्तनों में से जो अपने-आप निकलता है। अत: क्षीर शब्द वात्सल्य को लिए हुए है जो दुग्ध शब्द में नहीं पाया जाता। पंजाबी ही एक ऐसी भाषा है यहां दूध के लिए क्षीर शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

३५. **कड़ाह**—इसका अर्थ है हलुआ। यह कटाह शब्द से बिगड़ कर बना है, जिसका अर्थ है कड़ाही। प्राचीन समय में यह मिष्टान्न कड़ाही में पकाया जाता होगा।

३६. **कड़ा**—यह कटक से बिगड़ कर बना है जो हाथ में पहना जाता है।

३७. **कच्छ**—इसका अर्थ है जांघिया। यह कक्ष्य से बिगड़ कर बना है, जिसका अर्थ है कमर में पहना जाने वाला वस्त्र।

३८. **कृपाण**—यह छोटी तलवार के लिए आता है। संस्कृत में भी यह शब्द इसी रूप में मिलता है।

३९. **केस**—यह केश का विकृत रूप है।

४०. **पंड**—इसका अर्थ है गठरी। यह पडि (पंडयति या पंडति) धातु से बना है।

४१. **पिंड**—इसका अर्थ है गांव। यह 'पिडि संघाते' से बना है।

४२. **पिण्डा**—इसका अर्थ है शरीर। यह भी पिडि धातु से बना है, किन्तु कुत्सा के लिए क लगा दिया गया है। शरीर को जब मिट्टी का पिण्ड बताकर घृणा

की जाती है तभी पिण्डक—पिण्डा शब्द का व्यवहार होता है।

४३. बन्ता—इस शब्द का प्रयोग पुरुषों के नाम में होता है। इसका संस्कृत रूप है विनत या विनीत।

४४. पाधा—इसका अर्थ है अध्यापक, और यह उपाध्याय से बिगड़ कर बना है।

४५. फुम्मन—यह पुरुषों के नाम में आता है और पृथुमान से बिगड़ कर बना है जो कि एक राजा का नाम था।

४६. पोल्हा—यह भी नाम के लिए आता है और प्रल्हाद से बिगड कर बना है। प का सम्बन्ध होने के करण अ का उच्चारण ओ के समान हो गया और द का लोप हो गया।

४७. नुह—इसका अर्थ है पुत्रवधू, जो स्नुष (स्नुषा) से बिगड़ कर बना है।

४८. इन्नू—पंजाबी में इसका अर्थ है—कपड़े का बना हुआ गोल घेरा जिसे स्त्रियां पानी का का मटका लाने के लिए सिर पर रखती हैं। यह संस्कृत के इन्दु शब्द से बना है।

४९. सग्गीफुल्ल—यह एक आभूषण है जिये स्त्रियां सिर पर पहनती हैं। इसके तीन अंग होते हैं। सिर के मध्य भाग में गुम्बद के आकार का एक ऊंचा आभूषण होता है और आगे की ओर दोनों तरफ उसी प्रकार के छोटे-छोटे दो आभूषण होते हैं। यह शब्द साग्नि स्फुलिंग का विकृत रूप है। पिछला आभूषण अग्नि के समान है और आगे के दोनों स्फुलिंग के समान। तीसरा भाग छोटे-छोटे पत्तों का होता है जो ललाट पर पहना जाता है। वे आग के पतंगों के समान होते हैं।

५०. दस्स—इसका अर्थ है—बताओ या दिखाओ। यह 'दर्शय' से बना है जिका अर्थ है—दिखाओ।

५१. हट्ट—इसका अर्थ है दूकान। संस्कृत में भी यह शब्द इसी अर्थ में पाया जाता है।

५२. काका—इसक अर्थ है छोटा बच्चा। यह संस्कृत की "कक लौल्ये" धातु से बना है।

५३. यम या यह—यह मैथुन अर्थ में ग्राम्य प्रयोग है जो यभ् मैथुने धातु से बना है।

५४. खुद्दो—इसका अर्थ है गेंद, जो क्षुद्र शब्द से बना है।

५५. खूंडी—इसका अर्थ है छडी या एक किनारे से मुडी हुई लकड़ी। यह खूंटा शब्द से बना है। ●

मानव हूँ, मन बहलाता हूँ [श्री नरेशचन्द्र वर्मा नरेश']

जग-जीवों को हँसा-रुलाकर मंजिल ओर बढ़ा जाता हूँ।

राही हूँ, चुभते कांटों को खींच दर्द को पी लेता हूँ,
वन-फूलों को हृदय लगाकर मिटा जलन जी की लेता हूँ।
रोड़े जो ठोकर दे देते राह-बाट में जग जाता हूँ,
स्वप्न तोड़ निज, उठा चूम उसको भी प्यार किए जाता हूँ॥

संस्कृति का क्रम स्वयं संभलता जब धूमिल जडवाद फैलता,
आदि पुण्य के पथ पर चढ़ते अन्त पाप को तब पाता हूँ।
जीवन एक परिधि का घेरा, आदि-अन्त का होता फेरा,
युग का ही है दोष यहां जो बार-बार आता-जाता हूँ।

अपनी सीमा तोड़ चन्द्र की ज्योत्स्ना उतर पड़ी जो भू पर,
मुग्ध दृष्टि से यह छवि लख मैं प्रकृति-संग में खो जाता हूँ।
मिल जाते वरदान न सुख है मिलने पर अभिशाप न दुःख है,
खिल कर, खुल कर, खेल-खेल कर अपनी राह चला जाता हूँ॥

मिलते पापी गले लगाता, पुण्यवान् को शीश नवाता,
अनहद-भाव प्राण में भरकर, अलख जगाता मैं जाता हूँ।
क्षितिज-छोर से 'क्वासि-क्वासि' का प्रश्न गहनतम छूता अन्तर,
'कोऽहम्-सोऽहम्' भव्य मार्ग पर रुक-रुक कर बढ़ता जाता हूँ॥

अध्यापक और विद्यार्थी

[डॉ॰ शान्ति मलिक]

अध्यापक-दिवस देश-भर के सभी स्कूलों और कालिजों में गोष्ठी व सभा के रूप में मनाया जाता है। विभिन्न मूलभूत समस्याओं एवं प्रश्नों, यथा—देश के निर्माण में अध्यापक क्या पग उठा सकते हैं? अध्यापक और समाज का पारस्परिक आदान-प्रदान सफलता-पूर्वक कैसे निभ सकता है एवं भारत और विभिन्न देशों के अध्यापकवर्ग की स्तरगत विभिन्नता क्या है और वह कैसे दूर की जा सकती है आदि पर तर्क उपस्थित किए जाते हैं। उपर्युक्त सभी प्रश्न परस्पर अटूट सम्बन्ध रखते हैं। प्रथम प्रश्न कि अध्यापक देश का निर्माता है—विशेष महत्त्व का है। यहां यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अध्यापक ही समाज का विधायक है अर्थात् बनाने वाला है। समाज ही इसके चरित्र से प्रकाशमान होता है। आज की सभ्यता के निर्माण हेतु वह एक महान् उत्तरदायित्व रखता है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि समाज के उत्थान के लिये, जीवन के निर्माण के लिये तथा जीवन-मूल्यों को बराबर कायम रखने के लिए अध्यापक ही उत्तरदायी है।

प्रथम चार वर्ष घर में व्यतीत करने के पश्चात् बालक अपने जीवन की पुष्ट आधारशिला पाने के निमित्त विद्यालय आता है। निःसन्देह घर के बाद बालक के लिये यही एक ऐसी शिक्षा की केन्द्रस्थली है, जहां सफल मानव की जड़ें जमाई जाती हैं। यही वह जीवन है जहां विद्यार्थी ज्ञान के प्रकाश का प्रथम बार साक्षात्कार करता है। विद्यार्थी अपने विद्याध्ययन-काल में पुस्तकों, अध्यापकों एवं मित्रों के संसर्ग से प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ प्राप्त करता रहता है। कहा जा सकता है कि उसके मस्तिष्क का विकास, शारीरिक विकास एवं आत्मिक उत्थान यहीं पर पूर्ण होता है। अध्यापक यहां समाज का आलोक व प्रकाश-दीप कहलाता है, अतः उसे आदर्श व्यक्ति होना ही चाहिए। अध्यापक के आदर्शवादी होने का अभिप्राय उसके देवता बनने से नहीं, बल्कि उसकी शारीरिक और नैतिक उन्नति करने से है। वस्तुतः अध्यापक की यही नैतिक शक्ति समाज की आत्मा है। यदि अध्यापक स्वार्थान्धता, जातीयता एवं साम्प्रदायिकता के अन्धड़ से ऊपर उठकर सर्वहितबुद्धि रखते हुए त्याग, तपस्या और साधना से अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करता रहे तो निःसन्देह भावी देशरत्न पैदा किए जा सकते हैं। क्योंकि उपदेश कोरा राग है जिसका प्रभाव क्षण-भर के लिए होता है, जबकि आदर्श उत्तम है और इसका प्रभाव भी चिरस्थायी होता है। पुनः विद्यार्थी विद्यालय में इसलिये नहीं आता कि वह केवल खुलासे याद करके पास हो जाए। शिक्षा का उद्देश्य तो उसे पूर्ण जीवन के लिए तैयार करने में है। अतः अध्यापक की कर्तव्य-पूर्ति इसी में है कि वह विद्यार्थी को सही अर्थों में शिक्षित करे एवं उसका मानसिक और बौद्धिक स्तर उन्नत कर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकाशित कर दे। सही अर्थों में शिक्षित करने का सरल और स्पष्ट तात्पर्य यह है कि वह उसे सम्यक् ज्ञान देकर उसकी सुप्त वृत्तियों को जागृत करने के साथ-साथ उसे मनुष्य भी बनाए।

यथार्थ जानने का नाम सम्यक् ज्ञान है। जो वस्तु जैसी है उसे वैसे ही जानना चाहिए, यथा-असत्य को सत्य, दुःखदायक को सुखदायक, अपवित्र को पवित्र तथा अनित्य को नित्य कहना सम्यक् ज्ञान नहीं, किन्तु झूठा और मिथ्या ज्ञान है। अतएव उचित और अनुचित में विवेक करना जिस विद्यार्थी को सिखा दिया जाता है, समझ लीजिए कि उसने सही अर्थों में सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लिया है। ज्ञान के पश्चात् 'मनुष्य बनना' किसे कहते हैं, इसे भी जरा ध्यान में लेना अपेक्षित है। विद्यार्थी में आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता—दूसरे शब्दों में स्वावलम्बन का संचार कर उसे शिष्ट, सदाचारी, अनुशासन तथा श्रम प्रिय एवं तपस्वी बनने की प्रेरणा देना ही मनुष्यत्व का पाठ पढ़ाना है। इन गुणों का स्पष्टीकरण देना उचित है। स्वावलम्बन—स्व+आलम्बन—इन दो शब्दों से

मिल कर बना है जिसका सरल अर्थ है अपना ही सहारा ग्रहण करना अथवा अपने पैरों पर खड़ा होना। वस्तुतः यह गुण विद्यार्थी के मानसिक, बौद्धिक एवं शारीरिक विकास की कुंजी है तथा देश और जाति के विकास का बीज है। यह संसार अपनी शक्ति पर भरोसा रखने वाले उन उद्योगी पुरुषों का है, जो असम्भव को सम्भव बना दें। यह गुण मांगने की वस्तु नहीं है यह विद्यार्थियों के हाथ में है, जिसका उपयोग वे भली प्रकार कर सकते हैं। शिष्टता से तात्पर्य विद्यार्थी के उचित मनोबल के विकास से है। सदाचारी बनने और सत्याचरण करने का तात्पर्य यह है कि आज के युग में जब सर्वत्र सांसारिक प्रलोभनों एवं स्वार्थों का बोलबाला है, और सत्यता नाम मात्र को भी नहीं मिलती, परन्तु जो विद्यार्थी इन लालच देने वाले पदार्थों से बच निकलता है, वही सदाचारी है।

अनुशासन का शाब्दिक अर्थ है—अनु+शासन—शासन के पीछे। शासन, नियन्त्रण को कहते हैं, अतः नियन्त्रण में रहना ही अनुशासन है। यह अनुशासन बाह्य और भीतरी दो प्रकार का होता है। बाहरी अनुशासन—बाह्य दबाव, भय और विवशता है, जब कि भीतरी अनुशासन आत्मसंयम का रूप धारण करता है। इसमें अपनी वृत्तियों को मसलने की भावना नहीं होती, इसमें विद्यार्थी दबाया नहीं जाता और न ही वह विवशता वश कार्य करता है, यह तो वह आत्म-ज्ञान है जिसके कारण विद्यार्थी का उतावलापन और उद्दण्डता चली जाती है। यदि हम सम्पूर्ण सृष्टि पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि सूर्य, चांद, नक्षत्र, ऋतुएं, नदियां तथा समुद्र आदि सभी अनुशासन में रहते हैं। क्षण-भर के लिये मान लें कि यदि सूर्य व चांद अपना नियमित मार्ग छोड़ दे, ऋतुएं अपने उचित समय पर न आएं और नदियां अनुशासन में रह कर न बहें तो संसार में विप्लव आ जाएगा और सृष्टि अस्त-व्यस्त हो जाएगी। अतः कहा जा सकता है कि अनुशासन स्वतन्त्रता का बाधक नहीं, पोषक है। इससे मनुष्य में शालीनता एवं शिष्टता का प्रादुर्भाव होता है. उन्नति का मार्ग खुलता है तथा मन में एकाग्रता आती है। यही नहीं अनुशासन शक्ति और व्यवस्था का भी प्रतीक है। जिस व्यक्ति में इस गुण का अभाव होता है, वह जीवनपर्यन्त ठोकरें खाता है तथा जिस संस्था में अनुशासन नहीं वह संस्था शीघ्र समाप्त हो जाती है। अतएव विद्यार्थिजीवन में ही छात्र और छात्राओं को अनुशासनप्रिय होना चाहिए। अध्यापक की सफलता ही उसकी नियन्त्रणयोग्यता तथा विद्यार्थियों को अनुशासित करने की शक्ति पर निर्भर करती है।

अनुशासनप्रियता के अतिरिक्त एक अन्य महत्व-पूर्ण गुण है—परिश्रम, जो प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन की मूलभूत व अनिवार्य आवश्यकता है। परिश्रम उत्पादक शक्ति है, इससे संसार की दुर्लभ वस्तुएं उत्पन्न की जा सकती हैं। श्रम करने से पूर्व विद्यार्थी को चाहिए कि वह अपना क्षेत्र निश्चित करे कि उसे वकील, डाक्टर, ख्यातिप्राप्त नेता तथा प्रोफेसर आदि में क्या बनना है? इस निश्चय के पश्चात् वह यह महसूस करे कि उसका निशाना एक है, केवल एक, एवं उसी तक पहुंचना उसका ध्येय है, क्योंकि लक्ष्य मे द्विविधा अथवा अनिश्चितता का भाव घातक सिद्ध होता है। यदि प्रत्येक समय उसके सामने लक्ष्य की वही तस्वीर झलक दिखा जाए और वह मंजिल की सिद्धिहेतु श्रम मे खेल के समान रुचि लेकर दृढता. संकल्पशक्ति, मानसिक एकाग्रता एवं अनवरत परिश्रम द्वारा आगे बढ़े तो निश्चयात्मक रूप से सफलता उसके चरण चूमेगी। किन्तु आज हम देखते है कि स्थिति इसके विपरीत है। आज के विद्यार्थियों के लक्ष्य मृग-मरीचिका के समान बनते-टूटते है और वह सर्वदा भूल जाते हैं कि मानव पृथ्वी पर चलता है, आकाश पर नहीं। वह बड़े-बड़े स्वप्न लेते है और सोचते है कि वे भी अपने स्वप्नों को अलाउद्दीन के चिराग के समान किसी जादू-टोने व कारीगरी से प्राप्त कर लेंगे। यहां वे यह भूल जाते हैं कि कार्य में सफलता पाना कोई सहज व सरल मार्ग नहीं है। वास्तव में सफलता रूपी सीप का मोती तो परिश्रम के अगाध समुद्र में डुबकी लगाने से उपलब्ध होता है। यही कारण है कि आज के अधिकांश निष्क्रिय विद्यार्थी—जिनके लिये परिश्रम बोझ है एवं थकान का कारण है—सफल नहीं हो पाते। कहा भी गया है—सकल पदारथ हैं जग मांही, कर्महीन नर पावत नांही।" अतएव विद्यार्थियों को

ध्येय की प्राप्ति हेतु श्रम करना होगा, सुख-भोग एवं आराम के रोग को त्यागना होगा, तभी उन्हें मनचाही मंजिल मिल सकेगी।

अन्तिम गुण तपस्वी बनने की जो बात कही गई है, सम्भवत: लोग 'तपस्वी' शब्द पढ़कर ही हँसी उड़ाने लगें, किन्तु यहां तपस्वी बनना, वैराग्य लेना व सादी पोशाक पहनना नहीं है। अपितु सुख-दु:ख व हानि-लाभ में सदा एकरस रहने का नाम तपस्या है। वस्तुत: सम्यक् ज्ञान के साथ-साथ जो अध्यापक विद्यार्थी में उपयुक्त गुणों का संचार कर सकने में सफल होता है वही उसे सही अर्थों में मनुष्य बना सकता है। अत: कहा जा सकता है कि शिक्षक का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य विद्यार्थी को मनुष्य बनाना होना चाहिए। देखा जाए तो मनुष्य बनने का अधिकारी भी वही है जो परिश्रमी एवं स्वावलम्बी होने के साथ-साथ अपने हाथ, पैर एवं मस्तिष्क का ठीक-ठीक प्रयोग करने की क्षमता रखता हो। इस प्रकार का शिक्षार्थी ही अपने स्कूल, कालिज, वंश और देश का रत्न होता है।

यहां कहा जा सकता है कि आज के युग में ऐसे स्वत: प्रमाण एवं आदर्श गुरु कहां हैं, जिनके सम्पर्क में आने से विद्यार्थियों को पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होने के साथ-साथ सद्वृत्तियों का विकास होता चले। वास्तव में यदि आज अधिक संख्या में सच्चे गुरु दिखाई नहीं देते है, तो सच्चे शिष्य ही कहां हैं जो उनका पूर्ण सम्मान करें और ज्ञानवृद्धि की सच्ची लग्न के साथ उनसे कुछ प्राप्त करने का प्रयास करें। हमारा साहित्य एवं इतिहास इस तथ्य का द्योतक है कि भारतीय जीवन में गुरु का स्थान अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण था।

पुरातनकाल में तो गुरु ही हमारे सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन का कर्त्ता-धर्त्ता हुआ करते थे। आज के विद्यार्थियों में न आत्मबल है और न ही आचरण। यहां प्रश्न उठाया जा सकता है कि इसके प्रति कौन उत्तरदायी है? वास्तव में इस सम्बन्ध में अध्यापक पर उतनी ही जिम्मेदारी आती है जितनी कि विद्यार्थियों के मां-बाप और समाज पर। आज वह समय बीत गया है जब विद्यार्थी गुरु के यहां रह कर शिक्षा की प्राप्ति करता था और उसके जीवन के बनने-बिगड़ने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उस पर होता था। आज का जीवन भिन्न है, आज उसका गुरु भी एक नहीं होता, प्रत्येक विषय का भिन्न-भिन्न अध्यापक होता है। अत: विद्यार्थी का अध्यापक से घनिष्ठ सम्पर्क ही स्थापित नहीं हो पाता। वे तो विद्यालय में चार-पांच घण्टे व्यतीत करने के पश्चात् अपना सारा समय घर में बिताते हैं। ऐसी अवस्था में किसी एक के उत्तरदायित्व की बात ही नहीं रह जाती। पुन: समाज और अध्यापक का सम्बन्ध बादल और भूमि सदृश है। जिस प्रकार बादल वर्षा के रूप में बरस कर पानी प्यासी भूमि को ही लौटा देते हैं वैसे ही अध्यापक समाज से बच्चे लेकर समाज को लौटा देते हैं। अत: अध्यापक विद्यार्थी के शारीरिक एवं मानसिक धरातल को उतना ही गहरा पैठ कर उठा सकते हैं जितना कि समाज उसे सामर्थ्य प्रदान करता है। अभिप्राय यह है कि जब अध्यापक को अन्य विभागों के अफसरों के समकक्ष न तो आदर का स्थान ही प्राप्त होता है और न ही आर्थिक स्वतन्त्रता। तो वे अपने उस क्षुब्ध, अनादर एवं अभाव से पूर्ण वातावरण में भावी श्रेष्ठ नागरिक कैसे उत्पन्न कर सकते हैं। क्षुब्ध वातावरण में तो केवल पारस्परिक अनादर की भावना का ही प्रसार हो पाता है। आज का अध्यापक इस तथ्य से भली प्रकार अभिज्ञ है कि नैतिक शक्ति ही समाज की आत्मा है। इसके अति-रिक्त उसके पास ज्ञान की भी कमी नहीं है, किन्तु उसका नैतिक बल और ज्ञान विषम परिस्थितियों में पड़ कर भूमि में दबाए उस धन के समान दबा रहता है, जिससे न तो उसकी भूख और प्यास ही मिट पाती है और न ही वह भयमुक्त तथा स्वतन्त्र विचार-शक्ति रखने वाले विवेकी विद्यार्थियों को ही तैयार कर सकता है।

अत: यदि हम चाहते हैं कि देश के भावी नागरिक योग्य बनें तो शिक्षा के ढांचे में परिवर्तन लाने के साथ-साथ अध्यापकों की प्रतिष्ठा बढ़ाई जानी चाहिए। चुनाव कमेटियां चुनाव करते समय सदैव ध्यान रखें कि योग्यतम व्यक्ति ही अध्यापक नियुक्त हों। किन्तु देश की प्रतिभा को इस ओर आकर्षित करने के निमित्त अध्यापकों के वेतन अन्य विभागों में काम करने वाले

कर्मचारियों से अधिक रखे जाएँ। शिक्षा के ढाँचे, शिक्षा के माध्यम एवं शिक्षकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने के लिए सरकार को धन की आवश्यकता पड़ेगी, जब कि आज चीनी आक्रमण को दृष्टिगत रखते हुए रक्षाव्यवस्था की सामग्री पर अतुल धन राशि व्यय की जा रही है, अतएव यह परिवर्तन अभी सम्भव न जान पड़े। किन्तु जब भी सरकार साहस से उपर्युक्त सुधार लाने का प्रयास करेगी तो देश का महान् हित होगा। स्कूल-स्तर से ही सभ्य, सुसंस्कृत, राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य से परिचित एवं संसार के प्रांगण में अपने पैरों पर खड़े होने वाले स्वावलम्बी विद्यार्थियों के तैयार होने से देश का भविष्य बनेगा। तनिक कल्पना करें कि जिस देश के विद्यार्थियों का मस्तिष्क भयमुक्त होगा, ज्ञान और चिन्तन स्वतन्त्र होगा; मस्तिष्क उच्चतम कार्यों और विचारों की ओर बढ़ेगा तो वह देश कितनी उन्नति करेगा। ऐसे देश में आये किसी विदेशी को पुस्तकों के पृष्ठ पलटने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, उसे उस देश के निवासियों के व्यावहारिक जीवन में ही उस महान् देश के राष्ट्र की झलक सहज में प्राप्त हो जाएगी। किंतु यह स्वप्न तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक योग्यतम व्यक्ति इस ओर आकर्षित नहीं होते, जब तक शिक्षाप्रणाली एवं उसके माध्यम में अनिवार्य परिवर्तन नहीं किए जाते तथा जब तक अध्यापक को आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो जाती।

★ ★ ★

फिर नई चेतना आ जाए

[श्री फूलचन्द 'मानव']

गायक, गा ऐसा मधुर गान, फिर नई चेतना आ जाए।
अंकुर फूटे फिर आशा का, तृप्ति का वारिद छा छाए।
गायक, गा ऐसी मधुर तान, फिर मन-कलियाँ मुस्का जाएँ॥

अधिकरण खोजता जो राही, पीड़ा में प्राण छुपाए है।
नवपल्लव की उत्सुकतायुत, अपने ही कदम बढ़ाए है।
उसकी करुणा का भार बने—
गा, ज्योत्स्ना की अगमग से, जगती का मन चुंधिया जाए।
गायक, गा ऐसा मधुर गान, फिर नई चेतना आ जाए॥

दुविधा सुविधा में परिणत हो, गत संवेदन फिर जाग उठे।
अमियसने मानव में फिर से, एक नया अनुराग उठे।
भावुकता फिर से उमड़ पड़े—
दुस्तरता का साथी सागर, कोई मीठी लहर उठा लाए।
गायक, गा ऐसा मधुर गान, फिर नई चेतना आ जाए॥

वह विरहव्यथित जो श्रान्त बटोही, निज मञ्जिल का भागी हो।
हा क्रूर काल शाश्वत पीड़ित, परिभ्रमित बिन्दु-सा त्यागी हो।
हृदयंगम नीरव सौरभ-सा—
अरुणोदय का आलोक मिले, बरबस जो पुष्प लुटा जाए।
गायक, गा ऐसा मधुर गान, फिर नई चेतना आ जाए।
अंकुर फूटे फिर आशा का तृप्ति का वारिद छा जाए।
गायक, गा ऐसी मधुर तान, मन की कलियाँ मुस्का जाएँ॥

* * *

भगवान् सूर्य का आत्म-परिचय

★

शुभ विदा (१६)

[श्री कुलदीप चड्ढा]

सो, पार्थिव पौत्र, देखा अपने पितामह का विस्तार, विशालता और महत्त्व? संक्षेप में यह था मेरा परिचय। करोड़ों वर्ष गुजर चुके हैं जब तुम्हारी धरती माँ मुझ से अलग हुई। लेकिन उसके बाद से भी मैंने इसे भुलाया नहीं—सवा नौ करोड़ मील की दूरी से भी उसका और उस पर आश्रय लेने वाले तुम अरबों मानवों का लालन-पालन करता रहा हूँ।

इस प्रकार भले ही मेरा तुम्हारा भौतिक अन्तर सवा नौ करोड़ मील का है, तो भी हमारा मानसिक अन्तर लगभग शून्य के ही बराबर है।

जहाँ तक इस सवा नौ करोड़ मील के भौतिक अन्तर का सम्बन्ध है उस पर भी एक झीनी-सी पुलिया बनी हुई है। अपनी धरती के जीवन पर मेरे प्रभावों की नाप-तोल के उपरान्त तुम्हारे वैज्ञानिक किसी ऐसी पुलिया की आवश्यकता तो देर से अनुभव कर रहे थे। पर इसका प्रत्यक्ष आभास उन्हें कुछ ही समय पूर्व—केवल कुछेक वर्ष पूर्व ही मिला।

तुम अपनी समाचारपत्रिकाओं में नित्य प्रति अपने रॉकेटों और कृत्रिम उपग्रहों के कारनामों का विवरण पढ़ते हो और आशा करते हो कि किसी दिन तुम भी चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति आदि में पिकनिक मनाने जाओगे—या शायद मेरे ही धरातल पर चहल-कदमी करने आओगे। अपने बारे में तो मैं तुम्हें सावधान किए देता हूँ। शायद इसकी आवश्यकता तो नहीं थी, क्योंकि मैंने अपने तेज, तापमान और ऊष्मता को काफी विस्तार से तुम्हारे सामने पेश किया है। लेकिन, तो भी, यदि तुम्हें यह कुछ याद न रहा हो तो मैं पुन: सावधान किए देता हूँ, ऐसी बचकाना हरकत कभी मत करना।

रही इन चांद और मंगल आदि की बात, सो इस बारे में भी मैं तुम्हारी आशाओं को दिवास्वप्न ही मानता हूँ। स्वयं तुम्हारे वैज्ञानिक जो पांच-सात वर्षों तक ही चन्द्रमा तक पहुंचने की कल्पना करते थे, हताश-से बैठे अपने इरादों पर पुन: विचार कर रहे हैं। जहाँ तक राजनीतिज्ञों का सम्बन्ध है, वे भी देश के विपुल धन को यों केवल अन्तरिक्ष में उछल कर भस्म होते देखने को नादानी-सी समझ रहे है। सुना है तुम्हारे अमेरिका देश के सेनिटर ऐसे प्रयासों पर धन व्यय करने में अब उतने उदार नहीं और रूस देश के सर्वेसर्वा ख्रुश्चेव ने तो घोषणा तक कर दी है कि चन्द्रमा तक पहुंचने की किसी स्पर्धा में रूस भागीदार नहीं।

खैर, ये बातें तो यों ही मनोरंजन के तौर पर मैंने कह दीं। मैं तुम्हें तुम्हारी इस खेल-कूद और खिलौनों से वंचित नहीं करना चाहता, क्योंकि तुम बच्चे हो और खिलौनों से तुम न मनोरंजन करोगे तो क्या हम बूढ़े करेंगे? मैं तो तुम्हें केवल यही बतलाना चाहता

था कि शायद इस खेल-कूद का अन्त वह नहीं होगा जो तुम्हारे मीठे स्वप्नों में चित्रित है।

और, यदि यह पूछो कि यह नहीं तो और क्या होगा, तो इसका उत्तर भी बहुत सरल है। तुम्हारे वैज्ञानिक जो-कुछ भी करते हैं और चाहे जिस ध्येय से करते हैं, उस सब का एक निश्चित परिणाम होता है—जानकारी मे वृद्धि। अब तक की रॉकेटों और कृत्रिम उपग्रहों की उछल-कूदों का परिणाम भी, इसी दृष्टि से, सबसे महत्त्वपूर्ण रहा है। उस सब के विस्तार मे तो इस समय जाने की मेरी इच्छा नहीं। हाँ जो चर्चा अभी छेड़ी थी, उसी के बारे में दो बातें अवश्य बतलाऊँगा।

तुम्हारी पृथ्वी का व्यास लगभग ८००० मील है। ठोस धरती के चारों ओर वायुमण्डल फैला हुआ है, जो धरातल से दूरी के साथ धीरे-धीरे विरल होता जाता है। प्राचीन काल से तुम्हारे वैज्ञानिक इस वायुमण्डल की व्यापकता की नाप-तोल के इच्छुक रहे हैं। लेकिन वे किसी निश्चित परिमाण पर नहीं पहुंच सके।

वास्तविकता यह है वत्स, कि उनका विचार था कि वायुमण्डल धीरे-धीरे विरल होता-होता अन्त में अन्तरिक्ष में लीन हो जाता है। अत: किसी निश्चित रेखा को वायुमण्डल का अन्त नहीं कहा जा सकता। तो भी वायुमण्डल के कुछ प्रभावों को वे ७०० मील तक की दूरी तक लक्षित कर चुके हैं।

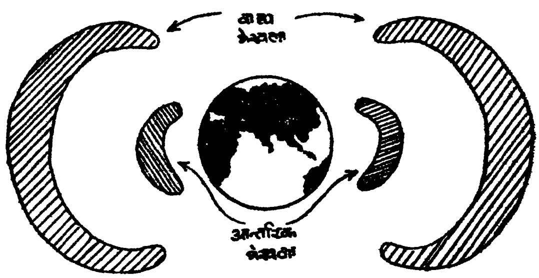
उधर अपनी बाबत भी मैं तुम्हें बतला चुका हूँ। मेरे भी आठ लाख चौंसठ हजार मील के व्यास के चारों ओर एक झीना-सा प्रसार है—आशा है तुम वर्ण-मण्डल, किरीट और वह्नियों आदि को भूले नहीं होगे। जहां तक मेरे किरीट का सम्बन्ध है, उसके प्रसार के संकेत लाखों मीलों तक मिल चुके हैं।

सो, इस प्रकार अभी कुछ वर्ष पूर्व तक तुम्हारे वैज्ञानिक यह मानते थे कि मेरे किरीट का हाथ और तुम्हारी धरती से वायुमण्डल का हाथ, परस्पर मिलने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन इन दोनों हाथों का प्रसार मिल कर भी मेरे और धरती के बीच के सवा-नौ करोड़ मील के अन्तर का एक नगण्य-सा अंश बन कर रह जाता है।

तुम्हारे उपग्रहों की उड़ानों ने अब इन दोनों हाथों को खीच कर परस्पर एक स्थल पर मिला दिया है और इन दोनों भुजाओं का सम्मिलन एक पुलिया के रूप में प्रकट हो गया है।

—नहीं नहीं, इतना उतावलापन मत प्रकट करो, मैं स्वयं ही इसका कुछ विस्तार से परिचय देता हूँ।

कृत्रिम उपग्रहों की शृंखला ने अब तक निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि तुम्हारी पृथ्वी के चारों ओर कुछ मेखलाएँ-सी हैं, जिनके सिरे पृथ्वी की ओर शृंगाकार अथवा सींगों के रूप में झुके हुए हैं। ऐसी दो मेखलाओं का तो प्रत्यक्ष आभास मिल चुका है,



सूर्य और पृथ्वी के सांझे प्रभाव से बनी और पृथ्वी की कटि के चारों ओर व्यवस्थित विकिरण मेखलाएं

लेकिन सम्भव है इनकी संख्या अधिक हो। इस प्रत्यक्षीकरण के बाद, अब तुम्हारे वैज्ञानिक यह सोचने में जुटे हुए हैं कि तुम्हारी धरती के धरातल से क्रमश: २००० और २०००० की दूरी पर अवस्थित ये मेखलाएँ वहाँ पर किस कारण से हैं।

इस सम्बन्ध में तुम्हें अपनी एक पुरानी भेंट की याद दिलाना चाहता हूँ जब मैंने तुम्हें बतलाया था कि तुम्हारी पृथ्वी एक चुम्बक के समान है। तभी तो कुछ समय पूर्व तक धरती के नाविक समुद्र पर सफर करते समय दिशा का ज्ञान रखने के लिए, एक छोटी चुम्बक सुई वाली डिबिया साथ में रखते थे। धरती

के इस चुम्बक के प्रभाव क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए तुम्हारे वैज्ञानिकों ने अनेक वर्ष पूर्व ये कल्पना की थी कि यदि पृथ्वी के चारों ओर किसी कारण से विद्युत् स्वभाव के कण पैदा हों, तो वे अपने-आप को भूमध्य-रेखा के समानान्तर मेखलाओं में तैनात कर लेंगे।

उपग्रहों द्वारा इस प्रकार की दो मेखलाओं के आविष्कार के बाद तुम्हारे वैज्ञानिकों का इस सिद्धान्त के बारे में निश्चय और पक्का हो गया। लेकिन वे यह नहीं निश्चय कर सके कि ये विद्युत् स्वभाव के कण मूलतः आए कहां से। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि ये पृथ्वी के क्षीण वायुमण्डल का ही भाग हैं, तो कुछ कहते हैं कि ये मेरे शरीर से निकले कण हैं। कुछ भी हो, यह तो प्रायः सभी मानते हैं कि मेरे शरीर से निकलने वाले कण इन मेखलाओं में जभी-कभी आते अवश्य रहते हैं और आकर इनके आकार-प्रकार और गति विधि में फेर बदल पैदा कर देते हैं। कुछ इसी प्रकार का प्रभाव मेरे शरीर से निकलने वाली किरणों का भी पड़ता है। दोनों अवस्थाओं में मेखलाओं के सींग धरती की ओर बढ़ जाते है और उन विविध प्रभावों का प्रवर्त्तन करते हैं, जिनका मैं पिछली कुछ भेंटों में वर्णन कर चुका हूँ।

इस प्रकार, इन विकिरण मेखलाओं में यदि मेरे अंश की सम्भावना है तो इन पर मेरे नियंत्रण के बारे में तो बिल्कुल सन्देह नहीं। दूसरी ओर यदि यह भी मान लिया जाए कि इन मेखलाओं में दौड़-धूप कर रहे विद्युत्कण धरती के वायुमण्डल से नहीं आए थे, तो भी इसमें किसी को शक नहीं कि इन मेखलाओं की स्थापना का कारण पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र है।

सो वत्स, ये मेखलाएँ मेरे और तुम्हारी पृथ्वी के प्रभावों की सहकारिता पर आधारित हैं। लाखों, करोड़ों वर्ष पूर्व बिछुड़े पिता-पुत्री के परस्पर मेल-मुलाकात के लिए सृष्टि ने यह विचित्र-सा रंगमंच प्रस्तुत किया है।

उधर तुम धरती वाले अपनी पृथ्वी को अपने जीवन का रंगमंच मानते हो; तुम्हारी अनेक प्रकार की हलचलों की पृष्ठभूमि पर यह धरती है। तुम इसे "जगत्" भी कहते हो, क्योंकि यह स्वयं भी चलती रहती है—"**गच्छति इति जगत्।**" तुम्हारे शब्दकोष में इसका दूसरा नाम "संसार" भी है—'**सरति इति संसारः।**"

पर मेरी कहानी सुनकर शायद तुम्हें यह निश्चित रूप से मालूम हो गया होगा कि इस गति का, धरती पर जीवन की प्रत्येक प्रकार की हलचल का, आधार मैं ही हूँ—मैं सूर्य।

अब शायद तुम पूछो कि यह क्रम कब तक चलेगा ?

पर न ही पूछो तो अच्छा है। निस्सन्देह यह क्रम तभी तक चलेगा, जब तक मैं जीता हूँ और इसका अवसान हो जावेगा, जब मेरा जीवन ह्रास की ओर कदम रखेगा।

जीवन के बाद जीवन का अन्त होता ही है—सभी का होता है। तुम्हारे भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा था—"**जातस्य हि ध्रुवम् मृत्युः।**" परन्तु तो भी मरना कोई नहीं चाहता। मुझ से क्यों पूछते हो ? मेरे दिल पर हाथ रखकर देखो स्वयं जान जाओगे कि मरना मैं भी नहीं चाहता। लेकिन चाहने न चाहने से क्या होता है ? विधाता का नियम अटल है और मैं उसमें अपवाद नहीं बन सकता।

और तुम्हारे इस प्रश्न पर कि मैं कितनी देर और जीवित रहूँगा, स्वयं मैंने भी बहुत बार सोचा है। अपना पंजा फैला कर और अपनी हथेली की ओर देखकर, हस्तरेखाओं से अनेक बार पूछा है अपने जीवन की अवधि का विस्तार। लेकिन जान कुछ-थोड़ा ही पाया हूँ, और जो भी जान पाया हूँ, उससे तुम्हें भी अवगत कराने में मुझे कोई संकोच नहीं।

अपनी पिछली भेंट में मैंने तुम्हें बतलाया था कि अभी अरबों वर्ष तक मैं वर्तमान दर पर शक्ति लुटा सकता हूँ। पर तुम्हारे कुछ विश्वस्त वैज्ञानिक बताते हैं कि आज-कल मेरे तेज की मात्रा कुछ बढ़ रही है। कुछ करोड़ वर्ष तक यही क्रम चलेगा और बाद में शायद मुझ में वर्तमान दर पर शक्ति लुटाने की शक्ति न रहेगी। इसके साथ मुझ में मुटापा भी आना शुरू हो जाएगा। मेरे चेहरे की चमक कम हो जाएगी।

सफेद पीले प्रकाश का स्थान पीली लाल किरणें ले लेंगी और मेरी गणना "लाल दानवों" में की जाएगी।

मेरा रूप तो कुछ भद्दा हो ही जाएगा, लेकिन इस बीच तुम्हारा क्या होगा, मुझे इसी की चिन्ता खाए जा रही है।

तुम्हारे वैज्ञानिकों ने गणना की है कि जिस परिमाण में मैं धरती पर शक्ति की वर्षा करता हूँ, वह मनुष्य-जीवन के बहुत अनुकूल है। इसमें यदि दस प्रतिशत की भी कमी हो जाए तो अनेक झीलें-सागर जम जाएँगे। शक्ति की मात्रा बढ़ने पर शायद तुम्हारे कोमल तन झुलसने लग जाएँ। दोनों दशाओं में तुम्हारी धरती पर जीवन का संतुलन बिगड़ जाएगा।

तुम तो जानते ही होगे कि तुम्हारी धरती की तरह मेरे अन्य भी पुत्र-पुत्रियाँ हैं। तुमने बुध, मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनि, वरुण, वारुणि और यम के नाम सुने ही होंगे। मेरा इनसे अन्तर तुम्हारी पृथ्वी की तुलना में या तो अधिक है या कम। इसी हिसाब से इन्हें मेरी शक्ति की भी कम-अधिक मात्रा मिलती है। तुम्हारे वैज्ञानिकों ने शक्तिशाली दूरदर्शियों के प्रयोग से खोजबीन की है। परन्तु इनमें से किसी ग्रह पर भी वे जीवन का संकेत नहीं पा सके, और आज तक उनका स्थूल अनुमान यही है कि गर्मी-सर्दी के जिस संतुलन में जीवन पनप सकता है, उसका इन ग्रहों में अभाव है।

अब मैं यह सोचता हूँ कि यदि मेरी शक्ति की मात्रा तुम्हारे वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार बढ़ती गई, तो क्या गर्मी की अधिकता से पार्थिवों की नस्ल तो न समाप्त हो जावेगी और यदि तुम इस परिस्थिति से बच भी गए, तो क्या मेरे "लाल दानव" बनने पर, तुम्हें शक्ति की समुचित मात्रा मिल सकेगी?

अब शायद तुम गर्व से कह उठो कि तुम्हारी धरती पर विज्ञान तेजी से बढ़ रहा है और मेरी शक्ति न मिलने पर भी तुम अपनी परमाणु-भट्टियों से नाना प्रकार की शक्ति पैदा कर सकते हो। जीवन का अन्त नहीं होने दोगे। यदि तुम आत्म-विश्वास के साथ दावा करते हो तो मुझे इसके मानने में कोई संकोच नहीं, बल्कि मुझे खुशी है—अपने पौत्रों की क्षमता पर कुछ गर्व है। पर, तो भी मैं पूरी तरह चिन्तामुक्त नहीं। क्योंकि तुम्हें अपनी सीमित क्षमता के बारे में भले ही निश्चय हो, पर भावी के गर्भ में क्या है, इसके बारे में निश्चित रूप से कहना कुछ आसान नहीं।

लेकिन छोड़ो इस चिन्ता को। यह भवितव्य लाखों करोड़ों वर्षों की अवधि से सम्बद्ध है। सौ साल तक जीकर गर्व करने वाले तुम मानवों को इसकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

और फिर इस चिन्ता करने से लाभ भी क्या?

विधाता का विधान मुझे, तुम्हें और शेष सब को भी, एक बन्धन में बाँधे चल रहा है। चाहे-अनचाहे हमें इसी में रहना है और इसी में सन्तोष करना है। अपने भविष्य को मैं भी इसी विचार से देखता हूँ। शायद वह भी पल आएगा, जब मुझे प्रलय का सामना करना पड़ेगा। पर मुझे विश्वास है कि अपने स्वभाव के अनुसार मैं उस परिस्थिति को भी साहस से झेलूँगा।

खैर, अभी तो वह समय दूर है—कम-से-कम तुम्हारे वैज्ञानिक तो यही मानते हैं। अतएव अभी मुझे उस बड़े नियम की कोई चिन्ता नहीं। इस समय तो मुझे विधाता के नियमानुसार अस्ताचल की ओर जाना है। मिनिट-सैकेंड का भी फेर-बदल करने की मुझे अनुमति नहीं।

इसलिए अब तुम से विदा लेता हूँ।

अच्छा, शुभ विदा।

(समाप्त)

★ ★ ★

बाल-भारती

किस मुँह से तेरा लें नाम, नेहरू !

[प्रा. देवेन्द्र 'दीपक']

कौन-सा मुंह लेकर तेरा यश-गान करें।
स्वार्थी, संकुचित, संकीर्ण मुँह तेरी यश-चर्चा का
अधिकारी नहीं हो सकता, नहीं हो सकता।
तूने कहा—'आओ उजाले की ओर बढ़ें।'
और हम ने सदा अन्धियारे में रहने की
अपनी लालसा को कभी मरने नहीं दिया।
तूने कहा—'बसंत के स्वागत के लिए उद्यम करो।'
लेकिन हम थे कि हमने पतझर को ही
अपना प्रिय बनाया।
तूने कहा—'आराम हराम है।'
हमने प्रति उत्तर में कहा—'काम हराम है।'
तूने कहा—'चलो, आगे बढ़ो।'
और हम थे कि नदी के किनारे बैठकर
जल में कंकर फेंक कर लहरें उठाने का
खेल ही खेलते रहे।
तूने कहा—'कुदाली चलाओ।'
लेकिन हम जबान चलाने लगे।
तूने कहा—'निर्माता बनो।'
लेकिन हम आलोचक बन गए।
तूने कहा,'साम्प्रदायिकता के नाग को कुचल दो।'
लेकिन हमने बीन बजाकर उसी नाग को
नचाना शुरू कर दिया।
तुझे गुलाब प्यारा था,
लेकिन हमें बबूल ही प्रिय था।
तू हमारे लिए बादल लेने गया,
लेकिन हमने अपने घड़ों को औंधा कर दिया।
किस मुंह से तेरा लें नाम, नेहरू।
यह पीढी आत्मघाती स्वार्थ-लोलुपों की पीढी है।
यह पीढी गैर-जिम्मेदार लोगों की पीढी है।
यह पीढी आलसियों की पीढी है।
यह पीढी दो जीभ वालों की पीढी है।
यह पीढी मगरमच्छों की पीढी है।
यह पीढी आस्तीन के सांपों की पीढी है।
कृतघ्न और अकृतज्ञ पीढी किस मुंह से तेरा
नाम लें, नेहरू।

★ ★ ★

बादल नया संदेशा लाए

[श्री पुरुषोत्तम उपाध्याय]

जन-जन मन में हरषाए—
बादल नया सदेशा लाए,
नया-नया पानी इस भू पर—
छलक-छलक बहता जाए।
रिमझिम की फुहार जब—
धरती का रूप बदल देगी,
हरा-भरा परिधान पहनकर—
धरती खुश हो झूमेगी।
बादल जब गले मिलेंगे तो—
खुशियों के आंसू ढलकेंगे,
पवन चली जब मस्ती से—
हर पात तालियां देवेंगे।
वृक्षों के झुरमुट में जल की—
नव बूंदें हार बनावेंगी,
बादल की डोली में संध्या—
इठलाती आवेगी।
बादल की मचली बूंदें—
धरती के द्वारे पर आएं,
बना देश पर संकट है तो—
रक्त बिन्दु बनकर आएं।
बादल नया संदेशा लाए॥

मुस्कराते हुए उठना

[श्री रामप्रकाश]

सुमेधा के पिता कह रहे थे कि सुमेधा में एक विशेषता है जो अन्य बालकों में देखने को नहीं मिलती।

मैंने आश्चर्य से पूछा—"वह क्या ?" कहने लगे, "जब वह सो कर उठती है तो उसकी आँखों में चमक होती है, चेहरे पर मुस्कान और सारे शरीर पर प्रसन्नता की झलक।"

मैंने उनकी बात को सुना और फिर सोच में पड़ गया है। उन्होंने केवल एक तथ्य का वर्णन किया, एक सत्य कहा, एक बात बताई और मैं आश्चर्यचकित होकर सोचने लग गया।

साधारणतया देखा यह जाता है कि बच्चे जब सो कर उठते हैं तो या तो रोते हैं या आँखें मलने लगते हैं या कई करवटें लेकर उठते हैं।

परन्तु सुमेधा केवल आँखें खोल देती है और मुस्करा देती है, एकदम उठ जाती है और खेलने लग जाती है, उसे ध्यान भी नहीं रहता कि वह अभी सोई हुई थी।

कैसा सुन्दर प्रिय आकर्षक तथा सरस सरल जीवन है सुमेधा का। उसके जीवन का विकास इसी प्रकार सरल स्वाभाविक रूप से होता रहेगा।

निश्चय ही सुमेधा की माता तथा सुमेधा के पिता का सुमेधा के व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत बड़ा हाथ है। परन्तु सुमेधा में अपने-आप में भी तो कुछ गुण है। वे गुण हमें देखने चाहिएँ तथा उनकी सराहना करनी चाहिए और उन गुणों को अपनाना चाहिए।

क्या-क्या गुण हैं सुमेधा में ?

पहला गुण तो यह है कि वह कभी हठ नहीं करती। किसी बात पर अड़ती नहीं, कभी अपनी बात मनवाने के लिए रूठती नहीं। अपने-आप को अपनी माता के इशारे पर ढाल लेती है।

वह कुछ करना चाहती है, परन्तु माता के नकारात्मक इशारे को देखकर एकदम अपना निश्चय बदल देती है और मुस्कराते हुए बदलती है, रो कर नहीं, रूठ कर नहीं।

दूसरा उसका गुण है—आज्ञा का पालन। मैंने देखा है और आश्चर्य से देखा है कि सुमेधा की माता आज्ञा करती है, 'सुमेधा, सो जाओ।' तो सुमेधा एकदम चारपाई पर जाकर आँखें बन्द करके सो जाएगी। चाहे उसकी आँखों में नींद न भी हो। वह माता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करती। इसका परिणाम यह होता है कि माता उसको अनुचित आज्ञा भी नहीं देती। वह भी सुमेधा का मन देख कर आज्ञा देती है।

तीसरा गुण सुमेधा में है—अपने समवयस्क बच्चों से प्रेम। सबसे खेलती है, सबसे हिल-मिल जाती है। किसी से लड़ती नही, झगड़ती नहीं, मन लगा कर खेलती है।

चौथा गुण उसका है, वह बिना माता की आज्ञा लिए कुछ खाती नहीं है। कोई भी व्यक्ति उसे कुछ खिलाना चाहे तो नहीं खिला सकता। जब तक वह माता-पिता की आज्ञा न प्राप्त कर ले, तब तक वह मुख में कुछ नहीं डालती।

पांचवां गुण है उसका सदा मुस्कराने का स्वभाव। इसी कारण वह जब सोने जाती है तो मुस्कराते ही जाती है और फिर स्वभावतः ही उठते हुए भी वह मुस्कराती हुई ही उठती है।

आप को सबसे बड़ा आश्चर्य होगा यह बात सुन कर कि मैं यह वर्णन केवल तीन सवा-तीन वर्ष की बालिका का कर रहा हूँ जिसको मैं स्वयं खूब भली प्रकार जानता हूँ और जिसकी माता से भी मेरा घनिष्ठ परिचय है।

इसका वर्णन मैंने इसलिए किया है कि जो बालक इन पांच गुणों को अपना लेवेंगे वे आज

भी अपने-आप को श्रेष्ठ मार्ग पर ढाल सकते हैं। वे भी सुमेधा की तरह मुस्कराते हुए उठा करेंगे। उनका स्वास्थ्य बड़ा अच्छा होगा। उनके मुख कमल के समान खिले रहा करेंगे।

उनका मन सदा प्रसन्न रहा करेगा। उनकी स्मरणशक्ति तेज हो जाएगी। उनके पाठ बड़ी शीघ्र उनको याद हो जाया करेंगे। उनके माता-पिता उनसे प्रेम करेंगे। उनके गुरु उनको प्यार से पढ़ाएँगे। उनके समवयस्क मित्र तथा सहपाठी उनसे प्रसन्न रहेंगे। उनका सारा जीवन सुखी होगा। वे सब स्थानों पर सफलता प्राप्त करेंगे।

ये ऐसे गुण हैं जिन पर बार-बार मनन-चिन्तन किया जाना चाहिए तथा प्रयत्नपूर्वक इनको अपनाना चाहिए। पहले यदि इनको अपनाने में थोड़ा-सा कष्ट भी हो तो भी वह सह लेना चाहिए, क्योंकि इन गुणों को जीवन में धारण कर लेने से अन्त में तो सुख ही सुख मिलता है।

आशा है बुद्धिमान् बच्चे मेरे इशारे को समझ जाएँगे तथा इन गुणों से लाभ उठाएँगे।

★ ★ ★

तिरंगा झण्डा

[श्री ओम् सूद]

तिरंगा झण्डा हाथ में ले,
हम बच्चे इसे लहराएँगे।
आज आजादी के दिन,
हम खुशी के गीत गाएँगे॥
आगे ही नित बढ़ते जाना
पीछे कभी कदम न धरना।
यही हमारा काम है,
हम बच्चे इसे लहराएँगे॥
दुश्मन से कभी न डरेंगे,
देश के नेता हम बनेंगे।
यही हमारी शान है,
हम बच्चे इसे लहराएँगे॥
शहीदों की शान यह झण्डा,
वीरों की है आन यह झण्डा।
इसे कभी न झुकने देंगे,
हम बच्चे इसे लहराएँगे॥
नील गगन में लहराता है,
सारे जग में फहराता है।
जा हिमालय पर्वत पर,
हम बच्चे इसे लहराएँगे॥
अमरता का संदेश यह देता,
वीरता का उपदेश यह देता
देश धर्म की रक्षा हेतु,
हम बच्चे इसे लहराएंगे॥
इसके लिए जिएंगे हम,
इसके लिए मरेंगे हम।
गान्धी, नेता की यह चाह,
हम बच्चे इसे लहराएँगे॥

★ ★ ★

विहान-वेला

[श्री कृष्णकुमार भारती-भूषण]

आया विहान
भरता उड़ान
सूर्य की पौरुषमय किरणों से
हो भयभीत सिमट चलीं
कलेश की ललित कलाएं।
या फिर, स्वर्णिम-कर-मार्जनी से
मार्जित किए तारक-हीरकों के
पुञ्जरूपी चन्द्र को
किया समर्पित रत्नालय को
सूय ने अब।
सौभाग्य की इस सुभग-वेला में
कितने ही भविष्यों का
निर्माण जब है हो रहा
उठ बन्धु, तू क्यों सो रहा।

पन्द्रह अगस्त

[श्री चन्द्रप्रकाश आर्य]

१५ अगस्त का नाम सुनते ही हमारे रोम-रोम में हर्ष एवं उल्लास का पारावार उमड़ पड़ता है, रक्त नस-नस में रक्तिम होकर ठाठें मारने लगता है। यह पुण्य तिथि हमारे पिछले ६००–७०० वर्षों के स्वातन्त्र्य संग्राम के भीषम संघर्ष का ज्वलन्त प्रतीक है। इसके पीछे हमारे उज्ज्वल, एवं क्रान्तिकारी अतीत की श्लोकमयी गाथा छिपी हुई है। यह वह पुण्य दिवस है जिसके दर्शन के लिए महाराणा प्रताप जंगलों में भटकते फिरे, दाने-दाने के मोहताज बने, जिसके लिए समर्थ गुरु रामदास ने शिवा जी की पीठ ठोंकी, जिसके लिए शिवा जी को पग-पग पर औरंगजेब की कपट नीति का सामना करना पड़ा।

यह वह पावन दिवस है जिसके स्वप्न के लिए गुरु गोविन्दसिंह ने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया, यह दिवस उस बन्दा वैरागी की याद दिलाता है जिसने भक्ति को ठोकर मारकर शक्ति की शरण ली, जिसको आरों से चीरा गया, जिसके मासूम बच्चे का हृदय निकालकर उसके मुख पर मारा गया, परन्तु उसके मुख से आह भी न निकली, मातृभूमि के लिए जिसने हंसते-हंसते अपने को मिटा दिया। धन्य हो भारत मां के लाल तुम्हें शतशः प्रणाम है। यह दिन उस नलवा की याद दिलाता है जिसके नाम पर माताएँ अपने बच्चों को लोरियां देकर सुलाया करती थीं।

यह भारतवर्ष का वह पुनीत दिवस है जिसको देखने के लिए दयानन्द ने विष के प्याले पिए और अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश में लिखा कि "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय, एवं दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं।"

आज का दिन हमें उस क्रांति का स्मरण कराता है जो १८५७ में देश के कोने-कोने में प्रचण्ड रूप से धधक उठी थी जिसमें मंगलपांडे और तात्या टोपे ने अपनी जवानी को होम दिया था और न-जाने कितने वीरों ने अपने जीवन वार दिये थे। स्वतन्त्रता के परिचायक इसी पवित्र दिन को देखने के लिए दुर्गा और लक्ष्मी ने रणचण्डी का रूप धारण किया। यह वह दिन है जिसको लाने के लिए हरदयाल ने अमेरिका से 'गदर' निकाला, श्याम जी कृष्ण वर्मा ने इंगलैंड में अपने अड्डे जमाये, सावरकर ने इंग्लिश चैनल को पार किया, भाई परमानन्द ने काले पानी की हवाएँ खाईं।

यह वह स्वतन्त्रता-दिवस है जिसका स्वप्न साकार करने के लिए सुभाष को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी, लाल-पाल और बाल ने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया, अंग्रेजी दमनचक्र का शिकार होना पड़ा। यह उस स्वतन्त्रता का दिवस है जिसके लिए गोखले, रानाडे तथा दादाभाई नौरोजी ने प्राणपण यत्न किया, जिस स्वतन्त्रता के लिए बिस्मिल, राजगुरु, सुखदेव तथा भगतसिंह हसते-हंसते फांसी के तख्ते पर झूल गए, विपिन कन्हाई, सान्याल तथा अशफाकुल्ला आदि अनेको लाल अपनी माताओं को बिलखता छोड़ गए, जिसके लिए मदन और ऊधम ने अपने सिर की भेंट दी। इसी दिवस की कल्पना में महात्मा गांधी ने अनेकों कष्ट सहे, जवाहर ने शाही घराने में जन्म लेकर भी जेलें काटी, पटेल ने दुःख एवं मुसीबतें झेलीं। न-जाने कितने वीर, योद्धाओं ने अपने प्राणों की बलि दी।

न-जाने कितनी बहनों ने अपने भाइयों को खोया, माताओं ने अपने बच्चों को खोया और देवियों ने अपने पतियों का वियोग सहा।

तब जाकर कहीं हमें यह स्वतन्त्रता उपलब्ध हुई है। यह दिन हमारे एक जीते-जागते अतीत का प्रतीक है इस पुण्य दिवस के गर्भ में हमारे एक विस्तृत इतिहास की गौरवमयी गाथा निहित है। हमें इस स्वतत्रता की, जो वर्षों के संघर्ष से प्राप्त हुई, है रक्षा करनी है। आज फिर से देश में विघटन एवं फूट के तत्त्व दृष्टिगोचर हो रहे हैं। बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, प्रान्तीयता एवं भाषायी विविधता तथा साम्प्रदायिक अन्धता हमारी जड़ों को खोखला कर रहे हैं। खाद्य-संकट भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। जाति-पांति अन्धविश्वास, संकीर्णता, रूढिवादिता के काले-काले सर्प हमें डसना चाहते हैं। आज हमारा देश विकट परिस्थितियों में से गुजर रहा है। एक ओर तो आन्तरिक समस्याएं हैं तो दूसरी ओर विदेशियों के आक्रमण। हमें सचेत, एवं सजग रहना होगा। अपनी समस्याओं पर ठंडे दिल से शान्तिपूर्वक विचार करना है। मातृभूमि के कण-कण की रक्षा करनी है ताकि शहीदों का बहु खून व्यर्थ न चला जाये, उनकी आत्मा तड़प न उठे।

स्वतन्त्रता-दिवस आता है और चला जाता है और छोड़ जाता है हमारे जीवन पर अतीत की एक अमिट छाप। जब तक उन शहीदों की पुण्यात्माओं की छाप हमारे हृदय-पटल पर अंकित है तब तक हमारा कोई बाल बांका नहीं कर सकता। स्वर्णिम एवं गौरवमय अतीत ही किसी देश एवं राष्ट्र की स्थायी सम्पति होता है, भूत पर ही भविष्य के पंख टिके हुए हैं, जब तक किसी राष्ट्र एवं क्रान्ति में अपने अतीत का गौरव रहता है तब तक वह जाति या राष्ट्र मर नहीं सकता।

इस पावन दिवस पर हमें राष्ट्रीयता का व्रत लेना है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, कामरूप से कच्छ तक समस्त भारत एक इकाई है यह भाव हमें अपने हृदय में धारण करना है। जन-जन में यह भाव भरना है और तभी हमारा, १५ अगस्त मनाना वस्तुतः सार्थक होगा।

★ ★ ★

घड़ी

[श्री आर. एस. रंगनाथ धाने "भवानीदास"]

टिक-टिक करके हाथ घुमाती,
टन-टन बजके समय बताती।
उठ उठ कहके सुबह जगाती,
झट पट करके काम कराती॥

दुनियां की वह बड़ी कहानो,
नींव तेरी पर खड़ी पुरानी।
रंक राजा यों सबने मानी,
कोई नहीं है तेरा सानी॥

क्या तुझे है भूख न लगती?
प्यास न क्या तुझे सताती?
हाथों की क्या हड्डी न दुखती?
झूम-झूमकर जीभ न थकती?

पास परीक्षा आई जब,
पास परीक्षा करने तब।
सुबह जगाती रामू को,
गाली सुनाता तुझ ही को॥

पीठ की तेरी हड्डी फिराते,
दर्द में तेरे हाथ यों फिरते।
अंग तेरे जब थक हैं जाते,
तैल-स्नान से बल फिर पाते॥

दुनियां की तू उमर बताती,
अपनी कुछ तो क्यों न सुनाती?
तू क्या जाने अपनी रीति?
कल था, अब है, कल होगा की नीति!

★ ★ ★

शान्ति-द्रष्टा

[श्री माणकचन्द रामपुरिया]

गहन तिमिर का वक्ष फोड़कर,
तम का जटिल कपाट तोड़कर।
दिनमणि आता जब मुस्काता,
उदयाचल का गीत सुनाता।
मुकुल-वकुल हँस पड़ते खुलकर,
गाते आपस में मिल-जुलकर।
आलस दृग में ठहर न पाता,
लोचन में लोचन लहराता।

× × ×

इसी तरह था जब अन्धियारा,
डूबा था स्वातन्त्र्य-सितारा।
अँगरेजी शासन की कड़ियाँ,
गले पड़ीं लोहे की लड़ियाँ।
चीख उठे भारत के प्राणी,
आर्य सभ्यता के अभिमानी।
चारों ओर भरा था क्रन्दन,
सिसक रहा था जन-जन का मन।

× × ×

आए बापू अलख जगाते,
जय का निर्भय गीत सुनाते।
सत्य अहिंसा की मधु वाणी,
भारत की भाषा कल्याणी।

नभ में नया तिरंगा फहरा,
स्वप्न नया आँखों में उतरा।
जागी भारत की तरुणाई,
कुर्बानी की वेला आई।

× × ×

नर-नारी के प्राण जवाहर,
भारत के ईमान जवाहर।
रुक न सके आनन्द-भवन में,
दौड़े आए भीषण रण में।

नव जीवन का गीत सुनाया,
भूतल पर अरुणोदय आया।
धरती जागी, जागा अम्बर,
फूंक दिया आजादी का स्वर।

★ ★ ★

सभी नियारे नियारे, सभी पियारे पियारे

[श्री कृष्णकुमार]

सभी नियारे नियारे, सभी पियारे पियारे।
तेरे नूर से हैं, यह भरपूर सारे॥

हवा और पानी, ज़मीं और समुन्दर,
यह आकाशी तम्बु, यह झिलमिल सतारे।
यह चांद और तारे, यह सूरज सय्यारे,
यह घनघोर बादल, यह जंगली नज़ारे॥
सभी………

यह फल-फूल सारे, रंगी-बरंगी,
रसों से भरी खुशबू चंगी-चंगी।
यह आँखों के जलवे, यह कानों के नगमे,
यह फूलों की महकें, फलों के अम्बारे॥
सभी………

मयखाना की महफल, जवानों के मजमे,
विद्वानों की मजलिस, संतों के अखाड़े।
यह दौलत के चश्मे, यह शौकत की रस्में,
शौकीनों के जलसे, यह मसकीन सारे॥
सभी………

यह साधक योगी, यह मस्ताना जोगी,
यह साधु वैरागी, यह भक्त अनुरागी।
यह ज़ीफ़हम शायर, यह पण्डित प्रोफ़ेसर,
खुदा के यह रहबर, उपदेशक बेचारे॥
सभी………

★ ★ ★

सिंहासन के मुँह से

[श्री हरिकृष्णदास गुप्त]

मैं सिंहासन हूँ। छोटों को बडा बनाना-दरसाना मेरा काम है। बड़ों के बड़प्पन की मैं शान हूँ।

मुझे सब चाहते हैं। मुझ पर बैठने के लिए तरसते-हड़कते रहते हैं। मुझे उपलब्ध करने के लिए तरह-तरह की तिकड़में भिड़ाते हैं, विनय-विनम्रता का ढोंग रचते हैं। चाटुकारिता का जाल फैलाते हैं। अपनी योग्यता-क्षमता का ढिंढोरा पीटते हैं। बल पराक्रम, का आतंक जमाते हैं। और भी बहुत-कुछ करते हैं और क्यों न करें वे ये सब छोटे से बड़ा बनना—प्रतीत होना कौन नहीं चाहता। सब चाहते हैं। आप अपनी कहिए, चाहते हैं कि नहीं ? फिर ? वे बेचारे ही कौन गजब ढहा रहे हैं।

मुझे तो अपने इन सब चाहने वालों से पूरी सहानुभूति है। मैं सोचा करता हूँ—अच्छा हो ये मुझे उपलब्ध कर लें। मुझ पर बैठ कर अपने आंसू पोंछ लें। अपने मन की निकाल लें। मैं अपनी ओर से इसमें इनके प्रयत्न प्रयासों में कोई बाधा उपस्थित नहीं करता, कोई अड़चन नहीं डालता। बात यह है कि मुझ से इनका तरसना-हुडकना नहीं देखा जाता। आप मुझे भले ही जड कहें, परन्तु में जड होते हुए भी हृदय रखता हूं। वह हृदय जो दया-मया के दूध से भरा है, जो करुणा के नवनीत से पूर्ण है। आपकी तरह नहीं हूँ मैं जो दम तो मानवता का भरते हैं और सहचरो बनाये रखते हैं पाषाणहृदयता को।

लेकिन मुश्किल यह है कि मेरे इन चाहने वालों का इन कोरी तिकड़मों और मेरी सहानुभूति मात्र से ही काम नहीं चल पाता, न किसी तरह मुझ पर बैठ जाने-भर से ही इनके मन-चीते हो सकते हैं। जो अभीष्ट है, उसकी प्राप्ति के लिये इनकी ओर से कुछ और भी धन-धन-बखेर आवश्यक है। मुझ पर बैठ कर बड़ा प्रतीत होते रहने के लिए कुछ समझ भी खोपड़ी में चाहिए ताकि बड़प्पन की प्रतीति बनी रहे, असमय में ही वह काल-कवलित न हो जाय। स्मरण रहे, समझ के नाम पर सफाचट मैदान होने की अवस्था में कलई खुलते देर नहीं लगती, भागती दीख पड़ती है प्रतीति सिर पर पैर रखकर। जो लोग दरसने के साथ-साथ असलीयत में भी बड़ा बनना चाहते हैं, उनमें समझ के साथ-साथ परिश्रमप्रियता भी चाहिए, तभी वे बड़े-सचमुच बड़े बन सकेंगे। जितनी समझ होगी, जितना परिश्रम करेंगे, उतना ही बड़ापन उनमें आ जायेगा। मसल मशहूर है—जितना गुड़ डालोगे, उतना मीठा होगा।

एक बात यहां और कह दूं। जो एक-दम छोटे हैं, समझ के नाते निरे खोटे हैं, उनके काम, उन से सहानुभूति रखते हुए भी, मैं नहीं आ सकूंगा। वे तो मुझ पर बैठ कर बड़े प्रतीत होने तो दूर और छोटे लगेंगे। ऊँट की दाढ़ में जीरा मालूम पड़ेंगे। प्रतीति होने पर ही बड़ा बनने की नौबत आ सकती है। अतः विपरीत प्रतीति की अवस्था में बड़ा बनने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वे तो मुझ पर बैठ कर बड़े बनते प्रतीत होने से तो रहे, खिल्ली अवश्य अपनी उड़वा लेंगे। मैं चाहते हुए भी उनके लिए कुछ नहीं कर सकूंगा। सिंहासन तो सिंहासन ही रहेगा। बूदम बेदाल कामचोरों की खातिर टूटा पीढ़ा नहीं बन सकता। बुरा-भला कुछ भी कहे कोई, यह असम्भव है।

उन बड़ों की बात कर रहा हूं जिन्हें बड़ा कहा जाता है, अर्थात् कथित बड़े भी मुझ से लाभ उठा सकते हैं। उनके भी मैं काम आ

सकता हूँ। मुझ पर बैठ कर उनकी शान बढ़ सकती है। उनमें दमक-चमक आ-जा सकती है। लेकिन यह सब चार दिन की ही चाँदनी होगी। यदि वे कथित पुछल्ले को ही छाती से चिपटाये रहे, सही मायनों में बड़े न बने—मुझ पर बैठ कर भी।

तो अब तक की बात-चीत से यह तो साफ हो ही गया कि बड़ा बनने-लगने के लिए बड़प्पन की शान बढ़ाने के लिए मेरी उपयोगिता निर्विवाद है—असन्दिग्ध है। जो मुझे उपलब्ध करते हैं, मुझ पर बैठते हैं, वे सौभाग्यशाली हैं। जो मेरा ठीक-ठीक उपयोग कर बड़ा बनते हैं, अपने बड़प्पन की शान बढ़ाते हैं, वे धन्य हैं। ये सब ठीक हैं, पर एक बात जो मेरे दिल में खुटक रही है, वह तो कहनी ही होगी। आपको अंधेरे में नहीं रख सकता। बात यह है कि जितना मेरे द्वारा बड़प्पन के शिखर पर पहुंचना आसान है, उतना ही बीच में ही अथवा शिखर पर पहुंच कर लुढ़क पड़ने का खतरा भी है। उस हालत में भूमि चूमकर छोटों से भी छोटा बन कर रहना पड़ता है। यह है कि जो मेरे द्वारा बड़ा बन कर प्रतीत हो कर अपना बड़प्पन बघारता है, उसके गर्व का ठिकाना नहीं रहता उस का अहंकार असीम होता है। और गर्व किसका रहा है ? अहंकार ने किसे नहीं खाया ? आप ही कहिये सच कह रहा हूँ न ? बस यह है खतरा। छोटा-बड़ा जैसा भी समझिये। सचेत करना मेरा काम है। आगे आप जाने, आप का काम।

और एक बात सुनो—जड की बात। अपनी पराई नहीं रखा करता मैं। हो सकता है यह बात कह कर मैं आप की निगाहों से गिर जाऊँ, पर इसकी मुझे पर्वाह नहीं। चढ़ भी सकता हूँ, पर उसका मुझे लोभ नहीं। आप को जानना चाहिए, मुझे प्रकट करना चाहिए, केवल इस विचार से आपको बता रहा हूँ। सच बात तो यह है कि असल बड़प्पन तो स्वयं बड़ा बनने से आता है, मेरा आश्रय लेकर नहीं। जो मेरा मुंह ताकते रहते हैं—वे तो मुंह की ही खाते हैं। उनके नसीब में कबूतर को तो बिल्ली ही झपट ले जाया करती है। जो अपने पैरों पर खड़े होते हैं, अपने बल-बूते बढ़ते है, अपने जोरों उठते हैं, वे बड़ा बनते क्या हैं, होते ही बड़े हैं—जड़ से ही··· ··· ··· जन्म से ही। ऐसे बड़े मुझे तलाश करते नहीं फिरते। मैं ही उन्हें खोजता-फिरता हूं। मेरे मिल जाने पर भी उन्हें मेरी सीढ़ियां नहीं लांघनी पड़तीं, स्वयं मैं ही उनके नीचे बिछ कर उन्हे अपने पर आसीन कर लिया करता हूँ, उनके बड़प्पन की शान बन जाया करता हूँ। इस तरह अपने में वह शान पैदा कर लिया करता हूँ जिस से छोटे मुझे बड़प्पन-प्रदाता समझते हैं, मुझ पर मुग्ध रहा करते हैं। मेरे लिए तरसते-हड़कते हैं, रिरियाते गिडगिडाते हैं।

बस यह है मेरी कहानी। मैं नहीं जानता आप छोटे हैं कि बड़े। जो भी आप हैं हुआ करें, मुझे कोई मतलब नहीं। मुझे तो केवल इतना ही कहना है कि कोई भी जो छोटेपन के भ्रम से छूट कर अपने बूते बड़ा बने, अपने असली बड़प्पन को पहिचाने, तो वह मुझे अपनी राह में आँखे बिछाये पायेगा। उसे मेरी उपलब्धि का सच्चा रस मिलेगा।

हां, मैं सिंहासन हूँ। छोटों को बड़ा बनाना-दरसाना मेरा काम है। बड़ों के बड़प्पन की मैं शान हूँ।

● ● ●

जब इन्द्र हार गये

[श्रीमती स्वतन्त्रलता शर्मा]

वर्षा के देवता, इन्द्र, एक बार मनुष्य जाति से अकारण ही रुष्ट हो गये। उन्होंने प्रतिरोधस्वरूप अपने घोड़ों को अस्तबल में बांध दिया और रथ को ताले में बंद कर यह निश्चय किया कि उस वर्ष वे आराम करेंगे। दुनिया से बेखबर होकर वे गाढ़ी निद्रा में लीन हो गये।

पानी न बरसने से जलाशय सूखने लगे, पेड़-पोधे कुम्हला गये, धरती की पपड़ी जम गयी और खेती न होने के कारण अन्न की कमी होने लगी। गर्मी की उमस में कीट-पतंगे मरने लगे, पशु-पक्षी व्याकुल हो उठे और मनुष्य छटपटाने लगे। चिल्ला-चिल्ला कर पुकारने के कारण चातक का कंठ शुष्क हो गया, मेंढक टर्राना बिसर गये, मोर नाचना भूल गया। चारों ओर हाहाकार मचने लगा पर पानी न बरसना था, न बरसा।

इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए गांव-कस्बे के लोगों ने तरह-तरह के अनुष्ठान किए। स्त्रियों ने काला रंग मुंह पर पोत कर टोलियों में खुले मैदान में आकर गालियां बकनी आरम्भ कीं, इस आशा से कि उनके गाली-गलौज से इन्द्र देवता जाग उठेंगे, पर उनकी चिल्लाहट से इन्द्र के कान पर जूं तक न रेंगी। गांव के पुरुषों ने ढोल-मजीरा सम्हाला और मुखिया की चौपाल में बैठ कर ऊंचे स्वर में मल्हार गाना शुरु किया, पर उनका राग इन्द्र को विचलित न कर सका। आधी रात को गांव की कुंआरी कन्याएं बाल-खोले गांव की सरहद के बाहर कुएं पर पहुंचीं और स्नान कर भोर होने से पहले ही अपने-अपने घरों को लौट आयीं, पर इन्द्र इस पर भी प्रसन्न न हुए। हार कर पंडितों ने मिल कर यज्ञ रचाया। भिन्न-भिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों से आहुति दी गई, पर पानी फिर भी न बरसा। वर्षा न होने पर भारत के कुछ भागों में ये विचित्र तरीके अपनाये जाते हैं। तब गांव के बच्चों ने मिल कर गुड़िया की अर्थी सजायी और समवेत स्वर में गाने लगे, 'बरसो राम धड़ाके से, गुड़िया मर गई फाके से।' यह बाल-समुदाय रोता-चिल्लाता, गली-कूचों को पार करता हुआ गांव की सरहद के बाहर खुले मैदान में पहुंचा। वहां लकड़ियां बटोर कर एक चिता बनाई और उस पर गुड़िया को लिटा कर आग लगा दो। छू-छू कर चिता जल उठी। शोर मचाते हुए बच्चे लौट आए। बच्चों के शोर से इन्द्र की निद्रा में विघ्न पड़ा। वे जागे और नन्हे मुननें के उन्हें पुकारते देख मुस्कुरा दिए। बच्चों को सामने उन्हें अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। वे उठे और खूंटे से बंधे घोड़े खोलने लगे। आकाश के एक छोर पर काली-सी बदली उमड़ पड़ी। इन्द्र ने जब अपना रथ जोता तो बादलों में गड़गड़हट होने लगी। उन्होंने चाबुक जो उठाया तो बिजली तड़प उठी और जब उनके घोड़े आकाश मार्ग पर सरपट दौड़ने लगे तो बादल घुमड़-घुमड़ कर बरसने लगे। बच्चे खुशी से हंसते-चिल्लाते पानी में उछल-कूद मचाने लगे।

● ● ●

एकलिपि विस्तार

उदर वैराग्य विदुनम्म (कन्नड)

[सन्त पुरन्दरदास]

उदर वैराग्य विदुं नम्म
पदुमनाभनलिलेश भतियिल्ल ॥ पा ॥

उदय कालदंलेद्दु गड गड नडुगुत
नदियोळु मिंदेवेंदु हेळुतलि
मद मत्सर मोह ओळगे तुंबिट्टुकोडु
बदियल्लिद्दवरिगाश्चर्य तोरुवुदु ॥ १ ॥

कंचगाररा अंगडियंददि
कंचुहित्तालेय प्रतिमेय तेरहि
मित्रळेनुत बहु जोतिगळने हच्चि
वंचनेमलि धन पूजे माडुवुदु ॥ २ ॥

करदोळु जपमणि बायौळु मत्रवु
अरिवेय मुसुकनु मोरेगे हाकि
परसति परधनकागिचिति सुते
परमवैराग्यद मूर्तिये निसुवुदु ॥ ३ ॥

बूटक तनदलि बहळ बकुतिय माडि
नोटके इवनिगे सरियिल्लेनिसि
नाटक स्त्रीयंते बयल डंभव तोरे
ऊटद मार्गद ज्ञानविदल्लदे ॥ ४ ॥

नानु एंबुद बिट्टु ज्ञानिगळोगूडि
एनेल्लके देव प्रेरणेयेंदु
ध्यानिसि मौनदि पुरंदर बिठलन
काणदे माडिद कार्यगलेल्लवु ॥ ५ ॥

यह उदर वैराग्य तो देखो (हिन्दी)

[श्री एम. एस. कृष्णमूर्ति]

यह उदर वैराग्य तो देखो कैसा है जिसमें पद्मनाभ की भक्ति लेशमात्र भी नहीं है ।

प्रात:काल ही उठकर थर-थर कांपते हुए लोग आते हैं और कहते हैं, कि देखो हम अभी-अभी नदी में नहा आये है। किन्तु उनके हृदय में मद-मात्सर्य आदि भरे पड़े हैं। हां, बगल में रहने वालों पर इसकी धाक तो जम जाती है न ॥ १ ॥ ठठेरे की दुकान की भांति कांस्य और पीतल की मूर्तियों को वह अपने चारों ओर बिछा कर बैठा है। उसमें चकाचौंध करने के लिए उसने बहुत-सी ज्योतिलां भी जला रखी हैं। इस प्रकार इस ढोंगी की पूजा प्रवंचना के साथ चल रही है। क्या ये सब आडम्बर नहीं हैं ? ॥ २ ॥ कर में माला फिर रही है; मुंह में जीभ भी फिर रही है। उसका चेहरा एक वस्त्र से आच्छन्न है। उसका मन पर-धन, पर-स्त्री की टोह में बैठा है। किन्तु वह परम वैराग्य-मूर्ति की भांति दीख रहा है ॥ ३ ॥ यह बहुत-बहुत भक्ति का स्वांग रच रहा है। देखने वालों के लिए वह अ-समान पुरुष-सा लग रहा है। किन्तु वह नाटक में अभिनय करने वाली स्त्री के जैसे ढोंग रचे है। यह पेट भरने का बहुत अच्छा ढंग है न ? पेट भरने का यह ज्ञान कितना निराला है देखो ॥ ४ ॥ अहंकार, त्याग, ज्ञानियों का संग तथा सब-कुछ ईश्वरीय प्रेरणा है, ईश्वराधीन है इस प्रकार समझ कर ईश्वरप्रणिधान करना है, पुरन्दर विठल का ध्यान करना है। उसके बिना शेष सब ढोंग है, स्वांग है ॥ ५ ॥

पुस्तक परिचय



तांत्रिक वांग्मय में शाक्त दृष्टि—महामहोपाध्याय डा. गोपीनाथ कविराज—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना—रु. ७. ५०

भारत की विविध धर्मपद्धतियों में तांत्रिक साधना-पद्धति का विशिष्ट स्थान रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि में इसे भारत की सर्वप्राचीन धर्मपद्धति मानते हैं जिसके बहुत से आचार यहां के मूल निवासियों में प्रचलित थे और अब भी हैं। उन्हीं से ये द्रविड़ आदि सम्य जातियों में कुछ रूपान्तर के साथ प्रचलित हो गए और उनके साथ कुछ दर्शन और विचार भी जुड़ने लगे। शिव और शक्ति के रूप में इसके दो पक्ष हुए और विशेषत: द्रविड़ों में इसका बहुत प्रचार हुआ। आर्यों के धर्म-दर्शन ने संभवत: कुछ काल के लिए इसे दबा दिया परन्तु बौद्धों के समय में पुनः इनका उद्रेक हुआ, जो बहुत शक्तिशाली था। अब इसमें बौद्धधर्म का भी अंश सम्मिलित हो गया। ईसा की चौथी-पांचवीं शताब्दी से लेकर ग्यारह-बारहवीं शताब्दी तक समग्र उत्तर भारत में, और विशेषत: बिहार, बंगाल, उड़ीसा आदि में, इसके वाममार्गी रूप का अतिशय बोलबाला रहा। वस्तुत: इसके कारण राष्ट्र की बड़ी हानि भी हुई और बख्तियार खिलजी आदि मुसलमानों के आक्रमणों ने इस सबको अकस्मात् ध्वस्त भी कर दिया।

जो हो, तांत्रिक साधना का एक शुद्ध दार्शनिक पक्ष भी है जिस में कुछ बातें अच्छी भी हो सकती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से तो इस विषय के विस्तृत अध्ययन का बहुत महत्व है ही, जो अभी तक नहीं हुआ है। अब भी जहां-तहां, विशेषत: बंगाल में तंत्र का प्रभाव पाया जाता है, और वहां के सभी धार्मिक आन्दोलनों में उस का अंश अवश्य पाया जाता है। उदाहरणत:, श्री रामकृष्ण परमहंस के मत में जहां वैष्णव धर्म की कोमलता है, वहां देवी और तंत्र भी आवश्यक रूप से है ही। श्री अरविंद के योगसाधन में भी, जो शुद्ध रूप से एक दार्शनिक प्रक्रिया ही है, तंत्र एक अनिवार्य अंग के नाते विद्यमान है।

प्रस्तुत ग्रंथ तंत्र के अभ्यासी और विद्वान्, महामहोपाध्याय डा. गोपीनाथ कविराज की रचना है। आपकी प्रतिभा और विद्या से भारतीय धर्म-जगत् सुपरिचित है ही। अत: आपकी रचना में विषय का संपूर्ण और अधिकारी ज्ञान होगा, इसमें क्या संदेह हो सकता है। इस ग्रंथ में शक्ति या देवी की दृष्टि से तांत्रिक वांग्मय की विवेचना की गई है। संपूर्ण ग्रंथ २८ अध्यायों में विभाजित है। आरम्भ में सत्य के रूप की व्याख्या करते हुए उसमें महाशक्ति का स्थान, जीवोद्धारक्रम और दीक्षा विषयों पर प्रकाश डाला गया है। फिर तंत्र के स्वरूप, आविर्भाव, परमशिव, शक्तिसाधना, षट्चक्र, देह विज्ञान, सृष्टि का उन्मेष, विश्व विस्तार, विश्वसंहार और सामरस्य या महामिलन की चर्चा की गई है। इसके बाद श्री मां, देह और कर्म, इच्छाशक्ति, अमरत्व-साधन, शुष्क और दिव्यज्ञान, नवमुण्डी महासन, जपविज्ञान, नादतत्त्व, गुरुतत्त्व आदि विषयों का विवेचन करके पुस्तक को समाप्त किया गया है।

शक्ति की महत्ता और विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने कहा है—"तांत्रिक साहित्य में शाक्त दृष्टि के मूल में जो शक्ति है, वह चिद्रूपा शक्ति है, जड़ शक्ति नहीं है। न्याय और वैशेषिक दर्शन में जड़-शक्तिवाद को भी स्वीकार नहीं किया गया है। मीमांसक लोग शक्ति मानते हैं। शांकर वेदांती भी शक्ति

मानते हैं। परन्तु वह शक्ति मायाख्या है, जिसको अनिर्वचनीय या मिथ्या कहा जाता है।... चिद्रूपा शक्ति का विशेष आलोचन आगम में ही है।... यह शक्ति शिव से अभिन्न होने पर भी विश्वसृष्टि की मूलभूत है। इसका परिणाम नहीं होता, परन्तु प्रसार और संकोच होता है। शक्ति ही जगत् का रूप लेकर प्रकट होती है।"

ग्रंथ का मुद्रण और छपाई-सफाई उत्तम है। इस तथा इस जैसे अन्य ग्रंथों के प्रकाशन के लिए बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् बधाई की पात्र है।

श्रीमद्भगवद्गीता (दण्डान्वय)—वेशराज भृगुशास्त्री—रेलवे मंडी, होशियारपुर—रु. ५·७५

मोटे टाइप में छपी यह गीता इस अर्थ में विशिष्ट है कि इसमें श्लोकों का अर्थ ज्यों का त्यों ही दे दिया गया है। अर्थात् न तो किसी वाद की दृष्टि से उनकी टीका है, न किसी अन्य दृष्टि से श्लोकों के अर्थों को बदला गया है। इसे ही दण्डान्वय कहते हैं, यानी डंडे की तरह सीधा अर्थ। वास्तव में यह अर्थ प्रस्तुत करके लेखक ने पाठकों का बड़ा उपकार किया है क्योंकि किसी-न-किसी विशेष योग के प्रतिपादक और लम्बी-लम्बी टीकाओं से पूर्ण अर्थों को पढ़ कर वह इतना भ्रमित हो गया है कि शुद्ध गीता से उसका परिचय ही नही रहा है। अब ऐसा प्रतीत होता है कि गीता के वास्तविक यानी सीधे-साधे अर्थ का ज्ञान भी शोध का विषय है। यह भी शोध का विषय प्रतीत होता है कि गीता वस्तुत: किस वाद या योग का समर्थन करती है—ज्ञानयोग, कर्मयोग या भक्तियोग का। ऐसी भ्रमपूर्ण स्थिति में प्रस्तुत रचना महत्त्वपूर्ण है। इसकी एक कमी यही है कि अर्थों की भाषा पुराने ढंग की है।

सम्बोधि—मुनि नथमल—पार्श्वनाथ जैन लायब्रेरी, जयपुर।

छोटे आकार की प्रस्तुत सुमुद्रित पुस्तक में जैन धर्म की दृष्टि से जीवन-दर्शन सम्बन्धी बातों का प्रतिपादन किया गया है। इसमें १६ अध्याय तथा ६४४ श्लोक हैं जिन के सरल अर्थ भी साथ में ही दिए गए हैं। भगवद्गीता के अनुकरण पर इसमें मेघकुमार, अर्जुन की भांति, साधना के क्षेत्र में क्लीव बनता है और भगवान् महावीर की शरण जाता है। वह उनसे प्रश्न करता है और वे विस्तार से उन प्रश्नों का उत्तर देते हैं। अंत में मेघकुमार का आत्मा चैतन्य से जगमगा उठता है और उचित साधना के लिए तत्पर हो जाता है।

लेखक ने भूमिका में कहा है—"मैं स्वयं अनुभव करता था कि जैन परम्परा के आधुनिक काल में तत्त्वज्ञान के अध्ययन की ओर जितना ध्यान दिया जाता है, उतना जीवन-दर्शन के प्रति नहीं। इसका परिणाम जितना चाहिए उतना इष्ट नहीं होता। जीवन-शोधन के लिए आग्रह नहीं होता।" इस दृष्टि से ही इस ग्रंथ की रचना की गई है। इसका अनुवाद श्री मीठालाल ने किया है जो सरल और सुबोध है।

जैन दर्शन आत्मा को ही परमात्मा मानता है। कहा है—

आत्मैव परमात्मस्ति राग-द्वेष-विवर्जितः।
शरीरमुक्ति मापन्नः, परमात्मा भवेदसौ॥

अर्थात् आत्मा ही परमात्मा है। वह राग और द्वेष या शरीर से मुक्त हो कर परमात्मा हो जाता है।

बिखरे दाने—हरिदास 'ज्वाल'—निरंजना प्रकाशन, जहानाबाद (गया)—रु. २·००

प्रस्तुत रचना लेखक के पंद्रह विविध निबन्धों का संग्रह है। न केवल निबंधों के विषय ही पुराने हैं, अपितु उनके लिखने की शैली भी पुरानी है। कुछ विषय देखिए—खड़ाऊँ, रविवार, दीदी, ससुराल, सहगामिनी। अब शैली देखिए—"रविवार बड़ा ही प्यारा दिन है। छात्र, अध्यापक, कर्मचारी, व्यापारी, शासक, शासित और अधिकारी सभी इसकी ताक में रहते हैं। अवसर मिलते ही वे इसका उपयोग करते हैं। शनिवार अपनी अर्धछुट्टी द्वारा सदा ही इसकी सहायता करता है। शनिवार, रविवार का अग्रमुख है और सोमवार पृष्ठ प्रदेश है। रविवार की उत्तप्तता का आभास शनिवार से होता है और रविवार की उष्ण क्षुधा को मिटाने ही के लिए सोमवार को सुधा की अमृत-वृष्टि का भार सौंपा गया है।"

वैसे पुस्तक में चारों ओर बड़े-बड़े विद्वानों के प्रमाण-पत्र छापे हुए हैं। विद्यार्थियों के लिए यह निस्संदेह उपयोगी हो सकती है।

अहिंसा एण्ड जैनिज्म (अंग्रेजी)—श्री वल्लभ सूरि स्मारक निधि, गोडीजी जैन उपाश्रय, पायधनी, बंबई ३—७५ पैसे

प्रस्तुत पुस्तक में जैनधर्म तथा उसके प्रमुख तत्त्व, अहिंसा, के संबंध में विभिन्न विद्वानों के लेखों का संग्रह किया गया है। जैनधर्म के संदेश पर डा. कालिदास नाग का लेख है, महावीर दर्शन पर श्री कामता प्रसाद जैन का, अहिंसा पर डा. ए. एन. उपाध्ये का, महावीर के धर्म पर डा. बी सी. ला का, जैनमत की ऐतिहासिक स्थिति पर डा. जे. एस. जेतली का, जैनमत के प्रमुख तत्त्व पर डा. एस. सी. भायाणी का तथा जैनधर्म में तत्त्व ज्ञान और नीतिशास्त्र पर हरमान याकोबी का। सभी लेख उत्तम तथा उपयोगी हैं। अंत में राजकोट में याकोबी के प्रवास का विवरण भी दिया गया है।

लार्ड महावीर एण्ड हिज टीचिंग्स (अंग्रेजी)-प्रकाशक उपरोक्त—रु. १

प्रस्तुत सुमुद्रित पुस्तक में भी विविध विद्वानों के आठ लेखों का संग्रह है। डा. उपाध्ये ने महावीर और उनके जीवन-दर्शन पर लिखा है, डा. एस. बी. देव ने महावीर जी का मूल्यांकन किया है, श्री दलसुख मालवणिया ने महावीर जी के अणुधर्मी आचार का विवेचन किया है, प्रो. पृथ्वीराज जैन का विषय है जैनमत और विश्वशांति, तथा इसी प्रकार सर्वश्री सी. एस. मल्लिनाथ, प्रो. ए. चक्रवर्ती, प्रो. के. डी. कर्नाटकी आदि ने विभिन्न विषयों पर निबंध प्रस्तुत किए हैं। सभी निबंध ज्ञानवर्धक हैं।

स्याद्वाद—शंकरलाल डाह्याभाई कापड़ीया—मनुभाई शंकरलाल कापड़ीया, १६५, बाजारगेट स्ट्रीट, बंबई, १—रु. १

जैन दर्शन के प्रतिष्ठानों में स्याद्वाद प्रमुख है। सभी विचारों और मतों को मान्यता देने की दार्शनिक सिद्धता के कारण इसका सभी धर्मों के विद्वानों में स्वागत हुआ है। इसी विषय का परिचय कराने के उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक बहुत समय पूर्व गुजराती में लिखी गई थी। इसमें इसके तीन संस्करण हुए। इससे उत्साहित होकर इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया गया, जो पं० चंदनमल ने किया है। पुस्तक में बड़ी योग्यता से विषय का विवेचन किया गया है।

कामायनी, एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन—रामानन्द मनोट— रु. २.

प्रस्तुत पुस्तक में शीर्षक-'वषय के अतिरिक्त दो निबन्ध और भी है—जायसी के नारी पात्र और रहस्यवाद और हिन्दी साहित्य। तीनों निबंध बड़े विस्तार से अपने विषय का विवेचन करते है। इनमें रुचि रखने वालों के लिए पुस्तक बड़ी उपयोगी है। छपाई-सफाई प्रथम श्रेणी की है परन्तु प्रकाशक का नाम कहीं नहीं दिया गया है।

चेतावनी (कविता)—बनवारीलाल—प्रदीप प्रकाशन, देवबन्द—रु. २·५०

प्रस्तुत रचना चीनी आक्रमण से प्रेरित होकर लिखी गई थी। इसमें दुश्मन से लोहा लेने और संगठित हो कर उसे परास्त कर देने का आह्वान है। चार सौ के लगभग छंदों में बड़ी शक्ति से यह बात कही गई है।

—चिरंतन

बाल साहित्य

चरित्र-निर्माण की कहानियां—श्री लल्लनप्रसाद व्यास।

साहस की कहानियां—श्री रमेश नारायण तिवारी।

आओ कहानी बनाएँ—श्री देवराज 'दिनेश'।

प्रकाशक—शकुन प्रकाशन, ११ दरियागंज, दिल्ली—६। मूल्य—प्रथम दो १.२५ पैसे, अन्तिम १.५० पैसे।

जीवन के निर्माण में साहित्य का विशेष योगदान है। साहित्य मस्तिष्क का भोजन है। आवश्यकता है कि प्राणी को शैशव से ही मस्तिष्क विकास के लिए सद्साहित्यरूपी भोजन मिले। कोरे उपदेश की अपेक्षा यदि कहानी के रूप में आकर्षक ढंग से बच्चे को कोई बात कही जाए तो निश्चय ही उस पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इसी बात को दृष्टि में रखकर विदेश में बाल-साहित्य का विपुल प्रकाशन हुआ है, परन्तु भारत में लेखक तथा प्रकाशक इस ओर प्रायः

उदासीन ही रहे हैं। बाल-साहित्य के लिए भाषा का सरल होना ही पर्याप्त नहीं, लेखक को बच्चे के मानसिक स्तर पर आकर लिखना पड़ता है। शकुन प्रकाशन निस्सन्देह बधाई का पात्र है कि इसकी ओर से बाल-साहित्य का विपुल प्रकाशन हो रहा है। बच्चों में कहानी सुनने तथा कहने की विशेष रुचि होती है। समालोच्य पुस्तकों से इस रुचि की पर्याप्त परितृप्ति होगी।

प्रथम पुस्तक में चरित्र-निर्माण की इक्कीस कहानियां हैं। इनके विषय में श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है—"इन कहानियों की पृष्ठभूमि में जो ज्ञान और उपदेश है, वह सब के, विशेषकर किशोरों के हृदयङ्गम करने योग्य है।" चरित्र का प्रकाश सदा ही जीवन-पथ को आलोकित करता है। यह एक प्रकाश ही नहीं, अपितु शक्ति भी है। यदि यह पास में हो तो बड़ी-बड़ी मुसीबतें स्वयं झुक जाती हैं। शैशव चरित्र-निर्माण के लिए उपयुक्त समय है। इस पुस्तक में कोरे उपदेश को स्थान नहीं मिला, सार तत्त्व को सरल-सरस कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धर्म-ध्वजी बंदा-बैरागी, अमर बलिदानी ताना जी, वीरवर छत्रसाल, मातृभक्त आशुतोष मुखर्जी, बलिदानी मैना, स्वतन्त्रता-प्रेमी महाराणा प्रताप, सत्य और अहिंसा के पुजारी बापू, भारत के लौह पुरुष सरदार पटेल, सरल परन्तु दृढ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि महापुरुषों के विमल जीवन के प्रेरणादायक अंशों को इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्येक बच्चा इन्हें पढ़कर अपने जीवन में स्थान देने का प्रयत्न करेगा। "ब्रह्मज्ञानी या चमार" कहानी में ऋषि अष्टावक्र के ये शब्द बाह्य सौन्दर्य के आधार पर व्यक्ति का मूल्य आंकने वाले पर तीखी चोट करते हैं—'महाराज, मैं ठीक ही कह रहा हूँ, क्योंकि चमार चमड़े को ही देखता है। यदि ये ब्रह्मज्ञानी होते तो इन्होंने केवल मेरा शरीर न देखकर मेरे अन्तर एवं मस्तिष्क को देखा होता।' पुस्तक में संकलित कहानियों का सम्बन्ध जीवन के विविध पक्षों से है। जीवन के सत-रंगी इन्द्रधनुष को प्रस्तुत करने में ही लेखक की अद्भुत सफलता है।

"साहस की कहानियां" पुस्तिका में हठी हम्मीर, महाराणा प्रताप, जोन आफ आर्क, कोलम्बस तथा राबर्ट फाकन स्काट के साहस तथा बलिदान की पांच कहानियां हैं। साहस एक ऐसा गुण है जिसके बल पर साधारण व्यक्ति भी इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ देता है। साहसी व्यक्ति विपत्तियों की चिन्ता न करके आगे ही बढ़ते जाते हैं। मृत्यु का भय भी उन्हें विचलित नहीं कर सकता। कोलम्बस ने मुसीबतें झेल कर सभ्य संसार को एक नई दुनिया से परिचित करवाया तो स्काट ने अपने प्राणों पर खेलकर संसार को दक्षिणी ध्रुव की जानकारी दी; वहां पर झण्डा गाड़कर अपने देश का नाम उज्ज्वल किया। हमीर तथा प्रताप की दृढता और जोन का बलिदान भी अनुकरणीय हैं। बच्चे ही क्या, अन्य लोग भी इन अमर-बलिदानों से प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। लेखक ने जहां साहस की ज्योति जलाई है, वहां भारतीय बलिदानियों के अतिरिक्त विदेशी बलिदानियों की जीवन-गाथाएँ देकर बच्चों के ज्ञान में वृद्धि की है। उनके मन में विदेश-दर्शन की ललक अवश्य पैदा होगी।

अन्तिम पुस्तिका में पांच मनोरंजक, सरल परन्तु शिक्षाप्रद कहानियाँ हैं। लेखक का कथन है कि उसने अपने बचपन में सुनी लोक-गाथाओं के आधार पर इन कहानियों को लिखा है, इसलिए इन कहानियों का बालोपयोगी तथा उनके मानसिक स्तर के अनुसार होना स्वाभाविक ही है। इस संग्रह की अन्तिम दो कहानियों में बच्चे पात्ररूप में उपस्थित हैं, वे कथाकार भी हैं, श्रोता भी। यह शैली बच्चों में कहानी कहने का शौक पैदा करने में समर्थ है। "अनोखा फल" कहानी कितनी शिक्षाप्रद है! बच्चा ही ऐसा फल है जिसे छाती से लगाया जाए तो तन-मन शीतल हो जाता है। बच्चे ही राष्ट्र की निधि हैं। उन्हें सरल परन्तु आकर्षक ढंग से शिक्षा तथा प्रेरणा इन कहानियों में दी गई है।

शकुन-प्रकाशन के ये तीनों प्रकाशन आकर्षक, भाषा की दृष्टि से सरल तथा सज्जा की दृष्टि से मनोहारी हैं। ये सब के लिए, विशेषकर बच्चों के लिए सराहनीय हैं।

—मोहन मंजेब

सम्पादकीय



राष्ट्रीय एकता के प्रयत्न—

सन् १९६१ में हुए राष्ट्रीय एकता सम्मेलन ने भारत की एकता को सुगठित करने के सम्बन्ध में जो अनेक सुझाव दिए थे, उनको क्रियान्वित करने की दिशा में भारत सरकार ने पग उठाने आरम्भ कर दिए हैं। यह निश्चय ही अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है। इस सम्बन्ध में एक बैठक गत मास हुई और दूसरी शीघ्र ही होने जा रही है। गृह मंत्रालय ने इस विषय में एक विचार-पत्र भी तैयार किया है, जिसके अनुसार योजना को क्रमशः आगे बढ़ाया जाएगा। इस विचार-पत्र में राष्ट्रभाषा की समस्या, त्रिभाषा-सिद्धान्त, अल्पसंख्यक भाषाभाषियों की समस्या तथा शिक्षा, चिकित्सा, इंजीनियरिंग और वन-विभागीय सेवाओं को अखिल भारतीय स्तर पर संगठित करने आदि विषयों को लिया गया है। पहले से कार्य कर रही, भारत-स्तरीय कुछ सेवाओं में भी कभी-कभी जो प्रान्तीय प्रवृत्तिआँ दिखाई देने लगती हैं, उनकी रोक-थाम के लिए भी उचित प्रयत्न किया जाएगा। कई राज्यों को मिलाकर बनाई गई विभागीय समितियों की बैठकों में भी इस दृष्टि से विचार किया जाया करेगा।

नए मंत्रिमण्डल के कारण अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय विषयों सम्बन्धी क्रियाकलाप में जो गति आ गई है, वह स्वागत के योग्य है। राष्ट्रीय एकता का प्रश्न बहुत वर्षों, विशेषतः चीनी आक्रमण के पश्चात्, से हमें व्याकुल कर रहा है। इससे जूझने और निपटने के लिए एक आयोग भी बिठाया गया, जिसकी रिपोर्ट कुछ दिन अच्छी चर्चा का विषय बनी रही। परन्तु उस चर्चा का विशेष फल नहीं निकल सका। आशा करनी चाहिए कि वह अब निकल सकेगा।

वस्तुतः राष्ट्रीय एकता के प्रश्न को एक जन-आन्दोलन के रूप में उठाया जाना चाहिए और देश के प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्रकार के प्रान्तीय, भाषागत, सम्प्रदायगत तथा जातिगत विभेद उपेक्षित रखने के लिए शिक्षित किया जाना चाहिए। विद्यालयों के पाठ्यक्रम का तो यह आवश्यक अंग हो सकता है। यही वह अवस्था है, जब मन पर डाले गए संस्कार मनुष्य के चरित्र के दृढ़ अंग बन सकते हैं। सरकार ने शिक्षा के अखिल भारतीय दृष्टि से पुनर्गठन पर विचार करने के लिए डा० कोठारी की अध्यक्षता में जो आयोग स्थापित किया है, उसे इस विषय में भी समुचित मार्गदर्शन करना चाहिए।

देश में जो अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं, वे भी इस दिशा में प्रयत्न कर सकती हैं। वे सब अपने-अपने कार्य-क्रम के अनुसार एकता का प्रचार कर सकती हैं।

जाति-पाँति का भेद-भाव भारत की सुदृढ़ एकता स्थापित करने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। जब तक इसे आमूल-चूल समाप्त नहीं किया जाएगा, तब तक हम भारतीय एक राष्ट्र कदापि नहीं कहला सकेंगे। अतः इस ओर भी सुयोजित, प्रबल और निरन्तर प्रयत्न अवश्य किया जाना चाहिए।

सदाचार समिति—

भारत सरकार का गृह मंत्रालय देश की अनेक प्रमुख समस्याओं को सुलझाने का क्रियात्मक उपाय कर रहा है। उसने भ्रष्टाचार रोकने के लिए सदाचार समितियों का आन्दोलन चलाया है, मूल्य-वृद्धि रोकने के लिए छिपाए गए अनाज के गोदामों पर छापे मारे हैं तथा आवश्यक वस्तुओं के मूल्य निश्चित करने की योजना बनाई है। दिल्ली में स्वयं गृहमन्त्री की अपनी कोठी पर सदाचार समिति का एक कार्यालय कार्य कर रहा है, और विभिन्न राज्यों में भी ऐसी समितियां स्थापित करने की प्रेरणा की जा रही है।

परन्तु खेद की बात है कि राज्यों में अभी तक इसकी स्थापना नहीं की गई है। सदाचार का यह आन्दोलन दिल्ली से आगे न बढ़ सके तो यह दुःख की बात होगी। कांग्रेस संस्था की ओर से दबाब डालकर और आवश्यकता पड़े तो विधान बनाकर भी इसका पालन कराया जाना चाहिए। आवश्यकता तो इस बात की है कि राज्यो के केन्द्रों में ही नहीं, जिलों तथा गांव-गांव में भी अनिवार्य रूप से सदाचार समितियों की स्थापना की जाय।

इन समितियों का कार्य द्विविध होना चाहिए। पहला तो यह कि ये जनता की शिकायतों को सुने और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। दूसरा यह कि ये जनता को भ्रष्टाचार से दूर रहने की शिक्षा दें। यह दूसरा कार्य इस क्षेत्र का मूलभूत कार्य है। इसकी महत्ता पहले कार्य की अपेक्षा अधिक है। यदि लोग सदाचार को अपने जीवन का आवश्यक अंग मानने लगेंगे तो पहले कार्य की आवश्यकता ही कम होती चली जाएगी। राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य के मन में, चाहे वह सरकारी कर्मचारी हो या सामान्य जन, यह बात आवश्यक रूप से बैठा देनी चाहिए कि अपनी और समाज की उन्नति के लिए यह अत्यावश्यक है कि सदाचार के नियमों का, किसी भी प्रकार की छूट-छुटाव के बिना, पूर्णतया पालन किया जाय। सरकारी कर्मचारी के लिए तो इसकी आवश्यकता और भी अधिक है क्योंकि वह उस संस्था का अंग है जो नियम बनाती है और जनता से उनका पालन कराती है। इसलिए व्यवहार का आदर्श प्रस्तुत करना प्रत्येक सरकारी कर्मचारी का प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए।

सभी, विशेषत: छोटे स्थानों की सदाचार समितिओं के बारे में यह बात सदा ध्यान में रहनी चाहिए कि वे सरकारी कार्यालयों के दिन-प्रतिदिन के कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने पावें। साधारणत:, यह देखने में आता है कि जिस भी दल के हाथ में राज्य की सत्ता होती है, उसके अनेक सदस्य सरकारी कर्मचारिओं को आतंकित करके अपना प्रभुत्व जमाने और नाना प्रकार से स्वार्थ सिद्ध करने मे लग जाते है। उनकी ऐसी प्रवृत्ति भी भ्रष्टाचार ही समझी जानी चाहिए। उक्त दल के ऊँचे अधिकारिओं का यह प्रथम कर्त्तव्य बनता है कि वे सदा यह देखते रहा करें कि उनका कोई भी सदस्य उक्त कुप्रवृत्ति में न पड़े।

—विश्वबन्धु

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन-समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१. श्री आई. एम. लाल भटनागर, स्टेट एडीटर, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्ज, पंजाब, चण्डीगढ़, २–३. श्री कृष्णकुमार, श्री रक्षकराम, जेजों दोआबा, ४. श्री चमनलाल, कादियां, ५--६. श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' तथा श्री जानकीदास भारद्वाज, आल इंडिया रेडियो, जालन्धर, ७. डा. हरचरणसिंह, अमृतसर, ८. श्री दु. दा. कपिल, होश्यारपुर।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क—गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए :—

१. प्रिंसिपल, दयानन्द कालेज, अजमेर, १०),

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—

१. श्री रत्नलाल राय शुभर, गाजियाबाद, १६५), २. डा० गणपतिप्रसाद शर्मा, चण्डीगढ़, १४०), ३. डा० रामस्वरूप, दिल्ली, १२०), ४. श्री हरिलाल बहल, होशिआरपुर, ८०), ५. श्री चांदकरण आनन्द, नई दिल्ली,५१), ६. श्री कुं. कायमसिंह चौहान, मिलाओली (मैनपुरी), ५०), ७. डा० अमरचन्द भारद्वाज, जालन्धर, ५०), ८. श्री रामचन्द्र टिकिया, होशिआरपुर, २५), ९. श्री देवनीतिप्रसाद सिंह, वासुदेवपुर (मुंगेर), २५), १०. श्री चाननराम, मोगा, २०), ११-१२. सेठ ह. प्र. पोद्दार, १०), श्री पी. सी. सूद, १०), कलकत्ता, १३. डा० सत्यकाम भारद्वाज, नई दिल्ली, १०), १४. श्रीमती शुभकरणीदेवी, ज्वालापुर, १०), १५. डा० रामलक्ष्मण मिश्र, रानीगंज (प्रतापगढ़), १०), १६-१७. प्रो. हेमराज, १०), प्रो. हंसराज अग्रवाल, १०), चण्डीगढ़, १८–२४. श्री कृ. वें. शर्मा, १०), श्री जगदीशराम शर्मा, १०), श्री जगदीशराज चोपड़ा, १०), श्री व्रजनन्दन शास्त्री, १०), श्री राजेन्द्रनाथ गुप्ता, १०), श्री चेलाराम, १०), श्री रामेश्वरप्रसाद, १०), होशिआरपुर, २५. प्रो. स्थाणुदत्त शास्त्री, कुरुक्षेत्र, १०), २६. श्री टेकचन्द सोनी, बजवाड़ा, १०), २७. दीवान रोशनलाल साहनी, यमुनानगर, १०), २८. प्रो. जगतराम आनन्द, अम्बाला शहर, १०), २९. डा० एन. सी. जैन, देवरिया, १०), ३०. प्रो. नारायणचन्द्र पराशर, लुधियाना, १०), ३१. प्रो. ठाकुरदास शर्मा, लुधियाना, ५)।

विशेष-दान—१. श्री राष्ट्रपति, भारतरत्न डा. स. राधाकृष्णन्, नई दिल्ली, १०००), २. श्री शुगनचन्द्र अग्रवाल, देहरादून, १००)।

वि. वै. शोध संस्थान सभा, होशिआरपुर की ६१वीं वार्षिक बैठक—वि. वै. शोध संस्थान सभा की ६१वीं साधारण व विशेष वार्षिक बैठक प्रो. ज्ञानचन्द भाटिया (जालन्धर) की अध्यक्षता में ता० २. ८. ६४. को सायं ५ बजे श्री धनीराम भल्ला साधु आश्रम, होशिआरपुर में हुई। चण्डीगढ़, जालन्धर तथा कुरुक्षेत्र से आए ६१ सदस्यों ने बैठक में भाग लिया।

सर्वप्रथम स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू जी की मृत्यु पर और तत्पश्चात् सभा के १९ सदस्यो की मृत्यु पर, जो गत वर्ष दिवंगत हुए, शोक प्रकट किया गया।

उसके उपरान्त १९६३-६४ के कार्य का वार्षिक विवरण तथा आय-व्यय का लेखा प्रस्तुत किया गया। रु. ५,५०,७५५·७७ का व्यय हुआ और रु. ४,७८,९७५·७२ की आय हुई। इस प्रकार रु.

७१,००० कम प्राप्त हो सका। संचालक द्वारा स्थिति स्पष्ट की गई और दोनों वस्तुएँ सभा द्वारा स्वीकृत हुई। उसके बाद चालू वर्ष सम्वत् २०२१ का अनुमान प्रस्तुत और स्वीकृत किया गया। उसके अनुसार अनुमानित चालू व्यय रु. ४,९१,०३० तथा आय रु. ४,६२,१०० कूता गया है। इसके अतिरिक्त नया भवन बनवाने आदि पर जितना कुछ प्रबन्ध हो सकेगा, तदनुसार व्यय करना स्वीकार हुआ।

प्रो० दीवानचन्द शर्मा, एम. पी. (नई देहली), श्री सूरजभान, उपकुलपति, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय तथा श्री रामदास (होशिआरपुर) का तीन वर्ष सं० २०२१–२३ की कार्यकारिणी समिति की सदस्यता के लिए पुनः चुनाव और श्री रोशनलाल कुठियाला (होशिआरपुर) का उक्त अवधि के लिए चनाव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

श्री संचालक ने अपने भाषण में संस्थान की विकास-योजनाओं तथा आर्थिक आवश्यकताओं पर प्रकाश डाला। अध्यक्ष महोदय की अनुमति से प्रिं० रलाराम, एम.एल.ए. (होशिआरपुर) तथा प्रो० स्थाणुदत्त शास्त्री (कुरुक्षेत्र) ने संस्थान में हो रहे महान् कार्य की अपने संक्षिप्त भाषणों में सराहना की। तत्पश्चात् अध्यक्ष महोदय ने संस्थान के विशिष्ट कार्य की प्रशंसा करते हुए सदस्यों को प्रेरणा की कि वे इसकी अधिकाधिक सहायता करें।

अन्त में कार्यकारिणी समिति के सदस्य प्रिं० रामदास जी द्वारा सभापति एवं अन्य सब का धन्यवाद होकर सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

रेडियो फीचर—संस्थान के सम्बन्ध में इस मास की १७ ता. रात्रि ९ बजे १५ मिनट का रेडियो फीचर आकाशवाणी, जालन्धर द्वारा प्रसारित किया गया। श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' तथा श्री जानकीदास भारद्वाज ११ अगस्त को संस्थान में पधारे तथा रिकार्डिंग की। फीचर का आरम्भ सरस्वती वंदना से होता है और एक वाचक तथा एक वाचिका संस्थान के आरम्भ से लेकर आज तक के विकास का क्रमिक वर्णन करते हैं। वैदिक पदानुक्रम कोष तथा शब्दार्थ कोष की योजना तथा अन्य योजनाओं पर प्रकाश डालते हैं। इसे श्री संचालक, आचार्य विश्वबन्धु विस्तार से स्पष्ट करते हैं तथा श्री भीमदेव शास्त्री और श्री शं. भास्करन नायर भी अपने वक्तव्य देते हैं। अन्त में श्री आचार्य जी द्वारा शांति-पाठ से कार्यक्रम समाप्त होता है।

स्वतन्त्रता-दिवस—१५ अगस्त को प्रातःकाल ७ बजे संस्थान में राष्ट्रीय ध्वजारोहण किया गया। श्री संचालक, आचार्य विश्वबन्धु जी ने संक्षेप में भारत के पूर्व इतिहास पर प्रकाश डालते हुए स्वतन्त्रता-प्राप्ति की महत्ता बताई तथा कहा कि अब हमें सब भांति सन्नद्ध होकर इसकी रक्षा करनी चाहिए।

रक्षाबंधन—२३ अगस्त, रविवार के विश्व-सत्संग के अवसर पर रक्षाबंधन का पर्व मनाया गया। आचार्य विश्वबंधु जी ने अपने भाषण में पर्व के विभिन्न ऐतिहासिक स्वरूपों पर प्रकाश डाला और कहा कि इस पर्व का मुख्य संदेश सरस्वती-सेवा, देश की राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्वतंत्र सत्ता की रक्षा तथा मानव-मात्र में भाईचारे का प्रचार करना है।

सरस्वती-समाज—३१ जुलाई, शुक्रवार को श्री देवदत्त शास्त्री का 'महाभारत-कालीन राजनीति' पर व्याख्यान हुआ। उस के बाद श्री सत्यम् भाई ने "अफगानिस्तान" इस विषय पर भाषण किया। सभापति, श्री आचार्य जी ने उपर्युक्त दोनों विषयों पर और अधिक प्रकाश डाला।

अगस्त मास में श्री वीरेन्द्र "कणाद के सामान्य पदार्थ पर विचार" इस विषय पर तथा सितम्बर में श्री दीवानचन्द जी "प्रारब्ध तथा पुरुषार्थ" इस विषय पर भाषण करेंगे।

बधाई—संस्थान के जीवन-सदस्य श्री सरदारचन्द (नई दिल्ली) को उनके सुपुत्र श्री रमेश के शुभ विवाह पर, संस्थान-सदस्य व कर्मिष्ठ श्री शं. भास्करन नायर को उनके पुत्र-जन्म पर तथा संस्थान-सदस्य व कर्मिष्ठ श्री ज्ञानचन्द बग्गा को उनके पुत्र-जन्म पर हार्दिक बधाई।

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान के जीवन-सदस्य डा. हेतराम अग्रवाल (अमृतसर) के सुपुत्र श्री कृष्णमोहन का एकाएक देहान्त हो गया। दिवंगत आत्मा के वियोग से दुःखी परिवार एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

विविध समाचार

कनाडा के विद्यार्थियों को एशियाई विषयों की जानकारी देने के उद्देश्य से टोरन्टो विश्वविद्यालय के सुदूर पूर्वी अध्ययन विभाग ने एक भाषणमाला तैयार कराई है जो टोरन्टो के हायर सैकण्ड्री स्कूलों में दी जाएगी। यदि यह प्रयोग सफल हुआ तो यह भाषणमाला देश के अन्य नगरों मे भी प्रचारित की जायगी।

× × ×

कोस्टा रीका की प्राच्य-पाश्चात्य समिति ने भी वहाँ बहुत अच्छा कार्य किया है। भारत की कला पर स्लाइडे दिखा कर एक भाषण दिया गया, तथा भारतीय चित्रकला और नृत्यों पर भी विशिष्ट भाषण कराए गए। नृत्यों के भाषण के समय नृत्य दिखा कर भी प्रदर्शित किए गए। भारतीय सस्कृति पर, स्लाइडों के साथ दो भाषण कराए गए। स्थानीय विश्वविद्यालय की पत्रिका मे भारतीय जीवन, भारतीय नृत्य तथा विश्वभारती के सम्बन्ध में सचित्र लेख छपाए गए। अन्य अनेक प्रकार से भी प्रचार किया गया। विश्वविद्यालय में भारतीय कला पर एक कोर्स भी दिया गया।

× × ×

पेरिस में स्वामी विवेकानन्द जन्म-शताब्दी समिति की ओर से स्वामी विवेकानन्द का शताब्दी उत्सव ससमारोह सम्पन्न किया गया। सॉरबोन विश्वविद्यालय में एक विशेष कार्यक्रम हुआ जिसकी अध्यक्षता विश्वविद्यालय कौंसिल के प्रधान, ज्यां रोशे ने की। इसमें श्री जे. एल बाजारीन ने स्वामी जी के जीवन और चरित्र पर, प्रो. एम. ओ. लाकोम्बे ने स्वामी जी के दर्शन पर, स्वामी ऋतजानन्द ने स्वामी जी के सदेश पर तथा श्री जे ई. सारों ने वर्तमान ससार में स्वामी जी के दर्शन की उपयोगिता पर भाषण दिए।

× × ×

सास्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अन्तर्गत बंगला के प्रसिद्ध लेखक, श्री प्रबोधकुमार सान्याल की हिमालय यात्रा सम्बन्धी प्रसिद्ध पुस्तक का जर्मन अनुवाद प्रकाशित किया गया है। यह अनुवाद प्रो· सी. के. मुखर्जी ने किया है और इसकी भूमिका राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन ने लिखी है। इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राच्य देशों की कहानियों के संग्रह, जर्मन अनुवाद में, प्रकाशित किए जा रहे हैं।

× × ×

पेरू की राजधानी लीमा के सान मारकोस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध प्राच्य भाषा तथा सस्कृति संस्थान के अंतर्गत प्राच्य देशों की भाषाओं और सस्कृतियों का अध्ययन किया जाता है। अब इस सस्था ने जनता को इन संस्कृतियों से परिचित कराने का कार्य भी हाथ में ले लिया है। पिछले दिनों तत्रस्थ कला संग्रहालय के

सहयोग से भारत के सम्बन्ध में चार डाकुमेन्टरी फिल्में प्रदर्शित की गईं—खजुराहो, मदुरा, कोणार्क और तंजोर—तथा ये बड़ी लोकप्रिय हुईं। अभी तक यह संस्था भारतीय संस्कृति में ही विशेष रुचि लेती रही है, पर अब यह चीन, जापान और थाईलैंड के विषय में भी कार्य करेगी। विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग ने भारत के विषय में कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें एक पुस्तक भारतीय साहित्य पर श्रीमती कमलारत्नम-लिखित भी है।

× × ×

यूरुगुवे की राजधानी मांटेविडियो में स्थित इन्स्टीट्यूट फॉर हायर स्टडीज के प्राच्य संस्कृति विभाग ने जनता को प्राच्य संस्कृतियों से परिचित कराने के लिए भाषण आयोजित किए। इनमें भारतीय संस्कृति, भारतीय नारी तथा शांतिनिकेतन पर भी भाषण दिए गए। भारतीय नारी पर प्रो. सुरमा केफर का भाषण हुआ।

मांटेविडियो के विश्वविद्यालय में भी अब एक प्राच्य संस्कृति विभाग की स्थापना की जा रही है।

× × ×

यूनेस्को की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत सभी देशों के महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक ग्रंथों के अनुवादों का प्रकाशन भी सम्मिलित है। परन्तु प्राचीन ग्रंथों के उत्तम अनुवादक ढूंढ पाना कठिन कार्य है। इसलिए अब यह निश्चय किया गया है कि उन ग्रंथों के पुराने अनुवादों को ही, जो अनुसंधान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं तथा अब कठिनाई से उपलब्ध हैं, पुनः प्रकाशित किया जायगा। उनके मूल्य भी कम रखे जाएँगे। इस योजना के अन्तर्गत जर्मन विद्वान् मैक्समूलर द्वारा सम्पादित 'सेक्रेड बुक्स आव द ईस्ट' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथमाला के २६ खण्डों को प्रकाशित करने का निर्णय किया गया है। इस माला का पहला ग्रंथ, शतपथ ब्राह्मण, जो पाँच खण्डों में है, सुप्रसिद्ध भारतीय प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित कर दिया गया है। यह अनुवाद जूलियस एगलिंग ने किया है। ३ हजार के लगभग पृष्ठों के इस ग्रंथ का मूल्य १०० रु मात्र है।

माला के अन्य खण्डों में से आठ संस्कृत के हैं, सात पालि के तथा छः चीनी के। वे भी क्रमशः प्रकाशित किए जाएँगे।

× × ×

इसी योजना के अन्तर्गत विद्यापति के प्रेम गीतों पर एक पुस्तक लंदन के प्रकाशन एलेन एण्ड अनविन ने प्रकाशित की है। इसमें चुने हुए १०० गीतों का अनुवाद श्री देबेन भट्टाचार्य ने प्रस्तुत किया है और संलग्न ३१ चित्र प्रसिद्ध कलाकार डब्लू. जी. आर्चर ने बनाए हैं।

× × ×

यूनेस्को की कलाग्रंथ प्रकाशन योजना के अन्तर्गत अजन्ता तथा बौद्ध कला के सम्बन्ध में दो पुस्तकें ७ भाषाओं—अंग्रेजी, फ्रेंच, इटालियन, स्पेनी, जर्मन, डच और डेनिश—तथा ९ प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित की गई हैं। इन सब का मुद्रण इटली में हुआ है। सामान्य जनता के लाभ के लिए इनका आकार जेबी तथा मूल्य कम रखा जाता है। प्रत्येक का मूल्य ४ रु. के लगभग है। इस माला में और भी अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और हो रही हैं, परन्तु भारतीय कला पर ये पुस्तकें पहली ही हैं।

× × ×

वाक्श नदी (रूस) की घाटी में पुरातत्व सबंधी खुदाई से छठी से आठवीं शताब्दी के एक बौद्ध मठ के अवशेष पाए गये हैं। इसका पता ताजिकिस्तान की विज्ञान अकादमी के पुरातत्व दल ने लगाया है। इसमें कई बड़े हाल कमरे, बरांडे, भिक्षुओं के लिये कोठरियां तथा कारीडोर मिले हैं। खुदाई का काम अभी जारी है।

● ● ●

Name of owner :— Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri** on 28th August, 1964
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur.

शिव ज्योति

NEW ARRIVALS

		Rs.	
1.	How I Raised Myself from Failure to Success in Selling—by Frank Bettger ...	14	50
2.	Punjab's Eminent Hindus—by N. B. Sen ...	7	50
3.	To Our Young Friends ...	3	00
4.	Cheerfulness—by Swett Marden ...	3	00
5.	Cultural State in Bharatvarsha ...	4	00
6.	Message of the Vedas ...	6	25
7.	Real Hinduism ...	6	25
8.	Parables of Rama ...	4	00
9.	Gitanjali—by Rabindra Nath Tagore ...	3	00
10.	Everybody's Guide to Ayurvedic Medicine ...	10	00
11.	A Popular Guide to Nature Cure ...	2	50
12.	Saints and Sages of India ...	3	75
13.	Spiritual Science ...	5	00
14.	Warnings of History ...	0	75
15.	Swami Rama Tirtha ...	1	00
16.	Anatomical Alphabet and Comparative Study of Literature—by Swami Shankarananda ...	10	00
17.	Thoughts on Some Current Problems—by M. S. Golwalker ...	0	87
18.	The Romance of Healing and Other Essays ...	14	00
19.	A Philosophy of Indian Economic Development ...	2	50
20.	The Last Days of British Raj ...	15	50
21.	The Story of Prehistoric Nations—by Jwala Prasad Singhal ...	4	50
22.	The Two Plans, Promises Performance Prospects ...	7	50
23.	Life of Dayanand Saraswati—by Harbilas Sarda ...	12	00
24.	The Autobiography of Mehr Chand Mahajan, Ex-Chief Justice of India ...	25	00
25.	Palmistry for Pleasure and Profit ...	4	50
26.	The Public Sector in India—by Nabagopal Das ...	11	25
27.	Compulsory Juridiction of the International Court of Justice—by R. P. Anand ...	18	00
28.	Buddhism in Kashmir and Ladakh—by J. N. and P. N. Ganhar ...	15	00
29.	An Anthology of Essays on Municipal and International Law ...	30	00
30.	The Forest Gardens—by Manoj Basu ...	9	50
31.	Shri Guruji, The Man and his Mission ...	3	00
32.	In Words of God Realization (the complete works of Swami Rama Tirtha in 10 volumes) ...	22	50
33.	Sources of Hindu Dharma—by A. S. Altekar ...	2	00
34.	Life after Death—by Ganga Prasad Upadhyaya ...	1	25
35.	Theory and Practice of Yoga ...	2	25
36.	How to Win Friends and Influence People—by Dale Carnegie ...	2	80
7.	How to Understand Human Nature—by Herbert Camus ...	2	75

38.	The Katha Upanishad with English Translation and Notes	...	1	25
39.	Kena Upanished with English Translation and Notes	...	0	25
40.	Short Studies in the Bhagavadgita—by Diwan Chand	...	1	00
41.	Glimpses of Divine Light—by S. K. Das	...	2	25
42.	A Compilation of Simple Methods of Learning Different Languages of the World—by C. M. Gupta	...	10	00
43.	The Art of Conversation and Self Expression—by Betty	...	3	50
44.	Delicious Dishes without Meat—by Ambrose Heath	...	1	75
45.	An Introduction to 255 Small Scale Cottage Industries	...	3	25
46.	Guide to Better English	...	2	50
47.	Medicinal Plants of India and Pakistan	...	5	05
48.	How to Live on 29 Hours a Day	...	2	00
49.	Cheiro's When were You Born	...	2	80
50.	Yogic Home Exercises	...	3	75
51.	Cheiro's Guide to the Hand	...	2	80
52.	Guide to Herbo-Mineral Medicines	...	0	37
53.	Karl Marx—by R. M. Uppal	...	1	00
54.	Dayanand, His Life and Work—by Suraj Bhan	...	1	50
55.	Problems of the Universe	...	0	25
56.	Teachings of Isa Upanishad in the light of modern thought and Literature	...	1	56
57.	Buddhism and the World Today	...		
58.	Fundamentals of Religion—by Diwan Chand	...	2	00
59.	Life's Highest Blessings, The Highroad of Success and Happiness	...	10	00
60.	The Fundamentals of Well-being	...	1	00
61.	The Cultural Background of India	...	1	00
62.	Cultural Study of the Burmese Era—by Dr. K. L. Soni	...	26	00
63.	Science in the Vedas	...	1	75
64.	History of Kohinoor	..	3	75
65.	Numerology in a Nutshell	...	3	00
66.	Transformation of Sikhism from Spiritualism to Militarism	...	6	25
67.	Public Seaking and Influeneing Men in Business	...	6	87
68.	Physical and Scientific Interpretation of Aryan Mythology	...	1	00
69.	Sama Veda—translated by L. Devi Chand	...	15	00
70.	A Comparative Phonology of Hindi and Panjabi—by Vidya Bhaskar Arun	...	25	00
71.	Unhappy India—by Lajpat Rai	...	3	00

Can be had of—

Vishveshvaranand Book Agency

P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur

हमारे हिन्दी प्रकाशन

वेद-सार—आचार्य विश्वबन्धु	१.५०
श्रीमन्त्र पुष्पाञ्जलिसूक्त—आचार्य विश्वबन्धु	०.२५
वेद-नवाह्निक— " "	०.५०
ईशावास्योपनिषद्-दर्पण—श्री सत्यदेव	१.००
केनोपनिषद्-दर्पण— "	०.७५
कठोपनिषद्-दर्पण— "	१.३१
कठोपनिषद्—श्रीमती विद्यावती मिश्र	०.८१
उपनिषद्-दिग्दर्शन—डा. दीवानचन्द	२.७५
ब्रह्मविद्या— स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	६.००
अध्यात्म-दर्शन— " " "	४.००
कर्म और योग— " " "	२.५०
आनन्द-मार्ग— " " "	२.००
आत्मानुभूति— " " "	२.००
धर्म की आवश्यकता— " "	१.००
संस्कृत-शिक्षा-विधि——प्रो. गौरीशंकर	३.२५
सत्संग-सार—आचार्य विश्वबन्धु	१.३७
सुखी संसार— " "	०.५०
पंजाबी रामायण—श्री रामलुभाया आनन्द 'दिलशाद'	१०.००
मानस गंगा—श्री उमादत्त	२.००
स्वर्ण-पादुका—प्रो. परमानन्द शर्मा	१.२५
अवेस्ता—श्री राजाराम शर्मा	१.२५
वीर बौना (सचित्र)—कान्ता डोगरा	१.२५
फतेहनामा गुरु खालसा जी का—प्रो. सीताराम कोहली	३.६०
ध्वस्त नीड़—श्री श्रीपाद जोशी	३.००
हमारा समाज—श्री सन्तराम	४.००
आदर्श पत्नी— "	२.५०
हमारे बच्चे— "	३.७५
बच्चों की देख-भाल—प्रिं. बहादुरमल्ल	१.७५
मन की अद्भुत बातें—" "	२.००
दुनिया तुम्हारी है—डॉ. रामचरण महेन्द्र	३.३७
संसार को चुनौती—डॉ. रामचरण महेन्द्र	२.६२
नागरिक गीता—श्री चमनलाल	१.७५
शिष्टाचार—श्री सन्तराम	२.००
व्यवहारिक ज्ञान—श्री सन्तराम	२.७५
लोक-विजय — "	३.२५
युवक मनोविज्ञान—प्रिं. बहादुरमल	२.००
सेवाकुञ्ज— श्री सन्तराम	१.५०
चमत्कारों की दुनिया— "	०.७५
फलाहार— "	१.२५
महाभारत के श्रीकृष्ण—श्री देवदत्त शास्त्री	२.२५
छत्रपति—प्रो. परमानन्द शर्मा	३.००
वीर शिवाजी—श्री श्रीपाद जोशी	२.७५
स्वामी नित्यानन्द : जीवन और कार्य—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	२.५०
भारतीय नवोदय के अग्रदूत— "	३.५५
राजा राममोहन राय—श्री अखिल विनय	०.७५
महर्षि दयानन्द—श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र'	०.७५
विश्व के दार्शनिक—श्री रत्नचन्द्र श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	४.५०
स्वामी रामतीर्थ—श्री रामकृष्ण	०.७५
योगी अरविन्द—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	०.७५
महाबली भीम [सचित्र]—श्री देवदत्त शास्त्री	१.५०
भीष्म पितामह [सचित्र]— " "	१.५०
धर्मराज युधिष्ठिर [सचित्र]— " "	१.५०
वीर अर्जुन [सचित्र]— " "	१.५०
विद्यापति और चण्डीदास—श्री रामावतार	१.३१
आधुनिक हिन्दीकविता के वाद—श्री विनयमोहन शर्मा	१.३१
रस-धारा—श्री सन्तराम	०.७५
सूखे संतरे—डॉ. रामचरण महेन्द्र	१.३७
प्रलय और सृष्टि— " "	२.००
मिट्टी का कलश—श्री शिवनाथ दुबे	१.२५
महाभारत की कहानियाँ—(द्वितीय संस्करण) : श्री देवदत्त शास्त्री	१.००
बड़े लोग श्री सन्तराम	१.२५
रसवन्ती— "	२.००
नए युग की कहानियां— "	१.७५
अच्छी अच्छी कहानियां [सचित्र],"	०.८७

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) **Shantakuti Vedic Series :**

Volume I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa (*A Vedic Word-Concordance*), in Sections I-V, split up into 15 parts, treated as volumes in the series, Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II (Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upaniṣads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in I pt.]. Covering 11,000 (10″×7″) pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40 ; Q. II, Rs. 30 ; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional sets (but not individual parts) entertained. 15 parts on sale.

Volume XVI. A Grammatical Word-Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Grammatical Word-Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volume XVIII-XIX. A Grammatical Word-Index to the four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Grammatical Word-Index to Taittirīya Saṁhitā, Rs. 40.

Volume XXI. A Grammatical Word-Index to Upaniṣads, due '64, Rs. 30.

(B) **Vishveshvaranand Indological Series :**

Volume I-II. Siddha Bhāratī, (*A Rosary of Indology*), Pts. I-II, 108 classified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā, (*A Concordance of Purāṇa Contents*), by Prof. Y. P. Tandan, Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha, (*Texts on Courtezans in Classical Sanskrit*), texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20.

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern Philology, by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī, (*The Homage of Indology*), 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Aggarwal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr. U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Cultural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volume X-XI. Catalogue of VVRI Collection of Manuscripts, 2 Pts. Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L. Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII. Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-pāṭha and Sayaṇācārya's Commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVII ready, Rs. 45 per vol.

Volume XVIII. Saṅkarṣa Kāṇḍa Sūtras of Jaimini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Volumes XIX-XXVI. Ṛgveda, in 8 parts, first cri. edn. of the Bhāṣyas of Skandasamin, Udgitha, Mudgala and Venkaṭa-Mādhav, Ed. Vishva Bandhu. Pts. 2-5 ready, Rs. 45 per part.

Volumes XXVII-XXIX. Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, first cri. edn. by L. Sternbach, Vol. XXVII and XXVIII ready, Rs. 30 each vol.

Volume XXX. Dṛgganitam of Parameśvara, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

(C) Woolner Indological Series :

Volume I. The Foreign Policy of Warren Hastings, by Ram Prakash, Rs. 5.

Volume II. Tagore Centenary Volume, Ed. Shri Mahendra Kulasrestha, Foreword by Prof. Humayun Kabir. Rs. 16.

Volume IIA. The Genius of Tagore, P. I of the above. De-luxe Rs. 12. Standard Rs 8.

Volume II B. Aspects of Indian Culture, P. II of the above. De-luxe Rs. 18. Standard Rs. 12

Volume III. Outline of Indian History, by Sri Ram Sharma, Rs. 8.

Volume IV. The Sāṅkhya Kārikā of Īśvarakṛṣṇa, by C. Kunhan Raja, Rs. 10.

Volumes V-VIII. Rājataraṅgiṇī, cri. edn. of its texts by Kalhaṇa, Jonarāja, Śrīvara and Śuka, Vol. V ready. Ed. Vishva Bandhu, Rs. 30.

(D) Sarvadānand Universal Series :

Volume XII. Mental Health in Theory & Practice, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 2·25.

Volume XVIII. A Story of Indian Culture, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 5.

Volume XXV. The Theory of Socialism, Ancient and Medieval, by Prof. R. M. Uppal, Rs. 1·25.

Volume XXVI. Great Thoughts of Great Men, by Prin. Sain Das, Rs. 3·50.

Volume XXVII. The Religion of Buddha and its Relation to Upaniṣadic Thought, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 4·50.

Volume XXX. Popular Talks on Psychological Topics, by Dr. Prem Nath, Rs. 2·25.

Volume XXXI. An Introduction into Lamaism, The Mystical Buddhism of Tibet, by R. P. Anuruddha, Rs. 8.

Volume XXXIV. Shri Krishna, His Philosophy and His Spiritual Path, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25

Volume XL. Dayanand, A Study in Hinduism, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Can be had of :

VISHVESHVARANAND BOOK AGENCY

P. O. Sadhu Ashram, HOSHIARPUR (Pb. India)

इस अङ्क में पढ़िए

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, आश्विन, २०२१; अक्टूबर १९६४ { संख्या ८

वेदामृत—

विद्या-वृद्धि

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरागहि।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया॥ (अथर्व ६, १०८, १)

हे मेधा-शक्ति ! आओ, हमारे गो-धन, अश्व-धन के साथ तुम भी विस्तार को प्राप्त होओ। आओ, सूर्य की किरणों के साथ दौड़ती हुई आओ। हम तुम्हारा आदर करते हैं।

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे॥ (अथर्व ६, १०८, २)

हे मेधा-शक्ति ! तू वेद का आधार है। वेद से तेरा विस्तार है। सब ऋषि तेरी महिमा गाते हैं। सब ब्रह्मचारी तेरा सेवन करते हैं। तू हम पर प्रसन्न हो और (तेरे द्वारा) देवता हमारी रक्षा करें।

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु॥ (अथर्व ६, १०८, ४)

हे मेधा-शक्ति ! तेरी कृपा से ऋषि लोग तुझ से विभूषित होकर (नानाविध वैज्ञानिक) सृष्टि के रचने वाले हुए। आ (इस याज्ञिक) अग्नि (के प्रकाश में) हमारे अन्दर प्रवेश कर और हमें भी समझदार बना दे।

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे॥ (अथर्व ६, १०८, ५)

हे मेधा-शक्ति ! सायं हो या प्रातः, हम तेरी ही आराधना करते हैं। हम दोपहर के प्रकाश में सूर्य की किरणों द्वारा और वाणी (की शक्ति) द्वारा तुझे (अपने अन्दर) दाखिल करते हैं। —वेदसार

महात्मा गांधी

(श्री नेहरू की दृष्टि में)

गांधी जी का व्यक्तित्व—

व्यक्तित्व एक ऐसी शक्ति है जिसका मनुष्य के अन्तःकरण पर अधिकार हो जाता है। गांधी जी के पास यह शक्ति बहुत बड़े परिमाण में थी। मुझे तो आश्चर्य है कि इस दुबले-पतले शरीर वाले छोटे-से आदमी में इस्पात की-सी मजबूती कहाँ से आई? उनमें कुछ चट्टान-जैसी दृढ़ता थी जो शारीरिक ताकतों के सामने नहीं झुकती थी फिर, चाहे, ये ताकतें कितनी ही बड़ी क्यों न हों? यद्यपि उनकी शक्ल-सूरत, उनका नंगा शरीर, उनकी छोटी धोती ऐसी न थी कि किसी पर बहुत धाक जमे, लेकिन उनमें पुरुषसिंहता और बादशाहियत जरूर थी जो दूसरों को खुशी-खुशी उनका हुक्म बजा लेने को मजबूर कर देती थी। उनकी शांत लेकिन गहरी आँखें आदमी को जकड़ लेतीं और उसके दिल के भीतर तक की बातें खोज लेती थीं। उनकी साफ-सुथरी आवाज मीठी गूंज के साथ दिल के अन्दर घुस कर हमारे भावों को जगा कर अपनी तरफ खींच लेती थी। उनकी बात सुनने वाले चाहे एक मनुष्य हो या हजार हों, उनका चुम्बक का-सा आकर्षण उन्हें अपनी तरफ खींचे बिना नहीं रहता था और हरएक सुनने वाला मंत्र-मुग्ध हो जाता था। उनकी मुखमुद्रा शांत थी। उसमें विकार का नामोनिशान भी न था लेकिन बर्फ की उस ऊपरी चादर के नीचे एक ठोस जोश और उमंग तथा जलती हुई ज्वाला की गर्मी थी। इसके बावजूद गांधी जी स्पष्टतः दुनिया के साधारण मनुष्य नहीं थे। वह तो बिरले और कुछ और ही तरह के सांचे में ढाले गए थे और अनेक अवसरों पर उनकी आँखों से हमें, मानो उस अज्ञात के दर्शन होते थे। खासकर मुझ पर तो गांधी जी ने असाधारण कृपा और ममता दिखाई थी और मेरे पिता जी की मृत्यु ने तो उन्हें खास तौर से मेरे नजदीक ला दिया था। मुझे जो-कुछ कहना होता था उसको वह बहुत धीरज के साथ सुनते थे और मेरी इच्छाओं को पूरी करने के लिए उन्होंने हर तरह की कोशिश की थी।

गांधी जी की विशेषताएँ—

गांधी जी ने भारत की जनता में साहस और मर्दानगी फूंकी थी, अनुशासन और कष्टसहन, ध्येय पर खुशी-खुशी कुर्बान हो जाने की पूर्ण नम्रता के साथ स्वाभिमान की भावना पैदा की थी। उन्होंने सारे हिन्दुस्तान में लम्बे-चौड़े दौरे किए थे। मैं नहीं समझता कि और किसी मनुष्य ने कभी हिन्दुस्तान में इतना सफर किया होगा। वे रेल और मोटर से जाते थे, मगर वह सिर्फ उन्हीं से बंधे हुए नहीं थे, वे पैदल भी चलते थे। इस तरह उन्होंने हिन्दुस्तान और यहां के लोगों का अद्भुत ज्ञान प्राप्त किया और इसी तरीके से करोड़ों लोगों ने उन्हें देखा और उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आए।

सन् १९१९ तक गांधी जी राजनीति से अलग ही रह रहे थे सिवाय इसके कि कलकत्ता कांग्रेस में उन्होंने हिस्सा लिया था। मगर वह सब घटनाओं की जानकारी रखते थे और कांग्रेस-नेता उनसे अक्सर सलाह मशविरा किया करते थे। कुछ वर्षों तक उनका खास काम खादी प्रचार हो गया था। वह हमेशा हृदय-परिवर्तन की कोशिश करते थे, राग-द्वेष के बन्धनों को तोड़ कर दूसरे की सदिच्छा और ऊँची भावनाओं तक पहुंचने की कोशिश करते थे। वह जानते थे कि यदि वह परिवर्तन हो गया तो विश्वास का जमना सरल हो जाएगा या अगर विश्वास न भी जम सका तो विरोध ढीला हो जाएगा और संघर्ष की तीव्रता कम हो जाएगी। अपने व्यक्तिगत व्यवहारों में अपने विरोधियों पर बहुतेरी विजयें उन्होंने प्राप्त की थीं। उन्होंने सुस्त और निराश जनता को एक अनुशासन में बांध कर काम में जुटा दिया था।

गांधी जी की शक्ति—

गांधी जी के भीतर प्रचंड आत्मशक्ति का भाण्डार भरा हुआ था। उनके बारे में सबसे ज्यादा कमाल की बात यही थी कि वे अपने विरोधियों को या तो सोलहों आने जीत लेते थे या कम-से-कम उनको निःशस्त्र जरूर कर देते थे। उनका हरएक इशारा सार्थक और खूबी लिए हुए होता था और खूबी यह थी कि बनावट का नामोनिशान नहीं। उनमें न कहीं नुकीलापन था और न कटीलापन। उनमें उस अशिष्टता या हल्केपन का निशान तक नहीं था जिसमें दुर्भाग्य से हमारे मध्यमवर्ग के लोग डूबे रहते हैं। सत्याग्रह की सीधी लड़ाई में उनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता था। गांधी जी भी अपने सिद्धान्त को सामने रखते हुए विरोधियों के साथ सदा कुछ कदम जाकर भी, मिलने और बातचीत करने को तैयार रहते थे और चूंकि अपने पक्ष की सच्चाई का पूरा विश्वास उन्हें रहता था इसलिए वह दूसरे पक्ष के लोगों को भी कायल करने की आशा रखते थे।

गांधी जी की महत्त्वाकांक्षा—

गांधी जी लोगों का आन्तरिक, नैतिक और आध्यात्मिक सुधार चाहते थे और इस प्रकार सारी बाह्य परिस्थिति को ही बदल देना चाहते थे। उन की बहुत-सी प्रवृत्तियों से मालूम पड़ता था कि उनका उद्देश्य अत्यन्त संकुचित स्वावलम्बी व्यवस्था को फिर से ले आना था। वह न केवल राष्ट्र बल्कि गांव तक को स्वावलम्बी बना देना चाहते थे। वह यह नहीं चाहते कि लोग हमेशा बढ़ते आराम और अवकाश को अपने जीवन का लक्ष्य बनावें। वह तो यह चाहते थे कि लोग नैतिक जीवन की बातें सोचें, अपनी बुरी लतें छोड़ दें, शारीरिक भोगों को दिन-पर-दिन कम करते जाएँ और इस तरह अपनी भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति करें। और जो लोग सर्वसाधारण की सेवा करना चाहते हैं उन्हें उनकी आर्थिक अवस्था सुधारने की उतनी कोशिश न करनी चाहिए जितनी यह कोशिश करनी चाहिए कि वे स्वयं उनकी तह पर नीचे चले जाएँ और उनके साथ बराबरी की हैसियत से मिलें। ऐसा करते हुए वे लाजमी तौर पर कुछ हद तक उनकी हालत बेहतर करने में मदद दे सकेंगे।

गांधी जी की मान्यता—

मेरे ख्याल से गांधी जी के विचारों का आधार यही है कि अगर हम अपनी आस्था पर दृढ़ रहें तो अन्य सभी बातें जरूरी तौर पर अपने-आप उचित रीति से ठीक हो जाएँगी। अगर हमारे साधन ठीक हैं तो साध्य भी अनिवार्य रूप से ठीक होगा। मेरा विश्वास है कि गांधी जी ने साधनों की महत्ता पर जोर देकर हमारी बड़ी सेवा की है।

गांधी जी में आश्चर्यमयता—

गांधी जी उलझनों के असाधारण नमूने थे। मेरा ख्याल है कि सभी असाधारण पुरुष कुछ-न-कुछ हद तक ऐसे ही होते हैं। उनमें कुछ ऐसी अज्ञात वस्तु थी जिसे चौदह वर्ष के निकट सम्पर्क के बाद भी मैं बिलकुल नहीं समझ सका और इसने मेरे मन में भ्रम पैदा कर दिया। आखिर गांधी जी कैसे आश्चर्यजनक व्यक्ति थे, उनकी मोहकता कितनी ताज्जुब में डालने वाली और एकदम अबाध थी और लोगों पर उनका कैसा अद्भुत अधिकार था? उनके कथनों में हमें जो विरोधाभास और अस्त-व्यस्तता परेशान करती है उसका असली कारण यह है कि उनके तर्क के आधार बिलकुल भिन्न हैं। असलियत में गांधी जी के लेख गांधी जी के साथ अन्याय करते हैं। वह जो-कुछ लिखते थे उससे वह खुद कहीं ज्यादा बड़े थे।

गांधी जी की जानकारी और आत्मप्रेरणा—

मैं यह जानता हूँ कि गांधी जी समाजवाद से अपरिचित नहीं थे, क्योंकि उन्होंने अर्थशास्त्र, समाजवाद और मार्क्सवाद पर भी बहुत-सी किताबें पढ़ीं थीं और इन विषयों पर दूसरों के साथ वादविवाद भी किया था। वे अपने भारत को अच्छी तरह जानते थे और उसके हल्के-से-हल्के कंपन का भी उन पर तुरन्त असर पड़ता था। वह स्थिति को ठीक-ठीक और अक्सर सहजस्फूर्ति से जान लेते थे और ऐन मौके पर काम करने की अद्भुत सूझ उनमें थी।

अक्सर वह अपनी राजनैतिक हलचलों में अपनी कभी न चूकनेवाली सहज आत्मप्रेरणा से काम लेते थे,

गांधी जी का जीवन दर्शन—

गांधी जी वर्तमान या भविष्यकाल की बाबत इतना नहीं सोचते थे जितना भूतकाल की बाबत। उनका रास्ता धर्मोपदेशकों के रास्ते से बिलकुल जुदा था। वे अपनी सहज बुद्धि से आम लोगों की नब्ज पहचानकर काम करते थे।

गांधी जी मेरी निगाह में—

गांधी जी एक कर्मयोगी थे। उन्होंने करके दिखा दिया कि वे कर्मवीर थे। उनमें आश्चर्यजनक साहस था और वह एक ऐसे शख्स थे जो अक्सर अपनी जुम्मेवारी को पूरा करके दिखा सके। सच में वे एक अनोखे व्यक्ति थे। उन्हें मामूली पैमानों से नापना या उनपर तर्कशास्त्र के मामूली नियम लगाना भी मुमकिन नहीं था।

गांधी जी तो कम-बढ़ एक दार्शनिक अराजक थे। एक तरफ वह अहिंसा के ऐसे अनन्य उपासक थे और दूसरी तरफ एक ऐसे राजनैतिक और सामाजिक ढांचे के पक्ष में थे जो सोलहों आने हिंसा और बलात्कार पर ही टिका हुआ होता है। सचमुच वे एक पैदाइशी विद्रोही थे, एक क्रांतिकारी थे जो भारी-भारी परिवर्तनों के लिए कमर कसे रहते थे और जिसे परिणाम की आशंकाएँ रोक नहीं सकती थीं। जब से गांधी जी मेरे राजनैतिक मानस क्षितिज पर आये मैने कम-से-कम एक बात उनसे सीखी, वह यह कि परिणामों के डर से अपने दिल के भावों को कभी न दबाया जाय। धीरे-धीरे उन्होने अपने कार्य के सही होने का भी हमें कायल कर दिया और हम उनके साथ हो लिए, हालांकि उनके जीवनतत्व (उनके रहन-सहन) को स्वीकार नहीं किया।

मैंने यह अच्छी तरह महसूस किया कि गांधी जी हिन्दुस्तान को हमसे कहीं ज्यादा अच्छी तरह जानते थे और जो शख्स इतनी जबर्दस्त श्रद्धा-भक्ति का अधिकारी बन जाता है उसके अन्दर कोई ऐसी बात अवश्य होनी चाहिए जो जनता की आवश्यकताओं और ऊँची आकांक्षाओं के अनुकूल हो। उन्हें हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग भक्तिभाव से देखते थे। मगर इससे भी गहरी सच्चाई तो थी जनता पर हुए उनके असर में। उस समय ऐसा अनुभव होता था मानो कैद या बोझ से वह (जनता) छुटकारा पा गयी हो और आजादी का नया भाव आ गया हो। सचमुच वे जनता के लिए दिन-रात जुटे रहते थे। वे भारत के सपूत थे। फिर हिन्दुस्तान अपने इस पुत्र को—अपने ही समान और फिर भी अपने से इतने भिन्न स्वपुत्र को अपना उपास्य देव और अपना प्रिय नेता क्यों न बनाता? उन्होंने पुरानी और धुंधली स्मृतियां फिर ताजी कर दीं और हिन्दुस्तान को उसकी आत्मा की झलक दिखलायी। इस जमाने की घोर मुसीबतों से कुचले जाने के कारण उसे भूतकाल के असहाय गीत गाने और भविष्य के गोलमाल स्वप्न देखने में सांत्वना मिलती थी। मगर उन्होंने अवतरित होकर हमारे दिलों को आशा और हमारे जीर्ण-शीर्ण शरीर को बल दिया और भविष्य हमारे लिए मनमोहक वस्तु बन गया। सचमुच गांधी जी की महानता का भारत के प्रति उनकी महान् सेवाओं का या अपने प्रति की गई उनकी महान् उदारताओं का मै ऋणी हूँ।

("मेरी कहानी" से)

सुख के पीछे दुःख रहा है, दुःख के पीछे सुख। धूप है तो छाया भी है, प्रकाश है तो अंधेरा भी। जन्म है तो मृत्यु भी। इस द्वन्द्व से हटना अनासक्ति है।

—महात्मा गान्धी

बापू के उपदेश

[श्रीमती लता बंसल]

सन् १९३४ में जब पूज्य कस्तूरबा जेल में थीं, उस समय बापू ने उनको बहुत से पत्र लिखे थे। यद्यपि बापू के पत्रों में घर-गृहस्थी की बातें भी थीं, किन्तु साथ ही वे 'बा' को कुछ-न-कुछ उपदेश देते रहते थे। बापू का आत्मबल, उनकी सच्चाई, निडरता धैर्य व प्रेम-भावना स्वत: ही इन पत्रों से प्रकट हो जाती है।

बापू को इस बात का बहुत दु:ख था कि भारत-वासियों में आत्मबल का बहुत अभाव है। उनके मुख पर कोई तेज नहीं। एक ओर अतीव दरिद्रता है तो दूसरी ओर धनिकों में गुलामी की बू है। बापू का कहना था कि आत्मबल भारतीय नारी में बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है, किन्तु पुरुषों की 'स्वामित्व' की भावना ने उनका विकास रोक दिया है। सेवा-भावना भी उनके विचार में स्त्रियों में ही अधिक है। इसलिए यदि भारतीय स्त्रियों का विकास हो, उन्हें आगे बढ़ने का अवसर मिले तो वे अवश्य ही वह सब-कुछ करके दिखा सकती हैं जो पुरुष-जाति से भी सम्भव नहीं।

उन्होंने अपने पत्र में बताया कि सेवा से ही भक्ति-भावना का उदय होता है। सेवा से तात्पर्य है, जो-कुछ हमारे पास है उसे भगवान् को अर्पण कर दें। यदि भगवान् में हमें श्रद्धा है तो उसकी सेवा करनी होगी, और सेवा के लिए कर्म करना होगा। किन्तु जो-कुछ कार्य करें वह नि:स्वार्थ भावना से होना चाहिए। क्योंकि जहां स्वार्थ होता है वहां सेवा की भावना नह रहीं जाती। जो व्यक्ति ईश्वर की नि:स्वार्थ सेवा करता है उससे वह शक्ति प्राप्त होती है जो आनन्ददायिनी है।

ईश्वर-भक्त को एकान्तसेवी होना बहुत ही आवश्यक है। वैसे तो यह सत्य है कि आरम्भ से ही हम अकेले नहीं रहते। जन्म होते ही हमें माता-पिता का सहारा मिलता है, उसके बाद विवाह हो जाने पर पति-पत्नी का, पर फिर भी हमें इस संकुचित क्षेत्र से बाहर निकलना होगा। जितनी ही हम साथी की इच्छा करेंगे उतनी ही पराधीनता बढ़ती जाएगी। जितना ही मोह होगा, उतना ही दु:ख होगा। संगति इतनी ही हो कि अच्छा साथी न मिलने पर हम दु:ख भी अनुभव न करें तथा करोड़ों में निवास करने पर भी ईश्वर की निकटता बनी रहे। बापू ने कहा है—"एकान्त-सेवन करने वाला कहीं दु:खी नहीं होता, क्योंकि वह सर्वत्र विष्णु को ही देखता है।"

बापू ने कहा है कि जहां सुख है वहां दु:ख अवश्य आते हैं, किन्तु उस संकटकालीन अवस्था में हमको हताश होकर रोने नहीं बैठ जाना, बल्कि उसके लिए पुरुषार्थ करना होगा। उनका कहना है कि ईश्वर हमें सावधान करने के लिए ही हम पर दु:ख डालता है। यह बात तो सर्वप्रसिद्ध है कि "मनुष्य दु:ख में ही ईश्वर को याद करता है।" इसलिए यदि हम सुख में ही डूबे रहेंगे तो हमें ईश्वर का नाम हो विस्मृत हो जाएगा।

बापू ने अपने प्रवचन में बताया कि शरीर और आत्मा एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, पर संयम द्वारा हमें आत्मा को शरीर का दास होने से रोकना होगा। जो काम करने के लिए हमारी आत्मा गवाही नहीं देती, पर शरीर पर संयम न होने पर भी हम उसे करते हैं, सो यदि हम इससे ऊंचा उठेंगे तभी सच्चे रूप में संयम-पालन कहलाएगा तथा ऐसा दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति ही संसार के लिए कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

बापू का सबसे बड़ा अस्त्र 'अहिंसा' था। उन्होंने हिंसा को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। उनके विचार में किसी को मारना ही हिंसा नहीं कहलाता, अपितु कोई कटु बात कह देना भी हिंसा में सम्मिलित हो जाता है। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई व्यक्ति बिना कारण ही हमसे डर अनुभव करता है तो यह भी हमारी

हिंसा है। इस हिंसा-भावना को दूर करने के लिये उन्होंने बताया कि वाणी पर संयम रखना होगा। इससे चरित्र का निर्माण होगा। हम यदि अन्य व्यक्ति को कुछ समझाने के हेतु भी कुछ कहे तो इस ढंग से कि उस पर कुछ प्रभाव हो, और वह उद्विग्न न हो जाए।

बापू ने स्त्री-शिक्षा पर बहुत अधिक बल दिया। उन्होने तो 'बा' को यहाँ तक लिखा है कि "अगर स्वतंत्र हिन्दुस्तान में मैं ज़िन्दा रहा और मेरा कहना माना गया तो मैं 'स्त्री-शिक्षा' पर अधिक ज़ोर देने वाला हूँ" किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि हमें सच्ची शिक्षा का वास्तविक अर्थ समझना होगा। सच्ची शिक्षा मे अक्षरज्ञान व भाषाज्ञान तो है ही, पर साथ ही मानवता दिखाना, मर्यादा मे रहना, हृदय की स्वच्छता और निडरता से समाज व देश को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करना भी। जिस व्यक्ति में ये गुण विद्यमान होंगें उसके लिए ही हम कह सकते हैं कि इसे वास्तविक शिक्षा मिली है। जिस देश में ऐसी शिक्षा नागरिकों को मिलेगी उन्नति भी निश्चित है।

इस प्रकार बापू ने अपने पत्रों में हम सभी व्यक्तियों के समक्ष एक आदर्शजीवन का चित्र अंकित कर दिया है। विशेषकर भारतीय स्त्रियों को उन्होंने बहुत अधिक महत्ता दी है। उनके विचार मे संयम, सेवा-भावना, त्याग, सहनशीलता, हृदय की कोमलता व मधुर-वाणी आदि गुण जितनी मात्रा में भारतीय नारी में मिलेंगे उतने पुरुषों में नहीं। केवल स्त्रियों का विकास रुक जाने से ये गुण दब गये है अन्यथा स्त्री-जाति के गुणों से देश काफी ऊँचा उठ सकता है।

★ ★ ★

[पृष्ठ ८ का शेष]

कविवर श्री रामेश्वर 'अचल' ने भी उस महामानव के युगल चरणों पर अपने कविता-सुमन के अर्घ्य अर्पित किए है—

महाक्रांति के अग्रदूत,
विद्रोह-शिखर अधिनायक।
महारुद्र, ओ दीप्त कंठ,
भैरव गीतों के अधिनायक।
फिर इंगित पर चले तुम्हारे,
विजयलुब्ध जन-गण-मन,
पग-चिह्नों पर बढ़े तुम्हारे,
क्षुब्ध देश का यौवन।

बापू आज भी मर कर अमर है। क्योंकि वह चिर-विराट्, चिर-प्रकाश, चिर-वर्तमान तथा चिर-दीप्तिमान् है। इस युग-पुरुष के लिए जितने भी विशेषण व्यवहृत किए जाएँ, थोड़े ही होंगे। इसी भाव को श्री अवधेशनारायण ने इस भाति पक्तिबद्ध किया है—

हो शेष भले काया नश्वर
परन्तु, तुम अशेष, ओ महावेश।
जब तक कि एक शेष, यह विपुल सृष्टि,
जब तक कि एक भी प्राण शेष,
चिर दीप्तिमान् चिर वर्तमान,
ओ चिर-विराट् के चिर-प्रकाश।

अन्त में पुन: श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की इस कविना के साथ इस निबन्ध को समाप्त करते है. जिसमें कवयित्री कहती है—

है यही आदि गांधी युग का, जो बापू ने विस्तारा है,
है यही अंत लोहे के दिन, जिनका विज्ञान सहारा है।
विज्ञानी की परम सिद्धि, जग को लोहे से भर देना,
है हँसी-खेल तुम को बापू, लोहे को पानी कर देना।

★ ★ ★

हिन्दी-कविता और गांधीवाद

[श्री हरिनन्दन पांडेय]

द्विवेदी-युग तक हिन्दी साहित्य अपने ही तक जीवित था। किन्तु, उसके पश्चात् उसका क्षेत्र विस्तृत होने लगा। प्रथम महायुद्ध का घाव अभी भरने भी न पाया था कि पुन: द्वितीय महायुद्ध की ज्वाला फूट पड़ी। फिर क्या था मानवता चीख उठी। देश-प्रेम की भावना लोगों में विद्यमान थी ही, गांधी जी के अवतरित होने से हमारे मन में पुरानी रूढ़ियों एवं वर्ग-विषमता के प्रति विद्रोह की भावना जाग पड़ी। इसी भावना ने राष्ट्रिय शान्ति का रूप धारण कर लिया। महात्मा जी ने सत्य, अहिंसा और प्रेम ही महत्ता बतलाकर हमें अभय बनाया। फलत: हिन्दी साहित्य के समस्त अंग काव्य, उपन्यास, कहानी निबंध आदि गांधीवाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। यही कारण है कि इस काल को 'गाँधी युग' भी कहा जाता है। कहना न होगा कि गांधीवाद से हिन्दी कविता अत्यधिक प्रभावित हुई। निदान, हिन्दी के कवियों ने गांधी जी द्वारा बतलाए गए सत्य एवं अहिंसा के राजनीतिक प्रयोग का महत्त्व समझा, और परिणामस्वरूप, राष्ट्रिय आंदोलन में शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मबल को प्रश्रय दिया जाने लगा। श्री रामनरेश त्रिपाठी की रचना में गांधीवाद का परिचय पर्याप्त परिमाण में प्राप्त होता है। यथा—

मैं अमर हूँ, मौत से डरता नहीं!
सत्य हूँ, मिथ्या डरा सकती नहीं,
मैं निडर हूँ, शस्त्र का क्या काम है,
मैं अहिंसक हूँ, न कोई शत्रु है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान गांधी-दर्शन से अपेक्षाकृत सर्वाधिक प्रभावित थीं। उनका दृढ मत था कि अहिंसा के माध्यम से ही भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाया जा सकता है। आप ने लिखा—

हमारी प्रतिभा साध्वी रहे,
देश के चरणों पर ही चढ़े।
अहिंसा के भावों में मस्त,
आज यह विश्व जीतना पड़े।

इसी क्रम में श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' ने सोल्लास लिखा—

बलि के कंपन में जो आती,
अच्छी हुई मिठास।
यौवन के बाजीगर
करता हूं उस पर विश्वास॥

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की सम्पूर्ण रचनाएँ गांधीवाद से प्रभावित हैं। यही कारण है कि आपकी रचनाओं में हमें पग-पग पर 'गांधी-दर्शन' के दर्शन होते हैं। यथा—

धर्म तुम्हारी ओर तुम्हें फिर किस का भय है।
जीवन में ही नहीं, मरण में भी निज जय है॥

महाकवि 'पन्त' ने अपनी एक कविता में विश्व-वरेण्य बापू को इस भांति चित्रित किया है—

सदियों का दैन्य तमिस्र तम,
धुन तुम ने कात प्रकाश-सूत।
हे नग्न, नग्न पशुता ढंक दी,
वन नव संस्कृत मनुजत्व पूत॥

इसी भांति श्री सियारामशरण गुप्त ने अपनी रचना में स्पष्ट बतला दिया है कि शासकों के दमन से या हिंसा के उपद्रव से जीवन का नाश नहीं होना। वंदिनी भारत-माता को पराधीनता की जंजीर में जकड़ा देख कवि का हृदय कड़मड़ा उठता है, तब समस्त नेह-गेह-धन को परित्याग महाभिनिष्क्रमण के लिए चल पड़ने का उपदेश देता है। अपने दृढ विचार को बापू के प्रति लिखी गई एक कविता में गुप्त जी ने यों व्यक्त किया है—

जान लिया तुम ने गंभीर स्वानुभव से—
हिंसा का उपद्रव से संभव विनाश
नहीं नर का, वह आत्मज अमर का।

श्री सोहनलाल द्विवेदी ने महात्मा गांधी को संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूति माना, और राष्ट्र का पिता समझ कर 'बापू' नाम से संबोधित किया—

अनमोल सृष्टि की यह रचना,
दो अक्षर में हो गई बद्ध ।
'बापू' के लघु संबोधन में,
सारा रहस्य युग का निबद्ध ॥

गांधी जी द्वारा नमक-कानून तोड़ने के लिए की गई दांडी-यात्रा से प्रभावित होकर कवि ने लिखा—

नवयुग का जब प्रारम्भ हुआ,
कुछ नए नमक के टुकड़ों पर ।
आजादी का इतिहास लिखा,
दांडी के कंकड़-पत्थर पर ॥

'दिनकर' के विचार से बापू एक 'पैगम्बर' थे। मानवता की सेवा ही उनका जीवनादर्श था। यही कारण है कि कवि ने इन्हे 'शक्ति का कृष्ण' की संज्ञा प्रदान की है। इस संज्ञा के औचित्य पर 'दिनकर' अकाट्य तर्क पेश करते हैं। जैसे—

बापू, तू 'कलि का कृष्ण',
विकल आया आँखों में नीर लिए ।
थी लाज द्रौपदी की जाती,
केशव-सा दौड़ा चीर लिए ॥

बापू सत्य और अहिंसा के पुजारी रहे, आत्मबल के समक्ष शस्त्रबल को तुच्छ समझते रहे। उनके इस अमोघ अस्त्र के समक्ष विनाशकारिणी शक्ति कुंठित हो चली। आप का तो यही सिद्धान्त था कि 'अक्रोध से क्रोध को जीतो।' इस भाव को श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने इस भांति लेखनी-बद्ध किया है—

आज शस्त्र अस्त्रों की धारें
खूब कुंठित हुई भली ।
'अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्' की
क्या ही चर्चा नई चली ॥

श्री सुमित्रानंदन पंत ने बापू को किस रूप में चित्रित किया है, उसे विज्ञ पाठक नीचे की पंक्तियों से ही जान लें। पंत जी ने लिखा है—

उसके चरखे सूक्ष्म, युग-युग का
विषय-जनित विषाद ।
गंजित कर दिया गगन जग का
भर तुम ने आत्मा का निनाद ॥

हिन्दी की आधुनिक मीरा तथा छायावादी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के वैराग्य और विषाद-पूर्ण गीतों में भी बापू का समावेश होकर ही रहा। आपकी 'प्रमाण' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

कर युगल बिखरे क्षणों की एकता के पास जैसे,
हार के हित अर्गला तप-त्याग के अधिवास जैसे ।
मृत्तिका के नाल जिन पर खिल उठा अपवर्ग शतदल,
शक्ति की कवि-लेखनी पर आप की कृतियां सुकोमल ।
दीप लौ-सी उंगलियां तम-भार लेती थाम ।
नव-आलोक लेख ! प्रमाण ॥

डा० रामकुमार वर्मा ने बापू के पाद-पद्मों पर अपनी कविता-कली की यह माला अर्पित की है—

बापू, तुम को पाकर, युग का धन्य हुआ इतिहास ।
आज तुम्हारा वर्तमान ही है भविष्य की सांस ॥

बापू कहते थे कि मेरे शरीर पर भारत की मिट्टी और जल का अधिकार है। इस प्रकार भारत की वसुंधरा उस साधक की सन्निकटता को दूर होने देना नहीं चाहती। अब इसी भाव को श्री हरिवंश राय 'बच्चन' ने इस भांति पद्य-बद्ध किया है—

हे देश जाति के दीवानों के चूड़ामणि,
इस चिर यौवनमय सुंदर पावन वसुंधरा—
की सेवा में मनुहार सहज करते-करते—
दी तुम ने अपनी उम्र गंवा, दी देह त्याग,
अब राख तुम्हारी आर्य-भूमि की भरे मांग,
हो अमर तुम्हें खो, इस तपस्विनी का सुहाग ।

यद्यपि बापू का पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं है, फिर भी गांधीवाद जीवित है। श्री मोहनलाल गुप्त की कविता में यही भाव भरे हैं—

चरण-चिह्न जो छोड़ गया, युग चूम रहा है ।
इसी धुरी पर विश्व समूचा घूम रहा है ॥

श्रीमती सुभद्राकुमारी सिन्हा को दृढ़ विश्वास है कि बापू के चरण-चिह्नों पर युग सदियो तक चलता रहेगा। आप लिखती हैं—

विश्व चलेगा युग-युग तक
हे अनासक्त, जग की पद की—
अनुरक्ति पलेगा युग-युग तक ।

[शेष पृष्ठ ६ पर]

संस्कृति

[श्री विश्वम्भरनाथ]

चेतनायुक्त प्राणियों की गति-विधि तथा क्रिया-कलाप ही जीवन है जिसकी गति इतनी स्वाभाविक है कि वह अनजाने ही होती रहती है। भौगोलिक दृष्टि से संसार कई इकाइयों में बँटा हुआ है। कहीं धूप और गर्मी है, तो कहीं शीत का प्रकोप है। कहीं बर्फीले तूफान उठते हैं, तो कहीं मरुभूमि की उष्णतर लू का सामना करना पड़ता है। कहीं वर्षा, घने बनों और जंगली जीव-जन्तुओं का भय है, तो कहीं हरे-भरे चरागाह तथा लहलहाते खेतों का साम्राज्य है, जहाँ मनुष्य सरलता से जीवन-यापन करके अपने उच्चतम विचारों में तल्लीन रहता है। चेतनापूर्ण प्राणी अपनी मानसिक शक्ति के बल पर प्राय: प्रकृति से संघर्ष करता हुआ अपने सामाजिक जीवन को अधिक सुखमय बनाने का प्रयत्न करना रहता है और परिस्थितियों से होड़ लेता हुआ उनको अपने अनुकूल बना लेता है। श्रीमती शान्ति ने सत्य कहा है:—

जीवन संघर्षों का सार।
मानव में चेतना न होती जीवन होता भार,
संघर्षों से न डरना वाही है जीवन की हार।
हंसते-हंसते झेल लिया तो समझो मंजिल पार,
जीवन संघर्षों का सार॥

जैसा ऊपर कहा है, जीवन संघर्षमय है और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल जगत् की प्रत्येक इकाई अपना रहन-सहन, अपनी वेष-भूषा तथा अपनी विचारधारा निर्धारित करती है जो धीरे-धीरे उस का अंग बनती जाती है। राष्ट्र की छोटी-से-छोटी इकाई व्यक्ति है और व्यक्तियों के समूह से परिवार और परिवारों के संगठन से समाज बनता है। समाज में कोई व्यक्ति जिस ढंग से रहता है जिस प्रणाली के अनुरूप विचरण करता है या जो विचार या कल्पनाएं उसके मस्तिष्क में घूम-घूम कर उसे दैनिक व्यवहार व शिष्टाचार की ओर अग्रसर करती हैं ये सब क्रियाएं तथा कल्पनाएं उसके जीवन का अंग बन जाती हैं और यही न्यूनाधिक मात्रा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी उत्तराधिकार में वंशजों को मिलती रहती है जिस को जाति, समाज तथा राष्ट्र अपने में निहित कर लेता है। इस प्रकार के ये संस्कार मिल कर एक संगठित रूप धारण करके विभिन्न प्रकार की सामूहिक सैद्धान्तिक व्यावहारिक रूप-रेखा तैयार करते है जिसका नाम संस्कृति है।

राष्ट्र और उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों के संस्कारों के समूह को संस्कृति कहा जाता है जो उस देश के निवासियों के रहन-सहन, वेष-भूषा, चलन, शिष्टाचार, नीति, विचार तथा भावनाओं के सम्मिश्रण से बनते हैं। यह संस्कृति ही जन्म-जन्मान्तर से राष्ट्र की आधारस्तम्भ होती है, उसका प्रथम प्रदर्शक तथा मूल प्रेरक बनकर उसकी रक्षा करती है और उसको अन्ध कूप में गिरने से बचाती है, यहां तक कि किसी राष्ट्र पर अनेक विपत्तियां पड़ते रहने पर भी उसकी अस्तित्व बनाये रखने में सहायिका होती है। इतिहास साक्षी है कि भारत पर अनगिनत आक्रमण हुए, सैकड़ों राज्य बने और बिगड़े, तरह-तरह की धार्मिक व सामाजिक उथल-पुथल हुई, नई-नई सभ्यताएं पनपी और ध्वस्त हुई" परन्तु भारत की नैतिकता और संस्कार पर किसी प्रकार की आंच नहीं आई। वह आज भी मस्तक उठाये हुए संसार के समक्ष सीधा खड़ा है और इच्छुक राष्ट्रों का पथ-प्रदर्शन कर रहा है।

कुछ लोग सभ्यता को संस्कृति का पर्यायवाची मानकर संस्कृति को प्रक्षिप्त कर सभ्यता को ही अधिक मान प्रदान करते हैं। सभ्यता के चमचमाते स्वरूप के समक्ष आज के वैज्ञानिक युग में संस्कृति को न कोई जानता है, न समझता है। सभ्यता के तड़क-भड़क व दिखावे का आवरण संस्कृति पर पूर्ण रूप से पड़ गया है और वही व्यक्ति व राष्ट्र सभ्य तथा उत्तम कहा जाता है जो देखने में सब प्रकार स्वच्छ प्रतिभावान् उज्ज्वल तथा सुन्दर प्रतीत हो। परन्तु वास्तव में सभ्यता व संस्कृति एक नहीं है। उन दोनों में गहन अन्तर है। संस्कृति यदि मूल है तो सभ्यता उसकी

[शेष पृष्ठ १२ पर]

क्या समाधि की अवस्था उन्नति का चिह्न है?

[श्रीमाता जी¹]

समाधि में जाने का अर्थ है एक ऐसी अवस्था में जाना जिसकी जागने पर कोई स्मृति नहीं रहती।

प्राचीन समय में यह एक बहुत उच्च अवस्था मानी जाती थी। बल्कि लोग यह भी सोचते थे कि यह एक महान् उपलब्धि का चिह्न है—जो लोग योग या साधना करना चाहते थे वे सदा ऐसी अवस्था में ही प्रवेश करने का प्रयत्न किया करते थे। इस अवस्था के बारे में कई प्रकार की अद्‌भुत बातें कही जा चुकी हैं। तुम जो चाहो कह सकते हो, क्योंकि तुम्हें इसके बारे में ठीक-ठीक याद नहीं रहता और जो लोग इसमें प्रवेश कर चुके हैं वे यह नहीं कह सकते कि वहां उनके साथ क्या हुआ था।

मैंने सब प्रकार के तथाकथित आध्यात्मिक साहित्य में समाधि की इस अवस्था की अनोखी बातों के बारे में पढ़ा है, पर हुआ ऐसा कि मुझे यह कभी प्राप्त नहीं हुई। मुझे पता नहीं क्या ऐसा न होना निम्न अवस्था का चिह्न है। और जब मैं यहां पहुंची मेरा सबसे पहला प्रश्न श्री अरविंद से यही था।

"समाधि के विषय में आप क्या कहते हैं, समाधि की उस अवस्था के विषय में जो याद नहीं रहती? व्यक्ति एक ऐसी अवस्था में प्रवेश करता है जो आनन्दमयी प्रतीत होती है, किन्तु जब वह उसमें से बाहर निकलता है तो उसे यह याद ही नहीं रहता कि वहां क्या हुआ था।" उन्होंने मेरी ओर देखा, वे मेरा मतलब समझ गये और बोले, "यह अचेतनता है।" मैंने इसका अर्थ पूछा और कहा "क्या!" उन्होंने उत्तर दिया, "हां, तुम उस अवस्था में प्रवेश करते हो जिसे समाधि कहते हैं, जब तुम अपनी चेतन सत्ता से निकल कर अपनी सत्ता के एक पूर्णतया अचेतन भाग में प्रवेश करते हो, बल्कि एक ऐसे क्षेत्र में प्रवेश करते हो जहां उससे मिलती-जुलती हुई चेतना विद्यमान नहीं है, तो तुम अपनी चेतना के क्षेत्र के आगे जाकर एक ऐसे क्षेत्र में प्रवेश करते हो जिसमें तुम अब चेतन नहीं रहते। तुम एक निर्वैयक्तिक अवस्था में होते हो, दूसरे शब्दों में एक ऐसी अवस्था में जिसमें तुम अचेतन होते हो। इसी लिये स्वभावतया ही तुम कुछ याद नहीं रख सकते। कारण, तुम वहां किसी भी वस्तु के प्रति सचेतन नहीं रहते।"¹ इस व्याख्या ने मुझे आश्वासन दिया और मैंने उनसे कहा– "ऐसा मेरे साथ कभी नहीं हुआ है," उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे साथ भी नहीं।" (हंसी)

उस समय से, जब भी लोग समाधि की चर्चा करते हैं मैं उनसे कहती हूं, "अपने आंतरिक व्यक्तित्व का विकास करो और तुम इन्हीं क्षेत्रों में पूरी चेतना के साथ प्रवेश कर सकोगे और ऐसा तुम अपनी समस्त चेतना को खोये बिना कर सकोगे, और लौटने पर शून्य के स्थान पर तुम्हारे पास एक अनुभूति होगी।"

हां, तो अब तुम्हें उत्तर मिल गया। उन्नति का चिह्न है अचेतन अवस्था का न होना, अर्थात् समाधि अवस्था में प्रवेश किये बिना उन्हीं क्षेत्रों तक उठ जाना।

किन्तु इन शब्दों में कुछ भ्रान्ति है।

जब तुम अपनी सत्ता के भाग को छोड़ देते हो

---

१. इस प्रवचन के प्रकाशन के समय श्री माता जी ने निम्न शब्द और जोड़े हैं। "कुछ लोग ऐसे क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं जहां वे चेतन रहते हैं, किन्तु इस चेतन अवस्था और उनकी स्वाभाविक जागृत चेतना में एक रिक्त स्थान रह जाता है: जागृत अवस्था और उस गहन अवस्था के बीच में उनके व्यक्तित्व का अस्तित्व नहीं रहता। अतएव, रास्ते में वे भूल जाते हैं। वहां उस चेतन अवस्था में जिस वस्तु के प्रति वे सचेतन होते हैं उसे वे भूल जाते हैं। वहां उस चेतन अवस्था में जिस वस्तु के प्रति वे सचेतन होते हैं उसे वे यहां नहीं ला सकते, क्योंकि दोनों में एक खाली जगह रह जाती है।

"गुह्य विद्या का एक ऐसा अभ्यास है जो मध्यवर्ती क्षेत्र का निर्माण करता है जिससे वहां घटित वस्तुएं याद रह सकें।"

(उदाहरणार्थ, जब तुम पूर्ण चेतन रूप में प्राणिक जगत् में प्रवेश करते हो), तुम्हारा शरीर—अकेला शरीर समाधि अवस्था में जा सकता है, किन्तु यह समाधि नहीं होती, यह तो एक प्रकार की जडता या मूर्च्छा की अवस्था होती है। अपनी तीव्र अभीप्सा में यह मूर्च्छा ही होती है। क्योंकि सत्ता का जो भाग शरीर को जीवन प्रदान करता है, वह उससे बाहर निकल गया होता है, अब शरीर अर्धमृत हो जाता है, अर्थात् उसका जीवन उस हद तक कम हो जाता है और क्रियाएँ प्राय: लुप्त हो जाती हैं, हृदय की गति इतनी धीमी पड़ जाती है कि उसके श्वास-प्रश्वास का बड़ी कठिनाई से पता चलता है। यही सच्ची समाधि की अवस्था है। किन्तु तुम उस समय, प्राणिक जगत् में पूर्णतया चेतन होते हो। और तुम एक साधना के द्वारा जो न सरल होती है, न संकट से रहित, यह देख सकते हो कि शरीर उन न्यूनतम शक्तियों के साथ जो तुम उसमें छोड़ जाते हो स्वतन्त्र रूप से चेतन बना रहता है। एक पूर्णतया नियमित प्रशिक्षण के द्वारा तुम शरीर की क्रियासम्बन्धी स्वतन्त्रता को बनाए रख सकते हो, तब भी जब कि तुम पूर्णतया उससे बाहर चले जाते हो। इस प्रकार एक लगभग पूर्ण समाधि की अवस्था में भी तुम बोल सकते हो और उस सब का जो तुम्हारा बाह्य भाग देखता या करता है वर्णन कर सकते हो। किन्तु यह तभी होता है जब तुम मार्ग पर काफी आगे बढ़ चुके होते हो।

उस अवस्था के जो पूरी तरह से यह तो नहीं है पर कुछ-कुछ इससे मिलती-जुलती अवश्य है, ऐसे उदाहरण हैं—सहज और अनैच्छिक दोनों; ये निद्रा में चलने आदि की अवस्थाएँ हैं, अर्थात् जब तुम गहरी नींद में होते हो, जब तुम अपने शरीर से बाहर निकल जाते हो, जब तुम्हारा शरीर उस प्राणिक सत्ता की इच्छा और क्रिया के आदेश को यंत्रवत् मानता है जो बाहर निकल चुकी होती है। केवल इसी लिए कि यह एक स्वेच्छापूर्ण क्रिया का, एक नियमित और विकसनशील शिक्षा परिणाम नहीं है, ऐसी अवस्था वांछनीय नहीं है। कारण इससे सत्ता में अस्तव्यस्तता उत्पन्न हो सकती है। किन्तु जो-कुछ अभी मैं कह चुकी हूँ वह उस बात का तथा एक ऐसे शरीर का दृष्टान्त है जिसके तीन भाग तो सोते रहते हैं जबकि चौथा भाग सत्ता के उस भाग की आज्ञा मानता है जो बाहर निकल चुका होता है तथा जो स्वयं पूर्णतया जाग्रत् और चेतन होता है। यही सच्ची समाधि है।

मेरे विचार में मैं तुम्हें पहले भी कई बार बता चुकी हूँ कि जब तुम एक ऐसे गुह्य अनुशासन में से गुजरते हो, तो तुम अपने भौतिक शरीर को छोड़ कर प्राणिक रूप से बाहर आ सकते हो तथा प्राण के जगत् में विचरण कर सकते हो। और तब प्राणिक सत्ता को सोता छोड़ कर, मानसिक रूप से उससे बाहर निकल कर तुम मानसिक जगत् में, पूर्णतया चेतन रूप में और उन्हीं सम्बन्धों के साथ निवास कर सकते हो। कारण, मानसिक जगत् का सम्बन्ध मानसिक सत्ता के साथ है, उसी प्रकार जैसे भौतिक जगत् का सम्बन्ध भौतिक सत्ता से है। इस प्रकार नियमित अभ्यास से उत्तरोत्तर ऐसा होता रहता है। मैं एक स्त्री को जानती थी जिसने इस प्रकार अपने-आप को सधा रखा था, उसने अपने अन्दर अद्भुत शक्तियां पैदा कर ली थीं। वह अपनी सत्ता की सभी अवस्थाओं में चेतन रहती थी। वह अपने शरीर से बारह बार अर्थात् बारह क्रमिक शरीरों से बाहर निकल सकती थी, जब तक कि वह वैयक्तिक चेतना के शिखर तक ही नहीं पहुंच जाती थी, जिसे 'अरूप' की दहलीज कह सकते हैं। वह सब-कुछ याद रखती थी और उसका बारीकियों सहित वर्णन भी कर सकती थी। वह अंगरेज स्त्री थी। मैंने उस की एक पुस्तक का अंगरेजी से अनुवाद भी किया है जिसमें उसने उन सब बातों का वर्णन किया है जो उसने सभी क्षेत्रों में देखीं और की थीं।

स्पष्ट ही यह अपनी सत्ता पर एक बहुत बड़े स्वामित्व का तथा इस बात का चिह्न है कि व्यक्ति चेतन विकास के एक ऊँचे दर्जे तक पहुँच गया है। किन्तु यह एक अन्य अनुभव का प्राय: उल्टा है, इस अनुभव में व्यक्ति अपनी चेतना से इसलिए बाहर आता है कि वह एक ऐसी अवस्था में प्रवेश कर सके जहां वह चेतन नहीं रहता—इसे बिल्कुल विरोधी कहा जा सकता है।

अब मैं एक ऐसी वस्तु पर आती हूं जो तुम्हारे लिये एक सत्परामर्श और शिक्षा है।

हमने योग-समन्वय में पढ़ा है और अभी कुछ दिन

पहले 'दिव्य जीवन' के कुछ भागों का अनुवाद भी किया है जिनमें श्री अरविंद उन लोगों के सामने इस विषय की ब्यौरेवार व्याख्या करते हैं तथा कुछ निर्देश देते हैं जो साधना के द्वारा ऐसे अनुभवों को प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं जो कभी-कभी उनकी चेतना की अवस्था के लिये अत्यधिक शक्तिशाली होते हैं और दुर्भाग्य-पूर्ण परिणामों को उत्पन्न करते हैं। मैंने इस विषय पर विचार किया था और अब मुझ से इस विचार की व्याख्या करने को कहा गया है। मैंने कहा था, "व्यक्ति को अपने अनुभव से सदा अधिक बड़ा होना चाहिए।" जो मैं कहना चाहती थी वह यह है—

अनुभव का स्वरूप, उसकी शक्ति और उसका अनोखापन जो-कुछ भी हो, तुम्हें उसके वश में इतना नहीं हो जाना चाहिए कि वह तुम्हारी सम्पूर्ण सत्ता को शासित करने लगे और तुम अपने संतुलन को और युक्तियुक्त और शान्त वृत्ति के साथ अपने सम्बन्ध को खो बैठो। दूसरे शब्दों में जब तुम किसी भी प्रकार से अपने से बड़ी किसी शक्ति या चेतना के सम्पर्क में आओ तो उस शक्ति या चेतना के पूर्णतया वशीभूत होने के स्थान पर तुम्हें सदा यह याद रखना चाहिए कि यह हज़ारों, हज़ारों अनुभवों में से एक अनुभव है, अतएव यह कोई पूर्ण अनुभव नहीं है, इसका मूल्य केवल सापेक्ष है। यह कितना भी सुन्दर क्यों न हो तुम्हें इससे अच्छे अनुभव प्राप्त हो सकते हैं और होने चाहियें। यह कितना भी असाधारण क्यों न हो। इसके अतिरिक्त और भी अनुभव हैं जो इससे भी अधिक आश्चर्यजनक हैं। यह कितना भी ऊँचा क्यों न हो, तुम भविष्य में इससे भी ऊँचा उठ सकते हो। अब अपना संतुलन खोने के स्थान पर तुम अपने विकास की श्रृंखला में इसे स्थान दो और एक स्वस्थ शारीरिक संतुलन बनाये रखो ताकि तुम सापेक्षता का अर्थ न भूल जाओ। इस प्रकार तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं होती।

इसका ढंग ? जो इसे करना जानता है उसे सदा ही यह बहुत सरल लगता है; किन्तु जो नहीं जानता उसके लिए यह जरा कष्टप्रद हो जाता है।

उस भागवत कृपा के प्रति, जो भगवान् की अभि-व्यक्ति है, पूर्ण आत्मदान करने को कभी न भूलो। जब तुम अपने-आप को देते हो, बस दे दो, पूर्णतया अपने-आप को उसके प्रति अर्पण कर दो जो समस्त सृष्टि से ऊपर और आगे है। अनुभव से कोई व्यक्तिगत लाभ ढूंढने के स्थान पर तुम उसे भागवत कृपा के प्रति समर्पित कर दो और यह जान लो कि भागवत कृपा से ही यह अनुभव आया है और उसी को इस अनुभव का परिणाम भी सौंप देना चाहिए। तब तुम सुरक्षित रहते हो।

दूसरे शब्दों में, महत्त्वकांक्षा नहीं, अभिमान नहीं, गर्व नहीं; होना चाहिये सच्चा आत्मदान, सच्ची नम्रता और तुम सब संकटों से सुरक्षित रहोगे। इसी को मैं अनुभव से बड़ा होना कहती हूँ। ●

[पृष्ठ ९ का शेष]

पूरक है। सभ्यता बाह्य आडम्बर से ओत-प्रोत है। संस्कृति आन्तरिक भावना को लक्षित करती है। सभ्यता ऊपरी दिखावे को महत्त्व देती है तो संस्कृति आत्मोन्नति तथा आत्मचिन्तन पर बल देती है। सभ्यता एकाङ्गी शोषणपूर्ण है, सामयिक तथा संकीर्ण है और संस्कृति सार्वभौम, प्रगतिशील तथा व्यापक है। सभ्यता दर्शनीय अथवा दशनशील कही गई है और संस्कृतिविहीन सभ्य पुरुष दस्यु कहा गया है। क्योंकि विभिन्न प्रकार के रत्नाभूषणों से युक्त, सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत वाह्याडम्बरों से परिपूर्ण व्यक्ति चोर लम्पट दुराचारी हो सकता है। इसको सुसंस्कृत, नहीं कहा जा सकता। क्योंकि आत्माके विकास के लिए उसमें कोई गुण विद्यमान नहीं होता और न लौकिक तथा पारलौकिक समृद्धि, सुख व आनन्द के लक्षण ही दृष्टिगोचर होते हैं, भले ही क्षणिक सौख्य की अनुभूति उसे हो जाती हो।

अतएव सभ्यता आडम्बर से युक्त राष्ट्र की गति-विधि पर प्रकाश डालती हुई उसको ऊंचा उठाती है या नीचे गिराती है और संस्कृति राष्ट्र के अन्तर्हृदय को छूती हुई उसके कण-कण को प्रतिभासित करती है। सुसंस्कृत राष्ट्र सभ्यता की प्रतियोगिता में प्रत्येक युग में सूर्य की तरह देदीप्यमान होता हुआ अनेकों राष्ट्रों को चमत्कृत करता है। श्रीमती शान्ति की निम्न पंक्तियों में एक दीपक कितने ही दीपकों को ज्योति प्रदान करता है और पूर्ण विश्व से अंधेरे को दूर करने की समता रखता है।

एक हृदय की ज्योति न जाने,
ज्योतित कर सकती उर कितने।
वीणा की झनकार अकेली
कंपित कर सकती उर कितने।।

देवर दासमय्या

[श्री भालचन्द्र जयशेट्टी]

कर्नाटक के राजकीय, धार्मिक एवं साहित्यिक चरित्र में शिवशरणों के वचनों का वैशिष्ट्य कुछ कम नहीं। ये वचन केवल कन्नड़-साहित्य में ही नहीं, अपितु विश्व-साहित्य में भी अपना स्थान रखते हैं। चारित्रिक दृष्टि से देखने से निश्चित रूप से कहना कठिन होता है कि इस वचन-साहित्य का मूल स्रोत कौन है। निर्विवाद रूप से माना जाता है कि वीर-शैव साहित्य का प्रथम कवि हरिहर था। इसी तरह वचन-साहित्य के स्तोता महात्मा बसवेश्वर, जो नितान्त अवास्तविक है। प्राप्य वचनों में सब से प्राचीन वचन देवर दासमय्या के माने जाते हैं इससे वे वचन-साहित्य का मूल कर्ता नहीं बन सकते, क्योंकि उन्हीं के वचन से सिद्ध होता है कि उनके पूर्व भी शिवशरणों का वचन-सागर फैला था। प्रस्तुत के लिए चारित्रिक विवेचना न करते हुए प्रमुख आलोचकों के मतानुसार दासमय्या को ही सब से प्राचीन वचनकार मानना ठीक होगा। उनका समय ई. स. १०४० माना गया है।

अब तक दासमय्या के प्राप्त वचनों की संख्या ७५० से अधिक नहीं। पर जितने भी मिले हैं उनमें काव्य का सौष्ठव, अर्थ-माधुर्य, रचना-कौशल तथा स्वानुभव की अभिव्यक्ति लक्षित होती है। सीमित संख्या के ये वचन केवल वीर-शैव धर्म ही नहीं, अपितु सूत्र रूप से मानव-धर्म की विवेचना करते हैं। इन्हीं सूत्र-रूपी वचनों की पृष्ठ-भूमि पर म. बसवेश्वर, अल्लम प्रभु, अक्कमहादेवी आदि वचनकर्ता और वचन-कर्त्रियों ने विशाल वचन-साहित्य का निर्माण किया। दासमय्या के एक-एक वचन का अर्थ समझाने के लिए म. बसवेश्वर आदि महानुभावों को कभी-कभी चार-पांच वचनों की रचना करनी पड़ी है। यदि कह दें कि बसवेश्वर के ८०० वचनों का सार दासमय्या के केवल १५० वचनों में गूँथा हुआ है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

दासमय्या में इतनी योग्यता और अनुभूति होने पर वह विनय-शील हैं। पूर्व के वचनकारों के प्रति उन्हें अनुकम्पा है। शिव-शरणों के वचनं में ही वे अपने आराध्यदेव को पाते हैं।

"करियनित्तडे ओल्ले, सिरियनित्तडे ओल्ले
हिरिदप्प राज्यवनित्तडे ओल्ले
निम्म शरणर सूळनुडिय ओरगळिगे
इत्तडे निम्मनित्ते काणा रामनाथ।"
—हाथी दोगे ? नहीं चाहिए
विशाल साम्राज्य भी दोगे ? नहीं चाहिए
आप के शरण-जनों की मधुर-वाणी एक पल
दोगे तो आप ही को दिए जैसा है रामनाथ।

एक क्षण भी शिवशरणों के वचन सुनने के मिले तो वह उन्हें भगवान् का साक्षात्कार समझते हैं। अन्य शिव-शरणों के प्रति दासमय्या का कितना आदर-भाव था, कितना प्रेम था, इससे व्यक्त होता है।

शिव-शरणों के प्रति एवं उनके वचनों के प्रति इतनी श्रद्धा रखने वाले दासमय्या में स्वानुभव की त्रुटि नहीं थी। संसार में निहित रहस्य-भाव को उनकी विचक्षण बुद्धि समझ लेती है। भगवान् के कर्तृत्व-विधान से दासमय्या आश्चर्य व्यक्त करते हैं।

"मरदोळगे मन्दाग्निय
उरिय दन्तिरिसिदे।
नोरेवालोळगे तुप्पव कम्पिल्लदन्तिरिसिदे।
शरीरोदळगात्मननारु काणदन्तिरिसिते।
नीनु बेरसिद मेदक्के बेरगादेनय्य रामनाथ॥"
—वृक्ष में मन्दाग्नि को यों रखा कि वृक्ष न जले
मधुर (फेनिल) क्षीर में घी को यों रखा कि उसे
बास न रहे।
शरीर में आत्मा को यों रखा कि वह दिख न पाएं।
तेरे इस रहस्य से मैं स्थम्भित हुआ रे रामनाथ।

वास्तव में भगवान् की सृष्टि आश्चर्यकारक है वृक्ष में अग्नि, दूध में घी इस तरह छिपा कर रखा है कि उनके अस्तित्व का बिलकुल पता नहीं चलता। लकड़ी से लकड़ी घिसे बिना अग्नि और दूध को दही, छाँछ,

मक्खन बनाए बिना घी का मिलना सम्भव नहीं। शरीर में आत्मा का अस्तित्व भी ठीक उसी तरह है जिसकी कल्पना नहीं होती। स्थूल-शरीर की संचालक शक्ति—चेतना—प्रत्येक जीव में निहित है। वीर-शैव-सिद्धान्त के अनुसार शरीर के तीन प्रकार माने जाते हैं—स्थूल-शरीर, कारण-शरीर और सूक्ष्म शरीर ही चेतन-शक्ति का अभेद रूप—आत्मा है। मनुष्य अपने में उस सूक्ष्म-शरीर का अस्तित्व रखते हुए भी उसे देख नही पाता। इसके लिए दासमय्या ने योग्य दृष्टान्त दिया है :—

"बसिरोळगण शिशु तायिय मुखवनरियदु।
तायिया शिशुविन मुखवनेन्दू अरियळु॥
माया-प्रपंचनोळगिह भक्त देवरनरिय।
देवरा भक्तननेन्दू अरिय काणा रामनाथ॥"
—गर्भगत शिशु माँ का मुख नहीं जानता
माँ भी कब उस शिशु का मुख जानती
माया-प्रपंच से आवृत भक्त देव को जानता
देव भी उस भक्त को कभी नहीं जानता रामनाथ।

आत्मा को शिव का स्वरूप माना जाता है। आत्मा का अस्तित्व जानना—आत्मज्ञान कहलाता है। और आत्मज्ञान ही उस निरंजन भगवान् को पहचानना है। आत्म-कल्याण के लिए भगवान् को पहचान लेना भक्त के लिए अनिवार्य है, और उस सर्वव्यापी भगवान् को पहचानने के लिए अन्तरात्मा से परिचित होना पर्याप्त है। पर माया-जाल मे फंसा हुआ मनुष्य आत्म-ज्ञान की ओर अग्रसर नही हो पाता। वह सांसारिक मोह से चारों ओर से घिरा है। भक्ति के अस्त्र से जब मनुष्य प्रापंचिक माया-जाल को भेद कर मुक्त होगा तभी उसे भगवान् का दर्शन होता है। यहा प्रापंचिक माया-जाल से मुक्ति पाने का तात्पर्य जीवन से पलायन करना नहीं। "ईस बेकु, इद्दु जयिस बेकु' (तैरना और जीवन मे रहकर विजय प्राप्त करना)। इस तत्त्व का समर्थक है दासमय्या। लेकिन जीवन का भी कुछ मूल्य है। यो तो श्वान का भी जीवन होता है, क्या मनुष्य का जीवन उससे तुला जा सकता है। जीवन में मनुष्य का कुछ ध्येय होता है। उसकी बुद्धि सदा जीवन के रहस्य को जानने के लिए तत्पर रहती है। तब जीव के लिए उदात्त ध्येय जीवन-रहस्य की मूल प्रेरणा—भगवान् को जानने से बढ़कर और क्या हो सकती है? संसार में रहकर ही मनुष्य को उस लक्ष्य तक पहुँचना है। प्रापंचिक मोह उसमें बाधा बन सकता—यदि मनुष्य उसका अनुवर्ती हो जाए। मनुष्य आखिर मनुष्य ही है—न वह देव है जो बिलकुल निर्लिप्त रहे और न वह दानव ही जो एक-न-एक झमेलों को मोल लेता रहे। मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है, पर उसका पुनरावर्तन न होने पावे। इसी लिए दासमय्या ने 'माया-प्रपंच से आवृत भक्त' उसे कहा है जो अपनी भूल को सुधारने की कोशिश नहीं करता।

कभी-कभी मनुष्य जीवन में ठेस खाता है, अपने रास्ते से भटक जाता है। इसके लिए दासमय्या उस मनुष्य को दोष नहीं देते—

"ओडलुगोण्डव हसिव
ओडलुगोण्डव हुसिव
ओडलुगोण्डवनेन्दु नीनेन्न
जडिदोम्मे नुडियदिरा!
नीनेन्नन्ते ओम्मे ओडलुगोण्डु नोडा रामनाथ।"
—पेट पाकर भूखा होता है
पेट पाकर झूठा होता है
मुझे 'पेटधारी' समझकर देव
फटकारो न कभी तुम
एक बार तुम भी उदरधारी बनकर देखो रामनाथ।

मनुष्य को पेट है इसी लिए उसे भूख लगती है। भूख मिटाने के लिए कभी-कभी झूठ भी बोलना पड़ता है। दासमय्या भगवान् से मनुष्य की वाणी मे कहते है—'हे देव, मुझे पेटधारी समझ कर दूर मत करो। यदि कुछ अचातुर्य मुझ से हुआ है तो वह पेट की खातिर।' फिर आगे कहते है, "यदि तू मेरी भूल को क्षमा नही कर सकता तो मेरे जैसा तू भी उदर धारण करके देख।"

बगैर भूल किए मनुष्य "मनुष्य" नहीं कहलाता। उससे भूल होगी जरूर। परन्तु प्रथम भूल से वह सम्भल नहीं जाएगा तो वह कुछ साध नहीं सकता। साधना के प्रारम्भ में सांसारिक जाल से छुटकारा पाने मे कष्ट होगा, भक्त की परीक्षा के लिए भगवान् द्वारा निर्मित अनेक बाधाएँ आ खड़ी होंगीं।

"हर तन्न भक्तर तिरिवन्ते माडुव
श्रोरेदु नोडुव सुवर्णद चिन्नदन्ते
श्ररेदु नोडुव चन्दनदन्ते
श्ररिदु नोडूव कब्बिन कोलिनन्ते
बेदरदे बेच्चदे इद्दड़े
करविडिदेत्तिकोम्ब नम्म रामनाथ ।"
—भगवान् अपने भक्त को झटकाएगा
घिस कर देखेगा सुवर्ण समान
और घिसेगा चन्दन समान
कूट कर देखेगा ईख समान
डरे बिना निडर रहेगा तो
हाथ थाम कर उठा लेगा रामनाथ ।

इन परीक्षाओं में सफल होने के लिए लक्ष्य की ओर एकाग्रता होनी चाहिए। हर विपदा का सामना करने का धैर्य, स्थैर्य होना चाहिए। भगवान् की परीक्षा मे सफल होने पर भगवान् स्वयं अपने हाथों से उठा लेगा। तब जीवात्मा उस अनन्तरूपी परमात्मा से एकाकार हो जाएगा।

लेकिन इस परीक्षा में सफल होना प्रत्येक के लिए सुलभ साध्य नहीं। क्योंकि—

"संग्रामक्के होदवरेल्ल इरियबल्लरे ?
नूरक्कोब्ब सहस्रक्कोब्ब ।
हुणसिय हूवेल्ल कायागबल्लवे रामनाथ ?"
—युद्ध में क्या सभी मार गिराएँगे ?
सौ में एक या सहस्र में एक ।
इमली के सभी फूल क्या फल बनेंगे रामनाथ ?

युद्ध में सभी सैनिक शत्रु पक्ष को नहीं मार सकते। वृक्ष के सभी फूल फल नही बनते, हवा से अनेक झड़ जाते हैं। भक्ति के वेष डालने वाले सभी भक्त परम-सिद्धि में सफल नहीं बनते। प्रत्येक को प्रयत्नरत होना अनिवार्य है। उसमें वे कहां तक खरे उतरेंगे यह उनकी साधना पर निर्भर है।

दासमय्या ने सूत्र रूप में सामाजिक व्यवस्था की भी बात कही है। वह कृत्रिम जाति-पाति को नहीं मानता। उसकी दृष्टि में न कोई स्पृश्य है और न कोई अस्पृश्य, न कोई नीच है न कोई ऊँच :—

"होलेयर बावियलोन्दु
एलु नेट्टिद्दडे,
होले होले एम्बुदी लोकवेल्ल
हलुवेलुविद्द बायल्लि
श्रोलरव नुडिदरे श्रदु
होलेयर बावियिन्द करकष्ट काणा रामनाथ ।"
—अछूत के कुएँ पर एक हड्डी गढ़ने से
अछूत-अछूत कहता है यह सारा जग
अनेक हड्डियों के मुंह से बुरा भला कहें तो वह
अछूतों के कुएँ से भी निकृष्ट है रामनाथ ।"

वह आचरण की शुद्धि को ही कुलीनता मानते हैं। जब मांस-हड्डियों से निर्मित मनुष्य स्वयं अनेक नीच कार्य करता है तो केवल मांस खानेवाले अछूत को अछूत समझना ठीक नहीं। मनुष्य को सुसंस्कृत बनने के लिए तामसी आहार के साथ तामसी वृत्ति का भी त्याग करना होगा। जो तामसी आहार-व्यवहार से दूर रहता है वही कुलीन है। समाज के विविध जाति, वर्ग सभी बाहरी आडम्बर मात्र हैं। वास्तव में मनुष्य की एक ही जाति है—मानव जाति। दासमय्या स्त्री-पुरुष का भी भेद नहीं मानते। उनकी आध्यात्मिक दृष्टि स्त्री पुरुष में भी एकता को पाती है :—

"मोले मुडि बन्दरे हेण्णेम्बरु
गड्ड मीसे बन्दरे गण्डेम्बरु
नडुवे सुळिवात्मनु
गण्डू अल्ल—हेण्णू अल्ल काणा रामनाथ ।"
—स्तन-चोटी से स्त्री कहेंगे
दाढ़ी-मूँछ से पुरुष कहेंगे।
दोनो में गमन करनेवाली आत्मा
न स्त्री है न पुरुष रे रामनाथ।

समाज में स्त्रियों के प्रति दासमय्या में बहुत ही आदर का भाव था। स्त्री जननी है, जगन्माता है। भारतीय दर्शन में वह निसर्ग की आदि-शक्ति, प्रेरणा, संचालक-शक्ति मानी जाती है। शक्ति का अविभाज्य अंग है। शिव की माया शक्ति द्वारा व्यक्त होती है। उसी शक्ति की कल्पना हिन्दू समाज में गौरी, रमा, राधा, दुर्गा, काली, आदि अनेक रूपों में की गई है। भौतिक-जगत् में स्त्री केवल भोग्य वस्तु के रूप में देखी जाती है जो कितना अवांछनीय है। स्त्री के दो रूप हैं—एक सर्व-मंगल-कारिणी सर्वमंगला या गौरी और दूसरा संहारिणी दुर्गा या काली। पुरुष स्त्री को जिस दृष्टि से

देखता है वह भी उसी रूप में पेश आती है। दासमय्या की वाणी से देखें :—

"गण्डनुळ्ळम्मन गौरी एन्दु कण्डडे,
भूमण्डलक्के अरसागि पुट्टुवनातनु।
गण्डनुळ्ळम्मन ओडेवेरेदात
नरकदल्लि दिण्डुगेडेविप्पनै रामनाथ।"
—गृहिणी मैया को यदि गौरी कह दें।
तो वह भूमण्डल का राजा बनकर जन्मेगा।
गृहिणी मैय्या को बुरी तरह देखने वाला।
नरक में कट छट कर पड़ा रहेगा रामनाथ।

दासमय्या स्त्री को सदा गौरी के रूप में ही देखते हैं। वासना की दृष्टि से कभी नहीं। पर स्त्री उनके लिए 'मां' का प्रतिरूप है। घर में धर्मपत्नी के रहते हुए अन्य स्त्रियों की ओर आसक्त होना बहुत ही शर्म की बात है। इसका कठोर खंडन करते हैं :—

"अडग तिम्बरु कणकदडिगे इरल्के।
सुरेय कुडिवरु हालिरल्के।
सुक्कुवरु भंगिय सक्करे इरल्के।
स्वस्त्री इद्दन्ते परस्त्रीयरिगे अळुपुवरु।
सत्तनाय भक्षिसुव हडकिगरनेनेम्बेनय्य रामनाथ
—हड्डी खाते हैं—मिष्टान्न रहते हुए।
शराब पीते हैं—दूध रहते हुए।
भांग खाते हैं—चीनी रहते हुए।
स्वस्त्री रहते हुए परस्त्री की आस रखते हैं।
मृत श्वान को खाने-वालों को क्या कहूँ रामनाथ।

अपनी अर्धांगिनी के रहते हुए अन्य स्त्रियों की आस रखना वास्तव में बहुत हेय है। ऐसे लोगों की तुलना मृत कुत्ते की खाल खाने वाले नीच लोगों से की है पुरुषर्थ में पहला संपादन होता है धर्म का, तब कहीं अर्थ, काम, मोक्ष आते हैं। इस लिए दासमय्या ने भी विषयासक्ति से भी धर्म को विशेष प्रधानता दी है। वे कहते है :—'शिवपूजा कहां ?' 'विषय-सुख कहां ?' वासना कभी शिवपूजा की बराबरी नहीं कर सकती। ★ ★ ★

गीत [श्री कृष्ण भटनागर]

रस-सागर ! मैं नयन-घटों में तव सुषमा भरने का आदी,
आज शून्य गागर मेरी लौटा कर मुझे निराश करोगे ?
मेरी वासन्तिक वनिका में तुमने प्रथम गीत जब गाया,
आया निकट तुम्हारे पर पिछले सम्बन्ध बिसार न पाया।
रहा नारदी मन भटका भटका-सा ही कब स्थैर्य पा सका,
वही चपल गतिमत्ता मेरी रहती, मैं रहता भरमाया।
अपने गीतिजाल में मेरे मन-मृग को कर रुद्ध विषमगति,
आश्रय दिया, आत्म गति-विस्मृत उसको मुक्त स्वराग करोगे ?
मैं पिछले गम्भीर शुष्क सम्बन्धों से सन्तुष्ट स्वस्थ-सा,
घूम रहा था, सकल विश्व मुझ को सुन्दर मधुमास बना था।
तरल शान्ति में डूब तुम्हारी अन्तस्सागर में अब उतरा,
उजड़ा मेरा पहला मधु वन नया सजल संसार बस गया।
जब न रहा कोई जग में मेरा मणियों में प्यार बँट रहा,
निष्ठुर, तल के बाहर ला कर क्या मेरा सन्ताप हरोगे ?
जग के भीषण ताप-दग्ध परिसर में शल्य रुद्ध मेरे पग,
मायावी छल-छद्म-धूम से मीलित उन्मीलित मेरे दृग।
श्रान्त, क्लान्त मेरे तन को कोमल मधुमय स्पर्शों से शीतल,
कर, उसमें तुमने चेतन मादक श्वासों का ज्वार उठाया।
अपने ह्लादक अंक-नीड में जब-तब मुझ को आश्रय देकर,
आज मुझे निष्कासित करके तुम भी कहीं प्रवास करोगे ?

कहानी—

पेड़ से लिपटी लता

[श्री सुमेरसिंह दइया]

"कांति······ओ कांति······।"

"आई चाची जी···।"

"अरी, मैं कितनी देर से चीख रही हूँ और तू है जो-कुछ सुनती ही नही।"

डरी-सहमी-सी एक किशोर बालिका उनके सामने आकर खड़ी हो गई।

"बड़ी बेशर्म है।"—जमना चाची ने उसे झिड़क-सा दिया।

कांति आँखें फर्श में गड़ाए चुप रही।

"इतनी देर लगा दी इन थोड़े से बर्तनों को मलने में ?"

चाची का स्पष्ट संकेत उन ढेर सारे बर्तनों की ओर है, जिन्हें कांति घण्टे-भर से मल रही है।

कांति गर्दन लटका कर निरुत्तर रही।

"बड़ी काम-चोर हो गई है।"—जमना चाची आँखें निकाल कर पुन: कहने लगी—"कान खोल कर सुन ले। अगर यहां रहना है तो जी लगाकर काम करना पड़ेगा, वरना धक्के देकर घर से बाहर निकाल दूंगी······समझी···।"

चाची लौट पड़ी, यद्यपि वे बड़बड़ाती जा रही हैं—"···मरने वाले मर गए और हमारी छाती पर यह सिल छोड़ कर गए हैं। दिन-भर घोड़ी की तरह घूमती है, भैंस की तरह चरती है और बस, जहाँ काम के लिए कहा गया तो जैसे पहाड़ सिर पर टूट पड़ता है। ऐसी पेटू और निकम्मी लड़की तो मैंने आज तक नही देखी। हुम्······।"

अब कांति का धैर्य भी चुक गया। ये झिड़किएं, ये फटकारे उसे सदैव मिलती है। चाची की निगाहें उस पर पड़नी चाहिएँ और फिर क्रोधपूर्ण स्वर मे अनर्गल प्रलाप आरम्भ हो जाता है। अनेक शिकायतें हैं, जिन के बारे में उसे भी जानकारी नही है। लेकिन जब वे चाची के मुह से एक के बाद एक लगातार निकलती हैं तो वह भय और आतंक से कांप उठती हैं। जीभ चला कर प्रतिवाद करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

आज सवेरे, मुंह अन्धेरे ही, उठकर घर के काम-काज में लग गई है। सारे घर की सफाई की, चाय व नाश्ता बना कर सब को खिलाया, बिस्तर उठाए। अब रात और सुबह के बर्तन मलने बैठी है। सचमुच, थकान की पीडा से उसके अंग का जोड़-जोड़ दुखने लगा है······और इस पर चाची ने आकर जली-कटी सुनाना शुरू कर दिया है। बस, अचानक उसका मन घुटने लगा और बरबस आँसू निकल पड़े। बहुत रोकने के बाद भी उसकी रुलाई फूट पड़ी। हृदय मे जमा कई दिनो का गुबार अनुकूल अवसर पाकर धीरे-धीरे निकल रहा है।

इस प्रकार का मूक रोदन अंतर्मुखी होता है, जो हृदय की सूनी घाटियो से निकल कर उसकी दिवारों से टकरा-टकरा कर बिखर जाता है। और, उसके वे टुकड़े सारे अंतस् मे फैल कर असीम वेदना उत्पन्न करते है, जिसमे डूब कर व्यक्ति का सुख-चैन सदैव के लिए नष्ट हो जाता है······

परन्तु एक दर्शक ऐसे भी है, जो इस अभागिन के इन निर्दोष आसुओ को बड़ी सहानुभूति से चुप-चाप देख रहे है। उनकी अपलक दृष्टि उसके ऊपर स्थिर-सी हो गई है। किस प्रकार वह अपने उमड़ते आसुओं का घूंट पी रही है ? किस प्रकार वह अपनी दर्दनाक सिसकियो को बलपूर्वक रोक रही है ? किस प्रकार वह अपने मानसिक क्लेश को छिपाने का असफल प्रयत्न कर रही है ? किस प्रकार वह वातावरण मे छाए तनावपूर्ण अवसाद को भी अपनी छोटी-सी ओढ़नी के आंचल मे समेट लेना चाहती है ?—यह नन्ही-सी जान अपने मन के अंतराल मे गरजते हुए ज्वालामुखी को भी शांत करने के लिए अथक सघर्ष कर रही है···

···कैसी बिडम्बना है। कैसा दुर्भाग्य है ?

अब वे खड़े न रह सके। इस दुखियारी के उन उबलते आंसुओं को, जो गर्म लावे की भाति उनके दिल पर फैल कर असह्य पीडा उत्पन्न कर रहे है, पोछना आवश्यक है। अत: वे स्नेहपूर्ण स्वर मे बोले—"कांति।"

वह अचानक चौंक पड़ी। स्वभावत: उसका एक हाथ, जो मिट्टी और पानी से सना है, सीधा उसकी भीगी आंखों की ओर चला गया। उसने चुपके से उल्टे हाथ से उन बहते आंसुओं को पोंछ लिया। फिर आहिस्ता से उसने कहा—"जी, चाचा जी।"

"देखो, बेटी! मैं सब जानता हूँ, फिर भी इस तरह आंसू बहाना बुरा है। थोड़ा धीरज रखो, ये दिन भी निकल जाएँगे।"

इन मर्म-स्पर्शी शब्दों ने उसे एक-दम रुला दिया, यद्यपि उसने अपने-आप को संयत रखना चाहा, किन्तु वह ऐसा न कर सकी और उसके मुंह से हृदय-विदारक सिसकी फूट निकली।

"ना-ना बेटी, ऐसा नहीं करते।" द्रवित होकर चाचा जी विगलित कण्ठ से बोले, "मैंने कई बार कहा है कि अपनी चाची के कहने का बुरा नहीं मानते। उसकी बक-बक करने की आदत-सी पड़ गई है, वरना दिल से वह बुरी नहीं है।"

इतना कहकर वे कांति के पास आकर उकड़ू बैठ गए। बड़े प्यार से उसका सिर सहलाने लगे और फिर मीठी-मीठी चुटकिएँ लेकर उसे हँसाने की कोशिश करने लगे।

अंत में, विषाद के घने बादल छंटे। तनाव का विषैला कोहरा समाप्त हुआ और अब कांति के अबोध मुख पर फीकी-सी मुस्कान की प्रभा बिखर गई।

× × ×

मुशी जी ने अपनी टोपी उतारी, ऐनक मेज़ पर रखी और फिर छड़ी को कोने में खड़ी करके पलंग पर बैठ गए।

पास दूसरे पलंग पर पत्नी, जमना, बगल में नन्हे मुन्ने को सुलाए दूध पिला रही है। उनकी आंखों में वात्सल्य की हृदय-ग्राही चमक है। मातृत्व की स्निग्ध छबि से उनका मुख-मण्डल उद्भासित हो रहा है।

"मुन्नी की मां।"

"जी।"

"एक बात पूछूं।"

"पूछिए।"

"कांति की शादी के बारे में तुम्हारी क्या राय है?"

"जी···जी···ऽ···ऽ···ऽ···।"

पत्नी तो एकाएक दंग रह गई।

मुंशी जी ने समझा कि आज लक्षण शुभ दिख रहे हैं। पहले तो कांति के सम्बन्ध में कही गई किसी भी बात पर वह काटने को दौड़ती थी। अत: उत्साहपूर्ण स्वर में वे पुन: बोले, "माधवदास जी राजी हो गए हैं। वे अपनी कांति को बहू बनाने को तैयार······ हैं ·।"

इस बार पत्नी ने तीक्ष्ण दृष्टि से घूरा। वे तनिक सहम गए।

"तो आप को कांति की शादी की बड़ी चिन्ता है?" प्रश्न पूछ कर उन्होंने पति की आंखों में झांका।

तभी नन्हे-मुन्ने के मुंह से स्तन बाहर निकल आया। वह उससे अपने नन्हे-नन्हे हाथों से खेलने भी लगा। माँ का ध्यान उधर आकृष्ट होना स्वाभाविक है। थोड़ा-सा झुक कर उन्होंने स्तन वापिस मुंह में डाल दिया।

"अभी क्या जल्दी है? उसे चौदहवां साल ही उतर रहा है।" सोचकर जमना ने पुन: कहा।

मुंशी जी इस अप्रत्याशित नम्र व्यवहार को देख कर चकित रह गए। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। वे अपने हृदय-गत भावों को प्रकट करने के लिए तैयार हो गए। लेकिन सहसा नन्हा-मुन्ना रो पड़ा। जमना उसे करवट बदल कर दुलारने लगी।

मुशी जी कुछ देर तक शांत बैठे रहे। फिर अचानक उनके पड़ोसी दीनानाथ के शब्द स्मरण हो आए।

"मुशी जी, अब कांति के हाथ पीले कर दीजिए। इस अनाथ लड़की के विवाह में हम मुहल्ले वाले भी आप की कुछ सहायता कर देंगे।"

उनके स्वर मे स्वर मिला कर कुछ आस-पास खड़े व्यक्ति भी तभी कह उठे।

यह तो जैसे मुंशी जी के आत्म-सम्मान पर सीधा आघात है—उनके जातीय-गौरव पर कीचड़ उछालने का दुष्प्रयास है। वे इस अपमान के कड़ुवे घूंट को कैसे पी जाते?

"दीनानाथ जी, जबान सम्भाल कर बात कीजिए। खबरदार जो कांति को अनाथ कहा। मैं उसका पिता हूँ और···।"

"नहीं-नहीं। आप कुछ गलत समझ गए हैं।" दीनानाथ एकाएक सिटपिटा गया। इस हल्की-सी बात पर वह स्वयं लज्जित है, अतः स्थिति को स्पष्ट करने के अभिप्राय से कहने लगा, "मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि……।"

"बस-बस, मैं आपका तात्पर्य खूब समझता हूँ। अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।"

अब तो अपना-सा मुँह लेकर वहां से चले जाने के अतिरिक्त दीनानाथ के पास दूसरा कोई विकल्प नहीं है। मुंशी जी ने घृणा एवं उपेक्षा से उन्हें जाते देखकर थूक दिया।

अपने आवेश को रोक कर वे अब धीरे-धीरे सामान्य होने लगे। अक्सर यह घटना उन्हें उत्तेजित कर जाती है और वे थोड़ी देर के लिए क्रोध में उबलते रहते हैं।

दूसरी घटना इसके सर्वथा विपरीत है। यह जितनी उत्तेजनापूर्ण है—इसके अनुपात में वह उतनी ही करुणाजनक और दुःखपूर्ण है।

आज से दस वर्ष पूर्व—

उनके परम मित्र जगन्नाथ बाबू अपनी पत्नी के साथ तीर्थ-यात्रा करने जा रहे हैं। भरा-पूरा घर मुंशी जी के सुपुर्द है। कांति की जिम्मेदारी भी वे साथ में उन्हें सौंप देना चाहते है। बेचारी छोटी-सी बालिका उनके संग कहां मारी-मारी फिरेगी ?

हृदय बोझिल है, आंखों में आंसू है। मन में है असीम प्यार। बच्ची से बिदा लेना अब दुःखदायी हो रहा हैं। परन्तु वे विवश है, लाचार है।

आग्रहपूर्वक मुंशी जी ने कहा, "छोड़ जाइए कांति को हमारे पास। जगन्नाथ जी, आप विश्वास रखें, इस अमानत को हम कलेजे से लगाकर रखेंगे।"

और आगे बढ़कर मुंशी जी ने बालिका को अपनी गोदी में उठा लिया।

"मुझे भरोसा है…।" जगन्नाथ बाबू का कृतज्ञता से कण्ठावरोध हो गया।

सारा दृश्य आंसुओं की अव्यक्त व्यथा से आप्लावित हो गया है। लग ऐसा रहा है कि वे एक-दूसरे से एक युग के लिए बिछुड़ रहे हैं। भीगी पलकों की मूक भाषा अब अधिक मुखर हो गई है, यद्यपि जबान चुप है—शब्दों को ध्वनि नहीं मिल रही है।

इसके बाद की घटना अत्यन्त शोकपूर्ण है। गंगा जी में स्नान करते समय अचानक पत्नी का पैर फिसल गया और वे गहरे पानी में डुबकिएँ लेने लगी। जगन्नाथ बाबू उन्हें बचाने के लिए कूद पड़े, मगर दुर्भाग्य से जल के तीव्र प्रवाह में बह गए। देखते-देखते उन दोनों ने गंगा जी में जल-समाधि ले ली।

मुंशी जी के मुँह से एक दीर्घ निःश्वास निकल गई।

अब वे उठे। एक उड़ती हुई दृष्टि पत्नी पर फेंकी, कदाचित् उन्हें हल्की-सी झपकी आ गई है।

वे टहलते हुए बरामदे में आ गए। बच्चियों के कमरे की बत्ती अभी तक जल रही है। दरवाज़ा थोड़ा-सा खुला है। उसमें से सब-कुछ देखा जा सकता है।

कांति उनकी दो बच्चियों के साथ पढ़ रही है। कभी वे हँसती हैं, कभी धक्कम-धक्का करती है, कभी परस्पर पुस्तकें छीनती हैं। एक प्रकार से उनका खेल भी चल रहा है और पढ़ाई भी हो रही है। उनके बीच में किसी भी प्रकार का भेद नहीं, दुराव नहीं, अलगाव नहीं जैसे वे एक ही डाली के फूल हों……।

मुंशी जी मुग्ध हो गए।

"कौन कहता है कि कांति मेरी बेटी नहीं है ? वह तो इससे भी अधिक……।"

× × ×

"कांति…ओ… कांति……।" रोष में चाची चिल्लाई, "मैं तो इस लड़की से हार गई हूँ…।"

"आई चाची।" व्यग्र कण्ठ से कांति बोली।

अविलम्ब ही दौड़ कर वह चाची के सामने खड़ी हो गई।

"इतनी बड़ी हो गई, फिर भी अकल नहीं है।" चाची ने उसे फटकार बताई, "खाना खाते वक्त भी कोई उठकर आता है। हुम्…।"

कांति ने झट से अपनी मुँह की जूठन पोंछी। फिर आहिस्ता से कहा, "अच्छा।"

"देख, दरवाजे पर तेरे चाचा जी को कौन आवाज़ लगा रहा है।" इस बार चाची बड़ी नरमी के साथ बोली।

"ठीक है।"

कांति प्रसन्न-भाव से चली गई।

आगन्तुक कोई भद्र पुरुष है। नए हैं, कहीं बाहर से आए हैं।

परन्तु वे कांति को बड़ी गहरी दृष्टि से देख रहे हैं। उनके प्रौढ मुख पर सहसा स्नेह-भरी मुस्कान खेल गई। उन्होंने पूछा, "बेटी, तुम्हारा ना···म···कां···ति···है···ना···?"

"हाँ।"

इस अनजान व्यक्ति के मुँह से अपना नाम सुनकर कांति तो हैरान रह गई।

"अरी, मेरी कांति···।"

हर्ष-विह्वल हो आगन्तुक उसे बाहों में भरने के लिए आगे बढे।

"चाची।"

कांति तो भय-भीत हो चीख पड़ी।

मुंशी जी शीघ्र ही भाग कर आए। उन्होंने घबरा कर पूछा, "क्या हुआ बेटी?"

अब उनकी दृष्टि उठ कर आगन्तुक पर स्थिर हो गई। वे एकाएक चौंक पड़े। सर्वप्रथम थोड़ा-सा भ्रम हुआ, मगर धीरे-धीरे वह भी दूर हो गया।

"मुझे पहचाना मुंशी जी।" तनिक मुस्करा कर आगन्तुक ने पूछ लिया।

"आ···आ···ऽ···ऽ···ऽ···प···जगन्नाथ बाबू है···।"

"आपने ठीक पहचाना···।"

और वर्षों से बिछुड़े हुए मित्र परस्पर गले मिले। उनकी आंखों में आनन्दाश्रु छलछला आए।

× × ×

"······और कांति की मां तो गंगा जी की भेंट चढ़ गई, मगर मैं किसी-न-किसी तरह बच गया।"

जगन्नाथ बाबू ने आप-बीती सुनाते हुए कहा, "कुछ मछुओं ने मुझे नदी में से निकाल लिया। लेकिन मन पर इतनी गहरी चोट लगी कि मैं अपने चित्त का संतुलन खो बैठा और इस विक्षिप्तावस्था में पिछले दस बरस तक भटकता रहा।······अब परमात्मा की कृपा से मैं ठीक हूँ। जयपुर में एक छोटी-सी पंसारी की दुकान कर ली है······।"

मुंशी जी और उनकी पत्नी सारी घटना सुनकर शोकातुर हो उठे। यद्यपि जमना ने समबेदना प्रकट करते हुए कहा, "भय्या, अब भूल भी जाओ। भाग्य के सामने आदमी बिल्कुल बेबस है।"

"हां, भाभी, बस, अब आप ही लोगों का सहारा है।"

तनिक रुक कर वे फिर कहने लगे, "मैं अब अपनी कांति को साथ ले जाना चाहता हूँ। जी भी बहल जाएगा और····· और······।"

उनका कण्ठ-स्वर कांप गया।

जिसकी आशंका थी, वही हुआ।

अचानक सन्नाटा छा गया।

"आ···आ···पने···इसे···रख···कर···।"

बस, विराम। उनकी जीभ लड़खड़ा गई।

मुंशी जी ने दूर खड़ी कांति को देखा तो आंखें भर आईं। वे सोच रहे थे कि इस बालिका को वे कैसे अपने से अलग करेंगे? इतना साहस है उनमें······?

जमना तो एकदम मूर्ति की तरह जड़ हो गई।

"मैं अपनी कांति·······।"

इस रहस्यमय चुप्पी को देख जगन्नाथ बाबू ने मुँह खोलना चाहा, मगर तभी बीच में, अपने ऊपर असाधारण ढंग से नियन्त्रण करके मुंशी जी ने उतावली से कहा, "हां···हां। आप उसे खुशी से ले जाएँ···।"

परन्तु तभी उस कठोर मूर्ति में सहसा गति उत्पन्न हो गई और वह अधिकारपूर्ण स्वर में बोली, "मैं अपनी कांति नहीं दूँगी···।"

सुनकर दोनों मित्र दंग रह गए।

जमना सीधी कांति के पास चली आई। कुछ देर तक वे उसे टकटकी लगाकर निहारती रहीं, मगर भावावेश का ऐसा झोंका आया कि वे कांति से लिपट कर रो पड़ीं। फिर वे गिड़गिड़ा कर कहने लगीं, "मुझे···छोड़···कर···मत···जा···बेटी···।"

असमंजस में पड़ी कांति से चाची की यह दशा देखी न गई। फिर उनसे अलग होने की कल्पना करना ही दुःखपूर्ण है। वह नन्ही-सी बालिका की भांति मचल उठी।

"नहीं, चाची, मैं कहीं नहीं जाऊँगी।"

और आंसू बहाती हुई कांति अपनी चाची के आंचल में सिमटती चली गई। ●

औपनिषदिक शिक्षा-प्रणाली (१)

[प्रा. व्रजदेवप्रसाद राय]

उपनिषदों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आध्यात्मिक एवं गूढ दार्शनिक विषयों से है, इनमें हमारे प्राचीन ऋषियों के विचारों का संग्रह है जो आत्मा ब्रह्म, जगत्, मुक्ति एवं नैतिक जीवन आदि से सम्बन्द्ध हैं। ये ग्रंथ मानव को मुक्ति का मार्ग बताते हैं जिनपर चलकर त्रयतापपीडित मानव जाति को शाश्वत शान्ति मिल सकती है। अत: इन दार्शनिक ग्रन्थों में शिक्षा-पद्धति की बातों के बारे में सोचना कुछ अप्रासाङ्गिक-सा लगता है। परन्तु हमें सोचना चाहिए कि कोई भी साहित्य अपने समय का दर्पण होता है जिसमें हम उस युग की झांकी स्पष्ट रूप से पा सकते हैं, क्योंकि लेखक समाज में रहने वाला प्राणी है, ज्ञात या अज्ञात रूप से वह प्रेरणा समाज से लेता है। दार्शनिक भी गुत्थियों को सुलझाने के लिए दृष्टान्त रूप से सामाजिक चीजों का विवरण प्रस्तुत करता है। यही हाल उपनिषदों का भी है। इनमें हमें तत्कालीन शिक्षा-पद्धति से सम्बन्द्ध बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी होती है, लेकिन इसके लिए हमें सावधानी से काम करना है। तथ्यों को, दार्शनिक एवं काल्पनिक बातों से सावधानी से छांटा जाना चाहिए, तभी हमें तद्युगीन शिक्षा-पद्धति के विभिन्न पहलुओं की जानकारी हो सकेगी। ज्ञान के बारे में लोगों के विचार, शैक्षणिक संस्थाएं, शिक्षण की पद्धति, शुल्क एवं परीक्षा ये महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं, जिन्हें हम विभिन्न उपनिषदों में पा सकते हैं।

१. ज्ञान के बारे में लोगों की धारणा—

मानव-जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति है, परन्तु मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती है जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। उपनिषदों में ज्ञान को विद्या कहा गया है एवं कई स्थलों पर इसके स्वरूप की उत्तम व्याख्या की गई है। विद्या की उपयोगिता, इसको प्राप्त करने के उपाय एवं इसकी प्राप्ति के महत्त्व आदि बातों का भी विवेचन किया गया है। लोगों की धारणा थी कि विद्योपार्जन के लिए प्रयत्न अवश्यमेव होना चाहिए, क्योंकि अंधेरे में यही प्रकाश है, जिसके सहारे हम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं, बार-बार भवबन्धन में पड़ना रोका जा सकता है। विद्या की प्राप्ति मुक्ति है, अप्राप्ति बन्धन का कारण है,[१] अत: ज्ञान की प्राप्ति मानव का आवश्यक कर्त्तव्य हो जाता है, लेकिन इस क्षेत्र में अहंकार एवं दम्भ का सर्वथा परित्याग होना चाहिए, क्योंकि ये दो विद्यार्जन के क्षेत्र में बहुत खतरनाक हैं। ऋषियों के विचार हैं कि विद्याप्राप्ति के परिणाम अच्छे होते हैं परन्तु अविद्या बहुत ही खराब होती है। इन दोनों के दो विभिन्न परिणाम हैं[२]। विद्या उस ज्ञान का नाम है जिससे मानव बन्धनों से मुक्त होता है। गीता[३] में भी यही कहा गया है कि ज्ञान का बहुत महत्व है। ज्ञान की रचना भी महत्वपूर्ण है इसमें सभी सात्त्विक वृत्तियां आ जाती हैं यथा असंगति, भोगेच्छा का न रखना, शुद्धबुद्धि, सात्त्विक भोजन, पवित्र स्थान में निवास, इन्द्रियनिग्रह, चित्त वृत्तियों का निरोध, शरीर, मन एवं वाणी की पवित्रता, काम का परित्याग, चिंतन, अहंकार-हिंसा-दम्भ-लोभ एवं क्रोध का नाश, प्रसन्नचित्तता एवं इच्छाओं का मूलोच्छेद—ये जिनमें होती हैं वे ज्ञान पाने के अधिकारी हैं। ये चीजें ज्ञान-प्राप्ति में सहायक होती हैं। पर अविद्या मानव को पतन की ओर प्रवृत्त करती है।

विद्या एवं अविद्या का अर्थ यद्यपि ज्ञान एवं अज्ञान है, पर इन को निष्काम एवं सकाम कर्मों के अर्थ में भी लिया गया हैं। यह भी कहा गया है कि मनुष्य को विद्या एवं अविद्या दोनों की जानकारी रखनी चाहिए। कर्म-सम्पादन से मनुष्य मृत्यु को पार कर जाता है, ज्ञान से उसे अमरत्व की प्राप्ति होती है[४]। कर्म का परित्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि

---

१. ईश०, ९। २. ईश०, १०। ३. १८, ४९–५५। ४. ईश०, ११, केन० १, ४।

कर्म-सम्पादन मुक्ति के मार्ग में बाधक नहीं है। गीता[५] का भी कहना है, अकर्म एवं भोग जनित कर्मों का त्याग आवश्यक है, लेकिन शास्त्रसम्मत कर्मों का परित्याग नहीं करना चाहिए। आदमी जब शास्त्रसम्मत कर्मों का त्याग कर देता है तो तमस् से वह आवृत हो जाता है। जो ज्ञान के यथार्थ रूप को नहीं जानता है वह खतरे मे पड़ जाता है। जो अमर ज्ञान के यथार्थ रूप को जानता है वह उसके लिए एक बड़ी उपलब्धि है पर जो नहीं जानता उसके लिए बड़ी हानि है[६]। अमरत्व विद्या के द्वारा प्राप्त होता है। जो इसे उचित रीति से पाता है वह पापों को नष्ट कर देता है एवं स्वर्ग में जाता है[७]। यह माना जाता था कि विद्या या आध्यात्मिक ज्ञान ही सभी विद्याओं की जड़ है[८], जिसने ब्रह्म को जान लिया वह सर्वज्ञ हो जाता है। पतञ्जलि ने भी अपने योगशास्त्र[९] में कहा है कि समाधिसिद्ध पुरुष इच्छानुसार सब-कुछ कर सकता है, सब-कुछ जान सकता है एवं सब-कुछ समझ सकता है। वह ज्ञान का भाण्डार हो जाता है।

उपनिषदों में विद्या के दो रूप बताए गए हैं एवं दोनों रूपों को जानना आवश्यक है[१०]। विद्या के दो रूप हैं। अपरा एवं परा। अपरा विद्या में चारों वेद एवं छः वेदाङ्ग आते हैं[११]। इस अपरा विद्या को लौकिक विद्या भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसका सम्बन्ध मानव-जीवन के भौतिक पक्ष से हैं, लेकिन ये आध्यात्मिक पक्ष की जड़ भी है। परा विद्या वह है जिससे मनुष्य को आत्मानुभूति होती है। एवं वह मुक्त हो जाता है फिर जन्म-मरण के बन्धनों में नहीं पड़ता है[१२]। जो अविद्या में प्रतिष्ठित है एवं अपने को विद्या में प्रतिष्ठित कहता है वह उसी प्रकार ठोकर खाता है जैसे अन्धे द्वारा मार्ग दिखाने पर अन्धा चलता है[१३]। अविद्या को "निष्फल यज्ञों का सम्पादन" कहा गया है[१४] यज्ञों का सम्पादन निरर्थक है मनुष्य इनके सम्पादन से मुक्त नहीं हो सकता है। उपनिषद् के ज्ञानमार्गी ऋषियो का कर्मकाण्ड के विरोध में यह स्पष्ट विचार है। इसी का प्रसार आगे चलकर गौतमबुद्ध एवं महावीर ने किया। यह भी कहा गया है कि विद्या उन व्यक्तियों द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती है जो भौतिकता में लिप्त हैं एवं सकाम कर्मों का सम्पादन करते हैं। विद्या उन्हीं को प्राप्त हो सकती है जिन्होंने भौतिक जीवन का परित्याग किया है, जो अरण्यों में चले जाते हैं, शांत होते हैं, भिक्षाटन करते, चित्त की वृत्तियों का निरोध करते हैं एवं ब्रह्म तथा सात्त्विक वृत्तियों में विश्वास रखते हैं[१५]। विद्या-प्राप्ति के इच्छुक लोगों को चाहिए कि वे तप करें, ब्रह्मचर्य का पालन करें, एवं ईश्वर में विश्वास रखें[१६], तप, दम एवं कर्म विद्या-प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं[१७]। दुश्चरित, अशान्त, असमाहित एवं अशान्त मानस विद्या को प्राप्त नहीं कर सकते हैं[१८]। जिनकी दृष्टि अत्यन्त तेज है एवं बुद्धिमान् है वे ही विद्या को प्राप्त कर सकते है[१९]। कोई भी व्यक्ति अपने को पूर्ण ज्ञानी नहीं मान सकता है। क्योंकि ज्ञान अनन्त है, जो यह कहता है कि उसने ज्ञान प्राप्त कर लिया वह झूठ बोलता है, उसने ज्ञान के कुछ कण मात्र ही प्राप्त किए हैं[२०]। ये कुछ विचार हैं जो विद्या के बारे में लोगों के थे। इन बातों से स्पष्ट होता है कि भारतीयों ने विद्या को आध्यात्मिक दृष्टि से देखा था।

२. शिक्षण-संस्थाएँ—

विद्या के विकास के लिए कई प्रकार की शिक्षण-संस्थाओं के उल्लेख हमें उपनिषदों में मिलते हैं यथा (१) ऋषियों के आश्रम, (२) यज्ञ, (३) एवं राज-सभाएं। उपनिषदो में कहा गया है कि ज्ञानार्जन में कुछ ही व्यक्ति रुचि रखते है एवं उनमें भी विद्या के यथार्थ ज्ञाता तो बहुत ही थोड़े होते हैं। अध्यात्म-विद्या के जानकार तो इने-गिने लोग ही होते हैं एवं जो व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ गुरु को पाता है वह अत्यन्त ही सौभाग्यशाली होता है[२१]। यह माना जाता था कि अध्यात्म-विद्या को प्राप्त करना एवं समझना सहज

---

५. १८, ८। ६. केन २, ५। ७. केन ४, ६। ८. मुण्डक १, १, १। ९. विभूतिपाद। १०. मुण्डक. १, १, ४। ११. मु. १, १, ५। १२. मु. १, १, ५। १३. मु. १, २, ८। १४. मु. १, १, ९। १५. मु. १, २, ११। १६. प्रश्न. १, २। १७. केन. ४, ८। १८. कठ. १, २, २४। १९. कठ०, १, ३, १२। २०. केन. २, ९। २१. कठं. १, २, ७।

काम नहीं है इसलिये ऐसे गुरुओं की नितान्त आवश्यकता है जो ब्रह्मानुभूति की चरम सीमा पार कर चुके हों। ये गुरु भौतिक भोगों के लिए लालायित नहीं थे। ऐसे शिक्षक एवं गुरु लोग प्राचीन भारत में अधिकतर नगरों से दूर अरण्यों में रहा करते थे एवं इनके आश्रम विद्या के पीठ थे जहां विभिन्न देशों से छात्रगण आते थे एवं उनके चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करते थे। विशेषत: अध्यात्मविद्या तर्क से परे होती है, इसलिए अनुभवी गुरु के अभाव में उसे समझना बहुत कठिन है[२२]। अत: छात्रगण आश्रमों में जाते थे एवं विद्या ग्रहण करते थे। ऐसे छ: ब्रह्म-निष्ठ श्रोत्रिय ब्राह्मण लोग एतदर्थ पिप्पलाद के आश्रम में गये थे एवं उनसे शिक्षा पायी थी[२३]। महाशाल शौनक का भी आश्रम बहुत विख्यात था[२४], एवं अङ्गिरा भी एक बहुत महान् शिक्षक थे जिनका आश्रम विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र था[२५]। लोगों की धारणा थी कि केवल ज्ञानी लोगों के ही पास ज्ञानार्जन के लिए जाना चाहिए क्योंकि वे ही शिक्षा-प्रदान करने में समर्थ होते हैं[२६]। यही बात मुण्डकोपनिषद् में भी उल्लिखित है[२७]। गुरु से प्राप्त ज्ञान, देवता से प्राप्त ज्ञान की अपेक्षा महत्तर होता है[२८]। साधारणत: ब्राह्मण ही शिक्षक हुआ करते थे परन्तु अध्यात्म-विद्या के क्षेत्र में क्षत्रियों का स्थान सर्वोपरि था। इस क्षेत्र में वर्ण एवं जाति का कोई भी प्रश्न नहीं था एवं राजा भी शूद्र के पास उपहारों के साथ ज्ञान-प्राप्ति के लिए जाते थे जैसा कि राजा जानश्रुति पौत्रायण एवं एक शूद्र दार्शनिक रैक्व की कहानी से स्पष्ट विदित होता है[२९]। कई क्षत्रिय दार्शनिकों के नामों के उल्लेख मिलते हैं जो राजा होने के साथ-साथ ज्ञान के क्षेत्र में भी बड़े-बड़े ब्राह्मण दार्शनिकों से श्रेष्ठ थे, यथा पाञ्चालराज जैवलि प्रवाहण[३०], केकयकुमार अश्वपति[३१], मिथिला के जनक[३२], एवं काशी के अजातशत्रु ऐसे ही क्षत्रिय थे जिनके पास ब्राह्मण दार्शनिक लोग भी ज्ञानार्जन के लिए आते थे एवं दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाया करते थे। ज्ञान पवित्र होता है एवं यह कहीं भी किसी से भी प्राप्त किया जा सकता है[३३]। शिक्षक को आचार्य कहा जाता था। ये आश्रमवासी शिक्षक छात्रों की कल्याण कामना से देवताओं की कृपा उनपर दर्शाने के लिए उनसे प्रार्थना करते थे ताकि वे ईमानदार, विद्याग्रहण के योग्य एवं इन्द्रियजयी हो सकें[३४]। आश्रमों में गये हुए असहाय एवं निर्धन छात्रों का उपनयन भी शिक्षक कराते थे जैसा कि सत्यकाम जाबाल नाम के एक छात्र के सम्बन्ध में हम देखते हैं। अधिकतर छात्र आश्रमों में ही जाते थे, परन्तु कुछ छात्र अपने पिता के घर पर ही उनसे पढ़ते थे[३५]। जब नये-नये छात्र आश्रमों में आते थे तो गुरु लोग उनके गोत्रादि पूछ कर उनके परिचय प्राप्त करते थे[३६]।

प्राचीन भारतीय राजा विभिन्न प्रकार के यज्ञ सम्पादित किया करते थे, क्योंकि उत्तर वैदिक काल में धर्म एवं राजनीति का अपूर्व गठबन्धन हो चुका था, अत: राज्य के विकास के लिये विभिन्न प्रकार के यज्ञों का सम्पादन एक प्रकार से अनिवार्य काम ही था। यज्ञों के सम्पादनार्थ दूर-दूर स्थानों से भी ब्राह्मण बुलाए जाते थे एवं ऐसे ही अवसरों पर राजा लोग दार्शनिक विषयों पर वादविवाद एवं शास्त्रार्थ के आयोजन भी किया करते थे, जिसमें उनकी योग्यता की परीक्षा हुआ करती थी एवं विजयी विद्वान् पुरस्कृत होते थे। मिथिला के राजा जनक द्वारा सम्पादित यज्ञ में कुरु-पाञ्चाल ब्राह्मण भी आये थे, उनमें कई उच्चकोटि के दार्शनिक थे, एवं विवाद तथा शास्त्रार्थ में, जो जनक द्वारा आयोजित थे, याज्ञवल्क्य, अश्वल आर्त्तभाग, लाह्यायनीभुज्यु, चाक्रायण, उषस्त, कलोर, गार्गी, आरुणि, उद्दालक एवं शाकल्य आदि विद्वानों ने भाग लिया[३७]। यह एक दृष्टान्त मात्र ही है, परन्तु ऐसे अवसर साधारणतया बहुधा आया करते थे जिनमें राष्ट्र की चिन्तन-शक्ति का विकास किया

२२. कठ०, १, २, ८। २३. प्रश्न० १, १। २४. मुण्डक० १, ३। २५. तैत्तिरीय, ३, १। २६. कठ०, १, ३, ४। २७. मुण्डक, १, २, २२। २८. छान्दोग्य०, ४, ९, १-३। २९. छा. ४,२,५। ३०. छा. ५, ३, ६। ३१. छा. ५, ११, २-४। ३२. बृहदा० २, १, १। ३३. तैत्तिरीय, १, ३। ३४. तै. १,४। ३५. तै. भृगुबल्ली, १, ४। ३६. छान्दोग्य, ४, ४,१-५। ३७. बृहद० ३, १-९ ब्राह्मण।

जाता था एवं ज्ञान-विज्ञान के नवीन क्षेत्र में अनुसंधान का प्रयत्न किया जाता था। वाद-विवाद के मंथन से जिस ज्ञान-नवनीत की प्राप्ति होती थी वह विश्व के ज्ञान-शरीर के सम्यक् सम्पोषण के लिए पर्याप्त था एवं भारतीय दर्शन अद्यावधि उसी से सम्पोषित होकर पुष्ट है।

राजसभाएं भी ज्ञान की अभिवृद्धि में बहुत ही अधिक सहायक थीं। लोगों की धारणा थी कि ज्ञान किसी वर्ण या व्यक्ति विशेष की बपौती नहीं है कोई भी इसे प्राप्त कर सकता है अगर उसकी प्राप्ति के लिए प्रतिपादित नियमों का पालन करता है। हम बड़े-बड़े क्षत्रिय राजाओं को भी महान् दार्शनिकों के रूप में पाते है जिनकी राज-सभाएं विद्वानों से शोभित होती थीं एवं वहां आश्रम से शिक्षा समाप्त कर आये हुए स्नातकों के ज्ञान की भी परीक्षा हुआ करती थी। प्राचीन इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् डा० जायसवाल का मत है कि सभा "राष्ट्रीय-विद्यापीठ" थी[३८]। श्वेतकेतु की परीक्षा पञ्चाल देश के राजा जैवलि प्रवाहण ने अपनी राज-सभा में ली थी[३९]। महा विद्वान् एवं श्रेष्ठ दार्शनिक लोगों को भी उन राजाओं की शिष्यता स्वीकार करते हम पाते है।

आरुणि नामक एक महान् दार्शनिक पञ्चाल देश के राजा प्रवाहण की राजसभा में उनसे ज्ञानार्जन के लिये गया था[४०]। प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन एवं वुडिल, जिन्हें "महागृहस्था: परमश्रोत्रिय-ब्राह्मणा:" कहा गया है, उन्हें हम केकय देश के राजा अश्वपति की राजसभा में जाते हुए पाते हैं, एवं उन लोगों ने उस राजा से आत्मा एवं ब्रह्म के बारे में अति सूक्ष्म तथ्यों की जानकारी पायी[४१]। काशी के राजा अजातशत्रु एवं मिथिला के राजा जनक भी ऐसे ही राजा-दार्शनिक थे, जिनमें प्रथम के पास हम बालाकि नामक ऋषि को ज्ञानार्जन के लिये जाते देखते हैं[४२]। राजा लोग अपनी सभाओं में विद्वानों को आमन्त्रित करते थे एवं वहां उनसे ज्ञान का आदान-प्रदान होता था[४३]।

३. छात्र एवं उनकी योग्यता:—

छात्रों एवं शिक्षकों की योग्यताओं एव उनके लक्षणों के सम्बन्ध में भी हमें बहुत अधिक जानकारी उपनिषदों से मिलती है। छात्रों को अन्तेवासिन्[४४] कहा जाता था क्योंकि ज्ञानार्जन के लिये वे दूर स्थानों में जाया करते थे। उपनयन हो जाने के उपरान्त लोग अध्ययनार्थ आश्रमों में जाते थे एवं उन्हें ब्रह्मचारी कहा जाता था, क्योंकि उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था एवं ब्रह्म की अनुभूति के लिये उन्हें प्रतिपादित नियमों का पालन करना पड़ता था। आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक था क्योंकि उसके पालन से स्वास्थ्य ठीक रहता है एवं ब्रह्मवर्चस्व की वृद्धि होती है। प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति के सिद्धान्तों में एक यह भी सिद्धान्त था कि योग्य एवं समर्थ छात्रों को ही विद्या प्रदान करनी चाहिये, अत: छात्रों के चयन के समय गुरु लोग उन छात्रों की योग्यता एवं उनके आचरणों की पूरी जाँच करते थे। छात्रों को तप, श्रद्धा, एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था। जिस समय छ: श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण पिप्पलाद से शिक्षा ग्रहण करने गये, उस समय वैसे ब्राह्मणों को भी उक्त ऋषि ने परामर्श दिया कि वे पूरे एक साल तक उनके आश्रम में ब्रह्मचर्य, तप, एवं श्रद्धा के साथ निवास करें, तभी वे उनको शिष्य बना सकते थे[४५]। एवं उन्हें वे विद्या प्रदान कर सकते थे। छात्रों की अन्य बातों पर भी ध्यान दिया जाता था यथा उनके अङ्ग पुष्ट होने चाहियें, वाणी स्पष्ट होनी चाहिए एवं अध्ययन के विषयों में श्रद्धा रखनी पड़ती थी[४६]। इन सभी गुणों की प्राप्ति के लिये छात्रगण ईश्वर से प्रार्थना करते थे। ज्ञान-प्राप्ति के लिये तप, कर्म एवं दम अत्यन्त ही आवश्यक हैं इसलिये छात्रों को इन सब बातों पर विशेष ध्यान देना पड़ता था[४७]। छात्रों को परामर्श दिया जाता था कि कठिन विषयों से उन्हें घबराना नहीं चाहिए क्योंकि लोगों की

(शेष पृष्ठ २६ पर)

---

३८. हिन्दू पॉलिटी, सभा-समिति का अध्याय। ३९. छान्दोग्य०, ५, ३, १-५। ४०. छान्दोग्य०, ५, ३, ६। ४१. छान्दोग्य०, ५, ११, १४। ४२. बृहदा०, २, १, १। ४३. बृहदा०, ४, १, १। ४४. तैत्तिरीय०, १, ३४। ४५. प्रश्न०, १, २। ४६. कठ०, शांतिपाठ। ४७. केन०, ४, ८।

मोल मिट्टी का लगा है आज रे इन्सान का

[डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन]

[१]

आज नरता सड़ रही है,
और पशुता बढ़ रही है,
ज्ञान की छाती दबोचे,
आज प्रभुता अड़ रही है;
यन्त्र का पुर्जा बना बस
आज मानव चल रहा है
अरे इसका करुण रोदन भी
किसी को खल रहा है
योग्यता पाण्डित्य की
ठठरी सुलगती जा रही है
हंस को दुतकार मिलती
और बक की
दाल गलती जा रही है
हाय रे कलियुग !
तेरा बस नाश हो जाए
या कि हो कसकर प्रलय
कि जिससे
ज्ञान का नामोनिशां भी खो जाए
रो रहा है आठ आंसू अंश यह भगवान् का
मोल मिट्टी का.........

[२]

एक ही आवाज पर,
हैं आज शत भिक्षुक खड़े;
कोई डाक्टर कोई एम. ए.
झूमते कदमों पड़े।
एक छोटी नौकरी पर,
लड़ रहे विद्वान् रे;
रोज गिद्धों से झपटते,
लाश पर गुणवान् रे।
आज इन्टरव्यू का मेला
लग रहा है बहुत सुन्दर
सभी सज-धजकर उपस्थित
पार करने को समुन्दर।

"नाचना गाना बजाना
औ' रिझाना जानते हो
खेलना हँसना हँसाना
कुछ मूड भी पहचानते हो ?

पास कितने इम्तहां हो
साफ कह दो खोलकर
कम-से-कम क्या ले सकोगे
साफ कह दो बोल कर"

'श्रीमान् जी उपकृत हुआ
सुनकर नगीने बोल ये
याद जीवन-भर रहेंगे
क्षण अरे अनमोल ये
मै सभी-कुछ कर सकूंगा
जी सकूंगा मर सकूंगा
पाक कदमों के तले रह
क्या नहीं मैं कर सकूंगा।'

'तुम हमें बेहद पसंद आए
हम हुए तुम पर फिदा
तहज़ीब खानदानी है
और बाँकी है अदा
काम करना खूब कसकर
हवा खाकर पानी पी कर
खून का करना पसीना
जुल्म पर भी उफ न कहकर
आज नरक से बत्तर अभिनय हो रहा बेजान का
मोल मिट्टी का '.....

[३]

खेल बालक खेलता ज्यों,
पुतलियों के साथ में,
कुछ रखे पैरों तले
और कुछ नचाता हाथ में।

कुछ समय के बाद उसका,
ऊब ही जाता है मन;

फिर, ये सभी लगतीं कुरूप
और नीरस हर वचन
बस, इन्हें वह फेंक देता
रौंद देता, कुचल देता
और दूसरी करता पसन्द
गरज यह कि एक ही इन्सान
अगणित पुतलियों का खेल करता
मनचलेपन का तमाशा
जी खोलकर बस खूब करता।
बुद्धिजीवी और श्रमिक का
आज है अस्तित्व क्या
आज सपना बन चुका है
प्रेम का, भ्रातृत्व का
कैसा जनाजा उठ रहा है देख लो ईमान का
मोल मिट्टी का.........

[४]

जुल्म का हँस हँस के सहना
आज मित्रो छोड़ दो
अरे, बर्बरता पिशाचिनि का
गला कस तोड़ दो
देश के निर्माण का
अध्याय पहला खोल दो

श्रम, सम, शान्ति की जय
एक स्वर से बोल दो
राम, ईसा, वीर के
आदर्श गूँजें देश में

श्रम की सदा हो अर्चना
लग कोढ़ जाए क्लेश में
हर लाल का हो भाल ऊँचा
विस्तार रुचि भी पा सके

अरे, अप्रत्यय निराशा की
दुःखद छाया
न हम तक आ सके
आज बदलेंगे जमाना, काष्ठ का, पाषाण का
मोल मिट्टी का...........

★ ★ ★

(पृष्ठ २४ का शेष)

धारणा थी कि विद्या को यथार्थ रूप से समझना देवताओं के लिये भी कठिन है। अतः छात्रों को धैर्य धारण करना चाहिये एवं शांतिपूर्ण होकर अध्येय विषय को पढ़ने एवं समझने का प्रयत्न करना चाहिये[४८]। छात्रों को जानना चाहिये कि विद्या-प्राप्ति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काम है अतः भौतिक-साधनों की प्राप्ति की ओर आकृष्ट नहीं होना चाहिये। क्योंकि ये भौतिक सामग्रियां क्षणिक होती हैं एवं उनसे श्रेय की प्राप्ति नहीं हो सकती है, अतः ज्ञान-प्राप्ति के लिये ही प्रयत्न करना चाहिये[४९]। शिक्षक लोग उन्हीं को शिष्य रूप में स्वीकार करते थे जो ज्ञान प्राप्ति के लिये धैर्य धारण करके रहते थे[५०]। तर्क के द्वारा विद्या नहीं प्राप्त हो सकती है, यहां विद्या का अर्थ आध्यत्मिक ज्ञान तक सीमित है, इसलिये इसकी प्राप्ति के लिये ज्ञानियों की संगति करनी चाहिए[५१]। ज्ञानी छात्र ही आध्यात्मिक विषयों को जानने के अधिकारी हैं[५२]। इनके अतिरिक्त अन्य और कई गुण थे जिनको छात्रों को रखना आवश्यक था, जैसे प्रसन्नचित्तता एवं इन्द्रिय-निग्रह[५३]। वे छात्र ज्ञान-प्राप्ति के अधिकारी हैं जो क्रियाशील है एवं वेदों के अध्ययन में रुचि रखते हैं, जो ईश्वर में विश्वास करते है, अग्निहोत्र करते, व्रतों का पालन करते एवं सदाचारी है[५४]। छात्रों को मेधावी भी होना चाहिये अतः छात्रगण मधुर वाणी एवं मेधाविता के लिये प्रार्थना करते थे[५५]। [क्रमशः]

---

४८. कठ०, १, १, २०, २२।
४९. कठ०, १, १, २७।
५०. कठ०, १, २, ६।
५१. कठ०, १, २, ६।
५२. कठ०, १, २, ११।
५३. मुण्डक०, १, २, १३।
५४. मुण्डक०, ३, २, ११।
५५. तैत्तिरीय १, ४।

दक्खिनी का रीतिकालीन नीति-काव्य

[डॉ० रामस्वरूप]

भक्ति-काल (सं. १३७५-१७००) में दक्षिण के कवियों ने दक्खिनी भाषा में अनेक काव्यो का प्रणयन किया जिन में नीति-काव्य छिट-पुट रूप से उपलब्ध होता है। दक्खिनी काव्यों की वह परम्परा भक्तिकाल के साथ ही समाप्त नहीं हो गई, रीतिकाल (सं. १७००-१९००) में भी पुष्टतर हो कर प्रवाहित होती रही। रीतिकाल में दक्खिनी के कवियों ने धार्मिक कथा-काव्य, प्रेमाख्यान, आश्रयदाताओं के चरित, फुटकल पद्यों के संग्रह, स्वतंत्रानुवाद तथा अनुवाद प्रस्तुत किये। धार्मिक कथा-काव्यों, मे सनअती का 'किस्सा बेनज़ीर', जईफ़ी की 'हिदायात हिन्दी', बहरी की 'मसनवी मनलगन', वली वेल्लोरी की 'रोज़तुश्शुहदा' तथा बाकर आगा की 'हश्त बहिश्त', प्रख्यात रचनाएं है। प्रेमाख्यानों मे इश्रती की 'चितलगन', 'दीपक पंतग', तथा 'नेह-दर्पण', जईफ़ी की 'इश्के सादिक', वज्दी का 'बागे जाँफिजा', कयासी की 'सौदागर की बीबी', और तुराब दक्खिनी की 'मस्नवी' और 'रिसाला बाद बहार' विशेष रूप से उल्लेख्य है। नश्रती ने अपने आश्रय-दाताओं को चिर-स्मरणीय बनाने के उद्देश्य से 'अलीनामा' 'इस्कन्दरी' की रचना की। केशव स्वामी और वली दक्खिनी ने प्राय: फुटकल पद्यो और निबन्ध काव्यो का प्रणयन दिया। फ़ारसी तथा हिन्दी के के पूर्ववर्ती काव्यो के आधार पर रचनाएँ करने वालों में नस्रती, तबई, मुहम्मद अमीन तथा वली वेल्लोरी के नाम उलेख्य है। नस्रती ने अपने 'गुलशने इश्क' की रचना हिन्दी की 'मधुमालती' की कथा के आधार पर की तथा वली वेल्लोरी ने 'रतन व पदम' का प्रणयन समम्भवत: जायसीकृत 'पद्मावत' के आधार पर किया। तबई की 'बहरामो' 'गुलन्दाम' तथा मुहम्मद अमीन की 'यूसुफ़-जुलेखां' की रचना फ़ारसी की मस्नवियों के आधार पर गई। अनुवादकों में खुशनूद, रुस्तमी, निशाती, गुलाम अली तथा तथा वज्दी विशेष विख्यात हैं। इन में से अधिकतर कवियों ने फ़ारसी की मस्नवियों के अनुवाद किये। गुलाम अली ने पद्मावत के फ़ारसी अनुवाद का दक्खिनी में भाषान्तर किया। इन अनुवादों में प्रकीर्ण रूप से विद्यमान नीति-काव्य का स्वरूप वही है जो मौलिक रचनाओं के नीतिकाव्य का, अत: उसकी चर्चा अनावश्यक है। हाँ, वज्दी की 'पंछी-वाचा' या 'पंछीनामा' एक उल्लेख्य नीति-बहुल अनूदित रचना है।

दक्खिनी की रीतिकालीन रचनाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इनमे इतर-प्राणि-विषयक नीति का तो अभाव-सा ही है, शेष सभी प्रकार की नीति थोड़ी-बहुत विद्यमान में। इतर-प्राणि-विषयक नीति के प्रायिक अभाव का कारण यह है कि मुसलमान प्राय: प्राणि-वध और मांस-भक्षण को घृणित नही मानते। शेष प्रकार के नीति-काव्य का दिग्दर्शन निम्नांकित पंक्तियों से सहज ही हो जायेगा।

वैयक्तिक नीति

(क) शारीरिक नीति—

मानवीय शरीर के सम्बन्ध में दो प्रकार के विचार दिखाई देते हैं। ज्ञान का भांडार और साधना का आधार होने के कारण कही पर तो उसे महत्त्वपूर्ण कहा गया है और कही पर उसके अन्तिम परिणाम को दृष्टि मे रखते हुए तुच्छ। वस्तुत: यह तुच्छता का उल्लेख भी इसी कारण से है कि देही देह के अभिमान में चूर होकर अनीति-मार्ग में प्रवृत्त न हो जाए। जैसे—

(क) यो जग है जदीद आदमी आद।
इस घर को यो आदमी ही बुन्याद ॥
इस आदमी बीच क्या कमी है।
सद ग्यान की सूरत आदमी है ॥[1] (बहरी)

---

१. सं. मुहम्मद हफ़ीज सय्यद : कुलियाते बहरी (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १९३९), पृष्ठ ७५।

(ख) यह माटी के तन कूं तूं सिगारता की,
उसे चुप खिलाता है के दूध और घी।
निकल जाएगा तन सूं जिस वक्त पर जी,
रहेगी वह आखिर कूं माटी की माटी ।।
मिथा बूज कर चुप यह झूठा जमाना।
अरे मन नको रे नको हो दिवाना ।।[२]
(तुराव दखनी)

शरीर में उदर एक ऐसा अवयव है जिसकी पूर्ति के विना जीवन असम्भव है। उदरपूर्ति के लिए मनुष्य को नाना नाच नाचने पड़ते है। उसका अधिकतर समय इसी चिन्ता मे व्यतीत हो जाता है और परमार्थ-चिन्ता के लिए समय ही नहीं बचता। संत अमृतराय 'सुदामा चरित्र' में कहते है—

हमेशा फिकिर पेट की है लगी।
जिकिर याद मौला नहीं बंदगी ।।
गुन्हेगार बंदा फिरे दर्बदर।
गिरफ्तार हो कर हुआ बेखबर ।।
किधर दीन दुनिया किधर है खुदा।
सबब पेट की मांगता है गदा ।।[३]

वाणी के प्रयोग के सम्बन्ध में रीतिकालीन दक्खिनी कवियों ने बहुत सुन्दर तथा उपयोगी बातें कही हैं। मनुष्य की बुद्धि, गुण और दोष सब वाणी से अनुमित हो जाते है, इस बात का उल्लेख 'फायज़' ने अपनी मस्नवी 'रजवाँ शाह व रूह-अफजा' में इन शब्दों में किया है—

समझ आदमी का दिसे बात में।
पड़े ऐब सब भार इसी सात में ।।
बड़ी बस्त है आदमी में जवां।
कि सारा हुनर ऐब करती अयां ।।
समझ बात करना भी आसां नहीं।
समझ ग्यान नें जिस में इन्सां नहीं ।।[४]

उत्तम शिक्षा से पूर्ण वाणी रत्नों से कम मूल्यवती नहीं होती; इसलिए उपदेश उसी व्यक्ति को देना उचित है जो उसका अधिकारी हो। 'किस्सा परहेजगार व शैतान' में रहमनी का कथन है—

बुरे कूं पहले पंद सूं खबर।
गधा क्या बूझे क्या जाफ़रान की कदर ।।
यो बिन मोल गोहर कि जिस नांव पंद।
तुझे मुफ्त देता हूँ रख जिव जतन ।।[५]

'बहरी' की शिक्षा तो यह है कि मनुष्य का मुख खुलना ही तब चाहिए जब सत्यभाषण करना हो, क्योंकि मिथ्याभाषण के समय तो धरा और गगन भी कंपित हो जाते हैं —

मत खोल अगर जो खोलना है
तब खोल जो सांच बोलना है ।।
यक झूठ सों दो जहां लरजता।
धरती सो मिल आसमां लरजता ।।[६]

इनके अतिरिक्त प्रभु-नाम के स्मरण से जिह्वा उच्च पद प्राप्त करती है, डींग मारने से पतित होती है आदि वाग्विषयक अन्य नीतियों का भी उल्लेख यत्र-तत्र किया गया है।

(ख) मानसिक नीति—

बुद्धि तथा विवेक की प्रशंसा इन काव्यों में अनेक स्थलों पर की गई है। बुद्धि मनुष्य के मनुष्यत्व का आधार है, उसकी कठिनाइयों के निवारण का साधन है तथा वार्द्धक्य-जनित कुरूपता मे उसके रूप की रक्षक है—

अछे नांव इन्सान कूं अक्ल सात।
जानवर भी करता है सिकलाए बात ।।
अछे अफ्ज़ल यक दौलते नापदीद।
अछे अक्ल मुश्किल के हल की कुलीद ।।
अछे अक्ल कसवत हया की अनूप।
देवे अक्ल पीरी के जीने को रूप ।।[७]

---

२. श्रीराम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य; पृष्ठ २५४।
३. विनयमोहन शर्मा : हिन्दी को मराठी संतों की देन।
४. सं. सय्यद मुहीउद्दीन कादरी : उर्दू शहयारे (हाला पब्लिशिंग हाऊस, किताब घर, दिल्ली, १९२९ ई.) पृष्ठ २५३।
५. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृष्ठ ३४९।
६. कुलियाते बहरी, पृष्ठ ७०।
७. नस्रती: मस्नवी गुल्शने इश्क (अंजुमन तरक्की उर्दू, कराची. १९५२ ई॰) पृ. ३२ ।।

कार्यारम्भ के पूर्व उसके भले-बुरे परिणामों की चिन्ता पहले ही करना उचित है, क्योंकि ऐसा किए बिना बहुत हानि होने की सम्भावना होती है। 'तब्रई' अपनी 'मस्नवी बहरामो गुलन्दाम' में कहते हैं—

तू अंदेशा हर काम में मौत कर।
कि अंदेशा है मौत हाली गोहर॥
कर अंदेशा हर काम में बिहिसाब।
कि अंदेशा बिन काम होता खराब॥[८]

काव्य के महत्त्व का वर्णन करने में न इन कवियों की जिह्वा थकती है, न कलम रुकती है। वस्तुत: काव्य एक ऐसा उपवन है जिसमें सदा वसन्त रहता है और जिसकी वायु से लोगों के हृदय-रूपी आराम भी सदा आह्लादित रहते हैं—

सखुन का सदा सब्ज गुलजार है।
सखुन का सदा गर्म बाजार है॥
रखनहार सरसब्ज दिल का चमन।
सखुन है सखुन है सखुन है सखुन॥[९] (सनअती)

काव्य का कलापक्ष भी निस्सन्देह उपेक्ष्य नहीं होता तथापि उसकी आत्मा तो रस या भाव ही है, इस बात को नस्रती ने 'अलीनामा' में स्पष्ट स्वीकार किया है—

फसाहत है गर शेर के वन का रूप।
वले शेर का जिउ है मजमूं अनूप॥
मुअजिज है तन जीव धरता है जो।
न बे-जां की सूरत को पीना हे धो॥[१०]

(ग) आत्मिक नीति—

भक्तिकालीन दक्खिनी के कवियों के समान रीति-कालीन कवियों का भी मुख्य विषय प्रेम है। प्रेम का महत्त्व, प्रेम से बुद्धि की पराजय, वियोग और धैर्य का वैर, विरहाग्नि द्वारा अमरत्व-प्राप्ति है, लौकिक प्रेम द्वारा प्रभु प्रेम की प्राप्ति आदि प्रेम-सम्बन्धी अनेक विषयों का वर्णन इन वाक्यों में किया गया है। जैसे :—

करनहार अमृत को शर्मिन्दा इश्क।
धरे नांव सो जग में नित जिंदा इश्क॥
दीवा राह का तुझ सो काला दिसे।
अँधारा च तेरा उजाला दिसे॥
तेरा खार बेहतर है गुलजार से।
तेरा वर है दीवाना हुश्यार से॥[११] (नस्रती)

यश, यश-प्राप्ति के साधन, यशोहीन जीवन की निष्फलता आदि पर भी इन कवियों ने बहुत लिखा है। जहाँ वे अपनी रचनाओं से अपनी कीर्ति अमर कर जाने के आकांक्षी थे, वहां शासकों को भी कीर्ति-प्राप्ति के लिए कवि-सम्मान करने की प्रेरणा करते थे। जैसे—

(क) मुझे दीन दुनिया में इज्जत सूं काम।
वुजूं बेहयाई का जीना हराम॥[१२]
(ख) सुखनवर ते रह गए जमाने में याद।
फरीदों क्या नहीं तो क्या कैकबाद॥ (नस्रती)
सिफत कर गया गर सुखन आफरीं।
अझों लग है रुस्तम पै नित आफरीं॥[१३]

शिष्टता तथा मर्यादा-पालन पर विशेष बल दिया गया है तथा स्वेच्छाचारिता और निर्लज्जता की बहुत निन्दा की गई है। यथा—

(क) बुजुर्गां सूं चलता जो कुई बेवजा।
सो दर हाल पाता है अपनी सजा॥
जो कुई आसमां पै उड़ाता है खाक।
वही खाक सर पर हो बेशक हलाक[१४]॥
(ख) अपस कूं अपी जिन सिखाया अदब।
वही जग में है खास मकबूल रब[१५]॥

---

८. उर्दू शहयारे, पृ. २४८।
९. सनअती : किस्सा बेनजीर (सिल्सिल यूसफिया १३५७ हि.) पृष्ठ १६।
१०. सं. डा. अब्दुलहक : मुल्ला नस्रती (अंजुमनतरक्की उर्दू, नई दिल्ली) पृष्ठ २१७।
११. वही, पृष्ठ ३६।
१२. नस्रती : मस्नवी गुलशने इश्क, पृष्ठ ६।
१३. सं. अब्दुलहक : मुल्ला नस्रती, पृष्ठ २०६।
१४. सनअती : किस्सा बेनजीर, पृष्ठ ८६॥
१५. वही पृष्ठ ८७॥

(ग) होना है जो दोस्त धरम का हो।
होना जो शरीक शरम का हो[१६] ॥

जैसे कूप, वापी आदि परोपकार के कार्यों की प्रेरणा तो हिन्दू-रचनाओं मे प्राप्त होती है, वैसे ही कब्रें खुदवाने की प्रशंसा मुस्लिम कृतियों में। यथा :—

कबर कोई खुदा वास्ते जो खुदाय।
खुलासा में है वां महल एक पाय ॥[१७]

(शाह मुहम्मद)

इनके अतिरिक्त, हितकर बात दीवार पर लिखित हो तो भी ग्राह्य है, प्रभु से मित्रता निर्भयता का साधन हैं, आदि अन्य आत्मिक नीतियों उल्लेख भी जहां-तहां लक्षित होता है।

पारिवारिक नीति :—

यद्यपि इस काल में भी दक्खिनी की कुछ रचनाओं में जगत् और घर को धंधा, सम्बन्धियों को झूठा तथा मृत्युकाल में असहायक आदि कहा गया है तथापि ऐसे पद्यों की भी कमी नहीं जिन में पति, सुपत्नी, कुपत्नी, ननद, भावज आदि सम्बन्धियों के सम्बन्ध में अनेक सुन्दर नीतियों का उल्लेख पाया जाता है। शाहमियाँ तुराब दखनी, 'रिसाला बारा बहार' में मन का उद्बोधन करते हुए यों कहते हैं :—

जिये लग तो जोरु बचे प्यार करते।
मोये पर तो मुर्दा ककर जी में डरते,
तेरे सात हर्गिज़ नहीं कोई मरते,
तुझे गाड़ माटी में सारे बिसरते।
ये ऐसा है परपंच झूटा जमाना।
अरे मन नको रे नको हो दिवाना ॥ (तुराब दखनी)

पति की आज्ञाकारिणी पत्नी सब से साधुवाद प्राप्त करती है और स्वामी के हृदय को दुःखित करने वाली भार्या सब ओर से धिक्कार—

नबी फ़रमाये जो औरत शरम सूं।
जो अपने मर्द के चलते हुकम सूं ॥
जो औरत मर्द कूं रखते हैं खुशहाल।
सवाब है हक़ में उस औरत के ऊपर आल ॥
जो दूसरी कोई औरत होय हरामी।
मरद का दिल दुखाती है मुदामी ॥
कयामत लग जो लानत उस पो नाज़िल।
दुखाते हैं जो औरत मर्द का दिल[१८] ॥

(कदरे आलम)

पुरुष के वैवाहिक जीवन की सारी प्रसन्नता पत्नी के साधुत्व पर निर्भर है। जिसे साध्वी जीवन-संगिनी प्राप्त हो गई उसके लोक-परलोक सुधर गए, अन्यथा प्रलय-पर्यन्त दुःखाग्नि में जलना ही है—

भली धन सो दुनिया में है यक बहिश्त।
जहन्नुम की है नार सो नार ज़श्त ॥
बुरी नार कुछ जहर ते कम नहीं।
होर अमृत सुलच्छन के सरजम नहीं ॥
जो जिस मर्द की घर बुरी नार होय।
कयामत तलक दिल पै तिस भार होय ॥
दोनों जग में जीता है वह बख्तवर।
खुदा जिसको जोरू दिया खुशसियर[१९] ॥

(नस्रती)

जो पत्नी पर-पुरुष से प्रेम करती है, उसे जो भी दण्ड दिया जाय कम है—

जो खालिस मुहब्बत करे कोई यार।
तो औरत ओ पकड़े सटी उसके मार ॥
करूँ इब्तदा उसका खाना खराब।
न खाने कूँ रोटी न पीने कूँ आब ॥
फिरे भई परेशान हो खार जार।
जिधर जाय उधर सूँ होय मार मार[२०] ॥

इसी प्रकार निखट्टू पुरुष और फूहड़ स्त्री से घर नष्ट हो जाता है, ननद के आने पर भावज को बुखार चढ़ जाता है, आदि नीतियां भी यत्र-तत्र लिखित हैं[२१]। (शेष अगले अंक में)

१६ कुलियाते बहरी पृष्ठ ७२ ॥
१७ दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृष्ठ २९३ ॥
१८. वही, पृष्ठ २१० ।
१९. नस्रती : गुल्शने इश्क, पृष्ठ २११-२१२ ।
२०. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृष्ठ २३३ ।
२१. वही, पृष्ठ ३१०, ३९२ ।

गीता की चार अज्ञात संस्कृत टीकाएँ

[श्री अगरचन्द नाहटा]

भगवद्गीता एक ऐसा ग्रन्थ माना जाता है जो सब धर्मों के समन्वय और सारभूत तथ्यों से ओत-प्रोत होने के कारण सर्वाधिक मान्य व प्रचारित धर्म-ग्रन्थ है। उसके पाठ के सम्बन्ध में कुछ मतभेद रहा है, सम्भवत: मूल-रचना में कुछ परिवर्तन-परिवर्धन भी हुआ हो, क्योंकि कई जैन-ग्रन्थों में भी गीता के ऐसे पाठ उद्धृत हैं जो प्रकाशित गीता में उस रूप में नहीं मिलते। गीता के शंकरभाष्य की प्राचीनतम प्रति जैसलमेर के बृहद् जैन ज्ञान-भाण्डार में है वहां की ताड़पत्रीय प्रति १२वीं शताब्दी की लिखी हुई है। इससे पहले की कोई प्रति कहीं प्राप्त हो तो मेरी जानकारी में नहीं है।

गीता महाभारत का अंश है और महाभारत के मूल व प्राचीन पाठ सम्बन्धी खोज पूना के महाभारत-सम्पादन कार्यालय द्वारा कई वर्षों से हो रही है। उन्होंने गीता के मूल पाठ के सम्बन्ध में क्या खोज की व निर्णय किया वह मुझे मालूम नहीं। गीता पर शंकरभाष्य से पहले की कोई टीका शायद प्राप्त नहीं है। इसके बाद संस्कृत में करीब १५-२० टीकाएँ रची गई और उनमें से अधिकांश प्रकाशित भी हो चुकी हैं। हिन्दी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी आदि अन्य भाषाओं में सैकड़ों टीकाएँ लिखी गई और अब भी लिखी जा रही हैं। कुछ वर्ष पूर्व मैंने गीता की राजस्थानी टीकाओं की खोज की थी तो अब तक गद्य और पद्य में राजस्थानी टीका व अनुवाद एक दर्जन के करीब प्राप्त हुए। १६वीं शताब्दी से हिन्दी में पद्यानुवाद होने प्रारम्भ हुए और हिन्दी के दस-पन्द्रह प्राचीन पद्यानुवाद व भाषा-टीकाएँ मुझे प्राप्त हैं। इधर तीस वर्षों में गीता का बहुत ही प्रचार हुआ, तिलक के विस्तृत विवेचन करने के बाद महात्मा गांधी आदि अनेकों विद्वानों एवं विचारकों ने अपने-अपने ढंग से विवेचन लिखे हैं उन में से कई तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

जैन-ग्रन्थों में गीता-सम्बन्धी कुछ उल्लेख मिलते हैं उनके सम्बन्ध में सरस्वती पत्रिका में श्री कस्तूरमल जी बांठिया और मेरा लेख छप चुका है। जैन मुनि सन्तबाल जी ने 'जैनदृष्टीय गीता' नामक गुजराती में विवेचन लिखा जो दो भागों में प्रकाशित हो चुका है।

गीता के निम्नोक्त संस्कृत टीकाओं के प्रकाशन की जानकारी मुझे गीता प्रेस गोरखपुर से प्राप्त हुई है।

टीका नाम		टीकाकार	प्रकाशक
(१) तत्त्वार्थप्रकाशिका	(संस्कृत)	केशव काश्मीरी भट्टाचार्य	गुजराती प्रिंटिंग प्रेस
(२) गूढार्थदीपिका	,,	मधुसूदन सरस्वती	,,
(३) तात्पर्यबोधिनी	,,	स्वामी शंकरानन्द	,,
(४) सुबोधिनी	,,	श्रीधर स्वामी	,,
(५) भावप्रकाश	,,	सदानन्द	,,
(६) भाष्योत्कर्षदीपिका	,,	धनपतिसूरि	,,
(७) परमार्थप्रथा	,,	दैवज्ञ पण्डितसूर्य	,,
(८) अर्थसंग्रह	,,	राघवेन्द्र	,,
(९) शंकरभाष्य (आनन्दगिरि-व्याख्यायुत)	,,	आचार्य शंकर	निर्णयसागर प्रेस बम्बई
(१०) नीलकंठी	,,	नीलकंठ	,,
(११) अभिनवगुप्ताचार्यव्याख्या	,,	आचार्य अभिनव गुप्त	,,
(१२) आनन्दतीर्थ (मध्व) भाष्य	,,	आचार्य मध्व	,,
(१३) गूढार्थतत्त्वालोकसहित	,,	श्री धर्मदत्त (बच्चा) झा	,,

टीका नाम		टीकाकार	प्रकाशक
(१४) आनन्दगिरि टीका सहित	(संस्कृत)	आनन्दगिरि	गुजराती प्रेस बम्बई
(१५) जयतीर्थकृत प्रमेयदीपिकासहित	,,	जयतीर्थ	,,
(१६) रामानुजभाष्य	,,	आचार्य रामानुज	,,
(१७) वल्लभसंप्रदायानुसारिणी (अमृततरंगिणी)		पुरुषोत्तम	,,

बैंकटेश्वर प्रेस से चिद्‌घनानन्दजी की भाषा-टीका भी छपी है। भाषा-टीकाएँ तो और भी बहुत-सी छप चुकी है। अब जो चार ऐसी संस्कृत टीकाएँ जिनका नाम उपरोक्त सूची में नहीं आया, मेरी खोज में प्राप्त हुई उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है। इनमें से दो टीकाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर और अन्य दो प्रतियां हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के संग्रह में है।

(१) भगवद्‌गीता टीका कृष्णाचार्य (तिरमल्लाचार्य के पुत्र) पत्र २७३, प्रति नं. १३भ, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी।

(२) श्रीमद्भगवद्‌गीतार्थविवरण विश्वेश्वरतीर्थ पत्र ९५ (२५-१३०) बीच के ६५-७५ और ९५, ९६ भी कम है) प्रति नं. १३६६।

(३) नं. ८५४ व १२२३ भगवद्‌गीता टीका पंचौलाचार्य पत्र १८३ साइज १२×६" अपूर्ण सं. १७५० लिखित, हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

(४) नं. १९४१ व ४०८७, भावप्रकाशिका टीका, कृष्णदास, पत्र ३६०, साइज १५×७½", अपूर्ण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

गीता की बहुत-सी सचित्र प्रतियां भी मिलती हैं जिनमें से कइयों में तो थोड़े-से चित्र ही होते हैं और कुछ प्रतियां ऐसी भी हैं जिनमें काफी संख्या में चित्र मिलते है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की एक प्रति में ७५ चित्र है। हमारे संग्रह में भी पंजाबी शैली की कई चित्रित प्रतियां है। इधर कुछ वर्षों में कई उच्चकोटि के कलाकारों ने गीता के भावों को लेकर अनेकों बड़े साइज के सुन्दर चित्र बनाए है। ऐसे चित्रों की एक संग्रह पुस्तिका प्रकाशित हुई मैने देखी थी। कई मन्दिरों व भवनों में भी गीता-सम्बन्धी सुन्दर चित्र देखने को मिले। इससे गीता की लोकप्रियता व प्रचार का भली भांति परिचय मिल जाता है। गीता की अन्य अज्ञात संस्कृत टीकाओं की जानकारी प्रकाश में आनी चाहिए। ●

ईश्वर के प्रति

[श्री कन्हैयालाल पाराशर]

बिना भित्ति के चित्र बनाए कैसे तूने चतुर चितेरे।
तू निर्गुण है फिर भी सब क्यों गाते फिरते हैं गुण तेरे॥

चिदानन्द घट-घट में तू है, पर शायद मेरा घट सूना।
यदि मेरे घट में तू होता क्यों निशि-दिन दुःख बढ़ता दूना॥

मुझको अपने पास बुला ले या मन-मंदिर में आ मेरे।
तू निर्गुण है फिर भी सब क्यों गाते फिरते हैं गुण तेरे॥

जल, मरुथल, मानव, दानव, पशु, तूने जग के रूप बनाये।
सब का पालन करने वाला विश्वंभर भी तू कहलाये॥

तुझ-से माली के रहते भी सूखे-तरु-से क्यों कुछ चेहरे।
तू निर्गुण है फ़िर भी सब क्यों गाते फिरते हैं गुण तेरे॥

क्या तेरे गुण गाने वालों को ही सुख-संसार मिला है।
करें चिरौरी जो नहीं तेरी उनको दुःख का भार मिला है॥

मुख में राम बगल में छुरि ले क्या मैं भी आऊँ दर तेरे।
तू निर्गुण है फिर भी सब क्यों गाते फिरते हैं गुण तेरे॥

संक्षिप्त जीवनी—

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय

[श्री मोहनलाल]

लाजपतराय का समय—

१९सवीं सदी भारत के इतिहास में एक अन्धकार का समय था। चारों ओर भयंकर अध:पतन के चिह्न दिखाई देते थे। दक्षिण में मराठों की शक्ति, उत्तर में अवध के नवाबों की, दिल्ली में कठपुतली मुगलों की और पंजाब में सिक्खों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। सन् १८५७ के विद्रोह में राष्ट्र की बची-खुची शक्तियों ने उभरने की चेष्टा की। एक प्रकार का विप्लव हो गया। कानपुर, दिल्ली, मेरठ, लखनऊ आदि स्थानों में मामूली हल्ला हुआ। मरते आदमी की तरह देश सटपटाया और निष्प्राण हो गया।

यदि भारत में अंग्रेज़ों का प्रभुत्व केवल राजनीतिक रहता, तो कोई हानि न होती। जिसने उसको डरावना रूप दिया वह देश का आर्थिक दासत्व था। इस नए दासत्व की प्रेरक शक्ति औद्योगिक क्रान्ति थी जिससे उत्पादन के साधन एकदम बदल गए। शारीरिक श्रम का स्थान यान्त्रिक शक्ति ने ले लिया, कल-कारखानों का संचालन भाप और विद्युत् की शक्ति से होने लगा। दिनों और घण्टों का काम चन्द मिनटों में सम्पन्न होता दिखाई दिया। औद्योगिक क्रान्ति ने यूरोप में जन्म लिया और औद्योगिक ज्वारभाटा की तरह भारत की ओर बढ़ी।

मुसलमानों ने इस देश पर आठ-नौ सौ साल राज्य किया। यह औद्योगिक क्रान्ति के पहले का समय था। परन्तु उनके शासन-काल में आर्थिक और सामाजिक जीवन का जैसे पहले ढांचा था वैसे-का-वैसा बना रहा। कृषिप्रधान देश में ग्राम्य जीवन, खेती के साधनों और उद्योग-धन्धों की रूपरेखा वही रही जो हज़ारों सालों से चली आती थी। अंग्रेज़ों के शासन की विशेषता यह थी कि उसने राष्ट्र के मर्मस्थलों पर आघात किया और उसके हर पहलू पर अंग्रेज़ के प्रहार पड़े।

इंगलैण्ड प्रभृति उद्योगप्रधान देशों में बने हुए सस्ते माल से भारत की मंडियां भर गई। एक-एक करके कुटीर या घरेलू धन्धे नष्ट होते गए। पहले कपड़े के उद्योग का नाश हुआ और फिर चमड़े के उद्योग का। बहुत जल्दी सुई जैसी छोटी-सी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हम लोग दूरवर्ती देशों पर आश्रित हो गए।

जुलाहे, मोची आदि कारीगर श्रेणी के लोग अपने पूर्वजों के धन्धों से वंचित हो और प्यारे ग्रामों और घरों का परित्याग कर हज़ारों और लाखों की संख्या में कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली, बम्बई जैसे शहरों में, जहां नए ढंग के कल-कारखाने लग रहे थे, रोज़गार की तलाश में भटकने लगे। भारत की आत्म-सन्तुष्ट इकाई का, जिसमें हर इलाका अपनी ज़रूरतें आप पूरी करता था, अन्त हुआ। हमारी चिरकालीन मान्यताओं और परम्पराओं में भी परिवर्तन आया।

यातायात के साधन बदले। बैलगाड़ी की सभ्यता का अन्त हुआ। रेलों, सड़कों और डाक-तार की सुविधाओं ने जीवन को वेगवान् बना दिया। सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक प्रकार की मौलिक एकता इस देश में प्राचीन काल से चली आती थी। नई स्थिति में खान-पान, रहन-सहन और विचारों में समानता आई और देश के दूरवर्ती प्रदेश एक-दूसरे के समीप आए। पहली बार भारतवासी राजनीतिक तौर पर अनुभव करने लगे कि भारत एक है।

बदलती दुनिया में भारत की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक धारणाओं में तबदीली आई। प्राचीन और नवीन जीवन की धाराओं का संगम हुआ। एक नए जीवन का स्रोत बहने लगा। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में इस नवजीवन के प्रतीक राममोहन राय, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस और उनके प्रतिभाशाली शिष्य विवेकानन्द थे।

राममोहनराय इस मत के थे कि सब मजहबों और सम्प्रदायों को एक सूत्र में बांधने में भारत का कल्याण होगा। वह आयुपर्यन्त यत्नशील रहे कि सब मतमतान्तरों की अच्छी बातें लेकर एक नए धर्म के समाज की रचना की जाए जिसका नाम उन्होंने ब्रह्म-समाज रखा।

राममोहनराय के उत्तराधिकारी केशवचन्द्र सेन हुए। केशव बाबू के नेतृत्व में ब्रह्मसमाज पर ईसाइयत का रंग चढ़ा। कलकत्ता के अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे युवक पश्चिमी सभ्यता के अन्ध पुजारी बन गए। वे अंग्रेज़ी लिबास, हाव-भाव, रहन-सहन, बोल-चाल और खान-पान की नकल करने लगे। स्वदेश की हर वस्तु के प्रति उनमें घृणा पैदा हो गई।

कलकत्ता के समीप हुगली के उस पार दक्षिणेश्वर में परमहंस रामकृष्ण हुए। परमहंस की सादगी, भक्ति-भाव, आध्यात्मिकता की ओर लोग आकर्षित हुए। उनके लोक-भाषा में वेदान्त के उपदेश जनता को प्रिय लगे। पश्चिम की अन्धाधुन्ध नकल में कुछ उपराम आया।

परमहंस के श्रोताओं में प्रमुख, कलकत्ता के कालिज के विद्यार्थी, नरेन्द्रनाथ थे। वह परमहंस के जीवन से इतने प्रभावित हुए कि घर-बार का परित्याग कर संन्यासी हो गए और विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। परमहंस की पुण्य-स्मृति में विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिसके संन्यासी परमहंस के सन्देश को देशदेशान्तर मे ले गए। भारतीयों में अपनी संस्कृति और इतिहास पर गौरव करने की भावना जागृत हुई।

गुजरात काठियाबाड़ में दयानन्द ने जन्म लिया। दयानन्द हिन्दु समाज में धार्मिक सुधार करना चाहते थे। उन्होंने हिन्दुओं की रूढियों, कुरीतियों और अन्ध विश्वासो पर जबरदस्त कुठाराघात किया। मूर्तिपूजा, बालविवाह, जातपात, मृतक श्राद्ध आदि की कुप्रथाओं का खण्डन करके उन्होंने प्राचीन वैदिक धर्म को फिर से जीवित करने का प्रयत्न किया। इस काम के लिए दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की।

यह जागृति धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रही। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी इसके प्रकाश-चिह्न प्रकट हुए। भारत की प्रदेशीय भाषाओं में नवजीवन आया और उनमें कहानी, उपन्यास, नाटक और काव्य-साहित्य का निर्माण आरम्भ हुआ।

अंग्रेज़ों ने भारत पर प्रभुत्व नया-नया जमाया था। उनका आतंक इतना था कि उनके साथ सीधी टक्कर लेनी आसान बात न थी। इसलिए व्यावहारिक यही हो गया कि पहले राष्ट्र को जागृत करने की प्रवृत्तियों को धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों तक सीमित रखा जाए और इस प्रकार के काम किए जाएँ जिनसे राजनीति की गन्ध न आए।

१९वीं सदी के उत्तरार्ध में तिलक, मालवीय, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय, गोखले, गांधी, अरविन्द घोष आदि नेताओं ने जन्म लिया जो भारतीय जागृति के अग्रणी बने। देश के क्षितिज पर फिर से उषाकाल की लालिमा आई। भारत के उज्ज्वल भविष्य की झलक दिखाई देने लगी।

लाजपतराय इन्हीं पथप्रदर्शकों में थे जिन्होंने पंजाब में नव जागरण की नीव रखी। उनकी राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि बड़ी व्यापक थी। पंजाब की उन्नति के हर क्षेत्र में उनका हाथ रहा। धर्म या समाज-सुधार, शिक्षा-प्रसार, आर्थिक उन्नति, राजनीति आदि राष्ट्र के निर्माण के हर अंग को उन्होंने सबल किया। उभरती जवानी में स्वामी दयानन्द के महान् व्यक्तित्व से प्रभावित हो लाजपतराय ने देश-सेवा का व्रत लिया था। मरणपर्यन्त वे इस व्रत के व्रती रहे। जिसको उन्होने स्वधर्म समझा, उसका पालन करते हुए ही उनका निधन हुआ।

कुल-परिचय—

लाजपतराय का जन्म २८ जनवरी १८६५ को अपने ननिहाल गांव ढुडिके मे हुआ था। यह गांव मोगा से १२ मील और जगरांव से १० मील की दूरी पर है। लाजपतराय के पूर्वज जगरांव में रहते थे।

लाजपतराय का जन्म एक साधारण अग्रवाल बनियों के परिवार में हुआ था। इस परिवार को मलेरिया बनियों के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। यह उपनाम शायद इसलिए पड़ा था कि लाजपतराय का कोई एक पूर्वज मलेरकोटला से जगरांव आकर बसा होगा।

लाजपतराय के दादा बहुत साहसी, समझदार तथा मिलनसार स्वभाव के थे। साहसी इतने थे कि वह प्रवास के लिए हर समय तैयार रहते थे। उनको महाजनी या लण्डों के अतिरिक्त किसी भाषा का ज्ञान न था। पंजाब में अंग्रेज़ के शासनकाल के आरम्भ में वह लाहौर के समीप किसी गांव में पटवार के पद पर नियुक्त थे।

बनियों की मर्यादा के अनुसार लाजपतराय के पितामह हर ढंग से पैसा कमाते थे। वे अपने कर्म-धर्म के बहुत कट्टर थे। जैनियों के उस सम्प्रदाय पर उनकी निष्ठा थी जो मुँह पर कपड़ा बांधे रहते है। अपने सम्प्रदाय के साधु-सन्तों की सेवा करने में उन्हें प्रसन्नता होती थी।

लाजपतराय की दादी उनके बाल्यकाल में जीवित थीं। उनको २० तक गिनती नहीं आती थी। ज़माना इतना सीधा-सादा था कि उन्होने घर पर कभी ताला नहीं लगाया। रुपए-पैसे से उन्हें मोह न था। वह दानशील स्वभाव की थी। उनके पति जो चीज़ घर लाते, वह गली-मुहल्ले में अक्सर बांट देती थीं। बच्चों के साथ बच्चा बन उनके साथ कौडियां खेलने लग जातीं। हाथ पर रोटी-तरकारी रख कर खाना उन्हें प्रिय था।

लाजपतराय के पिता राधाकिशन थे। वह अध्यापक बनने पर मुन्शी राधाकिशन कहलाये। यह एक संयोग की बात है कि मुन्शी जी का जन्म उसी वर्ष अर्थात् १८४५ में हुआ जब मुदगी के मैदान में अंग्रेज की सिखों के साथ लड़ाई हुई और पंजाब में उनका प्रभुत्व जमने लगा। यह भी कम संयोग की बात नहीं इसी मुन्शी राधाकिशन के पुत्र हुआ जिसने आयुपर्यन्त अंग्रेज के साथ संघर्ष किया।

राधाकिशन की प्राथमिक शिक्षा जगरांव के अरबी-फारसी के मदरसे में हुई थी। मदरसे के हैडमास्टर एक मौलवी साहब थे जो कट्टर मुसलमान और उँचे चरित्र के व्यक्ति थे। उनकी छाप शिष्यों पर अपने-आप पड़ जाती थी। उनके शिष्यों के साथ गहरे सम्पर्क का परिणाम यह निकला कि अधिकांश शिष्य मुसलमान हो गये।

मुन्शी राधाकिशन भी नीम-मुसलमान हो गये थे। वह पांच बार निमाज पढ़ते और रोजा रखा करते थे। उल्माओं की संगत उन्हें प्यारी लगती थी। कुरान शरीफ तो उन्होंने बीसियों बार पढ़ा होगा। उनका रहन-सहन, खान-पान, लिबास सब मुसलमानी ढंग का हो गया था। लगभग ४५ साल तक वह इसी रंग में रंगे रहे।

इतना-कुछ करने पर की राधाकिशन पक्के मुसलमान क्यों नहीं बने। इसके दो कारण थे। एक यह कि उनका अपनी सन्तान और खास तौर पर बड़े लड़के लाजपतराय के साथ बहुत प्यार था। उनको डर था कि उनकी पत्नी मजहब के परिवर्तन में उनका साथ नहीं देगी। वह उन्हें छोड़ अपने ससुर के पास या मायके च.ी जायेगी, पर हरगिज मुसलमान नहीं होगी।

दूसरा कारण यह था कि उनकी स्त्री गुलाबदेवी को सहज ज्ञान हो गया था कि पति के रास्ते में विघ्न-बाधाएँ डालने के भयंकर परिणाम होंगे और परिवार के टुकड़े हो जायेगे। इसलिए वह फूंक कर कदम रखती थीं।

राधाकिशन बहुत उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। अपनी पत्नी पर बहुत मनमानी करते थे। इसके लिए गुलाबदेवी को अनेकों कष्ट झेलने पड़े। पति के मुसलमान दोस्तों के लिए अपने घर पर गोश्त बनाया, परोसा और उनके जूठे बर्तन साफ किए। यह एक दिन की बात न थी। बरसों यह क्रम चलता रहा।

आज से सत्तर-अस्सी साल पहले मुसलमानों का किसी हिन्दु के घर पर आना और मांस का सेवन करना एक हिन्दु महिला को कितना दुःखी करता होगा। गुलाबदेवी को बहुत गुस्सा आता था और अपने मे बाहर हो जाती थी। परन्तु परिवार की सुख-शान्ति के लिए जल्दी संभल जाती थीं। उन्होंने अपने पति की अनेकों बातों को सहन किया जिससे उन्हें अन्तरंग घृणा थी।

माता की वेदना का लाजपतराय ने अपनी आत्म-कथा में बहुत मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है।

"मुझ खूब याद है कि मेरे बचपन में वह अपने पति के अत्याचारों पर घण्टों रोया करती थीं। कई दिन तक खाना न खाती थीं और अपने बच्चों को

ले ठण्डे सांस लिया करतीं। अपने पति की सब बुराइयों पर पर्दा डालती थीं, पर लम्बे समय के लिए। उनसे अलग नहीं होतीं।"

लाजपतराय की माता एक सिखों के गांव की लड़की थी। उनके पिता सिख जाटों में लेन-देन और दुकानदारी का काम करते थे। उनके मायके में वर्तमान सिखों की कुछ कट्टरता न थी। उस जमाने के सिखों और हिन्दुओं का पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन समान धारा में बहता था। विवाह-त्यौहार, खान-पान, रीति-रिवाज सब साझे होते थे, पर सर्वोपरि मान्यता ग्रन्थ साहब को होती थी।

विवाह के पश्चात् गुलाबदेवी की अपने मायके की धार्मिक और सामाजिक मर्यादाओं पर निष्ठा बराबर बनी रही। अन्तर केवल यह आया कि पति के इस्लाम-प्रेम के कारण वह अपनी कुल की परम्पराओं का पालन लुक-छिप कर करती थीं।

गुलाबदेवी और राधाकिशन की आपस की तनातनी ४० वर्षों तक चलती रही। यह कल्पना नहीं की जा सकती कि उनका घरेलू जीवन कितना नारकीय रहा होगा। उसमें सुखमयी घड़ियां तभी आई जब लाजपतराय ने कमाना शुरू किया।

राधाकिशन ने जगराव के मदरसे से निकल कर अध्यापक बनने के इरादे से नार्मल की परीक्षा पास कर ली थी। वह पंजाब के शिक्षा-विभाग में २५ रुपये मासिक पर अध्यापक नियुक्त हुए। एक रुपया साल की तरक्की होनी थी। दस साल की नौकरी के बाद उनका ३५ रुपये वेतन हुआ। इधर कुटुम्ब बढता गया। राधाकिशन के दस बच्चे हुए जिन मे ज्येष्ठ लाजपतराय थे। ६ बच्चे जीवित रहे।

लाजपतराय का बचपन बहुत परेशानियों और मुसीबतों में बीता। घर की कठिनाइयों ने बहुत जल्दी उन्हे सयाना बना दिया। माता-पिता के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को वह शीघ्र अनुभव करने लगे।

हर-एक पुरुष को कुछ-न-कुछ विरसे में अपने माता-पिता से मिलता है। माता-पिता से कौन से गुण लाजपतराय में आये।

"दान, आतिथ्य, उदारता के गुण मुझमें माता से आये। उनके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं। यह स्मरण करके मुझे खुशी होती है कि जब कोई ज्योतिषी या मित्र मेरी माता से कहता कि तुम्हारा पुत्र बड़ा ज्ञानी होगा, तो वह फूले न समाती थीं। उनका जीवन दानशीलता और आतिथ्य के लिये आदर्श था। परोपकार के कार्यों में मुझे भाग लेता देख उन्हें गौरव होता था। हर-एक भले काम में वह मेरा प्रोत्साहन करती थीं। दोषों पर पर्दा डालने का उनमें गुण था। किसी छोटे-बड़े का वह दिल नहीं दुखाती थीं। उनमें आत्म-विश्वास इतना था कि किसी मामले में किसी से रियायत लेना उन्हें अच्छा न लगता था। मेरे व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण बहुत-कुछ मेरी माता ने किया।

"अपने व्यक्तित्व के लिये मैं पिता का कम आभारी नहीं। आपने मेरे धार्मिक विचारों को बनाया, मुझमें विद्या का व्यसन पैदा किया और मुझे देश-भक्ति के पाठ पढाए। जो बीज अन्त में फल लाए वह उन्हीं के बोये हुए थे।" ('मेरा देश निकाला' उर्दू, पृष्ठ १२४)

विद्यार्थि-काल—

गरीबी के कारण लाजपतराय का विधिवत् शिक्षण नही हो सका। उनकी प्रचलित स्कूलों और कालेजों मे शिक्षा बहुत कम हुई।

पढने-लिखने का शौक लाजपतराय को पिता मुन्शी राधाकिशन की देन थी।

मुन्शी राधाकिशन दिन-रात पढते रहते थे। उर्दू, हिन्दी, पंजाबी, फारसी या अरबी को जो पुस्तक उनके हाथ पड़ती वह पढ़ डालते थे। यदि कोई पाठ्य सामग्री नही मिली, तो पुरानी पुस्तकें पढ़ने लगते थे। वह हर प्रकार की पुस्तकें पढते थे, परन्तु धर्म और इतिहास में उनकी खास रुचि थी। हिन्दु, ईसाई, इस्लाम, जैन और बौद्ध धर्म का उन्हें विशेष ज्ञान था। कुरान शरीफ तो उन्होंने बीसियों बार पढ़ा होगा। उनकी साहित्यिक परख का परिचय इस बात से मिलता है कि लाजपतराय ने फिरदौसी के "शाहनामा" महाकाव्य का प्रथम पाठ अपने पिता के चरणों में बैठ कर लिया।

ऐसा पठनशील पिता जब अध्यापक बन जाए तो उसकी छाप पुत्र पर क्यों न पड़ती। सोने में सुहागा

मिल गया। लाजपतराय की आठवीं तक पढ़ाई उनके पिता ने कराई। मुन्शी जी किस उच्च कोटि के गुरु थे, इसका बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णन लाजपतराय ने अपनी पुस्तक "राष्ट्रीय शिक्षा" में किया है :—

"अंग्रेजी को छोड़ मिडल तक प्राय: सब-कुछ मैंने अपने पिता से सीखा। शिक्षा के विषय से प्रेम मुझ में मेरे पिता से आया। जीवन में मेरा वास्ता बीसियों अध्यापकों से पड़ा होगा, परन्तु उनसे अच्छा अध्यापक मुझे कहीं नहीं मिला। उनका अपने शिष्यों के साथ सखा-भाव रहता था। वह उनके साथ प्रेम के सम्बन्ध बनाए रखते थे। वह अपने शिष्यों को सर्वस्व देते थे, परोपकार की भावना से नहीं, पर एक साथी के नाते से। रटाने पर उनका जोर न रहता था, बल्कि इस पर कि उनके शिष्य बुद्धिपूर्वक विषय ग्रहण करें। वह पढ़ाते न थे, परन्तु पढ़ाई में विद्यार्थियों की सहायता करते थे।

लाजपतराय की शिक्षा प्राय: उन्हीं स्कूलों में हुई जहां उनके पिता अध्यापक रहे। रोपड़ में वह आठ साल ठहरे। अम्बाला और लुधियाना के मिशन स्कूलों में भी वह पढ़े। १३ साल की आयु में उन्होंने मिडल किया और उनको शिक्षा-विभाग से ७) मासिक वजीफा मिला।

लाजपतराय का स्वास्थ्य कभी अच्छा नहीं रहा। उनका विद्यार्थि-काल प्राय: बीमारी में बीता। मलेरिया, पीलिया, आंखों का आना, एक-न-एक रोग से वह सदा आक्रान्त रहे।

लाहौर का शिक्षा-काल लाजपतराय के जीवन में बड़े महत्त्व का था। वह अपने शिक्षा-काल में सन् १८७८, १८८० और १८८१ में तीन बार लाहौर आये। तीनों बार वह लाहौर के गवर्नमेंन्ट कालेज में ठहरे। यहां का वातावरण मजहबी विचारों की मथनी बन रहा था। तीसरी बार इस कालेज में उन्होंने मुख्तारी या छोटी वकालत की परीक्षा पास की।

लाहौर में पहले ब्रह्मसमाज आया जिसके सन्देशवाहक केशवचन्द्र सेन थे। फिर १८७७ में स्वामी दयानन्द आये और उन्होंने स्वयं लाहौर आर्य-समाज की स्थापना की।

लाजपतराय का तीसरी बार का लाहौर का प्रवास उनके भावी जीवन के लिए निश्चयात्मक बना। इस काल में उनके जीवनपथ की रेखाएँ अंकित हुई जिन पर वह आयुपर्यन्त चलते रहे। तभी उनका संकल्प दृढ़ हुआ कि वह अपना जीवन देश और जाति की सेवा में अर्पण करेंगे। गवर्नमेन्ट कालेज में उनके सहपाठी और मित्र हंसराज और गुरुदत्त भी पढ़ते थे जिन पर आर्यसमाज का गाढ़ा रंग चढ़ चुका था। लाजपतराय भी उसी रंग में रंगे गए। गुरुदत्त भरी जवानी में तपेदिक से ग्रसित हो चल बसे। लाजपतराय और हंसराज की परस्पर मैत्री और सम्पर्क आजीवन बना रहा।

लाजपतराय विद्यार्थि-जीवन के अन्तिम तीन वर्षों में देश-भक्ति की भावनाओं में इतने तल्लीन हुए कि अपनी सुध-बुध भूल गये। लाहौर गये थे डिग्री का कोर्स करने के लिए। घर की आर्थिक कठिनाइयों से बाधित होकर उन्हें मुख्तार बनना पड़ा। उन दिनों में मैट्रिक पास भी मुख्तारी करके छोटी अदालत में वकालत कर सकते थे। वकालत की बड़ी परीक्षा उन्होंने बाद में दी।

लाजपतराय उन विद्यार्थियों की कोटि में न थे जो किताबी कीड़े होते हैं। वह जल्दी ही लोक-सेवा में प्रवृत्त हो बहिर्मुख हो गये। जिन कष्टों में उनको माता-पिता ने पढ़ाया था वह उनसे कभी ओझल नहीं हुए। परन्तु उनको चलायमान करने वाला एक और प्रबल कारण था। वह उनमें देश-भक्ति की भावना का अंकुर स्फुटित होना था।

लाजपतराय का विद्यार्थि-जीवन कभी संतुलित नहीं रहा। देश-भक्ति की भावनाएँ इतने वेग से आई कि वह लिखना-पढ़ना भूल गए। विद्यार्थि-काल में ही वह अपना अधिकांश समय देश-सेवा के कामों में देने लगे। जैसी उनकी भावना थी वैसा ही वह बन गए। (क्रमश:)

★ ★ ★

यह मन महत् कर दो !

[प्रा॰ विद्यानन्दन राजीव]

तुम मुझे कंचन न दो
यह मन महत् कर दो !
और मेरी भावनाओं का गगन
सकरा नहीं, अतिशय बृहत् कर दो !

बीन पर अब वे पुराने
स्वर नहीं भाते,
कान तो सुनते, न—
लेकिन प्राण सरसाते,
अधर को छेड़े नया-सा राग फिर कोई,
राग वह—जो
रजत सलिला में नहाया हो
और पहली किरण के रथ बैठ आया हो,
वह, कि जिसको
मैं न केवल, विश्व भर गाए,
जो सुने, सुनकर—
न पल भर मौन रह पाए।

तुम मुझे कंचन न दो !
यह मन महत् कर दो !
और मेरी भावनाओं का गगन······!

द्वार पर मेरे
बहारों के न भेजो काफिले इतने,
वरन् भेजो रंक पतझर
जो सुने, समझे नये स्वर
वेदना जिसकी पगों को दूर ले जाए,
इस तरह शायद नया-सा—
सत्य कोई सामने आये,
और जो अब तक पड़ा बिलकुल अचेतन
चक्रव्यूहों में थका इंसान मेरा—
वह स्वयं के बिम्ब को पहिचान फिर पाए !

तुम मुझे कंचन न दो
यह मन महत् कर दो !
और मेरी भावनाओं का गगन······ !

स्नेह मेरा पा सके
तुम से विराट् शरीर
बाँध पाएँ—
देश अथवा काल-सीमाएँ न जिसको,
बाँध दे जो एक धागे में
सकल संसार,
व्यथित को देखे, न देखे—
रूप रँग का भेद
मत-मतान्तर हों नहीं
जिसको कभी स्वीकार,
महक पाये, साँस के ऊपर चढ़ी यह धूल
जिस तरह खुलकर लुटाता—
गंध कोई फूल !

तुम मुझे मृदु क्षण न दो,
जीवन महत् कर दो !
और मेरी भावनाओं का गगन······!

——

उल्लू—बुद्धिमता और मूर्खता का प्रतीक

[श्री मोलूराम]

आधी रात का समय है, न जाने मेरी नींद अकस्मात् ही कैसे खुल गई। कुछ देर बून्दा-बान्दी के बाद आसमान बिल्कुल साफ निरख आया है और पूर्णिमा की चांदनी अपने पूरे यौवन में चमक रही है। परन्तु बेहद सन्नाटा है, इतना कि दिल की धड़कन भी ठीक-ठीक सुनाई देती है। इस बड़े शहर में ऐसा शान्त वातावरण कुछ आसाधारण-सा लगता है! न किसी टांगा की खट-खट, न मोटर-लारी का हार्न, न किसी के चलने-फिरने की आहट, न खोंचे-वालों की पुकार। यूं लगता है जैसे दिन-भर के शोरोगुल के बाद सचमुच ही समस्त प्रकृति सो रही हो।

हां, पल-पल बाद केवल हू... . हू का शब्द सुनाई दे रहा है। सम्भवत: इस शान्त घड़ी में इसी हू .....हू की ध्वनि ने मेरी नींद को जगा दिया हो। वातावरण में परिव्याप्त आलोकमयी निस्तब्धता इतनी गहरी है कि हू......हू का यह शब्द यद्यपि काफी दूर से आ रहा है, परन्तु कमरे में एकाकीपन के कारण हृदय को कुछ भयभीत-सा कर रहा है। शान्त पहरा और ऐसे अवसर पर हू......हू की यह ध्वनि घंटों बीतने पर भी मुझे प्यारी नींद का मिलन नहीं दे पा रही है। रह-रह कर मेरे दिल में इस ध्वनि-सम्बन्धी भावनाएं तथा घटनाएं उमड़-उमड़ कर याद आ रही है।

उल्लू! शब्द सुनकर ही चेहरे पर गुस्से की लहर दौड़ पड़ती है, और यदि दूसरा व्यक्ति उल्लू कह दे, तो इस पर हाथा-पाई भी हो जाए तो कोई बड़ी बात नही। हर-एक पक्षी किसी-न-किसी प्राकृतिक देन के लिये प्रसिद्ध है कोई मधुर स्वर के लिये कोई सुन्दर परों के लिये, कोई सुन्दर उड़ान के लिये, कोई उनके घोंसले बनाने की दक्षता के लिये, कोई मधुर कूक के लिये, और कोई पारस्परिक अटूट प्रेम के लिये; परन्तु उल्लू अपनी मूर्खता के लिये। इसलिये नहीं की वह सचमुच ही मूर्ख है, अपितु इसलिये कि लोग इसे मूर्खता का द्योतक समझते हैं। यही कारण है कि मूर्खता का जहां भाव प्रकट करना हो केवल उल्लू ही ऐसा पक्षी है जिसका नाम लिया जाता है। जानवरों में गधा और पक्षियों में उल्लू का नाम प्राय: बेवकूफी कमसुखनी के लिये लिया जाता है इसी कारण बहुत सारी लोकोक्तियाँ इसके नाम पर चलती हैं।

यही नहीं आज-कल इस पक्षी को मनहूस भी समझा जाता है। फारसी वाले तो प्राय: इसे मनहूस समझते ही हैं तथा जहां-कहीं भी बरबादी तथा नष्ट होने का भाव हो तो कहा जाता है कि यहां उल्लू बोल गया। जो शहर या घर उजड़ जाए तो उसे प्राय: यही कहा जाता है कि इसमें उल्लू बोल गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह पक्षी अपना घोंसला तथा निवास वीरान स्थानों, कब्रिस्तानों, पर्वत-शिखरों, गारों, खोखले वृक्षों में रखता है। चूंकि यह सुनसान स्थानों पर रहता है अतएव इसे ऐसी उजड़ी अवस्था का ही प्रताक समझा जाता है।

सुनसान स्थानों में रहने के कारण ही इसका संकेत भयानक अवस्था को भी प्रकट करता है। असंख्य साहित्यकारों ने उल्लू की "हू-हू" द्वारा डरावनी स्थिति की अभिव्यक्ति की है। हमारे देश में ही नहीं विदेशों में भी इससे यह भाव लिया गया है। अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि कालरिज ने भी, जो संसार में सब से बड़ा अतिप्राकृत कवि माना जाता है, अपनी प्रसिद्ध कविता क्रिस्टेवल में भयानक वातावरण उकसाने के लिए उल्लू का ही सहारा लिया है।

परन्तु वास्तव में यह पक्षी इतना मूर्ख नहीं और न ही यह कहना उचित है कि इसे संसार-भर में हर स्थान पर मूर्खता और मनहूसियत के लिए सम्बोधित किया जाता हो। वास्तव में यह बहुत चालाक और चुस्त पक्षी है, और इसी लिए विभिन्न स्थानों पर यह अपनी चालाकी के लिए भी प्रसिद्ध है। इसके नाम पर एक लोकोक्ति "अपना उल्लू सीधा करना" यही

भाव प्रकट करती है कि किसी व्यक्ति विशेष ने चालाकी और धोखेबाजी से अपना काम निकाल लिया हो।

यूरोप देश के कुछ भागों में इसकी एकान्तता के कारण इसे फेलसूफ और बुद्धिमान् समझते हैं। एकांत स्थिति का सभी संस्कृतियों में मान रहा है। दिन के समय जब उल्लू किसी घने-से वृक्ष पर अंधेरे का सहारा लगाए बैठता है तो यूं लगता है जैसे कोई समाधि लगाए बैठा हो। सम्भवत: जब "काठ का उल्लू" आदि लोकोक्तियों का जन्म हुआ तो इसी बुद्धिमत्ता का ही भाव रहा हो, क्योंकि जब-कभी किसी विद्वान् कवि या साहित्यकार की प्रशंसा करनी हो तो कहते हैं कि वह तो कालिदास है अथवा शेक्सपयिर है। परन्तु कभी-कभी किसी को ताना देने या मूर्ख बनाने के लिए भी उसकी कमजोरी प्रकट कराने के उद्देश्य से यूं कहा जाता है, "वाह यह तो रुस्तमे-हिन्द" है। इससे रुस्तम, कालिदास और शेक्सपियर की कमजोरी का भाव प्रकट नहीं होता, अपितु व्यक्ति विशेष को ही उनका प्रतिकूल समझा जाता है। इसलिए उल्लू-सम्बन्धी मूर्खता के भाव की लोकोक्तियों से उसकी मूर्खता नहीं उसकी बुद्धिमत्ता प्रकट होती है। जो पक्षी अन्य से भिन्न अन्धेरे में अपना काम करता हो उसमें विशिष्टता तो अवश्य ही होगी।

प्राचीन काल में रोम के निवासी इसका बहुत मान करते थे, तथा इसे पूजते थे, क्योंकि वे इसे देवता का रूप मानते थे। सूफी लोग भी इसे मनहूस नहीं समझते अपितु इसकी 'हू-हू' की आवाज को भगवान् के स्मरण (याद-ए-इलाही) का एक तरीका समझते हैं। जब-कभी दो उल्लू बोल रहे हों तो उनका कहना है कि नर और मादा आपस में मिलने के लिए पुकार कर रहे हैं।

उल्लू पक्षी के बारे में बहुत-से मूढ-विश्वास भी प्रचलित हैं। उसकी ध्वनि को मनहूस समझना ही एक वहम है। इसके वीरान स्थानों में वास का संकेत देते हुए ही कहा जाता है कि यदि उल्लू किसी मकान के सामने या उसकी छत पर बोले तो वहां का परिवार नष्ट हो जाता है। हमारे पहाड़ों में तो यह भी अन्ध-विश्वास है कि उल्लू प्राय: 'हू-हू' ही कहता है, परन्तु कभी-कभी वह 'उजड़' भी कहता है, तथा जो कोई ऐसा शब्द सुनता है उसकी मृत्यु अवश्य हो जाती है। इससे भी बढ़कर एक और मूढ-विश्वास प्रचलित है—

एक बार आज जैसी ही पूर्णिमा की रात्रि थी। दिन-भर की वर्षा के पश्चात् चन्द्रमा निकल आया था, मानो दिनों के बाद स्नान करने से चेहरा निखर पड़ा हो। परन्तु वातावरण आज जैसा शान्त नहीं था। कुछ मनचले मित्र पौष की लम्बी रात्रि में अंगीठी के गिर्द बैठे ताश का मज़ा ले रहे थे। खेल समाप्त होते ही बेकार दिमाग को बेगार की सूझी। बाहर 'हू-हू' की आवाज़ सुनते ही एक बोला, "कहते हैं कि जिस समय उल्लू 'हू' का शब्द निकालता है तो इसके सिर पर एक छोटा-सा सींग निकलता है।"

"देखो मनघड़त बातें मत बनाओ" मेरे मुख से तुरन्त ही निकल पड़ा।

"पढ़े-लिखों में यही तो बीमारी है" दूसरा साथी पहले का समर्थन करता हुआ बोला, "मानो जो-कुछ इन्होंने पढ़ा या अनुभव किया वही पत्थर की लकीर है और हम जो कहें वह मनघड़ंत है।" और सुनो…जो ऐसे 'हू' स्वर निकालते ही यदि कोई उल्लू को मार ले तो उसका सींग वैसे का वैसा बाहर निकला रहता है और जिसके हाथ ऐसा सींग आ जाए उसका भाग्य जागता है। वह मालोमाल हो जाता है। उसको घिस कर आंख में लगाए तो रात को भी दिन जैसा स्पष्ट नजर आता है और अन्धेपन के सभी रोगों की अचूक दवा है।"

"हां", तीसरा भी तो उसी माहौल में पला था, "बिल्कुल ठीक है चूंकि उल्लू रात को देखता है उसमें ऐसे गुण स्वभाविक ही तो हैं।"

भला मेरी क्या बिसात थी जो मैं उन्हें समझा पाता कि इन मूढ-विश्वासों में कुछ छुपा नहीं पड़ा है, ये केवल मानव की कमज़ोरी के लक्षण हैं। झट से एक बोला, "लो, हाथ कंगन को आरसी क्या।" वह उठा पास से टोपीदार बन्दूक लेकर अपना कर्तव्य दिखाने बाहर निकला, साथ दूसरा भी हो लिया।

चन्दा जगमग-जगमग कर रहा था और अपरूप ज्योत्स्ना खूब-खूब गहरी हो चली थी।

स्वच्छ चांदनी में सामने वृक्ष के एकान्त-सी टहनी पर बेचारा उल्लू बैठा ऐसा लगता था जैसे चन्द्रमा को सम्बोधित कर उसे मनोहर गाना सुना रहा हो, जैसे एक प्रियतम अपनी प्रेयसी की ओर एक टक नजर किए शेष इर्द-गिर्द की चीजें भूल जाता है वैसे वह भी अपनी धुन में मस्त मानो सब-कुछ भुला बैठा था। शिकारी हमारे माने हुए थे, निशाना कभी चूक न जाता था। समस्या उनके सामने केवल यह थी कि किस तरह निशाना उसी समय लगे जब उसके मुंह से 'हू' की आवाज निकले। एक ने गिनती आरम्भ की। हर बीस तक गिनती पहुंचने तक उल्लू के मुख से 'हू' शब्द निकलता था तथा ठीक पांच गिनती तक उसकी 'हू-ध्वनि' रहती थी। उसकी लगातार ध्वनि में ठीक यही क्रम था। मसला हल था, ज्यों ही एक ने पिछले स्वर से १९ गिने नहीं कि 'हू' बोलते ही फडफड़ाता हुआ धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा।

बड़ी उत्सुकता से शिकारियों ने उसे उठाया। सिर पर हाथ फेरा। क्या कोई सीग था? कदापि नहीं। था केवल एक मृत शरीर जिसकी चमकीली आंखें मानो इस बात का संकेत दे रही थी कि अपनी प्रेयसी की लगन में वह जान दे रहा है तथा अब नेत्र इस बात की गवाही दे रहे थे कि, "हे मनुष्य, जब तुम सो जाते हो तो इस लम्बी रात्री में केवल मैं जागता रह कर केवल तुम्हारी रखवाली ही नहीं करता अपितु बच्चे के लिए मां की लोरी की तरह तुम्हें संगीत प्रदान करता हूँ। परन्तु यह तुम्हारी दुष्टता है कि मेरे एकाकीपन तथा मेरे शब्दों से तुम ने क्या-क्या मूर्ख विचार न अपनाए हों, यहां तक कि मेरी जान लेने से भी तुम्हें संकोच नहीं।"

★ ★ ★

(पृष्ठ ४४ का शेष)

एक हो और एक जैसे विचार हों। गृहस्थ को युद्ध-क्षेत्र थोड़े ही बनाना है। उसे सुखी बनाया जा सकता है जिसके लिये पहले बहुत-सी शर्तें देखनी होंगी और अगर हो सके तो शादी अपनी जाति में ही नहीं करनी चाहिए। इससे सचमुच देश की सेवा होगी। हम सब को एक होना चाहिये भेद-भावों रहित। हमारा भारतवर्ष तो जात-पात के कारण ही बर्बाद हो गया है।

बात यहां ठहरी कि मैं न माना। सब का सब समाज इस बात पर सख्त नाराज हो गया, आखिर उनके रिवाजों का उल्लंघन था। मैं तो दोनों तरीकों से अकेला ही था। मैंने आगे पढ़ने के लिये जाने का प्रबन्ध करना शुरू कर दिया। जिसका सारा तात्कालिक भार एक सहृदय एडवोकेट ने उठाया था जो पहले मेरे बिल्कुल वाकिफ नही थे। उन्होने मेरे इस पग को खूब सराहा था।

लगभग चार वर्षों के पश्चात् मेरे रिश्तेदारों, घरवालों और पड़ोसियों के मुंह से यह निकलने लगा था कि उस समय शादी की सचमुच कोई जरूरत न थी जब कि मैं बी० ए० में पढ़ता था। यह सामाजिक बुराइयों से मेरी पहली टक्कर थी जब मैं सब के विरुद्ध टिका रहा और अपने मार्ग को स्वयं बदला। यह परिभाषा उस वक्त की है जब मैं दसवीं में था। अब मेरी परिभाषा में काफी फेर बदल हो चुके हैं और वह अन्तरराष्ट्रीय सीमा तक जा पहुंची है। लेकिन अब की परिभाषा पहले से काफी सुलझी हुई है।

अब मैं लकीर की फकीरी और भेड़-चाल को बिल्कुल छोड़ चुका हूं। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा ग्रामीण समाज इन वाहियात रस्मों और रिवाजों से चिपक कर, मकड़ी के जाले में फंसी हुई बेबस मक्खी की भांति ठस्स हो गया है जिस में शीघ्रातिशीघ्र सुधार करना अत्यावश्यक है और कोई भी सुधार करना हो उस की शुरूआत हमारे अपने ही जीवन से होनी चाहिए, वरन् हम थोथे चने ही बन कर रह जाएंगे। यह थी मेरी शादी की शर्त।

★ ★ ★

मेरी शादी की शर्त

[श्री कुलदीपराय दीप]

मेरे घर वाले परिवार का बड़ा विस्तृत वर्णन करते हैं कि वे कश्मीर से आए थे। राजपूतों का उच्चतम परिवार जो वहां पर राज्य करता था उससे सम्बन्धित था। उसमें से किसी एक वीर क्षत्रिय ने एक हरिजन (कबीरपंथी) स्त्री से शादी कर ली जिसे वहां पर सहन न किया गया और वे कश्मीर से यहां पंजाब में आकर बस गए। हमारा परिवार वैसे रंग, रूप, जोश और उत्साह के नाते सचमुच ही दूसरे हरिजन परिवारों से बहुत बेहतर दीखता है परन्तु, व्यक्ति तो अपने कामों से बड़ा बनता है। अगर हमारे बाप-दादा बहुत बहादुर होंगे तो हमें क्या ? हम स्वयं तो बिल्ली से डरते हों और दादा साहब ने कई शेर मारे हों तो हमारा दादा से सम्बन्धित होने का क्या लाभ ? हमें तो दादा का नाम लेकर तब कूदना चाहिए कि हम भी शेर को मार सकते हों।

बात शेर के मारने से चली थी, पर शादी की रस्मों पर आ कर ठहरेगी। यह घटना जिला कांगड़ा की है जहां पर न पढाई, न अक्ल, न और कुछ था। सामाजिक हालात और बेसमझी के भूत इतने खराब कि चंगा-भला आदमी भी खाक में मिल जाए। रिवाज और रस्में जो ठहरीं।

मेरे माता-पिता ने सोसाइटी के लाखों ताने सुन-सुना कर मुझे पढ़ने ही बिठा दिया। शायद ख्याल था कि मैं फिर उन्हें कमा कर खिलाऊँगा। मुझे स्कूल के कड़वे-कसैले अनुभव होने लगे। वहां पर तो इकट्ठे बैठना ही मुहाल था। मैं सोचता यह बात क्या ? मैं सबसे लायक हूँ पढ़ने में, फिर भी यह बात क्या। फिर पता लगा था कि मैं अछूत था। मैं घर में सब बच्चों में बड़ा था और स्कूल में अछूत, इसी लिए सदा अकेले रहने की नौबत रहती। इस का परिणाम यह हुआ कि गप्पबाजी की आदत ही न बन सकी और सारा ध्यान पढ़ने में ही लगने लगा। मैं सारे स्कूल में एक नम्बर पर था पढ़ने में, सुलेख में और हिसाब में भी। लगन कुछ ऐसी बनी कि समय और अकेलेपन का लाभ उठाकर जो भी पुस्तक हाथ लगती उसे ही पढ़ लेता। एक और बीमारी, जो पढ़ता उसे किए बगैर अगला कदम ही न उठाता।

सन् १९५२ में मैं आठवीं में था। सन् १९४२ के बाद मैं पढ़ने लगा था और ऐसा याद है कि उन दिनों बापू गांधी का नाम खूब सुनता था, उनके बारे में मैं बहुत-कुछ पढ़ता था। सन् १९४७ के बाद बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। वे कुछ राष्ट्रीय विचार अधिक रखते थे। वही बीमारी मुझ में घर करने लगी। जब मैं ऐसी बातें घर वालों को सुनाता तो वे प्रसन्न तो अवश्य होते परन्तु हैरान भी होते कि मैं अनोखी-अनोखी बातें क्यों करता हूँ ?

मतलब की बात तो अब आई। मुझे आठवीं में ही यह ज्ञान हो गया कि हमारे यहां जो छोटी आयु में ही शादी कर देते हैं यह बहुत बुरी बात है। पिता जी की ही समझदारी समझिए कि मैं उससे पहले ही नहीं ब्याह दिया गया था। उसी जमाने में मैंने पिता जी से आग तापते हुए यह बताया था, "पिता जी मैं आठवीं में हूं। मैं आप को एक बात बताता हूँ। यहां पर जो छोटी उमर में और अचानक ही बिना बताए शादी-वादी करने का रिवाज है इससे बचे रहना। मेरी इच्छा है कि जो भी खर्च आप शादी पर करना चाहते हों वह मैं पढ़ाई पर लगाऊँगा। शादी तो थोड़े ही खर्चे से फिर भी हो जाएगी। शादी करने में और भी बहुत-सी बातों का ख्याल रखना है।"

वे सब हंसे और यों कह कर टाल दिया, "कल बनवाई डाफली और आज कवि बन बैठे। आप बड़े हैं या हम ? हम देख लेंगे जो करना होगा।" मैं भी चुप रह गया कि यूं तो यूँ ही सही। मैंने कहा, "डाफली तो होगी लेकिन औरों की तरह चुप-चुपीते बात न कर बैठना वरन् पछताओगे कि मैं नहीं माना।"

घरेलू हालात सब पुराने और मैं पढ़-लिखकर नया बनता जाता था। मैंने इसी लिए स्कूल के समीप डेरा कर रखा था। ट्यूशन पढ़ाता, वे मेरा

खाना-पीना आदि और रहने का प्रबन्ध कर देते। जरूरी सामान घर से कभी-कभार ले आता। मैं दसवीं में था, परीक्षा को दो महीने थे जब एक दिन छोटा भाई आया और कहने लगा, "आपको पिता जी ने आज ही बुलाया है।"

मैं गया तो पता लगा कि उन्होंने सन् १९५४ की बैसाखी की शादी रख दी है। ज्योंही परीक्षा समाप्त होगी शादी कर दी जाएगी। मैंने लड़की को कभी स्वप्न में भी नहीं देखा था। इतना ही पता लगा कि वह दो-तीन वर्ष मुझ से बड़ी थी। बिल्कुल अनपढ़, निरी लड़की बस। आखिर सीखती ही क्या? वहां पर लड़कियों को पढ़ाना या कोई काम सिखाना पाप नहीं महापाप समझा जाता था। भला करे कोई इस से कोई उल्ट बात। मेरे सामने बहुत-सी बातें ख्याल में घूम गई—आखिर जो-कुछ मैं पढ़ रहा हूँ उसे न करूँ तो लाभ क्या हुआ? जैसे पढ़े वैसे न पढ़े। मैं सोचता कुछ और हूँ परन्तु यहां पर कुछ और ही हो रहा है। "वही बात हुई जो मैंने न करने को कही थी। मुझे तो यह सब-कुछ मन्जूर नहीं है।" यह कहने की देरी थी कि मुझ पर सब बरस पड़े। वहां के समाज की हिस्ट्री में यह पहला मौका था जब किसी लड़के ने माता-पिता के किए फैसले के विरुद्ध कुछ कहने की हिम्मत की थी। अब क्या था, माता-पिता, चाचे, ताए, मामे, फूफे सब सिर्फ नाराज ही नहीं वरन् सख्त नाराज हो गए, क्योंकि उनकी तौहीन जो हुई थी।

'टिक्के' में मुझे एक खद्दर का थान और कुछ सूखे मेवे मिलने थे। उन दिनों मैं खद्दरधारी ही था, एकदम स्वदेशी और मेवे भी पैदा होने के बाद तब ही देखने को मिले थे। दोनों ही चीजो की जरूरत काफी थी। वह तो सब-कुछ मैंने मन्जूर कर लिया। घर वाले कुछ घबराए-से थे कि मैं जवाब दे रहा था। उन्होंने बिना हील-हुज्जत सब चीजे मुझे ही दे दीं ताकि मुझे प्रसन्न रखा जाए। मैंने वह मेवे तो उसी रोज स्कूल पहुंचने से पहले ही समाप्त कर दिए थे। सारे रास्ते अमीरों जैसा ठाठ रहा। खद्दर सीने के लिए दे दिया। कांग्रेसी कपड़े बनवाए गए। वास्कट पहले थी ही।

दसवीं की परीक्षा मार्च में होनी थी। उन दिनों ही इस बातचीत का रगड़ा चल रहा था। शादी का तारीख १३ अप्रैल का शुभ दिन समीप आ रहा था लेकिन मैं ढीला-ढाला था। मान नहीं रहा था। मेरी शिकायत लड़की के चाचा साहब से की गई जो कपड़े सीने का काम करते थे। वे मुझे देखने के बहाने समझाने आए। मुझे पता लग गया। मैं मैले-से कपड़े पहन कर मिला ताकि वे हुलिए से ही देख लें कि मैं उनके काबिल नहीं हूँ और वे स्वयं ही फैसला दे दें कि यह काम नहीं हो सकेगा, लेकिन ऐसा न हुआ। उसने मुझ कहा, "अरे अब पढ़ने का ज्यादा कोई फायदा नहीं। काफी हो गया। इम्तहान हो गया है अब शादी जरूरी है। देखो हमारी एक घुमाओ जमीन भी है। खूब काम चल रहा है। लड़की स्वैटर आदि बुनने में बड़ी प्रवीण है। पानी को जाते-जाते घड़ा सिर पर रख कर भी बुनती ही रहती है, समझे?" मैने कहा, "ठीक होगा, पर ऐसी उतावली ही क्या कि बैठ कर किया जाने वाला काम चलते-चलते ही किया जाए। लेकिन स्वैटर बुनने वाली होने का फायदा ही क्या जब हमारे पास ऊन ही न होगी तो? रही मेरी पढ़ने वाली बात—वह तो जैसे आपको सिग्रेट की आदत है वैसे ही मुझे भी यह आदत ही लगी है। इसके जाने की उम्मीद नहीं। पढ़ना तो जरूर है। अगर आप भी कर सके तो वह जमीन बेच दें और मुझे पढ़ने भेज दें।" उन्हे ये बाते बड़ी निकम्मी लगीं और मैं नकारा साबत हुआ परन्तु बला न टली। तब मैं सीधा हुआ। अकड़ बैठा। बहुत-सी किताबे निकाल लाया और माता-पिता और बाकी भी सबके सामने ला पटकी। कहने लगा, "मैंने आप को पहले ही कहा था न, कि संभल कर चलना। फिर आप ने वही काम कर दिया तो अब पछताओगे। इसमें मेरा कोई कसूर नहीं।"

मैं उन दिनों धार्मिक बातों का खास ध्यान रखता था। आयु १८ वर्ष की थी। छाती ठोंक कर कहता, "अरे यह देखो, हमारे वेदों में भी बताया है कि पच्चीस वर्ष से पहले शादा का नाम न लेना चाहिए।" ऐसा-वैसा बहुत कुछ बताया परन्तु मानें कौन। मैं उनका लड़का था। मुझे उनके हुक्म को बिना कुछ कहे-सुने मान लेना ही फर्ज समझ लेना

चाहिए था। उधर मैंने उन्हें टोका था। उन्होंने मुझे चार-चार रोज तक खाना न दिया और पीटते भी थे ताकि मैं मान जाऊँ। मैं पढ़ता रहता और जाकर डेरे वालों से कहा। उन्होंने मेरे निश्चय को खूब सराहा, कहने लगे, "अभी तक आप की शादी की कोई जरूरत नहीं है। जब जरूरी होगा आपकी शादी हम करवा देंगे। खर्चे का फिक्र न करें, हम देंगे, आप सिर्फ पढ़िए।" उन्होंने मेरी बहुत मदद की।

घर वालों ने शादी के लिए ही एक रिश्तेदार से पालमपुर से चावल मंगवाए थे। वह ले आया था। मैंने डेरे में ही रखवा लिए कि मैं ही ले जाऊँगा। वह भी रख गया। मैंने समाप्त कर दिए। कई दिनों के बाद घर वालों को पता लगा कि वे तो समाप्त भी हो चुके।

घर वाले कहते, "अरे जैसे रखी है शादी कर लो। मुफत का नौकर हो जाता है रोटी पकाने के लिए।" मैं कहता, "अजी बात तो ठीक है पर जब आटा ही नहीं है तो रोटी पकाने के लिए नौकर ढूंढने की जरूरत ही क्या? पहले आटे की सोचनी पड़ेगी, फिर नौकर की।" ऐसे ही काफी खेंचातानी चलती रही। मैं न माना। आखिर मैंने वहां गृहस्थ जीवन के प्रवाह पर तीव्र दृष्टि डाली। हर घब में लड़ाई-झगड़े, किसी का घरेलू जीवन सुखी नहीं था। चाहे यह सब उन्होंने स्वयं ही कर रखा था। बुरी हालत, सब दुःखी। एक रुपए की आमदनी और सौ रुपए का खर्च। जीवन गोबर और खेतों की गर्द में ही कट रहा है, सब ओर चीत्कार और चीखोपुकार। बाल-विवाह, बेजोड़ विवाह, पर्दा, अपढ़ता, जात-पात, मुकदमेबाजी और आपसी झगड़े—बस यही वहां के सामाजिक जीवन की परिभाषा है।

मैंने अपने मन में बहुत विचार किया, "क्या समाज है यह भी आजीब बात है। सामने नजर आता है कि इस काम से यह नुकसान है परन्तु किस्मत में लिखा समझकर कर ही तो लेंगे। फिर आयु-भर 'विधाता की रचना' का नाम लेकर रोते रहते हैं। शादी के रीति-रिवाज एक दम नाकारा। पीछे से आयु-भर झगड़े होते रहेंगे लेकिन पहले कई बार ग्रह-दशा को जी भर कर मिलाया जाएगा। उधर मैं घरेलू झगड़ों का एकमात्र कारण 'गल्त-समझ' और 'आमदनी की कमी' को समझता था।" मैंने कई बार अपनी टीप फाड़ी थी और अब भी नहीं है। लड़की एक कोने की, लड़का दूसरे कोने का, दोनों के बारे में माता-पिता ने रिवाज के मुताबिक सोचा और शादी कर दी भला करे कोई इन्कार। न एक को दूसरे का का पता, न कोई विचारधारा अथवा लक्ष्यों में बराबरी। वहाँ ऐसी बातों पर विचार करना या लड़के-लड़की को शादी से पहले बता देना रिवाजों के विरुद्ध और भेड़-चाल से उल्ट होने के कारण महापाप समझा जाता है। उधर पढ़ने की धुन सवार। पास पाई नहीं। सारे नाराज। कई मुझे सलाह देते, "अरे शादी कर लो। घर वालों को भी खुश कर दो और अपना आनन्द लूटो। तुम्हें क्या, फिर जो होगा होता रहे।" मैं कहता, "अजी ऐसा क्यों करूँ? जब शादी किसी लिहाज से ठीक है ही नहीं तो शादी की बात सोचना भी कैसे ठीक है।"

अब समय बहुत कम रह गया था। मैं भी तंग हो गया। मैंने समाज के एक ओर हो जाने की कोई पर्वाह न की और अपनी शादी की शर्त उस समय के मुताबिक यों बताई थी, "देखो जी आप कुछ भी कहो, यह शादी तो मैं बिल्कुल नहीं करूँगा। जब जरूरत होगी मेरी शादी की शर्तें बड़ी सादा होंगी। मेरी शादी में किसी तीसरे का हाथ नहीं चाहिए। बातचीत सीधी लड़की से ही क्यों न की जाए? हो सकता है मैं ही उसके काबिल न उतरूँ। वह कम-से-कम मेरे जितनी या मैं कम-से-कम उस जितना—तो पढ़े-लिखे होने ही चाहिएँ। आयु में भी बड़ी क्यों होनी चाहिए? मेरी शादी पर खर्चा बिल्कुल नहीं होना चाहिए और हो भी तो सबसे कम। गहनों का तो नाम ही लेना बेकार है और फिर उधार लेकर शादी क्यों करें? आपके वर्तमान रीति-रिवाजों में से मेरी शादी पर एक भी लागू नहीं होगा। जब कभी होगा, अपनी शादी का आखिरी फैसला मैं करूंगा क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध मुझ से है। लेकिन इस समय जिस रास्ते पर चलना ही नहीं है उस का नाम ही क्यों लिया जाए। और जब शादी करनी होगी तब ही मंगनी भी कर लेंगे, पहले नहीं। और सब से बड़ी शर्त तो यह है कि जब तक सब जरूरतों पूरा करने के लिये आमदनी नहीं होती यह कैसे की जा सकती है। यह सब से जरूरी शर्त है। कोई भी वही दो व्यक्ति इकट्ठे चल सकते हैं जिन का लक्ष्य लगभग

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

बाल-भारती

प्रेरणापुंज बापू

[श्री हरगोविन्द पाराशर]

प्रेरणापुंज बापू तुझको अर्पित,
मेरा यह हृदय सुमन।

भारत नभ में तुम उदित हुए
दु:ख अंधकार के हरने को,
बोहित बन गए हिन्दियों के
परतन्त्र सिन्धु के तरने को.
केवल मन की ही ताकत से
अंग्रेजों को निर्मूल किया,
भारत स्वाधीन बना डाला
पतितों का पुनरुद्धार किया,
हे चिरप्रकाशमय ज्योतिकेन्द्र,
तुझसे प्रतिबुद्ध हुआ जीवन।
प्रेरणापुंज बापू तुझको अर्पित,
मेरा यह हृदय सुमन।

तेरे बिन गीता फीकी थी
रोता था ग्रन्थों में सुधर्म,
भूली थी सत्य-अहिंसा भी,
अज्ञात हुआ था जीवमर्म,
बस इसीलिए गीता कर में
रम गया धर्म सुन्दर मन में,
था सत्य-अहिंसा ही सुशस्त्र
चिरज्ञात जीव जन-जीवन में।
ऐसे लोकोन्नायक चिरयोगी,
तुझसे आबाद हुआ कण-कण
प्रेरणापुंज बापू तुझको अर्पित,
मेरा यह हृदय सुमन।

नूतन पाया ज्ञान विश्व ने
तेरी आत्मा सचमुच विशाल,
तुझसे आलोकित दिग्दिगंत
भारत कृतज्ञ तेरा सुभाल,
हम तुझे न समझ पाए
पर हममें तुझ पर श्रद्धा है,
तेरे पदचिह्नों पर निहित लक्ष्य
अब प्रगतिशील भारत तन है,
हमको शक्ति दो राष्ट्रपिता
जिससे जीतें यह विकट कु-रण,
प्रेरणापुंज बापू तुझको अर्पित
मेरा यह हृदय सुमन।

❀ ❀ ❀

रजनी

[श्री शिवचन्द्र शर्मा]

सायं हुई तो रजनी आई,
सब को बेसुध कर डाला।
तम का राज्य हुआ चहुँ ओर,
रजनी ने प्रभाव दिखा डाला ।।

सब दिवापुष्प संकुचित हुए,
शत्रु तम से भयभीत हुए।
फिर जाति का मान लेकर,
रजनीगन्धा ने सौरभ फैला डाला ।।

नक्षत्रगण टिमटिमाने लगे,
कुछ तम को दूर हटाने लगे।
समस्त तम को न दूर हटाने पर,
चन्द्र ने भी प्रकाश डाला ।।

प्रकाश ने अब राज्य किया है,
अस्तित्व तम का मिटने लगा है।
बस अब तो रजनी समाप्त हुई,
उषाकाल अब आने लगा है ।।

बापू

[श्री गोमतीप्रसाद पाण्डेय 'कुमुदेश']

शान्ति के सुन्दर गान थे,
शंकर से इक त्यागी महान् थे बापू।
दासता को दलने के लिए,
या स्वतन्त्रता के तुम बान थे बापू।
रंकिनी भारत भूमि के अन्तर के,
तुम या अरमान थे बापू।
बुद्ध थे प्राण थे मानवों के,
या नये युग के महाप्राण थे बापू॥

शुभ नीति के सत्यता के इक सुन्दर,
गायक बापू बने हुए थे।
इस भारत वर्ष के शूर शिरोमणि,
नायक बापू बने हुए थे।
'कुमुदेश' कहें क्या सदा सबके,
सुखदायक बापू बने हुए थे।
दशकंध-से हिंसकों के लिये,
राम के शायक बापू बने हुए थे॥

निज स्वार्थ की चाह न थी जिसको,
जो बना सबका सुखदाता रहा।
इक नायक भारतवर्ष का होकर,
चालीस कोटि का त्राता रहा।
'कुमुदेश' विपक्षियों से भी सदैव,
स्नेह का नाता निभाता रहा।
किस लोक को बापू गया वह,
जो पराधीनता दूर भगाता रहा॥

अविवेकिता का तम नाशने के लिये,
ज्ञान की ज्योति अपार था बापू।
हँसते-हँसते दुःख-द्वन्द्व दरिद्रता को,
करता नित क्षार था बापू।
उपदेश दिया गुरु-सा 'कुमुदेश',
सनेह का मंजु भंडार था बापू॥
अथवा भुवि-भार उतारने को,
भगवान ही का अवतार था बापू॥

❀ ❀ ❀

नए नए अंकुर उग आए

[श्री पुरुषोत्तम उपाध्याय 'भानु']

हल्की भीनी-सी फुहार ने—
धरती का रूप बदल डाला,
काली धरती को वर्षा ने—
अपनी बूंदों से नहलाया।
नभ में काले बादल छाए—
मानो नया संदेशा लाए,
पग-पग प्यारी धरती पर—
नए-नए अंकुर उग आए।
हरित से परिधान पहन—
धरती मन ही मन मुस्काई,

नन्ही-नन्ही नव बूंदों ने—
टप-टप की मीठी तान सुनाई।
पात-पात और फूलों में—
तरुणाई का रंग आया,
शाखाओं से लिपटी बेलों ने—
इस जीवन का सुख पाया।
उमड़े पड़ते सर-सरिताएँ—
झरनों का कोलाहल भाए,
बिन बुलाए मेहमानों से भू पर,
'नए-नए अंकुर उग आए।'

❀ ❀ ❀

तेरी झलक

[श्री गोविन्दप्रसाद सिंह]

टिमटिमाते दीप में तेरी झलक,
ओ विस्मरित कैसे तुम्हारी याद आई।
भोर की आशा चली आँसू बहाते,
अनबुझे प्यासे नयन ये उवरा के,
वेग से चलते हुए झोंके हवा के,
क्या मिला तुम को मेरा दीपक बुझा के।
दूर से कोमल मधुर
चिरपरिचिता आवाज आई,
ये प्रकृति अधीन है,
जिसने तेरा ज्योति बुझाई।
एक निरा सपना सजाया,
था तुम्हारे प्यार में,
एक अनोखा गीत गाया था,
तेरे संसार में,
अश्रुबूंदों की लड़ी,
पहिनाई थी हरद्वार में,
इन सितारों को पिरोया था,
तुम्हारे हार में।
पर न जाने क्यों, हृदय टूटा,
हृदय के स्वर गए,
गुनगुनाते गीत से,
आँसू निकल कर रह गए।
एक छोटे-से कफन से,
कर रहा तेरी विदाई,
टिमटिमाते दीप की ज्योति कहूं,
किसने बुझाई।

❀ ❀ ❀

प्रातः

[श्री महेशचन्द्र]

दिनभर कार्य करने के पश्चात् मैं घर आ कर सीधे पलंग पर लेट गया। वैशाख मास, गर्मी के कारण मुझे खुले छत पर सोना पड़ता था। आकाश के अगणित तारों को गिनता हुआ मैं कब सो गया ? मुझे पता न चला।

"शक्तिधर उठो।"

"ऊँहु"

"सुबह हो रही है जल्दी उठो शक्तिधर।"

अरे! यह तो उषा दीदी की आवाज। रोज सुबह मुझे उषा दीदी जगाती हैं। मैं वैसे जग गया था परन्तु उठने के डर से आँखें नहीं खुल रही थीं। फिर भी मैंने आँखें खोल कर देखा, लाल साड़ी पहने गोरी रंग की, मेरी उषा दीदी सिर के पास बैठी थीं। उन्होंने कहा—"उठो शक्तिधर, तेरा ज्ञान भय्या कभी का उठ कर दूसरों की सेवा में चला गया पर तू अभी तक सो रहा है। चल पगले, उठ नहीं तो रवि भय्या अएँगे तो नाराज होंगे।"

"रवि भय्या कब आएँगे" ?—मैंने पूछा।

"चन्दा मामा के जाने के पश्चात्।"

"दीदी यह बहुत खराब होता है कि सुबह मैं कभी चन्दा मामा और रवि भय्या को एक साथ नहीं देखता। क्या वे एक-दूसरे से नाराज रहते हैं ?"

'नहीं शक्तिधर, ऐसी बात नहीं है, बात दरअसल यह है कि तारा मामी इस समय ननिहाल जाती हैं और मामा को भी उनके साथ जाना पड़ता है। अच्छा भय्या, उठो चाहे न उठो, मेरा वक्त हो गया है। मुझे नीचे काम करने जाने दो।

दीदी उठ कर चली गई, जैसी कुछ नाराज-सी हो गई। उनकी साड़ी और काफी लाल हो गई। उनके जाते ही पड़ोस के वृक्ष-गृह में कोकिल बहन अपनी सुमधुर आवाज में गीत गाने लगी। गीत तो मुझे पूरा न समझ में आया, परन्तु उसका भाव समझ में आया। वह मुझे

सम्बोधन कर कह रही थी—"शक्ति भय्या, उठो और मनुष्यों में शक्ति का संचार करो। देखो ज्ञान भय्या उठकर लोगों के मस्तिष्क में चले गए। तुम बड़े नटखट बालक हो।"

एकाएक रवि भय्या का मुखदर्शन हुआ। दूर से वे स्पष्ट दिखाई दिए पर जितने पास आते गए और तेज होते गए। पहले उनकी आँखें लाल थी, मैंने सोचा मुझ पर क्रुद्ध हैं। मैं उठा और उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने हँस कर मेरा आलिंगन किया, कहने लगे, "जाओ शक्ति, जग में शक्ति का संचार करो।"

मैं उठा और छत से नीचे चला आया।

❀ ❀ ❀

भारत की कहानी (९)

[श्री चन्द्रपालसिंह 'मयङ्क']

भारत का नूतन विकास—

बच्चो ! देखा तुमने—कैसा
है यह 'भारत देश' विशाल !
जान गए हो—तुम सब इसके
विविध प्रदेशों का भी हाल।
पर्वत, नदियां कौन यहाँ हैं ?
कहां, कौन-सी पैदावार ?
खनिज-पदार्थ निकलते क्या क्या?
तुम्हें विदित है भली प्रकार।
आओ, अब नूतन विकास का
तुमको हाल बताऊं मैं !
कहाँ, कौन, उद्योग पनपता--
इसकी कथा सुनाऊँ मैं।
था कुछ वर्ष पूर्व हे बच्चो !
अपना भारत देश गुलाम।
तब हम भारतवाले लड़ते
थे स्वतन्त्रता का संग्राम।
स्वतन्त्रता के लिए हो गए
कितने ही हँस-हँस कुरबान !
तब जाकर स्वतन्त्र हो पाया
अपना भारत देश महान !!
'सन् सैंतालिस' के 'पन्द्रह अगस्त'
को वह युग हुआ समाप्त !
उस दिन हम सब को आजादी
हुई बहुत वर्षों पर प्राप्त।
तब ही तो 'पन्द्रह अगस्त' बन
गया हमारा प्रिय त्योहार !
वह 'स्वतन्त्रता-दिवस' हमारा,
करता है सुख का संचार।
राष्ट्रीय सरकार देश में
अब तो शासन करती है।
सबका जीवन हो सुख-पूरित
यह प्रयत्न वह करती है।
पांच-पांच वर्षों की वह
योजना बना कर करती काम।
खेती शिक्षा, नये नये उद्योग,
विकास-कार्य्य अविराम
करती रहती ! खोल रही है
नये कारखाने सुविशाल।
जिससे बनने लगा यहां पर
भी है बहुत तरह का माल।
नही विदेशों से अब ज्यादा
मंगवाना पड़ता सामान।
अपने ऊपर निर्भर होता
जाता अपना हिन्दुस्तान।
वही कहानी, वही कथा अब
तुमको मैं बतलाता हूं।
खूब ध्यान से सुनते जाना,
जो मैं बात सुनाता हूं।

❀ ❀ ❀

अपार कृपा

[श्री कृष्णकुमार]

प्रभु तेरे असंख्य हैं उपकार।
कौन कर सके उन्हें शुमार॥

आश्चर्य, प्रेम, प्रशंसा में।
करता हूँ सदा जयजयकार॥

जन्म से ही अनेक सुख मिले।
उनमें प्रसन्न रह हम खिले॥

बहुत काल बाद यह जान पाया।
थी तेरी अपार कृपा की छाया॥

जब जवानी की फिसलन पर दौड़ने लगा।
तूने सहारा दे, दिया पार पहुंचा॥

पूरी रक्षा मिली तेरी बाहों में।
तब मानव बना तेरी निगाहों में॥

रोगों से जब जब पीडित हुआ।
तूने पूर्ण स्वस्थ कर दिया॥

पाप-ताप ने जब किया हताश।
तेरी मेहर को सदा पाया पास॥

जीवन की सब अवस्था में।
तेरे मार्ग पर सदा चलता रहूँ॥

मौत के बाद भी दूर देशों में।
तेरे व्रतों को नया करता रहूँ॥

सर्वकाल में सदा सर्वदा।
तेरे गीत ही गाता रहूँ॥

नित्य मैं भी समय कहां।
तेरे गुणों को बयां कर सकूँ॥

❀ ❀ ❀

मानवता का अभाव

[प्रा० ओम्प्रकाश गुप्त]

प्रो० मोहन कालेज के स्टाफ रूम में अकेला कोई पुस्तक पढ़ रहा था। सहसा खुशीराम ने प्रवेश किया। खुशीराम स्टाफ रूम का चपरासी था। उसने अपने नेत्रों में अभाव का भाव और पूर्ण विनम्रता को घोलते हुए कहा: "प्रो० साहिब, मुझे यदि आप पाँच रुपए उधार दे देंगे, तो मैं युग-युग तक आपका आभारी रहूंगा। मेरी स्त्री बहुत सख्त बीमार है। मैं पहली तारीख को ये रुपए लौटा दूंगा।"

प्रो० साहिब ने भी पूर्ण सहृदयता और विनम्रता का अभिनय करते हुए उत्तर दिया—"मुझे खुशीराम, तुम्हारे से पूर्ण हमदर्दी है किन्तु तुम तो भली भाँति जानते हो कि आज मास की पच्चीस तारीख है और मेरी जेब में एक छेद वाला पैसा भी नहीं है। पहली को चाहो तो दस रुपए भी ले लेना।"

खुशीराम को यह सुनकर घोर निराशा हुई। वह अपना-सा मुंह ले कर स्टाफ रूम में से निकल गया।

और दूसरे ही क्षण यूनियन के प्रधान ने स्टाफ रूम में बड़े ठाठ से प्रवेश किया। प्रो० मोहन प्रधान को देख कर एक दम कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। बड़े सलीके और आदर से उस ने श्री राजपाल (प्रधान का नाम) को कहा—"आओ बैठो; कहिये आप ने क्यों तकलीफ की ?

राजपाल ने उत्तर देते हुए कहा—"कल हम प्रधान मंत्री को चाय-पार्टी दे रहे हैं। आशा है कि आप अपनी पत्नी सहित पार्टी में आएंगे। केवल तीन रुपये देने होंगे दोनों के।"

प्रो. मोहन ने अपने मुंह को और भी प्रसन्न और लापरवाह बनाते हुए निमन्त्रण को यह कहते हुए :—"हाँ, हाँ, हम अवश्य आएंगे। भला ये कैसे हो सकता है कि हम पीछे रहें।" स्वीकार कर लिया।

और साथ ही अपनी जेब में से पाँच रुपये का नोट राजपाल की ओर बढ़ाते हुए कहा—"ये लो, नोट। इस में से तीन रुपये काट लो"। ●

बारिश

[श्री त्यागराजन, केरलीय]

उछाह था कितना उस दिन।
काली घटाओं से आसमान घिरा।

प्यासी धरती अघाती थी भर उछ्वास
लहलहा अलि-कुल तरु होकर तृप्त
उछल रहे थे प्यासे किसान लहालोट
रही हो मानो अशर्फियां बरस।
उछाह था कितना उस दिन
काली घटाओं से आसमान घिरा।
भर गए नल-नाले भी खूब
गौओं के लिए धरा हो गयी धरा
निकल निकल कर रहे थे तब
तालाबों में बालवृन्द मुआयन मीन।
उछाह था कितना उस दिन
काली घटाओं से आसमान घिरा।

उठते थे जहां बगुले खेतों में
निगलने में न पाकर जूंटों को
लगे चलने हल-बैल वहां
मानो हो रहा उद्धार धरा तहां।
उछाह था कितना उस दिन
काली घटाओं से आसमान घिरा।
गूंज रहा नारा गगन भरा
रे ! दानव मानव हो रहा
पल्टे पर्दा-प्रथा, मुकरा ममता तान
होवे जग जीवन स्वर्ग-समान।
उछाह था कितना उस दिन
काली घटाओं से आसमान घिरा।

❀ ❀ ❀

कौन तुम

[श्री रामानन्द]

कौन तुम मानस से उद्भूत,
काव्य की भाषा के आधार,
कौन तुम शुक्ता से सम्भूत,
महिम मुक्ताओं के आकार,

अरे, क्यों दिखला निरुपम-वेष,
मोहते मन-मधुकर के वृन्द,
क्या न कुछ भी छोड़ोगे शेष,
कहां से सीखा यह छल-छन्द,

भुलाने की जब होती चाह,
तभी क्यों बढ़ती जाती याद ?
किन्तु कुछ तुम को भी परवाह ?
सुनोगे क्या न अरे फरियाद ?

स्वप्न के गगनों पर क्यों घूम ?
मेघ बन कर जाते अन्धेर,
शकल-शम्पाओं की तो धूम,
बरसने में फिर भी क्यों देर ?

कभी ले लज्जा का अवलम्ब,
क्षणिक छिपते वारिद की ओट,
व्यक्त कर कभी भाव परिरम्भ,
चलाते चपल-चक्षु को चोट,

कभी अंगों पर वेष्टन डाल,
अपरिचित से, जाते क्यों भूल ?
भावनाओं की वीचि उछाल,
डालते आंखों में क्यों धूल।

❀ ❀ ❀

तब होगा सन्तोष

[श्री रामगोपाल 'परदेसी']

सबका यही विचार हो,
सबकी यही पुकार हो,

नहीं किसी को खुशी यहां पर
नहीं किसी को क्लेश हो।
तब होगा संतोष मुझे
जब ऐसा मेरा देश हो ।।

सबकी मंजिल एक यहां हो
सबका एक मकान हो,
हर देहरी हो राधा प्यासी
हर आंगन घनश्याम हो,
पूरब से लेकर पश्चिम तक
उत्तर से लेकर दक्खिन तक
हर कुटिया हो मथुरा
काशी बृन्दाबन हर ग्राम हो,

सबको सबसे प्यार हो,
ऐसा यह संसार हो,

खत्म न हो यह प्रेम कहानी
दिन-दिन दूनी शेष हो।
तब होगा संतोष मुझे
जब ऐसा मेरा देश हो।।

नहीं किसी की हार यहां पर
नहीं किसी की जीत हो,
एक सभी हों भाई-भाई
एक सभी का गीत हो,
ऐसा कुछ परिवर्तन आए
नगर डगर हर गांव में
प्रेम धर्म हो यहां सभी का औ'
हर अहम् व्यतीत हो,

हर बगिया गुलजार हो,
कहीं नहीं पतझार हो,

जाति-पाति का भेद न
सबकी इच्छा पूर्ण विशेष हो।
तब होगा संतोष मुझे
जब ऐसा मेरा देश हो ।।

मिट जाये यह तम चादर छाए ऐसो उजियाली,
सब समान हों यहां किसी के पास न आये कंगाली,
सबके कांधे रहे फावड़ा सबके हाथ कुदाल हो-
हर दिन होली बनता जाए औ हर रजनी दीवाली,

इतना कुछ उजियार हो,
दूर घृणा-व्यापार हो,

एक सभी की लगन यहां पर
एक सभी का भेष हो।
तब होगा संतोष मुझे
जब ऐसा मेरा देश हो ।।

नये जागरण की बेला में
नया-नया निर्माण हो,
कहीं न हो वीरान यहां पर
खंडहर महल मकान हो,
श्रम के हाथों नई जवानी
घर-घर में फूले फले—
हर दिल में अरमान सभी के,
हर मुश्किल आसान हो,

ऐसा देश स्वतन्त्र हो,
अधर अधर पर मंत्र हो,

हर घर राजकुमार यहां पर,
हर घर एक नरेश हो।
तब होगा संतोष मुझे
जब ऐसा मेरा देश हो ।।

★ ★ ★

ऐसा कर

[श्री केवलकृष्ण 'पाठक']

पथ में फूल भी हैं शूल भी हैं।
ऐसा चल कि फूल रहें फूल,
पग में चुभें न शूल।
जीवन में सुख भी है दुःख भी है।
ऐसा मान कि दुःख बने सुख,
और सुख में न हो दुःख।

मन में प्रेम भी द्वेष भी हैं,
ऐसा कर कि द्वेष को जीते प्रेम,
और प्रेम से दबे द्वेष।
प्रेम में अनुराग भी है विरक्ति भी,
ऐसा कर कि जहां राग हो वहां त्याग हो,
और जहां त्याग हो वहां अनुराग हो।

❀ ❀ ❀

(पृष्ठ ५४ का शेष)

सूर सत्यनो सुणी संतन स्वयं देव बिदार थयो : धरती पर एक वधु फिरस्तो बुद्ध ईशु अवतार थयो .	सुखद संत का सत्य-वचन सुन स्वयं देव बेदार हुआ, धरती पर इक और फरिश्ता बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
निद्राजड जनतामां तें तो चेतनो संचार धर्यो : बळवंती अहिंसानी फूंके मृत्युने पडकार कर्यो .	निद्राधीन मनुज में तूने चेतन का सचार किया, प्रबल अहिंसा-मंत्र-शक्ति से मृत्यु को आह्वान दिया।
मोत बिचारूँ हारी गयुं ने तारो जय जयकार थयो : धरती पर एक वधु फिरस्तो बुद्ध ईशु अवतार थयो .	मृत्यु पराजित होकर भागी तेरा जय जयकार हुआ, धरती पर इक और फरिश्ता बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
पाप संमुखे पुण्य धरीने मानवनो सद्मार्ग ग्रह्यो : प्रभु प्रार्थनामां आतमनी भेट धरी तुं भव्य थयो .	पाप सम्मुख पुण्य को रख कर मानवता का पंथ लिया, प्रभु-प्रार्थना में आत्मा की दे आहुति था भव्य हुआ।
अमर शहीदी साथ सतनो जगमा जय जयकार थयो : धरती पर एक वधु फिरस्तो बुद्ध ईशु अवतार थयो .	अमर शहीदी साथ संत का जग में जय जयकार हुआ, धरती पर इक और फरिश्ता बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
विपुल स्नेहना जग पयगंबर ! आज सूनी मैया धरती : तुं धन्वंतरि थयो ज साचे मानवता ऊगरी मरती .	महा प्रेम का जग पैगम्बर ! आज शून्य सारा संसार, तू धन्वंतरि अनुपम ऐसा मानवता को लिया उबार।
विश्वप्रेमनुं गीत वहावी विराटने अजवाळी गयो : धरती पर एक वधु फिरस्तो बुद्ध ईशु अवतार थयो .	विश्व-प्रेम की बजा बाँसरी था विराट् झकझोर दिया, धरती पर इक और फरिश्ता बुद्ध ईशु अवतार हुआ।

एकलिपि विस्तार

बापु (गुजराती)

[श्री मीनु देसाई]

काम क्रोध ने मोह मत्सरमां,
अंध एती अवनी आखी :
तें ज महीं इंधण होमीने
समर धूणी धीकती राखी .
संत महंत थकी पण अदको
विश्व तणो उद्धार गयो :
धरती पर एक वधु फिरस्तो
बुद्ध ईशु अवतार थयो .
देश देश ने खंड खंडथी
भोम भोम आंसु सारे :
मिट्टी मिट्टी थी 'बापु बापु' ना
सूर चडे तारे तारे .
पयगंबरनी मरुभूमि पर
आज महा सूनकार थयो :
धरती पर एक वधु फिरस्तो
बुद्ध ईशु अवतार थयो .
बोज पापनो वधते वधते
नाश नाश रणकार थयो :
शांति, शांतिना मंत्रे भरेलो
भव्य कंई चमकार थयो .
प्रेमल ज्योतनुं तेज भरीने
नव तपनो संचार थयो :
धरती पर एक वधु फिरस्तो
बुद्ध ईशु अवतार थयो .
झेर वेर ने साथ स्वार्थनी
कैंक होळी पेटाइ हती :
ठाम ठाम ज्यां डग भरीए त्यां
मानवता करमाइ हती .

बापू (हिन्दी)

[अनु.—श्री अनवर आगेवान]

काम क्रोध औ' मोह डाह में
अंध बनी वसुधा सारी,
तूने इंधन बना होम कर
धूनी आग से की जारी।
संत महंतों से भी बढकर
जगती का उद्धार किया,
धरती पर इक और फरिश्ता
बुद्ध ईशु अवतार भया।
देश देश औ' खण्ड खण्ड से
आँसू की नदियाँ उमड़ीं,
औ' मिट्टी के कण-कण से थी
'प्यारे बापू' ध्वनि उमड़ी।
पैगम्बर की मरुभूमि पर
आज महा सुनसान हुआ,
धरती पर इक और फरिश्ता
बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
भार पाप का बढ़ते-बढ़ते
त्रस्त धरा चीत्कार उठी,
शांति शांति के महामत्र से
प्राण-विभूति जाग उठी।
प्रेमल-ज्योति-तेज-पुज से
नव तप का संचार हुआ,
धरती पर इक और फरिश्ता
बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
राग द्वेष औ' वैरभाव ने
खून से होली खेली थी,
ठौर ठौर अरु डगर डगर पर
मानवता मुरझाई थी।

त्रिपुरारिना तांडव काळे
प्रेम, प्रेम झणकार थयो :
धरती पर एक वधु फिरस्तो
बुद्ध ईशु अवतार थयो.
हिंसामां कत्रकोळायल जग
मानवतानुं पाप हतुं :
खप्पर खूनरेजीनुं छलक्युं
ना कंइ जाणे पाप हनुं.
चोगरदम ज्यां नजर धरो बस
काळी रात अंधार थयो :
धरती पर एक वधु फिरस्तो
बुद्ध ईशु अवतार थयो.
युग युगना सतना सूर्योदय
तणुं, तुं ज प्रतीक थयो :
निशा तणो अंधार भयानक
प्रभातमा पलटाई गयो.
आत्म शुद्धिनां तेजे तपतो
जय जय जय जयकार थयो :
धरती पर एक वधु फिरस्तो
बुद्ध ईशु अवतार थयो.
तीर अने तलवारो सामे
सत्य टेकने ढाल करी :
बाँब अने बंदूको जामे
त्यां पण तपनी माळ धरी.
मोत मुठ्ठीमां चांपी दइने
मृत्यंजय पद पामी गयो :
धरती पर एक वधु फिरस्तो
बुद्ध ईशु अवतार थयो.
अंधारे अटवायल अवनी
प्रकाश तो खोवा गयो :
अमृत अहिंसानो रस प्यालो
धरतीए ढोळाई गयो.
तो ये प्रेमल घाट परेथी
ज्योतिमय चमकार थयो :
धरती पर एक वधु फिरस्तो
बुद्ध ईशु अवतार थयो.
'मंगल मंदिर खोलो दयामय !'
ऊर ऊरथी झंकार थयो :
एकल एना नाम गर्जने
खूणे खूणे झणकार थयो.

प्रलयंकर ताण्डव से शिव के
'प्रेम प्रेम' उद्घोष हुआ,
धरती पर इक और फरिश्ता
बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
हिंसा से फिर छाई धरती
मानवता ने पाप लहे,
छलक पड़ा यूं खप्पर लहु से
मानो, सागर सात बहे।
जहां जहां देखा दृष्टि से
प्रलय मेघ ही नजर हुआ,
धरती पर इक और फरिश्ता
बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
युग युग के सत्-सूर्योदय का
तू प्रतीक जब श्रेष्ठ भया,
तिमिर निराशा का फिर सहसा
स्वर्णिम प्रात में बदल गया।
आत्मशुद्धि से पूत बुद्ध फिर
तेरा जय जयकार हुआ,
धरती पर एक और फरिश्ता
बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
तीरों औ' तलवारों के आगे
सत्य आन की ढाल रखी,
बम्ब बन्दूकों के आगे भी
तूने प्रेम की चाल रखी।
मौत मुट्ठी में ले के ज्ञानी
तू मृत्युञ्जय आज हुआ,
धरती पर एक और फरिश्ता
बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
घोर घटाएँ छाई भू पर,
था प्रकाश भी लुप्त हुआ,
और अहिंसा-अमृत-प्याला
धरती पर हा! ढुलक गया।
फिर भी प्रेमसिन्धु के तट पर
ज्योतिर्मय चमकार हुआ,
धरती पर इक और फरिश्ता
बुद्ध ईशु अवतार हुआ।
'मंगल मंदिर खोल दयामय !'
उर-उर से झंकार हुआ,
एक उसी के नाम-स्मरण का
घर-घर में गुंजार हुआ।

(शेष पृष्ठ ५२ पर)

पुस्तक परिचय



सन्त श्यामचरण - लेखक भिक्षु धर्मरक्षित—प्रकाशक, ममता प्रकाशन, कबीर चौरा, वाराणसी—पृष्ठ संख्या ८२—मूल्य लिखा नहीं।

इस बढ़िया कागज पर सुन्दर छपी छोटी सी पुस्तिका में सन्त श्यामचरण जी का जीवन वृत्तान्त है। श्यामचरण जी का असली नाम पीला लाल विजोरिया था। इनका जन्म मध्य प्रदेश के दुर्ग जिला के कवर्धा नामक स्थान मे २२ जुलाई सन् १८८० को हुआ था। वे स्कूल में तो केवल मिडिल पास करके ही अध्यापक का कार्य करने लगे परन्तु उनके भीतर एक जन्मसिद्ध प्रतिभा थी। उसी की प्रेरणा से उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में खूब उन्नति की। कविता में उन को विशेष रुचि थी। इसलिए उन्होंने कविता की अनेक अच्छी-अच्छी पुस्तके लिखीं। परन्तु उनके साहित्यिक जीवन से भी अधिक गौरवशाली उनका सामाजिक सुधार का जीवन है। अछूतोद्धार के कार्य में उनको बड़ा विरोध और कष्ट सहन करना पड़ा। जब ये मुख्याध्यापक थे तो इन्होंने कुछ अछूत लड़कों को भी स्कूल में भरती कर लिया। इसपर सवर्ण हिन्दुओं ने स्कूल का बहिष्कार करते हुए अपने बच्चों को स्कूल से निकाल लिया। पर श्यामचरणसिंह जी घबराए नही। वे बराबर अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। अन्ततः विरोध शान्त हो गया।

सन् १९३० में मोतियाबिंदु से इनकी नेत्र-ज्योति बिल्कुल जाती रही। तब इन्हें सरकारी नौकरी से हाथ धोने पड़े। इनको केवल पांच रुपये के लगभग मासिक पेंशन मिली। परन्तु आर्थिक संकट के रहते भी श्यामचरणसिंह जी ने अपनी पुत्री विद्यावती मालविका को उच्च शिक्षा देकर एम. ए. पी-एच. डी. और पुत्र कमलसिंह को बी. ए., साहित्यरत्न बना दिया।

सन् १९५८ मे एक बडा चमत्कार हो गया। इनकी दौहित्री के जन्म के साथ ही २८ वर्ष बाद इनकी नेत्र दृष्टि लौट आई। अब वे खूब पढ़ते लिखते हैं। श्यामचरणसिंह जी की कवित्व प्रतिभा उत्तराधिकार में उनकी दोनों सन्तानों को भी मिली है।

सन्त जी पहले सनातन धर्मी थे, फिर क्रमशः कबीर पन्थी और आर्य समाजी बने। अब वे बौद्ध हैं। वे बुद्धिवादी हैं। किसी एक संप्रदाय के खूंटे के साथ सदा बंधे रहना उन्हें पसंद नहीं। —**सन्तराम**

ज़िन्दगी दॉव पर—ले. स्टीफेन ज़्विग—अनु. यशपाल जैन—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली—१, मूल्य रु. ३.००।

स्टीफेन ज़्विग की गणना संसार के सर्वोत्तम उपन्यासकारों में की जाती है। मानव-चरित्र की जटिलताओं को जिस सूक्ष्मता से आपने अपने बृहत् और लघु उपन्यासों में व्यक्त किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। एक बार पढ़ लेने पर आपकी किसी रचना को भूल सकना असम्भव है। खेद की बात है कि पाकेट बुक्स के किसी भी प्रकाशक को अभी तक आपकी कृतियां प्रकाशित करने का विचार नहीं आया है, और इस कारण बहुजन आपकी प्रतिभा का रसास्वादन नहीं कर सका है। सम्भवतः इसी कारण विशिष्ट कृतिकार के रूप में आपका नाम भी बहुत से लोगों को ज्ञात नहीं है।

हिन्दी में आपको प्रवेश देने का श्रेय पं. बनारसीदास जी चतुर्वेदी को प्राप्त है। उन्हीं के कारण अन्य अनेक व्यक्तियों ने भी ये रचनाएँ पढ़ीं और इनके अनुवाद किए। श्री यशपाल जैन ने बहुत पहले 'विराट' नाम से एक अनुवाद प्रस्तुत किया था जो बड़ा सफल रहा। अब उन्हीं के द्वारा दो लघु उपन्यास

और भी अनूदित होकर यहां प्रस्तुत हैं। इनमें पहला है 'जिंदगी दांव पर' जो 'ट्वेन्टी फोर आवर्स इन ए वुमेन्स लाइफ' का अनुवाद है तथा दूसरा है 'अपरिचिता का पत्र' जो 'दि लेटर फ्राम एन अननोन वुमेन' का रूपान्तर है। मूल में दोनों कृतियां अत्यन्त सफल है और नारी चरित्र का अत्यन्त मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। इनको पढ़ते समय अकस्मात् शरत् की नारियों का स्मरण हो आता है। दोनों की परिस्थितियां भिन्न हैं, घटनाक्रम भी अन्य प्रकार के हैं, परन्तु अपने मूल आन्तरिक रूप में दोनों नितांत एक प्रतीत होती हैं।

पुस्तक का अनुवाद अत्यन्त सरल और विषयोपयोगी है। छपाई-सफाई और मुखपृष्ठ सुरुचिपूर्ण हैं। हमें आशा है, अनुवादक ज्विग की कुछ और भी कृतियां हिन्दी को समय-समय पर भेंट करते रहेंगे।

योर पर्सनैलिटी (अंग्रेज़ी)—ज्याफ्रे ए. डडले—मूल्य दो रुपए।

करीज़ आव इंडिया (अंग्रेज़ी)—हार्वे डे—प्रकाशक, जैको पब्लिशिंग हाउस, १२५, महात्मा गांधी मार्ग, बम्बई—१।

इन दोनों उपयोगी पुस्तकों में से पहली पुस्तक व्यावहारिक मनोविज्ञान की है तथा दूसरी पाक-कला की। मनोविज्ञान की पुस्तक में मानवी व्यक्तित्व की विविध समस्याओं तथा जीवन और समाज की भूमिका में उसके नव-निर्माण की विधियों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें विषय से संबंधित सभी तथा नवीनतम विचारधाराओं का संक्षेप में वर्णन है। पुस्तक चौदह अध्यायों में विभाजित है। आरम्भिक अध्यायों में व्यक्तित्व की परिभाषा, उसकी रूपरेखा तथा जीवन में उसके महत्त्व की चर्चा करने के बाद व्यक्तित्व के प्रकार, शरीर और स्वास्थ्य से व्यक्तित्व का सम्बन्ध, व्यक्तित्व और सांस्कृतिक परिवेश, व्यक्तित्व का अध्ययन, विवाह और व्यक्तित्व, कार्य और व्यक्तित्व आदि विषयों पर विचार किया गया है। अन्त में व्यक्तित्व को विकसित करने तथा सामाजिक सहजता प्राप्त करने के उपायों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक सभी के बड़े काम की है।

'करीज़ आव इंडिया' इस विषय पर लेखक की तीन पुस्तकों का संग्रह है जिन्हें छोटे टाइप में छापा गया है। इसमें न केवल भारत अपितु पाकिस्तान, हिन्देशिया, मलाया आदि सभी पूर्वी देशों के विशेष भोजनों और पकवानों की निर्माण-विधि का वर्णन है। पुस्तक महिलाओं के बड़े उपयोग की है। इसकी रचना में श्रीमती सरोजिनी मदनानी ने सहयोग दिया है। स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे चित्र पुस्तक के ज़ायके को बढ़ाते हैं।

विनीत नीलकण्ठ—नि. छ. जमीदार—मूल्य २ रुपए ५० पैसे।

बोल्शेविज़्म, सिद्धान्त और व्यवहार—बर्ट्रेण्ड रसल, अनुवादक, नि. छ. जमीदार—मूल्य ३ रुपए—साहित्यालय, बड़ा रावला, इन्दौर नगर-२।

'विनीत नीलकण्ठ' एक दीर्घ कथा है जिसमें एक गरीब परन्तु तेजस्वी युवक अपने प्रोफेसर की कन्या से प्रेम करने लगता है। लड़की भी उसे चाहती है परन्तु उसका विवाह किसी कर्नल से कर दिया जाता है। युवक को पहले से ही टी. बी. की शिकायत है और अब वह और अधिक बढ़ जाती है, उसे सेनेटोरियम में रहने जाना पड़ता है। वहां एक नर्स उस की बड़ी सेवा करती है। इधर लड़की अपने पति को अपने प्रेम की बात बता देती है। वह निराश हो कर भ्रष्ट होने लगता है। युवक की मृत्यु हो जाती है और यह समाचार पा कर उस की प्रेमिका भी मर जाती है।

उपन्यास आत्म-कथन के ढंग पर लिखा गया है। सभी पात्र अपनी बात कहते हैं या पत्र लिखते हैं। भाषा में मराठीपन है और अनेक स्थानों पर प्रूफ की अशुद्धियां हैं। कहानी पुराने ढंग की और रोने-पीटने की आत्म-करुणाजनक भावनाओं से पूर्ण है। साहित्यिक दृष्टि से रचना का मूल्य कुछ विशेष नहीं प्रतीत होता। इसमें वासनाहीन आदर्श प्रेम की कल्पना की गई है और कविताओं के सहारे उसे गहराया गया है।

बोल्शेविज़्म सम्बन्धी दूसरी पुस्तक सुप्रसिद्ध विचारक, बर्ट्रेण्ड रसेल के तत्सम्बन्धित ग्रंथ का अनुवाद है। विशेषतः इस अनुवाद के लिए लेखक ने एक छोटी-सी भूमिका भी दी है जिस में भारत-चीन

के संघर्ष की भी चर्चा है। पुस्तक १६ अध्यायों में विभाजित है जिस में विषय के दार्शनिक तथा व्यावहारिक, सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। इसमें लेखक की रूस-यात्रा का भी वर्णन है, जब वह लेनिन से मिले थे। मास्को के दैनिक जीवन का भी वर्णन किया गया है जो बहुत रोचक है। रूसी साम्यवाद की विफलता और समाजवाद के भविष्य पर भी प्रकाश डाला गया है।

पुस्तक की छपाई और सफाई अच्छी है परन्तु प्रूफ की अशुद्धियां बहुत हैं। अन्त में लम्बा शुद्धि-पत्र दिया गया है। मूल्य भी अधिक प्रतीत होता है।

बाल साहित्य

हिन्दुस्तान हमारा है—रत्नप्रकाश 'शील'।
हमारा संविधान—त्रिलोक दीप।
अच्छे नागरिक बनो—राजेन्द्र धस्माना।
शकुन प्रकाशन, दिल्ली-६—मूल्य रु. १.२५ प्रत्येक।

शकुन प्रकाशन के बाल साहित्य सम्बन्धी प्रकाशनों की चर्चा हम पहले अंकों में कर चुके हैं। यहां नागरिकता तथा सम्बद्ध विषयों पर तीन प्रकाशन हैं, जो बालकों को इन विषयों की सरल ढंग से शिक्षा देने की दृष्टि से तैयार किए गए हैं। पहला प्रकाशन अपने देश के सम्बन्ध में है, दूसरा संविधान के सम्बन्ध में और तीसरा नागरिकता के नियमों के सम्बन्ध में। तीनों में ही उत्तम ढंग से अपने-अपने विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

'हिन्दुस्तान हमारा है' पुस्तक में देश तथा उसकी स्वतन्त्रता के प्रति अपनत्व और दायित्व की भावना जगाने का प्रयत्न किया गया है। लगभग हजार साल तक हम गुलाम रहे। बड़ी कठिनाई से अब कुछ साल पहले हम इन जंजीरों को तोड़ पाए हैं। परन्तु इतने समय में ही फिर हम पर चीनी आक्रमण होने लगे हैं और हमारी स्वतन्त्रता खतरे में पड़ गई प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में यह उचित ही है कि देश की रक्षा तथा उसे स्वतन्त्र बनाए रखने की दृष्टि से यहां के वर्तमान और भावी नागरिकों को शिक्षित करना आरम्भ कर दिया जाए। यह देश के प्रति गहरे अपनेपन तथा उसके लिए सब कुछ बलिदान कर देने की भावना जगाने से ही हो सकता है।

प्रस्तुत रचना में इसी दृष्टि से ऐसी कुछ कहानियों का संकलन किया गया है जिनमें देश के लिए लोगों ने अपने प्राण भी निछावर कर दिए। पर इनकी विशेषता यह है कि ये सभी बलिदानी बालक ही है। एक कहानी सरदार भगतसिंह के समय बलिदान करने वाले बालक की है, दूसरी में चीनियों को रोकने वाले बालकों का वर्णन है, तीसरी में सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम में जान देने वाले एक बालक की वीरता बताई गई है। इसी तरह अन्य कहानियों में भी बालकों को ही नायक बनाया गया है। एक कहानी में एक बालिका भी नायिका है।

'हमारा संविधान' में भारतीय संविधान तथा उसके अंतर्गत होने वाले विविध क्रियाकलाप का सचित्र वर्णन किया गया है। इनमें राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव तथा उनके कर्त्तव्य, मन्त्रिमण्डल के कार्य, संसद का स्वरूप और पद्धति, न्यायालय, राज्यपाल, विधान मण्डल, लोक सेवा आयोग आदि सभी बातों को बड़े सरल ढंग से समझाया गया है। भारतीय लोकतंत्र कैसे कार्य करता है तथा उसके अन्तर्गत देश का शासन कैसे चलता है, इसकी जानकारी सभी को होनी ही चाहिए। हमें विश्वास है, इस पुस्तक को बच्चे बड़ी रुचि से पढ़ेंगे और थोड़े परिश्रम से अधिक सीख सकेंगे।

'अच्छे नागरिक बनो' में कथा-कहानी और सामान्य बातचीत के द्वारा बच्चों में नागरिकता के गुण भरने की चेष्टा की गई है। उपदेश देकर किसी बात को समझाने की पद्धति गलत है, और विशेषत: बच्चों के लिए तो यह नितान्त निरर्थक ही है। वैसे भी विद्यार्थी-अनुशासन की समस्या इस देश में बड़ी जटिल है। आए दिन कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में उपद्रव होते रहते है। उड़ीसा में तो विद्यार्थियों ने विधान सभा पर आक्रमण करके बड़ी तोड़-फोड़ की और फलत: वहां के मुख्य मन्त्री को इस्तीफा देना पड़ा। अत: यदि उनमें बचपन से ही अच्छी नागरिकता के गुण उत्पन्न किए जाएँ तथा अपने दायित्व को समझने की भावना विकसित की जाए, तो इन बातों की

रोकथाम की जा सकती है। आगे चलकर ये ही देश के अच्छे नागरिक बन सकते हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक अत्यन्त स्वागत योग्य है और इसे प्रत्येक बालक के हाथ में देना चाहिए। —**चिरन्तन**

रंग-रंगाले ये त्योहार—लेखक—श्री मदन 'विरक्त'। प्रकाशक—शिक्षण संस्थान, १२–बी, प्रह्लाद मार्केट, नई दिल्ली। मूल्य—१.६० पैसे।

भारत मेलों तथा त्योहारों का देश है। ये मेले तथा त्योहार भारतीय संस्कृति के प्रतीक तया एकता के प्रबल सूत्र हैं। ये ऐसे साधन हैं जो प्रेम तथा एकता के बन्धन को सुदृढ बनाते हैं। ऐसे पर्वों से सब का, विशेषकर बच्चों का परिचित होना अत्यावश्यक है। बच्चों को भविष्य में भारतीय संस्कृति के ध्वज को समारोहपूर्वक फहराना है। इन पर्वों की जानकारी सरल ढंग से देने के लिए ही समालोच्य पुस्तिका का प्रकाशन हुआ है।

इस पुस्तिका में एक ओर राखी, जन्माष्टमी, दशहरा, दीवाली, होली, वसन्त पंचमी, ईद-मुबारक, बड़ा दिन जैसे पर्वों को रखा गया है, तो दूसरी ओर वे पर्व भी प्रस्तुत किए गए हैं जिनका प्रारम्भ स्वतन्त्रता-सूर्य के उदय के उपरान्त हुआ है तथा जिन्होंने राष्ट्रीय जीवन को गौरवान्वित किया है। ऐसे पर्व हैं—पन्द्रह अगस्त, गांधी-जयन्ती, गणतंत्र दिवस तथा बाल-दिवस। गांधी-जयन्ती तथा बाल-दिवस का सम्बन्ध भारत के दो महान् निर्माताओं से है। इनको स्थान न मिलने से पुस्तिका अपूर्ण रहती। लेखक की दृष्टि राष्ट्रीय महत्त्व को ठीक पहचान पाई है इसलिए पर्वों की सूची राष्ट्रीय दृष्टिकोण के आधार पर तैयार हुई है। पुस्तिका की शैली सरल तथा सुबोध है। इसके प्रारम्भ में यदि "राखी का त्योहार" है तो अन्त में "भारतीय आत्मा" के प्रेरणादायक गीत का अंश। स्कैच, टाईटल, छपाई, शैली, भाषा, विषय—सभी दृष्टियों से लेखक तथा प्रकाशक का यह प्रयत्न स्तुत्य है। इसी कारण लेखक तथा प्रकाशक केन्द्रीय मन्त्री श्री सत्यनारायण सिन्हा के शुभाशीर्वाद के पात्र बने हैं।

पत्थर बोलते हैं—लेखक—श्री सतीश। प्रकाशक—सुभाष एण्ड कम्पनी, दरियागंज, दिल्ली–६ मूल्य—रु० १.२५।

भारतीय संस्कृति की कहानी बहुत पुरानी है। इस कहानी के कतिपय अंश यदि कुछ ग्रन्थों में उपलब्ध हैं तो अनेक चित्र कलाकृतियों तथा भवनों में भी विद्यमान हैं। इन सब को सफलतापूर्वक संजोने के बिना कोई अर्थ नहीं निकलता। प्राचीन भवनों के पत्थर भी यही कहानी कहते प्रतीत होते हैं, जैसा कि पुस्तिका की भूमिका में भारत सरकार के कृषि मन्त्री श्री रामसुभगसिंह ने कहा है—"ईंट, पत्थर और चूने से बनी हुई ऐतिहासिक इमारतें भले ही सैकड़ों वर्षों से मूक खड़ी हों लेकिन उनके निकट जाने पर मालूम होता है कि वे अपनी कहानी स्वय ही कह रहे हैं।"

पुस्तिका में भारत के तेरह धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, कलात्मक स्थानों का परिचय है। यह परिचय प्राचीन इतिहास की जानकारी प्राप्त करने में प्रचुर सहायक बन सकता है। लेखक की शैली की प्रमुख विशेषता है कि ये स्थान अपनी कहानी स्वयं कहते हैं। ऐतिहासिक सामग्री को नवीन सांचे में ढाल कर आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करना कोई सरल कार्य नहीं। भाषा तथा शैली सुबोध है। मेक अप, रेखा-चित्रों की दृष्टि से पुस्तिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऐसी सुन्दर कृति के लिए हम लेखक का अभिनन्दन करते हैं।

उठो जवान हिन्द के—सनतकुमार—भारतीय सत्साहित्य प्रकाशन मंदिर, ३३१, बेलनगंज, हरदेवगंज, आगरा। मूल्य देश प्रेम।

उसे हिमालय पर भगाओ—रूपचन्द पारीक, प्रभात प्रकाशन, जोधपुर—मूल्य ७५ पैसे।

प्रस्तुत दोनों काव्य-पुस्तकें चीनी आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में लिखी और प्रकाशित की गई हैं। पहली में हिन्दी के अतिरिक्त गुजराती की भी कविताएं हैं और दूसरी में केवल हिन्दी का कविताएं हैं। दोनों की कविता सुन्दर और आक्रोश से पूर्ण हैं। एक उदाहरण देखिए जिस में बहिन भाई को पत्र लिखती है—

जो मेरी कलियों को नोचे उसे चटाओ धूल।
जो मेरी गलियों में आए उसे दिखाओ शूल।
जिसने मेरी रत्न-प्रभा पर फैलाया है खून।
तुम्हें शपथ है मेरी उसको ज़िन्दा डालो भून।

—**मोहन मैत्रेय**

सम्पादकीय



श्रीनेहरू के स्मारक—

स्मृतिलोकवासी, हमारे सर्वप्रिय प्रथम प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के स्थान-स्थान पर स्मारक बनाने का उद्योग किया जा रहा है।

बनने के लिए प्रस्तुत हो रहे स्मारकों की लड़ी में प्रमुख स्थान नई देहली के उस विशाल भवन को मिलने जा रहा है जिसमें प्रधानमन्त्री के रूप में लगातार वे रहते रहे। यह स्मारक उनसे सम्बन्धित वस्तुओं के संग्रहालय के रूप में होगा। दूसरा भौतिक स्मारक जो राजधानी में रूपवान हो रहा है, वह 'शान्ति घाट' है, जहां पर उनका भौतिक काय जल कर वह राख बना जिसकी एक-एक रत्ती राष्ट्र की मिट्टी में अब विलीन कर दी गई है और जहां पर विश्व के कोने-कोने से आने वाले विशिष्ट राजकीय अतिथि एवं दूसरे यात्री नियत प्रथा के अनुसार पहुंच कर भारत के आदर्शों के पवित्र प्रतीक-स्वरूप उस विश्व-मानव की पावन स्मृति में नतमस्तक होते हैं। उनका तीसरा स्मारक जो नई देहली में खड़ा होने जा रहा है, वह सर्वांगसम्पूर्ण 'नेहरू-विश्वविद्यालय' के रूप में है।

इसके अतिरिक्त सभी प्रदेशों की राजधानियों में स्मारक बनाने की चर्चा चलने लगी है। यही नहीं, उपनगरों तथा ग्रामों में भी उनके नाम पर कुछ-न-कुछ स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस सबसे उनकी अपार लोकप्रियता पर प्रकाश पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं और यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात भी है।

परन्तु देहली से अन्यत्र के इन सब स्मारकों के बनाने में, जो मुख्यत: पत्थर की मूर्तियां ही होंगे, जितना धन व्यय किया जाएगा, वह भारत जैसे निर्धन देश के लिए, जहाँ अन्न की समस्या बहुत ही कठिन हो रही है, सम्भवत: शोभा नहीं देता। इसीलिए उनकी सुयोग्य पुत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने इन्हीं दिनों एक स्थान पर कहा है कि उनके पिता के स्मारक बनाने के लिए एकत्रित किया जाने वाला धन वास्तव में जनता की कल्याण-योजनाओं में व्यय किया जाना चाहिए। निश्चय ही उनका यह विचार बहुत ही उत्तम है और हम इसका हार्दिक अभिनन्दन एवं समर्थन करते हैं।

श्री नेहरू स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म के प्रेमी थे और बाहर के प्रदर्शनमात्र की अपेक्षा वास्तविकता को अधिक महत्त्व देते थे। इसीलिए उन्होंने अपने शरीर की राख पर स्तूप आदि बनाने का निषेध किया और उसे भारत की मिट्टी में जहाँ-तहाँ मिला देने का आदेश दिया। इसी एक बात से प्रकट है कि वे अपने किसी भी प्रकार के भौतिक स्मारक नहीं चाहते थे। उनकी तो वास्तविक इच्छा कुछ और ही थी। उनका आजीवन यही संकल्प व प्रयत्न रहा कि अपने-आप को सभी प्रकार से अपनी प्रिय भारतीय जनता के हित में लगाए रखें और इस कठिन चिर-साधना द्वारा जनता-जनार्दन के हृदय में अदृश्य सूक्ष्म रूप से सदैव जीवित रहें। सचमुच उन्हें ऐसी कल्पना भी, कि कभी मेरे बुत बना कर स्थान-स्थान पर खड़े किए जाएंगे, अत्यन्त घिनौनी लगती और वे इसको सहन न कर सकते। पत्थर की मूर्तियां तो हवा-पानी के झोंकों से किसी-न-किसी दिन गिर भी सकती हैं, परन्तु जनता के हृदय में जो उन की विश्व-कल्याण-कामिनी प्रतिमाएं स्थापित हो चुकी हैं, वे अमिट और अमर रहेंगी।

हमारा ऐसा अभिप्राय कदापि नहीं है कि देहली से बाहर उनका कोई स्मारक बनाया ही न जाए। हम तो चाहेंगे कि स्थान-स्थान पर उनके सैकड़ों और सहस्रों स्मारक बनें। परन्तु जैसा उनकी सुपुत्री ने संकेत किया है, प्रत्येक स्मारक ऐसा होना चाहिए कि उसके द्वारा जनता की ठोस सेवा और सुख-वृद्धि हो सके।

हिन्दी-दिवस—

हम १४ सितम्बर को प्रतिवर्ष 'हिन्दी-दिवस' मनाते हैं। सन् १९४९ में इसी दिन हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया गया था। परन्तु साथ ही अंग्रेजी को भी १९६५ तक के लिए सरकारी व्यवहार की भाषा मान लिया गया था। आशा थी कि इन १५ वर्षों के समय में हिन्दी पर्याप्त विकसित होकर अंग्रेजी का स्थान ले सकेगी। यह आशा पूर्ण नहीं हो सकी। इसीलिए गत वर्ष संसद को एक नया विधेयक स्वीकृत करके इस अवधि को १५ वर्ष के लिए और बढ़ाना पड़ा।

यह बड़े खेद की बात है कि वस्तुत: इस अवधि में हिन्दी को उक्त स्तर तक लाने के लिए पर्याप्त ठोस कार्य नहीं हो पाया है। हां, आन्दोलन तथा कोलाहल बहुत अधिक होता रहा है, जो नहीं होना चाहिए था। अस्तु, अब हमें चाहिए कि अपना सारा ध्यान और बल उन यथार्थ नीतिओं को अपनाने एवं क्रियान्वित करने में लगा दें, जो वस्तुत: उक्त लक्ष्य तक हमें पहुंचा सकें।

हिन्दी भारत के दो तिहाई भाग की प्रादेशिक भाषा भी है। इसमें उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान और कुछ पंजाब आता है। यदि ये अपना आंतरिक और केन्द्र के साथ होने वाला संपूर्ण व्यवहार हिन्दी में कर दें, तो यह दो-तिहाई कार्य सहज संपन्न हो जाता है। शेष रहता है एक तिहाई। इसमें भारत के दक्षिण तथा पूर्वी भाग आते हैं। गत वर्षों में इन सभी भागों में हिन्दी का बड़ा प्रचार हुआ है। यहां भी अधिकांश व्यक्ति हिन्दी जानने लगे हैं। परन्तु इनमें इनकी अपनी प्रादेशिक भाषाओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है। यदि हिन्दी पर भी उतना ही ध्यान दिया जाय और उसे प्रोत्साहित भी किया जाय, तो कुछ समय में उसका उपयोग अपेक्षाकृत बहुत बढ़ सकेगा। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रादेशिक भाषाओं की उपेक्षा की जाय; वस्तुत: दोनों को उनका उचित स्थान प्राप्त होना उचित है। नागरी को राष्ट्रलिपि बनाने से हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं में अत्यधिक समीपता लाई जा सकती है।

हिन्दी को हमें अंग्रेजी के स्थान पर प्रतिष्ठित करना है। अत: उसे उसी स्तर से स्कूलों में पढ़ाया जाना चाहिए, जिस स्तर से, अंग्रेजों के समय में, अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी। परन्तु इसका तात्पर्य अंग्रेजी के महत्त्व और उपयोगिता को घटाना कदापि नहीं है। अंग्रेजी हिन्दी की तुलना में कहीं अधिक समृद्ध भाषा है और उसका उपयोग हम न केवल बहुत दिन से करते आए हैं, अपितु बहुत से शासकीय तथा अन्य कार्य अभी हिन्दी में समुचित रूप से किए नहीं जा सकते। हिन्दी को धीरे-धीरे ही समृद्ध किया जा सकेगा और उसी गति से यह परिवर्तन भी संभव हो सकेगा।

—विश्वबन्धु

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन-समागम— पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१. चौ० सुन्दरसिंह, उपमन्त्री, चण्डीगढ़, २—४. श्री व श्रीमती काशमीरसिंह कोहली, श्री देवराज शास्त्री, अमृतसर, ५—६. प्रो० मोहन मैत्रेय, डा० गंगाराम द्विवेदी, होशियारपुर, ७. श्री बी० एस० मायुर, पटियाला, ८. पं० धृतराम शास्त्री, जालन्धर।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क— गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए—

१. श्री के० सी० छावड़ा, जालन्धर शहर, १०), २. मास्टर रत्नसिंह, देवपुर (होशियारपुर), १०)।

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—

१. दीवान हुकमचन्द, अम्बाला छावनी, १८०), २. श्री नरेन्द्रनाथ मोहन, सोलन, १८०), ३. श्री डी० आर० गाडगिल, पूना, १७०), ४. डा० सुन्दर लाल भण्डारी, मण्डी (हि० प्र०), १६१), ५. डा० मुंशीराम शर्मा, कानपुर, १४०), ६. प्रो० सन्तराम आनन्द, नई दिल्ली, १००), ७. श्री अमरनाथ सेठ, मसूरी, ६५), ८. श्रीमती राजरानी मेहता, नई दिल्ली, ५१), ९. श्री अवतार कृष्ण हज़ारी, चण्डीगढ़, ५०), १०. श्री ए० आर० खोसला, डलहौज़ी, ५०), ११—१२. श्री जयकरण कोहली, ५०), रा० ब० रामलाल, ५०), नई दिल्ली, १३. डा० एन० डी० अग्रवाल, पटियाला, २५), १४. आचार्य वी० पी० लिमये, पूना, २५), १५. श्री भागीरथ कनोड़िया, कलकत्ता, २५), १६. चौ० रामचन्द भाटिया, करनाल, २०), १७. श्री मोतीराम, मुक्तसर (फिरोज़पुर), २०, १८. प्रो० मूतदेव हंस, टांडा उड़मुड़, २०), १९. श्री श्रवणकुमार, मुजफ्फरपुर, २०), २०—२१. श्रीमती हरबंस आहूजा, २०), प्रो० देवेन्द्र लाल, २०), नई दिल्ली, २२. स्वामी कैवल्यानन्द, लोनावला (पूना), ११), २३. श्री चरञ्जीलाल, पटियाला, ११), २४. श्री कर्मचन्द लड़ोइया, नवांशहर दोआबा, १०), २५. श्री आर० एन० चोपड़ा, जबलपुर, १०), २६—२८. श्री जगतराम कपूर, १०), श्री एस० सी० सेन गुप्त, १०), श्री आर० एन० पराशर, १०), नई दिल्ली, २९. प्रो० रत्नचन्द्र शर्मा, करनाल, १०), ३०. श्री के० एस० गुप्ता, दिल्ली, १०), ३१. श्री देवराज शास्त्री, अमृतसर, १०), ३२—४५. चौ० गुरबक्श सिंह, १०), डा० मुल्कराज भसीन, १०), श्री रामप्यारा बहल, १०), श्री राजहरि मदान, १०), श्री मुनीश्वर देव, १०), श्री रेवतराम १०), श्री रामप्रकाश, १०), श्री जयराम, १०), श्री गोकुलचन्द, १०), श्री श्रीकृष्ण, १०), श्री नरपतराय, १०), श्री भोलानाथ, १०), श्री कुन्दनलाल कुठियाला, १०), श्री रामगोपाल, १०), होशियारपुर।

विशेष दान—१. आर्य स्त्री समाज, कलकत्ता, २४००), २. सर्वश्री मूलचन्द खरायतीराम ट्रस्ट, नई दिल्ली, १०००)।

अनुकरणीय योग-दान—श्रीमती विद्यावती जी (धर्मपत्नी श्री जइआं शाह सम्भरवाल), कलकत्ता, ने कार्नवालिस गली के स्त्री आर्य समाज की ओर से विशेष परिश्रमपूर्वक एकत्र करके २४००) संस्थान में एक कमरा बनवाने के निमित्त दान के रूप में भेजा है। अन्यों के लिए भी प्रेरणाप्रद हो सकने योग्य इस दान के लिए हम उनका तथा अन्य सभी संबंधित बहिनों का हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

हिन्दी-दिवस—पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य संगम की ओर से १४ सितम्बर को स्थानीय नगरपालिका के पुस्तकालय में 'हिन्दी-दिवस' मनाया गया जिसकी अध्यक्षता आचार्य विश्वबन्धु जी ने की। इस अवसर पर संगम के मन्त्री, प्रो० मोहन मैत्रेय ने संगम के उद्देश्यों और कार्यों पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी के अधिकाधिक प्रचार की अपील की। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के विषय में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। श्री सन्तराम जी ने अपने भाषण में हिन्दी की महत्ता पर प्रकाश डाला। आचार्य विश्वबन्धु जी ने हिन्दी को देश की सामान्य भाषा और नागरी को सब भाषाओं की लिपि बनाने तथा अन्य सभी भाषाओं को भी फलने-फूलने देने का आग्रह किया। आपने कहा कि हमें संस्कृत को भी उसका उचित स्थान देना चाहिए क्योंकि वह न केवल सभी भाषाओं की जननी है, अपितु उसमें हमारी सब सांस्कृतिक परम्परा भी निहित है।

इस मास के कार्यक्रम—इस मास ४ अक्तूबर को गांधी-जयन्ती, १८ अक्तूबर को विजयादशमी और २५ अक्तूबर को वाल्मीकि-जयन्ती मनाई जाएगी। इन अवसरों पर विशिष्ट विद्वानों के भाषण होंगे।

श्रीकृष्ण-जयन्ती—३० अगस्त, रविवार को 'विश्व-सत्संग' की ओर से श्रीकृष्ण जयन्ती मनाई गई, जिसकी अध्यक्षता प्रि० रामदास, पूर्व एम० पी०, ने की। प्रो० निर्मलचन्द्र जी ने अपने भाषण में गीता के सिद्धांतों तथा जीवन में उनके उपयोग की सार्थकता पर प्रकाश डाला। आचार्य विश्वबन्धु जी ने अपने भाषण में यह विचार प्रकट किया कि 'भागवत और महाभारत के कृष्ण दो अलग व्यक्तित्व थे। आपने कहा कि महाभारत के कृष्ण तो ऐतिहासिक व्यक्ति हो सकते हैं परन्तु भागवत के अवतार रूपी कृष्ण वैदिक-काल से चले आ रहे सूर्य-देवता का विकास है, जो विष्णु भी कहलाए। अन्त में प्रि० रामदास जी ने श्रीकृष्ण-चरित्र की महानता पर प्रकाश डाला।

१६ अगस्त के विश्व-सत्सग में आचार्य विश्वबंधुजी ने इस्लाम के प्रवर्त्तक, हजरत मुहम्मद साहब की महत्ता पर प्रकाश डाला। इस दिन हजरत साहब का जन्म-दिवस था।

बधाई—

संस्थान के जीवन-सदस्य श्री शम्भूलाल पुरी (चंडीगढ़) को उनके सुपुत्र श्री मुनीश्वर के शुभ विवाह पर और डा० के० एल० विग (नई दिल्ली) को ऑल इंडिया इन्स्टीच्यूट ऑफ मैडीकल साइंसिज़ के डायरेक्टर के रूप मे नियुक्ति पर संस्थान हार्दिक बधाई देता है।

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान सदस्य दीवान मोतीराम साहनी (सहारनपुर) की धर्मपत्नी श्रीमती जानकी देवी का ११-९-६४ को, संस्थान-सदस्य व कर्मिष्ठ श्री रामप्यारा जी की छोटी बहन का ३-९-६४ को तथा संस्थान-सदस्य चौ. अनन्तराम आनन्द (पूना) के छोटे भाई चौ. विश्वनाथ जी का देहली में देहांत हो गया। दिवंगत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

विविध समाचार

दिल्लीस्थित इण्डियन कौंसिल फॉर कल्चरल रिलेशन्स ने प्रतिवर्ष १ लाख रु. का जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार देने का निश्चय किया है। यह पुरस्कार अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारा बढ़ाने वाले और विश्व-शांति की दिशा में प्रयत्न करने वाले किसी भी व्यक्ति को दिया जाया करेगा। फरवरी में पुरस्कार की घोषणा की जाया करेगी और नवंबर में—जिस मास नेहरू जी का जन्म हुआ था—पुरस्कर्ता को भारत बुला कर पुरस्कार दिया जाया करेगा तथा इसके बाद उसका एक भाषण भी हुआ करेगा। इस कार्य के लिए एक उच्चस्तरीय समिति निर्मित की जा रही है।

× × ×

उपरोक्त कौंसिल ने यह भी निर्णय किया है कि प्रति वर्ष ५ देशों के ५-५ बालकों के दल भारत की दो सप्ताह की यात्रा के लिए बुलाए जाया करेंगे। इनकी आयु ११-१४ वर्ष की होगी। ये सभी साथ-साथ यात्रा करेंगे और विभिन्न स्कूलों में अपनी आयु के बालकों से मिलेंगे। अवधि के अन्तिम दिनों में उनका एक शिविर भी लगेगा जिसमें २५ के लगभग भारतीय बालक भी भाग लिया करेंगे। शिविर का उद्देश्य उनमें घनिष्टता बढ़ाना है जो जीवन में आगे भी चलती रहे। विदा होने से पूर्व सब को एक नेहरू पदक भेंट किया जाया करेगा।

× × ×

कुरान की एक प्राचीनतम पांडुलिपि रूस में बताई जाती है। यह रूसी तुर्किस्तान में है। कहा जाता है कि तेरह सौ साल पहले खलीफा अवक़ान ने कुरान शरीफ़ की पांच पाण्डुलिपियां इसलिए तैयार कराई थीं कि समस्त मुस्लिम जगत के पास उक्त पवित्र पुस्तक की एक सी ही पाण्डुलिपियां होनी चाहिए। कालांतर में दो प्रतियां कहीं नष्ट हो गईं। एक मक्का में है और एक काबुल में। तीसरी प्रति रूस में साम्यवादियों के पास है।

× × ×

प्रो. गंकोव्स्की नामक प्रसिद्ध भारत-भारती-विद् ने बताया है कि रूस की एशिया से सम्बन्धित संस्था के २० प्रतिशत प्रकाशन केवल भारत के सम्बन्ध में हैं। आप अपने साथी डा. मोस्केलेन्को के साथ, भारत सरकार के निमंत्रण पर, दो मास की भारत यात्रा कर रहे हैं। ये लोग आधुनिक भारत के सम्बन्ध में एक ग्रन्थ तैयार कर रहे हैं, जो तीन वर्ष में प्रकाशित होगा। लोकमान्य तिलक के सम्बन्ध में भी ये एक पुस्तक तैयार कर रहे हैं। आपने बताया कि रूस में प्रकाशित भारत विषयक पुस्तकों में से अनेक यहां की सुप्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों के रूसी अनुवाद हैं तथा अनेक भारत सम्बन्धी शोध ग्रन्थ हैं, जिन्हें रूसी विद्वानों ने लिखा है। इनमें श्री नेहरू और गांधी जी की पुस्तकें भी हैं।

× × ×

गत मास हांगकांग में एशियाई इतिहास का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें सभी देशों से एशियाई तथा अन्य—१०० के लगभग माने हुए विद्वानों ने भाग लिया। भारत से तीन प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इसमें विविध एशियाई विषयों पर निबन्ध पढ़े गए तथा विचार-विनिमय हुआ। हांगकांग विश्वविद्यालय ने इस सम्मेलन का आयोजन किया था।

× × ×

दिल्लीस्थित नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से आगामी जनवरी मास में सभी विषयों के उत्तम भारतीय प्रकाशनों की एक विशाल प्रदर्शनी आयोजित करने का निश्चय किया गया है। ट्रस्ट ने विविध विषयों पर विद्वान् लेखकों से अच्छी पुस्तकें लिखा कर प्रकाशित करने की भी एक विस्तृत योजना बनाई है।

× × ×

सुप्रसिद्ध मलयालम लेखक, तकषि शिवशंकर पिल्ले, के प्रसिद्ध उपन्यास, 'चेमीन' का अंग्रेज़ी के अतिरिक्त १० विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है : रूसी, जर्मन, चेक, स्पेनी, पोलिश, फ्रेंच, इटालियन, डच, स्वीडिश और लिथुआनियन। सम्भवतः यह पहली भारतीय रचना है जो इतनी अधिक अनूदित हुई है।

★ ★ ★

सूचना :—कृपया पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।

—व्यवस्थापक, "विश्व-ज्योति"

OUR LATEST PUBLICATIONS

General Editor **Prof. VISHVA BANDHU**

● ● ●

Ṛgveda, Parts I-VIII Containing (1) Mantra-patha, (2) Pada-patha and (3) First Cri. Edn of the Bhasya-s of (a) Skandasvāmin (b) Udgithācarya and (c) Mudgalācarya (i.e. Sāyanācarya's Vrtti) and (4) Revised Cri. Edn of Venkata-Madhava With exhaustive Introduction and Text Variants from 32 original Mss.

Parts II-V, Rs. 180.00. (Other parts in press)

Atharvaveda, Parts I-V Containing (1) Mantra pātha (Śaunaka-Śākhā), (2) Padapātha and (3) Revised Cri Edn of Sāyanācārya's Bhasya Annotations comprise complete text comparative data drawn from all other basic texts, namely Samhita-s (including Paippalāda), Brāhmana-s Aranyaka-s, Upanisad-s and Sūtra-s as well as from all the Mss. used and the text-reconstructions made by Roth, Whitney Pandit and Lanman With elaborate Prefatory Section.

Pts. I-IV, Rs 180.00 (Pt. V in press)

Cāṇakya-Niti-Text-Tradition, Parts I-III, critically edited from 73 Mss with elaborate Introduction and Pratīka Indices by Dr L Sternbach

Pt I-II, Rs 60.00 (3rd part in press)

Rājataraṅgiṇī, Parts I-IV, Critical edition of Kalhana's text, in 2 parts by Vishva Bandhu. Editions of the texts by Jonarāja Srivara and Śuka in the next 2 parts.

Part I Rs 30.00 (Other parts in press)

Sāṅkhya Karikā of Īsvarakṛṣṇa, by Dr. C Kunhan Raja A new interpretation of the well-known philosophical text. Rs. 10.00

Dṛggaṇitam of Parameśvara, edited by K V Sarma Source book of the Dṛgganita system of astronomy Rs 5.00

Saṅkarṣa Kāṇḍa Sūtras of Jaimini, edited by K. V. Sarma. A supplement of Jaimini's Dvādaśalakṣaṇī. Rs 5.00

● ● ●

Can be had of

Vishveshvaranand Book Agency.

Sadhu Ashram P.O., HOSHIARPUR (Pb., India)

Name of owner — Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri** on 28th September, 1964
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram Hoshiarpur.

विश्व ज्योति

नवम्बर १९६४

सह-सम्पादक

विश्वबन्धु : सन्तराम

वार्षिक मूल्य—

भारत में ८ रु   विदेश में १२ शिलिंग

VVRI INDOLOGICAL PUBLICATIONS

Gen. Editor : Prof. VISHVA BANDHU

(A) Shāntakuṭī Vedic Series :

Volume I-XV. Vaidika-Padānukrama Koṣa (*A Vedic Word-Concordance*), in Sections I-V, split up into 16 parts, treated as volumes in the series, [Sec. I (Saṁhitās) in 6 pts., Sec. II (Brāhmaṇas) in 2 pts., Sec. III (Upaniṣads) in 2 pts., Sec. IV (Vedāṅgas) in 4 pts. and Sec. V (General) in 2 pts.]. Covering 11,000 (10″×7″) pages. 3-Quality issue, uniform price Q. I, Rs. 40 ; Q. II, Rs. 30 ; Q. III, Rs. 20 per part. Orders for full 15-part sets or full sectional sets (but not individual parts) entertained. 15 parts on sale, (part 16 in press.)

Volume XVI. A Grammatical Word-Index to Ṛgveda, Rs. 50.

Volume XVII. A Grammatical Word-Index to Atharvaveda, Rs. 60.

Volume XVIII-XIX. A Grammatical Word-Index to the four Vedas, Pts. I-II, Rs. 100.

Volume XX. A Grammatical Word-Index to Taittirīya Saṁhitā, Rs. 40.

(B) Vishveshvaranand Indological Series :

Volume I-II. Siddha Bhāratī, (*A Rosary of Indology*), Pts. I-II, 108 classified papers with General Index, Rs. 60.

Volume III. Purāṇa-Viṣaya-Samanukramaṇikā, (*A Concordance of Purāṇa Contents*), by Prof. Y. P. Tandan, Rs. 6.

Volume IV. Gaṇikā-Vṛtta-Saṅgraha, (*Texts on Courtezans in Classical Sanskrit*), texts classified and presented with preambles in English, by Dr. L. Sternbach, Rs. 20.

Volume V. The Etymologies of Yāska, critically examined in the light of modern Philology, by Dr. Siddheshwar Varma, Rs. 25.

Volume VI. Sarūpa-Bhāratī, (*The Homage of Indology*), 40 classified papers and 17 plates with General Index. Ed. Prof. Jagan Nath Aggarwal and Prof. Bhim Dev Shastri, Rs. 30.

Volume VII. Ideologies of War & Peace in Ancient India, by Prof. Indra, Rs. 20.

Volume VIII. Epochs in Hindu Legal History, by Dr U. C. Sarkar, Rs. 30.

Volume IX. Studies in Indian Cultural History, by Dr. P. K. Gode, Rs. 30.

Volune X-XI. Catalogue of VVRI Collection of Manuscripts, 2 Pts Rs. 80.

Volume XII. The Panjab as a Sovereign State, by Dr. G. L. Chopra, Rs. 15.

Volumes XIII-XVII. Atharvaveda (Śaunaka), with Pada-pāṭha and Sayaṇācārya's Commentary, Ed. Vishva Bandhu, Vols. XIII-XVII ready, Rs. 45 per vol.

Volume XVIII. Saṅkarṣa Kāṇḍa Sūtras of Jaimini, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

Volumes XIX-XXVI Ṛgveda, in 8 parts, first cri. edn. of the Bhāṣyas of Skandasāmin, Udgītha, Mudgala and Venkaṭa-Mādhav, Ed. Vishva Bandhu. Pts. 2 5 ready, Rs. 45 per part.

Volumes XXVII-XXIX. Cāṇakya-Nīti-Text-Tradition, first cri. edn. by L. Sternbach, Vol. XXVII and XXVIII ready, Rs. 30 each vol.

Volume XXX. Dṛgganitam of Parameśvara, Ed. K. V. Sarma, Rs. 5.

(C) Woolner Indological Series :

Volnme I. The Foreign Policy of Warren Hastings, by Ram Prakash, Rs. 5.

Volume II. Tagore Centenary Volume, Ed. Shri Mahendra Kulasrestha, Foreword by Prof. Humayun Kabir. Rs. 16.

Volume IIA. The Genius of Tagore, P. I of the above. De-luxe Rs. 12.
Standard Rs. 8.

Volume II B. Aspects of Indian Culture, P. II of the above. De-luxe Rs. 18
Standard Rs. 12

Volume IV. The Sāṅkhya Kārikā of Iśvarakṛṣṇa, by C. Kunhan Raja, Rs. 10.

Volumes V-VIII. Rājataranginī, cri. edn. of its texts by Kalhaṇa, Jonarāja, Śrīvara and Śuka, Vol. V ready. Ed. Vishva Bandhu, Rs. 30.

(D) Sarvadānand Universal Series :

Volume XII. Mental Health in Theory & Practice, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 2·25.

Volume XVIII. A Story of Indian Culture, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 5.

Volume XXV. The Theory of Socialism, Ancient and Medieval, by Prof. R. M. Uppal, Rs. 1·25.

Volume XXVI. Great Thoughts of Great Men, by Prin. Sain Das, Rs. 3·50.

Volume XXVII. The Religion of Buddha and its Relation to Upaniṣadic Thought, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 4·50.

Volume XXX. Popular Talks on Psychological Topics, by Dr. Prem Nath, Rs. 2·25.

Volume XXXI. An Introduction into Lamaism, The Mystical Buddhism of Tibet, by R. P. Anuruddha, Rs. 8.

Volume XXXIV. Shri Krishna, His Philosophy and His Spiritual Path, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3 25

Volume XL. Dayanand, A Study in Hinduism, by Prin. Bahadur Mal, Rs. 3·25.

Can be had of :

VISHVESHVARANAND BOOK AGENCY

P. O. Sadhu Ashram, HOSHIARPUR (Pb. India)

हमारे हिन्दी प्रकाशन

वेद-सार—आचार्य विश्वबन्धु	१.५०
श्रीमन्त्र पुष्पाञ्जलिसूक्त—आचार्य विश्वबन्धु	०.२५
वेद-नवाह्निक— „ „	०.५०
ईशावास्योपनिषद्-दर्पण—श्री सत्यदेव	१.००
केनोपनिषद्-दर्पण— „	०.७५
कठोपनिषद्-दर्पण— „	१.३१
कठोपनिषद्—श्रीमती विद्यावती मिश्र	०.८१
उपनिषद्-दिग्दर्शन—डा. दीवानचन्द	२.७५
ब्रह्मविद्या— स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती	६.००
अध्यात्म-दर्शन— „ „ „	४.००
कर्म और योग— „ „ „	२.५०
आनन्द-मार्ग— „ „ „	२.००
आत्मानुभूति— „ „ „	२.००
धर्म की आवश्यकता— „ „	१.००
संस्कृत-शिक्षा-विधि——प्रो. गौरीशंकर	३.२५
सत्संग-सार—आचार्य विश्वबन्धु	१.३७
सुखी संसार— „ „	०.५०
पंजाबी रामायण—श्री रामलुभाया आनन्द 'दिलशाद'	१०.००
मानस गंगा—श्री उमादत्त	२.००
स्वर्ण पादुका—प्रो. परमानन्द शर्मा	१.२५
अवेस्ता—श्री राजाराम शर्मा	१.२५
वीर बौना (सचित्र)—कान्ता डोगरा	१.२५
फतेहनामा गुरु खालसा जी का—प्रो. सीताराम कोहली	३.६०
ध्वस्त नीड़—श्री श्रीपाद जोशी	३.००
हमारा समाज—श्री सन्तराम	४.००
आदर्श पत्नी— „	२.५०
हमारे बच्चे— „	३.७५
बच्चों की देख-भाल—प्रिं. बहादुरमल्ल	१.७५
मन की अद्भुत बातें— „ „	२.००
दुनिया तुम्हारी है—डॉ. रामचरण महेन्द्र	३.३७
संसार को चुनौती—डॉ. रामचरण महेन्द्र	२.६२
नागरिक गीता—श्री चमनलाल	१.७५
शिष्टाचार—श्री सन्तराम	२.००
व्यवहारिक ज्ञान—श्री सन्तराम	२.७५
लोक-विजय— „	३.२५
युवक मनोविज्ञान—प्रिं. बहादुरमल	२.००
सेवाकुञ्ज— श्री सन्तराम	१.५०
चमत्कारों की दुनिया— „	०.७५
फलाहार— „	१.२५
महाभारत के श्रीकृष्ण—श्री देवदत्त शास्त्री	२.२५
छत्रपति—प्रो. परमानन्द शर्मा	३.००
वीर शिवाजी—श्री श्रीपाद जोशी	२.७५
स्वामी नित्यानन्द : जीवन और कार्य—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	२.५०
भारतीय नवोदय के अग्रदूत— „	३.५५
राजा राममोहन राय—श्री अखिल विनय	०.७५
महर्षि दयानन्द—श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र'	०.७५
विश्व के दार्शनिक—श्री रत्नचन्द्र श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	४.५०
स्वामी रामतीर्थ—श्री रामकृष्ण	०.७५
योगी अरविन्द—श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	०.७५
महाबली भीम [सचित्र]—श्री देवदत्त शास्त्री	१.५०
भीष्म पितामह [सचित्र]— „ „	१.५०
धर्मराज युधिष्ठिर [सचित्र]— „ „	१.५०
वीर अर्जुन [सचित्र]— „ „	१.५०
विद्यापति और चण्डीदास—श्री रामावतार	१.२१
आधुनिक हिन्दी कविता के वाद—श्री विनयमोहन शर्मा	१.३१
रस-धारा—श्री सन्तराम	०.७५
सूखे संतरे—डॉ. रामचरण महेन्द्र	१.३७
प्रलय और सृष्टि— „ „	२.००
मिट्टी का कलश—श्री शिवनाथ दुबे	१.२५
महाभारत की कहानियाँ—(द्वितीय संस्करण) : श्री देवदत्त शास्त्री	१.००
बड़े लोग श्री सन्तराम	१.२५
रसवन्ती— „	२.००
नए युग की कहानियां— „	१.७५
अच्छी अच्छी कहानियां [सचित्र] „	०.८७

इस अंक में

दीवाली के मंगलमय अवसर पर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधुआश्रम, होशिआरपुर की ओर से

संस्थान के सब सदस्यों एवं "विश्व-ज्योति" के सब ग्राहकों, पाठकों और अन्य सब सहयोगियों तथा प्रेमियों के लिए हमारी यही हार्दिक कामना है :—

"सुख शान्ति से सब जन रहें धन-धान्य से संपन्न हों,
नीरोग हों निःशोक हों कोई कहीं न विपन्न हो।
प्रेमार्द्र हो सब के रहें हृत्क्षेत्र नित्य हरे-भरे,
दीपावली यह विश्व भर को हर्ष-परिपूरित करे॥"

विश्वबन्धु
संचालक

विश्व ज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् (ऋग्)

वर्ष १३ } होशियारपुर, कार्तिक, २०२१; नवम्बर १९६४ { संख्या ९

वेदामृत—

विद्या-प्राप्ति

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥ (अथर्व १२, १, ५३)

यह द्युलोक और यह पृथिवी लोक मुझे मेधा दे रहे हैं। यह विस्तृत मध्यलोक मुझे मेधा दे रहा है। अग्नि, सूर्य, और जल मुझे मेधा दे रहे हैं। सब देवता मुझे मेधा दे रहे हैं (मुझे जागृत होना चाहिए)।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ (ऋग् १, ३, १०)

हे सरस्वती देवी, तू पवित्र करने वाली है। तू बलों का भाण्डार है। तेरा चिन्तन-मात्र सब धनों का द्वार है। तू (हमारे) यज्ञ को स्वीकार कर।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ (ऋग् १, ३, ११)

हे सरस्वती देवी, तू सच्ची वाणियों की प्रेरणा करने वाली है। तू सु-मतियों को सुझाने वाली है। तू (सब) यज्ञों का आश्रय है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा विराजति ॥ (ऋग् १, ३, १२)

हे सरस्वती देवी, तेरे इशारे से अनन्त प्रगति पैदा हो जाती है और सकल विचार चमक उठते हैं।

संक्षिप्त जीवनी—

पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय (२)

[श्री मोहनलाल]

कुछ प्रेरणाएँ—

इस बात से सहज में इन्कार नही किया जा सकता कि लाजपतराय को देशभक्ति का प्रथम पाठ आर्य-समाज ने पढ़ाया। बरसों तक आर्य-समाज उनकी कर्मभूमि बनी रही और वे उसके रंग में रंगे रहे।

लाजपतराय की आर्य-समाज के क्षेत्र में जाने की पृष्ठभूमिका यह थी।

लाजपतराय का ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज से पहला सम्पर्क सन् १८७८ में हुआ जब वह तेरह साल की आयु में मिडल की परीक्षा में बैठने के लिए लाहौर गये थे। यह सम्पर्क दूसरी-तीसरी बार लाहौर जाने पर बढ़ता ही गया।

पुत्र को परदेस में कष्ट न हो, उस भाव से लाजपतराय के पिता ने एक परिचय का पत्र उनको पं० शिवनारायण अग्निहोत्री के नाम लेकर दिया था। अग्निहोत्री साहब लाहौर के गवर्नमेन्ट स्कूल में ड्राईङ्ग मास्टर थे और ब्रह्मसमाज के एक उत्साही कार्यकर्ता और नेता समझे जाते थे। वह एक प्रतिभाशाली वक्ता थे जिन के व्याख्यान लाजपतराय ब्रह्मसमाज के साप्ताहिक सत्संग में प्रायः सुना करते थे। वह ब्रह्मसमाज से इतना प्रभावित नहीं हुए जितना शिवनारायण के ओजस्वी भाषणों से। उनमें ज़बरदस्त वक्ता बनने की आकांक्षा पैदा हुई।

दूसरी वाकफीयत की चिट्ठी रोपड़ के ला० भवानीदास के नाम थी जो लाहौर गवर्नमेन्ट कालेज के विद्यार्थी थे। इस कालेज के छात्रावास में लाजपतराय को अतिथि रूप में रहने का अवसर मिला।

संयोग ऐसे बने कि लाहौर में ब्रह्मसमाज की स्थापना सन् १८७५ में हुई और आर्यसमाज की स्वयं स्वामी दयानन्द के हाथ से सन् १८७७ में। तरुण लोग भावुक होते हैं। गवर्नमेन्ट कालेज का छोटा-सा विद्यार्थि-मण्डल आर्यसमाज बनाम ब्रह्मसमाज के धार्मिक विवादों का केन्द्र-स्थल बन गया। विद्यार्थी दो दलों में बट गए—एक दल ब्रह्मसमाजी विचारों का और दूसरा आर्यसमाज के मत का।

कालेज के बोर्डिंग में दो और छात्र, हंसराज और गुरुदत्त रहते थे जिन की ओर लापतराय बहुत आकर्षित हुए। अन्त में इस सम्पर्क ने प्रगाढ मैत्री और आजीवन सहयोग का रूप धारण किया और यह स्वाभाविक था कि लाजपतराय का झुकाव आर्यसमाज की ओर हो। ब्रह्मसमाज की सब मज़हबों या धर्मो के समानत्व और एकता की भावनाएं एक आर्यसमाजी को कैसे बुद्धिग्राह्य हो सकती थीं जिस का लक्ष्य वैदिक संस्कृति और भारत के अतीत गौरव को फिर से जीवित करना था।

आग सुलगाने का काम साईदास ने किया जो लाहौर आर्यसमाज के प्रधान थे। सीधे सम्पर्क के कारण उन की स्वामी दयानन्द के प्रति असीम श्रद्धा और आर्यसमाज के साथ अनन्य प्रेम हो गया था। वह लाहौर की अदालत में अनुवादक के पद पर नियुक्त थे। भूलना नहीं कि वह दूसरे साईंदास थे जो बाद में लाहौर के दयानन्द कालज के प्रिंसिपल बने।

साईंदास को आर्यसमाज की धुन लग गई थी। दफ्तर के काम से जो समय बचता उसको आर्यसमाज के सदस्य बनाने में लगाते थे। उनकी ख़ास नज़र ऐसे युवकों पर रहती थी जिन पर आर्यसमाज के भविष्य के निर्माण की आशा हो सकती थी। वह ताक में रहते थे कि किस नवयुवक को कैसे आर्यसमाज में लाया जाय। लाजपतराय पर भी साईंदास की नज़र थी।

लाजपतराय कब आर्यसमाजी बने, किस घड़ी में उनके जीवन ने पलटा खाया, इसका वर्णन बहुत भावुक शब्दों में उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है—

"सन् १८८२ के नवम्बर या दिसम्बर में मैं पहली बार आर्यसमाज में गया। आर्यसमाज का वार्षिक उत्सव हो रहा था। उस दिन स्वर्गीय लाला मदनसिंह का व्याख्यान था। उनको मेरे से बहुत प्रेम था। उन्होंने व्याख्यान देने से पहले समाज-मंदिर की छत पर मुझे अपना लिखा हुआ व्याख्यान सुनाया और मेरी सम्मति मांगी। मैंने व्याख्यान बहुत पसन्द किया। मैं छत से नीचे उतरा तो स्वर्गीय लाला साईंदास ने मुझे पकड़ लिया और अलग से जाकर कहने लगे कि हमने बहुत समय तक इन्तज़ार किया है कि तुम हमारे साथ मिल जाओ।

"मैं इस घड़ी को भूल नहीं सकता। वह मेरे से बातें करते थे, मेरे मुंह की तरफ़ देखते थे और मेरी पीठ पर प्यार का हाथ फेरते थे। मैंने उनको जवाब दिया कि मैं तो उनके साथ हूं। मेरा इतना कहना था कि उन्होंने फौरन आर्यसमाज का सभासद् बनने का प्रार्थनापत्र मंगवाया और मेरे सामने रख दिया। मैं दो-चार मिनट तक सोचता रहा। परन्तु उन्होंने कहा कि हस्ताक्षर लिये बिना तुझे जाने न दूंगा। मैंने फौरन हस्ताक्षर कर दिये।

"उस समय उनके चेहरे पर जो झलक दिखाई दी, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। ऐसा मालूम होता था कि उनको हिन्दोस्तान की बादशाहत मिल गई है।

"उन्होने एक दम गुरुदत्त को बुलाया और सारा हाल सुनाकर मुझे उनके हवाले कर दिया। वह भी बहुत खुश हो गये।

"लाला मदनसिंह के व्याख्यान की समाप्ति पर लाला साईंदास ने मुझे और गुरुदत्त को प्लेटफार्म पर खड़ा कर दिया। हम दोनों से व्याख्यान दिलवाये। लोग बहुत खुश हुए और खूब तालियां बजीं। इन तालियों ने मेरे दिल पर शराब-सा असर किया। मैं सफलता और प्रसन्नता की मस्ती में अपने मकान को वापिस गया।"

लाजपतराय के पीछे हज़ारों और लाखों लोगों ने आर्यसमाज की सदस्यता के फार्म भरे होंगे। पर कितनों में वह निष्ठा, भावना और प्रेरणा होगी जो लाजपतराय में स्फुरित हुई।

३२ साल के बाद लाजपतराय ने अपने आर्यसमाज के सम्पर्क के बारे में लिखा है :—

"मुझे इस बात का कभी अफ़सोस नही हुआ कि आर्यसमाज में क्यों दाखल हुआ। मैं इस घटना को परिवर्तन की घड़ी समझता हूं और इसका स्मरण अभिमान और खुशी के साथ करता हूं।

"मेरे जीवन में जो खराब हिस्सा है, वह मेरा अपना है या वह है जो मुझे विरसे में मिला है या जो मेरे पूर्वजन्मों का फल है। परन्तु मेरे जीवन का जो हिस्सा अच्छा है और लोगों में प्रशंसनीय है वह आर्यसमाज की देन है।"

आर्यसमाज को स्थापित हुए ८७ साल हो गये हैं। आयु के बढ़ने के साथ कौन मानव या संस्था अपनी प्रारम्भिक आभा खो नहीं देती। परन्त जब लाजपतराय आर्यसमाज में दीक्षित हुए, उस समय वह उभरती हुई राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतीक समझा जाता था। कोई आश्चर्य नहीं कि आर्यसमाज लाजपतराय के जीवन में महा-परिवर्तन लाने का निमित्त बना। संस्था के रूप में आर्यसमाज की परख स्थापना के समय की स्थिति को सम्मुख रख कर करनी चाहिये। वर्तमान स्थिति को सामने रखकर उस पर टीका-टिप्पणी करना भ्रान्तिकारक हो सकता है।

लाजपतराय आर्यसमाज के सीमित दायरे से जल्दी उठ गये यह दूसरी बात है। परन्तु जब लाजपतराय ने उसमें प्रवेश किया तब वह भारत की जागृति में अग्रणी समझा जाता था। उस की लाजपतराय के निर्माण में अमूल्य देन थी। आर्यसमाज को छोड़ने पर भी संस्था के रूप में वह उन का काया की तरह अनुसरण करता रहा।

रचनात्मक प्रवृत्तियां—

लाजपतराय ने १८९०-१९०५ तक राजनीतिक क्षेत्र में कोई सक्रिय भाग नहीं लिया, किन्तु वह निश्चेष्ट नहीं बैठे और न ही बैठ सकते थे। उनकी दृष्टि में शिक्षा-प्रसार, साहित्य-निर्माण, आर्थिक विकास, पीडितों का कष्टनिवारण आदि काम राजनीतिक काम की अपेक्षा कम महत्त्व नहीं रखते थे।

अपने उद्देश्य की पूर्ति में सब से बड़ी अड़चन लाजपतराय ने अपने वकालत के धन्धे को समझा।

उत्तरोक्त शब्द उनकी इस काल की मनोवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं।

"वकालत मेरे सार्वजनिक काम में विघ्न डालती थी और सार्वजनिक काम वकालत में बाधक होते थे। मेरा मन एक ओर होना चाहता था। वकालत में रुचि न थी। मैं चाहता था कि वकालत छोड़ कर पूरी शक्ति से देश की सेवा करूँ। परन्तु मेरे पिता इस में बाधक थे। उनकी आकांक्षा थी कि मैं धन इकट्ठा करके अपने भाइयों और सन्तान के लिए यथोचित प्रवन्ध करूँ। मैं कहता था कि भाइयों की शिक्षा से निवृत्त हो चुका हूं और वह अपने निर्वाह के योग्य हो गए हैं। मेरे बच्चों की दाल-रोटी के लिए मेरे पास धन है जो पर्याप्त होना चाहिए। मेरी माता की सहानुभूति मेरे साथ थी।"

सन् १८९८ के समाज के वार्षिक उत्सव पर लाजपतराय ने घोषित कर दिया कि वह वकालत के काम को घटा कर शेष सब समय देश-सेवा के कामों में लगाएँगे। इस संकल्प की पूर्ति के लिए उन्होंने दयानन्द स्कूल के अहाते में एक कमरा ठीक किया जहां बठ कर वह लोक-सेवा के कार्य करते थे।

इस निश्चय के समय लाजपतराय की आयु ३३ वर्ष की थी।

१८९०-१९०५ तक लाजपतराय उत्तरोक्त प्रवृत्तियों में व्यस्त रहे।

(क) शिक्षा-क्षेत्र में कार्य—

राजनीति से उतर कर लाजपतराय का प्रिय विषय शिक्षा था। शिक्षा में उनकी रुचि अपने पिता से विरसे में आई थी। शिक्षा का कार्य उन्हों ने अपने सहयोगी मित्र हंसराज के साथ मिलकर किया। दयानन्द कामेज की स्थापना उनका इस ओर पहला पग था। हंसराज प्रिन्सिपल की हैसियत में कालेज का संचालन करते थे और लाजपतराय कालेज के लिए धन इकट्ठा करते थे।

यह कालेज के जन्मदाताओं की दूरदर्शिता थी कि वह उसके प्रबन्ध में विदेशी शासकों का कम-से-कम हस्तक्षेप रखना चाहते थे। कालेज का खर्च केवल फीसों से नहीं चल सकता था। कालेज को स्वाबलम्बी बनाने के लिए आवश्यक था कि घाटे को चन्दा मांग कर पूरा किया जाय। यह काम लाजपतराय के सुपुर्द था। दौरों के लिए उनका बिस्तर सदा बन्धा रहता था। कई साल तक वह कालेज की प्रबन्धकर्त्री सभा के मुख्यमंत्री रहे। कालेज के सहायक बनाने और बढ़ाने के लिए उन्होंने "दयानन्द ऐंग्लो वैदिक समाचार पत्र निकाला जिस के वह सम्पादक थे।

इस कॉलिज के शिक्षा-प्रसार के काम ने आन्दोलन का रूप धारण किया और उस का केन्द्र जालन्धर बना। जालन्धर ज़िले की लाजपतराय पर महान् कृपा थी। क्योंकि ला० साईंदास, जिनकी प्रेरणा से वह आर्यसमाज और देशसेवा के कार्यों में प्रवृत्त हुए थे, जालन्धर के रहने वाले थे। जालन्धर में साईंदास की स्मृति में उन्होंने "साईंदास ऐंग्लो संस्कृत स्कूल" की स्थापना की। जालन्धर कालान्तर में शिक्षा का लाहौर से दूसरे दर्जे का केन्द्र बन गया। बाद में आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं के केन्द्र पंजाब में और बाहर कई स्थानों पर बने। परन्तु उन के संचालक दूसरी पीढ़ी के आर्यसमाजी थे।

अंग्रेज़ी सत्ता के स्तम्भ और महान् प्रतिक्रियावादी लार्ड कर्जन ने १९०४ में यूनिवर्सिटियों पर सरकारी नियन्त्रण बढ़ाने के लिए यूनिवर्सिटी कमीशन की नियुक्ति की थी। दयानन्द कॉलेज की प्रबन्धक कमेटी की तरफ से लाजपतराय ने कमीशन के सामने गवाही दी।

(ख) बैंक की स्थापना —

आर्यसमाज पंजाब में सामाजिक और धार्मिक सुधार के कामों में अग्रणी बन चुका था। अब उस के नेताओं में यह विचार उठा कि आर्थिक उन्नति के कामों में भी आर्यसमाज को अग्रसर होना चहिए। निश्चय हुआ कि एक स्वदेशी बैंक बनाया जाय। उस के नेताओं को लाजपतराय के साहस और पुरुषार्थ पर भरोसा था। उन को अनुरोध किया गया कि वह इस काम को सम्भालें।

लाजपतराय समाज और दयानन्द कालेज के काम में इतने व्यस्त थे कि बैंक के नये काम में हाथ नहीं डालना चाहते थे। इसलिये बैंक की योजना को कार्यान्वित करने का काम दूसरे लोगों के हाथ में चला गया। इन में प्रमुख राय मूलराज, ला०लालचन्द, ट्रिब्यून

पत्र के जन्मदाता सरदार दयालसिंह मजीठिया और ला० हरकिशनलाल थे।

१८९५ में लाहौर में पंजाब नेशनल बैंक की स्थापता हुई। उपरोक्त सज्जन बैंक के डायरेक्टर बने। लाजपतराय के छोटे भाई दलपतराय उस के पहले मैनेजर नियुक्त हुए।

लाला हरकिशनलाल बहुत स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। उनकी बैंक के दूसरे डायरेक्टरों के साथ नहीं पटी। वह अलग हो गये और उनकी जगह लाज. पतराय बैंक के डायरेक्टर बने। सार्वजनिक कामों का उन पर बोझ इतना था कि उन को डायरेक्टरी का पद कई बार लेना और छोड़ना पड़ा। सात बार वह बैंक के डायरेक्टर बने और हटे। आज भारत के चोटी के बैंकों में पंजाब नैशनल बैंक की मान्यता होती है। उस को चट्टान की तरह स्थिर कराने का काम बैंक के जन्मदाताओं ने किया जिन में प्रमुख लाजपतराय थे।

(ग) साहित्यिक कार्य—

लाजपतराय को अपने जीवन के आरम्भ में ही सहज ज्ञान हो गया था कि सफल लोकनायक बनने के लिए वक्ता और लेखक दोनों बनना आवश्यक है। एक उच्चकोटि के वक्ता के तौर पर वह देश-विदेश में यशस्वी हुए। परन्तु वह पत्रकार और ग्रन्थकार के रूप में भी कम प्रसिद्ध नहीं हुए। उनका अध्ययन विस्तृत और गम्भीर था।

लाजपतराय के प्रिय विषय राजनीति और इतिहास थे। उनकी सामयिक साहित्य के साथ भी अच्छी जानकारी थी। पत्रकारिता से तो उन्होंने आर्य-समाज में अपना सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया था। वह ला० हंसराज के साथ "आर्य गजट" के संयुक्त सम्पादक रहे। पत्रों और पत्रकारिता से उनका आयु-पर्यन्त संबन्ध बना रहा।

१८९५–१९०० में लाजपतराय ने दयानन्द, कृष्ण, शिवाजी, मैजिनी और गेरिबाल्डी इन पांच महा-पुरुषों के जीवनचरित्र लिखे। मैजिनी की जीवनी में अंग्रेज सरकार को राजद्रोह की गन्ध आई। उसने दयानन्द कालेज के प्रिन्सिपल से पूछा कि यह जीवनी कालेज में तो नहीं पढ़ाई जाती। परन्तु मुकद्दमे तक नौबत नहीं पहुंची।

इस समय पंजाब में अंग्रेजी का एक मात्र पत्र "ट्रिब्यून" था, जिसकी स्थापना सरदार दयालसिंह मजीठिया ने की थी। जब तक वह जीवित रहे पत्र की स्वतन्त्र नीति रही, परन्तु उनके मरने के बाद लाला हरकिशनलाल "ट्रिब्यून" के ट्रस्टी बने और पत्र की नीति में अन्तर आया। प्रगतिशील-शिक्षित-वर्ग में उसके प्रति असंतोष फैला।

पंजाब में उन्नति के सब कामों में आर्यसमाजी अग्रणी थे। राजनीति, धर्म, समाज-शिक्षा आदि प्रायः सब क्षेत्रों में नेतृत्व उनके हाथ में था। उन्होंने अंग्रजी में अपना पत्र निकालने का निश्चय किया।

लाजपतराय ने यह काम अपने हाथ में लिया। पत्र का नाम "पंजाबी" रखा गया······उन दिनों में पत्रों के संचालन में घाटे की आशंका बनी रहती थी। इसलिए घाटे की पूर्ति का बोझ उनके कुछ मित्रों ने अपने पर लिया। इन सहायकों में मुख्य रायबहादुर लालचन्द, भगत ईश्वरदास, रावलपिण्डी के वकील हंसराज साहनी और गुरदासराम, फिरोजपुर के काशीराम और ऐबटाबाद के सेठ चूहड़लाल थे।

लोककान्य तिलक के परामर्श से महाराष्ट्र के श्री अथावले को लाजपतराय ने "पंजाबी" का सम्पादक नियुक्त किया। ला० जसवन्तराय को, जो उनके हिसार के जमाने के ला० चूड़ामणि के सुपुत्र थे, पत्र का मैनेजर बनाया।

अक्तूबर १९०४ के पहले सप्ताह में "पंजाबी" का पहला पर्चा निकला। पत्र अपनी स्वतन्त्र नीति के कारण खूब चला। लाजपतराय को अपने मित्रों को घाटा पूरा करने के लिए कहना नहीं पड़ा। पहले पर्चे में कई टिप्पणियां और लेख लाजपतराय के थे।

(ग) कष्ट-निवारण—

लाजपतराय का हृदय करुणा का सागर था। यदि आवेश में आकर वह किसी को रुष्ट कर लें अथवा उनसे कोई और भूल हो जाए तो क्षमा मांगना अथवा खेद प्रकट करना उनके लिए स्वाभाविक होता था।

भला ऐसा महामना आर्त्तों और पीड़ितों की व्यथा को कैसे सहन करेगा। लाजपतराय जब-तब दु:खियों की रोमाञ्चकारी कहानियों को सुनते या पढ़ते थे, वह पसीज जाते थे। व्यक्ति हो या समाज उसकी सेवा के लिए एकदम कूद पड़ते थे और स्वयंसेवकों की तरह भटक कर कष्ट-पीडितों का परित्राण करते थे।

अपने विपद्-ग्रस्त साथियों अथवा पड़ोसियों की अनेकों अवसरों पर लाजपतराय ने अज्ञात सेवाएँ की होंगी, परन्तु इस काल में सामूहिक कष्ट के निवारण के कामों में उन्होंने उत्तरोक्त सेवाएँ की :—

(क) १८९७ का दुर्भिक्ष—सन् १८९७ में राजपूताना और उसके पड़ोसी प्रदेशों में अनावृष्टि के कारण भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। एक ईसाई पादरी का अनुमान है कि उसमें भूख से ३० लाख आदमियों की मृत्यु हुई होगी। पशु और सम्पत्ति की हानि इसके अतिरिक्त हुई।

ईसाई पादरी संकट के क्षेत्र में पहले पहुंचे। पडौसी पंजाब में आर्यसमाजी कैसे निश्चेष्ट बैठ सकते थे जबकि ईसाई त्रस्त भोले-भाले अनाथ बच्चों को धड़ाधड़ अपने धर्म में ला रहे थे। उनके लिए यह असह्य हो गया।

लाजपतराय के तेतृत्व में राजपूताना में कष्ट-निवारण का काम आरम्भ हुआ। उनके ओजस्वी भाषणों से मृत-प्राय: हिन्दू जाति जाग उठी। उसमें नवजीवन का संचार हुआ। स्वयंसेवकों की टोलियां पीडित इलाकों में घूमीं और टटोल-टटोल कर अनाथ बच्चों को निकालने लगीं। इस प्रकार लगभग दो हजार बच्चे इकट्ठे हो गए।

प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि इन बच्चों के भरण-पोषण एवं शिक्षण का क्या प्रबन्ध किया जाए। इसके लिए आर्यसमाज के संरक्षण में लाजपतराय ने हिसार, फिरोजपुर और लाहौर आदि नगरों में अनाथालय खुलवाए। लाहौर के हिन्दू अनाथालय के पहले मैनेजर शहीद भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह थे।

दुर्भिक्ष के कारणों की जांच के लिए भारत सरकार ने १९०१ में एक कमीशन नियुक्त किया था। लाजपतराय का इस क्षेत्र में काम इतने महत्त्व का समझा गया कि उनको कमीशन ने गवाही के लिए बुलाया।

(ख) कांगड़ा का भूकम्प—१९०५ में अप्रैल के आरम्भ में कांगड़ा के पहाड़ी प्रदेश में भयानक भूकम्प आया। जान-माल की असीम हानि हुई। हजारों मकान गिरे। हजारों की संख्या में लोग उनके नीचे दब गये। यह सवाल बन गया कि उन्हें जीवित कैसे निकाला जाए। सब ओर से त्राहि-त्राहि की आवाजें उठने लगीं।

कांगड़ा के लोगों के करुण-क्रन्दन की ध्वनि लाहौर पहुंची। आर्यसमाज अनारकली में लाजपतराय के नेतृत्व में सहायता का काम आरम्भ किया। लाजपतराय ने स्वयं घटना-स्थल पर पहुंच कर स्थिति को देखा और जनता से धन और स्वयंसेवकों की अपील की।

विपद्-ग्रस्त इलाका ७०० वर्ग मील में फैला हुआ था। तीन प्रकार की सहायता की वहां फौरन जरूरत थी। (१) गिरे मकानों के मलवे में दबी लाशों को निकालना और उनकी दाह-क्रिया करना। (२) जो बच गए हैं उनका दवा-दारू कराना और उन्हें अन्न-वस्त्र देना। (३) अनाथ बच्चों और अशक्त लोगों को सम्भालना।

इन तीन जरूरतों की तरफ आर्य-समाज के सेवकों का ध्यान गया। भूकम्प के कुछ मास पहले लाजपतराय ने अंग्रेजी में साप्ताहिक "पंजाबी" निकाला था। लाजपतराय जब तक कांगड़ा में रहे इनके लेख और सूचनाएँ भूकम्प की स्थिति के सम्बन्ध में बराबर उसमें छपती थीं।

जिस लग्न और निष्ठा के साथ लाजपतराय और उनके साथियों ने भूकम्प-पीडितों की सहायता की उसकी याद कांगड़ा के बूढ़े लोग अब तक नहीं भूले। (क्रमश:)

दीप जले, राह चले

[श्री रामदेव]

मेरे सहयोगी सरदार हरबंससिंह कह रहे हैं. 'आप गलत समझते हैं साहिब, यह ठीक है कि दुनिया ज्वालामुखी के किनारे खड़ी है लेकिन पण्डित जी के रहते हरगिज हरगिज जंग नहीं हो सकती। आर्टिस्ट ने बहुत दूर की बात सोची है, मैं उसकी कल्पना में आज की हकीकत देखता हूँ। आज देखते नहीं किस इतमीनान से अमन की फाख्ता दुनिया के जहन्नुम की आग से बचती-बचाती पण्डित जी के कन्धे पर आ बैठी है। पिकासो की फाख्ता पण्डित नेहरू के रहते किसी गोली से जख्मी होकर तड़प-तड़प कर दम नहीं तोड़ सकती हरगिज नहीं तोड़ सकती।'

हर रोज की तरह आज भी हम मध्यान्तर में आफिस से उठ कर जैन साहिब के टी-स्टाल पर बैठे आफिस के बेझिल दिमाग पर राजनीतिक चर्चा की बॉम मल रहे हैं। साथ की टेबिल पर चाय पीते एक सेठ जी कहते हैं, "कोरिया, हंगरी, क्यूबा, कांगो··· ये सिलसिला दूर तक फैलता जा रहा है। चीन के हमले ने साबित कर दिया है कि अमरीका से दोस्ती के सिवाय कोई चारा नहीं। रूस हमारा दोस्त है लेकिन चीन का भाई है। पाकिस्तान और चीन की दोस्ती, डिक्टेटरशिप और कम्यूनिज्म का गठजोड़। हमारी तो समझ में नहीं आता, दुनिया किस पाताल में गर्क होने जा रही है? पण्डित नेहरू के लिए मेरे दिल में निहायत इज्जत है लेकिन फिर भी मैं अर्ज करूँ कि वे हकीकतपसन्द नहीं है।" बीच में ही एक पड़ोस के कस्बे से आया बनिया बात लपक लेता है, "मैं कहता हूँ सब एक जैसे हैं। अगर पण्डित नेहरू अच्छे हैं तो सरदार कैरों के भ्रष्टाचार को क्यों नहीं रोकते? क्या कैरोंशाही के भ्रष्टाचार का नंगा नाच उन्हें दिखाई नहीं देता? मैं कहता हूँ देहात में चल कर देखिए लोगों की क्या हालत है? मैं कहता हूँ अगर मंहगाई और भुखमरी इसी तरह बढ़ती गई तो मुल्क में गदर हो जाएगा।" सिप करते हुए शर्मा कहता है, "भोले बादशाहो, धड़ा (ग्रुप) बड़ा कि धरम? किसे दिखाई नहीं देता कि क्या हो रहा है? टैक्सों के बोझ से दुनिया मरी जा रही है, मंहगाई ने कमर तोड़ दी, अशोका होटल और ताजमहल होटल की दुनिया में रहने वालों को दरम्याना तबका की हालत की क्या खबर? चीखे जा रहे हैं लेकिन कौन सुनता है? हां गदर की बात गलत है, हम इतने बुजदिल और खुदगर्ज हो चुके हैं कि मरते-मरते भी कुछ बोल नहीं सकते। कीड़ों की मौत मरना हमारा अंजाम है"।

मलहोत्रा बाहर से गमगीन चेहरा लिए भीतर आता है। अजीब-सी शोक से बोझिल आवाज में कहता है, "सरदार साहिब, मैं एक ट्रेजिक न्यूज सुना रहा हूँ।" इतना कह कर खामोश हो जाता है। हम समझते हैं कि शायद मलहोत्रा की प्रमोशन रुक गई है। मैं और सरदार साहिब सवालिया अन्दाज में उसकी ओर देखते हैं। मलहोत्रा कहता है, रुक रुक कर बोलता है, "अब क्या होगा? पंडित नेहरू की मृत्यु हो गई है।"

मैं बोल नहीं पाता। मेरी आँखें डबडबा आती हैं। सरदार जी चीखते हैं, 'ऐसा हरगिज नहीं हो सकता। किसी ने गलत खबर उड़ाई है, उसका मुँह तोड़ देना चाहिये। तुमने क्या खुद खबर सुनी है? जानते हो गलत खबरें उड़ाना जुर्म है।" सेठ जी भर्राई आवाज में कहते हैं, "इस तलख नुक्ताचीनी और गलतियों की बौछार को मुस्करा कर सहने वाला हमें तो पण्डित जी के बाद कोई दिखाई नही देता।" शर्मा जी की आंखों में सावन उमड़ पड़ा है। "आखिरी उमीद भी गई। अब क्या होगा?" रुलाई रोकते हुए शर्मा जी कहते हैं। कस्बे का बनिया अचानक बोल उठता है, "वाह ओए चाचा नेहरू, आखिर मुल्क को किसके आसरे छोड़ गया।"

जैन साहिब ने रेडियो ऑन कर दिया है। गलत खबर, हकीकत बन चुकी है। सरदार जी अजीब-सी

आवाज में कहते हैं, "अब अमन की फाख्ता किस कन्धे पर बैठेगी ?" कुछ देर रुक कर बोलते हैं, "यह दुनिया कनेडियों और नेहरुओं को कहां संभाल सकती है...." सरदार साहिब कुछ कहते हैं लेकिन मुझे कुछ भी सुनाई नहीं देता। रेडियो से वेद-मन्त्र, गीत, श्लोक, गुरुवाणी कुरान की आयतें और धर्म-वाणियां प्रसारित हो रही हैं, मुझे कुछ सुनाई नहीं देता।

अचानक कहीं से तैरती-तैरती 'नीरज' की कविता की पंक्तियां मेरे मस्तिष्क में आ फंसती हैं, मन में निरन्तर गूंजे जाती हैं, मनको मथे जाती हैं :—

"मैं न बंधा हूँ देश-काल की जंग लगी जंजीर में
मैं न खड़ा हूँ जाति-पाति की ऊँची-नीची भीड़ में,
मेरा तो आराध्य आदमी, देवालय हर द्वार है,
कोई नहीं पराया, मेरा घर, सारा संसार है।"

मध्यान्तर समाप्त हो चुका है। हम सभी सिर झुकाए यन्त्रचालित-से टी-स्टाल से उठ खड़े होते हैं। आफिस की ओर विचारों में खोए खिचरने लगते हैं। दुकानों के आगे भीड़ जमा है, शोकमग्न लोग पत्थर के बुत बने रेडियो द्वारा प्रसारित शोक-समाचार सुने जा रहे हैं: कहीं चौराहे पर या सड़क चलते लोग बात करते हैं, दुकानें खटाखट बन्द हो रही हैं, सारा राष्ट्र इस क्षण केवल एक आदमी की बात कर रहा है जो नहीं रहा, जो नहीं रह कर भी रहेगा, जो जा चुका है लेकिन जाकर भी जा नहीं पाएगा। जो जाते-जाते भी हर धड़कन में हर सांस में समा गया है क्योंकि कोई भी धड़कन कोई भी सांस उसके बगैर जी नहीं सकती।

आफिस बन्द हो गया है। मैं बवण्डर के तिनके-सा उड़ता शोक-सभा में पहुंच गया हूँ। स्थानीय नेता, सामाजिक अग्रगण्य व्यक्ति, संस्थाओं के प्रमुख अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित कर रहे हैं। कभी-कभी एक-आध वाक्य कानों में पड़ जाता है, मैं पुनः अपने विचारों में डूब जाता हूँ, फिर जैसे चौंक कर उठता हूँ और श्रद्धांजलियों को ग्रहण करने का प्रयत्न करता हूँ परन्तु फिर खो जाता हूँ।

एक वाक्य कानों में पड़ा है, "पण्डित जी सबके अपने थे" आगे सुन नहीं पाता। मेरा मन गीता के श्लोक में डूब जाता है, निकलना नहीं चाहता।

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।"

फिर एक वाक्य सुनता हूँ, "नेहरू स्वतन्त्रता-संग्राम के अमर सेनानी थे।" आगे सुनाई नहीं देता क्योंकि गोरखपुर जेल के सीखचों के पीछे से बोलते १९४० के पण्डित जी दिखाई देते हैं, "मैं नेता नहीं हूँ। इस क्षण मैं एक प्रतीक हूँ उस राष्ट्रीयता का जिसने ब्रिटिश गुलामी की जंजीरों को तोड़ कर भारत की स्वन्तत्रता प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय किया है।"

शोक-सभा में कोई कह रहा है, 'पण्डित जी को सत्य की अजेय शक्ति में विश्वास था।" मेरे मन में प्रतिध्वनि होती है, "पण्डित जी सत्यान्वेषी थे, विकास-शील सत्यपथ के अविचल राही थे।"

न-जाने पण्डित जी की कौन-सी पुस्तक है, परन्तु पन्ने मेरे सम्मुख फरफरा रहे हैं। उन्हीं पन्नों में पण्डित जी का चेहरा झांक-झांक जाता है। चेहरा बोलने लगता है, 'मेरी राजनीति विशेष वर्ग, पूंजी-पति वर्ग की राजनीति रह जाती। १९२० में मैं खेत-मजदूरों और कारखाने के मजदूरों की हालत से बेखबर था। फिर मैं अनचाहे ही उस तूफान में फेंक दिया गया जिसमें किसानों और खेत-मजदूरों के सम्पर्क में आना पड़ा। इलाहाबाद की दो सप्ताह की जिन्दगी में मैं किसान-आन्दोलन में उलझा लिया गया और कटु यथार्थ, तलख हकीकतें सामने आईं। उन किसानों की दुःख-भरी जिन्दगी और नेताओं में अटूट विश्वास को देख मैं शर्म और दुःख में डूब गया। शर्म मुझे अपने सुखमय जीवन पर आई जिस में सुख-सुविधाएँ भरपूर थीं और उस राजनीति पर शर्म आई जिसने शहरों के संकुचित क्षेत्र में फंस कर भारत माता के पुत्र और पुत्रियों की अवहेलना की थी, उन्हें नजर-अन्दाज किया था और भारत के पतन तथा गरीबी को देखकर मैं दुःख में डूब गया। मेरे आगे सचाई की एक नई तस्वीर जाहिर हुई यह उस भारत की तस्वीर थी जो अधनंगा, भूखा, कुचला-मसला और दरिद्र भारत था। लेकिन इन भूखे-नंगे लोगों को हममें अटूट विश्वास था, जो शहरों में रह कर अपनी संकुचित राजनीति के गोरखधन्धे में उलझे रहते थे और इस

विश्वास ने मुझे नये उत्तरदायित्वों का, नई जिम्मे-दारियों का अहसास कराया…"

श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कोई कह रहा है, "पण्डित जी के बटन-होल में अब लाल गुलाब नहीं मुस्काराया करेगा।" मुझे दिमाग १९४२ में खींच कर ले गया है। जेल में मौलाना आजाद ने कहा, "बेकार बैठे तो वक्त नहीं कटता।" पण्डित जी ने स्कीम सुझाई क्यों न जेल के अहाते में फुलवारी लगाई जाए। फिर पण्डित जी फुलवारी लगाने में जुट पड़े और एक दिन उसमें से विभिन्न रंगों के आकर्षक फूल मुस्करा उठे। जेल की हवा महकने लगी, दूसरे साथियों को महकाने लगीं। यह फूल खिलाने का सिलसिला जिन्दगी-भर न रुका और एक दिन भारत मां की फुलवारी में भाखड़ा बांध फूल खिल उठा और ऐसे ही कितने और फूल महकने लगे। अचानक मेरे दिमाग में नीरज' की एक और कविता की पंक्तिया तैर आई हैं

'किन्तु झगड़ा खतम इस तरह यह हुआ—
फूल झरता रहा धूल खिलती रही।"

किसी ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है, "प्रधान मन्त्री, सूक्ष्मदर्शी और समदर्शी थे।" मेरे दिमाग में पार्लियामैन्ट में सन् १९५० में बोलते प्रधान-मन्त्री की तस्वीर उभर आई है, "हमें अपनी ओर से सुदृढ रहना है, सुरक्षा के लिए तत्पर रहना है, पूरी और मुकम्मिल तैयारी करनी है लेकिन पाकिस्तान की ओर हमारी दृष्टि भिन्नता की है। पाकिस्तान और भारत की भौगोलिक परिस्थितियां और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ऐसी है कि इनका आपस में दुश्मन बने रहना कठिन है। अगर वे ऐसा करेंगे तो मुसीबत पर मुसीबत टूटती रहेगी और या तो वे एक-दूसरे को तबाह कर देंगे या एक दूसरे को तबाह कर देगा और ऐसे नतीजे भुगतने के लिए बचेगा जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।"

एक वाक्य कान में पड़ा है, "प्रधानमन्त्री भारत के सशक्त प्रहरी थे।" मेरा मन सन् १९४७ की १४—१५ अगस्त की मध्यरात्रि की पण्डित जी की आवाज सुन रहा है, "इस अमूल्य अमर क्षण में जबकि भारतवर्ष अनन्त कष्टों के मार्ग से गुजर कर और अनगिनत बलिदानों के पड़ाव पार करता हुआ स्वतन्त्र हुआ है—हम तकलीफात और कुर्बानियों की मंजिलों से गुजर कर आजाद हुए हैं—मैं हिन्दुस्तान की कॉन्स्टीट्यूएन्ट असेम्बली के मैम्बर के नाते पूर्ण विनम्रता से अपने-आप को भारत और भारत की जनता की सेवा के लिए अर्पित करता हूँ। मैं अपने आखिरी सांस तक इस सेवा में निमग्न रहूँगा ताकि यह प्राचीन भारत विश्व में अपना उचित पद ग्रहण कर सके और विश्वशान्ति तथा मानव-प्रगति में अपना सम्पूर्ण तथा स्वतन्त्र योगदान दे सके।"

शायद वही वक्ता श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं, "प्रधान-मन्त्री, अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के धुरन्धर ज्ञाता थे। राजनीति उनका लक्ष्य नहीं थी विश्व-कल्याण का साधन मात्र थी।

मुझे सन् १९४७ में 'फर्स्ट एशियन रिलेशन्ज कान्फ्रेंस' नई दिल्ली में बोलते हुए पण्डित जी सुनाई दे रहे हैं, यूरोप और अमेरिका ने इन्सानी तरक्की में बहुत बड़ा रोल अदा किया है और उसके लिए हम उनकी तारीफ और इज्जत किए बगैर नहीं रह सकते अभी हमे उनसे बहुत-कुछ सीखना है। लेकिन यह भी बात भुलाई नही जा सकती कि पश्चिम ने हमें युद्धों में झोंका है, अनगिनत राजनैतिक झगड़ों में उलझाया है और आज भी एक भयंकर संहारक युद्ध के बाद इस अणु-युग में अन्य विध्वंसकारी युद्धों की चर्चा हो रही है।…अमन तभी कायम हो सकता है यदि राष्ट्र स्वतन्त्र हों और जब हर जगह इन्सान आजाद हो, सुरक्षित हो, उसके लिए समुचित अवसरों और साधनों के द्वार खुले हों। इसलिए अमन और आजादी को राजनीतिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में ही देखा जा सकता है।…हम संकुचित राष्ट्रवाद के समर्थक नही हैं। हर राष्ट्र को विकसित होने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए लेकिन इस शर्त के साथ कि कोई राष्ट्र किसी अन्य पर आक्रमण न करे और अन्तरराष्ट्रीय विकास में अड़चन न बने।…एशिया के लोगों की अफ्रीका की जनता की ओर भी जिम्मेदारियां हैं ताकि अफ्रीका मानव-समाज में उचित स्थान ग्रहण कर सके…।"

फिर किसी ने शोक-सभा के मंच से कहा है,

"पण्डित जी भारत की सभ्यता और संस्कृति के रक्षकों और उसे अग्रसर करने वालों में अग्रणी थे।" पण्डित जी का गम्भीर अध्ययनरत चेहरा 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' के पन्नों में से झांक रहा है, "प्रत्येक स्थान पर मैंने देखा कि सभ्यता और संस्कृति की परम्परा ने भारतीय जीवन को प्रभावित किया है। यह परम्परा दर्शन, रीति-रिवाज, इतिहास, पुराण किंवदन्तियों का अद्भुत संमिश्रण है जिसके मध्य किसी स्थल पर सीमा-रेखा खेंचना असम्भव है। नितान्त निरक्षर और अनपढ़ भी इस महान् परम्परा के सांझीदार हैं। ···आज भारत में चालीस करोड़ स्त्री-पुरुष अपने व्यक्तिगत घेरों में बसते हैं—प्रत्येक का परस्पर मत-भेद है, हरेक का समझ और अनुभूतियों का अपना दायरा है। फिर भी कोई ऐसी शक्ति है जिसने इन नितान्त पृथक् इकाइयों को बांधे रखा और अब भी बांधे है। भारत का भौगोलिक और आर्थिक अस्तित्व है और पृथक् इकाइयों के मध्य सभ्यता और संस्कृति का सशक्त सूत्र इन्हे परस्पर जोड़े हुए हैं। बार-बार पराजित होने पर भी भारत की आत्मा कभी पराजित नहीं हुई और आज भी जब भारत महान् साम्राज्यशाहों की कठपुतली प्रतीत होता है यह अपराजित और अपरास्त है।"

फिर किसी वाक्य को सुनकर सन् १९६२ के पण्डित जी 'विश्व भारती' के साहित्यिक मंच से बोलते सुनाई देते हैं, "युद्ध बहुत बुरी चीज है। युद्ध मानव की बुराइयों और कुरूपताओं को प्रोत्साहन देता है। किसी अंश तक युद्ध पराक्रम और बलिदान की भावनाओं को भले ही प्रकट करे लेकिन इस युग या किसी भी युग का युद्ध व्यक्ति, गुट, या राष्ट्र का पाशवीकरण करता है। घृणा बहुत बुरा साथी है।······

दूसरा बुरा साथी है भय। अभाग्यवश आज के युग में भय और घृणा की अनुभूतियां मानव को सभी अन्य अनुभूतियों की अपेक्षा अधिक ग्रसे हैं। शीत-युद्धों का मूलभूत कारण घृणा और भय है। मैं समझता हूँ कि हमने अपने स्वतन्त्रतता-संग्राम में इस भय और घृणा को बहुत अंश तक जीत लिया था और यह हमारे संघर्ष का अनुपम पहलू था। क्या इस पहलू को हम अब भी सहेज सकते हैं? क्या हम इस भय और घृणा तथा तज्जनित व्याधियों के शिकार हो जाएँगे?···

जब हम आक्रामक के विरुद्ध अपनी सुरक्षा और स्वतन्त्रता के लिए लड़ते हैं तब भी किसी सभ्यता के विरुद्ध नहीं लड़ते, हम उस जनता से नहीं लड़ते जो हमारी ओर मैत्री-भाव रखती है। यदि कोई देश आक्रमण करे तो हम उसका मुकाबला करेंगे लेकिन उस देश की सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध लड़ना 'विश्व भारती' के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगा।"

टैगोर के गीत की कड़ी मेरी स्मृति के नील गगन पर बदली की तरह छा आई है "वैराग्य साधने मुक्ति, से आमार नय-असंख्य बन्धन-माझे महानन्दमय···।" शोक-सभा समाप्त हो गई है। शोक समाप्त नहीं हुआ। लोग आपस में बातें करते उठे हैं "भारत ज्योति बुझ गई" कोई कहता है। मुझे ३० जनवरी १९४८ के दिन बापू के महाप्रयाण पर, जवाहरलाल नेहरू का राष्ट्र के नाम सन्देश याद हो आया है। मैं मन ही मन उसे दोहराता हूँ, "उस दिवंगत आत्मा के लिए यही महान् प्रार्थना होगी कि हम सत्य पथ पर चलने की, उस लक्ष्य की ओर बढ़ने की जिसके लिए हमारे देश के इस महान् सपूत ने प्राणों को न्योछावर कर दिया, शुद्ध मन से शपथ ग्रहण करें। यही सबसे पवित्र प्रार्थना है जिसे हम भारत और राष्ट्र के प्रति समर्पित कर सकते हैं।"

एक अनुपम, सुमधुर, सुरभिमय, सुवासित पुष्प जो आज से बहुत साल पहले भारत मां के उद्यान में खिला था, जिसे जेल के आंगन में भी खुशबू बखेरनी आती थी, रेगिस्तानों की तपती रेत पर हरा मखमली गलीचा बिछाना आता था, जो अमीर और गरीब के मन में महल और झोंपड़ी में एक साथ पूजा जाता था, जिसे समाजवाद की हवाएँ रास आती थीं, जो भयंकर युद्धों के वज्रपात को अपनी मनमोहक मुस्कानों से रोका करता था, जिस फूल को मां-बहनें अपने गीतों में गूंथा करती थीं और जिसकी सुवास के लिए देश-देशान्तर प्रतीक्षारत रहते थे, जो सभ्यता, साहित्य, संस्कृति के प्रांगण की अनोखी शोभा था, उसी फूल को गंगा-जमना की लहरों में विसर्जित कर दिया गया।

है, उसकी धूल खेतों-खलिहानों और समाजवाद की राहों पर बरसी है। गंगा-जमना का पानी युगों की साध सीने में समेटे समाजवाद की ओर बढ़ रहा है। यही सोचता हूँ कि जिन दीपों को इस दीप ने छू दिया है वे जलने रहेंगे, जिन पथों पर यह धूल बरसी है वे कभी नहीं रुकेंगे, जिस उद्यान में बहुत साल पहले एक अनुपम फूल खिला था उसी उद्यान में और भी अनुपम फूल खिलेंगे।

रविठाकुर का गीत फिर स्मृति में छा आया है:—

"प्रदीपेर मतो समस्त संसार मोर लक्ष वर्तिकाय
ज्वालाये तूलिबे आलो तोमारि शिखाय
तोमार मन्दिर-माझे।
प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिवे फलिया—"

इसी के साथ 'दिनकर' की कविता-पंक्तियां आ जुड़ी हैं :—

"समर शेष है, इस स्वराज्य को सत्य बनाना होगा
जिसका है यह न्यास, उसे सत्वर पहुंचाना होगा।"

जब तू जागे तभी सवेरा!

[श्री फूलचन्द]

नियति के भ्रमजाल में फँसकर
क्यों तू साथी! काँप रहा है?
जीवन की निश्चित घड़ियों को
यूँ गिन-गिन कर हाँफ रहा है।
नैतिक चर्या के सहगामी
क्यों न तुझको भान रहा है?
क्यों दिग्मूढ़ बन रहा गाफिल
शेष नहीं कुछ ज्ञान रहा है।
शाश्वत निद्रा के अनुचर
क्यों तुझे डालती निद्रा घेरा?
जब तू जागे तभी सवेरा।

नव पथ-प्रदर्शक कहला कर
तूने था बहु नाम कमाया।
ज्योतिपुञ्ज बना जगती का
जगती में आ काम बनाया।
लेकिन अब फिर क्यों भूला?
कर्त्तव्य निभाना तुझे चाहिए।
सोने वाले जाग स्वयं
औरों को जगाना तुझे चाहिए।
तब ही शायद दूर हटेगा
तेरे मन का भ्रम अंधेरा।
जब तू जागे तभी सवेरा।

सदियों से तू सोता आया, औ' कब तक सोना जाएगा?
सदियों से मग खोता आया, औ' कब तक खोता जाएगा?
मंजिल तुझसे दूर रह गई, तू मंजिल से दूर चला है।
आज मनोवैज्ञानिक युग में, क्यों जन बनता क्रूर चला है?
आज अमा में क्यों पथच्युत मन, डाल रहा शंका में फेरा?
जब तू जागे तभी सवेरा!

घोर अमा के तम की अत्र, परवाह नहीं, न चाह तुझे हो।
पथ-आलोकित, पावन-प्रेरक, यही अनोखी राह तुझे हो।
अंधकार को भूल, सजग हो, साथी! क्षण पछताने का ना।
हुआ-हुआ, सो त्याग, गया जो, उसे, यह क्षण घबराने का ना।
तेरे पथ पर डाल सके ना, फिर यह तम आकर डेरा।
जब तू जागे तभी सवेरा! जब तू जागे तभी सवेरा!!

औपनिषदिक शिक्षा-प्रणाली (२)

[प्रा. ब्रजदेवप्रसाद राय]

४. शिक्षक-छात्र-सम्बन्ध—

हम शिक्षक एवं छात्रों के मध्य बहुत ही अधिक प्रेम, स्नेह एवं भक्ति के सम्बन्ध पाते हैं, क्योंकि यह माना जाता था कि गुरु पिता होता है एवं छात्र-गण पुत्र होते हैं। कठोपनिषद् का आरम्भिक भाग इन सम्बन्धों पर बहुत ही अच्छा विवेचन प्रस्तुत करता है एवं उससे हमें ज्ञात होता है कि शिक्षक एवं छात्र दोनों ही अच्छे सम्बन्धों के लिए कितने लालायित एवं जागरूक थे। वे दोनों ही भगवान् से प्रार्थना करते थे कि उन दोनों (शिक्षक एवं छात्र) की रक्षा भगवान् साथ-साथ करें, उनका पालन भी साथ-साथ ही हो, दोनों को साथ-साथ ही शक्ति भी मिले जिससे अधीत विषयों को वे दोनों ही प्रकाशित कर सकें। दोनों की यह हार्दिक इच्छा थी कि उन लोगों में एक-दूसरे के प्रति शत्रुता न हो।[१] छात्रगण हाथों में समिधा लेकर गुरु के पास जाते थे एवं निवेदन करते थे कि वे उन्हें ज्ञान प्रदान करें। समिधा पवित्रता का प्रतीक है। यह सेवा का मूर्त्त रूप है। गुरु को समिधा प्रदान करके छात्रगण प्रतीकात्मक रूप से दर्शाते थे कि वे गुरु के धार्मिक कार्यों में सहायता देंगे एवं मन से उनकी सेवा करेंगे। गुरु भी छात्रों से उनकी पूरी जानकारी लेते थे एवं शिष्य बनाने के पूर्व उनकी भली-भांति परीक्षा भी लेते थे। गुरु ऐसे छात्रों के यज्ञोपवीत[२] संस्कार भी कराते थे जिनके अभिभावक नहीं थे जैसे हारिद्रुमन ने सत्यकाम जाबाल का यह संस्कार अपने आश्रम में स्वयं कराया था, क्योंकि सत्यकाम जाबाल को यह मालूम नहीं था कि उसका पिता कौन था क्योंकि वह एक ब्राह्मणी सेविका का पुत्र था, जो विधवा थी एवं ऋषियों की सेवा किया करती थी।[३] कुछ उदाहरणों से ज्ञात होता है कि कुछ छात्र आश्रमों में पूर्ण एक साल तक रहकर अपने को तप. ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा के द्वारा ज्ञान पाने के योग्य बनाते थे, एवं तब गुरु उन्हें शिष्य स्वीकार करते थे। हम एक महान् ऋषि पिप्पलाद को देखते हैं जिन्होंने छः छात्रों को एक साल तक आश्रम में रहकर तप, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा के द्वारा अपने को विद्या-प्राप्ति के योग्य बनाने के लिए कहा था जो श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ थे।[४]

छात्रगण गुरु को पिता के समान मानते थे। लोगों की धारणा थी कि गुरु ज्ञानदाता होता है अतः वास्तव में वही पिता होता है जो शिष्य को इस योग्य बनाता है ताकि वह अज्ञान के बन्धनों को विच्छिन्न कर परमज्ञान में विलीन हो जाय।[५] छात्रगण गुरु के कल्याण के लिए भगवान् से प्रार्थना करते थे।[६] यह माना जाता था कि गुरु एवं छात्र अभिन्न हैं। उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है, वे एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। जैसे संधि में पूर्ण रूप एवं उत्तर रूप होते हैं। एवं ये दोनों मिलकर शब्द की रचना करते हैं. उसी तरह शिक्षक एवं छात्र में शिक्षक पूर्वरूप है एवं छात्र उत्तर रूप है, ये दोनों ही संधि की तरह संयुक्त है। यह संधि विद्या के रूप में प्रतिफलित होती है। इस संधि का कारण गुरु द्वारा प्रवचन है।[७] इस उदाहरण से दोनों के सम्बन्धों की घनिष्ठता स्पष्ट हो जाती है। दो पदों के मिलने से संधि होती है, एवं उसका फल है 'शब्द''। उसी तरह शिक्षक एवं छात्रों की संधि का फल है "विद्या"। शब्द एवं विद्या के लिए दो पदों एवं शिक्षक तथा छात्र का संयुक्त होना अत्यावश्यक है। विद्या-प्राप्ति के लिये गुरु का होना अत्यन्त आवश्यक माना जाता था। लोगों की यह धारणा थी कि सकाम कर्म से मनुष्य को ज्ञान नहीं मिल सकता इसीलिये उसे वैसे गुरु के पास एतदर्थ जाना चाहिये जो श्रोत्रिय एवं

---

१. कठ. शान्तिपाठ। २. प्रश्न., १. १। ३. छान्दोग्य., ४. ४. ५। ४. प्रश्न., १. २। ५. प्रश्न., ६ ८। ६. ऐतरेय० एवं तैत्तिरीय०, शांतिपाठ। ७. तैत्तिरीय., १. ३।

ब्रह्मनिष्ठ हो, यानी जिसने वेदों का गहरा अध्ययन किया हो एवं ब्रह्म की भी उसे अनुभूति साधना के द्वारा हो चुकी हो।[८] गुरु भी अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक थे, वे छात्रों के कल्याण के लिये यज्ञ करते थे।[९] छात्र भी गुरु के गार्हस्थिक कार्यों को करने में भाग लेते थे एवं उनकी गायें भी चराया करते थे जैसा कि सत्यकाम जाबाल के उदाहरण से स्पष्ट है जिन्होने अपने गुरु हारिद्रुमन गौतम की ४०० गायों को चराया था एवं जब वे १००० हो गईं तब गुरु के पास जंगल से लौटे। इतने दिनों तक वे उनकी गायों की सेवा करते रहे क्योंकि गुरु का वैसा ही आदेश था।[१०] छात्रगण भिक्षाटन करके जीवन-निर्वाह करते थे।[११] उन्हें गुरु जनों को आज की तरह मासिक या किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं देना पड़ता था परन्तु वे समावर्त्तन-समारोह के समय यथाशक्ति दक्षिणा देते थे। यह माना जाता था कि गुरु को चाहिए कि जब तक छात्रों की शिक्षा ससाप्त न हो जाय तब तक वे उनसे कुछ भी स्वीकार न करें।[१२] संक्षिप्ततः यह सम्यक् रूप से कहा जा सकता है कि वे दोनों ही बहुत उत्तम रीति से रहते थे एवं छात्रगण तो गुरुजनों को देवता की भान्ति मानते थे।[१३]

५. अध्ययन के विषय—

उपनिषदों से परिज्ञात होता है कि अध्यात्मविद्या ही अध्ययन के मुख्य विषय के रूप में मानी जाती थी, परन्तु दूसरे विषय भी थे जिनका अध्ययन किया जाता था। शिक्षा से आज हम अर्थ "एजुकेशन" का लेते हैं जिसमें किसी भी प्रकार के विषय का अध्ययन किया जा सकता है, पर उपनिषदों में शिक्षा का अर्थ वैदिक मंत्रों का शुद्ध उच्चारण भी है। वैदिक शिक्षण-पद्धति में मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण पर काफी ध्यान दिया जाता था, क्योंकि अशुद्ध उच्चारण से मन्त्रों के अर्थ बदल जाते हैं, जिनसे काफी हानि होती है। शिक्षा यानी शब्दों के शुद्ध उच्चारण की विद्या भी अध्ययन का एक विषय थी, जिसमें छः चीजें आती हैं[१४], यथा (१) वर्ण (२) अ से लेकर लृ तक के स्वर इन दोनों के शुद्ध उच्चारण को जानना अत्यन्त आवश्यक था। इनके अतिरिक्त [३-४] मात्रा एवं बल भी थे, इनसे तात्पर्य स्वरों एवं वर्णों के उच्चारण में कितना समय लगे एवं कितना जोर दिया जाय। मात्रा एवं बल के दो प्रकार थे, आन्तरिक एवं बाह्य, आन्तरिक प्रकार के भी पांच उपप्रकार थे जैसे स्पृष्ट, विवृत, इषद् विवृत एवं संवृत। बाह्य प्रकार के भी ग्यारह उप-प्रकार थे यथा विवार, संवार, श्वास, नाद घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित। (५) शिक्षा का पांचवा अङ्ग था साम यानी वैदिक मन्त्रों के सस्वर पाठ तथा (६) छठा अङ्ग था "संतान" यानि संधि। छात्रों को पढ़ाया जाता था कि स्वरों एवं वर्णों के मेल से शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो जाया करते हैं, फलतः इनका ज्ञान भी आवश्यक था।

शिक्षा के अतिरिक्त अन्य विषय भी थे जिनका अध्ययन किया जाता था। छान्दोग्योपनिषद्[१५] में ऐसे विषयों की सूची दी गई है। यथा चारों वेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या, देवजनविद्या, निरुक्त, धनुर्वेद, ज्योतिष, संगीत एवं शिल्प। यज्ञशास्त्र[१६] भी अध्ययन का एक स्वतन्त्र विषय था एवं छात्र इसके अध्ययनार्थ दूर देशों में जाया करते थे जैसे आरुणि उद्दालक इसके अध्ययनार्थ मद्र देश में गये थे जहां योग्य गुरु से उन्होंने इस शास्त्र का अध्ययन किया था। इन सब विषयों को देखने से ज्ञात होता है कि ईसा से लगभग ८०० वर्ष पूर्व भारत में अध्ययन के स्वतन्त्र विषयों का स्थिरीकरण हो चुका था। प्राचीन यूनान में अभी ईसा पूर्व चौथी सदी में भी सभी विषय दर्शनशास्त्र के अङ्ग माने जाते थे एवं उनका उससे पृथकीकरण बहुत बाद में हुआ। पर भारत में बहुत प्राचीनकाल में ही स्वतन्त्र विषयों का अध्ययन होता था एवं दर्शन-शास्त्र के वे अंग नहीं माने जाते थे। ब्रह्मविद्या यहां

---

८. मुण्डक०, १. २.२२। ९. तैत्तिरीय०, १.९। १०. छान्दोग्य०, ४. ४.५। ११. छान्दोग्य०, ४. ३. ५। १२. बृहदा०, ४. १. २। १३. तैत्तिरीय०, १. ११। १४. तैत्तिरीय० १. २। १५. छान्दो०, ७. १. १–५। १६. बृहदारण्यक०, ४. १. २।

स्वतन्त्र थी एवं दूसरे स्वतन्त्र विषयों की भी स्थापना हो चुकी थी। कई आधुनिक विषयों की भी स्थापना स्वतन्त्र रूप से हो चुकी थी यथा इतिहास, उत्पातज्ञान, निविशास्त्र, नीति एवं नक्षत्र विद्या, जिन्हें आधुनिक उत्पत्ति का माना जाता है। इन विषयों को देखने से मालूम होता है कि ये विषय सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, उपयोगी, ललित, धार्मिक एवं औद्योगिक थे। इन विषयों के अलग-अलग आचार्य रहे होंगे एवं उनके विकास की एक लम्बी परम्परा भी रही होगी, जिसका ज्ञान आज हमें नहीं है।

६. अध्ययन अध्यापन की पद्धति—

अध्ययन एवं अध्यापन की पद्धति पर भी हमें यत्र-तत्र महत्त्वपूर्ण सामग्रियां उपनिषदों में मिलती हैं। किस प्रकार छात्रों को ज्ञान प्रदान करना चाहिए एवं कैसे ज्ञान उपयोगी बनाया जा सकता है इन विषयों की भी पर्याप्त जानकारी होती है। गुरु जन छात्रों के समक्ष विषयों की व्याख्या कर देते थे ताकि छात्र उन्हें समझ सकें।[१७] प्रश्न एवं उत्तर की पद्धति से भी शिक्षा दी जाती थी। छात्रगण गुरु से प्रश्न पूछते थे एवं तब गुरु जन यथाशक्ति उत्तर देने का प्रयत्न करते थे। इस पद्धति से छात्रों में जिज्ञासावृत्ति बढ़ती थी एवं वे लोग तर्क की ओर भी प्रवृत्त होते थे। प्राचीन यूनान में भी शिक्षा इसी पद्धति से दी जाती थी एवं यह सर्वलोकप्रिय पद्धति थी। आज के समान शिक्षक व्याख्यान मात्र नहीं देते थे। विषयों की व्याख्या करते समय दृष्टान्त भी दिये जाते थे, जिनके सहारे गूढ दार्शनिक विषयों को भी आसान बना दिया जाता था। छात्र विषयों की व्याख्या सुनते थे (श्रुत्वा), एवं उसे अच्छी तरह समझकर ग्रहण करते थे (सम्परिगृह्य) तथा अधीत विषयों पर बार-बार सोचते-विचारते थे (प्रवृह्य) तब कहीं जाकर विद्या प्राप्त होती थी (आप्य)।[१८] प्रवचन, मेधा एवं बहुश्रवण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था।[१९] इनके अतिरिक्त यह भी माना जाता था कि जो दुष्प्रवृत्तियों से अमुक्त है, जिसे शांति नहीं है एवं जिसने इन्द्रिय-निग्रह नहीं किया है वह विद्या प्राप्त नहीं कर सकता है[२०]। इसलिये छात्रों को पुण्यकर्मा, सदाचारी, शांत एवं गोस्वामी होना पड़ता था। मेधा[२१] का शिक्षा ग्रहण में महत्त्वपूर्ण स्थान है एवं एकाग्रता[२२] का भी। इनके बिना न तो विषयों को समझा जा सकता है एवं न तो उन्हें ग्रहण ही किया जा सकता है। छात्र मधुर एवं माङ्गलिक वाणी ही बोलने एवं सुनने की इच्छा करते थे एवं प्राप्त ज्ञान से ही संतुष्ट नहीं हो जाते थे बल्कि अधिक ज्ञान की प्राप्ति के लिये धैर्य एवं शांति तथा श्रद्धा से प्रयत्न करते थे। हमें इस बात के दृष्टान्त मिलते हैं कि बड़े-बड़े ब्रह्मविद् भी अपने से उच्च ब्रह्मविदों के पास उच्च-दार्शनिक ज्ञान पाने के लिए जाते थे एवं उनकी सेवा-कर वे ज्ञान-प्राप्ति करते थे। सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणि, आश्वलायन, भार्गव एवं कबन्धी हाथों में समिधा लेकर पिप्पलाद के पास गये थे एवं उनसे उन लोगों ने उच्च-आध्यात्मिक विषयों की जानकारी प्राप्त की थी, ये छ: व्यक्ति "ब्रह्मपरा: श्रोत्रिया: ब्रह्मनिष्ठा:" थे फिर भी वे "परम-ब्रह्म-अन्वेषमाणा:" थे[२३], उनको ज्ञान की प्यास अभी भी थी एवं वे लोग उच्च से उच्चतर एवं उच्चतर से उच्चतम ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील थे।

कुछ परिवार विशेष थे जो विशेष प्रकार की शिक्षा देने के लिए विख्यात थे। परम्परागत रूप से वे एक ही विषय का अध्यापन करते थे। फलत: उसमें उन्हें विशेष योग्यता प्राप्त हो जाती थी। एक पीढ़ी अपने आगे वाली पीढ़ी को ज्ञान-प्रदान कर जाती थी एवं विद्या के रक्षण एवं प्रवर्द्धन में यह पद्धति विशेष उपयोगी रही। विद्या का पोषण 'परावरा'[२४] पद्धति से भी होता था, जिसके अनुसार एक व्यक्ति से ग्रहण कर दूसरा व्यक्ति उसकी परम्परा की रक्षा करता था जैसे कि ब्रह्मा ने दार्शनिक ज्ञान अपने पुत्र अथर्वा को दिया, अथर्वा ने आङ्गिरस को, आंगिरस ने सत्यवाह को एवं सत्यवाह ने अङ्गिरा को दिया। कुछ लोग अपने-अपने पिता से ही शिक्षा ग्रहण करते थे

१७. ईश०, १०, १३., केन० १. ३। १८. कठ०, १. २. १३। १९. कठ०, १. २. १३। २०. कठ०, १. २. २४। २१. कठ०, १. ३. १२। २२. कठ०, १. ३. ९। २३. प्रश्न०, १. १। २४. मुण्डक०, १. १. १।

यथा श्वेतकेतु एवं आरुणि उद्दालक ने अपने-अपने पिता से शिक्षा पाई थी। भृगु[२५] के आख्यान से ज्ञात होता है कि शिक्षक लोग छात्रों में काफी जिज्ञासा वृत्ति उत्पन्न करते थे एवं व्यावहारिक-परीक्षणों के आधार पर शिक्षा प्रदान करते थे। ब्रह्मानुभूति के लिए उसे कई परीक्षण करने पड़े। अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन एवं वाणी के द्वारा उसने ब्रह्म को जानने का प्रयत्न किया पर असफलप्रयत्न रहा। उसने अपना प्रयत्न चालू रखा एवं तप के द्वारा उसे समझ में आया कि "आनन्द" ही ब्रह्म है।

७. शिक्षण-काल –

कितने समय तक लोग शिक्षा ग्रहण करते थे, इस विषय पर निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। किसी विषय के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की कोई निश्चित अवधि नहीं थी। विषयों की जानकारी प्राप्त करने की अवधि की दीर्घता छात्र की मेधा पर निर्भर करती थी। फिर भी छात्र लोग एक खास समय तक तो आश्रमों में रहते ही थे। बड़े-बड़े दार्शनिकों के आश्रम में कम-से-कम एक साल तक तो रहना ही पड़ता था, पर यह अध्यापन के लिए अवधि नहीं थी, बल्कि शङ्का-समाधानमात्र की।[२६] साधारणत: छात्र १२ साल तक गुरु के आश्रम में रहते थे एवं उसके बाद ही समावर्तन-समारोह होता था।[२७] यह भी कोई सर्वमान्य नियम नहीं था, जो १२ साल में भी शिक्षा नहीं पूर्ण करते थे, उन्हें अधिक देर तक ठहरना पड़ता था, जैसे सत्यकाम जाबाल ने अपने शिष्य उपकोशल को, जो कमल का पुत्र था, १२ साल की अवधि बीत जाने पर भी अधिक समय तक ठहरने का आग्रह किया था।[२८] छात्र अपने गुरु के आश्रमों में यज्ञोपवीत के उपरान्त ही जाते थे, विभिन्न वर्णों के लिए अलग-अलग अवस्था थी यज्ञोपवीत के लिए, पर साधारणत: १२ साल तक ही यज्ञोपवीत हो जाता था एवं तभी छात्र अध्ययनार्थ गुरुओं के यहां जाते थे एवं पच्चीस साल की अवस्था होते ही घर चले आते थे, इस प्रकार सामान्य रूप से अध्ययनकाल बारह वर्ष का होता था। हमें ऐसे भी लोगों के उदाहरण मिलते हैं जो आजीवन ज्ञान के अर्जन में लगे रहते थे एवं सांसारिक विषयों से उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था, पर ऐसे कुछ ही लोग थे एवं उनमें भी प्रधानता दार्शनिकों की थी।

८. शुल्क—

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में विद्यार्थियों से नियमित रूप से निश्चित समय पर शुल्क ग्रहण किये जाते हैं एवं असमर्थ छात्र शिक्षा प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। पर प्राचीन भारत की शिक्षा-प्रणाली इस दुर्गुण से सर्वथा मुक्त थी। शिक्षा प्रदान करने वाले विशेषकर त्यागी एवं तपस्वी ब्राह्मण ही होते थे जिनमें संग्रह प्रवृत्ति नहीं थी। भरण-पोषण के लिए वे राज्य की ओर से नि:शुल्क भूमि पाते थे एवं यज्ञों में उन्हें भरपूर दक्षिणा भी मिलती थी, फलत: जीविका के साधनों की उपलब्धि उनके लिए विकट समस्या नहीं थी। यह माना जाता था कि ज्ञान पवित्र होता है। वह व्यापारिक वस्तु नहीं है। लोगों की धारणा थी कि छात्र की शिक्षा जब तक पूर्ण न हो जाय तब तक गुरु को उससे दक्षिणा नहीं लेनी चाहिए।[२९] समावर्तन-समारोह के समय छात्रगण अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार गुरुओं को दक्षिणा प्रदान करते थे, पर जो गुरुदक्षिणा देने में असमर्थ थे वे उनकी सेवा कर देते थे, पर दीनता शिक्षा के क्षेत्र में बाधक नहीं थी।

९. परीक्षा—

प्राचीन भारत में एवं विशेषकर उपनिषदों के काल में आज की परीक्षा-प्रणाली विद्यमान नहीं थी। शिक्षा व्यवहारिक थी एवं छात्रों को अपनी योग्यता से शिक्षकों को प्रभावित करना होता था। समावर्तन-समारोह छात्रों की शिक्षा-समाप्ति का प्रमाण था, जो छात्र शिक्षा प्राप्त कर अपनी योग्यता सिद्ध करते थे, उन्हीं को समावर्तन समारोह में भाग लेना होता था। यह उत्तीर्णता का एक प्रतीकात्मक प्रमाणपत्र था। परन्तु, यही सब-कुछ नहीं था। उन दिनों

---

२५. भृगुवल्ली, १. ६। २६. प्रश्न०। २७. छान्दोग्य०, ४. १०. १–३। २८. छान्दोग्य०, ६. १. २। २९. बृहदारण्यक०, ४. १. २।

स्नातकों को "समिति" में, जिसे हम आज की लोक-सभा जैसी संस्था मान सकते हैं, जाना पड़ता था एवं राजा तथा विद्वज्जनों के समक्ष अपनी योग्यता का प्रमाणपत्र व्यावहारिक ज्ञान एवं मौखिक बातों से प्रस्तुत करना होता था। हमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि श्वेतकेतु जब शिक्षा समाप्त कर लौटे तो पाञ्चालों की समिति में गये जहां राजा जैवलि प्रवाहण ने उनसे पांच प्रश्न पूछे। पर उनमें से किसी का भी उत्तर उन्होंने नहीं दिया एवं वे राजा के इन आलोचनात्मक एवं तीखे शब्दों के साथ लौट गये कि जो इन सामान्य बातों को भी नहीं जानता है वह अपने को शिक्षित कैसे कहता है।[३०] इस प्रकार हम देखते हैं कि राजसभा में विद्वानों की परीक्षा भी होती थी। विद्वज्जनों की परीक्षा यज्ञों के अवसरों पर भी होती थी, यज्ञकर्त्ता राजा ऐसे आयोजन करते थे एवं विजयी ब्राह्मणों को गायें एवं निष्क दान में दिया करते थे। यही औपनिषदिक परम्परा बाद में भी विद्यमान रही एवं चौथी सदी (ई० पूर्व) एवं पांचवीं सदी (ए० डी०) में क्रमश: पाटलिपुत्र एवं उज्जैन की राजसभाएँ ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में महती उपलब्धि करने वालों के लिए परीक्षास्थली बन गयीं।

१०. समावर्तन—

प्राचीन भारतीय छात्र के जीवन को इस प्रकार बनाया जाता था ताकि वह भावी जीवन में चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कर सके। स्वाध्याय एवं प्रवचन का जीवन में काफी महत्त्व था। शिक्षा की समाप्ति समावर्तन-समारोह के साथ होती थी। दीक्षान्त भाषण[३१] के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुरुलोक छात्रों को नैतिक जीवन का उपदेश देते थे। छात्रों को भावी जीवन की अधारशिला सत्य एवं धर्म पर रखनी होती थी एवं इसके लिए इन्द्रिय-निग्रह अत्यन्त आवश्यक था। अग्निहोत्र करना एवं गुरुओं के सेवा ये भी आवश्यक थे। मानवीय एवं नैतिक आदर्शों के अनुसार व्यवहार करना होता था।

नैतिक मूल्यों का जीवन में बहुत महत्त्व है। रथीतर के पुत्र सत्यवाह का मत है कि सत्य सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु पुरुशिष्ट के पुत्र तपोनित्य सत्य से बढ़कर तप को मानते हैं, लेकिन मुद्गल के पुत्र नाक का मत है कि स्वाध्याय एवं प्रवचन तो तप एवं सत्य से भी बढ़कर हैं।[३२] दीक्षान्तभाषण भारतीय शिक्षा के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसमें छात्रों के समक्ष जीवन के उत्तम आदर्शों को रखा गया है। सत्य बोलने एवं नैतिक जीवन बिताने, तथा कर्त्तव्यों के यथोचित सम्पादन के साथ-साथ ही स्वाध्याय को चालू रखना चाहिए ताकि ज्ञानाग्नि बुझने न पाये। जीवन से मुख मोड़ना नहीं होता था, बल्कि विवाह करके सन्तानपरम्परा भी चालू रखनी पड़ती थी ताकि राष्ट्र की समग्र परम्परा पीढ़ी जीवित रहे। सामाजिक क्षेत्र में भी यह दीक्षान्तभाषण कम लाभदायक नहीं था। माता-पिता, गुरु एवं अतिथियों की सेवा देवपूजा की भान्ति भक्ति एवं श्रद्धा के साथ होनी चाहिए। बड़ों का अनुकरण करना चाहिए, पर उनके दुर्गुणों का नहीं, सद्गुणों का अनुकरण होना चाहिए। संग्रहवृत्ति नहीं होनी चाहिए, दान करना चाहिए पर श्रद्धाभाव से एवं उचित अंशों में। संशय की स्थिति में बड़ों के पास जाना चाहिये एवं उनके परामर्शों के अनुसार काम करना चाहिए। ऋषियों के मत में यही धर्म है उपदेश है एवं वेदों का सार भी है। गुरुओं का छात्रों को यही आदेश था एवं उन्हें पालन करना पड़ता था।

औपनिषदिक शिक्षा प्रणाली कोई नवीन प्रणाली नहीं थी। परम्परागत रूप से जिन आदर्शों को भारतीयों ने माना, उन्हीं का प्रतिपादन इन ग्रन्थों में भी मिलता है।

---

३०. छान्दोग्य०, ५. ३. १–५। ३१. तैत्तिरीय १. ११। ३२. तैत्तिरीय०, १. ९।

बुद्धू कौन और छाकटा कौन ?

[डा इन्द्रचन्द्र शास्त्री]

बुद्धू मुग्ध अथवा मूढ-सी दशा में सोए हुए से रहने वाले उस सीधे-साधे व्यक्ति को कहते हैं, जो अपने स्वार्थ को सिद्ध करना नहीं जानता या उसकी उपेक्षा करता है। दुनिया तो उस व्यक्ति को बुद्धिमान् समझती है जो अपना स्वार्थ सिद्ध करना जानता है। इसके विपरीत, जो अपने स्वार्थ की उपेक्षा करता है, वह दुनिया की दृष्टि में बुद्धू अर्थात् मूर्ख होता है।

दूसरी ओर, छाकटा उस उचक्के चंट को कहते हैं, जो भले-बुरे समस्त उपायों द्वारा अपने, स्वार्थ को सिद्ध करना जानता है।

यदि एक माता से पूछा जाय कि वह अपनी सन्तान को बुद्धू बनाना चाहती या छाकटा तो वह क्रुद्ध होकर देखने लगेगी। वह इसे अपना अपमान या उपहास समझेगी। किन्तु इन शब्दों के स्थान पर यदि हम उससे पूछें कि वह अपनी संतान को संत बनाना चाहती है या नीतिकुशल तो वह कहेगी दोनों। अन्तस्तल को देखा जाय तो वह चाहती है कि उसकी सन्तान अपने स्वार्थ का पूरा ध्यान रखे। उसे किसी प्रकार नष्ट न होने दे। साथ ही दुनिया में उसकी बदनामी न हो। उसे भला कहा जाय अर्थात् वह चाहता है कि उसका पुत्र बाहर से संत दिखाई दे और वास्तव मे नीतिकुशल हो। दूसरे शब्दों में ऊपर से बुद्धू दिखाई दे और भीतर से छाकटा हो।

सफल और असफल व्यक्तियों में परस्पर छींटा-कशी चलती रहती है। असफल व्यक्ति सदाचार या चरित्र के आवरण में अपनी अयोग्यता को छिपाने का प्रयत्न करते रहते हैं और इसके लिए सफल व्यक्तियों पर दुराचारी होने का आरोप लगाते रहते हैं। दूसरी ओर सफल व्यक्ति अपने भ्रष्टाचार को छिपाने के लिए ऐसे वर्ग को प्रसन्न करते रहते है जिनके हाथ में लोकमत है। उदाहरण के रूप में काले बाजार द्वारा करोड़पति बनने वाला सेठ साधुओं और लोकनायकों का समर्थन प्राप्त करना चाहता है। इसके लिए उन्हें आर्थिक सहायता देता है और अपने भ्रष्टाचार पर पर्दा डाल देता है। असफल वर्ग उसे दुराचारी बेईमान या छाकटा कहता है दूसरी ओर वह उस वर्ग को बुद्धू या मूर्ख समझता है।

एक व्यक्ति स्वाभिमान की रक्षा के लिए भूखा मरना पसंद करता है, किन्तु दूसरे के सामने हाथ नहीं फैलाता। दूसरा खुशामद करके अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेता है। पहले की दृष्टि में दूसरा छाकटा है और दूसरे की दृष्टि में पहला बुद्धू।

एक व्यापारी अधिकारी को रिश्वत देकर औद्योगिक सुविधाएं प्राप्त कर लेता है। जनता तथा राज्य को मिलावट की वस्तु बेचने मे सफल हो जाता है और धीरे-धीरे लखपति बन जाता है। दूसरी ओर ईमानदारी से व्यापार करने वाला तेल-नमक बेचता रहता है। उस पर भी आए-दिन छोटे-छोटे अधिकारियों की फटकारें सुननी पड़ती हैं। पहले का सर्वत्र सम्मान होता है। धार्मिक तथा सामाजिक सम्मेलनों में उसे अध्यक्ष बनाया जाता है। उसकी संपत्ति को पूर्व जन्म के पुण्य का फल बताकर सराहा जाता है। दूसरी ओर उस दरिद्र दुकानदार को पूर्व जन्म का पापी या भाग्यहीन कह कर दुतकारा जाता है।

एक युवक अधिकारी को रिश्वत देकर तथा उसकी खुशामद करके योग्यता न होने पर भी नौकरी प्राप्त कर लेता है और उसी उपाय द्वारा उन्नति करता चला जाता है। दूसरी ओर उच्च योग्यता होने पर भी ऐसा न करने वाला खाली बैठा रहता है, परिवार के लिए बोझ बन जाता है। पहला जब गांव में जाता है तो सभी उसका स्वागत करते हैं, प्रयोजन न होने पर भी उसकी प्रशंसा करते रहते है। दूसरे का सर्वत्र अपमान होता है। यह विचारणीय है कि सफल किसे कहा जायगा। पहले को या दूसरे को।

एक स्त्री अपनी लज्जा और सतीत्व की रक्षा के लिए दूसरे पुरुष से बात करना पसंद नहीं करती। संतोषपूर्वक पति की सेवा और बच्चों के पालन-पोषण मे लगी रहती है। दूसरी अधिकारियों से मिल कर अपने पति के लिए ऊंची नौकरी प्राप्त कर लेती है। सार्वजनिक कार्यक्रमों एवं संगठनों में भाग लेकर नेतृत्व प्राप्त कर लेती है। घर में बन्द रहने वाली स्त्रियां उसके चरित्र पर आक्षेप करती हैं और वह उन्हें बुद्धू समझती हैं।

धर्मावतार

[श्री रा. ना. रतन]

डाक्टर साहिब यही सोच रहे थे आखिर ऐसा हुआ कैसे ? उन्होंने अपने पिछले जीवन पर एक विहंगम दृष्टि डाली। किसी का कुछ अन्याय किया हो या किसी की कुछ बिगाड़ किया हो, ऐसा उन्हें स्मरण नहीं आ रहा था। वे एक अच्छे डाक्टर थे। निज की कमाई जायदाद उनके पास काफी थी। स्वदेशी और विदेशी औषधौं के निष्णात। चाहते तो आमदनी और भी अच्छी कर ले सकते। पर अन्याय के मार्ग पर जाना उनके रक्त का गुण न था। पचहत्तर नये पैसों की दवा का सूई लगाने के कारण ही साढ़े चार रुपये फीस वसूल करना, वे वैद्यकीय वृत्ति का घोर कलङ्क मानते थे। इसका अर्थ यह नहीं कि कि वे बारह आनों की दवा का उतने में ही सूई लगा देते। यदि रोगी धनिक हुआ तो उससे पैसे ज्यादा वसूल करते और कोई रोगी सचमुच गरीब जान पड़ा तो वह सन्तोष से जो-कुछ दे देता ले लेते और कभी-कभी गरीब रोगी फीस देने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते और जब वे अपनी निज स्थिति बता देते तो डाक्टर साहब सहर्ष मुफ्त में ही उनका इलाज कर देते। यदि इनके यहाँ वांछित दवा न होती तो स्वयम् पैसे देकर दूसरी दुकान से मंगवाकर इलाज करते। प्राय: रोगी के फल-मूलादि के लिए पैसे भी दे देते। ये सभी काम वे सहर्ष करते। कभी भी असन्तोष या क्रोध प्रकट किया हो, ऐसा किसी ने उन्हें नहीं देखा था। इसका कारण इतना ही था कि वे सत्य के उपासक थे। 'धर्मो रक्षति रक्षित:' का आर्ष वाक्य उनकी दुकान की एक दीवार पर शोभा पाता था। इसका उन्होंने कन्नड़ में भी अनुवाद कर नीचे लिखवा दिया था ताकि जिनका देवनागरी से परिचय न हो वे कन्नड़ में पढ़ लें। इतना ही नहीं। 'सत्यं वद', 'धर्म चर' जैसे आदर्श एवं अनुष्ठान-योग्य वाक्यों को भी संस्कृत और कन्नड़ में लिखवा दिया था। ऐसी जगह उन्हें टंगवा दिया था कि जिसने भी दुकान के भीतर पैर रखा कि उसे प्रथम दर्शन इन्हीं ध्येय वाक्यों के हों। उनका मानवमात्र पर भरोसा था। मानव की मानवता पर अचल विश्वास था। वे जानते थे कि कोई भी मनुष्य जाति-मात्र से ऊँचा या नीच नहीं हो सकता। चोर चोट्टा या धोखेबाज नहीं हो सकता। सृष्टिकर्त्ता का हो या प्रकृति का, कहीं कोई ऐसा विधान नहीं है। हां, व्यवहार में कई लोग ऐसे निकलते हैं। पर इसका कारण उनकी परिस्थिति ही है, न कि उनका निजी स्वभाव। स्वभाव तो अध्यात्म है। गीता में कहा है—जब परिस्थिति कुछ समय तक स्वभाव पर प्रबल हो जाती है तभी मनुष्य मानवता से भिन्न आचरण करने लग जाता है। तब हमारा कर्त्तव्य तो यह होना चाहिए था कि उस विषम परिस्थिति में फँसे व्यक्ति को उबारने का प्रयत्न करें। यदि ऐसा न करें तो मानवता किस खेत की मूली है। उल्टे, हम उस व्यक्ति को कोसते हैं। उसका अपमान करने लगते हैं। जले पर नमक छिड़कने लग जाते हैं। तब व्यक्ति सुधरे कैसे ? विपद्-ग्रस्त व्यक्ति सुधर जाय, ऐसा सुअवसर प्राप्त करा देने का नाम ही तो उदारता है। ऐसे नागरिकों को ही तो उदारचेता कहते हैं।

डाक्टर साहब ये सारी बातें जानते थे। न केवल जानते वरन् दैनंदिन कार्याचरण में भी लाते थे। उनके 'शाप' (मैसूर में औषधालयों को अधिकतर 'शाप' ही ही कहते हैं) में अक्सर चोर-चोट्टे भी आ जाते। पहले इलाज करवा लेते। जब बिल की बारी आती तो पूछते—

"डाक्टर साहब, कितने देने हैं ?"

"जितने तुम आसानी से दे सकते हो, दो।"

फिर वे जेब टटोलते और बहाना करते—"डाक्टर साहब, चिल्लर (छुट्टे पैसे) नहीं लाया हूँ। बाजार में भाजीवाली को रुपया दिया है। उसने चिल्लर के वास्ते बाद में आने को कहा है, सो, फिर आते समय ला दूंगा।"

डाक्टर साहब सहर्ष इसकी अनुमति देते। उनके जाते ही वहां उपस्थित दूसरे ग्राहक डाक्टर के कानों में फुसफुसाते—"डाक्टर साहब, वह चोर है। अभी-अभी जेल से छूट कर आया है। फिर से कहीं पुरानी आदत पर अमल करने गया होगा। इसलिए इसकी मरम्मत करके छोड़ दिया गया है और आप भी इतने भोले कि उसकी बात पर विश्वास कर लिया। उसकी मरहम-पट्टी कर दी। भला, उसके पास पैसे कहां? रुपया तो दूर, कल इस रास्ते घूमेगा तक नहीं। आपकी सूरत देखने से कतराने लगेगा। आपको व्यर्थ का कष्ट हुआ।"

डाक्टर—"भाई, मैं वैद्य हूँ। मेरी वृत्ति मुझसे यह अपेक्षा करती है कि मैं रोगी मात्र का इलाज करूँ। मैंने उसका इलाज एक रोगी के नाते किया। न कि चोर के नाते। क्या रोगी सिर्फ चोर ही होते हैं? तो उस हिसाब से मेरे यहाँ जो-जो आते हैं उन सबको चोर कहना पड़ेगा। आप कभी ऐसा कहने का प्रयत्न न करें कि किसी अभागे को उसकी बुरी वृत्ति से पुकारें। न ही उसकी याद दिलाएँ। इस तरह व्यवहार करें कि वह अपनाने का अनुभव करे। इससे आदमी को सुधारा जा सकता है। आप स्वयम् क्या यह नहीं देख रहे हैं कि जो अँगुल-फोड़ा बीते सात दिनों से आपको सता रहा था, उसकी पीडा, अब, युक्त ओषधौपचार के कारण, दिन-प्रति-दिन कम होती जा रही है! और आज सुतरां कम हो गई है? यदि इस घाव को सूई से चुभाने लग जाता, तो क्या कभी यह सूख पाता? उसकी पीडा आप सह सकते थे? किसी आदमी को बुरा मानना मात्र व्यावहारिक मूल्याङ्कन है। भगवान् की इस सृष्टि में कोई ऐसा मनुष्य पैदा न हुआ होगा जिसका सुधार हो नहीं सकता हो। यह उसका लीला-विधान है। हम जैसे अल्पमति इसका निगूढ रहस्य जान नहीं पाते। उस व्यक्ति की बात आप यदि पहले ही बता देते या वह स्वयं अपनी स्थिति प्रकट कर देता, तो मैं उसे कुछ रुपये फल आदि के लिए दे देता। और उसके हित की कई बातें भी बता देता। दस हथोड़ों की मार से पत्थर भी 'उपास्यमूर्ति' बन जाता है। क्या जीते-जागते अभागों को सुधारा नहीं जा सकता?"

डाक्टर साहब के मन:पटल पर ये सारी बातें चित्रवत् घूम गई। पर कहीं भी कोई दोष नहीं नजर आता था। तो फिर ऐसा हुआ कैसे?

"राधा! तुम्हें कुछ सूझ रहा है?" पास ही बैठी चावल चुनती हुई अपनी स्त्री से पूछा। वह चुप रही।

"जहां तक मेरी स्मरण-शक्ति मेरा साथ दे रही है, मुझे तो अपने पिछले जीवन की कोई भी घटना या अवसर ऐसा याद आ नहीं रहा है जब कि मैंने किसी का अपकार किया हो। स्वप्न में भी मैंने किसी का बुरा नहीं चीता है।" डाक्टर साहब कहते ही जा रहे थे। उनका मन सागर की भांति शान्त-गम्भीर था। ये विचार, जिनको कि वे प्रकट कर रहे थे, बस, ऊर्मियों की भांति उठ रहे थे।

"खैर मान लेंगे कि ये सब हमारे प्राचीन पुरुषार्थ का ही, जिसे कि हम प्रारब्ध कहते हैं, फल है। यह भी मान लेंगे कि वे विवश थे। और यह अघटित घटना घट गई। कम-से-कम इसका ज़िक्र तो मुझ से या तुम से कर देना चाहिये था न?"

"कौन निर्लज्ज हो कर ये सारी बातें बताएगा?" राधा बोली। "कौन जाने शायद स्वयं उसीको इसका पता न हो। शाम को जब घर..."

"राधाबाई! राधाबाई!! तुम्हारी पड़ोसिन के घर के सामने लोग एकत्र हो गये हैं! जाने क्या हुआ? कहते हैं, गुरुबसम्मा ने फांसी डाल ली थी!" कोई पड़ोसिन आर्त्तनाद से चिल्लाती हुई उधर भाग रही थी।

"देखो राधा! जाकर देखो, आखिर क्या हुआ है?" डाक्टर उसी तरह शान्त-मुद्रा में बोल रहे थे। ..."स्थिति को सम्भालना! कहीं कोई अनुचित घटना होने न पाए। इसका ध्यान रखो। मैं भी तुम्हारे ही पीछे हो लिया। चलो पहले।"

× × ×

रतन-बाबू उस नगर के एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। सब कोई उनका घर जानते थे। इसका मुख्य कारण था उनकी दानशीलता। वे स्कूल व कालेजों के चार छात्रों का जो बहुत ही गरीब पर बुद्धिमान् थे, मासिक शुल्क नियमित रूप से देते थे। इसके लिये अनिवार्य

था कि वे छात्र ठीक तरह से स्कूल जाते रहें। इसका प्रमाण-पत्र अपने अधिकारियों से प्राप्त कर उनके सामने प्रस्तुत करें। अनुपस्थिति का कोई कारण आए तो उसे रतन बाबू से बता देना होता था। अलावा इसके उनके यहां 'वारान्न' भी चलता था। अर्थात् प्रतिदिन किसी-न-किसी गरीब छात्र के, सप्ताह में किसी एक दिन के, भोजन की व्यवस्था उनके यहां हो जाती। इस प्रकार सात छात्र अपने भोजन की चिन्ता से, कम-से-कम एक दिन के लिए ही सही, मुक्त थे। स्वयं उनकी पत्नी ही इन गरीब छात्रों को परोसती थी। उसने कभी इसको बुरा नहीं माना। पति-पत्नी का आदर्श जोड़ा कहीं देखना होता तो लोग इनकी ओर संकेत करते।

शङ्करप्रसाद उनका इकलौता लड़का था। उम्र कोई पच्चीस की। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा का 'राष्ट्रभाषा-प्रवीण'। अंग्रेजी में वैद्यकीय विद्यालय का पांचवें वर्ष का छात्र। पिताजी का आग्रह था कि संस्कृत व हिन्दी के अलावा जितनी हो सके उतनी और भाषाएँ सीखे। भारतीय विद्या भवन की तीसरी संस्कृत परीक्षा में भी उत्तीर्ण था। मातृभाषा तो हिन्दी थी ही। कन्नड़ उसकी प्रादेशिक भाषा थी और कालेज की दूसरी भाषा। अड़ोस-पड़ोस वालों के साहचर्य से तमिल व तेलुगु भी बोल लेता। उनकी लिपि जानता भर था। उसके स्वभाव के सम्बन्ध में एक वाक्य में कहें तो वह माता-पिता के गुणों का सम्मिलित-साकार रूप था।

रतन बाबू के घर का एक हिस्सा डाक-विभाग को दिया गया था। नगर की बसे इस डाकघर के पास रुकती भी थीं। इससे भी उनकी प्रसिद्धि में थोड़ी-बहुत वृद्धि हुई थी। लोग 'रतन बाबू के घर का डाक-घर' कहने के बजाय 'रतन बाबू का डाक-घर' ही कहते।

घर के पीछे का हिस्सा किराये पर दिया गया था। उसमें बीरशैव परिवार के एक गृहस्थ रहते थे। नाम था चन्नबसप्पाजी। इनके साथ इनकी पत्नी और एक बेटी भी रहती थीं।

विधि की लीला भी विचित्र होती है। इस परिवार को रतन बाबू के घर आए कुछ ही मास बीत चुके थे कि घर के मालिक चन्नबसप्पा की अकस्मात् मृत्यु हो गई। आखिरी सांस लेते वक्त उन्होंने रतन बाबू से करुण स्वर में कहा था—"बाबू जी, मेरी घरवाली का अब आप के सिवा और कोई रखवाला नहीं है। मेरी बच्ची अभी अबोध है। इनके पास कुछ रुपए-पैसे हैं। गांव में थोड़ा-बहुत खेत भी है। सम्बन्धी लोग उसे हड़पना चाहते हैं। मेरी सब जायदाद इन दोनों के नाम पर ही है। ज़रा इसकी ठीक-ठीक व्यवस्था कर दें कि इन्हें अपने जीवन-यापन में कोई असुविधा न हो। यह स्त्री हेर-फेर कुछ नहीं जानती। आपके ही भरोसे मैं इन्हें छोड़कर जा रहा हूँ। मेरे लिए आप ही भगवत्-स्वरूप हैं।"

× × ×

"हटो, हटो! रास्ता छोड़ो, रास्ता छोड़ो! डाक्टर साहब और उनकी पत्नी आ रही हैं।" लोग चिल्लाने लगे। गुरुबसम्मा के घर के चारों ओर लोग इकट्ठे हो गए थे। वास्तविकता क्या है, किसी को मालूम न था। सब काना-फूसी करते रहे। केवल एक बन्दर के खेल पर साधारण जनता के साथ-साथ पढ़े-लिखे लोग भी जब झुण्ड के झुण्ड एकत्र हो सकते हैं तो इस काना-फूसी पर क्या कहना? सो भी एक स्त्री के सम्बन्ध में।

डाक्टर साहब ने परिस्थिति का अध्ययन किया। सब-कुछ भाँप गए। पहले बाहर निकल कर लोगों से कहा—"जाइए भाई साहब, जाइए! कुछ हुआ नहीं। बस, उस बेचारी की अम्मा का सिर चकरा गया। वे बेहोश हो गई हैं। कुछ ही समय में सब ठीक हो जाएगा। चलिए। जाइए। अच्छी हवा बहने दीजिए।"

डाक्टर के अनुरोध पर लोग तितर-बितर होने लगे। कुछ निठल्लों को यह कहते भी सुना गया—"लड़की की अम्मा क्या? हमें कुछ और ही शङ्का हो गई थी।"

भीतर जाकर डाक्टर साहब ने कहा, "राधा, सुनो गुरुबसम्मा फिलहाल बेहोश हो गई हैं। कुछ ही समय बाद होश सम्भालेंगी। तुम यहीं रहो। उन्हें धीरज देती रहना। सिर पर पानी थपकती रहो। अरे, पार्वती, बेटी, तुम क्यों रो रही हो?

जानती नहीं ऐसी अवस्था में रोना नहीं चाहिए। देखो न आँखें लाल हो गई हैं। सूज गई हैं। तुम तो अक्लवाली हो। सुशील हो। तुम भी रोने लगी। सिसकियाँ कम करो।"

"अम्मा को कुछ हो गया तो मेरी गति क्या होगी ?"

"श्...श् · मुंह से ऐसे शब्द न निकालना बेटी, तुम तो समझदार हो। उन्हें कुछ न होगा। थोड़ी ही देर में ठीक हो जाएँगी। यदि फिर भी कोई ऐसी दैवी घटना घट जाए तो हम कौन दिन के लिए हैं ? हम जो हैं तुम्हारी रखवाली करने। धीरज धरो और इधर आओ। बताओ तब से घर में क्या-क्या बीता ?"

पार्वती चुप रही।

"बताओ। ठीक-ठीक बताओ। संकोच न करो। मैं तुम्हारे पिता-तुल्य ही हूं। और आगे मैं जो-कुछ करूँगा वह मेरी सन्तान की अपेक्षा तुम्हारी ही अधिक भलाई करेगा। हां तो कहो।"

"अम्मा ने सबेरे से कुछ खाया-पिया नहीं। बड़ी देर तक मुझे गालियां देती रही। फिर अपने भाग्य को ही कोसने लगी। कह रही थी, "यह सब मेरे ही प्राचीन कर्म का फल है। मैं कहीं मुँह दिखाने लायक न रही। इस निर्लज्ज जीने से मरना बहुत बेहतर है। तब तू अकेली मन-मानी करती रह। वे चल बसे। उनके बदले तू मर जाती तो कितना ही अच्छा होता। अब यह पाप कौन गले लगा लेगा ?" इतना कहकर उसने एक रस्सी उठा ली। उस नाट (मोटी लकड़ी जिसका उपयोग घर बान्धने में होता है।) से बांधने के लिए ज्यों ही इस कुर्सी पर चढ़ने गई कि पैर फिसल गया। नीचे गिर पड़ी। होश खो गए। मुझे तो कुछ नहीं सूझा। बस, एक चीख मारकर छाती पीटते रोने लग गई।"

डाक्टर साहब सब-कुछ सुनते रहे। ब्रह्मास्त्र में जिस तरह सारे अस्त्र एक-के-बाद-एक समा गए, उसी तरह पार्वती के वाक्य उनके भीतर प्रवेश कर गए। पर इनसे वे विचलित हुए हों, ऐसा नहीं दीखता था। उन्होंने कहा, "बेटी, जानती हो न ? कन्नड़ की एक कहावत। बिल्ली का मज़ा चूहे को सज़ा। सन्तान की नादानी अक्सर बड़ों की जान-लेवा हो जाती है। खैर, हुआ सो हुआ। अब इसकी चिन्ता न करना। मैं सब-कुछ ठीक किए दूंगा।"

× × ×

"बेटा, तुम्हारी पढ़ाई कैसे चल रही है ?"

"भगवान् की कृपा और आपके मार्गदर्शन से सब-कुछ ठीक चल रही है पिताजी। प्रथम श्रेणी में आने का विश्वास है।"

"और दैनंदिन पारायण का क्या हाल ?"

"वह भी चल रहा है पिता जी। भला उसे छोड़ा जा सकता है ? उसी से तो इतना सारा ज्ञान उपलब्ध हुआ है। उसी से तो मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।"

"अच्छी बात है। मैं तुम्हें सदा एक निर्दिष्ट श्लोक को स्मरण में रखने की बात कहता था न ? याद है वह ?"

"हाँ पिता जी ! गीता का आत्म-संयम योग का—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥"

"बेटा ! हम जो उचित मात्रा में व युक्त समय में, शयन, भोजन, विहारादि करते हैं, उस में कोई आश्चर्य की बात है क्या ?"

"नहीं तो पिता जी ! ये सभी प्रकृति के नियम जो हैं।"

"ठीक कहा। प्रकृति के नियम हैं। इसी प्राकृतिक नियमानुसार मैं यह चाहता था कि तुम्हारा विद्याभ्यास पूरा हो जाए तो तुम्हारा विवाह कर दूँ। परन्तु तुम ने मुझे इस का अवकाश ही दिया। उलटे कुछ ही महीनों में मुझे 'आजा' बन जाने का गौरव दिया है। खैर, अब तुम ने जिस लड़की का वरण किया है वह तो सुयोग्य है ही। पर इसके पूर्व कई सामाजिक बन्धनों का, उन की मर्यादा का पालन किया होता, तो बहुत ही अच्छा होता। कोई उंगली न उठाता। खैर, अब भी कुछ नहीं हुआ। किए पर पछताना उसे छिपाने से कहीं बेहतर है।"

"परन्तु......पिता जी...... !"

"हाँ ! हाँ ! जाओ-जाओ ! पढाई की ओर

ध्यान दो। हम जानते हैं कि 'परन्तु समुच्चययबोधक है। दोनों को मिलाता है।"

× × ×

"इतनी देर गए, आए। और आज ही आप को देरी से आना चाहिए था ? सब भाग्य का फेरा है !"

"पुरोहित जी के यहाँ होता आ रहा हूँ। लग्न शोधना जो था। क्यों क्या हुआ ? 'आज ही' का क्या अर्थ ?"

"वह कहीं चला गया है ! कहता गया कि जब तक हम उसे उस लड़की से विवाहने की सोचते रहेंगे तब तक वह घर लौटेगा नहीं। शायद वह किसी आधुनिका की खोज में है। आखिर मैं कहती भी क्या ? स्त्री जो ठहरी। और वह बच्चा क्या थोड़े ही था कि उसे पकड़ लूँ। बस आप की राह देखती रही।"

"तुम चिन्ता न करो। उस की विचार-शक्ति शायद अब कुण्ठित हो गई होगी। क्या तुम्हारी वह बहू उस के लायक की नहीं ? उसी की तरह यह राष्ट्र-भाषा प्रवीण है। चार-पाँच भाषाएँ जानती है। स्कूल गई नहीं तो क्या हुआ ? प्राचीन साहित्य की अनेक नीति-कथाएँ जानती है। सुगुण है। सुशीला है। सब से बढ़ कर व्यवहार-कुशला है। हमें घर में बहू को ला कर निभाना है कि नचाना है ? क्यों, वह लड़की इस घर के लायक की नहीं है क्या ?"

"बहू को क्या हुआ है ? गृह-लक्ष्मी जैसी जो है !"

"तब तो ठीक है तुम अपने पुत्र की चिन्ता न करो। मुझे मालूम हैं कि वह गया होगा तो कहाँ गया है। तुम्हारे पुत्र देवता को वापस बुलवाने के मन्त्र भी हम जानते हैं। देखती रहना। आज से तीसरे दिन वे स्वयम् उतर कर यहाँ आ जाएँगे। मेरे रुधिर-कणों को क्या मैं नहीं समझ सकता ?"

× × ×

"पिता जी ! यह क्या मज़ाक है ?"

"अरे ! परसों को गए आज आ गए ! और इतनी जल्दी घर के साधारण नियम-आचार तक भूल गए। सीधे अन्दर घुस आए। मुंह, हाथ-पैर धोना, स्नान करना, फिर बातचीत करना सब भूल गए ? जाओ स्नान कर के भोजन करो।"

"समाचार-पत्रों में आप ने यह क्या विज्ञापन दिया है कि 'मैं अपनी सारी सम्पत्ति अपने पुत्र की अनुपस्थिति के कारण मेरी होने वाली पुत्र-वधू के नाम लिख दे रहा हूं। सभी सज्जन जानें'।"

"तुम जानते हो न, कि तुम्हारे पिता जी कभी झूठ नहीं बोलेंगे और न ही झूठा व्यवहार करेंगे। मैंने जो-कुछ किया है सो ठीक ही किया है। इस का अर्थ यही नहीं कि मेरा तुम पर विश्वास नहीं। परन्तु तुम से बढ़ कर तुम्हारी स्त्री पर भरोसा है। तुम परिस्थिति से विवश हो कर कोई अकार्य कर सकते हो। परन्तु तुम्हारी वधू ऐसा कदापि नहीं करेगी। यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। यह सारी सम्पत्ति मेरी कमाई हुई है। मरण-शासन (वसीयत) में तुम्हारा नाम नहीं है—यह जान कर तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। यद्यपि पूरी जायदाद बहू के नाम पर है फिर भी इस में से वह एक कौड़ी तक बेच नहीं सकती। हाँ, तुम्हारी सन्तान का इस पर पूर्ण अधिकार है। तुम्हारी वधू भारतीय कुलांगना है। विद्या-बुद्धि में वह साक्षात् सरस्वती के समान है। और जब यह लक्ष्मी भी उसके यहाँ शोभा पाने लगेगी तो क्या कहना ! सुवर्ण में सुगन्ध समझो। खैर अब जाओ। काम देखो। विवेक से काम लो।"

× × ×

सुप्रभात। दाँत कटकटाने वाली ठण्ड। एक छोटा छोकरा चिल्लाते दौड़ रहा था— "धर्मवाणी" "धर्मवाणी"। किसी ने पुकारा— "ओ छोकरे ! इधर आ जा। तुम्हारी ही प्रतीक्षा में रहा। अभी तक दूध नहीं पिया है। ठण्ड के मारे दाँत टाइप करने लग गए हैं। तब भी यह बुरी लत है कि समाचार-पत्र पढ़े बिना चैन नहीं लगता। अच्छा एक प्रति दे। ले ये पैसे........। अरे ! यह क्या ? यह रङ्ग-बिरङ्गा विज्ञापन क्या ?"

आस-पास कई व्यक्ति बैठे थे। ठण्ड के मारे दोनों पाँवों को दोनों हाथों से पकड़े हुए थे। चिबुक को घुटनों पर टिकाए एड़ी के बल जहाँ के तहाँ झूल रहे थे। कहने लगे— "क्या है भाई ? ज़रा ज़ोर से तो पढ़ो। हम भी तो सुनें। स्वयं तो हम पढ़ नहीं सकते। क्या समाचार है ?"

"अनोखी निमन्त्रण-पत्रिका है ! सुनो........ प्रारम्भ में कोई मांगलिक श्लोक है। इसे मैं पढ़ नहीं सकता। और लिखा है......हम ने अपने गुरुजनों एवं बन्धु-बान्धवों के साथ मिल कर यह निश्चय किया है कि अपने ब्राह्मणकुमार चिरंजीव श्री शङ्करप्रसाद का शुभ विवाह, इसी नगर के (दिवङ्गत) निवासी श्रीयुक्त चन्नबसप्पा जी की वीरशैव कन्या चिरंजीवी सौभाग्यवती श्रीमती पार्वतीदेवी के साथ, अपने स्वगृह में आप लोगों के सम्मुख सम्पन्न हो। सम्बन्धित लोगों से सानुरोध निवेदन है कि वे सपरिवार इस विवाह-यज्ञ के शुभ मुहूर्त्त में भाग ले कर हमें सन्तोष प्रदान करें। और इस नूतन वर-वधू को मुक्त मन से आशीर्वाद दें। विशेष सूचना : समयाभाव के कारण वैयक्तिक निमन्त्रण-पत्र नहीं भेजे जा सके। इसी को निमन्त्रण-पत्र मान कर पधारने की कृपा करें। इति... ... आपका..... रतन बाबू और राधाबाई।"

"अरे! ये तो हमारे अपने ही डाक्टर साहब हैं! धर्मराज हैं! उनके सुपुत्र का विवाह! वीर शैव-कन्या से?" किसी ने धीरे स्वर में आश्चर्य के साथ कहा।

पढ़ने वाला— "तो क्या हानि है? क्या वह कन्या नहीं है। प्राचीनकाल में ऐसे विवाह अनेक होते। इन्हें 'अनुलोम-विवाह' कहते थे। डाक्टर साहब ने जो धैर्य प्रदर्शित किया है, वह न केवल सराहनीय है वरन् अनुकरणीय भी। कहाँ तक अपने ही सगे-सम्बन्धियों में जात-पाँत का भेद गिनाते रहें। इसी जाति-भेद के कारण हमारा और हमारे देश-धर्म का दम घुट रहा है। फिर भी हम ऐसे कि इस से अपना पिंड छुड़ाना नहीं चाहते। सम्भवत: किसी मार्ग-दर्शक की आवश्यकता थी इस नगर को। धन्यवाद है रतन बाबू को कि वे अगुआ बन कर बाहर निकले हैं। केवल उन का नाम ही रतन नहीं। काम भी रतन का ही करते हैं......"

बीच में ही किसी ने टोका— "अजी महाशय! डाक्टर साहब की प्रशंसा के ही पुल बांधते रहोगे या विवाह का दिन भी पढ़ कर सुनाओगे?"

"मैं अंधा थोड़े ही हूं कि इतना सारा सुना कर उसे न पढ़ूं। यहाँ छापे की स्याही ज्यादा टपक गई है। अक्षर साफ़-साफ़ दीख नहीं पड़ते। किसी दूसरी प्रति में देख लो।"

"अरे! चलो तो सही। चाहे तो वहीं जा कर देखेंगे। जिस दिन तोरण बांधा उसी दिन विवाह होगा। हम तो कोई ऐरे-गेरे नहीं हैं। इन्हीं के गिराक हैं। विवाह के दिन एक समय का अच्छा खासा भोजन मिल ही जाएगा।"

"क्यों नहीं। आखिर वे धर्मावतार जो ठहरे।"

वन्दना

[श्री गोमतीप्रसाद पाण्डेय 'कुमुदेश']

माँ मुझ को भी मिले सहारा।

तेरी मंजुल मूर्ति मोहनी उर अन्तर में बसे निरन्तर,
मेरे गीतों से मुखरित हों तेरे अनुपम वीणा के स्वर।
जिनको सुनकर जाग उठें जन, जागे भारतवर्ष हमारा,
माँ मुझ को भी मिले सहारा।

कलित कल्पना कुसुम सजाकर घूमे तू कविता-उपवन में,
देख-देखकर मैं मिलिन्द-सा झूमूं मोद मनाऊँ मन में।
तेरी दया-दृष्टि हो जाए बहे रसों की निर्मल धारा,
माँ मुझ को भी मिले सहारा।

तुझसे प्रतिभा में विकास है, तुझसे संसृति में प्रकाश है,
तुझसे ही अज्ञता-मोह-मद-मत्सर का होता विनाश है।
इङ्गित से सन्मार्ग बना दे मैंने तुझ पर जीवन वारा,
माँ मुझ को भी मिले सहारा।

अनाचार का अंत कर सकूं ऐसे मुझ को तू विचार दे,
स्नेह, सत्यता, नैतिकता के भाव प्रगीतों में अपार दे।
जिससे सभी जनों को सत्वर मिले संकटों से छुटकारा,
माँ मुझ को भी मिले सहारा।

दक्खिनी का रीतिकालीन नीति-काव्य (२)

[डॉ रामस्वरूप]

सामाजिक नीति

इस काल के दक्खिनी काव्य में सामान्यजन, प्रेमी, हिन्दू-मुसलमान, सेनापति, कलाकार, पारखी आदि अनेक विषयों पर नीतिकाव्य की रचना की गई। अन्य विषयों की अपेक्षा प्रेमविषयक नीति स्वभावत: अधिक है क्योंकि अधिकतर नीतिकाव्य प्रेमविषयक कथाकाव्यों में उपलब्ध होता है।

(क) प्रेमी—

प्रेमविषयक नीति प्राय: वही है जिसका दिग्दर्शन भक्तिकालीन दक्खिनी काव्य में कराया जा चुका है। हां कहीं-कहीं कोई नवीन बात विलक्षण ढंग से अभिव्यक्त की जाने के कारण विशेष हृदयहारी बन गई है। जैसे, प्रेमी का हृदय दूरस्थ प्रिय के दर्शनार्थ दूरबीन बन जाता है—

दूर है लेकिन नजिक रहता है मुझ।
दिल हुआ तुझ देखने को दूरबीं॥[1] (वली)

(ख) सामान्य जन—

इन कवियों का विचार है कि मनुष्यता की दृष्टि से सब समान होते हुए भी सामाजिक स्थिति के विचार से भिन्न-भिन्न है। सनअती इस नीति को अनेक उदाहरणों द्वारा यों स्पष्ट करते हैं—

हुमा के बराबर न होता है जाग़।
न हर बूंद होय गोहरे शवे चिराग़॥
न साजे हरेक सीस पर ताज जर।
न हर यक कमर पर कमर बंद जर॥[2]

प्राय: हम समझते हैं कि धनाढ्य बहुत सुखी होते हैं और निर्धन बहुत दु:खी, परन्तु बात ऐसी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी खाल में मस्त रहता है—

तवंगर अपस माल सूं शाद है।
गदा बेनियाजी सूं आजाद है॥[3] (सनअती)

इस प्रकार के भेदभावों के रहते हुए भी सामान्य नीति यह कही गई है कि किसी का हित न कर सको तो बुरा भी न करो, क्योंकि—

गर कोई तिरे सों रंज पायगा।
तो हात में है सो गंज जायगा॥[4] (बहरी)

(ग) हिन्दू-मुसलमान—

वैसे तो सन्त व सूफी कवि हिन्दू-मुस्लिम को एक-दूसरे के समीप लाने का ही उद्योग करते रहे। परन्तु युद्धकाव्यों में काफ़िरों की अपेक्षा मोमिनों को ही प्रभु-कृपा का भाजन कहा गया है। 'तारीखे इस्कन्दरी' में लिखा है—

न चल सी हमारे पै काफिर का हद।
कि है दीनदारां कूं हक का मदद॥[5] (नस्रती)

(घ) सेना-पति—

युद्धकाव्यों में सेनापति के कर्त्तव्य और महत्त्व आदि का भी उल्लेख है। जैसे, स्वयं युद्ध करने की अपेक्षा युद्ध-संचालन कठिन कार्य है, सेनापति के अभाव में सैनिक सम्यक् संग्राम नहीं कर सकते, आदि—

यो है हक में धूरां के खूब यक मिसल।
कि लड़ने ते आपीं लड़ाना को बल।
करेगा लड़ाई यो यक दो पै वार।
लड़ावे लड़ावे तो लोटां हजार॥[6]
तूं वांच अब हमन यार अपने हजूर।
कि नें कद लड़ाई रहे बाजइ धूर॥[7] (नस्रती)

(ङ) कलाकार और पारखी—

सच्चा कलाकार वही होता है जिसकी कृतियां पाषाणरेखा के समान स्थायी होती हैं और कुशल पारखी वही जो कंकरों और रत्नों में सहज ही भेद करने में समर्थ हो 'अलीनामा' में मुल्ला नस्रती कहते है—

फलक पर नवा काम ज्यों ख्वाब है।
न रहे याव जो नक्श वर आब है।
हुनरमंद होता है तो बेनजीर।
करे नक्श कूं उस पत्थर पर लकीर॥[8]

---

१. सं. डा. नूरउलहसन : कुलियातेवली (अंजमन तरक्की उर्दू दिल्ली १९४५ ई०) पृष्ठ २८२। २. किस्सा बेनजीर, पृष्ठ ८१। ३. वही, पृष्ठ ५। ४. कुलियाते बहरी, पृष्ठ ७२। ५–६. सं. डा. अब्दुलहक : मुल्ला नस्रती, पृष्ठ २३५, २४५। ७–८. वही, पृष्ठ २४८, २०५, २१६।

रतन देख लेते हैं साहब नजर।
कि अन्धे कने क्या रतन क्या पथर ॥[९] (नसरती)

(च) संगति—

गौरवशाली तथा बुद्धिमान् मनुष्यों में ही बैठना-उठना श्रेयस्कर होता है। जिन लोगों की संगति से सामाजिक प्रतिष्ठा में हानि होने की सम्भावना हो, उनसे दूर ही रहना भला। कविवर तवई अपनी मस्नवी 'बहरामो गुलन्दाम' में लिखते हैं—

नन्हें आदमी ते तूं हरगिज न मिल।
न हँस हर किसे देक खिलखिल।
तूं मजलिस ते नादान को दूर कर।
घर अपना बुजुर्गां ते मामूर कर ॥[१०] (तवई)

आर्थिक-नीति

धनैश्वर्य के बिना जीवन नीरस हो जाता है, निर्धन व्यक्ति अविश्वसनीय बन जाता है, दरिद्र का दिल बुझा-बुझा-सा रहता है आदि अनेक बातें अर्थ के महत्त्व के विषय में इन काव्यों में लक्षित होती हैं। जैसे—

मुफलिसी सब बहार खोती है।
मर्द का एतबार खोती है ॥[११]
मुफलिसी बेकसी की फौजां ने।
शहरे दिल को किया है वीरां आ ॥[१२] (वली दक्खिनी)

सुख-सुविधाओं के साधन-सम्पत्ति की प्राप्ति मनुष्य के पुरुषार्थ के अधीन नही मानी गई। उसे भाग्य पर आश्रित माना गया है और भाग्य का विधाता मानव नहीं भगवान् है। इसलिए उसने जो-कुछ जिस मनुष्य के लिख दिया वह अमिट है—

खमीर एक सारे जगत कूं किया।
हरेक कूं नसीब उसके लाइक दिया।
अजल ते अवल रिज्क तूं लिक रक्या।
न इस में ते यक तिल फिरा कोई सक्या ॥[१३] (सनअती)

मनुष्य कभी-कभी यह समझते हैं कि उनकी आजीविका किसी विशिष्ट व्यक्ति के अधीन है। इसलिए वे प्रत्येक उचित-अनुचित उपाय से उसे सन्तुष्ट रखने का प्रयास करते हैं। इन कवियों के मत में यह विचार भ्रमपूर्ण है। इनका कथन है कि मनुष्य का भरण-पोषण करने वाला भगवान् है। उसी पर भरोसा रखना उचित है—

ना दोस्त ना यार आशना पर।
है रिज्क तेरा तिरे खुदा पर ॥[१४] (बहरी)

लोभी मनुष्य को कभी शान्ति नहीं प्राप्त होती। पर्याप्त धन की विद्यमानता में भी उसका हृदय रिक्त और असंतुष्ट रहता है। अधिकाधिक धनी बनने के लिए वह अनेक बार ऐसे संकटों में जा फँसता है, जैसे अबोध पशु व्याध के जाल में—

सो हैं हिर्स के हर्फ खाली तमाम।
इसी से हरीसां हैं खाली महाम।
तमा ख्वार करती है इन्सान को।
सो ल्याती है फांदे में हैवान को ॥[१५] (सनअती)

मिथ्या साक्ष्य, व्यभिचार और घुड़सवार स्त्री के समान द्यूत को भी इन काव्यों में निंद्य कहा गया है।[१६]

मिश्रित-नीति

इतरप्राणिविषयक नीति तो प्रायः वही है जो भक्तिकालीन दक्खिनी नीतिकाव्य में है, परन्तु मिश्रित नीति में कुछ-एक बातें नवीन भी दिखाई देती हैं।

ईश्वर—

प्रभु ही माता-पिता हैं, उस पर विश्वास रखना चाहिए, उसकी भक्ति के बिना धनैश्वर्य निस्सार है आदि नीतियां तो चिरकाल से प्रचलित थीं, परन्तु उसके 'करम' (कृपा) के बिना मनुष्य के 'अमल' (कर्म) भौ कौड़ी काम के नही, यह नीति अन्यत्र सुलभ नहीं—

अमल होय तो भी करम है जरूर।
करम नहीं तो है सब अमल में फितूर।
दे दोनों अगर हैं तो कुव्वत दुगुन।
करम होर अमल जूं सोना और सुगन ॥[१७]
(मुहम्मद फिराकी बीजापुरी)

अन्तसमय तथा परलोक में राम का ही सहायक

---

९. उर्दूशहयारे, पृष्ठ, २४८। १०–११. कुलियाते वली, पृष्ठ २१, २७६। १२. सनअती : किस्सा बेनजीर, पृष्ठ ४। १३. कुलियाते बहरी, पृष्ठ ७२। १४–१६. सनअती : किस्सा बेनजीर, पृष्ठ ७२, ९३। १७. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृष्ठ ३५२।

होना तो हिन्दू कवियों की रचनाओं में कई स्थलों पर मिल जाता है परन्तु कब्र में भी 'राम' सहायक होते हैं, यह भाव 'तुराब दखनी' की रचना में ही दिखाई देता है।

कबर में तेरा कोई साती नहीं है।
कठिन वक्त का कोइ सँगाती नही है ॥
बजुज़ राम के कोई साती नहीं है।
कि जिस दिल में इश्क जाती नहीं है ॥[१८]

धर्म—

सन्त कवि तो रोज़ा, नमाज़, व्रत, तीर्थयात्रा आदि बाह्याचारों का प्राय: खण्डन करते रहे परन्तु इन कवियों की रचनाओं में इन बातों का भी महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। रमज़ान मास में रोजे रखने से स्वर्ग-प्राप्ति होती है, शुक्रवार की रात संयम और प्रार्थना की रात है, मुहम्मद साहब पर ईमान लाने से सब कष्ट नष्ट होते हैं, इत्यादि बातों का उल्लेख इन काव्यों में यत्र-तत्र मिल ही जाता है। यथा—

(क) रोज़ा माहे रमज़ान में जो कोई करे अदा।
छूटे सख्त अज़ाब से पावे बहिश्त जज़ां ॥[१९]
(अज्ञात कवि)

(ख) जुमा रात है रात ताअत की है।
जो यो रात हक की इबादत की है ॥[२०]
(सनअती)

(ग) मुहम्मद गर मदद होगा हमारा।
सकल दुखदर्द रद होगा हमारा ॥[२१] (बहरी)

संसार—

संसार के सम्बन्ध में इन कवियों की नीति भक्त कवियों के समान है अर्थात् संसार अनित्य है, इसके सभी पदार्थ अस्थिर हैं, इसके संतरण के लिए काम क्रोधादि का परित्याग अपेक्षित है और मनुष्य का जीवन यात्री के जीवन के तुल्य है।

स्वदेश—

अपने देश और घर के सम्बन्ध में कई सुंदर नीतियों का उल्लेख किया गया है। तबई ने 'मसनवी बहरामो गुलन्दाम' में देशानुराग के जो उद्गार अभिव्यक्त किये हैं वे तो आधुनिक देशभक्ति की तीव्रता से ओतप्रोत होने के कारण आश्चर्यजनक हैं—

जो कोई याद करता नें अपना वतन।
ओ मुर्दा है पैरन है असल का कफन ॥
अगर कोई गुरबत में शाही करे।
अगर माल होर मुल्क लाखां धरे ॥
अपस कूं देवे खोल कर अंखियां।
देवे खाक तन का वतन का निशां ॥
वतन सब को दुनियां में प्यारा अहे।
सफर है सो जूं बाद बारां अहे ॥[२२]

मृत्यु—

मृत्यु की अनिवार्यता का उल्लेख तो प्रसंगवश कई कवियों ने किया है परन्तु उस से त्राण के सबल साधनों की निष्फलता का उल्लेख नस्रती ने अपने ही ढंग से किया है—

सलह कोट गड़ मर्द उपराल है।
अजल आए पवबी च भूंचाल है।
अजल का जो जिस मर्द पर जोक है।
जरं: की कड़ी मोबमो तौक है ॥[२३]
(नस्रती)

भाव यह कि मृत्यु आने पर कवच, दुर्ग, अस्त्र-शस्त्रादि सब व्यर्थ हो जाते हैं। भूमि के जिस अंश को जिस के रुधिर से सिक्त होना है, वह हो कर ही रहेगा, उस में ननु-नच करने की किसी में भी शक्ति नहीं—

बहना रहे जिस जमीं पर जो खूं।
बहे क्यों न होवे हो सबब कुछ जबूं ॥[२४]

रीतिकालीन दक्खिनी-काव्य पर एक दृष्टि

वर्ण्य विषय—

वैसे तो रीतिकालीन दक्खनी नीति-काव्य भक्ति-कालीन दक्खिनी नीति का बढ़ाव-सा ही प्रतीत होता है तथापि यह निस्संकोच कह सकते हैं कि इस में ऐहिकता की मात्रा का कुछ अधिक है। इस में मानव-जीवन, बुद्धि तथा काव्य के महत्त्व पर भक्तिकाल की अपेक्षा अधिक लिखा गया है। पारिवारिक कर्तव्यों के निर्वाह पर भी अधिक बल दिया गया है। पति के प्रति पत्नी के कर्तव्यों की तो प्रबल प्रेरणा पाई जाती

१८–१९. वही, पृष्ठ २५३. ३८५। २०. सनअती : किस्सा बेनजीर, पृष्ठ ३०। २१. कुलियाते बहरी : पृष्ठ ९३। २२. उर्दूशहयारे, पृष्ठ २४७। २३–२४. मुल्ला नस्रती, पृष्ठ १८१, २२५।

है परन्तु भार्या के प्रति भर्ता के कर्तव्यों की नहीं। इसी प्रकार कुलटा की दण्डयता का उल्लेख तो किया गया है परन्तु परादाराभिगामी पुरुष के सम्बन्ध में ये कवि चुप हैं।

सेनापति, कलाकार, पारखी, प्रभु-कृपा के बिना कर्मों की निष्फलता, क़ब्र में 'राम' ही सहायक, परोपकारार्थ क़ब्र खुदवाने का महत्त्व, रमजान में रोजे रखने से स्वर्ग-प्राप्ति, शुक्र की रात का आध्यात्मिक महत्त्व, हज़रत मुहम्मद पर ईमान कष्टनाशक, स्वदेश-प्रेम आदि नव-नव विषयों पर भी पर्याप्त लिखा गया है। भक्तिकाल में तो कवियों ने आत्मिक, सामाजिक और मिश्रित नीति को ही महत्त्व दिया था परन्तु इस काल में शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और मिश्रित सभी विषयों पर नीतिकाव्य की रचना की गई। उपेक्षित रही तो इतरप्राणिविषयक नीति। हिन्दू सन्तों ने अपनी जिन रचनाओं में जीवदया पर बल दिया है उन्हें दक्खिनी की न कह कर ब्रजभाषा की कहना ही अधिक उपयुक्त है, इसलिए हमने उन की चर्चा नहीं की।

रस और भाव—

रसों और भावों की दृष्टि से रीतिकालीन दक्खिनी नीति-काव्य भक्तिकालीन दक्खिनी नीति-काव्य से उत्कृष्ट है। शृंगार और शान्त रस की प्रधानता है। शेष रस तो नाम-मात्र ही हैं। भावों में मति, निर्वेद, भक्ति, चिन्ता, दैन्य, मूढता, भय, लज्जा और क्रोध अधिक व्यापक हैं।

भाषा—

दक्खिनी के कवि फ़ारसी में अपनी रचनाएं करने में समर्थ थे तथापि लोगों में उनके प्रचार की कमी को देख कर उन्होंने अपने काव्यों का प्रणयन दक्खिनी में किया—

जिसे फारसी का न कुछ ग्यान है।
सो दखनी जबां इन को आसान है॥[२५] (सनअती)

भाषा में देशी-विदेशी शब्दों का तो वैसा ही मिश्रण है जैसा भक्तिकालीन दक्खिनीकाव्य में हैं परन्तु लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अधिक है। जैसे—धोकर पीना, पत्थर पर लकीर, नक्श बर आब (पानी पर चिह्न), आसमां पर खाक उड़ाना, कि अंधे कने क्या रतन क्या पथर, सोना और सुगन (सुगन्ध) आदि। पद्यों में प्रवाहशीलता तो अधिक है परन्तु लिंगसम्बन्धी त्रुटियां यथापूर्व हैं, जैसे—दुखाते हैं जो औरत मर्द का दिल।

अलंकार—

भक्तिकालीन दक्खिनी रचनाओं की अपेक्षा इन रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग अधिक तथा अधिक सुरुचिपूर्वक किया गया है। शब्दालंकारों में से छेकानुप्रास, लाटानुप्रास तथा वीप्सा का और अर्थालंकारों में से रूपक, विरोधाभास, दृष्टान्त और निदर्शना का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। पूर्वोद्धृत पद्यों में उपयुक्त अलंकार सहज ही देखे जा सकते हैं।

शैली—

इस काल की रचनाओं में तथ्यनिरूपक, उपदेशात्मक और आत्माभिव्यंजक शैलियों का प्रयोग अन्य शैलियों की अपेक्षा बहुत अधिक हुआ है। मुल्ला नसरती के 'गुल्शने इश्क' में अध्यायों की समाप्ति पर शिक्षाप्रद पद्य दिये गये हैं। सनअती के किस्सा बेनज़ीर में कथाओं में से कथाएं नि:सृत होती चली जाती हैं।

छन्द—

अधिकतर रचनाएं अरबी के छन्दों में की गई हैं। केशव स्वामी आदि ने पदों, दोहों, चौपाइयों आदि में भी कुछ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। पद्यों में मात्राओं की संख्या न्यूनाधिक होने से प्रवाह का सौष्ठव अनेक स्थलों पर नष्ट हो गया है। परन्तु प्रतीत होता है कि तत्कालीन पाठक आवश्यकतानुसार ह्रस्व का दीर्घ तथा दीर्घ का ह्रस्व उच्चारण कर गति को अक्षुण्ण कर लिया करते थे।

अन्त में इतना ही कथन पर्याप्त होगा कि रीतिकालीन दक्खिनी का नीतिकाव्य मात्रा में थोड़ा होता हुआ भी भावपूर्ण तथा शिक्षाप्रद होने के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

---

२५. सनअती : किस्सा बेनज़ीर, पृष्ठ २६।

सेवा : हमारा प्रथम कर्तव्य

[श्री चक्रधर 'नलिन']

मानव-मन के समस्त धर्मों का मूल सेवा में निहित है। जीवन की संभावित आशातीत सफलता सेवा की परिधि में चक्कर लगाती है। मानस में उद्वेलित सेवा की भावना हमें सत्प्रेरणा देकर संतोष एवं सुख की दिशा की ओर उन्मुख करती है। सम्पूर्णतः सेवा ही हमारे उत्थान, वास्तविक विकास एवं सुख-शान्ति का प्रमुख प्रसाधन है।

सेवा का महत्त्व हमारे जन-जीवन में परिलक्ष्य है। हमारे नीति-धर्म, ज्ञान और विज्ञान की शिक्षाओं में सेवा का प्रमुखतम समादर किया गया है। गीता सेवा का महत्त्व स्वीकारते हुए कहती है—

"मोक्ष केवल उन्हीं को प्राप्त हो सकता है और उन्हीं के पाप धुल सकते हैं जिनकी दुविधा मिट गई है और जिन्होंने अपनी कामनाओं को जीत लिया है और जो सदा सब के कल्याण और सब की सेवा में लगे रहते हैं।"

सेवा एक व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत हमारी दया, क्षमा, परोपकार एवं सत्प्रवृत्तियां आ जाती हैं। सेवा के अनेक दृष्टिकोण हैं जो हमारी गतिविधियों एवं रुचियों को क्षेत्रगत कर लेते हैं। मानव-सेवा, देश-सेवा, समाज परिवार, साहित्य, संस्कृति की सेवाएँ ये नाना विधाएँ हैं जो हमारे कार्यों का संचालन-स्रोत हैं।

एक दिन बुद्ध भगवान् एक गांव में उपदेश देने गए। वहां के निवासियों ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया, पर वे उस आदर से प्रभावित न हो, उसी गांव के पड़ोसी गांव में (जहां हैजे का प्रकोप था) जाकर उन रोगियों की सेवा में दत्तचित्त हो गए, जिन के समीप जाने में लोग हिचकिचाते थे। उन्होंने अपने भक्तों को उपदेश देते हुए कहा—

"भिक्षुओ, निष्काम सेवा ही परम धर्म है। सेवा का धर्म जात-पाँत व धर्म के भेदभाव को नहीं मानता। भिक्षु नर के रूप में नारायण को देखता है और जन के रूप में जनार्दन का दर्शन करता है। वह स्वयं दुःख और कष्टों का स्वागत करता है और अपनी सेवा द्वारा इस धरती में स्वर्ग की रचना करता है।"

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है—

परहित सरिस धर्म नहि भाई,
पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई।

और सेवा की भावना को मानव का मूल बताते हुए शेख सादी ने अपनी अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तक 'करीमा' में लिखा है—

"सच्ची दौलत सेवा ही से मिलती है,
सेवा से सौभाग्य प्राप्त होता है,
यदि तू सेवा के लिए कमर कस ले तो कभी नष्ट न होने वाली दौलत का द्वार तेरे हेतु खुल जाए।
सेवा से भीतर की आत्मा रोशन होती है।"

एक सन्त ने अपने देशवासियों को सेवा का उपदेश देते हुए कहा था कि "सेवा मनुष्यमात्र का प्रथम व अन्तिम कर्त्तव्य या धर्म है।" यह उपदेश प्राणिमात्र के लिए एक उज्ज्वल आदर्श है। उन्होंने अपने उपदेश में कहा था—

"मानव को चाहिए कि वह अपना सब काम स्वार्थ को पृथक् करके एक सरल स्वाभाविक ढंग से करे। उसके किसी भी काम में खुदी या अहंकार न हो, न घमण्ड हो, न अपने-पराये और मेरे-तेरे का भेद हो। मानवमात्र की सेवा, उसकी पूजा हो। यही मनुज का प्रथम व अन्तिम ताओ अथवा धर्म है।"

अपने उपदेशों में हजरत ईसा सेवा पर विशेष ध्यान देते थे। उन्होंने इसी भांति का उपदेश अपने शिष्यों को सदैव दिया। उनका उपदेश है—

"देखो, व्रत के दिवस भी तुम स्वयं तो सुख भोगते हो और दूसरों को कष्ट देते हो। तुम सब प्रकार की बुराई करते रहते हो। क्या मैंने ऐसे ही व्रत की आज्ञा दी थी? क्या यह व्रत ईश्वर को मंजूर हो सकता है? जिस व्रत की मैंने आज्ञा दी थी वह यह

है—जिन अवगुणों ने तुम्हें बांध रखा है, उनका बन्धन तोड़ डालो, दु:खियों को सुखी करो, भूखों को अपनी रोटी में से रोटी दो, जो बेघरबार हैं उन्हें अपने घर में जगह दो, जो नंगे है उन्हें कपड़े पहनाओ। सब दु:खी इन्सानों की सेवा में अपने को खपा डालो, यही सबसे बड़ा व्रत है।"

हजरत मुहम्मद साहब ने ईमान की व्याख्या करते हुए सेवा भाव का प्रतिपादन किया—"ईमान का अर्थ है—सब्र करना और दूसरों की भलाई और सेवा करना।" एक हदीस के अनुसार कि मुहम्मद साहब ने कहा है, "सब इंसानी समाज अल्लाह का कुन्बा है और उन सब में अल्लाह का सबसे प्यारा वह है जो अल्लाह के इस कुन्बे की भलाई और सेवा करता है।"

महाराज श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ में जूठी पत्तलें उठाने का कार्य सम्पादित करके सेवा का अप्रतिम आदर्श उपस्थित किया। महात्मा गांधी की देश-सेवा, निराला की साहित्य-सेवा, तिलक व गोखले की समाज-सेवा से कौन अपरिचित है। जैन सन्त भगवान् महावीर ने इसी लिए तो कहा है—

"यदि कोई साधु किसी रोगी या संकटापन्न व्यक्ति को छोड़कर तपश्चरण करने लगता है, शास्त्र-चिन्तन में संलग्न हो जाता है, तो वह अपराधी है और संघ में रहने योग्य नहीं है। सेवा स्वयं बड़ा भारी तप है। सेवार्थ हमें सदैव नारियों की, दीन-दु:खियों की, पतितों एवं दलितों की खोज में रहना चाहिए।"

सेवा मानव जीवन का मूल धर्म है। बिना सेवा के मनुष्य को सुख शान्ति एवं सन्तोष नहीं मिल सकता है। सेवा के विषय में स्वामी विवेकानन्द ने सही ही लिखा है—

"भगवान् की सच्ची सेवा एक रोते हुए व्यक्ति के आंसू पोंछना है, किसी निर्धन की सहायता करना, किसी बीमार की सेवा-शुश्रूषा करना।"

सेवा आधिभौतिक और आधिदैविक वरदानों का प्रमुख साधन है। स्वामी रामतीर्थ ने सेवा पर बल देते हुए ठीक ही कहा है—

"सेवा करो। सेवा की भावना तुम्हें आत्म-साक्षात्कार का दर्शन कराएगी। सेवा ही मानव का प्रमुख धर्म एवं मुक्ति का साधन है।"

क्लैब्यं मा स्म गमः

[प्रा. रंगनाथ राकेश]

वक्ता नहीं, समर-जेता बन, ओ भारत के पार्थ धनुर्धर!
बब्बर शेर को भी मक्खी से बचने खातिर,
पुच्छ-चालना तो करना ही पड़ता आखिर,
प्रज्वलित काल-होमाग्नि सदृश जल उठना,
शान्ति-संधि के धुंधवाने से तो बेहतर!
मां के दूध : बहन की लज्जा को क्या—
धर्म-नीति से रख पाओगे, रे कायर?
वक्ता नहीं, समर-जेता बन, ओ भारत के पार्थ धनुर्धर!
नगराज हिमालय की पसली में शम्पा-त्रिस्फूर्जन,
क्या भूल गए चूशुल-तवाङ्ग का समराङ्गण?
कितनी कुल-वधुओं का सिन्दूर पुंछ गया—
कितनी बहनों के रक्षा-बन्धन हुए राख
कितने भोले मुन्नों का पितृत्व उड़ गया—
कितनी माताओं का वात्सल्य बन गया खाक
इसका सच्चा प्रतिशोध भला क्या धर्म-संधि-प्रवचन है?
अथवा बदला लोहे की जिह्वा से कालानल-तर्पण है?
बोलो शूरवीर! तुम बोलो! क्या देते हो प्रत्युत्तर?
वक्ता नहीं, समर-जेता बन, ओ भारत के पार्थ धनुर्धर!
बनिए का मोल-तोल तो नहीं चला करता है—
सद्यः पुण्य-स्थल-सम समर-तीर्थ पर,
इतिहास-वंश थूका ही करता है—
क्लीब-कायरों की कुकीर्ति पर!
घुटने टेक, आंख नीची कर घिघियाना—
और रिरकना तो नाली के कीड़े से भी बदतर,
प्रज्वलित काल-होमानल-सा जल उठना,
चिर धुंधुवाने से तो है बेहतर!
बोलो शूरवीर! तुम बोलो! क्या देते हो प्रत्युत्तर!
वक्ता नहीं, समर-जेता बन, ओ भारत के पार्थ धनुर्धर

प्राचीन भारतीय कर-व्यवस्था

[श्री तेजसिंह गौड]

हमारे देश में प्रचलित आज की कर-व्यवस्था से अधिकांश व्यक्ति परिचित हैं। यहाँ तक कि उस का परिचय ग्रामीण क्षेत्र में भी है किन्तु हमारे प्राचीन भारत में इस कर-प्रणाली का स्वरूप क्या था, इस की जानकारी आज कुछ ही व्यक्तियों को हो सकती है। अधिकांश व्यक्ति हमारी प्राचीन कर-प्रणाली से परिचित हो सकें, इस लिए हम यहाँ प्राचीन भारतीय कर-प्रणाली के स्वरूप के बारे में विभिन्न आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों के आधार पर वर्णन करेंगे।

कर लगाते समय यह ध्यान रखा जाता था कि न तो कर लेने वाले (राजा) को और न कर देने वाले (प्रजा) को किसी प्रकार का असन्तोष ही हो।[1] इस व्यवस्था से उस समय की उदार नीति का पता चलता है। साथ ही इस से एक सन्देह भी होता है कि यदि राजा को प्रजा की भलाई एवं अन्य विकास-कार्यों के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता हुई तो यह पूर्ति कहाँ से की जाएगी। राजा इस धन की पूर्ति कर लगा कर करना चाहता है किंतु प्रजा इस से सहमत नहीं है। तब ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? इस के उत्तर में महाभारत[2] के अनुसार यही कहा जा सकता है कि जो भी कर लगाया जाए उस में प्रजा का मत भी ले लिया जाए तथा कर की दर में जो भी वृद्धि होती थी वह क्रमिक होती थी। जिस से जनता भी सन्तुष्ट रहती थी और राजा को भी आवश्यकतानुसार धन मिलता रहता था।

करारोपण सम्बन्धी जो भी सिद्धांत हमारे प्राचीन साहित्य में मिलते हैं, उन में कहीं भी साम्य नहीं मिलता है। अतः हम उनका अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

मनु के अनुसार करारोपण के सिद्धांत[3]

(१) कर की धन-राशि एकत्रित करने का काम ग्रामाधिपति करे।

(२) राजा को चाहिए कि वह (क्रय-विक्रय की व्यवस्था में) व्यापारिक वस्तुओं के लागत मूल्य तथा रक्षा-व्यय को देखते हुए व्यापारियों से कर वसूल करे।

(३) जिस रीति से राजा और व्यापारियों को लाभ हो उसी के अनुसार राजा को अपने राज्य में कर लगाना चाहिए।

(४) राजा को चाहिए कि वह थोड़ा-थोड़ा कर के अपना वार्षिक कर वसूल करे।

(५) राजा को चाहिए कि वह स्वयं की मृत्यु अथवा मृत्यु के समान सङ्कट आ जाने पर भी वेद-पाठी (श्रोत्रिय) से कर न ले तथा यह भी ध्यान रखे कि देश में कोई भी वेद-पाठी भूख से पीडित न हो।

शुक्राचार्य के द्वारा प्रतिपादित करारोपण के सिद्धांत[4]

(१) व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र में कर केवल लाभ पर ही लगाया जाए।

(२) कर लगाते समय यह भी ध्यान रखा जाए कि किसी भी वस्तु पर दुबारा कर न लग जाए।

(३) सड़क, बाज़ार, स्थल तथा खदानें शुल्क के क्षेत्र हैं।

(४) जब विक्रेता अपनी वस्तु को उसके लागत-मूल्य के बराबर मूल्य में ही बेचता है तो ऐसी स्थिति में राजा को उस से कर नहीं लेना चाहिए। किंतु राजा उस समय यह देखते हुए कि क्रेता को लाभ है, क्रेता से कर वसूल करे।

(५) भूमि का कर लेते समय राजा यह जांच कर ले कि उपज का मूल्य कितना है, भूमि का क्षेत्रफल कितना है, उसके उपरांत ही उसके अनुसार कर वसूल करे।

---

१. मनु. ७-१२७। २. महाभारत १२-८८-७-८। ३. मनुस्मृति, अध्याय ७। ४. शुक्रनीति, अध्याय ४, विभाग २।

(६) राजा कर वसूल करते समय यह ध्यान अवश्य रखे कि किसान बर्बाद न हो जाए।

(७) किसानों से कर वसूल करते समय राजा अपने मस्तिष्क में किसानों को हुए लाभ के धन की मात्रा को अवश्य रखे।

(८) यदि राज्य में कोई व्यक्ति नया उद्योग आरम्भ करता है अथवा नई ज़मीन जोतता है, तालाब, नहर अथवा कुएँ खोदता है तो राजा को उस से तब तक कर नहीं लेना चाहिए जब तक कि उसे व्यय किए गए धन का दो गुणा धन प्राप्त न हो जाए।

(९) राजा को चाहिए कि वह कर (अथवा अन्य जो भी वसूली हो) शीघ्र ही बिना किसी विलम्ब के वसूल कर ले।

(१०) हर किसान को कर सम्बन्धी अनुबन्ध-पत्र राजा को स्वयं अपने हस्ताक्षर एवं मुद्रायुक्त देना चाहिए।

(११) जब भूमि का कर निश्चित हो जाए तो राजा यह कर की धनराशि गाँव के सब से धनी व्यक्ति से वसूल कर ले अथवा मासिक या सामयिक किश्तों की सुरक्षा ले ले।

करारोपण के सिद्धांतों का अध्ययन कर लेने के उपरांत अब हम कर के परिमाण या कर की दर का अध्ययन करेंगे।

महर्षि गौतम ने कृषि-कार्य में संलग्न व्यक्तियों (किसानों) के तीन वर्ग करते हुए कहा है कि जो किसान कम परिश्रम करता है और अधिक उपज पाता है उस से उस की कुल उपज का छठा भाग; उस किसान से जो परिश्रम के अनुरूप उपज पाता है, उपज का दसवाँ भाग; तथा उस किसान से जो परिश्रम के अनुपात में कम उपज पाता है उपज का सोलहवाँ भाग राजा कर के रूप में वसूल करे।[५] कृषि-क्षेत्र में लगाए जाने वाले कर के सम्बन्ध में शुक्र का कहना है कि तालाब से सिंचित भूमि की उपज का तीसरा भाग, नहर तथा कुएँ से सिंचित भूमि की उपज का चौथा भाग, तथा वर्षा और नदी से सिंचित भूमि की उपज का आधा भाग तथा कङ्करीली और पथरीली भूमि की उपज का छठा भाग कर-रूप में वसूल किया जाए।[६]

कौटल्य के अनुसार यदि किसान अपने ही तालाब से स्वयं सिंचाई करे तो उपज का पाँचवाँ भाग, यदि सरकारी तालाब से सिंचाई करे तो उपज का चौथा भाग नहरों से सिंचाई-यन्त्रों द्वारा सिंचाई करने पर उपज का तीसरा भाग एवं नदी, झील तथा कुओं से सिंचाई करने पर उपज का तीसरा या चौथा भाग राजा को प्रजा द्वारा कर-रूप में देना चाहिए। यह स्मरण रहे कि कौटल्य ने ये जो दरें बताई हैं, जल-शुल्क की हैं।[७] मनु ने अनाज पर कर की दर निश्चित करते हुए लिखा है कि अनाज का आठवाँ, छठा अथवा बारहवाँ भाग लिया जाए।[८]

अग्नि-पुराण के अनुसार अन्न का छठा या आठवाँ भाग लिया जाए तथा महाभारत के अनुसार अन्न का दसवाँ भाग लिया जाए।[९] यहाँ यह स्मरण रखने योग्य बात है कि महाभारत में मिलने वाली कर की दरें स्वयं प्रजा ने ही निर्धारित की हैं।

महर्षि वसिष्ठ ने अपने धर्मसूत्र में कर के सम्बन्ध में इतना ही कहा है कि राजा का जनता से उसके धन का छठा भाग कर के रूप में वसूल करना चाहिए तथा श्रोत्रिय, वादक, वृद्ध, नदी किनारे वन और पर्वतों पर उत्पन्न होने वाली उपभोग की सामग्री पर किसी प्रकार का कर न लगाए।[१०]

फल-फूल, ओषधि, शहद, मांस तथा गन्ध इत्यादि पर गोतम के अनुसार छठा भाग; मनुस्मृति के अनुसार छठा भाग, किन्तु मनु ने गोंद, घी, रस, मूल, पत्ते, शाक, भूसा, तृण, चमड़ा, बाँस या बेंत, मिट्टी और पत्थरों के बर्तनों पर भी कर लगाने को कहा है। शुक्राचार्य के अनुसार घास और लकड़ी के अधिपतियों से तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ, दसवाँ या बीसवाँ भाग कर-रूप में वसूल करना चाहिए। कौटल्य के अनुसार फल, फूल, सब्ज़ी, मूल आदि के साथ ही बीज, सूखी मछली, सूखा माँस आदि का छठा भाग; और डोरा, कपास, (रूई) औषधि, लकड़ी, बाँस, रेशे से बनी वस्तु, चमड़ा, मिट्टी के बर्तन, तेल (क्षार), शक्कर, नमक, तरल पदार्थ, चावल का बीसवाँ या

५. (१-२४)। ६. शुक्रनीति, अध्याय ४, विभाग २। ७. अर्थशास्त्र, अध्याय ४१, विभाग २। ८. मनु. ७-१३०। ९. अग्निपुराण, २२३-२६ महाभारत १८-८८-२४। १०. १-४२, १७-२३, १७-२६।

पच्चीसवाँ भाग राजा को कर रूप में वसूल करना चाहिए। अग्नि-पुराण के अनुसार गन्ध, औषध, रस, फूल, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, बांस, बांस द्वारा निर्मित वस्तुएँ, मांस, शहद तथा घी का छठा भाग कर-रूप में वसूल किया जाए।[११]

मनु, गौतम तथा महाभारत के अनुसार पशु और सोने का पचासवाँ भाग कर रूप में लिया जाए। यह स्मरण रहे कि मनु ने परिमाण की दर बताने के साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि केवल लाभांश का ही पचासवाँ भाग लिया जाए। तथा अग्निपुराण के अनुसार पशु, सोना तथा जङ्गली वस्तुओं का पाँचवाँ भाग अथवा छठा भाग देश-काल के अनुरूप कर-रूप में लेना चाहिए।[१२] व्यापारिक क्षेत्र में लगाए जाने वाले कर के सम्बन्ध में गौतम का कहना है कि व्यापारिक वस्तुओं का बीसवाँ भाग शुल्क-रूप में वसूल किया जाए।[१३]

शुक्रनीति के अनुसार राजा ३२वां भाग ले। साथ ही शुक्राचार्य ने यह भी लिखा है कि वस्तु पर उसके मूल्य का बीसवां अथवा सोलहवां भाग कर लगाने से कोई अवरोध उत्पन्न नहीं होता है अर्थात् वस्तु के मूल्य का बीसवां और सोलहवां भाग कर लगा देना चाहिए।[१४]

अग्निपुराण के अनुसार घरेलू उपयोग की वस्तुओं को छोड़ कर शेष समस्त वस्तुओं पर जो राष्ट्र में ही विक्रय के लिए बनकर तैयार होती हैं, उन वस्तुओं का बीसवां भाग, दूसरे देशों से व्यापार के लिए आई हुई वस्तुओं के विक्रय मूल्य में से लागत मूल्य निकाल कर शुद्ध लाभ का बीसवां भाग कर रूप में लेना चाहिए।[१५] कौटल्य[१६] ने कर की दर निम्नानुसार निश्चित की है। उन मादक तरल पदार्थों पर जो शासकीय नियंत्रण में नहीं है तथा जिनका विक्रय अशासकीय व्यक्तियों के द्वारा होता है उनका ५०%, व्यापार के लिए दूसरे देशों से आयात की गई वस्तुओं पर उन वस्तुओं की कीमत का $\frac{1}{5}$ भाग, आयात किए हुए नमक का $\frac{1}{6}$ भाग राजा को कर देना होगा। इसके अतिरिक्त कौटल्य का यह भी कहना है कि विक्रेता केवल कर ही नहीं देगा वरन् यदि राजा को व्यापार में हानि होती है तो उसकी पूर्ति भी करेगा और यदि विक्रेता इस प्रकार के भुगतान में कोई गलती करेगा या आनाकानी (टालमटोल) करेगा तो उस पर ६०० पण दण्ड किए जाएंगे जिसे भुगतान करने के लिए उसे विवश किया जाएगा।

खनिज पदार्थों पर शुक्रनीति के अनुसार सोने का $\frac{1}{2}$ भाग, चांदी का $\frac{1}{3}$ भाग, तांबे का $\frac{1}{4}$ भाग, जिंक और लोहे का $\frac{1}{4}$ भाग, रत्नों का $\frac{1}{2}$ भाग, कांच और सीसे का $\frac{1}{2}$ भाग, कर रूप में लिया जाए। किन्तु इसमें यह ध्यान रहे कि कर वसूल करते समय व्यय हुई धन राशि के भाग की पूर्ति कर ली जाए उसके बाद ही कर वसूल किया जाए।[१७]

कौटल्य के अनुसार शंख, सीपी, हीरे, बहुमूल्य पत्थर, मोती, मूंगे, हार इत्यादि पर कीमत तथा अन्य लागत मूल्य और क्षय-व्यय की धनराशि जोड़ने के बाद शुल्काध्यक्ष कर की दर निश्चित करके कर वसूल करे।[१८]

शुक्रनीति[१९] के अनुसार राजा पशुओं में वृद्धि हो जाने पर निम्नानुसार कर वसूल करे :—

(१) बकरे, भेड़े, गायें भैंसे और घोड़ों की वृद्धि का $\frac{1}{8}$ भाग।

(२) भैंस, बकरी, भेड़ इनके दूध का $\frac{1}{16}$ भाग।

कौटल्य ने चतुष्पद और द्विपद काले जानवरों का $\frac{1}{20}$, $\frac{1}{25}$ भाग कर की दर निश्चित की है।[२०]

जो व्यक्ति मजदूरी अर्थात् लुहारी, सुनारी अथवा अन्य उद्योग-धन्धों में कार्य करते थे, तथा वे व्यक्ति जो राजा को कर रूप में न तो धन ही दे सकते थे

---

११. गौतम धर्मसूत्र १-६७, मनुस्मृति ७।१३१-१३२, शुक्रनीति, अध्याय ४, विभाग २; अर्थशास्त्र २ २२; अग्निपुराण २२३।२८-२९। १२. गौतम धर्मसूत्र १-२५, मनु. ७-१३०, महाभारत १२-८८-२३, अग्निपुराण २२३-२७। १३. धर्मसूत्र १-२६। १४. शुक्रनीति, अध्याय ४, विभाग २। १५. अग्निपुराण, २२३, २३—२४। १६. अर्थशास्त्र, २, २२; २५; २७। १७. शुक्रनीति, अध्याय ४, विभाग २। १८. अर्थशास्त्र, २, २२। १९. शुक्रनीति, अध्याय ४, विभाग २। २०. अर्थशास्त्र, २, २२।

और न वस्तु ही, ऐसे व्यक्तियों से गौतम के अनुसार मास में एक दिन राज-कार्य करवा लिया जाए तथा उस दिन उनके भोजन की व्यवस्था भी राजा द्वारा ही की जाए। शुक्राचार्य के अनुसार पक्ष में एक दिन राज-कार्य तथा मनु के अनुसार मास में एक दिन राज-कार्य करवा लेना चाहिए। मनु ने तो इतना भी कह दिया कि इनसे कर धन के रूप में राजा न लेवे।[२१]

कर के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न वस्तुओं को लिया गया है जिससे कर के क्षेत्र में एकरूपता नहीं मिलती है। जहां-कहीं भी एकरूपता मिलती थी उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अब हम यहां ऐसी वस्तुओं पर कर का उल्लेख करेंगे जिनमें एकरूपता नहीं पाई जाती है।

मनु के अनुसार

(१) ऐसी वस्तु जो खो जाए तथा फिर मिल जाए उसका छठा, दसवां अथवा बारहवां भाग।

(२) समाज में कुछ ऐसी भी सम्पत्ति होती है जिसे हम लावारिस कहते हैं। इस प्रकार की सम्पत्ति को यदि कोई व्यक्ति अपनी बतावे और उसके प्रमाण भी देवे तो उस सम्पत्ति का छठा या बारहवां भाग।

(३) भूमि में गड़ा हुआ कोष अथवा सोना यदि किसी व्यक्ति को मिलता है तो उस कोष अथवा सोने का आधा भाग राजा को मिलना चाहिये क्योंकि वह सबकी रक्षा करता है और भूमि का स्वामी है[२२]।

शुक्राचार्य के अनुसार

(१) राजा दूध चावल इत्यादि सामग्री तो पा जाता है किन्तु उसे उसको आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ जैसे कपड़ा आदि नहीं मिल पाता है अत: वह वृद्धि का ३२वां भाग उपभोक्ताओं से वसूल करें।

(२) मकानों और दुकानों के स्वामियों से भी राजा को कर वसूल करना चाहिए। तथा सड़कों की मरम्मत इत्यादि के लिए सड़कों का उपयोग करने वाले से सड़क-कर भी वसूल करे[२३]। यह ठीक आज की हाउस टैक्स और रोड टैक्स व्यवस्था के समान है।

अब हम कौटल्य द्वारा सुझाये गये कर-क्षेत्र में से मुख्य-मुख्य वस्तुओं पर लगाये जाने वाले कर का अध्ययन करेंगे। कौटल्य ने अर्थशास्त्र में इस सम्बन्ध में बहुत ही विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है[२४]। कौटल्य के अनुसार :—

(१) रेशे से बनी वस्तु, पोशाक, सूती कपड़े, रेशमी कपड़े, हरताल, सिंदूर तथा अन्य रंगीन धातु, चन्दन के उपादान, भूरा चन्दन, तीक्ष्ण फेन देने वाला पदार्थ, वस्त्र (वर्दी), शराब, हाथी दांत, चर्म, कच्चा सामान, जिसे रेशे वाली सूती पोशाक बनाने के उपयोग में लाया जाता है; चटाइयां; पर्दे, बकरी और भेड़ के बालों से बनी वस्तुएं तथा अन्य गर्म उपादानों इत्यादि का $\frac{1}{10}$ या $\frac{1}{15}$ वां भाग;

(२) द्वार-कर $\frac{1}{5}$ अथवा जब जैसी आवश्यकता तथा परिस्थिति हो यह कर निश्चित कर लिया जावे। यह कर आधुनिक आक्ट्राय ड्यूटी के समान हो सकता है।

(३) खुले जंगलों में जानवर मारने पर उनके मूल्य का $\frac{1}{6}$ भाग;

(४) मछली एवं पक्षी के भाग का $\frac{1}{10}$ या अधिक भाग;

(५) मृग या अन्य जानवरों (पशुओं) के मांस का $\frac{1}{10}$ या इससे अधिक भाग;

(७) वे गांव जो नदी, झील या समुद्री किनारों पर बसे हुए हैं, वे राजा को निश्चत धनराशि कर रूप में देंगे तथा मछुओं को अपने शिकार का $\frac{1}{6}$ भाग लाइसैंस शुल्क के लिये देना होगा;

(८) जुआ खेलना उस समय अवैध नहीं था वरन् शासन के नियंत्रण में खेला जाता था जिसके ।लये शुल्क वसूल किया जाता था। जीते हुए व्यक्ति से ५% के

(शेष पृष्ठ ३४ पर)

---

२१. गौतम धर्म सूत्र १।३१-३२-३३-३४ शुक्रनीति, अध्याय ४, विभाग २ (मनुस्मृति ७।१३८)।
२२. मनुस्मृति, अध्याय ८,३३-३५-३९। २३. शुक्रनीति, अध्याय ४, विभाग २। २४. अर्थशास्त्र २, २, १२; २६; २२; आदि।

सूद का रुपैया

[श्रीमती इन्दुबाला वर्मा]

जीवन की कहानी में कोई आदर्श हो, कोई विशेषता, कोई नवीनता हो तो उसे कहने में, सुनाने में, लिखने में, गौरव का आभास मिलता है। समाज भी उस जीवन पर नाज करता है। जनता में उसका मान बढ़ता है। जिस जीवन का दृष्टिकोण संकीर्ण हो जिसका अन्त:करण हीन हो, जिसकी चाह कुछ दीन-दु:खियों की आह पर पनपती हो वह अपना परिचय कैसे देना चाहेगा? मेरे पास सोने-चांदी के बहुत गहने हैं, भारी भी, हल्के भी, मेरी तिजौरी भरी रहती है। हजारों-हजार रुपए मेरे बक्से की शोभा बढ़ाते रहते हैं। चाबियों का गुच्छा हरदम मेरी कमर में हीरे की करधनी की तरह बंधा रहता है। मेरे प्राणों के तार उसकी झंकार में नाचते रहते हैं। आप यह न सोचिए मैं किसी बड़े सेठ-साहूकार की पत्नी हूं या किसी बहुत बड़े बैरिस्टर या व्यापारी की लड़की हूं जिसे दहेज में यह सोने की पिटारी मिली है। मैं कोई नौकरी भी नहीं करती। आप आश्चर्य करेंगे शायद मैंने चोरी की हो, पर नहीं, मैंने सरस्वती की आराधना से लक्ष्मी जी को संदूक में बन्द कर रखा है। मैं पढ़ी-लिखी भी नहीं हूं। पांचवीं कक्षा तक ही शिक्षा पाई है। मैं दीन-दु:खियों के लिए अपनी आराध्या लक्ष्मी का सदुपयोग करती हूं। अपनी कुंजी मैं किसी को नहीं देती। अपने बड़े लड़के को भी नहीं। अपने पतिदेव को भी नहीं। रात के १२-१ बजे तक अपने रुपयों का निरीक्षण करती हूं। हृदय का सन्तोष, आँखों की नींद और तन का चैन सब मुझ से दूर है।

आज से २५ वर्ष पहले मैं सीधी-सादी गृहिणी भोली-भाली पत्नी और स्नेहमयी मां थी। मैं वर्तमान से सन्तुष्ट और भविष्य से निश्चिन्त थी। लक्ष्मी की लालसा जीवन की साधना नहीं थी, तिजेरी की कल्पना मन का सपना नहीं थी। मेरे घर की खिड़की के बाद एक पतली-सी सड़क गली की तरह थी। सड़क के उस पार एक नाला था जो सड़क के साथ ही न-जाने कितनी दूर तक चला गया था। नाले के उस पार कुछ कुर्मी कहार तथा मुण्डा जाति वालों की छोटी-छोटी झोंपड़ियां थीं। झोंपड़ियों की औरतें प्राय: बाबू भैया के घरों के चौके बर्तन झाड़ू करती थीं। एक औरत कोई पांच-छ: घरों का काम करती थी। ये एक घर से छ:-सात या आठ रुपए मासिक वेतन लेती थीं। उनके घर वाले पांच बजे से ही घर छोड़ कर कहीं मजदूरी की खोज में निकल जाते थे। दिन में कभी खाना खाने आते कभी नहीं आते। शायद उधर ही वे सत्तू वगैरह खा लेते। औरतें चार बजे से ही उठकर अपनी दैनिक-चर्य्या में जुट जातीं। मुण्डा स्त्रियां प्राय: बच्चों को पीठ में बांध लेतीं। दिन-भर उनके नंगे अधनंगे लावारिस बच्चों की सेना धूप-बरसात शीत में गुली-डण्डा, छडी-गुड्डी और हड्डा-बीछी जाने कौन-कौन खेल खेलती रहती। गाली-गलौच, मार-पीट करती रहती। इनकी शिक्षा की, इनके स्वास्थ्य की, इनके जीवन की जैसे कोई कीमत न थी। मैं आंगन वाला दरवाजा एकदम बन्द ही रखती थी। इन फालतू छोकड़े-छोकड़ियों से मतलब ही क्या?

(पृष्ठ ३३ का शेष)

अलावा पासे का किराया तथा अन्य सामग्री का किराया जैसे जलावतरण व्यवस्था आदि का भी शुल्क लिया जाता था।

अन्त में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि धर्म सूत्र, स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थों में तो हमें कर-सम्बन्धी जानकारी कम मिलती है किन्तु इससे सम्बन्द अत्यधिक जानकारी हमें अर्थशास्त्र से प्राप्त होती है। वैसे मनुस्मृति में भी पर्याप्त सामग्री मिल जाती है। इस कर-प्रणाली पर एक दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में भी शासन के नियंत्रण में व्यापार होता था, कृषि-कार्य होता था और उद्योग-धन्धे चलते थे।

एक कुर्मी कामिन मेरे यहां वर्तन-झाडू का काम करती थी उसकी पांच लड़कियाँ और दो लड़के थे। लड़कियां मां के काम में पूरा सहयोग देती थीं। मेरी यह दाई बराबर छः महीने पर वेतन में एक-दो रुपया बढ़ाने का हल्ला करती। इसमें उनके मुहल्ले की सभी दाइयों का गुट मिल जाता। इस तरह उनके पांच रुपये बढ़ते-बढ़ते १० रुपये हो गये थे। मेरी दाई की बड़ी लड़की की, जो १२-१३ साल की थी, शादी थी। इन दिनों वह मेरा काम बहुत चाव और ध्यान से करती थी। मेरे हाथ-पांव में तेल-मालिश करती, काम के लिए मेरा मुंह निहारा करती। मैं भी उससे खुश थी। एक दिन उसने बहुत हिम्मत करके ३०० रुपये मुझ से कर्ज मांगे। लड़का वाला लड़की को, जो १२-१३ साल की थी, छेंक गया था। (एक रसम जो इनकी जाति में होती है।) लड़का मैट्रिक पास था। वह लड़की को डोला चढ़ा देती मगर लड़के वालों को यह पसन्द नहीं था। इसीसे वह बारात लगाकर शादी करना चाहती थी। इनकी जाति में लड़के वाले पहले लड़की को पूजते हैं फिर गरीब भाई लड़की को डोली चढ़ाकर लड़के वाले के यहां भेज देते हैं वहीं उनके विवाह की रीति-रसम सम्पन्न होती है।

मैं बड़े असमंजस में पड़ गई। ढाई सौ रुपये वेतन में मुझे घर का खर्च चलाना पड़ता था। तीन लड़के एक वे, सास, एक ननद, सबका। बड़ी मुश्किल से न-जाने कैसे-कैसे मैंने तीन वर्ष में ३०० रुपये जमा किये थे। जाने कब कैसा समय आ जाए। वह इस तरह गिड़गिड़ाने हाथ पैर जोड़ने लगी कि सूखा इन्कार करना मेरे लिए मुश्किल हो गया। कसमें खाने लगी। ३०० रुपये के सूद में तब तक वह मुफ्त काम करेगी जब तक रुपये चुकता नहीं होंगे। मैं मन में सोचने लगी मान लो यह काम छोड़ दे, मान लो रुपये न लौटाए तो फिर मैं क्या करूँगी? कौन इससे लड़ने जायगा? अपने बेटों की कसम खाते हुए वह बोली, "रुपये में दो पैसे सूद ले लेना पर मां जी, मेरी दामाद परीछने की साध पूरी कर दो। दो पैसे सूद के नाम पर मेरा मन भींग गया। पूरी थाती खोने में बुद्धिमानी नहीं थी अतः मन से या बेमन से, दया से या लालच से मैंने १५० रुपये उसे दे दिये। वह बहुत खुश हो गई। इस तरह महीने में ४ रुपये ११ आने की बचत होने लगी। उसे मैं अलग एक छोटे से पीतल के डब्बे में रखने लगी। एक वर्ष में सवा छप्पन रुपये की आमदनी मुझे अच्छी लगी। भलाई की भलाई नफा का नफा। कोई सात वर्षों में उसने ३०० रुपये लौटाये। तब तक सूद के ३९३ रुपये १२ आने वह अलग दे चुकी थी।

इन सात वर्षों के बीच मेरी काफी ख्याति हो गई। इन झोंपड़ी वालों से मेरा सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गया। मेरे आंगन में पांच, दस, बीस, पचास मांगने का तांता लगा रहता था। दो पैसे सूद का नियम बन गया। किसी का बच्चा बीमार, किसी के लड़के की शादी, किसी को कुछ किसी को कुछ। जिसको अधिक रुपयों की जरूरत होती अपनी गाढ़ी कमाई की चांदी का हार हुमेल मेरे यहां रखने लगी। धीरे-धीरे मेरे पास गहने जमा होने लगे। २५ वर्ष में मेरे पास ८-१० हजार रुपये जमा हो गये। इतना ही नहीं पास-पड़ोस के सभ्य घरों से भी मेरे पास सोने के गहने जमा होने लगे। जिस लक्ष्मी की आराधना कर लोग उनकी एक शुभ दृष्टि को तरसते हैं वह दिव्य भेष में अनायास मेरे घर में प्रवेश करना चाहती थी। मैं तिरस्कार कैसे करती? मैं भी उन्हें सर-आखों पर रखने लगी। जो रुपये ले जाती उनसे तो सूद मैं तकाजा करके ले लेती कुछ दिन बाद रुपये भी, पर जो गहने रखतीं उनसे मैं सूद का तकाजा नहीं करती। गहने भी ले जाने को नही कहती। इस प्रकार अधिक समय हो जाने पर सूद समेत रुपया गहने के दाम से ज्यादा हो जाता और गहने वाली उसे छुड़ाने का नाम भी नही लेती। इस तरह कितनी ही महिलाओं का गहना मेरे पास जमा हो जाता और कागज की लिखा-पढ़ी या ठप्पे के अनुसार उनके मूल देने पर भी गहने लेने का सपना नहीं देख सकती। लक्ष्मी जी की सरस कृपा का आधार मेरी वह दाई ही है। मैं भगवान् से प्रार्थना करती रहती मेरी वह दाई युग-युग जिये फूले फले।

बरसात की भींगी रात थी। आकाश रस की फुहारों से धरती को नहला चुका था। भींगी हुई धरती अधिक भीगने के डर से हरी-हरी घास के परिधान में अपने को अधिक-से-अधिक समेटने का

प्रयास कर रही थी। मेंढ़क और झींगुर टर्रा-टर्रा कर शायद आकाश से अनुनय कर रहे थे—हे आकाश, तुम अब इन बून्दों को समेट लो। बिजली कटी थी। मैं एक मोमबत्ती जला कर रुपयों का बण्डल गिन रही थी, गहनों का निरीक्षण कर रही थी। बड़े लड़के की जिद् एक रेले ग्रीन साइकल की थी। साइकल के लिये मैंने रुपये अलग कर लिये। तभी किसी ने बाहर की कुंडी खटखटाई। रात में किसी के किवाड़ खटखटाने पर जल्दी दरवाजा नहीं खोलती थी जब तक यह पूर्ण विश्वास न हो जाए कि व्यक्ति विश्वासी है। मन में चोर डाकू की एक अज्ञात आशंका सदा बनी रहती थी। जब मुझे विश्वास हो गया यह मेरी पुरानी दाई का स्वर है तब मैंने कहीं किवाड़ खोले।

"इतनी रात में तू कैसे आई री ?"

"कमली के बाबू की हालत बहुत खराब है।" कमली भी उसके साथ थी।

'मतलब ?'

"बड़े डाक्टर बाबू को बुलाना है। वे ५० रुपया लेगे तब आएँगे। मां जी तुम्हारे ही हाथ में मेरा सुहाग है।"

मैं फिर फेर में पड़ गई। रुपये तो मेरे पास बहुत थे पर पता नहीं इसका आदमी मरेगा या जियेगा। यह भी अब प्राय: बीमार रहती है। सिर्फ दो-तीन डेरा का काम करती है उससे मेरे रुपये चुकाएगी या बच्चों को खिलाएगी। एक लड़की ससुराल है, एक लड़की आजकल यहीं है तो उसके तीन बच्चे हैं जिसमें गोदवाला बच्चा जुड़वां है। वह अपने जुड़वां बच्चे से परेशान रहती है। एक बड़ा लड़का भाग कर कलकत्ता चला गया है। सुनने में आता है वह अच्छा कमाता है पर घर एक कानी कोड़ी भी नहीं भेजता। छोटा बेटा अन्धा है। किस उम्मीद पर इसे रुपये दिए जाएँ ? मुझे चुप देख कर वह फिर घबड़ा कर बोली—'जल्दी करो मां जी, अभी कुछ सोचने का समय नहीं है" कमली के बच्चे उधर उठ जाएँगे। बीमार को उधर अकेले छोड़ कर आई हूँ। जल्दी १०० रुपये दे दो।" १०० रुपये के नाम पर मेरा माथा घूम गया। "रुपये तो सब मैंने कल बैंक में रखवा दिए। जानती ही हो आजकल चोर-डाकुओं का कितना भय है।"

"मां जी, कैसा हूं रुपया हो तो अभी कमली के बाबू की जान बच जाए। आप पर मुझे बड़ा भरोसा है। भगवान् के लिए हम पर दया करो तुम्हारा सुहाग अचल होगा, बाबू लोग दूधों नहाएँगे।" आत्मा मुझे फटकार रही थी, कर्त्तव्य मुझे दुतकार रहा था, इंसानियत झकझोर रही थी पर मैं मोह की पुतली पत्थर बन रही थी। मैंने कहा, "भला आधी रात में कहीं लक्ष्मी घर से निकाली जाती है? जाओ सवेरे तुम्हारे लिए कहीं से प्रबन्ध कर दूंगी। तुम ने मेरे यहां इतने दिन काम किए हैं। क्या मेरी दृष्टि में उसका कुछ मोल नहीं ?"

"कुछ भी हो माँ जी ५०-२५ जो हो। मैं दो आने रुपया सूद दे दूंगी।"

"तुम से सूद का सवाल ही नहीं। छि: ऐसी हालत में रुपए देने का तुम से सूद लूंगी ? सच कहती हूं, रुपए आज झाड़-पोंछ कर बैंक में चले गए। बच्चे की साइकिल के लिए भेज दिए। वरना तुम्हें इतनी रात को वापस न करती। ये दस रुपए मेरे पास हैं तुम ले जाओ, कल देखो उपाय किया जाएगा। "उसे विश्वास हो गया। लम्बी सांस ले निराश हो, हताश बेचारी लौट गई। दरवाजा बन्द करते हुए मैंने सुना वह कमली से कह रही थी, "कमली, माँ जी के पास रुपए होते तो जरूर मिल जाते।" पट बन्द हुआ उधर बिजली जोरों से कड़क उठी। वर्षा और जोर की हो गई। मैं आकर पुन: रुपए गिनने लगी। मुझे लगा फिर कोई कुंडी खटखटा रहा है। मैंने टाला, फिर खट-खट। दरवाजा खोला शायद फिर एक बार रुपयों की याचना के लिए आई हो। नहीं, कोई तो नहीं था। हवा के झोंके थे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। मैं सोच रही थी ओफ, कैसे इस अंधेरी भयानक नि:स्तब्ध बरसात की रात में भीगती हुई बेचारी दाई··· । मुझे पैसे दे देने चाहिएँ थे। मोह ने किसी कोने से पुकार कर कहा, धत् रात में लक्ष्मी नहीं फेंकी जाती। लक्ष्मी का तिरस्कार नहीं किया, ठीक ही किया। दरवाजे बन्द कर दिए। बक्से में ताला भर दिया। चाबी का गुच्छा कमर में बांध लिया। रेडियो को शो-केश में बन्द किया। सिंगर मशीन में चाबी नहीं भरी थी। चाबी भरी।

बिस्तर पर लेटी। घड़ी में देखा दो बज रहे थे। न-जाने क्यों नींद टूट गई थी। करवटें बदलती रही पर बिजली तो जैसे नींद पर ही गिर गई थी। मन-ही-मन भगवान् से प्रार्थना करती रही है। भगवान्, मेरी बाई पर वज्र न गिराना। मेरे सिर पर अप्रकट कलंक न देना। जीवन-मरण तो भाग्य की विडम्बना है, प्रारब्ध है, नियति का अभिशाप है। डाक्टर और रुपया किसी के प्राणदाता नहीं, जीवन के निर्माता तुम हो, संहारकर्ता तुम हो। साढ़े चार बज गए। वर्षा कम हुई। बादलों की गड़गड़ाहट कम हुई। तभी नींद ने मेरे भाव-प्रवाह चुरा लिए। अब मैं सपनों की नौका पर बैठ भाव-सागर में हिलोरे लेने लगी। बहुत सुन्दर बयार थी। मेरे हाथों में थैली थी। उसमें रुपए झंकार रहे थे। मैं हाथ में रुपए गिन रही थी। अचानक मांझी चिल्ला उठा। मैंने देखा कमली, कमली की माँ, कमली के जुड़वाँ बच्चे सभी बीच भँवर में डूबे जा रहे हैं और एक लाश मेरी नाव के पास तैर रही है। मैं ज्यों ही नाव रोकने के लिए माँझी माँझी चिल्लाई मेरी नींद टूट गई। मैंने देखा चाबियों का गुच्छा मैं कस कर पकड़े थी। सूरज बादलों से लड़ रहा था। हवा के झोंके शांत हो गए थे। पक्षी चहक रहे थे, दाई काम पर नहीं आई थी, मेरा माथा ठनका। मैंने छोटे लड़के को खबर लेने के लिए भेजा। कल्पना ठीक निकली। काल के निर्मम निष्ठुर प्रहार ने झोंपड़ी के उस आधार को छीन लिया था। एक असहाय परिवार मँझधार में डूब चुका था।

लेकिन इसमें मेरा क्या कसूर? यदि मैंने रुपए दिए भी होते तो वापस कैसे मिलते? कैसे उससे मांगती? रुपया भी डूबता सूद भी जाता। फिर भी न-जाने क्यों मैं जब भी रुपए गिनती हूं बिजली कड़कती है, मूसलाधार वर्षा होती है और दरवाजे से खट-खट की आवाज आती है और एक करुण पुकार कानों को वेध डालती है, "मां जी १०० रुपए दे दो, मेरा सुहाग बचा लो, कमली के बाबू की जान बचा लो।" मैं सोने का प्रयास करती हूं पर वही दाई फिर आगे आ जाती है, पूछती है, क्या सचमुच तुम्हारे पास रुपए नहीं थे?

मृत्यु बाद की यादें [श्री बालकृष्ण बलदुवा]

१. विश्व-सेवा में ले ली गई—

बहुत समझाया मन को, किन्तु मीत! मन में विह्वलता रही।
ज्ञान का संकुल जनपथ छोड़ भावना-पगडडी तब गही॥
और निर्जनता में चिर सत्य की त्वरित गति अनुभूति हुई:
स्नेह के सरल, सलोनी सुछवि नित्य-प्रभु-सत्ता में मिल रही॥
'चयन में आ जाए संतान राज्य-सेवा मे: मोद महान्।
भेज देते घर बाहर उसे साश्रु पर पुलकित तन-मन-प्राण॥
तुम्हारी अमिता भी तो मीत! विश्व-सेवा में ले ली गई।
स्नेह की सरल, सलोनी सुछवि सर्व-सत्ता-अङ्गीकृत हुई॥'

२. आऊँगा, निश्चय, आऊँगा—

'बाबा, आओ! बाबा आओ!'
आऊँगा, निश्चय आऊँगा: मुझे पुकारो और न आऊँ?
किन्तु अलक्षित राह अपरिचित धूमघुमौआ बीच में;
'आज्ञा बिना प्रवेश नहीं' की लिए पट्टिका सामने।
और आज्ञा-पत्र, अभी तक मुझे मिल सका है नहीं॥
मिलते ही अविलम्ब, त्वरितगति चल दूँ, रुकने का नहीं,
उस अदृश्य पथ पर, जिसके ही किसी सुपुष्पित मार्ग में॥
अपने और साथियों सङ्ग तुम क्रीडा-रत मुद-मोद में।
हँसी-खेल में भी तुम भूली नहीं मुझे: आवाज है
आती रहती तेरी मेरे मन-मन्दिर में गूंजने॥
अन्तस-अन्तरिक्ष से हो कर, जो निकटस्थ सुदूर है।
एक अपरिचित परिचित, तन में रह कर भी जो शून्य है॥
बिछुड़न में जो याद, वही है नित्य मिलन की सूचिका।
मृत्यु बाद जो याद चिरन्तन सत्य-शिवम् की सूचिका॥

३. गहरी होती जा रही याद—

जैसे कल तू चली गई,
एक दिन मैं भी चला जाऊँगा।
किन्तु—
कल से, तेरे चले जाने के बाद से,
तेरी याद गहरी होती जा रही है,
मन में पैंठती जा रही है।
सोचता हूँ—ऐसे ही,
मेरे चले जाने के बाद,
मेरी याद भी
गहरी होती जाएगी,
मनों में पैंठती जाएगी।

पाषाण-युग की सभ्यता की एक नई शृंखला :—

रोभड़ी की खुदाई

[श्री अनवर आगेवान]

देश की महान् सांस्कृतिक देनों और अवशेषों पर समय ने जो पर्दा डाल रखा है, उसको हटाने के लिए राज्य सरकारों की ओर से व्यापक प्रयत्न किये जा रहे हैं। और, जगह-जगह खुदाई करके प्राचीन सभ्यता के बारे में बहुत-कुछ पता लगाया जा रहा है। इससे यह प्रतीत होता है कि, आज जो देश बहुत ही उन्नत कहलाता है, वहां के लोग जिस समय गुफाओं में रहते थे और जंगली जीवन व्यतीत करते थे, उस समय भारतीय सभ्यता अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी।

हाल ही में एक ऐसी खुदाई की गई है। राजकोट (सौराष्ट्र) से चौंतीस मील दूर दक्षिण ओर भादर नदी के तट पर स्थित रोभड़ी गांव के नजदीक प्राचीन टीला है, जो आयाताकार है। इसकी खुदाई से सवा दो लाख वर्ष पूर्व के पाषाण-युग के प्रमुख अवशेष मिले हैं। इस खुदाई से सौराष्ट्र को राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय पुरातत्त्व के मानचित्र पर महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है।

यह रोभड़ी गांव भादर नदी के तट पर है। इस नदी का उल्लेख पुराणों में भद्रावती के नाम से मिलता है। यह सौराष्ट्र की सबसे लम्बी और प्रसिद्ध नदी है। इसकी घाटी में खोज करते समय पाषाण-काल की सभ्यता के अवशेष मिले हैं।

गुजरात-राज्य में पाषाण-युग के अवशेष, साबरमती, ओसरंग और करजण में भी मिल चुके हैं। सौराष्ट्र के सम्बन्ध में यह समझा जाता था कि वहां ऐसे अवशेष नहीं हो सकते। किंतु, रोभड़ी में जो चीजें मिली हैं, लोथल अथवा रंगपुर की खुदाई से प्राप्त वस्तुओं से भिन्न हैं।

राज्य के पुरातत्त्व-विभाग ने यहां १९५८-५९ में खुदाई का काम शुरू कराया था। उस खुदाई के दौरान ही करीब डेढ हजार फुट लम्बे इस आयाताकार टीले का पता चला था। गत वर्ष फरवरी में यहां खुदाई का काम फिर शुरू हुआ।

लोथल और रोभड़ी में खुदाई से प्राप्त वस्तुओं से पता चलता है कि सिंधु-नदी-घाटी में जब हड़प्पा की सभ्यता फल-फूल रही थी, लगभग उसी समय सौराष्ट्र-तट पर लोथल का विकास हो रहा था। उन्हीं दिनों भादर नदी के तट पर रोभड़ी गांव भी फल-फूल रहा था।

गांव में कराई गई खुदाई से पता चलता है कि, उन दिनों सौराष्ट्र के विभिन्न कबीले वाले इधर से उधर आते-जाते रहते थे। सौराष्ट्र में प्राप्त चार हजार वर्ष पुराना यह पहला गांव है, जिसमें प्राग्-ऐतिहासिक काल में बस्ती के चारों ओर की जाने वाली किलेबन्दी के प्रमाण मिलते है।

ऐसा पता चलता है कि, शुरू-शुरू में लोग नदी के दक्षिण-तट पर आकर बसे थे। बाढ़ की रोक-थाम के लिए उन्होंने नदी के किनारे दो फुट ऊँचा तटबन्ध बनाया था और उसके ऊपर चूना कूट कर उसे पुख्ता बनाने की कोशिश की थी।

ये लोग मिट्टी के बने कच्चे मकानों में रहते थे, जिनका फर्श भी मिट्टी का होता था। दीवारों के सहारे के लिए बांस के खम्बे लगाए जाते थे। वे मिट्टी के लाल बर्तन और साधारण घरेलू वस्तुएँ काम में लाते थे। यह गांव आग लगने से नष्ट हुआ, जिसके प्रमाण अब भी प्राप्त हैं।

लोग छोटे-मोटे कामों के लिए पत्थर के औजार इस्तेमाल करते थे। लेकिन वे तांबे का प्रयोग करना भी जानते थे, क्योंकि तांबे की नलियां, तांबे के तारों के छल्ले, रुखानी, बाण के फल आदि मिले हैं।

गुजरात-पुरातत्त्व-विभाग ने अब तक खुदाइयां करा कर ऐसी लगभग एक सौ बस्तियों का पता लगाया है, जहां हड़प्पाकालीन संस्कृति विद्यमान है। किन्तु रोभड़ी की खुदाई से सिन्धु-नद-उपत्यका-सभ्यता की एक समृद्ध शृंखला प्रकाश में आई है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्राचीनतम पाषाण-युग का एक नया पृष्ठ खुला है। ●

सदाचार का आधार [श्रीमती उर्मिलाकुमारी गुप्ता]

सदाचार से अभिप्राय उत्तम आचरण से है। मानव-मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह निष्क्रिय नहीं रह सकता। किसी-न-किसी प्रकार का आचरण करना उसके लिये अनिवार्य है। उसके मन में अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की भावनाएं स्वाभाविक रूप से विद्यमान होती हैं। यदि उसकी प्रवृत्ति कुटिल भावनाओं की ओर होगी तो वह दुराचारी कहलाएगा और यदि वह कुरुचियों का दमन करके अच्छे पथ का अनुसरण करेगा तो उसका आचरण सदाचार की कोटि में आएगा।

सदाचार और धर्म—

सदाचार वस्तुत: धर्म का मूल तत्त्व है। धर्म से सम्बन्धित अन्य आचरण (पूजा-पाठ, व्रत, तीर्थ-यात्रा आदि) बाह्याडम्बर मात्र हैं, किन्तु सदाचार धर्म का प्राण है। यदि कोई मनुष्य बाह्याडम्बरों का पालन करे और सदाचार से विमुख रहकर दुराचार में लीन रहे तो वह पाखण्डी ही कहलायेगा। प्रत्यक्ष में कुछ लोग उसकी प्रशंसा भले ही करें, किन्तु परोक्ष में वे उससे घृणा ही करेंगे। इसके विपरीत सदाचारी मनुष्य सर्वत्र यश का भागी होता है। सदाचार से रहित धर्म की ठीक वही स्थिति होती है जो आत्मा से विलग होने पर शरीर की।

सदाचारी मनुष्य अधर्म की उपेक्षा करके सदैव धर्मपूर्वक जीवन-यापन करता है। इस मार्ग का आश्रय लेने पर उसे कभी-कभी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है, किन्तु सदाचारी व्यक्ति सत्पथ का त्याग नहीं करता। वह भ्रष्टाचार और असंयम से दूर रहता है। वस्तुत: चरित्र-शुद्धि सदाचार का सर्वप्रमुख अंग है।

सदाचार और सत्य—

सदाचार के अन्तर्गत सत्य-भाषण का भी अनिवार्यत: समावेश रहता है। सदाचारी पुरुष की आत्मा निर्मल होती है, अत: वह मिथ्या से कोसों दूर रहता है। कभी-कभी सत्य की अपेक्षा मिथ्या का आश्रय भी उपयुक्त होता है, किन्तु यह स्थिति तभी आती है जब स्वार्थ से मुक्त रहकर केवल परोपकार के लिए मिथ्या-भाषण किया जाए। सदाचारी मनुष्य सत्य-भाषी होने के साथ-साथ परोपकारी भी होता है। अत: वह निरीह व्यक्तियों की छल-कपट से रक्षा करने के लिए मिथ्या-भाषण में कोई पाप नहीं समझता।

सदाचार और अहिंसा—

सदाचारी मनुष्य की प्रवृत्ति हिंसा की ओर नहीं होती। वह विश्व के समग्र प्राणियों को अपने ही जैसा समझता है। अन्य प्राणियों को कष्ट में देखकर वह स्वयं भी उसी कोटि के दु:ख का अनुभव करता है। जीव-हत्या उसकी दृष्टि में महान् पाप है। पृथ्वी के सभी प्राणियों का स्रष्टा परमात्मा है। वह उन सब की आत्मा में समान रूप से समाया हुआ है। अत: सदाचारी मनुष्य किसी के शरीर तथा मन को व्यथित करना नहीं चाहता। यदि अनजाने में कभी उससे ऐसा अपराध हो भी जाता है, तो वह चिरकाल तक उसके लिए पश्चात्ताप करता है।

सदाचार और आस्तिकता—

सदाचारी मनुष्य ईश्वर में अविचल विश्वास रखता है। वह चाहे पूजा, व्रत, नियम आदि भगवद्भक्ति के बाह्य प्रदर्शनों से विमुख रहे, किन्तु उसके अन्तस् में ईश्वर का भय सदैव बना रहता है। वह ईश्वर के प्रति अखण्ड विश्वास-भावना से प्रेरित हो कर ही प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ करता है और उसी भावना के परिणाम-स्वरूप विश्व के समस्त प्राणियों को उस परमपिता की सन्तान मानकर उनसे प्रेम-भाव रखता है। यही कारण है कि वह दु:ख अथवा सुख के प्रत्येक अवसर पर ईश्वर का स्मरण कर विशेष शान्ति का अनुभव करता है।

सदाचारी के जीवन में जिस स्नेहमयी शान्ति, आत्म-संतोष और सुख का समावेश रहता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उसकी आत्मा, शरीर और मन, तीनों उन्नति के पथ पर अग्रसर रहते हैं। वह केवल अपना तथा अपने कुल का ही नहीं, अपितु सारे समाज और राष्ट्र का नाम उज्ज्वल करता है। यही कारण है कि सदाचारी व्यक्ति का यश चिरस्थायी रहता है। सदाचार के विषय में उपर्युक्त उपबन्ध प्रारम्भ में कठिन भले ही लगें, किन्तु जीवन का सच्चा आनन्द तभी मिलेगा जब हम सदाचार के सोपान पर चढ़ना सीख लेंगे। ●

हिन्दी साहित्य में प्रदीप-चित्रण

[श्री रामकुमार दीक्षित]

हमारे देश में हँसी-खुशी और आनन्द के—होली और दिवाली दो अपूर्व पर्व हैं जो अपनी स्फूर्तिदायिनी नव चेतना से मानव-मन को परिपूरित कर देते हैं। नई-नई आशाओं के हिंडोलने पर पार्थिव चेतना आनन्द लेने को लालायित हो उठती है, और फिर अपने नवीनतम भाव-सागरोर्मि से खेलने लगती है।

दिवाली शरद ऋतु में अमावस्या को, जो वर्ष की छहों ऋतु में सर्वश्रेष्ठ सुखदायिनी तथा अपना सानी न रखने वाली मानी गई है, मनाई जाती है। शरद् ऋतु की शोभा अपनी एक विशेषता है, एक नया अनोखापन है। प्रावृट् की अनवरत झड़ी जीमूत-वाहनों की गड़गड़ाहट और दिवस के प्रकाश में कालिमा आच्छादित करने वाले जलदों का गर्जन-तर्जन समाप्त हो धुला हुआ स्वच्छ नीलाभ्र अपनी श्वेत चादर को प्रसारित करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। शर्वरी के अलघु अंचल में हीरे, मोती, छिटक पड़ते हैं, जो अपनी असीम आभा द्वारा जन-मत को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ होते हैं। सर-सरिता का निर्मल जल दर्पण की भांति चमकने लगता है, तथा कमल-कमलिनी के पुष्प उनकी सुषमा में चार चांद जड़ ही देते हैं; और शीतल-मन्द-सुगन्ध समीरण दिशाओं से खेलने लगता है, परियों की शहजादियां अपने प्रेमियों के स्वागतार्थ धरणी-तट पर उस स्वर्गलोक से अवतरित होती हैं। ऐसी मनभावन ऋतु में दीपमालिका पर्व पर देश के कोने-कोने में करोड़ो नर-नारियों के मन-मयूर खुशी से उन्मत्त हो जाते हैं।

दीपों की झिलमिलाती पंक्तियां अमरलोक की शोभा को भी लजा देती हैं। देवगणों के भी मन इस अवनी की आभा को देखने के लिये भूतलपर अवतरित होने की अपने मन में साध करते हैं। इन्हीं दीपावलियों की अनुभूति कवि को प्रेरणा शक्ति बन कर, उस के लिए नव कल्पना लोक का सृजन करती है। उस समय की प्रत्येक नूतनता उसके जीवन में एक अनुपम क्रांति का निर्माण करती है। कवि-कल्पना उसमें अवगाहनेच्छु हो अंगड़ाई लेती हुई सजग हो जाती है, और उसकी स्वप्निल लेखनी के वर्तमान और भविष्य के चित्र सजीव होने लगते हैं। गहन निशीथ का हृदय विदारती हुई दीपमालिका-समुज्ज्वल प्रकाश-रेखा को देख कर कवि का मन-मयूर नाच उठता है और फिर उसकी लेखनी मचलने लगती है, कल्पनातीत चित्र को अङ्कित करने को तत्पर हो जाती है।

दीप-दान का मनोहर दृश्य है। दीपों की पंक्तियां सर्वत्र अपना सुनहला प्रकाश फैला रही हैं। अमावस्या की काली रजनी की शोभा ऐसे समय में द्विगुणित हो उठती है। घर-घर दीप-दान लक्ष्मी-पूजन हो रहा है। लोगों में उल्लास और हर्ष की भावनाएं ओत-प्रोत हैं। परन्तु कवि केवल हर्ष और उल्लास मात्र की ही कोरी-कोरी दिवाली नही चाहता। उसकी कामना है कि दीप-दान की भाति ही देश की उन्नति हो, देश का बच्चा-बच्चा दीप के समान खिल उठे एक नव-चेतना लिए, देश में छाये हुए काले महाकाल को क्षण-भर में अपनी दिव्य शक्ति के द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दे। देश की शान और वृद्धि में चार चांद लगा दे। जो भी पग उठाये गन्तव्य स्थान पर ही पहुंच कर रुके। परिस्थितियां चेरी बन उसके कदमों को चूमें।

श्री प्रभाकर माचवे ने दो पंक्तियों में देशव्यापी दीपावलि का चित्र कैसे सुन्दर ढंग से अंकित किया है :—

> ग्राम-ग्राम कोठरी-कुटीर में जले दिये
> खेत में जगी समेत चेतना लिये नये

दीप-दान के समय कोई गांव, कोई झोंपड़ी कोई कोठरी दीपों के झिलमिल-झिलमिल प्रकाश से वंचित नहीं। सभी जगह एक नई चेतना और नई जागृति का ही साम्राज्य दृष्टिगोचर हो रहा है। कवि अपनी सशक्त लेखनी के द्वारा दीपमालिका की ज्योति से क्रांति की प्रबल ज्वाला को प्रज्वलित करने के लिये आह्वान करता है। जो दलित हैं, पीडित हैं और पिछड़े हैं, उनका दुःख, दर्द और अभाव, दूर करने के लिये

वह उनके यहां शंखनाद करने को र ~ । समाज में राक्षस रावण जैसे जो अत्याचारी अन्यायी और शोषण करने वाले हैं, उनका भी वह नाश चाहता है और इस प्रकार सामूहिक क्रांति के फलस्वरूप वह मानव मात्र से वास्तविक शान्ति, समृद्धि और स्वतंत्रता की स्थापना करने में योगदान करने की मांग करता है। अब आप श्री शिवसिंह "सरोज" की निम्नांकित ओजपूर्ण कविता में राष्ट्रीय भावनाओं का दृश्य देखिये। कवि ललकार कर कहता है :—

दीपमालिका का द्युति से तुम
कांतिमुखी ज्वाला लहकाओ,
दलितों की दुर्गा के मठ में
तुम चांदी का शंख बजाओ।
सब मिल ऐसी लूक उठा दो
सोने की लंका जल जाये,
शांति, समुन्नति औ' स्वतन्त्रता
मानव मिट्टी से उपजाये।

कवि नहीं चाहता कि आज का मानव लकीर का फकीर बना रहे। घिसी-पिटी परम्पराओं का अवलम्बन ले, यह विवेकिता की दृष्टि के विरुद्ध है। मनुष्य अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसकर किसीभी कार्य का विवेचन करना प्रारम्भ कर दे। पुरानी रूढियों का अस्तित्व, जो समाज में पनपा हुआ है, नष्ट हो। कवि का आग्रह नवीन ढंग से पर्व मनाने को है, जिसमें राष्ट्रीय भावना का उद्घोष हो, देश-प्रेम की लगन हो, मिल-जुल कर सहकारिता के साथ काम करने की प्रेरणा हो और इसीलिए, वह चाहता है दीपमालिका पर्व सामूहिक रूप से राष्ट्रीय ढंग से मनाया जाए। कवि की लेखनी मचल उठती है :—

भारत स्वतन्त्र, भारत अखण्ड !
नूतन पद्धति, नूतन विधि से,
नूतन अपना त्यौहार मना लें।
आओ, आज साथ सब मिलकर,
वृहद् एक ही दीप जला लें ॥

आज समाज के अन्दर अनेक प्रकार के विष-बीज बोये हुए हैं। कहीं पर भी शान्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। द्वेष का ही साम्राज्य चारों ओर नजर आ रहा है। मानव, मानव बन न कर, मानवता का घोर शत्रु बन गया है और बनता जा रहा है। विषमता का विष समाज में पनप रहा है। एक ओर दीवाली की धूम-धाम और पर्व का रास-रंग है, हँसी-खुशी मनाई जा रही है दूसरी ओर रुदन और शोक का दृश्य है। जलती हुई चिताएँ जीवन की क्षणभंगुरता को प्रकट कर रही हैं। ऐसी दो विपरीत दशाओं में हँसी-खुशी, आनन्द मनाना सचमुच ही मनुष्यता के लिए धिक्कार है। विषमता का कैसा हृदयबिदारक चित्र श्री कमला-कांत पाठक हमारे सामने रखते हैं :—

सुलग रही हैं इधर चिताएँ,
सजी उधर है दीवाली।
शाप बनी है इधर मनुजता,
जगमग रात उधर काली॥

आत्मज्ञान ही एक प्रकाश है एक ज्योति है, एक अन्तस्तम को दूर करने वाला स्नेहमय दीप है। आदिकाव्य की शाश्वत वाणी का ही विचार हम लोकभाषा में दीप को चित्त की उपमा देते हुए आत्म-ज्ञान की इस सुन्दर व्याख्या को निम्न प्रकार पाते हैं :—

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा,
दीप-शिखा सोई परम प्रचण्डा।
आत्म-अनुभव सुख प्रकाशा,
तब भव भूल भेव भ्रम नाशा ॥ (तुलसी)

यही भावना रहस्यवादी युग में भी नए स्वर के रूप में उभर आती है जब श्री महादेवी वर्मा अपनी हृत्तन्त्री को झंकृत करने लगती है :—

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग-प्रतिपल, प्रतिक्षण, प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर ॥

तथा छायावाद भी दीपों के प्रकाश में अपने आनन्द को देखने को मचल उठता है और फिर कवयित्री गा उठती है :—

अपने इस सूनेपन की, मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जला कर, करती रहती दीवाली ॥

हिन्दी साहित्य में अनेक कवियों ने दीप को मानव की अति कोमल भावनाओं के रूप में चित्रित किया है। दीप ही प्राण है, दीप ही ज्ञान है। ज्योति

जागरण की यह भावना कितनी कोमलता लिए हुए है :—

तुम मिट्टी के जड़ दीपक में,
अभिराम स्नेह की धारा स्वर।
उकसाओ प्राणों की बाती,
भू पर आयेगी ज्योति उतर ॥ (पंत)

जीवन में अनेकों तूफान आते हैं, अनेकों कठिनाइयां अपना भयावह मुंह फैलाये मानव के पथ पर खड़ी रहती हैं। अतः वायु के झोंकों से जीवन-दीप को सजाये रखने के लिए कविवर वीरेन्द्र मिश्र का कवि-हृदय व्यग्र हो उठता है :—

दीप देखो बुझ न जाये।
जिन्दगी की हाट साधों से भरी है, उठ न जाये,
दीप तो तेरी खुशी का जल रहा है, बुझ न जाये।
नेह का जादू, रूई की वर्तिका देती उजाला।
किंतु शङ्का-ग्रस्त है जीवन-पथों की दीप-माला।
मंजिलों की ज्योति पर है काल का विकराल भाला।
द्वार प्यासे लोचनों का खुल रहा है, मुंद न जाए।

बिह्वल संसार की पृष्ठभूमि का स्पष्टीकरण दीपक के आसरे कितना सुन्दर किया गया है—

ये दीपक जलते दिल की मालाएं पहने—
होड़ कर रहे आसमान के अरमानों से ॥

जीवन में आशा-निराशा का खेल तो चलता ही रहता है, पर कर्म-भावना मानव को प्रेरणा देती ही रहती है। फिर भी लोकप्रिय युग-कवि 'नीरज' इन टिमटिमाते धूमिल दीपों से सन्तुष्ट नहीं हो पाते—

जलाओ दिये, पर रहे ध्यान इतना;
अन्धेरा धरा पर, कहीं रह न पाए
दिये से मिटेगा न मन का अन्धेरा
धरा को उठाओ, गगन को गिराओ।

दीप और दीवाली का सम्बन्ध इतिहास से भी अनुस्यूत है। इसी भावना को कुशल कवि ने इस रूप में व्यक्त किया है—

आज शत-शत दीप की,
उभरी जवानी कह रही है।
आज के दिन जीत कर हम,
अति प्रबल संग्राम लौटे।
आज के दिन लक्ष्मी लौटीं,
और महाप्रभु राम लौटे।
और चिर-युग से बुझे सब,
दीप जगमग जगमगाए।
आज यह दीपावली,
बीती कहानी कह रही है। (दिनेश)

कवि-हृदय अपनी कल्पनाओं के प्रदीप जला कर मानव को राह दिखाना चाहता है। वह चाहता है कि आज 'बापू', 'चाचा' के बच्चे अपने पूर्व पुरुषों के काम को करने के लिए कृतप्रतिज्ञ हों,असम्भव शब्द को अपने कोष से निकाल बाहर करें। देश पर छाए काले भयानक विष-बादलों को पवन बन तितर-बितर कर दें। इसी साहस की आवश्यकता है नन्हे-नन्हे बालकों को। देश का प्रत्येक बालक आग की चिंगारी बने, जो अरि-दल के कल्पना-महलों को क्षण-भर में भस्मसात् कर दे, उन की महत्त्वकांक्षाओं को धूल-धूसरित कर दे। आज 'चाचा' की ललचाई हुई आँखें अपने बच्चों के प्रति स्वर्ग से निहार रही हैं और पूछ रही हैं कि 'क्या तुम मेरे काम को पूरा करोगे ? भारत के भाल को ऊँचा करोगे ?' बच्चे अपने चाचा की अश्रुपूरित आँखें देख कर विश्वास दिलाते हैं कि आप निश्चिंत रहें। हमारे अन्दर जितनी भी सामर्थ्य है, देश का कुछ भी न बिगड़ने देंगे। बच्चे पुकार कर कहते हैं—

यह बात कहने में न चूके थे न चूकेंगे,
लहू देंगे, मगर इस देश की मिट्टी नहीं देंगे।

कवि भी अपने शिशु दीपक द्वारा साहस-भरी कहानी कहलवाता है—

सान्ध्य रवि ने कहा—"कौन मेरा काम करेगा ?"
रह गया सुन कर जगत् सारा निरुत्तर मौन !
एक माटी के दिये ने, नम्रता के साथ
कहा—"जितना बन सकेगा मैं करूँगा नाथ !"

—कवीन्द्र रवीन्द्र

ऋषि का उत्तर

[शशिप्रयम्]

उषा की स्मृति-रेखा फैली
तरुवर का नयनोन्मीलन
सर में मीन सुनहरी लहरी
सरसिज-मुख अनुरक्त हो उठा,
सघन वृक्ष पर—
लता-गुल्म का जाल बिछा,
कुञ्जों की शोभा सुमन-पुञ्ज से द्विगुणित होती,
स्वर्गीय कलित, कल-गान कर उठी—
विहगावली,
पवन ने पल्लव को झकझोर दिया ।

एक भूप का वन प्रदेश था ।

नन्दन की अनुपम रागमयी शोभा
पवन झूमता कर सुरभि-पान,
एक कुंज की छनती—
किरणों के स्वस्तिक पर
ऋषिवर बैठे ध्यान-मग्न,
सधे थे ऊर्ध्व प्राण ।

मुख-मण्डल ज्यों तपा स्वर्ण,
वह गौर वर्ण, जिस पर
तिरती कुंकुम आभा,
प्राची से उगता ज्योतिपुञ्ज,
डरता-सा सकुचाता,
कौन अपर यह प्रतिस्पर्धी !
दिव्य अलौकिक ज्योति-शिखा,
अनन्त ज्ञान भाल-रेख की सीमा में
जन-मंगल की उज्ज्वल आभा शान्त बदन में
मुंदे नेत्र में स्वप्न अमर,
करुणा-सागर स्पन्दित होता—
वक्ष विपुल में,
भुजाओ में सृष्टि-रक्षा का भार,
वह कामजित्, या ब्रह्मचर्य—
उतरा हो भू पर साकार ।

ध्यान भग्न हो जाए कहीं,
त्रस्त पवन, श्वास रोक कर
जाता था दूर-दूर से ।

ऐसे क्षण,
चपला की चंचल रेखा-सी,
सघन कुंज का नील आवरण चीर,
चमकती तारावलियां ज्यों—
निशा के अङ्क अशङ्क,
या शशाङ्क हो निष्कलङ्क
विचरे मेघांचल के बीच,
प्रकटी मेनका तनया !

हुई तरुवर की पलकें निर्निमेष
लाज भरी लहरे भागीं छिपने
कुसुम-शर झर गए स्वयं—
रानी के पदतल ।
हाँ रति थी, किम्वा
उस की प्रतिकृति ही ।

लज्जारुण आनन पर
नयन खिले ज्यों नीलोत्पल
मधु-मदिरा का सङ्गम अपूर्व
बह गए कितने ही विश्वामित्र
इसी की तीखी धारा में ।
वह अनङ्ग-पीडा सा अङ्ग-भङ्ग,
आह ! शुभ्र वसन,
पर निर्वसना अन्तर्मन की ।

धीरे-धीरे आ बैठी वह श्वेत हंसिनी
फुल्ल सरसिज सम निखरे उरोज
वह काम-वाहिनी,
ऋषिवर के ज्योतिर्मय चरण प्रान्त ।

मृदु कटाक्ष से लख लेती रह-रह
दुग्धोज्ज्वल अनुपम बदन शान्त ।

पद्मासन में लीन
मूर्ति अभय निश्छलता की,
स्पन्दित वक्ष—
शत-शत स्वर में—
नीरव ओंकार जाप का
देता था सन्देश अमर।

पुञ्जीभूत पुरुषत्व देख
खिंचती जाती थी गणिका—
मायावश,
सिमट सिमट वस्त्राभरणों में अपने ही
दुहरी होती थी गणिका।

क्षण, क्षण, प्रतिस्पर्धी हो
बढ़-बढ़ जाते थे आगे।

कर ध्यान पूर्ण
योगी ने खोले दिव्य नेत्र,
सह न सकी वह प्रखर तेज—
हिरनी-सी भयभीता,
जलने लगे अङ्ग-अङ्ग औ'
हृदय लौटने को तत्पर।

बोले ऋषिवर—
"बोलो देवी!
क्या है अभिलाषा!
बोलो निर्भय हो, दो—
कुछ सेवा का अवसर
पूर्ण करूँगा शक्ति-भर।

नई चेतना जागी ज्यों गणिका उर में
सहमी, संभली, आश्वस्त हुई बोली—
मृदु मदिर नयन में हलाहल धर—

"आह! अनुपम सौन्दर्य धरा पर,
अद्वितीय आलोक, तुम्हारे चरणों पर,
है भिक्षुक वनिता।

पुत्र-विहीना नारी-मन
माँगेगा क्या दान!
दे सको यदि वरदान!
कह दो प्रियवर!

"मेरा अनुरूप तुम्हारा अङ्क भरेगा,
यह अञ्चल तुम-सा ही एक पुत्र वरेगा।"

मुंद गए पुनः वे नेत्र,
हुए फिर ध्यान-लीन ऋषिवर क्षण-भर
झलके स्वेद-बिन्दु आनन पर।

आशा और निराशा के स्वर
नयनों में भर, तरुणी
उत्सुक थी पाने को उत्तर।

क्षणभर पीछे,
चिरब्रह्मचर्य-रत आभा में स्पन्दन उभरा,
छंट गए मोह के बन्ध,
अन्ध जाल माया के,
सस्मित मुख, निज—
ज्योति-नयन खोले,
गद-गद स्वर में अमृत भर-भर
ऋषिवर बोले—

"माँ! जननी! विश्वमाता! कल्याणी
बस इतनी ही अभिलाषा?
क्या करूँ दान?
वरदान तुम्हारे आशीषों का—
शक्ति मुझे दे,
हूँ तेरी ही सन्तान।
लख! मंगल पथ सम्मुख है अनन्त
हूँ पथिक,
मुझे चलना है।"

बाल-भारती

स्वर्ग से चाचा नेहरू का पत्र

[श्री मयंक]

मैं यहाँ पर आ गया हूँ
चांद-तारों के जगत् में।
यहां हर दम फूल हँसते,
यहां परियां खेलती हैं।
याद तुम सबकी—
यहां पर भी—
मुझे है नित्य आती।
तुम कि जो
संसार-उपवन की
नयी कलियां सदृश
हो खिलखिलाते।
सरल जीवन की
मधुर मुस्कान
हो दिशि-दिशि लुटाते।
देखता है जग
तुम्हारी ओर—
नयनों में नयी आशा,
नया उल्लास,
सुख-दुःख साथ सहने का
सरल विश्वास भर कर।
क्यों कि—
सह-अस्तित्व तुममें ही
मुझे साकार दिखता।
वैर और विरोध,
हिंसा-घृणा
से अनजान।
तुम हो
नयी कलियां-फूल
इस संसार-उपवन के,
मुझे थे बहुत प्यारे।
याद तुम सबकी
यहां पर भी
मुझे है नित्य आती।
तुम्हें भी तो
याद मेरी
आयेगी इस बार
जोरों से,
बहुत ज्यादा—
अभी "चौदह नवम्बर" को।
तुम्हारा ही
कि जो 'प्यारा दिवस' है।
किन्तु तुम रोना नहीं।
इस जगत् से
प्रत्येक प्राणी
एक दिन जाता चला,
जो भी यहां पर जन्म लेता।
नाशमय है यह जगत् ही।
इसलिये तुम
याद करके मुझे
रोना नहीं।
वरना मुझे दुःख होगा।
मुझे है यही कहना
आज तुमसे—
खूब पढ़ना,
खूब लिखना।
उच्च शिक्षा प्राप्त करके।

देश की,
औ' विश्व की
सेवा सदा करना।
मनुष्यों में बढ़ाना
प्रेम की ही भावना।
दुःख दूर करना सदा
मानव-मात्र का,
संसार में
जिससे बहे
सुख-शान्ति की धारा॥

धरा का लगता सूना भाल

[श्री 'मानव']

धीमे स्वर में रुदन कण्ठ से
आई एक आवाज।
ढीले पड़े तार वीणा के
ठहर गये सब साज।
तनिक खुला जब राज—
किसी ने दुःखी हृदय से
यही कहा, बस इतना—
आज नहीं धरती पर नेहरू।
प्रतिक्रिया में भरे दिलों से
निकल गई इक चीख—
हा ! युग का पहरेदार सो गया।
भारत आज अनाथ हो गया॥
बस, फिर क्या था ?
जनमानस ही सजल नयन से
अतल, असीम पारावार में डूब गया।
और—अर्पित हुई समर्पित हुई
कोटि-कोटि कण्ठों से
मूक शान्ति की सत्ता-
सिसकती श्रद्धांजलियों में।
उफ, ऐसी भी क्या अटल चोट
न काम आई कोई भी ओट
कि काल बलि से ज्योति-पुन्ज स्वयं
ज्येष्ठ की तपती दोपहरी के
प्रखर-प्रकाश में, लीन हो गया।
रहा आज का युग अनुत्तीर्ण
हां-वैज्ञानिक युग—दीन हो गया॥
आह, होता भी तो क्या ?
राष्ट्र नायक, शान्ति दूत
धरा से उठ गया।
एक धुंधली आकृति सूनी प्रकति
शेष रह गई। युगों-युगों तक—
क्या इसी तरह युग
चीखेगा, चिल्लाएगा
युगपुरुष धरा पर उतरेगा
आएगा, नाम कमाएगा
औ' अटल मृत्यु के प्रवाह में
बह जायेगा, मिट जायेगा
फिर धरे हाथ पर हाथ, झुकाये माथ
जमाना सिसकेगा व गायेगा—
शान्ति और अहिंसा के कुछ बोल॥

× × ×

मगर अफसोस
नहीं कुछ होश
मिटाकर जोश, हमें अपने ही इन हाथों से
तिरंगे की तिहरी तह में लपेटे
वीर पुरुष को जलाना होगा।
वह पार्थिव शरीर
बस कुछ ही क्षण में
चन्दन की उन लपटों में
हा काल-बलि के झपटों में
भस्मी हो जाएगा।
और विश्व का कण-कण याद करेगा
हां-गुलाब के लाल फूल की
कहो किसे फरियाद करेगा, ओह-काल ने
लिया है छीन मोती का लाल
धरा का लगता सूना भाल॥

नेहरू जी की स्मृति बनी रहेगी

[श्री राम अवतार 'अभिलाषी']

नेहरू जी की स्मृति बनी रहेगी—

केवल इस लिए ही नहीं कि

१४ नवम्बर, सन् १८८६ को उन का जन्म इलाहाबाद के धनाढ्य ऐश्वर्य-सम्पन्न एवं माने हुए चोटी के वकील पण्डित मोतीलाल जी नेहरू के घर हुआ,

बल्कि इस लिए कि

यह समस्त धन-धान्य आनन्द-भवन सहित कांग्रेस पार्टी को दान कर दिया गया ताकि स्वतन्त्रता-प्राप्ति का आंदोलन किसी सीमा तक सुचारु रूप से चल सके। नेहरू-परिवार का यह त्याग अद्वितीय था।

केवल इस लिए नहीं कि

चोरी की आदत के कारण ही उन्हों ने अपने पिता जी की मेज़ से एक पैन उठा लिया हो।

बल्कि इस लिए कि

ऐसा करते समय उनके दिल में यही भावना थी कि पिता जी को एक ही समय एक ही काम करते हुए एक-से ही दो पैनों की आवश्यकता नहीं पड़ सकती। सम्भवतः यही भावना आगे चल कर उन के हृदय में समाजवादी विचारधारा के रूप से प्रस्फुटित एवं पल्लवित हुई।

केवल इस लिए ही नहीं कि

जवाहर अपनी आरम्भिक शिक्षा इंग्लैंड में हैरो के एक पब्लिक स्कूल और उच्चतर शिक्षा कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में पा और बैरिस्टर बन कर स्वदेश लौटे सन् १९१२ में।

बल्कि इस लिए कि

वे वहाँ (इंग्लैंड) से एक स्वतन्त्र देश की भावना एवं कामना हृदय में संजोए एवं स्वतन्त्र देश के एक नागरिक के आचार-व्यवहार में दीक्षित हो कर ही स्वदेश लौटे थे। परिणामतः भारत को वैसे ही स्वतंत्र देश के रूप में देखने की इच्छा बलवती होती गई। और इसी इच्छा ने उन को स्वतंत्रता-प्राप्ति के आंदोलन में कूदने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया।

केवल इस लिए ही नहीं कि

वे परतन्त्र देश के निवासी होते हुए भी स्वतंत्र देश से वकालत की उपाधि, जिस के बल-बूते पर सारा जीवन सुखमय तरीके से व्यतीत किया जा सकता था, प्राप्त करने वाले योग्य पुरुष थे।

बल्कि इस लिए कि

उन्हों ने, वकालत के शानदार पेशे को लात मार कर अपने पिता श्री के ऐश्वर्य में बीतते आ रहे क्षणों का त्याग कर एवं सन् १९१६ से चले आ रहे सौख्य-पूर्वक और आनन्दमय वैवाहिक जीवन का मोह त्याग कर, कमला नेहरू (सह-धर्मिणी) को साथ ले सन् १९१८ में सङ्घर्षमय एवं कष्टमय जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया था।

केवल इस लिए ही नहीं कि

वे सन् १९१८ में ही 'इलाहाबाद होम रूल लीग' के सचिव बन कर बढ़ते-बढ़ते सन् १९२९ में कांग्रेस-महा-सचिव बन, उसी वर्ष कांग्रेसाध्यक्ष बन गए थे।

बल्कि इस लिए भी कि २६ जनवरी, सन् १९३० को रावी के तट पर कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति की घोषणा की और नया प्रण, नया जोश और नया उत्साह ले कर अपने काम में जुट गई।

केवल इस लिए ही नहीं कि

सन् १९२१ और उस के पश्चात् उन का अधिकांश जीवन जेलों में कटा। ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त नानाविध यातनाएं सहीं।

बल्कि इस लिए भी कि

वे उतनी ही तत्परता से जन-जन में जागरण लाने में सफलता प्राप्त करते चले गए। विचारों

में दृढता आती गई जिस के फलस्वरूप लेखक-हृदय मुखरित हो उठा और हमें मिली साहित्य और इतिहास की अनमोल निधि जिस में युग-विशेष की झांकी स्पष्टतया झलकती है।

केवल इस लिए ही नहीं कि

वे बार-बार सन् १९३६, १९३७ और १९४६ में भी कांग्रेसाध्यक्ष बने।

बल्कि इस लिए भी कि

उन्हों ने अपनी कार्य-कुशलता, कार्य-लग्नता एवं तत्परता से कांग्रेस को विश्व में प्रगतिमय पंक्ति में खड़ा कर दिया। महात्मा गांधी जी, जो राष्ट्रपिता थे और स्वतन्त्रता आन्दोलन के नायक एवं सत्याग्रह के सञ्चालक, के विश्वास एवं आशीर्वाद को उन्हों ने अपनी व्यवहार-कुशलता से सुरक्षित करवा लिया।

इस लिए नहीं कि

वे वर्णाश्रम धर्म के सर्वोच्च जाति ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए थे।

बल्कि इस लिए कि

वे महात्मा जी के सच्चे अनुयायी थे, जिन के विचारों में वर्णाश्रम-धर्म, जातपाँत एवं ऊँच-नीच के भेद-भावों का लेशमात्र भी स्थान न था। वे केवल मानव-धर्म के ही उपासक थे। मात्र कथनी में ही नहीं बल्कि करनी में भी। उन की पुत्री इन्दिरा का विवाह फ़िरोज़गाँधी के साथ, उन की करनी का प्रतीक है।

केवल इस लिए ही नहीं कि

वे स्वतंत्र भारत—जो १५ अगस्त, सन् १९४७ को दासता के बन्धनों से मुक्त हुआ—के प्रथम प्रधानमंत्री थे।

बल्कि इस लिए भी कि

उनके प्रथम प्रधान-मन्त्रित्व काल में ही भारत २६ जनवरी १९५० को स्व-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्री-राष्ट्र घोषित हुआ। तत्पश्चात् वे १९५२, १९५७, १९६२ में हुए तीन आम-चुनावों में उसी पद के लिए निर्वाचित घोषित होते रहे। इस प्रकार उन्होंने अपने पौने सत्रह वर्ष के कार्यकाल में भारत को विश्व राजनीति में एक उच्चतर स्थान दिलवा दिया। तटस्थता की नीति से नव-स्वतंत्र राष्ट्रों का मार्गदर्शन किय और उनको अपना अस्तित्व बनाए रखने का सम्बल दिया।

पंचशील का सिद्धान्त प्रस्तुत कर युद्ध भय से त्रस्त जनता को अभय दान दिया। अमेरिका और रूस परस्पर दो बड़ी ताकतों को निकटतर लाने का श्रेय उन्हीं के व्यक्तित्व और प्रयासों को है। इस प्रकार उनके सत्प्रयत्नों से ही विश्व-शान्ति बनाए रखने में भारत का प्रमुख स्थान रहा है।

केवल इसलिए ही नहीं कि—

वे योजना आयोग के अध्यक्ष थे।

बल्कि इसलिए कि—

कर्मठता एवं साहसपूर्ण अध्यवसाय द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारत की सर्वतोमुखी उन्नति में कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी।

केवल इसलिए ही नहीं कि—

उनका जन्म बाल-दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है और रहेगा।

बल्कि इसलिए भी कि—

वे बच्चों के भी सदा-बहार चाचा रहे। उन्होंने बच्चों को भावी-युग-निर्माता के रूप में देखा, इसलिए इनके विकास के लिए वे सदा यत्नशील रहे। आज के बच्चे भावी पीढियों को जब बताएँगे कि उनका एक ऐसा चाचा था जो ७४ वर्ष की आयु में भी जवान था। फिर भला उनकी स्मृति अमिट नहीं रहेगी तो और क्या रहेगी?

केवल इसलिए ही नहीं कि—

उन्होंने "आराम हराम है" का नारा हमें दिया।

बल्कि इसलिए भी कि—

वे मृत्यु क्षण! (हा! २७ मई १९६४) तक भी देश-सेवा में लगे रहे। आराम करना उनके लिए वास्तव में हराम रहा और लम्बी यात्रा के लिए चल दिए।

केवल इसलिए ही नहीं कि—

वे सदैव अपनी शेरवानी पर गुलाब का फूल लगाए रहते थे।

बल्कि इसलिए भी कि—

उन्होंने गुलाब के गुणों— मुस्कान, रक्ताभा, अरुणाई, सुगन्धि—का अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व में पूर्णतया समावेश कर लिया था। गुलाब सदैव रहेगा और इसलिए उनकी स्मृति भी सदैव रहेगी।

केवल इसलिए ही नहीं कि—

उन्होंने अपनी भस्मी तक को भी खेतों में बिखेर देने की वसीयत की।

बल्कि इसलिए भी कि—

उन्हीं के शब्दों में :—अगर मेरे बाद कुछ लोग मेरे बारे में सोचें तो मैं चाहूंगा कि वे कहें—

"वह एक ऐसा आदमी था जो अपने पूरे मन एवं मस्तिष्क से भारत और भारतीयों से प्रेम करता था और भारतीय भी उसकी कमियों को भुलाकर उसको अत्यधिक प्रेम करते थे।"

और प्रेम सदा से चला आ रहा है और चलता रहेगा।

अतएव श्री जवाहरलाल नेहरू की याद अमिट रहेगी, अमर रहेगी, सदा-सदा बनी रहेगी।

केवल इसलिए ही नहीं कि—

भूत के विधान पर
वर्तमान संवार कर
भविष्य की रूप-रेखा तैयार कर
चले गए हाय अचानक छोड़ कर।
निस्संदेह,
भूत और भविष्य का
यह संक्रान्ति युग
अमिट रहेगा इतिहास में
और तुम
अमर रहोगे युग-पुरुष के रूप में॥

बल्कि इसलिए भी कि—

ऐसे ज्योतिर्मयी व्यक्तित्व से मानव जाति को अलौकिक प्रकाश मिलता रहेगा।

वीर जवाहरलाल बनूंगा

[श्री सन्तोषकुमार]

मां, मैं निडर सलोना बालक
भारत का कण-कण चमकाऊँ
जग के कोने-कोने भर में
देश की अमर वन्दना गाऊँ
मां, मैं मोतीलाल बनूंगा।
वीर जवाहरलाल बनूंगा॥

'बच्चों के चाचा' थे नेहरू
मैं भी उन जैसा बन जाऊँ
विश्व-शान्ति का अग्रदूत बन
शान्ति-शान्ति का पाठ पढ़ाऊँ,
मां, शत्रु का काल बनूंगा।
वीर जवाहरलाल बनूंगा॥

विदा हो गये वीर जवाहर
किन्तु विदा नहीं हुए लाल
जब तक बांया हस्त स्वस्थ है,
नहीं व्याप सकता महाकाल
देश का उन्नत भाल बनूंगा।
वीर जवाहरलाल बनूंगा॥

वीर जवाहरलाल बनूंगा
गगन धरा के तार मिलाऊँ
विश्व नागरिक का आदर्श बन
सब जगती को आर्य बनाऊँ
ऐसा बाल गोपाल बनूंगा।
वीर जवाहरलाल बनूंगा॥

उद्बोधन

[श्री कृष्णकुमार]

कर्मठ हे !
कुछ कर दिखला दो
यूं न धरो हाथ हाथ पर
क्या कहा ?
है कंटकाकीर्ण पथ तुम्हारा ?
माना, पर जरा
विकट-निकट-भूत की गहनतम घाटियों में
मानस-पटल से विचरो तो
होंगे पथ-प्रदर्शक, कितने ही
पौराणिक, अभिमन्यु शतमन्यु
और ऐतिहासिक, वीर शिवाजी
राणा, ताना औ' वैरागी।
मानेंगे कि, मान पूर्वजों का तुमने भी किया है
जब, विभक्त रक्त उनका हो एकत्रित
पुनः अपना अधिकार गहेगा।
होंगे वो कृतनाम तभी जब,
हो प्रत्यक्ष ऐतिह्यगत अपने को
भारत-भू पर पाएँगे।
उठो !!
कुछ कर दिखला दो
यूं न धरो हाथ हाथ पर
कर्मठ हे ?

फिर सबेरे की आश पर संघर्ष बाकी है

[श्री बलराज जोशी]

बुनियादी एकता का वह समर्थक था
वैज्ञानिक प्रगति का वह उन्नायक था
भारत-भू का नर-नाहर वह शान्तिदूत—
चवालीस करोड़ चेहरों का नायक था

वह अन्धेरे से लड़ता हुआ दीप था
वह घायल पंखों का शीतल अनुलेप था
नफरत को भी नफरत नहीं दी उसने
वह तो सत्यं शिवं सुन्दरम का रूप था

बुझ गया दीप शोक-सन्तप्त है कण-कण
व्यक्ति का नहीं यह एक युग का महामरण
रोओ नहीं, महत्त्व घटता है मेरे प्रिय मित्रो
मिट्टी मिट्टी का मिलन है आत्मा का नहीं मरण

ढल गया सूरज अरुणिमा अब भी बाकी है
झर गया गुलाब सुगन्ध अब भी बाकी है
फर्ज जो हमारा है पूरा करें उसे अब
फिर सबेरे की आश पर संघर्ष बाकी है।

गीत

[श्री निर्दोष]

सांझ के धुंधले समय में—

मौन अम्बर के हृदय पर
है उभरता एक अक्षर
जन्म लेता एक आँसू आँख के सूने निलय में।
साँझ के धुधले समय में—

पक्षियों-सी लौट आती
वेदना के गीत गाती
भार से दुबकी दिवस-भर याद फिर मेरे हृदय में
सांझ के धुंधले समय में—

चाँद की आभा निखरती
प्रीत की सरगम उभरती
पर निकलती एक मेरी आह केवल इस समय में
साँझ के धुंधले समय में—

सोचता बीते दिवस पर
साँस के बीते सफर पर
ऊँघती मिलती थकावट अश्रु में, तन में, हृदय में
साँझ के धुंधले समय में—

भारत की कहानी (१०)

[श्री चन्द्रपालसिंह]

भारत के नए उद्योग-धंधे—

बच्चो, एक प्रसिद्ध शहर है
भारत बीच—'चित्तरंजन'।
वहां कारखाने में बनते
रेलगाड़ियों के इंजन॥
'पेराम्बूर' नगर में बनते
रेलों के डिब्बे हर दम।
उन में ही तो बैठ शान से
सदा यात्रा करते हम॥
और 'विशाखापत्तन' में है
एक कारखाना ऐसा—
सारे भारत-भर में बच्चो!
नहीं कहीं पर है वैसा॥
वहाँ कारखाने में, पानी
के जहाज़ वे बनते हैं;
सवारियाँ और माल लाद कर
जो सागर में चलते हैं॥
है बिहार में टाटा का
'जमशेदपुर' सुप्रसिद्ध नगर।
'टाटानगर' नाम से भी है
उसे जानती दुनिया भर॥
हैं लोहे-इस्पात आदि के
वहाँ कारखाने सुविशाल।
बनते जिन में कलपुर्जे, इंजन
औ' तरह-तरह के माल॥

'बाटानगर' शहर में रहती
जूते बनने की हलचल।
तुम सब ने भी पहने होंगे
'बाटा' के जूते-चप्पल॥
प्रायः सभी बड़े शहरों में
ठाठ-बाट से सज-धज कर;
बिकते रहते जूते-चप्पल
'बाटा' की दूकानों पर।
तुम्हें कभी सर्दी-जुकाम का
जब बुखार आया होगा;
'पेन्सलीन' का इंजेक्शन तब
तुम ने लगवाया होगा॥
बतलाओ तो कहाँ 'पेन्सलीन'
भारत में होती निर्माण?
भूल न जाना, पूना में है
वह 'पिम्परी' नाम का स्थान॥
अपना भारत देश किसानों,
खेतों खलिहानों का देश।
खेती पर निर्भर रहता है
भारत का अधिकांश प्रदेश॥
नई क़िस्म की खाद 'सिन्दरी'
में की जाती है तैयार।
जिसे काम में लाने से बढ़
जाती काफ़ी पैदावार॥

बादल

प्यासे फूलों के मुखड़ों में
हम जल-कण बरसाते हैं;
ला कर सर-सरिताओं से।
धूप साध कर हम वृक्षों पर
शीतल छाया करते हैं;
नभ की नीली छाओं से॥

उड़-उड़ कर फिर हम अंबर में
हँस-हँस कर मुस्काते हैं;
खेल-खेल में बारम्बार।
बनकर ओले हम अवनी की
सुखद गोद में आते हैं;
पाने को माँ का मृदु प्यार॥

किंतु एक क्षण फिर अंबर में
वाष्प-रूप से हैं आते;
किंतु न हम मर पाते हैं।
छिपे गर्भ में शिशु-से माँ के
भूत बने मण्डप से झांके
पल दो पल छिप जाते हैं॥
बरस-बरस फिर सूख-सूख कर
वायु-सेज पर इठला कर
हम अङ्गड़ाई लेते हैं।
बार-बार करवटें वदल कर,
नील-निलय का चुँबन भर
सब का मन हर लेते हैं॥

हिलमिल कर हम एक साथ सब
नभ के पथ पर आते हैं;
जिधर चाहते हैं श्रम से।
विविध रूप धर हम जादू से
सबका मन बहलाते हैं;
बन कर मिट कर क्रम से॥

सरल-हृदय हम वरुण-पुत्र हैं
शुभ्र सजल तन है हम पर।
पुलकित पलकें कर त्रिभुवन की
शीघ्र चले हम जाते हैं—
सब का हृदय प्रफुल्लित कर॥

—अनुवादक, श्री रसिक बिहारी 'मञ्जुल'

सन्ध्या

[श्री नारद शर्मा]

नदी-किनारे बैठ के मैं ने
एक दिवस ली अङ्गड़ाई।
अस्ताचल को चला दिवाकर
सन्ध्या की प्रभुता छाई॥

दृश्य मनोरम था उस दिन का
नभ पर कुछ बादल थे छाए।
आँख उठाई ऊपर देखा
बगुले उड़ते नज़र आए॥

सन्ध्याकाल की वह छवि मेरे
मन को अति उत्तम भाई।
चन्द्र-बदन पर केश काले औ'
उस पर लाल चुनरिया थी॥

सन्ध्या मानो ऐसी लगती
जैसे नई दुलहनियाँ थी।
पानी में अभी दीख रही थी
दिनकर की परछाईं॥

पक्षियों का शोर भी मानो
गीत खुशी के लगते थे।
सरिता को कलकल ध्वनि से वहाँ
सैकड़ों बाजे बजते थे॥

साथ मोर के एक मोरन
नाचती उधर निकल आई।
जम्बू वृक्ष से फल गिर कर के
पानी में 'टप-टप' करते॥

हवा से उड़ कर सूखे पत्ते
आपस में 'फड़-फड़' करते।
सृष्टि विधाता की यह उत्तम
मेरे मन को है भाई॥

शर्मीली सन्ध्या का अञ्चल
दुष्ट पवन था उड़ा रहा।
भागना चाहती लजीली संध्या
किंतु पकड़ के खड़ा रहा॥

देख प्रकृति की सुन्दरता।
'नारद' ने की कविताई॥

एकलिपि विस्तार



काणि निलम वेण्डुम (तमिष्)

[स्व. सुब्रह्मण्य भारतियार] †

काणि निलम वेण्टुम—पराशक्ति
काणि निलम वेण्टुम —अंकु
तूणिलपकियताय—नन्माटंकल्
तुय्य निरत्तिननाय—अन्त-
क्काणि निलत्तिटैये—ओर मालिकै
कट्टित्तर वेण्टुम—अंकु
केणियरुकिनिले—तेन्नैमरम
कीट्टुमिलनीरुम ।
पत्तुपनिरण्टु—तेन्नैमरम
पक्कत्तिले वेणुम—नल्ल
मुत्तुच्चुटर पोले—निलावोलि
मुन्पु वर वेणुम—अंकु
कत्तु कुयिलोशै—चट्टे वन्तु
कातिर्पट वेणुम—एन्रन
चित्तं मकिषन्तिटवे—नन्रायिल-
न्तेन्रल वर वेणुम—
पाट्टुक्कलन्तिटवे—अंके ओरु
पत्तिनिप्पेण वेणुम—एंकल्
कूट्टुक्कलियिनिले—कवितैकल
कोण्टुत्तर वेणुम्—अन्त-
क्काट्टु वेलियिनिले—अम्मा निन्रन
कावलुरा वेणुम्—एन्रन
पाट्टुत्तिरत्ताले—इव्वैयत्तै
पालित्तिटा वेणुम् ।

काणि-भर भूमि दो मुझ को (हिन्दी)

[अनु., डा. विश्वनाथ अय्यर]

काणि‡-भर भूमि दो मुझको—पराशक्ति !
काणि-भर भूमि दो मुझको—वहां
सुन्दरतर छोटे खंभे गड़ाकर
स्वच्छ श्वेत कुटिया बना दो !
काणि-भर भूमि के बीच कहीं—मुझको
वैभवशाली महल बना दो—वहां
नदिया-किनारे—केरों के छोटे
पत्ते हों ठंडा मीठा पानी हो ।
दस-बारह केर के तरु हों—बगलों में
नव-मुक्ता-कांति-सी निखरे—चाँदनी ! (वहां)
पंचम गाती कोकिला की—स्वरलहरी
मेरे कानों में पीयूष भर दे !
मेरा मन मोद धारा से लहराने
सुहावनी मंद पवन हौले-हौले चले !

गायन में सातों सुर मिलाने—कोई
प्रेम-भरी रूपसि कन्या हो !—हमारी
रासभरी लीला में—मीठी कविताएं
प्यार से कोई मिला दे ! निर्जन में
माता ! पराशक्ति ! तुम पहरा देना !
मेरे गायन के भारी वैभव से
जगती का रक्षण-पोषण हो—पराशक्ति !

---

† तमिषनाड के स्वतन्त्रतादेवी के प्रिय पुत्र स्व० भारतियार बड़े देशप्रेमी, जोशीले और भावुक कवि थे । उनका मन धन-लोभ से कभी कलुषित था उदास नहीं रहा । उनमें जो कवि था उसने शुद्ध कवि का जीवन चाहा । 'पराशक्ति से प्रार्थना' के रूप में कवि एक सच्चे कवि का दिल उतार कर रखते हैं ।

‡ काणि :—तमिष् का माप है । करीब एक एकड़ भूमि से अधिक है ।

अजेय (हिन्दी)

[डा. महेन्द्र भटनागर]

मुझ को मिली कब हार है !
तुम रोकते हो क्यों मुझे ?
तुम टोकते हो क्यों मुझे ?
धधका निराशा का अनल
तुम झोंकते हो क्यों मुझे ?
हैं अमर मेरे प्राण
मेरा अमर हर उद्गार है !
रुकना मुझे भाता नहीं
थकना मुझे आता नहीं
सह लक्ष-लक्ष प्रहार भी
झुकना मुझे आता नहीं
प्रत्येक क्षण गतिवान जीवन
शक्ति का संसार है !
मैं बढ़ रहा तूफ़ान में
ले क्रान्ति-ज्वाला प्राण में
वरदान मुझको मिल रहा
प्रतिपद अभय बलिदान में,
नौका भँवर में हो फँसी
साहस अथक पतवार है !

अजेयुडु (तेलुगु)

[अनु., श्री 'निर्मल']

नाका अपजय भयम् ?
आपेदवेल नीवु नन्नु ?
निलिपेदवेल नीवु नन्नु ?
निराशाग्नि-ज्वाललुरेपि
त्रोयुदुवेल वानिलो नन्नु ?
ई प्राणम् अमरम्
ना प्रतिभावम् अमरम् !
आगुट रुचिंचदु नाकु
अलयुट रादु नाकु
आघात-प्रत्याघातमुलकु
तलयोग्गुट रादु नाकु
ई जीवनम् प्रतिक्षणम् गतिमयम्
ना प्रपंचम् चिरशक्तिमयम् ।
मुंदुकु सागेद पेनुतुफानुलो
क्रान्तिज्वाललेग जिम्मुदु
वरदानमु लभिंचु नाकु
बलिदानम् लो अभयदानम्
सुडिगुंडम् लो नाव पयनम्
साहसमें नाकु गल चुक्कानि ।

सोमय वारी गे (मुण्डारी)

[श्री बुलायचन्द मुण्डा]

सेत: सिंगी मोयें जन
तिकिन सिंगी आलाजन;
बाते बकड़ि इसुगे सोभा जन
सुगड़ सोवन होयो नव कन ।
इसु सुगड़ बा कन
बा लेलते को रसिक तन;
बा लुपु: आर बा रसी चेपे:
बा ऊरु को आपिर आगु तन ।
तिकिन सिंगी आला जन
तरसिंगी गोसो जन;
सिंगी हसुर वा गसर जन
बा ऊरु को आपिर जन ।

समय के रहने पर (हिन्दी)

प्रात:काल की कलि
दोपहर को खिली है
उपवन उस पर उल्लसित है
सुगन्ध हवा में घुली है ।
अत्यन्त सुकोमल फूल
जिस पर सभी मोहित हैं ।
पुष्प-धूल और पुष्प-रस के लिए
भौंरे उड़ते आ रहे हैं ।
दोपहर को फूल खिले
पर दिन ढलते मुरझा गए ।
सन्ध्या को झर गई पंखुड़ियां
भौंरे भी अब उड़ गए ।

पुस्तक परिचय



द स्केलेटन–(अंग्रेजी उपन्यास)–अमृता प्रीतम–अनु. खुशवंतसिंह–जैको पब्लिशिंग हाउस, १२५, महात्मा गांधी रोड, बंबई १–मूल्य रु. २·०० ।

अमृता प्रीतम आधुनिक भारत की सर्वोपरि कवियत्री और कहानी-उपन्यास लेखिका हैं। अबतक आपकी ३० से ऊपर रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनका अनुवाद विविध भाषाओं में होता जा रहा है। हिन्दी में तो आपकी बहुत सी रचनाएं आ ही चुकी हैं, जो अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं। आप अकेली लेखिका हैं जिनको साहित्य अकादमी का राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

आपने बहुत अल्पावस्था से ही पंजाबी में लिखना आरम्भ कर दिया था। आपके पिता भी कवि थे, जिन से विरासत में आपको यह वृत्ति मिली। आपकी आरम्भिक कविताएं स्वाभाविक रूप से रोमांटिक रहीं, परन्तु शीघ्र ही उनमें प्रगतिवादी सामाजिक चेतना मुखर होने लगी। कुछ समय तक आप पर मार्क्सवाद का बहुत प्रभाव रहा। फिर भारत का विभाजन हुआ, जिसका आपके मानस पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उसके अन्तर्गत आपने कुछ बड़ी महत्वपूर्ण रचनाएं साहित्य को दीं। तब आपकी अवस्था केवल २८ वर्ष की थी। विभाजन के बाद आप दिल्ली आ गईं ओर अब वहीं स्थाई रूप से रहती हैं।

प्रस्तुत उपन्यास भी विभाजन की भूमिका पर ही लिखा गया है। 'पिंजर' के नाम से यह पंजाबी में बहुत लोकप्रिय हुआ था। इसके अतिरिक्त आपकी चार कविताओं और इतनी ही कहानियों के अनुवाद भी इसमें दिए गए हैं। पुस्तक का आवरण सुन्दर है।

साहित्य और मनोविज्ञान—देवेन्द्र इस्सर—बुक हाइव, ३६, नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली ५ मूल्य रु. ३·५० ।

देवेन्द्र इस्सर की रचनाएँ यद्यपि कम ही देखने में आती हैं और लेखकों में उनका बहुत ऊँचा स्थान शायद अभी बन भी नहीं पाया है, परन्तु जब भी उनकी कोई चीज पढ़ने में आती है, यही लगता है कि विषय पर उनका पूरा अधिकार है और उसे खूब अच्छी तरह पचाकर ही उस पर कलम चलाई गई है। गम्भीर विषयों पर आप बड़ी सरलता से लिखते हैं और पाठक पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। प्रस्तुत रचना भी अपने विषय की अत्यन्त सफल कृति है जिसमें साहित्य का मनोविज्ञान से सम्बन्ध, फ्रायड, युंग, प्रेम, सेक्स, समाज, अश्लीलता, विविध वाद यथा प्रतीकवाद और अतियथार्थवाद, आदि पर बड़े अधिकार पूर्वक प्रकाश डाला गया है।

संसार के सभी आधुनिक साहित्यों में मनोविज्ञान का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके कारण साहित्य के रूप भी बहुत विविध होते जा रहे हैं और प्रायः वे पाठक की समझ के बाहर भी हो जाते हैं। शायद इसी कारण आधुनिक साहित्य के पाठकों की संख्या भी घटती जा रही है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि साहित्य में रुचि रखने वाले व्यक्ति उन प्रवृत्तियों का अध्ययन करें और उन पर अच्छी किताबें लिखी जाएँ जिनसे संचालित होकर नवीन साहित्य लिखा जा रहा है। प्रस्तुत रचना इस उद्देश्य को अच्छा तरह पूर्ण करती है। लेखक का विवेचन अंग्रेजी साहित्य के अतिरिक्त फ्रेंच साहित्य तथा चित्रकला आदि संबन्धित कलाओं तक भी फैला हुआ है। यह

आवश्यक था क्योंकि नवीन प्रवृत्तियों की जड़ें मूलतः फ्रेंच साहित्य और कला में ही हैं, जो वहां से अंग्रेजी, जर्मन, स्पेनी आदि में फैलीं और फिर एशिया, अफ्रीका के साहित्यों में फैल रही हैं। पुस्तक की छपाई, सफाई अच्छी है।

पाषाण के आंसू (कविता)—ज्वाला प्रसाद ज्योतिषी—विंध्य केसरी प्रकाशन कार्यालय, सागर—रु. १·५०।

प्रस्तुत रचना मध्य प्रदेश के पुराने साहित्यिक तथा राष्ट्रसेवी श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, जो अब संसद सदस्य हैं, की रचना है। इसमें मुक्तछन्द में औरंगजेब के अन्तिम समय की भावनाओं का काल्पनिक चित्रण किया गया है। कवि का विश्वास है कि उस समय उसे अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप हुआ होगा और वह अपने कुकृत्यों की याद कर-करके रोया होगा। यद्यपि इस विश्वास का कोई कारण नहीं दिखाई देता, और किसी हिन्दू कवि के लिए, जिसकी जाति और संस्कृति को औरंगजेब ने नष्ट ही किया, कोई आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती। प्रश्न होता है कि उससे यह सहानुभूति क्यों? परन्तु कवि को वस्तुतः कारण की आवश्यकता नहीं हुआ करती, वह कहीं भी प्रवेश कर सकता है। औरंगजेब अपनी निन्दा में कहता है:—

आह मेरे हृदय! गंदे—
सड़े पानी से भरे डबरे सरीखे हृदय—

वह शिवाजी की याद करता हुआ कहता है—

भारत केसरी, भाई शिवाजी!
वीर हारा मैं तुम्हारे हाथ···
हाय मैं पागल
घृणा के बीज ही बोता रहा हूँ।

या गुरु गोविन्द से वह कहता है—

अहे गुरु गोविन्दसिंह जी···
जय तुम्हारी औ' तुम्हारे खालसे की
क्षमा! ओ इन्सानियत के देवता···

यह सब वस्तुतः हास्यास्पद सा लगता है। परन्तु विषय के सम्बन्ध में जो भी कहें, कविता अच्छी है और उसमें प्रवाह है। भाषा पर भी कवि का अच्छा अधिकार प्रतीत होता है। —चिरन्तन

कृषि-विनाशी कीट और उनका दमन—लेखक श्री शैलेन्द्रकुमार 'निर्मल', बी. एस्-सी. (कृषि)—बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना—मूल्य रु. ५·५०।

भारत कृषि प्रधान देश है। प्राचीनकाल से ही भारतीय कृषि कर्म तथा उसके महत्त्व के प्रति सजग रहे हैं। इसी सजगता ने भारत को सम्पन्न बनाया। पराधीनता के युग में भारतीय जहां अपनी संस्कृति से विमुख हुए वहां अपने जीवन के आधार कृषिकर्म के प्रति भी उदासीन हो गए। उसी का यह परिणाम है कि करोड़ों रुपयों के मूल्य का खाद्यान्न हमें विदेश से मंगवाना पड़ता हैं।

भारत को यदि अन्न संकट का सामना करना पड़ रहा है तो उसका एकमात्र यही कारण नहीं कि बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकतानुसार अन्न का उत्पादन नहीं हो रहा। एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि उत्पादन का लगभग १० प्रतिशत भाग कीड़ों द्वारा नष्ट हो जाता है। नष्ट होने वाले अन्न का मूल्य ५०० करोड़ रुपये के लगभग है। प्राचीनकाल मे कीड़ों का नाश मन्त्र शक्ति द्वारा होता था, मन्त्र भोज पत्र पर लिखकर पौधों से बांध दिये जाते थे। आज के वैज्ञानिक युग में बुद्धिवादियों को यह तरीका भला कैसे रुचिकर हो सकता है! आज तो वैज्ञानिक तथा रसायनिक साधन अपेक्षित हैं।

महात्मा गांधी का भी कथन है—"मानव जीवन की रक्षा के लिए खेती को हानि पहुंचाने वाले प्राणियों को मारना अनिवार्य हिंसा है।" मानव रक्षा तथा खाद्यान्न रक्षा के लिए कीट-दमन परमावश्यक है। कीट-दमन के उपायों के साथ-साथ कीट-प्रकार जानना प्रत्येक कृषक के लिए आवश्यक है। यह जानकारी सरल तथा सुबोध ढंग से भारतीय कृषक को देने के लिए ही आलोच्य ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है।

पुस्तक में परिशिष्ट के अतिरिक्त सोलह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में कीट-परिचय तथा उनका वर्गीकरण है। द्वितीय अध्याय से लेकर तेरहवें अध्याय तक धान, मक्का, गेहूँ आदि फसलों, सब्जियों, फलों के कीड़ों का परिचय है। चौदहवां अध्याय कीट-दमन के विभिन्न प्रकारों से सम्बद्ध है। १५वें अध्याय

में कीट नाशक रसायनों का परिचय है। कीट-आक्रमण से पूर्व कृषकों को क्या करना चाहिए तथा कीट-आक्रमण के पश्चात् क्या कर्त्तव्य है—दोनों ही स्थितियों में अपेक्षित उपायों की सविस्तार चर्चा है। केवल कीड़े ही नहीं, चूहे, हिरण, शृगाल भी अनाज का क्षय करते हैं। इनसे मुक्ति पाने के उपाय सोलहवें अध्याय में बताए गए हैं।

श्री शैलेन्द्रकुमार का यह कार्य महान् उपयोगी है। आवश्यक चित्रों ने पुस्तक की सुबोधता तथा उपयोगिता को चार चांद लगा दिए हैं। कृषकों के लिए, विशेषकर आज की संकट पूर्ण घड़ी में, इस पुस्तक में दी गई जानकारी का परिचय परमावश्यक है। इस उपयोगी प्रकाशन के लिए सुयोग्य लेखक तथा प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं।

हार की जीत—लेखक—एन. चन्द्रशेखरन नायर—प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली—मूल्य रु. १·५०।

"हार की जीत" राजपाल एण्ड सन्ज द्वारा प्रकाशित कहानी संग्रह है। इस प्रकाशन-संस्था की ओर से समय-समय पर अनेक साहित्यिक कृतियां प्रकाशित होती हैं परन्तु इस प्रकाशन के लिए हिन्दी संसार प्रकाशक का आभार अनुभव करता है क्योंकि हिन्दी जगत को केरल प्रदेशीय लेखक की कहानियों को संकलित रूप में पढ़ने का अवसर मिला है। क्या अब भी यह कहा जाएगा कि दक्षिण वालों को हिन्दी से लगाव नहीं।

इस संग्रह में आठ कहानियां हैं। ये लेखक की लोकप्रिय कहानियां हैं। "काठ के कफन" कहानी पाठकों तक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा पहुंच चुकी है। "हार की जीत", "काठ के कफन", "चमार की बेटी", "कान्हू गायब हो गया"—कहानियां पढ़कर लेखक की लौह-लेखनी का सिक्का मानना ही पड़ता है। "हार की जीत" कहानी में भारतीय नारी के आदर्श का चित्रण है। वह सचमुच श्रद्धा है—त्याग, बलिदान की मूर्ति। कहानी की नायिका रानी मायादेवी भारतीय नारी का आदर्श है। कवि अथवा साहित्यकार के सामर्थ्य की ओर भी कहानी में संकेत है। "काठ के कफन" का वातावरण अत्यन्त कारुणिक है। अपनी बेटी, अधखिली कली, मरियम की मृत्यु पर ही मात्तन "काठ के कफन" का महत्त्व समझ पाया। "चमार की बेटी" में कान्ति की मानसिक व्यथा का उद्घाटन है। अनाथ लड़की गंगा में अन्तिम आश्रय स्वीकार कर समाज के सम्मुख एक प्रश्नचिह्न छोड़ जाती है। "कान्हू गायब हो गया" में धर्म के ठेकेदारों का परिचय है कि ये भेड़ के रूप में भेड़िए हैं। भारतीय कलाकार की दयनीय स्थिति लेखक की लेखनी के सहारे कहानी में झाँक रही है।

कहानियाँ भाषा-शैली की दृष्टि से सुबोध तथा मार्मिक हैं। इनमें पकड़ है, यथार्थ का रंग है जो समाज के कृष्ण मुख को अधिक काला बना देता है।

-- **मोहन मैत्रेय**

प्रेरक कथाएँ—लेखक, दुर्गाशंकर त्रिवेदी, पृष्ठ ६०—मूल्य ६५ पैसे।

अमीर बनने का रहस्य—डा. रामचरण महेन्द्र—पृष्ठ ६४—मूल्य ७५ पैसे।

मानस-मंथन—पं. गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', पृष्ठ ५६—मूल्य ६५ पैसे।

भारतीय संस्कृति में गुरु की परम्परा—दुर्गाशंकर त्रिवेदी, पृष्ठ ४८—मूल्य ५० पैसे, साधना प्रकाशन, बोरखेड़ा, कोटा।

'प्रेरक कथाएँ' लेखक की ४थी कृति है, जिसमें उनकी २६ लघुकथाएँ संकलित हैं। डा. रामचरण महेन्द्र ने इनकी भूमिका में कहा है कि—"ये कहानियां जीवन को बदल डालने की क्षमता रखती हैं।" यह बिल्कुल सत्य है। कथानकों की रोचकता तथा प्रस्तुतीकरण की मोहकता बरबस पाठकों को पूरी पुस्तक पढ़ने को मजबूर कर देगी। बच्चों को ऐसा पवित्र साहित्य अवश्य देना चाहिए। सस्ते मूल्य में सुलभ करने के लिए प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं।

'अमीर बनने का रहस्य' जीवनोपयोगी साहित्य के प्रमुख प्रेणता डा० रामचरण महेन्द्र की नवीनतम कृति है जिसमें उन्होंने धनवान बनने के सरल किन्तु शास्त्र एवं व्यवहार-सम्मत तरीकों पर जोर देकर धनवान बनने के गुप्त रहस्य बड़ी सुन्दर शैली में प्रस्तुत किए हैं। ये सूत्र उनके अपने क्रियात्मक अनुभव हैं। उनकी यह छोटी-सी, किन्तु महत्त्वपूर्ण

पुस्तक नई पीढ़ी के प्रत्येक वर्ग के लिए उपयोगी है। मूल्य भी अधिक नहीं है।

'मानस-मंथन' वयोवृद्ध साहित्यकार एवं मानस मर्मज्ञ पं० गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' की नवीनतम कृति है जिसमें आपने मानस के प्रत्येक पात्र पर समीक्षात्मक प्रकाश डाला है। प्रत्येक पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को समझने में यह पुस्तक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योग देगी। प्रूफ की अशुद्धियाँ खटकती हैं।

'भारतीय संस्कृति में गुरु परम्परा' में लेखक ने भारतीय-जीवन एवं संस्कृति में गुरु के महत्त्व एवं उसके इर्द-गिर्द घूमने वाली सारी शंका-कुशंकाओं का विद्वतापूर्ण समाधान किया है। पुस्तक संग्रहणीय है।

—गिरिजा 'सुधा'

आरोग्य का अमूल्य साधन, स्वमूत्र—लेखक, रावजी भाई मणिभाई पटेल—अनुवादक और संपादक, हंसराज 'हंस'—भारतसेवकसमाज, लालभाई सेठ का बंडा, पानकोर नाका, अहमदाबाद १—मूल्य रु. ३'५०।

इस पुस्तक में लेखक ने अपने जीवन में की गई एक नवीन उपलब्धि का अत्यन्त रोचक, आकर्षक एवं प्रभावशाली रूप से वर्णन किया है। मानव के 'स्वमूत्र' को लेखक ने स्वास्थ्य का सर्वोत्तम एवं अमोघ साधन बताया है। स्वयं अपने एवं अन्य अनेक रुग्ण व्यक्तियों के अनुभवों का विस्तृत विवरण देकर इस सत्य को प्रतिष्ठापित करने का सफल प्रयत्न किया है कि अनेक असाध्य एवं निराशा जनक रोगों का पूर्ण रूप से निवारण मानव मूत्र के उपयोग द्वारा किया जा सकता है। प्रायः सभी रोगों की इस प्रकार चिकित्सा का उपाय बताया गया है। मूल पुस्तक गुजराती में लिखी गई थी और उसमें इसके अनेक संस्करण हुए। तब इसका हिन्दी अनुवाद कराया गया जिसको अच्छी सफलता मिलने की आशा है।

लेखक ने इसके अधिकाधिक प्रचार पर बल दिया है। पुस्तक उपादेय एवं प्रयोग-योग्य है। —ताराचन्द्र शर्मा

बाल साहित्य

हमारे तीर्थ—विश्वम्भर सहाय प्रेमी—
स्वस्थ कैसे रहें—रामेन्द्र कुमार वाजपेयी—
शकुन प्रकाशन, १०, दरियागंज, दिल्ली ६—मूल्य रु. १'५० प्रत्येक।

प्रस्तुत दोनों पुस्तकें बच्चों को देश भर में फैले विविध तीर्थों तथा स्वस्थ रखने के उपायों का ज्ञान कराने की दृष्टि से लिखी गई हैं। हमारा देश अत्यंत प्राचीन और विशाल है। इसकी संस्कृति भी बहुत पुरानी है। इसके महत्त्वपूर्ण प्रतीक चिह्न तीर्थों के रूप में जब-तब देश की धरती पर बनते चले गये। कालान्तर में उनकी पूजा होने लगी और यात्रीजन वहां जा-जाकर उन्हें अपनी श्रद्धा के सुमन चढ़ाने लगे। इन तीर्थों के कारण देश की सांस्कृतिक एकता भी संगठित हुई। अनेक भाषाएं और व्यवहार भेद होने पर भी संपूर्ण देश के जन अपने को एक ही परिवार का सदस्य मानने लगे। आज यद्यपि उन तीर्थों की महत्ता घटती जा रही है, परन्तु फिर भी उनका परिचय सबके लिए आवश्यक है। यह पुस्तक इस आवश्यकता को बड़ी सफलता से पूर्ण करती है।

स्वास्थ्य जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यद्यपि बचपन में इसकी महत्ता प्रतीत नहीं होती क्योंकि इस समय शरीर में निहित शक्तियां अपना कार्य भली प्रकार करती रहती हैं और प्रकृत रूप में व्यक्त होकर जीवन को ताज़ा बनाए रखती हैं, परन्तु जब कुछ समय बाद ये क्षीण होने लगती हैं, तब तरह-तरह के रोग आ घेरते हैं और स्वास्थ्य की आवश्यकता अनुभव होने लगती है। आजकल तो यौवन में ही स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है, जो पहले यौवन व्यतीत होने के बाद बिगड़ता था। अत: यह कहना ठीक ही है कि स्वस्थ रहने के नियमों का अभ्यास जीवन के आरंभ अर्थात् बचपन से ही डाल लिया जाना चाहिए।

मनुष्य का शरीर एक यंत्र की भांति है जो ठीक तेल पानी दिया जाते रहने पर ही ढंग से काम करता है और यंत्रों की ही भांति घिसता भी रहता है। इसी आधार पर प्रस्तुत पुस्तक में शरीर के अवयवों का परिचय, उनको ठीक-ठीक चलाने के उपायों का वर्णन, उचित भोजन, उचित व्यायाम आदि बातों को समझाया गया है। बताने का ढंग बातचीत का है जो विषय को सरलता प्रदान करता है।

दोनों पुस्तकों की छपाई सफाई उत्तम है।

—चिरंतन

सम्पादकीय



जाति-मूलक भेद-भाव—

क्या जाति के आधार पर मानव-समाज के भिन्न-भिन्न बड़े-छोटे वर्गों में उच्चता और नीचता अथवा अच्छाई और बुराई उत्पन्न होती है ?

मानव-जीवन और इतिहास का यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जो मनुष्य को युग-युगांतर से पीडित करता आ रहा है। काले और गोरे के रङ्ग-भेद से तो मनुष्य को बड़ा और छोटा, ऊँचा और नीचा माना ही जाता रहा है और तथा-कथित ऊँचों के द्वारा तथा-कथित नीचों का दमन भी किया जाता रहा है। स्वयं गोरों के मध्य भी जाति-भेद के कारण ऐसी भावनाएं तथा अत्याचार होते रहे है। इस का एक घिनौना उदाहरण हिटलर के राज्य मे यहूदियों को चुन-चुन कर लाखों की संख्या में मार और जला दिया जाना है, जो हमारे देखते ही घटित हो चुका है। इसके अतिरिक्त भी लगभग दो हज़ार वर्ष से यहूदियों की जाति संसार के सभी देशों में केवल इसलिए प्रताडित और पीडित होती चली आई है क्योंकि वे यहूदी है। इस से बढ़ कर मनुष्य की विडम्बना और हो भी क्या सकती है !

संसार भर के मानव-समाज में प्राय: सभी जातिओं के लोग अपने से भिन्न जातिओं के शेष सभी लोगों को कम गुण वाले, अतएव निम्नस्तरीय मानते आए हैं। कोई अपने को 'सूर्य-वंशी' और कोई 'चन्द्र-वंशी' कह कर अन्य सब से श्रेष्ठ मानता है। प्राय: लोगों की ऐसी धारणा भी रही है कि हमारे वंश वालों के अंदर मनुष्यता के गुण अन्यों से कहीं अधिक हैं; जो महत्त्वपूर्ण कार्य हम कर सकते हैं, उन्हें कोई और लोग कर ही नहीं सकते, उन के अन्दर इन्हें करने की क्षमता ही नहीं है। एतदर्थ उन की शारीरिक एवं मानसिक योग्यता ही नहीं है।

स्वयं भारत में ही समाज के अत्यधिक वर्ग को कुछ ऐसे ही कारणों से सदा ही दबा कर रखा गया है और उन की निरन्तर अवहेलना की गई है। ऐसी स्थिति का रहना इस देश की आध्यात्मिक संस्कृति के लिए बड़ा कलङ्क है।

आवश्यकता इस बात की है कि आपसी ऊँच-नीच मानने वाली ऐसी प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक धरातल पर से उन्मूलन किया जाए।

जाति-भेद कोरी कल्पना है—

यह प्रसन्नता की बात है कि संयुक्तराष्ट्रीय शिक्षा-विज्ञान-संस्कृति-सङ्घ (यूनैस्को) की ओर से गत मास मास्को में एक विशेष सम्मेलन का आयोजन किया गया जिस मे भाग लेने वाले जीवन-विज्ञान, उत्पत्ति-विज्ञान एवं नृविज्ञान के संसार भर के चोटी के विशेषज्ञों ने एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए हैं जिस के अनुसार जाति के आधार पर मनुष्य-मनुष्य के मध्य ऊँच-नीच और अच्छाई-बुराई का कोई भेद नहीं उत्पन्न होता, एवम् इस प्रकार की भेद-भावना नितांत व्यर्थ, निराधार और अज्ञानमूलक है।

इस सम्मेलन ने कुछ अन्य बातें भी कहीं जिनमें (१) मानव समाज की अंग भूत प्रत्येक जाति सभ्यता के उच्चतम शिखर को पहुंच सकती है, (२) मनुष्यों के अन्दर पाए जाने वाले अन्तर जातिगत अन्तर न होकर सभ्यता के ऐतिहासिक कारणों से जनित विषम स्तरों के अन्तर होते हैं, (३) मानव समाज के अन्तर्गत कोई भी ऐसी अवान्तर जाति नहीं है जो अपने नस-नाड़ी में प्रवाहित रक्त की दृष्टि से 'शुद्ध जाति' कही जा सकती हो, और (४) एक-एक वर्ग के व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य प्राय: इतने अन्तर पाए जाते हैं जो वर्ग-वर्ग के मध्य पाए जाने वाले अन्तरों से कहीं अधिक होते हैं।

इन वैज्ञानिक-विचारकों ने सभी राष्ट्रों को यह प्रेरणा की है कि वे समूचे मानव समाज की एक-मात्र व्यापक जाति को छोड़कर उसके अन्तर्गत की अन्य सभी कल्पित जातियों की भेद-भावनाओं का सभी प्रकार से विरोध करें और समान मानवता-वादी भावनाओं के विकास में सहायता दें।

हम उक्त प्रेरणा का स्वागत करते हुए, हृदय से इसका समर्थन करते हैं और आशा करते हैं कि शीघ्र ही संसार में एक विश्व-मानवता स्थापित होगी। वस्तुत:, हमारे **संस्थान** का मौलिक आदर्श सदा से ही **विश्व-मानवता** के सिद्धान्त का प्रचार और प्रसार ही रहा है। यह हमारी सांस्कृतिक-साहित्यिक पत्रिकाओं (**विश्वज्योति, विश्वसंस्कृतम्**) के नामों से ही तथा उनके भीतर प्रकाशित होने वाली सामग्री से स्पष्ट होता है। **संस्थान** द्वारा प्रकाशित अन्य सार्वजनिक साहित्य में भी सामान्यत: और इसके अन्तर्गत **मानवता का मान** एवं **सत्-संग सार** नामक पुस्तकों में विशेषत: इसी परम मानव सत्य की व्याख्या की गई है।

आज फिर हम मानव समाज की एकता की स्थापना के निमित्त उठाए गए इस स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए इस ओर और आगे-आगे बढ़ते चले जाने में अपनी आन्तरिक श्रद्धा प्रकट करते हैं।

—**विश्वबन्धु**

(पृष्ठ ६२ का शेष)

६. **मूर्तिकार मन**—लेखिका, एल्ला ह्वीलर विलकाक्स। अनुवादिका, उषा महाजन। जीवन को बोध और प्रेरणा देने वाले लेख। मूल्य रु. १.५०।

बधाई—संस्थान सदस्या कु. जगतावली सूद, प्रिंसिपल, विद्यामन्दिर, होशिआरपुर, को उनकी भांजी, आयुष्मती स्वतन्त्रलता के शुभ विवाह पर हार्दिक बधाई।

वार्षिकोत्सव—संस्थान का ६१वाँ वार्षिकोत्सव ३१ अक्तूबर और १ नवम्बर, सन् १९६४ को हो रहा है। इस की अध्यक्षता, पहले दिन प्रो.को.अ.सु. अय्यर, पूर्व उप-कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय व वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय तथा, दूसरे दिन, केन्द्रीय उप-शिक्षामन्त्री श्री भक्तदर्शन जी करेंगे। समारोह का निमन्त्रण और विस्तृत कार्यक्रम अगले पृष्ठ पर दिया जा रहा है।

हिन्दी परामर्शक समिति— ३१ अक्तूबर को प्रात: ११ बजे से संस्थान की 'हिन्दी परामर्शक समिति' की बैठक होगी, जिस में स्थानीय सदस्यों के अतिरिक्त डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, चण्डीगढ़, डा. स.चं. अवस्थी, दिल्ली, डा. संसारचन्द, जालन्धर व प्रो. रघुनन्दन शास्त्री, चण्डीगढ़ भाग लेंगे।

संस्थान-समाचार

(INSTITUTE NEWS)

सज्जन समागम—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

१. श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी, हरद्वार, २. श्री महात्मा देवीचन्द जी, होशिआरपुर, ३. प्रो. बख्शीशसिंह निज्जड़, पटियाला, ४. श्री किशोरीलाल बेरी, जालन्धर, ५. श्री कैलाशचन्द्र सेठी, बस्ती (उत्तर प्रदेश) ।

नए सदस्यों से प्राप्त शुल्क—गत मास ये महानुभाव संस्थान-परिवार में सम्मिलित हुए—

१. प्रो. को. अ. सुब्रह्मण्य अय्यर, लखनऊ, १००), २. श्री सुदर्शनलाल बजाज, पिप्लानी (भोपाल), १०), ३. सैक्रेटरी, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १०), ४–५. मास्टर मेहरचन्द, १०), श्री रामकुमार दीक्षित, १०), होशिआरपुर ।

पुराने सदस्यों से प्राप्त शुल्क—

१. श्री कश्यपबन्धु, सम्बल (कश्मीर), २००), २. डा. कुलभूषण श्रीनगर, २००), ३. श्री डी. पी. मन्डेलिआ, बिडलानगर, १९०) ४. डा.सरनदास भनोत, चण्डीगढ़, ९०), ५ प्रो. सुरेन्द्रनाथ भारद्वाज, मिडिलसैक्स (इंग्लैंड), ८०), ६. श्री धर्मवीर कपूर, अमृतसर, ७६), ७.रा.ब. बिशन भगवान,अम्बाला छावनी, ५१), ८. श्री केदारनाथ दत्त,नई दिल्ली,५०), ९-१०. सरदार मोहनसिंह लोहेवाला, ५०), डा. हरबंसलाल उप्पल, ५०), अमृतसर, ११. डा. रामचन्द खन्ना, श्रीनगर, ४०), १२. श्री नारायण दत्त, पानीपत, ३०), १३. डा. चमनलाल धवन, अमृतसर, २५), १४. श्री हरनारायणसिंह वर्मा, नई दिल्ली, २५), १५. श्री धर्मवीर बहल, २०), १६. रा. सा. दीवान शान्तिलाल अहूजा, नई दिल्ली, २०), १७. प्रो, सूतदेव हंस,टांडा उड़मुड़ (होशिआरपुर), २०),१८. श्री हेमराज वत्स, चण्डीगढ़, २०), १९. चौधरी रामचन्द, करनाल, २०), २०. डा. परमानन्द शास्त्री, पटियाला, ११), २१. श्री श्रीकृष्ण अग्रवाल, अहमदाबाद, १०), २२. श्री ठाकुरदत्त जोशी, जोधपुर, १०), २३. चौ. अनंतराम आनन्द, पूना, १०), २४–२५. प्रो. डा. हंसराज गुप्त, १०), श्री नन्दलाल पण्डित, १०), २६. डा. रामगोपाल, १०) चण्डीगढ़, २७. श्री शिवपूजन शास्त्री, किरठल (मेरठ), १०), २८. आर्य प्रतिनिधि सभा, हैदराबाद, १०), २९. श्री सत्यानन्द ओझा, आजमगढ़, १०), ३०. श्री बी. जगदेवसिंह, मोरीशस, १०), ३१. श्री देसराज भारती, नई दिल्ली, २०), ३२–३३. प्रो. प्यारेलाल शर्मा, १०), श्री भक्तराम, १०), जालन्धर, ३४. श्री मगन बाबा, भावनगर, १०), ३५. प्रो. विद्याभूषण आनन्द, पटियाला, १०), ३६. श्री रामकृष्ण भारती, कलकत्ता, १०), ३७. श्री हीरानन्द अहूजा, दिल्ली, १०), ३८–३९. श्री रुलियाराम, १०), श्री सच्चिदानन्द ओझा, १०), होशिआरपुर ।

विशेष दान—१. सर्वश्री मूलचन्द खरायतीराम ट्रस्ट, नई दिल्ली, ५००), २. श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, दिल्ली, ५००), ३–६. कु. जगतावली सूद, ३१), श्री रामप्रसाद, ११), श्री जगदीशपाल भल्ला, ११), होशिआरपुर ।

श्री संचालक जी की दिल्ली-यात्रा— संस्थान के संचालक, आचार्य विश्वबन्धु जी संस्कृत शिक्षा के

सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा आयोजित राजकीय प्रतिनिधियों की २८ सितम्बर की बैठक में भाग लेने के लिए दिल्ली गए। केन्द्रीय उपशिक्षामन्त्री श्री भक्तदर्शन से आप की ३० सितम्बर को विशेष भेंट हुई। वहां आप संस्थान के पुराने सदस्यों, डा. शकुन्तला बधवार तथा श्री सीताराम गुजराल, जो रुग्ण थे, को भी देखने गए।

गान्धी-जयन्ती—४ अक्तूबर को 'विश्व सत्संग' की ओर से महात्मा गान्धी जी की जयन्ती मनाई गई। स्थानीय गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल, डा. शांतिस्वरूप चावला ने अध्यक्षता की। स्वामी ब्रह्ममुनि तथा कु. जगतावली सूद ने अपने भाषणों में भारत तथा विश्व के इतिहास में महात्मा जी के स्थान तथा उनके सिद्धांतों के महत्त्व पर प्रकाश डाला। आचार्य विश्वबन्धु जी ने महात्मा जी के सत्य-प्रेम और सत्य-पालन को उनके समग्र कार्यकलाप का केन्द्र-बिन्दु बताया। प्रिंसिपल चावला ने अपने भाषण मे कहा कि महात्मा गांधी जी का सत्य और अहिंसा का मार्ग ही हमें सुख-शांति की ओर ले जा सकता है, अन्य मार्गों पर चल कर हिरोशिमा ही पहुंचना होगा।

विजयादशमी-उत्सव— १८ अक्तूबर को विजय-दशमी-उत्सव मनाया गया। स्वामी ब्रह्ममुनि जी तथा आचार्य विश्वबन्धु जी ने अपने भाषणों में श्रीराम के महत्त्व पर प्रकाश डाला।

राष्ट्रीय एकता दिवस— २० अक्तूबर को संस्थान के शिक्षण-विभाग में राष्ट्रीय एकता दिवस मनाया गया। इस अवसर पर सभी छात्र व छात्राओं और प्राध्यापकों ने राष्ट्र की एकता और स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए प्रतिज्ञा ली।

नए प्रकाशन

१. **ऋग्वेद—पदपाठ व चार प्राचीन भाष्यों सहित**—ये भाष्य है स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव, उद्गीथाचार्य तथा मुद्गलाचार्य कृत—५ वां भाग। २, ३ और ४ भाग पहले प्रकाशित हो चुके हैं। मूल्य रु. ४५ प्रति भाग।

२. **चाणक्य-नीति-शाखा-सम्प्रदायः**—द्वितीय भाग। सम्पादक, डा. लुडविक् स्टर्नबाख। भाग १ भी प्रकाशित हो चुका है। मूल्य रु. ३० प्रति भाग।

३. **इंडिया एंड दि वर्ल्ड** (अंग्रेजी)—लेखक, डा. बुद्धप्रकाश। प्राचीन काल मे भारत के द्वीपान्तरों मे विस्तार पर शोधपूर्ण मौलिक लेख।

४. **चार्वाक-समीक्षा**—लेखक, स्व. स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती। मूल्य रु. २.००।

५. **केशवदास के तीन ग्रन्थ**—संपादक, डा. किरणचन्द्र शर्मा। ये ग्रन्थ हैं नखशिख, बारहमासा और छन्द माला। मूल्य रु. ३.००।

(शेष पृष्ठ ६० पर)

शोक-समाचार

पिछले दिनों संस्थान जीवन-सदस्य श्री सीताराम गुजराल (नई दिल्ली) का, संस्थान सदस्य श्री सत्यपाल सूद (होशिआरपुर) के पिता श्री खुशीराम जी का, संस्थान सदस्य प्रो. रत्नचन्द्र शर्मा (करनाल) के श्वशुर का, संस्थान सदस्य व कर्मिष्ठ श्री जगदीशपाल भल्ला (बजवाड़ा) के पिता श्री विशनचन्द जी का, संस्थान प्रेमी श्री रामरत्न सूद, एडवोकेट (होशिआरपुर) का तथा श्री चिरंजीलाल दत्त (दिल्ली), जो संस्थान-सदस्य चौ. केदारनाथ दत्त, नई देहली तथा डा. गोवर्धनलाल दत्त, उपकुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, के छोटे भाई थे, का देहान्त हो गया। दिवंगत आत्माओं के वियोग से दुःखी परिवारों एवं मित्रों के साथ संस्थान को हार्दिक समवेदना है।

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

के

६१वें वार्षिक दिवस

के उपलक्ष्य में

शनिवार व रविवार, ३१ अक्तूबर व १ नवम्बर को

नीचे दिए गए कार्यक्रम के अनुसार विशेष उत्सव मनाया जा रहा है। इस अवसर पर

माननीय श्री भक्तदर्शन जी, उपमन्त्री, शिक्षा विभाग, भारत सरकार
डॉ० को० अ० सुब्रह्मण्य आयर, पूर्व उपकुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय व संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डीन, पञ्जाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
डॉ० एस० सी० अवस्थी, उपनिदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली

तथा अन्य कई विद्वान् पधार रहे हैं।

आप की सेवा में निवेदन है कि इस उत्सव के दोनों दिनों के कार्यक्रमों में ठीक समय पर पधारने की कृपा कीजिएगा।

कार्यक्रम

शनिवार, ३१ अक्तूबर, ४ बजे सायं

'भारतीय संस्कृति की आधारभूत धारणाएं' पर गोष्ठी

सभापति— **डॉ० को० आ० सुब्रह्मण्य आयर**, पूर्व उपकुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय व संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रवक्ता—
१. **डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी**, डीन, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
२. **डॉ० एस० सी० अवस्थी**, उपनिदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली।
३. **डॉ० संसारचन्द्र**, रीडर, पंजाब विश्वविद्यालय हिन्दी केन्द्र, जालन्धर।
४. **प्रो० रघुनन्दन शास्त्री**, पूर्व सचिव, प्रकाशन विभाग, पं० वि०, चण्डीगढ़।
५. **प्रो० जगन्नाथ अग्रवाल**, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।
६. **डॉ० रामगोपाल**, रीडर, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।
७. **आचार्य ऋषिराम**, अध्यक्ष, विश्वसत्संग-विभाग, संस्थान।
८. **प्रिंसिपल बहादुरमल्ल**, अध्यक्ष, धर्म व दर्शन विभाग, संस्थान।

रविवार, १ नवम्बर, ३ बजे सायं

वार्षिक दिवस समारोह

सभापति—**माननीय श्री भक्तदर्शन**, उपमन्त्री, शिक्षा विभाग, भारत सरकार।

भाषण तथा अन्य कार्यक्रम

विविध समाचार

तमिल के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ, थिरुकुरल, का हिन्दी अनुवाद बम्बई में प्रकाशित कर दिया गया है। यह नीति-ग्रन्थ थिरुवल्लुवर द्वारा सङ्गम युग मे रचा गया था और कालान्तर में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

× × ×

गोरखपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के एक दल ने ज़िले की महाराजगंज तहसील-स्थित निकलोल नामक ग्राम के समीप उस स्थान का पता लगा लिया है जहां छठी शताब्दी ई. पूर्व कोलिय जाति ने रामग्राम के नाम से अपनी राजधानी स्थापित की थी। यहां कोलियों ने बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप खड़ा किया था। अशोक ने जब अन्य सात स्तूपों को खोल कर उन के अवशेषों को अपने बनाए हुए सैकड़ों स्तूपों के लिए निकाला, तब उस ने यही एक स्तूप छोड़ दिया था। फाहियान और ह्वेनसांग के यात्रा-वर्णनों से तथा अन्य परम्पराओं से इस स्थान का जो वर्णन मिलता है, वह खोजे गए स्थान पर ठीक उतरता है।

विश्वविद्यालय का यह दल अपने क्षेत्र में और भी अनेक महत्त्वपूर्ण खोजें कर रहा है।

× × ×

लखनऊ में एक मीर अकादमी की स्थापना की गई है जो उर्दू के सर्वोत्तम ग़ज़लकार मीर पर 'हादिस-ए-मीर' नामक एक ग्रन्थ की रचना कर रही है। इस योजना में नेपाल के महाराज भी रुचि ले रहे हैं। मीर का जन्म अट्ठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में आगरा में हुआ था। बचपन में ही पिता का देहांत हो जाने से आप को रोजी की तलाश में इधर-उधर भटकना पड़ा। दिल्ली में आप की प्रतिभा चमकी और जीवन के अन्तकाल मे आप नवाब आसिफ़ुद्दौला के निमन्त्रण पर लखनऊ आ गए। यही आप की मृत्यु हुई।

× × ×

गत मास प्रसिद्ध हिमालय-प्रेमी चित्रकार स्व. श्री निकोलस रोरिक की ९०वी जयन्ती मनाई गई। आप न केवल उच्च कोटि के चित्रकार थे, अपितु दार्शनिक, विद्वान् तथा मानवतावादी सज्जन पुरुष थे। रूस में एक प्रसिद्ध जमीदार घराने मे आप का जन्म हुआ, परन्तु क्रांति के पश्चात् आप को देश छोड़ना पड़ा। तब आप अपनी सब सम्पत्ति ले कर अपने प्रिय देश भारत में आ गए और कुल्लू के नग्गर नामक स्थान पर घर बना कर रहने लगे। अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्ष आप ने हिमालय की उपत्यकाओं में ही बिताए। अपने व्यवहार के कारण आप यहाँ की जनता में ईश्वरीय शक्तियों से सम्पन्न देवपुरुष के रूप में समादृत हुए। सन् १९४७ के दिसम्बर मास में आप की मृत्यु हुई तथा यहीं आप की समाधि बनी। आप के पुत्र जार्ज भारती-विद्या के माने हुए विद्वान् थे। दूसरे पुत्र स्वेतोस्लाव भी प्रसिद्ध भारत-प्रेमी हैं। प्रो. निकोलस रोरिक ने २७ के लगभग दार्शनिक-सांस्कृतिक ग्रन्थ लिखे और सात हज़ार से ऊपर चित्रों की रचना की।

× × ×

Name of owner :— Vishveshvaranand Institute Society, Sadhu Ashram, Hoshiarpur.
Printed & Published by **Shri Dev Datt Shastri** on 28th October 1964
at the Vishveshvaranand Vedic Research Institute Press,
P. O. Sadhu Ashram, Hoshiarpur.